स्वाध्याय स्वमन्थन स्वावलम्बन

उ० प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

(उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा निर्गत अधिनियम संख्या 10, 1999 द्वारा स्थापित)

UGZY - 02
प्राणी विविधता-II

प्रथम खण्ड
कॉर्डेटों में विविधता

इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, इलाहाबाद - 211013

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

UGZY -02
प्राणि विविधता-II

खंड

1

कॉर्डेटों में विविधता

इकाई 1

कॉर्डेटों का परिचय 7

इकाई 2

एग्नैथा, मछलियां तथा ऐम्फिबिया 34

इकाई 3

सरीसृप तथा पक्षी 83

इकाई 4

स्तनी 152

प्राणि विविधता - II

हमारे अधिकतर परिचित प्राणी जैसे कि मछलियां, उभयचर, सरीसृप, पक्षी तथा स्तनी, फाइलम कॉर्डेटा में आते हैं। हालांकि अभी तक वर्णित समस्त प्राणी स्पीशीज़ में ये प्राणी लगभग 5% का ही एक छोटा सा समूह हैं, फिर भी ये पृथ्वी के हर प्रकार के आवास में रहते पाए जाते हैं। जलीय आवास में एक ओर ऐसी मछलियां है जो पूरे परिपक्व होने पर भी केवल 0.1 g. वजन की हो सकती हैं, तो दूसरी ओर 100,000 kg तक के वजन की ह्वेल भी रहती है। आकाश में प्रवासी पक्षी सर्वोच्च पर्वतमाला हिमालय के ऊपर से उड़ सकते हैं। कॉर्डेटों में पक्षी बहुत ऊँचाइयों पर रह सकते हैं जहां अन्यथा स्तनी नहीं रह सकते क्योंकि वहां पर आक्सीजन का अभाव होता है, मगर पक्षी अपने विशेष फेफड़ों से वायु में से ऑक्सीजन ग्रहण करने के लिए अधिक कारगर होते हैं जो कार्य स्तनी के फेफड़े नहीं कर सकते। कार्डेटों में अनुकूलन तथा व्यवहार उतने ही जटिल होते है जितने कि उनके विविध देह-स्वरूप दिलचस्प होते हैं। इन प्राणियों का उंदभ्वन किस प्रकार हुआ और आगे-आगे वे कैसे विकसित होते गए, यह भी एक कौतुहलपूर्ण कहानी है।

प्राणि विविधता I में आपका परिचय कराया गया था उस विशाल विविधता से जो अकॉर्डेटा अथवा अकशेरुकी प्राणियों में पायी जाती है। प्राणि विविधता-II तीन पाठ्यक्रमों के इस सम्पूर्ण पैकेज का दूसरा पाठ्यक्रम है। इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य विद्यार्थियों को सजीव कॉर्डेटों की विशाल विविधता एवं उनके विशेष अनुकूलन, परस्पर संबंध तथा विकास के अध्ययन का अवसर प्रदान कराना है। आज के जीवित कशेरुकियों की संख्या उन तमाम स्पीशीज़ का एक छोटा सा ही भाग है जो इससे पूर्व भूगर्भीय युगों में रहा करते थे और उनमें से अधिकतर का आज कोई भी जीवित सदस्य नहीं बचा है। प्लायोसीन तथा प्लीस्टोसीन से लेकर अब तक लगातार स्पीशीज़ की संख्या घटती ही गयी है। हाल के गुजरे दिनों में कुछ नए तथा और कुछ ऐसे स्तनियों की खोज से भी जिन्हें अन्यथा विलुप्त हो गया माना जाता था, ज्ञात पड़ता है कि अभी भी अनेक कॉर्डेट स्पीशीज़ हैं जिन्हें खोजा जाना और जिनका वर्णन करना शेष है।

इस पाठ्यक्रम में कॉर्डेटों का वर्णन क्लास-दर-क्लास किया गया है। प्रत्येक क्लास के विभेदक लक्षणों का विवेचन करते समय प्रयास किया गया है कि एक ओर न तो विभिन्न कॉर्डेटों की मूलभूत एकरूपता पर से ध्यान हटे और न ही दूसरी ओर इस तथ्य को भी भुला दिया जाए कि इनमें पाए जाने वाले संरचनात्मक रूपांतरण इनके लम्बे विकासीय इतिहास का परिणाम हैं। पूरे पाठ्यक्रम में ध्यान रखा गया है कि प्राणियों के अध्ययन में तुलनात्मक दृष्टिकोण ही अपनाए रखा जाए जिसमें उन समानताओं का वर्णन हो सके जो उनकी समान पूर्वजता का स्पष्ट प्रमाण हैं। हम विविधत शारीरिक संरचनाओं का वर्णन करेंगे जिसमें स्वरूप, कार्य और अनुकूलन के बीच परस्पर संबंध पर बल दिया जाएगा। यही शैली अंग-तंत्रों के लिए अपनायी गयी है, क्योंकि कार्य क्रियारत संरचना का ही रूप होता है और संरचना के अस्तित्व का कारण भी वही है। जहां-जहां आवश्यक था वहां-वहां मानव संरचनाओं का भी संदर्भ दिया गया है, इस उद्देश्य से कि मानव को भी कशेरुकी संघटना एवं योजना में सम्मिलित किया जा सके और इस संदर्भ में कुछ रोचक जानकारियों को हाशिया टिप्पणियों में दिया गया है।

खण्ड 1 कार्डेटों में विविधता में चार इकाइयां हैं। इसका आरम्भ कॉर्डेटों के मूलभूत लक्षणों के वर्णन से किया गया है। इसमें बल दिया गया है कि विभिन्न कॉर्डेट क्लासों के एकीकरणकारी सिद्धांतों को दर्शाया जाए ताकि उनकी पूर्वजता का पता लगाया जा सके। विविध कशेरुकी कॉर्डेटों का उनके एक-दूसरे के परस्पर संबंध के संदर्भ में वर्गीकरण किया गया है तथा उनके विभेदक लक्षणों का विवेचन किया गया है।

कॉर्डेटों का कार्यात्मक शारीर भाग-I तथा भाग-II इस पाठ्यक्रम के दूसरे तथा तीसरे खण्ड हैं। इन खण्डों की आठ इकाइयों में जो विषय लिए गए हैं वे बताते हैं कि विभिन्न कशेरुकी किस प्रकार आवश्यक सामग्री को प्राप्त करते तथा वर्ज्य पदार्थों को बाहर निकालते हैं; अपने क्रियाकलापों का समाकलन करते हैं; जनन करते हैं; तथा अपनी उत्तरजीविता के लिए चुनौतियों का सामना करते हैं।

अंत में खण्ड 4 अनुकूलन एवं व्यवहारात्मक प्रतिरूप दिया गया है। कशेरुकियों का व्यवहार उतना ही विविध एवं जटिल है जितने कि उनके देह-स्वरूप। इसमें आधारभूत अवधारणाओं का विवेचन किया गया

विषय में भी आप इस इकाई में पढ़ेंगे। भारत अपने कशेरुकी प्राणिजात में बहुत सम्पन्न और विविध है; अतः हमने यथासंभव भारतीय स्पीशीज़ के उदाहरण देने का प्रयत्न किया है क्योंकि हम समझते हैं कि हमारे विद्यार्थियों को उनसे अवश्य परिचित होना चाहिए। हमने भारत की कुछ संकटापन्न स्तनी स्पीशीज़ को भी सूचीबद्ध किया है।

भूगर्भीय काल जिसमें जैविकीय विकास प्रदर्शित है परिशिष्ट I में तथा कशेरुकियों का एक संक्षिप्त वर्गीकरण परिशिष्ट II में इस खण्ड के अंत में दिया गया है।

हमारी सलाह है कि इस पाठ्यक्रम को पढ़ते समय आप इन दोनो परिशिष्टों को भी अवश्य पढ़ें ताकी भूगर्भीय काल के संदर्भ में विकास प्रक्रिया को और अच्छी तरह समझ सकें।

उद्देश्य

इस खण्ड को पढ़ चुकने के बाद आप:

- समस्त कॉर्डेट समूहों में पाए जाने वाले विशिष्ट लक्षणों की सूची बना सकेंगे,
- कशेरुकियों को आदिम कार्डेटों से पृथक करने वाले लक्षणों को पहचान सकेंगे,
- उन विशिष्ट लक्षणों को सूचीबद्ध कर सकेंगे जो विभिन्न कशेरुकी क्लासों के सदस्यों में विभेद करने में सहायक होते हैं,
- स्थल पर और जल पर जीवन बिता सकने के लिए कशेरुकियों में पाए जाने वाले महत्वपूर्ण अनुकूलनों का वर्णन कर सकेंगे।

है। प्राणि-व्यवहार को जानने में विभिन्न प्रयोगात्मक-मार्ग समझाये गये हैं जिनसे पता लगता है कि किस प्रकार व्यवहार, कार्य तथा शरीर पारस्परिक रूप से संबंधित हैं।

सभी पाठ्यक्रमों की तरह जहां-जहां वांछनीय पायी गयी विषय-विशेष से जुड़ी रोचक सूचनाओं को हाशिया टिप्पणियों में दिया गया है। पाठ्यक्रम की प्रत्येक इकाई में शिक्षण उद्देश्य, मूलपाठ सारांश तथा बोध प्रश्न दिए गए हैं। आपको सलाह दी जाती है कि सभी "बोध प्रश्न" तथा "अंत में कुछ प्रश्न" को हल करें जिससे आपको स्वपरीक्षण तथा इकाई की महत्वपूर्ण अवधारणाओं को समझने में मदद मिलेगी।

हम यह मानकर चलते हैं कि इस पाठ्यक्रम को पढ़ना शुरू करने से पहले आप LSE-01, LSE-05 तथा LSE-09 का अध्ययन कर चुके होंगे। प्रत्येक खण्ड के अंत में कठिन शब्दों को शब्दावली में समझाया गया है और साथ ही विषय पर और अधिक जानकारी प्राप्त करने के उद्देश्य से संदर्भ सूची भी दी गयी है।

खण्ड I कार्डेटों में विविधता

जीवित कार्डेटों में बहुत विशाल संरचनात्मक एवं कार्यात्मक विविधता पायी जाती है तथा ये भिन्न-भिन्न पर्यावरणों एवं जीवन-शैलियों के अनुकूलित होते हैं। तथापि इन सभी में कुछ ऐसे खास लक्षण भी हैं जो इनकी समान पूर्वजता का परिणाम हैं तथा इन लक्षणों में विकास के दौरान प्रगामी रूपांतरण हुए हैं। इस खण्ड में चार इकाइयां हैं जो कार्डेटों के वर्गीकरण का उपरिदृश्य प्रस्तुत करती हैं, और यह वर्गीकरण भी एक विधि है जिससे कार्डेटों के विकास को समझा जा सकता है।

इकाई 1 कार्डेटों का परिचय में सजीव कार्डेटा तथा अन्य प्राणि-समूहों में संबंध देखा गया है। हमने हेमिकार्डेटा तथा आदिम कॉर्डेट समूहों का वर्णन किया है जो कशेरुकियों के संभव पूर्वज हैं और कॉर्डेटों की पहचान के महत्वपूर्ण लक्षणों का वर्णन किया है। आप जान सकेंगे कि सभी कार्डेटों में कम से कम भ्रूण अवस्थाओं में तो एक लचीला नोटोकॉर्ड (पृष्ठ रज्जु), एक पृष्ठ तंत्रिका रज्जु, युग्मित गिल छिद्र तथा ग्रसनी कोष्ठ होते ही हैं, और इनमे से अधिकतर में सुस्पष्ट शिरोभवन हुआ होता है अर्थात् मुख्य संवेदी अंग शरीर के अग्र भाग में संकेंद्रित होते जाते हैं। इस इकाई में हम उन विविध परिकल्पनाओं का भी उल्लेख करेंगे जिनका संबंध कशेरुकियों के उद्भव से है क्योंकि ऐसे कोई भी स्पष्ट जीवाश्म नहीं मिले हैं जो कशेरुकियों को किसी अकशेरुकी पूर्वज प्ररूप के साथ जोड़ सकें।

इकाई 2 एग्नैथा, मछलियां तथा ऐम्फिबिया में कशेरुकियों के एनम्नियॉनी (उल्बरहित) समूहों अर्थात् जबड़ाविहीन मछलियों, वास्तविक मछलियों तथा जल और स्थल दोनों पर रहने वाले जीवों अर्थात् उभयचरों (ऐम्फिबियनों) के विशिष्ट लक्षणों तथा वर्गीकरण का विवेचन किया गया है। आप जान सकेंगे कि जबड़ाविहीन मछलियां वास्तविक मछलियों की पूर्वज हैं और इन्हें सबसे आरम्भिक कशेरुकी माना जा सकता है। सबसे आरम्भिक कशेरुकी यानि ऐसे प्राणी जो कार्डेट समूह में आते हैं और जिनमें एक कार्टिलेजी अथवा अस्थिल अंत: कंकाल होता है जिसका अग्र भाग एक कपाल बन जाता है जिसके भीतर मस्तिष्क होता है, और शेष भाग कशेरुक दण्ड होता है जिनके भीतर से तंत्रिका रज्जु गुज़रती है। इस इकाई में यह भी वर्णन किया गया है कि किस प्रकार से उभयचर कशेरुकियों का वह पहला समूह है जो जल से निकल कर स्थल पर जीवन बिताने लगे, यह एक मुख्य विकास चरण था हालांकि ये अब भी अपने जीवन का कुछ अंश जल में बिताते हैं। इस प्रक्रिया से कशेरुकी देह योजना में एक परिवर्तन-क्रम आरम्भ हुआ जो थलीय अस्तित्व के लिए उपयुक्त था।

इकाई 3 सरीसृप एवं पक्षी। इसमें वर्णन किया गया है कि एक बार स्थलीय आवासों में आ जाने के बाद कशेरुकी विभिन्न दिशाओं में विकसित होते हुए ऐसे अति विशिष्ट प्राणी बन गए जैसे इस पृथ्वी पर पहले कभी नहीं थे। सर्वप्रथम पूर्णत: थलीय प्राणी बनने वाले कशेरुकी सरीसृप थे जो जल के बाहर न केवल भली प्रकार जीवित बने रह सके वरन् जनन भी जल के बाहर करने लगे। स्थल पर जीवन बिताने के लिए दूरगामी संरचनात्मक परिवर्तन आवश्यक थे। जबड़े में उन्नतकारी परिवर्तन हुआ जिससे अशन (खाने) की नयी विधियां संभव हुई और पादों में परिवर्तन हुआ जिससे ये प्राणी स्थलीय जीवन के लिए अधिक उपयुक्त हो गए। सरीसृपों के सबसे विस्मयकारी उदाहरण थे डाइनोसॉर जो किसी समय पृथ्वी पर विचरते थे।

सरीसृपों से व्युत्पन्न होने वाले प्राणी थे पक्षी और स्तनी जो दोनों ही सतत् क्रियाशीलता के लिए बहुत विशेषित हो गए थे। पक्षी अपने उद्भव के समय से ही विभिन्न आवासों के लिए अनुकूलित हो गए तथा उनकी आकारिकीय विशिष्टताएं उनकी उड्डयन आवश्यकताओं के अनुसार प्रकट हो गयी हैं। थलीय कशेरुकियों में पक्षी ही एक मात्र ऐसे प्राणी हैं जो उड़ कर दूर-दूर की यात्राएं कर सकते हैं। इस इकाई में सरीसृपों और पक्षियों के वर्गीकरण एवं उनके प्राकृतिक इतिहास का वर्णन किया गया है।

इकाई 4 स्तनी में आप स्तनियों के उन मुख्य लक्षणों के विषय में पढ़ेंगे जिनके कारण ये पृथ्वी पर सफल वर्ग बन सके। इस इकाई में गैर-अपरा (non-placental) स्तनियों का रोचक वृत्तांत दिया गया है। आप उन विशेष अनुकूलनों के विषय में पढ़ेंगे जो चिमगादड़ों में उड़ने के लिए और ह्वेलों में जलीय जीवन के लिए आ गए हैं। स्तनियों के उत्तरोत्तर विभेदित दंत विन्यास के पैदा होने तथा मानवों के विकास के

इकाई 1 कॉर्डेटों का परिचय

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना
उद्देश्य

1.2 फ़ाइलम हेमिकॉर्डेटा
क्लास एंटेरोन्यूस्टा
क्लास टेरोब्रैंकिया
आधारभूत अनुकूली लक्षण
बंधुताएं

1.3 फाइलम कॉर्डेटा - सामान्य लक्षण

1.4 कॉर्डेट-प्राणी अकशेरुकियों से किस प्रकार भिन्न हैं

1.5 फ़ाइलम कॉर्डेटा का वर्गीकरण
उपफाइलम यूरोकॉर्डेटा
उपफ़ाइलम सेफ़ेलोकॉर्डेटा
आधारभूत अनुकूली लक्षण
बंधुताएं

1.6 पूर्वजता तथा विकास-प्रवृत्तियां

1.7 सारांश

1.8 अंत में कुछ प्रश्न

1.9 उत्तर

1.1 प्रस्तावना

प्राणि जगत में अन्य किसी भी समूह की अपेक्षा कॉर्डेटों से हम अधिक परिचित हैं। इसका स्पष्ट कारण यह है कि स्वयं हम तथा अनेक पालतू जानवर जैसे कि गाय, भेड़, बकरी, कुत्ता आदि सब इसी समूह के सदस्य हैं। कॉर्डेट-प्राणी सर्वाधिक विविध हैं एवं विभिन्न प्रकार के आवासों के लिए सफलतापूर्वक अनुकूलित हो चुके हैं। फिर भी, संघटना की आधारभूत योजना जितनी अधिक समान रूप में कॉर्डेटा में होती पायी जाती है उतनी अनेक अकॉर्डेट समूहों में नहीं पायी जाती। जीवविज्ञानियों के लिए कॉर्डेटों का अध्ययन लगातार महत्त्वपूर्ण बना हुआ है, और ऐसा इसलिए है क्योंकि यही अध्ययन जैविकीय सिद्धांतों को जैसे कि परिवर्धन, पूर्वजता, परस्पर-संबंधों एवं विकास को बहुत अच्छी तरह दर्शा पाता है। अनेक कॉर्डेटों के देह भाग कड़े बने होते हैं तथा शरीर के नष्ट हो जाने के बाद भी बचे रह जाने वाले ये भाग जीवाश्म रिकॉर्ड के रूप में अपने जीवों का एक अच्छा-खासा इतिहास का वर्णन करते हैं। इस प्रकार का जीवाश्म-रिकार्ड विकास-प्रक्रिया के विषय में विचारों को स्पष्ट करने में बहुत सहायक होता है। साथ ही उन्नत कॉर्डेटों में कुछ तो बहुत ही जटिल प्रकार के प्राणी भी पाए जाते हैं। अत: ये हमारे सम्मुख दो प्रकार के प्रश्न पैदा करते हैं एक तो, जैविकीय संघटना की जटिलता के विषय में और दूसरे उन विशिष्ट क्रियाविधियों के विषय में जो विकास की प्रक्रिया में महत्त्वपूर्ण हैं।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ चुकने के बाद आप ये सब कर सकेंगे:

- कॉर्डेटों के विभेदक लक्षण गिना सकेंगे, और समझा सकेंगे कि ये प्राणी अकॉर्डेटों से विशिष्टत: किस प्रकार भिन्न हैं,
- कॉर्डेटों का वर्गीकरण कर सकेंगे एवं उनके उपयुक्त उदाहरण दे सकेंगे ,
- हेमिकॉर्डेटों तथा प्रोटोकॉर्डेटों के प्राकृतिक इतिहास एवं उनके आधारभूत अनुकूलनी लक्षणों का वर्णन कर सकेंगे, तथा

- हेमिकॉर्डेटों एवं प्रोटोकॉर्डेटों की, प्राणि-जगत के अन्य समूहों के संदर्भ में बंधुताएं, पूर्वजता तथा विकास की रूपरेखा दे सकेंगे।

1.2 फ़ाइलम हेमिकॉर्डेटा

आरम्भ में हेमिकॉर्डेटा (Hemichordata) को कॉर्डेटा का ही एक उपफ़ाइलम माना जाता था। ऐसा मानने का आधार एक आद्यांगी नोटोकॉर्ड का होना एवं गिल-दरारों की उपस्थिति थी। मगर बाद में पता चला कि जिसे हेमिकॉर्डेट का नोटोकॉर्ड कहा गया, वह वास्तव में एक मुख-गुहा से निकली बहिर्वृद्धि थी और वह कॉर्डेट के नोटोकार्ड के समजात (homologous) नहीं थी। अत: अब हेमिकॉर्डेटा को एक पृथक फ़ाइलम की तरह रखा जाता है। फिर भी अपने इस विविधता के पाठ्यक्रम में हम हेमिकॉर्डेटा को कॉर्डेटा के ही साथ ले रहे हैं क्योंकि इनमें वास्तविक नोटोकॉर्ड के न होने के बावजूद अनेक विशिष्ट लक्षण कॉर्डेटा के ही समान हैं।

हेमिकॉर्डेटा के विशिष्ट लक्षण

हेमिकॉर्डेटा (Hemi - अर्ध, Chord - रज्जु) में आने वाले प्राणियों का शरीर कोमल होता है। ये समुद्र में पाए जाते हैं, जहां वे तली में रहते हैं और आम तौर से उथले जल में रेत अथवा कीचड़ में U-आकृति के बिल बनाकर उनमें रहते हैं। ये प्राणी कृमि-जैसे अथवा छोटे एवं संहत होते हैं जिनमें एक वृंत होता है। शरीर के तीन भाग होते हैं- शुंडिका (proboscis), कॉलर (collar) तथा धड़ (trunk) [इन तीनों को क्रमश: ये नाम भी दिए जाते हैं. प्रोटोसोमा (protosoma), मीज़ोसोमा (mesosoma) तथा मेटासोमा (metasoma)]। सीलोमी कोष्ठ (coelomic pouch) शुंडिका में एकल मगर कॉलर एवं धड़ में युग्मित होता है। मुख-अंधवर्ध (buccal diverticulum) शुंडिका के पश्च भाग में होता है। परिसंचरण के लिए पृष्ठ एवं अधर वाहिकाएं और हृदय पृष्ठ होता है। श्वसन गिल-दरारों द्वारा होता है। उत्सर्जन के लिए एकल ग्लोमेरुलस होता है जो रक्त वाहिनियों से संयोजित रहता है। तंत्रिका-तंत्र में एक अर्धःएपिडर्मिसी तंत्रिका जाल होता है जिसमें स्थूलन होकर पृष्ठ एवं अधर तंत्रिका रज्जु बन जाते हैं, और उनके साथ कॉलर के भीतर एक संयोजी वलय बन जाता है। कॉलर का पृष्ठ तंत्रिका रज्जु कुछ उदाहरणों में खोखला होता है।

फ़ाइलम हेमिकॉर्डेटा को दो क्लासों में विभाजित किया जाता है- क्लास एंटेरॉन्यूस्टा तथा क्लास टेरोब्रैंकिया।

1.2.1 क्लास एंटेरॉन्यूस्टा (Class Enteropneusta)

इन प्राणियों को सामान्यत: ऐकॉर्न कृमि (acorn worms) कहते हैं, ये कृमि-जैसे होते हैं एवं अपने बिलों में अथवा पत्थरों के नीचे रहने वाले ये प्राणी बहुत ही सुस्त होते हैं। उदाहरण: *बैलेनोग्लॉसस* (*Balanoglossus*), *सैकोग्लॉसस* (*Saccoglossus*) (चित्र 1.1) तथा *टाइकोडेरा* (*Ptychodera*)।

शरीर श्लेष्म से ढका होता है तथा इसके तीन क्षेत्र होते हैं- एक मुखपूर्वी शुंडिका **(proboscis)**, मुख के पीछे स्थित एक गोल कॉलर **(collar)** तथा उसके पीछे एक लम्बा धड़ **(trunk)**। शुंडिका अपने परिवेश में ढूंढती-टटोलती हुई आहार को अपनी सतह पर श्लेष्म में एकत्रित करती है।

तदुपरांत सिलिया द्वारा इन आहार-कणों को कॉलर के सीमांत में बनी एक खांच में पहुंचा दिया जाता है जहां से उन्हें नीचे मुख में को पहुंचा कर निगल लिया जाता है (चित्र 1.2a)। यदि कण बड़े हुए तो उन्हें भीतर को नहीं ले जाया जाता, कॉलर के सीमांत से मुख को बंद करके उन्हें बाहर ही रोक दिया जाता है (चित्र 1.2b)। तली में रहने वाले एंटेरॉन्यूस्ट अपनी शुंडिका तथा कॉलर को इस्तेमाल करते हुए U-आकृति के श्लेष्म के अस्तर वाले बिल बनाते हैं।

मुख-अंधवर्ध आंत की एक पतले थैले जैसी संरचना होती है जो मुख तक पहुँचती है। आंत के इसी भाग को पहले तंत्रिका रज्जु समझा जाता था।

एक छोटा सीलोमी थैला (प्रोटोसील, protocoel) शुंडिका के पश्च सिरे पर बना होता है और इसमें मुख-अंधवर्ध पहुंच गया होता है। एक पतली नाल इस प्रोटोसील से चलकर शुंडिका छिद्र तक पहुंचती है और बाहर को खुल जाती है। कॉलर की युग्मित सीलोमी गुहाएं भी छिद्रों द्वारा बाहर को खुलती हैं (चित्र 1.3)। छिद्रों द्वारा जल को भीतर लेकर सीलोमी थैलों में पहुंचा दिया जाता है और उससे शुंडिका को कड़ा कर दिया जाता है और इस कड़ी दशा में उसे बिल बनाने में इस्तेमाल किया जाता है। देह-भित्ति की

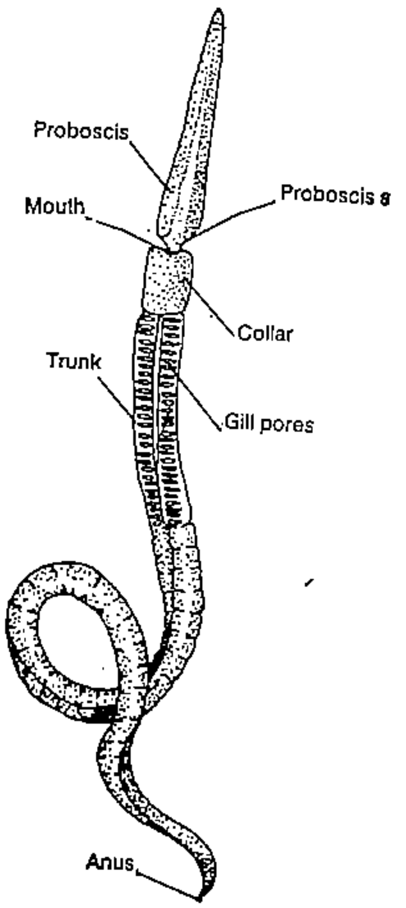

चित्र 1.1: ऐकॉर्न कृमि सैकोग्लॉसस (*Saccoglossus*) की बाहरी संरचना

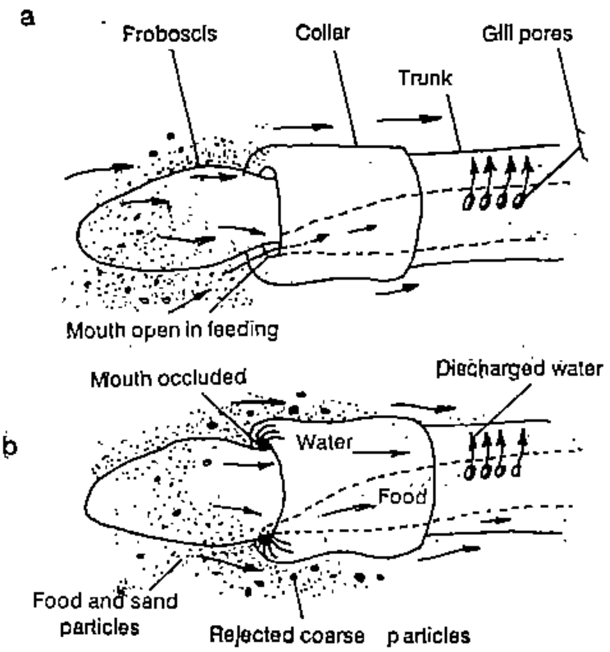

चित्र 1.2: एंटेरॉन्यूस्ट हेमिकॉर्डेट में आहार कणों को साथ में ले जाती हुई जलधाराएं। (a) पार्श्व दृश्य जिसमें खुला हुआ मुख तथा जलधाराओं की दिशा दिखायी गयी है, इनके द्वारा दर्शाया गया है कि आहार कण किस मार्ग से मुख की ओर और वहां से पाचन पथ को पहुंचाए-चलाए जाते हैं। अस्वीकृत कणों को कॉलर पर से बाहर ही छोड़ दिया जाता है तथा जल गिल-छिद्रों में से बाहर निकल जाता है। **(b) मुख बंद कर लिया गया है तथा इस स्थिति में सभी कण बाहर रखे जाते हैं जो कॉलर के ऊपर से गुज़रते हैं।**

पेशियों के संकुंचन से अधिशेष जल को गिल-छिद्रों में से बाहर निकाल दिया जाता है, जिससे प्राणी आगे को गति कर सकता है और आहार पाचन नाल में चला जाता है ताकि उसका पाचन हो सके।

धड़ के प्रत्येक पार्श्व पर पृष्ठ-अधरतः स्थित गिल छिद्रों की एक पंक्ति शृंखलागत गिल कोष्ठों में खुलती है और पुनः ये गिल कोष्ठ गिल-दरारों की एक शृंखला में खुलते हैं। जल मुख में से होता हुआ ग्रसनी में और फिर वहां से गिल-दरारों और फिर गिल कोष्ठ में पहुंचकर वहां से बाहर को निकल जाता है (चित्र 1.2a)। भीतर ले जाए गए जल में से ऑक्सीजन निकाल ली जाती है तथा कार्बन डाइऑक्साइड उसमें छोड़ दी जाती है। गैसीय विनिमय रक्तवाहिकामय गिल एपिथीलियम में एवं देह की सतह से सम्पन्न होता है।

हेमिकॉर्डेट-प्राणी मुख्यतः सिलियरी-श्लेष्म आहारक होते हैं। मुख गुहा के पीछे की ओर स्थित ग्रसनी एक छलनी अथवा फिल्टर जैसा कार्य करती है जो जल से आहार कणों को पृथक कर लेती है। श्लेष्म में फंस गए आहार कण शुंडिका तथा कॉलर पर हो रही सिलियरी क्रिया से मुख में लाए जाते हैं। तदुपरांत जल में से छने हुए ये आहार कण आगे ग्रसनी के अधर भाग में से होते हुए ग्रसनी में और फिर वहां से अंतड़ी में पहुंचते हैं जहां उनका पाचन एवं अवशोषण होता है और उधर जिस जल में से ये कण छने थे वह गिल-दरारों से होता हुआ बाहर निकल जाता है।

परिसंचरण तंत्र खुले प्रकार का होता है तथा इसमें एक मध्य पृष्ठ वाहिका आहार नाल के ऊपर से जाती है और एक मध्य अधर वाहिका आहार नाल के नीचे से गुज़रती है और ये दोनों ही अपने अंतिम सिरों पर खुली गुहाओं से जुड़ी होती हैं। पृष्ठ वाहिका मुख अंधवर्ध के ऊपर फैल कर एक हृदय तथा कुछ कोटरें बना लेती है। (चित्र 1.3)। इस कोटर-समूह को ग्लोमेरुलस कहा जाता है क्योंकि माना गया है कि इनका कार्य उत्सर्गी है। रंगहीन रक्त आहार नाल के ऊपर पृष्ठ वाहिका में आगे की ओर को बहता है, अधर वाहिका में पश्च ओर को बहता है, तथा आहार नाल और देह-भित्ति के बीच खुली गुहाओं में से चलता जाता है।

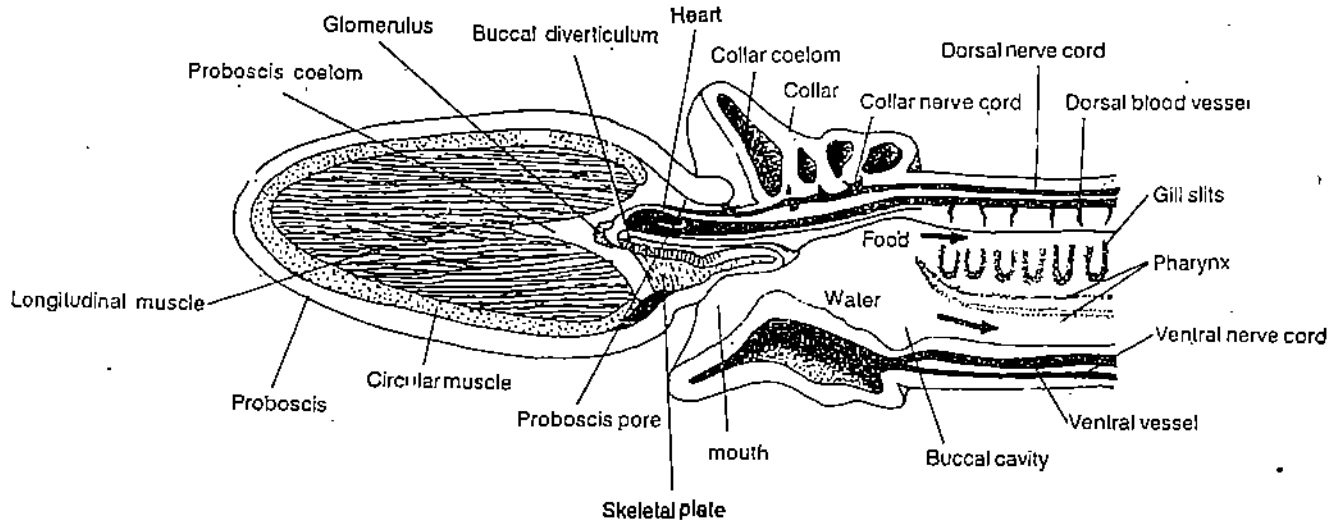

चित्र 1.3: एक हेमिकॉर्डेट के अग्र सिरे से लिया गया अनुदैर्घ्य सेक्शन (भीतरी संरचना दर्शाते हुए)

तंत्रिका-तंत्र में तंत्रिका कोशिकाओं एवं तंतुओं का एक जाल होता है जो एपिडर्मिस के नीचे बना होता है और ये तंत्रिका तंतु और तंत्रिका कोशिकाएं मोटे होकर पृष्ठ तथा अधर तंत्रिका रज्जु बना लेते हैं। ये दोनों रज्जु कॉलर के पीछे एक वलय द्वारा परस्पर संयोजित हो गए होते हैं। कुछ स्पीशीज़ में पृष्ठ रज्जु कॉलर प्रदेश में जारी रहता है जहां उसमें से अनेक तंतु निकलकर शुंडिका में चले गए होते हैं। समस्त एपिडर्मिस में विद्यमान तंत्रिका संवेदी कोशिकाएं तथा प्रकाश ग्राही कोशिकाएं ही संवेदग्राही होती हैं।

लिंग पृथक होते हैं। गोनड धड़ के अग्र भाग के प्रत्येक पार्श्व पर पृष्ठ-पार्श्वतः पंक्तियों में व्यवस्थित होते हैं। निषेचन समुद्री जल में बाहरी होता है। कुछ स्पीशीज़ में एक मुक्त तैरने वाला वेलापवर्ती (pelagic) सिलियायुक्त लार्वा होता है जिसे टॉर्नेरिया (tornaria) लार्वा कहते हैं (चित्र 1.4)।

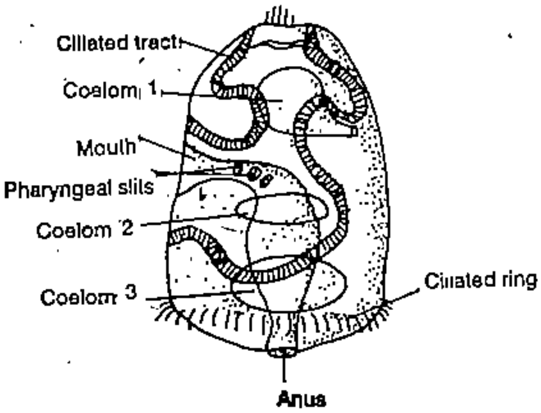

चित्र 1.4: टॉर्नेरिया लार्वा, हेमिकॉर्डेट की लार्वा अवस्था

1.2.2 क्लास टेरोब्रैंकिया (Pterobranchia)

टेरोब्रैंक स्थानबद्ध अतिमंदगति वाले हेमिकॉर्डेट होते हैं जो अपने ही स्रावों से बनी नलिका के भीतर रहते हैं। इनका साइज़ 1 से लेकर 7 mm तक लम्बा होता है हालांकि इनका वृंत और भी ज़्यादा लम्बा हो सकता है। क्लास टेरोब्रैंकिया की आधारभूत संरचना-योजना वैसी ही होती है जैसी कि एंटेरॉन्यूस्टा में। मगर कुछ ऐसे संरचनात्मक अंतर भी पाए जाते हैं जिनका संबंध टेरोब्रैंकों की स्थानबद्ध जीवन-शैली से है। इसमें अनेक जेनेरा पाए जाते हैं मगर विस्तृत जानकारी केवल दो ही जेनेरा- *सेफ़ैलोडिस्कस* (*Cephalodiscus*) तथा *रैब्डोप्ल्यूरा* (*Rhabdopleura*) की है।

सेफ़ैलोडिस्कस (चित्र 1.5) की कई-कई व्यष्टियां एक साथ परस्पर शाखित जिलेटिनी नलिकाओं में रहती हैं, और वे अपने प्रसारशील वृंतों के द्वारा नलियों की दीवारों से लगी-चिपकी रहती हैं। मगर व्यष्टि जूऑइड स्वतंत्र रूप में रहते हैं और अपने धड़ को नलिका के अंदर बाहर गति दे सकते हैं। हेमिकॉर्डेटा के प्रतिरूपी सदस्य *सेफ़ैलोडिस्कस* का शरीर तीन भागों का बना होता है- शुंडिका, कॉलर तथा धड़। इसमें केवल एक जोड़ी गिल-दरारें होती हैं। आहार नाल U की आकृति की होती है, तथा गुदा मुख के पास ही स्थित होती है।

शुंडिका शील्ड की आकृति की होती है। शुंडिका के नीचे पांच से नौ जोड़ी विशाखित भुजाएं होती हैं जिनमें स्पर्शक बने होते हैं, इन भुजाओं के भीतर सीलोमी प्रसार पहुंचे हुए होते हैं। यह प्राणी अपनी भुजाओं तथा स्पर्शकों पर बनी सिलियायित खांचों की सहायता से आहार इकट्ठा करता है। इस सम्पूर्ण संरचना को लोफ़ोफ़ोर (lophophore) कहते हैं। सेक्स कुछ स्पीशीज़ में अलग-अलग होती है, जब कि कुछ स्पीशीज़ उभयलिंगाश्रयी (monoecious) होती है। अलैंगिक जनन जिसमें भी होता है, मुकुलन द्वारा होता है।

रैब्डोप्ल्यूरा के सदस्य जूऑइडों की कॉलोनी के रूप में होते हैं, और ये जूऑइड एक आधारीय स्टोलन से जुड़े होते है एवं नलिकाओं के भीतर बंद होते हैं (चित्र 1.6a)। कॉलर के भीतर दो विशाखित भुजाएं होती हैं (चित्र 1.6b)। ग्लोमेरुलाई तथा गिल-दरारे नहीं होतीं। तंत्रिका तंत्र वैसा ही होता है जैसा कि एंटेरॉन्यूस्टा में, बस इतना अंतर है कि कॉलर के भीतर नलिकाकार तंत्रिका रज्जु नहीं होता। अलैंगिक जनन रेंगते जाते स्टोलन से मुकुलन होकर सम्पन्न होता है।

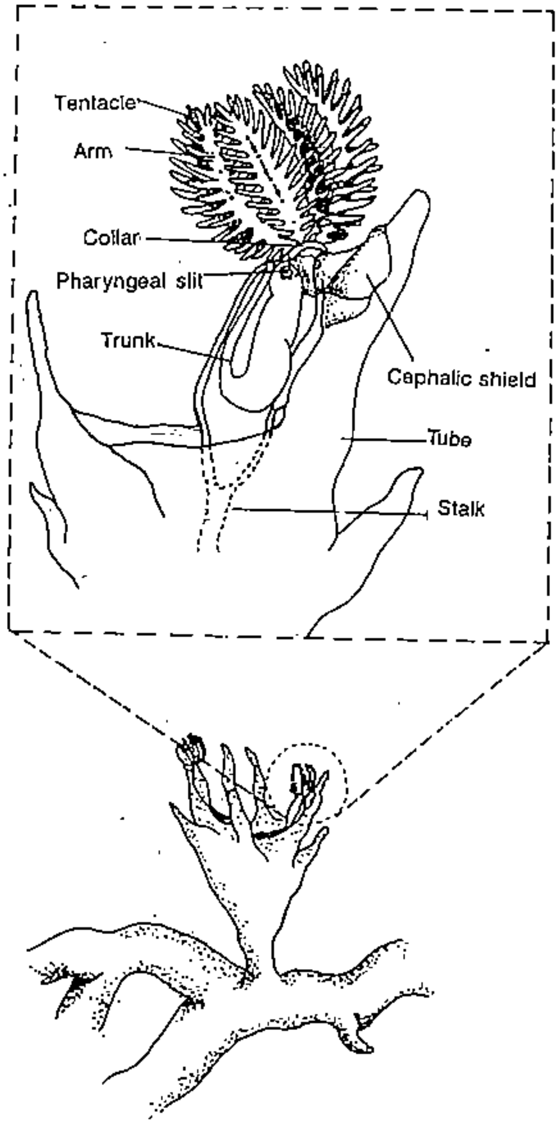

चित्र 1.5: टेरोब्रैंक हेमिकॉर्डेट *सेफैलोडिस्कस* की संरचना, यह प्राणी नलिकाओं के भीतर रहता है जिनके अंदर वह गति कर सकता है।

बोध प्रश्न 1

i) हेमिकॉर्डेटा के कोई तीन लक्षण बताइए।

....

....

....

....

ii) एंटेरॉन्यूस्टा तथा टेरोब्रैंकिया के बीच कोई एक मुख्य अंतर बताइए।

....

....

....

....

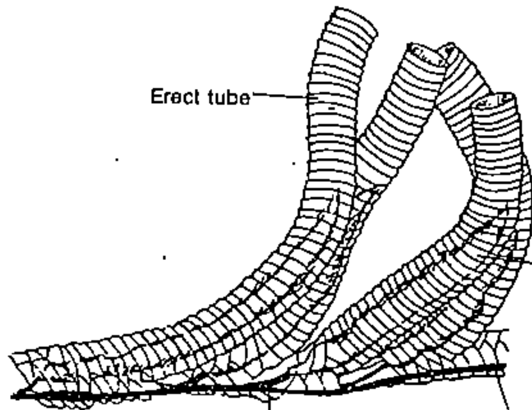

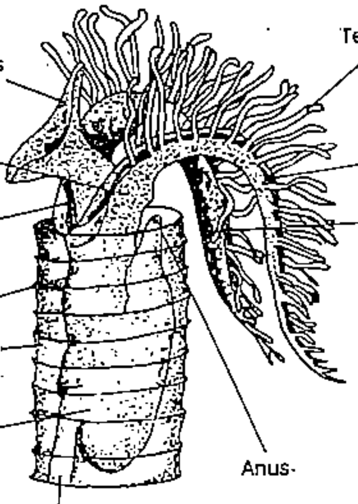

चित्र 1.6: (a) टेरोब्रैंक हेमिकॉर्डेट रैब्डोप्ल्यूरा की कालोनी का एक अंश जिसमें उसकी व्यष्टियां विशाखित नलिकाओं के भीतर रहती हैं जो स्टोलन द्वारा परस्पर जुड़ी रहती हैं। b) रैब्डोप्ल्यूरा की संरचना

1.2.3 आधारभूत अनुकूली लक्षण

हेमिकॉर्डेटा के दो मुख्य वर्गों में उनके स्वभाव भिन्न होते हैं। स्वच्छंद तैरने वाले उदाहरणों का मुख्य अनुकूली लक्षण उनकी शुंडिका की कारगरता में पाया जाता है जो बिल खोदने-बनाने में सहायता करती है। इस प्रकार से बिलों में रहना परभक्षियों से सुरक्षा प्रदान कराता है। गिल-दरारों का प्राथमिक कार्य तो फिल्टर-अशन में काम आना है, मगर द्वितीय तौर पर श्वसन कराना भी है। स्थानबद्ध उदाहरणों में कॉलोनियों को काइटिनी पदार्थ से अच्छी सुरक्षा प्रदान हो जाती है। *सेफ़ैलोडिस्कस* तथा *रैब्डोप्ल्यूरा* में सिलियायित पट्टियों से लैस बड़ा विशाखित लोफ़ोफ़ोर अशन के लिए बहुत अच्छी तरह अनुकूलित है और इस प्रकार वह इन स्पीशीज़ की सफलता में योगदान देता है। बहुसंख्यक गोनड जनन कुशलता प्रदान करते हैं। इसके अलावा हानिग्रस्त भागों के पुनरुद्भवन की क्षमता भी इनकी जातियों की उत्तरजीविता में योगदान करती है। परिवर्धन के दौरान स्वच्छंद तैरने वाले लार्वा का होना अधिक व्यापक वितरण को संभव बनाता है और इस प्रकार वह भी इन स्पीशीज की सफलता में और आगे योगदान करता है।

1.2.4 बंधुताएं (Affinities)

आइए अब हम हेमिकॉर्डेटों के. प्राणि जगत के अन्य सदस्यों के साथ परस्पर संबंधों पर गौर करें। हेमिकॉर्डेटों के वर्गीकरण स्थान एवं इनके जातिवृत्तीय संबंध प्राणिविदों के लिए अनेक दशकों से पहेली बने रहे हैं। हेमिकॉर्डेटों में विभिन्न फाइलमों से निम्नलिखित बंधुताएं पायी जाती हैं।

ऐनेलिडों के साथ बंधुताएं

1. द्विपार्श्व सममिति होती है।
2. वयस्कों में उसी प्रकार की आकारिकी, बिलों में रहना और अशन स्वभाव पाए जाते हैं।
3. दोनों में पाचन पथ सीधा और नलिकाकार होता है।
4. समान रक्त परिसचरण विधि होती है।
5. एंटेरॉन्यूस्टों के टॉर्नेरिया लार्वा तथा पौलीकीटों के ट्रोकोफ़ोर लार्वा की समानताएं जिनमें सिलिया का एक शीर्षस्थ गुच्छा, शीर्षस्थ संवेदी अंग तथा लार्वीय आहारनाल शामिल हैं।

परंतु दूसरी ओर हेमिकॉर्डेटा को ऐनेलिडों के साथ जोड़ने में गंभीर आपत्तियां भी आती हैं:

1. ऐनेलिडों में गिल-दरारें नहीं होती।
2. ऐनेलिडो में उत्सर्जन की क्रिया वृक्कों (नेफ्रीडिया) के द्वारा होती है। इसके विपरीत ऐंटेरॉन्यूस्टों में उत्सर्जन की भूमिका ग्लोमेरुलाई निभाते हैं।
3. ऐनेलिडों में सीलोम दीर्णसीलोमी (शाइज़ोसीलस) प्रकार की होती है जबकि हेमिकॉर्डेटों में यह आंत्रसीलोमी (एंटेरोसीलस) प्रकार की होती है।
4. हेमिकॉर्डेटों में विदलन पूर्ण भंजी प्रकार का होता है जबकि ऐनेलिडों में यह सर्पिल प्रकार का होता है।
5. वृक्क (नेफ्रीडिया) केवल ट्रोकोफोर में पाए जाते हैं।

इन सबके अतिरिक्त गिल-श्वसन एवं नोटोकॉर्ड का पूर्ण अभाव होना हेमिकॉर्डेटों तथा ऐनेलिडों के बीच के किसी भी प्रकार के जातिवृत्तीय संबंध के विपरीत जाता है।

पोगोनोफ़ोरा (**Pogonophora**) के साथ संबंध

हेमिकार्डेटों तथा पोगोनोफ़ोरा (दाढ़ी-कृमि beard worms) में अनेक संरचनात्मक समानताएं पायी जाती हैं, जैसे: 1) स्पर्शक उपकरण, 2) पट, जो मीज़ोसोम तथा मेटासोम को पृथक करता है, 3) अंतः एपिडर्मिसी तंत्रिका-तंत्र, 4) परिहृद थैला, 5) धड़ के भीतर गोनड।

ऊपर बतायी गयी समानताओं के बावजूद अनेक संरचनात्मक अंतर भी पाए जाते हैं। पोगोनोफ़ोरा इन लक्षणों में भिन्न होते हैं: 1) स्पर्शक प्रोटोसोम में से निकलते हैं तथा प्रोटोसील सभी स्पर्शकों में पहुंची होती है। 2) तंत्रिका-तंत्र का प्रमुख घटक प्रोटोसोम के भीतर स्थित होता है। 3) गिल-दरार तथा पाचन-पथ नहीं होते; 4) जननछिद्र अधर दिशा पर होते हैं।

इन विभेदों के आधार पर इन दो वर्गों को अलग-अलग लिया जाता है और इनकी समानताएं पूर्वज शाखा के साथ सुदूर का संबंध होने के कारण ही हैं।

इकाइनोडर्मों के साथ संबंध

अकशेरुकियों में से इकाइनोडर्म ही हेमिकॉर्डेटों के निकट आते हैं। इनकी बंधुताएं इस प्रकार हैं: 1) समान अशन स्वभाव, 2) उपएपिडर्मिसी तंत्रिका तंत्र की सामान्य योजना, 3) सीलोम का आंत्रसीलोमी उद्भव अर्थात् सीलोम भ्रूण के आद्यंत्र से निकले कोष्ठों के रूप में बनती है, तथा गुदा का भ्रूण-के ब्लास्टोपोर से बनना। इस प्रकार, द्रवचालित रूप में काम करने वाले जल-संवहनी तंत्र तथा शुंडिका-कॉलर सीलोम के बीच एक सुव्यक्त कार्यात्मक समानता पायी जाती है। 4) दोनों वर्गों में समक्षम ब्लास्टोमीयरों से युक्त अनिर्धारी प्रकार के विदलन के रूप में परस्पर संबंध प्रकट होता है। 5) टॉर्नेरिया लार्वा तथा बाइपिन्नेरिया लार्वा में गहरी समानताएं। इन समानताओं में इन सबका पाया जाना शामिल है- समान सिलियरी पट्टियां, शीर्ष प्रदेशों पर संवेदी सिलिया का पाया जाना, घुमावदार आहार नाल जिसमें मुख अधर तथा गुदा पश्चीय होती है। साथ ही इकाइनोडर्मों के औरिकुलेरिया लार्वा तथा हेमिकॉर्डेटों के टॉर्नेरिया लार्वा के बीच भी समानताएं पायी जाती हैं (पूर्वजता के अंतर्गत विवेचन देखिए); 6) जीवाश्म (फ़ॉसिल) इकाइनोडर्म स्टाइलोफ़ोरा पर किए गए हाल के अध्ययनों से प्रमाण मिलता है कि इकाइनोडर्म

का कॉर्डेटों के साथ निकट का रिश्ता है। इन छोटे असममित प्राणियों जैसे कि *कोट्यूर्नोसिस्टिस* (*Coteurnocystis*) में एक छोटा शीर्ष होता है जो मानो लम्बे पैरों वाले मध्ययुगीन जूतों के जैसा होता है, गिल-दरारों की एक शृंखला होती है जो शार्क के गिल-छिद्रों के समान होती है तथा एक नोटोकॉर्ड-सरीखी गुदा-पश्चीय पूंछ होती है, पृष्ठ तंत्रिका रज्जु तथा पेशी खण्ड होते हैं। यह प्रमाण पर्याप्त रूप में इस अवधारणा को कि इकाइनोडर्म ही कॉर्डेटों के वास्तविक पूर्वज हैं न्यायोचित सिद्ध करता है या नहीं इस विषय में अभी और ज्यादा अध्ययन-परीक्षण किया जाना जरूरी है।

ऊपर बताई गयी बातों के अतिरिक्त इस बात पर ध्यान देना भी बड़ा रोचक है कि ऊर्जा-संपन्न यौगिक फॉस्फोक्रिएटीन तथा फॉस्फोआर्जिनीन जो सामान्यत: क्रमश: कशेरुकियों तथा अकशेरुकियों में पाए जाते हैं, दोनों ही *बैलैनोग्लॉसस* में होते हैं। इसी आधार पर कुछ लेखकों ने यह विचार भी रखा है कि हेमिकॉर्डेट प्राणी एक ओर इकाइनोडर्म जैसे अकशेरुकियों तथा दूसरी ओर कशेरुकियों के बीच की संयोजी कड़ी हैं। बाद में इस विचारधारा की भी सत्यता समाप्त हो गयी जब पता चला कि फॉस्फोक्रिएटीन तथा फॉस्फोआर्जिनीन दोनों ही अनेक अकशेरुकी फाइलमों में होते पाए जाते हैं।

बोध प्रश्न 2

निम्नलिखित में रिक्त स्थानों में उपयुक्त शब्द लिखिए:-

i) ऐनेलिडों तथा हेमिकॉर्डेटों में परिसंचरण की .... पायी जाती है।

ii) हेमिकॉर्डेटों में .... जनन कारगरता प्रदान करते हैं।

iii) हेमिकॉर्डेटों में वृक्क .... होते हैं।

iv) हेमिकॉर्डेटों तथा पोगोनोफोरा दोनों में अंत:एपिडर्मिसी .... होता है।

v) .... का बाइपिन्नेरिया लार्वा टॉर्नेरिया लार्वा के समान होता है।

1.3 फाइलम कॉर्डेटा – सामान्य लक्षण

कॉर्डेटों में अकॉर्डेटों के अनेक लक्षण मौजूद बने पाए जाते हैं जैसे द्विपार्श्व सममिति, अग्र-पश्च अक्ष, सीलाम की व्यवस्था का प्रतिरूप, विखंडता तथा शिरोभवन। इन समानताओं के बावजूद कॉर्डेटों का अकशेरुकियों के साथ स्पष्ट संबंध स्थापित करना कठिन है। निम्नलिखित लक्षण कॉर्डेटों की विशेषताएं हैं:-

1. द्विपार्श्व सममिति, सखण्ड शरीर, सुविकसित सीलोम तथा तीन जनन परतों एक्टोडर्म, मीजोडर्म एवं एंडोडर्म का पाया जाना।
2. अधिसंख्य उदाहरणों में शरीर का तीन भागों शीर्ष, धड़ तथा पूंछ में विभेदन हुआ होना।
3. सामान्य रूप में सभी अंग-तंत्र सुविकसित तथा अपने कार्यों में विशेषित।
4. किसी अवस्था पर अथवा निम्नतर उदाहरणों में उनके समूचे जीवन-इतिहास के दौरान नोटोकॉर्ड (पृष्ठ रज्जु) का पाया जाना (और इसी से कॉर्डेटा नाम भी पड़ा है) तथा उच्चतर उदाहरणों में सुविकसित कशेरुक तंत्र का पाया जाना
5. एक पृष्ठ नलिकाकार तंत्रिका रज्जु नोटोकार्ड से पृथक एवं आरम्भ में उसके ऊपर पड़ा होता है, तथा इसका अग्र सिरा प्राय: मस्तिष्क के रूप में विभेदित हो गया होता है।
6. किसी एक अथवा अन्य अवस्था पर ग्रसनी में बहुसंख्यक दरारों/कोष्ठों द्वारा छिद्रिलता आयी होती है। ये ग्रसनी-दरारें कार्यशील हो भी सकती हैं और नहीं भी।
7. सम्पूर्ण पाचन तंत्र।
8. एक अधर हृदय तथा बेहतर विकसित बंद रक्त संवहनी तंत्र होता है जो पोषक तत्वों को पाचन पथ से ले जाकर यकृत में पहुंचाता है।

नोटोकॉर्ड (पृष्ठ-रज्जु) एक छड़ जैसी लचीली संरचना होती है जो तंतुमय आवरण से ढकी कोशिकाओं से बनी होती है। यह आंत-क्षेत्र तथा केन्द्रीय तंत्रिका-तंत्र के बीच मध्य-पृष्ठ रेखा के साथ स्थित होती है जहाँ से मॉसपेशियों के साथ जुड़ने के लिए एक अक्ष बनाती है। यह एक मूल अंत: कंकालीय संरचना होती है जो सभी कशेरुकियों में भ्रूणीय अवस्था में विद्यमान होती है जो सभी कशेरुकियों में भ्रूणीय अवस्था में विद्यमान होती है। कुछ कशेरुकियों (अधिकतर प्रोटोकॉर्डेट तथा आदिम मेरुदंडियों) में नोटोकॉर्ड पूरे जीवन के लिए स्थायी रहती है जबकि अधिकतर मेरुदंडियों में इसकी जगह कशेरुक ले लेते हैं। फिर भी नोटोकॉर्ड के कुछ अंश कशेरुकों के बीच या कशेरुकों में बने रहते हैं।

9. किसी एक अवस्था पर गुदपश्चीय क्षेत्र में पूंछ का पाया जाना। यह पूंछ वयस्क में कायम बनी रह सकती है अथवा नहीं भी।

10. बाह्यकंकाल अक्सर मौजूद होता है मगर कुछ सदस्यों में सुविकसित होता है।

11. अंत:कंकाल या तो कार्टिलेजी होता है या अस्थिमय। उच्चतर कॉर्डेटों में अंत:कंकाल में दो भाग होते हैं- अक्षीय (axial) तथा उपांगीय (appendicular)। अंत:कंकाल का कार्य सुरक्षा एवं आलम्ब प्रदान करने के साथ-साथ शरीर के लिए एक ढाँचा प्रदान करना है। उदाहरण के लिए मस्तिष्क की सुरक्षा के लिए एक सुविकसित के मस्तिष्क-कोश का पाया जाना।

तंत्रिका रज्जु अधिकतर अकशेरुकी फाइलमों मे ठोस तथा आहार नली के अधर होती है परन्तु कशेरुकियों में यह नलिकाकार तथा आहार नली के पृष्ठ होती है। तंत्रिका रज्जु का अग्र सिरा बड़ा हो कर मस्तिष्क बन जाता है। यह कशेरुकियों में जीवन-पर्यंत रहती है परन्तु कुछ निम्न प्रकारों में यह परिपक्वता ग्रहण करने से पहले ही ह्रासित हो जाती है। कशेरुकियों में तंत्रिका रज्जु कशेरुकों के संरक्षी तंत्रिक-चापों के बीच आवरित रहती है और मस्तिष्क अस्थिमय अथवा उपास्थियुक्त क्रेनियम द्वारा घिरा रहता है।

1.4 कॉर्डेट अकशेरुकियों से किस प्रकार भिन्न हैं

कॉर्डेटों तथा अकशेरुकियों में कई बहुत स्पष्ट अंतर पाए जाते हैं। आइए इन दो समूहों की संघटनाओं की तुलना करें।

(i) इन दोनों समूहों में पृष्ठ मस्तिष्क तो है मगर तंत्रिका रज्जु जब भी अकशेरुकियों में होता है तब वह उच्चतर अकशेरुकियों में अधर दिशा में होता है तथा कॉर्डेटा में पृष्ठ दिशा में।

(ii) हृदय अकशेरुकियों में पृष्ठ दिशा में तथा कॉर्डेटों में अधर दिशा में होता है। पृष्ठ रक्त वाहिका में रक्त का प्रवाह कशेरुकियों में पीछे की ओर को तथा अकशेरुकियों में आगे की ओर को होता है।

(iii) कुछ अकशेरुकियों में भीतरी अंगों की सुरक्षा करती हुई कंकाली संरचनाएं होती हैं, मगर उनमें एक वास्तविक अंत:कंकाल नहीं होता। इकाइनोडर्मों में एपिडर्मिस के नीचे छोटी छोटी कैल्सियमी प्लेटों का बना एक अंत:कंकाल होता है, इन प्लेटों को अस्थिकाएं (ossicles) कहते हैं तथा ये संयोजी ऊतक द्वारा एक दूसरे से बंधी-जुड़ी होती हैं। बाहरी सतह को कंटीली बनाने वाले कांटे तथा कंटिकाएं इन्हीं अस्थिकाओं में से प्रवर्धित होती हैं। कॉर्डेटों में एक नोटोकॉर्ड अथवा उच्चत: विकसित कशेरुक तंत्र होता है। एक विचार करने की बात यह है कि कॉर्डेटों में सभी कशेरुकियों के शरीर के भीतर हड्डियों का बना एक ढांचा होता है। कुछ कशेरुकियों में यह अंत:कंकाल कार्टिलेज का बना होता है। कॉर्डेटों का कंकाल-तंत्र इस प्रकार नियोजित होता है कि उसमें अकशेरुकियों की अपेक्षा कहीं अधिक व्यापक श्रम-विभाजन पाया जाता है।

(iv) आरम्भ में निम्नतर अकशेरुकियों में मुख एवं गुदा दोनों के लिए एक ही छिद्र बना होता है जैसे कि नाइडेरियनों में। आगे चलकर उच्चतर अकशेरुकियों जैसे कि फाइलम नीमर्टिया; कूटसीलोमेटों तथा कृमि आदि में मुख से गुदा तक एक सम्पूर्ण पाचन-तंत्र बन गया है। अकशेरुकियों में गुदा छिद्र शरीर के पश्च भाग में अंत में खुलता है। लार्वीय तथा वयस्क कॉर्डेटों में गुदा का स्थान पूंछ के समीप शरीर के पश्च भाग के सामने की ओर होता है। सामान्य रूप में अकशेरुकियों में ब्लास्टोपोर ही गुदा बन जाता है तथा कशेरुकियों में ब्लास्टोपोर मुख बनता है।

(v) अकशेरुकियों में ग्रसनी गिल-दरारे नहीं होती, मगर कॉर्डेटों में ये होती हैं।

ऊपर दी गयी बातों में ऐसा निष्कर्ष निकाला जा सकना संभव है कि कॉर्डेटों को कई स्पष्ट विभेदक लक्षणों के आधार पर अकशेरुकियों से सरलता से बिल्कुल अलग रखा जा सकता है। कॉर्डेटों के चार प्रमाण चिन्ह है- नोटोकॉर्ड, पृष्ठ नलिकाकार तंत्रिका रज्जु, ग्रसनी गिल-दरारें तथा गुदापश्चीय पूंछ (चित्र 1.7)। निम्नतर तथा उच्चतर दोनों ही उदाहरणों में ये विशिष्टताएं उनके जीवन-इतिहास की किसी न किसी अवस्था में अवश्य होती पाई जाती है।

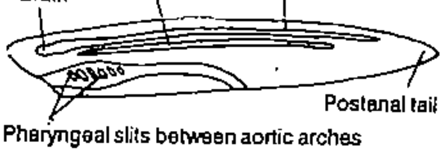

चित्र 1.7: एक योजना आरेख जिसमें कॉर्डेटा के चार विभेदक लक्षण दर्शाए गए हैं।

बोध प्रश्न 3

कशेरुकियों तथा अकशेरुकियों में तीन महत्त्वपूर्ण अंतर बताइए।

....

....

....

1.5 फ़ाइलम कॉर्डेटा का वर्गीकरण

फ़ाइलम कॉर्डेटा:

कॉर्डेटों को निम्नलिखित समूहों में विभाजित किया गया है:-

समूह I प्रोटोकॉर्डेटा (Group Protochordata) (एक्रेनिया, Acrania)

उपफ़ाइलम 1. यूरोकॉर्डेटा (Urochordata) (ट्यूनिकेटा Tunicata) ट्यूनिकेट-प्राणी; समुद्री जीव, व्यस्क वृंतयुक्त, अक्सर कॉलोनीय एवं ट्यूनिक के भीतर आवरित; नोटोकार्ड तथा तंत्रिका रज्जु केवल स्वच्छंद तैरने वाले लार्वा में; लार्वा में सभी कार्डेट लक्षण पाए जाते हैं (चित्र 1.8)। इस उपफ़ाइलम के अंतर्गत आने वाले तीन क्लास हैं **ऐसिडिएसिया (Ascidiacea), लार्वेसिया (Larvacea)** तथा **थैलिएसिया (Thaliacea)**।

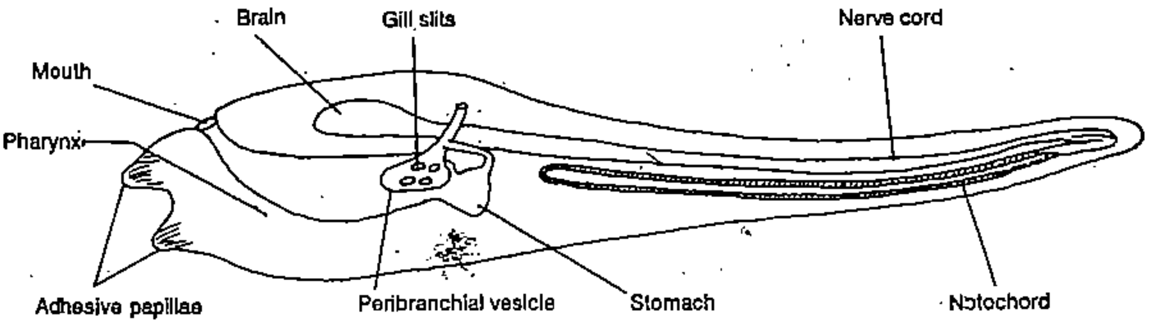

चित्र 1.8: ट्यूनिकेट टैडपोल लार्वा जिसमें कॉर्डेट लक्षण दिखाई पड़ते हैं।

उपफ़ाइलम 2. सेफ़ैलोकॉर्डेटा (Cephalochordata): आम भाषा में इन्हें लैंसेलेट्स (Lancelets), कहते हैं। समुद्रीजीव; नोटोकार्ड, गिल-उपकरण तथा तंत्रिका रज्जु वयस्कों में सुविकसित होते हैं; छलनी-आहारक; आहार कणों को पीछे की ओर पाचन पथ में पहुंचाया जाता है, न कि गिल-दरारों के द्वारा उनका बाहर को निकाला जाना। यूरोकॉर्डेटों तथा सेफ़ैलोकॉर्डेटों दोनों को सामूहिक रूप में एक ही नाम प्रोटोकॉर्डेट्स के अंतर्गत पुकारा जाता है। इनमें मस्तिष्क-कोश नहीं होता अत: इन्हें **एक्रैनिया (Acrania)** भी कहा जाता है।

समूह II क्रेनिऐटा (Group Craniata)

उपफ़ाइलम: **वर्टीब्रेटा (Vertebrata)** (क्रेनिऐटा, Craniata): इसमें वे सभी कॉर्डेट आ जाते हैं जिसमें रीढ़ की हड्डी होती है; यह रीढ़ की हड्डी मेरू रज्जु (spinal cord) को छेदती हुई शृंखलाबद्ध कार्टिलेजी अथवा अस्थित कशेरुकों की बनी होती है; नोटोकार्ड, पृष्ठ तंत्रिका रज्जु, ग्रसनीय गिल कोष्ठ तथा गुदापश्चीय पूंछ जीवन की किसी न किसी अवस्था पर जरूर होती है; अध्यावरण (integument) अर्थात् त्वचा होती है; सीलोम सुविकसित जिसमें अंतरंग तंत्र भरे होते हैं; पाचन-तंत्र सम्पूर्ण तथा मेरू स्तम्भ के अधर में होता है; दो से चार कक्षों से युक्त अधर हृदय, बंद प्रकार का रक्त वाहिका तंत्र; उत्सर्जन एक जोड़ी वृक्कों (गुर्दों) के द्वारा, अंत:स्रावी तंत्र होता है, पेशियां कंकाल से जुड़ी होती हैं जिससे गति सुगम हो जाती है; शरीर के तीन प्रदेश शीर्ष, धड़ तथा गुदापश्चीय पूंछ होते हैं, कुछ उदाहरणों में गर्दन भी होती है (चित्र 1.9)। जबडों की उपस्थिति के आधार पर इस समूह को दो अधिक्लासों (superclass) में विभाजित किया जाता है।

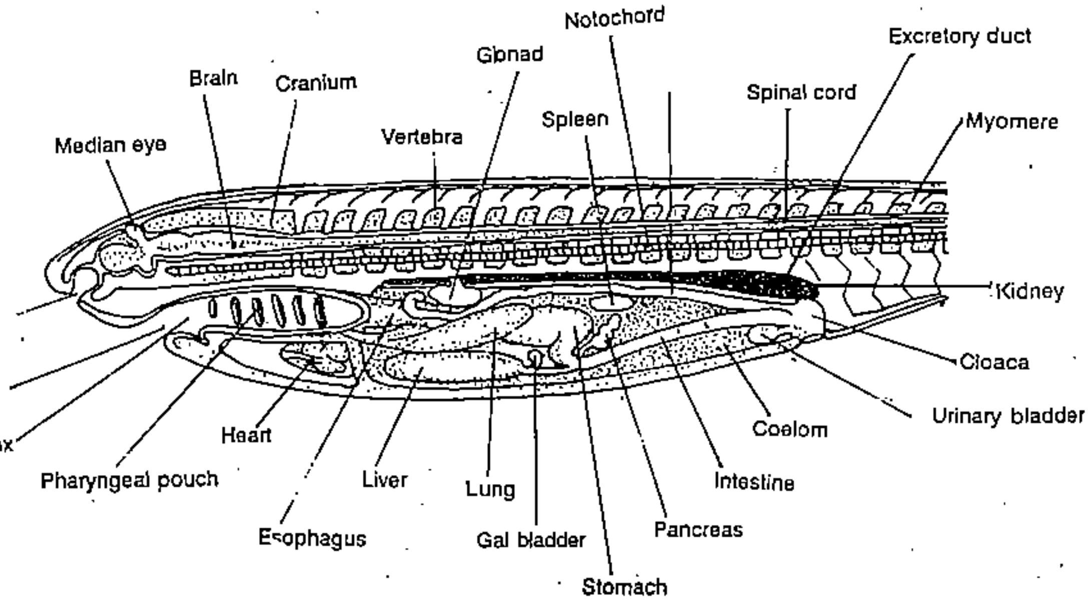

चित्र 1.9: कशेरुकी का एक आरेखीय सममितार्धी (sagittal) (मध्य उदग्र) सेक्शन जिसमें इस उपफाइल के विभेदक लक्षण दर्शाए गए हैं।

अधिक्लास A एग्नैथा (Agnatha) (बिना जबड़ों के) (साइक्लोस्टोमैटा, Cyclostomata)

हैगफिश (Hagfishes) तथा लैम्प्रे (Lampreys) – इन प्राणियों में वास्तविक जबड़े नहीं होते और न ही युग्मित उपांग होते हैं। इस समूह में निम्नलिखित दो क्लास आते हैं:

क्लास 1: मिक्साइनी (Myxini): हैगफिश। इन प्राणियों में एक अंतस्थ मुख होता है जिस पर चार जोड़ी स्पर्शक बने होते हैं; मुख-कीप नहीं होती; नासीय थैला एक वाहिनी के द्वारा ग्रसनी से जुड़ा होता है, गिल कोष्ठ पांच से लेकर पंद्रह जोड़ी तक; अंशतः उभयलिंगी।

क्लास 2 सेफ़ेलैस्पिडोमॉर्फाइ (Cephalaspidomorphi) : लैम्प्रे। इन प्राणियों में शृंगीय दांतों से युक्त चूषणी मुख होता है; मुख नासीय थैले के साथ संयोजित नहीं होता, सात जोड़ी गिल-कोष्ठ होते है।

अधिक्लास B नैथोस्टोमैटा (Gnathostomata): जबड़ा युक्त मछलियां सभी चतुष्पाद। इसमें ऊपरी तथा निचले जबड़ों से युक्त सभी कशेरुकी आते हैं जिनमें सामान्यतः युग्मित उपांग भी होते हैं। इस समूह को निम्नलिखित क्लासों में विभाजित किया जाता है:-

क्लास 1. कॉन्ड्रिक्थीज़ (Chondrichthyes): शार्क, स्केट, रे तथा काइमीरा मछलियां, शरीर धारारेखित और विषमपालि (heterocercal) पूंछ (चित्र 1.10); कंकाल पूर्णतः कार्टिलेजी, पांच से सात जोड़ी गिल; गिल-दरारें सीधी बाहर को खुलती हैं; क्लोमछद (ऑपर्कुलम) तथा तरण-आशय नहीं होते, शरीर पर प्लैकॉइड (placoid) अर्थात् पट्टाभ शल्क बने होते हैं।

क्लोमछद (ऑपर्कुलम) गिल के निर्गम द्वार पर एक आवरण के समान होता है जो पानी को मुख के अन्दर और गिल के बाहर पम्प करने में सहायता करता है।

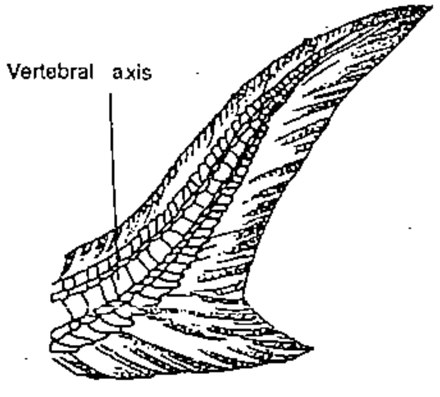

चित्र 1.10: विषमपालि (Heterocercal) पूंछ

क्लास 2. ऑस्टिकथी (Osteichthyes) (टीलियॉस्टोमाई, Teleostomi): अस्थिल मछलियां।

कंकाल अधिकतर अस्थिभूत (हड्डियों का बना); शरीर आदित: तर्कुरूपी; पूंछ बाहर से सममित अथवा समपालि (homocercal) (चित्र 1.11); प्रत्येक पार्श्व पर खुलता हुआ एकल गिल-छिद्र; ऑपर्कुलम होता है; सामान्यत: तरण-आशय अथवा फेफड़ा होता है।

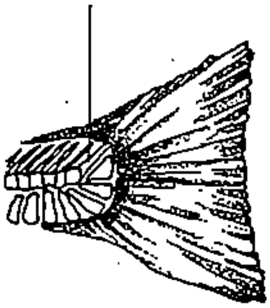

चित्र 1.11: समपालि (Homocercal) पूंछ

क्लास 3. ऐम्फिबिया (Amphibia): ऐम्फिबिया-प्राणी। बाह्यतापी (ectothermal) चतुष्पाद, श्वसन फेफड़ों, गिलों अथवा त्वचा के द्वारा; परिवर्धन में एक लार्वा अवस्था होती है; त्वचा गीली होती है और उसमें श्लेष्म ग्रंथिया बनी होती है; शल्क नहीं होते।

क्लास 4. रेप्टीलिया (Reptilia): सरीसृप। बाह्यतापी एवं अंत:तापी (endothermic) दोनों प्रकार के चतुष्पाद, फेफड़ों द्वारा फुपफुस श्वसन, लार्वा अवस्था नहीं होती, भ्रूण कवचयुक्त अण्डे के भीतर पनपता है, त्वचा एपिडर्मिसी शल्कों से ढकी होती है।

क्लास 5. एवीज़ (Aves): पक्षी। अंत:तापी कशेरुकी; शरीर पिच्छों (feathers) से ढका हुआ; अग्र पाद उड़ने के लिए रूपांतरित; पैरों पर शल्क पाए जाते हैं।

चतुष्पाद (Tetrapod) शब्द अक्सर एम्फिबियनों एवं अन्य उच्चतर चार पैरों वाले प्राणियों के लिए इस्तेमाल किया जाता है।

क्लास 6. मैमेलिया (Mammalia): स्तनी। अंत:तापी कशेरुकी; बच्चों का पोषण स्तन ग्रंथियों के द्वारा; शरीर पर बाल; मस्तिष्क सुविकसित; डायाफ्राम फेफड़ों तथा परिहृद को अन्य अंतरंगों से पृथक करता है।

भ्रूण-परिवर्धन के लक्षणों के आधार पर मछलियों तथा ऐम्फिबियनों को ऐनैम्नियोट्स (Anamniotes) समूह में रखा जाता है जबकि सरीसृपों, पक्षियों तथा स्तनियों को ऐम्नियोट्स (Amniotes) कहा जाता है। इस इकाई में हम प्रोटोकॉर्डेटा समूह के विषय में विवेचन करेंगे। इस समूह में यूरोकॉर्डेटा तथा सेफैलोकॉर्डेटा आते हैं। वर्टीब्रेटा के विषय में आप अगली इकाइयों तथा खण्डों में पढ़ेंगे। परंतु आइए पहले निम्नलिखित बोध प्रश्न हल कर लीजिए।

ऐम्नियोन भ्रूण-बाह्य झिल्लियों में अंतर्तम होती है जो ऐम्नियोट्स में भ्रूण के बाहर, द्रव से भरा हुआ कोष बनाती है।

बोध प्रश्न 4

कॉलम I में दिए गए मदों को कॉलम II में दिए गए मदों में मिलाइए:

	I	II
क)	प्रोटोकॉर्डेटा	i) मिक्साइनी
ख)	वर्टीब्रेटा	ii) अस्थिल मछलियां
ग)	एग्नैथा	iii) ऐम्फिबिया
घ)	ऑस्टिइक्थीइस	iv) यूरोकॉर्डेटा
च)	गीली त्वचा	v) रीढ़ की हड्डी
छ)	अंत:तापी	vi) स्तनी

1.5.1 उपफाइलम यूरोकॉर्डेटा

यूरोकॉर्डेटा (पूंछयुक्त कॉर्डेटा) में समुद्री कॉर्डेट प्राणियों की लगभग दो हज़ार स्पीशीज़ आती हैं। इनमें से अधिसंख्य स्पीशीज़ वयस्क अवस्था में स्थानबद्ध होती हैं। इन्हें ट्यूनिकेट नाम इसलिए दिया गया है क्योंकि इनमें एक कड़ा, निर्जीव ट्यूनिक (tunic) अर्थात् एक चोल (test) पाया जाता है जो प्राणी को घेरे रहता है। ट्यूनिक, ट्यूनिसिन (tunicin) नामक पदार्थ का बना होता है जो प्राणियों में पाया जाने वाला अपेक्षाकृत असाधारण पदार्थ है। ऐसा इसलिए कि ट्यूनिसिन पौधों में पाए जाने वाले सेलुलोज़ से बहुत निकटत: संबंधित है। अधिकतर स्पीशीज़ में केवल लार्वा स्वरूप के भीतर ही सभी कॉर्डेट प्रमाण चिन्ह

पाए जाते हैं। वयस्क रूप में नोटोकॉर्ड तथा पूंछ दोनों गायब हो जाते हैं, जबकि पृष्ठ तंत्रिका रज्जु घटकर एक अकेले गैंग्लियॉन के रूप में रह जाता है। यूरोकॉर्डेटा को तीन क्लासों में विभाजित किया जाता है: ऐसिडिएसिया **(Ascidiacea)**, लार्वेसिया **(Larvacea)** तथा थैलिएसिया **(Thaliacea)**। इन तीन क्लासों को जिन आधारों पर अलग-अलग पहचाना जाता है वे हैं- ग्रसनी गिल-दरारों की संख्या, कायांतरण की प्रकृति, एकचर अथवा कॉलोनीय स्वभाव तथा ट्यूनिक की संघटना।

क्लास ऐसिडिएसिया (Class Ascidiacea): एसिडियनों में समुद्री-स्कवर्ट (sea squirts) आते हैं और ये एकचर यानि अकेले-अकेले रहने वाले होते हैं (उदाहरण: *हर्डमानिया, सायोना*) (चित्र 1.12), कॉलोनीय अथवा संयुक्त (उदाहरण: *बोट्राइलस*)।

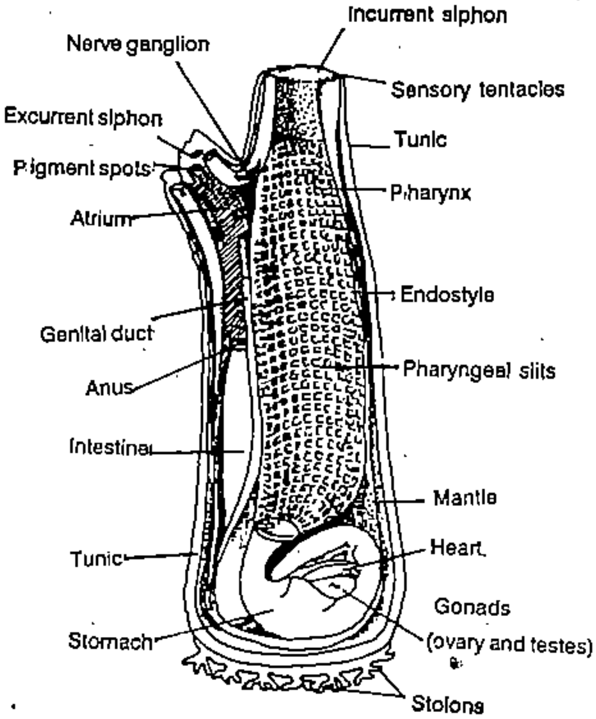

चित्र 1.12: एक वयस्क ऐसीडियन सायोना (*ciona*) स्पीशीज की संरचना

इनकी सामान्य आकृति एक फूलदान जैसी होती है जिसमें एक उदग्र नली होती है। जिसके अंत पर या तो एक वृद्धि होती है अथवा शिखाग्र पर एक गिल-छिद्र बना होता है, इनके अलावा एक पार्श्व नलिका होती है जो एट्रियम-छिद्र नामक एक छिद्र पर खुलती है। जल गिल-छिद्र (अंत:वाही साइफन अथवा मुख) में से प्रवेश करता, भीतर गिल-करंड के ऊपर से परिसंचरित होता है और एट्रियल-छिद्र (बाह्य वाही साइफ़न) मे से होकर बाहर निकल जाता है। गिल-करंड एक खासी क्षमता वाली सिलियायित ग्रसनी होती है जो बड़ी बारीकी से गिल द्वारा उपविभाजित होकर एक विषद करंड (टोकरी) के रूप में बनी होती है। इस परिपथ के दौरान ऑक्सीजन तथा आहार-कण जल में से निकाल लिए जाते हैं और अपशिष्ट एट्रियम-छिद्र में से होकर बाहर निकाल दिए जाते हैं। ऐसीडियनों का एक विशेष लक्षण है एंडोस्टाइल (endostyle) का पाया जाना जो ग्रसनी में एक सिलियायित ग्रंथिल खांच होती है। यह एंडोस्टाइल गिल-कक्ष के फ़र्श में बनी होती है। यह संरचना श्लेष्म का स्राव करती है जिसमें आहार कण चिपक अथवा फंस जाते हैं। एक बहुत ही रोचक बात यह है कि एंडोस्टाइल का अस्तर बनाने वाले सिलिया श्लेष्म को ऊपर की ओर और फिर ग्रसनी की मध्यरेखा के ऊपर से ले जाते हैं जहां पर एक पंक्ति में बने स्पर्शकों द्वारा यह श्लेष्म लिपट-लिपट कर एक श्लेष्म रस्सी बन जाती हैं और तदुपरांत यह रस्सी ग्रसिका में, और उसके बाद आमाशय तथा अंतड़ी में को पहुंचा दी जाती है। भोजन का अवशोषण मध्य आंत्र में होता है। विष्ठा गोलिकाएं बहिर्वाही साइफ़न के निकट स्थित गुदा में से होकर बाहर को निकाल दी जाती हैं। कुछ का मानना है कि एंडोस्टाइल थाइरॉइड ग्रंथि का पूर्वगामी है।

तंत्रिका-तंत्र में एक तो तंत्रिका गैंग्लियॉन है और दूसरे ग्रसनी की पृष्ठ दिशा पर स्थित तंत्रिकाओं का एक जाल होता है। तंत्रिका गैंग्लियॉन के नीचे तंत्रिकीय ग्रंथि (neural gland) होती है जिसके भीतर गोनेडोट्रोपिक पदार्थ होते हैं, अनुमान है कि यह ग्रंथि कशेरुकियों के पिट्यूटरी के समवृत्ति होती है। यूरोकॉर्डेटा में एक बहुत ही रोचक लक्षण यह है कि इसके नलिकाकार हृदय के दोनों सिरों पर पेसमेकर होते हैं जो समय-समय पर रक्त-प्रवाह की दिशा को बदलते रहते हैं। हृदय के प्रत्येक पार्श्व पर दो बड़ी वाहिकाएं होती हैं जो छोटी-छोटी वाहिकाओं एवं गुहाओं के एक विसरित जाल के साथ जुड़ी होती हैं और

यही जाल-तंत्र रक्त को विभिन्न अंगों में पहुंचाता है। समुद्री स्क्वर्ट उभयलिंगी होते हैं एवं इनमें निषेचन आंतरिक होता है। कुछ सदस्य अंडप्रजक होते हैं और कुछ अन्य शिशुप्रजक। परंतु *क्लैवेलाइना* जैसे कुछ उदाहरणों में एक टैडपोल जैसा लार्वा होता पाया जाता है। लार्वा स्वच्छंद तैरने वाला होता है मगर खाता-पीता नहीं है। कुछ घंटों के बाद लार्वा अपने आपको आसंजी पैपिलों की सहायता से उदग्र रूप में चिपका लेता है और फिर उसमें कायांतरण होकर वह स्थानबद्ध वयस्क बन जाता है (चित्र 1.13)।

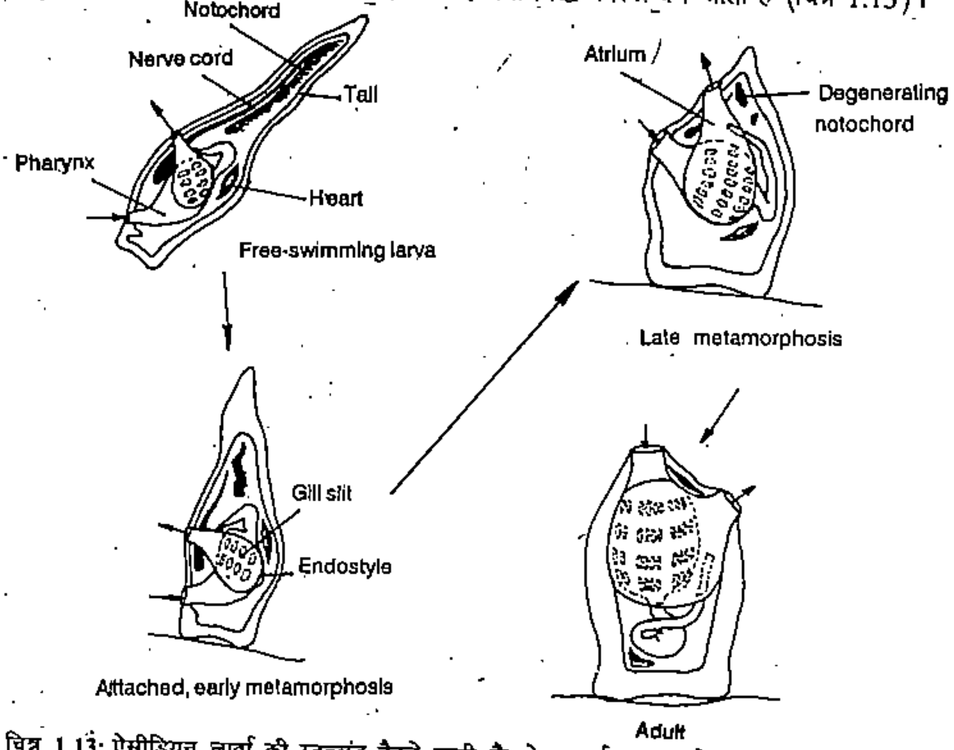

चित्र 1.13: ऐसीडियन लार्वा की स्वच्छंद तैरने वाली टैडपोल लार्वा अवस्था से एक वयस्क में रूपांतरण

क्लास थैलिएसिया (Class Thaliacea) : थैलेसियन ढोलकाकार वेलापवर्ती (pelagic) प्राणी होते हैं जिनके शरीर पारदर्शी होते हैं तथा धूप से प्रकाशित सतही जलों में ये लगभग पूर्णतः अदृश्यमान होते हैं। इनका शरीर प्ररूपतः वृत्ताकार पेशी पट्टियों से घिरा रहता है। अंतर्वाही तथा बहिर्वाही जलनाल अर्थात् साइफन प्रतिकूल दिशा में होते हैं। पेशीय संकुंचन शरीर में से जल को पम्प करने में सहायक होते हैं, और यह जल प्रवाह संचलन, श्वसन तथा आहार के स्रोत का काम करता है, और यह आहार श्लेष्मी सतह पर फ़िल्टर कर लिया जाता है। थैलिएसिया की अनेक स्पीशीज़ संदीप्तिशील (lumiescent) होती हैं। कुछ सदस्यों में जैसे कि *डोलियोलम* (*Doliolum*) (चित्र 1.14) तथा *साल्पा* (*Salpa*) में लैंगिक तथा अलैंगिक पीढ़ियों का एकांतरण भी होता पाया जाता है।

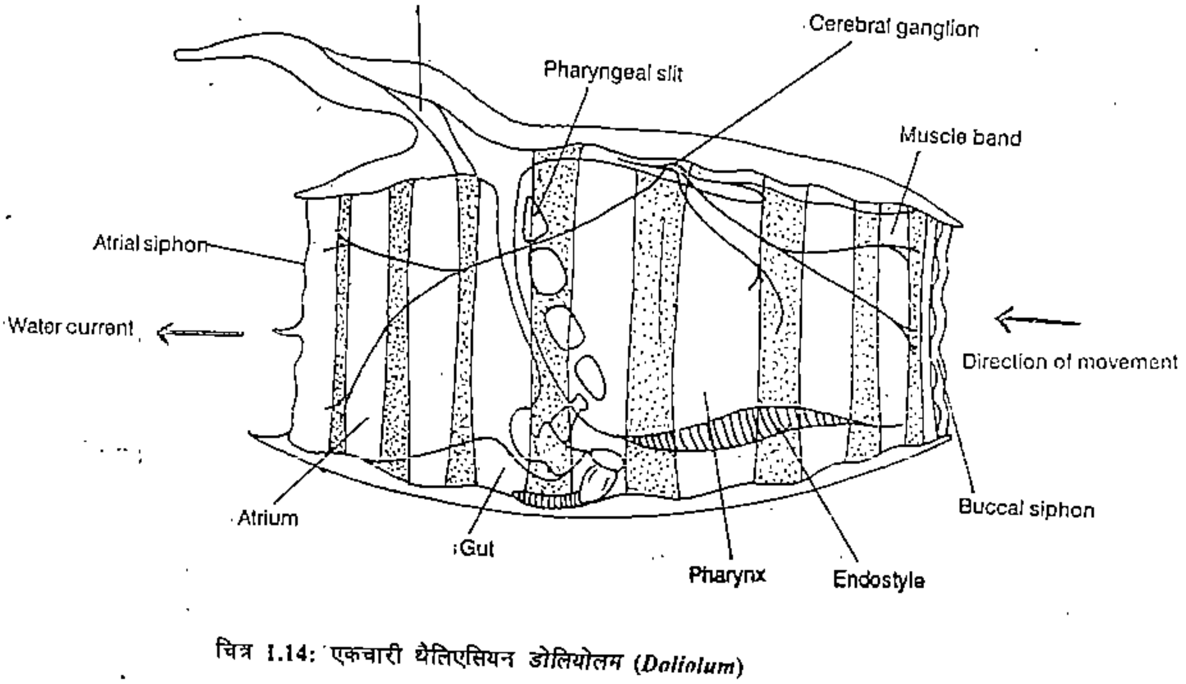

चित्र **1.14:** एकचारी थैलिएसियन डोलियोलम (***Doliolum***)

क्लास लार्वेसिया (Class Larvacea): लार्वेसियन वेलापवर्ती होते हैं तथा इनकी आकृति एक मुड़े हुए टैडपोल जैसी होती है। लार्वेसिया का चोल (टैस्ट) ट्यूनिसिन का नहीं बना होता है। इनमें आहार करने की एक बड़ी ही रोचक विधि पायी जाती है। व्यष्टिगत प्राणी एक घरौंदा बनाता है जो श्लेष्म का बना बड़ा ही नाजुक, पारदर्शी खोखला गोला होता है, और जिसके बीच-बीच में फिल्टर तथा छिद्र-मार्ग बने होते हैं जिनमें से जल भीतर प्रवेश करता है (चित्र 1.15)। इस घरौंदे के भीतर अशन-फ़िल्टर पर चिपके या फंसे आहार कण एक "स्ट्रा" जैसी नलकी के द्वारा प्राणी के मुंह के भीतर को खींच लिए जाते हैं। लगभग हर चार घंटों के बाद जब फिल्टर कचरे से भर जाता है तब प्राणी अपने इस घरौंदे को त्याग देता है तथा कुछ ही मिनटों में एक नया घरौंदा बना लेता है। ये प्राणी *नीओटेनस* (*neotenous*) अर्थात् चिरलार्वारूपी होते हैं यानि लैंगिक दृष्टि से परिपक्व प्राणियों में लार्वा शरीर रूप कायम रहता है जैसे *ऐपेंडिकुलेरिया* (*Appendicularia*), *ओइकोप्ल्यूरा* (*Oikopleura*)।

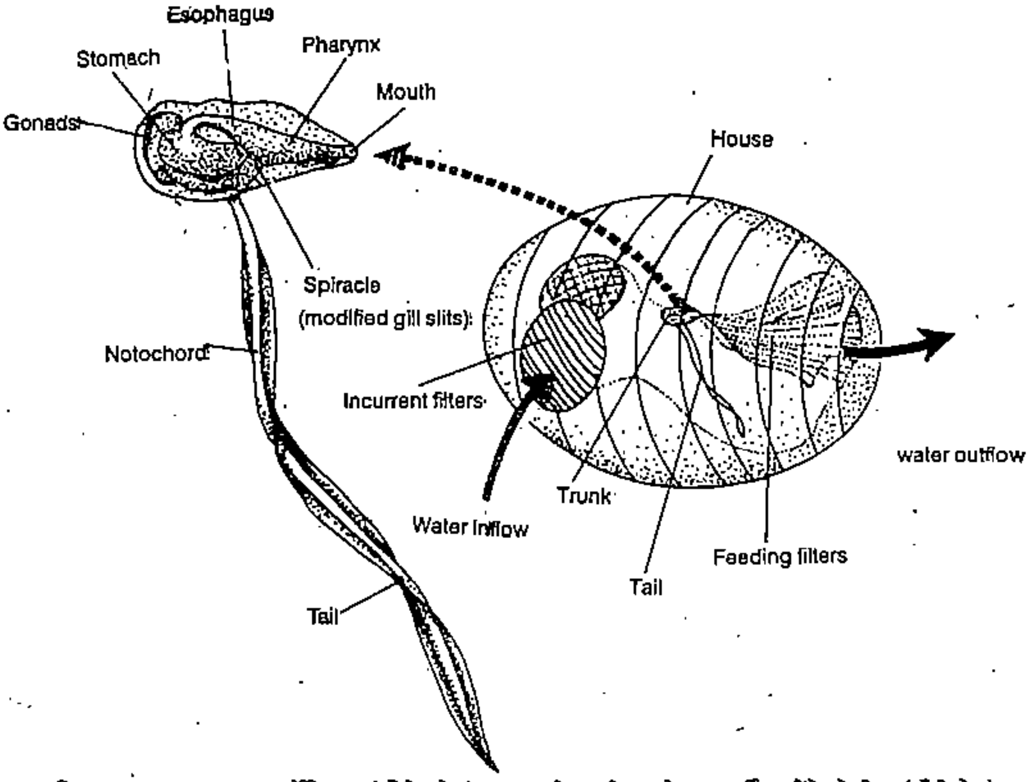

चित्र 1.15: एक वयस्क लार्वेसियन (बाँयी ओर) तथा यही प्राणी अपने पारदर्शी घरौंदे केभीतर(दाँयीओर)।

1.5.2 उपफ़ाइलम सेफैलोकॉर्डेटा

लैंसलेटों का आरम्भ में जीनस नाम *ऐम्फिऑक्सस* (ऐम्फि = दोनों सिरे; ऑक्सिस = पैने) था मगर बाद में इसे ब्रैंकियोस्टोमा कहा जाने लगा (ब्रैंकि = गिल; स्टोमा = मुख)। इस प्रकार ऐम्फिऑक्सस अब एक सामान्य नाम बन गया है जो इस उपफ़ाइलम की 25 स्पीशीज़ का प्रतिदर्श है।

ब्रैंकियोस्टोमा (Branchiostoma) लैंसलेट जिसे एम्फिऑक्सस (Amphioxus) भी कहते हैं इस उपफ़ाइलम सेफैलोकॉडेटा का एकमात्र उदाहरण है। यह पतला पार्श्वत: सम्पीडित एवं पारभासी होता है और यह लगभग 5 से 7 cm लम्बा होता है (चित्र 1.16)।

इस जीनस में लगभग दो दर्जन स्पीशीज़ आती हैं जो समस्त संसार में पायी जाती हैं। इनकी देह की सतह का एक विशेष ध्यानाकर्षक लक्षण है V-की आकृति के मायोटोमों अथवा पेशी खंडों का पाया जाना जो बाहर से साफ़ नज़र आते हैं। यह रेत के भीतर घुस जाता है और अपना अधिकतर समय अपनी पूंछ को रेत में गड़ाए हुए बिताता है और केवल अपने शीर्ष को मुख समेत सतह के ऊपर बाहर को निकाले रहता है। प्रजनन काल के दौरान यह रात के समय रेत में से बाहर आ जाता है और स्वच्छंद रूप में यहां-वहां तैरता रहता है। यह उन जैविक कणों तथा सूक्ष्म प्लवक को खाता है जिन्हें वह अंत:वाही जलधारा के द्वारा मुख के पास को ले आता है। अशन के दौरान मुख-कीप का अस्तर बनाने वाले सिलिया अंत:वाही जलधारा पैदा करते हैं। तदुपरांत जल को एक झिल्लीनुमा वीलम (velum) में से मुख में को ले आया जाता है, वीलम पर बारह छोटे स्पर्शक बनें होते हैं। जलधारा एक बड़े गिल-कक्ष में से गुज़रती है, यह कक्ष ग्रसनी का बना होता है बहुत कुछ उसी प्रकार का जैसा कि यूरोकॉर्डेटा में होता है। गिल-कक्ष में गिल-दरारें (चित्र 1.17) होती हैं जिनका उपयोग श्वसन में किया जाता है।

गिल-दरारों का अस्तर बनाते हुए सिलिया जल को गिल-कक्ष के फ़र्श पर बनी एंडोस्टाइल नामक खांच में पहुंचाते हैं। जल में मौजूद आहार कण एंडोस्टाइल में स्रावित श्लेष्म में चिपक या फंस जाते हैं। अब यह

श्लेष्म दो सिलियायुक्त खांचों में से होता हुआ ग्रसनी के पृष्ठ हिस्से में पहुंचता है जहां से वह अंतड़ी में को प्रविष्ट होता है। यहां श्लेष्म में से सबसे छोटे आहार कणों को पृथक करके उन्हे यकृत अंधनाल

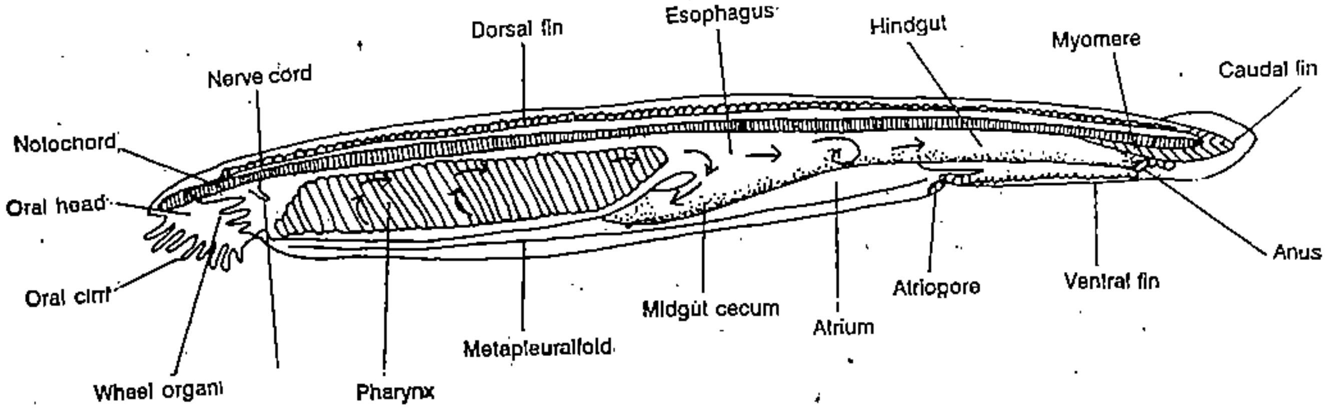

चित्र 1.16: ऐम्फिऑक्सस (*Amphioxus*) के बाहरी लक्षण

में पहुंचा दिया जाता है जहां इन कणों का कोशिकाभक्षण (phagocytosis) तथा अंत:कोशिकीय पाचन हो जाता है। तदुपरांत छना हुआ पानी एट्रियम में को जाता है और एक एट्रियोपोर द्वारा जो ट्यूनिकेटों के बाह्यधारा साइफ़न के समान होता है, शरीर से बाहर निकल जाता है। परिसंचरण तंत्र बंद प्रकार का होता है, तथा रक्त-प्रवाह का प्रतिरूप वैसा ही होता है जैसा कि आदिम मछलियों में हालांकि हृदय नहीं होता। रक्त अधर महाधमनी में आगे की ओर को पम्प किया जाता है उसके बाद वह ऊपर को गिल-छड़ों में बनी गिल धमनियों (महाधमनी चापों, aortic arches) में चलाया जाता है जहां से वह पृष्ठ महाधमनियों में पहुंचता है जो अंततः एक एकल पृष्ठ महाधमनी में समाप्त हो जाती हैं। उसके बाद रक्त शरीर के ऊतकों में पहुंचता है और फिर शिराओं द्वारा एकत्रित होता हुआ अधर महाधमनी में लौटा दिया जाता है। रक्त में रक्ताणु एवं हीमोग्लोबिन नहीं होते।

कॉर्डेटों के मूलभूत चार विभेदक लक्षण जितनी अच्छी तरह *ऐम्फिऑक्सस* में दिखायी पड़ते हैं उतने किसी भी अन्य कॉर्डेट में दिखायी नहीं पड़ते। साथ ही, इसमें अनेक ऐसे संरचनात्मक लक्षण भी पाए जाते हैं जो कशेरुकी योजना के समान है। ये लक्षण हैं - यकृत अंधनाल जो एक ऐसा अंधनाल है जो पाचन एंजाइमों के स्रवण में अग्न्याशय (पैंक्रियास) के समान है, सखंड धड़, पेशी-व्यवस्था तथा कार्डेटों की आधारभूत उत्सर्जन योजना।

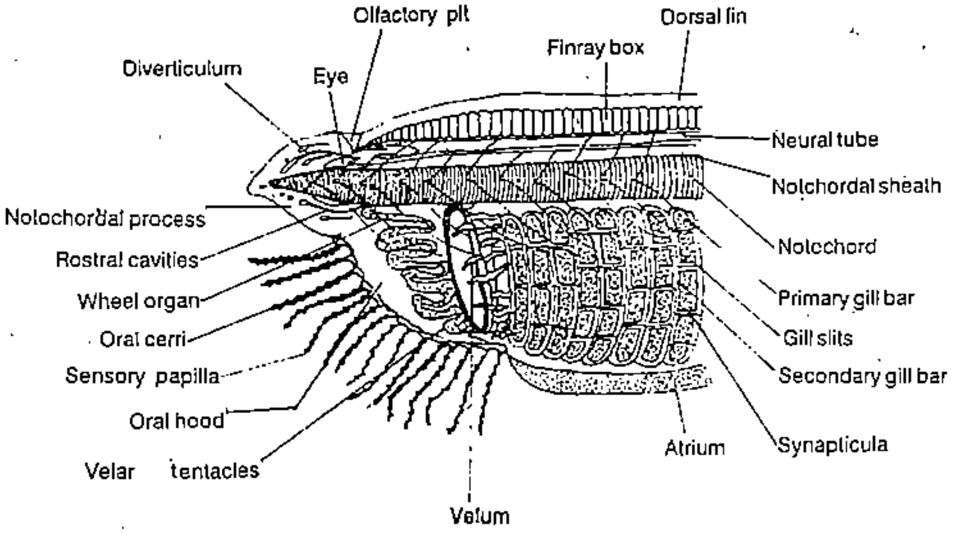

चित्र 1.17: *ऐम्फिऑक्सस* का अग्र भाग

तंत्रिका-तंत्र में एक तंत्रिका रज्जु होता है जो नोटोकॉर्ड के ऊपर स्थित होता है। मस्तिष्क एक सरल साधारण आशय जैसा होता है जो तंत्रिका रज्जु के अग्र सिरे पर बना होता है। मेरू तंत्रिका-मूलों के जोड़े धड़ के प्रत्येक मायोमेट्रिक (पेशी) खंड पर निकलते हैं। संवेदी अंग अयुग्मित द्विध्रुवीय ग्राहियों के रूप में होते हैं जो शरीर के विभिन्न भागों में बने होते हैं। उत्सर्जन नेफ्रीडिया (वृक्कों) के द्वारा होता है- यह लक्षण कॉर्डेटों में आमतौर से नहीं पाया जाता। लैंसलेटों में नर-मादा सेक्स अलग-अलग होते हैं। अण्डे तथा शुक्राणु एट्रियोपोर में से होकर बाहर निकल जाते हैं। निषेचन बाह्य प्रकार का होता है तथा देर वसंत अथवा आरम्भिक ग्रीष्मकाल में जल के भीतर सम्पन्न होता है।

बोध प्रश्न 5

i) लार्वेसियनों में अपनाई जाने वाली अशन विधि का स्पष्टीकरण कीजिए।

....

....

....

....

....

....

ii) रिक्त स्थानों में उपयुक्त शब्द लिखिए:-

क) यूरोकॉर्डेटों के बाहरी दृढ़ निर्जीव आवरण को .... कहते हैं।

ख) यूरोकॉर्डेटा के तीन क्लास .... तथा .... हैं।

ग) ऐसीडियनों के आहार कण .... में फंसाए जाते हैं जिसका स्रावण .... से होता है।

घ) .... अपना अधिकांश समय रेत में अपनी दुम नीचे गड़ाई हुई अवस्था में बिताता हैं।

च) ब्रैंकियोस्टोमा में उत्सर्जन .... के द्वारा होता है।

छ) लैंसलेटों में .... पृथक होती हैं तथा .... बाहरी होता है।

ज) ब्रैंकियोस्टोमा में पाचन .... होता है।

1.5.3 आधारभूत अनुकूली लक्षण

यूरोकॉर्डेटों में कुछ महत्त्वपूर्ण अनुकूलन पाए जाते हैं जिनका इस समूह की सफलता में योगदान रहा है। सीलिया का इस्तेमाल करने वाला कारगर अशन-विधि का होना स्थानबद्ध अर्थात् स्थान से बंधे जीवन के कारण होने वाली कमी की बहुत अच्छी तरह से भरपाई करता है। कुछ स्पीशीज़ ने गैस्ट्रोपोडों के ऊपर सहभोजी (commensal) के रूप में उगने-पनपने का स्वभाव विकसित कर लिया है जिससे उन्हें व्यापक वितरण का एक तरीका प्राप्त हो गया। यूरोकॉर्डेटों को अनुकूली लाभ प्रदान करने वाले अन्य लक्षणों में आते हैं- बड़ी छिद्रिल ग्रसनी जिसमें कारगर गैसीय विनिमय हो सकता है, तथा एक मोटा, चर्मीय, सुरक्षाकारी चोल (टेस्ट) जो परभक्षियों को दूर बनाए रखता है। हर्डमानिया के टैडपोल में अनेक अनुकूली लक्षण विकसित हो गए हैं जैसे कि धारारेखित शरीर, संचलन के लिए दृढ़ नोटोकार्ड से आलम्बित पूंछ, संतुलन बनाए रखने के लिए कर्णाश्म (otoliths), तथा अध:स्तर से चिपकने के लिए आसंजी पैपिले।

सेफैलोकॉर्डेट प्राणी अपने परिवेश के लिए एक उत्कृष्ट ढंग से अनुकूलित होते हैं। इस समूह में देखे जाने वाले विविध अनुकूलनों को निम्नलिखित श्रेणियों में व्यवस्थित किया जा सकता है। ये श्रेणियां इस प्रकार हैं: 1) तैरने के लिए अनुकूलन: जैसे कि वयस्क में धारारेखित शरीर, दृढ़ नोटोकार्ड तथा फैला हुआ पुच्छ फिन। 2) अशन की सिलियरी विधि जो स्थानबद्ध जीवन के लिए बहुत उपयुक्त होती है। 3) ऐसे अनुकूलन जिन्होंने उत्तरजीविता महत्त्व प्रदान कर सफलता प्रदान की जैसे क) बिल के भीतर जीवन बिताने की विधि ने परभक्षियों से सुरक्षा प्रदान की ख) बहुसंख्यक गोनडों का होना जिन्होंने अधिक संख्या में बनने वाले गैमीटों (युग्मक) की विधि प्रदान की ताकि निषेचन की संभावनाएं बढ़ जाएं। ग) बड़ी दीर्घायतन ग्रसनी ताकि गैस-विनिमय कारगर रूप में हो सके तथा घ) स्वच्छंद तैरने वाला लार्वा ताकि विभिन्न पारिस्थितिकीय निचों (निकेतों) में वितरण हो सके।

1.5.4 बंधुताएं (Affinities)

आइए अब यूरोकॉर्डेटों तथा सेफ़ैलोकॉर्डेटों की बंधुताओं पर ध्यान केंद्रित करते हैं। यूरोकॉर्डेटों तथा सेफ़ैलोकॉर्डेटों में आपस में अनेक बातों में समानताएं पायी जाती हैं। ये समानताएं इस प्रकार हैं: 1) अशन की सिलियरी विधि; 2) एट्रियम तथा एंडोस्टाइल का पाया जाना; 3) बहु संख्यक गिल-दरारों से युक्त छिद्रिल ग्रसनी; 4) नोटोकार्ड तथा तंत्रिका नलिका का समान उद्भव।

मगर साथ ही इन दो समूहों में अनेक असमानताएं भी पायी जाती हैं जिससे इन दोनों में बंधुताएं निकाल सकना कठिन हो जाता है। सेफ़ैलोकॉर्डेटों से यूरोकॉर्डेट निम्नलिखित पहलुओं में भिन्न होते हैं (1) देह भित्ति का ट्यूनिसिन से युक्त होना; (2) परिहृद का पाया जाना; (3) U-आकृति की आहार नाल; (4) नेफ्रीडिया का अभाव; (5) वयस्क में कॉर्डेट लक्षणों का समाप्त हो जाना।

यूरोकॉर्डेट मौलस्क-जैसे अकशेरुकियों से निम्न बातों में समानता दर्शाते हैं: (1) कार्टिलेज का पाया जाना, (2) काइटिन का पाया जाना है, यह पदार्थ सेफ़ैलोकॉर्डेटा में भी पाया जाता है जो इन दोनों समूहों के बीच बंधुता दर्शाता है; (3) परिहृद तथा अग्नाशय ऊतक का पाया जाना; (4) उत्सर्जन उत्पाद अमोनिया के रूप में। इसके बावजूद ट्यूनिकेट टैडपोल लार्वा में अनेक कॉर्डेट लक्षण भी पाए जाते हैं जैसे नोटोकॉर्ड, मध्य आंख, एंडोस्टाइल से युक्त सुविकसित ग्रसनी, तथा एक पूंछ जिसमें फैले हुए पृष्ठ एवं अधर फ़िन होते हैं।

सेफ़ैलोकॉर्डेटों तथा इकाइनोडर्मों में कुछ बहुत स्पष्ट समानताएं भी मिलती हैं। दोनों में समान रूप में पाए जाने वाले लक्षण ये हैं- (1) आंत्रसीलोमी सीलोम; (2) शारीर में सममित लक्षणों का होना। लेकिन, अकशेरुकियों के साथ बंधुताएं कम महत्व की हैं। *ऐम्फ़िऑक्सस* अपेक्षाकृत विचित्र होता है जिसमें अनेक कॉर्डेट लक्षण और साथ ही अनेक विशेषित लक्षण भी पाए जाते हैं।

बोध प्रश्न 6

कालम I में दिए गए मदों को कालम II में दिए गए मदों के साथ सही-सही मिलाइए:-

I		II	
(i)	आसंजी पैपिला	क)	बहुत संख्या में गैमीटों का बनना
(ii)	बहुसंख्यक गोनड	ख)	यूरोकॉर्डेट तथा सेफ़ैलोकॉर्डेट
(iii)	एट्रियम का होना	ग)	दृढ़ नोटोकॉर्ड से आलम्बित पूंछ
(iv)	संचलन	घ)	हर्डमानिया लार्वा
(v)	U-आकृति की आहार-नाल	च)	यूरोकॉर्डेटों में पाया जाता है
(vi)	कॉर्डेट लक्षणों की हानि		

1.6 पूर्वजता तथा विकासीय प्रवृत्तियां

प्राणियों में पूर्वजता तथा विकासीय प्रवृत्तियां देख पाने के लिए यह आवश्यक है कि सभी समूहों की संघटना तथा उनमें समान रूप से पायी जाने वाली सामान्य परिवर्धन-योजना का एक बार पुन: विश्लेषण किया जाए। इकाइनोडर्मों, हेमिकॉर्डेटों, प्रोटोकॉर्डेटों तथा कॉर्डेटों में तुलना के लिए पर्याप्त आधार मौजूद हैं। इन सभी में, ब्लास्टोपोर गुदा बन जाता है तथा मुख एक बिल्कुल नई संरचना होती है। अतः इन प्राणियों को एक साथ ड्यूटेरोस्टोमिया (Deuterostomia) (ग्रीक ड्यूटेरॉस = "दूसरा" अथवा "बाद का" तथा स्टोमा = "मुख" यानि दूसरा मुख) में रखा गया है। यह व्यवस्था अन्य अकशेरुकियों के बिल्कुल विपरीत है, उनमें ब्लास्टोपोर मुख बन जाता है (प्रोटोस्टोमिया : आदिम मुख) (ग्रीक प्रोटोस = "प्रथम", तथा स्टोमा = "मुख")।

प्रोटोस्टोमों में, जिसका शाब्दिक अर्थ है "प्रथम मुख", ऐसे प्राणी आते हैं जिनमें मुख ब्लास्टोपोर अथवा उसके निकट से बनता है। इसके अतिरिक्त इनमें प्रवृत्ति होती है कि सर्पिल विदलन हो। इनमें एक दीर्णसीलोम (Schizocoelom) होती है तथा सतही धरत की कोशिकाओं से व्युत्पन्न एक कंकाल होता है। ड्यूटेरोस्टोमों में जिसका शाब्दिक अर्थ है "दूसरा मुख" ऐसे प्राणी आते हैं जिनमें मुख ब्लास्टोपोर से न बनकर द्वितीयक रूप में आहार नाल के विपरीत सिरे पर बनता है। इसके अतिरिक्त ड्यूटेरोस्टोमों के भ्रूण-परिवर्धन में अरीय विदलन, एक आंत्रसीलोम तथा कैल्सिकृत कंकाल होता है, जो कि जब भी पाया जाता है तब सामान्यतः एक्टोडर्मी ऊतकों से व्युत्पन्न होता है।

कॉर्डेटों का उद्भव तथा उनकी पूर्वजता स्पष्टत: स्थापित नहीं हो पायी है। इस बारे में अनेक मत हैं लेकिन वे सभी कल्पना मात्र हैं। अभी तक यह निश्चित नहीं हो पाया है कि अंतत: बने प्राणी क्या पहले स्थानबद्ध रहे प्राणियों के नीओटेनस (चिरलार्वीय), स्वच्छंद तैरने वाले व्युत्पाद हैं या कि वे निरंतर विकसित होते हुए सक्रिय तथा स्वच्छंद तैरने वाले प्राणी हैं। हम पहले ही जान चुके हैं कि कॉर्डेट इकाइनोडर्मों तथा उनके निकट संबंधियों से सामान्यत: मिलते-जुलते होते हैं। मगर इकाइनोडर्मों में कुछ ख़ास विशिष्टताएं भी आ चुकी हैं जैसे अरीय असमिति, जल संवहनी तंत्र, तथा तंत्रिका वलय जो इस संभावना को एकदम समाप्त कर देती है कि इकाइनोडर्म ही कॉर्डेटों के पूर्वज हैं। ऐसी ही विचारधारा हेमिकॉर्डेटों पर भी लागू होती है। भले ही हेमिकॉर्डेटों को कॉर्डेटा के निकट ही रखा जाता है, इनकी शुंडिका, कॉलर, परिसंचरण तंत्र की प्रकृति ऐसे लक्षण हैं जो इन्हें उच्चतर कॉर्डेटों से एकदम अलग कर देते हैं।

आइए अब यह देखें कि क्या आदिम यूरोकॉर्डेटों को कार्डेट-पूर्वज माना जा सकना संभव है या नहीं। यूरोकॉर्डेटों के वयस्क अति विशेषित होते हैं, उनमें नोटोकॉर्ड, तंत्रिका रज्जु तथा सीलोम समाप्त हो गए हैं तथा कुछ अकॉर्डेट लक्षण जैसे कि ट्यूनिक, एट्रियम तथा साइफ़न होते पाए जाते हैं। अत: ये प्राणी कशेरुकी योजना में फिट नहीं बैठ पाते। ट्यूनिकेटों में एक ऐसी अवस्था दिखायी पड़ती है जिसमें स्थानबद्ध वयस्क अवस्था में स्पर्शक द्वारा अशन प्रक्रिया का स्थान पूरी तरह गिल-अशन प्रक्रिया ने ले लिया है, मगर उनमें एक मछली-सरीखा टैडपोल लार्वा होता है। कदाचित यह भी ध्यान देना उचित होगा कि कशेरुकी पूर्वजता को ऐसीडियनों की लार्वा-संरचना पर आधारित करके समझा जाए।

गार्स्टैंग, (Garstang, 1894) के औरिकुलेरिया मत में कहा गया है कि ऐसीडियन टैडपोल औरिकुलेरिया लार्वा से बना है। इस मत के अनुसार सिलियायित औरिकुलेरिया लार्वा ही प्रगामी अवस्थाओं में मछली-सरीखे जीव में विकसित हुआ है, जब कि वयस्क प्राणी जो शुरू में स्थानबद्ध थे उनमें मूल लोफ़ोफ़ोर के स्थान पर गिल-दरारें तथा एंडोस्टाइल बन गए। यह विचारधारा तर्कसंगत रूप में संतोषजनक लगती है। इस मत से उन घटनाक्रमों को पुनर्निर्मित किया जा सकता है जिसने जलधाराओं में लोफ़ोफ़ोर-आहारक को परिवर्तित किया और ऐसा करने में उन्हें जलधाराओं के क्रांतिक भौतिक बलों का सामना करना पड़ा। समुद्र की ओर बहती हुई जलधाराओं के बल पर काबू पा सकने के लिए इन लार्वों को अपने में शक्तिशाली संचलन तंत्र एवं संवेदी तंत्र से लैस होना पड़ा। इसके साथ-साथ गुर्दों में भी आवश्यक रूपांतरण हुए होंगे ताकि अलवण जलीय जीवन के लिए अनुकूल हो सकें। पेलियोज़ोइक काल के आसपास प्राणियों के कुछ खास चुने हुए समूहों ने अलवण जल के पारिस्थितिकीय निचों का समुपयोग किया होगा और इन्हीं में से हैं पुरोकशेरुकी एवं आर्थ्रोपोड-प्राणी। इससे भी आगे गार्स्टैन्ग के मत में यह भी बात निकलती है कि ऐम्फिऑक्सस ही आरम्भिक पुरोकशेरुकी रहा होगा और यही प्राणी जनन उद्देश्य के लिए वापिस समुद्र में लौटा होगा (प्रवास किया होगा) और उसके बाद उसने अपने समुद्री अस्तित्व के लिए फिर से फ़िल्टर-अशन को अपना लिया होगा। इस मत का अनेक विशेषज्ञों ने समर्थन किया है जैसे कि एन. बेर्रिल तथा ए.एस. टोमर ने।

ऐम्फिऑक्सस में कॉर्डेटों के अनेक आधारभूत लक्षण दिखायी पड़ते हैं जैसे इसकी संघटना में नोटोकॉर्ड, पृष्ठीय तंत्रिका रज्जु तथा ग्रसनी गिल-दरारें (चित्र 1.18)। इनके अलावा इसमें कुछ द्वितीयक लक्षण भी पाए जाते हैं जैसे गुदा-पश्चीय पूंछ, यकृत अंधनाल, यकृत निवाहिका तंत्र (hepatic portal system) तथा एक अधर हृदय का आरम्भ। ऐम्फिऑक्सस की पेशीय परत पृष्ठ दिशा में मोटी हो गयी होती है उसी प्रकार जैसे कि कशेरुकियों में। पेशियों की विखंडनी दशा में, कशेरुकी भ्रूण में पायी जाने वाली योजना से समानता होती है। फिर भी, कुछ विशेषज्ञों जैसे कि हिकमैन (Hickman, 1966) ने संकेत दिया है कि यह आदिम मछली ऑस्ट्रैकोडर्म (Ostracoderms) के निकट है हालांकि कि यह तय कर सकना कठिन है कि इसे ऑस्ट्रैकोडर्मों से पहले रखा जाए अथवा बाद में। इसके अलावा अन्य कारण भी हैं जिनके आधार पर गिल-दरारों से युक्त ग्रसनी बनी तथा लार्वा में पेशियां प्रकट हुईं और आगे चलकर तंत्रिका-रज्जु तथा एक तंत्रिका नलिका बनी (चित्र 1.19)। इस प्रकार इकाइनोडर्म लार्वा से ट्यूनिकेट टैडपोल लार्वा सरलता से व्युत्पन्न हो सकता था। अब सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि कशेरुकियों ने अपने जीवन-इतिहास में से समुद्री स्क्वर्ट अवस्था कैसे समाप्त कर दी। हीकेल (Haeckel) की पुनरावर्तन अवधारणा के अनुसार पूर्वजों की वयस्क अवस्थाओं की उनके वंशजों के परिवर्धन के दौरान पुनरावृत्ति होती है। लेकिन इस विचाराधारा को इसी रूप में स्वीकारा नहीं जा सकता क्योंकि किसी भी कशेरुकी के परिवर्धन में समुद्री स्क्वर्ट जैसी कोई अवस्था नहीं आती। कुछ का मानना है कि वयस्क

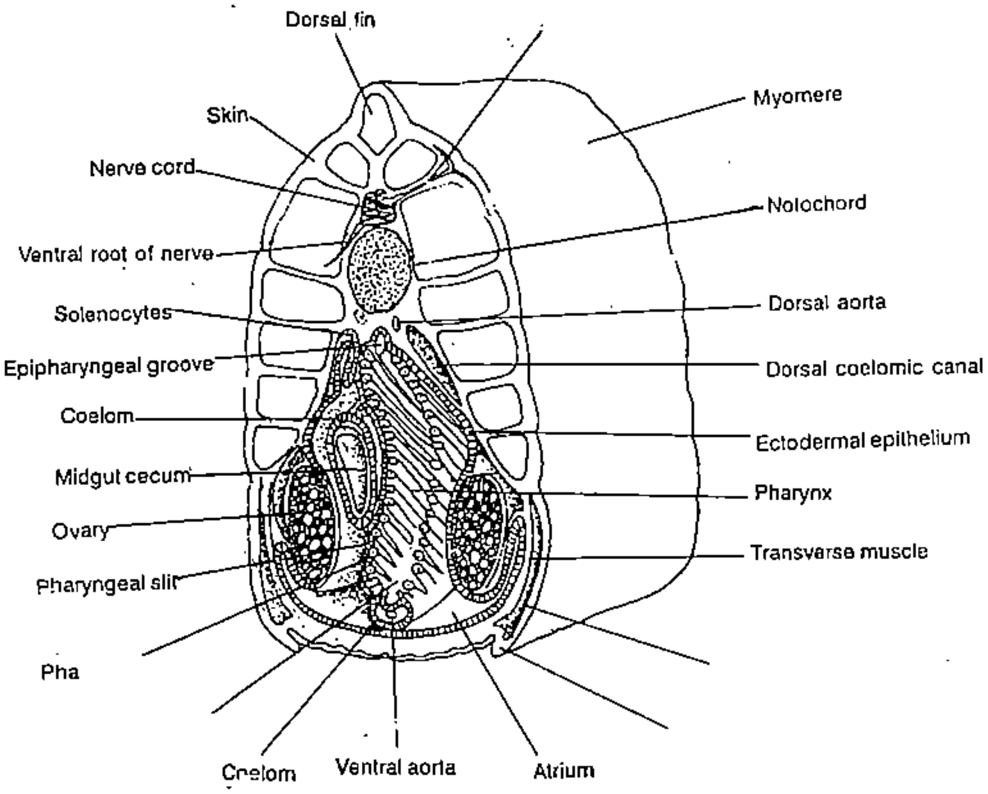

चित्र 1.18: ऐम्फिऑक्सस का अनुप्रस्थ सेक्शन जिसमें कॉर्डेट लक्षण दिखाई पड़ रहे हैं।

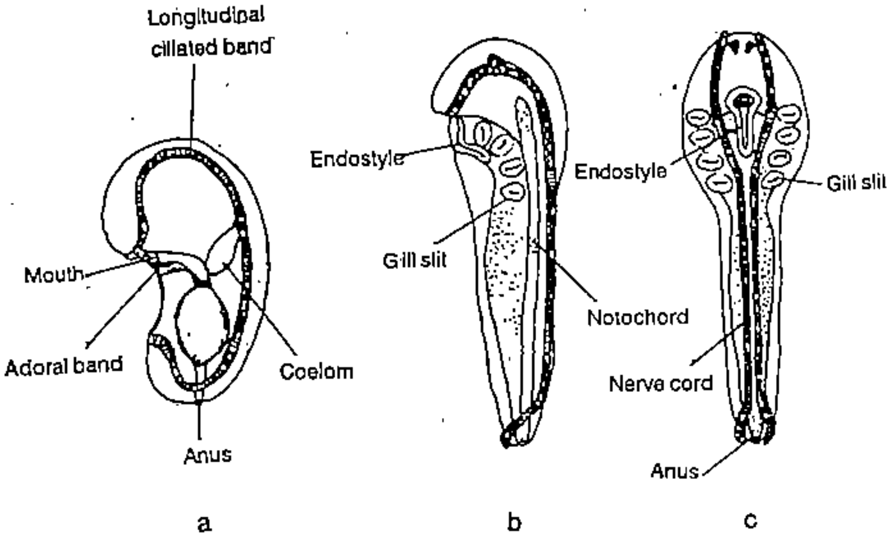

चित्र 1.19: औरिकुलेरिया (a) से प्राक्कॉर्डेट (Protochordate) की व्युत्पत्ति (b) पार्श्व दृश्य, (c) अग्र दृश्य

ऐसीडियनों को प्राचीन कॉर्डेट-स्वरूप के अपकर्षित स्थानबद्ध वंशज माना जाना चाहिए, जबकि ऐसीडियन टैडपोल को ऐसीडियनों के किसी प्राचीन स्वच्छंद तैरने वाले कॉर्डेट पूर्वज का अवशेष माना जाता है।

यूरोकॉर्डेटों के ऐसीडियन टैडपोल लार्वा के अध्ययन से कॉर्डेटों के उद्‌भव के विषय में और भी अनेक कल्पनाएं सामने आयी हैं। गार्स्टैंग (1928) द्वारा रखे गए कॉर्डेटों के ऐसीडियन मत के अनुसार सभी पूर्वज कॉर्डेट समुद्रवासी, स्थानबद्ध तथा फिल्टर अशनकारी थे। स्वयं ऐसीडियनों का उद्‌भव स्थानबद्ध हेमिकॉर्डेटों से हुआ होगा। उसके बाद इस स्थानबद्ध स्वरूप से आधारभूत कशेरुकी संघटना से युक्त ऐसीडियन टैडपोल विकसित हुआ। यह लार्वा वेलापवर्ती, स्वच्छंद तैरने वाला तथा महासागरीय जलों के प्लवक (plankton) का आहार करने वाला है। स्वच्छंद तैरने वाले जीवन के तुरंत बाद यह लार्वा अध:स्तर से चिपक जाता है और उसमें प्रतिगामी कायांतरण होने के बाद वह एक स्थानबद्ध वयस्क रूप प्राप्त कर लेता है (चित्र 1.13)। माना जाता है कि ऐसे ही कुछ लार्वा कायांतरण में से न गुज़रते हुए लैंगिक रूप में परिपक्व हो जाते हैं (नीओटेनी) और ज्वारनदमुखों तथा नदियों में प्रवेश कर जाते हैं जहां वे जैविक अपरद का आहार कर सकते हैं। ट्यूनिकेटों की क्लास लार्वेसिया विकास की इसी अवस्था में आती है। पहली बात तो यह कि नोटोकॉर्ड के अतिविकास को कुछ ने बिलकारी स्वभाव के लिए अनुकूलन

माना है। दूसरे यह कि सॉलीनोसाइट (solenocyte) प्रकार के प्राक्वृक्क (प्रोटोनेफ्रीडिया) से पौलीकीटों मे दिखने वाली आदिम दशा का आभास होता है और इसलिए इनकी कशेरुकियों के ग्लोमेरूलर-नलिकीय नेफ़्रॉन से कोई समानता नहीं है। मगर कॉल्बर्ट (Colbert) ने जोर देकर कहा है कि अभी भी ऐम्फ़िऑक्सस ही कशेरुकियों का तर्क संगत संरचनात्मक पूर्वज है और वह अन्य लोगों की उन आपत्तियों को नहीं स्वीकारते जिसमें इस स्वरूप को विशेषीकरणों का नतीजा माना गया है।

कुल मिलाकर व्यापक रूप में स्वीकार किया जाने वाला मत यह है कि कशेरुकियों का अधिक निकट का संबंध यूरोकॉर्डेटों से न होकर सेफ़ैलोकॉर्डेटों से है और यह भी कि फ़ाइलम कॉर्डेटा का स्थान हेमिकॉर्डेटा तथा इकाइनोडर्मेटा के निकट आता है। इस सब के बावजूद कोई भी ज्ञात इकाइनोडर्म, हेमिकॉर्डेट, यूरोकॉर्डेट और यहां तक कि सेफ़ैलोकॉर्डेट भी कॉर्डेट विकास की सीधी रेखा में नहीं आता। वास्तव में बिल्कुल स्पष्ट रूप में बताना कठिन है कि कॉर्डेट किसी एक ज्ञात जीवित अथवा विलुप्त प्राणी से विकसित हुए हैं। कुछ लेखकों का मानना है कि सेफ़ैलोकॉर्डेट किसी कशेरुकी पूर्वज की एक विशेषित पार्श्व शाखा हैं। स्वयं इस मत को भी स्वीकृति नहीं मिली क्योंकि किसी भी एक समय पर इस समूह के किसी भी सदस्य में मस्तिष्क-कोश तथा मस्तिष्क एवं आंख जैसे लक्षण नहीं होते थे।

आज की प्रचलित विचारधारा यह है कि इकाइनोडर्म, हेमिकॉर्डेट तथा कॉर्डेट किसी एक समान वंशक्रम से लगभग 50 करोड़ वर्ष पूर्व एक अलग शाखा के रूप में निकले होंगे। एक संभावित जातिवृत्तीय रेखा जिसमें परिकल्पित पूर्वज, प्रोटोकॉर्डेटों के विविध समूहों तथा कशेरुकियों के संबंधों को चित्र 1.20 में दर्शाया गया है।

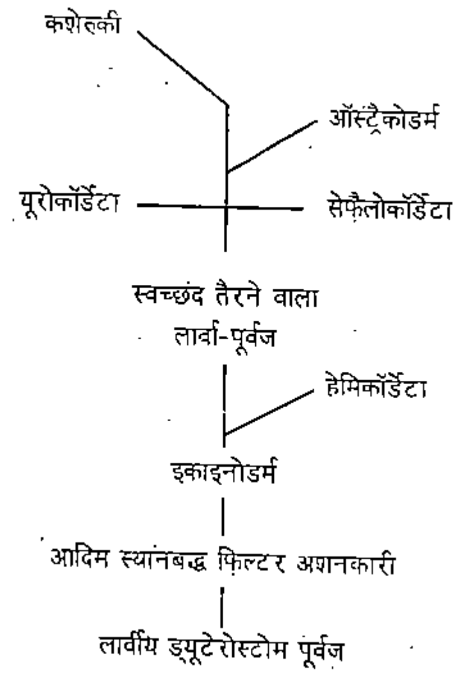

चित्र 1.20: कॉर्डेटों के जातिवृत्त की एक संभावित योजना

इकाइनोडर्मों की प्रोटोकॉर्डेटों के साथ दो तरीकों से सहलग्नता है- एक तो, इकाइनोडर्म औरिकुलेरिया की प्रोटोकॉर्डेटों के टॉर्नेरिया लार्वा से समानता और दूसरे दोनों समूहों में अभिन्न विदलन (अनियमित एवं अरीय) तथा समान रक्त एवं पेशी प्रोटीनों का एक जैसा पाया जाना। इसके अलावा जीवाश्म प्रमाण भी, जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, इस विचारधारा को बल देता है कि इन दोनों समूहों में निकट का संबंध है। कॉर्डेटों के इकाइनोडर्म की दिशा रेखा से विकासीय जातिवृत्त के संबंध में ये सब विचार आकारिकीय, शारीरीय, भ्रूण विज्ञानीय तथा जीवाश्म विज्ञानीय प्रमाणों पर आधारित हैं। बीते समय में जियॉफ़्रे (Geoffrey, 1930) तथा अधिक हाल के समय में सिलमैन (Sillman, 1960) जैसे लेखकों ने मौलस्कों तथा कॉर्डेटों के बीच अनेक अतिस्पष्ट समानताएं गिनाई हैं। यह एक आश्चर्यजनक बात है कि मौलस्कों के साथ कॉर्डेटों के संबंध पर जातिवृत्तविदों का ध्यान नहीं गया है, हालांकि इन दोनों के बीच अनेक जैवरासायनिक, शरीरक्रियात्मक एवं ऊतकविज्ञानीय विशिष्टताओं की समानता पायी जाती है। अनेक लेखकों ने अनेक लक्षणों पर अध्ययन किया है और उन्हीं में से कुछ यहां सारणी 1.1 में दिए जा रहे हैं।

सारणी 1.1: जैव रासायनिक, शरीरक्रिया विज्ञानीय तथा ऊतक विज्ञानीय लक्षण जिनका मौलस्कों, इकाइनोडर्मों तथा कशेरुकियों (कॉर्डेटों) की तुलना के लिए उपयोग किया गया है।

जैवरासायनिक	शरीरक्रिया विज्ञानीय	ऊतकविज्ञानीय
ग्लाइकोसऐमीनोग्लाइकैन्स	श्वसन	कार्टिलेज
सिऐलिक अम्ल	परिसंचरण	कंकाल
कोलैजेन	आहार तथा पाचन	हृदय
एपिडर्मल प्रोटीन्स	परासरण नियमन	रक्त
काइटिन	नाइट्रोजन उत्सर्जन	परिहृद
फॉस्फोजेन्स	प्रकाशग्राहिता	यकृत एवं अग्न्याशय

इनमें से लक्षणों के चयन का जो आधार अपनाया गया है वह यह है कि सभी तीनों समूहों अर्थात् इकाइनोडर्मों, मौलस्कों तथा कशेरुकियों (कॉर्डेटों) में इनका मौजूद होना अथवा मौजूद न होना निश्चित रूप में स्थापित किया जा सके। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य मौलस्कों, इकोइनोडर्मों तथा कशेरुकियों में उनके उपर्युक्त लक्षणों की संख्या पर आधारित निकटता के स्तर का निर्धारण करना है। लवट्रप (Lovtrup, 1977) का जातिवृत्त ऊपर दिए लक्षणों पर आधारित है क्योंकि वह उन्हें विकास की दृष्टि से आकारिकीय लक्षणों की अपेक्षा अधिक स्थिर मानता है। उदाहरणत: कोई भी दो समूह जिनमें जैविकीय रसायन अन्य समूहों की अपेक्षा अधिक संख्या में समान हों अधिक निकट संबंधी होते हैं।

अंत में यह निष्कर्ष निकलता है कि कॉर्डेटों की पूर्वजता एक अनिर्णीत विषय है और उनके जातिवृत्त की खोज में किए जाने वाले हर प्रयास में कठिनाइयां आ खड़ी होती हैं। कॉर्डेट पूर्वजता की इकाइनोडर्म तथा मौलस्कन दोनों ही विकास दिशाएं या तो स्वीकार की जा सकती हैं या अस्वीकार कर दी जा सकती हैं।

बोध प्रश्न 7

गार्स्टैंग का औरिकुलेरिया मत समझाइए। यह मत उसके ऐसीडियन मत से किस प्रकार भिन्न है?

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

1.7 सारांश

इस इकाई में आपने निम्नलिखित बातें जानी हैं:-

- हेमिकॉर्डेट्स प्राणियों का वह वर्ग है जिनमें कार्डेट लक्षण स्पष्ट रूप में पाए जाते हैं अर्थात् गिल-दरारें तथा आद्यांगी नोटोकॉर्ड। परंतु हेमिकॉर्डेट का नोटोकॉर्ड वास्तव में मुख अंधवर्ध है न कि वास्तविक नोटोकॉर्ड। यही वह कारण है जिसके अनुसार हेमिकॉर्डेटों को अब एक अलग फाइलम माना जाता है।
- चार कॉर्डेट प्रमाण चिन्ह हैं नोटोकॉर्ड, पृष्ठीय नलिकाकार तंत्रिका रज्जु , ग्रसनीय गिल दरारें तथा गुदापश्चीय पूंछ। अत: ये अकशेरुकियों से इतने ज़्यादा भिन्न हैं।

- फ़ाइलम कॉर्डेटा के सदस्य अपने स्वभावों तथा संघटना में विविधतापूर्ण होते हैं।
- अकशेरुकियों में इकाइनोडर्म प्राणी ही हेमिकॉर्डेटा के नज़दीक हैं। मगर इन दोनों समूहों में अपनी-अपनी विशेषताएं हैं।
- कोई ऐसा ज्ञात इकाइनोडर्म, हेमिकॉर्डेट, यूरोकॉर्डेट तथा सेफ़ैलोकॉर्डेट, चाहे वह जीवित हों अथवा समाप्त हो चुका हो, नहीं है जो कॉर्डेटा के विकास की मुख्य विकास रेखा में आता हो।
- जैवरासायनिक, शरीरक्रियात्मक तथा ऊतक विज्ञानीय विशिष्टताओं पर आधारित प्रमाणों से ऐसा लगता है कि कॉर्डेट (कशेरुकी) प्राणी मौलस्का विकास रेखा में से एक शाखा के रूप में निकले हैं न कि इकाइनोडर्म विकास रेखा में से। कॉर्डेटों की पूर्वजता पर उपलब्ध आंकड़े परस्पर विरोधी हैं और यह समूचा विषय अभी तक अनिर्णीत हैं।

1.8 अंत में कुछ प्रश्न

1. कॉर्डेटों के चार प्रमाण चिन्ह क्या हैं?

....

....

....

....

2. हेमिकॉर्डेटों अथवा यूरोकॉर्डेटों के कम से कम तीन आधारभूत अनुकूली लक्षण बताइए

....

....

....

3. *ब्रैकियोस्टोमा* में अशन-विधि का वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

....

4. संक्षेप में समझाइए कि सेफ़ैलोकॉर्डेटों ने अपने आप को अपने परिवेश के प्रति किस प्रकार अनुकूलित किया है।

....

....

....

5. इकाइनोडर्मों तथा कॉर्डेटों के बीच कम से कम चार मुख्य बंधुताएं बताइए।

....

....

....

....

6. किसी भी एक ऐसे जीवाश्म इकाइनोडर्म का वर्णन कीजिए जिसे कॉर्डेटों के निकट माना जाता है।

....

....

....

....

....

7. वयस्क-यूरोकॉर्डेटों के शरीर की विशेषताएं क्या-क्या हैं?

....

....

....

....

8. कॉर्डेटों के मौलस्का से निकले होने के समर्थन में क्या-क्या प्रमाण मिलते हैं?

....

....

....

....

9. कॉर्डेटों की पूर्वजता एवं उनके विकास के संबंध में आज की विचारधारा क्या है?

....

....

....

....

1.9 उत्तर

बोध प्रश्न

1. (i) 1. शरीर तीन भागों शीर्ष, कॉलर तथा धड़ में विभाजित
   2. गिल-दरारें होती हैं
   3. पृष्ठ तंत्रिका रज्जु होता है। आप हेमिकॉर्डेटा की अन्य विशिष्टताओं के विषय में भाग 1.2 से लिख सकते हैं।

   (ii) टेरोब्रैंक अपने ही द्वारा स्रावित जिलेटिन नलिका में रहते हैं जबकि एंटेरॉन्यूस्ट बिलों के भीतर रहते हैं। अन्य अंतरों के विषय में आप उपभाग 1.2.1 तथा 1.2.1 में पढ़ सकते हैं।
2. (i) समान विधि
   (ii) बहुसंख्यक गोनड
   (iii) नहीं होते
   (iv) तंत्रिका तंत्र
   (v) इकाइनोडर्म
3. (i) तंत्रिका रज्जु उच्चतर कशेरुकियों में अधरीय तथा कॉर्डेटों में पृष्ठीय होता है।
   (ii) ग्रसनी गिल-दरारें कॉर्डेटों में होती हैं, अकशेरुकियों में नहीं होती
   (iii) हृदय कॉर्डेटों में अधरीय होता है तथा अकशेरुकियों में पृष्ठीय

4. क iv, ख v, ग i, घ ii, च iii, छ vi
5. i) जल के साथ आने वाले आहार कण घरौंदे के भीतर अशन-फिल्टर में फंसा या चिपका लिए जाते हैं। छना हुआ यह आहार तब एक स्ट्रॉ जैसी नली के द्वारा प्राणी के मुख को खींच लिया जाता है। लगभग चार घंटे के बाद जब फ़िल्टर अपशिष्ट से भर जाता है तब प्राणी अपने इस घरौंदे को छोड़ देता है और एक नया घरौंदा बना लेता है।

   ii) क. ट्यूनिक
   ख. ऐसीडिएसिया, लार्वेसिया, थैलिएसिया
   ग. श्लेष्म, एंडोस्टाइल
   घ. *ऐम्फिऑक्सस*
   च. नेफ्रीडिया
   छ. सेक्स, निषेचन
   ज. आंतरकोशिकीय
6. i. घ, ii. क, iii. ख, iv. ग, v. च
7. गार्स्टैंग (1896) के औरिकुलेरिया मत में बताया गया है कि ऐसीडियन टैडपोल किस प्रकार औरिकुलेरिया लार्वा से बना है। इस मत के अनुसार सिलियायित औरिकुलेरिया लार्वा प्रगामी अवस्थाओं में से गुजरते हुए मछली-सरीखे जीव में बदल गया है, जब कि वयस्क प्राणी जो पहले स्थानबद्ध थे उनमें मूल लोफ़ोफ़ोर की जगह गिल-दरारें तथा एंडोस्टाइल बन गए। यह तो आशा की ही जानी चाहिए कि लार्वों को अपने आप को शक्तिशाली संचलनी तंत्र से लैस तो होना ही होगा। साथ ही गार्स्टैंग के मत में यह भी समाविष्ट है कि निश्चित रूप से *ऐम्फिऑक्सस* ही आरम्भिक प्राक्कशेरुकी (प्रोटोवर्टीब्रेट) रहा होगा।

   गार्स्टैंग (1928) के कॉर्डेटों के उद्भव के ऐसीडियन मत के अनुसार सभी पूर्वज कॉर्डेट समुद्रवासी, स्थानबद्ध तथा फ़िल्टर अशनकारी थे। स्वयं ऐसीडियनों का उद्भव स्थानबद्ध हेमिकॉर्डेटों से हुआ रहा होगा। माना जाता है कि कुछ लार्वे कायांतरण में से न गुज़रते हुए लैंगिकत: परिपक्व हो गए तथा ज्वारनदमुखों में प्रविष्ट हो गए। ट्यूनिकेटों का क्लास लार्वेसिया इसी विकास अवस्था में आता है।

अंत में कुछ प्रश्न

1. कॉर्डेटों के चार विभेदक लक्षण इनका होना है- नोटोकॉर्ड, पृष्ठीय नलिकाकार तंत्रिका रज्जु, ग्रसनीय गिल-दरारें, तथा गुदापश्चीय पूंछ।
2. हेमिकॉर्डेटा में इस समूह की सफलता के लिए जिन आधारभूत अनुकूली लक्षणों ने योगदान किया है वे हैं कारगर शुंडिका जो बिल बनाकर उसमें घुसने में सहायक होती है, त्वचा में विद्यमान काइटिनी पदार्थ से मिलने वाली सुरक्षा तथा कॉलोनी में व्यष्टियों की पुनरुद्भवन क्षमता।

   यूरोकॉर्डेटों की सफलता में योगदान देने वाले मुख्य कारकों में आने वाले कारक ये हैं- 1) अशन की कारगर एवं सम्मिश्र प्रकार की सिलियरी विधि, 2) बड़ी छिद्रिल ग्रसनी, तथा 3) सक्रिय स्वच्छंद तैरने वाला टैडपोल लार्वा
3. *ब्रैंकियोस्टोमा* की अशन की सिलियरी विधि सबसे निराली है। मुख्य-कीप के सिलिया, वीलम तथा वीलम-स्पर्शक तथा ग्रसनी अशन में भाग लेते हैं। सिलिया तथा स्पर्शक जलधारा पैदा करते हैं और यह जलधारा मुख-कीप में से होती हुई ग्रसनी में पहुंचती है। ग्रसनी की गिल-दरारें श्वसन में काम में आती हैं। गिल-दरारों के सिलिया जल को गिल-कक्ष के फ़र्श में प्रविष्ट कराते हैं। जल के भीतर के आहार-कण एंडोस्टाइल द्वारा स्रावित श्लेष्म में फंस या चिपक जाते हैं, तथा श्लेष्म में एकत्रित यह आहार तब अंतड़ी को धकेल दिया जाता है ताकि वहां उसका पाचन एवं स्वांगीकरण हो सके।
4. सेफैलोकॉर्डेट अपने परिवेश के लिए बड़े ही उत्कृष्ट ढंग से अनुकूलित होते हैं। कुछ ध्यानाकर्षक अनुकूलन इस प्रकार हैं- 1) सिलियरी अशन विधि जो स्थानबद्ध जीवन के लिए उपयुक्त है, 2) धारारेखित शरीर जिसमें नोटोकॉर्ड का आलम्ब बना होता है तथा फैले हुए फिन, ये दोनों बातें तैरने में सहायक होती हैं; 3) ग्रसनी जो दो कार्य करती है एक तो श्वसन तथा दूसरा अशन; 4) बहुसंख्यक गोनडों का पाया जाना जिससे बहुत संख्या में गैमीट बन सकें।

5. इकाइनोडर्म कॉर्डेटों के निकट होते हैं। चार महत्त्वपूर्ण समानताएं इस प्रकार हैं 1) सीलोम का आंत्रसीलोमी उद्भव; 2) अनिर्धारी विदलन जिसमें ड्यूटेरोस्टोमी परिवर्धन होता है; 3) औरिकुलेरिया तथा टार्नेरिया के बीच समानता, 4) जीवाश्म इकाइनोडर्म जैसे कि कोटेयूरोनोसिस्टिस जिसमें कॉर्डेट लक्षण पाए जाते हैं।
6. और्डोवीशियन (45 करोड़ वर्ष पूर्व) का जीवाश्म इकाइनोडर्म जो साइलोफ़ोरा समूह में आता है, अर्थात् *कोटेयूरोनोसिस्टिस* हाल ही में स्काटलैंड से वर्णित किया गया है। यह एक छोटा असममित प्राणी था जिसमें, शीर्ष एक लम्बी उंगलियों वाले मध्ययुगीन बूट-जूते के जैसा था, शृंखलाबद्ध गिल-दरारें जैसे कि शार्क के गिल-छिद्र होते हैं, गुदापश्चीय पूंछ जिसमें नोटोकार्ड तथा तंत्रिका-रज्जु जैसी संरचनाएं होती हैं। ये सारे लक्षण कॉर्डेटों के साथ एक सतही समानता दर्शाते हैं।
7. वयस्क यूरोकॉर्डेटों की मुख्य विशेषताओं में ये आती हैं- कुछ कॉर्डेट लक्षणों की हानि जैसे कि नोटोकॉर्ड, तंत्रिका रज्जु तथा सीलोम की, तथा एट्रियम एवं साइफन जैसे अकॉर्डेट लक्षणों का कायम बना रहना।
8. जैवरासायनिक, शरीर क्रियात्मक तथा ऊतक विज्ञानीय प्रमाण दिशाएं कॉर्डेटों के मौलस्कन विकास रेखा का समर्थन करती हैं।
9. कॉर्डेट का उद्भव एक अनिर्णीत विषय है। शारीरीय, भ्रूणविज्ञानीय तथा जीवाश्मविज्ञानीय प्रमाण इकाइनोडर्म पूर्वजता का समर्थन करते हैं। मौलस्कन विकास रेखा भी इतनी ही उचित सी जान पड़ती है जो जैवरासायनिक, शरीरक्रियात्मक तथा ऊतक-विज्ञानीय प्रमाणों पर आधारित हैं।

इकाई 2 एग्नैथा, मछलियां तथा ऐम्फ़िबिया

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना
उद्देश्य

2.2 एग्नैथा
सामान्य लक्षण तथा वर्गीकरण
हैगमीन
लैम्प्रे

2.3 पिसीज़
क्लास कॉन्ड्रिक्थीज़
उपक्लास इलास्मोब्रैंकिआइ
उपक्लास होलोकेफ़ेलाई
क्लास ऑस्टिक्थीज़
उपक्लास सारकोप्टेरिजिआई
उपक्लास ऐक्टिनॉप्टेरिजिआई
भारत की कुछ सामान्य अलवणजलीय मछलियां

2.4 ऐम्फ़िबिया
ऐम्फ़िबिया के प्रमुख लक्षण
ऐम्फ़िबिया की सामान्य संघटना
ऑर्डर ऐन्यूरा
ऑर्डर जिम्नोफाइओना
ऑर्डर कॉडेटा

2.5 सारांश

2.6 अंत में कुछ प्रश्न

2.7 उत्तर

2.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने फ़ाइलम कॉर्डेटा से परिचय प्राप्त किया था। आपने इस फ़ाइलम के प्रमुख लक्षणों तथा इसके अंतर्गत आने वाले क्लासों के विषय में सीखा। आपने आदिम कॉर्डेटों यानि प्रोटोकॉर्डेटों के विषय में भी सीखा, ये प्राणी अकशेरुकियों तथा कशेरुकी प्राणियों के बीच की अवस्था दर्शाते हैं। इस इकाई में आप कशेरुकियों अर्थात् वर्टीब्रेटा (Vertebrata) का अध्ययन आरम्भ करेंगे। इकाई 1 के अध्ययन के बाद आप जान चुके हैं कि पिसीज़ (मछलियां), ऐम्फ़िबिया (उभयचर) रेप्टीलिया (सरीसृप), एवीज (पक्षी) तथा मैमेलिया (स्तनी) उपफ़ाइलम वर्टीब्रेटा के पांच मुख्य वर्ग हैं। इन पांच वर्गों में से पहले तीन वर्गों में वे प्राणी आते हैं जो असमतापी (poikilotherms/cold-blodded) होते हैं। असमतापी प्राणियों की देह का तापमान उनके उस परिवेश के तापमान के अनुसार रहता है जिसमें वे रहते हैं और यह तापमान स्थिर नहीं बना रहता है। इसके विपरीत पक्षियों तथा स्तनियों की देह का तापमान स्थिर बना रहता है और उन्हें समतापी (homeotherms/warm-blooded) प्राणियों के वर्ग में रखा जाता है। साथ ही सरीसृपों, पक्षियों तथा स्तनियों को ऐम्नियोटा (Amniota) श्रेणी में रखा जाता है अर्थात् ऐसे प्राणियों में जिनके भ्रूण-जीवन के दौरान एक ऐम्नियॉन (उल्ब) बनता है। मछलियां तथा ऐम्फ़िबिया/उभयचर ऐनेम्नियोट-प्राणी हैं अर्थात् उनमें ऐम्नियान बनता नहीं पाया जाता। इस इकाई में आप तीन विभिन्न वर्गों के प्राणियों के लक्षणों तथा वर्गीकरण के विषय में पढ़ेंगे, ये वर्ग हैं एग्नैथा (Agnatha) अर्थात् जबड़ाविहीन मछलियां, वास्तविक मछलियां और अंततः वे जीव जो जल और स्थल दोनों पर रहते हैं अर्थात् उभयचर प्राणी।

एम्नियान अर्थात् उल्व भ्रूण बाह्य झिल्लियों की सबसे अंदर वाली झिल्ली होती है जो भ्रूण के चारों तरफ एक द्रव से भरा थैला बनाती है।

मछलियाँ निरपवाद जलीय होती हैं और जलीय पर्यावरण के लिए वे पूर्ण प्रवीण हो चुकी हैं। मछलियाँ विभिन्न प्रकार के आकारों की होती हैं। अपने विभिन्न आकारीय अनुकूलनों के कारण वे जलीय पर्यावरण में अनेकों निकेत यहाँ तक कि सागर में वितलीय क्षेत्रों में भी पाई जाती हैं। मछलियों की अभी तक लगभग 21,400 स्पीशीज़ का वर्णन किया जा चुका है। दूसरी ओर ऐम्फ़िबिया स्थल पर रहने लग गए हैं मगर उन्होंने अपना पूर्वज आवास पूरी तरह भुला नहीं दिया है। जल से स्थल की ओर के आवास परिवर्तन में एक धीमी क्रमविकासीय प्रक्रिया रही है जो दस लाख से अधिक वर्षों के दौरान चलती रही। इस प्रक्रिया ने कशेरुकी देह-याजेना में ऐसे परिवर्तन पैदा किए जिनसे ये प्राणी स्थल पर रहने योग्य बन गए। अभी तक उभयचरों की लगभग 3900 स्पीशीज़ का वर्णन किया जा चुका है।

इस इकाई में मछलियों तथा उभयचरों की जैविकी के विविध पहलुओं एवं वर्गीकरण का वर्णन तो किया ही जाएगा, उसके अलावा आप एक अन्य वर्ग के प्राणियों का भी अध्ययन करेंगे जो मछलियों के पूर्वज हैं और जिन्हें सामान्यत: जबड़ाविहीन मछलियां कहते हैं। जबड़ाविहीन मछलियों को आदितम कशेरुकी कहा जा सकता है मगर अन्य कशेरुकियों में ये मुख्यत: जबड़ों के न होने के लक्षण में ही भिन्न हैं। हम इस इकाई का आरम्भ जबड़ाविहीन मछलियों से करेंगे और फिर उसके बाद मछलियों तथा उभयचरों का अध्ययन करेंगे।

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप:

- एग्नैथा के मुख्य लक्षणों एवं इस वर्ग की बंधुताओं (affinities) की सूची बना सकेंगे,
- उपास्थियुक्त तथा अस्थिल मछलियों के लक्षणों का वर्णन कर सकेंगे एवं इन दोनों वर्गों की मछलियों के बीच अंतर बता सकेंगे,
- उपास्थियुक्त तथा अस्थिल मछलियों को उनके विशिष्ट उपक्लासों में वर्गीकृत कर सकेंगे,
- ऐम्फ़िबियनों के जल से स्थल की ओर संक्रांति के कारणों एवं उसकी विधि का विवेचन कर सकेंगे,
- ऐम्फ़िबिया के लक्षणों की सूची बना सकेंगे और साथ ही साथ इसके तीनो ऑर्डरों के लक्षण भी बता सकेंगे,
- मछलियों तथा ऐम्फ़िबियनों के उनके अपने-अपने आवास के संदर्भ में अनुकूलनों का विवेचन कर सकेंगे।

2.2 एग्नैथा

अधिक्लास एग्नैथा में जबड़ा विहीन मछलियों के दो वर्ग आते हैं, एक तो हैगमीन (hagfishes) और दूसरे लैम्प्रे (Lamprey) (चित्र 2.1) जिनकी कुल मिलाकर 60 स्पीशीज़ हैं। एग्नैथा तथा अन्य मछलियों में दो मुख्य अंतर हैं एक तो जबड़ों का और दूसरे युग्मित फ़िनों का न होना। इनमें आंतरिक अस्थिभवन (ossification) का तथा शल्कों का भी अभाव होता है। इनके अतिरिक्त जबड़ा विहीन मछलियों में ईल-जैसा शरीर तथा छिद्र जैसे गिल-छिद्र होते हैं (चित्र 2.1) और ये दोनों ही बातें मछलियों से भिन्न हैं। एग्नैथनों को **साइक्लोस्टोम (cyclostomes)** अर्थात् गोल मुंह वाली मछलियां भी कहते हैं।

2.2.1 सामान्य लक्षण तथा वर्गीकरण

हैगमीन तथा लैम्प्रे दोनों ही का शरीर लम्बा और गोलाई लिए सामान्य तौर पर ईल के शरीर के समान होता है। शल्क नहीं होते और त्वचा में श्लेष्मा-ग्रंथियों के होने के कारण वह नर्म होती हैं (चित्र 2.2)। एग्नैथा की विशेषता है कि इनमें युग्मित उपांग नहीं होते। परंतु इनमें मध्य फ़िन निश्चय ही होते हैं जिनके भीतर कार्टिलेजी (उपास्थियुक्त) फिन-अरें (fin rays) आलम्ब प्रदान करती होती हैं। कंकाल अस्थिभूत नहीं होता वरन यह रेशेदार एवं उपास्थियुक्त होता है। लैम्प्रे में एक चूषक-जैसी मुख डिस्क होती है जिसमें सुविकसित दांत बने होते हैं। पाचन तंत्र में जठर नहीं होता। लैम्प्रे की आंत्र में एक पक्ष्माभ युक्त सर्पिल वलन होता है। हैगमीन में वलन तो होता है मगर पक्ष्माभ नहीं होते। इनमें दो-कक्षीय हृदय होता है जिसमें एक आलिंद (auricle) तथा एक निलय (ventricle) होता है। गिलों में रक्त की आपूर्ति हृदय से निकलने वाली महाधमनी चापों (aortic arches) द्वारा होती है। रक्त में रक्ताणु (erythrocytes) तथा श्वेताणु (leukocytes) होते हैं। गिलों की संख्या हैगमीन तथा लैम्प्रों में अलग-अलग होती है। लैम्प्रे में गिलों की संख्या सात जोड़ी तथा हैगमीन में पांच से सोलह जोड़ी तक होती है। हैगमीन में वृक्क दो प्रकार के होते हैं, एक तो अग्रत: स्थित प्रोनेफ़िक (pronephric) वृक्क और

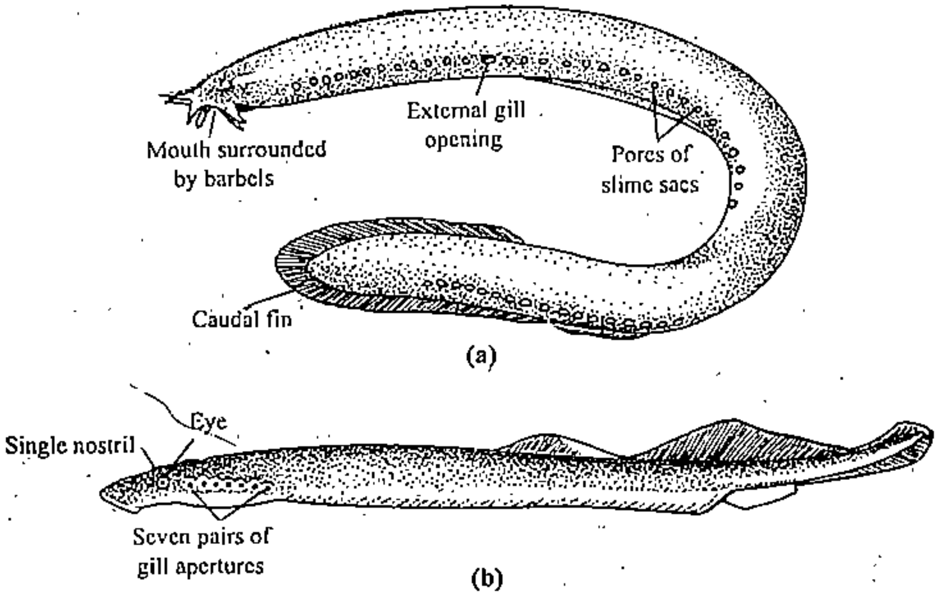

चित्र 2.1: (a) हैगमीन (b) लैम्प्रे

दूसरे पश्चत: स्थित मीज़ोनेफ्रिक (mesonephric) वृक्क। लैम्प्रे तथा हैगमीन दोनों ही में एक विभेदित मस्तिष्क एवं एक पृष्ठ तंत्रिका रज्जु होता है। आठ से दस जोड़ी कपाल तंत्रिकाएं होती हैं। सूंघने, चखने तथा सुनने से संबंधित संवेदी अंग पाए जाते हैं। लैम्प्रे में आंखें साधारण विकसित होती हैं तथा हैगमीन में अपविकसित होती हैं। आंतरिक कर्ण में हैगमीन में एक जोड़ी अर्धवृत्ताकार नलिकाएँ (semicircular canals) तथा लैम्प्रे में दो जोड़ी अर्धवृत्ताकार नलिकाएँ होती हैं। एग्नैथा में नर-मादा अलग-अलग होते हैं। गोनड अयुग्मित होते हैं तथा जननवाहिनियां नहीं होती। निषेचन बाह्य होता है। परिवर्धन में हैगमीन में कोई लार्वावस्था नहीं होती मगर लैम्प्रे में ऐमोसीट (**ammocoete**) लार्वा होता है।

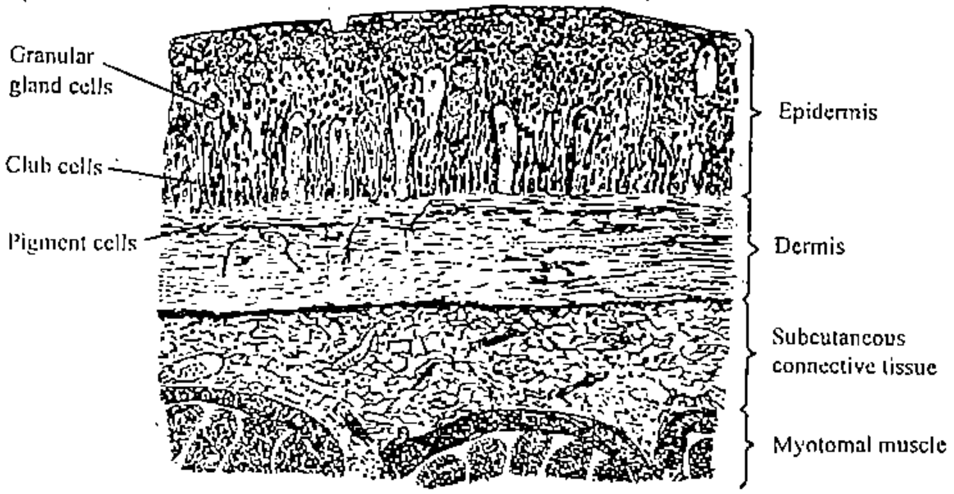

चित्र 2.2: लैम्प्रे की त्वचा का सेक्शन

हैगमीन तथा लैम्प्रे दोनों ही अधिक्लास एग्नैथा (साइक्लोस्टोमैटा) के अंतर्गत आती हैं। अधिक्लास एग्नैथा के अंतर्गत आने वाले केवल यही जीवित प्राणी हैं शेष सभी प्राणी विलुप्त हो चुके हैं। अब आप हैगमीन तथा लैम्प्रे का अलग-अलग संक्षेप में अध्ययन करेंगे।

2.2.2 हैगमीन

हैगमीन क्लास मिक्सिनी (Myxini) में आती हैं। हैगमीन की अभी तक वर्णन की जा चुकी 40 से अधिक स्पीशीज़ हैं जिनमें से अधिकांश अटलांटिक तथा पैसिफिक महासागरों में रहते हैं। इनकी कुछ सामान्य जीनस हैं - डेलोस्टोमा (*Bdellostoma*), मिक्साइन (*Myxine*) तथा एप्टैट्रटस (*Eptatretus*) हैगमीन केवल समुद्र में ही पायी जाती हैं और इन्हें समुद्र के अपमार्जक

(seavengers) माना जा सकता है। ये मृत अथवा मरणशील मछलियों, मौलस्कों, क्रस्टेशियनों तथा ऐनेलिडों का आहार करती हैं। हैगमीन सामान्यत: कीचड़ तथा रेत में गड़ी रहती जीवन बिताती हैं। मुख को घेरते हुए बहुत से स्पर्शक (tentacles), दांत तथा चूषण-उपकरण सुविकसित बने हुए होते हैं। गिल रूपांतरित होकर कोष्ठ बन गए हैं और इनकी संख्या 6 तथा 14 के बीच अलग-अलग होती हैं। ये कोष्ठ छोटी नलिकाओं के द्वारा ग्रसनी में तथा साथ ही साथ बाहर को भी खुले होते हैं। जीनस *मिक्साइन* में सभी नलिकाएं एक साथ जुड़कर प्रत्येक पार्श्व पर एकल छिद्र द्वारा बाहर को खुलती हैं (चित्र 2.3)। जल नासाद्वार में होकर भीतर पहुंचता है तथा एक पेशीय वाल्व जल को गिल कक्ष के भीतर को पम्प करता है और फिर वह पीछे से बाहर निकल जाता है। त्वचा भी गैस-विनिमय के अंग के रूप में कार्य करती हैं।

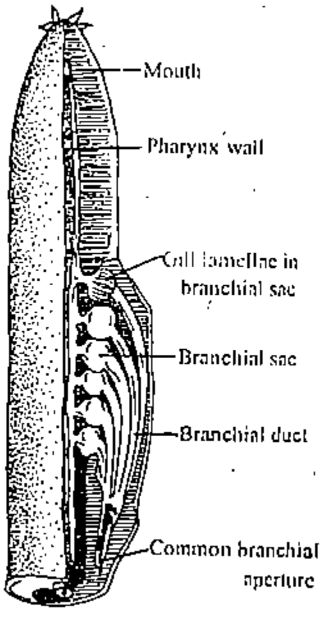

चित्र 2.3: *मिक्साइन* में गिलों की व्यवस्था

परिसंचरण तंत्र खुले प्रकार का होता है तथा इसमें बड़े-बड़े कोटर (sinus) एवं सहायक हृदय होते हैं। रक्त समुद्री जल के समपरासारी (isoosmotic) होता है। पित्त वाहिनी को घेरती हुई इंसुलिन-स्रावी B-कोशिकाएं होती हैं जो कशेरुकियों की ऐसी ही कोशिकाओं से मिलती जुलती होती हैं। पिट्यूटरी (पियूष ग्रन्थि) एक आदिम अंग जैसा प्रकट होता है जिसमें "पार्स इंटरमीडिया" (pars intermedia, मध्यांश) तथा "पार्स डिस्टेलिस" (pars distalis, दूरस्थांश) में विभेद नहीं होता है। पिट्यूटरी से थाइरोट्रोपिक (thyrotropic) अथवा गोनैडोट्रोपिक (gonadotropic) जैसे कोई ट्रोपिक (प्रेरक) हॉर्मोन निकलते नहीं जान पड़ते। अग्र पिट्यूटरी की बेसोफ़िल (क्षारकरंजी), एसिडोफ़िल (अम्लरंजी) तथा रंजकरंजी (chromophil) कोशिकाओं से ACTH तथा LTH जैसे हॉर्मोन निकलते हैं (इन हॉर्मोनों के वृत्तांत के लिए इकाई-10, ब्लाक-2 LSE-5 पाठ्यक्रम को देखिए)

हैगमीन के शरीर पर श्लेष्मा ग्रंथिया होती हैं जिनमें से एक चिपचिपा श्लेष्मल बहुत मात्रा में निकलता है। श्लेष्मल से प्राणी को सुरक्षा मिलती है और यह अशन में भी उपयोगी होती है। कुछ हैगमीन में कुछ व्यष्टियों में गोनड (जनन-ग्रंथि) के एक सिरे पर तो अण्डे होते हैं तथा दूसरा सिरा वृषण-जैसा दिखायी पड़ता है इसलिए इन हैगमीनो को उभयलिंगी (hermaphrodite) माना जाता था। क्योंकि वृषण में परिपक्व शुक्राणु नहीं पाए जाते हैं इसलिए इसे कार्यशील वृषण नहीं माना जाता है। कशेरुकियों में परिवर्धन के दौरान गोनड एक उभयलिंगी अवस्था में से गुज़रते हैं। हैगमीन के गोनड एक ऐसी अवस्था के प्रतिदर्श हैं जिसमें मध्यवर्ती अवस्था अब भी विद्यमान है।

2.2.3 लैम्प्रे

लैम्प्रे क्लास सेफेलैस्पिडोमॉर्फी में आते है। पेट्रोमाइज़ोन (*Petromyzon*) इसका जाना माना जीनस है। जिसका संदर्भ अश्म-चूषण से है (Petros: अश्म/पत्थर; myzon: चूषण) और ये प्राणी अपने मुंह को किसी पत्थर पर कसकर चिपका लिया करते हैं ताकि स्थिर रह सकें और जल धाराओं के द्वारा बह न जाएं। ये उत्तरी तथा दक्षिणी दोनों गोलार्धो में शीतोष्ण जल में रहते हैं। इनकी लम्बाई 1 मीटर तक की हो जाती है। ये लैम्प्रे समुद्री प्राणी हैं। साथ ही ये ऐनाड्रोमस (anadromous) यानि उपरिगामी हैं अर्थात् अंडे देने के लिए ये समुद्र से चलकर ऊपर नदियों तथा जलधाराओं के अलवण जल में प्रवास कर जाती हैं। इनकी कुछ सामान्य जीनस हैं पेट्रोमाइज़ॉन (*Petromyzon*), लैम्पेट्रा (*Lampetra*) तथा इक्थियोमाइज़ॉन (*Iethyomyzon*)। कुछ लैम्प्रे अन्य मछलियों पर परजीवी होती हैं। अण्डे से निकलने वाला ऐमोसीट लार्वा अलवणजलीय तथा बिलकारी होता है। यह लार्वा असाधारण रूप में लम्बे समय 3 से 7 वर्ष तक, रेत में बिल बनाकर रहता है इसीलिए इसे "सैंड-स्लीपर" (अर्थात् बालू-शयनकर्त्ता) की संज्ञा दी गयी है। इस अवधि के दौरान यह लार्वा या तो सूक्ष्मजीवों पर आहार करता है या फिर कुछ उदाहरणों में मछलियों के ऊपर परजीवी होता है। परजीवी लैम्प्रे अलवण-जलीय तथा लवणजलीय दोनों प्रकार की होती हैं और सामान्यत: मछलियों पर ही परजीवी होती हैं।

लैम्प्रे की देह-भित्ति में एक एपिडर्मिस, एक डर्मिस तथा एक पुंज कोलेजेन इलास्टिन रेशों का बना होता है जो एक वृत्त के रूप में व्यवस्थित होते हैं। डर्मिस में वर्णक कोशिकाएं अथवा वर्णकधर (chromatophores) होते हैं जिनसे त्वचा को रंग प्राप्त हो जाता है। लैम्प्रे के शीर्ष पर एक जोड़ी आंखें तथा एक सुव्यक्त गोल चूषक होता है। एक अयुग्मित नासाछिद्र होता है। शरीर पर सात जोड़ी गोल गिल-छिद्र होते हैं। युग्मित फिन नहीं होते परंतु पूंछ में एक मध्यस्थ फ़िन होता है जो आगे की ओर पृष्ठ फिन के रूप में फैला हुआ होता है।

लैम्प्रे के चूषक में बहुसंख्यक दांत होते हैं। ये दांतशृंगीय एपिडर्मिसी स्थूलन होते हैं जिनके भीतर कार्टिलेजी गद्दियों का आलम्ब बना होता है। छोटे आकार का मुख भीतर एक बड़ी मुख-गुहा में खुलता है। मुख-गुहा पीछे की ओर दो मार्गों में विभाजित हो जाती है, एक तो पृष्ठ-ग्रसिका और दूसरी अधर श्वसन नलिका। श्वसन नलिका गिल-कोष्ठों में खुलती है और पीछे से बंद होती है। जब प्राणी आहार कर रहा होता है तब श्वसन नलिका के छिद्र पर बने वीलम-स्पर्शक **(velar tentacles)** ग्रसिका तथा श्वसन नलिका को पृथक किए रहते हैं। युग्मित लार-ग्रंथियों के स्राव लैम्प्रे द्वारा आहार किए जा रहे रक्त में स्कंदन (coagulation) होने से रोके रखते हैं। एक बार जब लैम्प्रे किसी मछली के शरीर पर चिपक जाती है तब वह कई-कई दिन तक इसी प्रकार चिपकी रहती है और इस दौरान वह मछली मर भी जाती है। क्योंकि जठर नहीं होता इसलिए ग्रसिका सीधे ही अंतड़ी में खुलती है। यकृत, पित्ताशय तथा पित्त वाहिनी उसी तरह होती है जैसे अन्य कशेरुकियों में, मगर अग्न्याशय (पैंक्रियाज़) नहीं होता। हृदय S-आकृति का होता है तथा इसमें तीन कक्ष होते हैं। निलय से निकलने के बाद रक्त अधर महाधमनी (ventral aorta) में पहुंचता है जिसमें से 8 अभिवाही गिल चापें (afferent branchial arches) निकलती हैं। अपवाही धमनियों (efferent arteries) द्वारा एकत्रित किया गया रक्त युग्मित पृष्ठ महाधमनियों में प्रवाहित होता है जो परस्पर जुड़कर एक मुख्य पृष्ठ महाधमनी बना लेती हैं। पृष्ठ महाधमनी से शृंखलाबद्ध खंडीय धमनियां (segmental arteries) निकलती हैं जिनसे शरीर के विभिन्न भागों को रक्त सप्लाई होता है।

रक्त को एकत्रित करने का कार्य अग्र तथा पश्च मुख्य कार्डिनल शिराएं (cardinal veins) करती हैं और इस रक्त को वे हृदय में पहुंचा देती हैं। एक यकृत निवाहिका शिरा (hepatic portal vein) आहार नाल से रक्त को एकत्रित करती है। श्वसन वर्णक रक्त कोशिकाओं में पाया जाने वाला हीमोग्लोबिन होता है, ये रक्त कोशिकाएं गोल तथा केंद्रकयुक्त होती हैं।

लैम्प्रे का मस्तिष्क छोटा होता है तथा कशेरुकी देह-योजना के ही अनुसार गठित हुआ होता है (चित्र 2.4)। इसमें एक अग्रमस्तिष्क, एक मध्यमस्तिष्क तथा एक पश्चमस्तिष्क होता है (कशेरुकियों के तंत्रिका-तंत्र के विस्तृत अध्ययन के लिए इसी पाठ्यक्रम के खण्ड 3 की इकाई 10 को देखिए)। संवेदी अंगों में एक जोड़ी आंखें तथा **पार्श्व-रेखाग्राही (lateral line receptors)** पाए जाते हैं। ये पार्श्व-रेखाग्राही शीर्ष तथा धड़ पर विशिष्ट रेखाओं पर पाए जाते हैं (इन ग्राहियों के विषय में इसी पाठ्यक्रम के खण्ड 3 की इकाई 10 देखिए)। ये ग्राही मछली के सापेक्ष जल की गति को पहचान पाने में सहायक होते हैं। **लैबिरिंथ (labyrinth)** नाम का एक और विशेष संवेदी अंग होता है, यह लैबिरिंथ पार्श्व-रेखा तंत्र का एक विशेषित भाग होता है। लैबिरिंथ जल में कम्पनों के प्रति अनुक्रिया करता है तथा शीर्ष की स्थिति एवं उसकी कोणीय गति को रिकार्ड करता है। सामान्य एक जोड़ी आंखों के अतिरिक्त लैम्प्रे में एक सुविकसित तीसरा नेत्र अथवा पिनियल अंग (pineal organ) भी होता है। माना जाता है कि प्राणियों के रंगों में पायी जाने वाली दैनिक लय ताल (daily rhythm) अर्थात् दिन के समय गहरा रंग और रात के समय हल्का रंग होना, इस सबका नियमन इसी पिनियल अंग के द्वारा होता है। पिनियल द्वारा जनन तथा प्राणी का कायांतरण भी प्रभावित होता जान पड़ता है।

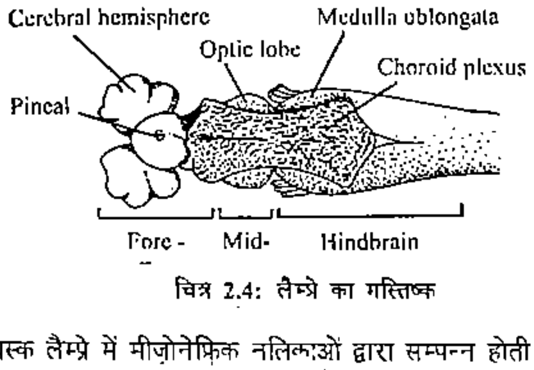

चित्र 2.4: लैम्प्रे का मस्तिष्क

उत्सर्जन की क्रिया व्यस्क लैम्प्रे में मीज़ोनेफ्रिक नलिकाओं द्वारा सम्पन्न होती है। प्रोनेफ्रिक नलिकाओं की भूमिका परासरणनियमन प्रकार्य में होती, वे लवणों का पुन:अवशोषण कर लेती हैं। लैम्प्रे में नर-मादा अलग-अलग होते हैं। परिपक्व अंडाशय में अंडाणु होते हैं और प्रत्येक अंडाणु को घेरती हुई एक पुटक उपकला (follicular epithelium) होती है। अण्डाणु का सीलोम में विमोचन होता है। शुक्राणु वृषण-पुटक में बनते हैं और ये भी सीलोम में ही विमोचित होते हैं। नर और मादा दोनों में सीलोम में से छोटी नलिकाएं निकलती हैं और वे पश्च सिरे पर मीज़ोनेफ्रिक वाहिनी में खुलती हैं। गैमीट (युग्मक)

मीज़ोनेफ्रिक वाहिनी में से होते हुए बाहर जल में पहुंच जाते हैं। निषेचन बाह्य होता है। अवस्कर में ऐसा रूपांतरण हुआ होता है जिससे निषेचन तथा अंडों को कहीं ठीक से जमा देना सुनिश्चित हो जाता है।

अंडे देने (स्पॉनिंग, spawning) के लिए लैम्प्रे हज़ारों-हज़ारों किलोमीटर की प्रवास यात्रा करके अलवण जलों में पहुंचती हैं (ऐनाड्रोमस अर्थात् उपरिगामी प्रवास)। अंडे दिए जाने से पूर्व एक घोंसला बनाया जाता है। घोंसला ऐसे उथले जल में बनाया जाता है जिसकी तली पथरीली और साथ ही साथ रेतीली भी हों। ये प्राणी पत्थरों को अपने मुंह से पकड़-पकड़ कर लाते और एक छोटा गढ़े का रूप दे देते हैं, तदुपरांत संगम एवं बाह्य निषेचन के बाद अण्डों को इस गढ़े में दे दिया जाता है। अण्डे में से ऐमोसीट लार्वा निकलता है। यह लार्वा, जो *ऐम्फिऑक्सस* से मिलता-जुलता होता है, घोंसले से बाहर आता और किसी रेतीले एवं निम्न जलधारा क्षेत्र में बिल बनाकर उसमें लगभग 3 से 7 वर्ष तक जीवन बिताता है और इतने समय के बाद ही उसमें कायांतरण (metamorphosis) होता है। लैम्प्रे का जीवन-चक्र चित्र 2.5 में दर्शाया गया है। अब मछलियों का अध्ययन करने से पूर्व नीचे दिए गए बोध प्रश्न का उत्तर दीजिए:

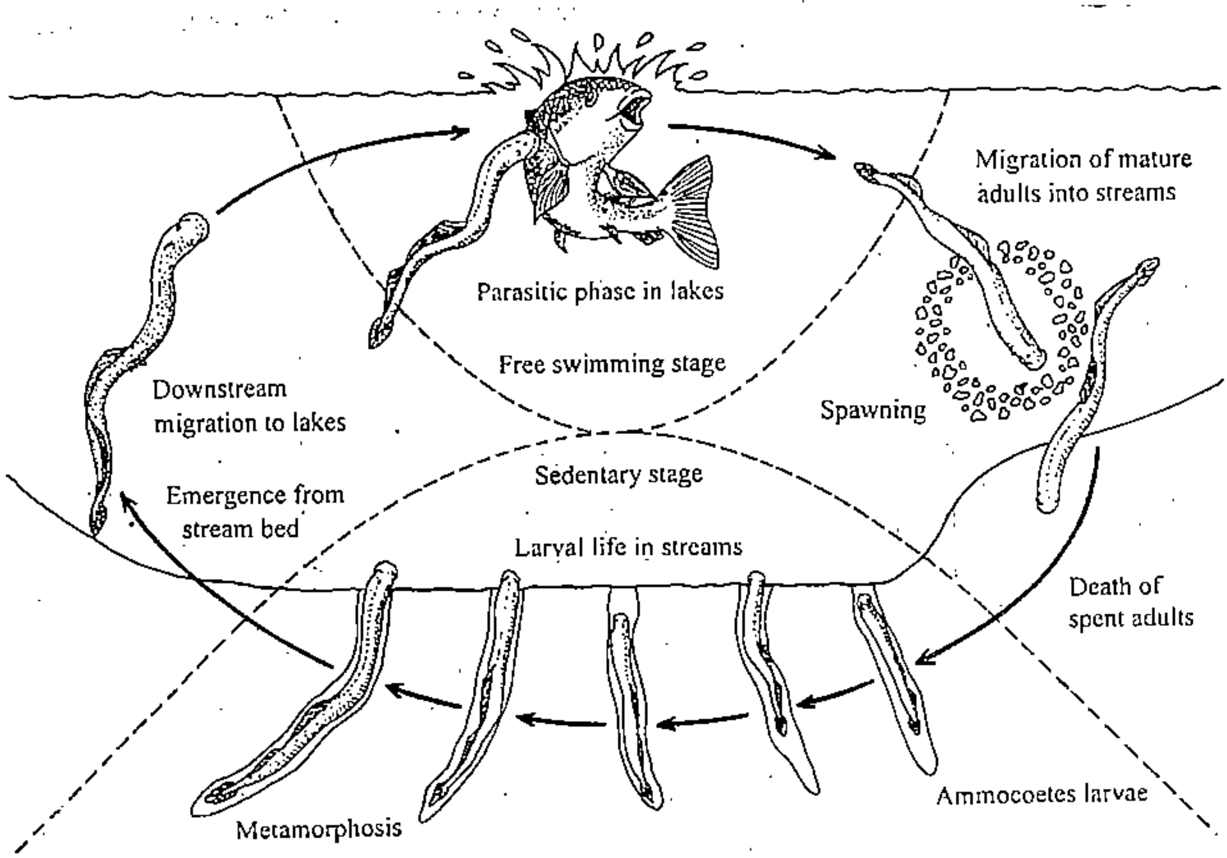

चित्र 2.5: लैम्प्रे का जीवनचक्र

बोध प्रश्न 1

I. बताइए कि निम्न कथन सही हैं या गलत:-

1. लैम्प्रे तथा हैगमीन में श्लेष्मा-ग्रंथियों से युक्त चिकनी त्वचा होती है।
2. युग्मित उपांगों का पाया जाना एग्नैथा का विशिष्ट लक्षण है।
3. जबड़ाविहीन मछलियों में हृदय की तीन-कक्षीय संरचना होती है।
4. हैगमीन के परिवर्धन में एक लार्वावस्था ऐमोसीटी होती है।
5. हैगमीन आवास की दृष्टि से पूर्णतः समुद्री होती हैं।
6. सभी हैगमीन उभयलिंगी होती हैं।
7. प्रजनन के लिए लैम्प्रे समुद्री पर्यावरण से अलवणजलीय जलागारों में पहुंच जाती हैं।
8. लैम्प्रे के पिनियल अंग का संबंध इन प्राणियों के रंग-परिवर्तन के दैनिक लय-ताल के नियमन से है।
9. लैम्प्रे में गैमीटों का विमोचन मीज़ोनेफ्रिक वाहिनी के माध्यम से होता है।
10. ऐमोसीट लार्वा 3 से 7 महीनों में कायांतरण द्वारा वयस्क बनते हैं।

2.3 पिसीज़

अधिक्लास पिसीज़ नैथोस्टोमैटा (Gnathostomata) वर्ग के अंतर्गत आते हैं अर्थात् ऐसे प्राणियों के अंतर्गत जिनमें काटने वाले जबड़े बने होते हैं। उभयचर सरीसृप, पक्षी तथा स्तनी प्राणी, ये सभी नैथोस्टोम हैं। जबड़ों से युक्त सजीव मछलियां दो क्लासों में आती हैं - एक तो कार्टिलेजी मछलियां जैसे कि शार्क और रे-मछलियां और दूसरे अस्थिल मछलियां जिनमें सामान्य अर-युक्त फिनों वाली (ray finned) मछलियां तथा फुफ्फुस मीन आती हैं। मछलियों के दो वर्ग विलुप्त हो चुके हैं। इनमें से एक वर्ग है उपक्लास एकैंथोडिआई (Acanthodii) जिनमें शूल (spines) अर्थात् लंबे कांटे बने होते हैं और जिनका संबंध अस्थित मछलियों के पूर्वज से था। दूसरा वर्ग है उपक्लास प्लैकोडर्माई (Placodermi) जिसमें हालांकि हड्डियां होती है मगर जिनका नाता कार्टिलेजी मछलियों सें माना जाता है। हम केवल विद्यमान (जीवित) मछलियों का ही विस्तृत अध्ययन करेंगे। कॉन्ड्रिक्थीज (Chondrichthyes) अर्थात् कार्टिलेजी मछलियों का अध्ययन करने से पूर्व आइए मछलियों के संक्षिप्त वर्गीकरण से परिचय प्राप्त कर लें।

अधिक्लास पिसीज़ (Pisces)

क्लास 1: प्लैकोडर्माई (Placodermi) - विलुप्त उदाहरण

क्लास 2: कॉन्ड्रिक्थीज़ (Chondrichthyes) कार्टिलेजी मछलियां, जिनमें शार्क और रे-मछलियां आती हैं।

- उपक्लास 1: इलास्मोब्रैंकिआइ (Elasmobranchii) शार्क तथा रे-मछलियां
- उपक्लास 2: होलोकेफ़ेलाइ (Holocephali) मूषक मछलियां, शशक मछलियां, तथा गज मछलियां

क्लास 3: ऑस्टिक्थीज़ (Osteichthyes) अस्थिल मछलियां

- उपक्लास 1: एकैन्थोडिआई (Acanthodii) जीवाश्म उदाहरण
- उपक्लास 2: ऐक्टिनॉप्टेरिजिआइ (Actinopteoygii) अर-युक्त फिनों वाली मछलियां
- उपक्लास 3: सार्कोप्टेरिजिआइ (Sarcopterygii) फुफ्फुस मीन

चित्र 2.7: हेटेरोसर्कल पूंछ जिसमें उपर वाला लोब नीचे वाले लोब से बड़ा होता है तथा कशेरुक दण्ड का अंतिम सिरा ऊपरी लोब में मुड़ा हुआ होता है।

2.3.1 क्लास कॉन्ड्रिक्थीज़ - कार्टिलेजी मछलियां

क्लास कॉन्ड्रिक्थीज में जीवित मछलियाँ आती हैं, जिनमें एक तो इलास्मोब्रैंक हैं यानि शार्क एवं रे-मछलियां और दूसरे होलोकेफैलियन हैं यानि "गज मछलियां", तथा "शशक मछलिया"। इलास्मोब्रैंक मछलियां समुद्र के लगभग सभी क्षेत्रों में पायी जाती हैं। इन सबमें साइज़ का बहुत अंतर पाया जाता है- एक ओर तो छोटी शार्क हैं जिनका साइज़ 30 से.मी. है और डॉगफिशें है जिनका साइज 30-60 से.मी. (चित्र 2.6) तक होता है और दूसरी ओर दैत्य-सरीखी 17 मीटर तक की लम्बी शार्क भी होती हैं। अधिसंख्य इलास्मोब्रैंक मछलियाँ मांसाहारी अथवा अपमार्जक (scavangers) होती हैं। स्केट तथा रे-मछलियां अधिकतर समुद्र की तल तक सीमित होती हैं और मुख्यत: अकशेरुकियों का आहार करती हैं। इनमें एक हेटेरोसर्कल (heterocercal) यानि विषमपालिक पूंछ होती है (चित्र 2.7; हाशिया-टिप्पणी देखिए)। शार्कों में शरीर तर्कुरूपी (fusiform) होता है। इनमें मध्यक पृष्ठ फिन (median dorsalfin) तथा युग्मित अंसफिन (pectoral fins) और श्रोणि-फिन (pelvic fins) होते हैं। नर शार्क में श्रोणि-फिनों में रूपांतरण होकर आलिंगक (claspers) बन जाते हैं।

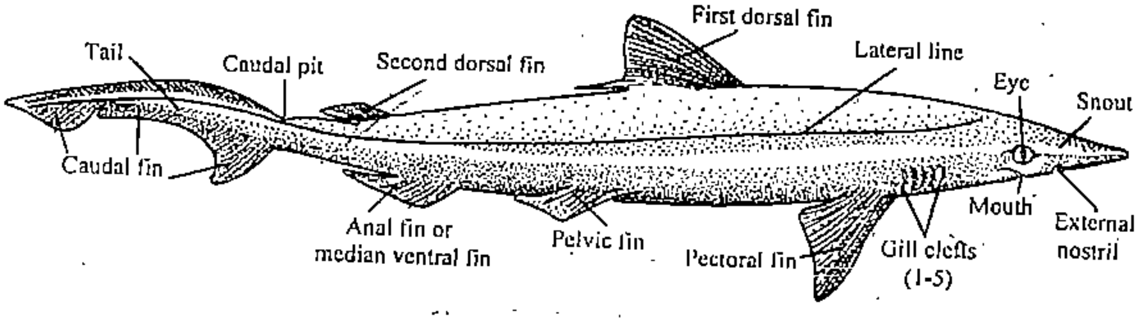

चित्र 2.6: डॉगफिश स्कोलियोडॉन

इलास्मोब्रैंकों में मुख अधर होता है जो जबड़ों द्वारा सुरक्षित रहता है। खाल के भीतर प्लैकॉइड शल्क (placoid scales) गड़े होते हैं (चित्र 2.8) तथा खाल में श्लेष्मा-ग्रंथियां होती है। प्राणी का पूरा कंकाल कार्टिलेज का ही बना होता है। एक नोटोकॉर्ड (notochord) होता है तथा एक कशेरुक दण्ड (vertebral column) होता है जिसमें सम्पूर्ण और पृथक-पृथक् कशेरुकें (vertebrae) होती हैं।

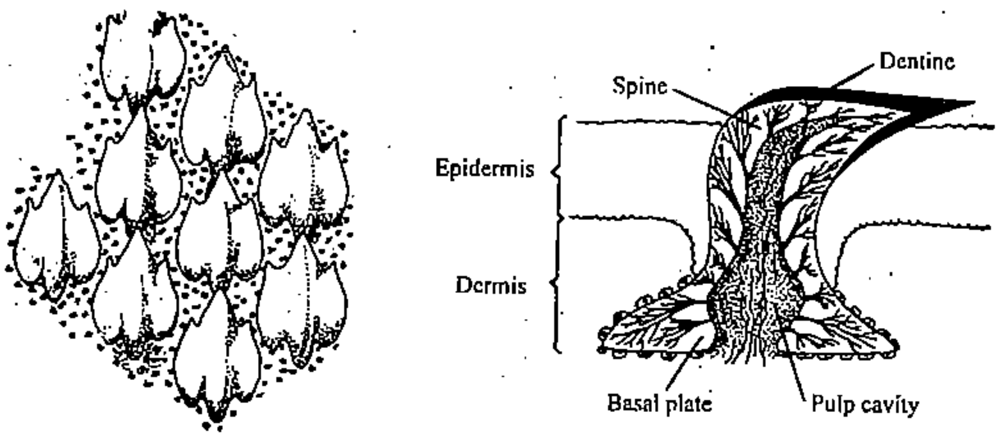

चित्र 2.8: प्लैकॉइड शल्क

उपांगीय कंकाल (appendicular skeleton) में अंस तथा श्रेणि दोनों मेखलाएं भी मौजूद होती हैं। ऊपरी तथा निचले जबड़ों का अस्तर बनाते हुए दांत रूपांतरित प्लैकॉइड शल्क होते हैं। मुंह पीछे ग्रसिका में खुलता है जिसके पीछे J-आकृति का जठर (चित्र 2.9) तथा सीधी आंत्र आती है। मलाशय से जुड़ी हुई एक संरचना मलाशय-ग्रंथि (rectal gland) होती है (चित्र 2.9) जिसका कार्य परासरणनियमन करना है। हृदय के कक्ष शिरा कोटर (sinus venosus) अलिंद तथा निलय एक-के-पीछे-एक व्यवस्थित होते हैं। मछलियों के परिसंचरण-तंत्र के विस्तृत अध्ययन के लिए इसी पाठ्यक्रम के खण्ड 2 की इकाई 8 देखिए।

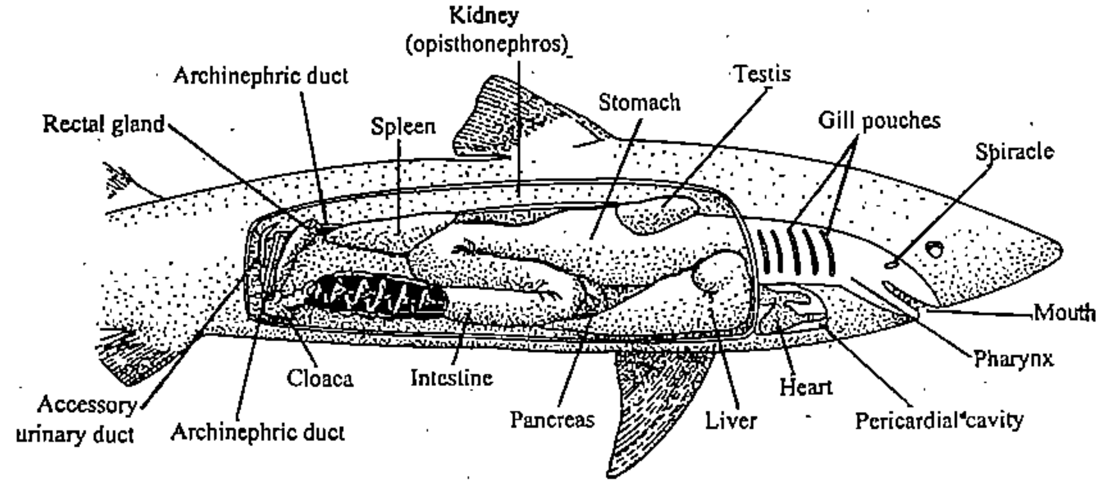

चित्र 2.9: नर शार्क के अंतरंग

दो लम्बे, पतले मीज़ोनेफ्रिक वृक्क सीलोम के ऊपर स्थित होते हैं (चित्र 2.10)। ये वोल्फी वाहिनियों **(Wolffian ducts)** में घुलते हैं और स्वयं ये वाहिनियां एक एकल मूत्रजनन कोटर (urinogenital sinus) में अवस्कर पर खुलती हैं। मस्तिष्क में तीन स्पष्ट विभाजन बने होते हैं - अग्रमस्तिष्क, मध्यमस्तिष्क तथा पश्चमस्तिष्क, तथा इनमें, और आगे विभाजन होकर पांच क्षेत्र बन जाते हैं - टेलेन्सेफेलान (telencephalon), डायनसेफेलॉन (diencephalon), मीज़ेन्सेफेलॉन (mesencephalon), मेटेन्सेफेलॉन (metecephalon) तथा माइलेन्सेफेलॉन (mylencephalon)। दस जोड़ी कपाल तंत्रिकाएं (cranial nerves) होती हैं और प्रत्येक देह-खंड में जाने वाली एक-एक जोड़ी मेरु तंत्रिकाएं (spinal nerves) होती है (चित्र 2.10)। परासरणनियमन की प्रक्रिया रक्त में नाइट्रोजनी अपशिष्टों यूरिया तथा ट्राइमेथिलऐमीन आक्साइड को रोके रख कर पूरी होती है। ये विलेय और साथ में रक्त में पहले से ही विद्यमान लवण रक्त विलेय सांद्रण (blood solute concentration) को बढ़ा देते हैं जिससे रक्त नयूनाधिक रूप में समुद्री जल के समपरासारी हो जाता है।

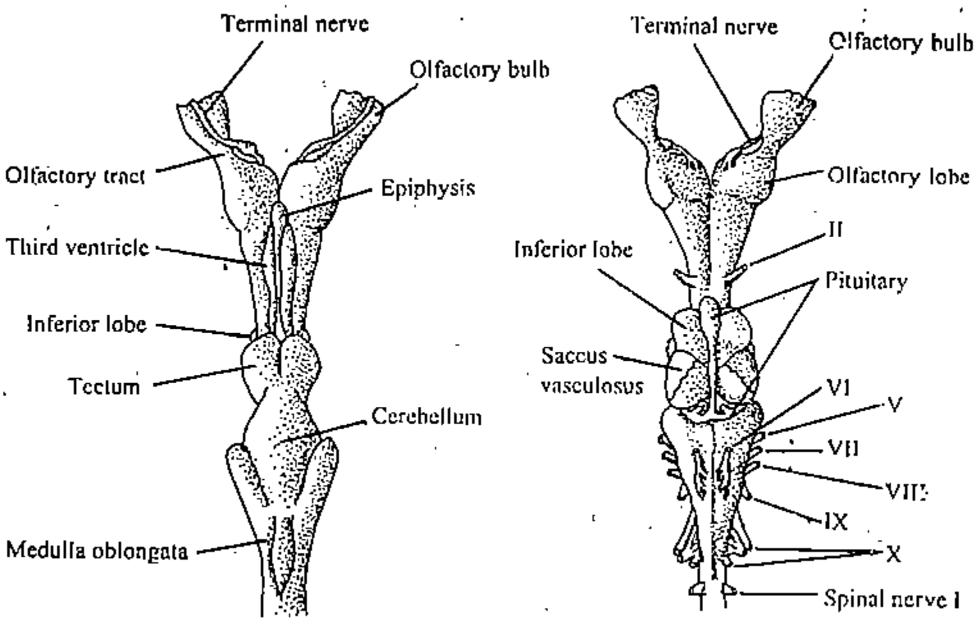

चित्र 2.10: शार्क का मस्तिष्क (a) पृष्ठ दृश्य, (b) अधर दृश्य

शार्कों में नर-मादा अलग-अलग होते हैं। परिपक्व शुक्राणु युग्मित वृषणों (चित्र 2.11a) से वोल्फी वाहिनी में पहुंचते हैं जो आगे एक एकल मूत्रजनन कोटर तथा अवस्कर में खुलती है। नर अपने आलिंगक की सहायता से शुक्राणुओं को मादा की अंडवाहिनी में छोड़ देता है। युग्मित अंडवाहिनियां, जिन्हें म्यूलरी वाहिनियां (Mullerian ducts) भी कहते हैं (चित्र 2.11b), अंडाशय से विमोचित अंडों को सीलोम में पहुंचाती हैं। अंडवाहिनी में रूपांतरण होकर एक "गर्भाशय" बन जाता है जिसके भीतर परिवर्धनशील शार्क-भ्रूण एक आदिम अपरा (प्लैसेंटा) के द्वारा संलग्न रहता है। शिशुप्रज उदाहरणों में यह व्यवस्था सामान्य है। अंडशिशुप्रज (ovoviviparous) उदाहरणों में परिवर्धनशील अंडों का गर्भाशय के साथ इस प्रकार जुड़ना नहीं होता देखा गया है। अंडप्रज उदाहरणों में बड़े आकार के पीतक से भरे अंडे निषेचन के तुरंत बाद बाहर निकाल दिए जाते हैं।

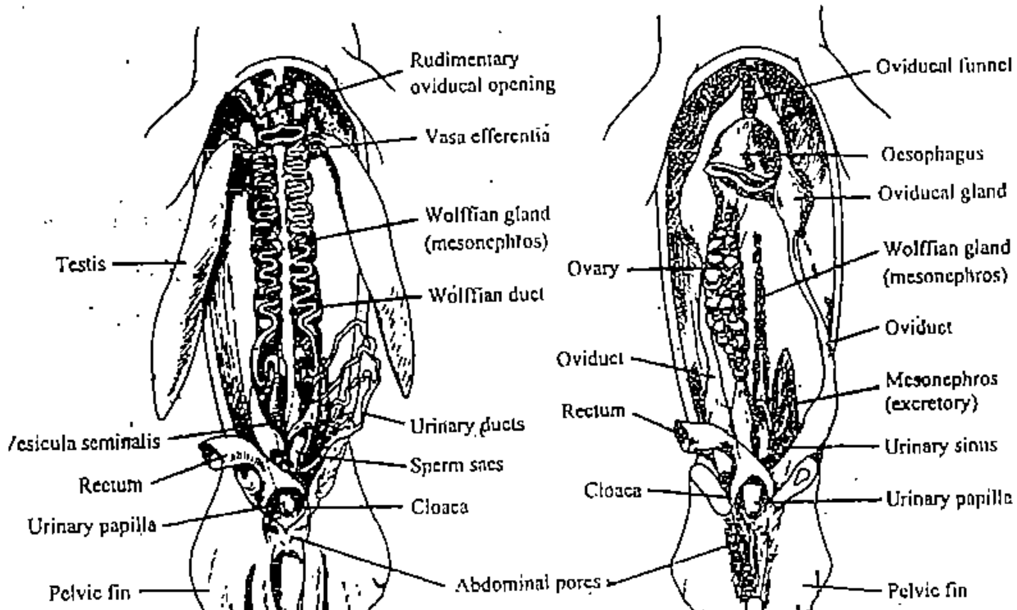

चित्र 2.11: शार्क का मूत्रजनन तंत्र (a) नर (b) मादा (गुडरिच पर आधारित)

एग्नैथा, गछलियां तथा ऐम्फिबिया

रे-मछलियों की संख्या समस्त इलास्मोब्रैंकों में 50% से ज़्यादा होती है तथा इनमें ये सब आती हैं- स्केट, विद्युत-रे-मछली, आरा-मछली, "दंश"-रे-मछली "ईगल"-रे-मछली" तथा "मांटा"-रे-मछली"। तल-वासी रे-मछलियों में अंस फ़िन बहुत बड़े हो गए हैं और शीर्ष के साथ समेकित होकर पंख-सदृश संरचनाएं बन गयी हैं जिनसे तैरने में सहायता मिलती है (चित्र 2.12)। गिल-छिद्र शीर्ष के अधर पर होते हैं तथा प्रच्छद पृष्ठ दिशा पर होते हैं। जल स्पाइरेकल में से होकर मुख में जाता है तथा वहां से गिलों के ऊपर से बहता जाता है जिससे गैसों का विनिमय होता है। रे तथा स्केट मछलियों के दांत आहार पकड़ने के लिए अनुकूलित होते हैं. आहार में - मौलस्क, क्रस्टेशियन और कभी-कभी छोटी मछलियां भी शामिल हैं।

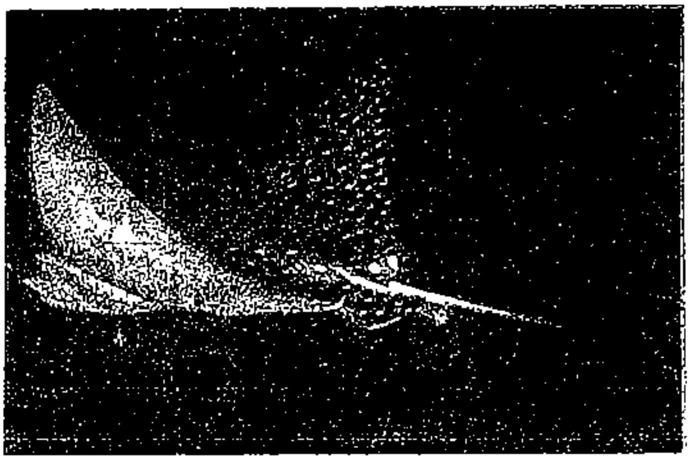

चित्र 2.12: एक "ईगल-रे"। इसमें शीर्ष के साथ समेकित हुए अंस-फ़िनों को देखिए, जिनसे तैरने में काम आने वाली पंख-जैसी संरचनाएं बन गयी हैं

2.3.2 उपक्लास इलास्मोब्रैंकिआइ

क्लास कॉन्ड्रिक्थीज, जिनमें कार्टिलेजी मछलियां आती हैं, को दो उपक्लासों में विभाजित किया जाता है: उपक्लास इलास्मोब्रैंकिआई तथा उपक्लास ब्रैडियोडोंटी/होलोसेफ़ेलाई। उपक्लास इलास्मोब्रैंकाई जिसका अर्थ है प्लेटनुमा गिल वाली मछलियां, में तीन ऑर्डर आते हैं। दो ऑर्डर **क्लैडोसिलैकाई (Cladoselachii)** तथा **प्ल्यूराकैन्थोडिआई (Pleuracanthodii)** विलुप्त हो चुके हैं तथा तीसरा ऑर्डर है **सिलैकिआइ (Selachii)** जिसमें सभी जीवित कार्टिलेजी मछलियां यानि शार्क, स्केट तथा रे-मछलियां आती हैं। आप अन्य उपक्लास **ब्रैडियोडोंटी** अथवा **होलोकेफ़ेलाई** के विषय में उपखण्ड 2.3.3 में पढ़ेंगे।

उपक्लास:	इलास्मोब्रैंकिआई
ऑर्डर 1	क्लैडोसिलैकाई (Cladoselachii) (विलुप्त)
ऑर्डर 2	प्ल्यूराकैन्थोडिआई (Pleuracanthodii) (विलुप्त)
ऑर्डर 3	सिलैकिआइ (Selachii) (शार्क, स्केट तथा रे मछलियां)

आज के जीवित इलास्मोब्रैंक-प्राणी उत्तर पैलियोज़ोइक युग में कदाचित उच्च डिवोनी काल में उद्भव हुआ (परिशिष्ट-II देखिए) और मीज़ोज़ोइक युग के जुरैसिक काल में खूब अधिक संख्या में फैल गए। उस समय तक कदाचित अन्य मछलियां विकसित नहीं हो पायी थीं जिसके कारण ये विविध आहार पर जीवित बनी रहीं, इस आहार में अकशेरुकी शामिल थे। उस युग की शार्कों में हाइबोडॉण्ट (hybodont) प्रकार के अर्थात् कूबड़ वाले दांत होते थे और उनमें मौलस्कों को खा सकने की क्षमता थी। बाद में भिन्न दांतों वाली अर्थात् विषमदंती शार्कें (हिटेरोडॉन्शिया (Heterodontia) विकसित हो गयीं - जिनमें आगे की ओर नुकीले दांत थे तथा पीछे की ओर चपटे दांत जिनके द्वारा मौलस्कों को चूरा किया जा सकता था। इनका एक उदाहरण पैसिफ़िक महासागर की पोर्ट जैक्सन शार्क *हेटेरोडॉन्टस* (*Heterodontus*) (चित्र 2.13) है। जुरैसिक काल की शार्कों के जबड़े छोटे हो गए थे तथा उन्होंने कंठिका निलंबित अर्थात् हायोस्टाइलिक (hyostylic) प्रकार का जबड़ा प्राप्त कर लिया था। आधुनिक शार्कों को ही वास्तविक शार्कें कहा जाता है, इन शार्कों (जो हेक्जैकॉइडीया, गैलिआइडीया तथा स्क्वैलॉयडीया उपऑर्डरों में आती हैं) में पैने दांत बन गए हैं और वे तेज़ तैरने लग गयी हैं। *हेक्जैंकस* (*Hexanchus*) (चित्र 2.14a) तथा *हेप्ट्रैंकस* (*Heptranchus*) लम्बे शरीर वाली तथा धीमी गति से तैरने वाली शार्कें हैं जो गरम जलों में रहती हैं। ये शिशुप्रज होती हैं मगर इनमें अपरा (प्लैसेंटा) नहीं होता।

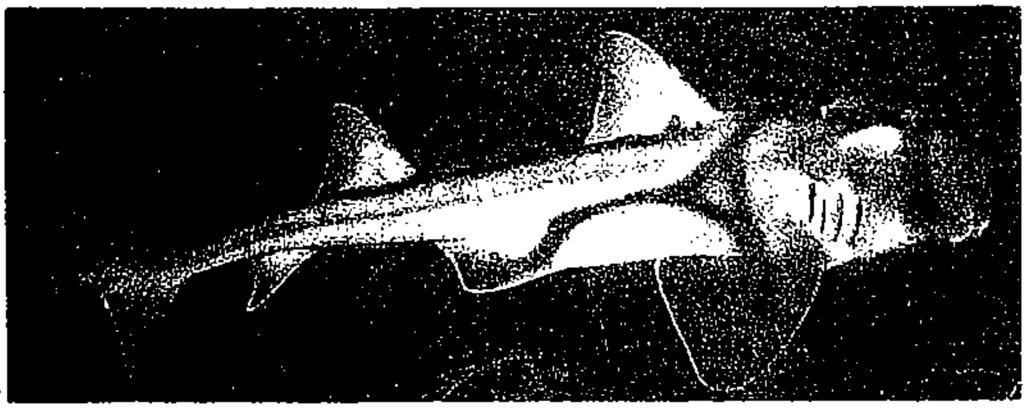

चित्र 2.13: हेटेरोडॉन्टस

शार्कों की कुल संख्या में से लगभग 75% शार्कें तथा उपऑर्डर गैलियॉइडीया (Galeoidea) में आती हैं तथा उथले उष्णकटिबंधीय तथा गर्म शीतोष्ण जलों में रहती हैं। *स्कीलिओराइनस* (*Scyliorchinus*) कैट शार्क तथा *मस्टीलस* (*Mustelus*) (चित्र 2.14b) जिसे "डॉग-फ़िश" कहते हैं, महासागरों की तल में रहती हैं और क्रस्टेशियनों तथा मौलस्कों को खाती हैं। *कारकैरीनस* (*Carcharinus*) प्रचुर संख्या में पायी जाती है जो 4 मीटर तक लम्बी हो जाती है। यह समुद्री तथा अलवण दोनों प्रकार के जल में पायी जाती है, और इसे आहार, तेल तथा चमड़े के लिए इस्तेमाल किया जाता है। *सेटोराइनस* (*Cetorhinus*) जो गैलियॉइडीया की ही एक अन्य सदस्य है अपने कंघे सरीखे गिलों से प्लवक को छान कर अशन करती है। इस प्रकार का आहार करना कितना कारगर होता है इसका अनुमान केवल इस बात से ही लग सकता है कि इन शार्कों की लम्बाई 10.5 मीटर तक पहुंच जाती है। इन शार्कों के यकृत में तेल तथा स्क्वैलीन (squalene) नामक हाइड्रोकार्बन संचित किए जाते हैं और ऐसा होना एक अनुकूलन है जिसके द्वारा जल में इनकी उदासीन (न्यूट्रल) उत्प्लावकता बनी रहती है।

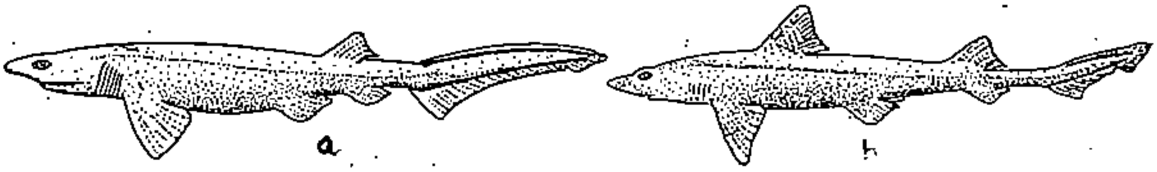

चित्र 2.14: (a) *हैक्ज़ैकस* (b) *मस्टीलस*

एक अन्य प्लवक-आहारी ह्वेल-शार्क *राइनोडॉन* (*Rhinodon*) होती है जो बहुत बड़े आकार की होती है। यह *राइनोडॉन* जल में उदग्र रूप में ऊपर-नीचे तैरती हुई मुंह खोले रखती और प्लवक को मुंह के भीतर को खींचती जाती है। मानव-भक्षी शार्क *कारकैरोडॉन* (*Carcharodon*) (चित्र 2.15) जो लगभग 9 मीटर लम्बी होती है, संसार के अनेक समुद्रों में पायी जाती है।

(a) (b)

चित्र 2.15: (a) कारकैरोडॉन उष्णकटिबंधीय महासागर में रहती है। (b) कारकैरोडॉन सामने से देखने पर।

केवल ठंडे तथा गहरे जल में पायी जाने वाली शार्क-मछलियां उपऑर्डर स्कवैलॉयडीया (Squaloidea) के अंतर्गत आती हैं। आरा- जैसे दांतों वाली मछलियां *प्रिस्टिओफोरस* (*Pristiophorus*), कंटीली "डॉग-फ़िश" *स्क्वैलस* (*Squalus*) तथा "मॉन्क-फिश" *स्क्वाटिना* (चित्र 2.16) इसी उपऑर्डर में आती हैं। "थ्रेशर-शार्क" *ऐलोपिअस* (*Alopias*) में आहार पकड़ने की एक बड़ी ही रोचक विधि पायी जाती है। कई शार्कें एक साथ मिलकर मैकेरेल जैसी छोटी-छोटी मछलियों को अपनी कोड़े जैसी पूंछ से एक साथ समूहों में ले आती हैं और फिर उन्हें पकड़ कर खा जाती हैं।

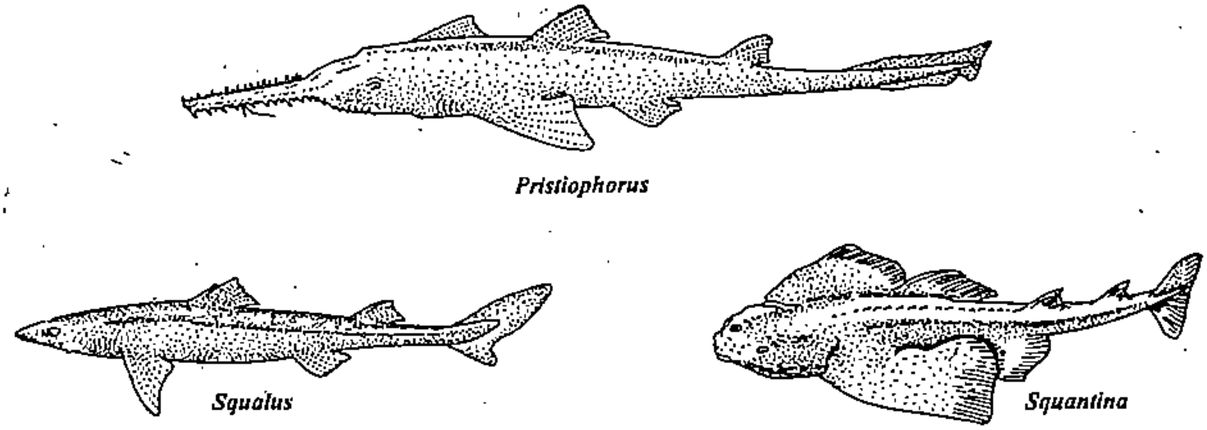

चित्र 2.16: ठंडे तथा गहरे जल में पायी जाने वाली शार्क

इलास्मोंब्रैंकों में रे-मछलियां भी आती हैं जिनके कुछ उदाहरण हैं- स्केट, विद्युत-रे, आरा-मीन, दंश मछलियां, ईगल रे मछलियां तथा "मान्टा-रे" मछलियां। स्केट तथा रे-मछलियां उपऑर्डर **बैटोइडिया (Batoidea)** के अंतर्गत आती हैं जिनमें मौलस्कों को खाने के लिए विशेषित चपटे दांत होते हैं। स्केट तथा रे-मछलियां अनिवार्यत: चपटी तथा तलवासी होती हैं। इनमें संचलन फ़िनों के सहारे-सहारे पीछे को बहती जाती जलधाराओं द्वारा सम्पन्न होता है। स्केटों तथा रे-मछलियों में अंस फ़िन बहुत बड़े तथा शीर्ष के साथ समेकित हो गए हैं। इस प्रकार की संरचना को, तैरने में मानो एक पंख की तरह इस्तेमाल किया जाता है। सबसे पुरानी रे-मछली "बैंजो-रे" *राइनोबेटिस* (*Rhinobatis*) जुरैसिक काल से चली आ रही है, इसमें असफ़िन बड़े हो गए है मगर शरीर से बिल्कुल पृथक स्पष्ट होते हैं। आरा-मीन, *प्रिस्टिस* (*Pristis*) (चित्र 2.17) जो क्रिटेशस काल से चली आ रही है, में शीर्ष, एक लम्बे तुंड (rostrum) के रूप में आगे को निकला हुआ होता है जिसमें दंतिकाएं बन गयी हैं। कुछ आरा-मीन अलवण जल में भी रहती हैं।

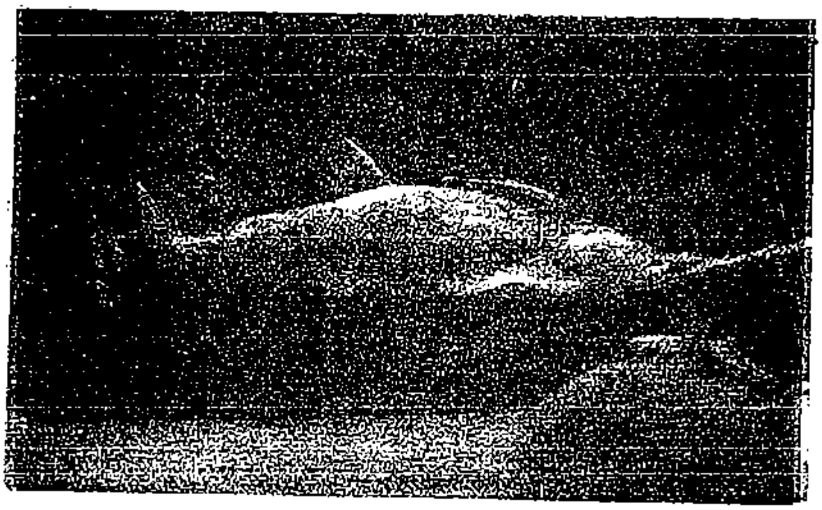

चित्र 2.17: आरामीन, जिसमें आरे के समान दंतिकाए देख सकते हैं

एक अन्य रे-मछली *राजा* (*Raja*) (चित्र 2.18) में भी, जो क्रिटेशस युग से चली आ रही है अंस फ़िन शरीर के पार्श्वों से जुड़ गए हैं तथा मध्य फ़िन छोटे होते हैं।

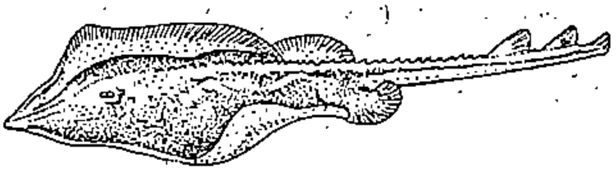

चित्र 2.18: राजा

दंश-रे-मछलियों में (चित्र 2.19) में पूंछ एक कोड़े जैसी दिखायी पड़ती है तथा पृष्ठ फिन रूपांतरित होकर एक विषैला शूल बन गया है। "ईगल-रे-मछलियों" में जैसेकि *माइलियोबेटिस* (*Myliobatis*) में चपटे हो गए दांत चक्की-जैसा काम करते हैं जो मौलस्कों के कवच को पीस डालते हैं।

चित्र 2.19: नीली धब्बेदार दंश-रे

विद्युत-रे मछलियों में जैसे कि *नार्सीन* (*Narcine*) तथा *टॉर्पीडो* (*Torpedo*) में अंस फिन आगे को फैल गए हैं जिससे प्राणी का अग्र भाग गोल दिखायी पड़ने लगा है। पार्श्व-प्लेट पेशियां जिनमें कपाल तंत्रिकाएं पहुंच गयी होती हैं, एक शक्तिशाली विद्युत-अंग बना लेती है। (चित्र 2.20)। प्रत्येक अंग में बहुसंख्यक डिस्क-सरीखी कोशिकाएं होती हैं जो पार्श्व-परिपथ (in parallel) के रूप में संयोजित रहती हैं, और जब इन सभी कोशिकाओं में से एक साथ एक ही समय पर विद्युत-डिसचार्ज होता है जब एक उच्च ऐम्पीयरता की विद्युत्-धारा पैदा होती है जो परिवेशी जल में प्रवाहित हो जाती है। इस प्रकार पैदा हुई विद्युत्-धारा से शिकार सुन्न हो जाता है तथा परभक्षी शत्रु दूर बने रहते हैं। उथले तथा सुप्रकाशित जल में रहने वाली मछलियों के ऊपर की दिशा की चर्म चमकीली तथा नीचे की सतह की चर्म सफेद रंग की होती है। आंखें मछली की ऊपरी सतह पर आ गयी हैं तथा वे पलकों द्वारा सुरक्षित बनी रहती हैं। इस प्रकार शार्क तथा रे-मछलियों में ऐसे अनेक अनुकूलन आ चुके है जो समुद्र तल में जीवन बिताने में उपयोगी होते हैं।

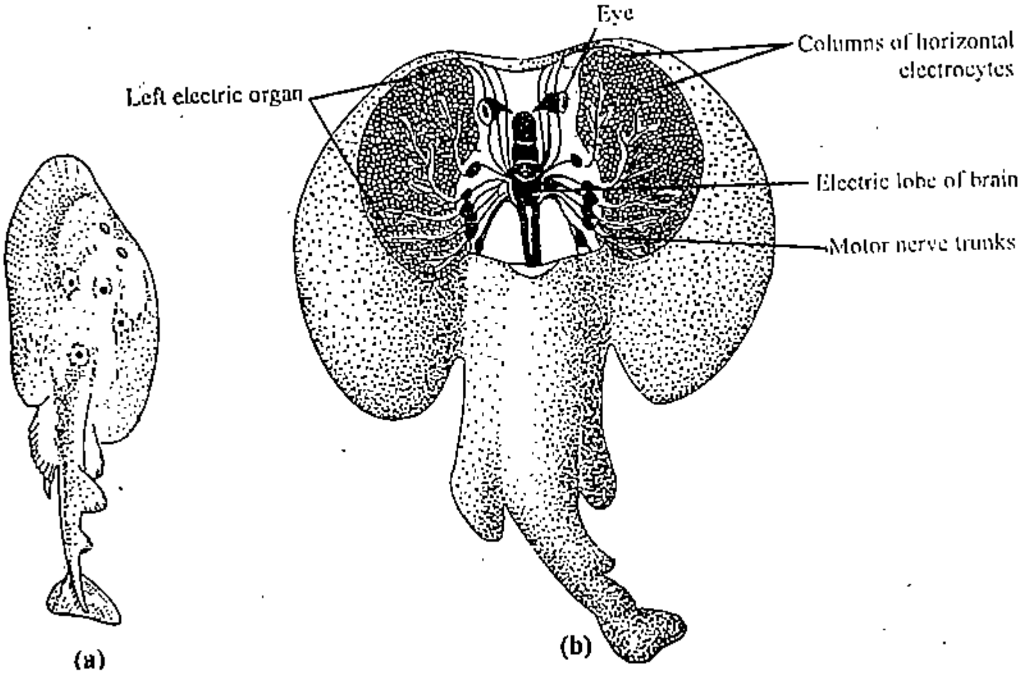

चित्र 2.20: विद्युत् रे, टॉर्पीडो का विद्युत् अंग

2.3.3 उपक्लास होलोसेफ़ेलाई

ब्रैडियोडॉन्टाई अथवा होलोसेफ़लाई क्लास कॉन्ड्रिक्थीज़ का दूसरा उपक्लास है। ये मछलियां सर्वप्रथम डिवोनी काल में प्रकट हुईं। इस उपक्लास में "मूषक-मछलियां" तथा "गंज-मछलियां" आती हैं। ये भी तलवासी मछलियां हैं जो मौलस्कों तथा अन्य अकशेरुकियों का आहार करती हैं। अंस-फिन की लहराती गतियां संचलन में सहायता करती हैं। पृष्ठ फ़िन के सामने की ओर एक उद्धर्शी (erectile) शूल होता है जो कुछ उदाहरणों में विषैला होता है। पूंछ पतली तथा लम्बी होती है। मुख होठों के बीच में एक छोटे से छिद्र के रूप में दिखायी पड़ता है। ऊपरी जबड़ा करोटि (skull) के साथ समेकित हो गया होता है और इस प्रकार के जबड़ा-निलंबन को होलोस्टाइलिक (holostylic) अर्थात् पूर्णनिलंबित कहते हैं जबकि इलास्मोब्रैंको में हायोस्टाइलिक प्रकार का जबड़ा निलंबन होता है। इसी कारण से इस वर्ग को होलेकेफ़ेलाई नाम भी दिया गया है। दांत चौड़ी प्लेटों के रूप में जबड़ों से दृढ़तापूर्वक संलग्न रहते हैं। ग्रसिका पीछे की ओर सीधे एक चौड़ी सर्पिल अंतड़ी में खुलती है, जठर नहीं होता; और स्वयं अंतड़ीं पीछे मलाशय (रेक्टम) में खुलती है। होलोकेफ़ेलाई में एक प्रच्छद पल्ला (opercular flap) होता है जो इलास्मोब्रैंकों में नहीं होता है। इलास्मोब्रैंकों की तरह के श्रोणि आलिंगकों के अतिरिक्त, नर होलोकेफ़ैलाई में श्रोणि आलिंगकों के सामने की ओर अतिरिक्त आलिंगक होते हैं तथा एक अतिरिक्त आलिंगक शीर्ष प्रदेश में होता है जिसे शीर्ष-आलिंगक (cephalic clasper) कहते हैं। नोटोकार्ड में संकीर्णन नहीं बने होते तथा कशेरुकें ह्रासित होकर अलग-अलग गांठें सी बन जाती हैं। खुली पार्श्व-रेखा नाले (lateral line canals) थूथन की निचली ओर अधिक संख्या में पायी जाती हैं जिनसे कदाचित आहार की पहचान की जाती है। विदलन पूर्णभंजी (holoblastic) होता है।

होलोसेफ़ेलाई में कुछ लक्षण इलास्मोब्रैंकों के समान होते हैं जैसे कि धमनी-शंकु (conus arteriosus) का होना, मूत्र एवं शुक्रवाहिनियों का अलग-अलग होना, रक्त में यूरिया का होना तथा मलाशय ग्रंथि का पाया जाना। क्योंकि होलोकेफ़ेलाई में आंखें बहुत बड़ी-बड़ी होती हैं इसलिए मस्तिष्क की आकृतियां भी विविध होती हैं तथा डायनसेफ़ैलॉन लम्बा और पतला होता है।

इससे पहले आप जान चुके हैं कि होलासेफ़ेलाई मछलियां पैलियोज़ोइक युग के डिवोनी काल में प्रकट हुई थीं। काइमिरा (*Chimaera*) (चित्र 2.21) जिसे "मूषक मछली" भी कहते हैं मेसोज़ोइक युग के क्रिटेशस काल से चली आ रही हैं। परंतु अनेक विलुप्त होलासेफ़ेलाई इससे भी पुराने थे और उन्हें कार्बोनिफ़ेरस काल तक में रखा जा सकता है। होलोसेफ़ेलाई की बंधुताएं बहुत स्पष्ट नहीं हैं। होलोसेफ़ेलाई का थूथन और करोटि प्लैकोडर्म (Placoderms) नामक विलुप्त वर्ग के जैसे हैं। मगर इस प्रकार की समानताएं इतनी कम हैं कि इनके आधार पर प्लैकोडर्मों को होलोसेफ़ेलाई का पूर्वज नहीं कहा जा सकता।

चित्र 2.21: *काइमिरा*

बोध प्रश्न 2

1. रिक्त स्थानों में उपयुक्त शब्द लिखिए:-
   1. अधिक्लास पिसीज़ के अंतर्गत आने वाले मछलियों के तीन क्लास ………………… ………………… तथा ………………… हैं।
   2. क्लास कॉन्ड्रिक्थीज के अंतर्गत आने वाले दो उपक्लास ……………… तथा ……………… हैं।
   3. इलास्मोब्रैंकों में पूंछ ………………… प्रकार की होती है।
   4. इलास्मोब्रैंकों की खाल में ………………… प्रकार के शल्क होते हैं।
   5. मछलियों में ………………… प्रकार के वृक्क होते हैं।
   6. इलास्मोब्रैंकों में परासरणनियमन रक्त में ………………… नामक नाइट्रोजनी अपशिष्ट तथा ………………… को रोके रख कर प्राप्त किया जाता है।
   7. रे-मछलियों में ……………… फ़िन बहुत बड़े हो गए एवं शीर्ष के साथ समेकित हो गए हैं।

II. कॉलम अ के नीचे दिए गए सामान्य नामों को कॉलम ब में दिए गए जीनस नामों से मिलाइए:-

अ		ब	
1.	कैटफ़िश	क)	*राइनोडॉन*
2.	आरा-दंती मछली	ख)	*ऐलोपिअस*
3.	ह्वेल शार्क	ग)	*स्कीलिओराइनस*
4.	आरा-मछली	घ)	*प्रिस्टिफ़ोरस*
5.	थ्रेशर-शार्क	च)	*ट्राइगॉन*
6.	दंश-रे	छ)	*नार्सीन*
7.	ईगल-रे	ज)	*प्रिस्टिस*
8.	विद्युत्-रे	झ)	*माइलियोबेटिस*

III बताइए कि होलोसेफ़ेलाई से संबंधित निम्न में से कौन से कथन सही हैं:-

क) होलोसेफ़ेलाई का उद्‌भव डिवोनियन काल में हुआ।

ख) होलोसेफ़ेलाई वेलांचली (littoral) जल में रहती हैं जहां वे मौलस्कों तथा अकशेरुकियों को खाती हैं।

ग) होलोसेफ़ेलियनों का ऊपरी जबड़ा करोटि के साथ समेकित रहता है और जबड़ा निलंबन होलोस्टाइलिक प्रकार का होता है।

घ) सभी मछलियों में पृष्ठ फिन के सामने की ओर एक विषैला उद्धर्शी शूल बना होता है।

च) होलोसेफ़ेलियनों के पाचन-तंत्र में जठर नहीं होता।

छ) इलास्मोब्रैंकों की तरह होलासेफ़ेलाई में भी एक प्रच्छद-पल्ला नहीं होता।

ज) होलोसेफ़ेलाई में श्रोणि आलिंगक के अलावा एक शीर्ष आलिंगक भी होता है।

झ) अलग-अलग मूत्र एवं जनन वाहिनों के होने के लक्षण में होलोसेफ़ेलियने इलास्मोब्रैंकों के समान होती हैं।

2.3.4 क्लास ऑस्टिक्थीज़

क्लास ऑस्टिकथीज अर्थात् अस्थिल कंकाल से युक्त मछलियां मध्य पेलियोजोइक युग में उद्‌भवित हुई जान पड़ती हैं। जलीय पर्यावरण में प्रवीणता की दृष्टि से अस्थिल मछलियों को ही सर्वाधिक सफल जलीय प्राणी कहा जा सकता है। ये छोटी जलधाराओं से लेकर अगाध समुद्रों तक जलीय पर्यावरण के सभी संभव निकेतो में फैल चुकी हैं। सुविकसित आंखों, कानों और रासायनिक ग्राहियों एवं जटिल व्यवहार प्रतिरूपों से युक्त इन मछलियों ने जलीय पर्यावरण पर सकल और पूरी तरह अधिकार जमा लिया है। इनमें से कुछ तो प्रतिकूल एवं गंदे जल तक में रहने लगी हैं। अनेक स्पीशीज़ कुछ देर के लिए हवा में श्वास ले सकती और स्थल पर रह सकती हैं। अधिसंख्य अस्थिल मछलियां मांसाहारी होती हैं लेकिन उनमें से अनेक विविध प्रकार का भोजन करती हैं जिसमे प्लवक (plankton) से लेकर समुद्री खरपतवार तक हो सकती है। अस्थिल मछलियों में जटिल जनन क्रियाविधियां विकसित हो गयी हैं जिनमें घोसला बनाना तथा पैतृक देख-रेख भी शामिल है। जब ये समूह बना कर तैरती, ध्वनियों के आदान-प्रदान से एक दूसरे को पहचानती हैं तो उससे इनमें एक उन्नत सामाजिक व्यवहार का होना भी प्रकट होता है।

क्लास ऑस्टिकथीज का यह छोटा सा परिचय प्राप्त कर लेने के बाद अब आप अस्थिल मछलियों के तीन उपक्लासों और उनके प्रमुख लक्षणों के विषय में सीखेंगे। क्लास ऑस्टिकथीज के सजीव उदाहरण दो उपक्लासों के अंतर्गत आते हैं- पहला उपक्लास है सार्कोप्टेरिजिआइ (Sarcopterygii) जिसमें मासाल फ़िन वाली मछलियां आती हैं, दूसरा उपक्लास है, ऐक्टिनॉप्टेरिजिआई (Actinopterygii) जिसमें अर-फ़िन वाली मछलियां यानि आधुनिक अस्थिल मछलियां आती हैं। इन दोनो उपक्लासों में से ऐक्टिनॉप्टेरिजिआई को आज के युग का सर्वाधिक प्रमुख वाला मछली-वर्ग कहा जा सकता है।

संख्या की दृष्टि से जहां एक ओर इलास्मोब्रैंकों की केवल 575 स्पीशीज़ पायी जाती हैं वहीं दूसरी ओर ऐक्टिनॉप्टेरिजिआई में लगभग 21,000 स्पीशीज़ आती हैं। अधिकतर सुपरिचित मछलियां इसी वर्ग में

आती हैं जैसे पर्च, पाइक, ट्राऊट, हेरिंग एवं अन्य सभी प्रकार की आधुनिक मछलियां। कुछ स्पीशीज़ की व्यष्टिगत संख्या लगभग अनगिनत कही जा सकती है। उदाहरण के लिए, गैनॉइड (ganoid) मछलियों की एक-एक समष्टि का आकार करोड़ों-अरबों की संख्या में हो सकता है। संयुक्त राज्य अमेरिका के अटलांटिक समुद्र तट पर रहने वाली "ब्लू-फिश" का समष्टि-आकार एक अरब तक हो सकता है। कई अन्य अस्थिल मछलियों में भी इतनी-इतनी ही संख्याएं पायी जाती हैं। अनिवार्यतः अस्थिल मछलियां और साथ में इलास्मोब्रैंक भी समस्त मानव आहार का एक बड़ा भाग बनाती हैं।

2.3.5 उपक्लास सार्कोप्टेरिजिआई

सार्कोप्टेरिजिआई में दो ऑर्डर आते हैं क्रॉसोप्टेरिजिआई **(Crossopterygii)** और डिप्नोआइ **(Dipnoi)**। क्रासेटेरिजिआई यानि पालि-फिन मछलियों (lobe finned fishes) का, चतुष्पादों (tetrapods) यानि ऐम्फिबियनों के विकास में, एक महत्वपूर्ण स्थान है। क्रॉसॉप्टेरिजियनों के जीवाश्म (फ़ॉसिल) सर्वप्रथम डिवोनियन (Devonian) काल में मिले हैं - यह काल ऐसा था जिसमें सूखा और बाढ़ एक के बाद एक आते रहते थे। क्रॉसॉप्टेरिजियनों में नासाद्वार थे जो मुंह में खुलते थे, फफड़े थे और गिल भी थे। इनमें युग्मित पालि-फिन भी थे। फेफड़ों का होना जिनके द्वारा वे वायु में सांस ले सकते थे उन दिनों बहुत लाभकारी था। माना जाता है कि क्रॉसॉप्टेरिजियनों के पालि-फिनों ने टांगों की तरह काम किया था जिनके द्वारा वे बालू-भित्तियों पर अथवा कीचड़ से भरी समतल भूमि पर आ सकती थीं और जब कभी कोई ताल-तलैया या नदी सूख जाती तब ये उसमें से निकल कर धरती पर रेंगते हुए किसी दूसरे ताल-तलैया या नदी में पहुंचकर अपना जलीय जीवन बरकरार बनाए रख सकती थीं।

क्रॉसोप्टेरिजियनों में दो उपऑर्डर आते हैं- पहला राइपिडिस्टिया **(Rhipidistia)** और दूसरा सीलाकैन्थिफार्मीज **(Coelacanthiformes)**। राइपिडिस्टिअनों का उदय डिवोनी काल में हुआ और उत्तर पैलियोज़ोइक युग में इनकी प्रचुरता बहुत बढ़ गयी। तदुपरांत ये विलुप्त हो गयीं और आज इनके केवल कुछ जीवाश्म उदाहरण ही बचे मिलते हैं। सीलैकैंथ प्राणी भी डिवोनी काल ही में प्रकट हुए और मेसोजोइक युग में खूब फले-फूले। मेसोज़ोइक युग का अंत आते-आते ये सभी विलुप्त हो गए, बस एक स्पीशीज़ जीवित बची है *लैटिमेरिया कालूम्नी* (*Latimeria chalumnae*) (चित्र 4.22)। इस जीवित स्पीशीज़ के अस्तित्व का तब पता चला जब 1938 में यह मछली दक्षिण अफ्रीका के ईस्ट-लंदन स्थित संग्रहालय में लायी गयीं थीं। तदुपरांत इस स्पीशीज़ के अनेक सदस्य मैडागास्कर के तट के पास कोमोरो द्वीप समूह में पकड़े गए थे हालांकि पकड़े जाने के कुछ ही घंटों बाद उनमें से अधिकतर मर गए थे।

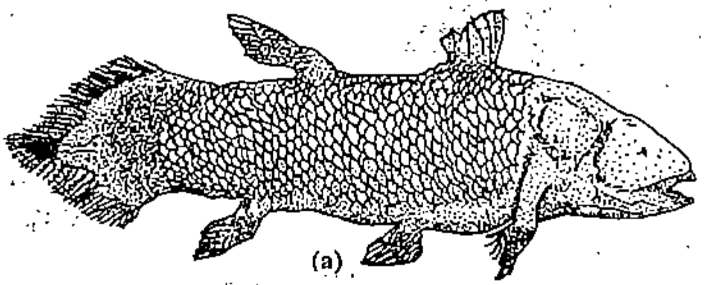
(a)

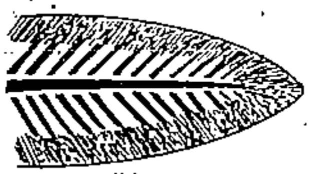
(b)

चित्र 2.22: (a) *लैटिमेरिया कालूम्नी* (b) द्विसमपालि पुच्छ

लैटिमेरिया बड़े आकार की मछली है जिसका वजन लगभग 80 kg है और यह फीके नीले से रंग की होती है। इसकी पूंछ द्विसमांलि अर्थात डिफ़िसर्कल (diphycercal) प्रकार की होती है (चित्र 2.22b) (हाशिया टिप्पणी देखिए) तथा इसके शरीर पर कॉस्माइड (cosmoid) शल्क बने होते हैं। नोटोकॉर्ड एक संहत संरचना होती है जिसमें संकीर्णन नहीं बने होते तथा दांत जबड़ों के किनारे-किनारे न बने होकर केवल प्रीमैक्सिला, डेंटरी तथा पैलेट हड्डियों पर बने होते है। *लैटिमेरिया* अन्य मछलियों का आहार करती है और इसकी शक्तिशाली ग्रसिका मछलियों को निगलने में मदद करती है। एक सुविकसित सर्पिल अंतड़ी होती है। एक तरण-आशय, जिसके भीतर 95% वसा भरी होती है आपेक्षिक घनत्व को कम करने में सहायता करता है। श्वसन गिलों द्वारा होता है। हृदय में बने विभिन्न कक्ष एक रेखा में व्यवस्थित होते हैं। रक्त में यूरिया होता है जैसे कि इलास्मोब्रैंकों में, तथा लाल रक्त कोशिकाएं आकार में अधिक बड़ी होती हैं। सीरम की ऑस्मोलैरिटी और साथ ही साथ सोडियम सांद्रण समुद्री जल के समान होता है। लवण का उत्सर्जन लवण ग्रंथियों के द्वारा होता है। मस्तिष्क कपाल के भीतर काफी पीछे एक छोटे से भाग में

स्थित होता है तथा शेष कपाल में वसा भरी रहती है। सीलैकैंथों में सुविकसित आंखें, भीतरी कान तथा पार्श्व रेखा अंग बने होते हैं। अण्डे बड़े आकार के होते हैं, इनका व्यास 9 cm तथा वजन 330 g होता है। परिवर्धन अंडवाहिनी के भीतर होता है। जब से जुरैसिक काल में *लैटीमेरिया* का उदय हुआ (लगभग 19.5 करोड़ वर्ष पूर्व) तब से आज तक वह लगभग अपरिवर्तित बनी चली आ रही है और उसकी संख्या बहुत ही थोड़ी है। इस मछली को एक जीवित जीवाश्म (living fossil) माना जा सकता है।

फुप्फुस मीन

डिप्नोई जिन्हें अन्यथा फुप्फुस मीन कहा जाता है, वायु-श्वासी होती हैं और आज इनकी केवल तीन जीनस ही जीवित बची हैं। ये जीवित बची जीनस हैं *लेपिडोसाइरन* (*Lepidosiren*), *नीओसेरैटोड्स* (*Neoceratodus*) तथा *प्रोटॉप्टेरस* (*Protopterus*) (चित्र 2.23 a, b, c); इनमें से पहली दो जीनसे नदियों में रहती हैं तथा तीसरी जीनस झीलों में। *नीओसेरैटोड्स* क्वींसलैंड (आस्ट्रेलिया) की नदियों में रहती है, *लेपिडोसाइरन* उष्णकटिबंधीय दक्षिण अमेरिका की नदियों में तथा *प्रोटॉप्टेरस* उष्णकटिबंधीय दक्षिण अफ्रीका में। जब कभी ग्रीष्म काल में इनके आवास सूख जाते हैं तब भी ये मछलियां जीवित बनी रहती हैं। इन तीनों जीनसों में सममित डिफ़िसर्कल पूंछ होती है। इनमें पृथक पृष्ठ फिन नहीं होते। शल्क ह्रासित होकर अस्थिल प्लेट बन गए हैं।

(a)

(b)

(c)

चित्र 2.23: फुप्फुस मीन (*a*) *लेपिडोसाइरेन* (b) *निओसेरैटोड्स* (c) *प्रोटॉप्टेरस*

क्रॉसॉप्टेरिजियनों की ही तरह इनका नोटोकॉर्ड भी असंकीर्णित शलाका के रूप में होता है तथा कशेरुकें कार्टिलेजी चापें होती हैं। करोटि में अस्थि भवन ह्रासित होता है। जबड़ा निलंबन ऑटोस्टाइलिक अर्थात् स्वनिलंबित प्रकार का होता है। डिप्नोअन प्राणी बहुत मात्रा में भोजन करते हैं, और यह भोजन छोटे-छोटे अकशेरुकी तथा सड़ता-गलता वनस्पति पदार्थ होता है। इनमें जठर होता है तथा एक पक्ष्माभ युक्त अंतड़ी होती है जिसे भीतर एक सर्पिल वाल्व होता है। मुख के किनारे पर बने हुए बाह्य नासाद्वार भीतरी नासाद्वारों में खुलते हैं। *नीओसेरैटोड्स* में तरण आशय एक अयुग्मित संरचना होती है जबकि अन्य जीनसों में यह युग्मित होता है। जब जल का ऑक्सीजन-तनाव बहुत कम होता है तब *निओसेरैटोड्स* सतह के ऊपर आकर ताज़ी हवा में सांस लिया करती है। यह उस गंदे पानी तक में रह सकती है जिसमें अन्यथा अन्य मछलियां मर जाती हैं लेकिन यह जल के बाहर नहीं रह सकती। *प्रोटॉप्टेरस* तथा

लेपिडोसाइरन अपनी ऑक्सीजन का 98% भाग वायु से प्राप्त करती हैं। तरण आशय के भीतर की गुहा उपविभाजित होकर बहुत से कोष्ठ तथा कूपिकाएं बन जाती हैं, यही वे स्थान हैं जिनके भीतर गैसों का विनिमय होता है। फेफड़े पृष्ठत: स्थित होते हैं मगर अधरत: ग्रसिका में खुलते हैं (चित्र 2.24)।

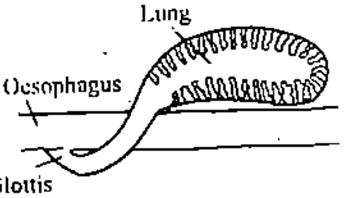

चित्र 2.24: डिप्नोई में फेफड़ों के ग्रसिका में खुलने वाले छिद्र

नीओसेरैटोडस में फेफड़ों में रक्त की आपूर्ति अंतिम गिल-धमनी द्वारा होती है जब कि अन्य जीनस में फुफ्फुस-धमनी पृष्ठ महाधमनी में से निकलती है। वापिस लौटता रक्त एक फुफ्फुस-शिरा के द्वारा हृदय के शिरा कोटर के अंशत: पृथककृत बाएं भाग में पहुंचता है। आलिंद में आंशिक विभाजन होकर दो भाग बन गए होते हैं तथा निलय *लेपिडोसाइरन* और *प्रोटॉप्टेरस* में पूर्णत: विभाजित होता है *निओसेरैटोडस* में निलय केवल आंशिक रूप में विभाजित होता है। वृक्क निवाहिका तंत्र (renal portal) system) होता है। मस्तिष्क तथा शेष तंत्रिका-तंत्र ऐम्फ़िबियनों की तरह का होता है (चित्र 2.25)। अग्रमस्तिष्क में द्विवलन होकर एक जोड़ी सुविकसित प्रमस्तिष्क गोलार्ध (cerebral hemispheres) बन गए हैं। दृक्-पालियां (optic lobes) सुविकसित नहीं होती तथा अनुमस्तिष्क (cerebellum) बहुत छोटा होता है। भीतरी कान में एक विशेष पालि सैक्कस एंडोलिम्फैटिकस (saccus endolymphaticus) बन जाती है जैसी कि ऐम्फ़िबियनों में होती है।

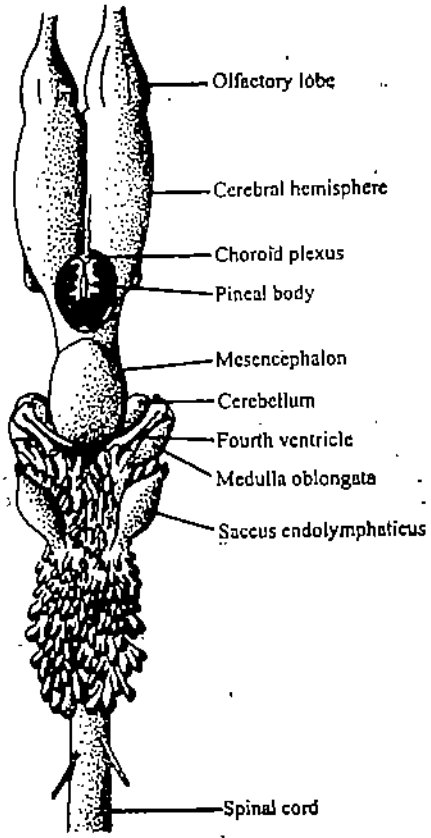

चित्र 2.25: *प्रोटॉप्टेरस* का मस्तिष्क (पृष्ठ दृश्य)

प्रोटॉप्टेरस में ऐड्रीनल ग्रंथियां परिवृक्क ऊतक की दो पृथक संहितयों के रूप में होती हैं। इस स्टेरॉइड ऊतक के कई प्रकार्य हैं - रक्तोत्पत्ति, कोशिक भक्षण, संग्रह, अंत:स्रावी तथा वर्णकीय। इस प्रकार की संरचना और प्रकार्य का होना ऐड्रीनल कॉर्टेक्स के विकास का आरंभ दर्शाता है।

नर प्राणी में वृषण में बने शुक्राणु शुक्र-अपवाहिकाओं (vasa efferentia) में से होते हुए मीज़ोनेफ्रॉस के उत्सर्गी भाग में पहुंच जाते हैं। मादा में अंडे सीलोम में छोड़ दिए जाते हैं जहां से वे मूलेरी वाहिनी में पहुंचते हैं जो बाहर को खुलती है।

प्रोटॉप्टेरस तथा *लेपिडोसाइरन* दोनों ही छोटी-बड़ी नदियों में रहती है तथा जब सूखे का मौसम होता है तब ये मिट्टी में बिल बना कर उसमें रहने लगती हैं। इनके शरीर से बहुत मात्रा में चिपचिपा श्लेष्मल (स्लाइम) निकलता है जो कीचड़ के साथ मिलकर एक कड़ा ककून बना लेता है जिसके भीतर मछली ग्रीष्मनिद्रा में चली जाती है और जब तक कि दोबारा वर्षा नहीं प्रारम्भ हो जाती तब तक वे इसी अवस्था में बनी रहती है।

2.3.6 उपक्लास ऐक्टिनॉप्टेरिजिआई

ऐक्टिनॉप्टेरिजिआई अर्थात् अर-फ़िनों वाली मछलियां सबसे आम मिलने वाली अस्थिल मछलियां हैं तथा इनकी लगभग 21,000 स्पीशीज़ हैं। ऐसा माना जाता है कि इन मछलियों का उदय डिवोनियन काल में अलवणजलीय झीलों तथा नदी-नालों में हुआ था। पेलियोनिस्किडी (Paleoniscidae) नामक आरंभिक अर-फ़िन मछलियां छोटे आकार की, बड़े-बड़े नेत्रों वाली होती थीं तथा इनका मुंह फैला हुआ एवं पूंछ हेटेरोसर्कल होती थी। साथ ही, इनमें गैनॉइड शल्क भी होते थे (चित्र 2.26) तथा कार्यशील फेफड़े और गिल थे। इसके बावजूद कि ये मछलियां डिवोनी काल की दलदलों एवं नदियों में क्रॉसोप्टेरिजियनों तथा डिप्नोअई के साथ-साथ रहती थीं, ये देखने में उनसे स्पष्टतः पृथक थीं।

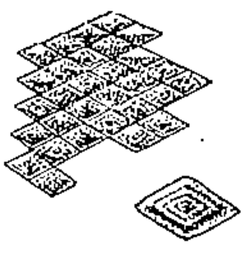

चित्र 2.26: गैनॉइड शल्क

उपक्लास एक्टिनॉप्टेरिजिआई में दो अवक्लास कॉन्ड्रोस्टीआई (Chondrostei) तथा नियोप्टेरीजाई (Neopterygii) आते हैं। इनमें से कॉन्ड्रोस्टीआई अधिक आदिम है, तथा इनमें आती है अलवणजल एवं समुद्री स्टर्जियन, पैडल-फिन तथा अफ्रीकी नदियों में रहने वाली बिचिर-*पॉलिप्टेरस* (चित्र 2.27)। आदिम नियोप्टेरीजियन को अक्सर होलोस्टियन भी कहा जाता है।

ट्राइऐसिक तथा जुरैसिक कालों में ये खूब पनपीं मगर मेसोज़ोइक काल का अंत आते-आते ये घटती गयीं। अब इनकी केवल दो ही जीनस जीवित बची हैं - एक तो "बो-फ़िन" (bow-fin) मछली *ऐमिया* (*Amia*) जो अमेरिका की ग्रेट लैक्स (great lakes) तथा मिसिसिपी की वादियों के उथले और कीचड़ दार जल में रहती है और दूसरी है "गारपाइक (garpike)" मछली *लेपिसोस्टियस* (*Lepisosteus*) जो उत्तर अमेरिका की नदियों में पायी जाती है। आधुनिक नियोप्टेरिजियन डिविज़न टीलियोस्टिआई में आते हैं। ये आधुनिक अस्थित मछलियां हैं। शरीर की आकृति की दृष्टि से टीलियोस्टों में भारी विविधता पायी जाती हैं। नानाविध टीलियोस्टों के कुछ उदाहरण हैं- ईल, सामन, ट्राऊट, पर्च, मिनो, कार्प स्कलपिन, बोई (मलेट) तथा बांगड़ा (मैकेरेल)। अब आप उपक्लास ऐक्टिनॉप्टेरिजिआई के विषय में संक्षेप में पढ़ेंगे।

चित्र 2.27: *पॉलिप्टेरस*

अधिऑर्डर कॉन्ड्रोस्टिआई

अधिऑर्डर कॉन्ड्रोस्टिआई में सर्वाधिक आदिम ऐक्टिनॉप्टेरिजिआई आते हैं। इसमें दो ऑर्डर हैं- ऑर्डर पॉलिप्टेरिफॉर्मिस **(Polypteriformes)** तथा ऑर्डर ऐसीपेन्सेरिफॉर्मिस **(Acipenseriformes)**। ऑर्डर पालिप्टेरिफॉर्मिस की कुछ जीनसों को छोड़कर अधिकतर सदस्य विलुप्त हो चुके हैं तथा उनके केवल जीवाश्म ही उपलब्ध हैं। जीवित बची जीनस *पॉलिप्टेरस* (चित्र 2.27) जो अफ्रीका की नदियों में रहती है, को सभी पॉलिप्टेरिफॉर्मिस का प्रतिनिधि माना जा सकता है। शरीर लम्बा तथा ईल-जैसा होता है। *पॉलिप्टेरस* मांसाहारी होती है। इसमें अनेक आदिम लक्षण पाए जाते हैं जैसे शरीर के ऊपर चतुष्कोणी (rhomboid) शल्कों का होना जो अतिव्यापी नहीं होते हैं। शल्कों के बाहर दंतिकाओं (denticles) की एक परत का होना, स्पाइरेकल का होना, तथा करोटि की हड्डियों की व्यवस्था भी आदिम। *पॉलिप्टेरस* की अंतड़ी में सर्पिल वाल्व का पाया जाना भी क्रॉसोप्टेरिजियन और आदिम ऐक्टिनॉप्टेरिजियन लक्षण है। तरण आशय फेफड़े-जैसा दिखायी पड़ता है। यह एक जोड़ी थैले के रूप में होता है जो अंतड़ी के नीचे अधर दिशा में होता है तथा एक मध्यक ग्लॉटिस (कंठद्वार) के द्वारा ग्रसनी में खुलता है। गैलियोज़ोइक युग की मछलियों में पायी जाने वाली यह व्यवस्था फुप्फस मीनो तथा चतुष्पादों में भी पायी जाती है। यह तरण आशय भले ही एक फेफड़े की तरह कार्य करता है फिर भी *पॉलिप्टेरस* केवल सांस लेने के ही लिए सतह पर आती है और वह जल के बाहर जीवित नहीं रह सकती। कुछ लक्षणों में *पॉलिप्टेरस* चतुष्पादों के समान होती है। इसकी पूंछ स्पष्ट तौर पर हेटेरोसर्कल नहीं दिखायी पड़ती, हालांकि इस प्रकार की दशा के कुछ चिन्ह तो हैं।

ऐसीपेन्सेरिफॉर्मिस वर्ग जिसमें स्टर्जियन तथा पैडल-मछलियां आती हैं, भी पॉलिप्टेरिफॉर्मिस से ही विकसित हुआ है और इनकी विशिष्टता है ह्रासित हुआ अस्थीभवन। आधुनिक स्टर्जियनों का एक उदाहरण `सिपेन्सर (*Acipenser*) (चित्र 2.28) है, तथा *पौलिडॉन* (*Polydon*) एक पैडल-मछली है। स्टर्जियन कदाचित जुरैसिक काल में प्रकट हुई। *ऐसियेंसर* तथा अन्य आधुनिक स्टर्जियनें समुद्र में रहती हैं मगर प्रजनन के लिए नदियों में प्रवास कर जाती हैं। स्टर्जियनों का आकार बहुत बड़ा हो जाया करता है जिनमें से कुछ तो 1000 kg तक की हो जाती हैं। ये अपने लम्बे थूथन से तली की कीचड़ को हिलाती हैं और उसमें पाए जाने वाले भांति-भांति के अकशेरुकियों को खाती हैं। मुख छोटा होता है, जबडे दुर्बल होते हैं तथा दांत नहीं होते। जबड़ों को नीचे और सामने को जोर से चलाया-घुमाया जा सकता है ताकि यह मछली तल में से अपने शिकार को मुख के भीतर खींच सके. इसके शिकार में शामिल हैं- घोंघे, कृमि, क्रस्टेशियन, कीट तथा मछलियां। करोटि तथा कंकाल लगभग पूरी तरह कार्टिलेजी होते हैं। नोटोकार्ड असंकीर्णित होता है। एक बड़ा तरण-आशय होता है। त्वचा पर चतुष्कोणीय शल्क बने होते हैं। एक खुला स्पाइरेकल होता है। स्टर्जियनों के भीतरी शारीर में कुछ बंधुताएं इलास्मोब्रैंक मछलियों के साथ होती हैं जैसे कि अंतड़ी में सर्पिल वाल्व का होना और हृदय में धमनी शंकु (conus arteriosus) का होना। जान पड़ता है कि स्टर्जियनें ऐक्टिनोप्टेरिजियन शाखा की एक आरम्भिक उपशाखा है। ये कुछ लक्षणों में टीलियोस्टों से मिलती-जुलती हैं जैसे कि प्रमस्तिष्क गोलार्धों की छत पतली होने में। *पौलीडॉन* तथा सेफ्यूरस (*Psephurus*) नामक "पैडल-मछलियां" स्टर्जियनों से संबंधित हैं हालांकि यह संबंध नज़दीकी नहीं है। "पैडल-मछलियों" का थूथन चपटा और मुख बड़ा होता है। आहार करने की प्रक्रिया में ये बहुत से जल को मुंह में भर लेती हैं और फिर उसे ग्रसनी की गिल-कर्षणियों (gill rakers) में से छानती हुई बाहर निकाल देती हैं।

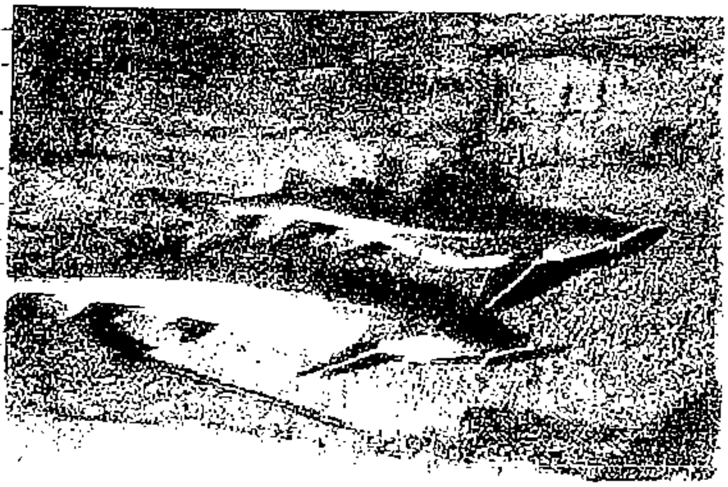

चित्र 2.28: *एसिपेंसर*

...ादिम नियोप्टेरिजियन

...नको होलोस्टिआई भी कहा जाता है। ये मछलियां कॉन्ड्रोस्टिआई की अपेक्षा कम आदिम होती हैं। ...बो-फिन" तथा "गॉरपाइक" मछलियां इनके उदाहरण हैं। ये अस्थिल मछलियां सर्वप्रथम जुरैसिक काल में ...कट हुई थीं। लगभग क्रिटेशियस काल में इनकी संख्या घटने लगी थी और आज केवल दो ही ...ोलोस्टियन जीनस गारपाइक *लेपिसोस्टियस* तथा "बो-फिन" *ऐमिया* (चित्र 2.29) जीवित बची हैं। परंतु ...ात जीवाश्म स्पीशीज अनेक हैं। ये दोनों जीनस एक-दूसरे के बहुत समान नहीं हैं तथा "बो-फिन" ...ेलियोस्टों के साथ अधिक निकटत: संबंधित है। होलोस्टिआई वर्ग तो मुख्यत: समुद्रवासी ही था मगर ...गारपाइक" तथा "बो-फिन" ये दोनों ही अलवण जलीय हैं। *लेपिसोस्टियस* में अनेक आदिम लक्षण पाए ...ाते हैं और लगता है कि ये उस समय के विकास-स्तर से और आगे विकसित नहीं हुई हैं जितनी कि यह ...्राइएसिक युग में थी। इसके शरीर पर मोटे-मोटे शल्कों का कवच बना होता है। तरण-आशय ग्रसनी में ...ुलता है। गारपाइकें सतह पर आकर हवा निगल लिया करती हैं। पूंछ लगभग सममित होती है। ...पाइरेकल नहीं होता। इस मछली में लम्बे-लम्बे जबड़े होते हैं जिनके द्वारा यह अन्य मछलियों को पकड़ ...ाया करती हैं। अंतड़ी में एक सर्पिल वाल्व होता है।

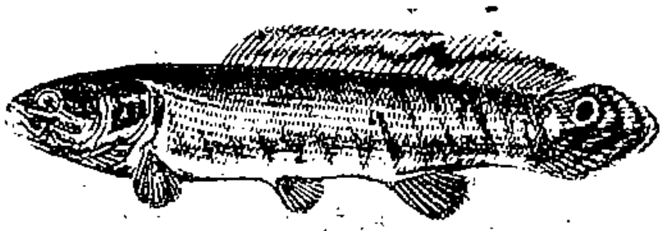

(a)

चित्र 2.29: (a) बोफिन *ऐमिया* तथा (b) गारपाइक *लेपिसोस्टियस*

"बो-फ़िनों" में शल्क ह्रासित होकर अस्थिल साइक्लॉइड शल्क बन जाते हैं वैसे ही जैसे कि टीलियोस्टों में होते हैं। पुच्छ-फिन पूरी तरह सममित होता है। दो बातों एक तो कंकाल और दूसरे पूर्ण भजी विदलन वाले छोटे-छोटे अण्डों के पाए जाने को छोड़कर "बो-फिन" *ऐमिया* न्यूनाधिक रूप में टीलियॉस्टों के समान होती हैं।

उपवर्ग टीलियोस्टिआई

टीलियोस्टिआई अर्थात् आधुनिक अस्थिल मछलियों ने आज के सभी समुद्रों और जलाशयों में अन्य ऐक्टिनॉप्टेरिजियनों का स्थान ले लिया है। वे होलोस्टिआई से उत्तर ट्राइऐसिक काल के दौरान विकसित हुई जान पड़ती हैं और उसके बाद वे अनेक उपशाखाओं में विकसित होती गयीं। आज अस्थिल मछलियों की 20,000 से भी अधिक स्पीशीज़ पायी जाती हैं। ये सब नौ ऑर्डरों के अंतर्गत आती हैं। पहले आप टीलियोस्टिआई के कुछ सामान्य लक्षणों के विषय में पढ़ेंगे और फिर उसके बाद उनके वर्गीकरण का संक्षेप में अध्ययन करेंगे।

चित्र 2.31: होमोसर्कल पूंछ

टीलियोस्टिआई के लक्षणों तथा संघटना का जो वर्णन यहां दिया जा रहा है वह अधिकतर आधुनिक टीलियोस्ट मछलियों पर ही लागू होता है। आधुनिक टीलियोस्ट मछलियां अपने पार्श्व समतल में छोटी तथा संकरी दिखायी पड़ती हैं मगर पृष्ठ-अधरत: वे गहरी होती है, जिसके कारण उनका शरीर धारारेखित (streamlined) आकृति का हो गया है (चित्र 2.30)। टीलियोस्टों की पूंछ सममित होती है इसलिए इसे होमोसर्कल (homocercal) कहते हैं (चित्र 2.31)। पुच्छ फ़िन के अतिरिक्त इनमें दो पृष्ठ

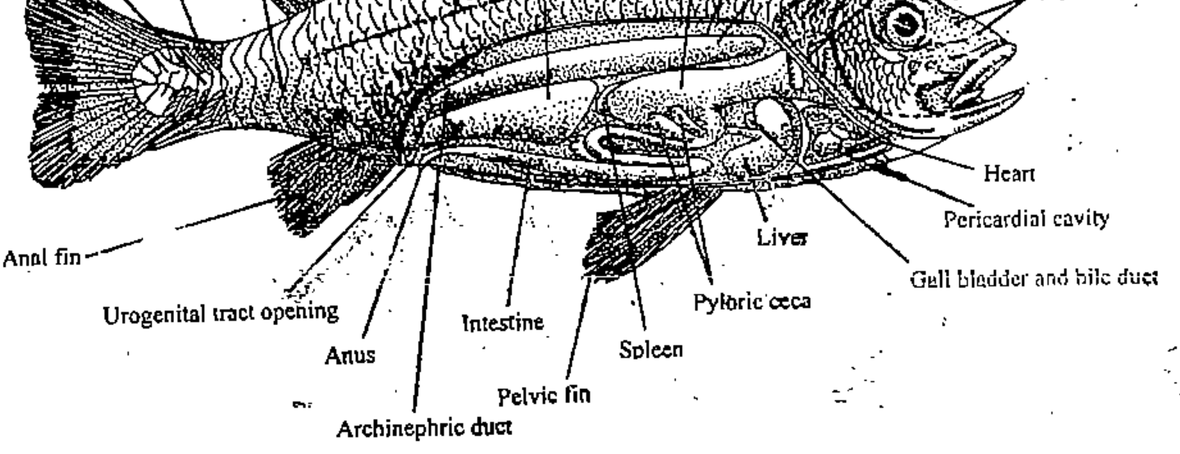

चित्र 2.30: एक टीलियॉस्ट मछली

फिन तथा एक अधर फिन होता है। युग्मित अंस फिन तथा श्रोणि फिन छोटे होते हैं तथा उनमें फ़िन-अरों का आलम्ब बना होता है। अस्थिल मछलियों का श्रोणि-फिन सामान्यत: काफी आगे की ओर होता है। अस्थिल मछलियों की त्वचा में एक पतली एपिडर्मिस तथा एक मोटी डर्मिस होती है।

त्वचा में श्लेष्मा-ग्रंथियां होती है। त्वचा पर बने शल्क डर्मिस में से बने हुए होते हैं। यह त्वचा द्वारा ढकी हुई अतिव्यापी अस्थिल प्लेटों जैसे दिखायी पड़ते हैं। वर्णक कोशिकाएं शल्कों के बाहर को खुले भागों पर बनी होती हैं और ये ही कोशिकाएं प्राणी के रंग का नियंत्रण करती हैं। शीर्ष पर एक जोड़ी नासाद्वार होते हैं। एक बड़ा मुख होता है जिसके किनारे गतिमान हड्डियों से आलंबित है। जीभ के ऊपर दांत और स्वाद कलिकाएं बनी हो सकती हैं। जबड़े के पीछे एक प्रच्छद होता है जो एक पल्ले-जैसा दिखायी पड़ता है और प्रच्छद गिलों को ढके रहता है तथा अंदर से गतिशील हड्डियों से आलम्बित होता है। शीर्ष का कंकाल परिवर्धन की आरम्भिक अवस्था के दौरान एक तो उन कार्टिलेजी बक्सों के समुच्चय के रूप में प्रकट होता है जो नासा-केप्सूलों तथा श्रवण केप्सूलों, मस्तिष्क एवं आंखों को चारों ओर घेरते हुए बनते हैं और दूसरे गिल-चापों के भीतर कार्टिलेजी शलाकाओं के रूप में। उसके बाद इनमें और हड्डियां जुड़ती जाती हैं जो या तो कार्टिलेजी हड्डियों के रूप में बनती हैं या त्वचा पर बने शल्कों की परत से व्युत्पन्न, चर्मीय हड्डियों के रूप में बनती हैं। जैसा कि अन्य कशेरुकियों में होता है इन अस्थिल मछलियों में भी कशेरुक दण्ड उस समय जब अनुदैर्घ्य पेशियां संकुचित हो रही होती हैं, शरीर को छोटा होने से रोकता है। कशेरुक दण्ड सुअस्थिभूत होता है और उसमें शृंखला बद्ध खण्ड अर्थात् कशेरुकें बनी होती हैं। कशेरुकों की संख्या शरीर के खण्डों अर्थात् सोमाइटों (somites) की संख्या के अनुरूप होती है। युग्मित फिनों यानि अंसफिनों तथा श्रोणि फ़िनों के अस्थिभूत रेडिअलों (radials) का आलम्ब बना होता है जिनके ऊपर डर्मिसी फिन अरें चढ़ होती हैं। फिन की रेडिअलें अपने आधार द्वारा मेखलाओं से संयोजित रहती हैं।

श्वसन की प्रक्रिया गिलों के द्वारा होती है। जल मुंह के भीतर से प्रवेश करता है और गिलों की सतह के ऊपर से बहता जाता है। मछलियों के गिल पतले तंतुओं के बने होते हैं और इन तंतुओं के ऊपर एक पतली एपिडर्मी झिल्ली चढ़ी होती है (चित्र 2.32)। यह झिल्ली बारंबार वलनित होकर प्लेट-जैसी पटलिकाएं (lamellae) बना लेती है जिसमें रक्त वाहिकाएं भरपूर बनी होती हैं। गिल ग्रसनी गुहा के बाहर स्थित होते हैं। गिल पटलिकाएं स्वतंत्र पल्ले-जैसी दिखायी पड़ती हैं जिनसे श्वसन के लिए उपलब्ध सतह में वृद्धि हो जाती है। गिल-तंतु तथा पटलिकाएं इस प्रकार व्यवस्थित होती हैं कि उनसे एक छिद्र-तंत्र बन जाता है जिनमें से होकर जल बहता जाता है (चित्र 2.32c)। गिल-श्वसन में गैसों का विनिमय बहुत कारगर होता है और जब जल गिलों से बाहर जा रहा होता है तब अनेक उदाहरणों में, उसमें उस ऑक्सीजन का केवल पांचवा भाग ही होता है जो आरम्भ में उसमें थी।

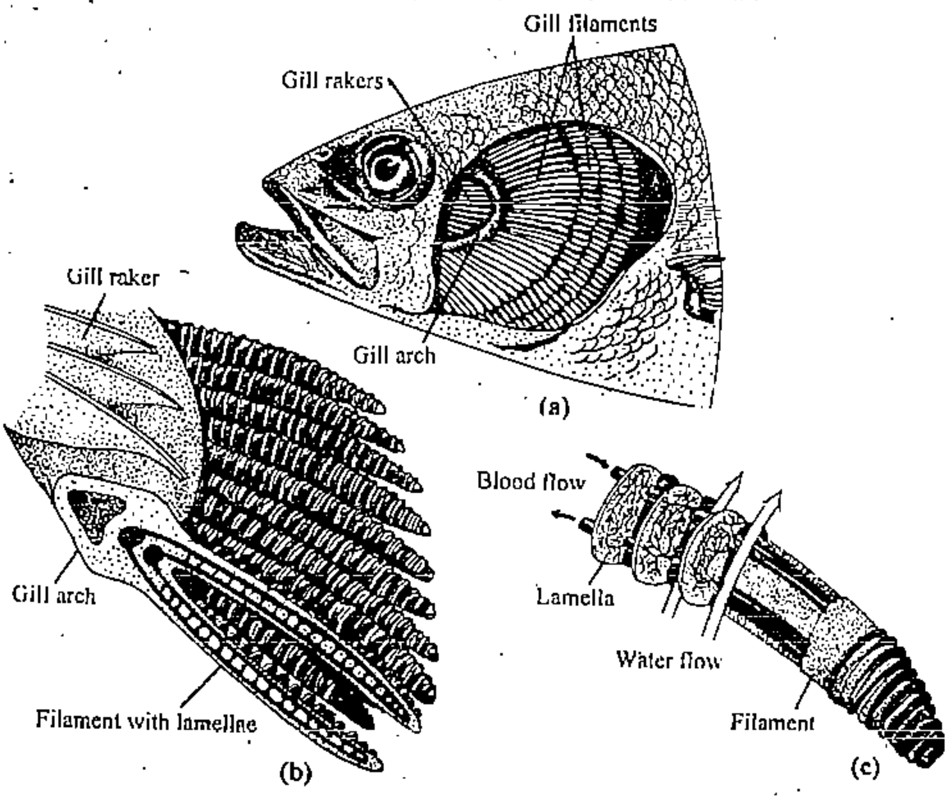

चित्र 2.32: मछली का गिल। (a) प्रच्छद हटा देने के बाद गिल-कक्ष जिसमें गिल-कर्षणियां तथा गिल तंतु दिखायी पड़ रहे हैं। (b) गिल कर्षणियां तथा गिल तंतु (c) एक अकेला गिल-तंतु। (बड़े तीर के निशान जल-प्रवाह की दिशा और छोटे तीर के निशान रक्त-प्रवाह दर्शा रहे हैं।

मछलियों के गिलों का क्षेत्रफल मछलियों की क्रियाशीलता के आधार पर अलग-अलग होता है। अनिवार्यतः जो मछलियां अधिक सक्रिय होती हैं उनके गिलों का क्षेत्रफल भी उसी के अनुसार अधिक होता है। जो मछलियां कम ऑक्सीजन मात्रा वाले जलों में रहती हैं उनमें श्वसन-दर अधिक होती है। उष्णकटिबंधीय देशों में उथले स्थिर जलों में रहने वाली मछलियां वायु में भी सांस ले सकती हैं। जल की सतह के समीप रहने वाली मछलियां वायु को निगल तक सकती हैं। जिन मछलियों में वायु-श्वासी अंग होते हैं जैसे ऐनाबस (*Anabas*) जिसे चढ़ने वाली पर्च भी कहते हैं (चित्र 2.33), वे पानी सूख जाने पर निश्चय ही थल पर आ जाती हैं। "कैट-फ़िश" जैसे कि क्लैरिअस (*Clarias*) रात के समय थल पर शिकार पकड़ने के हेतु जाया करती है। एक अन्य कैट-फ़िश सैक्कोब्रैंकस (*Saccobranchus*) (चित्र 2.34) जल सूख जाने पर कीचड़ में बिल बनाकर उसमें ग्रीष्मनिद्रा में चली जाती हैं।

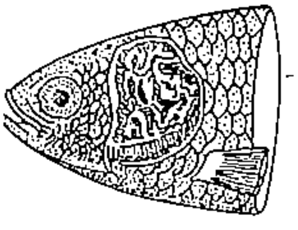

चित्र 2.33: ऐनाबस का शीर्ष जिसमें वायु- श्वासी अंग दिखायी पड़ रहे

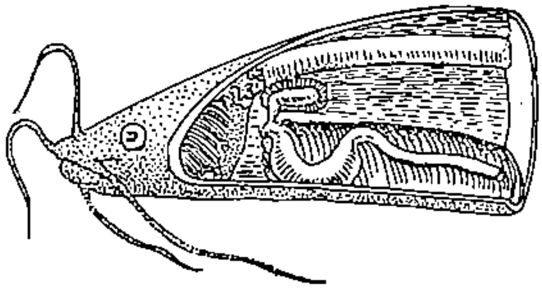

चित्र 2.34: *सैक्कोब्रैंकस।*

अधिसंख्य मछलियां मांसाहारी होती हैं वे विविध प्रकार के आहार करती हैं जिनमें छोटे आकार के प्राणि-प्लवक (zooplankton) और कीट-लार्वों से लेकर बड़े आकार के कशेरुकी तक हो सकते हैं। गहरे समुद्र की कुछ मछलियां तो स्वयं अपने आकार से भी दो गुने आकार के शिकार को खा सकती हैं। शिकार को पकड़ने का काम तेज़ नुकीले दांतों द्वारा किया जाता है जो जबड़ों में तथा मुख के अंदर छत पर बने होते हैं, और शिकार को समूचा निगल लिया जाता है। कुछ शाकाहारी मछलियां पुष्पी पौधों, शैवालों और घासों को खाती हैं। मछलियों का एक तीसरा वर्ग है निस्पंद-आहारकों (filter feeders) का, जो समुद्र में उपलब्ध प्रचुर सूक्ष्मजीवों को खाती हैं। मछलियों के लार्वा, "बास्किंग" शार्कें तथा हेरिंग इस श्रेणी में आती हैं। वेलापवर्ती (pelagic) मछलियां अपनी छलनी-सरीखी गिल-कर्षणियों से पादप एवं प्राणि-प्लवकों को छान कर खा जाती हैं। कुछ मछलियां सर्वभक्षी (omnivorous) भी होती हैं जो पादप और प्राणी दोनों प्रकार के आहार को खाती है। अंततः एक श्रेणी अपमार्जक (scavenger) मछलियों की होती है जो जैविक कचरे-कूड़े को खाती हैं और परजीवी मछलियां भी होती है जो अन्य मछलियों के देह-तरलों को चूसती हैं।

मुख पीछे ग्रसनी में खुलता है जिसके बाद एक छोटी ग्रसिका आती है। जठर के छिद्र पर एक ग्रसिका-संवरणी (oesophageal sphincter) होती है जो श्वसन-तंत्र की जलधारा को जठर में जाने से रोकती है। अंतड़ी लंबी तथा कुंडलित होती है और सर्पिल वाल्व नहीं होता। पाइलोरिक अंधनाल (pyloric caeca) डुओडिनम (ग्रहणी) क्षेत्र में बने हो सकते हैं जिनके द्वारा आंत्र-सतह में वृद्धि हो जाती है।

सभी मछलियां जल से मामूली सी भारी होती हैं। ऐसा इसलिए क्योंकि मछलियों के कंकाल और उनके ऊतकों में कुछ भारी तत्व होते हैं जो जल में केवल लेश मात्राओं में ही पाए जाते हैं। अस्थिल मछलियों की जल में उत्प्लावकता का बढ़ना एक और साधन से भी होता है, यह है एक प्लवन-युक्ति (floatation device) जो गैस से भरी एक गुहा होती है, इस रचना को **तरण-आशय (swim bladder)** कहते हैं (चित्र 2.35)। तरण-आशय अधिसंख्य वेलापवर्ती मछलियों में होता पाया जाता है मगर उन मछलियों में जो गहरे जलों तथा समुद्र के तल में रहती हैं, नहीं पाया जाता। तरण-आशय के भीतर की गैस का आयतन कम-ज्यादा करके उदासीन (न्यूट्रल) उत्प्लावकता (neutral buoyancy) प्राप्त की जा सकती है। इस प्रकार की समंजन व्यवस्था से मछली बिना पेशीय प्रयत्न के जल के भीतर चाहे जिस गहराई पर स्थिर बनी रह सकती है। नीचे अधिक गहराई पर जाने के लिए आशय में गैस की मात्रा बढ़ा दी जाती है और जब उसे तैर कर ऊपर आना होता है तब आशय में से गैस निकाल दी जाती है और मछली हल्की हो जाती है।

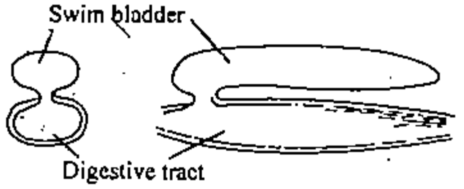

चित्र 2.35: टीलियॉस्ट का तरण आशय

टीलियोस्टों के हृदय में क्रमवत बने हुए तीन कक्ष होते हैं- कोटर (साइनस), आलिंद तथा निलय। उनमें इलास्मोब्रैंकों जैसा धमनीय शंकु नहीं होता मगर पतली दीवार वाला एक धमनी शंकु छोटी अधर महाधमनी के आधार पर बना होता है। लाल रक्त कोशिकाएं अस्थिल मछलियों में छोटी होती हैं, लगभग 8 से 10 µm. व्यास की। अस्थिल मछलियों में श्वेताणुओं की तीन मुख्य श्रेणियां होती हैं- ग्रैनुलोसाइट, मॉनोसाइट तथा लिम्फ़ोसाइट। थ्रॉम्बोसाइट भी होते हैं जिनका कार्य स्तनियों की प्लेटलेट्स के समान होता है।

वयस्क टीलियोस्टों में वृक्क (गुर्दे) मीज़ोनेफ्रिक प्रकार के होते हैं (चित्र 2.36)। दो गुर्दों की वाहिनियां पश्चत: परस्पर जुड़ कर एक सम्मिलित वाहिनी बना लेती हैं जो गुदा के पीछे अलग से बाहर को खुलती है। नाइट्रोजनी अपशिष्टों का निष्कासन अधिक मात्रा में गिलों द्वारा होता है जो अमोनिया तथा यूरिया दोनों का उत्सर्जन करते हैं। गिलों द्वारा नाइट्रोजन का उत्सर्जन वृक्कों द्वारा होने वाले उत्सर्जन से छह गुना अधिक मात्रा में होता है। वृक्कों द्वारा उत्सर्जन होने वाले पदार्थ हैं क्रिएटिनीन, यूरिक अम्ल तथा ट्राइमीथाइलऐमीन ऑक्साइड (trimethylamine oxide)।

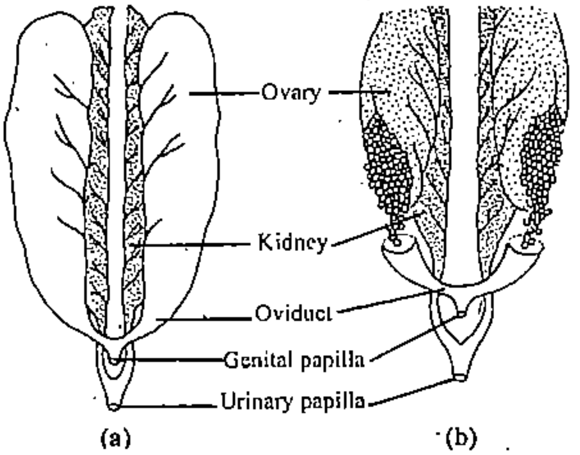

चित्र 2.36: मादा टीलियोस्टों का मूत्रजनन तंत्र (a) प्ररूपी टीलियोस्ट (b) ट्राऊट

अस्थिल मछलियां अलवण जल तथा लवण जल दोनों ही में पायी जाती हैं। इनके सामने शरीर के जल एवं लवण अंश के नियमन के संबंध में अलग-अलग समस्याएं आती हैं। अलवण जल की मछलियां एक ऐसे माध्यम में रहती हैं जिसमें लवणों का सांद्रण बहुत ही कम रहता है और उनके लिए खतरा बना रहता है कि कहीं बाहर का जल परासरण के द्वारा उनके शरीर में न प्रवेश कर जाए और साथ विसरण द्वारा शरीर के लवण बाहर न निकल जाएं।

जल का ग्रहण किया जाना तथा लवणों की हानि ये दोनों क्रियाएं मुख्यत: गिलों की पतली झिल्ली के आर-पार होती हैं। अलवणजलीय मछलियां अधिपरासरणी (hyperosmotic) नियमनकर्त्ता होती हैं। वे अधिशेष जल को मीज़ोनेफ्रिक वृक्क के द्वारा बाहर को पम्प करती जाती हैं और बहुत ही तनु मूत्र का उत्सर्जन करती हैं। गिल-झिल्ली में विद्यमान लवण-अवशोषी कोशिकाएं बाहर के जल के सोडियम तथा क्लोराइड आयनों को सक्रिय रूप में भीतर रक्त में पहुंचाती रहती हैं, और इस प्रकार शरीर से विसरण द्वारा होने वाली लवणों की हानि की भरपायी करती रहती हैं (चित्र 2.37)। समुद्री मछलियों के सामने आने वाली समस्याएं इसके विपरीत हैं। चूंकि ये अधिक लवण सांद्रण वाले समुद्री जल में रहती हैं इसलिए इन मछलियों में शरीर से जल के बाहर निकलने की प्रवृत्ति होती है। इस प्रकार जल उनमें से बाहर निकलता है और विभिन्न लवण शरीर के भीतर आते हैं। शरीर से जल की हानि रोकने के लिए ये अल्पपरासारी (hypoosmotic) नियमनकर्त्ता समुद्र-जल को पीती रहती हैं। इस प्रक्रिया में फ़ालतू लवणों की बहुत सारी मात्रा भी शरीर में पहुंचती जाती है। यह अधिशेष लवण दो विधियों द्वारा शरीर से बाहर

निकाले जाते रहते हैं, एक तो गिलों में स्थित विशेष लवण-स्रावी कोशिकाओं के द्वारा और दूसरे विष्ठा के साथ-साथ अंतड़ी के द्वारा। कुछ हद तक ये अधिशेष लवण वृक्कों द्वारा नलिकीय स्रवण की प्रक्रिया द्वारा भी बाहर निकाले जाते हैं। क्योंकि इन मछलियों में फ़िल्ट्रेट बहुत थोड़ी मात्रा में बनता है इसलिए ग्लोमेरूलसों (वृक्क में केशिका गुच्छे) का अपना महत्व खत्म हो गया है और कुछ समुद्री टीलियॉस्टों में ये बिल्कुल ही नहीं होते (चित्र 2.37)। "पाइप-फिशें" तथा "गूज़-फ़िशें" ऐसी ही ग्लोमेरूलस-विहीन वृक्कों वाली मछलियों के उदाहरण हैं।

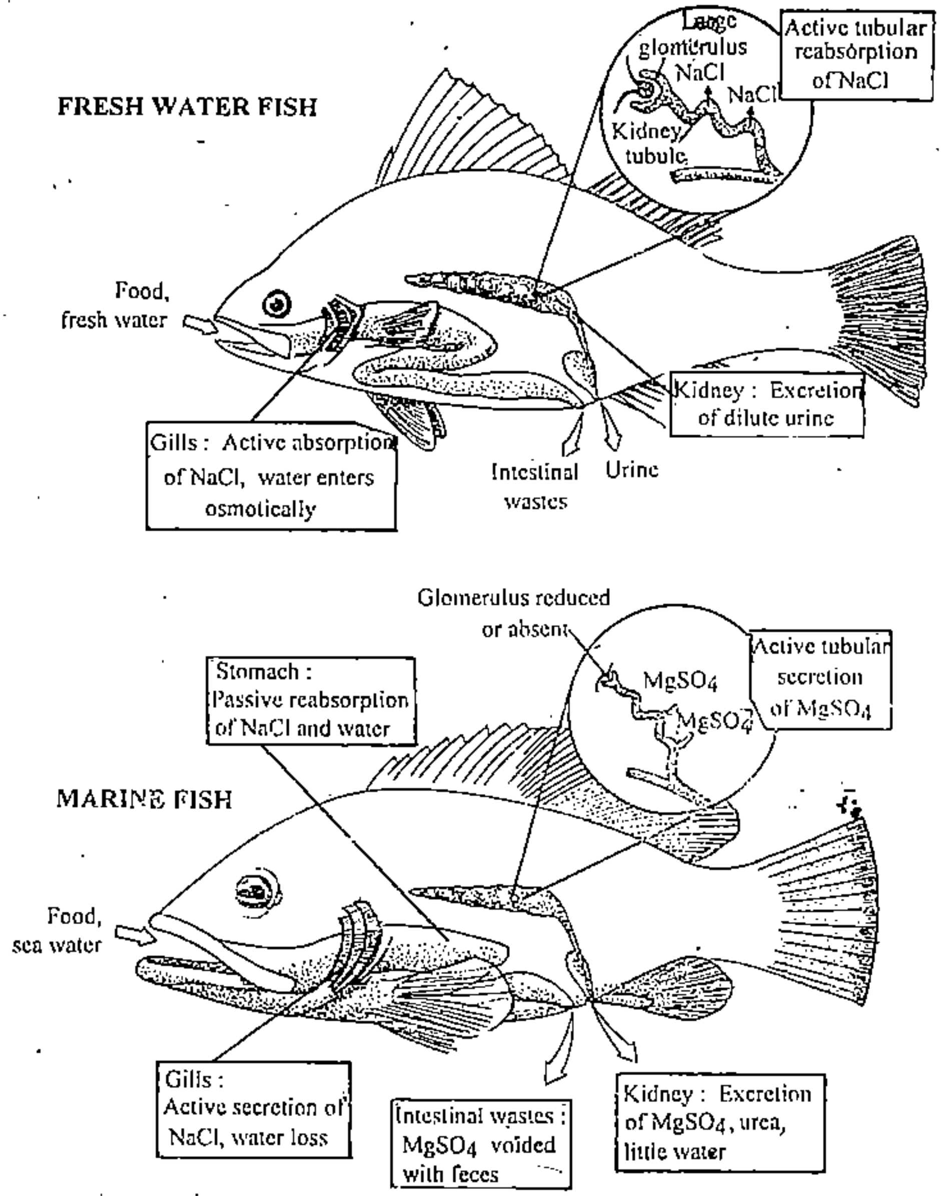

चित्र 2.37: मछलियों में परासरणनियमन

अधिसंख्य टीलियोस्ट एक लिंगाश्रयी (dioecious) होती हैं जिनमें बाह्य निषेचन और अंडों तथा भ्रूणों का परिवर्धन बाह्य होता है। इनमें से अधिकतर अंडप्रजक होती हैं और कुछ ऐसी भी हैं जो अंडशिशुप्रज (ovoviviparous) तथा शिशुप्रज (viviparous) भी होती हैं। अनेक मछलियों में और विशेषकर अलवणजलीय मछलियों में बड़े व्यापक रूप में अनुरंजन क्रीड़ाएं होती हैं। चतुष्पादों से भिन्न अस्थिल मछलियों के नर और मादा दोनों में उत्सर्गी तथा जनन तंत्र एक-दूसरे से पूरी तरह पृथक् होते हैं। वृषण एक जोड़ी बड़े थैलों के रूप में होते हैं जो पीछे मूत्र वाहिनियों के आधार पर उनमें खुलते हैं। अण्डाशय सामान्य तौर पर बंद पेशीय थैले होते हैं जो पीछे अंडवाहिनियों में जुड़ते हैं। मगर कुछ मछलियों में जैसे कि ट्राउटों में, अंडाशय लम्बे होते हैं, अण्डे सीलोम में निकाल दिए जाते हैं (चित्र 2.36b) और फिर वहां से वे उदर छिद्रों में से बाहर निकल जाते हैं।

अभी तक आपने अस्थिल मछलियों के सामान्य लक्षणों के विषय में पढ़ा। अब आप टीलियोस्टिआई के वर्गीकरण के बारे में संक्षेप में पढ़ेंगे।

डिविजन टीलियोस्टिआई का वर्गीकरण

आप पहले पढ़ चुके हैं कि टीलियोस्ट मछलियों की लगभग 20,000 स्पीशीज़ पायी जाती हैं जो 9 भिन्न अधिऑर्डरों के अंतर्गत आती हैं। इन 9 अधिऑर्डरों में से अधिऑडर इलोपोमॉर्फा **(Elopomorpha)** में आज की जीवित टीलियोस्टों में से सबसे आदिम जातिया आते हैं। इनके कुछ उदाहरण हैं इलोप्स (*Elops*) "टेन-पाऊन्डर", *मेगालॉप्स* (*Megalops*) "टार्पोन" तथा *ऐंग्यूइला* (*Anguilla*) "ईल" (चित्र 2.38)।

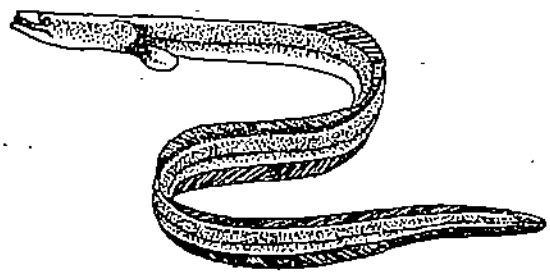

चित्र 2.38: अलवणजलीय ईल- *ऐंग्यूइला*

अधिऑर्डर ऑस्टिओग्लॉसोमॉर्फा **(Osteoglossomorpha)** में अलवणजलीय मछलियां आती हैं जैसे "गज-थूथन मछली" *मॉरमाइरस* (*Mormyrus*) तथा "तितली मछली" *पैंटाडॉन* (*Pantodon*)। अधिऑर्डर क्लूपियोमॉर्फा **(Clupeomorpha)** में परिचित हेरिंग *क्लूपिआ* (*Clupea*) (चित्र 2.39) आती हैं।

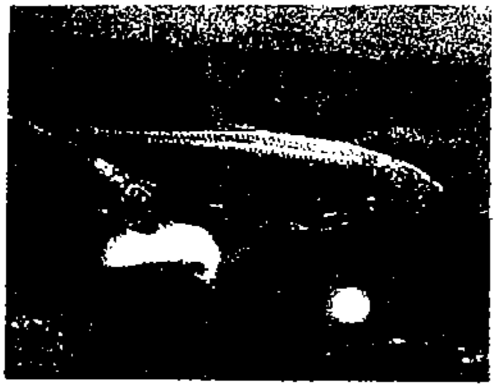

चित्र 2.39: हेरिंग क्लूपिआ

अधिऑर्डर ऑस्टेरिओफाइसी **(Ostariophysi)** एक बड़ा वर्ग है जिसमें 5000 स्पीशीज़ आती हैं जिनमें से अधिकतर अलवणजलीय होती हैं। इन मछलियों में वेबर अस्थिकाएं (Weberian ossicles) नामक संरचनाएं तरण-आशय को कान के साथ जोड़ती हैं। ये वेबर अस्थिकाएं अग्र कशेरुकों के रूपांतरण से बन गयी हैं। इस वर्ग में ये सब मछलियां आती हैं- कार्प (*साइप्रिनस, Cyprinus*), गोल्ड-फिश (चित्र 2.40)।

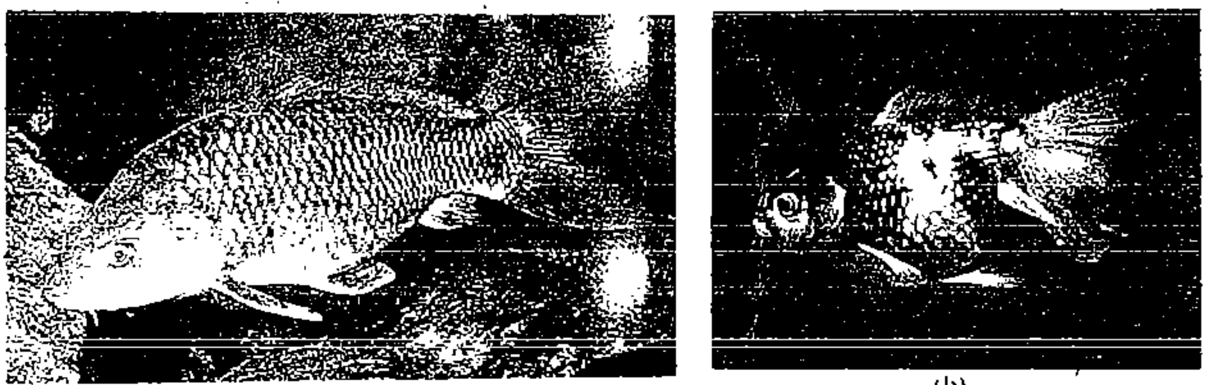

(a) (b)

चित्र 2.40: (a) *साइप्रिनस* एक सामान्य कार्प (b) गोल्ड फिश-*कैरेसियस* (*Carassius*)

रोच (रूटिलस, *Rutilus*) कैट-फिश (साइल्यूरस, *Silurus*) तथा बार्ब इत्यादि। पाँचवा अधिऑर्डर **प्रोटैकैन्थोप्टेरिजिआई (Protacanthopterygii)** है जिसमें वे मछलियां आती हैं जिनकी देह संघटना एक तरफ अधिक आदिम उदाहरणों तथा दूसरी तरफ सबसे आधुनिक शूल-फिन टीलियोस्टों के बीच की है। इसी कारण इन मछलियों को कभी-कभार मेसिक्थीइस (Mesichthyes) का नाम दिया जाता है। इस वर्ग के उदाहरण हैं ट्राऊट (*साल्मो, Salmo*) (चित्र 2.41) तथा पाइक (इसॉक्स, *Esox*) अधिऑर्डर **स्टोमिआटिफॉर्मिस (Stomiatiformes)** में कुछ विषेश प्रकार की टीलियोस्ट जैसे कि 'लाइट फिश' *गोनोस्टोमा* (*Gonostoma*) आती है। अधिऑर्डर **स्कोपेलोमॉर्फा (Scopelomorpha)** में गहरे समुद्री जल में रहने वाली लैटर्नफिश *मिक्टोफस* (*Myctophus*) और अन्य ऐसी मछलियां आती हैं।

चित्र 2.41: रेनबो ट्राउट *साल्मो*

अधिऑर्डर **पैराकैंथोप्टेरिजिआई** में "ऐंगलर-मछली" *लोफियस* (*Lophius*), गहरे समुद्र की ऐंगलर-मछली *फ़ोटोकोरिनस* (*Photocorynus*) "सकर-फ़िश" एकाइनीइस (*Echineis*) (चित्र 2.42) तथा "व्हाइटिंग फ़िश" *गैडस* (*Gadus*) आती हैं। अधिऑर्डर एकैंथॉप्टेरिजिआई **(Acanthoptenygii)** हैं।

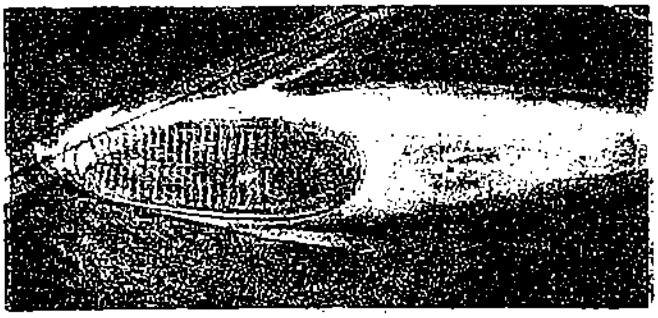

चित्र 2.42: सकर-फिश *एकाइनीइस*

जिसमें शूल-फिन मछलियां आती हैं; ये मछलियां समस्त एक्टिनोप्टेरिजिअनों में सर्वाधिक संख्या में पायी जाती हैं। साथ ही ये ही अत्यधिक विकसित टीलियोस्ट होती हैं। इन मछलियों की विशेषता है कि इनके पृष्ठ-एवं गुदा-फ़िनों के सामने की ओर कड़े शूल बने हुए होते हैं और उसी आधार पर इनका यह नाम "शूल-फिन" (spiny-finned) मछलियां पड़ा। दांत प्रीमैक्सिला के सीमांतों पर बने होते हैं। मैक्सिला पर दांत नहीं बने होते, मगर यह एक लीवर-जैसा काम करती हुई जबड़े को आगे को धक्का देती है ताकि आहार को मुंह के भीतर खींच सकें। तरण-आशय की वाहिनी बंद होती है, शरीर छोटा हो गया है तथा श्रोणि फ़िन बहुत आगे को आ गए हैं। इस वर्ग में आज की बहुत सी आधुनिक मछलियां आती हैं जैसे पर्च (*पर्का, Perca*) (चित्र 2.43a) बोई (*मुंजिल Mugil*) (चित्र 2.43b), चपटी-मछली (*प्ल्यूरोनेक्टस, Pleuronectus*), सोल (*सोलिया, Solea*) स्टिकलबैक (*गैस्टेरॉस्टियस, Gasterosteus*), पाइप-फ़िश (*सिनग्नैथस, Syngnathus*), समुद्री घोड़ा, (*हिप्पोकैम्पस, Hippocampus*) (चित्र 2.44) तथा और भी अनेक स्पीशीज़ हैं। इसी अधिऑर्डर में उड़न-मछली (*एक्सोसीटस, Exocoetus*) तथा (*सिपसिल्यूरस, Cypsilurus*) (चित्र 2.45) तथा गारपाइक (*बेलोन, Belone*) आती हैं।

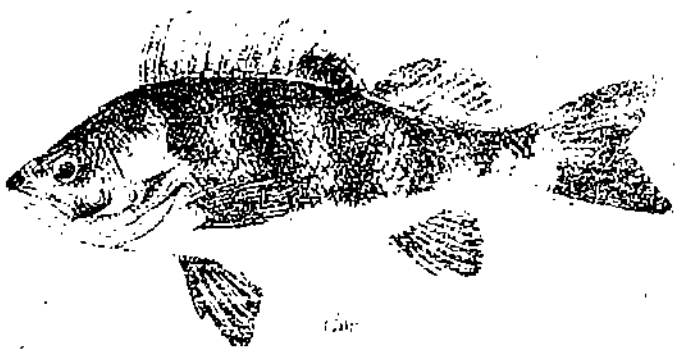

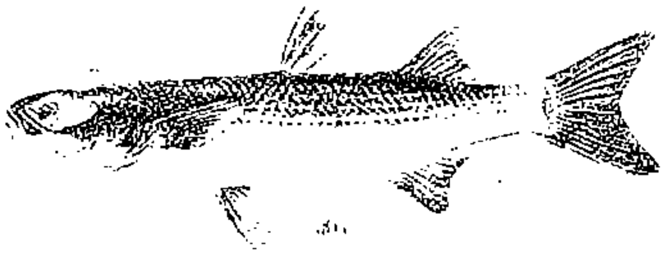

चित्र 2.43: (a) पर्च-*पर्का* (b) बोई *मुजिल*

चित्र 2.44: समुद्री घोड़ा *हिप्पोकैम्पस* नर और मादा। इनमें नर ही पैतृकता दर्शाता है। वह परिवर्धनशील भ्रूणों को अपने शरीर पर बनी थैली में लिए तैरता है। और सारी देखभाल भी यही करता है।

चित्र 2.45: उड़न-मछली *सिपसिल्यूरस*

बोध प्रश्न 3

निम्न वाक्यों में दिए गए विकल्पों में से अनुपयुक्त शब्द को काटिए:-

(i) क्लास ऑस्टिक्थीज का उदय मध्य पैलियोज़ोइक/मेसोज़ोइक युग में हुआ जान पड़ता है।

(ii) अधिसंख्य मछलियां मांसाहारी/शाकाहारी होती हैं।

(iii) अस्थिल मछलियां मानव आहार का थोड़ा/अधिक अंश होती हैं।

(iv) जीनस *लैटिमेरिया* ऑर्डर राइपिडिस्टिया/सीलाकैन्थिफार्मीज़ में आती हैं।

(v) क्रॉसोप्टेरिजियनों में हेटेरोसर्कल/डिफ़िसर्कल पूंछ पायी जाती है।

(vi) *लैटिमेरिया* को एक जीवाश्म/जीवित जीवाश्म माना जा सकता है।

(vii) डिप्नोअनों में जबड़ा निलंबन हायोस्टाइलिक/ऑटोस्टाइलिक प्रकार का होता है।

(viii) जीनस *निओसेरैटोडस* में तरण आशय अयुग्मित/युग्मित होता है।

(ix) कॉण्ड्रोस्टीआई में वे मछलियां आती हैं जिनकी देह-संघटना आदिम/उन्नत होती हैं।

(x) प्रजनन के वास्ते स्टर्जियन मछलियां ऐनाड्रोमस (उपरिगामी)/कैटाड्रोमस (अधोगामी) प्रकार की प्रवास यात्राएं करती हैं।

(xi) होलोस्टिआई की दो जीवित जीनसे *ऐमिया* तथा *लेपिसोस्टियस* समुद्री/अलवणजलीय प्राणी हैं।

(xii) "बो-फ़िन" मछलियों की खाल में साइक्लॉइड/प्लैकॉइड शल्क पाए जाते हैं।

(xiii) टीलियॉस्टों में होमोसर्कल/हेटेरोसर्कल पूंछ पायी जाती हैं।

(xiv) जो मछलियां कम ऑक्सीजन मात्रा वाले जल में रहती हैं, उनमें श्वसन दर ऊँची/नीची होती हैं।

(xv) मछलियों के लार्वा फ़िल्टर-अशनी/मांसाहारी होते हैं।

(xvi) तरण-आशय वेलापवर्ती/तलवासी मछलियों में नहीं होता।

(xvii) टीलियॉस्ट मछलियों का धमनी शंकु पेशीय/पतली दीवार वाला होता है।

(xviii) टीलियॉस्टों का अधिकतर उत्सर्जन गिलों/वृक्कों के द्वारा होता है।

(xix) अलवण जलीय मछलियां अपने मीज़ोनेफ़्रिक वृक्कों से अधिक/कम जल को पम्प करती हैं। जिससे वे बहुत तनु/सांद्रित मूत्र निकालती हैं।

(xx) समुद्री टीलियॉस्टों में सुविकसित ग्लोमेरूलस होता है/नहीं होता।

(xxi) टीलियॉस्टों में उत्सर्गी तथा जनन-तंत्र समाकलित/पृथक होते हैं।

2.3.7 भारत की कुछ सामान्य अलवणजलीय मछलियाँ

भारत के मुख्य नदीतंत्रों में मछलियाँ बहुतायत में हैं। इन तंत्रों के भौतिक-रासायनिक और जलजीवी कारक मछलियों के जीवन और उनके प्रजनन के लिए काफी अनुकूल तथा सहायक हैं। यह नदी तंत्र अनेक प्रकार के प्राणियों को आश्रय देते हैं। जिनमें पादपप्लवक और प्राणीप्लवक जो मछलियों के आहार होते हैं, भी शामिल है। मुख्य भारतीय नदीतंत्र है- (1) गंगा नदीतंत्र, जिसमें गंगा, यमुना और गंघक शामिल है; (2) ब्रह्मपुत्र नदीतंत्र; (3) पूर्वी तट के नदीतंत्र जिनमें गोदावरी, कृष्णा और कावेरी नदियां आती हैं और (4) पश्चिमी तट के नदीतंत्र जिसमें नर्मदा, ताप्ती नदिया शामिल हैं। गंगा नदी तंत्र में पायी जाने वाली मछलियों है: कार्प जैसे कि *लेबिओ रोहिता* (रोहू, चित्र के लिए खंड का कवर प्रष्ठ देखें), सिर्हाइनस मृगाला (मृगाला) चित्र 2.46a देखिए, *कटला कटला* (कटला) (चित्र 2.46b) *लेबिओ कल्बासू* (चित्र 2.46c) और क्लूमिड *हिल्सा* (चित्र 2.46d) अन्य स्पीशीज जैसे कि *पैंगेसिअस, सिलोनिआ सिलोन्डिआ, सेटिपिन्ना फैसा, रीटा रीटा सिर्हाइनस* रेबा। *बैगेरिअस बैगेरिअस* (गुंच) भी पायी जाती है। ब्रह्मपुत्र नदीतंत्र मछलिओं की 126 फैमिलीओं से लगभग 126 स्पीशीज़ का संभरण करता है। इनमें से 41 स्पीशीज़ व्यापारिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। शिंगटी (catfish) महा तथा गौण कार्प, हिल्सा इस क्षेत्र की प्रमुख स्पीशीज है। शिंगटी में *वलैगो* और कार्प में *लेबिओ रोहिता* इस नदीतंत्र से पकड़ी जाने वाली प्रमुख मछलियाँ है।

पूर्वी तट के नदी तंत्रों में गोदावरी में (1) कार्प-*लेबिओ फिमब्रियेटस, सिर्हाइनस मृगला, लेबिओ कल्बासू* तथा *कटला कटला* (2) शिंगटी-*मिस्टस सींघला, मस्टस अओर* (*Mustus aor*), *सिलोनिआ चिल्डरनाई* (*Silonia childreni*), *वलैगो अट्टू* (*W. attu*), *पेंगेसिअस पेंगेसिअस* (*P. pangasius*) तथा *बैगेरिअस बैगेरिअस* (4) *हिल्सा इलिशा* (*H. ilisha*) पायी जाती है। कावेरी नदी में करीब मछलियों की 80 स्पीशीज पायी जाती हैं। ये 23 फेमिलियों में आती हैं। इनमें से कार्प की मुख्य स्पीशीज है - *एक्रोसोचाइलस हेक्सोगॉनोलेपिस* (*Acrossocheilus hexogonolepis*), *टॉर पुलिटोरा* (*Tor pulitora*), *बार्बस कार्डियस* (*Barbus cardius*), *बार्बस डूबिअस* (*B. dubius*).

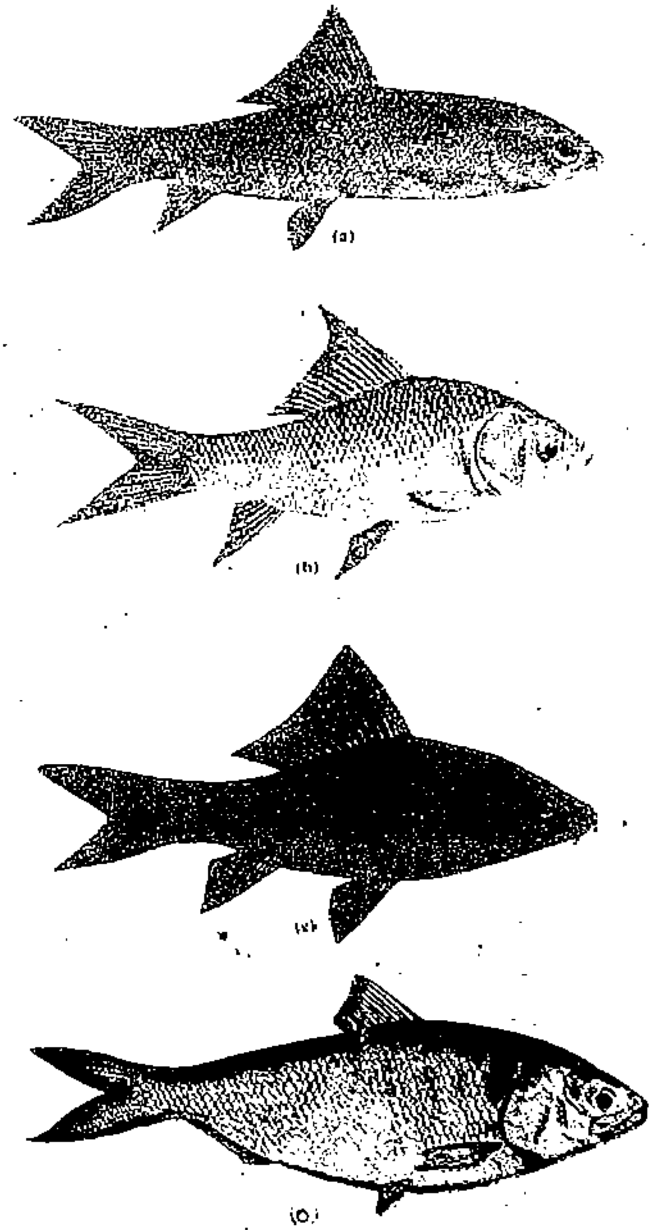

चित्र 2.46: गंगा नदीतंत्र की अलवणजलीय मछलियाँ (a) *सिर्हाइनस मृगला* (b) *कटला कटला* (c) *लेबिओ कल्बासू* (d) *हिल्सा इलिशा*

लेबिओ अराइज़ा (*L. ariza*) तथा *सिर्हाइनस सिर्होसा* (*C. cirrhasa*)। कावेरी नदी में कुछ आयात करी गयी शिंगटी स्पीशीज़ पायी जाती है। ये है *ग्लप्टोथोरैक्स मैडागास्करिन्सस* (*Glyptothorax madagaskariensis*), *मस्टस आओर*, *मिस्टस सींघला*, *पेंगेसिअस पारगेसिअनस* (*P. pargasiens*), *वलैगो अट्टू* तथा *सिलोनिआ सिलोनडिआ*। *चाना मारुलिअस* (*Channa marulius*) जैसी मुरल तथा *नोटोप्टेरस* (*Notopterus notopterus*) जैसी फेदरबैक मछलियां भी कावेरी नदी में पायी जाती हैं। गंगा की *कटला कटला*, *लेबिओ रोहिता*, *सिर्हाइनस मृगला* और *साइप्रिनस कार्पिओं* (*Cyprino carpio*) तथा *ऑसफ्रोनीमस गोरैमी* जैसी कुछ आकर्षक विदेशी स्पीशीज़ भी कावेरी नदी में प्रवेश कराई गयी हैं।

पश्चिमी तट के नदीतंत्र में नर्मदा *टॉर टॉर*, *लेबिओ फिम्ब्रिएटस* (*L. fimbriatus*), *लेबिओ कल्बासू* तथा *सिर्हाइनस मृगला* जैसी कार्प और *रितु पैरिमेन्टेटा*, *मिस्टस सींघला*, *वलैगू अट्टू* और *मस्टस अओर* जैसी शिंगटी मछलियों का संभरण करती है। इनसे मिलती जुलती स्पीशीज़ ताप्ती नदी में भी पायी जाती हैं।

2.4 ऐम्फ़िबिया

प्राणियों के विकास में जो एक सबसे महत्वपूर्ण घटना घटी वह थी प्राणियों का जल से बाहर निकल कर स्थल पर आना। जलीय पर्यावरण से स्थलीय पर्यावरण की दिशा में परिवर्तन होने के लिए जीव-जंतुओं में

नानाविध संरचनात्मक, प्रकार्यात्मक तथा स्वभावपरक रूपांतरण होने आवश्यक थे। वास्तव में इन परिवर्तनों के लिए शरीर के लगभग प्रत्येक अंग-तंत्र में बदलाव होना जरूरी थी। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि समस्त कशेरुकियों के आधारभूत संरचनात्मक तथा प्रकार्यात्मक प्रतिरूप में एक मूल समानता पायी जाती है। हालांकि कशेरुकियों में ऐम्फ़िबियन ही वे पहले प्राणी थे जो स्थल पर आकर रहने लगे, मगर अकशेरुकियों में कीट तो ऐसा बहुत पहले ही कर चुके थे तथा पौधे तो सबसे पहले स्थल पर आए थे। मगर उन सभी जीवधारियों में से जो स्थल की ओर आ गए ऐम्फ़िबियनों को इसलिए महत्वपूर्ण माना जाता है क्योंकि आगे चलकर इन्हीं के वंशज पृथ्वी के सर्वाधिक उन्नत प्राणी बने। स्थल पर जीवन बिताने की दिशा में तीन शारीरिक संघटनात्मक परिवर्तन आवश्यक थे (i) जीव का अपना भार संभालने की क्षमता प्राप्त करना (ii) शरीर को सूखने से रोकना तथा तीव्र तापमान-परिवर्तनों का सामना करने की क्षमता पैदा करना, तथा (iii) वायु से ऑक्सीजन को प्राप्त करना। लगभग 40 करोड़ वर्ष पूर्व डिवोनियन काल में जलवायु में यह विशेषता थी कि उसमें सूखा और बाढ़ एक के बाद एक आते रहते थे। सूखा पड़ने से अलवणजलीय आगार सूख जाया करते तथा वे मछलियां जो श्वसन के लिए वायुमण्डलीय ऑक्सीजन का उपयोग नहीं कर सकती थीं, सूखा पड़ने पर जीवित नहीं रह पाती थीं क्योंकि उनके गिल इन परिस्थितियों के लिए उपयोगी नहीं थे। परंतु अनेक पालि-फिन एवं अर-फिन वाली अस्थिल मछलियां सूखा पड़ने पर वास्तव में जीवित बनी रहीं क्योंकि इनमें ग्रसनी से बाहर को निकली बाह्यकोष्ठिका के रूप में एक फेफड़ा विकसित हो चुका था। अधिक रक्त-वाहिकायन हो जाने से और भरपूर केशिका-जाल के बन जाने एवं अंतिम जोड़ी महाधमनी चापों से धमनी रक्त की सप्लाई होने से, ये फेफड़े टेट्रापोडों (चतुष्पादों) में गैस-विनिमय के प्राथमिक अंग बन गए। यहां से एक फुफ्फुस-शिरा रक्त को वापिस हृदय में ले जाने लगी जिससे फुफ्फुस-परिपथ पूरा हो गया। इस प्रकार **दोहरे परिसंचरण (double circulation)** की परिघटना की स्थापना हो गयी जिसमें एक तो देह में आपूर्ति करने वाला **दैहिक परिसंचरण (systemic circulation)** और दूसरा फेफड़ों में आपूर्ति करने वाला **फुफ्फुस-परिसंचरण (pulmonary circulation)** बन गया।

पंचांगुलिक पादों का विकास डिवोनी काल में हुआ। जब-तब ताल-तलैयों के सूख जाने से मछलियों को विवशतापूर्वक उन समीपवर्ती तालाबों में जाना पड़ता था जिनमें अभी भी पानी बचा था। क्रॉसोप्टेरिजियनों ने अपने पालि-फिनों को पैडल की तरह इस्तेमाल कर बदन को उचकाते-उठाते जल की तलाश में स्थल पर चलना शुरू किया। अतः पादों (पैरों) का बनना अनिवार्यतः स्थल पर अधिपत्य जमाने के लिए नहीं था वरन मछली ही की तरह जीने के लिए था। परंतु फेफड़े और पाद दोनों ही का बनना स्थल पर सफल जीवन बिताने के लिए आवश्यक अनुकूलन थे। अधिसंख्य ऐम्फ़िबियनों को आज भी जनन के उद्देश्य से वापिस जल में ही जाना पड़ता है (अस्थायी तौर पर वे जलीय बन जाते हैं)। इसका अर्थ यह हुआ कि ये जीव अब भी जलीय पर्यावरण के साथ अपना नाता जोड़े हुए हैं और इसी से इनका यह नाम "ऐम्फ़िबिया" पड़ा।

अब हम पहले तो क्लास ऐम्फ़िबिया के कुछ प्रमुख लक्षणों का संक्षेप में ज़िक्र करेंगे और फिर उसके बाद इनकी सामान्य संघटना का वर्णन करेंगे।

2.4.1 क्लास ऐम्फ़िबिया के प्रमुख लक्षण

भांति-भांति के मेंढक, टोड, सैलामैण्डर (सार) तथा अंध-कृमि (blind worms) ऐम्फ़िबिया के उदाहरण हैं। ऐम्फ़िबिया में बाह्य कंकाल नहीं होता। अंतःकंकाल अस्थिल होता है। कशेरुकों की संख्या अलग-अलग वर्ण में अलग-अलग होती है। कुछ उदाहरणों में पसलियां होती हैं तो कुछ में नहीं होती। नाटोकार्ड नहीं होता।

शरीर में एक लम्बा धड़ बना हो सकता है जिसके साथ-साथ एक स्पष्ट शीर्ष, गर्दन तथा पूंछ हो सकती है या शरीर दबा हुआ सा (अवनमित) हो सकता है जिसमें शीर्ष तथा धड़ समेकित हो गए हों और बीच में गर्दन न हो। त्वचा चिकनी दिखायी पड़ती है जिसमें अनेक ग्रंथियां होती हैं, और इन ग्रंथियों में कुछ विष-ग्रंथियां भी होती हैं (चित्र 2.47)। त्वचा में विभिन्न प्रकार की वर्णक-कोशिकाएं अर्थात् क्रोमैटोफोर भी होते हैं। सामान्यतः शल्क नहीं होते मगर कुछ उदाहरणों में डर्मल शल्क बने हो सकते हैं।

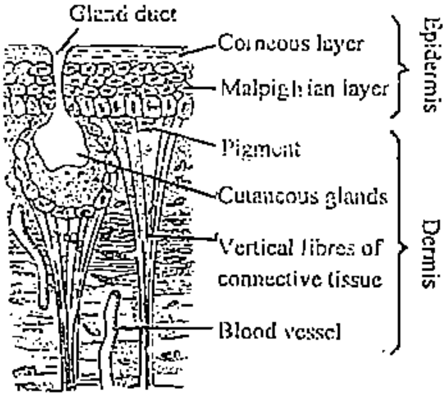

चित्र 2.47: मेंढक की त्वचा का सेक्शन

अधिकतर ऐम्फ़िबियनों में चार पाद होते हैं, मगर कुछ उदाहरणों में ये पाद परवर्ती रूप में समाप्त हो गए हैं। कुछ सदस्यों में अग्रपाद पश्चपादों से छोटे होते हैं तथा कुछ अन्य में सभी पाद इतने छोटे हो सकते हैं कि संचलन में वे काम ही न आ सकें। अनेक उदाहरणों में उनके पांवों में झिल्ली होती है जो जलीय जीवन के लिए एक अनुकूलन है। नखर तथा नाखून प्राय: नहीं होते।

ऐम्फ़िबियनों में एक बड़ा मुख होता है तथा छोटे-छोटे दांत ऊपर एवं निचले दोनों जबड़ों में होते हैं। थूथन-क्षेत्र में स्थित एक जोड़ी नालाद्वार मुख-गुहा के अग्र भाग में खुलते हैं। त्वचा, मुख-गुहा और फेफड़े वह मार्ग बनाते हैं जिसमें से ऑक्सीजन भीतर जाती है ताकि श्वसन हो सके। लार्वों में बाह्यगिल होते हैं (चित्र 2.48)। ये गिल कुछ ऐम्फ़िबियनों के वयस्कों में भी पाए जाते हैं।

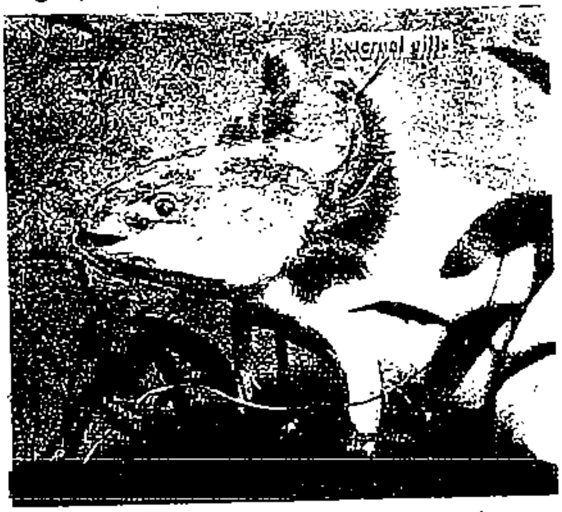

चित्र 2.48: सेलामैन्डर का लार्वा जिसमें पिच्छ जैसे बाह्य गिल होते हैं।

हृदय तीन-कक्षों वाली संरचना होती है जिनमें दो एट्रिया (आलिंद) तथा एक निलय होता है तथा हृदय में से दोहरा परिसंचरण होता है (इसी पाठ की इकाई 8 देखें) त्वचा में रक्त वाहिकाएं बहुत संख्या में होती हैं तथा यह त्वचा श्लेष्मा-ग्रंथियों द्वारा सदैव गीली बनाए रखी जाती हैं। युग्मित मीजोनेफ्रिक वृक्क होते हैं। ऐम्फ़िबियन यूरिया का उत्सर्जन करते हैं। दस जोड़ी कपाल तंत्रिकाएं होती हैं। नर-मादा अलग-अलग होते हैं। निषेचन मेंढकों तथा टोडों में बाहरी होता है, मगर सेलामैण्डर तथा अंध-कृमियों में भीतरी होता है। ऐम्फ़िबिया मुख्यत: अंडप्रजक होते हैं। व्यस्क बनने से पूर्व लार्वों में कायांतरण होता है। अण्डे मध्यपीतकी (mesolecithal) (मामूली पीतक वाले अण्डे) होते हैं जिनके ऊपर जेली जैसा आवरण चढ़ा होता है। उपर्युक्त सभी लक्षण ऐम्फ़िबिया की विशिष्टताएं कही जा सकती हैं। अब आप ऐम्फ़िबियनों की सामान्य संघटना के बारे में पढ़ेंगे तथा उसके बाद इस वर्ग के संक्षिप्त वर्गीकरण के बारे में। अनिवार्यत: ऐम्फ़िबिया में तीन जीवित ऑडर आते हैं: ऑडर ऐन्यूरा (Anura) में मेंढक तथा टोड आते हैं, ऑडर यूरोडेला (Urodela) में न्यूट तथा सेलामैंडर आते हैं, और ऑडर एपोडा (Apoda) में अंधकृमि आते हैं।

2.4.2 ऐम्फ़िबिया की सामान्य संघटना

ऐम्फ़िबियनों में मेंढक तथा टोड को सर्वाधिक सफल प्राणी माना जा सकता है। अत: ऐम्फ़िबिया की संघटना के विषय में हमारा अध्ययन अधिकतर इसी वर्ग से संबंधित होगा। ऐम्फ़िबियनों की त्वचा

सामान्यतः चिकनी और गीली होती है। एपिडर्मिस में स्थानीय स्थूलन ऐम्फ़िबिया में अक्सर ही पाए जाते हैं। उदाहरणतः टोड की त्वचा में जो अक्सर खुश्क होती है, एपिडर्मिसी स्थूलन मस्सों के जैसे दिखायी पड़ते हैं (चित्र 2.49)। मेंढकों के पैरों में विविध प्रकार के नखर एवं गद्दियां पायी जाती हैं। इस प्रकार के पांव कीचड़ में से कीटों को खोद कर निकालने के काम में लाए जा सकते हैं जैसा कि नखरयुक्त जलीय टोड ज़ेनोपस (*Xenopus*) में होता है।

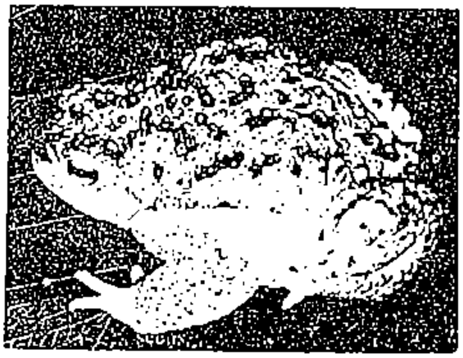

चित्र 2.49: एक टोड जिसकी खाल पर मस्से बने दीख रहे हैं।

लेप्टोडेक्टाइलस (*Leptodactylus*) में ये पांव बिल खोदने में काम आते हैं। अनेक ऐम्फ़िबियन लार्वों में पाए जाने वाले शृंगीय दांत भी एपिडर्मिसी स्थूलन होते हैं। त्वचा में पायी जाने वाली ग्रंथिया दो प्रकार की होती हैः- श्लेष्मा ग्रंथिया तथा विष ग्रंथियां। श्लेष्मा त्वचा को गीली बनाए रखती है। त्वचा एक श्वसन अंग भी होती है और इसलिए इसकी सतह को गीला रखा जाना जरूरी है ताकि गैसों का विनिमय हो सके। विष-ग्रंथियों का स्राव क्षारीय होता है और उससे आंखों तथा नासीय एपिथीलियम में जलन होने लगती है। पाद और उन्हें आलम्ब देने वाली अंस-एवं श्रोणि-मेखलाएं होती हैं। ऐम्फ़िबियनों के पादों तथा मेखलाओं में पायी जाने वाली संरचना का मूल प्रतिरूप सभी उच्चतर चतुष्पादों में कायम रहता पाया जाता है। पादों तथा मेखलाओं के कंकाल के विस्तृत विवरण के लिए इसी पाठ्यक्रम के ब्लाक 3 की इकाई 11 में देखिए।

ऐन्यूरनों (मेंढकों तथा टोड) में कंकाली तथा पेशीय दोनों तंत्र तैरने और कूदने की संचलन विधियों के लिए विशेषित हो गए हैं। मेंढक तथा टोड थल पर चल सकने के लिए भी सक्षम हैं। यूरोडेला, जिसमें न्यूट तथा सेलामैन्डर आते हैं और जिनका शरीर मछली-सरीखा होता है, में संचलन दो प्रकार का होता है। एक तो वह जिसमें वे जमीन पर अपने पेट के सहारे रेंगते हैं और इसलिए विशेषकर डराए जाने पर वे तेजी से चल पाते हैं। दूसरे प्रकार का संचलन वह है जिसमें ये सामान्य तौर पर चलते हैं यानि प्राणी अपने पैरों पर शरीर को उठा लेता है और उन्हें गतिमान लीवरों की तरह चला कर आगे बढ़ता जाता है। ऐसा माना जाता है कि चतुष्पादों के पांव क्रॉसोप्टेरिजियनों के पालियुक्त फ़िनों से विकसित हुए हैं। पालियुक्त फ़िनों को "थल पर तैरने के लिए" लीवरों की तरह इस्तेमाल किया जाता था। पादों की पेशियों के कुचन से पादों को शरीर के सापेक्ष आगे और पीछे को चलाया जाता है और इस प्रकार वे संचलन में सहायता करते हैं। धीरे-धीरे पाद लम्बे होते गए और बाद में जाकर वे शरीर से दूरी बनाते हुए घूम गए। तदुपरांत इन पादों में स्पष्ट मोड़ प्रकट हो गए- कोहनी तथा घुटने पर नीचे को तथा कलाई तथा टखने पर ऊपर को। इससे चतुष्पादों को दो क्षमताएं प्राप्त हो गयीं- एक तो वे अपने शरीर को पृथ्वी पर कसकर जमाए रख सकते थे और दूसरे उनके द्वारा शरीर को थल से ऊपर को उठाए रखा जा सकता था। यह परिवर्तन तब जाकर पूरा हुआ जब पादों को घुमाकर शरीर के पार्श्वों में ले आया गया जिसमें कोहनी का रुख पीछे को और घुटने का रुख सामने को हो गया (चित्र 2.50)।

ऐम्फ़िबियन सामान्यतः अकशेरुकियों को खाते हैं जिनमें मुख्यतः कीट हैं मगर वे कृमियों, स्लगों, घोंघों, मकड़ियों, कांतरों तथा गिजाइओं आदि को भी खा लेते हैं। लार्वा अवस्था मांसाहारी हो सकती है या सर्वभक्षी। जीभ एक कारगर आहार-प्रग्रहण अंग बन गयी है। मेंढकों तथा टोडों में यह मुंह के भीतर आगे के हिस्से में तल से जुड़ी होती है। जीभ गीली और चिपचिपी होती है और शिकार पकड़ते समय तेजी से बाहर को निकाली जाती है। जलीय ऐम्फ़िबियनों में जीभ सामान्यतः ह्रासित होती है। मेंढकों तथा टोड में दांत केवल ऊपरी जबड़े में ही होते हैं जो पकड़े गए शिकार को मुंह से बाहर फिसल जाने से रोकते हैं। अधिसंख्य यूरोडेलों में दांत ऊपरी तथा निचले दोनों जबड़ों में होते हैं। ऐम्फ़िबियनों की ग्रसिका छोटी होती है तथा जठर एक सरल नलिका के रूप में होता है। आगमी (कार्डियक) जठर तथा अंतड़ी के

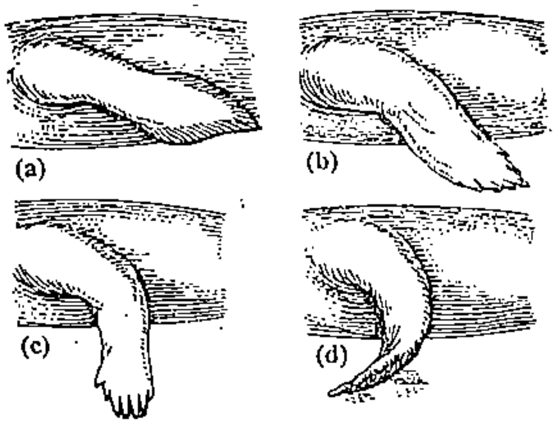

चित्र 2.50: इस आरेख में श्रोणिफिन की स्थिति संबंधी उन संभावित परिवर्तनों को दर्शाया गया है जो श्रोणिफ़िन से चतुष्पादीय पाद के विकास में हुए रहे होंगे। (a) श्रोणिफ़िन (b) श्रोणि में दोहरे मोड़ जिनसे घुटने तथा टखने बन गए, तथा पांव का रुख पीछे को हो गया (c) तथा (d) टार्सस तथा पादांगुलियों का घूम जाना जिससे पांव आगे को घूम जाता है।

बीच में एक निर्गमी (pyloric) जठर होता है (चित्र 2.51)। वयस्क ऐम्फ़िबियनों में अंतड़ी एक छोटी नलिका होती है जो पीछे को फैल कर बड़ी अंतड़ी बना लेती है जिसका कार्य स्थलीय प्राणियों में जल-अवशोषण होता है। यकृत तथा अग्न्याशय पाचन ग्रंथिया होती हैं।

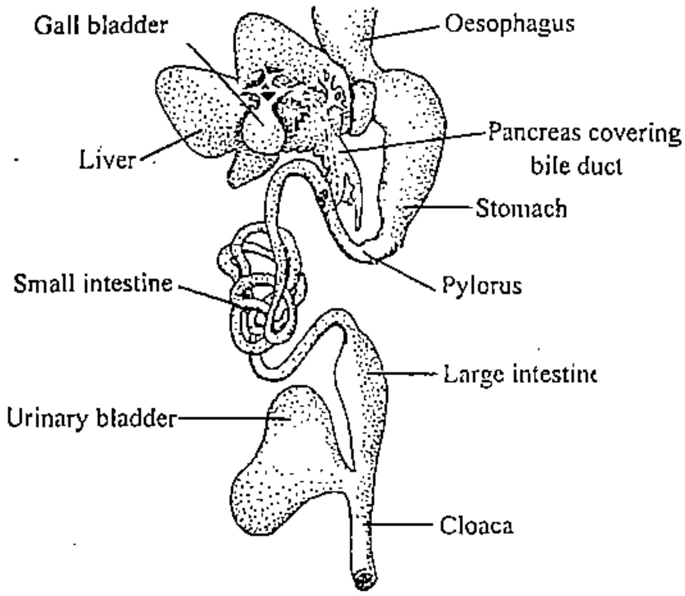

चित्र 2.51: मेंढक का पाचन-तंत्र

ऐम्फ़िबियनों में सामान्यत: श्वसन विधियां अलग-अलग प्रकार की होती हैं। अनेक ऐम्फ़िबियन अपने फेफड़ों के साथ-साथ त्वचा को भी एक सहायक श्वसन अंग की तरह इस्तेमाल करते हैं। मेंढकों के फेफडे युग्मित थैले होते हैं और वे एक छोटे लैरिंजियल (वाक् कोश) कक्ष में खुलते हैं। लैरिंजियल कक्ष ग्रसनी में एक झिरी-जैसे छिद्र द्वारा खुलता है जिसे ग्लौटिस (glottis) अथवा कंठद्वार कहते हैं। श्वसन-तंत्र की संरचना एवं उसके कार्य करने के विस्तृत विवरण के लिए खण्ड 2 की इकाई 7 को देखिए। रक्त वाहिकाओं से भरपूर त्वचा तथा मुख-गुहा भी गैसों के विनिमय में महत्वपूर्ण भाग लेते हैं।

न्यूटों में फेफड़े द्रवस्थैतिक (hydrostatic) कार्य करते हैं ताकि प्राणी को जल के ऊपर को उठाया जा सके। इस कार्य के लिए फेफड़ों की भीतरी सतह बिल्कुल सरल होती है। जलधाराओं में रहने वाले उदाहरणों में फेफड़े पूरी तरह समाप्त हो चुके हैं। जो प्राणी ठंडे जल में रहते हैं उनमें क्योंकि प्राणी की क्रियाशीलता बहुत घट गयी होती है इसलिए जीव की सम्पूर्ण ऑक्सीजन आवश्यकता त्वचा-श्वसन के द्वारा ही पूरी हो जाती हैं। इन प्राणियों में त्वचा के भीतर रक्त वाहिकाएं बहुत ज्यादा होती है तथा फेफड़े बहुत ह्रासित होते हैं। गिल केवल लार्वा-ऐम्फ़िबियनों तथा चिरडिम्भीय (neotenous) वयस्क यूरोडीलों में ही पाए जाते हैं।

ऐम्फ़िबियनों में धमनीय तथा शिरा रक्त का पृथक्करण अधूरा होता है। मेंढकों, टोडों तथा सेलामैंडरों में आलिंद एक अंतराआलिंद पट (interauricular septum) द्वारा पूरी तरह पृथक हो गए हैं। निलय एकल कक्ष होता है और इसकी दीवार में से भीतर को स्पंजी प्रवर्ध निकले होते हैं जो काफी हद तक ऑक्सीजनित तथा विऑक्सीजनित रक्त को परस्पर मिलने से रोके रहते हैं। अधर महाधमनी (ventral aorta) अर्थात् धमनी-शंकु निलय की दाहिनी ओर से निकलता है। धमनी शंकु से तीन चापें निकलती हैं- पहली ग्रीवा चाप (carotid arch) है जो देह के अग्र भागों में रक्त को पहुंचाती है, दूसरी दैहिक चाप (systemic arch) है जो शरीर के पश्च भागों में रक्त पहुंचाती है और तीसरी फुफ्फुस धमनी (pulmonery artery) होती है जो रक्त को फेफड़ों में पहुंचाती है। महाधमनी चापों का तथा कशेरुकियों के विभिन्न वर्गों में इनमें होने वाले रूपांतरणों का विस्तृत वर्णन इस पाठ्यक्रम के खण्ड 2 की इकाई 8 में दिया गया है।

शिरा-तंत्र में एक तो पश्च महाशिरा (posterior vena cava) होती है जो रक्त को देह के पश्च अंगों से लाती और उसे शिरा कोटर (साइनस विनोसस) में छोड़ती है। पश्च पादों से आने वाला अधिकतर रक्त पश्च महाशिरा में पहुंचने से पहले वृक्क निवाहिका तंत्र में से होकर गुजरता है। साथ ही एक वैकल्पिक मार्ग भी है जिसके द्वारा पश्च पादों से लाया हुआ रक्त श्रोणि शिरा (pelvic vein) में से होता हुआ एक मध्य अग्र उदर शिरा (median anterior abdominal vein) में पहुंचता है और फिर यह शिरा यकृत में पहुंचकर केशिकाओं में विभाजित हो जाती है। अग्रपादों, त्वचा तथा शरीर के अग्रभागों से आने वाला रक्त एक जोड़ी अग्र महाशिराओं में पहुचता हैं और फिर ये महाशिराएं रक्त को शिरा कोटर में छोड़ देती हैं (चित्र 2.52)

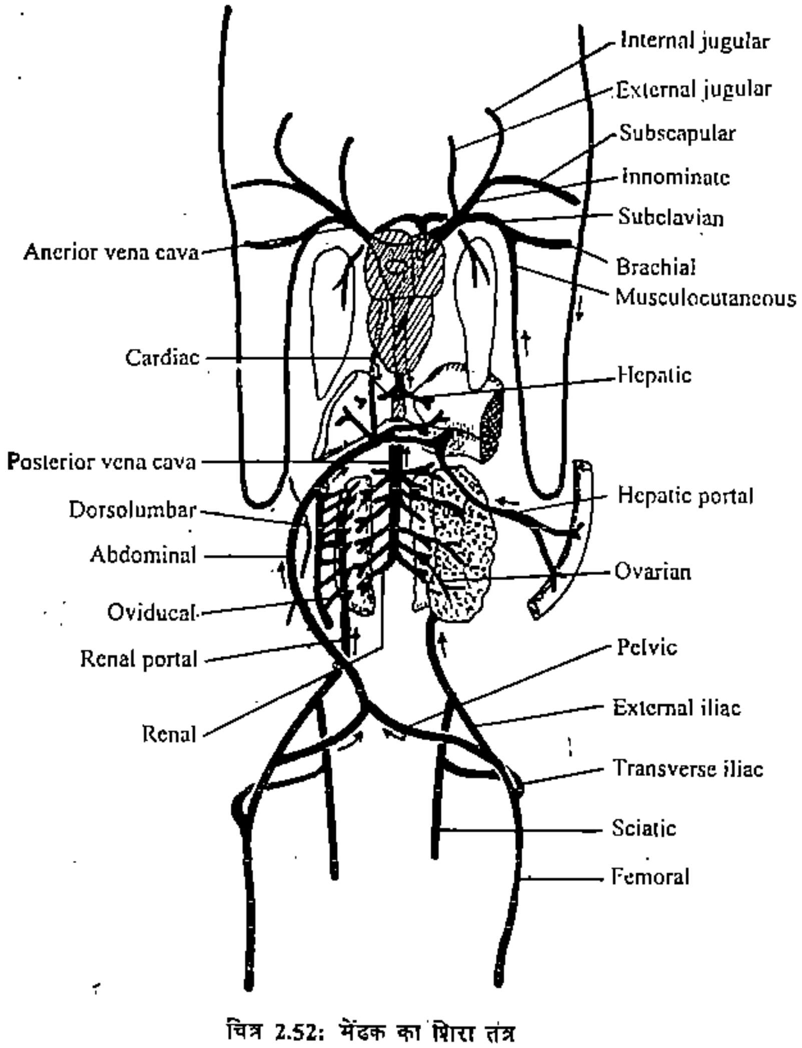

चित्र 2.52: मेंढक का शिरा तंत्र

मेंढकों में एक लसीका तंत्र (lymphatic system) भी होता है जिसमें अनेक गुहाएं होती हैं जो केशिकाओं को घेरती हुई ऊतक-गुहाओं के साथ जुड़ी होती हैं। ऊतकों में बनी लसीका-गुहाएं परस्पर जुड़कर बड़ी सरणियां तथा कोटर बनाती हैं जो मेंढक की ढीली त्वचा के नीचे पड़ी होती हैं। लसीका

हृदय (lymph hearts) जो रेखिक पेशी रेशों से आवृत एंडोथीलियम के थैले होते हैं, अपने तालबद्ध संकुचनों के द्वारा लसीका-तरल को परिसंचरित करते रहते हैं। लसीका तथा लसीका-तंत्र पर विवेचन के लिए आप LSE-05 पाठ्यक्रम के खण्ड 2 की इकाई 8 को देखिए।

ऐम्फ़िबिया के RBCs सामान्यत: 20 µm से अधिक बड़े होते हैं। सामान्यत: लाल कोशिकाएं प्लीहा (तिल्ली) तथा वृक्कों में बनती हैं हालांकि कुछ स्पीशीज़ में इनका निर्माण अस्थि-मज्जा (bone marrow) में होता है। RBCs को नष्ट करने का स्थान भी प्लीहा ही है। मेंढकों के हीमोग्लोबिन में ऑक्सीजन के प्रति स्तनियों के हीमोग्लोबिन के मुकाबले कम बंधुता पायी जाती हैं। रक्त में WBCs तीन प्रकार के होते हैं- लिम्फ़ोसाइट अथवा लसीकाणु, मॉनोसाइट अथवा एकलाणु तथा पौलीमॉर्फोग्रैनुलोसाइट (polymorphogranulocyte) अर्थात् बहुरूप केंद्रकीकणिकाणु। पौलीमॉर्फोग्रैनुलोसाइटों में न्यूट्रोफिल (neutrophils) हो सकते हैं, या ऐसिडोफ़िल (acidophils) या बेसोफ़िल (basophils)। इस प्रकार स्तनियों के तथा ऐम्फ़िबियनों के श्वेताणु-तंत्र में समानता पायी जाती है। मेंढक के रक्त में प्लेटलेट्स (platelets) अथवा थ्रॉम्बोसाइट (thrombocytes) भी होते हैं जो रक्त की स्कंदन-प्रक्रिया में भूमिका निभाते हैं।

तंत्रिका-तंत्र में एक मस्तिष्क (चित्र 2.53) और मेरू रज्जु होता है उसी तरह जैसे कि डिप्नोअई मछलियों में। मस्तिष्क के तीन क्षेत्र होते हैं- प्रोसेनसेफ़ेलॉन (prosencephalon) अग्रमस्तिष्क, मीसेनसेफ़ैलॉन (mesencephalon) मध्यमस्तिष्क तथा मेटेन्सेफ़ैलॉन (metencephalon) पश्च मस्तिष्क। अग्रमस्तिष्क में आने वाले भाग हैं घ्राण पालियां (olfactory lobes), बड़े बहिर्वलित प्रमस्तिष्क गोलार्ध (cerebral hemispheres) तथा अयुग्मित डाएनसेफ़ैलॉन (diencephalon) जो मेंढकों में छोटा मगर यूरोडीलों में बड़ा होता है। मध्यमस्तिष्क में प्रमुख भाग सुविकसित दृक-पालियों (optic lobes) का होता है। हाइपोथैलेमस तथा पिट्यूटरी मध्यमस्तिष्क में अधर में बने होते हैं। अनुमस्तिष्क (cerebellum) सरल और छोटा होता है। ऐम्फ़िबिया के मस्तिष्क में उसके क्षतिग्रस्त होने पर पुनर्जनन की क्षमता होती है, जो ऐन्यूरनों की अपेक्षा यूरोडेलों में अधिक सम्पूर्ण होती है।

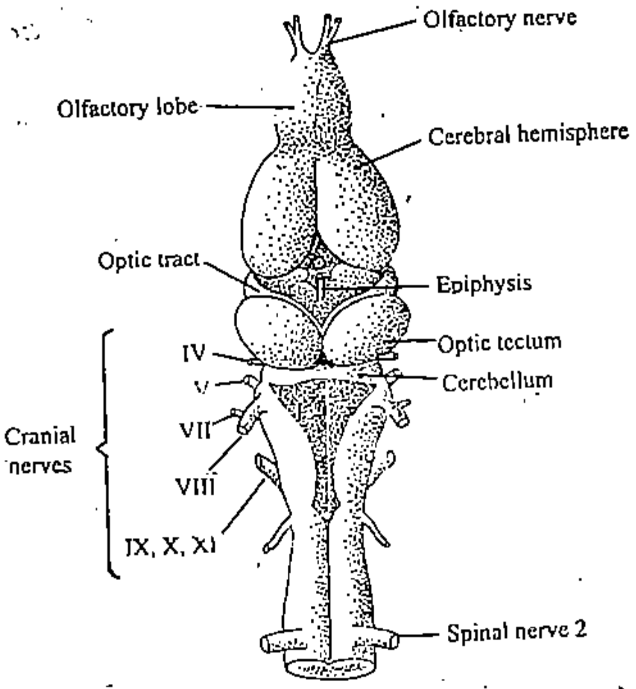

चित्र 2.53: मेंढक का मस्तिष्क: पृष्ठ दृश्य

ऐम्फ़िबियनों में सामान्यत: वे सभी अंत:स्रावी ग्रंथियां (endocrine glands) पायी जाती हैं जो स्तनियों में होती हैं। पिट्यूटरी अर्थात् पियूष ग्रंथि के तीन विभाजन स्पष्ट नज़र आते हैं। पिट्यूटरी से कई प्रेरक (tropic) हार्मोन निकलते हैं (पाठ्यक्रम LSE-05 के खण्ड 2 का इकाई 10 देखिए)। ग्रसनी कोष्ठों से व्युत्पन्न होने वाले थाइरॉइड तथा पैराथाइरॉइड पाए जाते हैं। गिलांतीय पिंड, (ultimobranchial bodies) जिनसे कैल्सिटोनिन (calcitonin) का स्रवण होता है अंतिम ग्रसनी कोष्ठ के तले से बनते हैं। ऐड्रीनल ग्रंथियां जिनके भीतर एक तो एक्टोडर्मी ऐड्रीनलीन स्रावी ऊतक और दूसरा मीज़ोडर्मी स्टीरॉइड-स्रावी ऊतक होता है, कशेरुकियों में पहली बार ऐम्फ़िबियनों में विकसित हुई हैं। यूरोडेलों में

ऐड्रीनल थोड़े फैले हुए से ऊतक होते हैं जब कि मेंढ़कों में ये नारंगी से रंग के सहत पिंडों के रूप में वृक्कों के ऊपर बने होते हैं। अग्न्याशय (पैंक्रियाज़) में एल्फ़ा तथा बीटा दोनों कोशिकाएं होती हैं जिनसे क्रमश: ग्लूकैगॉन (glucagon) तथा इंसुलिन का स्रवण होता है।

जिम्नोफ़ाइओना अर्थात् ऐपोडा वर्ग को छोड़कर ऐम्फ़िबियनों में आंखें सामान्यत:. सुविकसित होती हैं, तथा अधिसंख्य स्पीशीज़ में दृष्टि ही प्रमुख इंद्रिय होती है। आंखों की सुरक्षा तथा उन्हें गीला रखने एवं कणों से बचाए रखने के लिए पलकें तथा अश्रु-ग्रंथियां (lachrymal glands) सुविकसित होती हैं। एक स्थिर ऊपरी पलक, एक गतिशील निचली पलक तथा आंख की सतह पर फैलायी जा सकने वाली निमेषक पटल (nictitating membrane) ये तीनों रचनाएं ऐम्फ़िबियनों की आंख की सुरक्षा-युक्तियां हैं। रेप्टाइलों तथा पक्षियों की तरह ऐम्फ़िबियनों में भी बाहरी कान नहीं होते। टिम्पैनम (tympanum) (कर्ण-पटह) एक गोल संरचना होती है तथा इसके भीतर की गुहा में एकल मध्य कर्णास्थि कॉल्यूमेला ऑरिस **(columella auris)** होती है। भीतरी कान के भाग हैं- सैकुलस **(sacculus)**, यूट्रिकुलस **(utriculus)** तथा लैगेना **(lagena)**, अर्धवृत्ताकार नालें (semi-circular canals) तथा दो श्रवण संरचनाएं बेसिलर पैपिला और ऐम्फ़िबियन पैपिला। ऐम्फ़िबियनों की श्रवण-संरचनाएं कई प्रकार के ध्वनि के संकेतों में विभेद करने में सक्षम जान पड़ती हैं जैसे कि प्रणय ध्वनियां, क्षेत्र परक स्वर, वर्षा संकेत-स्वर, आपत्ति स्वर और चेतावनी स्वर आदि।

सभी जलीय लार्वों तथा कुछ जलीय वयस्कों में पार्श्व-रेखा संवेदी अंग भी बने होते हैं जिनका कार्य शरीर का संतुलन बनाए रखने से है। ये अंग सरल प्रकार के होते हैं जिनमें कोशिकाओं का एक समूह एक खुले गर्त में बना होता है। त्वचा में स्पर्श संवेदी अंग बने होते हैं और यह रासायनिक उद्दीपनों तथा ताप-परिवर्तनों के प्रति भी संवेदी होती है। जीभ पर बनी स्वाद-कलिकाएं केवल दो प्रकार के स्वादों-नमकीन तथा खट्टे के लिए संवेदी जान पड़ती हैं। सूंघने का कार्य भीतरी नासाद्वार में बने घ्राण एपिथीलियमी अस्तर द्वारा सम्पन्न होता है। घ्राण कक्ष का एक अंधवर्ध "जैकब्सन-अंग" जो मुख में आहार की "गंध" को परखने का काम करता है, जलीय ऐम्फ़िबियनों में नहीं होता। गंध-संवेदना एपोडा में सर्वाधिक विकसित होती है, क्योंकि ये प्राणी नेत्रहीन होते हैं।

ऐन्यूरन ऐम्फ़िबियनों में स्वर-अंग होते हैं जिनके द्वारा वे शोर मचाते हैं। स्वर अंग नर-मादा दोनों में होते हैं हालांकि नरों में ये अधिक बड़े होते हैं। नर मेंढक इनके द्वारा स्वर निकालकर अपनी मादाओं को आकर्षित करते हैं। कुछ यूरोडेल भी कलरव करते हैं, उनमें से कुछ लैरिंक्स के द्वारा और कुछ श्वाँस भीतर खींचते समय अपने होठों के द्वारा।

ऐम्फ़िबियनों में मीज़ोनेफ़िक वृक्क होते हैं। मेंढकों तथा टोडों में अपेक्षाकृत संहत वृक्क होते हैं जबकि यूरोडेलों के वृक्क लम्बे होते हैं। मूत्रवाहिनी सामान्यत: वृक्क के अग्र सीमांत से निकलती है। मेंढकों को अपनी गीली त्वचा से दो प्रकार से खतरे होते हैं - एक तो तब जब वे जलीय आवास में रह रहे होते हैं कि कहीं परासरण के कारण उनके शरीर के भीतर बहुत ज्यादा पानी न आ जाए और दूसरा यह कि जब वे स्थल पर रह रहे हों तो शरीर सूखने न लगे। देह के भीतर जल की मात्रा का नियमन एक जटिल नियंत्रण तंत्र के द्वारा होता है जो हाइपोथैलेमस में स्थित होता है। जल के भीतर रहते समय, देह में जल की मात्रा बढ़ न जाए यह कार्य बड़े कारगर तरीके से ग्लोमेरूलस की पम्पिंग-क्रिया द्वारा होता रहता है, यह ग्लोमेरूलस प्रतिदिन देह भार के 1/3 जल को फ़िल्टर करता रहता है। जब ये प्राणी स्थल पर होते हैं तब इनका मूत्राशय जल का अवशोषण करता रहता है क्योंकि इनकी वृक्क-नलिकाओं (nephrons) में हेन्ले-लूप वाला खण्ड बहुत छोटा होता है। कुछ मरूस्थलीय उदाहरणों में ग्लोमेरूलस बिल्कुल ही नहीं होते और यह व्यवस्था उनमें जल के संरक्षण के हेतु होती है।

नर के जनन-तंत्र में (चित्र 2.54) एक जोड़ी वृषण होते हैं और शुक्राणु शुक्र अपवाहिकाओं (vasa efferentia) के द्वारा मीज़ोनेफ़्रॉस में छोड़ दिए जाते हैं। यह उस व्यवस्था के विपरीत है जो आधुनिक मछलियों में पायी जाती हैं जिनमें मूत्र और जनन वाहिनियां अलग-अलग होती हैं। ऐलाइटीस (*Alytes*) जीनस में शुक्राणु वृक्क में से नहीं गुज़रते। अण्डाशय थैले-जैसी संरचनाएं होती हैं जो पेरिटोनियल वलनों से बनी होती हैं। अण्डों के चारों ओर फ़ॉलिकल-कोशिकाएं बनी होती हैं और जान पड़ता है कि इन कोशिकाओं से अण्डाशयी हार्मोन बनते हैं। यूरोडेलों के अण्डों के केंद्रक में बड़े आकार के गुणसूत्र होते हैं जिनमें DNA की मात्रा अधिक होती है और ऐसे गुणसूत्र को लैम्प-ब्रुश क्रोमोसोम (lamp-brush chromosomes) कहते हैं। अण्डाशय से निकलकर अण्डे अंडवाहिनियों अर्थात् मुलेरी वाहिनियों के मुख में प्रवेश कर जाते हैं, इन अंडवाहिनियों की दीवारें पेशीय एवं ग्रंथीय होती हैं तथा इनसे ऐल्बुमेन का स्राव

निकलता है। निचले सिरे पर अण्डवाहिनियां फैल गयी होती हैं और इस प्रकार वे अण्ड-कोश (ovisacs) बना लेती हैं जिनके भीतर अण्डे तब तक संग्रहित रहते हैं जब तक कि उनका बाहर को निकाले जाने का समय नहीं आ जाता।

अनेक ऐम्फ़िबियन स्थल-जीवन के लिए पूरी तरह अनुकूलित नहीं होते इसलिए उन्हें हर वर्ष प्रजनन के लिए जल में लौटना पड़ता है। कुछ मेंढक अपने प्रजनन स्थान पर पहुंचने के लिए कई-कई किलोमीटर की यात्रा करते हैं और कभी-कभी तो यह हर वर्ष एक ही तालाब में जाना पसंद करते हैं। अनेक ऐम्फ़िबियनों में अति सुव्यक्त लैंगिक द्विरूपता पायी जाती है। नर मेंढक प्रणय संगीत द्वारा मादाओं को आकर्षित करते हैं। ये प्रणय स्वर जितने ज़्यादा ऊँचे और देर-देर तक चलने वाले होते हैं उतने ही मादाओं के लिए अधिक आकर्षक होते हैं एवं अन्य नरों के लिए अधिक संदमनी होते हैं। टोडों में लैंगिक क्रिया एवं स्वर-उत्पादन एक-दूसरे के एकांतर क्रम में होते हैं। वर्षा का आना मेंढकों में प्रणय-स्वर निकालने के लिए एक प्रेरक का काम करता है। संगम के दौरान नर मादा की पीठ पर चढ़कर चिपक

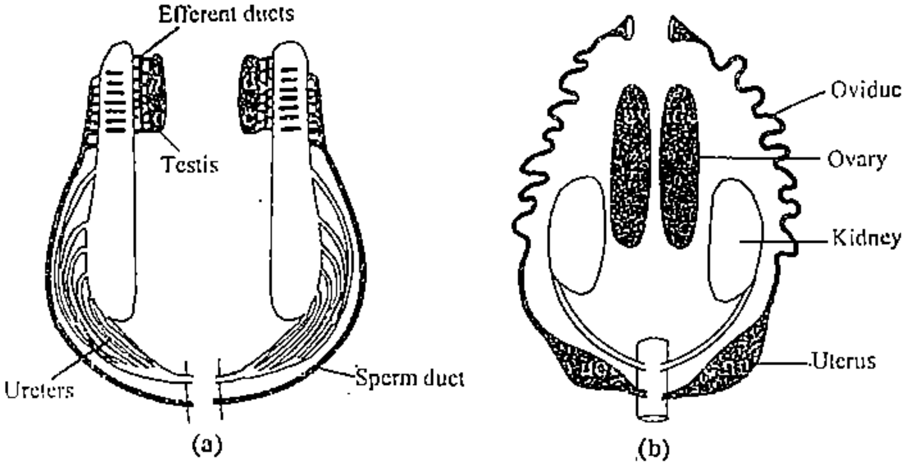

चित्र 2.54: मेंढक का मूत्र-जनन तंत्र। (a) नर (b) मादा

जाता है और अपने "कामद तल्प" (nupital pads) से उसे दबोचे रहता है, ये कामद तल्प अग्रपादों में एक अतिरिक्त पदांगुलि के रूप में बनी होती है (चित्र 2.55)। न्यूटों में वास्तविक संगम के पूर्व एक अच्छा-खासा अनुरंजन व्यवहार होते देखा जाता है। न्यूटों में शुक्राणुओं को मादा में स्थानांतरित करने से पूर्व, उन्हें समूहों में एक-साथ लाकर शुक्राणुधर (spermatophores) बना लिए जाते हैं।

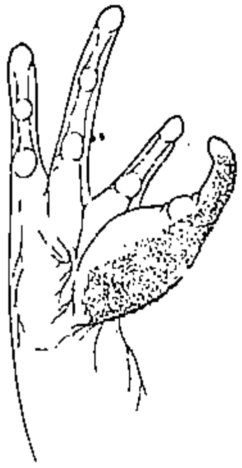

चित्र 2.55: नर मेंढक का अग्रपाद जिसमें कामद तल्प बने हुए हैं

अभी तक आपने ऐम्फ़िबियनों की संरचना तथा संघटना के बारे में पढ़ा। अब आप जीवित ऐम्फ़िबिया के तीन प्रमुख वर्गों के विषय में पढ़ेंगे- ये हैं ऑर्डर ऐन्यूरा अर्थात् पुच्छविहीन ऐम्फ़िबिया, ऑर्डर कॉडेटा अर्थात् यूरोडेला यानि पूंछ युक्त ऐम्फ़िबिया और ऑर्डर जिम्नोफाइओना (Gymnophiona) या एपोडा अर्थात् पादविहीन ऐम्फ़िबिया। इस समय तक जीवित ऐम्फ़िबिया की 3900 स्पीशीज़ का वर्णन किया जा चुका है। जीवित ऐम्फ़िबिया के तीन ऑर्डरों को एक साथ मिलाकर उपक्लास लिस्सैम्फ़िबिया (**Lissamphibia**) बनाया गया है। हम यह अध्ययन ऑर्डर ऐन्यूरा से प्रारम्भ करेंगे, मगर आइए उससे पहले निम्नलिखित बोध-प्रश्नों को हल कर लीजिए:-

---

बोध प्रश्न 4

1. निम्नलिखित प्रश्नों का संक्षेप में उत्तर लिखिए:

   i) जब कशेरुकियों ने जलीय पर्यावरण से स्थलीय पर्यावरण की ओर पदार्पण किया तब उनमें कौन-कौन से मूलभूत संघटनात्मक रूपांतरण की आवश्यकता पड़ी?

   ....

   ....

   ....

   ....

ii) दोहरे परिसंचरण से क्या अर्थ है?

....

....

....

....

iii) क्लास ऐम्फ़िबिया के कोई पांच प्रमुख लक्षण बताइए:-

....

....

....

....

II. बताइए कि निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत है:-

(i) ऐम्फ़िबियनों में पाए जाने वाले पादों तथा मेखलाओं की संरचना का प्रतिरूप उच्चतर चतुष्पादों में पाये जाने वाले प्रतिरूप से भिन्न है।

(ii) यूरोडेलों के कंकाली तथा पेशी-तंत्र तैरने तथा कूदने की संचलन विधियों के लिए विशेषित हो गए हैं।

(iii) ऐम्फ़िबियनों की लार्वा अवस्थाएं शाकभक्षी होती हैं अथवा सर्वभक्षी।

(iv) मेंढक तथा टोड में दांत ऊपरी तथा निचले दोनों जबड़ों में होते हैं।

(v) अनेक ऐम्फ़िबियन फेफड़ों के अतिरिक्त त्वचा को भी गैस-विनिमय के अंग के रूप में इस्तेमाल करते हैं।

(vi) ऐन्यूरा के लार्वों तथा यूरोडेलों के वयस्कों में गिलों का श्वसन अंगों के रूप में इस्तेमाल किया जाता है।

(vii) धमनी शंकु से निकलने वाली दैहिक चाप रक्त को शरीर के अग्र भागों में सप्लाई करती हैं।

(viii) अग्र तथा पश्च महाशिराओं द्वारा एकत्रित किया गया रक्त शिराकोटर (साइनस विनोसस) में छोड़ा जाता है।

(ix) स्तनियों की तुलना में ऐम्फ़िबियनों के हीमोग्लोबिन में ऑक्सीजन के लिए अधिक बंधुता पायी जाती है।

(x) क्षतिग्रस्त हो जाने पर यूरोडेल मस्तिष्क में उससे अधिक पुनरुद्भवन क्षमता पायी जाती है जितनी कि अन्यथा ऐन्यूरनों के मस्तिष्क में होती है।

(xi) कशेरुकियों में ऐम्फ़िबिया ही वह पहला वर्ग है जिनमें ऐड्रीनल ग्रंथि में ऐड्रीनलीन-स्रावी एक्टोडर्मल ऊतक तथा स्टीरॉइड-स्रावी मीज़ोडर्मल ऊतक बन गए हैं।

(xii) स्थल पर रहते समय जल के पुन: अवशोषण का कार्य मूत्राशय द्वारा होता है।

(xiii) पृथक मूत्र एवं जनन पथों का न होना तथा शुक्राणुओं का शुक्र अपवाहिकाओं में से मीज़ोनेफ्रॉस में छोड़ा जाना नर ऐम्फ़िबियनों की विशेषता है।

2.4.3 ऑर्डर ऐन्यूरा

ऐन्यूरन सर्वाधिक परिचित एवं सफल ऐम्फ़िबियन हैं। ज्ञात मेंढकों एवं टोडों की स्पीशीज 3400 से भी ज्यादा हैं। ऐन्यूरा का अर्थ है पूंछ का अभाव। ऐन्यूरनों में पूंछ केवल परिवर्धन के दौरान तथा लार्वा-अवस्थाओं में ही पायी जाती है। इन प्राणियों में कूद-कूद कर चलने की विधि के कारण इन्हें सेलिएन्शिया **(Salientia)** नाम भी दिया गया है। ऐन्यूरनों का वर्ग ऐम्फ़िबियनों में एक प्राचीनतम् वर्ग है, और इनका जीवाश्म इतिहास जुरैसिक युग का, 15 करोड़ वर्ष पुराना है। इनमें कुछ जन्मजात कृत्रिमता होने के बावजूद ऐन्यूरन नानाविध आवासों में रहते पाए जाते हैं। इन कृत्रिमता में से दो खास हैं: एक तो प्रजनन के लिए इनका जल में लौटना जरूरी है और दूसरे इनमें बाह्यतापी (ectothermy) व्यवस्था का पाया जाना जिसके कारण ये बहुत ठंडे ध्रुवीय एवं उपध्रुवीय आवासों में नहीं रह सकते हैं। ऐन्यूरनों के कुछ प्रमुख लक्षण इस प्रकार हैं: किसी प्रकार की प्रकट गर्दन का न होना, पुच्छ कशेरुकों का समेकन होकर एक संरचना यूरोस्टाइल (पुच्छदंड) का बन जाना, अधिसंख्य स्पीशीज़ में पसलियों का न होना और कूद कर संचलन के लिए पश्चपादों का लम्बा हो जाना।

मेंढकों तथा टोडों को 21 फ़ेमिलियों में रखा जाता है। सर्वाधिक सामान्य पायी जाने वाली जीनसें हैं: *राना* (*Rana*), *ब्यूफ़ो* (*Bufo*), *हाइला* (*Hyla*), *पाइपा* (*Pipa*) तथा *जेनोपस* (*Xenopus*) (चित्र 2.56)। जीनस *राना* में 260 स्पीशीज़ हैं और मेंढकों की यही जीनस संसार के शीतोष्ण एवं उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में विश्वव्यापी वितरण वाली है। न्यूज़ीलैंड, महासागरीय द्वीपों तथा दक्षिणी अमेरिका में *राना* नहीं पायी जाती। *राना हेक्साडेक्टाइला* (*R. hexadactyla*), *राना टिगरीना* (*R. tigrina*) तथा *रा. सायनोफ्लिक्टस* (*R. cyanophlictes*) ऐसी कुछ स्पीशीज है जो ऐसे आर्द्र जंगलों में पायी जाती हैं जो जल से बहुत दूर नहीं होते। बुल-फ़्रॉग *रा. कैटेसबिआना* (R. catesbiana) तथा ग्रीन-फ्राग *रा. क्लैमिटन्स* (*R. clamitans*) स्थायी जल अथवा दलदली क्षेत्रों के समीप पाए जाते हैं। *रा. पाइपिन्स* (*R. pipiens*) बहुत अलग-अलग प्रकार के आवासों में पाया जाता है तथा अमेरिका में यह सबसे ज्यादा

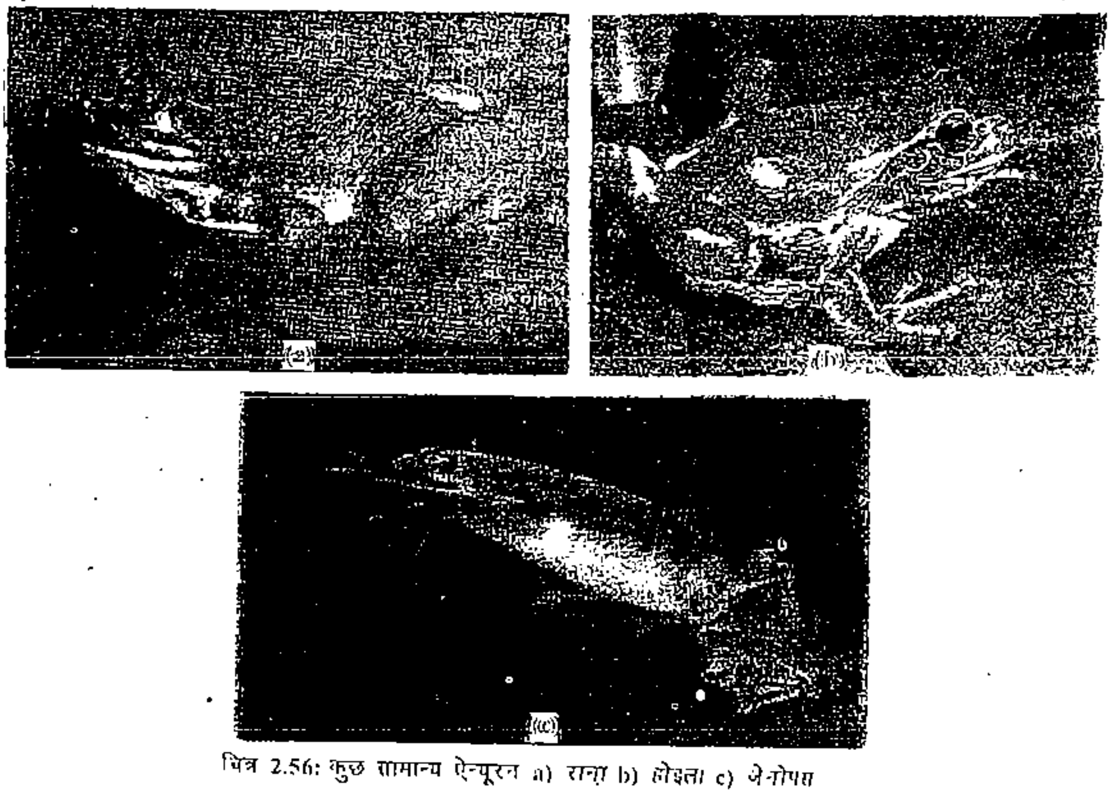

चित्र 2.56: कुछ सामान्य ऐन्यूरन a) *राना* b) *हाइला* c) *जेनोपस*

व्यापक है। टोडों में ब्यूफ़ो-प्रकार के टोडों का वर्ग सबसे ज्यादा सफल है। ये स्थलीय जीवन के लिए सुअनुकूलित हैं लेकिन प्रजनन के लिए वापिस जल में लौटते हैं। *ब्यूफ़ो* एक सामान्य जीनस है जो आस्ट्रेलिया तथा मैडागास्कर को छोड़कर सारे विश्व में पाया जाता है और यह पैतृक रक्षण (parental care) के लिए विख्यात है। यूरोप के "मिडवाइफ़-टोड" *ऐलाइटीस* (*Alytes*) (चित्र 2.57a) में नर अपने अण्डों को अपनी टांगों में लपेटे घूमता-फिरता है। दक्षिण अमरीकी जलीय मेंढक *पाइपा* (*Pipa*) में जीभ नहीं होती तथा इसमें अण्डों को पीठ पर जमाने-गड़ाने की एक विशद व्यवस्था पायी जाती है। *पाइपा* से संबंधित अफ़्रीकी टोड *ज़ीनोपस* में पैतृक रक्षण नहीं पाया जाता। मेंढकों और टोडों में शिशुप्रजनन

सामान्यता नहीं पायी जाती। पश्चिम अफ्रीका का टोड *नेक्टोफिर्नोइडीज़* (*Nectophrynoides*) ही एकमात्र जीनस है जिसमें शिशुप्रजता पायी जाती है। अनेक मेंढक वृक्षवासी होते हैं और इसके लिए उनमें पर्याप्त अनुकूलन बने होते हैं *हाइला* एक सामान्य वृक्षवासी जीनस है। वृक्षवासी मेंढकों में उनकी पादांगुलियों में सुविकसित गद्दियां होती है। कैकोपस (*Cacopus*) तथा ब्रेविसेप (*Breviceps*) बिलकारी मेंढक हैं जिनका थूथन बिल खोदने के लिए अनुकूलित हो गया हैं।

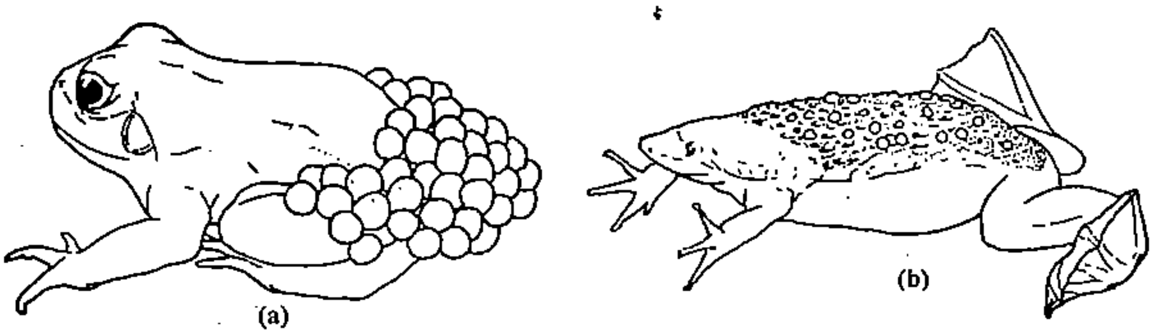

चित्र 2.57: **a)** *ऐलाइटीस* (*Alytes*) 'मिडवाइफ़' टोड जिसके पांवों में अण्डे चिपके हैं **b)** *पाइपा* मादा जिसके प्रष्ठ पर अंडे अतः स्थापित रहते हैं।

2.4.5 ऑर्डर जिम्नोफाइओना

जिम्नोफाइओना पादविहीन ऐम्फ़िबिया हैं, जिन्हें सिसीलियन (caecilians) अथवा अंधकृमि भी कहा जाता है। इस ऑर्डर का दूसरा नाम एपोडा (Apoda) भी है। एपोडा की लगभग 160 स्पीशीज़ ज्ञात हैं। इनका शरीर लम्बा होता है तथा पाद नहीं होते। कुछ स्पीशीज़ की खाल में शल्क होते हैं। इन प्राणियों में लम्बी पसलियां तथा अनेक कशेरुकें होती हैं। इनकी आंखें बहुत छोटी एवं ह्रासित होती हैं, तथा कुछ उदाहरणों में बिल्कुल होती ही नहीं है। इन प्राणियों की भूमिगत बिलकारी जीवन-शैली ही इनमें आंखों के अभाव का कारण हैं। इन प्राणियों में इनके थूथन पर विशेष संवेदशी स्पर्शक बने होते हैं। ये प्राणी मिट्टी में रहने वाले कीटों तथा अन्य छोटे आकार वाले अकशेरुकियों को खाते हैं। इनकी खोपड़ी (करोटि) अस्थिल तथा ठोस मजबूत बनी होती है ताकि इन्हें मिट्टी में बिल बना कर घुसने में सुविधा हो। निषेचन भीतरी होता है तथा नर में एक मैथुनांग होता है। अण्डे बड़े आकार के तथा पीतक से भरे होते हैं।

विदलन अंशभंजी (meroblastic) होता है। अण्डे स्थल पर दिए जाते तथा भ्रूणों में लम्बे पिच्छाकार गिल होते हैं। *इक्थियोफ़िस* (*Ichthyophis*) (चित्र 2.58) एक उष्णकटिबंधीय एपोडन प्राणी है। *टिफ्लोनेक्टीस* (*Typhlonectes*) एक शिशुप्रज उदाहरण है।

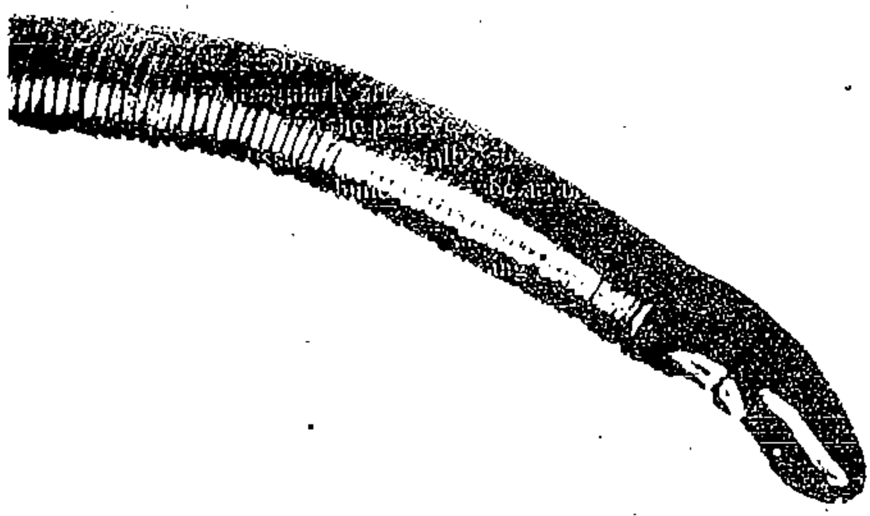

चित्र 2.58: *इक्थियोफ़िस*

2.4.5 ऑर्डर कॉडेटा

ऑर्डर कॉडिटा अथवा यूरोडेला में पूंछयुक्त ऐम्फ़िबिया आते हैं अर्थात् सैलामैन्डर (चित्र 2.59) और न्यूट (newt)। ये सारे विश्व में पाए जाते हैं मगर अधिसंख्य स्पीशीज उत्तर अमेरिका में पायी जाती हैं। अधिसंख्य सैलामैन्डर छोटे आकार के लगभग 15 से.मी. लम्बे होते हैं, हालांकि कुछ-एक जलीय उदाहरण काफ़ी बड़े भी होते हैं। जापानी विशालकाय सैलामैन्डर 1.5 मीटर लम्बा होता है। ऐन्यूरनों की अपेक्षा यूरोडेलो की सामान्य देह संघटना तथा इनके आवास कम विशेषित होते हैं। वयस्क यूरोडेल अपने लार्वा-स्वरूपों से बहुत भिन्न नहीं होते तथा वयस्क प्राणी जल में जीवन बिताने के लिए भली-भांति अनुकूलित होते हैं। यूरोडेलों में विभिन्न स्पीशीजों में आवास-पर्यावरण की दृष्टि से बहुत विविधता पायी जाती हैं- वे पूर्णत: स्थलीय पर्यावरण से लेकर पूर्णत: जलीय जीवन तक के लिए अनुकूलित हैं।

यूरोपीय सैलामैन्डर *सैलामैन्ड्रा मैक्युलोसा* (*Salamandra maculosa*) एक स्थलीय उदाहरण है जिसमें शिशुप्रजता पायी जाती है। उत्तर अमेरिका का "मड-पपी" *नैक्ट्यूरस* (*Necturus*) एक पूर्णत: जलीय उदाहरण है।

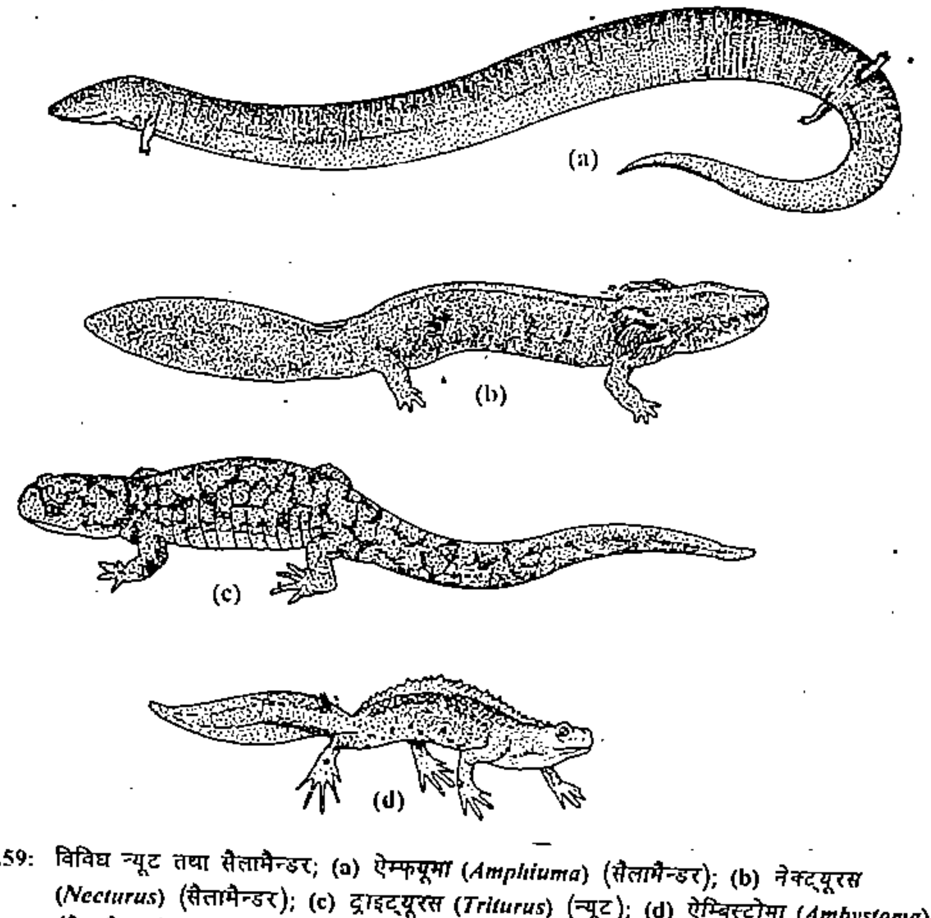

चित्र 2.59: विविध न्यूट तथा सैलामैन्डर; (a) *ऐम्फयूमा* (*Amphiuma*) (सैलामैन्डर); (b) *नेक्ट्यूरस* (*Necturus*) (सैलामैन्डर); (c) *ट्राइट्यूरस* (*Triturus*) (न्यूट); (d) *ऐम्बिस्टोमा* (*Ambystoma*) (सैलामैन्डर)।

सैलामैन्डरों के पाद काफ़ी आदिम प्रकार के होते हैं, ये आकार में छोटे और शरीर में समकोण बनाते हुए होते हैं। ये अधिकतर गतिशील वस्तुओं का ही आहार करते हैं। ये सभी मांसाहारी होते हैं तथा कृमियों, छोटे आर्थ्रोपोडों और मौलस्कों का शिकार करते हैं।

अण्डों से निकलने वाले बच्चों में गिल होते हैं। कायांतरण के दौरान ये गिल सामान्यत: लुप्त हो जाते हैं, लेकिन जलीय उदाहरणों में और उनमें भी जिनमें पूर्ण कायांतरण नहीं हो पाता ये गिल लुप्त नहीं होते। अनेक उदाहरणों में फेफड़े नहीं होते तथा कुछ में फेफड़े बहुत ह्रासित होते हैं। सभी उदाहरणों में त्वचा बहुत ज़्यादा रक्तवाहिकामय होती है और गैस-विनिमय के अंग का कार्य करती है। त्वक् श्वसन के अलावा मुखगुहा श्वसन भी होता है जिसमें मुख के द्वारा वायु को अंदर बाहर लाया जाता है तथा यह मुख-गुहा की रक्तवाहिकामय झिल्ली के सम्पर्क में आती है।

अधिसंख्य सैलामैन्डरों में निषेचन भीतरी होता है तथा शुक्राणुओं का स्थानांतरण शुक्राणुधरों के माध्यम से होता है। जलीय स्पीशीज में अण्डे एक समूह में दिए जाते हैं तथा स्थली-प्राणी उन्हें अंगूर के गुच्छे जैसे समूहों में लकड़ियों-लट्ठों के नीचे अथवा नरम ज़मीन के नीचे देते हैं।

सैलामैन्डरों में अंडों का पैतृक रक्षण बहुत आम पाया जाता है और उन्हें अण्डों की रखवाली करते देखा जा सकता है। अण्डों से निकलने वाले लार्वा अपने जनकों के समान होते है और परिवर्धन के दौरान उनमें कार्यांतरण होता है।

यूरोडेलों के परिवर्धन में एक रोचक पहलू है चिरडिम्भता (neoteny)। चिरडिम्भता अनिवार्यत: उस परिघटना को कहते हैं जिसमें लार्वा अवस्था में ही लैंगिक परिपक्वता आ जाती है। इसी के साथ यह भी कह सकते हैं कि वयस्कता में भी लार्वा-लक्षण मौजूद बने रहते हैं। कुछ चिरडिम्भीय उदाहरण स्थायी तौर पर लार्वा ही बने रहते हैं और उनके परिवर्धनशील ऊतकों पर उस थाइरॉक्सिन हार्मोन का कोई असर नहीं होता जो अन्यथा कार्यांतरणी घटनाओं को प्रेरित करता है। यह दशा आनुवंशिकत: प्रदत्त दशा है और इसे **अविकल्पी चिरडिम्भता (obligate nesteny)** कहते हैं। *नेक्ट्यूरस* अविकल्पी चिरडिम्भता का उदाहरण हैं। "मड-पपी" जैसा कि इसका अंग्रेज़ी नाम है, तालाबों और झीलों के तल में रहता है. और इसमें इसके बाह्य गिल आजीवन कायम बने रहते हैं। एक अन्य जीनस *ऐम्फ़ियूमा* भी अविकल्पी चिरडिम्भीय उदाहरण है, इसमें कार्यहीन आद्यांगी टांगे होती हैं। सैलामैन्डरों की कुछ स्पीशीज के लार्वा ही लैंगिक परिपक्वता प्राप्त कर लेते हैं और प्रजनन करने लग जाते हैं मगर उनमें कायांतरण होकर वयस्क बनने की क्षमता बरकरार रहती हैं, यदि पर्यावरणीय परिस्थितियों में परिवर्तन आता है। इस प्रकार की चिरडिम्भता को **विकल्पी चिरडिम्भता (facultative neoteny)** कहते हैं।

दो जीनसें *ऐम्बिस्टोमा* तथा *ट्राइट्यूरस* ऐसे ही यूरोडेलों के उदाहरण हैं। *ऐ. टाइग्रिनम (A. tigrinum)* अपने ऐक्सोलोटल (axolotl) लार्वा रूप में जलीय होता है, इसमें गिल होते हैं तथा यह लैंगिक रूप में जनन भी करता है। मगर जल सूख जाने पर यह जीव कायांतरण करके वयस्क बन जाता है, इसमें टांगे निकल आती हैं, तथा यह एक प्ररूपी वयस्क सैलामैन्डर बन जाता है। विकल्पी चिरडिम्भीय उदाहरणों में थाइरॉक्सिन के उपचार से कायांतरण प्रेरित किया जा सकता है।

बोध प्रश्न 5

क के नीचे दिए गए ऐम्फ़िबिया के ऑर्डर को ख के नीचे दिए गए लक्षणों के साथ मिलाइए:-

क		ख
ऐन्यूरा	1	पूंछयुक्त एम्फ़िबियन
	2	दृश्यमान गर्दन का अभाव
	3	समेकित पुच्छ कशेरुकों यानि कॉक्सिक्स का पाया जाना
यूरोडेला	4	पादविहीन ऐम्फ़िबियन
	5	लम्बी पसलियों का होना
	6	आंखों का अभाव
	7	शिशुप्रजता सामान्यत: होती पायी जाती है
जिम्नोफ़ाइओना	8	आदिम पाद
	9	पूंछ का अभाव
	10	थूथन में संवेदी स्पर्शकों का पाया जाना
	11	चिरडिम्भता का पाया जाना
	12	अस्थिल करोटि जो मिट्टी में खोद कर बिल बनाने में सहायता देती है
	13	पसलियों का न होना

2.5 सारांश

इस इकाई में आपने सीखा:-

- **एग्नैथा** - अर्थात् जबड़ा विहीन मछलियां आदितम कशेरुकी हैं तथा ये मछलियों के पूर्वज हैं। जबड़ा विहीन मछलियों के दो वर्ग हैं हैगमीन तथा लेम्प्रे। एग्नैथनों का शरीर ईल-जैसा, गोल और शल्कविहीन होता है। युग्मित उपांग होते हैं। चूसने और काटने के लिए अनुकूलित डिस्क-जैसा मुख होता है। एक आलिंद तथा एक निलय से युक्त हृदय तथा गिल क्षेत्र में महाधमनी चापें होती हैं। हैगमीन में 5 से 16 जोड़ी गिल तथा लैम्प्रे में 7 जोड़ी गिल पाए जाते हैं। हैगमीन में अग्रत: प्रोनेफ्रिक वृक्क तथा पश्चत: मीज़ोनेफ़िक वृक्क होते हैं। लैम्प्रे में केवल मीज़ोनेफ़िक वृक्क पाए जाते हैं। त्रिभंदित मस्तिष्क से युक्त पृष्ठ तंत्रिका रज्जु होता है। आंखें हैगमीन में ह्रासित तथा लैम्प्रे में सुविकसित होती हैं। लैम्प्रे के जीवन-चक्र में एक लार्वा-अवस्था, ऐमोसीट लार्वा, होता है।

- मछलियां असमतापी, गिल-श्वासी, जलीय कशेरुकी हैं। अधिक्लास पिसीज में दो क्लास आते हैं- कॉन्ड्रिक्थीज़ जिसमें कार्टिलेजी मछलियां आती हैं और ऑस्टिक्थीज जिसमें अस्थिल मछलियां आती हैं। कॉन्ड्रिक्थीज में रे, स्केट, शार्क तथा काइमिरा आती हैं। इन सभी में एक कार्टिलेजी कंकाल, युग्मित फिन, सुविकसित संवेदी अंग तथा एक विशिष्ट परभक्षी स्वभाव होता है। सामान्यत: इन मछलियों का शरीर तर्कुरूपी होता है, अधर मुख, तथा त्वचा में प्लैकॉइड शल्क, एवं श्लेष्मा-ग्रंथियां होती हैं। अंतड़ी के भीतर सर्पिल वाल्व होता है। रक्त में यूरिया तथा ट्राईमीथाइलऐमीन ऑक्साइड की उच्च मात्रा परासरण तथा आयनिक नियमन में सहायता करती है। मीज़ोनेफ़िक वृक्क पाया जाता है। अंडप्रजता, अडजरायुजता तथा जरायुजता होती हैं। निषेचन भीतरी होता है।

- ऑस्टिक्थीज अर्थात् अस्थिल मछलियों ने जलीय पर्यावरण में सभी संभव निकेतों में पहुंच कर अपना सफलतापूर्वक स्वामित्व बना लिया है। ऑस्टिक्थीज के दो उपक्लास हैं, सार्कोप्टेरिजिआई तथा ऐक्टिनॉप्टेरिजिआई। बीसवीं सदी की खोज, सजीव क्रॉसोप्टेरिजियन सीलाकैंथ मछली *लैटिमेरिया* एक बड़े आकार की मछली है जिसमें श्वसन अंगों के रूप में गिल होते हैं तथा जिसमें एक तरण-आशय भी होता है। *लैटिमेरिया* एक जीवित जीवाश्म है। ऑर्डर डिप्नोआई में तीन जीनसें आती हैं। *नीओसेरैटोडस* में अयुग्मित तरण-आशय होता है। युग्मित तरण-आशयों वाली *लेपिडोसाइरन* तथा *प्रोटॉप्टेरस* अपनी लगभग 98% ऑक्सीजन वायुमण्डल से प्राप्त करती हैं क्योंकि इनका तरण-आशय गैस-विनिमय के लिए रूपांतरित हो गया है। ऐक्टिनॉप्ऐरिजिआई में आधुनिक अस्थिल मछलियां टीलियोस्टिआई के अतिरिक्त दो आदिम अस्थिल मछलियों के वर्ग कॉन्ड्रोस्टिआई तथा होलोस्टीआई भी आते हैं। कॉन्ड्रोस्टीआई में, जिनकी प्रतिनिधि मछलियां बिचिर, स्टर्जियन तथा पैडल मछलियां है, आदिम लक्षण पाए जाते हैं जैसे कि चतुष्कोण शल्कों का पाया जाना, शल्कों के बाहर दंतिकाओं की एक परत का पाया जाना तथा स्पाइरेकलों का होना। तरण-आशय फेफड़ों के समान होता है। कॉन्ड्रोस्टीयन या तो अलवणजलीय होती हैं या समुद्री और यदि समुद्री हैं तो प्रजनन के लिए वे प्रवास करके अलवण जल में पहुंच जाती हैं। होलोस्टीआई में "बो-फिन" तथा गारपाइक मछलियां आती हैं जो कॉन्ड्रोस्टीआई से अधिक आदिम होती हैं। जीवित जीनसें *लेपिसोस्टियस* तथा *ऐमिया* दोनों ही अलवणजलीय उदाहरण हैं। बो-फ़िनों में, जोकि गारपाइकों से अधिक उन्नत होती हैं, एक पूर्णत: सममित पूंछ होती हैं. स्पाइरेकल नहीं होता, तथा शल्कों में ह्रास होकर एकल अस्थिल साइक्लाइड प्ररूप बन गया है।

- आधुनिक अस्थिल मछलियां, जो कि टीलियोस्टिआई के अंतर्गत आती हैं अस्थिल मछलियों में सर्वाधिक उन्नत होती हैं। गैस से भरे तरण-आशय के द्वारा ये जल में उदासीन (न्यूट्रल) उत्प्लावकता प्राप्त कर लेती हैं। टीलियोस्टों के गिलों में जल और रक्त के बीच एक कारगर प्रति-धारा प्रवाह होता है जिससे गैस-विनिमय की उच्च दर प्राप्त होने में सहायता मिलती है। अमोनिया तथा यूरिया के परासरणी एवं आयनी नियमन में वृक्क तथा गिल महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है। दोनों लिंगों में उत्सर्गी तथा जनन तंत्र पूरी तरह पृथक होते हैं। जीवित टीलियोस्टिआई में 9 ऑर्डर में आते हैं, तथा 20,000 से ज्यादा स्पीशीज़ हैं।

- ऐम्फ़िबिया असमतापी चतुष्पाद कशेरुकी होते हैं जो गैसों के श्वसन विनिमय के लिए ग्रंथीय त्वचा, गिलों तथा फेफड़ों का उपयोग करते हैं। जीवित आधुनिक ऐम्फ़िबियनों में तीन ऑर्डर आते हैं:- ऐन्यूरा जिनमें मेंढक तथा टोड आते हैं, जिम्नोफाइओना/एपोडा जिसमें पादविहीन अंधकृमि आते हैं और कॉडेटा/यूरोडेला जिसमें पूंछयुक्त न्यूटें तथा सैलामैन्डर आते हैं। इन तीन वर्गों में से मेंढक और टोड ही ऐम्फ़िबिया का सबसे बड़ा वर्ग बनाते हैं जिनमें कूदकर संचलन की विधि का अनुकूलन हो गया है। जैसा कि अंग्रेजी नाम "ऐम्फ़िबिया" में अर्थ निहित है इनके जीवन-चक्र में दो प्रावस्थाएं आती हैं- जिनमें जलीय लार्वा कायांतरण में गुज़रता हुआ एक स्थलीय वयस्क बनाता है जो अण्डे देने के लिए पुन: जल में लौटता है। कुछ मेंढकों, सैलामैन्डरों तथा सिसिलियनों ने जलीय लार्वा-अवस्था छोड़ दी है और उनमें परिवर्धन सीधा ही होता है। कुछ एपोडनों में शिशुप्रजता का विकास हो गया है। कुछ सैलामैन्डरों में स्थायी लार्वा आकारिकी प्राप्त हो गई है और वे स्थलीय पर्यावरण में जाने का साहस नहीं करते। ये उदाहरण चिरडिम्भीय होते हैं। स्थलीय जीवन के आधार पर निम्न लक्षणों का विकास हुआ है: (i) चतुष्पाद पाद और उनसे संबंधित अंस. एवं श्रोणि-मेखलाएं, (ii) वायुमण्डलीय ऑक्सीजन का उपयोग कर सकने वाली संरचनाएं, तथा (iii) संवेदी संरचनाएं जो स्थल पर संवेद-ज्ञान प्राप्त करने में सहायक होती हैं।

2.6 अंत में कुछ प्रश्न

1. साइक्लोस्टोमों के कोई ऐसे तीन लक्षण बताइए जो आदिम, विशेषित तथा अपकर्षित श्रेणियों के हैं।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2. इलास्मोब्रैंकों के कोई छह मुख्य लक्षण बताइए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

3. वे कौन से कारक रहे हैं जिनके कारण अस्थिल मछलियों को अपने जलीय पर्यावरण पर स्वामित्व जमाने में सफलता मिली है?

....

....

....

....

....

....

....

....

4. चतुष्पाद पादों तथा स्थलीय श्वसन के उद्‌भव के विषय में संक्षेप में लिखिए:

....

....

....

....

....

....

....

....

5. निम्नलिखित पारिभाषिक शब्दों के अर्थ को संक्षेप में समझाइए:-

(i) होलोस्टाइली, (ii) डिफिसर्कल पूंछ, (iii) तरण-आशय, (iv) जीवित जीवाश्म (v) चिरडिम्भता

....

....

....

....

....

....

....

....

2.7 उत्तर

बोध प्रश्न

1. 1. सही, 2. गलत, 3. गलत, 4. गलत, 5. सही, 6. गलत, 7. सही, 8. सही, 9. सही, 10. गलत

2. 1. 1. क्लास प्लैकोडर्माई क्लास-कॉन्ड्रिक्थीज़ तथा क्लास ऑस्टिक्थीज़ 2. इलास्मोब्रैकिआई तथा होलोकेफैलाई, 3. हेटेरोसर्कल, 4. प्लैकॉइड, 5. मीज़ोनेफ्रिक, 6. यूरिया, ट्राइमीथाइलऐमीन 7. अंस

II. 1-ग, 2-घ, 3-क, 4-ज, 5-ख, 6-च, 7-झ, 8-छ

III. क) सही, ख) गलत, ग) सही, घ) गलत, च) सही, छ) गलत, ज) सही, झ) गलत

3. निम्नलिखित शब्द उपयुक्त हैं जो रखे रहने चाहिए:-

(i) पैलियोज़ोइक, (ii) मांसाहारी, (iii) अधिक, (iv) सीलाकैन्थिफार्मीज़ (v) डिफिसर्कल, (vi) जीवित जीवाश्म, (vii) ऑटोस्टाइलिक, (viii) अयुग्मित, (ix) आदिम, (x) कैटाड्रोमस (अधोगामी), (xi) अलवण जलीय, (xii) साइक्लॉइड, (xiii) होमोसर्कल, (xiv) ऊँची, (xv) फिल्टर-अशनी, (xvi) तलवासी, (xvii) पतली दीवार वाला, (xviii) गिलें, (xix) अधिक, तनु, (xx) नहीं होता (xxi) समाकलित।

4. I. (i) (क) स्थल पर अपना भार संभालने की जीव की क्षमता

(ख) सूख जाने तथा तीव्र ताप-परिवर्तनों से प्रतिरोध की क्षमता

(ग) वायु से ऑक्सीजन ले सकने की क्षमता

(ii) दोहरे परिसंचरण में दैहिक परिसंचरण का संबंध ऑक्सिजनित रक्त को हृदय से शरीर के विभिन्न अंगों तथा अंग-तंत्रों में सप्लाई करना, तथा विऑक्सीजनित रक्त को अंगों एवं अंग तंत्रों से हृदय में लाना। दूसरे परिसंचरण में अर्थात् फुपफुस परिसंचरण में विऑक्सीजनित रक्त को ऑक्सीजनन के लिए फेफड़ों में पहुंचाया जाता है और फिर वापिस हृदय में लाया जाता है ताकि उसे शरीर के विभिन्न भागों में सप्लाई किया जा सके। ये दो परिसंचरण एक-दूसरे से पृथक रहते हैं परंतु किसी भी एक परिसंचरण का रक्त दूसरे परिसंचरण में ले आता है।

(iii) (1) बाह्यकंकाल का अभाव, (2) थल और जल दोनों पर रहने के लिए अनुकूलित, (3) त्वचा, मुख-गुहा तथा फेफड़े ये तीनों ही श्वसन अंग का कार्य करते हैं, (4) प्रधानतः अंडप्रजक; (5) लार्वों में वयस्क बनने से पहले कायांतरण होता है।

II. (i) –गलत, (ii) –गलत, (iii) –सही, (iv) –गलत, (v) –सही, (vi) –सही, (vii) –गलत, (viii) –सही, (ix) –गलत, (x) –सही, (xi) –सही, (xii) –सही, (xiii) –गलत

5. ऐन्यूरा - 2, 3, 9, 13; यूरोडेला - 1, 5, 8, 11, जिम्नोफाइओना - 4, 6, 7, 10, 12

अंत में कुछ प्रश्न

1. (क) आदिम लक्षण

(1) जबड़ों तथा युग्मित पादों का अभाव

(2) डिफिसर्कल पुच्छ फिन का होना

(3) कशेरुकें या तो नहीं होतीं या कम विकसित होती हैं

(ख) विशेषित लक्षण

(1) थैले-जैसे गिल कोष्ठ

(2) सुविकसित बाह्य आंखें तथा भीतरी कान

(3) प्रोनेफ्रिक तथा मीजोनेफ्रिक वृक्कों का पाया जाना

(ग) अपकर्षित लक्षण

(1) बाह्यकंकाल का न होना

(2) अस्थिभवन का न होना तथा अंतः कंकाल

(3) वयस्क लैम्प्रे में यकृत का ह्रासित होना तथा पित्ताशय का अभाव

2. (1) तर्कुरूपी शरीर, हेटेरोसर्कल पूंछ, युग्मित अंस तथा श्रोणि फिन, दो पृष्ठ मध्य फिन, नर में श्रोणि फिन का आलिंगकों में रूपांतरण

(2) त्वचा में श्लेष्मा-ग्रंथियां तथा प्लेकॉइड शल्क

(3) पूर्णतः कार्टिलेजी अंतःकंकाल

(4) अंतड़ी में सर्पिल वाल्व

(5) परिसंचरण तंत्र में सात जोड़ी महाधमनी चापें तथा श्वसन का पांच से सात जोड़ी गिलों के द्वारा होना

(6) मीज़ोनेफ्रिक वृक्क रक्त में यूरिया एवं ट्राइमीथाइलऐमीन ऑक्साइड का उच्च सांद्रण ताकि परासरणनियमन होता रहे।

3. (1) धारारेखित शरीर या तो ईल-आकृति का या स्पिंडल-आकृति का, जिससे बिना क्षुब्ध हुए जल के भीतर गति से सुविधा मिलती रहे।

(2) गैस से भरे तरण-आशय का होना जो उदासीन उत्प्लावकता प्राप्त करने तथा जल के ऊपर उतराने में सहायता करता है।

(3) गिलों की बनावट में पतले सूत्र होते हैं जिनके ऊपर पतली एपिडर्मिसी झिल्ली चढ़ी होती है और जिनमें बार-बार वलन बनते हुए प्लेट-सरीखी पटलिकाएं बन जाती हैं जिनमें रक्त वाहिकाओं की प्रचुर सप्लाई होती है।

(4) अलवणजलीय मछलियां अधिपरासारी होती हैं। वह अपने शरीर के अधिशेष जल को मीज़ोनेफ्रिक वृक्कों के द्वारा बाहर निकालती रहती हैं और इस प्रकार बहुत तनु मूत्र का उत्सर्जन होता है। गिल-एपिथीलियम की लवण-अवशोषी कोशिकाएं जल में से सोडियम तथा क्लोराइड को सक्रिय रूप में रक्त के भीतर को पहुंचाती रहती हैं। समुद्री मछलियां अधःपरासारी होती हैं, उनकी समस्या है जल का शरीर से बाहर निकलना एवं अतिरिक्त लवण का शरीर के भीतर को प्रवेश होना। ये समस्याएं दो तरीकों से हल होती हैं (i) समुद्री जल को पीकर, (ii) गिलों में स्थित लवण-स्रावी कोशिकाओं के द्वारा सोडियम तथा क्लोराइड को शरीर से बाहर निकाल कर, (iii) द्विसंयोजकी (डाइवैलेंट) धनायनों को विष्ठा के साथ बाहर निकालना (iv) वृक्कों के द्वारा 10 से 40% द्विसंयोजकी धनायनों को बाहर निकाल देना (v) अतिह्रासित ग्लोमेरूलर अथवा अग्लोमेरूलर वृक्कों का होना तथा बहुत सांद्रित एवं अधिपरासारी मूत्र

(5) जबड़ों का विकास हो जाने से मछलियों में परभक्षी जीवन-शैली के लिए अनुकूलन की क्षमता आ गयी है। अतः अनेक मछलियां मांसाहारी हैं बहुत सी शाकाहारी तथा फ़िल्टर-अशनकारी हैं जो सूक्ष्मजीवों को खाती हैं। अंत में, सर्वभक्षी मछलियां भी होती हैं और अपमार्जक भी एवं परजीवी भी। मछलियों में आहार करने के विविध तरीके हैं।

(6) मछलियों में आहार करने तथा प्रजनन एवं परिवर्धन के लिए प्रवास यात्रा करना होता पाया जाता है। अण्डे देने के लिए अलवणजलीय ईलें समुद्र में प्रवास करती हैं तथा समुद्रवासी सामन-मछलियां इसी हेतु अलवण जल में जाती हैं।

4. (क) **चतुष्पाद पाद का उद्भव:** चतुष्पाद पादों का विकास डिवोनी काल में हुआ। मछलियों को मजबूरन सूखते हुए ताल-तलैयों से उन ताल-तलैयों में जाना पड़ता था जिनमें अब भी जल भरा था। क्रॉसोप्टेरिजिनों ने अपने पालियुक्त फ़िनों को पैडल की तरह इस्तेमाल किया जिनके द्वारा मानो लीवर की तरह काम लेते हुए वे जल की तलाश में स्थल पर यहां से वहां चलती-खिसकती जाती थीं। पालियों की पेशियों के संकुचन से ये पालियां शरीर के सापेक्ष आगे और पीछे को चलने लगीं तथा इस प्रकार संचलन में उनसे मदद मिली। धीरे-धीरे पाद लंबे होते गए और वे शरीर से दूर की ओर को घूम गए। इसके बाद पादों में स्पष्ट मोड (झुकाव) बन गए, कोहनी तथा घुटने पर नीचे की ओर को और कलाई तथा टखने पर ऊपर की ओर को। इससे ये चतुष्पाद प्राणी अपने को ज़मीन पर अच्छी तरह जमाए रख सकते थे और साथ ही साथ अपने को ज़मीन से ऊपर भी उठाए रख सकते थे। यह परिवर्तन पूरा हुआ जब पादों को शरीर के पार्श्व में ले आया गया। इसके परिणामस्वरूप कोहनी का रुख पीछे को तथा घुटने का रुख सामने को हो गया। (देखिए चित्र 2.50)।

(ख) **थलीय श्वसन का उद्भव:** थलीय श्वसन डिवोनी काल के दौरान उस समय प्रकट हुआ जान पड़ता है जब जलवायु में सूखा पड़ता और उसके बाद बाढ़ आ जाया करती थी। सूखा पड़ने से

ताल-तलैये सूखने लगे। अनेक पालि-फ़िन वाली तथा अर-फ़िन वाली अस्थिल मछलियों में फेफड़ा ग्रसनी के एक बहिर्वलन के रूप में बनने लगा। जैसे-जैसे इन फेफड़ों में अधिकाधिक रक्तवाहिकायन हुआ और एक प्रचुर केशिका-जाल बना और उसी के साथ-साथ अंतिम महाधमनी चापों से धमनी रक्त की आपूर्ती होने लगी, तो चतुष्पादों में ये फेफड़े ही गैस-विनिमय के प्राथमिक अंग बन गए। एक फुप्फुस शिरा रक्त को वापिस हृदय में लाने लगी जिससे फुप्फुस परिपथ पूरा हुआ। इस प्रकार दोहरे परिसंचरण की स्थापना हो गयी।

5. (i) **होलोस्टाइली:** इस प्रकार का जबड़ा निलंबन होलोकेफैलाई में होता पाया जाता है। इसमें ऊपरी जबड़ा करोटि से समेकित रहता है तथा निचला जबड़ा उससे लटका हुआ रहता है।

(ii) **डिफ़िसर्कल पूंछ:** इस प्रकार की पूंछ हैगमीन में पायी जाती है। पूंछ एक अंतिम बिंदु तक संकरी होती जाती है और कशेरुक दंड सीधा आख़िर तक बिना ऊपर को मुड़े चलता जाता है।

(iii) **तरण-आशय:** तरण आशय अनेक मछलियों में ग्रसनी अथवा ग्रसिका से निकला हुआ एक अंधवर्ध होता है। आरंभ में इसकी स्थिति पार्श्व होती थी मगर बाद में इसने पृष्ठ स्थान ले लिया। यह एकल हो सकता या अथवा युग्मित। क्रॉसोप्टेरिजियनों तथा डिप्नोआई में यह ग्रसनी की अधर दीवार से निकलता है और इसकी संरचना कशेरुकियों के फेफड़ों से मिलती-जुलती होती है। वेलापवर्ती मछलियों में तरण-आशय होता है मगर तलीवासी मछलियों में नहीं होता। वेलापवर्ती मछलियों में नीचे जाने की उत्प्लावकता तरण-आशय के भीतर की गैस की मात्रा को कम-ज़्यादा करके प्राप्त की जाती है। इस प्रकार के समंजन से मछली बिना पेशीय प्रयास किए किसी भी गहराई पर अनिश्चित काल तक टिकी-बनी रह सकती हैं। जब मछली को अधिक गहराई पर जाना होता है तब आशय के भीतर गैस की मात्रा बढ़ा दी जाती है और जब मछली को ऊपर को आना होता है तब गैस निकाल दी जाती है जिससे मछली हल्की हो जाती है।

(iv) **जीवित जीवाश्म:** जीवित जीवाश्म वे जीव होते हैं जिनमें उनके उद्भव के समय से लेकर अब तक कोई ख़ास परिवर्तन नहीं हुआ है और उनमें सभी आदिम लक्षण बरकरार हैं। सीलाकैंथ मछली *लैटिमेरिया काल्मनी* का उद्भव डिवोनी काल में हुआ था और यह पिछले लगभग 10 करोड़ वर्ष से इसी प्रकार अपरिवर्तित बनी चली आ रही है। जीवित जीवाश्म से जीवों के किसी वर्ग-विशेष के उद्भव एवं विकास के विषय में संकेत प्राप्त होते हैं।

(v) **चिरडिम्भता:** चिरडिम्भता एक परिवर्धन-परिघटना है जिसमें जीव अपनी लार्वा-अवस्था के ही दौरान लैंगिक परिपक्वता प्राप्त कर लेता है। वयस्कता में लार्वा-लक्षणों का मौजूद रहते चले आना भी नीओटनी कहलाता है। यह परिघटना कुछ यूरोडेल ऐम्फ़िबियनों में व्यापक रूप में पायी जाती है। *नेक्ट्यूरस* तथा *ऐम्बिस्टोमा* चिरडिम्भीय प्राणियों के उदाहरण हैं।

इकाई 3 सरीसृप तथा पक्षी

इकाई की रूपरेखा-

3.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
3.2 ऐनैम्नियोट्स तथा ऐम्नियोट्स
3.3 सरीसृप
सरीसृपों का उद्भव एवं अनुकूली विकिरण
सरीसृपों के परम्परागत वर्गीकरण में परिवर्तन
विद्यमान सरीसृपों का वर्गीकरण
सरीसृपों के मुख्य लक्षण
ऐम्फ़िबियनों की तुलना में सरीसृपों के विभेदक लक्षण
विद्यमान सरीसृपों के ऑर्डरों की विशिष्टताएं
3.4 पक्षी-एवीज़
पक्षियों की पूर्वजता एवं उनका विकास
पक्षियों का वर्गीकरण
पक्षियों की विशिष्टताएं
पक्षियों का स्वरूप एवं उनके प्रकार्य
सामाजिक व्यवहार
3.5 सारांश
3.6 अंत में कुछ प्रश्न
3.7 उत्तर

3.1 प्रस्तावना

आप पिछली इकाई (LSE-10 पाठ्यक्रम के खण्ड I की इकाई 2) में क्लास पिसीज़ के विषय में पढ़ चुके हैं जिसके सदस्य आजीवन पूरी तरह जल पर निर्भर रहते हैं। आपने ऐम्फ़िबियनों का भी अध्ययन कर लिया है, जिनमें से कुछ थल पर रह सकने योग्य हो गए हैं मगर प्रजनन के लिए उन्हें वापिस जल में ही जाना पड़ता है जिससे पता चलता है कि वे थल-जीवन के लिए पूर्णतः अनुकूलित नहीं हुए हैं। इस और इससे अगली इकाई में आप सरीसृपों, पक्षियों तथा स्तनियों- जैसे उन कशेरुकियों के विषय में पढ़ेंगे जो पूर्णतः थल-प्राणी हैं और जिन्हें अण्डे देने अथवा बच्चे पैदा करने के लिए वापिस जल में नहीं जाना पड़ता।

इस इकाई में आप सरीसृपों तथा पक्षियों के विषय में पढ़ेंगे। सरीसृपों, जो कि क्लास रेप्टीलिया में आते हैं, में आप इनकी विशिष्टताओं, वर्गीकरण तथा विकास और इनके चार विद्यमान ऑर्डरों रिंकोसेफ़ैलिया, कीलोनिया, क्रोकोडीलिया तथा स्क्वैमैटा के मुख्य लक्षणों के विषय में एवं थल-जीवन के लिए उनके अनुकूलनों के विषय में पढ़ेंगे। क्लास एवीज़ के अंतर्गत आने वाले पक्षियों में आप उनकी विशिष्टताओं, वर्गीकरण, विकास तथा उड्डयन के लिए अनुकूलनों के विषय में पढ़ेंगे।

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप:

- सरीसृपों (क्लास रेप्टीलिया) तथा पक्षियों (क्लास एवीज़) के विकास और उनकी बंधुताओं के विषय में संक्षेप में वर्णन कर सकेंगे,
- सरीसृपों के थल-जीवन के लिए अनुकूलनों का वर्णन कर सकेंगे,
- सरीसृपों की विशिष्टताओं की सूची बना सकेंगे एवं उनका वर्णन कर सकेंगे,
- सरीसृपों के चार विद्यमान (extant) ऑर्डरों के वर्गीकरण की रूपरेखा दे सकेंगे,
- चार विद्यमान ऑर्डरों रिंकोसेफ़ैलिया, कीलोनिया, क्रोकोडीलिया तथा स्क्वैमैटा के मुख्य लक्षणों का वर्णन कर सकेंगे,

- विषैले तथा विषहीन सांपों में विभेद कर सकेंगे,
- पक्षियों की विशिष्टताओं की सूची बना सकेंगे एवं उनका वर्णन कर सकेंगे,
- विद्यमान पक्षियों के ऑर्डरों के स्तर तक के वर्गीकरण की रूपरेखा दे सकेंगे।

3.2 ऐनैम्नियोट्स तथा ऐम्नियोट्स

सरीसृपों, पक्षियों तथा स्तनियों में थल जीवन के लिए जो अनुकूलन प्रकट हुए उन सबके होने के पीछे एक ऐसा जनन प्रतिरूप विकसित होना था जिसने उन्हें बाह्य जल स्रोतों पर निर्भरता से पूर्णत: मुक्त कर दिया। इसकी उपलब्धि अनिवार्यत: एक तो भीतरी निषेचन (अंडे का माता के शरीर के भीतर निषेचन होने) की विधि को प्राप्त कर लेने से थी और इससे भी अधिक महत्वपूर्ण एक ऐसे कड़े अंडे का दिया जा सकना था जो थल पर दिया जा सकता था। एक ऐसे अंडे में, जो जलीय माध्यम से घिरा न होकर वायु से घिरा हो, निम्नलिखित लक्षण विकसित हुए (चित्र 3.1) : एक दृढ संरक्षी मगर फिर भी पारगम्य बाहरी कवच जो शृंगीय होता है अथवा कभी-कभी कैल्सियमी और साथ में शृंखलाबद्ध भ्रूण-झिल्लियों का एक क्रम जो एक सम्पूर्ण जीवनावलम्बी तंत्र का कार्य करती हैं। इन झिल्लियों में एक पीतक-कोश (yolk sac) होता है जिसके भीतर भ्रूण के पोषण के वास्ते पर्याप्त पीतक भरा होता है। जरायुज अथवा कोरियॉन-झिल्ली (chorionic membrane) पीतक और भ्रूण दोनों को बाहर से घेरे रहती है। अपरापोषिका (allantois) के द्वारा गैस विनिमय हो पाता है तथा उत्सर्जित उपापचयजों (मेटाबोलाइटों) को अपरा-पोषिका गुहा के भीतर संचित कर लेती है। उल्व (amnion) नामक झिल्ली परिवर्धनशील भ्रूण को तरल से भरी एक गुहा के भीतर बंद किए रहती है - तरल से भरी यह गुहा मानो पूर्वज तालाब की ही एक प्रतिकृति है।

इस प्रकार के अण्डों को सकोश अंडा (**cleidoic egg**) कहते हैं, और इनके विकास से उस क्षति हो सकने वाली जलीय लार्वा अवस्था, जो मछलियों तथा ऐम्फ़िबियनों की विशिष्टता है, का दमन हो गया और उसके स्थान पर भ्रूण या तो अण्डे के भीतर की सुरक्षा में, या मां के शरीर के भीतर पनप कर पूर्ण विकसित लघु वयस्क के रूप में जन्म लेता है। अत: इन तीन प्राणि-वर्गों को ऐम्नियोट्स (ऐम्नियोटा, amniota) कहा जाता है क्योंकि इन सबमें एक समान लक्षण ऐम्नियॉन (उल्व) का पाया जाना है। मछलियों तथा ऐम्फ़िबियनों में उल्व सहित ये बाह्य भ्रूण झिल्लियां नहीं होती और इसलिए उन्हें **ऐनैम्नियोट्स (Anamniotes)** कहते हैं।

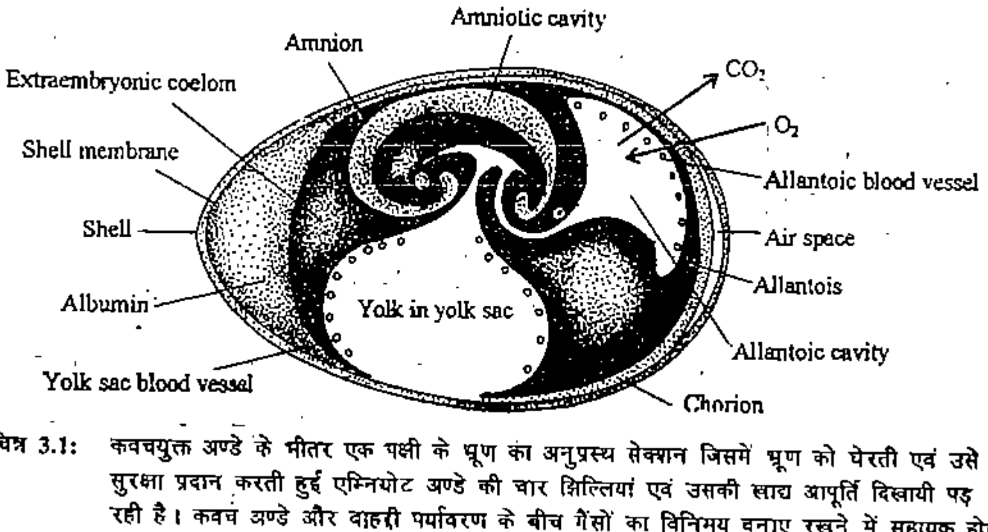

चित्र 3.1: कवचयुक्त अण्डे के भीतर एक पक्षी के भ्रूण का अनुप्रस्थ सेक्शन जिसमें भ्रूण को घेरती एवं उसे सुरक्षा प्रदान करती हुई एम्नियोट अण्डे की चार झिल्लियां एवं उसकी खाद्य आपूर्ति दिखायी पड़ रही है। कवच अण्डे और बाहरी पर्यावरण के बीच गैसों का विनिमय बनाए रखने में सहायक होता है।

3.3 सरीसृप

सृपों के अध्ययन को अंग्रेजी में टोलॉजी (ग्रीक - हर्पिटॉन : सृप) कहते हैं।

सरीसृप प्राणी क्लास रेप्टीलिया (Reptilia) (लैटिन repto = रेंगना) में आते हैं और ये ही सबसे पहले वास्तविक थल कशेरुकी हैं। क्रॉसॉप्टेरिजियन मछलियों तथा ऐम्फ़िबियनों ने थल पर अपना अड्डा जमाने की जो प्रक्रिया आरम्भ की थी उसे इन सरीसृपों ने और आगे जारी किए रखा तथा वे थल पर अपने अस्तित्व के लिए सुअनुकूलित हो गए।

3.3.1 सरीसृपों का उद्भव एवं अनुकूली विकिरण

सामान्यत: विकास-जीववैज्ञानिक इस बात पर सहमत हैं कि थलीय ऐम्नियोट कशेरुकियों अर्थात् सरीसृपों, पक्षियों तथा स्तनियों का उदय लैबिरिंथोडॉण्ट (labyrinthodonts) नामक ऐम्फिबिया-सदृश चतुष्पादों से हुआ है, इन लैबिरिंथोडॉण्टों में एक ऐसी जनन रणनीति विकसित हो गयी थी जिसने इन्हें बाहरी जल स्रोतों से पूरी तरह मुक्ति दिला दी। यह परिवर्तन पेलियोज़ोइक युग के आरम्भिक कार्बोनिफ़ेरस काल के दौरान हुआ (चित्र 3.2)। यह परिवर्तन सकोश अंडे के विकास के ही कारण संभव हुआ, जैसा कि आप सेक्शन 3.2 में पढ़ चुके हैं। चित्र 3.3 में ऐम्नियोटों का विकास दर्शाया गया है।

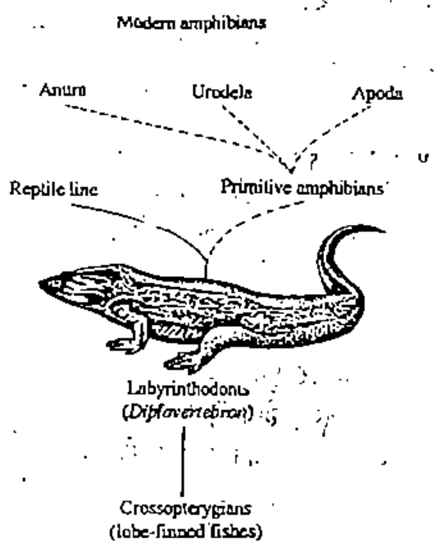

चित्र 3.2: यहां दिखाया गया लैबिरिंथोडॉण्ट (डिप्लोवर्टीब्रॉन, **Diplovertebron**) ही संभवत: वह आदिम ऐम्फिबियन रहा होगा जिससे सरीसृप तथा ऐम्फिबियन दोनों ही विकसित हुए होंगे, हालांकि इनकी वंशजता अभी भी अस्पष्ट बनी हुई है।

सरीसृपों की प्राचीनतम मूल शाखा जिनसे सभी सरीसृप विकसित हुए कैप्टोराइनोमार्फ (Captorhinomorphs) अथवा अथवा कैप्टोराइनिड माने जाते हैं (चित्र 3.4) जिन्हें ऑर्डर कौटिलोसौरिया (Cotylosauria) में रखा जाता है। ये प्राणी बाहर से छिपकलियों के जैसे लगते थे। इनका कंकाल उस समय रह रहे लैबिरिंथेडॉण्टों की अपेक्षा अधिक पूरी तरह अस्थिभूत हो गया था तथा इनके पादों से लगता है कि ये चलने-फिरने में अधिक फुर्तीले थे। ये कदाचित छोटे थलीय आर्थ्रोपोडों का आहार करते थे जो लगभग उसी काल में बहुसंख्यक होते जा रहे थे एवं जिनमें स्वयं अपना ही अनुकूली विकिरण हो रहा था।

आरंभिक मुख्य शाखा के सरीसृपों के अवशेष आदिम वृक्षों की जीवाश्मित ठूँठों मे पाए गए हैं जिनका समय बहुत पहले 32 करोड़ वर्ष पूर्व मध्य कार्बोनिफेरस का है। सिरौरिया सबसे अधिक जाना जाने वाला काटिलोसार है जो लेबीरिथोंडाट ऐम्फिबियन से काफी मिलता जुलता है जिसकी वजह से जीवाश्म-वैज्ञानिकों को इनको दो वर्गो में रखना आसान नहीं है।

सरीसृप पहले कशेरुकी थे जो अलवण जल के किनारों को लांघ कर दूर-दूर तक थल पर्यावरण को बेधते हुए यहां-वहां फैलते गए, इसलिए उन्हें थल पर न के बराबर प्रतिस्पर्धा मिले। उनकी संख्या में तेज़ी से वृद्धि होती गयी, वे हर संभव थल ताक (terrestrial niche) में फैल गए और उसी के अनुसार उनमें विशेषीकरण हो गया। उनके अधिकतर अनुकूली विकिरण में संचलन तथा अशन की विभिन्न विधियों का विकास होना था। उनमें जहां और क्रियाएं हो रही थी वहीं विविध प्रकार के अशन प्रतिरूपों के कारण जबड़े की पेशियों में रूपांतरण हुए और स्वयं इन परिवर्तनों के कारण कपाल के उस टेम्पोरल (temporal) प्रदेश की संरचना प्रभावित हुई जहां से पेशियां निकलकर आती हैं। अत: कंकाल की आकारिकी में हमें एक ऐसी सुविधाजनक विधि मिल जाती है जिसके द्वारा सरीसृपों के विकास की अलग-अलग दिशा-रेखाएं पहचानी और अलग-अलग छांटी जा सकती हैं (चित्र 3.5)। कैप्टोराइनिडों के कपाल की एक ठोस छत चर्मीय हड्डी की बनी होती थी जो जबड़ा पेशियों को पृष्ठत: एवं पार्श्वत: ढके रहती थी (चित्र 3.5A)। इस प्रकार के कपाल को ऐनैप्सिड (anapsid) दशा वाला कहा जाता है, ऐसा इसलिए क्योंकि नेत्र-कोटरों (orbits) के पीछे अस्थिल चापों द्वारा परिसीमित टेम्पोरल छत में कोई छिद्र नहीं होता था। दूसरे शब्दों में नेत्र-कोटरों के पीछे कपाल के ऊपर चर्मीय हड्डियां पूरी तरह ढके रहती थीं। कैप्टोराइनिडों और उनके निकट संबंधियों को उपक्लास ऐनैप्सिडा (anapsida) में रखा जाता है। इस समूह में आज के एकमात्र प्रतिनिधि कछुए आते हैं। इनकी आकारिकी में आदिम तथा विशेषित लक्षणों का एक अजीब बेमेल मिश्रण पाया जाता

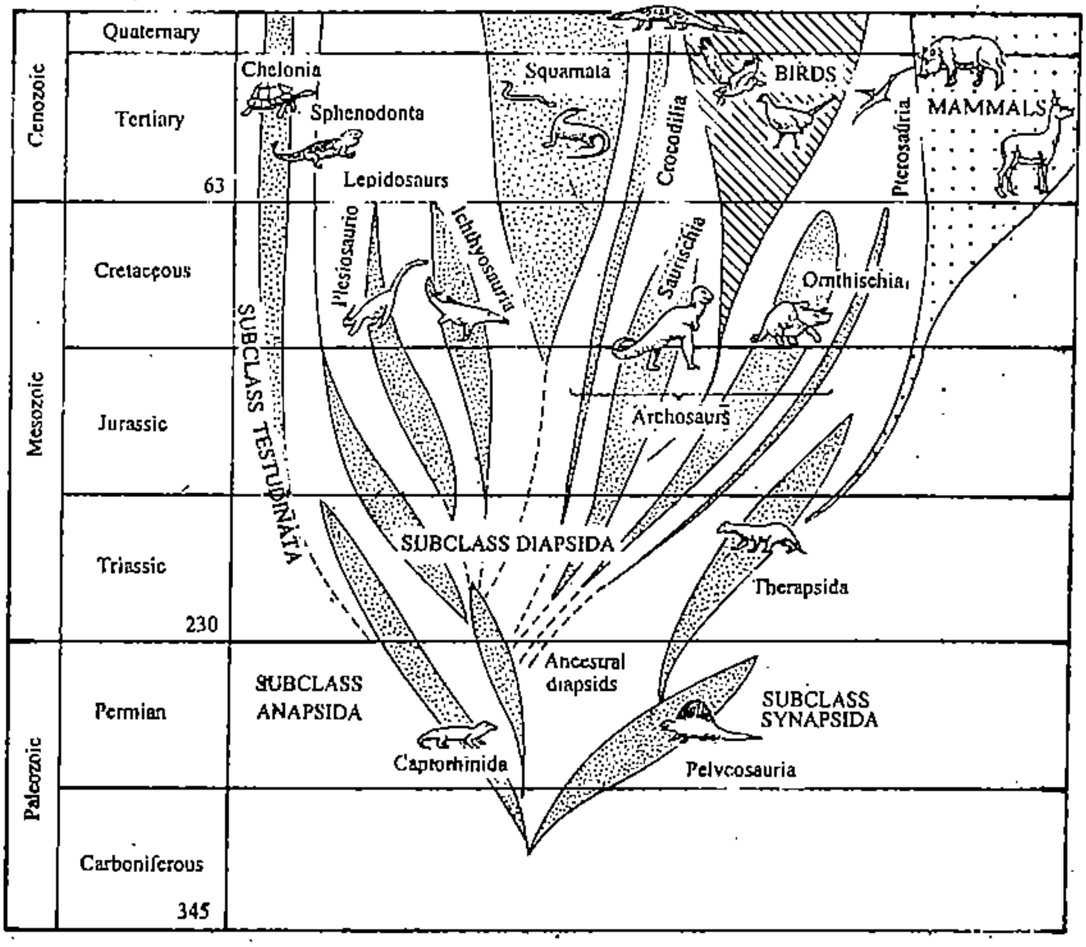

चित्र 3.3: ऐम्नियोटिक सरीसृपों का जातिवृत्त, भूवैज्ञानिक वितरण तथा विकास। कुछ विशिष्ट लैबिरिंथोडॉण्ट ऐम्फिबियनों से सरीसृपों की दिशा में हुआ संक्रमण और पेलियोज़ोइक से लेकर मीज़ोज़ोइक युगों के दौरान हुआ। यह संक्रमण उल्वी अण्डे बनने के कारण हुआ जिससे थल पर जीवन बिताया जा सकना संभव हुआ हालांकि हो सकता है कि यह अण्डा आदितम ऐम्नियोटों के थल पर दूर तक चले जाने के प्रयास से पहले ही बन चुका हो। ऐम्नियोटिक (उल्वी) प्राणी समूह जिसमें सरीसृप, पक्षी तथा स्तनी आते हैं, एक छोटे छिपकली-सरीखे कैप्टोराइनिड (captorhinid) जिसमें ऐम्फिबियन प्रकार का कपाल-प्रतिरूप अभी भी कायम बना था, के वंशज के रूप में विकसित हुए। यह ऐनैप्सिड (anapsid) वंशजता थी जिससे कछुए बने। इस आदिम मूल से जो सबसे पहले पृथक शाखा निकली वह थी स्तनी-सदृश सरीसृपों की जिनकी विशेषता सिनैप्सिड (synapsid) नामक दशा से युक्त कपाल-प्रतिरूप का पाया जाना था। पक्षी तथा कछुओं को छोड़कर सभी सरीसृपों समेत अन्य सभी ऐम्नियोटों में डाइऐप्सिड नामक कपाल-प्रतिरूप पाया जाता है। सरीसृपों का महान मीज़ोज़ोइक विकिरण अंशतः उन अधिक विविध हो गए पारिस्थितिक आवासों के कारण हुआ होगा जिसमें ये अब जा सकते थे। गौर कीजिए कि सरीसृप एकस्रोतोद्भवी (monophyletic) समूह नहीं हैं क्योंकि वे तीन स्पष्ट विकासीय दिशाओं में फैले हुए हैं। क्लास रेप्टीलिया में सामान्यतः रखे जाने वाले समूह वे ऐम्नियोट होते हैं जो न तो पक्षी हैं और न ही स्तनी।

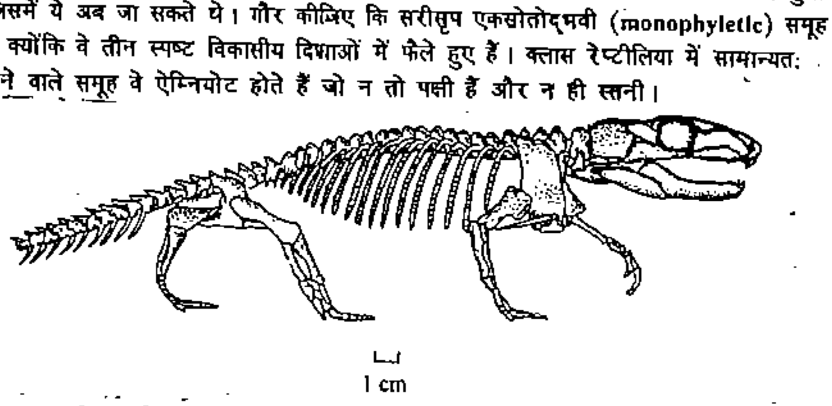

चित्र 3.4: लगभग 28.5 करोड़ वर्ष पूर्व पर्मियन से प्राप्त कैप्टोराइनिड कंकाल (जीवाश्म)। यह नमूना लगभग 25 से.मी. लम्बा था।

है, और इस संरचना में उस समय से लेकर जब से ट्रिऐसिक युग में कछुए पहली बार जीवाश्म रिकार्ड में प्रकट हुए आज तक लगभग कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। जैसे-जैसे अशन प्रतिरूपों तथा जबड़ा पेशियों में

परिवर्तन होते गए वैसे-वैसे जबड़ा पेशियों के ऊपर स्थित टेम्पोरल छत में विविध प्रकार के गवाक्षों (fenestrae) अथवा छिद्रों का विकास होता गया। चर्मीय छत के कुछ भागों में प्रकटत: कोई खिंचाव-तनाव नहीं पड़ता तथा इन प्रदेशों में हड्डी नहीं बनती। पेशियां छिद्रों के सीमांतों पर तथा हड्डियों के कूटकों (ridges) पर उससे कहीं ज्यादा अच्छी तरह चिपकी रह सकती हैं, जितनी कि अन्यथा वे चपटी सतहों पर जुड़ी हो सकती हैं, और साथ ही वे संकुचित होते समय छिद्रों को उभार भी सकती हैं।

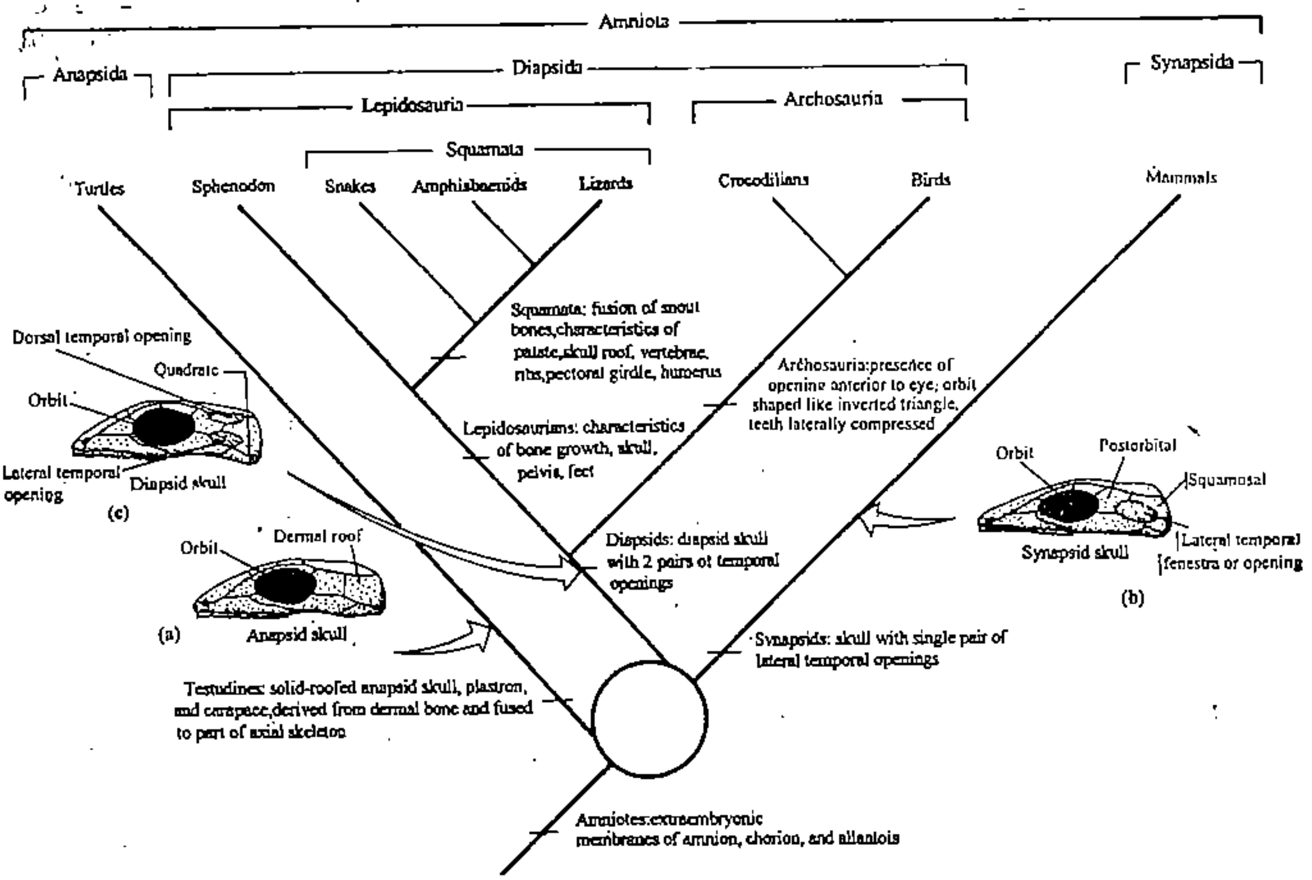

चित्र 3.5: ऐम्नियोटा का क्लैडोग्राम। ऐनैप्सिडों, डाइऐप्सिडों तथा सिनैप्सिडों के परस्पर संबंध अनिश्चित हैं जैसा कि वृत्त द्वारा दिखाया गया है। समान रूप में पाए जाने वाले कुछ व्युत्पन्न लक्षण **(synapomorphies)** दिए गए हैं। जो वंशजता के लिए निदानसूचक हैं। कपाल में तीन समूहों की पूर्वज दशा प्रतिदर्शित है। ऐनैप्सिड कपाल कोटिलोसौरों तथा उनके आधुनिक वंशजों कछुओं में पाया जाता है। दो प्रधान समूह डाइऐप्सिड तथा सिनैप्सिड, ऐनैप्सिडों से अलग-अलग स्वतंत्र रूप में विकसित हुए। आधुनिक डाइऐप्सिडों तथा सिनैप्सिडों के कपाल अक्सर बहुत रूपांतरित हो गए होते हैं जिसका आधार उनमें कपाल की हड्डियों का ह्रास अथवा समेकन हो गया होता है जिससे पूर्वज दशा अस्पष्ट हो गयी है। *स्फीनोडॉन (Sphenodon)* तथा क्रोकोडीलियनों में आदिम डाइऐप्सिड करोटि कायम रहती है परंतु सांपों, छिपकलियों तथा पक्षियों जैसे डाइऐप्सिड व्युत्पादों में यह रूपांतरित हो गयी है। **(a)** कैप्टोराइनिड की ऐनैप्सिड करोटि; **(b)** एक स्तनी-सदृश सरीसृप की ऐनैप्सिड करोटि; **(c)** एक स्फीनोडॉण्टिड की डाइऐप्सिड करोटि।

इस प्रकार बाद के कार्बोनिफ़ेरस आने तक जो ऐम्नियोट केप्टोराइनिडों से विकसित हुए वे अलग-अलग तीन सुस्पष्ट दिशाओं में विकसित हो गए (चित्र 3.3)।

1. **ऐनैप्सिड (Anapsids):** इनके आज के प्रतिनिधि कछुए हैं जिनमें ऐनैप्सिड करोटि कायम बनी हुई है।

2. **सिनैप्सिड (Synapsids):** इनमें स्तनी-सदृश सरीसृप आते हैं। सिनैप्सिड करोटि में एक जोड़ी पार्श्वत: स्थित टेम्पोरल छिद्र होते हैं जो मूलत: पश्च-ऑर्बिटलों तथा स्क्वैमोज़ल हड्डियों की अधर दिशा में स्थित होते हैं। ये छिद्र गालों के नीचे की ओर स्थित होते हैं और एक अस्थिल चाप उनका सीमांत बनाए होती है (चित्र 3.5b)। सिनैप्सिड पहले ऐम्नियोट समूह थे जिनमें विविधिकरण हुआ जिससे पेलिकोसौर (Pelycosaurs) बने और उसके बाद थीरैप्सिड (Therapsids) बने जो स्तनी-सदृश सरीसृप थे और जिन्हें स्तनियों का पूर्वज माना जाता है और जिनसे आज के स्तनी बने (चित्र 3.3)।

कुछ डाइऐप्सिडों में जब उनमें जबड़ा क्रियाविधियां विकसित हुई, परवर्ती तौर पर उन अस्थि शलाकाओं जो टेम्पोरल छिद्रों को परिसीमित किए होती हैं, में से एक या दोनों समाप्त हो गयीं।

3. डाइऐप्सिड: तीसरी वंश परम्परा है जिससे शेष सभी सरीसृप समूहों का उदय हुआ और उससे आगे पक्षियों का (चित्र 3.3)। डाइऐप्सिड करोटि की विशिष्टता दो टेम्पोरल रिक्तिकाओं का पाया जाना था जिनमें से एक पश्च ऑर्बिटल-स्क्वैमोज़ल छड़ के ऊपर और एक उसके नीचे थी। इस प्रकार इन रिक्तिकाओं का एक जोड़ा गालों के नीचे स्थित होता है जैसे सिनैप्सिडों में और दूसरा जोड़ा निचले जोड़े के ऊपर स्थित होता है तथा एक अस्थिल चाप द्वारा पृथक हुआ रहता है (चित्र 3.5c), इस प्रकार डाइऐप्सिडों के तीन उपसमूह प्रकट हुए: (1) *लेपिडोसौर* (*Lepidosaurs*) जिनमें एक तो विलुप्त समुद्री इक्थियोसौर (Ichthyosaurs) और दूसरे कछुओं एवं मगरमच्छों को छोड़कर, शेष सभी आधुनिक सरीसृप आते हैं। (2) अधिक उन्नत *आर्कोसौर* (*Archosaurs*) जिनमें डाइनोसौर तथा उनके संबंधी और जीवित मगर-मच्छ तथा पक्षी आते हैं। (3) एक तीसरी अपेक्षाकृत छोटी वंश रेखा *सौरॉप्टेरिजियनों* (*Sauropterygians*) की है जिसमें अनेक विलुप्त जलीय समूह आते हैं जिनमें सर्वाधिक सुप्रकट थे बड़े-बड़े, लम्बी गर्दन वाले प्लेजियोसौर।

क्लास रेप्टीलिया का अनुकूली विकिरण विशिष्टत: ट्राइऐसिक काल (जो पर्मियन काल के बाद आया) में बहुत सुस्पष्ट था तथा वह नए पारिस्थितिकीय आवासों के अनुरूप था। जुरैसिक (Jurassic) तथा क्रीटेशियस (Cretaceous) युग सरीसृपों के लिए विशेष रूप से उपयुक्त रहे जान पड़ते हैं। विशालकाय सरीसृप डाइनोसौर इसी युग में प्रकट हुए। *ब्रॉण्टोसौरस* (*Brontosaurus*) नामक अतिविशाल डाइनोसौर 30 मीटर लम्बा और 20 मीट्रिक टन वजन का था। कहा जाता है कि पृथ्वी पर कभी भी चलने-फिरने वाला विशालतम प्राणी यही था। इस युग में निम्नलिखित डाइनोसौर फले-फूले:- *टेरोडेक्टाइल* (*Pterodactyl*) (उड़नशील सरीसृप), *इक्थियोसौर* (*Ichthyosaurs*) (जलीय सरीसृप), द्विपाद *थीकोडॉण्ट* (*Thecodont*), मांसभक्षी *थीरोपॉड* (*Theropods*), शाकभक्षी *सौरोपॉड* (*Sauropods*), उभयचर *डिप्लोडोकस* (*Diplodocus*) तथा और भी बहुत से सरीसृप। आर्कोसौरियन डाइनोसौरों से मगर-मच्छ तथा पक्षी निकले। सरीसृपों के जीवाश्म सभी महाद्वीपों में पाए जाते हैं बस दक्षिण ध्रुव प्रदेश में नहीं मिलते परंतु सरीसृप जीवाश्मों के सर्वाधिक सम्पन्न निक्षेप उत्तरी अमरीका में पाए जाते हैं।

डाइनोसौरों तथा अन्य मीज़ोजोइक सरीसृपों के बारे में जो संस्थापित विचारधारा रही है कि ये बुद्धिहीन, शीतरक्तीय जानवर थे जिनमें निम्न श्रेणी की अनुकूलनता पायी जाती थी इधर हाल में बदलती जा रही है। अनेक जीवविज्ञानिओं का मानना है कि डाइनोसौर चौकन्ने जीव थे जिनमें वैसा ही व्यवहार पाया जाता था जैसा कि आज की छिपकलियों और मगरों में पाया जाता है। ऐसे अनुमान कि डाइनोसौर पूरी तरह अंत:तापी (उष्ण-रक्तीय) थे समान्यत: गलत करार दिए जाते हैं हालांकि उनके बड़े आकार के होने के कारण डाइनोसौरों को उनके कदाचित ऊँचे तथा कॉफी स्थिर देह तापमान से उन्हें लाभ मिलता रहा होगा।

डाइनोसौरों के अण्डों के जीवाश्म मंगोलिया, चीन, भारत, फ्रांस तथा संयुक्त राज्य अमेरिका में उत्तर क्रीटेशियस निक्षेपों में पाए गए हैं। इनमें से अधिकतर जीवाश्म अण्डे के कवचों के अंशों के रूप में पाए गए हैं, परंतु भ्रूणों से युक्त संपूर्ण अंडे भी पाए गए हैं। विश्वास किया जाता है कि ये खोजें सौरॉप्सिड डाइनोसौरों की हैं और लगता है कि इन प्राणियों के सुस्पष्ट नीड़न-स्थल हुआ करते थे। अभी हाल ही तक पाए गए जीवाश्म डाइनोसौर अण्डों को शाकभक्षी डाइनोसौरों के अण्डे माना जाता था। मगर 1995 में मंगोलिया में एक थीरोपीड डाइनोसौर *ओविरेप्टर* (*Oviraptor*) (जो मांसभक्षी था) का कंकाल उसके अपने ही अण्डों के नीड (घोंसले) के ठीक ऊपर स्थित दबा पाया गया। इसके पता लगने से, इससे पूर्व 1923 में हुई गोबी मरूस्थल में एक ऐसे ही अंडों से युक्त घोंसले की देख-भाल करते डाइनोसौर की खोज को एक नया महत्व प्राप्त हुआ है। उस समय सोचा जाता था कि वह मांसभक्षी डाइनोसौर अण्डा चुराने वाला था। मगर इस हाल की खोज से वैज्ञानिकों का एक वर्ग मानने लगा है कि पक्षियों की तरह डाइनोसौर भी अपने अण्डे सेते थे और पाए गए जीवाश्म डाइनोसौर अपने अण्डे को भी सेते रहे हैं। मगर इस परिकल्पना से संबंधित एक मतभेद भी बना हुआ है क्योंकि एक अन्य वैज्ञानिक वर्ग का मानना है कि डाइनोसौरों की श्रोणि-संरचना (pelvic structure) एवं हड्डियों के अस्थिभवन से ऐसा लगता है कि डाइनोसौरों की नीड़न-विधि पक्षियों के जैसी न होकर मगर-मच्छों की जैसी थी।

छिपकलियां जुरैसिक युग में प्रकट हुई, सांप क्रिटेशियस में, कछुए ट्राइऐसिक में और मगर-मच्छ बाद के ट्राइऐसिक में। केवल इन्हीं चार सरीसृप समूहों के सदस्य आज विद्यमान हैं। विशाल आकार प्राप्त करने वाले एवं मीज़ोजोइक युग में 6 करोड़ वर्ष तक पृथ्वी पर राज्य करने वाले महान सरीसृप अर्थात् डाइनोसौर उत्तर क्रीटेशियस में लगभग 6.5 से 8.5 करोड़ वर्ष पूर्व नाटकीय ढंग से गायब होकर विलुप्त हो गए। उनके इस विलोप के क्या-क्या कारण थे इस विषय में आज भी केवल अनुमान ही लगाए जाते सकते हैं।

3.3.2 सरीसृपों के परम्परागत वर्गीकरण में परिवर्तन

प्राणि विज्ञान में वर्गीकरण में विशाखनीय (क्लैडिस्टिक) विधि का उपयोग करने और एक स्रोतोद्भवी (monophyletic) समूहों में पदानुक्रमीय व्यवस्था पर ज़ोर दिए जाने के कारण सरीसृपों के परम्परागत

वर्गीकरण में हाल में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। इस तथ्य के बावजूद कि सरीसृपों की एक समान पूर्वजता है, विशाखनविद (cladists) क्लास रेप्टीलिया को अब एक प्रामाणिक टैक्सॉन (वर्गीकरण-श्रेणी) नहीं मानते क्योंकि यह एकस्रोतोद्भवी (monophyletic) नहीं है। प्राय: रेप्टीलिया को इस प्रकार परिभाषित किया जाता है कि ये ऐसे ऐम्नियोट हैं जो न तो पक्षी हैं और न ही स्तनी - ऐसे पक्षी और स्तनी जिनकी रेप्टाइलों के साथ समान साझा पूर्वजता रही है। इस प्रकार क्लास रेप्टीलिया एक परास्रोतोद्भवी (paraphyletic) समूह है क्योंकि इसमें समान पूर्वज के सभी वंशज शामिल नहीं किए गए हैं। यह बात चित्र 3.2 में स्पष्ट प्रकट हो जाती है जिसमें ऐम्नियोटों का जातिवृत्तीय वृक्ष दर्शाया गया है। इस समस्या का एक उदाहरण है पक्षियों तथा मगर-मच्छों की समान पूर्वजता का। पूर्णत: समान साझेवाली व्युत्पन्न विशिष्टताओं के आधार पर मगर-मच्छों तथा पक्षियों के समूह सहजात कहे जाने चाहिएं और किसी भी अन्य जीवित प्राणि-वर्ग की अपेक्षा ये आपस में ही सर्वाधिक निकटत: संबंधित हैं। ये किसी एक समान पूर्वज के हाल ही के वंशज हैं और अन्य सरीसृपों से अलग, ये एक ही एकस्रोतोद्भवी समूह में आते हैं। क्लैडिस्टिक (विशाखनी वर्गीकरण) नियमों के अनुसार पक्षी और सरीसृप एक ऐसे क्लैड (विशाखा) में रखे जाने चाहिए जो इन्हें शेष सरीसृपों से अलग करती हो। इस क्लेड को *आर्कोसोरिया* (*Archosauria*) कहते हैं (चित्र 3.3, चित्र 3.5), एक ऐसा समूहन जिसमें विलुप्त डाइनोसौर भी आते हैं। अत: क्लैडिस्टों के अनुसार पक्षियों को सरीसृपों के वर्ग में रखा जाना चाहिए और अधिक विशिष्टत: कहें तो सौरिस्कियन (saurischian) डाइनोसौरों के रूप में - यानि उस सरीसृप समूह में जिसके साथ पक्षियों का सबसे निकट का संबंध है। मगर यह भी सच है कि विकासवादी वर्गीकरण विशेषज्ञ इस रुख से सहमत नहीं हैं, और उनका मानना है कि पक्षी अपना एक अलग ही अनुकूलनी क्षेत्र एवं अलग संगठना-स्तर दर्शाते हैं जब कि मगरमच्छ सामान्य सरीसृपी अनुकूलनी क्षेत्र एवं स्तर के भीतर ही सीमित हैं। उनकी विचारधारा के अनुसार पक्षियों की आकारिकीय तथा पारिस्थितिकीय विलक्षणता को मान्यता देते हुए उन्हें परम्परागत वर्गीकरण में ही रखना चाहिए जिनमें मगरमच्छों को क्लास रेप्टीलिया में तथा पक्षियों को क्लास एवीज़ में रखा जाता है। वर्गिकी के दो प्रमुख मत-वर्गों अर्थात् विशाखनीय तथा विकासीय के बीच इस प्रकार की परस्पर विरोधी विचारधाराओं से प्राणि वैज्ञानिकों को मजबूरन ऐम्नियोटों तथा वंश वृत्त पर अपने विचारों का पुनर्मूल्यांकन करना पड़ रहा है कि कशेरुकी वर्गीकरण में वंश-वृत्त तथा अपसरण-मात्रा को किस प्रकार दर्शाया जाए।

इस इकाई में हमने क्लास रेप्टीलिया को कायम बनाए रखा है क्योंकि यही एक मानक वर्गिकीय वर्गीकरण है, मगर हम आपको इस बात से भी अवगत कराना चाहते हैं कि इस विषय में भारी संशोधन की आवश्यकता है।

3.3.3 विद्यमान सरीसृपों का वर्गीकरण

आज पृथ्वी पर उतनी ज़्यादा संख्या में सरीसृप मौजूद नहीं हैं जितने कि किसी समय मीज़ोज़ोइक युग में हुआ करते थे। सरीसृपों के इतिहास में जो एक दर्जन से भी ऊपर मुख्य दिशा-रेखाएं थी, उनमें से जीवविज्ञानियों ने 16 ऑर्डरों का वर्गीकरण किया है और इनमें से 12 ऑर्डर विलुप्त हो चुके हैं।

जीवित बचे चार ऑर्डरों में सरीसृपों की लगभग 7000 स्पीशीज़ आती हैं जो थल एवं जल के नानाविध आवासों में रह रही हैं। इनमें से सर्वाधिक सफल हैं छिपकलियां और सर्प। चार विद्यमान ऑर्डर ये हैं- **1. स्क्वैमैटा (Squamata), 2. क्रोकोडीलिया (Crocodilia), 3. कीलोनिया (Chelonia), 4. रिंकोसेफैलिया (Rhynchocephalia)।**

यहां जीवित सरीसृपों का वर्गीकरण ऑर्डरों तक दिया जा रहा है और इसे कैरॉल (Carrol, 1988) से लिया गया है। यह चित्र 3.2 में दर्शाए गए हैं। यह वर्गीकरण जीवित सरीसृपों के उन वंश-वृत्त संबंधों के अनुरूप है जो चित्र 3.2 में दिखाए गए हैं।

A. उपक्लास ऐनैप्सिडा (**Subclass Anapsida**) – (शाब्दिक अर्थ an = बगैर; apsida = छिद्र) ऐनैप्सिड-प्राणी. आदिम ऐम्नियोट जिनमें बिना टेम्पोरल छिद्र वाली करोटि (खोपड़ी) होती है।

ऑर्डर टेस्टुडीन्स (Order Testudines) (कीलोनिया, **Chelonia**): कछुए (330 स्पीशीज़)। शरीर एक अस्थिल कोष्ठ में बंद रहता है जो चर्मीय प्लेटों का बना होता है, इनमें एक प्लेट पृष्ठीय कैरापेस (carapace) और एक अधर प्लैस्ट्रॉन (*plastron*) होती है; कशेरुकें तथा पसलियां ऊपर स्थित कैरापेस के साथ समेकित होती हैं, जीभ बाहर को प्रसारशील नहीं होती;

गर्दन प्राय: आकुंचनी (भीतर को खींची जा सकने वाली) होती है, क्वाड्रेट हड्डी गतिहीन होती है तथा गुदा एक अनुदैर्ध्य झिरी के रूप में होती है। उदाहरण: कछुए और टर्टल (समुद्री कछुए)।

B. उपक्लास डाइऐप्सिडा **(Subclass Diapsida)** (Di = दो, apsida = छिद्र)।

डाइऐप्सिड-प्राणी ऐसे ऐम्नियोट जिनमें करोटि में दो टेम्पोरल छिद्र होते हैं। इसमें दो अधिऑर्डर आते हैं- **(i)** लेपिडोसौरिया **(Lepidosauria)** जिसमें छिपकलियां, सांप, कृमि छिपकलियां तथा *स्फ़ीनोडॉन* आदि आते हैं और आर्कोसौरिया **(Archosauria)** जिसमें मगरमच्छ आते हैं।

(a) अधिऑर्डर लेपिडोसौरिया **(Superorder Lepidosauria)** : यह डाइऐप्सिड वंश-परम्परा है जो पर्मियन में प्रकट हुई थी, इसकी विशिष्टता चारों हाथ-पैर पसार कर चलने की थी और कोई द्विपादीय विशेषीकरण नहीं थे, डाइऐप्सिड करोटि अक्सर एक या दोनों टेम्पोरल चापों के समाप्त हो जाने से रूपांतरित।

a.1 ऑर्डर स्फ़ीनोडॉण्टा **(Order Sphenodonta)** (रिंकोसेफैलिया, **Rhynchocephalia**) : टुआटरा। आदिम डाइऐप्सिड करोटि; कशेरुकें उभयावतल (biconcave) ; क्वाड्रेट गतिहीन; मध्य पेराइटल आंख होती हैं; अनुप्रस्थ गुदा छिद्र। उदाहरण: *स्फ़ीनोडॉन पंक्टैटस (Sphenodon punctuatus)* एक मात्र विद्यमान स्पीशीज़।

a.ii ऑर्डर स्क्वैमैटा **(Order Squamata):** सांप (2300 स्पीशीज़), छिपकलियां (3300 स्पीशीज़), ऐम्फ़िसबीनियनें (135 स्पीशीज़) त्वचा पर शृंगीय एपिडर्मिसी शल्क अथवा प्लेटें जो उतरती (निर्मोचित होती) रहती हैं, जबड़ों में दांत जुड़े होते हैं; क्वाड्रेट स्वतंत्र गतिशील; करोटि गतिशील (ऐम्फ़िसबीनियनों को छोड़कर), कशेरुकें सामान्यत: सामने की ओर अवतल, गुदा एक अनुप्रस्थ झिरी के रूप में, मैथुन अंग युग्मित।

1. उपऑर्डर लैसर्टीलिया **(Suborder Lacertilia)** (सौरिया, **Sauria**): छिपकलियां। शरीर छरहरा, सामान्यत: चार पादों से युक्त; निचले जबड़े की द्विशाखाएं समेकित, सामान्यत: गतिशील पलकें; बाह्य कान मौजूद; युग्मित मैथुन अंग।

2. उपऑर्डर सर्पेंटीस **(Suborder Serpentes)** (ओफीडिया, **Orphidia**) : सांप। शरीर लम्बा; पाद बाहरी कान एवं मध्य कान नहीं होते; भीतरी कान होता है; अंस और श्रोणि-दोनों मेखलाएं नहीं होतीं (अजगरों में श्रोणि मेखला कायम बनी है); मेरूदण्ड की कशेरुकें बहुसंख्यक एवं चतुष्पादों की अपेक्षा छोटी और ज़्यादा चौड़ी जिससे घास में अथवा खुरदरी भूमि पर तीव्र पार्श्व ऊर्मिलन (लहराती गतियां) संभव हो जाना हैं; पसलियां होती हैं जिनके कारण कशेरुक दण्ड को दृढ़ता प्रदान होती है और पार्श्व खिंचावों को अधिक प्रतिरोध मिल जाता है; कशेरुकों का तंत्रिक कंटक (neural spine) ज्यादा ऊँचा हो जाता है जिससे बहुसंख्यक पेशियों को अधिक लीवरता (leverage) प्रदान हो जाती है; मैंडिबल आगे की ओर स्नायुओं (ligaments) द्वारा जुड़े होते हैं; आंखों में गतिशीलता बहुत सीमित होती है और उनमें पलकें नहीं होतीं क्योंकि पलकें पारदर्शी प्याले अथवा "चश्में" में समेकित हो गयी होती हैं; जीभ द्विशाखित तथा बाहर को प्रसारशील होती है; जबड़ों पर तथा मुख की छत पर शंक्वाकार दांत होते हैं; बांया फेफड़ा ह्रासित अथवा अनुपस्थित।

3. उपऑर्डर ऐम्फ़िसबीनिया **(Suborder Amphisbenia)** (Worm lizards - कृमि छिपकलियां) : ऐम्फ़िस्बीनियन-प्राणी। शरीर लम्बा और लगभग समान मोटाई का; टांगें नहीं होती (केवल एक जीनस में आगे की छोटी सी टांगे होती हैं), करोटि की हड्डियां अंतर ग्रसित जिससे बिल बनाने में सुविधा होती है (ये हड्डियां गतिशील नहीं होतीं); पाद मेखलाएं अवशेषी, आंखें त्वचा के नीचे छिपी हुई, केवल एक फेफड़ा।

(b) अधिऑर्डर आर्कोसौरिया **(Superorder Archosauria):** उन्नत डाइएप्सिड, अधिसंख्य स्थलीय परंतु कुछ उड़ने के लिए भी विशेषित।

ऑर्डर क्रोकोडीलिया **(Order Crocodilia):** मगरमच्छ (25 स्पीशीज़)। करोटि लम्बी और भारी भरकम; नथुने अंतस्थ; द्वितीयक तालु विद्यमान; चार कक्ष वाला हृदय; कशेरुकें सामान्य आगे से अवतल (अग्रगर्ती, procoelous), अग्रपादों में सामान्यत: पांच उंगलियां;

पश्चपादों में चार उंगलिया; क्वाड्रेट गतिविहीन; अनुदैर्ध्य गुदा छिद्र; उन्नत सामाजिक व्यवहार। उदाहरण: ऐलिगेटर, घड़ियाल, कैमन तथा मगरमच्छ।

बोध प्रश्न 1

क) बताइए कि निम्न कथन सही हैं या गलत:-

(i) सरीसृप मूल शाखा का विकास लैबिरिंथोडॉण्ट ऐम्फ़िबियनों से हुआ। सही/गलत

(ii) प्राचीनतम मूलशाखा सरीसृप थीरैप्सिड थे। सही/गलत

(iii) आर्कोसौरों से सांपों का उदय हुआ। सही/गलत

(iv) मछलियों तथा ऐम्फिबियनों को ऐम्नियोट्स कहते हैं। सही/गलत

(v) पक्षी तथा मगरमच्छ एक एकस्रोतोद्भवी समूह में आते हैं। सही/गलत

(vi) सभी ऐनैम्नियोट्स थल पर अण्डे देते हैं या बच्चों को जन्म देते हैं। सही/गलत

(vii) सरीसृपों की करोटि-आकारिकी के आधार पर इन सबको विविध विकास-दिशाओं को अलग-अलग कर सकने की एक सुविधाजनक विधि प्राप्त हो जाती है। सही/गलत

(viii) सिनैप्सिडों से पेलिकोसौरों का उदय हुआ। सही/गलत

ख) रिक्त स्थानों में उपयुक्त शब्द भरिए:-

(i) छिपकलियों को ………………… नामक उपऑर्डर में रखा जाता है।

(ii) सांप उपऑर्डर ………………… में रखे जाते हैं।

(iii) कृमि छिपकलियां ………………… नामक उपऑर्डर में रखी जाती हैं।

ग) बाएं कॉलम में दिए गए प्राणी को दाएं कॉलम में दिए गए ऑर्डर से मिलाइए:

प्राणी (A)	ऑर्डर (B)
(i) कछुआ	अ. क्रोकोडीलिया
(ii) छिपकली	ब. स्क्वैमैटा
(iii) टुऐट्रा	स. कीलोनिया
(iv) कैमन	ड. स्फ़ीनोडॉण्टा

3.3.4 सरीसृपों के मुख्य लक्षण

सरीसृपों में सुरक्षाकारी शल्कों से ढकी और न के बराबर श्लेष्म-स्रावी ग्रंथियों वाली सूखी त्वचा से जल की हानि न्यूनतम होती है। सूखी शल्कीय त्वचा में लचीलापन नहीं होता: इसलिए प्राणि के शरीर में वृद्धि होते जाने के दौरान समय-समय पर इसका निर्मोचन होता रहता है।

1. सरीसृप ऐसे ऐम्नियोट होते हैं जिनमें सकोष अण्डा विकसित हो गया है।
2. शरीर की आकृति कुछ में संहत तथा कुछ में लम्बी होती है।
3. शरीर के ऊपर शुष्क, शृंगीय त्वचा का बाह्यकंकाल अथवा अध्यावरण (अश्लेष्मी) में सतह पर सामान्यत: शल्क (scales) अथवा प्रशल्क (scutes) होते हैं। कुछ में अस्थिल चर्मीय प्लेटें होती हैं। त्वचा में ग्रंथियां न के बराबर।
4. पाद युग्मित जिनमें सामान्यत: पांच-पांच उंगलियां होती है, और प्रत्येक उंगली के अंत में एक शृंगीय नखर होता है। ये पाद रेंगने, दौड़ने, अथवा चढ़ने अथवा समुद्री टर्टलों में तैरने के लिए उपयुक्त हो गए हैं। कुछ छिपकलियों में ये ह्रासित होते हैं तथा कुछ अन्य छिपकलियों एवं सभी सांपों में होते ही नहीं (कुछ अजगरों में इनके अवशेष होते हैं।)
5. अंत:कंकाल सुअस्थिभूत होता है। करोटि एकअस्थिकंदीय (monocondylar) होती है अर्थात् इसमें केवल एक ऑक्सीपिटल अस्थिकंद होता है जो पहले कशेरुक से संधि बनाता है। दांत समदंती (homodont) यानि एक ही प्रकार के होते हैं। पसलियां और स्टर्नम (सांपों में स्टर्नम यानि उरोस्थि नहीं होती) एक सम्पूर्ण वक्ष करंड बना लेती है। दो सैक्रल कशेरुकें श्रोणि मेखला को आलम्ब प्रदान करती हैं।

सरीसृपों में सूखी त्वचा द्वारा जल का नुकसान कम होता है, क्योंकि इनके त्वचा में सुरक्षा प्रदान करने वाले शल्क एवं कुछ श्लेष्म स्रावित ग्रंथियां होती हैं। इनकी सूखी शल्कीय त्वचा में लचीले पन की कमी होती है और प्राणी की वृद्धि के साथ समय-समय पर इसे छोड़ दिया जाता है।

6. अधिसंख्य सरीसृपों में हृदय या तो तीन कक्षों वाला होता है या असम्पूर्णतः चार कक्षों वाला। अलिंद दाएं-बाएं दो कक्षों में विभाजित रहता है तथा निलय केवल अंशतः विभाजित रहता है। मगरमच्छों में निलय का पूरी तरह विभाजन होकर हृदय चार कक्ष वाला बन गया है। सरीसृपों में हृदय के भीतर ऑक्सीजनित (शुद्ध/धमनीय) तथा अनॉक्सीजनित (अशुद्ध/शिरीय) दोनों अलग-अलग रहते हैं। सामान्यतः केवल एक जोड़ी महाधमनी चाप होती हैं। लाल रक्त कोशिकाएं अण्डाकार, उभयोत्तल (biconvex) तथा केंद्रकयुक्त होती हैं।
7. त्वचा श्वसन नगण्य। सरीसृप प्रधानतः फेफड़ों से सांस लेते हैं; जिनमें वायु का आवागमन देह-साइज में परिवर्तन करके होता है। सरीसृपों में गिल नहीं होते। कुछ जलीय टर्टलों में ग्रसनीय एवं मलाशयी श्वसन उपयोग में लाया जाता है। भ्रूण जीवन में, श्वसन गिल चापों द्वारा होता है।
8. सरीसृप बाह्यतापी (ectothermal) (सूर्यतापी, heliothermal) होते हैं। मगर ये अपनी सक्रियता के दौरान अपेक्षाकृत ऊँचा देह तापमान बनाए रखते हैं और ऐसा वे अपने व्यवहार द्वारा धूप सेक करके नियंत्रण करते हैं। यह उभयचरों से अधिक सक्रिय होते हैं।
9. उत्सर्जन युग्मित मेटानेफ्रिक (metanephric) वृक्कों द्वारा; उत्सर्जित होने वाला मुख्य नाइट्रोजनी अपशिष्ट यूरिक अम्ल होता है।
10. तंत्रिका तंत्र में दृक्-पालियां (optic lobes) मस्तिष्क की पृष्ठ दिशा पर बनी होती हैं और 12 जोड़ी कपाल तंत्रिकाएं और साथ में अंतस्थ भाग "नर्वस टर्मिनेलिस" भी होता है।
11. अधिसंख्य सरीसृपों में युग्मित कर्णपटही कान ऐम्फ़िबियनों से स्वतंत्र रूप में विकसित हुए हैं। कुछ में ये परवर्ती रूप में समाप्त हो गए हैं।
12. सेक्स (नर-मादा) अलग-अलग, निषेचन भीतरी जो आमतौर से नरों में पाए जाने वाले मैथुन अंग द्वारा सम्पन्न होता है।
13. अण्डे बड़े आकार के जिनमें पीतक अधिक मात्रा में होता है और उनके बाहर चर्मीय अथवा कैल्सियमी (चूनेदार) कवच चढ़ा होता है; ये अण्डे शरीर से बाहर दिए जाते और बाहर ही इनका ऊष्मायन (सेया जाना) होता है, मगर कुछ सांपों तथा छिपकलियों में ये शरीर के भीतर ही रोक लिए जाते हैं और वहीं उनके भीतर परिवर्धन होता है। परिवर्धन के दौरान भ्रूण बाह्य झिल्लियां (ऐम्नियॉन यानि उल्व, कोरियॉन यानि जरायु, पीतक कोश तथा ऐलेंटोइस यानि अपरापोषिका) पायी जाती हैं। अंडे से निकले (अथवा मां से जन्में) बच्चे वयस्कों के समान होते हैं। सरीसृपों में कायांतरण नहीं होता।

बोध प्रश्न 2

I. बताइए कि निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत:-

क) सरीसृपों में अंत:कंकाल सुअस्थिभूत होता है तथा करोटि एकअस्थिकंदीय होती है। सही/गलत

ख) सरीसृप अंत:तापी होते हैं तथा वे अपेक्षाकृत ऊँचा देह तापमान बनाए रखते हैं। सही/गलत

ग) सरीसृप में कर्णपटह झिल्ली समाप्त हो गयी हैं। सही/गलत

घ) सरीसृपों में सेक्सें पृथक होते हैं मगर नरों में मैथुन अंग नहीं होते। सही/गलत

च) सरीसृपों में उत्सर्जन मेटानेफ्रिक वृक्कों के द्वारा होता है तथा मुख्य नाइट्रोजनी वर्ज्य उत्पाद यूरिक अम्ल होता है। सही/गलत

3.3.5 ऐम्फ़िबियनों की तुलना में सरीसृपों के विभेदक लक्षण

सरीसृप थल जीवन के लिए सुअनुकूलित होते हैं और उन्हें कई अनुकूलनों के आधार पर ऐम्फ़िबियनों से आसानी से अलग पहचाना जा सकता है, और ये अनुकूलन ऐसे हैं जिन्होंने सरीसृपों को उन शुष्क प्रदेशों और समुद्री आवासों में रहने योग्य बना दिया है जो अन्यथा ऐम्फ़िबियनों की जनन आवश्यकताओं के कारण उनकी पहुंच से दूर थे।

आइए सरीसृपों तथा ऐम्फ़िबियनों के बीच पाए जाने वाले अंतरों का और सरीसृपों को पूर्णत: थल जीवन बिता सकने योग्य बनाने वाले विविध अनुकूलनों का विस्तार से अध्ययन करें।

अध्यावरण (Integument)

सरीसृप का शरीर एक दृढ़, सूखी, चर्मीय अथवा शल्की त्वचा से ढका रहता है। इस त्वचा के दो भाग होते हैं : (1) एक पतली एपिडर्मिस, जो समय-समय पर उतार कर फेंकी जाती रहती है और उसके नीचे (2) एक सुविकसित अधिक मोटी डर्मिस (चित्र 3.6)। एपिडर्मिस शृंगीय होती है और उसके भीतर बहुत मात्रा में केरेटिन होती है जो एक जल-अघुलनशील प्रोटीन होता है। एपिडर्मिस की सतही कोशिकाएं शृंगीय प्लेटें अथवा शल्क बनाती हैं जो शरीर को हानिकर विकिरणों शारीरिक क्षति और शरीर से जल की हानि को कम करके शुष्कन से सुरक्षा प्रदान करती हैं।

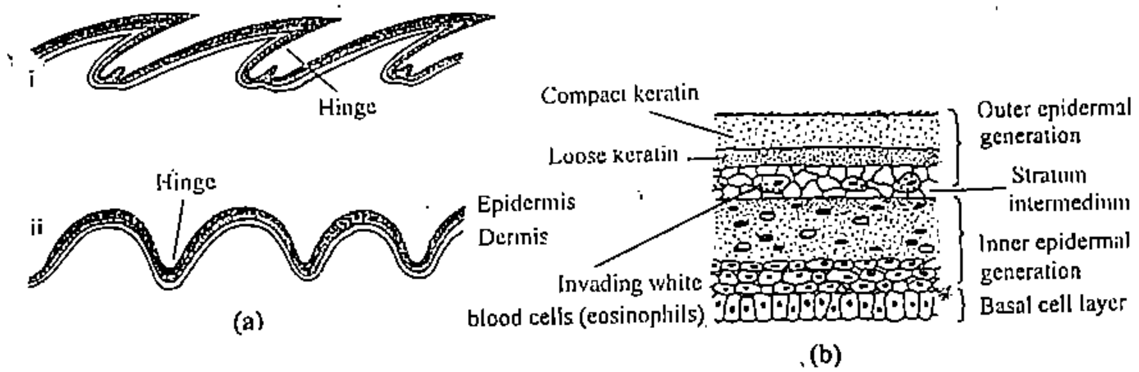

चित्र 3.6: सरीसृपी त्वचा - (a) सरीसृप की त्वचा जिसमें अतिव्यापी (overlapping) एपिडर्मिसी शल्क दिखाए गए हैं। सरीसृपों में और यहां तक कि एक ही प्राणी के शरीर के अलग-अलग भागों में इन एपिडर्मिसी शल्कों के प्रक्षेपण (बाहर को निकले होने) और उनके अतिव्यापन की मात्रा अलग-अलग होती है। यहां (i) सांप के शरीर के शल्क (ii) छिपकलियों के गुलिकीय (tubercular) शल्क दिखाए गए हैं। शल्कों के बीच-बीच में एपिडर्मिस का एक पतला क्षेत्र होता है, जो मानों एक हिंज की तरह त्वचा को लचीलापन प्रदान करता है। (b) केंचुली उतारने से पूर्व सरीसृप की त्वचा का सेक्शन: एपिडर्मिस की पुरानी बाहरी परत के उतारे जाने से ठीक पहले, आधारीय कोशिकाएं एक भीतरी एपिडर्मिस बनाती हैं। टूट कर अलग होने वाले क्षेत्र में श्वेत रक्त कोशिकाएं एकत्रित हो जाती हैं ताकि वे नई एपिडर्मिस को पुरानी बाहरी एपिडर्मिस से अलग कराने में सहायता कर सकें।

नवीनतर यानि ताज़ातर कोशिकाएं एपिडर्मिस में गहराई में बनती हैं और जब भी अथवा जहां भी आवश्यक हो वे सतही एपिडर्मिस का प्रतिस्थापन करती रहती हैं। कुछ सरीसृपों, जैसे कि ऐलिगेटरों, में शल्क आजीवन बने रहते हैं एवं घिसते जाते का स्थान भरते हुए धीरे-धीरे बढ़ते ही रहते हैं। इन उदाहरणों में त्वचा पूरी तरह उतार कर नहीं फेंकी जाती है। अन्य जैसे कि सांपों तथा छिपकलियों में नए शल्क पुराने शल्कों के नीचे पनपते रहते हैं और ये शल्क समय-समय पर एक पूरी इकाई के रूप में उतार दिए जाते हैं और उनके स्थान पर नई त्वचा आ जाती है। कछुओं में प्लेट-जैसे प्रशल्कों (scutes) जो रूपांतरित शल्क होते हैं की पुरानी परतों के नीचे किरैटिन (keratin) की नई परत बनती जाती है।

सरीसृपों के शल्क अथवा उनकी प्लेटें मछलियों के शल्कों के समजात नहीं होतीं जो अस्थिल डर्मिसी संरचनाएं होती है। सरीसृपों के शल्क और नखर दोनों ही उनका बाह्य कंकाल होते हैं।

सरीसृप की त्वचा में वर्णकधर (chromatophore) मौजूद होते हैं जो अनेक सांपों और छिपकलियों को उनका अपना-अपना रंग-बिरंगा स्वरूप प्रदान करते हैं और ये रंग उनके शत्रुओं से उन्हें सुरक्षा प्रदान कराते हैं।

सरीसृप की त्वचा में ग्रंथियां लगभग नहीं होती जब कि मछलियों तथा ऐम्फ़िबियनों में होती हैं। कुछ में गंध ग्रंथियां होती है जिनसे गंध युक्त स्राव निकलते हैं, जिनका उपयोग वे लैंगिक एवं स्पीशीज़ पहचान में करते हैं। कुछ सांपों तथा छिपकलियों में अन्य ग्रंथियां भी होती हैं जिनसे ऐसा चिपचिपा अथवा घृणास्पद स्राव निकलता है जिससे कुछ हद तक परभक्षियों से सुरक्षा प्रदान हो जाती है।

कुछ सरीसृपों में शृंगीय शल्कों के नीचे डर्मिस में हड्डी बन सकती है जैसे कि कुछ मगर-मच्छों तथा छिपकलियों में हड्डियों की छोटी-छोटी ग्रंथिकाएं (nodules)।

कंकाल-पेशी तंत्र एवं संचलन

सरीसृपों में अधिक सुअस्थिभूत अंत:कंकाल पाया जाता है जो ऐम्फ़िबियनों के अंत:कंकाल की अपेक्षा अधिक मज़बूत होता है। करोटि एकअस्थिकंदीय (monocondylar) होती हैं। दांत समदंती होते हैं तथा वे जबड़े की हड्डियों से समेकित रहते हैं। पादविहीन सदस्यों को छोड़कर सभी सरीसृपों में ऐम्फ़िबियनों की अपेक्षा देह को बेहतर आलम्ब मिला होता है और उनके पादों की रचना-व्यवस्था थल पर चल-फिर सकने के लिए ज़्यादा कारगर प्रकार की होती है। संचलन के दौरान इनकी अगली और पिछली टांगों के समीपस्थ खण्ड लगभग क्षैतिज समतल में आगे-पीछे को गति करते हैं जैसा कि लैबिरिंथोडॉण्टों एवं सैलामैण्डरों में होता है। अनेक डाइनोसौर अपनी केवल पिछली शक्तिशाली टांगों पर ही चलते थे। पिछली टांगों से मिलने वाला प्रणोद (आगे को धक्का) दो सैक्रमी (sacral) कशेरुकों के द्वारा कशेरुक-दण्ड में स्थानांतरित हो जाता है न कि ऐम्फ़िबियनों में पायी जाने वाली एक अकेली सैक्रमी कशेरुक दण्ड की तरह। पांवों में उंगलियों में नखर होते हैं जो अर्धःस्तर पर एक अच्छा जमाव प्रदान कराते हैं। सरीसृपों में पेशी-तंत्र भी ऐम्फ़िबियनों के पेशी-तंत्र की अपेक्षा अधिक सम्मिश्र प्रकार का होता है।

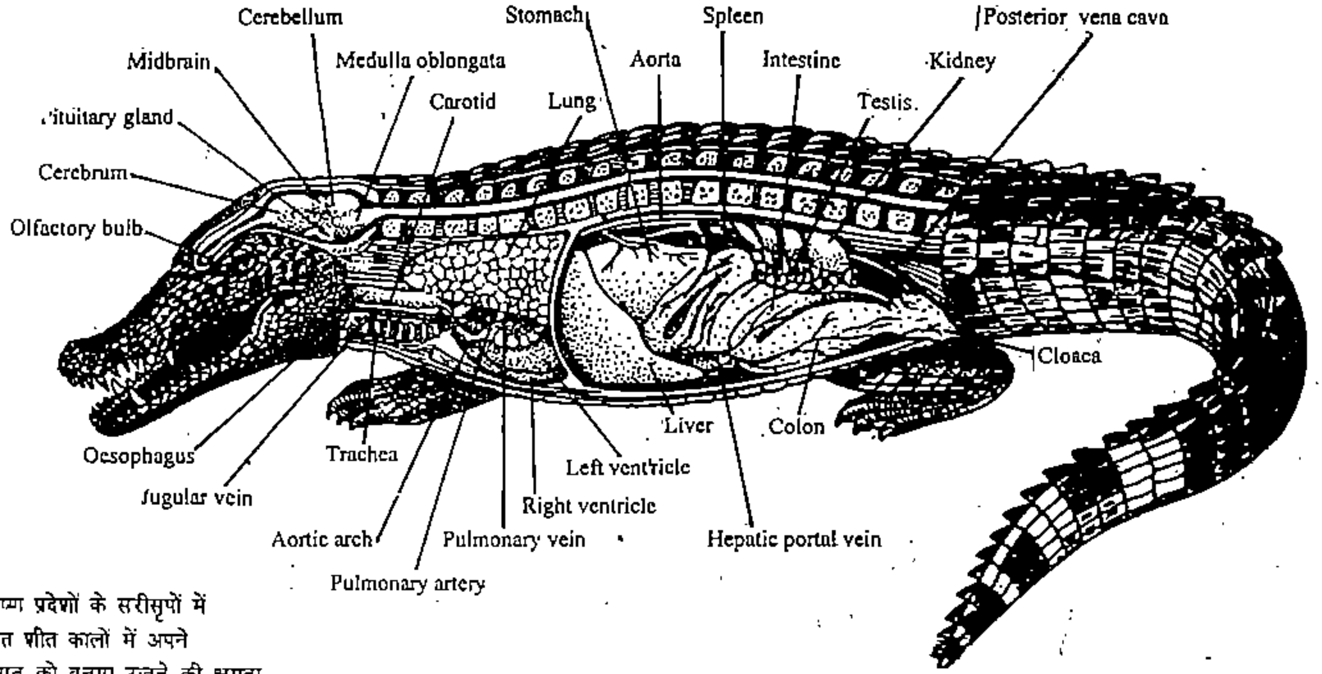

चित्र 3.7: एक नर मगर-मच्छ की भीतरी संरचना

शीतोष्ण प्रदेशों के सरीसृपों में विस्तृत शीत कालों में अपने तापमान को बनाए रखने की क्षमता नहीं होती तथा इसलिए वे ऐम्फ़िबियनों की तरह ही शीतनिष्क्रियता में जाया करते हैं। उष्णकटिबंधीय जलवायु मे रहने वाले सरीसृपों को अधिक अनुकूल एवं एक जैसा-सा बना रहने वाला पर्यावरण उपलब्ध होता है, और इस प्रकार उन्हें अपने तापमान के नियमन में कठिनाई नहीं होती।

जबड़े

सरीसृप जबड़े अधिक कारगर रूप में बने होते हैं ताकि उनके द्वारा शिकार पर अधिक कुचलने वाला बल लगाया जा सके। मछलियों तथा ऐम्फ़िबियनों के जबड़े इस तरह बने होते हैं कि उन्हें शीघ्रता से बंद किया जा सके, मगर एक शिकार फंस जाने के बाद उस पर स्थैतिक बल नहीं लगाया जा सकता। मगर सरीसृपों में जबड़ा पेशियां लम्बी, अधिक बड़ी और अधिक कारगर यांत्रिक लाभ के लिए व्यवस्थित रहती हैं।

उपापचय

जैसा कि आप जानते ही हैं सरीसृप बाह्यतापी होते हैं जो शरीर के लिए आवश्यक ऊष्मा को अपने परिवेश से प्राप्त करते हैं। ये पक्षियों तथा स्तनियों की तरह अंत:तापी नहीं होते जो अपनी ऊष्मा को स्वयं अपनी उपापचयी प्रक्रियाओं के द्वारा प्राप्त करते हैं। शीतोष्ण प्रदेशों में रहने वाले सरीसृपों के शरीर का तापमान रात को तेजी से गिर जाता है जिसके कारण वे ढीले और सुस्त हो जाते हैं। सूरज निकल आने पर वे धूप वाले स्थानों को ढूंढते और वहां एक तो सीधे सूर्य के विकिरण से अपने शरीर को गर्म करते हैं और दूसरे जहां वे धूप ताप रहे होते हैं वहां की धूप से गर्म हुई चट्टानों अथवा मिट्टी से संवहन द्वारा भी ऊष्मा प्राप्त करते हैं (चित्र 3.8)। सवेरे-सवेरे सौर ऊर्जा का और अधिक अवशोषण हो सके इसके लिए एक तो त्वचा के वर्णकधरों में वर्णक का प्रकीर्णन (फैलाव) हो जाता है जिससे त्वचा गहरे रंग की होकर अधिक प्रकाश-ऊर्जा अवशोषित कर सके और दूसरे त्वचा के भीतर रक्त-प्रवाह भी बढ़ जाता है जो ऊष्मा

को अपने भीतर ग्रहण करता जाता है। जब गर्मी बहुत ज्यादा हो जाती है तब त्वचा का रंग हल्का हो जाता है, त्वचा की रक्त वाहिकाएं संकुचित हो जाती हैं और प्राणी छाया में चला जाता है। कुछ स्पीशीज़ तो ऐसी भी है जैसे कि "चकवाला" (सौरोमैलस, *Sauromalus*) जो हांफ-हांफ कर अपने शरीर को ठंडा कर सकती हैं। इस प्रकार सरीसृप एक ऊँचा और अपेक्षाकृत स्थिर देह तापमान बनाए रख सकते हैं और अपने व्यवहारपरक तापनियमन द्वारा जिसको वे धूप में कम-ज्यादा रह कर प्राप्त करते हैं दिन के समय सक्रिय बने रह सकते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका की कुछ छिपकलियां उस समय जब हवा का तापमान बहुत काफी नीचा हो, अपना तापमान 34°C के लगभग बनाए रख सकती है, ऐसा तापमान जो अधिसंख्य स्तनियों के तापमान के निकट का होता है।

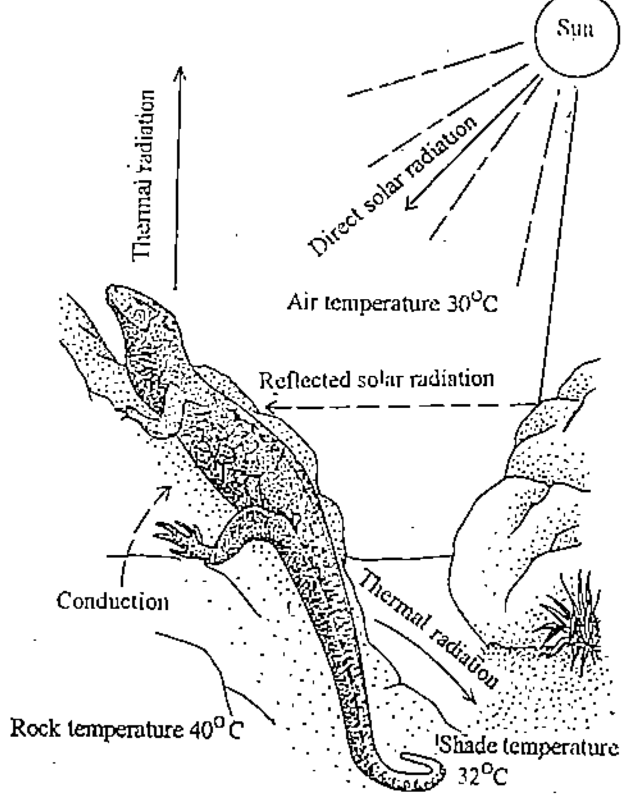

चित्र 3.8: सरीसृप अपनी सक्रियता के समय के दौरान अपना देह-तापमान सामान्यतः लगभग 34°C के आसपास बनाए रखते हैं जिसे वे अपने व्यवहार द्वारा पर्यावरण से ऊष्मा को प्राप्त करके या बाहर निकाल करके शरीर के भीतर की ऊष्मा-मात्रा को नियंत्रित करके बनाए रखते हैं।

सरीसृपों की देह के तापमान का नियमन, स्तनियों ही की तरह, मस्तिष्क के हाइपोथैलेमस में स्थित एक केंद्र द्वारा होता है। सौर विकिरण की कितनी मात्रा आ रही है इसकी लागातार जांच की जाते रहना, अनेक छिपकलियों में शीर्ष के ऊपर बने एक सुविकसित पैराइटल (मध्य) नेत्र द्वारा होता है। (चित्र 3.9)।

सरीसृपों को सूर्यतापी (heliotherms, helios = सूर्य) भी कहते हैं क्योंकि वे स्वभावपरक रूप में धूप में आकर अपने तापमान का नियमन करते हैं।

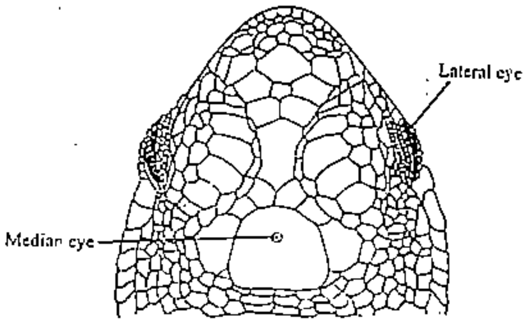

चित्र 3.9: पैराइटल (मध्य) नेत्र जिसके द्वारा अनेक छिपकलियां प्राप्त होने वाले सूर्य के प्रकाश की मात्रा का पता लगाती है। इस नेत्र को इग्वाना (*Iguana*) में दो पार्श्व नेत्रों के बीच शीर्ष की चोटी के ऊपर एक गर्त में स्थित देखा जा सकता है।

कछुए एवं कुछ छिपकलियाँ शाकाहारी होती हैं। उनकी बड़ी आन्त्र छोटी आन्त्र के अपेक्षाकृत लम्बी होती है और उनके आंतरिक वलन के कारण उनमें कई खाने बन जाते हैं। भोजन धीरे-धीरे बड़ी आन्त्र से गुज़रता है जहाँ जीवाणु सेल्युलोज का पाचन करते हैं।

अशन और पाचन

सरीसृपों की आहार आवश्यकताएं थोड़ी होती हैं जिसके कारण वे रेगिस्तानों तथा ऐसे अन्य आवासों में रह सकते हैं जहां अनेक स्तनियों की उच्च ऊर्जा मांगों की पूर्ति के लिए पर्याप्त भोजन नहीं होता। उदाहरण के लिए एक छोटे सांप को एक सप्ताह अथवा उससे अधिक के लिए आवश्यक ऊर्जा प्रदान करने के लिए एक मेंढक अथवा एक चूहा पर्याप्त होगा। कछुओं तथा कुछ छिपकलियों को छोड़कर अधिसंख्य सरीसृप मांसभक्षी होते हैं। इनमें से कुछ में अपना आहार पकड़ने तथा उसे निगलने की विशेष विधियां हो सकती हैं, मगर अनेक बातों में उनके पाचन-पथ की संरचना ऐम्फ़िबियनों में पायी जाने वाली संरचना के बहुत समान होती है (चित्र 3.6)। मगर ऐम्फ़िबियनों की अपेक्षा सरीसृपों में पाचन अधिक तीव्रता से होता है क्योंकि सरीसृपों में देह तापमान ऊँचा बना रहता है।

बोध प्रश्न 3

1. रिक्त स्थानों में उपयुक्त शब्द भरिए:-

   क) सरीसृपों की त्वचा में एपिडर्मिस शृंगीय होती है तथा उसमें .... नामक एक जल-अघुलनशील प्रोटीन की बड़ी मात्रा पायी जाती है।

   ख) सरीसृप अपने शरीर का उच्च तथा अपेक्षाकृत स्थिर तापमान .... के द्वारा बनाए रखते हैं।

   ग) अनेक छिपकलियों में सौर विकिरण की मात्रा का लगातार पता लगाते रहने का काम शीर्ष के ठीक ऊपर बनी एक सुविकसित .... आंख द्वारा किया जाता है।

   घ) ऐम्फ़िबियनों तथा सरीसृपों इन दोनों के पाचन-पथ की संरचना बहुत .... कुछ होती हैं।

तंत्रिका-तंत्र

सरीसृपों का तंत्रिका-तंत्र ऐम्फ़िबियनों के तंत्रिका-तंत्र से काफ़ी अधिक विकसित होता है। सरीसृपों का मस्तिष्क हालांकि छोटा होता है मगर उसमें प्रमस्तिष्क (सेरीब्रम, cerebrum) का आकार शेष मस्तिष्क की तुलना में अधिक बड़ा होता है (चित्र 3.10)।

मगरमच्छों में पहली बार वास्तविक प्रमस्तिष्क कॉर्टेक्स (cerebral cortex) अर्थात् नीओपेलियम (neopallium) पाया जाता है। केंद्रीय तंत्रिका तंत्र के संयोजन अधिक उन्नत प्रकार के होते हैं जिसके कारण इनमें ऐम्फ़िबियनों की अपेक्षा अधिक सम्मिश्र प्रकार का व्यवहार पाया जाता है। संवेदी अंग आम तौर से सुविकसित होते हैं। सरीसृपों में सुन सकने का संवेद कम विकसित होता है।

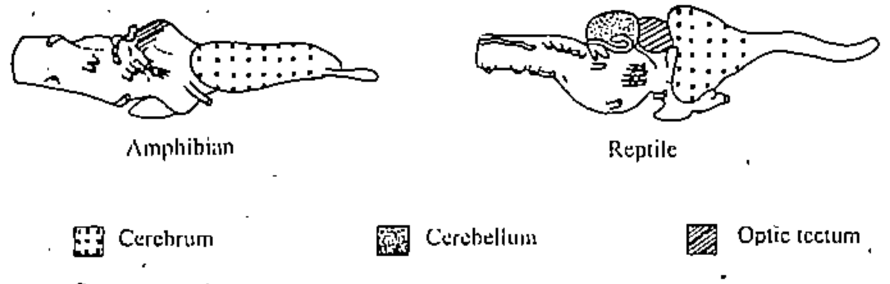

चित्र 3.10: मस्तिष्क - (a) ऐम्फ़िबियन, (b) सरीसृप। सरीसृप में प्रमस्तिष्क (सेरीब्रम) के बड़े आकार पर गौर कीजिए।

हालांकि केवल सांपों को छोड़कर सभी में मध्य और भीतरी कान मौजूद होते हैं। सांपों के मध्य कान गुहा अर्थात् "कर्णपटह गुहा (tympanic cavity)" नहीं होती और यूस्टेकियन नली भी नहीं होती है। अन्य सरीसृपों में कर्णपटह झिल्ली अक्सर शीर्ष पर दृश्यमान होती है और कुछ छिपकलियों में इसके ऊपर एक शल्कीय त्वचा ढकी होती है। चित्र 3.11 में उस प्रकार के श्रवण अंग दिखाए गए हैं जो सरीसृपों में पाए जा सकते हैं। पार्श्व-रेखा तंत्र का पूर्णत: विलोप हो गया है। एक विचित्र संवेदी अंग जैकबसन-अंग (Jacobson's organ) नासा-कोश का एक पृथक भाग होता है और वह मुंह में खुला होता है, यह अंग छिपकलियों तथा सांपों में खास तौर से सुविकसित हुआ होता है। इसमें घ्राण तंत्रिका (olfactory nerve)

की एक शाखा पहुंचती है. और इस अंग का उपयोग गंधों के सूंघने में किया जाता हैं। किसी न किसी रूप में यह अंग ऐम्फ़िबियनों सहित अन्य समूहों में भी पाया जाता है।

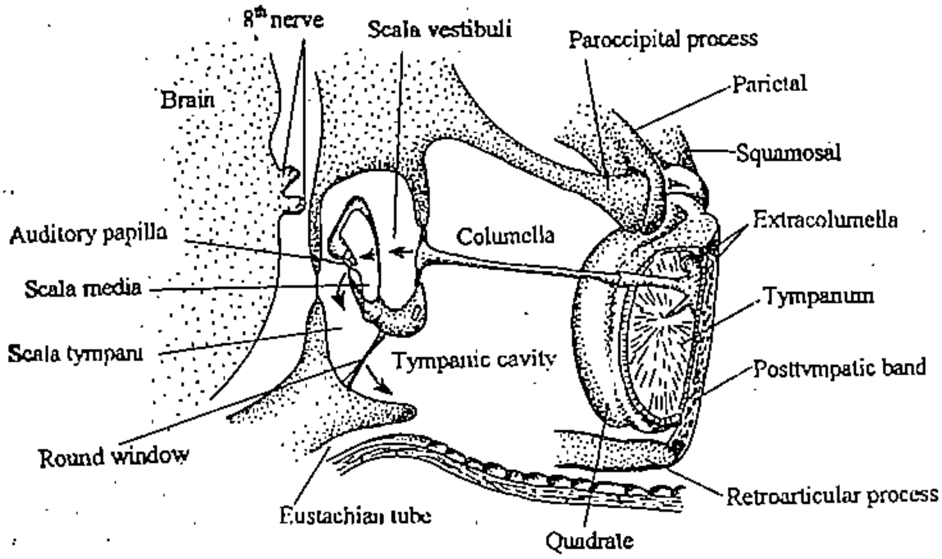

चित्र 3.11: सरीसृपों में सुनना: कर्ण से होती हुई सरीसृपीय सिर (इग्वाना) की अनुप्रस्थ काट जो टिम्पैनम एक्सट्रा कालूमेला एवं अंत: कर्ण के सम्बन्धों को दर्शाता है।

श्वसन

सरीसृपों में खुश्क शल्कीय त्वचा होने के कारण त्वचीय श्वसन नगण्य होता है। परिणामत: गैस विनिमय के लिए सरीसृपों को पूरी तरह फ़ेफड़ों पर ही निर्भर रहना होता है, पर हां कुछ जलीय कछुओं में ग्रसनी झिल्ली से भी कुछ अतिरिक्त श्वसन हो जाता है। सरीसृपों के फेफड़े ऐम्फ़िबियनों के सरल थैले-जैसे नहीं होते, बल्कि इनके भीतर अनेक छोटे-छोटे कक्ष बन गए होते हैं और इस प्रकार उनकी बनावट स्पंजी हो गयी है जिससे उनके भीतर श्वसन सतह में बहुत बढ़ोतरी हो गयी है। सरीसृपों की उपापचयी क्रिया में सर्वसाधारण वृद्धि के कारण इस प्रकार के फेफड़े की आवश्यकता तो थी ही। स्तनियों की ही तरह सरीसृपों के फेफड़े भी चूषणी (aspiratory) (हवा खींचने वाले) हो गए हैं और इनमें हवा खींचने के लिए धारक देह-गुहा का साइज़ घटाया-बढ़ाया जाता और उसके भीतर के दबाव में परिवर्तन किए जाते हैं न कि मुख पेशियों के द्वारा हवा को बलपूर्वक फेफड़ों में धक्का दिया जाना जैसा कि अन्यथा ऐम्फ़िबियनों में होता है। एक अश्वास (apnoea) (श्वास का रुक जाना) काल के दौरान वायु फेफड़ों में रोकी रखी जाती है और फिर उसे धड़ की पेशियों के संकुंचन एवं फेफड़े की प्रत्यास्थ सिकुड़न से बलपूर्वक बाहर निकाल दिया जाता है।

परिसंचरण

सरीसृपों में ऐम्फ़िबियनों की अपेक्षा उच्चतर रक्त दाब होता है एवं परिसंचरण तंत्र अधिक कारगर प्रकार का होता है। ऐम्फ़िबियनों की अपेक्षा सरीसृपों का हृदय अधिक पूर्णत: विभाजित रहता है (चित्र 3.12)। सभी सरीसृपों में दाहिना अलिंद जिसमें शरीर से अनॉक्सीजनित रक्त आता है, फेफड़ों से ऑक्सीजनित रक्त प्राप्त करने वाले बाएं अलिंद से पूरी तरह पृथक रहता है। दो निलय एक अंतरनिलय पट द्वारा या तो अंशत: या जैसे कि मगर-मच्छों में पूरी तरह एक दूसरे से पृथक रहते हैं।

सरीसृपों तक में भी, जिनमें निलयों का पृथक होना अधूरा होता है, हृदय के भीतर रक्त प्रवाह का प्रतिरूप ऐसा है कि फुफ्फुसीय (ऑक्सीजनित) तथा दैहिक (अनॉक्सीजनित) रक्त हृदय के भीतर एक दूसरे से मिश्रित नहीं होते; अत: समस्त सरीसृपों में कार्यात्मक दष्टि से दो पृथक परिसंचरण पाए जाते हैं।

उत्सर्जन तथा जल-संरक्षण

सरीसृपों ने जल संरक्षण की बहुत ही कारगर रणनीतियां विकसित कर ली हैं। यद्यपि सरीसृपों के युग्मित वृक्क तो उन्नत मेटानेफ्रिक प्रकार के होते हैं (चित्र 3.13) जिनमें से प्रत्येक से निकली हुई

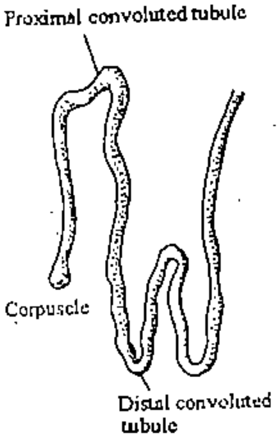

चित्र 3.13: सरीसृप की वृक्क नलिका जिसमें हेन्ले के लूप का अभाव दर्शाया गया है। प्रत्येक वृक्क में अनेक वृक्क कणिकायें (corpuscles) पायी जाती हैं।

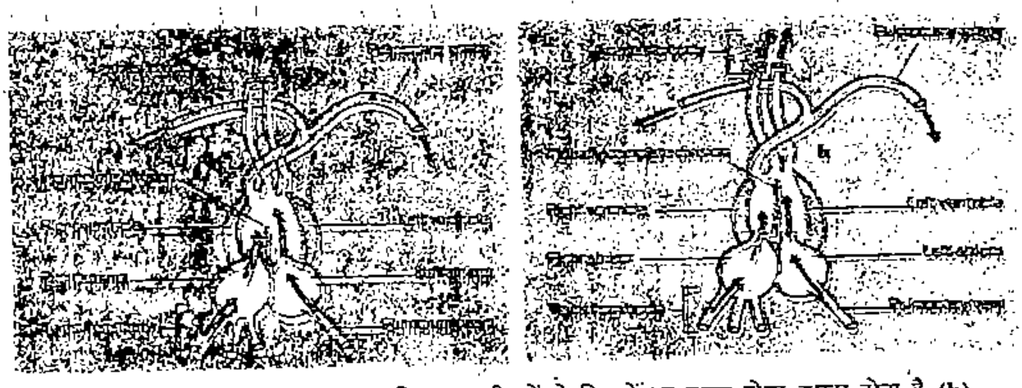

चित्र 3.12: एक सरीसृप का हृदय (a) अधिकतर सरीसृपों से निलयों का पृथक होना अधूरा होता है (b) घड़ियालों में पूरा पृथक्करण हो जाता है। निलयों के अधूरे पृथक्करण की वजह से धमनी एवं शिराओं के रक्त में थोड़ी मिलावट होती है।

अपनी-अपनी अलग मूत्रवाहिनी अवस्कर तक जाती है, मगर इनके अंदर अधिक उन्नत स्तनीय मेटानेफ्रास के हेन्ले-लूप (Loops of Henle) नहीं होते और इसलिए उनमें देह तरलों की तुलना में अधिक सांद्रित मूत्र बना सकने की क्षमता नहीं होती। इस सबके बजाए सरीसृपों में, नाइट्रोजनी अपशिष्ट यूरिया अथवा अमोनिया के रूप में न होकर यूरिक अम्ल के रूप में उत्सर्जित किए जाते हैं। सरीसृपों को रक्त से नाइट्रोजनी अपशिष्टों को पृथक करने के लिए ऐम्फ़िबियनों की अपेक्षा कम पानी की आवश्यकता होती है, ऐसा इसलिए क्योंकि यूरिक अम्ल के अनाविषी (non-toxic) ठोस क्रिस्टलों की घुलनशीलता कम होती है और घोल में से उनका शीघ्र ही अवक्षेपण हो जाता है जिससे जल का संरक्षण संभव हो जाता है। रक्त से पृथक होने वाला बहुत सा जल बाद में वृक्क नलिकाओं के अन्य भागों, मूत्राशय तथा अवस्कर द्वारा पुन: अवशोषित हो जाता है। थलीय तथा अलवणजलीय कछुओं और छिपकलियों तक में भी सामान्यत: मूत्राशय होता है मगर सांपों में, इसकी बजाए मूत्रवाहिनियों का पश्च क्षेत्र फैल कर एक मूत्र-आगार बन जाता है। अनेक सरीसृपों का मूत्र अर्धठोस निलम्बन होता है। साथ ही अनेक सरीसृप अधिशेष लवणों को लवण-ग्रंथियों (salt glands) के द्वारा भी बाहर निकालते हैं, ये ग्रंथियां नाक अथवा आंख के नीचे (खारे पानी के मगरमच्छों में जीभ में) स्थित होती हैं जो एक लवणीय तरल का स्राव निकालती हैं और यह तरल देह-तरलों की अपेक्षा बहुत ज्यादा अधिपरासारी (hyperosmotic) होता है। चित्र 3.14 में सरीसृप के नर तथा मादा मूत्र-जनन तंत्र दिखाए गए हैं।

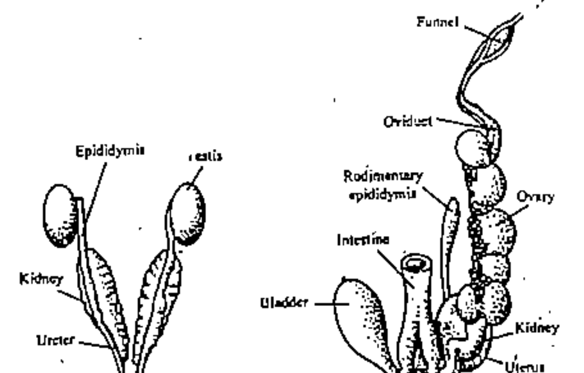

चित्र 3.14: सरीसृप के मूत्रजनन तंत्र। A- नर; B- मादा

प्रत्येक अर्धशिश्न केवल एक ही वृषण से जुड़ा होता है। नर इन्हें अदल-बदल कर इस्तेमाल करना पसंद करते हैं, और उस दिशा का अर्धशिश्न काम में लाते हैं जिसमें शुक्राणु ज्यादा भरे हों। प्रत्येक अर्धशिश्न पर पीछे को रुख किए हुए कांटे और हुक होते हैं।

जनन तथा परिवर्धन (Reproduction and Development)

नर-मादा सेक्स अलग-अलग होते हैं। अधिकतर नरों में एक या दो मैथुन अंग होते हैं किसी भी कवचयुक्त अंडे के लिए निषेचन की क्रिया स्पष्टत: शरीर के भीतर ही होनी चाहिए क्योंकि अण्डे का कवच के बनने से पहले ही शुक्राणु अण्डे तक पहुंच जाने चाहिए। सरीसृपों में लम्बे युग्मित वृषण होते हैं (चित्र 3.14a)। प्रत्येक वृषण एक एपिडर्मिस से संयोजित रहता है और ये एपिडर्मिस पीछे जारी रहता हुआ मूत्रवाहिनी बन जाता है और उसके बाद शुक्रवाहिका (Vas deferens)। वृषणों से निकले शुक्राणु शुक्रवाहिकाओं के द्वारा मैथुन अंग तक पहुंचाए जाते हैं (कुछ सरीसृपों में दो मैथुन अंग होते हैं), मैथुन अंग अवस्कर की दीवार

का बहिर्वेशन होता है। *स्फीनोडॉन* को छोड़कर सभी जीवित नर सरीसृपों में किसी न किसी प्रकार का मैथुन अथवा प्रवेशी (intromittent) अंग अवश्य होता है अर्थात् ऐसी संरचना जो मैथुन के दौरान नर के शुक्राणुओं को मादा के भीतर निकाल देती है। यह अंग सुविकसित होता है मगर अक्सर यह भीतर को छिपा रहता है जिससे सरीसृपों में सेक्स को पहचानने में कठिनाई होती है। कीलोनियनों (कछुओं) तथा क्रोकोडीलियनों (मगरमच्छों) में केवल एक मैथुन अंग (शिश्न, penis) होता है जिसमें उसकी सतह पर एक खांच बनी होती है और शुक्राणु इसी खांच में होकर प्रवाहित होते हैं। मगर छिपकलियों तथा सांपों में दो शिश्न या ज्यादा सही-सही कहा जाए तो दो अर्धशिश्न (hemipenis) (एक जोड़ी-थैली जैसी संरचनाएं) होते हैं, ये अर्धशिश्न बहिर्वेशित हो सकते हैं (जैसे कि दस्ताने की उंगलियों का अंदर से बाहर को निकल आना)। मगर एक समय में एक ही अर्धशिश्न काम में आता है जो इस बात पर निर्भर करता है कि नर प्राणी मादा के किस पार्श्व पर है, ऐसा इसलिए क्योंकि छिपकलियां और सांप कमोवेश अगल-बगल से मैथुन करते हैं। मादा तंत्र (चित्र 3.14b) में युग्मित अण्डाशय एवं अंडवाहिनियां होती हैं। अंडवाहिनी की ग्रंथीय दीवार से, बड़े अण्डों के ऊपर ऐल्बुमेन तथा कवच का स्राव होता है।

अधिसंख्य सरीसृप अंडप्रजक (oviparous) होते हैं और अपने सकोषीय अण्डों को आश्रयी स्थानों में देते हैं। वे अपने अण्डों को मिट्टी के भीतर, रेत अथवा सड़ी पत्तियों के बीच देते हैं जहां सौर विकिरण से आने वाली अथवा पादप-विगलन से निकलने वाली ऊष्मा से इन अण्डों का ऊष्मायन (सेया जाना) होता रहता है। कुछ छिपकलियां तथा सांप अपने अण्डों को अपने गर्भाशय के भीतर ही रोक लेती हैं और वहीं पर भ्रूण का परिवर्धन होता है, और ऐसे भ्रूण मुख्य रूप में पीतक में भंडारित आहार का ही उपयोग करते हैं। जन्म के समय बच्चा झिल्लियों तथा पतली दीवार वाले कवच को तोड़कर बाहर आता है। इस प्रकार के परिवर्धन को कभी-कभी अंडशिशुप्रजक (ovoviviparous) प्रकार की श्रेणी का नाम दिया जाता है। शिशुप्रजता केवल सांपों तथा छिपकलियों की उन कुछ ही स्पीशीज़ में पायी जाती है जिनमें मां के साथ एक अपरा (प्लैसेंटा) संबंध विकसित हो चुका है।

मछलियों तथा ऐम्फ़िबियनों की तुलना में सरीसृप कम संख्या में अण्डे देते हैं। इसके तीन मुख्य कारण हैं- पहला तो यह कि ये कड़े, कवचयुक्त सकोषीय अण्डे देते हैं जिससे भीतर पनप रहे भ्रूण को सुरक्षा प्रदान होती है अतः मौते कम होती हैं; दूसरे, इनमें लार्वा-अवस्था नहीं होती; और तीसरे सरीसृप अण्डे देने के बाद उन्हें आम तौर से अच्छी तरह लुका-छिपा देते हैं। कॉलर वाली छिपकली केवल 4 से 25 अण्डे देती हैं जब कि "लेपर्ड-मेंढक" 2000 और उससे भी ज़्यादा अण्डे देता है।

वास्तविक शिशुप्रजता उसे कहते हैं जिसमे भ्रूण मां के शरीर से एक ऐसा सीधा संबंध स्थापित कर लेता है जिसके द्वारा मां के पोषक तत्त्व बिना गर्भाशय तरल में घुले या अवशोषित हुए भ्रूण में पहुंच जाते हैं। सभी शिशुप्रजक प्राणियों में भ्रूण-परिवर्धन मां के गर्भाशय के भीतर होता है, और ऐसा इसलिए कि इनके अण्डों में पीतक ("योक") की मात्रा न्यूनतम होती है। अधिसंख्य अकशेरुकियों और कशेरुकियों में परिवर्धन के दौरान मां और भ्रूण के बीच जो संबंध स्थापित होता है वह अपरा नामक अंग द्वारा होता है। इसी अपरा के द्वारा मां तथा भ्रूण के ऊतकों के बीच पोषक तत्वों तथा गैसों का विनिमय होता है। अपरा पेरिपैटस (ओनाइकोफोर) में, ट्यूनिकेटों (साल्पा) में, कुछ खास मछलियों, सरीसृपों तथा अपरा-स्तनियों में पाया जाता है। मगर प्रत्येक मामले में इसकी उद्भव विधि अलग होती है। सरीसृपों में पाया जाने वाला अपरा या तो पीतक कोश, जरायु (कोरियान) के बीच संयोजन होकर बनता है या अपरा, जरायु तथा गर्भाशय के अस्तर के बीच संयोजन होकर। मगर स्तनियों का अपरा दोहरे उद्भव वाला होता है। यह भ्रूणबाह्य झिल्लियों (उल्व को छोड़कर) और गर्भाशय के एंडोमेट्रियम (केवल गर्भाशय अस्तर ही नहीं) के बीच निकट साहचर्य हो कर बनता है।

बोध प्रश्न 4

बताइए कि निम्न कथनों में से कौन सा सही हैं कौन सा गलतः-

क) क्रोकोडीलियनों में पहली बार वास्तविक प्रमस्तिष्क कॉर्टेक्स पाया जाता है। सही/गलत

ख) सरीसृपों के बच्चे गिलयुक्त बच्चों की तरह अण्डों से निकलते हैं। सही/गलत

ग) ऐम्फिबियनों तथा सरीसृपों दोनों की फुफ्फुस संरचना बहुत कुछ एक ही जैसी होती है। सही/गलत

घ) सरीसृप हृदय में दाहिना अलिंद जिसमें शरीर से अनॉक्सीजनित रक्त आता है बाएं अलिंद जिसमें फेफड़ों से आक्सीजनित रक्त आता है से पूरी तरह पृथक हुआ रहता है। सही/गलत

च) मछलियों तथा ऐम्फ़िबियनों की तुलना में सरीसृप कहीं ज्यादा संख्या में अण्डे देते हैं। सही/गलत

छ) सरीसृपों में सुनने का संवेद ठीक से विकसित नहीं होता क्योंकि इनमें मध्य और भीतरी कान का अभाव होता है। सही/गलत

ज) कुछ सरीसृपों की त्वचा में गंध ग्रंथिया होती हैं जिनमें से गंधयुक्त स्राव निकलते हैं जिनका उपयोग ये सरीसृप अपने नर-मादा एवं स्पीशीज़ की पहचान में करते हैं। सही/गलत

3.3.6 विद्यमान सरीसृप के ऑर्डरों की विशिष्टताएं

A. उपक्लास ऐनैप्सिडा **(Subclass Anapsida):** ऑर्डर टेस्टुडीन्स **(Order Testudines)** - कछुए

"टर्टल", "टार्टाइज" तथा "टेरापिन" नाम कछुओं के आर्डर के अलग-अलग सदस्यों को दिए जाते हैं। उत्तर अमेरिकी व्यवहार में इन सभी को "टर्टल" कहा जाता है और ऐसा कहा जाना सही भी है टॉर्टाइज़ शब्द अक्सर थल कछुओं के लिए और वह भी खास तौर से बड़े आकार वालो के लिए इस्तेमाल किया जाता है। अंग्रेज लोग इन नामों को थोड़ा फर्क करके इस्तेमाल करते है, "टार्टाइज़" में सभी किस्में आती है मगर "टर्टल" केवल जलीय सदस्यों के लिए ही कहा जाता है।

टेस्टुडीन-प्राणी अर्धजलीय होते हैं। साइज़ में ये कुछ ही सेंटीमीटर से लेकर समुद्री "लैदर-बैक" जैसे उदाहरण 2 मीटर तक लम्बे हो सकते हैं। ये शाकभक्षी तथा मांसभक्षी दोनों प्रकार के होते हैं। ये धीमी गति वाले होते हैं तथा अनेक वर्षों तक जीवित रहते हैं। कुछ को तो 150 से भी अधिक वर्ष तक जीवित रहते माना गया है। इनके दीर्घ जीवन का संबंध इनके कम स्तर के उपापचय के साथ जुड़ा कहा जाता है।

आधुनिक कछुओं की आकारिकी में पिछले 20 करोड़ वर्षों से कोई खास परिवर्तन नही हुआ है। जबड़ों में दांत नहीं होते और उनके स्थान पर जबड़ों पर तेज किनारों वाली शृंगीय प्लेटें चढ़ी होती हैं जिनसे आहार को मज़बूती से पकड़ा और चबाया जा सकता है। उनका छोटा चौड़ा धड़ एक सुरक्षाकारी कवच के भीतर बंद रहता है, इस कवच में एक भाग पृष्ठ कैरापेस **(carapace)** और दूसरा भाग अधर प्लैस्ट्रॉन **(plastron)** होता है (चित्र 3.15)।

कवच प्राणी का ही एक अभिन्न भाग होता है और इसकी रचना वक्ष कशेरुकों तथा पसलियों से हुई होती है। इसमें दो परतें होती हैं- एक तो किरैटिन की बनी बाहरी शृंगीय परत और दूसरी उसके नीचे की अस्थिल प्लेटों की परत। अस्थिल प्लेटें त्वचा की डर्मिस में अस्थिभूत हुई होती हैं और उनमें से कुछ प्लेटें कशेरुकों और पसलियों के साथ समेकित हो गयी होती हैं। जैसे-जैसे कछुए उम्र में बढ़ते जाते हैं वैसे-वैसे किरैटिन की पुरानी परत के नीचे और नई परतें बनती जाती हैं।

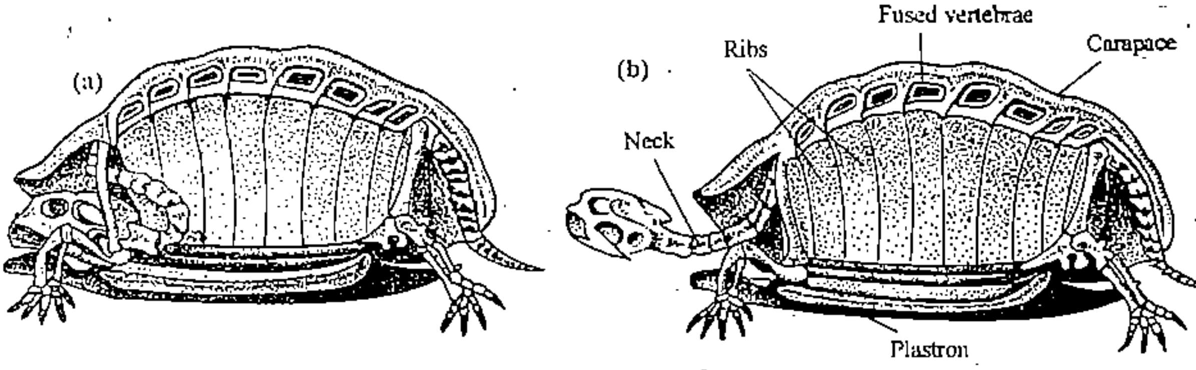

चित्र 3.15: कछुए का कंकाल और कवच कशेरुकों और पसलियों का कैरापेस से समेकन दिखाया गया है। लम्बी और लचीली गर्दन के कारण कछुआ अपने सिर को सुरक्षा-हेतु कवच के भीतर सिकोड़ लेता है। अधिकतर कछुए अपने सिर को कवच के भीतर लाने के लिए गर्दन को S- आकृति का पाश बनाते हुए उदग्र समतल में मोड़ लेते हैं।

कछुओं की अनेक स्पीशीज में ऑक्सीजन की सप्लाई उनके मुख तथा ग्रसनी के रक्तवाहिकामय अस्तर से और अवस्कर से मुकुलित हुए थैलों से होती है। इसी से ये अपने अक्रिय समय में जल . ीतर देर-देर तक डूबे पड़े रह सकते हैं। सक्रिय होने पर उन्हें अपने फेफड़ों के द्वारा जल्दी-जल्दी सांस लेने की आवश्यकता होती है।

कछुओं में समेकित पसलियों के साथ दृढ़ कवच होने के कारण वे सांस लेने के लिए अपने सीने को फुला नहीं सकते जिसकी वजह से पसली-पिंजड़े का व्यास बदल कर फेफड़े में हवा का आना-जाना असम्भव होता है। इस समस्या का समाधान पार्श्वों तथा कंधे की पेशियों को एकांतर क्रम में संकुचित करके वायु को बलपूर्वक फेफड़ों में और उनके बाहर को पहुंचा कर तथा निकाल कर किया जाता है।

कछुए अपने अलचीले धड़ की इस कमी को एक लम्बी गर्दन द्वारा पूरी करते हैं जो अशन में सुविधा पहुंचाती है। पूर्वज कछुए अपनी गर्दन को भीतर नहीं सिकोड़ सकते थे मगर आधुनिक स्पीशीज़ उसे अपने सुरक्षाकारी कवच के भीतर सिकोड़ सकते हैं। खतरा सामने आने पर कछुए अपने पादों को भी कवच के भीतर सिकोड़ सकते हैं।

कछुओं का मस्तिष्क छोटा होता है और वह कुल देह भार के 1% से अधिक कभी नहीं होता। मगर प्रमस्तिष्क (सेरीब्रम) ऐम्फिबियमों की अपेक्षा ज़्यादा बड़ा होता है और कुछए किसी व्यूह जाल (भूल-भुलैया) को लगभग उतनी ही जल्दी सीख जाते हैं जितनी की चूहे। कछुओं में मध्य कान तथा भीतरी कान होते हैं मगर बाहरी कान नहीं होता और इन्हें ध्वनि-बोध बहुत कम हो पाता है। अतः कछुए लगभग गूंगे होते हैं हालांकि कई कछुए मैथुन के दौरान गुर्राने की सी आवाज निकालते हैं। कछुओं की कम सुनाई देने की क्षमता की क्षतिपूर्ति उनमें पाए जाने वाले एक अच्छे गंध-ज्ञान, तीव्र दृष्टि और रंगों के बोध जो कि मनुष्य के जैसा अच्छा जान पड़ता है, से होती हैं।

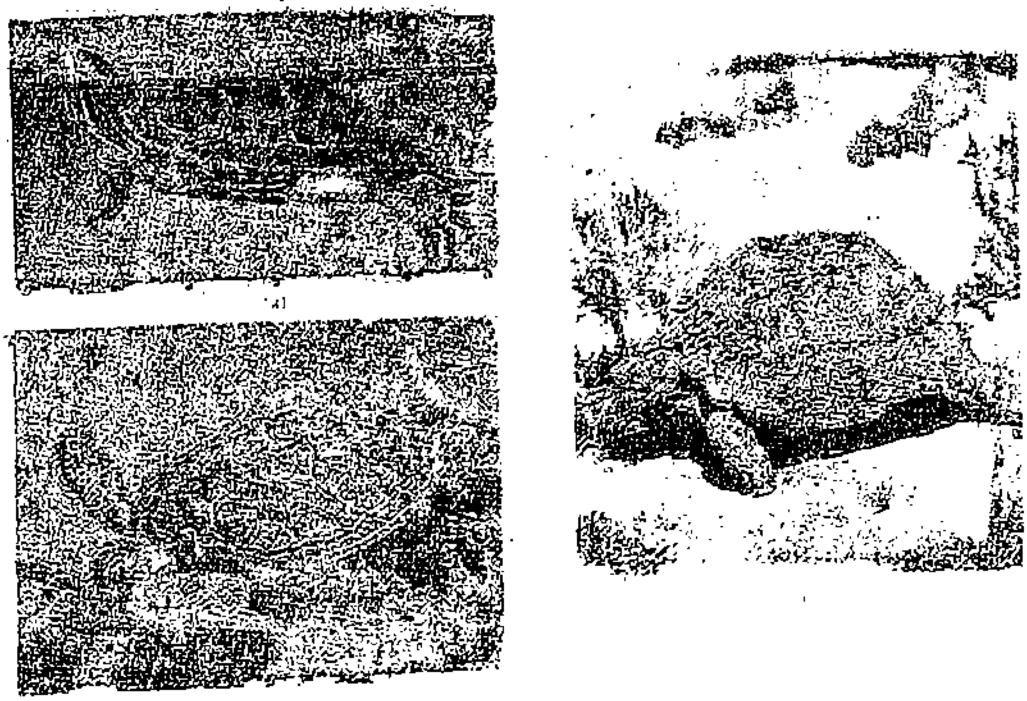

"बॉक्स टर्टल" (टेर्रेपीन केरोलिना) में एक प्लैस्ट्रॉन होता है जो आगे और पीछे दोनों ओर हिंज-संधिस्थ रहता है और यह ऊपर को कैरापेस के प्रति इतनी कसकर खींच लिया जा सकता है कि दोनों के कवचों के बीच में से चाकू का फलक तक नहीं घुसाया जा सकता। बड़े पूर्वी "स्नैपिंग टर्टल" (केलाइड्रा सर्पेंटाइना) जैसे कुछ टर्टलों में प्लैस्ट्रॉन ह्रासित होता है जिससे सुरक्षा के लिए पूरी तरह भीतर को सिकोड़ लिया जा सकना असंभव हो जाता है। तथापि इस अपर्याप्त सुरक्षा की क्षतिपूर्ति ये टर्टल बहुत आक्रामक होकर कर लेते हैं।

चित्र 3.16: कुछ प्रतिनिधि कुछए। कुछ कछुए अलवण जल में जीवन के लिए सुअनुकूलित होते हैं, (a) कुछ अन्य समुद्री जल के लिए (b) और कुछ अन्य थल जीवन के लिए।

पादांगुलियों के अंत में शृंगीय नखर बने होते हैं जो रेंगने तथा खोदने में उपयोगी होते हैं। थल कछुओं में पांव ठूंठनुमा होते हैं जब कि समुद्री कछुओं में अगले पैर चप्पू-जैसे हो गए हैं। चित्र 3.16 में कुछ कछुए दिखाए गए हैं जो अलग-अलग जीवन-विधियों के लिए अनुकूलित हैं।

अधिसंख्य कछुओं में सुविकसित द्विपालियुक्त मूत्राशय होते हैं जो अवस्कर में खुलते हैं। कछुओं में मूत्रवाहिनियां मूत्राशय से जुड़ी होती हैं और वे अलग-अलग से अवस्कर में नहीं खुलती। कुछ कछुओं में एक जोड़ी सहायक मूत्राशय होते हैं और वे भी अवस्कर से जुड़े होते हैं। इनका कार्य सहायक श्वसन अंगों की तरह काम करना है। मादाओं में इनमें जल भर लिया जा सकता है जिसका उपयोग वे अपना घोंसला बनाते समय ज़मीन को नरम करने में करती हैं। कछुओं का मूत्र तरल होता है।

कछुए अंडप्रजक होते हैं और निषेचन भीतरी होता है जो अवस्कर की अधर दीवार पर बने एक उद्धर्षी (erectile) शिश्न के द्वारा सम्पन्न होता है। सभी कछुए, यहां तक कि समुद्री कछुए भी, अपने कवचीय ऐम्नियोटिक अंडों को ज़मीन में गड्ढा बनाकर उसमें गाड़ते हैं। अंडे देने के लिए मादाएं बाहर किनारे पर आ जाती हैं और आमतौर से घोंसला बनाती हैं। एक बार अंडे देकर और उन्हें ऊपर से ढक कर मादा उन्हें हमेशा के लिए छोड़कर चली जाती है।

कछुओं के मास और अण्डों को खाये जाने और इनके शंख को आभूषण के तरह से इस्तेमाल करने, इनके जीवन चक्र एवं पर्यावरण में बदलाव और इनके आवास के विनाश के कारण वर्तमान समय में ये प्राणि संकटग्रस्त हो गये हैं (चित्र 3.17)।

समुद्री टर्टलों के संरक्षण में कई कारणों से समस्याएं आती हैं। उदाहरणत. इनको और इनके अण्डों का खाया जाना और इनके कवचों का आर्थिक महत्व. इनकी प्रवास आदतें, लम्बे प्रजनन काल तथा अण्डों से निकलने वाले बच्चों के सेक्स पर तापमान का प्रभाव। हमारे स्वयं अपने तथा सरकारों के अनेक कार्यकलाप भी टर्टलों के लिए खतरा बन जाते हैं। उड़ीसा के गाहिरमठ पर "ओलिव रिड्ले टर्टल" के असाधारण रूप में महत्वपूर्ण नीडन स्थलों को आज मछली पकड़े जाने का बंदरगाह होने और साथ में उसके एकदम आस-पास अधिक मछली पकड़ी जाने से खतरा बन गया है।

चित्र 3.17: वर्तमान में कछुए भी संकटग्रस्त प्राणी हैं।

बोध प्रश्न 5

बताइए कि निम्न कथनों में से कौन से सही हैं और कौन से गलत:-

क)	कछुए अपने पूरे जीवन के दौरान तीन बार अपने कवचों को उतार फेंकते हैं।	सही/गलत
ख)	कछुए शिशुप्रजक होते हैं तथा उनमें निषेचन भीतरी होता है।	सही/गलत
ग)	पूर्वज कछुए अपने शीर्ष को कवच के भीतर को नहीं सिकोड़ सकते थे।	सही/गलत
घ)	कछुओं की अनेक जलीय स्पीशीज़ अपने को बहुत देर-देर तक पानी के नीचे डुबोए रख सकती हैं क्योंकि उनमें विशेषित गिल होती हैं।	सही/गलत
च)	कछुओं का प्रमस्तिष्क ऐम्फिबियनों की अपेक्षा ज़्यादा बड़ा होता है और इस कारण वे किसी व्यूह जाल को लगभग उतनी ही जल्दी सीख लेते हैं जितनी कि चूहे।	सही/गलत

B. उपक्लास डाइऐप्सिडा (Subclass Diapsida): अधिऑर्डर लेपिडोसौरिया (Lepidosauria)

स्फ़ीनोडॉन (ग्रीक स्फ़ीनों = फन्नी, ओडोण्टॉस = दांत) के रूप में सरीसृपों में सबसे धीमा विकास हुआ दीखता है क्योंकि यह उन स्पीशीज़ से भिन्न नहीं हुआ है जो अब से 15 करोड़ वर्ष पहले पायी जाती थीं। इसलिए इसे कभी-कभी जीवित बना रह गया "जीवाश्म" भी कह देते हैं।

(ai) ऑर्डर स्फ़ीनोडॉण्टा का प्रतिनिधित्व करने वाली आज केवल एक ही जीवित स्पीशीज़ टुआटरा (*स्फ़ीनोडॉन पंक्टेटस, Sphenodon punctatus*) बची है। एक समय था जब ये प्राणी न्यूज़ीलैंड के उत्तरी द्वीप में बहुत व्यापक पाए जाते थे। आज ये केवल कुक-जलडमरूमध्य के छोटे-छोटे द्वीपों में तथा उत्तरी द्वीप के उत्तरी समुद्र तट के पार पाए जाते हैं।

स्फ़ीनोडॉन एक ऐसे आदिम सरीसृप समूह का एकमात्र बचा प्राणी है जो आरम्भिक मीज़ोजोइक में पर्याप्त संख्या में पाए जाते थे और जिनमें से अधिकतर 10 करोड़ वर्ष पहले ही विलुप्त हो गए थे। जिंदा बचे रह गए लेपिडोसौरों में यही सर्वाधिक आदिम है (चित्र 3.18)। यह अब भी एक चतुष्पाद ही है। इसमें दो जोड़ी सुविकसित पाद होते हैं, एक सशक्त पूंछ होती है और गर्दन एवं धड़ पर एक शल्कीय कलगी (crest) बनी होती है जो नर में ज़्यादा बड़ी एवं स्पष्ट होती है। यह प्राणी छिपकली जैसा ही होता है। नर की लम्बाई 60 cm और वज़न 1000 ग्राम तक पहुंच जाता है जबकि मादाएं 50 cm तक लम्बी और 500 ग्राम तक के वज़न की हो सकती हैं। टुआटरा अनिवार्यत: रात्रिचर होती है और यह बिलों में रहती हैं जिनमें कभी-कभी "पेट्रेल" पक्षी भी साथ-साथ रहते पाए जाते हैं। धड़ और पूंछ के पार्श्व ऊर्मिलन (लहराती गतियां) ही अब भी संचलन प्रतिरूप के मुख्य अंश होते हैं। इस प्राणी की वृद्धि बहुत धीरे-धीरे होती है और उम्र लम्बी होती है, इनके एक सदस्य को 77 साल तक ज़िंदा रहते हुए पाया गया है।

इसके अन्य लक्षण हैं - एक आदिम डाइऐप्सिड करोटि जिसमें एक अस्थिल चाप करोटि के निचले भाग में आंखों के पीछे बनी होती है, जो छिपकलियों में तो नहीं पायी जाती मगर उन प्रारम्भिक पर्मियन सरीसृपों में पायी जाती थी जो आजकल की छिपकलियों के पूर्वज थे; एक सुविकसित मध्य पेराइटल आंख जिसमें कॉर्निया तथा रेटिना, पिनियल आंख, लेन्स तथा मस्तिष्क के साथ बने पिनियल तंत्रिका संयोजन थे, यह तीसरी आंख हालांकि शल्कों द्वारा ढकी होती है, फिर भी यह प्रकाश के प्रति संवेदनशील होती है। एक सम्पूर्ण तालु, (palate) पाया जाता है। एक विशेष लक्षण दांतों का है जो जबड़ों के किनारे-किनारे फन्नी (wedge) की तरह समेकित रहते हैं न कि गर्तों (sockets) में बैठे होते हैं। नरों में मैथुन अंग नहीं होते और वे अपने शुक्राणुओं को अपने अवस्कर में बहिर्वर्तित करके मादा के भीतर पहुंचाते हैं। मैथुन के दौरान जब नर मादा की ओर ताकता और उसकी ओर धीरे-धीरे झटके देकर बढ़ता जाता है तब उसकी कलगी कड़ी और सीधी खड़ी हो जाती है। तदुपरांत नर अपने अग्र पादों से मादा को उसके कंधों पर कस कर पकड़ लेता है। जैसा कि अन्यथा छिपकलियों में होता है, टुआटरा मादा को अपने जबड़ों से नहीं पकड़ता। मादा एक बिल में घोंसला बनाती हुई 8-15 अण्डे देती है और फिर उसे कई सेंटीमीटर मिट्टी से ढक देती है। परिवर्धन में लगभग 13 महीने लग जाते हैं और उनमें से बच्चे आरम्भ से मध्य ग्रीष्म ॠतु में निकल आते हैं।

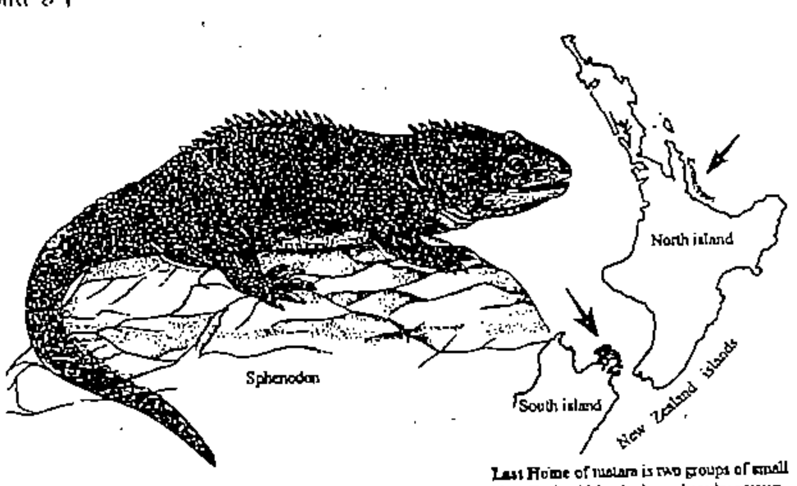

चित्र 3.18: टुआटरा (*स्फीनोडॉन पंक्टैटस, Sphenodon punctatus*)। यह ऑर्डर रिंकोसेफैलिया का एकमात्र जीवित प्रतिनिधि है। इस जीवित जीवाश्म में शीर्ष के ऊपर एक सुविकसित पेराइटल आंख होती है। इस आंख में रेटिना तथा लेन्स होता है मगर चूंकि इस पर बाहर से एक शल्क ढका होता है इसलिए इसका क्या कार्य है मालूम नहीं। टुआटरा केवल न्यूज़ीलैंड में पायी जाती है।

बोध प्रश्न 6

नीचे दिए कथनों में जो दो-दो विकल्प दिए गए हैं उनमें से सही विकल्प चुनिए:-

क) *स्फ़ीनोडॉन* जीवित बचा चला आ रहा सर्वाधिक आदिम आर्कोसौर/लेपिडोसौर है।

ख) *स्फ़ीनोडॉन* बिलों में रहती है जिनमें कभी-कभी छछूंदरे/पेंट्रेलें भी साथ में रहती हैं।

ग) *स्फ़ीनोडॉन* में एक करोटि होती है जो आदिम डाइऐप्सिड/ऐनैप्सिड प्रकार की होती है।

घ) नर *स्फ़ीनोडॉन* में मैथुन अंग उपस्थित/अनुपस्थित होता है।

च) *स्फ़ीनोडॉन* में दांत नहीं होते/होते हैं।

(aii) ऑर्डर स्क्वैमैटा (Order Squamata): उदाहरण: छिपकलियां, सांप और कृमि-छिपकलियां

जैसा कि आप पहले ही पढ़ चुके हैं ऑर्डर स्क्वैमैटा तीन उपऑर्डरों में विभाजित किया जाता है-, (1) **लैसर्टीलिया** (सौरिया, Sauria), छिपकलियां, (2) **सर्पेंटीस** (ओफ़ीडिया, Ophidia), सांप; और (3) **ऐम्फ़िसबीनिया**, कृमि-छिपकलियां।

परिचित छिपकलियां, सांप और कृमि-छिपकलियां हालांकि बाहर से भिन्न दिखायी पड़ती हैं, मगर अपनी मौलिक संरचना में इतनी पर्याप्त समानता वाली हैं कि उन्हें एक ही ऑर्डर स्क्वैमैटा में रखा जाता है ये

स्क्वैमैटा ही डाइऐप्सिड विकास के सर्वाधिक अर्वाचीन एक बहुविविध उत्पाद हैं जो सभी ज्ञात जीवित सरीसृपों का लगभग 95% अंश बनाते हैं।

स्क्वैमैटों की डाइऐप्सिड करोटि अपनी पूर्वज डाइएप्सिड दशा से बहुत ही अलग ढंग से रूपांतरित हुई है। उपसेक्शन 3.3.1 तथा चित्र 3.4 से आपको याद होगा कि डाइऐप्सिड करोटि में दो टेम्पोरल छिद्र होते हैं एक पश्च ऑर्बिटल स्क्वैमोज़ल शलाका के ऊपर तथा एक नीचे। स्क्वैमैटों में डाइऐप्सिड करोटि में विकास के दौरान टेम्पोरल छिद्र को परिसीमित करने वाली एक या दोनो शलाकाओं का ह्रास होकर द्वितीयक रूप में रूपांतरण हो गया है। इस परिवर्तन से उनके जबड़ों में बहुत ज्यादा खुलने की क्षमता आ गयी। इस प्रकार इससे एक ऐसी गतिमान करोटि का विकास संभव हो सका जिसमें गतिशील संधियां बन गयी थीं। इस प्रकार की करोटि को गतिक करोटि **(kinetic skull)** कहते हैं और यह छिपकलियों तथा सांपों में स्पष्ट दिखायी पड़ती है।

छिपकलियों में क्वाड्रेट जो कि अन्य सरीसृपों में करोटि से समेकित रहती है, उसके पृष्ठ सिरे पर संधि होती है और साथ ही उसकी निचले जबड़े के साथ सामान्य संधि भी पायी जाती है। इनके अलावा तालु में तथा करोटि की छत में एक पार्श्व के दूसरे पार्श्व की ओर तक संधियां पायी जाती हैं जिनके द्वारा थूथन को ऊपर को उठाया जा सकता है (चित्र 3.19)। करोटि की इस विशेषित गतिशीलता से छिपकलियां अपने शिकार को पकड़ सकतीं और उसे अपने मुंह में संभाल कर निगल सकती हैं, साथ ही इसके द्वारा जबड़ा पेशी-तंत्र जबड़ों को अधिक कारगर रूप में बंद कर सकता है। आप इसी इकाई में आगे पढ़ेंगे कि छिपकलियों की अपेक्षा सांपों की करोटि तो और भी अधिक गतिक होती है। करोटि की इस असाधारण गतिशीलता को छिपकलियों तथा सांपों के विशाल विविधिकरण का एक मुख्य कारक माना जाता है।

चित्र 3.19: एक आधुनिक छिपकली (गोह, monitor lizard) जिसमें संधियां (बिंदुओं से इंकित) दर्शायी गयी हैं जिनके द्वारा थूथन तथा ऊपरी जबड़ा शेष करोटि पर गति कर सकते हैं। क्वाड्रेट अपने पृष्ठ सिरे पर और अधरतः निचले जबड़े तथा टेरिगॉइड दोनों पर गति कर सकती है। मस्तिष्क-कोश का अगला भाग भी लचीला होता है जिसके कारण थूथन ऊपर को उभारा जा सकता है। ध्यान से देखिए कि निचला टेम्पोरल छिद्र बहुत बड़ा होता है जिसका कोई निचला सीमांत नहीं बना होता; डाइऐप्सिड दशा का यह रूपांतरण, जो आधुनिक छिपकलियों में आम पाया जाता है, बड़े आकार की जबड़ा पेशियों को फैलने के लिए स्थान प्रदान करता है। ऊपरी टेम्पोरल छिद्र पश्च ऑर्बिटल-स्क्वैमोज़ल चाप के पृष्ठ और मध्य की ओर बना होता है तथा यह चित्र में दिखाई नहीं पड़ रहा है।

कोमोडो ड्रैगन जो आज केवल कुछ इंडोनीशियन द्वीपों तक ही सीमित हैं आज की सबसे बड़ी आकार की छिपकलियां हैं। ये 3 मीटर या उससे भी ज़्यादा लम्बी होती हैं। ये छोटे हिरनों, जंगली सूअरों तथा बकरियों को खाती हैं (चित्र 3.20)।

उपऑर्डर लैसर्टीलिया **(Suborder Lacertilia)**, उदाहरण: छिपकलियां। छिपकलियों के शरीर का साइज़ और आकृति अलग-अलग होती है; अनेक पतली होती हैं, कुछ पार्श्वतः सम्पीडित होती हैं और कुछ अन्य जैसे कि सींगों वाली छिपकलियां पृष्ठ-अधरतः चपटी होती हैं। अधिबहुसंख्यक छिपकलियों में चार पाद पाए जाते हैं हालांकि ऐसी भी अनेक हैं जिनके पाद घट गए हैं अथवा हैं ही नहीं जैसे कि बड़ी संख्या में पायी जाने वाली पादविहीन छिपकलियों ('ग्लास-स्नेक' पादविहीन छिपकलियों) में। पाद छोटे अथवा लम्बे हो सकते हैं तथा पतले नाजुक या मोटे-मजबूत हो सकते हैं। सामान्यतः सभी पादविहीन छिपकलियां मिट्टी में रहती हैं और इसमें वे अगल-बगल रेंगने वाली गतियां करती हुई चलती हैं। तेज़ दौड़ने वाली कुछ छिपकलियों में पूंछ लम्बी होती है जो प्रतिसंतुलन का कार्य करती है मगर धीमे चलने वाले उदाहरणों में यह छोटी और ठूंठ जैसी हो सकती है। चित्र 3.20 में विविध प्रकार की जीवन-विधियों के लिए अनुकूलित कुछ छिपकलियां दिखायी गयी हैं।

चित्र 3.20: छिपकलियों में विशिष्ट पर्यावरणों के लिए अनेक अनुकूलन पाए जाते हैं।

अनेक स्पीशीज़ में, जैसे कि स्किंक छिपकलियों (Skinks) में पूंछ के एक क्षेत्र में कशेरुकों के मध्य में आर पार असमपूर्णत: अस्थिभवन होता है जो एक टूटन-बिंदु का कार्य करता है (चित्र 3.21)। यदि पूंछ को पकड़ लिया जाए तो इनमें से किसी भी टूटन-बिंदु पर कशेरुकें पृथक हो जाती हैं (स्वविच्छेदन, autotomy हो जाती है) और प्राणी बचकर निकल जाता है। पूंछ कभी-कभी चटक रंगदार होती है और उसकी पेशियों का अवायवीय उपापचय पूंछ को काफी समय तक ऐंठता-मरोड़ता रहता है जिससे परभक्षी का ध्यान इसी टूट कर अलग हुई पूंछ की ओर खिंचा रहता है और इस बीच छिपकली को बच निकलने का समय मिल जाता है। समय बीतते जाने पर एक नयी पूंछ का पुनरुद्भवन हो जाता है मगर उसमें कार्टिलेजी शलाकाओं का आलम्ब बना होता है न कि कशेरुकों का जिनमें पुनरुद्भवन नहीं होता।

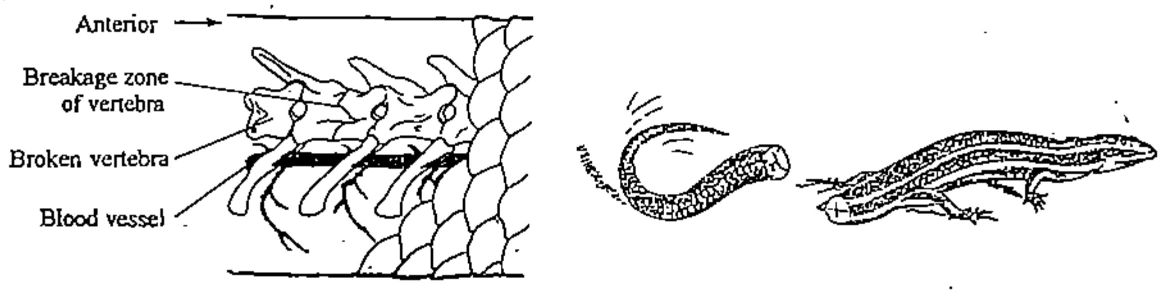

चित्र 3.21: पश्चिम की स्किंक के पुच्छ कशेरुकों का पार्श्व दृश्य; जिसमें टूटन-क्षेत्र दर्शाए गए हैं। टूटकर अलग हुई पूंछ तेजी से गति करती है।

छिपकली की त्वचा लचीली और शरीर पर ढीली-ढीली जुड़ी होती हैं इसमें बहुत शल्क होते हैं जो अनुदैर्ध्य, अनुप्रस्थ अथवा तिरछे व्यवस्थित होते हैं। अधिकतर छिपकलियों में पीठ और अगल-बगल के शल्क पीछे की ओर कोरछादी होते हैं जैसे कि किसी छत की खपरैलें। अलग-अलग शल्क विविध प्रकार से चिकने, गढ़ों से युक्त अथवा अनुदैर्ध्य नौतल से युक्त हो सकते हैं। अधर सतह पर आम तौर से छोटे शल्क होते हैं।

ो छिपकलियों में सुनने की एक ोष भूमिका है। इनके नर बहुत (मचाते हैं जिसके द्वारा वे अपने । का स्वामित्व घोषित करते हैं (अन्य नरों को पास आने से त्साहित करते हैं. इसके लिए री है कि उन्हें अपनी आवाज़ सुनाई दे। छिपकलियों की अन्य ीज़ अपना रक्षा-व्यवहार व्यक्त ने के लिए आवाज़ें करती हैं।

अधिकतर छिपकलियों में गतिशील ऊपरी तथा निचली पलके होती हैं। अनेक में पेराइटल आंख कायम बनी है (चित्र 3.22)। छिपकलियों में दिन के समय देख सकने के लिए अच्छी दृष्टि होती है (रेटिना में शलाकाएं और शंकु भरपूर होते हैं) हालांकि एक समूह की गेको छिपकलियों में रेटिना में केवल शलाकाएं ही होती हैं जिसके कारण वे अंधेरे में बहुत अच्छी तरह देख सकती हैं। अधिसंख्य छिपकलियों में बाहरी कान होता है जो सांपों में नहीं होता और यह कछुओं से अलग रूप में विकसित हुआ है। छिपकलियों के भीतरी कान की बनावट अलग-अलग हो सकती है मगर जैसा कि अन्य सरीसृपों में है अधिकांश छिपकलियों के जीवन में भी सुनने की कोई महत्वपूर्ण भूमिका नहीं है।

जीभ मामूली सी ही गतिशील होती है या निर्बाध रूप में बाहर को प्रसारशील होती है। कैमीलियॉनों में यह थूथन के आगे कई इंच तक तेज़ी से निकाली जा सकती है ताकि इसको श्लेष्मी चिपकदार नोक पर कीटों को पकड़ा जा सके। छिपकलियों में पायी जाने वाली विविधता के बावजूद एक समूह के रूप में इनमें अनेक लक्षण पाए जाते हैं जो इन्हें सांपों से अलग करते हैं। इनमें से एक लक्षण निचले जबड़े का है। और तो और, पादविहीन छिपकलियों में भी निचले जबड़े के दो अर्धांश मैंडिबुलर संधान (mandibular symphysis) पर कसकर जुड़े होते हैं। इस व्यवस्था के कारण छिपकलियों में गतिक करोटि होने के बावजूद बड़े आकार को निगल सकने की उस प्रकार की क्षमता नहीं होती जैसी कि खुले जबड़ा अंशों वाले सांपों में होती जाती है। छिपकलियों के जबड़ों में दांत होते हैं जो प्रायः छोटे और समान होते हैं मगर कुछ स्किंकों तथा पुरानी दुनिया की ऐगैमिडी (Agamidae) में वे समान न होकर विभेदित होते हैं।

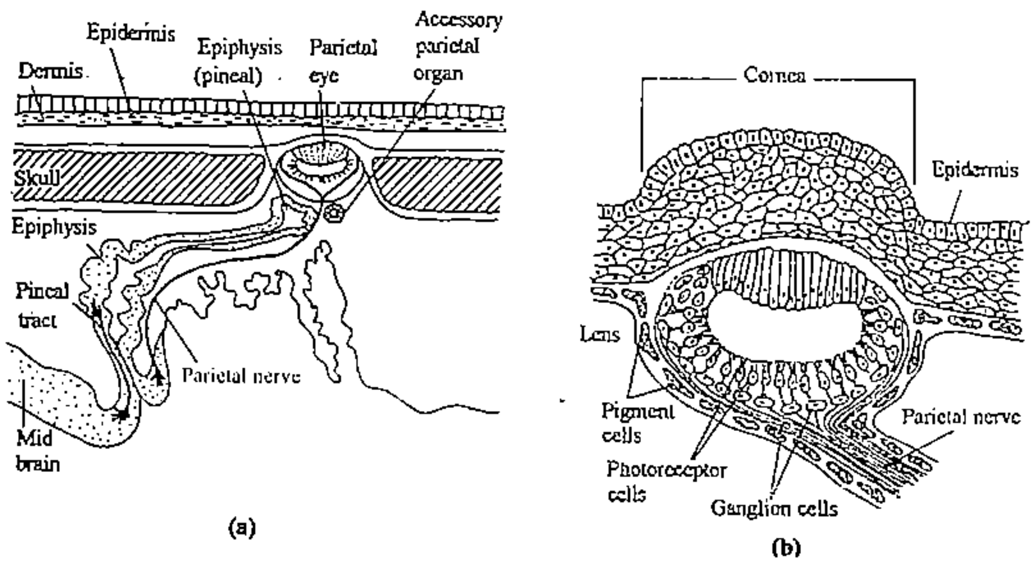

चित्र 3.22: (a) एक छिपकली के पिनियल सम्मिश्र का अनुप्रस्थ सेक्शन, (b) सामान्यीकृत पैराइटल आंख।

छिपकलियों का एक विशेष लक्षण उनमें जल्दी से रंग बदल सकने की क्षमता (वर्णांतरण, metachrosis) का पाया जाना है जिसके द्वारा वे अपनी पृष्ठभूमि के साथ समदृश्य हो जाती हैं। मगर सभी छिपकलियों में यह क्षमता नहीं पायी जाती। छिपकलियों में मूत्राशय पाया जाता है और यूरिक अम्ल विष्टा पदार्थ के साथ-साथ अवस्कर के माध्यम से बाहर आ जाता है। नरों में पूंछ के आधार पर दो अर्धशिश्न होते हैं। मैथुन के समय एक या दोनों का बहिर्वर्तन हो जाता है मगर सामान्यत: उपयोग में केवल एक ही लाया जाता है। शुक्र तरल अर्धशिश्न पर बनी एक खांच के सहारे बहता हुआ मादा के अवस्कर में छोड़ दिया जाता है। सांपों में भी अर्धशिश्न होता है और इस विशिष्टता का पाया जाना इन दोनों समूहों को जोड़ता है।

आधुनिक छिपकलियों का समूह अति विविधता से परिपूर्ण है। इसमें थलीय, बिल बनाने वाले, जलीय और वृक्षवासी सदस्य हैं और ये विश्व के समस्त शीतोष्ण एवं उष्णकटिबंधीय प्रदेशों में पाए जाते हैं। चित्र 3.23 में भारत में पायी जाने वाली कुछ छिपकलियों को दिखाया गया है।

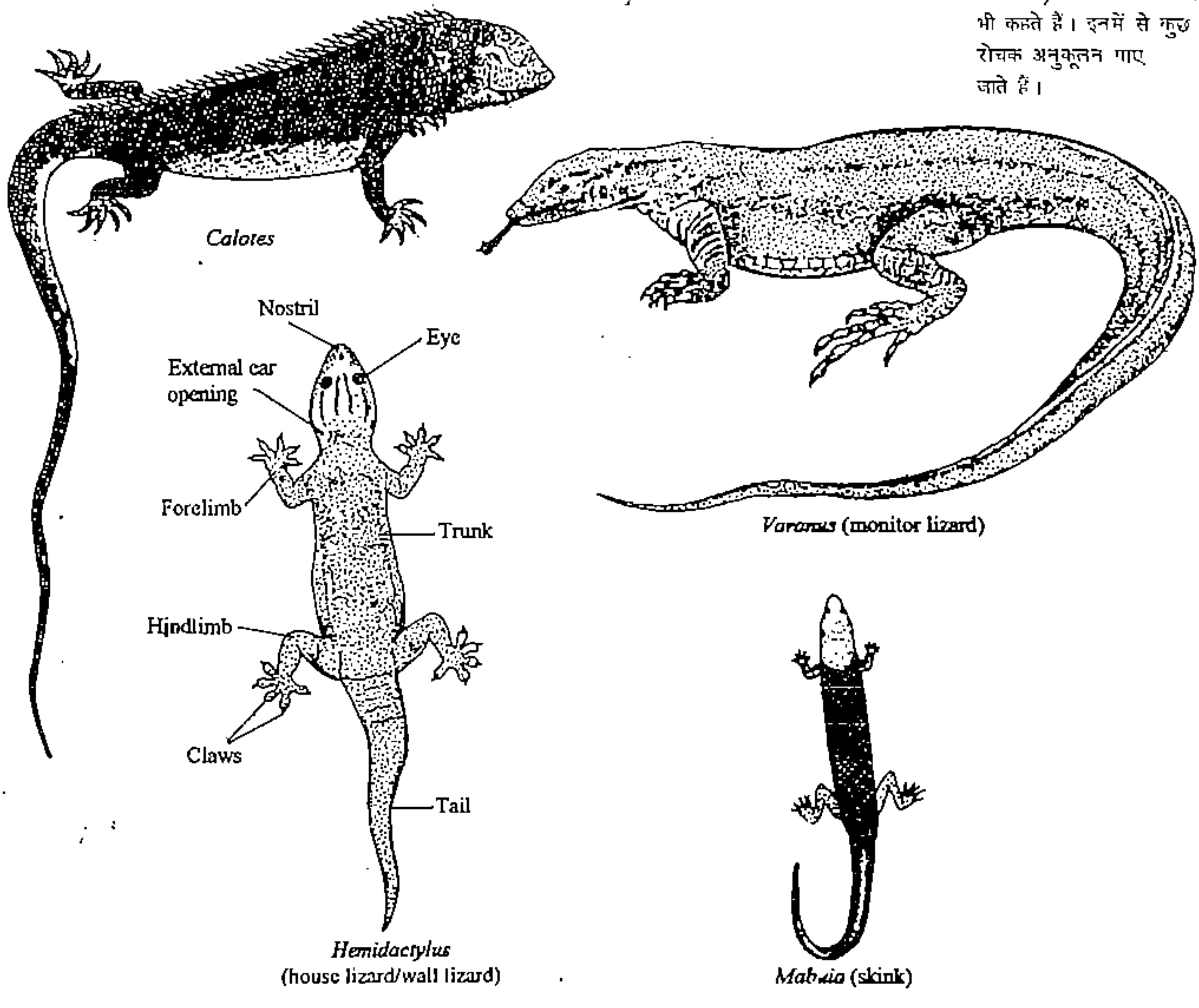

चित्र 3.23: भारत में पायी जाने वाली कुछ छिपकलियाँ।

अनेक छिपकलियां गर्म और शुष्क प्रदेशों में रहती हैं जो मरुस्थली जीवन के लिए भली भांति अनुकूल होती हैं। इनकी त्वचा में ग्रंथियां नहीं होती जिससे जल की न्यूनतम हानि होती है और क्रिस्टलीय यूरिक अम्ल की अधिक मात्रा वाला अर्धठोस मूत्र बनाती हैं।

अधिसंख्य छिपकलियां मांसभक्षी होती हैं, वे कीटों तथा अन्य छोटे शिकार को खाती हैं। कुछ बड़ी स्पीशीज़ जैसे कि गोह कशेरुकियों तक को खा जाती हैं। शाकभक्षी छिपकलियां थोड़ी ही होती हैं और उनमें से इग्वाना (Iguana) तथा कुछ स्किंक अच्छे उदाहरण हैं। केवल गिला मॉन्स्टर (Gila monster) ही अकेली विषैली छिपकली है और इसकी दो स्पीशीज़ पायी जाती हैं।

भारत में भी अनेक छिपकलियां पायी जाती हैं जिनमें घरेलू छिपकली (*हेमिडैक्टाइलस ब्रूकाई*) तथा बगीचे का गिरगिट (*कैलोटीस वर्सीकलर*) भी शामिल है। इनके अलावा भारत में और भी कई रोचक छिपकलियां हैं जैसे गोह (*वैरेनस मॉनिटर*), कैमीलियॉन (*कैमिलियॉन कैल्सकैरेटस*), "हार्न्ड-टोड" (*फ़िनोसोमा*) जो वास्तव में एक छिपकली ही है तथा स्किंक (*मैबोइया कैरिनेटा*) जिसे "सांप की मौसी" भी कहते हैं। इनमें से कुछ में बड़े रोचक अनुकूलन पाए जाते हैं।

बोध प्रश्न 7

कोष्ठक में दिए गए विकल्पों में से उपयुक्त शब्द छांटिए:-

a) भारत में पायी जाने वाली घरेलू छिपकली का प्राणिवैज्ञानिक नाम क्या है- *(हेमिडेक्टाइलस ब्रूकाई/कैलोटीस वर्सीकलर)*
b) छिपकलियों में अवस्कर (नहीं होता/होता है)।
c) अधिसंख्य छिपकलियों में पलकें (गतिशील/अगतिशील) होती हैं।
d) सबसे बड़ी जीवित छिपकली (कोमोडो ड्रैगन/गिला मॉन्स्टर) होती है।

उपऑर्डर सर्पेंटीस (Suborder Serpentes): उदाहरण सांप। सांप बड़े अजीब जीव जंतु हैं, अनेक लोग इनसे डरते हैं, इनसे घृणा करते हैं, और अनेक संस्कृतियां हैं जिनमें इन्हें बड़े आदर से देखा जाता और इनकी पूजा की जाती है, वे इन्हें शक्ति, रोगउन्मूलन और पुनर्युवन का प्रतीक मानते हैं। सांपों की अपनी विशिष्टता के रूप में दो लक्षण सबसे खास हैं- (1) शरीर का बहुत ज़्यादा लम्बा हो गया होना जिसके साथ-साथ भीतरी अंगों की स्थिति में पुनर्व्यवस्था हो गयी है तथा (2) अधिक बड़े आकार के शिकार को खा सकने के लिए विशेषित हो जाना।

आपने कभी डाक्टरी के एक प्रतीक चिन्ह को देखा होगा जिसमें दो सांप एक डण्डे पर परस्पर लिपटे होते हैं यह डण्डा "केड्यूकियस" प्राचीन ग्रीक अथवा रोमन पौराणिक डण्डा है जिसे उनका संदेश देवता "हर्मीस" अथवा "मर्करी" अपने हाथ में लिए रहता था।

इतना ही नहीं, लम्बा शरीर होने के अतिरिक्त अधिसंख्य सांप पूर्णत: पादविहीन होते हैं तथा उनमें अंस और श्रोणि- (pectoral and pelvic) दोनों मेखलाएं एवं स्टर्नम (उरोस्थि) नहीं होती। मगर "बोआ कंस्ट्रिक्टर, Boa constrictor" तथा अजगर इसके अपवाद हैं, इनमें (चित्र 3.24a) पिछली टांगों के कांटे-जैसे आद्यंग अब भी बने हुए हैं जिनका उपयोग प्रणय में किया जाता है। सांपों के असाधारण लम्बे धड़ और लम्बी पूंछ में 200 से भी अधिक संख्या में कशेरुकें होती हैं, ये कशेरुकें चतुष्पादों की कशेरुकों से छोटी और अधिक चौड़ी होती हैं जिनके कारण घास में अथवा खुरदरी भूमि पर तीव्र पार्श्व ऊर्मिलन (लहराने की) गतियां संभव होती हैं। लम्बें सांपों में 200 से 400 तक कशेरुकें होती हैं (चित्र 3.24b)। बहुसंख्यक खंडीय देह-पेशियां पतली होती हैं और ये पेशियां कशेरुकों को कशेरुकों से, कशेरुकों को पसलियों से, पसलियों को पसलियों से, पसलियों को त्वचा से तथा त्वचा को त्वचा से जोड़े रखती हैं। अनेक पेशियां एक देह-खण्ड से दूसरे देह खण्ड में जाती हैं जब कि कुछ अन्य अपनी कंडराओं (टेंडनों) के द्वारा दूर-दूर के खण्डों में संयोजित रहती हैं। इसी प्रकार की व्यवस्था के कारण सांपों में उनकी बड़ी शानदार लहरदार गति संभव होती है। पसलियों से कशेरुक दण्ड की दृढ़ता बढ़ जाती है जिससे पार्श्व तनावों-दबावों को अधिक प्रतिरोध प्रदान हो जाता है। तंत्रिका-कंटिका के ऊंचा हो जाने से बहुसंख्यक पेशियों को और अधिक तीवरता मिल जाती है।

Pythons and boas show their ancestry by the vestiges of their hind legs. In these snakes only the claws of the hind legs can be seen externally. Inside are remnants of the pelvis and of the thigh bone or femur.

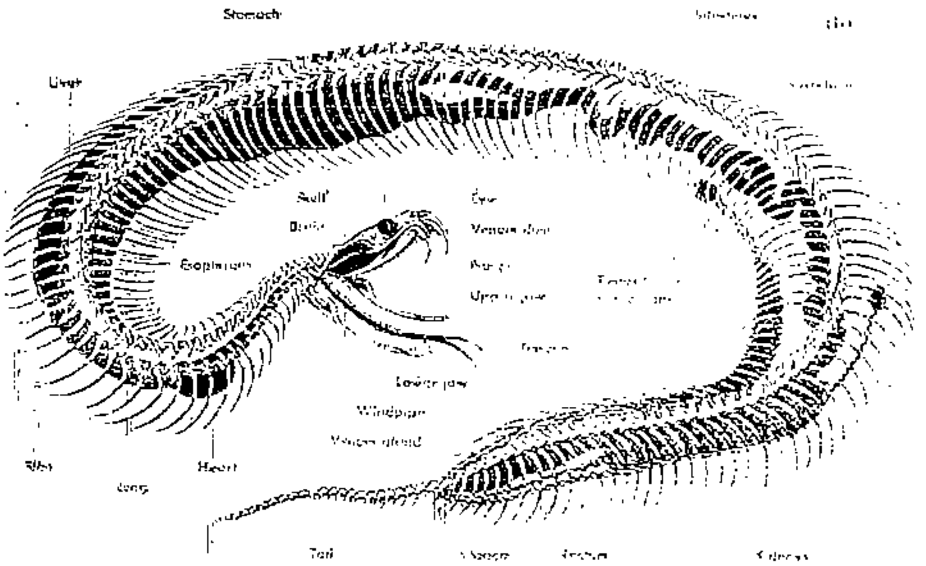

चित्र 3.24: सांप का कंकाल- (a) श्रोणि मेखला का अवशेष दिखायी पड़ रहा है। (b) सांप की भीतरी संरचना जिसमें कंकाल भी दिखाया गया है। सांप की सैकड़ों में से प्रत्येक कशेरुक के साथ, उसकी अपनी ही एक जोड़ी पसलियां जुड़ी होती हैं। इन पसलियों पर अनेक पेशियां जुड़ी होती हैं जो लम्बे पतले शरीर को तरह-तरह से मोड़ने-घुमाने के लिए आवश्यक हैं।

छिपकलियों की तरह सांपों के शरीर पर पूरी तरह एक कड़ी, अछिद्रिल शल्कीय त्वचा होती है। ये शल्क सपाट चिकने हो सकते हैं जैसे कि नाग में या नौतलयुक्त (keeled) हो सकते हैं जैसे कि "रैटल सांप", "गार्टर सांप" तथा अन्य में (चित्र 3.25)। सांप की त्वचा लचीली नहीं होती, और इसलिए जब इसे फैलने की आवश्यकता होती है जैसे कि बड़ा ढेर सारा भोजन करने के बाद तब यह अपने शरीर को एक निराले ही ढंग से फैलाता है। कठोर शल्क पास-पास सटे हुए होते हैं और अक्सर छत की खपरैलों की तरह कोरछादी होते हैं और इन शल्कों के बीच-बीच में खाल में भीतर को वलन पड़े होते हैं। जब सांप किसी बड़ी वस्तु को निगलते हैं तब त्वचा के यह वलन बाहर को खिंच कर सीधे तन जाते हैं और शल्क थोड़े अलग-अलग से हो जाते हैं मानो त्वचा पर द्वीप से बन गए हों।

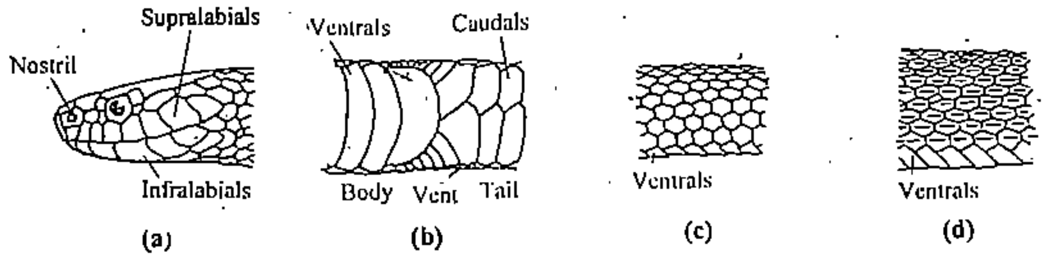

चित्र 3.25: सांप के शल्क। (a) 'रिंगनेक सांप' का शीर्ष। (b) सांप के गुदा-द्वार क्षेत्र में निचली सतह जिसमें शरीर तथा पूंछ पर बड़े हो गए शल्क दिखाई पड़ रहे हैं। (c) चिकने सपाट शल्कों से युक्त सर्प-शरीर। (d) नौतल युक्त शल्कों वाला सर्प-शरीर।

सांप अपने आहार को न तो चबाते हैं और न ही उसे चीरते-फाड़ते हैं, बल्कि उसे समूचा निगल जाते हैं। ऐसा कर सकने के लिए इनमें अनेक अनुकूली रूपांतरण हो गए हैं (चित्र 3.26)। ये रूपांतरण इस प्रकार हैं:-

(1) एक नाजुक मगर अति विशेषित गतिक करोटि जिसमें एक-दूसरे पर गति करने वाली अनेक हड्डियां होती हैं और जिसमें निचले जबड़े के दो अर्धांश (मैंडिबल) पेशी और त्वचा के लचीले ऊतक से जुड़े होते हैं जिससे वे एक-दूसरे से खूब खुल-फैल सकते हैं।
(2) क्वाड्रेट हड्डी का दोनों ओर करोटि तथा मैंडिबलों दोनों के साथ ढीला जोड़ होता है।
(3) तालु की हड्डियों की गतिशीलता
(4) जबड़ों और तालु में पतले पीछे को रुख किए हुए दांत जो आहार को सामने की ओर फिसलने नहीं देते
(5) स्टर्नम (उरोस्थि) की अनुपस्थिति
(6) पसलियों की अधर दिशा में कोई संधि नहीं होती और इस प्रकार उनके स्वतंत्र होने से देह-भित्ति फैल सकती है।
(7) शरीर की पीठ और पार्श्वों पर शल्कों के बीच-बीच में नरम लचीली त्वचा होती हैं जिससे शरीर खूब चौड़ा फैला हो सकता है।
(8) ग्रसनी तथा जठर की पतली और आसानी से फैल जा सकने वाली दीवारें
(9) श्वासनली के ग्लॉटिस (glottis) का काफ़ी आगे दोनों जबड़ों के बीच तथा पतली जीभ के आच्छद के ठीक नीचे स्थित होना, जिससे आहार के निगलने के दौरान श्वास निर्बाध रूप में आती-जाती रहती है। निगलने के दौरान ग्लॉटिस को और आगे को निकाला जा सकता है जिससे श्वासन में सहायता मिलती है और शिकार के ऊपर मानो धरती पर चलते जाने वाली गति की तरह से लचीले जबड़ों को एकांतर क्रम में चलाया जाता है (चित्र 3.27)।

सांपों की आंखें गतिविहीन होती हैं। कॉर्निया के ऊपर एक पारदर्शी झिल्ली द्वारा स्थायी सुरक्षा मिली होती है (चित्र 3.28); इसके साथ-साथ आंख का गोला भी स्थिर गतिविहीन होता है और यही वह विशिष्टता है जिसके कारण सांपों की इतनी डरावनी एकटक घूरते रहने की दृष्टि दिखायी पड़ती है जिससे हममें से अधिकतर लोग इतना घबरा जाते हैं। अधिकतर सांपों की नज़र कमजोर होती है, मगर वृक्षवासी सांपों में ऐसा नहीं, उनकी नज़र बहुत अच्छी तथा द्विनेत्री प्रकार की होती है।

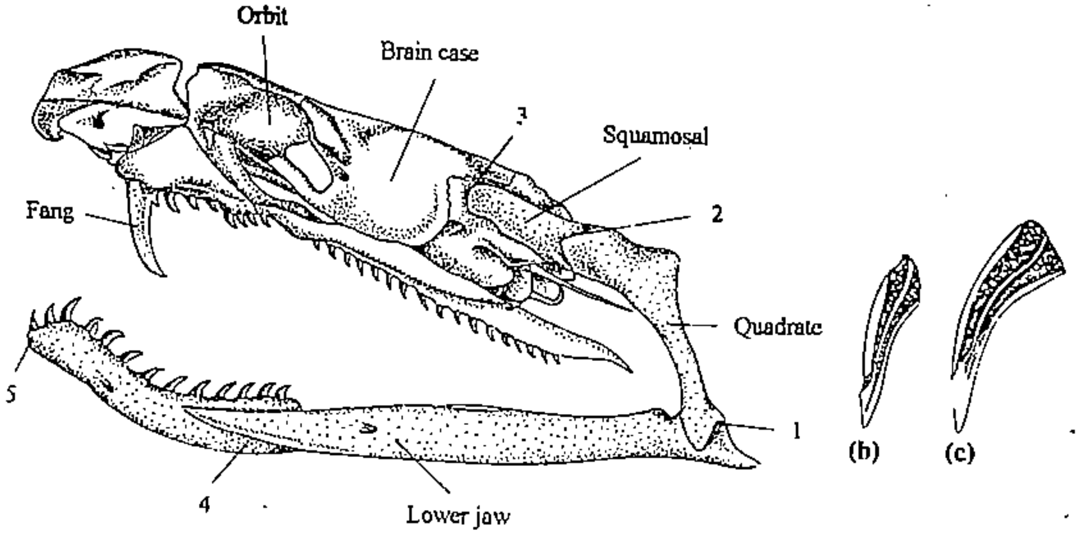

चित्र 3.26: (a) नाग की करोटि-अस्थियां। अशन के दौरान गतिशील हड्डियों को रंग से दिखाया गया है तथा गति के क्षेत्रों को संख्याओं से अंकित किया गया है। (1) निचले जबड़े तथा क्वाड्रेट के बीच का सामान्य जबड़ा बिंदु, (2) क्वाड्रेट तथा स्क्वैमोज़ल के बीच की संधि, (3) स्क्वैमोज़ल तथा मस्तिष्क-कोश के बीच का गति-बिंदु, (4) निचले जबड़े में लगभग आधी दूरी पर तथा (5) ठोढ़ी पर क्योंकि निचले जबड़े के दो अर्धांश इन बिंदु पर दृढ़ रूप से समेकित नहीं होते। नाग के विषदंत (fangs) जबड़ों के सामने की ओर होते हैं। (b) इनके विषदंतों में सूराख सामने की ओर को रुख किए होते हैं। अधोचर्मीय (हाइपोडर्मिक) विषदंतों (c) से भिन्न।

चित्र 3.27: रैटल-सांप का शीर्ष जिसमें सर्पविष उपकरण तथा आगे को पहुंच गया हुआ ग्लॉटिस दिखाया गया है। विष ग्रंथि जो रूपांतरित लार-ग्रंथि होती है एक वाहिनी द्वारा खोखले विषदंत से जुड़ी होती है।

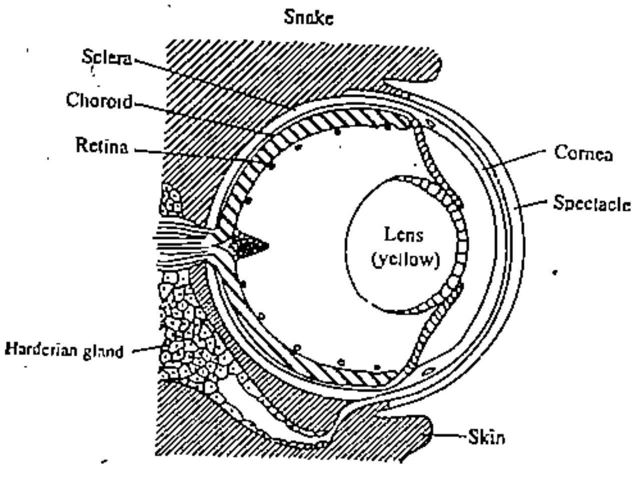

चित्र 3.28: सांप की आंख

सांपों में बाह्य तथा मध्य कान नहीं होते मगर भीतरी कान होते हैं। ये कान करोटि हड्डियों के माध्यम से निम्न आवृत्तियों (low frequencies) (100 से 700 Hz) के सीमित परास में धरती के कम्पन पता लगा सकते हैं। तथापि अधिकतर सांप अपने शिकार को ढूंढ निकालने में दृष्टि और श्रवण का उपयोग न करके रासायनिक संवेद का इस्तेमाल करते हैं। इसके लिए सांपों के नाक के भीतर सामान्य घ्राण क्षेत्रों (जो अच्छी प्रकार विकसित नहीं होते) के अतिरिक्त मुख की छत में बने एक जोड़ी रससंवेदी (chemosensory) अंग होते हैं जिन्हें जैकबसन अंग **(Jacobson's organ)** कहते हैं, इनमें से प्रत्येक की एक-एक वाहिनियां होती हैं जो तालु पर बहुत आगे खुलती हैं। इन अंगों का अस्तर बनाती हुई एक घ्राण एपिथीलियम होती है, और इनमें खूब ज्यादा तंत्रिकाएं आयी होती हैं। सांपों (तथा अनेक छिपकलियों) की द्विशाखी जीभ आहार, संगमियों, परभक्षियों और कदाचित अपने स्पर्धियों से भी गंध कण प्राप्त कर लेती हैं और इन गंधों को मुंह में पहुंचा देती है। तदुपरांत यह जीभ जैकबसन अंगों के ऊपर चलाई जाती है या फिर द्विशाखी जीभ की नोक को इन अंशों के भीतर को घुसा दिया जाता है। उसके बाद प्राप्त सूचना को मस्तिष्क तक पहुंचा दिया जाता है जहां गंध की पहचान कर ली जाती है।

जैकबसन-अंग और भी अनेक थल कशेरुकियों में पाया जाता है। यह सांपों में विशेषकर सुविकसित होता है, क्योंकि उन्हें अपने आखेट-मार्गों के अनुसरण में अथवा सेक्स की पहचान के लिए इसकी आवश्यकता होती है।

सांप की जीभ संकरी, लचीली और रिबन-सरीखी होती है जिसकी नोक द्विशाखित होती है तथा जब मुख बंद होता है तब ऊपरी जबड़े में बनी एक खांच में से इसे बाहर को निकाला जा सकता है।

सांपों में पाचन-पथ मूलत: एक सीधी नलिका होती है जो मुख से लेकर गुदा (गुदा-छिद्र) तक चलती जाती है। लगभग अन्य सभी भीतरी अंग लम्बे हो गए होते हैं तथा बायां फेफड़ा आमतौर से अवशेषी होता है (चित्र 3.24)। नरों में छिपकलियों की तरह अर्धशिश्न होते हैं।

सांपों में संचलन स्पष्टत: एक समस्या है क्योंकि इनमें पांव नहीं होते। इनका चलना दो प्रकार से होता है- एक तो शरीर के दाए-बाएं पेशीय ऊर्मिलनों के द्वारा और दूसरे अनुप्रस्थ अधर शल्कों के द्वारा। आप इस पाठ्यक्रम की इकाई 16 में इस क्रियाविधि के विषय में पढ़ेंगे।

अधिसंख्य सांप अंडे देते हैं, ये अंडे कवचयुक्त और दीर्घवृत्ताकार होते हैं जिन्हें सड़ी-गली लकड़ी के लट्ठों के नीचे अथवा जमीन के गढ़े खोद कर उनके भीतर दिया जाता है। मगर कुछ सांप जैसे कि गर्त-वाइपर (pit vipers) (उष्ण कटिबंधीय "बुश-मास्टर" को छोड़कर) अंडशिशुप्रजक (ovoviviparous) होते है जो पूरी तरह बन चुके शिशु सांपों को जन्म देते हैं। बहुत ही थोड़े से सांप है जो शिशुप्रजक होते हैं। इनमें एक आदिम प्रकार का अपरा (प्लैसेंटा) पाया जाता है जिसके द्वारा भ्रूण तथा माँ की रक्त धाराओं के बीच पदार्थों का आदान-प्रदान संभव होता है। एक मैथुन के बाद सांप शुक्राणुओं का भण्डारण कर सकते हैं और वे लम्बे-लम्बे अंतरालों के बाद एक साथ कई-कई जननशील अण्डों को कई-कई बार दे सकते हैं। कुछ सांपों में जैसे कि नाग और अजगर में पैतृक देखभाल पायी जाती है जो अपने अण्डों के चारों ओर कुंडली मारे रहते हैं (चित्र 3.29)।

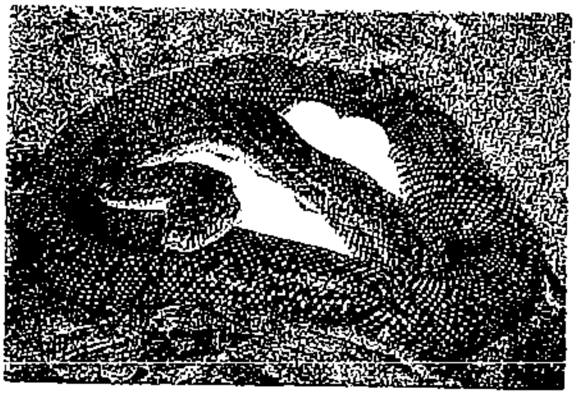

चित्र 3.29: भारतीय अजगर (*पाइथॉन मॉल्यूरस, Python molurus*) अपने अण्डों का पैतृक रक्षण करते हुए। चूंकि ये प्राणी शीतरक्तीय होते हैं, ये अण्डों को गर्म नहीं रख सकते, अपने अण्डों के चारों ओर लिपटे रहने का मुख्य कारण उनके संभावी परभक्षियों को दूर रखे रहना होता है। तथापि ऐसा कुछ प्रमाण भी मिला है कि अण्डे सेता हुआ भारतीय अजगर अपने पेशीय संकुंचनों के द्वारा गर्मी पैदा कर सकता है।

सांप शीतोष्ण तथा उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में पाए जाते हैं और वे न्यूज़ीलैंड में कतई नहीं होते। भारत में निर्विष और विषैले दोनों प्रकार के सांप बहुत बड़ी संख्या में पाए जाते हैं। चित्र 3.30 में कुछ सांप दिखाए गए हैं।

विषैले सांपों के प्रकार

जैसा कि आप जानते ही हैं सांप विषैले भी हो सकते हैं और निर्विष भी। विषदंतों के आधार पर विषैले सांपों को चार वर्गों में बांटा जाता है (विषदंत रूपांतरित दांत होते हैं जो खोखले, खांचयुक्त अध:त्वचिक सुइयों जैसी संरचनाएं होते हैं जिनमें से विष को शिकार के भीतर पहुंचा दिया जाता है)।

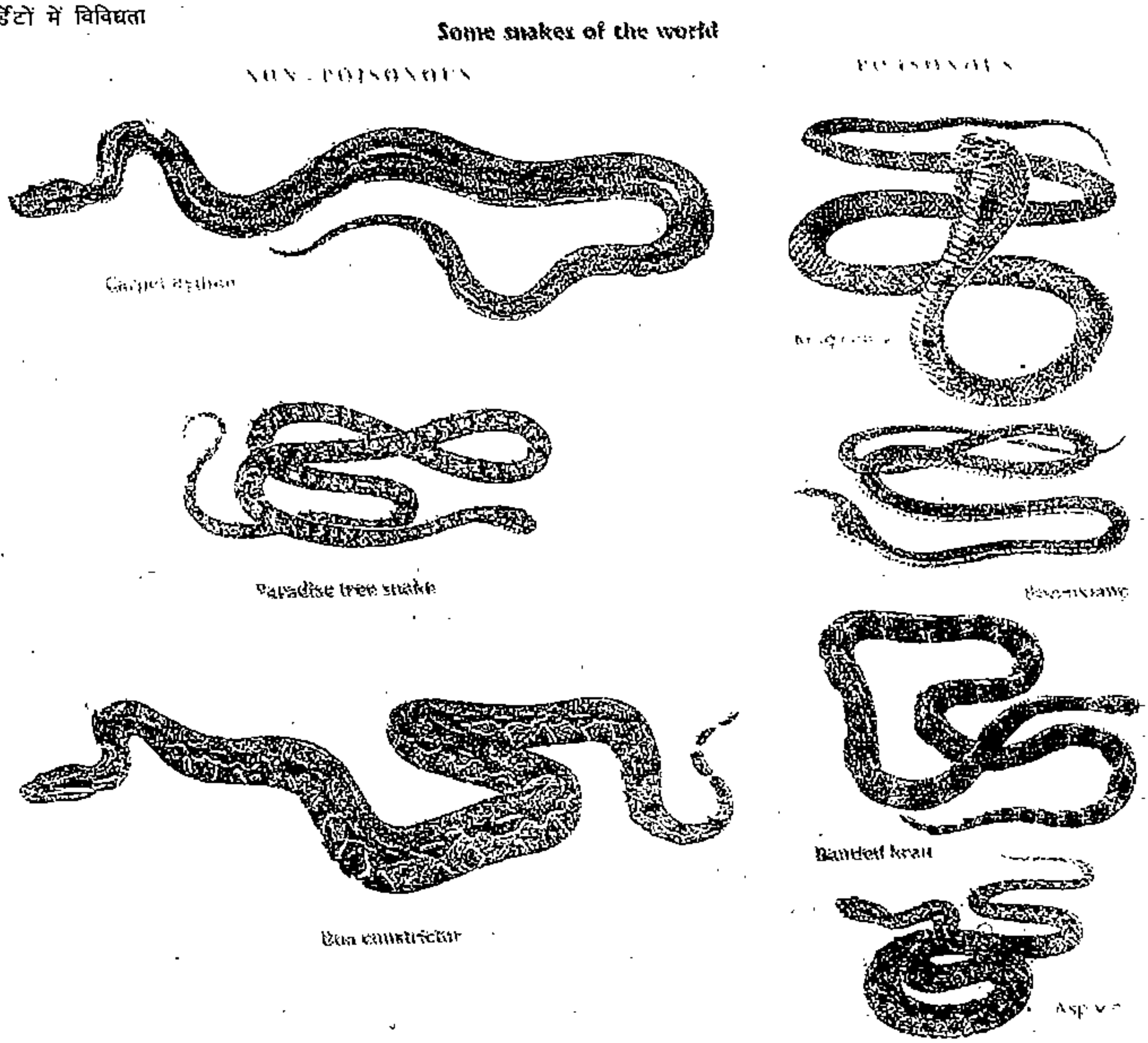

चित्र 3.30: भारत में पाए जाने वाले कुछ निर्विष तथा विषैले सांप। (a) निर्विष सांप, (b) विषैले सांप

चित्र 3.31: रैटल सांप जो एक गर्त-वाइपर (pit viper) है। काटे गए दृश्य में गर्त के भीतर के भीतरी और बाहरी कक्ष तथा झिल्लियां दिखायी गयी हैं। झिल्ली के ऊष्मा संवेदी तंत्रिकांत झिल्ली में संकेंद्रित हैं।

वाइपर (फेमिली-वाइपरीडी) के अंतर्गत पुरानी दुनिया के वास्तविक वाइपर (यूरूपीय ऐडर एवं अफरीकी पफ ऐडर) और नई दुनिया के गर्त वाइपर (रैटल सांप, कापर हेड एवं काटन माउथ) आते हैं जिनमें नासा छिद्र एवं आंख के बीच सिर पर विशेष ऊष्मा संवेदी गर्त होते हैं। इन गर्तों में सघन तंत्रिकाओं की अन्त होती है जो विकिरणी ऊर्जा से अनुक्रिया करते और गर्म कायिक पक्षी एवं स्तनपायी (जो उनके भोजन होते हैं) के ऊष्मा के प्रति विशेष रूप से संवेदी होते हैं (चित्र 3.31)।

सभी वाइपरों में मुख में सामने की ओर एक जोड़ी विषदंत होते है जो ऊपरी जबड़े और तालु की मैक्सिलरी हड्डियों से इस प्रकार जुड़े होते हैं कि जब मुख बंद होता है तब वे मुख की छत के सहारे मुड़ गए होते हैं और जब मुख खोला जाता है तब वे स्वत: ही सामने की ओर को आ जाते हैं। (चित्र 3.27)।

विषैले सांपों की एक अन्य फैमिली इलैपिडी (Elapidae) फ़ैमिली, जिसमें करैत, नाग (चित्र 3.26), मम्बा (mamba), प्रवाल सर्प, आदि आते हैं, में छोटे स्थायी तौर पर खड़े विषदंत होते हैं ताकि चबाने की किया में सर्पविष को इन्जेक्ट किया जा सके।

अत्यधिक विषैले समुद्री सांपों को एक अलग तीसरी फ़ैमिली हाइड्रोफ़ियाइडी (Hydrophiidae) में रखा जाता है और इनके विषदंत इलैपिडी फैमिली के सांपों के जैसे होते हैं।

बहुत बड़ी फ़ैमिली कोलुब्राइडी (Colubridae) में अधिकांश परिचित एवं सामान्यत: निर्विष सांप आते हैं। मगर इसमें भी ऐसे दो विषैले सांप आते हैं जिनके काटने से मानव मृत्यु हुई हैं- ये हैं अफ़्रीकी बूमस्लैंग (boomslang) और अफ़्रीकी "ट्विग-सांप" (twig snake)। इन दोनों स्पीशीज़ में विषदंत जबड़ों में पीछे की ओर बने होते हैं। ये सांप अपने सर्पविष का इस्तेमाल तब करते हैं जब मुंह में पकड़ा हुआ शिकार बच निकलने के लिए हाथ-पैर मार रहा होता है।

सर्पविष में अनेक पौलीपेप्टाइड तथा प्रोटीन होते हैं और इसे परम्परागत रूप में दो श्रेणियों में बांटा जाता है- (i) तंत्रिआविषों **(neurotoxins)** की श्रेणी जो पेशियों में जाने वाले तंत्रिका आवेगों के संचारण को स्तब्ध कर देते हैं जिससे दृक-तंत्रिकाए (optic nerves) प्रभावित होती है (अंधापन आ जाता है) या डायाफ्राम में जाने वाली फ्रेनिक तंत्रिका **(phrenic nerve)** प्रभावित होती है जिससे श्वास आना बंद हो जाता है और (ii) रक्तस्रावी **(Haemorrhagic)** प्रकार की श्रेणी जिसमें रक्तलयी (haemolytic) एंज़ाइम होते हैं जो रक्त कोशिकाओं तथा रक्त वाहिकाओं का विघटन करते हैं जिससे रक्त का ऊतक-गुहाओं में व्यापक रक्त स्राव होता है (भीतरी रक्त स्राव)।

विषैले तथा निर्विष सांप

विषैले सांपों को निर्विष सांपों से आसानी से पहचाना जा सकता है। जीवित सांपों को पहचानना कदाचित् व्यावहारिक नहीं होगा बशर्ते कि आप किसी सपेरे की सहायता ले सकें। मगर सांप के काटने के मामले में ऐसी जानकारी उपयोगी होगी। इसके प्राथमिक चिकित्सा प्रदान करने में और फिर उसके बाद उचित चिकित्सा सहायता में मदद मिलती है। सांप के काटने के मामलें में निपटते समय यदि सपेरा उपलब्ध हो तो उसकी सहायता से सांप पकड़ना चाहिए या फिर सांप को मार कर उसका परीक्षण करना चाहिए। चित्र 3.32 में निर्विष तथा विषैले सांपों को पहचानने के लिए कुंजी (key) दी गयी है। सबसे पहले सांप की पूंछ को देखिए। (1) यदि पूंछ पार्श्वत: चपटी है और यह कोई समुद्री सांप है तब यह विषैला है क्योंकि सभी समुद्री साप विषैले होते हैं। (2) इसके विपरीत यदि पूंछ लम्बी और सिलिंडराकार एवं कोड़ा-जैसी है तब यह सांप विषैला हो भी सकता है और नहीं भी। ऐसे मामलों में सांप की अधर सतह (पेट) पर बने शल्कों की व्यवस्था को देखिए। (a) यदि उस पर छोटे-छोटे शल्क हैं या अधर शल्क थोड़े से चौड़े हैं जैसे चित्र में दिखाए गए हैं तब यह सांप निर्विष है। लेकिन (b) यदि अधर शल्क पेट पर पूरी तरह एक ओर से दूसरी ओर तक फैली हुई बड़ी अनुप्रस्थ प्लेटों के रूप में हैं जैसी कि चित्र में दिखायी गयी हैं तब यह सांप विषैला हो भी सकता है और नहीं भी। इससे और आगे पहचान कर सकने के लिए सांप के शीर्ष की पृष्ठ सतह का अवलोकन कीजिए। (c) यदि शीर्ष के ऊपर छोटे-छोटे शल्क बने हुए हैं तब यह एक वाइपर (घोणस) सांप है और वाइपर की सभी स्पीशीज़ विषैली होती हैं (d) यदि नासाछिद्र और आंख के बीच एक लोरियल गर्त है तब सांप गर्त-वाइपर है। (e) यदि उप-पुच्छ शल्क दोहरे हैं एवं एक लोरियल गर्त है तब सांप रसेल-वाइपर है। (f) मान लीजिए कि शीर्ष पर छोटे और चौड़े दोनों प्रकार के शील्ड-जैसे शल्क बने हैं तब यह विषैला हो भी सकता है और नहीं भी। (g) ऐसे मामलों में जबड़ों के सीमांतों पर बने शल्कों की व्यवस्था को देखिए। (3) ऊपरी जबड़े के सीमांत पर व्यवस्थित शल्कों को अधिओष्ठीय **(supralabials)** कहते हैं तथा जो शल्क निचले जबड़े के सहारे बने हैं उन्हें अध: ओष्ठीय **(infralabials)** कहते हैं (चित्र 3.32)। यदि तीसरा अधिओष्ठीय शल्क आगे की

ओर उस शल्क से जिसमें नासा छिद्र होता है और पीछे की ओर आंख के सीमांत से छूता हो तब यह सांप विषैला है और यह या तो नागराज (king cobra) है या प्रवाल-सांप (coral snake)। (4) यदि शीर्ष की ऊपरी दिशा पर छोटे शल्क तथा बड़ी शील्डे (विशल्क) दोनों हैं मगर लोरियल गर्त (loreal pit) नहीं हैं एवं तीसरी अधिओष्ठीय शील्ड आंख से छू नहीं रही है तब सांप की पीठ को तथा निचले जबड़े की अधर दिशा को देखिए। (a) पीठ पर बने मध्य पंक्ति के वर्टीब्रल नामक शल्क शेष शल्कों से बड़े हो सकते हैं। (b) निचले जबड़े की अधर दिशा पर चौथी अध:ओष्ठीय शील्ड अन्य से बड़ी हो सकती है तथा नासाछिद्र सबसे बड़ा है। यदि (a) तथा (b) दोनों ही दशाएं मौजूद हैं तब सांप करैत (Krait) है और ये सांप विषैले होते हैं। पहचान कर लेने के बाद आवश्यक हुआ तो उपचार शुरू किया जा सकता है। (5) यदि सांप में शीर्ष पर छोटे शल्क और बड़ी शील्ड़े हैं लेकिन उसमें नाग, करैत तथा प्रवाल सर्प के लक्षण नहीं हैं तब यह निर्विष है। चित्र 3.32 देखिए जिसमें विषैले तथा निर्विष सांपों की पहचान के लिए कुंजी दी गयी है।

KEY FOR IDENTIFICATION OF POISONOUS AND NON-POISONOUS SNAKES

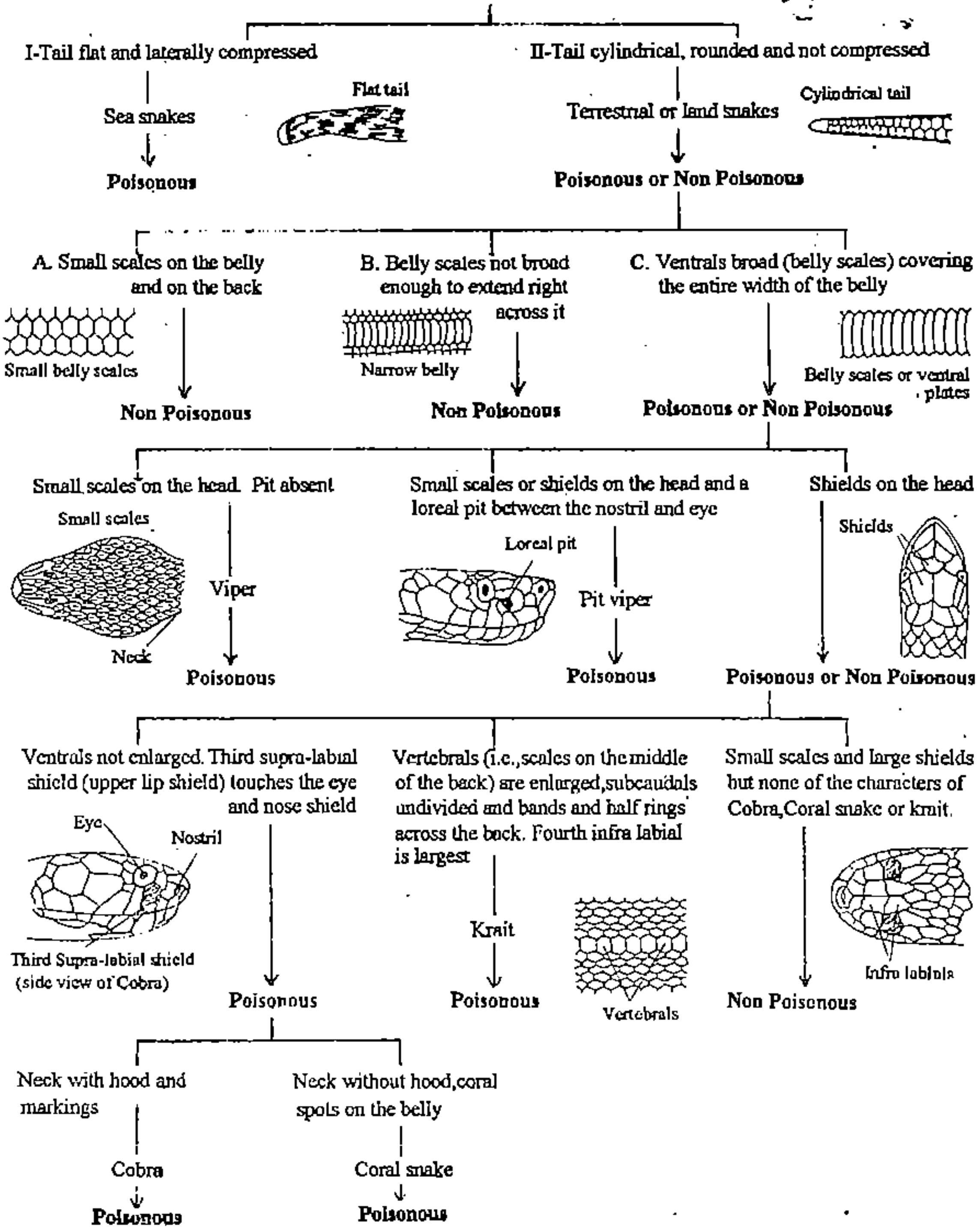

चित्र 3.32: विषैले तथा निर्विष सांपों की पहचान की कुंजी।

बोध प्रश्न 8

नीचे दिए गए कथनों में कोष्ठकों के भीतर दिए गए विकल्पों में से सही शब्द चुनिए:-

क) सांपों में पश्च-टांगों के पदकंट जैसे आद्यांग केवल (बोआ/नाग) में पाए जाते हैं।

ख) सांपों में निगलने के दौरान ग्लॉटिस (घांटी) (पीछे की ओर को/आगे की ओर को) प्रक्षेपित होती है।

ग) वृक्षवासी सांपों में (कम दृष्टि/अच्छी दृष्टि) पायी जाती है।

घ) अधिसंख्य सांप अपना शिकार पकड़ने के लिए (दृष्टि/रसायन) संवेद का उपयोग करते हैं।

च) अफ्रीका का पफ़-ऐडर नामक सांप फ़ैमिली (वाइपेरिडी/इलैपिड़ी) में आता है।

छ) उष्णकटिबंधीय "बुश-मास्टर" को छोड़कर सभी गर्त-वाइपर (अंडशिशुप्रजक/अंडप्रजक) होते हैं।

ज) सांप में स्टर्नम अर्थात् उरोस्थि (नहीं होती/होती है)।

उपऑर्डर ऐम्फ़िस्बीनिया (Suborder Amphisbaenia)

उदाहरण: ऐम्फ़िस्बीनिया प्राणी (कृमि छिपकलियां) कृमि छिपकलियां (चित्र 3.33) न तो कृमि होती हैं और न ही वास्तविक छिपकलियां, हालांकि ये निश्चय ही छिपकलियों से संबंधित हैं। इस उपऑर्डर का नाम इनकी उस क्षमता को बताता है जिसमें ये उलटी पीछे की ओर को भी लगभग उतनी ही अच्छी तरह चल सकती हैं जितनी कि आगे की दिशा में।

ऐम्फ़िस्बीनियनों में संरचना संबंधी लक्षण सांपों के लक्षणों से भी ज़्यादा ह्रासित होते हैं। कृमि छिपकलियों का शरीर लम्बा सिलिंडराकार और लगभग समान मोटाई का होता है। इनकी कोमल त्वचा बहुसंख्यक छल्लों के रूप में विभाजित हो गयी है। इनके इन छल्लों के होने तथा प्रकट नेत्रों के अभाव से जो त्वचा के नीचे छिपे रहते हैं, ये देखने में केंचुओं के जैसी लगती हैं। अधिसंख्य ऐम्फ़िस्बीनियनों में पादों का कोई अंश नहीं होता (केवल एक जीनस अपवाद है जिसमें छोटे आकार की अगली टांगें होती हैं)।

कृमि छिपकलियों में कर्णपटह झिल्ली नहीं होती मगर निचले जबड़े तक आने वाले स्टेपीज के एक प्रसार से ये धरती के भीतर कम्पनों का पता लगा सकती है। चूंकि इनमें आद्यंगी आंखें त्वचा के नीचे छिपी रहती हैं इसलिए ये अपने शिकार का पता मुख्य रूप से श्रवण और सूंघने के द्वारा लगाती हैं।

ऐम्फ़िसबीनियन केंचुओं की ही तरह व्यापक अधोभूमिक जीवन ही बिताते हैं और बिलों में घुस कर कृमियों तथा छोटे केंचुओं आदि को खाते हैं। वे अपने फावड़े-जैसे बड़े शक्तिशाली शीर्ष और पूंछ का इस्तेमाल करके मिट्टी को धक्का लगाते हैं। ऐम्फ़िस्बीनियन दक्षिण अमेरिका तथा उष्णकटिबंधीय अफ्रीका में व्यापक रूप में पाए जाते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में इनकी एक स्पीशीज़ (*राइन्यूरा फ़्लोरिडा, Rhineura florida*) (जिसे "कब्रिस्तान-सर्प" कहा जाता है) फ़्लोरिडा में पायी जाती है। वर्तमान में ऐम्फ़िस्बीनियनों की लगभग 140 स्पीशीज़ उष्णकटिबंधीय तथा उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में पायी जाती हैं।

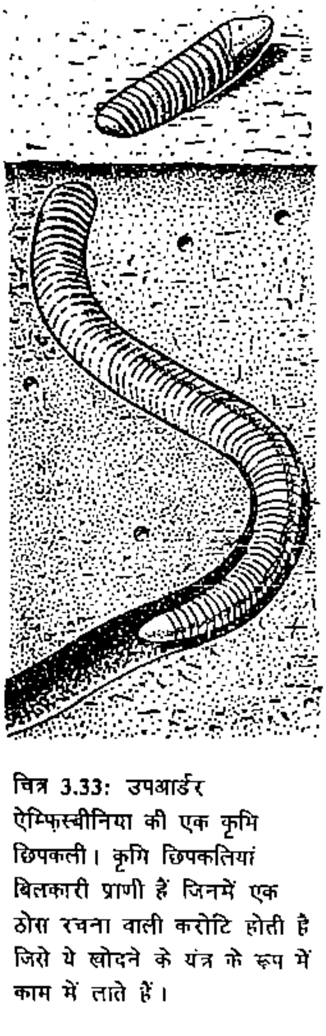

चित्र 3.33: उपआर्डर ऐम्फ़िस्बीनिया की एक कृमि छिपकली। कृमि छिपकलियां बिलकारी प्राणी हैं जिनमें एक ठोस रचना वाली करोटि होती है जिसे ये खोदने के यंत्र के रूप में काम में लाते हैं।

बोध प्रश्न 9

निम्न कथनों में कोष्ठकों के भीतर दिए गए विकल्पों में से सही शब्द चुनिए:-

(क) कृमि छिपकलियों में (आंख/कर्णपटह झिल्ली) नहीं होती।

(ख) कृमि छिपकलियां (केंचुओं/श्रिम्पों) को खाती हैं।

(ग) फ़्लोरिडा में पाये जाने वाले ऐम्फ़िस्बीनियनों को (फ़्ल्यूरा फ्लोरिडा/राइन्यूरा फ़्लोरिडा) कहते हैं।

(B) उपक्लास डाइऐप्सिडा: (b) सुपर ऑर्डर आर्कोसौरिया (Archosauria) (उन्नत डाइऐप्सिड) **ऑर्डर क्रोकोडीलिया (Crocodilia)** - उदा. मगर, ऐलिगेटर, घड़ियाल

क्रोकोडीलिया नाम ऐसे सरीसृपों के समूह का नाम है जिसमें ऐलिगेटरों, मगरों, केमनों तथा घड़ियालों की अनेक स्पीशीज़ आती हैं। आधुनिक क्रोकोडीलियन सबसे बड़े जीवित सरीसृप हैं। उस आर्कोसौरियन वंशक्रम के जिसने डाइनोसौरों और उनके संबंधियों के महान मीजाज़ोइक विकिरिण को और पक्षियों को जन्म दिया, ये ही एक मात्र जीवित बचे प्रतिनिधि हैं। संरचना की दृष्टि से आज के मगर आरंभिक

मीज़ोज़ोइक युग के उन आदिम मगरों से ज्यादा भिन्न नहीं हैं जिनका बाद के क्रिटेशियस काल में विकिरण शुरू हुआ था। लगभग 20 करोड़ वर्षों तक किसी तरह यथार्थत. अपरिवर्तित बने जीवित चले आ रहे आज के मगरों को एक ऐसी दुनिया में अनिश्चित और कदाचित अल्पकालीन भविष्य का सामना करना पड रहा है जिसमें सर्वत्र छाए हुए मनुष्य की ही मनमानी चल रही है।

पूर्वज स्पीशीज़ थलीय थी लेकिन वर्तमान स्पीशीज़ उभयचर जीवन के लिए विशेषित हो गयी हैं। इनकी पूंछ पार्श्वत: सम्पीडित है और एक बहुत ही कारगर तरण अंग हैं। इनमें दो जोड़ी छोटी टांगे होती हैं। इनके अगले पांवों में पांच-पांच उंगलियां तथा पिछले पांवों में चार-चार उंगलियां होती हैं। उंगलियों के बीच में झिल्ली होती है। आंख, कान और नाक के छिद्र एक ही सीधी रेखा में होते हैं तथा शीर्ष शिखर पर उभारों के ऊपर बने होते हैं जिससे वे जल के ऊपर को उभरे रहते हैं। इसके कारण प्राणी का अधिकांश शरीर उस समय जल के नीचे ही नीचे डूबा हुआ रहता है जब वह अपने शिकार की घात में इंतजार कर रहा होता है। जब मगर पानी के नीचे होते हैं तब एक वाल्व नाक और कान को ढक देता है। टेस्टुडीनों (कछुओं) की तरह इनका गुदा-छिद्र भी एक अनुदैर्ध्य झिरी के रूप में होता है। त्वचा मोटी होती है जिसमें शृंगीय प्लेटें बनी होती हैं जो पीठ और अधर दिशाओं में शृंगीय शल्कों के नीचे स्थित होती है।

सभी क्रोकोडीलियन परभक्षी और मांसभक्षी होते हैं। इनमें एक मज़बूत, लम्बी सुदृढ़ करोटि होती है जिससे एक थूथन बना होता है, और साथ ही इनमें विशाल जबडा पेशियां होती है जिनके द्वारा मुंह को खूब चौड़ा खोला जा सकता और तेजी से बहुत मज़बूती के साथ बंद किया जा सकता है। इनके तेज़ दांत गर्तों (sockets) में लगे होते हैं अर्थात् एक ऐसा दंतविन्यास (dentition) जिसे गर्तदंती **(thecodont)** कहते हैं और जो प्ररूपत: सभी आर्कोसौरों और साथ ही साथ आदितम पक्षियों में भी पाया जाता था। इनमें पाया जाने वाला एक अन्य अनुकूलन जो स्तनियों को छोड़कर अन्य किसी भी कशेरुकी में नहीं पाया जाता, इनमें एक द्वितीयक तालु का पाया जाना है। इस नवरचना से क्रोकोडीलियन उस स्थिति में भी सांस लेते रह सकते हैं जब उनके मुंह में पानी या आहार या ये दोनों ही भरे हों। भोजन की विविधता के अनुरूप इनके थूथन की आकृति एवं लम्बाई भी अलग-अलग होती है।

आधुनिक क्रोकोडीलियनों को तीन फ़ैमिलियों में विभाजित किया जाता है- पहली में ऐलीगेटर तथा केमन जो अधिकतर नई दुनिया में पाए जाते हैं; मगर-मच्छ जिनका वितरण बहुत व्यापक है और जिनमें लवण-जलीय मगरमच्छ भी आता है एक ऐसा मगर जो आज के जीवित सरीसृपों में सबसे बड़े आकार का है; और घड़ियाल (gavials या gharials) जिनकी आज भारत और म्यानमार (पुराना बर्मा) में पायी जाने वाली बस एक ही स्पीशीज़ बची है।

मगर (Crocodiles)

ऐलिगेटरों का एक विचित्र लक्षण यह है कि इनकी संतान की सेक्स यानि वे नर होंगे या मादा, अण्डों के सेये जाने के तापमान पर निर्भर होता है। घोंसले के कम तापमान में मादाएं बनती हैं तथा घोंसले के ऊँचे तापमान से नर बनते हैं। इस लक्षण के परिणामस्वरूप अनेक क्षेत्रों में सेक्स अनुपात असंतुलित होता जा रहा है।

मगरों (चित्र 3.34a) में लम्बा नुकीला थूथन होता है जो त्रिभुजाकार दिखायी पडता है। ऐलिगेटरों से मगरों की पृथक स्पष्ट पहचान कराने वाला एक लक्षण इनके निचले जबड़े के प्रत्येक पार्श्व का चौथा दांत है जो मुंह बंद करने पर ऊपरी जबड़े में बने एक गढ़े में बैठ जाता है। अधिसंख्य मगरों में निचले जबड़े का चौथा दांत ऊपरी जबड़े की बाहरी दिशा में बनी एक खांच में चला जाता है और मुंह बंद होने पर भी वह बाहर को दिखायी देता रहता है। सभी प्रकार के मगर विश्व के उपोष्ण कटिबंधीय तथा उष्णकटिबंधीय प्रदेशों में जल के भीतर या जल के समीप पाए जाते हैं। मगर अधिकतर रात्रिचर होते हैं और ये अफ्रीका, एशिया तथा फ़्लोरिडा सहित दोनों अमेरिकाओं में पाए जाते हैं।

मगरों के मानव भक्षी सदस्य मुख्यत: अफ्रीका तथा एशिया में पाए जाते हैं।

ऐलिगेटर (Alligators): ऐलिगेटर (चित्र 3.34b) मगरों की अपेक्षा कम आक्रमणकारी होते हैं। ये चीन तथा दक्षिण संयुक्त राज्य अमेरिका में पाए जाते हैं।

केमन (Caimans): केमन (चित्र 3.34c) बहुत कुछ ऐलिगेटरों के ही समान दीखते हैं। ये मध्य अमेरिका के निवासी हैं। कुछ फ़्लोरिडा में भी रहने लग गए हैं।

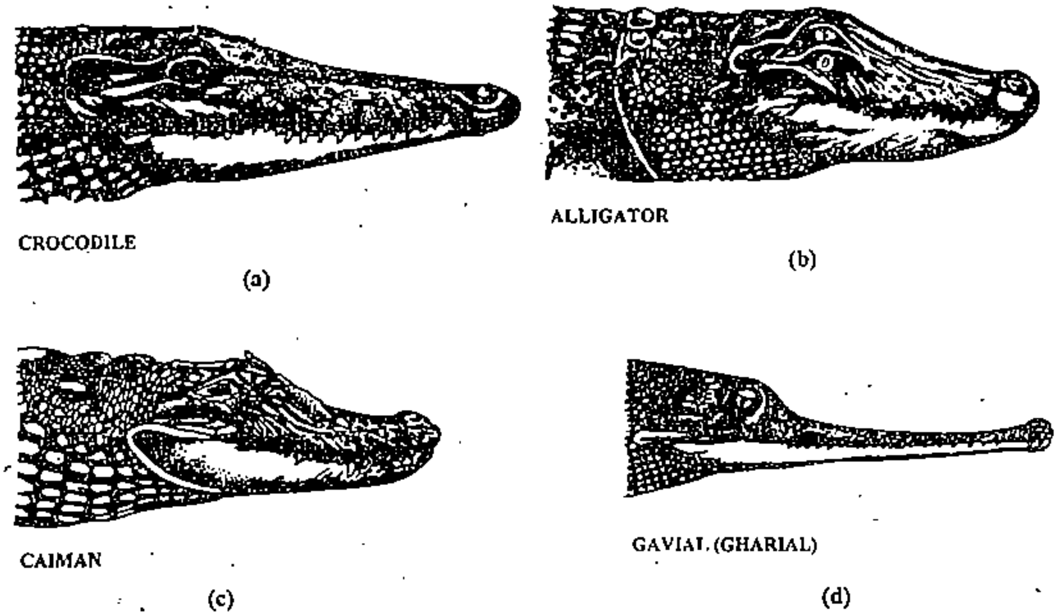

चित्र 3.34: चार स्पीशीज़ के क्राकोडीलियनों के रूपांतरित थूथन। a) मगर, b) ऐलिगेटर, c) केमन, d) घड़ियाल। मगर तथा ऐलिगेटर में उनके शीर्ष को देखकर आसानी से विभेद किया जा सकता है। ऐलिगेटर का थूथन अपेक्षाकृत ज्यादा चौड़ा है और गोलाई लिए हुए होता है तथा दांत जबड़े के भीतर फिट हुए होते हैं, जबकि मगर का निचले जबड़ों का दोनों ओर का चौथा दांत बाहर को निकला होता है। ऐलिगेटर के ही बहुत समान केमन को अलग पहचान सकना सरल नहीं है, केमन अधिक आक्रमणशील होता है। घड़ियालों को मगरों तथा ऐलिगेटरों से एकदम स्पष्ट पहचाना जा सकता हैं क्योंकि इनमें एक लम्बा संकरा थूथन और उसमें तेज़ दांत होते हैं। इनके नर सेक्स में थूथन के अंतिम सिरे पर एक उभार बना होता है।

चित्र 3.35: क्रोकोडाइल पैतृक रक्षण करते हुए।

घड़ियाल (Gavial): घड़ियाल (चित्र 3.34c) मछली खाने वाला सदस्य है। इसमें आरे जैसा दीखने वाला एक असाधारण थूथन होता है। यह थूथन उसके चेहरे के सामने की एक लम्बे हत्थे जैसा निकला होता है। इसमें अत्यधिक तेज दांत होते हैं। इसका संकरा थूथन एक उत्कृष्ट यंत्र जैसा है जिसके द्वारा वह मछली को दांए-बाएं पटका करता है। यह प्राणी आम तौर से डरपोक होता है।

ऐलिगेटर तथा मगर दोनों ही अंड प्रजक होते हैं। ये एक समय में 20-50 अण्डे देते हैं, इन अण्डों को ये वनस्पति के ढेर में देते हैं, जिनकी स्वयं मां रखवाली करती है। अंडों से बाहर निकलते हुए बच्चों के मुख से निकलने वाली आवाज़ को सुनकर मां घोंसले को खोल देती है ताकि नवजात बच्चे स्वतंत्र होकर बाहर आ सकें।

सरीसृपों में पैतृक रक्षण का आम तौर से अभाव होता है, हालांकि मगरों का नीडन-व्यवहार एवं पैतृक रक्षण अनेक पक्षियों के जैसा है। क्रोकोडीलिया की एक स्पीशीज़ में, दोनों ही जनक (अर्थात् मां और बाप) घोंसले में से अपने बच्चों को अपने जबड़ों में लेकर एक विशेष शिशुगृह में ले जाते हैं जहां वे उनको पनपते हुए उनकी देखभाल करते हैं (चित्र 3.35)।

बोध प्रश्न 10

निम्न कथनों में रिक्त स्थानों पर उपयुक्त शब्द भरिए:-

क) सभी मगरों में दंत विन्यास .... प्रकार का होता है।

ख) क्रोकोडीलियनों के मुख में पानी या भोजन या दोनों ही के भरे होने पर भी ये सांस लेते रह सकते हैं, ऐसा इसलिए कि इनमें एक द्वितीयक .... पाया जाता है।

ग) मगरों की अपेक्षा ऐलिगेटर .... आक्रमणशील होते हैं।

3.4 पक्षी–एवीज़

क्लास एवीज़ में आने वाले पक्षी पिच्छों (परों, feathers) के पाए जाने के आधार पर शेष कशेरुकियों से आसानी से पहचाने जा सकते हैं। ये स्तनियों की तरह समतापी (homeothermal) होते हैं लेकिन इनके अनेक लक्षण सरीसृपों की तरह के हैं। पक्षी ही मात्र ऐसे कशेरुकी हैं जो गहन और लगातार देर तक उड़ान भर सकने के लिए सक्षम हैं। मगर वे सारे समय हवा में ही नहीं रह सकते और उन्हें आहार करने, विश्राम करने तथा घोंसला बनाने के लिए थल अथवा जल पर आना ही पड़ता है।

पक्षियों में स्तनियों की ही तरह प्राणि-जगत में सर्वाधिक अंग-विकास पाया जाता है। मगर इनकी समस्त शरीर-रचना-व्यवस्था उड्डयन और इसी के परिपूर्ण होने के ही इर्द-गिर्द रची गयी है, और इसी कारण इनमें विविधता सीमित रही है एवं समस्त पक्षियों में एक महान संरचनात्मक एवं क्रियात्मक एकरूपता पायी जाती है। किसी भी अन्य उड़ान-मशीन की तरह पक्षियों ने भी हल्के वजन तथा उच्च शक्ति के लिए बाकि सब कुछ भेंट चढ़ा दिया है।

3.4.1 पक्षियों की पूर्वजता और उनका विकास

पक्षी सर्वप्रथम क्रीटेशियन युग में प्रकट हुए। आज के प्ररूपी पक्षी सीनोज़ोइक काल में प्रकट हुए। पक्षियों के जीवाश्म अधिक नहीं पाए गए हैं। क्योंकि पक्षियों की हड्डियों में वायु-गुहाएं पहुंची होती है और इस तरह पोली हो जाने के कारण वे जल्दी से विघटित हो जाती हैं और उनके अवशेष नहीं बचे रहते। सबसे आदिम ज्ञात पक्षी जीवाश्म *आर्कियॉप्टेरिक्स लिथोग्राफिका* (*Archeopteryx lithographica*) का है जिसका शाब्दिक अर्थ है "पत्थर में अंकित प्राचीन पंख"। यह जीवाश्म बवेरिया के निकट कार्बोनिफेरस निक्षेपों में पाया गया था, ये निक्षेप जुरैसिक काल जो 15 करोड़ वर्ष पुराने हैं (चित्र 3.36)। *आर्कियॉप्टेरिक्स* आज के कौए के बराबर बड़ा था। यह थल पक्षी था जिसमें सरीसृप तथा पक्षी दोनों प्रकार के लक्षण मौजूद थे। करोटि वर्तमान पक्षियों के जैसी थी, बस अंतर इतना था कि इसके चोंच बनाते हुए लम्बे जबड़ों के दांत गढ़ों में लगे होते थे (गर्तदंती) उसी तरह से जैसे कि सरीसृपों में। कंकाल निश्चित रूप में सरीसृप प्रकार का था जिसमें एक लम्बी अस्थित पूंछ थी, (हाथों में) नखरयुक्त उंगलियां थीं, उदर पसलियां थीं और हड्डियां मोटी दीवारों वाली थी। घड़ अथवा सैक्रमी कशेरुकें समेकित नहीं थीं। प्रत्येक हाथ में नखरयुक्त तीन उंगलियां थीं और पैरों में चार उंगलियां। इसकी संरचना बहुत कुछ सरीसृपों के जैसी थी बस अंतर यह था कि इनके शरीर पर पिच्छ (पर) बन गए थे और इसमें एक खास हड्डी फ़र्कुलम (furculum) बन गयी थी जो वास्तव में समेकित कॉलर-हड्डियां हैं जिसका अंग्रेज़ी में सामान्य नाम "विश-बोन, wish-bone)" कहा जाता है। लम्बी पूंछ में भी पिच्छों की दो पंक्तियां बनी थीं। इस जीवाश्म में पक्षी-जैसी प्रवृत्तियां भी स्पष्ट थीं जैसे बड़े आकार के नेत्र कोटर, मस्तिष्क-कोश का कुछ बड़ा हो जाना, और हाथ की संरचना पंखों (डयनों) जैसी बन गयी थी। इन जीवाश्म पक्षियों को सरीसृपों तथा पक्षियों के बीच की कड़ी माना जाता है और इनमें इस बात का प्रमाण मिलता है कि पक्षियों का विकास सरीसृपों से ही हुआ है। आर्कियॉप्टेरिक्स के बाद दूसरे पक्षी का जीवाश्म लगभग 9 करोड़ वर्ष पूर्व क्रीटेसियस काल से मिलता है। हेसपेरानिस (चित्र 3.37) एक बड़ा, उड़ान न भर सकने वाला गोताखोर पक्षी आधुनिक मुर्गाबी से मिलता जुलता था परन्तु उसके दंत सरीसृपीय थे।

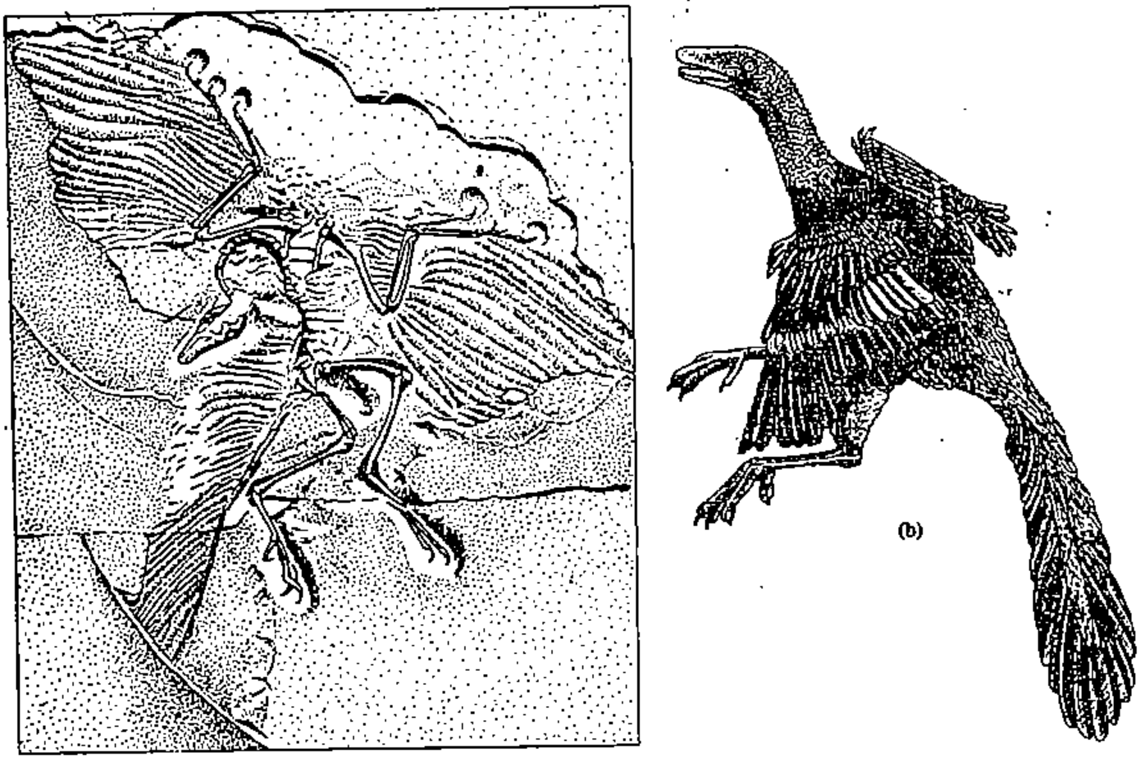

(a) (b)

चित्र 3.36: *आर्कियोप्टेरिक्स*-आधुनिक पक्षियों का 15 करोड़ वर्ष पुराना पूर्वज जो ऊपरी जुरैसिक में रहता था। (a) *आर्कियॉप्टेरिक्स* का जीवाश्म जो बैवेरिया की एक पत्थर की खदान में पाया गया था। (b) *ऑर्कियॉप्टेरिक्स* की पुनर्रचना। अब तक *आर्कियाप्टेरिक्स* के छह नमूने प्राप्त हुए हैं, जिनमें से सबसे हाल में मिला एक नमूना 1987 में खोजा गया था।

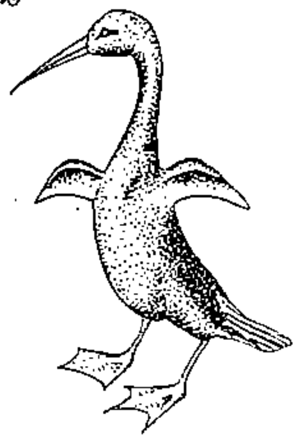

HESPERORNIS

चित्र 3.37: क्रिटेशियस निक्षेपों में एक दूसरा पक्षी *हेसपेरानिस* पाया गया है। यह एक जलीय पक्षी है जिसने जलीय जीवन पद्धति की वजह से अपने पंख को खो दिया है। इसने अपने सरीसृपीय पूंछ को भी खो दिया था इसका स्टर्नम काफी विकसित था। उस समय तक एक वास्तविक पाइगोस्टाइल (पुच्छफाल) का विकास नहीं हुआ था और जबड़े में अब भी दांत थे। यह शक्तिशाली पैरों वाला गोताखोर बड़ा पक्षी था।

सरीसृपों तथा पक्षियों के बीच की समानता को प्राणि-वैज्ञानिकों ने बहुत पुराने समय से पहचाना है, क्योंकि इन दोनों में अनेक समान आकारिकीय निर्मितयां एवं शारीरक्रियात्मक समजातताएं पायी जाती हैं। अंग्रेज प्राणि-वैज्ञानिक हेनरी हक्सले (Henry Huxley) ने पक्षियों को डाइनोसौरों के एक समूह थीरोपौडों के साथ वर्गीकृत किया था। थीरोपॉड डाइऐप्सिड सरीसृपों की एक वंश परम्परा आर्कोसौरियनों में आते हैं, जिनमें टेरोसौर (pterosaurs) तथा क्रोकोडीलियन एवं डाइनौसौर भी आते हैं। परंतु पक्षियों का उद्‌भव न तो उड़नशील टेरोसौरों से हुआ है और न ही क्रोकोडीलियनों से (हालांकि पक्षियों के निकटतम जीवित संबंधी क्रोकोडियन ही हैं)। ऐसा प्रमाण मिलता है कि पक्षियों की निकटतम जातिवृत्तीय बंधुता उस थीरोपॉड डाइनोसौर वंश-परम्परा से है जिसमें स्पष्ट पक्षी-सरीखी विशिष्टताएं विकसित हो रही थीं। वास्तव में पक्षी-पूर्वजता को थीरोपॉड डाइनोसौरों से जोड़ने वाले जिस एकमात्र शारीरीय लक्षण की आवश्यकता थी वह पिच्छों का पाया जाना था, और यह प्रमाण *आर्कियॉप्टेरिक्स* की खोज से प्राप्त हो गया।

पक्षियों के विकास में इनका उद्‌भव एकस्रोतोद्‌भवी हुआ है। इसका अर्थ है कि पक्षी एक अकेले पूर्वज से विकसित हुए हैं। उनके विकास के दौरान और उसके बाद उनके 6 करोड़ वर्ष के अस्तित्व के दौरान उनमें बहुत ज्यादा संख्या में संरचनात्मक परिवर्तन नहीं हुए। ऐसा होने का कारण पक्षियों द्वारा अपनाया गया वायवीय जीवन बताया जाता है। (चित्र 3.38)।

आज के जीवित पक्षियों (नीऑर्निथीज, Neornithes) को मोटे तौर पर दो समूहों में बांटा जाता है:-

(a) रेटाइटी (Ratite) तथा (b) कैरिनेटी (Carinate)

a) रेटाइटी:

रेटाइटियों में उनकी स्टर्नम में से नौतल (keel) समाप्त हो गयी है जिसके परिणामस्वरूप स्टर्नम चपटी हो गयी है और उड्डयन पेशियां ह्रासित हो गयी हैं। इस प्रकार ये अनुड्डयनशील हैं। उदाहरण: कैसोवरी (Cassowaries), एमू (Emu), किवी, शुतुरमुर्ग।

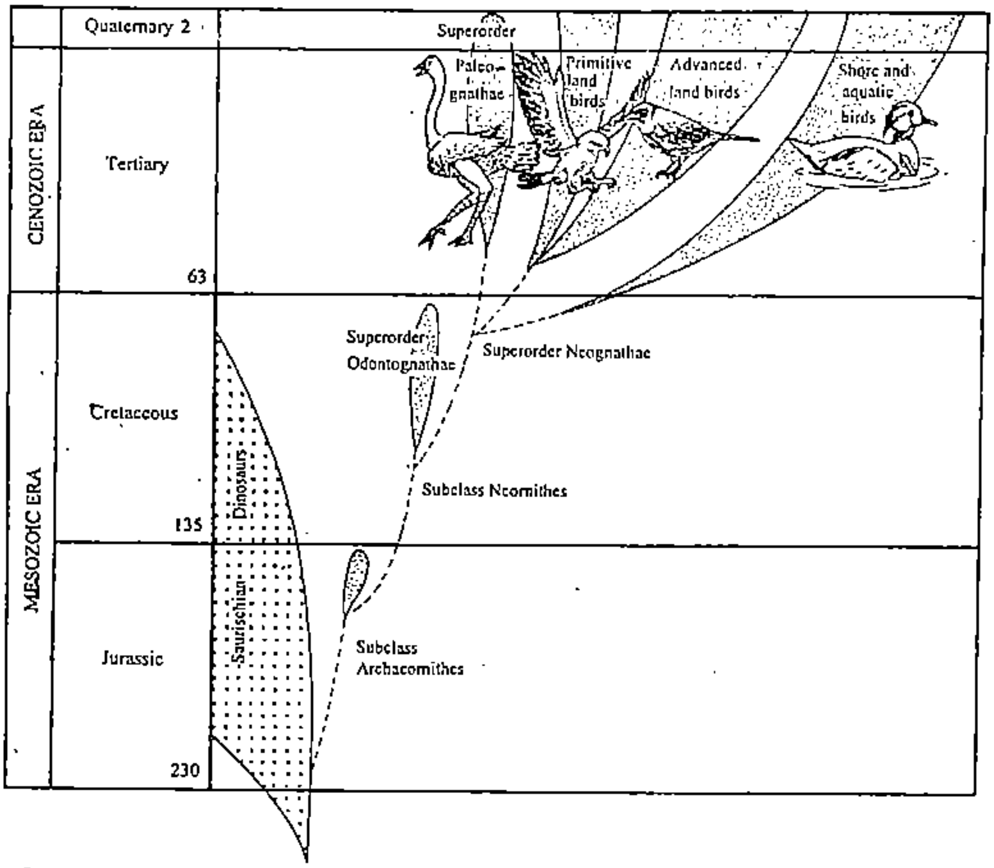

चित्र 3.38: आधुनिक पक्षियों का जातिवृत, भौगोलिक वितरण तथा विकास। आधुनिक पक्षियों का विकास क्रिटेशियस तथा आरम्भिक टर्शिएरी कालों के दौरान तेज़ी से हुआ।

दो विभाजन-रेटाइटीस तथा कैरिनेटी इस विचारधारा पर बने कि अनुड्डयनशील पक्षी एक पृथक वंशज कम का प्रतिदर्श है जो कभी भी उड़नशील अवस्था में से नहीं गुजरा जैसी कि अन्य सभी गुजरे थे। यह विचारधारा अब मानी नहीं जाती क्योंकि शुतुरमुर्ग जैसे रेटाइटीज स्पष्टत: उड़ने वाले पूर्वजों से ही विकसित हुए हैं। और तो और, सभी कैरिनेटी अथवा नौतल युक्त पक्षी उड़ सकते हैं ऐसा भी नहीं है तथा उनमें से अनेक में नौतल भी नहीं होती। अनुड्डयनशील पक्षियां अलग-अलग समूहों में अलग-अलग प्रकट हुई है।

b) कैरिनेटी

कैरैनेटियों में उड़ने वाले पक्षी आते हैं जिनमें स्टर्नम नौतलयुक्त होती हैं जिसके ऊपर सुविकसित उड्डयन पेशियां निवेषित होती है। कैरिनेटियों को अधिक आदिम माना जाता है।

3.4.2 पक्षियों का वर्गीकरण

पक्षियों की कुल मिलाकर 9600 से अधिक स्पीशीज हैं, ये स्पीशीज़ जीवित पक्षियों के 28 ऑर्डरों में रखी गयी हैं तथा कुछ ऑर्डर जीवाश्म पक्षियों के हैं। आगे खोजी जाने वाली पक्षियों की बहुत ही कम स्पीशीज़ होगी मगर हर वर्ष अनेक उपस्पीशीज़ सूची में जुड़ती जा रही है। 28 जीवित ऑर्डरों में से 4 रेटाइटी के हैं हालांकि अनुड्डयनशीलता केवल इन्हीं समूहों तक सीमित नहीं है। शेष पक्षी कैरिनेटी में आते हैं। कुल मिलाकर पक्षियों की स्पीशीज़ को लगभग 170 जीनसों में रखा जाता है। चित्र 3.39 में पक्षियों के वर्गीकरण को ऑर्डरों के स्तर, जीवित पक्षियों की विविध विशिष्टताओं को और उनके विकास के अनुक्रम को दिखाया गया है।

3.4.3 पक्षियों की विशिष्टताएं

1. पक्षी अंत:तापी कशेरुकी हैं।
2. शरीर सामान्यत: स्पिंडल के आकार का होता है (अर्थात् आगे-पीछे से नुकीला और बीच में मोटा), शरीर के चार विभाजन होते हैं- शीर्ष, गर्दन, धड़ और पूंछ। गर्दन अपेक्षाकृत ज़्यादा ही लम्बी होती है जिससे संतुलन बनाने तथा आहार एकत्रित करने में सहायता मिलती है।
3. दो जोड़ी पाद। अग्र जोड़ी उड़ने के लिए पंखों (डैनों) में रूपांतरित। पिछली जोड़ी अनेक प्रकार से अनुकूलित जैसे पर्चिंग (perching) (डाल पर जमकर बैठने), चलने या तैरने (झिल्ली से युक्त) के लिए। हर पश्च पाद में चार-चार उंगलियां।
4. एपिडर्मिसी आवरण परों (पिच्छों) का तथा टांगों पर शल्कों का होता है; पिंडलियां और पादांगुलियां शृंगीकृत एपिडर्मिसी त्वचा से आच्छादित; पतला अध्यावरण (त्वचा) एपिडर्मिस और डर्मिस का बना, त्वचिक अथवा स्वेद (पसीना) ग्रंथिया नहीं होतीं; यूरोपाइजियन पर बनी तेल अथवा प्रीन ग्रंथि (preen gland) पूंछ के मूल में बनी होती है, कान का कर्णपल्लव (pinna) आद्यंगी होता है।

Classification of Birds

Class Aves (L. *avis*, bird) The birds.

Subclass Archaeornithes Ancestral birds of the late Jurassic and early Cretaceous period. They retain many reptilian features including jaws with teeth, a long tail, unfused carpals and metacarpals, and three fingers, each bearing a claw. *Archaeopteryx*

Subclass Neornithes Extinct and living birds. Birds with well developed sternum usually with keel. Tail reduced with reduced number of caudal vertebrae; metacarpals and some carpals are fused together; the three fingers are reduced and clawless. Birds of Cretaceous to recent.

Superorder Odontognathae Cretaceous birds retaining teeth. *Hesperornis*, *Ichthyornis*

Superorder Paleognathae Modern birds without teeth, but retaining a primitive archosaurian palate. The ratites (with unkeeled sternum) and tinamous (with keeled sternum)

Superorder Neognathae Modern toothless birds with a flexible palate. (We are following Olson [1985] in listing neognathous bird orders by phylogenetic position and major adaptive radiations rather than in the usual linear sequence from aquatic through terrestrial groups.)

Order Struthioniformes Ostriches. Large flightless birds with small wings, unkeeled sternum; head and neck largely devoid of feathers, large powerful legs with only two toes. Africa and western Asia.

Ostrich

Order Rheiformes Rheas. Large flightless birds with unkeeled sternum; head and neck feathered; heavy legs with three toes. South America

Rhea

Order Casuariiformes Cassowaries and emus. Large flightless birds with small wings and unkeeled sternum; long hairlike feathers with long aftershaft; heavy legs with three toes. New Guinea and Australia

Emu

Order Apterygiformes Kiwis. Small flightless birds with unkeeled sternum and vestigial wings; four toes; long bill with nostrils near the tip used in probing soil; ground for food; nocturnal in habit. New Zealand. [illegible]

Kiwi

Order Tinamiformes Tinamous. Largely a ground dwelling group, but are weak [illegible] of the keeled sternum [illegible] Mexico to South America

Tinamou

Terrestrial Radiation

Order Cuculiformes Primitive members of the terrestrial radiation cuckoos and roadrunners. Foot with fourth toe capable of being turned back beside the first toe. Tail long. Worldwide

Cuckoo

Order Falconiformes Vultures, kites, hawks, falcons, and eagles. Diurnal birds of prey with strong hooked bill, sharp curved talons. Worldwide.

Falcon

Order Galliformes Grouse, quails, partridges, pheasants, turkeys, and chickens. Seed and plant-eating, largely ground-dwelling birds; short stout bill, heavy feet with short strong claws, adapted for running and scratching in the ground; wings [illegible] short, often sexually [illegible]. Worldwide

Pheasant

Order Columbiformes Pigeons and doves. Short slender bill with fleshy pad at its base overhanging slitlike nostrils, short legs. Worldwide

Pigeon

Order Psittaciformes Parrots. Feet adapted for grasping, with the fourth toe capable of being turned back beside the first toe; bill heavy and hooked, often brilliantly colored plumage. Worldwide

Parrot

Order Coliiformes The colies. Small birds with long tails, first and fourth toes can be turned posteriorly. Africa

Coly

Order Coraciiformes Kingfishers. Strong sharp bill, grasping feet, feathers often forming a crest on the head, plumage often brilliant. Worldwide

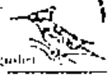

Kingfisher

Order Strigiformes Owls. Nocturnal birds of prey with strong hooked bills, sharp curved talons; feathers arranged as a facial disc around the large, forward-turned eyes. Worldwide.

Owl

Order Caprimulgiformes Nighthawks, goatsuckers, and whippoorwills. Twilight flying birds with small bills, but large mouths surrounded by bristle-like feathers that help net insects, legs and feet small. Worldwide

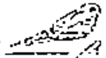

Nightjar

Order Apodiformes Swifts and hummingbirds. Fast flying birds with long narrow wings, legs and feet very small. Worldwide

Hummingbird

Order Trogoniformes Trogons. Richly colored birds. Pantropical distribution.

Trogon

Order Piciformes Woodpeckers and toucans. Bill chisel-like (woodpeckers) or very large (toucans); the fourth toe is permanently turned posteriorly [illegible]. Worldwide

Toucan

Order Passeriformes The perching birds and songbirds. The largest order of birds, comprises about 60 percent of all birds and includes the flycatchers, larks, swallows, crows, jays, chickadees, nuthatches, creepers, wrens, dippers, thrashers, thrushes, robins, bluebirds, kinglets, pipits, waxwings, shrikes, starlings, vireos, wood warblers, weaver finches, blackbirds, orioles, tanagers, finches, and sparrows. Syrinx well-developed; foot adapted for perching, three toes in front opposed by one well-developed toe behind. Worldwide

Thrush

Aquatic Radiation

Order [illegible] [illegible] Marsh birds: feet not webbed, but toes sometimes lobed; legs elongate in some groups; the portion of the head between the eye and nostril (the lores) feathered. Worldwide

Rail

Order Podicipediformes Grebes. [illegible] Worldwide

Grebe

Order Charadriiformes [illegible]

Plover

Order [illegible] Flamingos

Flamingo

Order Anseriformes [illegible] webbed [illegible] bill usually broad and flat [illegible] Worldwide

Duck

Order Ciconiiformes [illegible] area between the eye and base of the bill (the lores) usually devoid of feathers. Worldwide

Heron

Order Pelecaniformes Pelicans, gannets, cormorants, water-turkeys, and [illegible] [illegible] swimmers with four toes included in the [illegible] Worldwide [illegible]

Pelican

Order Procellariiformes Albatrosses, shearwaters, fulmars, petrels, and tropic birds. Webbed feet, fourth toe vestigial; long narrow wings; hooked beak; tubular nostrils. Oceanic. Worldwide.

Petrel

Order Gaviiformes Loons. Legs located far back on the body; webbed feet; reduced tail; long, compressed and sharply pointed bill; very good divers. North America, Eurasia.

Loon

Order Sphenisciformes Penguins. Flightless oceanic birds with four anteriorly directed toes with a web between three of them, wings modified as paddles, excellent divers. Confined to the southern hemisphere, chiefly Antarctica, one species occurs on the Galapagos Islands.

Penguin

[illegible]

5. कंकाल कोमल, मजबूत, पूरी तरह अस्थिभूत और सामान्यत: वायु गुहाओं से युक्त वातित (हल्का)। करोटि की हड्डियां समेकित और केवल एक ही ऑक्सिपिटल अस्थिकंद होता है जैसा कि सरीसृपों में था। इस व्यवस्था से पक्षी अपने शीर्ष को लगभग 180° तक घुमा सकता है।
6. अंस उपांग अर्थात् अग्रपाद पंख बन गए हैं। श्रोणि (पेल्विस) बहुत सी कशेरुकों से समेकित हो गयी है मगर अधर दिशा में खुली होती है। पसलियां छोटी और उनमें मज़बूती प्रदान करने वाले प्रवर्ध होते हैं। उड्डयन पेशियां नौतल से जुड़ी होती हैं। आखिरी वक्षीय, सभी लम्बर (lumbar), सभी सैक्रल (sacral) और आगे की पुच्छ कशेरुकें इस प्रकार श्रोणि-मेखला से समेकित हो गयी हैं कि उनसे एक सिनसैक्रम (synsacrum) बन गया है, यही सिनसैक्रम पक्षी के चलते अथवा खड़े रहने की स्थिति में शरीर का सारा बोझ पक्षी की टांगों पर टिकाए रहता है। पश्चीय पुच्छ कशेरुकें समेकित होकर एक पाइगोस्टाइल (pygostyle) बना लेती हैं। मध्य कान में एकल हड्डी होती है।
7. तंत्रिका-तंत्र सुविकसित, जिसमें मस्तिष्क और 12 जोड़ी कपाल तंत्रिकाएं होती हैं। आंखें तथा मस्तिष्क के भीतर दृष्टि केंद्र बड़े आकार के एवं महत्वपूर्ण होते हैं। भीतरी कान में एक कॉक्लिया होता है जो लम्बा और कुंडलित नहीं होता।
8. जबड़े संकरे होते हैं और आज की सभी स्पीशीज़ में ये जबड़े शृंग-आवरित होकर चोंच बन गए हैं; दांत नहीं होते। ग्रसिका में एक क्रॉप (crop) (अन्नपुट) होता है जो आहार भण्डारण में सहायता करता है। जठर दो भागों में विभाजित होता है- अगला प्रोवेंट्रिकुलस (proventriculus) और पिछला पेशीय गिज़र्ड (gizzard)। गिज़र्ड में आहार का चबाना-पीसना किया जाता है और इस प्रकार मुख-गुहा में दांतों के अभाव की क्षतिपूर्ति हो जाती है। छोटी अंतड़ी में विलाई (villi) (अंकुर) होते हैं।
9. श्वसन की क्रिया संहत, स्पंजी और बस मामूली से ही प्रसारशील फेफड़ों के द्वारा होती है। ये फेफड़े पसलियों से चिपके होते हैं और साथ ही ये पतली-भित्ति वाले वायु-थैलों से भी संयोजित रहते हैं; ये वायु थैले अंतरंगों और कंकाल तक में फैले होते हैं; और एक स्वर-कोश (सिरिंक्स, syrinx) श्वास नली एवं श्वसनियों (bronchi) के संधिस्थल पर (अर्थात् श्वासनली के मूल पर) बना होता है। फेफड़े और वायु-थैले एक असाधारण प्रकार के वायु मार्ग बनाते हैं जो श्वसन सतह के ऊपर एक विलक्षण रूप में कारगर मार्ग स्थापित कर देते हैं।
10. परिसंचरण-तंत्र में चार कक्षीय हृदय होता है (दो अलिंद तथा दो पृथक निलय) जिससे ऑक्सीजन से खाली रक्त और आक्सीजन से भरा रक्त दोनों एक दूसरे से पूरी तरह पृथक बने रहते हैं। केवल दाहिनी दैहिक चाप (right systemic arch) होती है जो पृष्ठ महाधमनी बन कर ऑक्सीजनित रक्त को पादों, धड़ तथा पूंछ में पहुंचाती है; वृक्क निवाहिका तंत्र (renal portal system) ह्रासित; लाल रक्त कोशिकाएं केंद्रकयुक्त, अण्डाकार तथा उभयोत्तल (biconvex) होती हैं।
11. मूत्रजनन तंत्र मेटानेफ्रिक प्रकार का (जैसा कि वयस्क वृक्क सभी ऐम्नियोटों में मेटानेफ्रॉस से बना होता है), मूत्रवाहिनियां अवस्कर में खुलती हैं; मूत्राशय नहीं होता। उत्सर्जन यूरिकोटेलिक (uricotelic) प्रकार का होता है; अर्धठोस मूत्र का निकाला जाना ताकि जल संरक्षण हो सके; प्रधान नाइट्रोजनी अपशिष्ट यूरिक अम्ल।
12. नर-मादा अलग-अलग, वृषण युग्मित और शुक्रवाहिकाएं अवस्कर में खुलती हैं; मादाओं में केवल एक ओर बायां अण्डाशय तथा बायी अण्डवाहिनी होती है। दाहिना अण्डाशय तथा अण्डवाहिनी परिवर्धन के दौरान ही क्षीण हो गयी होती हैं। मैथुन अंग केवल बत्तखों, हंसों तथा कुछ अन्य स्पीशीज़ में पाए जाते हैं।
13. पक्षी अंडप्रजक होते हैं (अंडे देते हैं) तथा निषेचन भीतरी होता है। ऐम्नियोटिक अंडे सकोश होते हैं जिनके भीतर पीतक की बहुत मात्रा होती है। अंडे के भीतर परिवर्धन के दौरान सभी चार गर्भ झिल्लियां अर्थात् ऐम्नियॉन (उल्व), कोरियॉन (जरायु), पीतक कोश, तथा ऐलेंटोइस (अपरापोषिका) पायी जाती हैं। ऐल्बुमिनी पदार्थ तथा कड़ा कैल्सियमी कवच, अण्डे के अण्डवाहिनी में से गुजरते समय उसके ऊपर स्रावित होते हैं। ऊष्मायन (सेया जाना) शरीर के बाहर होता है। जनक अण्डे सेतें, और अण्डों से निकले बच्चों की देखभाल करते हैं; बच्चे अण्डे से निकलने पर सक्रिय हो सकते हैं (पूर्व विकसित precoicial) अथवा पिच्छविहीन नग्न हो सकते हैं (सहायापेक्षी, altrical)। लिंग अभिनिर्धारण मादा द्वारा होता है (विषमयुग्मकी, heterogametic)।

अधिसंख्य प्राणियों में जिनमें हम मानव भी आते हैं मादा का विशिष्ट जीनोटाइप XX और नर का XY होता है। मगर पक्षियों, शलभों तथा तितलियों में यह व्यवस्था उलटी हो गयी है - मादा XY (विषमयुग्मी) तथा नर XX (समयुग्मी) होते हैं। इस प्रकार इन उदाहरणों में सेक्स का निर्धारण अण्डाणु द्वारा और इसलिए मादा के द्वारा होता है।

बोध प्रश्न 11

रिक्त स्थानों में उपयुक्त शब्द भरिए:-

क) जीवित पक्षियों को दो वर्गों ………………… तथा …………………में विभाजित किया जाता है।

ख) प्रथम जीवाश्म पक्षी ………………… जुरैसिक काल में हुआ करता था।

ग) पक्षियों के निकटतम जीवित ………………… संबंधी हैं।

घ) आर्कियाप्टेरिक्स का जीवाश्म ………………… तथा ………………… के बीच की योजक कड़ी माना जाता है।

3.4.4 पक्षियों का स्वरूप और उनके प्रकार्य

उड़ सकने के लिए पक्षियों में अनेक खास अनुकूलन हुए हैं जिनका संबंध दो मुख्य बातों से है - अधिक शक्ति बल तथा कम वज़न। आइए कुछ खास-खास लक्षणों का अध्ययन करें।

आकार

सबसे बड़े जीवित पक्षियों में अफ्रीका का शुतुरमुर्ग आता है जो पूरा सीधा खड़ा होने पर 2.13 मीटर ऊंचा होता है तथा वज़न में 136.4 किलोग्राम, इतने भारी-भरकम शरीर से उड़ना संभव नहीं हो सकता। सबसे छोटा पक्षी क्यूबा का "हेलन हमिंगबर्ड" (Helen's hummingbird) है जो 6.35 सेंटीमीटर लम्बा और वजन में लगभग 3 ग्राम होता है। चित्र 3.40 में कुछ असाधारण पक्षी दर्शाये गये हैं।

चित्र 3.40: कुछ रुचिकर पक्षियां।

अंत:तापता (Endothermy)

उड़ने के लिए पक्षियों को अधिक मात्रा में ऊर्जा उपलब्ध होनी चाहिए, इसलिए उनमें यथार्थ अंत:तापता पायी जाती है। ये अपने देह-तापमान को अपेक्षाकृत ऊँचे स्तर 40-43°C पर बनाए रखते हैं। सरीसृपों की अपेक्षा पक्षियों की उपापचय-दर कई गुना अधिक होती है। ऊष्मा शरीर के भीतर उत्पन्न की जाती है और देह सतह पर इसकी हानि को रोका जाता है। तापरोधिता अधःत्वचिक वसा एवं पिच्छों के द्वारा प्रदान की जाती है। जल (ऊष्मा का एक अच्छा चालक) एक तैल स्राव द्वारा पिच्छों में प्रविष्ट नहीं होने दिया जाता, यह तैल-स्राव यूरोपिजियल ग्रंथि (uro = पूंछ, pyge = पुट्ठा) से निकलता है जो पूंछ की जड़ के समीप ऊपर की ओर स्थित होती है, इसके स्राव को पिच्छों की सतह पर फैला दिया जाता है (चित्र 3.41)।

जब पक्षी अपनी चोंच से परों को संवार रहा होता है तब अपनी यूरोपिजियल ग्रंथि से लिए गए एक तैलीय स्राव को उन पर फैला रहा होता है। जल मुर्गाबी आदि में यूरोपिजियल ग्रंथियां बहुत बड़ी-बड़ी होती हैं जिसके कारण जल उनके परों के बीच में नहीं घुस सकता।

पांवों से ऊष्मा-हानि को रोकने के लिए अनेक पक्षियों में एक वाहिकीय प्रतिधारा क्रियाविधि (vascular counter current mechanism) पायी जाती है। नीचे की ओर पांवों में जाने वाली धमनियां बहुत नन्हीं-नन्हीं रक्त केशिकाओं के एक चक्रजाल के रूप में विशाखित हो गयी होती हैं और वे पैरों की ओर से लौटने वाली सूक्ष्म शिरा वाहिकाओं को घेरे रहती हैं। एक दूसरे पर लिपटी हुई धमनी तथा शिरा वाहिकाओं के इस प्रकार बने जाल को एक विशेष नाम रेटे मिराबिले (*rete mirabile*) यानि केशिका जाल कहा जाता है। इस व्यवस्था से सुनिश्चित हो जाता है कि धमनी रक्त में जो ऊष्मा परिधि अर्थात् सतह की ओर जा रही होती है वह शरीर में लौट रहे अपेक्षाकृत ठंडे शिरा-रक्त में स्थानांतरित हो जाती है और इस प्रकार धमनी की गर्माहट शिरा के बीच में ही पहुंच जाती है और वापिस शरीर में चली जाती है और इस तरह ऊष्मा का संरक्षण हो जाता है।

त्वचा और पिच्छ

पक्षियों की त्वचा (चित्र 3.42) स्तनियों की त्वचा से भिन्न पतली, ढीली तथा खुश्क होती है। स्वेद ग्रंथियां नहीं होतीं क्योंकि पिच्छों से सघन रूप में आच्छादित शरीर में इनका कोई उपयोग नहीं हो पाता। एकमात्र बड़ी त्वचिक ग्रंथि यूरोपाइजियल ग्रंथि होती है जिसके द्वारा पिच्छों की तैलसज्जा (preening) की जा सकती है। आधुनिक पक्षियों के पिच्छ एक ऐसा आवरण प्रदान करते हैं जिसके उपयोग अनेक हैं- ये उपयोग ऊष्मारोधन, ऊष्मा संरक्षण और उड्डयन में योगदान देने से लेकर सुरक्षात्मक रंग एवं लैंगिक प्रदर्शन प्रदान करने तक के विविध होते हैं।

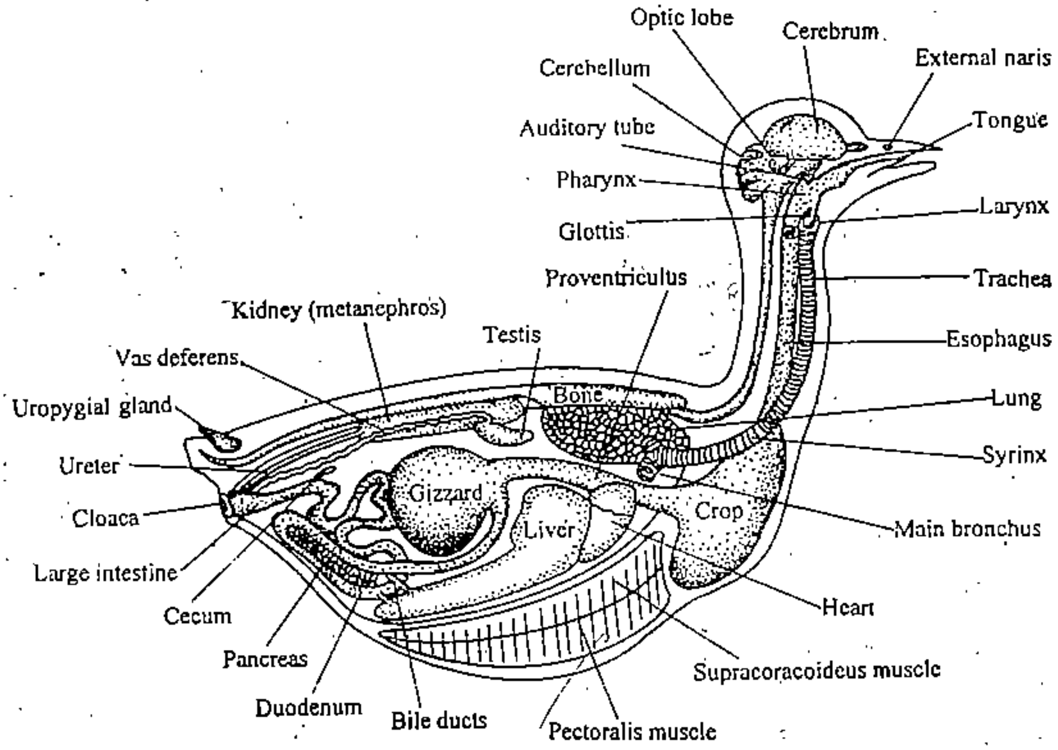

चित्र 3.41: कबूतर के मुख्य भीतरी अंग जैसे कि वे एक पार्श्व विच्छेदन में दिखायी पड़ते हैं।

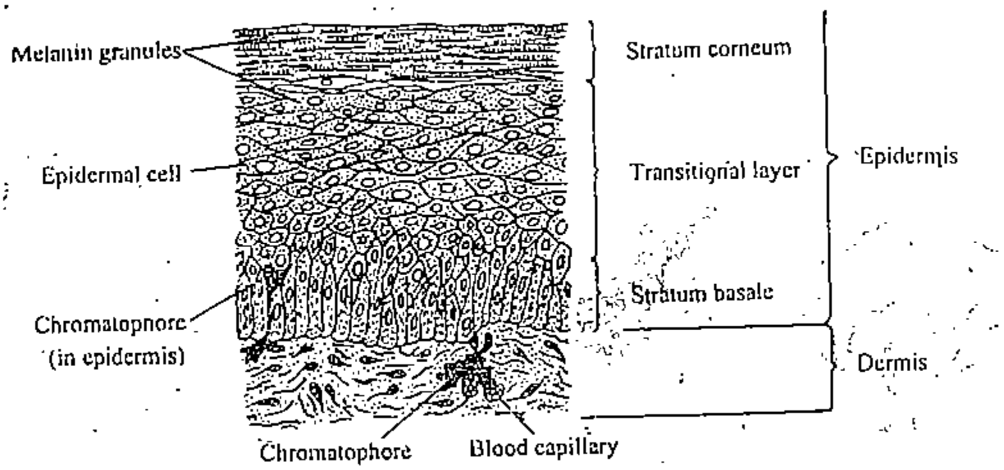

चित्र 3.42: पक्षी की त्वचा। त्वचा का सेक्शन जिसमें स्ट्रैटम बेसेली (**stratum basale**) तथा किरैटिनी सतह परत स्ट्रैटम कॉर्नियम (**stratum corneum**) दिखायी पड़ रहे हैं। आधारीय परत से निकली कोशिकाएं पहले कुछ समय तक संक्रमणी (**transitional**) परत में पड़ी रहती हैं जो स्तनियों की स्पॉंजियोसम तथा ग्रैनुलोसम परतों के समतुल्य होती है।

अन्य प्राणियों से अलग पक्षियों की पहचान के लिए किसी भी अन्य लक्षण से अधिक महत्वपूर्ण यदि कोई अकेला लक्षण हो सकता है तो वह है पिच्छों का पाया जाना है। पक्षियों के पैरों के शल्कों की तरह पिच्छ भी सरीसृपों के शल्कों से ही विकसित हुए हैं जिनके साथ वे समजात हैं। पक्षियों के पिच्छ और पैरों के शल्क त्वचा की एपिडर्मिसी बहिर्वृद्धियां होती हैं (चित्र 3.43)। पिच्छ कोशिकाएं अपने भीतर बहुत मात्रा में किरैटिन एकत्रित कर लेती हैं और इसलिए वे मृत संरचनाएं होती हैं। पिच्छों के चटकीले रंग भी उन वर्णकों के ही कारण होते हैं जो इनके परिवर्धन के दौरान इनमें जमा हो जाते हैं। पिच्छों के कालापन लिए हुए अधिक गहरे रंग उन वर्णकों के कारण हुए हो सकते हैं जो डर्मिस में स्थित विशिष्ट रंग धारी कोशिकाओं से स्थानांतरित होकर आते हैं।

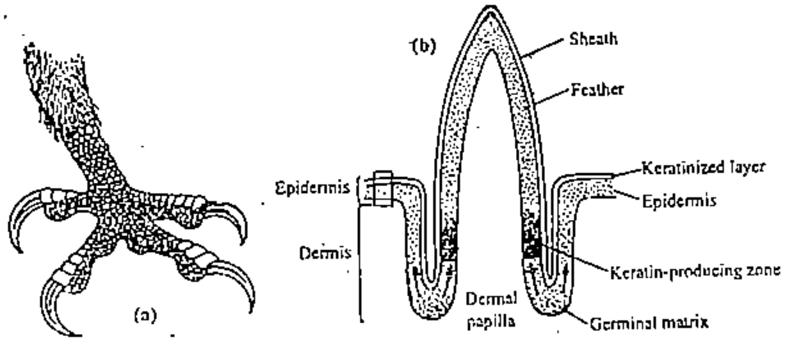

चित्र 3.43: पक्षी में एपिडर्मिसी व्युत्पाद। (a) एपिडर्मिसी शल्क पक्षी की टांगों तथा पावों पर पाए जाते हैं। (b) पिच्छ एक एपिडर्मिसी व्युत्पाद है जैसा कि पिच्छ फॉलिकल की वृद्धि के इस चित्र में देखा जा सकता है। स्वयं पिच्छ एक आच्छंद के भीतर बनता है और पिच्छ की तरह वह भी एपिडर्मिस का ही एक किरैटिनीकृत व्युत्पाद होता है।

अधिक खुले चटकीले रंग प्रदान करने वाले वर्णकों को परिवर्धनशील पिच्छों की कोशिकाएं रक्तधारा से प्राप्त करती हैं। इस सबके बावजूद पिच्छों का बहुत-सा रंग तथा रंगदीप्ति (iridescence) वर्णकों के कारण होती नहीं मानी जाती, बल्कि वह शृंगीय पिच्छ पदार्थ की सतह के रूपांतरणों के कारण होती है जिनसे कुछ विशेष किरणों का परावर्तन होता है (सभी नीले रंग इसी तरह पैदा होते हैं)। अधिकतर स्पीशीज़ में पक्षी को बाहर से ढकते हुए पिच्छ कुछ स्थानीय पट्टियों से निकले फैले हुए होते हैं, इन पट्टियों को पिच्छ-पथ (feather tracts) तथा वैज्ञानिक शब्दावली में टेराइली (**pterylae**) कहते हैं। टेराइली के बीच-बीच में पिच्छविहीन स्थानों को ऐप्टेराइली (**apterylae**) कहते हैं (चित्र 3.44)। पिच्छ वजन में बहुत ही हल्के होते हैं, मगर फिर भी वे कमाल के कड़े और अधिक तनन शक्ति से युक्त होते हैं। पक्षियों के सर्वाधिक प्ररूपी पिच्छ देह पिच्छ (**contour feathers**) होते हैं जो पक्षी के समस्त धारा रेखित शरीर को ढके रहते हैं। प्रत्येक देह पिच्छ में कई भाग होते हैं- शुरू का भाग एक खोखला पिच्छाक्ष अथवा क्विल (quill) होता है जिसे कैलेमस (calamus) भी कहते हैं (GK. calamos = सेंठा,

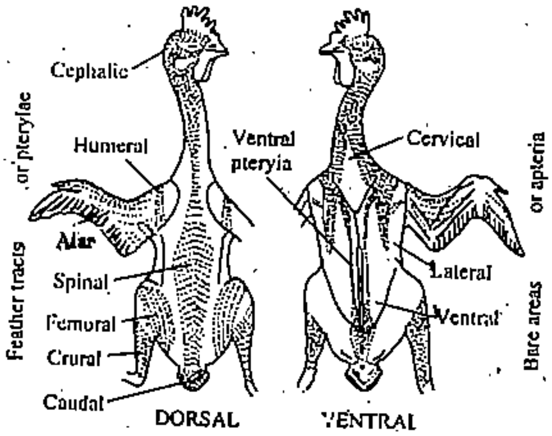

चित्र 3.44: पिच्छ विशिष्ट टेराइली (pterylae) पथों पर बनते हैं।

कलम), यह त्वचा के एक पुटक (फ़ॉलिकल) अथवा डर्मिसी पैपिला में गड़ा होता है, दूसरा भाग इसी से जारी रहता हुआ रेकिस (rachis) अथवा डर्मिसी केन्द्रीय शैफ़्ट (shaft) होता है। जिस पर अगल-बगल निकले हुए पिच्छकों (barbs) का एक **पिच्छफलक (vane)** बना होता है। (चित्र 3.45a)। पिच्छक पास-पास सटे हुए समांतर रूप में व्यवस्थित होते हैं तथा केंद्रीय शैफ़्ट के दोनों पार्श्वों से बाहर की ओर को विकर्णतः फैले होकर पिच्छफलक की चपटी, फैली हुई झिल्लीनुमा सतह बन जाती है। पिच्छफलक में कई-कई सौ पिच्छक बने हो सकते हैं। अनेक देह पिच्छों में कैलेमस के दूरस्थ सिरे पर जहां प्रधान शैफ़्ट तथा क्विल (पिच्छाक्ष) का संधिस्थल होता है मुक्त पिच्छक होते हैं जो ह्रासित होकर एक गुच्छे-जैसे निकले होते हैं, यह गुच्छा एक द्वितीयक शैफ़्ट बना लेता है जिसे **अनुपिच्छ** (अथवा **आफ़्टर शैफ़्ट, aftershaft**) कहते हैं (चित्र 3.45B)। खोखले पिच्छास (क्विल) की भीतरी गुहा संधि के स्थान पर एक छिद्र द्वारा बाहर को खुलती है, इस छिद्र को **ऊर्ध्व नाभि (superior umbilicus)** कहते हैं।

यदि किसी देह-पिच्छ को माइक्रोस्कोप से देखा जाए तो प्रत्येक पिच्छक पूरे पिच्छ की ही एक सूक्ष्म प्रतिकृति है जिसमें बहुत संख्या में सूक्ष्म हुकयुक्त सूत्र अथवा शाँखाएं पार्श्वों में निकली होती हैं जिन्हें **पिच्छिकाएं (barbules)** कहते हैं। एक पिच्छक की पिच्छिकाएं समीपवर्ती पिच्छकों की पिच्छिकाओं से, जो पार्श्वों में निकली होती है अंतर्ग्रथित (interlocked) होती हैं। पिच्छक के प्रत्येक पार्श्व पर 600 तक पिच्छिकाएं हो सकती हैं जिन्हें कुल मिलाकर एक पिच्छ पर 10 लाख पिच्छिकाएं तक हो सकती हैं, जो एक "हेरिंगबोन" प्रतिरूप में व्यवस्थित हुई कस कर परस्पर जुड़ी होती हैं, यह परस्पर जुड़ना सूक्ष्म हुकों द्वारा होता है जिन्हें **पिच्छिकावर्ध (barbicels)** अथवा **हुकलेट (hooklets)** कहते हैं। यदि दो सहवर्ती पिच्छक पृथक हो जाते हैं (पिच्छफलक को कहीं से खींच कर चीर देने के लिए काफ़ी बल चाहिए) तब पक्षी अपनी चोंच से इस पिच्छ को तब तक संवारता रहता है जब तक कि पिच्छिकाएं फिर से एक दूसरे से जुड़ नहीं जाती। इस प्रकार पिच्छफलक हल्का मगर मज़बूत होता है और इसे आसानी से पुनः ठीक-ठाक कर लिया जा सकता है और यह तापरोधिता (insulation) तथा उड्डयन दोनों के लिए आदर्श है। शुतुरमुर्ग जैसे पक्षियों में, जिनमें उड्डयन क्षमता समाप्त हो गयी है, पिच्छों में हुक नहीं होते, तथा वे केवल तापरोधिता का ही कार्य करते हैं। देह पिच्छों की व्यवस्था से ही पक्षी की आकृति निर्धारित होती हैं।

पिच्छों के प्रकार

पिच्छ (पर) अलग-अलग प्रकार के होते हैं जिनके कार्य भी भिन्न होते हैं। इनमें से कुछ को चित्र 3.45 में दिखाया गया है।

निर्मोचन (Moulting)

पूरी तरह बढ़ चुका पिच्छ एक मृत संरचना होती है जो अंततः घिस-घिस कर कमजोर हो जाता और टूट कर अलग हो जा सकता है। अधिसंख्य पक्षी अपने परों का वर्ष में कम से कम एक बार निर्मोचन (गिरा देना) करते हैं। यह निर्मोचन आम तौर से ग्रीष्म के आखिर में होता है जब पक्षियों की प्रजनन (घोंसला रखने) की ऋतु समाप्त हो चुकी होती है और तब वे तनाव में नहीं होतीं।

निर्मोचन के दौरान पुराने पिच्छ उतार फेंक दिए जाते हैं और उनके स्थान पर नए पिच्छ निकल आते हैं। पिच्छों के गिरने और निकलने का अनुक्रम प्रत्येक स्पीशीज का अलग विशिष्ट प्रकार का होता है।

अनेक पक्षियों में प्रजनन ऋतु के ठीक पहले दूसरा आंशिक अथवा सम्पूर्ण निर्मोचन भी होता है जिसके द्वारा वे मानों एक नयी सज्जा प्राप्त कर लेते हैं जो प्रणय प्रदर्शन के वास्ते अनिवार्य है।

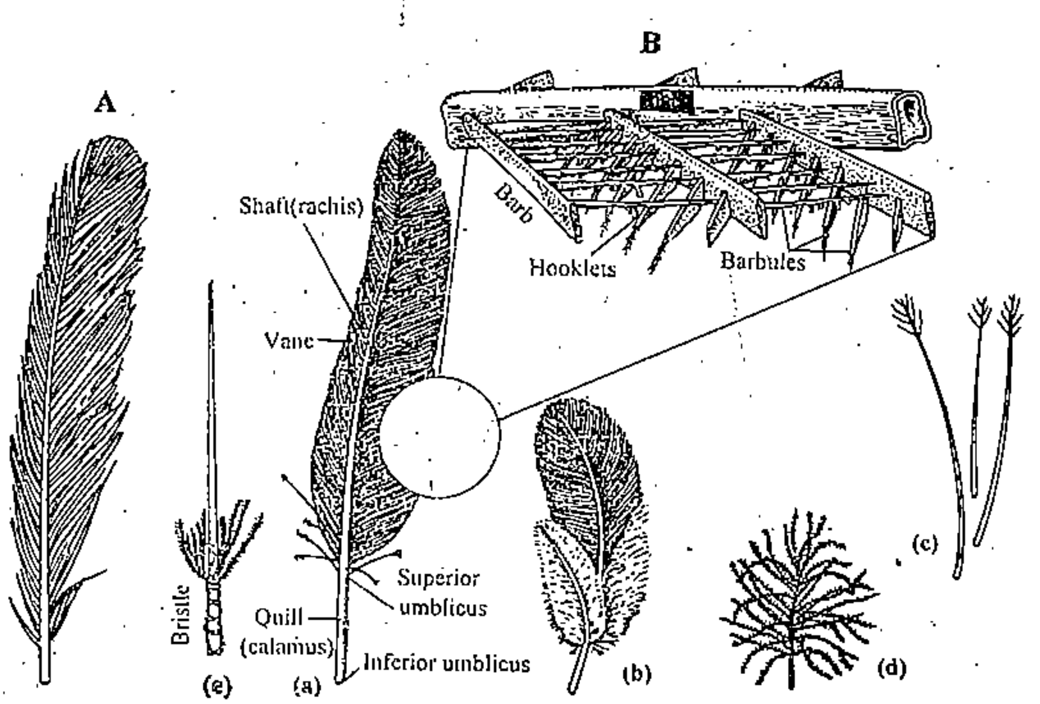

चित्र 3.45: पक्षियों के पिच्छों (परों) के प्रकार: (A) *आर्कियॉप्टेरिक्स* का पिच्छ, (B) आधुनिक पक्षियों के पिच्छ: (a) एक देहपिच्छ (उड्डयन पिच्छ), भीतर बीच में दिखाए गए आरेख में शाखाओं पर सूक्ष्म हुक दिखाए गए हैं जो परस्पर अंतर्ग्रथित होते हैं जिससे पिच्छफलक एक लगातार सतह वाली संरचना बन जाता है। (b) फीजेंट का पिच्छफलक जिसमें अनुपिच्छ भी मौजूद है, (c) रोमपिच्छ, (d) कोमलपिच्छ, शूक।

बोध प्रश्न 12

निशान लगाकर बताइए कि निम्न कथन सही हैं या गलत:-

(क)	पक्षियों के पिच्छ सरीसृपों के शल्कों के समजात हैं।	सही/गलत
(ख)	लगभग सभी पक्षी वर्ष में कम से कम एक बार निर्मोचन अवश्य करते हैं, जो वे सामान्यत: घोंसला रखने की ऋतु के बाद देर ग्रीष्म ऋतु में करते हैं।	सही/गलत
(ग)	पिच्छों के बीच में पिच्छविहीन पथों को टेराइली कहते हैं।	सही/गलत

कंकाल (Skeleton)

पक्षियों का कंकाल मुख्यत: तीन बातों के संबंध में रूपांतरित हो गया है, ये बातें हैं: उड्डयन, द्विपाद संचलन तथा कड़े कवचों से युक्त अण्डों का दिया जाना। आधुनिक पक्षियों में एक मुख्य अनुकूलन जिसके कारण वे उड़ पाते हैं, एक हल्के मगर मज़बूत कंकाल का पाया जाना है। यह व्यवस्था *आर्कियॉप्टेरिक्स* के कंकाल से भिन्न है जो ठोस और सरीसृप जैसी हड्डियों से युक्त था और जो इतना भारी था कि उससे उड़ा नहीं जा सकता था। आधुनिक पक्षियों की हड्डियां आश्चर्यजनक रूप में हल्की, नाज़ुक, पतली, खोखली, वातिल (हवा से भरी) होती हैं जिनके भीतर वायु गुहाएं होती है जो फेफड़ों से उनके भीतर प्रसार होने के कारण बनी होती हैं। मगर उनके भीतर आलम्बी स्तम्भ बने होने के कारण उनमें मज़बूती आ जाती है (चित्र 3.46)। स्तनियों के कंकाल की तुलना में सभी पक्षियों के कंकाल का उनके शरीर के भार के सापेक्ष कम वज़न होता है।

उड़ने में माहिर "फ्रिगेट" पक्षी जिसका पंख-फैलाव एक किनारे से दूसरे किनारे तक 3.1 मीटर होता है, उसके कंकाल का वजन केवल 114 ग्राम होता है जो उसके तमाम पिच्छों के कुल वजन से भी कम होता है।

चित्र 3.46: एक गायक पक्षी के पंख की हड्डी का अनुदैर्घ्य सेक्शन, जिसमें उसकी खोखली संरचना और दृढ़ता प्रदान करने वाली आलम्बी स्तम्भ दिखाए गए हैं (वैसे ही आलम्बी स्तम्भ जैसे कि विमान के पंखों में होते हैं), साथ ही वायु गुहाएं भी दिखायी गयी हैं जिन्होंने अस्थि-मज्जा का स्थान ले लिया है। इस प्रकार की वातिल हड्डियां विलक्षण तौर पर हल्की और मज़बूत होती हैं।

आधुनिक पक्षियों की करोटियां इतनी अधिक विशेषित हो चुकी हैं कि उनमें मूल डाइऐप्सिड दशा का कोई चिन्ह नज़र नहीं आता। करोटि हल्की होती है तथा अधिकतर समेकन के कारण एक अकेला अंश बन जाती है। मस्तिष्क कोश तथा नेत्र-कोटर बड़े आकार के हो गए हैं। ताकि तीव्र प्रेरक समन्वय तथा बेहतर दृष्टि के लिए आवश्यक बड़ा हो गया मस्तिष्क भीतर समाया जा सके।

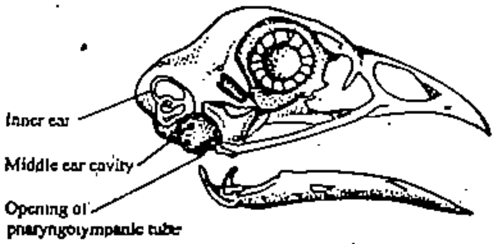

चित्र 3.47: पक्षियों की करोटि तथा श्रवण सम्मिश्र

अग्र करोटि में जबड़ें होते हैं जो सामने की ओर का एक शृंगीय (किरेटिनीकृत) दंतविहीन चोंच के रूप में निकले होते हैं। आधुनिक पक्षियों की चोंच की दंतविहीनता से दूसरी ओर *आर्कियॉप्टेरिक्स* के दंतयुक्त एवं भारी जबड़ों की अपेक्षा वजन को कम कर देती है। आधुनिक पक्षियों का ऊपरी जबड़ा दो ऊपरी मैंडिबलों का बना होता है और इनमें से प्रत्येक मैंडिबल में प्रीमैक्सिला, मैक्सिला तथा अन्य हड्डियां होती हैं, और यह सामान्यतः माथे के भाग से समेकित रहता है। फिर भी, तोते जैसे अनेक पक्षियों में जिनमें गतिक (kinetic) करोटि पायी जाती है ऊपरी जबड़ा करोटि के साथ गतिशील रूप में संधिस्थ रहता है। इस अनुकूलन से मुख अधिक चौड़ा खुल सकता है जिससे आहार को संभालने, खाने और उड़ते-उड़ते खाते रहने के लिए अधिक सुनम्यता उपलब्ध हो जाती है। पक्षियों का निचला जबड़ा दो मैंडिबलों का बना होता है जिनमें से हर मैंडिबल कई हड्डियों का बना एक सम्मिश्र होता है जो क्वाड्रेट नामक दो छोटी गतिशील हड्डियों पर टिका हुआ गति कर सकता है। इस व्यवस्था से एक दोहरी संधिस्थ क्रिया हो सकती है जिसके द्वारा मुंह चौड़ा खोला जा सकता है।

करोटि की गतिक गतिशीलता पक्षियों की करोटि-हड्डियों के कारण होती हैं जिनमें चार मुख्य गतिशील इकाइयां होती हैं (चित्र 3.48) - मस्तिष्क-कोश, ऊपरी जबड़ा, निचला जबड़ा तथा तालु सम्मिश्र। क्वाड्रेट हड्डी सदैव गतिशील होती है (स्ट्रेप्टोस्टाइल, streptostyle) तथा यह अनेक कंदुक खल्लिका (ball and socket) संधियां बनाता है जिनके कारण मैंडिबल की पर्याप्त गति होती है और उसी के साथ-साथ ऊपरी जबड़े की गति भी होती है। क्वाड्रेट हड्डी क्वाड्रेट प्रोट्रेक्टर पेशी तथा टेरिगॉइड प्रोट्रेक्टर पेशी के द्वारा आगे को सीधे ही तथा परोक्ष रूप में मैंडिबुलर डिप्रेसर से आगे को खिंच जाती है। मैंडिबुलर डिप्रेसर से मैंडिबल नीचे को आता है जो एक ऐसी क्रिया है जिससे पैलेटाइन हड्डियों के द्वारा जुगल तथा टेरिगॉइड को धक्का लगता तथा ऊपरी जबड़े ऊपर को उठ जाते हैं। इसके अतिरिक्त लचीली हड्डियों की एक संधि अथवा पट्टी नेजल तथा फ्रॉन्टल हड्डियों की संधि (अग्रगतिक संधि, prokinetic joint) के समीप बनी होती है जिससे ऊपरी जबड़े की ऊपर को गति संभव हो पाती है। मगर कभी-कभी इसके बजाए एक लचीली संधि चोंच की नोक के समीप हो सकती है (नासागतिक संधि, rhynchokinetic joint) जिसके कारण नोक को ऊपर को उठाया जा सकता है।

केवल अनुड्डयनशील पक्षियों को छोड़कर शेष सभी पक्षियों में स्टर्नम हड्डी में नौतल बना होता है जिससे शक्तिशाली उड्डयन पेशियां लगी होती हैं।

पक्षियों की करोटि (चित्र 3.49) अपने एकल ऑक्सिपिटल अस्थिकंद के द्वारा कशेरुक दण्ड की प्रथम ग्रीवा कशेरुक के साथ संधि बनाती है। पक्षियों का कशेरुक दण्ड उड्डयन के लिए बहुत ज्यादा विशेषित हो गया है। इसका सबसे पृथक लक्षण है इसकी दृढ़ता। गर्दन (ग्रीवा) क्षेत्र बहुत लम्बा होता है तथा ग्रीवा कशेरुकें (cervical vertebrae) इस प्रकार संधिस्त रहती हैं कि शीर्ष और गर्दन बहुत गतिशील होते हैं क्योंकि पक्षियों में शीर्ष का स्वतंत्र रूप में गति कर सकना बहुत ज़रूरी है। इसकी तुलना में धड़ प्रदेश बहुत छोटा हो गया होता है, और ग्रीवा कशेरुकों को छोड़कर अधिकांश कशेरुकें परस्पर और साथ ही श्रोणि मेखला से भी समेकित होकर एक कड़ा परंतु साथ ही हल्का पंजर बनाती हैं जो टांगों को तो आलम्ब प्रदान करता ही है साथ ही उड़ान के लिए भी दृढ़ता प्रदान करता है। इस दृढ़ता में और अधिक बढ़ोतरी के लिए पसलियां भी अधिकांशतः कशेरुकों, अंस-मेखला तथा स्टर्नम के साथ समेकित रहती हैं। धड़ की कशेरुकें बहुत मजबूती से परस्पर समेकित होकर पंखों की क्रिया के लिए और श्रोणि मेखला एवं पिछली टांगों के लिए एक मज़बूत संधि स्थल बनने के वास्ते एक सक्षम फलक्रम (आलम्ब) का कार्य करती हैं।

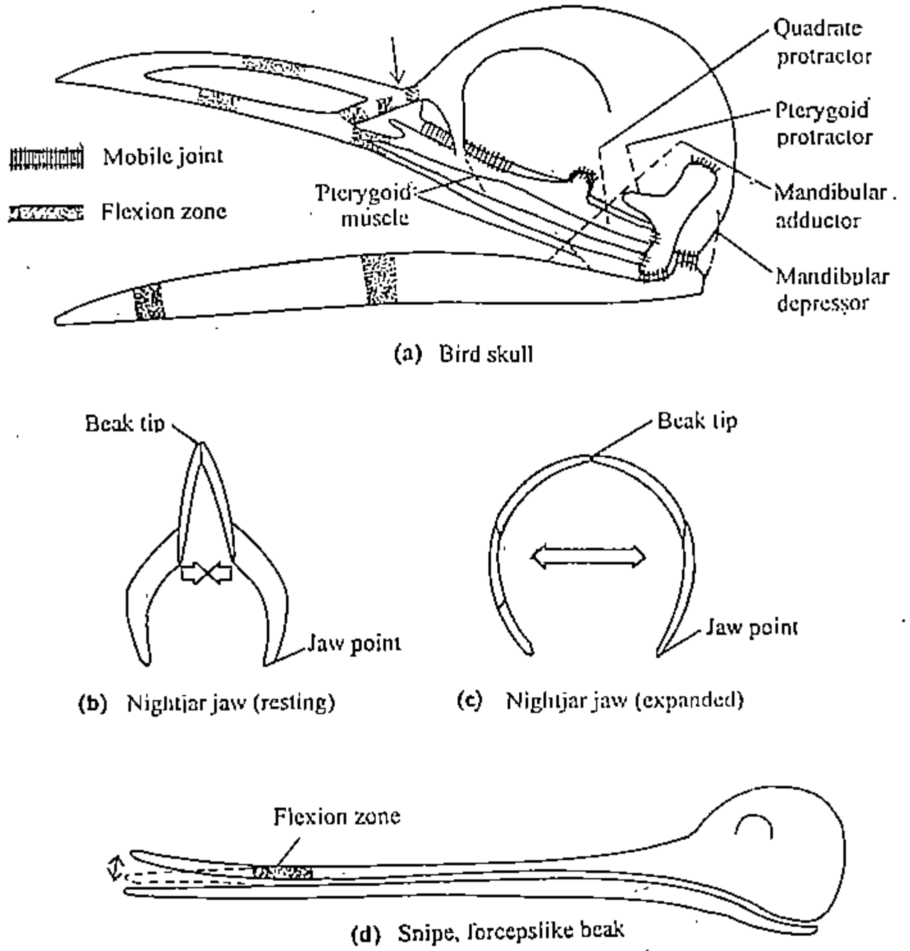

चित्र 3.48: पक्षियों में करोटि का गतिक्रम। (a) पक्षी की करोटि में बहुसंख्यक गतिशील संधियां होती हैं और साथ ही ऐसे अनेक नम्य क्षेत्र होते हैं जो जवड़ों के तनिक से भी समंजनों को हो सकने देते हैं। नम्यता का सबसे महत्वपूर्ण क्षेत्र जो ऊपरी चोंच की स्वतंत्र गति को होने देता है उसे तीर के निशान द्वारा दिखाया गया है। (b) "नाइटजार" जैसे कुछ पक्षियों के निचले जवड़े अलग-अलग फैलाए जा सकते हैं। चित्र b में जवड़े को विश्रामी अवस्था में दिखाया गया है जबकि (c) में जवड़ों को खुला दिखाया गया है जिससे मुख चौड़ा हो गया है जो उड़ते समय कीटों को पकड़ने के लिए एक कलछी जैसा बन गया है। (d) चोंच के भीतर के नम्य क्षेत्र खास तौर से "स्नाइप" जैसे लम्बी चोंच वाले पक्षियों में केवल चोंच की नोक ही थोड़ी सी खुल जाती है। जब कहीं पानी के किनारे ये पक्षी कीचड़ में अपना भोजन तलाश रहे होते हैं तब कृमियों को पकड़ने में इनकी चोंच चिमटी-जैसी इस्तेमाल की जाती है।

आर्कियॉप्टेरिक्स में स्टर्नम का न होनां (चित्र 3.49a) इस ओर संकेत देता है कि उसमें आधुनिक पक्षियों के जैसा, उड्डयन पेशियों के संलगन के लिए कोई दृढ़ स्थल नहीं था। यही वह एक मुख्य लक्षण रहा होगा, जिसके कारण *आर्कियॉप्टेरिक्स* पंखों का बल पूर्वक फड़फड़ाना पैदा नहीं कर सका होगा। फिर भी *आर्कियॉप्टेरिक्स* में "विश-बोन" (फ़र्क्युला) हुआ करती थी जिसके ऊपर काफ़ी अंस पेशियां (pectoral muscles) लगी हो सकती थीं जिनसे यह एक दुर्बल उड़ान भर सकता था। भारी, ठोस सरीसृप-सरीखे कंकाल का होना भी एक अन्य कारण था जिससे *आर्कियॉप्टेरिक्स* की उड़ान सीमित स्तर की थी।

आधुनिक पक्षियों के अग्रपादों की हड्डियां भी उड्डयन के लिए बहुत रूपांतरित हो गयी हैं। ये भीतर से खोखली और संख्या में कम हो गयी हैं। अनेक हड्डियां आपस में जुड़ गयी हैं। पक्षियों के पंखों में भी स्पष्टतः मूल कशेरुकी अग्रपाद की ही पुनर्व्यवस्था दिखाई पड़ती है यानि उनमें भी वे ही तत्व पाए जाते हैं- उपरिबाहु, अग्रबाहु, कलाई तथा उंगलियां, बस अंतर यह है कि ये रूपांतरित हो चुके हैं (चित्र 3.49b)।

कलाई के दूरस्थ भाग की हड्डियां बहुत ही ज्यादा रूपांतरित हुई हैं, हालांकि तीन छोटी उंगलियां एक समेकित **कार्पोमेटाकॉर्पस (carpometacarpus)** से निकलती हैं। इनमें से सबसे आगे की दिशा की उंगली यानि उंगली A. चित्र 3.49b में, **ऐलुला (alula)** (पक्षिका) को सहारा देती है।

पक्षियों का कंधा और उनकी अंस-मेखला भी बहुत विशेषित होती है खासकर उड़ने वाले पक्षियों में, क्योंकि इनमें बहुत ही शक्तिशाली उड्डयन पेशियां (पेक्टोरेलिस, pectoralis, पेशियां तथा सुप्राकोरेकॉयडियस,

supracoracoideus पेशियां) पायी जाती हैं। अधोघात (downstroke) यानि पंख के नीचे आने की गति को प्रदान करने के वास्ते अधिक शक्ति चाहिए और इस शक्ति के लिए एक विशाल पेक्टोरेलिस (अंस) पेशी की आवश्यकता है, यह पेशी एक बहुत ज़्यादा बढ़ गयी सतह से संलग्न होती है, और यह सतह एक कूटक (ridge) (नौतल, keel अथवा केराइना, carina) द्वारा प्रदान होती है जिस पर भारी भरकम पेशी ठीक से समा सकती है। उड़ने के दौरान कंधे की स्थिरता जरूरी है जो अनेक आलम्ब स्तम्भों और आबंधों द्वारा प्राप्त होती है। आधुनिक पक्षियों में स्कैपुला को स्टर्नम से जोड़ने वाली कोरैकॉइड हड्डी एक मज़बूत आलम्बी स्तम्भ का कार्य करती है जो इन उड़न पेशियों के कार्य करते समय कंधों को पिचकने से रोकती है। एक आबंध तथा स्प्रिंग के रूप में महत्वपूर्ण क्लेविकल मौजूद पायी जाती है। दायीं और बायीं क्लैविकलें परस्पर मिलकर फ़र्कुला अथवा "विश-बोन" कहलाती हैं तथा इस पर भी एक विशाल पेशी जुड़ी होती है।

पक्षियों की टांगें द्विपाद डाइनोसौरों की पिछली टांगों के समान होती हैं तथा इनमें पंखों की अपेक्षा बहुत कम स्पष्ट रूपांतरण होते हैं क्योंकि इनकी रचना-व्यवस्था प्रधानतः चलने के लिए होती है अथवा पक्षीसाद (डाल पर बैठने) (perching) या कभी-कभार तैरने के लिए होती है जैसी कि इनके सरीसृप पूर्वजों में होती थी। टिबिया तथा कुछ टार्सलें समेकित होकर टिबियोटार्सस **(tibiotarsus)** बनाती हैं। शेष टार्सलें तथा लम्बी हो गयी मेटाटार्सलें समेकित होकर एक टार्सोमेटाटार्सस **(tarsometatarsus)** बनाती हैं। पांचवी पादांगुलि सभी पक्षियों में समाप्त हो गयी है। पहली पादांगुलि अनेक पक्षियों में पीछे को घूम गयी है और कुछ में होती ही नहीं। यह पादांगुलि एक टेकन का काम करती है तथा जब पक्षी डाल पर बैठा हो तब उसके पांव की पकड़ को अधिक मज़बूत बना देती है। ज़मीन पर दौड़ने अथवा उड़ान भरने से पूर्व की कूद में टांग की कारगरता दो बातों से बढ़ती है: एक तो मेटाटार्सलों का लम्बा हो जाना और दूसरे एड़ियों का जमीन से ऊपर को उठ जाना। पादों की कुछ हड्डियों तथा श्रोणि हड्डियों के समेकन से उनके विस्थापन (dislocation) एवं उनके क्षतिग्रस्त होने की संभावना कम हो जाती है क्योंकि जब उड़ना समाप्त करते हुए पक्षी जमीन पर पैर टिकाते हैं तब पक्षियों की टांगों को "शॉक-एबज़ार्बर" यानि झटका सह सकने वाले की तरह कार्य कर सकना चाहिए। श्रोणि मेखला की दोनों दिशाओं की प्यूबिसें तथा इस्कियमें पीछे को रुख किए हुए होती हैं और परस्पर समेकित न होकर मध्य-अधर श्रोणि सिम्फ़ाइसिस (संधान) नहीं बनाती जैसी कि वे अन्यथा अन्य थल कशेरुकियों में बनती हैं। इसके कारण अंतरंग पीछे की ओर खिसक गए हैं और चूंकि पाद भी छोटे हो गए हैं इसलिए देह का गुरुत्व केंद्र पिछली टांगों पर आ गया है।

पेशी-तंत्र

पक्षियों में तीन बातें एक तो, पंखों की शक्तिशाली एवं जटिल गतियों, दूसरे, शरीर को आलम्ब प्रदान कराने तथा तीसरे, केवल एक जोड़ी टांगों के होने के कारण इनके पेशी-तंत्र में भारी रूपांतरण हुए हैं। उड़ान-मांगों को पूरा करने के लिए संचलनी अथवा पंखों की उड्डयन पेशियां अपेक्षाकृत ज्यादा भारी-भरकम होती हैं। इनमें सबसे बड़ी पेशी पेक्टोरेलिस मेजर **(pectoralis major)** है जो स्टनर्म पर से शुरू होकर ह्यूमरस की अधर सतह पर निवेशित होती है। इसी पेशी से पंखों का उस समय शक्तिशाली अधोघात (downstroke) होता है जब उड्डयन के दौरान यह पंख को नीचे लाती है (चित्र 3.50)। आप शायद यह सोचें कि पुनः पूर्व स्थिति लाने वाली पेशियां पृष्ठ दिशा में स्थित होंगी मगर उसकी बजाए एक अन्य अधर पेशी सुप्रा कोरैकॉइडियस **(supra coracoideus)** होती है जिससे ऊर्ध्व घाट (upstroke) होकर पंख अपनी पूर्वस्थिति में आ जाता है और इस प्रकार यह पेशी पेक्टोरेलिस मेजर की विरोधी हुई। सुप्रा कोरैकॉइडियस का आरम्भ भी स्टर्नम से ही मगर पेक्टोरेलिस मेजर की पृष्ठ दिशा से होता है और इस तरह यह छाती पर पेक्टोरेलिस मेजर के नीचे दबी स्थित होती है। यह एक कंडरा (tendon) के द्वारा पंख की ह्यूमरस की पृष्ठ दिशा पर जुड़ी होती है जिसके कारण यह मानों एक बड़ी ही विचित्र प्रकार की "रस्सी और गरारी" के अध्ययन से नीचे से ही खींचती है। ये दोनों पेशियां नौतल ("कील") पर ही लगी होती हैं। ये दो पेशियां अपवाद स्वरूप बहुत ही ज्यादा बड़ी होती हैं और जबरदस्त उड़ने वाले पक्षियों में उनके पूरे देह-भार का 25-30% भाग इन्हीं दोनों पेशियों का होता है।

वत्तखों तथा अन्य पक्षियों में जो बहुत उड़ती हैं उड्डयन पेशियों में मुख्यतः वायवीय धीमे फेज वाले तंतु होते हैं जिनमें पेशी हीमोग्लोबिन (मायोग्लोबिन) की मात्रा अधिक होती है एवं उनका रंग गहरा होता है। मुर्गे-मुर्गियों तथा अन्य ऐसे पक्षियों में जो अपने पंखों को तेज़ी से मगर लगातार नहीं फड़फड़ाते उनकी पेशियों में मुख्यतः तीव्र फेज़ वाले अथवा ग्लाइकोलिटिक तंतु होते है जो सफ़ेद रंग के होते हैं।

टांगों में पेशी की मुख्य संहति जांघ के प्रदेश में फ़ीमर हड्डी को घेरती हुई पायी जाती है तथा एक छोटा सा हिस्सा टिबियोटार्सस (पिंडली, shank) के ऊपर स्थित होता है। मजबूत मगर पतली कंडराएं नीचे को आस्तीन-सरीखे आच्छदों से गुजरते हुए पादांगुलियों तक पहुंचती हैं। परिणामतः पांव जो लगभग पेशीविहीन होते है देखने में पतले और नाजुक से दिखायी पड़ते हैं। व्यवस्था की दृष्टि से मुख्य पेशी पिंड

(a)

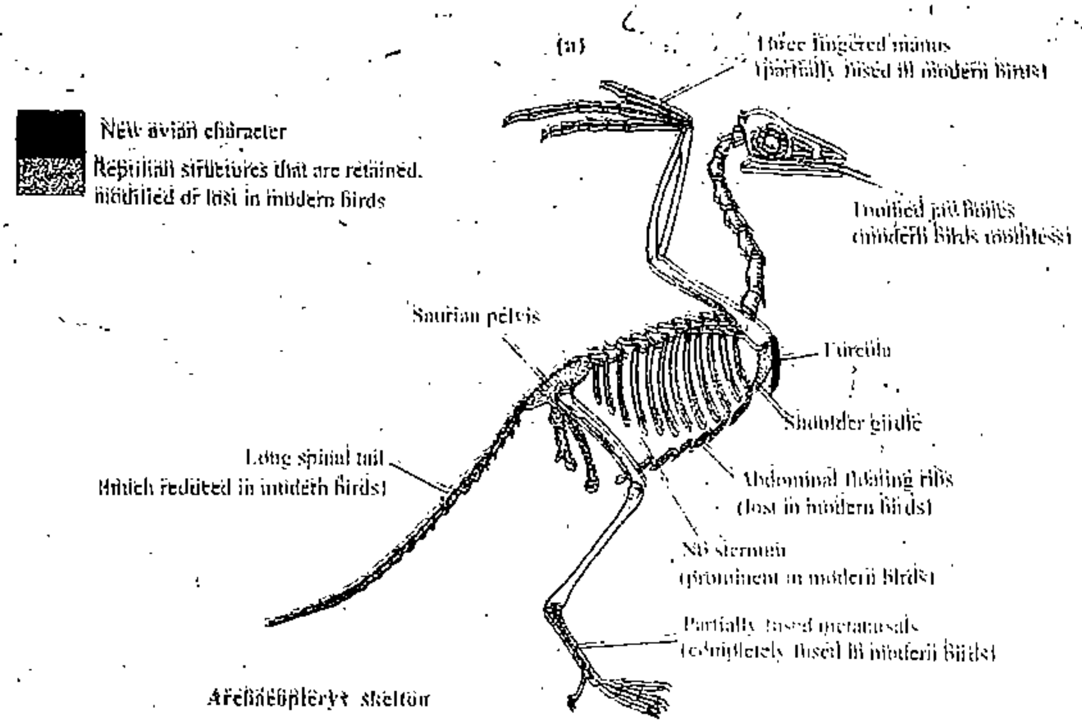

(b)

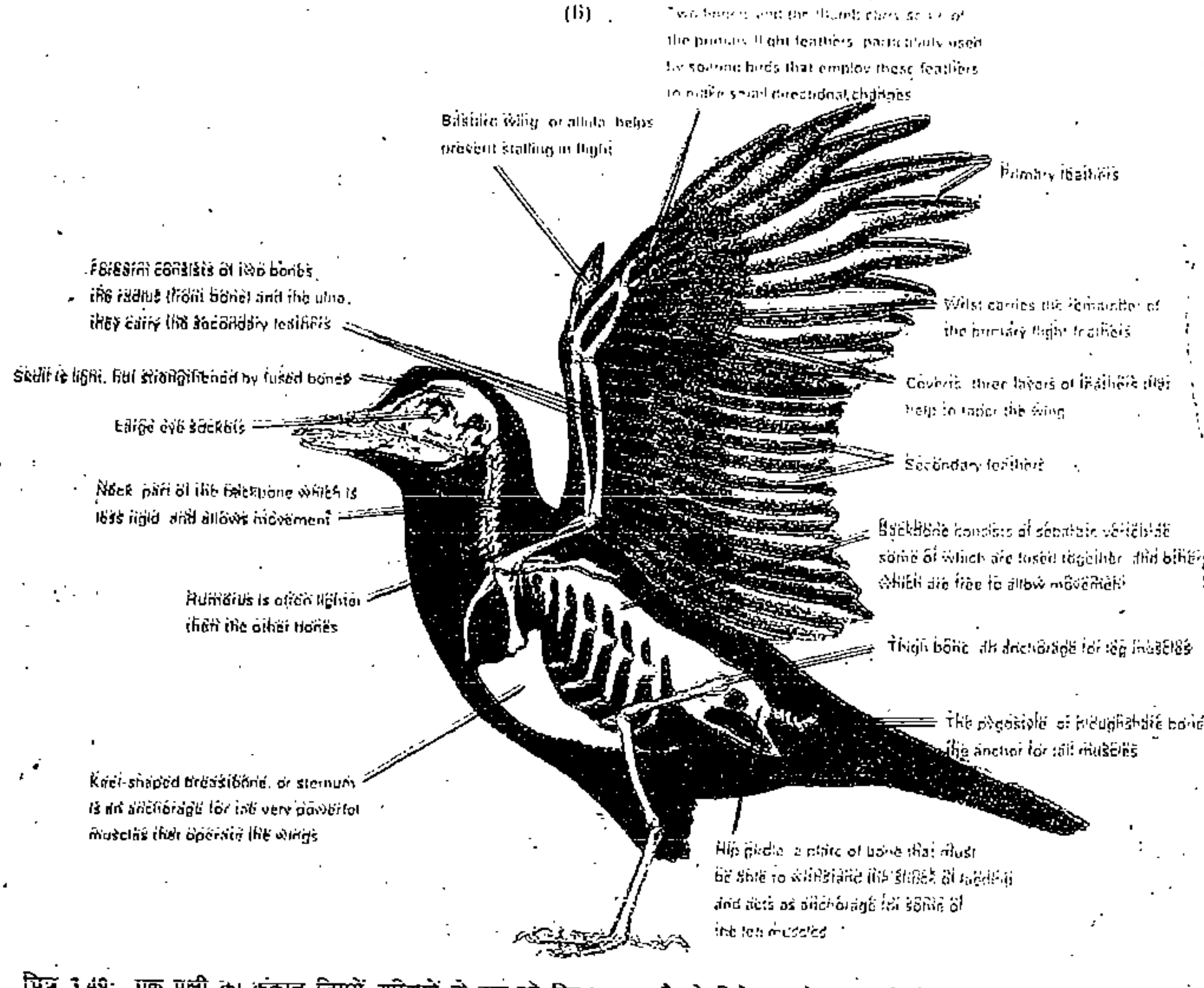

चित्र 3.49: एक पक्षी का कंकाल जिसमें अस्थियों के क्रम को दिखाया गया है जो विशेषरूप से उड़ान के लिए अनुकूलित होती हैं और कुछ उड्डयन पिच्छ भी दिखाए गए हैं, (b) *आर्कियाप्टेरिक्स* का कंकाल जिसमें सरीसृप संरचना (लाल रंग में) दिखायी गयी है जो आधुनिक पक्षियों में या तो कायम बने हैं, या समाप्त हो गए हैं या बहुत ज़्यादा रूपांतरित हो गए हैं। फर्क्युला नामक हड्डी ("विश-बोन") पक्षियों की एक नयी विशिष्टता है।

पक्षी के गुरूत्व केंद्र के समीप होता है और उसके साथ ही साथ वह पतली हल्की टांगों को अच्छी गतिशीलता प्रदान करता है। चूंकि पांव की बनावट का अधिक भाग हड्डियों, कण्डराओं तथा कड़ी शल्कीय त्वचा का ही बना होता है इसलिए हिमीकरण (बर्फ जमने की दशा) से हो सकने वाली क्षति के प्रति ये टांगे बहुत अच्छी तरह प्रतिरोधी होती हैं।

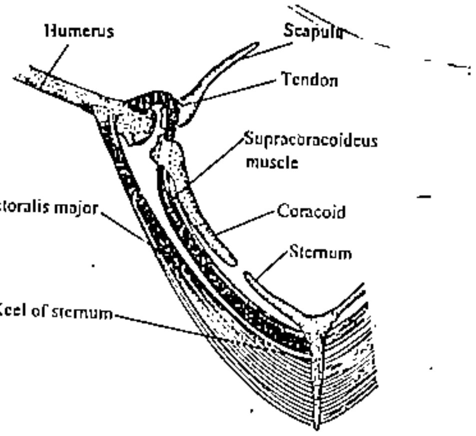

चित्र 3.50: पक्षी के कंधे के प्रदेश तथा स्टर्नम पर से लिया गया आरेखीय अनुप्रस्थ सेक्शन जिसमें उड्डयन पेशियां दिखायी गयी हैं, ये पेशियां इस प्रकार व्यवस्थित होती हैं कि गुरूत्व केंद्र शरीर में नीचे को बना रहे। दोनोंप्रधान उड्डयन पेशियां स्टर्नम के नौतल पर जमी रहती हैं। पेक्टोरेलिस पेशी के संकुचन से पंख नीचे को खिंचता है, और उसके बाद जब यह पेक्टोरेलिस मेजर विश्रांत होती है तब सुप्रा कोरैकॉइडियन संकुचन करके एक गरारी प्रणाली की तरह काम करती हुई पंख को ऊपर को उठाती है।

पक्षियों में सरीसृपों की वह लम्बी पूंछ जो *आर्कियोप्टेरिक्स* में पूरी तरह विद्यमान थी, समाप्त हो चुकी है और उसकी जगह इनमें एक पिनकुशन-जैसी पेशी-स्थली होती है जिसमें पूंछ के पिच्छ जमें होते हैं। इस भाग के भीतर एक विस्मयकारी व्यवस्था अत्यंत छोटी-छोटी पेशियों की होती है जिनकी संख्या बहुत ज़्यादा, यहां तक कि कुछ स्पीशीज़ में 1000 तक हो सकती है, ये महत्वपूर्ण निर्णायक पुच्छ पिच्छों का नियंत्रण करती हैं। मगर सबसे अधिक सम्मिश्र प्रकार का पेशी-तंत्र तो पक्षियों की गर्दन में पाया जाता है; बड़े विशद रूप में परस्पर गुथी हुई तथा उपविभाजित ये पतली और रेशेदार पेशियां पक्षियों की गर्दन को एक ऐसी विलक्षण सुनम्यता (लचक, मुड़ सकना) प्रदान करती हैं जो अन्य किसी भी कशेरुकी में नहीं पायी जाती।

तंत्रिका-एवं संवेदी तंत्र

पक्षियों के तंत्रिका और संवेदी तंत्र ठीक-ठीक उन सम्मिश्र समस्याओं की ओर संकेत देते हैं जो इनके वायवीय जीवन एवं एक अत्यंत दृश्यमान जीवन शैली के साथ जुड़ी हैं। पक्षियों के मस्तिष्क में सुविकसित प्रमस्तिष्क गोलार्ध **(cerebral hemispheres)** (सेरीब्रम), अनुमस्तिष्क **(cerebellum)** तथा मध्य मस्तिष्क टेक्टम **(midbrain tectum)** (दृक् पालियां, optic lobes) होती हैं (चित्र 3.51)। प्रमस्तिष्क बड़े आकार का हो गया है जो गहराई में स्थित कार्पस स्ट्रिएटम **(corpus striatum)** नामक धूसर द्रव्य की मात्रा के बढ़ जाने से हुआ है। यह बढ़ जाना प्रमस्तिष्क कॉर्टेक्स के कारण नहीं है जो स्तनियों की स्थिति से भिन्न है जिनमें यही भाग मुख्य समन्वयकारी केंद्र होता है मगर पक्षियों में बिना विदरों वाला और कम विकसित रहता है। पक्षियों के मस्तिष्क में मुख्य समाकलनी केंद्र कार्पस स्ट्रिऐटम होता है और इसी के द्वारा पक्षियों की विविध क्रियाओं जैसे कि संगीत, उड़ना, खाना और अन्य सभी प्रकार के सम्मिश्र सहज वृत्तिक जनन क्रियाकलापों का नियंत्रण होता है। तोते और कौए जैसे बुद्धिवान पक्षियों में मुर्गों और कबूतरों जैसे कम बुद्धिवान पक्षियों की अपेक्षा प्रमस्तिष्क गोलार्ध अधिक बड़े होते हैं। अनुमस्तिष्क (cerebellum) भी एक महत्वपूर्ण समन्वयकारी केंद्र है जिसमें पेशी-स्थिति का ज्ञान, संतुलन ज्ञान तथा दृष्टि संकेत [illegible] होते हैं तथा जिनका उपयोग गतियों एवं संतुलन के समन्वय में किया जाता है। मध्य मस्तिष्क की पार्श्वतः उभरी हुई बहिर्वृद्धियों के रूप में बनी दृक् पालियां (optic lobes) दृष्टि साहचर्य उपकरण बनाती हैं जो स्तनियों के दृष्टि कॉर्टेक्स के तुल्य होता है।

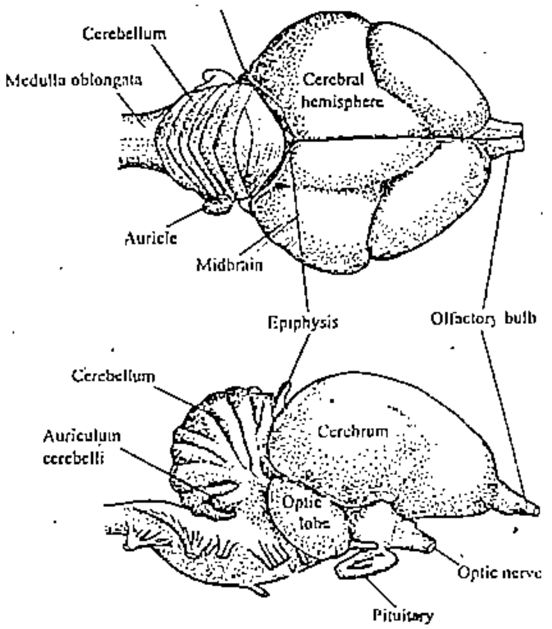

चित्र 3.51: पक्षी का मस्तिष्क जिसमें उसके मुख्य क्षेत्र दिखाए गए हैं।

अनउड़नशील पक्षियों, बत्तखों और गिद्धों को छोड़कर अधिकतर पक्षियों में गंध और स्वाद का ज्ञान कम विकसित होता है और इसी से इनके घ्राण अंग एवं मस्तिष्क के घ्राण-भाग (olfactory parts) ह्रासित हो गए हैं। मगर इस कमी को अच्छे श्रवण-ज्ञान एवं असाधारण रूप में उन्नत दृष्टि ने न केवल पूरा ही किया है बल्कि और भी ज्यादा कुशल बना दिया है।

विभिन्न तीव्रताओं की ध्वनियों में विभेद कर सकने और ध्वनि के तारत्व के तीव्र उतार-चढ़ाव के लिए अनुक्रिया कर सकने की क्षमता पक्षियों के कान में मानव के कान की अपेक्षा बहुत ज्यादा होती है।

स्तनियों ही की तरह पक्षियों के कान में तीन भाग होते हैं (चित्र 3.47) (i) **बाहरी कान (external ear)** जो कान के पर्दे तक जाती हुई एक ध्वनि-संवहनी नली होती है, (ii) **मध्य कान (middle ear)** जिसमें कम्पनों को संप्रेषित करने वाली एक शलाका-जैसी कॉलुमेला (columella) होती है और (iii) **भीतरी कान (internal ear)** जिसमें पक्षियों का कॉक्लिया स्तनियों की तुलना में बहुत छोटा होता है, हालांकि इस पर भी पक्षी लगभग मनुष्यों के जैसे ही ध्वनियों के आवृत्ति परास (frequency range) को सुन सकते हैं।

उड़ने वाले प्राणियों में दृष्टि का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है और इसलिए पक्षियों की आंखें अपेक्षाकृत बड़ी होती हैं। ये आंखें शीर्ष के भार का 15% अथवा उससे भी ज्यादा होती हैं (मनुष्यों में शीर्ष भार का केवल 1% होती हैं)। पक्षियों की आंखों की स्थूल संरचना कशेरुकियों की आंखों की ही तरह होती है मगर ये अपेक्षाकृत बड़ी कम गोलाकार, और लगभग पूर्णतः गतिविहीन होती हैं। पक्षी अपनी आंखें घुमाने की बजाए अपना शीर्ष घुमा कर पूरे क्षेत्र की छान बीन कर लेते हैं। रंग दृष्टि बहुत अच्छी तरह विकसित होती है। पक्षियों में शलाकाएं (rods) (कम रोशनी में देखने के लिए) तथा शंकु (cones) (रंग दृष्टि के लिए) प्रकाश-संवेदी रेटिना में उससे कहीं ज्यादा सघन रूप में भरे होते हैं जितना कि वे अन्यथा स्तनियों में होते हैं, इससे पक्षियों की दृष्टि-सुतीक्ष्णता (visual acuity) (आकार में छोटी तथा परस्पर दूरी में अधिक निकट होती जाती वस्तुओं को पृथक देख सकने की क्षमता) मानवों की अपेक्षा कई गुना अधिक होती है। दिवाचर पक्षियों में शंकुओं की प्रधानता होती है तथा रात्रिचर पक्षियों में शलाकाओं की। अधिकतम सुतीक्ष्णता और इसी के कारण सर्वोत्तम दृष्टि वाला फ़ोविया (fovia) नामक थोड़ा से गहरा दबा क्षेत्र, एक गहरे गढ़े (शिकारी तथा कुछ अन्य पक्षियों में) के भीतर होता है जिससे पक्षी के लिए अनिवार्य हो जाता है कि वह अपनी लक्ष्य वस्तु पर बिल्कुल ठीक-ठीक फ़ोकस करें। एक विभेदक लक्षण **पेक्टेन (pecten)** का पाया जाना है, और इस मामले में पक्षी की आंख सरीसृप की आंख के समान होती हैं, यह पेक्टन एक बहुत ज़्यादा रक्तवाहिकामय अंग होता है जो आंख के भीतर दृक् तंत्रिका के निकट जुड़ा होता तथा विट्रियस ह्यूमर (vitreous humour) में खड़ा-उभरा हुआ होता है (चित्र 3.52)। माना जाता है कि पेक्टन आंख में पोषण प्रदान करता है। हो सकता है इसका कार्य और भी कुछ ज़्यादा हो, मगर अभी तक वह अस्पष्ट बना हुआ है।

पक्षियों के शीर्ष पर आंखों के स्थान का संबंध पक्षी के जीवन विधि से जुड़ा है। शाकाहारी पक्षियों में, जिन्हें अपने परभक्षियों से बचना होता है, आंखें पार्श्वतः स्थित होती हैं ताकि वे दुनिया का एक व्यापक बड़ा क्षेत्र देख सकें, और इस प्रकार वे अपने पीछे और सामने दोनों तरफ को देख सकती हैं। उल्लू तथा बाज़ जैसे शिकारी पक्षियों की आंखें सामने की ओर को लक्ष्य किए रहती हैं। "बिटर्न" नामक पक्षी जो अपने आहार को दलदलों में ढूंढता है, उसकी आंखें नीचे की ओर को दिशा किए हुए होती हैं।

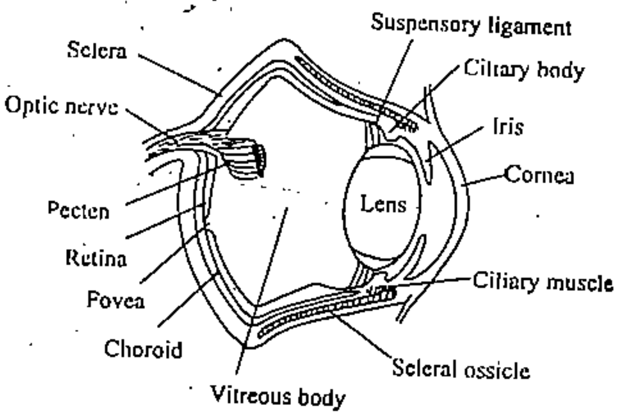

चित्र 3.52: शिकारी पक्षी की आंख। पक्षी की आंख में संरचना की दृष्टि से वे सभी घटक पाए जाते हैं जो स्तनी की आंख में होते हैं। मगर इनके अलावा एक अतिरिक्त संरचना 'पेक्टेन' भी पाया जाता है जिसके बारे में समझा जाता है कि वह रेटिना को पोषण पहुंचाता है, यह पेक्टेन सरीसृप आंख में भी पाया जाता है।

ाज़ नामक पक्षियों में केंद्रीय ोविया के अतिरिक्त एक और ोविया उसके पार्श्व में बना होता । केंद्रीय फोविया साफ़ एकनेत्रीय ष्टि के लिए होता है तथा पश्च ोविया द्विनेत्रीय दृष्टि के लिए। ाज़ की दृष्टि-तीक्ष्णता (visual cuity) मानवों की दृष्टि तीक्ष्णता लगभग आठ गुना अधिक होती है ासे वह दो किलोमीटर तक की चाई से नीचे जमीन पर दबे-झुके े हुए खरगोश को साफ़ देख कता है। धीमे प्रकाश में देख कने की क्षमता मनुष्य की अपेक्षा ल्लू में दस गुना से भी ज़्यादा ती है।

बोध प्रश्न 13

नीचे दिए गए कथनों को उचित शब्द लिख कर सही कीजिए:-

क) पक्षियों में प्रमस्तिष्क कॉर्टेक्स निर्णायक समन्वयकारी केंद्र होता है जिसके भीतर पेशी-स्थिति ज्ञान, संतुलन और दृष्टि संकेत एकत्रित हुए होते हैं तथा जिनका उपयोग गति एवं संतुलन के समन्वय में किया जाता है।

ख) अनउड्डयनशील पक्षियों तथा बत्तखों में सूंघने तथा स्वाद का ज्ञान अल्पविकसित होता है।

ग) अनेक पक्षियों में आंख की रेटिना पर तीन फ़ोविया होते हैं, एक तीव्र एकनेत्री दृष्टि के लिए, एक द्विनेत्री दृष्टि के लिए तथा एक रंग के लिए।

घ) एक विभेदक लक्षण जिसमें पक्षी की आंख स्तनी आंख के समान होती है पेक्टेन का पाया जाना है।

आहार, अशन और पाचन

पक्षियों का विकास आहार स्रोतों के साथ-साथ पृथ्वी पर पाए जाने वाले लगभग प्रत्येक पर्यावरण में हुआ है। पक्षी मांसभक्षी हो सकते हैं, शाकभक्षी अथवा दोनों ही।

ष्ठियभोजी पक्षियों में विशेष ार को ही चाहना उनके लिए सीमाकारी कारक बन जाता है ांकि जब कभी किसी कारण से कि रोग प्रतिकूल जलवायु आदि इन आहारों में कमी आ जाती या नष्ट हो जाते हैं तब उनका वेत बना रहना खतरे में आ ा है।

कुछ पक्षी सर्वभक्षी होते हैं (इसके लिए एक अन्य शब्द विविधाहारी **euryphagous** भी इस्तेमाल किया जाता है) और वे मौसम के अनुसार जो भी भरपूर मिलता है उसे खा लेते हैं। अन्य पक्षी विशेषित आहारक होते हैं (जिन्हें अल्पविध भक्षी **stenophagous** कहते हैं यानि बहुत ही इने-गिने प्रकार के भोजी)। खाए जाने वाले आहार के अनुसार पक्षियों की चोंचें बहुत विशेषित होती हैं। इनमें नानाविध प्रकार पाए जाते हैं जैसे कि कौओं की मज़बूत नुकीली चोंच से लेकर हंसावरों (flamingoes), धनेशों (hornbills) और टुकन (toucan) पक्षियों की भारी भरकम अति विशेषित चोंचों तक। चित्र 3.53 में विविध प्रकार से अनुकूलित चोंचों को दर्शाया गया है।

पक्षी बहुत भुक्खड़ तरीके से खाते हैं और वे ऊर्जा-सम्पन्न अर्थात् कैलोरी से भरपूर आहार पर जीवित रहते हैं। वे बहुत ज़्यादा मात्रा में खाना खाते हैं जो उनके कुशल पाचन-तंत्र में बड़ी तीव्रता से और खूब अच्छी तरह पच जाता है, ऐसा इसलिए कि इन्हें अपनी उच्च उपापचय दर को बनाए रखना होता है। एक लहटोरा ("श्राइक") खाए गए चूहे को तीन घंटों में पचा लेता है, "थ्रस्ट" पक्षी जंगली "बेरी" फलों का मात्र 30 मिनट में ही पचा लेता है। चूंकि पक्षियों में न तो दांत होते हैं, न जबड़ा हड्डियां और न ही जबड़ा-पेशियां इसलिए ये अपने आहार को चबा नहीं पाते और वह मुख में से एक छोटी ग्रसनी में से होता हुआ सीधे एक अपेक्षाकृत अधिक लम्बी पेशीय लचीली ग्रसिका (oesophagus) में पहुंच जाता है। लार-ग्रंथियां मुख में होती तो हैं मगर अल्पविकसित होती हैं, उनसे मुख्यत: एक श्लेष्म ही निकलता है जिससे आहार और साथ ही साथ पतली शृंग आच्छादित जीभ भी चिकनी फिसलने वाली हो जाती है।

स्वाद कलिकाएं बहुत ही कम न के बराबर होती हैं हालांकि सभी पक्षी कुछ हद तक चख तो सकते ही हैं। अनेक पक्षियों में जैसे कि कबूतरों, फ़िचों तथा इसी प्रकार की अन्य बीज एवं दाना-भक्षी स्पीशीज़ में ग्रसिका के निचले सिरे पर एक बड़ा हो गया भाग क्रॉप **(crop)** बन गया होता है जो एक भंडारण कक्ष जैसा काम करता है। इसमें थोड़े से समय के लिए आहार भंडारित होता है जिसके दौरान उसमें पानी मिलकर वह गीला और नरम हो जाता है। (क्रॉप की भीतरी संरचना के लिए चित्र 3.54 तथा पक्षियों के पाचन तंत्र के लिए चित्र 3.41 देखिए)

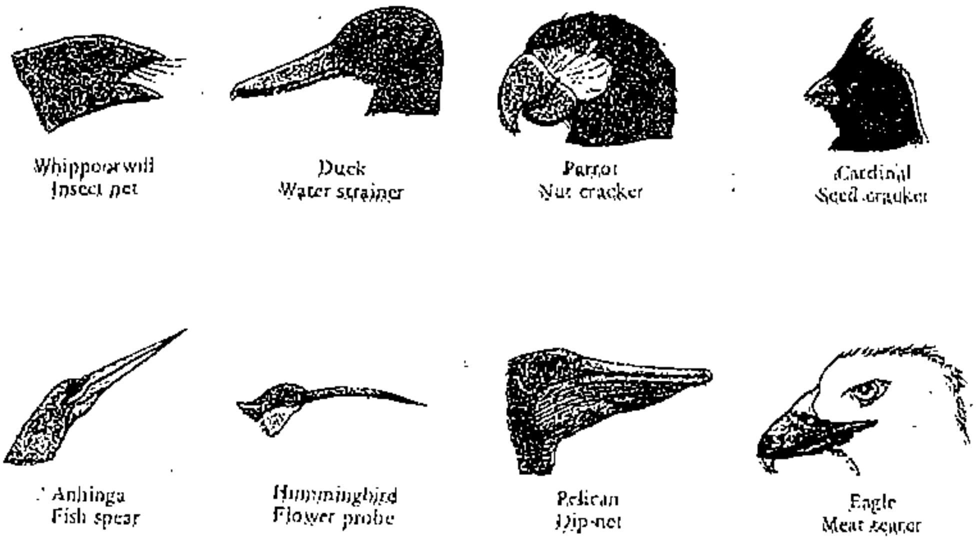

चित्र 3.53: विभिन्न प्रकार की आहारन (अशन) विधियों के लिए अनुकूलित अलग-अलग प्रकार की चोंचें।

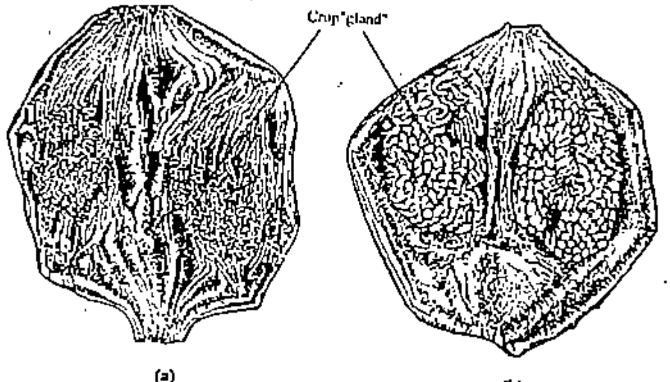

चित्र 3.54: कबूतर के क्रॉप को काटकर क्रॉप-ग्रंथियां दिखाई गयी हैं।

ग्रसिका तथा क्रॉप में से आहार जठर में पहुंचता है। जठर के दो भाग होते हैं (i) एक समीपस्थ प्रोवेंट्रिकुलस **(Proventriculus)** जिसमें ग्रसिका खुलती है और जिसमें से जठर रस का स्राव निकलता है, और (ii) दूरस्थ अधिक रूपांतरित पेशीय गिज़र्ड का भाग। गिज़र्ड की विशिष्टता इसमें अत्यधिक पेशीय दीवारों का होना तथा रूपांतरित ग्रंथियों का होना जिनसे एक शृंगीय अस्तर स्रावित होता है जो शृंगीय प्लेटों का रूप ले लेता है। ये प्लेटें चक्की के पाटों का सा काम करती हैं जो इस आहार को पीसने में मदद देती हैं, यानि ये दांतों और जबड़ों के जैसा काम करती हैं। अनेक स्पीशीज़ छोटे-छोटे कंकड़-पत्थरों को निगल जाया करती हैं जो गिज़र्ड में जाकर आहार को और भी ज्यादा पीसने और उसमें जठर रस को मिला कर लुग्दी बनाने में सहायता करते हैं। अनेक मांसभक्षी स्पीशीज़ में गिज़र्ड एक जाल के जैसा कार्य करता है जो नुकीली हड्डियों, बालों और ऐसे ही अन्य अपच्य पदार्थों को आंत्र में प्रवेश करने से रोकता है। तदुपरांत इस अपच्य पदार्थ को गुटिकाओं के रूप में मुंह में से बाहर को उगल देता है। गिज़र्ड पीछे की ओर एक पाइलोरस (pylorus) संवरणी के माध्यम से छोटी अंतड़ी में खुलता है जिसे डुओडिनम भी कहते हैं। डुओडिनम के भीतर पाचन क्रिया जारी रहती है क्योंकि क्रमश: यकृत तथा अग्न्याशय से निकलने वाला पित्त एवं एंज़ाइम आहार का और आगे विघटन करते हैं। छोटी अंतड़ी के अस्तर पर विलाई बने होते हैं। एक जोड़ी छोटे अंधवर्ध या सीकम जो कुछ स्पीशीज़ में सुविकसित होते हैं छोटी

कबूतरों, फ़ाख़्ताओं तथा कुछ प्रकार के तोतों में क्रॉप न केवल आहार को भंडारित ही करता है बल्कि अपने अस्तर की एपिथीलियल कोशिकाओं के विघटन द्वारा दूध बनाता है। पक्षियों के इस "दूध" को नर और मादा दोनों ही मुंह से बाहर को उलट कर अपने नए चूज़ों के मुंह में डालते हैं। गाय के दूध की अपेक्षा इसमें वसा का अधिक अंश होता है।

अंतड़ी तथा बड़ी अंतड़ी (मलाशय, rectum) के संधि स्थल पर पाए जाते हैं। मलाशय पीछे अवस्कर (cloaca) में खुलता है जो पाचन नाल का अंतिम भाग होता है और जिसके भीतर जनन वाहिनियां तथा मूत्रवाहिनियां भी खुलती हैं। पित्ताशय अथवा यकृत से आने वाली दो पित्त-वाहिनियां तथा दो या तीन अग्न्याशय-वाहिनियां डुओडिनम में खुलती हैं। यकृत द्विपालियुक्त तथा अपेक्षाकृत बड़ा होता है। कम उम्र के पक्षियों में अवस्कर की पृष्ठ दीवार पर फेब्रिशियस-बर्सा (Bursa of Fabricious) बना होता है जिसमें B-लिम्फोसाइट होते हैं जो प्रतिरक्षा अनुक्रियाओं में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

बोध प्रश्न 14

निम्न में से प्रत्येक दशा के लिए एक शब्द बताइए:-

क) ऐसे पक्षी जो केवल सीमित प्रकार का आहार करते हैं।

ख) कुछ पक्षियों में पाया जाने वाला ग्रसिका का नीचे का फैला हुआ सिरा जो आहार के भंडारण का कार्य करता है।

ग) पक्षियों के जठर का वह पेशीय भाग जिसका अस्तर आहार को पीसने का कार्य करने वाली श्रृंगीय प्लेटों का बना होता है।

परिसंचरण तंत्र

पक्षियों के परिसंचरण (चित्र 3.55a) की सामान्य योजना बहुत कुछ स्तनियों की ही सी होती है। हृदय बड़ा चार कक्षों वाला होता है। इसकी निलय दीवारें शक्तिशाली होती हैं तथा इसमें दाहिने तथा बाएं पार्श्वों में पूरी तरह विभाजन हुआ होता है जिसके कारण ऑक्सीजन से रिक्त और ऑक्सीजन से परिपूर्ण रक्त आपस में मिल नहीं पाते (चित्र 3.55b)।

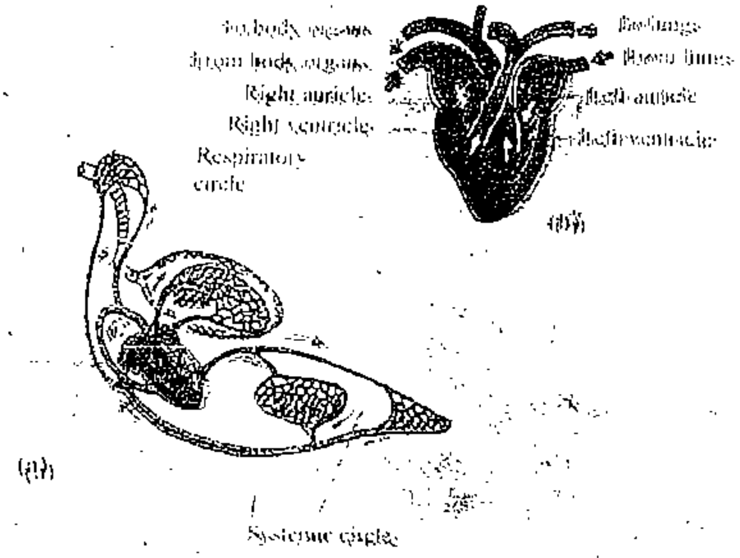

चित्र 3.55: (a) पक्षी हृदय का अधर दृश्य। (b) पक्षी का परिसंचरण तंत्र।

पक्षियों में स्तनियों की ही तरह श्वसन तथा दैहिक परिसंचरण एक-दूसरे से पूरी तरह पृथक रहते हैं। दाहिनी दैहिक चाप (systemic arch) बहुत सुव्यक्त होती है। इसकी दूसरे पार्श्व की जोड़ीदार यानि बायीं दैहिक चाप कभी भी पूरी तरह विकसित नहीं होती। इस प्रकार दाहिने निलय से निकलने वाली फुफ्फुस मूल के अतिरिक्त पक्षियों में बाये निलय से केवल एक ही महावाहिनी निकलती है इसके द्वारा वायवित रक्त दोनों कैरोटिडों (carotids) में, दोनों टांगों तथा शरीर में पहुंचता है। पक्षियों की गर्दन की लम्बाई और पतलेपन के अनुरूप दोनों कैरोटिड वाहिकाएं ग्रीवा कशेरुकों के नीचे एक-दूसरे के अगल-बगल चलती जाती हैं। कैरोटिड जोड़ों में से कभी-कभी एक ह्रासित होती है या होती ही नहीं। मगर गर्दन की दो जुगुलर (jugular) शिराएं एक अनुप्रस्थ शिरा द्वारा परस्पर जुड़ी होती हैं, यह एक ऐसा अनुकूलन है जिसके द्वारा सिर के घुमा लिए जाने की स्थिति में एक जुगुलर का रक्त दूसरी जुगुलर में चला जा सकता

है। पंखों तथा छाती में जाने वाली बाहु (brachial) तथा अंस (pectoral) धमनियां असाधारण रूप में बड़ी होती हैं।

पक्षियों का परिसंचरण तंत्र बहुत कार्यदक्ष होता है तथा स्तनियों की तरह इनका हृदय स्पंदन भी बहुत तीव्र होता है। हृदय-दर तथा देह भार में प्रतिलोभी संबंध होता है। उदाहरण के लिए, आराम की अवस्था में "टर्की" पक्षी की हृदय-दर लगभग 93 स्पंद प्रति मिनट होती है तथा मुर्गे की 250 स्पंद प्रति मिनट। पक्षियों में रक्त दाब लगभग उतना ही होता है जितना कि उतने ही साइज़ के किसी स्तनी का।

पक्षियों की लाल रक्त कोशिकाएं स्तनियों की कोशिकाओं से थोड़ी अधिक बहुत अण्डाकार तथा केंद्रकयुक्त होती हैं। ज़ख्मों को ठीक करने तथा रोगाणुओं को नष्ट करने में पक्षियों के रक्त की गतिशील अमीबीय कोशिकाएं (भक्षिकाणु, phagocytes) असाधारण रूप में सक्रिय तथा कार्यक्षम होती हैं।

श्वसन तंत्र

पक्षियों का श्वसन-तंत्र सरीसृपों तथा स्तनियों के श्वसन-तंत्र से मूलत: भिन्न होता है और उड्डयन के लिए उच्च उपापचयी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए गज़ब के तरीके से अनुकूलित हैं (चित्र 3.56 में पक्षियों का श्वसन-तंत्र दिखाया गया है)। पक्षियों के नथुने भीतर को मुख गुहा के ऊपर बने आंतरिक नासाछिद्र में खुलते हैं। ग्रसनी के फ़र्श पर बना झिरी जैसा ग्लॉटिस (glottis) लम्बी सुनम्य श्वासनली (trachea) में खुलता है। श्वासनली पीछे सिरिंक्स (syrinx) तक जाती है। सिरिंक्स में एक जोड़ी प्राथमिक श्वसनी **(primary bronchus)** निकलती हैं जो एक-एक उस ओर के फेफड़े में चली जाती हैं। फेफड़े छोटे, युग्मित स्पंजी अंग होते हैं जिनमें लचीलापन नहीं होता (फैल नहीं सकते)।

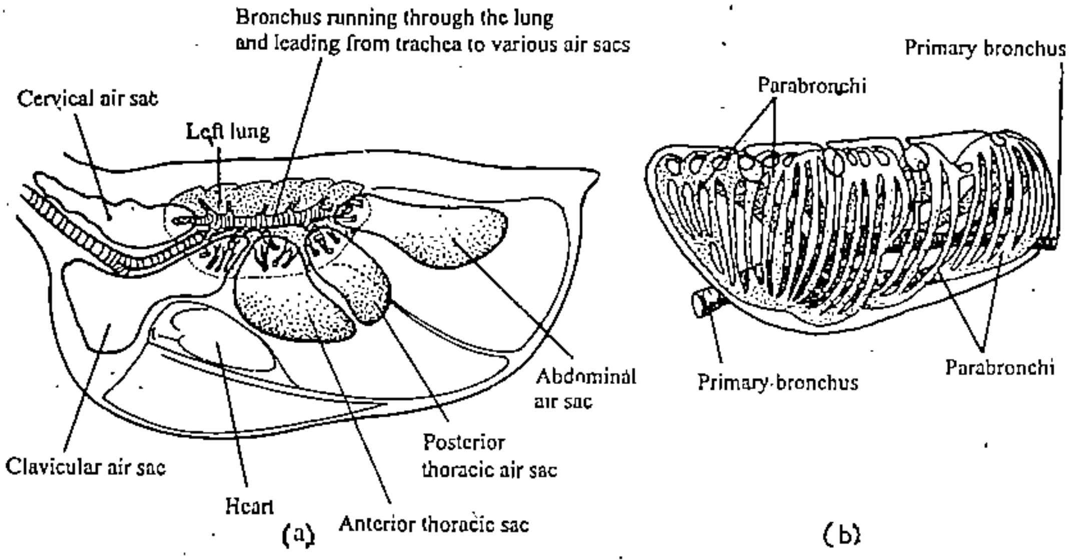

चित्र 3.56: पक्षी का श्वसन तंत्र। (a) फेफड़े तथा वायु कोश। द्विपार्श्व वायु कोश तंत्र का केवल एक पार्श्व दिखाया गया है। (b) एक खोला गया श्वसन-तंत्र जिसमें नौ में से आठ वायु कोश दिखाए गए हैं। मध्यक, अयुग्मित अंतराक्लैविकलीय वायु कोश दृश्यमान नहीं है।

युग्मित प्राथमिक श्वसनियां फेफड़ों के भीतर तुरंत विशाखित होकर थैले जैसी कूपिकाएं (alveoli) नहीं बनातीं जैसा कि अन्यथा अन्य ऐम्नियोटों में होता है। इसके बजाय प्रत्येक श्वसनी फेफड़ें में से गुज़रती जाती, रास्ते में फेफड़ा पदार्थ में शाखाएं निकालती, और अंत में फेफड़ें में से पीछे बाहर निकल कर अंत:श्वासी (inspiratory) वायु थैलों में समाप्त होती है।

फेफड़े में प्रविष्ट होते ही प्रत्येक प्राथमिक श्वसनी से अनेक पार्श्व एवं द्वितीयक श्वसनियां निकलती हैं जो पुन: विशाखित होकर अनेक तृतीयक शाखाएं बनाती हैं जिन्हें पराश्वसनियां (parabronchii) कहते हैं। ये शाखाएं जहां स्तनियों में तो थैले जैसी कूपिकाओं में समाप्त होती हैं वहीं पक्षियों में नलिका जैसी बनी रहती हैं जिनमें से वायु लगातार प्रवाहित होती रहती है।

कुल मिलाकर नौ परस्परसंयोजित चूषणी वायु थैले होते हैं (चित्र 3.56a) जो पक्षी के विविध अंगों में पड़े होते हैं। युग्मित उदर वायु थैले (paired abdominal air sacs) अंतड़ियों की कुंडलियों में देह के प्रत्येक

पार्श्व पर एक-एक पड़े होते हैं। दूसरा जोड़ा पश्च वक्ष वायु थैलों (posterior thoracic air sacs) का होता है और इनमें से प्रत्येक थैला देह की पार्श्व दीवार से सटा लगा होता है। प्रत्येक श्वसनी से, उसके फेफड़े में प्रवेश के निकट तीन और छोटी शाखाएं भी निकलती हैं। इनमें से एक अग्र वक्ष वायु थैला (anterior thoracic air sac) होता है जो पश्च वक्ष वायु थैले के ठीक आगे स्थित होता है। एक अन्य शाखा एक मध्य अंतराक्लैविकलीय वायु थैले (interclavicular air sac) में पहुंचती है जो दोनों फेफड़ों से जुड़ा होता तथा अयुग्मित होता है। तीसरी शाखा एक ग्रीवा वायु थैले (cervical air sac) में खुलती है जो गर्दन के मूल में होता है। अंतराक्लैविकलीय वायु थैले के प्रत्येक पार्श्व से एक अंधवर्ध अथवा अक्षीय (axillary) वायु कोश निकलता है जो कक्षक (axilla) में स्थित होता है। ये सभी नौ थैले हड्डियों में फैले हुए होते हैं जिनके भीतर ये वातिल गुहाएं बनाते हैं, और उनकी अस्थि-मज्जा (bone marrow) की काफ़ी मात्रा का स्थान ये ही ले लेते हैं। इस प्रकार यदि कभी पक्षी को चोट लग कर उसकी हड्डियां टूट गयी हों और बाहर हवा में खुल गयी हों तो श्वासनली के अवरुद्ध हो जाने तक की दशा में ह्यूमरस तथा अन्य हड्डियों में से सांस भीतर को खींचा जा सकता है।

पक्षियों के फेफड़ें स्तनियों के फेफड़ों की अपेक्षा छोटे होते हैं मगर उनमें कार्यक्षमता अधिक होती है। ऐसा इसलिए कि उनमें वायु का प्रवाह लगातार एक दिशा में होता जाता है न कि तुरंत आगे-पीछे को। फेफड़ों में से एक दिशा में वायु के प्रवाह से एपिथीलियमी विनिमय सतहों पर ऑक्सीजन का सांद्रण उससे कहीं ज्यादा होता है जितना कि अन्य थल कशेरुकियों में जिनमें फेफड़ें में वायु द्विमार्गी रूप में आगे पीछे होती रहती है। इस प्रकार पक्षी जब अधिक ऊँचाइयों पर उड़ रहे होते हैं जहां ऑक्सीजन का आंशिक दाब कम होता है, तब भी वे पर्याप्त ऑक्सीजन प्राप्त कर सकते हैं। एक दिशा में वायु-प्रवाह इसलिए हो पाता है कि पक्षियों में नौ परस्पर संयोजित वायु थैलों का एक विस्तृत तंत्र है जिसमें ये थैले धौंकनियों जैसा कार्य करते हैं और फेफड़ों से इस तरह संयोजित रहते हैं कि अंत:श्वासित वायु का कदाचित 75% भाग फेफड़ों में से सीधा बचकर निकल जाता और पश्च उदर थैलों में पहुंच जाता है जो ताज़ी वायु के लिए भण्डार का काम करते हैं।

श्वसन-तंत्र की संरचना तथा वायु-विनिमय की क्रियाविधि ये दोनों ही मिलकर सुनिश्चित कर देते हैं कि पक्षियों के फेफड़ों में बाह्य श्वास तथा अंत: श्वास दोनों स्थितियों में ऑक्सीजनित वायु रक्त वाहिकाओं से भरपूर पराश्वसनियों के ऊपर से गुजरती हैं।

पक्षियों के श्वसन-तंत्र की अनेक तफ़सीलें अभी तक पूरी तरह नहीं जानी जा सकी हैं, फिर भी सभी कशेरुकियों में यह स्पष्टत: सर्वाधिक कार्यक्षम हैं।

पक्षी अपनी ध्वनियों का इस्तेमाल अपनी ही स्पीशीज़ के अन्य सदस्यों को आमंत्रित करने, उन्हें ख़तरों से संचेत करने, चूजों से संचार करने, अपने क्षेत्र से अपनी ही स्पीशीज़ के अन्य नरों को दूर रहने की चेतावनी देने आदि में करते हैं।

पक्षी ऐसे पहले कशेरुकी हैं जो अपनी श्वासनली में आवाज़ पैदा कर सकते हैं। पक्षियों के स्वर-कक्ष को सिरिंक्स (syrinx) कहते हैं जो स्तनियों के लैरिंक्स के समजात नहीं होता। सिरिंक्स उस स्थान पर बना होता है जहां श्वासनली दो श्वसनियों में विशाखित होती है और वह श्वसनियों एवं श्वासनली दोनों का ही रूपांतरण होती है। एक अस्थिल कूटक तथा सिरिंक्स में एक ओर से दूसरी ओर फैली अर्धचंद्र झिल्लियों के कम्पनों से ध्वनि पैदा होती है। सिरिंक्स से संबद्ध पेशियों से ध्वनि का तारत्व कम-ज्यादा होता रहता है। कोयल और रोबिन जैसे सुमधुर स्वर वाले पक्षियों को संगीत पक्षी कहते हैं। मगर सभी पक्षी संगीत पक्षी नहीं होते। कौऐ जैसे कर्कश स्वर वाले पक्षियों से सभी परिचित हैं।

पक्षियों में स्तनियों की तुलना में सांद्रण क्षमता के संबंध में कम कार्यशील गुर्दों के होने के बावजूद वे अपने रक्त के यूरिक अम्ल के सांद्रण से 300 गुना अधिक सांद्रित यूरिक अम्ल का उत्सर्जन कर सकते हैं। सर्वाधिक कार्यशील स्तनी गुर्दे, जैसे कि कुछ मरूस्थलीय रोडेण्टों में होते हैं, प्लाज़्मा सांद्रण से केवल 25 गुना अधिक मात्रा में ही यूरिया का उत्सर्जन कर पाते हैं।

उत्सर्गी तंत्र

अन्य ऐम्नियोटों की ही तरह पक्षियों में भी युग्मित अपेक्षाकृत बड़े आकार में मेटानेफ्रिक वृक्क होते हैं जो सैक्रल कशेरुकों एवं श्रोणि के प्रति बने एक गढ़े में पृष्ठ दीवार से जुड़े रहते हैं (चित्र 3.57)। मूत्र प्रत्येक वृक्क से निकले मूत्र वाहिनी के द्वारा अवस्कर में पहुंचता है। पक्षियों में मूत्राशय नहीं होता और कदाचित यह भी वज़न कम करने की दिशा में ही एक अनुकूलन है। प्रत्येक वृक्क हज़ारों-हज़ारों वृक्ककों (नेफ़्रॉनों) का बना होता है और हर नेफ्रॉन में एक वृक्क कणिका (renal corpuscle) तथा वृक्क नलिका (renal tubule) होती है (चित्र 3.58)। मूत्राशय सामान्य विधि द्वारा ही बनता है जिसमें ग्लोमेरुलस द्वारा फ़िल्टरेशन के बाद नलिका के भीतर फिल्टरेट का चयनात्मक रूपान्तरण होता है। (LSE-05 के इकाई 4 को देखिए)।

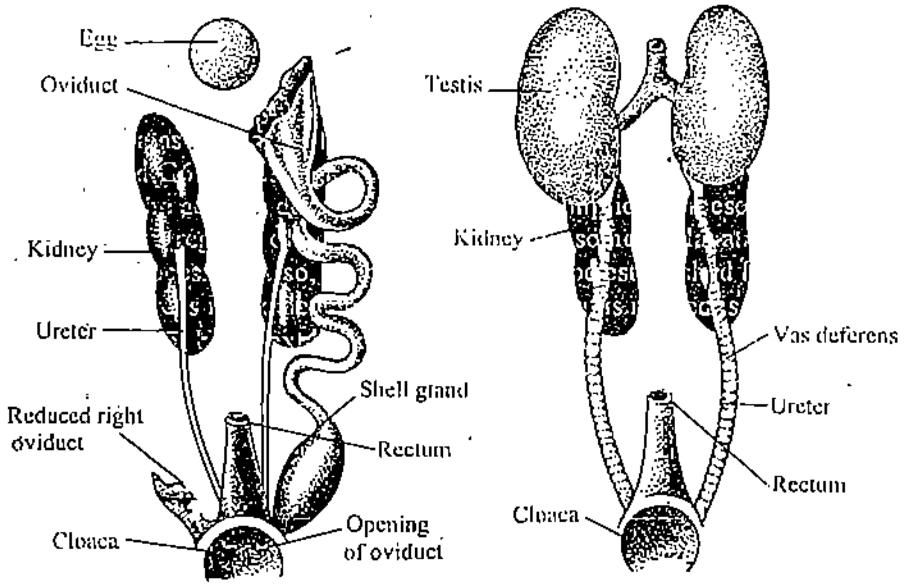

चित्र 3.57: पक्षी का मूत्र जनन तंत्र (a) मादा (b) नर।

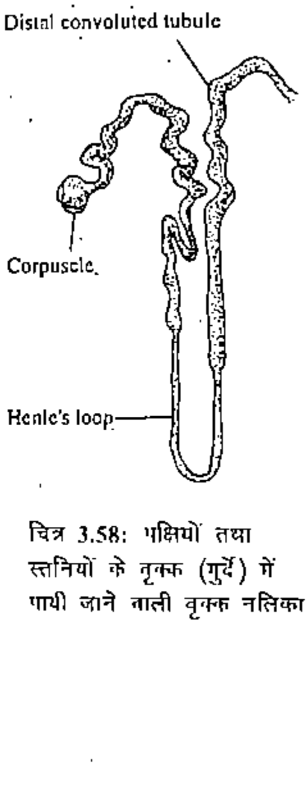

चित्र 3.58: पक्षियों तथा स्तनियों के वृक्क (गुर्दे) में पायी जाने वाली वृक्क नलिका।

पक्षियों में ऊँची उपापचय दर होने के कारण वृक्क नलिकाओं की संख्या ज़्यादा होती है, फिर भी जल का संरक्षण करना ज़रूरी होता है। इसीलिए सभी नलिकाओं में तो नहीं, मगर कुछ नलिकाओं में हेन्ले के लूप (Loops of Henle) होते हैं जिनके कारण नलिकाओं से जल का पुन:अवशोषण हो पाता है। इस विधि द्वारा पक्षी उतना सांद्रित मूत्र नहीं बना सकते जितना कि स्तनी बना सकते हैं; इसकी बजाए सरीसृपों की तरह, जिनसे वे विकसित हुए हैं वे नाइट्रोजनी अपशिष्टों को यूरिया की बजाए यूरिक अम्ल के रूप में स्रावित करते हैं और यह भी एक ऐसा अनुकूलन है जिसका उद्भव सकोश अण्डे के विकसित होने के साथ-साथ हुआ। इस प्रकार के अण्डे में सभी उत्सर्गी पदार्थ परिवर्धनशील भ्रूण के साथ-साथ अण्डे के कवच के भीतर ही रुके रहने चाहिए। यदि यूरिया पैदा हुआ होता तो वह जल्दी ही विलयन के रूप में इतनी मात्रा में एकत्रित हो जाता जो विषैले स्तर तक पहुंच जाता। मगर यूरिक अम्ल विलयन में से क्रिस्टलीकृत हो जाता है और उसे अण्डे के कवच के भीतर अहानिकर रूप में संचित किया जा सकता है। तो इस प्रकार भ्रूण की आवश्यकता से ही उत्पन्न हुआ वयस्क का यह विशेष गुण। परिणामत: वयस्क भी यूरिक अम्ल का ही उत्सर्जन करते हैं। चूंकि यूरिक अम्ल की विलयशीलता कम होती है, इसलिए पक्षी 1 ग्राम यूरिक अम्ल को मात्र 1.5 से 3 ml जल में ही उत्सर्जित कर सकते हैं जब कि स्तनी को 1 ग्राम यूरिया का स्राव करने के वास्ते लगभग 60 ml जल चाहिए। इस प्रकार पक्षी अपने शरीर के अधिकतर जल का संरक्षण अपने नाइट्रोजनी अपशिष्ट के 75-90% भाग को यूरिक अम्ल के रूप में उत्सर्जित करके प्राप्त कर लेते हैं। इसके अतिरिक्त चूंकि अधिकतर यूरिक अम्ल का स्राव नलिका में होता है न कि वह फ़िल्टरन द्वारा नलिका में पहुंचता है इसलिए वृक्क कणिका के द्वारा बहुत ज़्यादा मात्रा में जल के फ़िल्टरन की आवश्यकता नहीं होती। पक्षियों की वृक्क कणिकाएं छोटी होती हैं। यूरिक अम्ल तथा अन्य अपशिष्ट उत्पादों को अपने साथ बहा ले जाने वाला जल अवस्कर में पुन: अवशोषित हो जाता है और यूरिक अम्ल एक सफ़ेद पेस्ट के रूप में विष्टा के साथ मिलकर बाहर निकाल दिया जाता है।

समुद्री पक्षियों में (और यही बात समुद्री कछुओं में भी है), अधिशेष लवण को बाहर निकालने की एक अलग क्रियाविधि का विकास हुआ है- यह अतिरिक्त लवण वह होता है जिसे ये प्राणी आहार करने तथा समुद्र के पानी को पीने से प्राप्त करते हैं। समुद्री जल में लगभग 3% लवण होते हैं और यह पक्षी के देह-तरलों से तीन गुना अधिक खारा होता है, और उधर गुर्दे मूत्र में लवण को लगभग 0.3% से ऊपर सांद्रित नहीं कर सकते। इन समस्या का समाधान एक जोड़ी विशेष लवण-ग्रंथियों द्वारा किया जाता है, इनकी एक-एक ग्रंथि दोनों आंखों के ऊपर बनी होती हैं (चित्र 3.59) जो सोडियम क्लोराइड के एक अधिक सांद्रित घोल का उत्सर्जन कर सकती हैं, और यह सांद्रण समुद्र जल के सांद्रण से दोगुना तक हो सकता है। लवण घोल नाक की गुहाओं से विसर्जित होता है और इस व्यवस्था में पेट्रेलों, गल तथा अन्य समुद्री पक्षियों में मानों सदा ही उनकी नाक बहती रहती है।

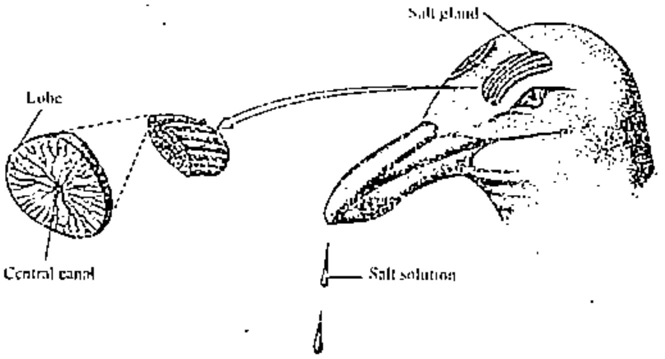

चित्र 3.59: समुद्री पक्षी (गल) की युग्मित लवण ग्रंथियां, जिनमें से एक-एक हर आंख के ऊपर स्थित होती है। प्रत्येक ग्रंथि में एक-दूसरे के समांतर स्थित अनेक पालियां होती हैं। एक अधिक आवर्धित पालि का अनुप्रस्थ सेक्शन। नमक का स्रवण अनेक अरीयतः व्यवस्थित नलिकाओं में होता है, जो फिर बहकर एक केंद्रीय नलिका में आ जाता है और यह नलिका नाक के भीतर खुलती है।

बोध प्रश्न 15

निम्न वाक्यों में सही या गलत को सही का निशान लगाकर बताइए:-

क) पक्षियों में अंतःश्वासित वायु का तीन-चौथाई भाग फेफड़ों में से बच कर निकल जाता और सीधा पश्च वायु थैलों में पहुंचता है जो ताजी हवा के लिए एक भण्डार का काम करते हैं। सही/गलत)

ख) समुद्री पक्षियों में अधिशेष लवणों को बाहर निकालने का काम एक जोड़ी विशेष ग्रंथियां करती हैं जो पंखों के नीचे बनी होती हैं। सही/गलत

ग) पक्षियों में दाहिनी महाधमनी चाप आगे चलकर पृष्ठ महाधमनी बन जाती है। सही/गलत

घ) पक्षियों का सिरिंक्स स्तनियों के लेरिंक्स के समजात होता है। सही/गलत

च) पक्षियों में कुछ ही वृक्क-नलिकाओं में, न कि सभी में, हेन्ले का लूप होता है। सही/गलत

उड्डयन (Flight)

चूंकि पक्षियों के विकास और उनके अनुकूलन में मुख्य भूमिका उड़ सकने की ही रही है, अतः आइए देखें कि पक्षी कैसे उड़ते हैं। पक्षियों में चार प्रकार की उड़ानें पायी जाती हैं: (a) विसर्पण **(gliding)** जिसमें अधिक ऊँचाई से निचली ऊँचाई पर आया जाता है और ऐसा बिना पंख फड़फड़ाए किया जाता है, (b) **मंडराना (soaring)** जिसमें पक्षी बिना पंख फड़फड़ाए आकाश में वायु-धाराओं का उपयोग करके उड़ते रह सकते हैं; (c) होवरिंग **(hovering)** यानि एक ही स्थान पर पंख फड़फड़ाते हुए स्थिर बने रहना जिसमें पंख ऊपर-नीचे बस इस प्रकार फड़फड़ाए जाते हैं कि उनसे मिलने वाला ऊपर को उठाने वाला बल मात्र पक्षी के वजन का प्रतिसंतुलन ही करता रह सके; (d) फड़फड़िया उड़ान **(flapping flight)** यह सामान्य उड़ान है जिसमें पंखों को ऊपर-नीचे फड़फड़ा कर पक्षी यहां-से-वहां उड़ता जाता है। यहां पर इसी प्रकार की उड़ान का विवेचन किया जा रहा है। पक्षी की फड़फड़ाहट उड़ान एक अत्यन्त सम्मिश्र प्रक्रिया है। परम्परागत वायुगतिकीय तकनीकों तथा अति तीव्रगति फोटोग्राफी द्वारा सावधानीपूर्वक विश्लेषण किए जाने के बावजूद इसे अभी तक अच्छी तरह समझा नहीं जा सका है। फिर भी हम जानते हैं कि पक्षी का पंख एक ऐसा एयरफॉइल (air.foil) है जिस पर वायुगतिकी के सभी मान्य नियम लागू होते हैं। यह पंख निम्न रफ्तार पर उच्च उत्तोलन (lift) के लिए अनुकूलित है। आरम्भ के कम रफ्तार वाले वायुयानों की आकृति भी इसी नमूने पर बनायी जाती थी।

पक्षी का पंख अनुप्रस्थ सेक्शन में देखने पर धारारेखित (stremlined) दिखायी पड़ता है (चित्र 3.60)। इसकी निचली सतह मामूली सी अवतल होती है तथा उस पर उस जगह जहां अग्रवर्ती सीमांत वायु से सम्पर्क करता है छोटे-छोटे एकदम सटे-सटे लगे होते हैं। वायु पंख के ऊपर से बहुत कारगर रूप में फिसलती जाती है जिससे न्यूनतम कर्षण (drag) के साथ ऊपर को उठने का बल मिलता जाता है। कुछ उत्तोलन पंख के नीचे की सतह पर सकारात्मक दाब के बनने से भी सम्पन्न होता है। परंतु ऊपर की

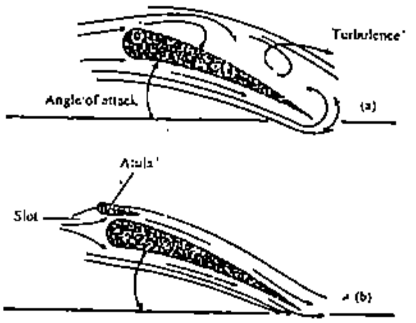

चित्र 3.60: पक्षी का पंख (a) जब प्रहार कोण बढ़ जाता है पंख पर हवा का बहाव उग्र हो जाता है (b) ऐलुला (alula) के द्वारा बनाया गया खांचा (स्लाट) वायु के रफ्तार को बढ़ा देता है, उग्रता को कम कर देता एवं उत्तोलन को बनाये रखता है।

दिशा में जिस पर वायु धारा को उत्तल सतह के ऊपर अधिक दूरी तक और ज़्यादा तेज़ी से गुज़रना होता है, एक ऋणात्मक दाब पैदा होता है जिससे कुल उत्तोलन का दो-तिहाई से भी अधिक भाग प्रदान होता है। एयरफॉयल का कर्षण के प्रति उत्तोलन अनुपात झुकाव-कोण (वायु को धक्का देने का कोण) और वायुगति पर निर्भर करता है।

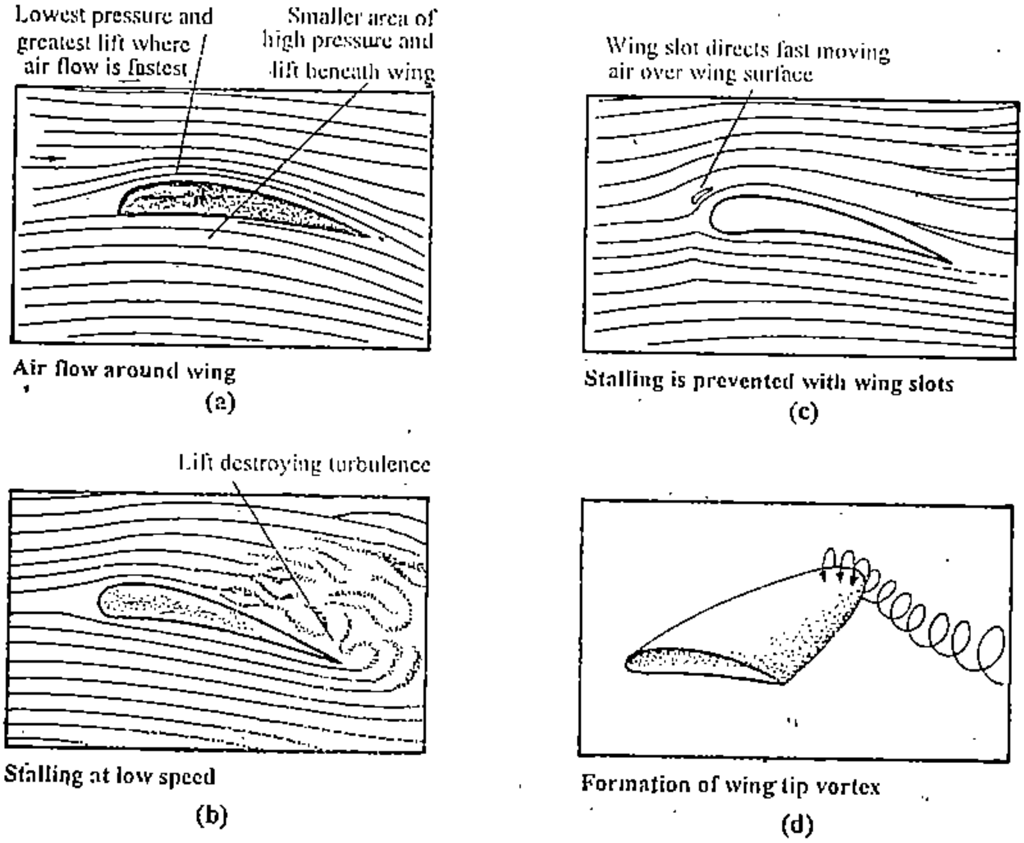

चित्र 3.61: एयर फ़ॉयल अथवा पंख द्वारा बनने वाला वायु प्रतिरूप। दाहिने से बायीं ओर - (a) सामान्य उड्डयन जिसमें प्रहार कोण कम होता है। जैसे-जैसे वायु सहज रूप में पंख के ऊपर से गुज़रती जाती है वैसे-वैसे पंख के ऊपर की सतह पर ऋणात्मक दाब तथा पंख की निचली सतह पर उच्च दाब बन जाता है जिससे उत्तोलन (ऊपर को उठना) पैदा होता है, (b) जब प्रहार कोण बहुत अधिक बड़ा बन जाता है तब, पंख की ऊपरी सतह पर उत्तोलन-नाशी विक्षोभ पैदा होता है और उड़ान में बाधा आने लगती है जिससे स्तंभन (stalling) होने लगता है। "विंग-स्लॉट" के द्वारा ऊपरी सतह के ऊपर तेज़ी से गति करती हुई वायु को दिशा देकर स्तंभन को रोका जाना। (d) पंख की अंतिम नोक-वॉर्टेक्स यानि एक ऐसा विक्षोभ जो उच्च रफ्तारों पर बनने लग जाता है, उड़ान-कुशलता को कम कर देता है। यह प्रभाव उन पंखों में कम हो जाता है जिनका ढलान पीछे को होता है एवं जो अंतिम नोक तक धीरे-धीरे संकरे होते जाते हैं।

एक निर्दिष्ट बोझ को ले जाता हुआ पंख तीव्र गति और छोटे प्रहार-कोण से हवा में से गुज़र सकता है, या फिर धीमी गति और बड़े प्रहार-कोण के द्वारा। मगर गति के उत्तरोत्तर कम होते जाने पर एक ऐसा

बिंदु पहुंच जाता है जिस पर प्रहार-कोण बहुत ज़्यादा खड़ा ढालू हो जाता है, तब ऊपरी सतह पर विक्षोभ पैदा होता है, उत्तोलन नष्ट होता है तथा स्तंभन हो जाता हैं। स्तंभन को देर से होने अथवा उसे रोकने के लिए अग्रमुखी सीमांतों के सहारे बने विंग-स्लॉटों से काम लिया जाता है जिनके द्वारा ऊपरी पंख सतह के ऊपर से तेज़ी से गति करती हुई एक वायु धारा छोड़ी जाती है। ऐसा इसलिए क्योंकि पंख की सतह के क्षेत्रफल के साथ उत्तोलन सीधे अनुपात में बढ़ता जाता है, और स्लाटों के माध्यम से इस क्षेत्रफल को बढ़ाया या घटाया जा सकता है। जो विमान कम रफ्तारों पर उड़ते हैं उनमें विंग-स्लॉटों को पहले भी और आज भी उपयोग में लाया जाता है। पक्षियों में दो प्रकार के विंग-स्लॉट पाए जाते हैं- (i) ऐलुला (alula) जो पहली उंगली (अंगूठे) पर स्थित छोटे पिच्छों का एक समूह होता है जिनके द्वारा मध्य विंग-स्लाट प्रदान होता है, तथा (2) प्राथमिक पिच्छों के बीच-बीच बना अतिरिक्त स्लॉटिंग, जो अक्सर पंख के पश्चगामी सीमांत एवं पंख की नोक पर बनता है। अभी जो बाद में स्लॉट बताए गए वे टिप-वॉर्टेक्स **(tip vortex)** नामक विक्षोभ को कम करते हैं। कुछ पक्षी अपने पुच्छ पिच्छों को फैला कर एवं उन्हें नीचे को झुका कर नीचे उतरते हुए एक अतिरिक्त उत्तोलन प्राप्त करते हैं। उस समय पूंछ एक उच्च उत्तोलन निम्न गति एयर फॉयल एवं एक ब्रेक दोनों की तरह काम करती है (चित्र 3.61)।

फड़फड़िया उड़ान **(Flapping flight)**

फड़फड़िया उड़ान के लिए दो बलों की आवश्यकता होती है: एक उदग्र (खड़ा) उत्तोलन बल जो पक्षी के वज़न को संभाल सके और दूसरा एक क्षैतिज प्रणोद (horizontal thrust) जो घर्षण (friction) के प्रतिरोधी बलों के प्रति पक्षी को आगे की दिशा में बढ़ाता है। फड़फड़ी उड़ान में प्रणोद प्रदान करने वाले पंख की नोक पर बने प्राथमिक पिच्छ, जब कि भीतरी पंख के द्वितीयक पिच्छ जो न तो इतनी ज़्यादा तेज़ी से और न ही दूर तक गति करते हैं एक एयर-फॉइल की तरह मुख्यत: उत्तोलन यानि ऊपर को उठान प्रदान करते हैं। निम्नघात (downstroke) यानि पंख के नीचे को गति करने के सर्वाधिक शक्ति की आवश्यकता होती है। प्राथमिक पिच्छ ऊपर को झुके हुए होते हैं और प्रहार-कोण को अधिक बनाने के लिए घूम जाते हैं और तब वे एक प्रोपेलर की तरह वायु को काटते जाते हैं (चित्र 3.62a तथा b)। इससे पूरा पंख और उसके साथ-साथ पक्षी का शरीर भी आगे की ओर को खींच लिया जाता है।

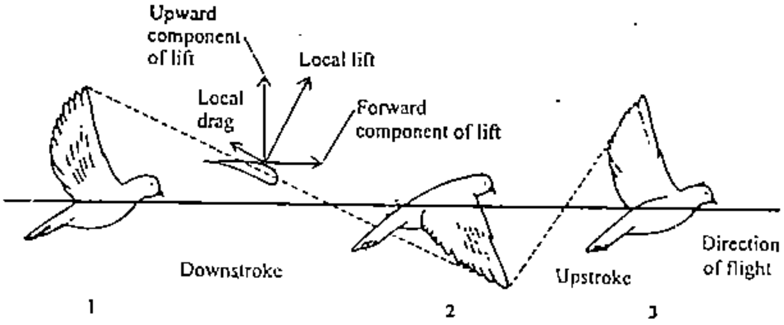

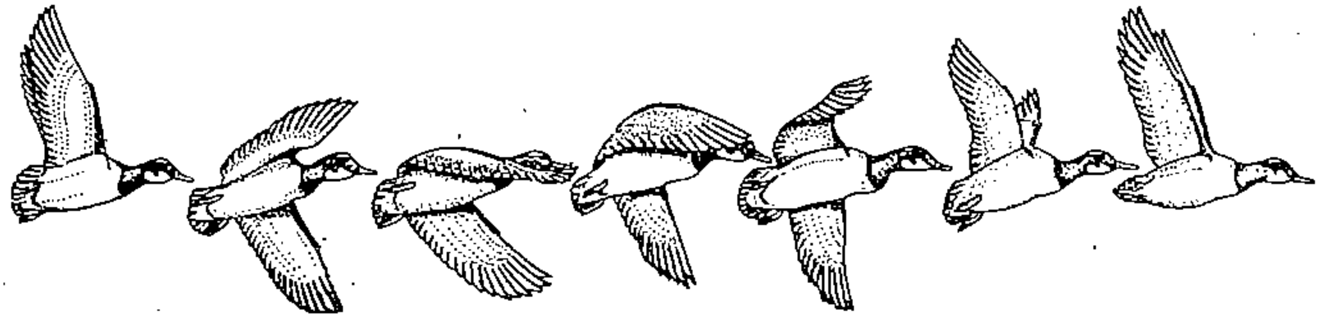

चित्र 3.62: फड़फड़िया उड़ान A- पंख चक्र की अवस्थाएं जिनमें दर्शाया गया है कि निम्नघात के दौरान पंखों का आगे को तथा नीचे को तिरछा होना किस प्रकार आगे को प्रणोद पैदा करता है। B- वत्तख-जैसे जबर्दस्त उड़ाकुओं में जिनमें पंख पूरी तरह फैले हुए नीचे एवं सामने को तेज़ी से आते हैं, उनकी सामान्य फड़फड़िया उड़ान। इनमें प्रणोद पंख की नोक पर बने प्राथमिक पिच्छों से होता है। ऊर्ध्वघात आरम्भ करने के लिए पंख को मोड़ा जाता है और उसे ऊपर तथा पीछे को लाया जाता है। तदुपरांत पंख फैला दिया जाता तथा अगली निम्नघात के लिए तैयार हो जाता है।

ऊर्ध्वघात (upstroke) के समय प्राथमिक पिच्छ विपरीत दिशा में मुड़ते हैं जिससे उनकी ऊपरी सतहें घूमकर धनात्मक प्रहार-कोण बना लेती हैं जिससे प्रणोद पैदा होता है, ठीक उसी प्रकार जैसे निम्नघात के समय निचली सतहों से हुआ था। होवरिंग यानि एक ही स्थान (न आगे न पीछे) पर उड़ने के लिए जैसे कि "हमिंग-बर्ड्ज़" (humming birds) में होता है एक शक्तिशाली ऊर्ध्वघात की आवश्यकता होती है, और इसी तरह दीर्घवृत्ताकर (elliptical) पंखों वाले छोटे पक्षियों द्वारा तेज़ और खड़ी प्रारम्भिक उड़ान भरने के लिए भी शक्तिशाली ऊर्ध्वघात की ज़रूरत होती है।

जनन तथा परिवर्धन

सभी पक्षी अंडप्रजक (oviparous) होते हैं और वे सकोश अण्डे (cleidoic eggs) देते हैं जिनमें भीतरी निषेचन होता है। अधिसंख्य मादा पक्षियों में केवल बायां अण्डाशय तथा बायीं अण्डवाहिनी ही होती है (चित्र 3.63)। दाहिनी जोड़ी ह्रासित होकर अवशेषी संरचना बन जाती है, जो कदाचित उड़ने में भार में कमी करने की दिशा में एक अनुकूलन है। बायां अण्डाशय छोटा होता है मगर जनन ऋतु में जब अण्डों के भीतर पीतक (yolk) एकत्रित हो रहा होता है तब यह भी बहुत बढ़ जाता है। अण्डाशय से विसर्जित अण्डे अण्डावाहिनी के फैल गए हुए ऑस्टियम **(ostium)** नामक सिरे में ग्रहण कर लिए जाते हैं। अण्डवाहिनी पीछे अवस्कर में खुलती है। अण्डवाहिनी में से गुज़रने के दौरान अण्डों के ऊपर एल्बुमेन अर्थात् अण्डे की सफ़ेदी चढ़ जाती है जिसका स्रवण विशेष ग्रंथियों से होता है। अण्डवाहिनी में और नीचे की ओर अण्डे के ऊपर, कवच-झिल्ली कवच तथा कवच वर्णकों का भी स्रवण होता है। निषेचन अण्डवाहिनी के ऊपरी भाग में होता है, और यह क्रिया एल्बुमेन, कवच झिल्लियां तथा कवच के चढ जाने से कई घंटे पहले सम्पन्न होती है।

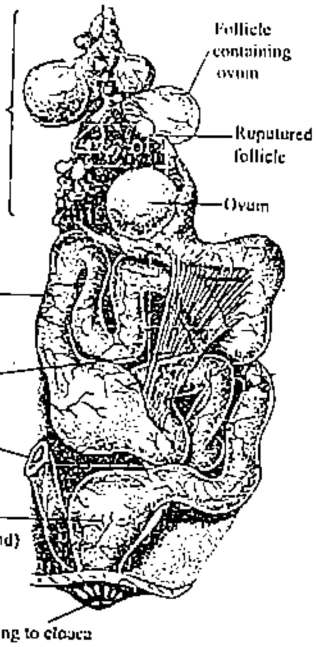

चित्र 3.63: एक मादा पक्षी का जनन तंत्र जो विकासशील अण्डो को दर्शाता है।

एक मैथुन के बाद शुक्राणु मादा की अण्डावाहिनी में कई-कई दिन तक जीवनक्षम (viable) बने रहते हैं। मुर्गियों के अण्डों में मैथुन के 5 से 6 दिन तक अच्छी जननता पायी जाती है मगर उसके बाद उसमें तेज़ गिरावट आ जाती है। मगर कभी-कभार मुर्गे का मुर्गी से हटाए जाने के 30 दिन बाद तक भी अण्डा जननक्षम बना रह सकता है।

नर में युग्मित वृषण तथा सहायक वाहिनियां अन्य अनेक कशेरुकियों के ही समान होती हैं (चित्र 3.57b)। वर्ष के अधिकतर समय में वृषण सेम के बीज के आकार के होते हैं मगर प्रजनन काल में ये बड़े हो जाते हैं, कभी-कभी तो गैर-प्रजनन आकार के 300 गुना से भी अधिक बड़े होते हैं। वृषणों से निकली शुक्रवाहिकाएं **(vasa deferentia)** अवस्कर में आकर गिरती हैं। बाहर स्खलित होने से पूर्व लाखों-लाखों शुक्राणु शुक्राशयों **(seminal vesicles)** में भंडारित हो जाते है, ये शुक्राशय शुक्रवाहिनी के फूले हुए अंतिम सिरे होते हैं और वृषणों की तरह ये भी प्रजनन काल के दौरान बड़े हो जाते हैं। बत्तखों तथा हंसों सहित अनेक पक्षियों में एक सुविकसित मैथुन अंग (शिश्न, penis) पाया जाता है, जिसकी पृष्ठ

दिशा पर शुक्राणु स्थानांतरण के वास्ते एक खांच बनी होती है। मगर अधिक विकसित पक्षियों में मैथुन क्रिया के दौरान केवल अवस्कर सतहें ही परस्पर सम्पर्क में आती हैं, और ऐसा प्रायः नर के द्वारा मादा की पीठ पर चढ़कर ही सम्पन्न हुआ करता है (चित्र 3.64)। कुछ बतासियों (swifts) में मैथुन उड़ते-उड़ते ही होता है।

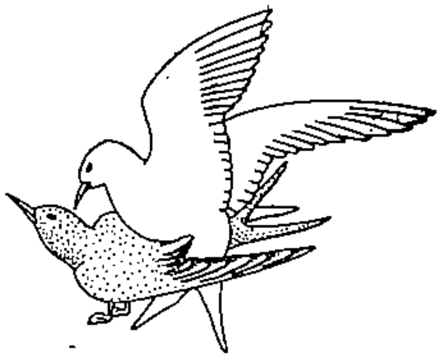

चित्र 3.64: पक्षियों में मैथुन। पक्षियों की अधिक विकसित स्पीशीज़ में नर में शिश्न नहीं होता। नर मादा की पीठ पर चढ़कर मैथुन करता है जिसके दौरान वह अपने अवस्कर को मादा के अवस्कर से कसकर दबाता है और शुक्राणुओं को मादा के भीतर पहुंचा देता है।

3.4.5 सामाजिक व्यवहार

(i) मैथुन प्रणालियां (Mating systems)

प्राणियों में पाए जाने वाली दो सर्वाधिक सामान्य प्रकार की मैथुन प्रणालियां है एकसंगमनी **(monogamy)** तथा बहुसंगमनी **(polygamy)**। अधिसंख्य प्राणि-समूहों में एकसंगमन बहुत ही कम पाया जाता है मगर पक्षियों में यह एक सामान्य नियम है तथा 90% से अधिक पक्षी एकसंगमनी ही होते हैं। हंस जैसे कुछ पक्षी अपने साथी को जीवन भर के लिए चुनते हैं और वर्षपर्यन्त उसी के साथ रहते हैं। तथापि ऋतुपरक एकसंगमन अधिक प्रचलित है। अधिसंख्य प्रवासी (migratory) पक्षी प्रजनन ऋतु के दौरान ही जोड़े बनाते हैं मगर शेष वर्ष में अलग-अलग स्वतंत्र रहते हैं।

ियों में सबसे सामान्य पायी जाने ी बहुसंगमनता बहुस्त्रीत्व (अनेक ाओं का होना) है जिसमें एक एक से अधिक मादाओं के साथ मन करता है।

: अपने लम्बे और सुंदर रंगीन छ परों को फैला कर नृत्य करता और प्रणय के दौरान अपने इन ं को तालबद्ध रूप में कम्पायमान ता रहता है, जब कि नर पेंग्विनें नी मादाओं को मछली के रूप में ार भेंट करती हैं।

अधिकतर नर पक्षियों को मैथुन करने से पूर्व कुछ विशेष प्रकार के व्यवहार करते देखा जाता है। मादा पक्षी का मैथुन के लिए स्वीकृति देने एवं जनन करने के लिए उसे उत्तेजित किया जाना आवश्यक होता है। इसे प्रणय (courtship) कहा जाता है। यह सरल हो सकता है अथवा एक बहुत ही विशद विधिवत नृत्य हो सकता है। मधुर संगीत, घोंसला बनाना, आहार समर्पित करना आदि ऐसे ही प्रणय व्यवहार के कृत्य होते हैं।

(ii) घोंसला रखना (नीडन, nesting) तथा शिशु की देखभाल

पूर्वज पक्षी संभवतः मगरों की तरह अपने अण्डों को ज़मीन में गढ़े खोदकर उनमें रखते रहे होंगे और उनके ऊष्मायन के लिए पर्यावरण के तापमान पर ही निर्भर करते रहे होंगे। टिटहरी (plover) पक्षी आज भी ऐसा ही करता है, तथा अनेक स्पीशीज़ को जब आहार ढूंढने के लिए अण्डों को छोड़कर जाना होता है तब वे उन्हें घास-पात से ढक जाया करती हैं। परंतु पक्षियों की अधिकांश स्पीशीज़ घोंसले बनातीं जिनके भीतर वे अण्डे रखतीं तथा अण्डों से निकले बच्चों का पालन-पोषण करतीं हैं। घोंसले बहुत सरल प्रकार के अथवा बहुत जटिल हो सकते हैं। अण्डों के दिए जाने के बाद वयस्क उनकी देखभाल करते और उन्हें सेते हैं। गल पक्षियों तथा अन्य समुद्री एवं जलीय पक्षियों में नर-मादा दोनों ही जनक घोंसले की देखभाल में बराबर का हाथ बंटाते हैं लेकिन अधिकतर संगीत पक्षियों में प्रायः मादा ही मुख्य अथवा एकमात्र सेने वाली होती है तथा उनका नर आहार ढूंढ कर लाता है। जब भ्रूण काल का अंत निकट आने लगता है तब अण्डे के भीतर के चूज़े में शक्तिशाली गर्दन पेशियां विकसित हो जाती हैं तथा उसकी चोंच की नोक के ऊपर एक श्रृंगीय स्थूलन अथवा अंड-दंत (egg tooth) बन जाता है, इसी अंड-दंत का उपयोग कर वह अण्डे के कवच को फोड़ कर बाहर आता है।

पूरविल नामक पक्षी अपने अण्डे ोन में गढ़े बनाकर उनमें सेते हैं, ं कि दूसरी ओर गीलक मिंगबर्ड" तथा बया एवं कई अन्य ी बड़े ही सजे-संवरे घोसले बनाते कुछ पक्षियां जैसे कोयल अपने सले नहीं बनाती है इसके बजाय वह ने अण्डे दूसरे पक्षियों के घोसलों मे ी है। कोयल कौवे के घोसले में ना अण्डा दे देती है। ऐसी पक्षियों परजीवी कहते है। बाज ककू awk cuckoo) जिसे पपीहा कहते अपने अण्डे सेवेन सिस्टर के घोसले देती है।

अण्डों से निकले नए-नए पक्षी दो प्रकार के होते हैं: (i) पूर्वविकसित **(Precocial)** तथा सहायापेक्षी **(Altricial)**। पूर्वविकसित बच्चे जैसे कि मुर्गे, बटेर, बत्तख़ तथा अधिकतर जलपक्षियों में होते हैं, जन्म से ही कोमल पिच्छों से ढके होते हैं, उनकी आंखें खुली होती हैं और वे दौड़ सकते अथवा जैसे ही उनके

पर सूख जाते हैं, वे तैर सकते हैं (चित्र 3.65a)। इसके विपरीत सहायापेक्षी बच्चे जन्म के समय बिना पिच्छों के तथा निस्सहाय अवस्था में होते हैं, उनकी आंखें बंद होती हैं (चित्र 3.65b)। वे एक सप्ताह अथवा उससे भी अधिक समय तक घोंसले के भीतर ही रहते हैं और उनके मां-बाप दोनों ही तब तक उनकी देखभाल करते और उन्हें आहार कराते हैं जब तक कि वे घोंसला छोड़ने के लिए तैयार नहीं हो जाते। फिर भी अण्डे से निकलने के बाद दोनों ही प्रकार के बच्चों को मां-बाप की देखभाल की जरूरत होती है।

अधिकतर संगीत पक्षियों के अंडों में से बच्चे निकलने के लिए 14 दिन चाहिए जब कि बत्तख तथा हंस आदि को इससे कम से कम दुगुना समय चाहिए।

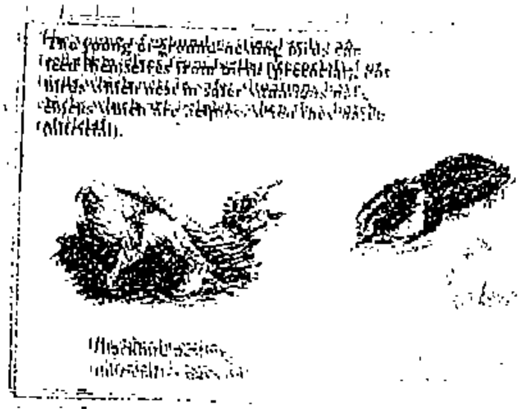

चित्र 3.65: एक दिन की आयु के पूर्वविकसित तथा सहायापेक्षी बच्चों की तुलना (a) "रफ़ेड ग्राऊज़" नामक पक्षी के पूर्वविकसित की आंखें खुली हैं, उसके ऊपर कोमल-पिच्छ बने हैं, वह चौकन्ना है, मजबूत टांगों वाला है तथा वह स्वयं खा-पी सकता है, (b) "मीडो लार्क" का सहायापेक्षी बच्चा लगभग नग्न दृष्टिहीन तथा निस्सहाय पैदा होता है।

(iii) प्रवास तथा संचालन

प्रवास (migration) शब्द का संदर्भ उन विस्तृत ऋतुपरक गतियों से है जो पक्षीगण अपने ग्रीष्म प्रजनन प्रदेशों तथा शीत बिताने के प्रदेशों के बीच नियमित रूप से किया करते हैं। इसका मुख्य लाभ यह मालूम होता है कि इससे पक्षियों को सारे समय अनुकूलतम जलवायु उपलब्ध हो जाती है जिसमें उन्हें अपने तीव्र उपापचय को बनाए रखने के वास्ते आहार स्रोत भरपूर मात्रा और नियमित रूप में मिलता रह सके। प्रवास से वे अनुकूलन परिस्थितियां भी उपलब्ध हो जाती हैं जो उनके बच्चों के पालन में चाहिए जिन दिनों उनकी आहार की मांगें बहुत ज़्यादा होती हैं। प्रवास से उपलब्ध स्थान की मात्रा भी बहुत ज्यादा बढ़ जाती है जिससे उनके आक्रामक क्षेत्र-व्यवहार में भी कमी आ जाती है।

अधिकतर प्रवासी पक्षियों के प्रवास मार्ग सुस्थापित हुए होते हैं जो आम तौर से उत्तर से दक्षिण दिशा में होते हैं। अधिसंख्य पक्षी (साथ ही अन्य प्राणी भी) उत्तरी गोलार्ध में रहते हैं जिसमें पृथ्वी का अधिकांश थल-अंश केंद्रित है। परिणामतः अधिकतर पक्षी शीत ऋतु में दक्षिणोन्मुख प्रवास तथा ग्रीष्म में उत्तरोन्मुख प्रवास किया करते हैं।

प्रवास में दिशा पता लगाना

अधिकतर पक्षी अपना दिशा संचालन मुख्यतः देखने के द्वारा करते हैं, जिसमें वे स्थलाकृतिक थल-चिन्हों की पहचान करते हैं और अपने परिचित प्रवास मार्गों का अनुसरण करते हैं। दृष्टि दिशा-संचालन के अतिरिक्त, पक्षियों को और भी अनेक दिशा-ज्ञान संकेत उपलब्ध होते हैं। उनमें एक अंतःनिर्मित समय ज्ञान होता है अर्थात् एक ऐसी भीतरी घड़ी जो बहुत ही परिशुद्ध है और साथ ही उनके भीतर एक दिशा-ज्ञान भी बना होता है। इसके भी अतिरिक्त हाल के प्रमाणों से बहुत सशक्त संकेत मिलता है कि पक्षी पृथ्वी के चुम्बक-क्षेत्रों को जान सकते और उनके अनुसार संचालन कर सकते हैं। साथ ही ये आकाशीय संकेतों का सहारा लेकर भी संचालन करते हैं जिसमें ये दिन के समय सूर्य और रात के समय तारों की स्थितियों का उपयोग करते हैं। ये दिन के समय या पहर के निरपेक्ष सूर्य के संदर्भ में दिक्सूचक (कम्पास) दिशा बनाए रखते हैं।

पक्षियों की 4000 से अधिक स्पीशीज जो कुल पक्षी स्पीशीज़ की आधी है प्रवासी होती है। अधिकतर प्रवासी पक्षी उत्तरी गोलार्ध के अधिक उत्तरी अक्षांशों में प्रजनन करते हैं। कुछ प्रवासी पक्षी शरद और वसंत ऋतुओं में अलग-अलग मार्गों का अनुसरण करते हैं।

इसे सूर्य-दिगंश संचालन (**sun-azimuth orientation**) कहते हैं। पक्षियों के ये समस्त संसाधन जन्मजात और सहज वृत्ति वाले होते हैं, हालांकि अनुभव से भी पक्षी की संचालन कुशलता में भी सुधार आ सकता है।

फिर भी पक्षियों के कुछ ऐसे संचालन करतब हैं जिनका अब भी स्पष्टीकरण नहीं किया जा सकता। निस्संदेह अनेक पक्षी प्रवास के लिए पर्यावरणी तथा सहज जन्मजात दोनों ही प्रकार के संकेतों का मिला जुला इस्तेमाल करते हैं।

बोध प्रश्न 16

निम्न कथनों पर सही अथवा गलत के अनुसार निशान लगाइए:-

क)	अधिकतर नर पक्षियों में बायें वृषण तथा बायीं मूत्रवाहिनियां समाप्त हो गयी हैं।	सही/गलत
ख)	पक्षियों में अंडों का निषेचन तथा उनका ऊष्मायन भीतरी होता है।	सही/गलत
ग)	एक संगमन पक्षियों में दुलर्भ पाया जाता है।	सही/गलत
घ)	पूर्वविकसित पक्षी-चूजों को अण्डे से बाहर आने पर जनकों के द्वारा देख-भाल की आवश्यकता नहीं होती।	सही/गलत
च)	अधिकतर पक्षियों के सुस्थापित प्रवास मार्ग होते हैं जिनमें उत्तर-दक्षिण दिशा की प्रवृत्ति होती है।	सही/गलत
छ)	पक्षी चंद्रमा की विभिन्न कलाओं की सहायता से संचालन कर सकते हैं।	सही/गलत
ज)	किसी निर्दिष्ट भार को ले जाता हुआ पंख एक छोटा प्रहार कोण बना कर वायु में से उच्च रफ़्तार पर जा सकता है।	सही/गलत
झ)	पक्षियों के स्तंभन को पुच्छ-पिच्छों के द्वारा विलम्बित किया अथवा रोका जा सकता है।	सही/गलत

3.4 सारांश

सरीसृप

- सरीसृप वर्ग जातिवृत्तीय रूप में लैबिरिंथोडोंण्ट ऐम्फिबियनों से उत्तर पेलियोज़ोइक युग में निकला है। प्रथम वास्तविक थल कशेरुकियों के रूप में इनकी सफलता का बहुत ज़्यादा श्रेय इनमें एक कवचयुक्त, उल्वी (ऐम्नियोटिक) अंडे के पाए जाने का है जिसके भीतर चार भ्रूण बाह्य झिल्लियों का पाया जाना है जिनके द्वारा कवच की सुरक्षा के भीतर पूरा भ्रूण-परिवर्धन संभव हो पाया। नतीजतन सरीसृप (यानि पहले ऐम्नियोट) थल पर अण्डे दे सके।

- पेलियोज़ोइक युग के समाप्त होते-होते ऐम्नियोटों में बहुत विस्तृत विकिरण हुआ जिससे वे तीन वंश परम्पराओं में विविध हो गए, (i) ऐनैप्सिड जिनसे कछुए बने; (2) सिनैप्सिड जो स्तनी-सरीखे सरीसृपों की एक कड़ी हैं जिससे आज के स्तनी बने, तथा (3) डाइऐप्सिड वंश परम्परा जिससे अन्य सभी सरीसृप तथा पक्षी बने।

- ऐम्फ़िबियनों की तुलना में सरीसृप थल जीवन के लिए अधिक अनुकूलित हैं। उनकी सूखी ग्रंथिविहीनप्राय त्वचा जो शृंगीय शल्कों से ढ़की रहती है, जल की हानि को सीमित कर देती है। श्वसन के दौरान गैस-विनिमय केवल फेफड़ों के द्वारा ही होता है। जबड़े अधिक शक्तिशाली होते हैं। परिसंचरण तंत्र ऐम्फ़िबियनों की अपेक्षा अधिक उन्नत प्रकार का होता है तथा हृदय चार भागों में लगभग पूरी तरह विभाजित होता है।

- उत्सर्गी तंत्र भी अधिक उन्नत होता है तथा उपापचयी अपशिष्टों में से नाइट्रोजन मुख्यतः यूरिक अम्ल के रूप में विसर्जित होता है न कि अमोनिया अथवा यूरिया के रूप में, जिससे जल की हानि कम से कम होती है।

- निषेचन भीतरी होता है तथा सकोश अण्डा या तो थल पर दिया जाता है या गर्भाशय के भीतर रोक लिया जाता है। छिपकलियों तथा सांपों की कुछ स्पीशीज़ शिशुप्रजक होती हैं।

- ऐम्फ़िबियनों की तरह सरीसृप भी बाह्यतापी होते हैं मगर उनमें से अधिकतर सदस्य सक्रियता के

काल के दौरान व्यवहार के आधार पर अपने ऊपर धूप पड़ने की मात्रा का नियमन करके एक उच्च एवं लगभग स्थिर देह-तापमान बनाए रखते हैं।

- सरीसृपों के विद्यमान सदस्य केवल चार ऑर्डरों में आते हैं - (1) टेस्टुडीन, (2) स्क्वैमेटा, (3) रिंकोसेफैलिया तथा (4) क्रोकोडीलिया।

- सबसे पृथक लक्षण देह कवच से युक्त कछुओं (ऑर्डर टेस्टुडीन) में ट्राइऐसिक काल से अब तक कोई स्पष्ट परिवर्तन नहीं हुआ है। यह एक छोटा समूह है जिसके सदस्यों के रूप में लम्बी आयु तक जीने वाले, स्थलीय, अर्धजलीय, जलीय तथा समुद्री स्पीशीज़ आती हैं। इनमें दांत नहीं होते। ये सभी अण्डप्रजक हैं तथा समुद्री सदस्यों सहित सब के सब जमीन में गढे में अण्डे रखते हैं।

- छिपकलियों, सांपों, ऐम्फिस्बीनियनों (ऑर्डर स्क्वैमैटा) में एक रूपांतरित करोटि होती है जिससे जबड़े की सुनम्यता बढ़ जाती है। समस्त सरीसृपों के 95% सदस्य इसी ऑर्डर में आते हैं। छिपकलियों का समूह विविध है एवं सफल है, इनकी सांपों से पृथक पहचान के आधार-लक्षण ये हैं- इनमें प्रारूपत: दो जोड़ी टांगें (कुछ स्पीशीज़ बिना टांगों की होती हैं), निचले जबड़े के अर्धांश समेकित, गतिशील पलकें, बाहरी कान का होना, तथा विषदंतों का न होना। सांप पूरी तरह पाद विहीन होते हैं तथा इनका शरीर खासा लम्बा होता है, एक अधिक गतिक करोटि होती है जिसके कारण ये अपने शिकार को जो इनके अपने शरीर से भी ज़्यादा मोटा हो सकता है समूचा निगल सकते हैं। अधिकतर सांप अपने अपेक्षाकृत अल्पविकसित दृष्टि एवं श्रवण संवेदों पर निर्भर न रहते हुए रासायनिक संवेद ख़ास तौर से जैकबसन अंग पर निर्भर रह कर ही अपना शिकार ढूंढते-पकड़ते हैं। अनेक सांप विषैले होते हैं। कृमि-छिपकलियां (ऐम्फिस्बीनियनें) एक छोटा समूह है जिसमें पाद विहीन बिलकारी स्क्वैमेट आते हैं जिनमें दोनों आंखें तथा दोनों कान खाल के नीचे दबे-छिपे रहते हैं।

- न्यूज़ीलैंड की टुआटरा (ऑर्डर स्फीनोडॉण्टा, रिंकोसेफैलिया) एक बची खुची प्राचीन स्पीशीज़ है और इस समूह का एक मात्र जीवित सदस्य है, अन्यथा यह समूह 10 करोड़ वर्ष पहले ही समाप्त हो चुका था। इसमें अनेक आदिम लक्षण पाए जाते हैं जो लगभग उसी प्रकार के हैं जैसे मीज़ोजोइक जीवाश्म सरीसृपों में पाए जाते थे।

- मगर-मच्छ और ऐलिगेटर (ऑर्डर क्रोकोडीलिया) उसी आर्कोसौरियन कड़ी के मात्र जीवित सरीसृप प्रतिनिधि हैं जिससे विलुप्त डाइनोसौरों तथा जीवित पक्षियों का उदय हुआ। क्रोकोडीलियनों में मांसभोजिता, अर्धजलीय जीवन के लिए अनेक अनुकूलन हुए पाए जाते हैं जिनमें शक्तिशाली जबड़ों तथा द्वितीयक तालु के युक्त एक भारी-भरकम करोटि भी शामिल है। सरीसृपों में इन्हीं में सर्वाधिक सामाजिक व्यवहार पाया जाता है।

पक्षी

पक्षी अण्डे देने वाले, अंत:तापी कशेरुकी हैं जिनके शरीर पर पिच्छों का आवरण बना होता है, तथा जिनके अग्रपाद पंखों में बदल गए हैं। जातिवृत्त की दृष्टि से पक्षियों का सबसे निकट का संबंध थीरोपौडों से है जो मीज़ोजोइक युग के डाइनोसोरों का एक वर्ग था जिसमें पक्षियों के जैसे अनेक लक्षण पाए जाते थे। अभी तक के ज्ञात प्राचीनतम जीवाश्म पक्षी जुरेसिक से प्राप्त *आर्कियॉप्टेरिक्स* में पक्षी-जैसे अनेक लक्षण थे और वह कुछ थीरोपौड डाइनोसौरों के लगभग बिल्कुल समान था, बस अंतर इतना था कि इसमें पिच्छ, हाथ की पंख-सदृश संरचना तथा बड़े हो गए नेत्र कोटर बन गए थे। ऐसी बहुत संभावना है कि यह पक्षी आधुनिक पक्षियों की सीधी वंश-परम्परा में न रहा हो मगर इसे आधुनिक पक्षियों का एक सहोदर वर्ग तो माना ही जा सकता है। इस समय पक्षियों की 9600 स्पीशीज़ हैं जो जीवित पक्षियों के लगभग 28 ऑर्डरों में रखी जाती हैं तथा कुछ थोड़े से जीवाश्म ऑर्डर भी हैं।

- पक्षियों के विकास में उड्डयन के लिए अनुकूलन सबसे प्रमुख विषय है। यह अनुकूलन दो प्रकार का है- (1) देह-भार में कमी और (2) उड्डयन के लिए अधिक शक्ति लाना। पक्षियों का मुख्य पहचानकारी लक्षण इनमें पिच्छों (परों) का पाया जाना है जो एक्टोडर्मी उद्भव के होते हैं एवं सम्मिश्र रचना वाले, सरीसृपी शल्कों के व्युत्पाद होते हैं। हल्का होने के बावजूद ये मज़बूत होते हैं तथा जलापकर्षी एवं अधिक तापरोधी होते हैं। देह-भार में कमी लाने वाले लक्षण हैं कुछ अस्थियों का समाप्त हो जाना, कुछ अन्य का समेकन हो जाना (उड़ान में दृढ़ता प्रदान करने के लिए) तथा

अनेक हड्डियों में खोखली वायु से भरी गुहाओं का पाया जाना। पक्षियों में सरीसृपों के दांतों से युक्त जबड़ों का स्थान एक दंतविहीन हल्की शृंगीय चोंच ने ले लिया है, जो उनके लिए मुंह और हाथ दोनों का काम करती और जिसमें विविध आहार स्वभावों के लिए तरह तरह के अनुकूलन हो गए हैं।

- उड़ान के लिए अधिक शक्ति प्रदान करने वाले अनुकूलनों में ये सब आते हैं: उच्च उपापचय दर तथा उच्च देह तापमान और उसके साथ ऊर्जा-सम्पन्न आहार, एक अत्यन्त कार्य कुशल श्वसन-तंत्र जिसमें फेफड़े तथा वायु थैले होते हैं जो इस तरह व्यवस्थित होते हैं कि श्वसन-सतहों के ऊपर से हवा एक ही दिशा में गुज़रती रहे ताकि गैस-विनिमय सतहों पर ऑक्सीजन का स्तर ऊँचा बना रहे। उड़ने के काम करने वाली पेशियां तथा जांघों की पेशियां इस प्रकार व्यवस्थित होती हैं कि पेशियों का वज़न पक्षी के गुरुत्व-केंद्र पर आ गया है।
- पक्षियों में दृष्टि तेज़, अच्छी सुन सकने की शक्ति, कम विकसित गंध ज्ञान, तथा उड्डयन के लिए उत्कृष्ट समन्वय पाया जाता है।
- पाचन-तंत्र बहुत कार्यकुशल होता है, और आहार को बड़ी तेज़ी से पचाता है।
- एक सुविकसित उच्च रक्त दाब वाला परिसंचरण-तंत्र पाया जाता है। जिसमें ऑक्सीजन से खाली हो चुका रक्त तथा ऑक्सीजन से परिपूर्ण रक्त चार कक्षीय हृदय के भीतर दोहरे परिसंचरण द्वारा पूरी तरह पृथक रहते है।
- जल का संरक्षण मेटानेफ्रिक वृक्क करते हैं जो नाइट्रोजनी अपशिष्ट को यूरिक अम्ल के रूप में बाहर निकालते हैं। मूत्राशय समाप्त हो गया है।
- पक्षियों का उड़ना वायुगतिकीय सिद्धांतों पर होता है जिसमें ये अपने पंखों का उपयोग सहारा देने एवं उत्तोलन के लिए करते हैं, एक पूंछ दिशाचालन तथा नीचे उतरने के नियंत्रण में कार्य करती है, तथा निम्न उड्डयन वेग पर नियंत्रण के लिए "विंग-स्लॉट" होते हैं।
- पक्षियों में उड़ न पा सकना एक असाधारण बात है और यह दशा अनेक पक्षी ऑर्डरों में अलग-अलग विकसित हुई है। फिर भी, अनुड्डयनशील तथा उड्डयनशील दोनों ही प्रकार के पक्षी उड़ने वाले पूर्वजों से ही विकसित हुए हैं।
- ऐसा नहीं कि सभी पक्षियों में प्रवास क्रिया होती हो, मगर बहुत संख्या में ऐसा करते ही हैं। इनकी ये प्रवास यात्राएं ग्रीष्म नीडन स्थानों तथा शीत स्थानों के बीच होती हैं। प्रत्येक पक्षी स्पीशीज़ का यात्रा मार्ग अपना ही विशिष्ट होता है। पक्षी अपने संचालन में अनेक संकेतों का उपयोग करते हैं; इनमें सहज दिशा ज्ञान होता है जिसमे ये दृश्यमान स्थलाकृतियों, सूर्य दिक्सूचक, नभ के तारों का प्रतिरूप तथा गुरुत्व क्षेत्र का उपयोग करते हैं।
- पक्षियों में एक सुविकसित सामाजिक व्यवहार पाया जाता है जो इनके प्रणय प्रदर्शनों, संगमी के चयन, घोंसलों के बनाने, अण्डों के सेये जाने तथा बच्चों की देख-रेख के रूप में प्रकट होता है।

3.6 अंत में कुछ प्रश्न

1. सरीसृपों की वे कौन सी तीन विकास-रेखाएं हैं जो मीज़ोज़ोइक युग के दौरान ऐम्नियोटों से निकली हैं और उनमें से किस वंश-परम्परा में से स्तनियों का विकास हुआ है? आप ऐनैप्सिड, डाइऐप्सिड तथा सिनैप्सिड करोटियों में किस प्रकार विभेद करेंगे?

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

2. कम से कम छह ऐसी विधियों का वर्णन कीजिए जिनमें सरीसृप शरीरक्रिया एवं संरचना की दृष्टि से ऐम्फिबियनों से अधिक उन्नत हैं।

....

....

....

....

3. कछुओं (ऑर्डर टेस्टुडीन्स) के ऐसे विभेदक लक्षणों का वर्णन कीजिए जिनमें ये अन्य सरीसृपों से भिन्न होते हैं।

....

....

....

....

4. सांपों के जैकबसन अंग और उसके कार्य का वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

5. विषैले सांप को विषहीन सांप से आप किस प्रकार अलग पहचानेंगे?

....

....

....

....

6. मगरों तथा ऐलिगेटरों में क्या अंतर हैं?

....

....

....

....

7. छिपकलियों (पादविहीन सदस्यों सहित) के तीन संरचनात्मक लक्षण बताइए जिनमें ये सांपों से भिन्न होती हैं।

....

....

....

....

8. टुआटरा (रिंकोसेफ़ैलिया) के आदिम लक्षणों का वर्णन कीजिए।

....

....

....

9. *आर्कियोप्टेरिक्स* की खोज कहां हुई थी? इस जीवाश्म से किस प्रकार सिद्ध होता है कि पक्षियों की सरीसृपों के साथ एक समान पूर्वजता रही है?

....

....

....

....

10. पंख की संरचना व्यवस्था उत्तोलन प्रदान करने में किस प्रकार सहायता करती है?

....

....

....

....

11. निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणियां लिखिए:-

(क) निर्मोचन

....

....

....

....

(ख) प्रवास

....

....

....

....

(ग) पूर्व विकसित चूज़ें

....

....

....

....

(घ) सहापेक्षी चूज़ें

....

....

....

....

3.7 उत्तर

बोध प्रश्न

1. (क) (i) गलत, (ii) गलत, (iii) गलत, (iv) गलत, (v) सही, (vi) गलत, (vii) सही, (viii) सही

(ख) (i) लैसर्टीलिया, (ii) सर्पेंटीस; (iii) ऐम्फ़िस्बीनिया

(ग) (i) स; (ii) ब; (iii) ड; (iv) अ

2. (क) सही; (ख) गलत, (ग) गलत, (घ) गलत, (च) सही
3. (क) किरैटिन, (ख) व्यवहारात्मक तापनियमन; (ग) पैराइटल, (घ) समान
4. (क) सही, (ख) गलत, (ग) गलत, (घ) सही, (च) गलत, (छ) गलत, (ज) सही
5. (क) गलत, (ख) गलत, (ग) गलत, (घ) गलत, (च) सही
6. (क) लेपिडोसौर, (ख) पेट्रेल, (ग) डाइऐप्सिड, (घ) नहीं होते, (च) होते हैं।
7. (क) *हेमिडैक्टिलस ब्रूकाई*, (ख) होता है, (ग) गतिशील, (घ) कोमोडो ड्रैगन
8. (क) बोआ, (ख) आगे की ओर को, (ग) अच्छी दृष्टि, (घ) रसायन, (च) वाइपेरिडी, (छ) अण्डशिशुप्रजक, (ज) नहीं होती।
9. (क) कर्णपटह झिल्ली, (ख) केंचुए, (ग) राइन्यूरा *फ़्लोरिडा*
10. (क) गर्तदंती, (ख) तालु, (ग) कम
11. (क) रैटाइटीज़, कैरिनेटीज़, (ख) *आर्कियोप्टेरिक्स*, (ग) क्रोकोडीलियन, (घ) सरीसृप, पक्षी
12. (क) सही, (ख) सही, (ग) गलत
13. (क) अनुमस्तिष्क, (ख) सुविकसित, (ग) दो (रंग के लिए कोई नहीं), (घ) सरीसृपीय
14. (क) अल्पविघ भोजी, (ख) क्रॉप, (ग) गिज़र्ड
15. (क) सही, (ख) गलत, (ग) सही, (घ) गलत, (च) सही
16. (क) गलत, (ख) गलत, (ग) गलत, (घ) गलत, (च) सही, (छ) गलत, (ज) सही, (झ) गलत

अंत में कुछ प्रश्न

1. उपभाग 3.3.1 देखिए
2. उपभाग 3.3.5 देखिए
3. उपभाग 3.3.3 देखिए
4. उपभाग 3.3.6 में उपऑर्डर सर्पेंटीज़ के अंतर्गत देखिए, सांप "विषैले सांपों के प्रकार"
5. उपभाग 3.3.6 में उपऑर्डर सर्पेंटीज: "विषैले तथा विषहीन सांप के अंतर्गत"
6. उपभाग 3.3.6 उपऑर्डर आर्कोसौर (उन्नत डाइऐप्सिड) : ऑर्डर क्रोकोडीलिया
7. उपभाग 3.3.3 देखिए
8. उपभाग 3.3.6 देखिए, उपक्लास डाइऐप्सिडा : अधिऑर्डर लेपिडोसौरिया (a) ऑर्डर स्फीनोडॉण्टा के अंतर्गत
9. उपभाग 3.4.1 देखिए
10. उपभाग 3.4.4 "उड्डयन तथा फड़फड़ीय उड़ान" के अंतर्गत देखिए
11. (a) उपभाग 3.4.4 में निर्मोचन के अंतर्गत देखिए; (b) उपभाग 3.4.5 "प्रवास तथा संचालन" में देखिए, (c) तथा (d) उपभाग 3.4.5 "सामाजिक व्यवहार" "नीडन तथा बच्चों की देख-रेख" के नीचे देखिए।

इकाई 4 स्तनी

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
4.2 सामान्य लक्षण तथा वर्गीकरण
4.3 प्राकृतिक इतिहास
मॉनोट्रिमैटा/प्रोटोथीरिया
मार्सुपिएलिया
यूथीरिया
प्राइमेटीज़
आर्थिक महत्व
4.4 विकास एवं बंधुताएं
4.5 भारत की संकटग्रस्त स्पीशीज़
4.6 सारांश
4.7 अंत में कुछ प्रश्न
4.8 उत्तर

4.1 प्रस्तावना

अभी तक हमने ऐसे कशेरुकियों के विषय में पढ़ा जो अण्डे देते हैं तथा अपने बच्चों की देखभाल या तो बहुत कम करते हैं या करते ही नहीं। अब आप कशेरुकियों के एक ऐसे वर्ग का अध्ययन करेंगे जो बच्चों को जन्म देते एवं उनका पोषण करते हुए उनकी देखभाल भी करते हैं। इन्हें स्तनी कहा जाता है। अंग्रेजी में इनका नाम "Mammals" लैटिन शब्द "mammae" जिसका अर्थ स्तन है, से बना है। स्तनियों में स्तन-ग्रंथियां अर्थात् स्तन होते हैं जिनसे दूध निकलता है, और यह दूध बच्चों को पिलाकर उनका पोषण किया जाता है। निषेचित अण्डा माता के गर्भाशय में ही रुक जाता है जहां वह अपेक्षाकृत अधिक सुरक्षित रूप में परिवर्धित होता है। परिवर्धन के दौरान एक संरचना अपरा (प्लैसेन्टा) बनती है। यह अपरा परिवर्धनशील भ्रूण को पोषण तथा ऑक्सीजन की आपूर्ति करता है। यह भ्रूण से उसके नाइट्रोजनी अपशिष्टों एवं कार्बन डाइऑक्साइड को भी बाहर निकाल देने में सहायता करता है। चारों गर्भ-झिल्लियां भ्रूण परिवर्धन के दौरान बन जाती हैं। अपरापोषिका (ऐलेंटोइस) तथा पीतक कोश (yolk sac) गर्भाशय की दीवार से निकट संबंध बनाकर अपरा (प्लैसेंटा) की रचना करते हैं। आज पृथ्वी पर चतुष्पाद कशेरुकियों में स्तनी ही सबसे सफल और सबसे प्रमुख वर्ग हैं। आज जीवित स्तनियों की लगभग 5000 स्पीशीज़ हैं। जिस प्रकार रेप्टाइलों का शरीर शल्कों से तथा पक्षियों का परों से ढका होता है उसी प्रकार स्तनियों का शरीर बालों (रोमों) से ढका रहता है। परों की तरह रोम भी शरीर के लिए एक तापरोधी का कार्य करते हैं और इस प्रकार शरीर के तापमान को स्थिर बनाए रखने में सहायता करते हैं। अतः स्तनी भी पक्षियों के समान उष्ण रक्तापी (समतापी, homeothermic) होते हैं। स्तनी प्राणियों का वितरण बहुत व्यापक है। ये पृथ्वी के उत्तरी ध्रुव प्रदेश के जैसे शीतलतम तथा रेतीले मरूस्थलों के जैसे उष्णतम प्रदेशों में पाए जाते हैं। ये सभी प्रकार के थलीय आवासों में पाए जाते हैं। ये चलते हैं, दौड़ते हैं, तैरते हैं, बिल बनाते हैं और उड़ते हैं। ऐसे स्तनी भी हैं जो उड़ने तथा जलीय जीवन के लिए अनुकूलित हो गए हैं। स्तनियों का मस्तिष्क सुविकसित हो गया है। ये अन्य कशेरुकियों से कहीं ज़्यादा होशियार होते हैं। आज के युग में स्तनी ही कशेरुकी विकास की चरम सीमा पर पहुंचे कहे जा सकते हैं। आज के भूवैज्ञानिक युग को स्तनियों का स्वर्णिम युग (**Golden Age of Mammals**) कहा जाता है। मानव भी इसी कशेरुकी वर्ग में आता है और आज वह विकास की सर्वोच्च शिखर पर पहुंच चुका है।

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप:

- स्तनियों के उन महत्वपूर्ण लक्षणों को स्पष्ट कर सकेंगे जिन्होंने थल पर इनके जीवन की सफलता में योगदान दिया है,
- बिना अपरा वाले स्तनियों का वर्णन कर सकेंगे,
- चमगादड़ों में उड्डयन के लिए तथा ह्वेलों में जलीय जीवन विधि के लिए हुए अनुकूलनों का वर्णन कर सकेंगे,
- स्तनियों में दंत-व्यवस्था समझा सकेंगे,
- मानव के विकास पर विवेचन कर सकेंगे,
- भारत के स्तनियों की संकटग्रस्त स्पीशीज़ के नाम सूचीबद्ध कर सकेंगे।

4.2 सामान्य लक्षण तथा वर्गीकरण

1. स्तनियों के शरीर पर बाल (रोम) होते हैं। बाल तथा अन्य संरचनाएं जैसे कि उंगलियों पर नखर, खुर तथा नाखून और कुछ स्तनियों में पाए जाने वाले शल्क जैसे कि चूहों की दुम पर पाए जाते हैं, ये सब मिलकर स्तनियों का एपिडर्मिसी बाह्यकंकाल बनाते हैं।

2. स्तनी समतापी (homiothermic) होते हैं। शरीर का रोम-आवरण तथा त्वचा में पायी जाने वाली स्वेद (पसीना) ग्रंथियां शरीर के तापमान को स्थिर बनाए रखने में सहायता करती हैं।

3. स्तनियों की त्वचा में अनेक प्रकार की ग्रंथियां पायी जाती है जैसे कि सिबेशस (तैल), पसीना, गंध तथा स्तन (दुग्ध) ग्रंथियां।

4. स्तनियों का कंकाल भली भांति अस्थिभूत (ossified) होता है। करोटि (खोपड़ी) के भीतर कपाल (मस्तिष्क-कोश) बड़ा होता है। करोटि द्विअस्थिकंदी (bicondylar) होती है, अर्थात् उसमें अनुकपाल अस्थिकंद दो की संख्या में होते हैं। दांत विषमदंती (heterodont) (विभिन्न प्रकार के दांतों का होना), गर्तदंती (thecodont) (दांतों का जबड़े की हड्डियों में बने गढ़ों में जमे होना) तथा द्विबारदंती (diphyodont) (स्तनी के जीवन में दांतों के दो सेटों का होना) होते हैं। निचला जबड़ा केवल एक हड्डी डेण्टरी **(dentary)** का बना होता है। ऊपरी जबड़ा करोटि के साथ समेकित हो गया है तथा निचला जबड़ा सीधे करोटि के साथ संधि बनाता है। स्तनियों की गर्दन में सात कशेरुकें पायी जाती हैं, भले ही गर्दन की लंबाई कितनी ही क्यों न हो। कान का एक बाहरी छिद्र होता है और एक बाहरी कान कर्ण पल्लव (pinna) होता है। मध्य कान में तीन अस्थिकाएं (इंकस incus, मेलियस malleus, स्टेपीज़ stapes) होती हैं। ये ध्वनि तरंगों को भीतरी कान में पहुंचाने में सहायता करती हैं।

अस्थिभवन (ossify): हड्डी की तरह कड़ा हो जाना अथवा हड्डी में बदल जाना।

5. मस्तिष्क का आकार अन्य कशेरुकियों की तुलना में अपेक्षाकृत बड़ा होता है। प्रमस्तिष्क (सेरिब्रम, cerebrum) सुविकसित होता है। अन्य कशेरुकियों के मस्तिष्क में पायी जाने वाली दो दृक् पालियों (optic lobes) की बजाए इनमें चार दृक्-पालियां पायी जाती हैं जिन्हें कॉर्पोरा क्वाड्रिजेमाइना (corpora quadrigemina) कहते हैं। इन प्राणियों में 12 जोड़ी कपाल तंत्रिकाएं होती हैं।

6. स्तनियों का हृदय चार-कक्षीय होता है। अलिंद (auricle) तथा निलय (ventricle) दोनों ही दाहिने तथा बायें कक्षों में विभाजित हो गए हैं। बायें अलिंद तथा बाये निलय के बीच के छिद्र की चौकसी करता हुआ **द्विवलन वाल्व (bicuspid valve)** तथा दाहिने अलिंद और दाहिने निलय के बीच के छिद्र पर **त्रिवलन वाल्व (tricuspid valve)** बना होता है। (चित्र 4.1) इन वाल्वों का पाया जाना स्तनियों की विशेषता है। महाधमनी चाप (aortic arch) के नाम पर केवल एक ही बायीं महाधमनी चाप होती हैं जो पृष्ठ दिशा में घूम कर आगे जाती है और पृष्ठ महाधमनी

(dorsal aorta) का रूप ले लेती है। ऊँटों को छोड़कर (जिनमें लाल रक्त कणिकाएं केंद्रकयुक्त होती) सभी स्तनियों में ये कणिकाएं केंद्रविहीन होती हैं।

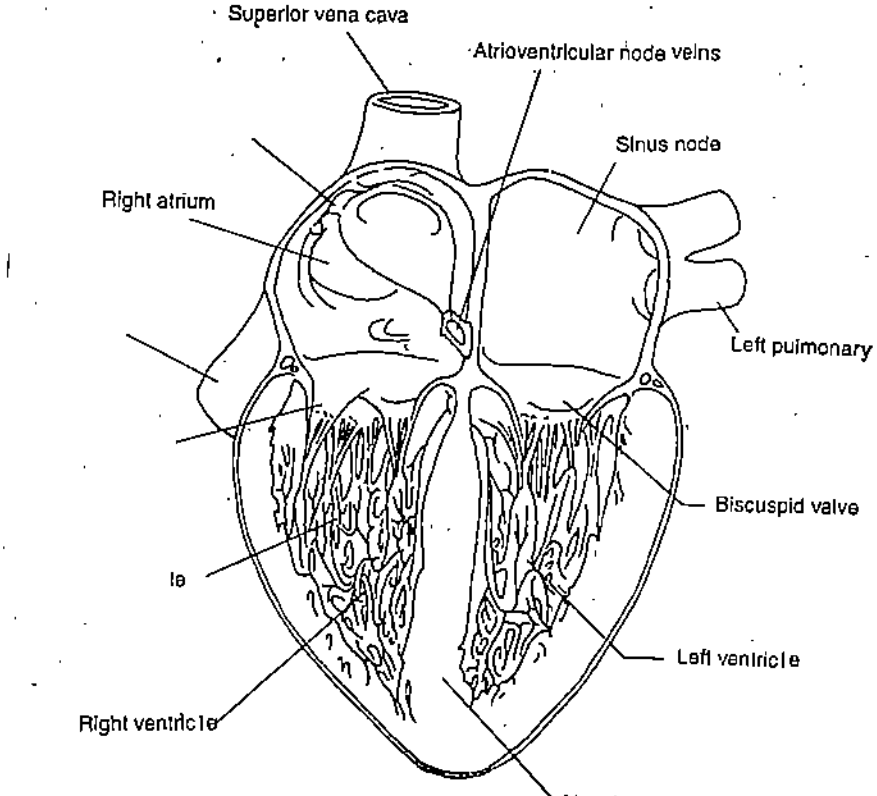

चित्र 4.1: मानव हृदय का काट कर दिखाया गया दृश्य जिसमें द्विवलन तथा त्रिवलन वाल्व दर्शाए गए हैं।

7. एक पेशीय डायाफ्राम होता है जो उदर गुहा को वृक्ष गुहा से पृथक कर देता है, (चित्र 4.2)। डायाफ्राम श्वसन में सहायता करता है। श्वसन के दौरान डायाफ्राम के नीचे आने तथा ऊपर उठने से हवा क्रमश: फेफड़ों के भीतर जाती तथा बलपूर्वक बाहर निकाल दी जाती है।

8. फेफड़ें लचीले (प्रत्यास्थ, elastic) होते हैं और उनमें छोटी-छोटी वायु गुहाएं होती हैं जिन्हें कूपिकाएं (एल्वियोलाई, **alveoli**) कहते हैं। श्वास नली में एक स्वर कोश होता है जिसे लैरिंक्स (**larynx**) कहते हैं। यह आवाज़ पैदा करने में सहायता करता है।

9. वयस्क स्तनी का वृक्क (गुर्दा) मेटानेफ्रॉस से बनता है। मूत्राशय सामान्यत: होता है।

10. लिंग (सेक्स) अलग-अलग होते हैं। लैंगिक द्विरूपता पायी जाती है। नर स्तनियों में शिश्न (**penis**) नामक मैथुन अंग पाया जाता है। मैथुन के दौरान यह अंग शुक्राणुओं (वीर्य) को मादा जनन पथ में पहुंचाने का कार्य करता है। वृषण सामान्यत: उदरबाह्य थैली-जैसी संरचनाओं में स्थिर होते हैं जिन्हें वृषण-कोश (**scrotum**) कहते हैं। निषेचन भीतरी होता है। स्तनी शिशुप्रज (**viviparous**) होते हैं अर्थात् इनकी संतान मां के शरीर के भीतर परिवर्धित होती है। भ्रूण परिवर्धन के दौरान एक संरचना अपरा (प्लैसेंटा) बनती है। गुदा तथा मूत्रजनन छिद्र अलग-अलग होते हैं तथा अवस्कर (**cloaca**) का अभाव होता है मगर मॉनोट्रिमैटा वर्ग अपवाद है जिसमें अवस्कर होता है।

वर्गीकरण

स्तनियों का वर्गीकरण दांतों की प्रकृति, पादों तथा अंगुलियों पर पाए जाने वाले नखरों, खुरों अथवा नाखुनों के आधार पर किया जाता है। क्लास मैमेलिया (Mammalia) को जनन की प्रकृति के आधार पर तीन उपक्लासों में विभाजित किया जाता है।

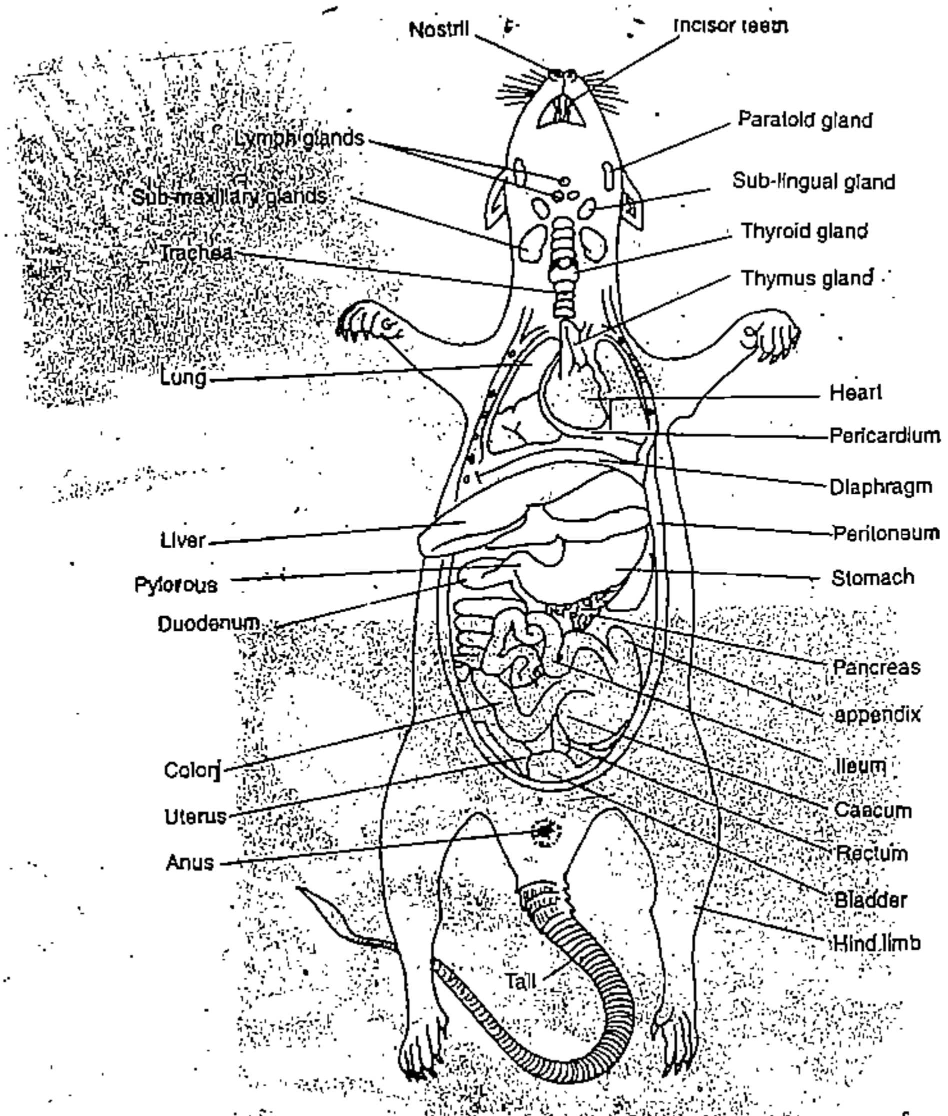

चित्र 4.2: चूहे का विच्छेदन जिसमें उदरगुहा को वक्ष गुहा से पृथक करता हुआ डायाफ्राम दर्शाया गया है।

उपक्लास 1: प्रोटोथीरिया/मॉनोट्रिमैटा (PROTOTHERIA/MONOTREMATA)

इसमें आदिम सरीसृप-सदृश स्तनी आते हैं। ये पीतक (yolk) से भरे अण्डे देते हैं और उसके बावजूद ये दूध का स्रवण करते हैं और इस प्रकार क्लास मैमेलिया के शेष सदस्यों से ये आधारभूत रूप में भिन्न होते हैं। वृषण उदर के भीतर होते हैं। इन प्राणियों में अवस्कर होता है। बाहरी कान (कर्णपल्लव) अनुपस्थित होता है। ये केवल ऑस्ट्रेलिया, तस्मानिया तथा न्यूगिनी में ही पाए जाते हैं अन्यत्र कहीं नहीं।

उदाहरण: कंटीला चींटीखोर (Spiny ant-eater) (*Tachyglossus/Echidna*)

डकबिल प्लैटिपस (ऑर्निथोरिंकस **Ornithorhynchus**) (चित्र 4.4) अंडा देने वाला स्तनी है, जिसमें स्तनी और सरीसृप दोनों प्रकार के लक्षण पाए जाते हैं। सरीसृपी प्रकार के लक्षण हैं मूत्रजनन तंत्र, प्रीकोरेकॉइड हड्डियां, कर्णपल्लव का अभाव, आदि। स्तनीय प्रकार के लक्षणों में शामिल हैं बाल, डायाफ्राम, 4-कक्षीय हृदय, 3 कर्णास्थिकाएं आदि। यह डकबिल नदियों, तालाबों, संकरी खाड़ियों तथा 40 फुट गहरे बिलों में रहता है। यह प्राणी अलवणजलीय अकशेरुकियों को खाता है और उन्हें मुंह में कपोल कोष्ठों में लिए चलता है। ऊपरी जबड़े ने एक चपटी चोंच का रूप ले लिया है जिसके ऊपर एक चिकनी तथा बिना बालों की त्वचा चढ़ी होती है और चोंच के आधार पर इस त्वचा का एक वलन बन गया होता है। वयस्कों में दांत नहीं होते तथा जबड़ों पर शृंगीय प्लेटें चढ़ी होती हैं। पादों में 5-नखर होते हैं तथा पादांगुलियों के बीच झिल्लियां होती हैं। पूंछ चपटी तथा तैरने के वास्ते अनुकूलित हुई होती है। स्तन ग्रंथियों में चूचुक (nipples) नहीं बने होते। मादा वसंत ऋतु में जड़ों तथा पत्तियों का एक घोंसला अपने बिल के अंदर ही बनाती हैं और उसमें 1-3 अण्डे देती है। अण्डों में से निकले बच्चों को मां दूध पिलाती है, यह दूध स्तन ग्रंथियों से निकलता है और स्तन ग्रंथियां मादा के उदर पर फैली हुई होती हैं।

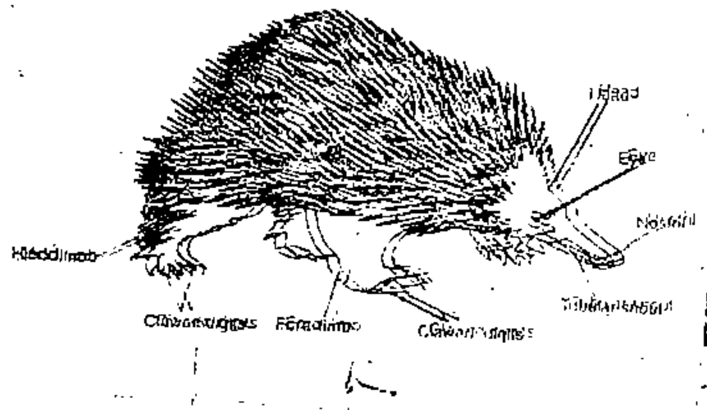

चित्र 4.3: ऐकिड्ना (*Echidna*) मुंह छोटा होता है परन्तु चींटियों और दीमकों को पकड़ने के लिए इसकी जुबान लंबी चिपचिपी होती है।

चित्र 4.4: ऑर्निथोरिंकस (*Ornithorhynchus*)

उपक्लास II: मेटाथीरिया/मार्सुपिऐलिया (METATHERIA/MARSUPIALIA)

मादा में एक अधर उदरीय कोष्ठ होता है जिसे "मार्सुपियम" कहते हैं। बच्चे इसी कोष्ठ या थैली के भीतर सुरक्षित रखे जाते हैं। अल्प गर्भावधि (कंगारू में 13 दिन) के बाद पैदा होने वाले नन्हें बच्चों को इसी थैली के भीतर पहुंचा दिया जाता है और इसी के भीतर इनको तब तक पोषित किया जाता एवं सुरक्षित रखा जाता है जब तक कि वे स्वयं अपनी देखभाल रखने लायक नहीं हो जाते। इस उपक्लास के प्राणी केवल ऑस्ट्रेलिया तथा अमेरिका में पाए जाते हैं।

कंगारू (मैक्रोपस कॉन्गुरू *Macropus conguru*) (चित्र 4.5) अधिकतर स्थलीय बन गए हैं और उनमें चलने की द्विपाद विधि विकसित हो गयी है। इनके द्विपाद संचलन में इलियम हड्डियों तथा जांघ की पेशियों का रूपांतरण निहित है, इन पेशियों के जुड़ने के लिए टिबिया हड्डी में एक अधिक स्पष्ट अग्र किरीटि (crest) बन गयी है। अंगुलि संख्या 4 की मेटाटार्सल के दीर्घीकरण से पैर को अधिक लीवरता (leverage) प्राप्त हो गयी है। अंगुलि संख्या 2 और 3 बहुत छोटी तथा युक्तांगुलिक (syndactylus) होती है। कंगारूओं के कूद-कूद कर चलने के स्वभाव से यह देखना कि उनके पिछले पाद लम्बे हैं कोई आश्चर्य की बात नहीं, मगर इतना तो कुछ-कुछ आश्चर्यजनक है ही कि इनके अग्रपाद काफ़ी छोटे होते हैं। इन हाथों की अधिकतर लम्बाई अग्रभुजा की लम्बी हड्डियों के कारण है और ये हड्डियां ह्यूमरस से काफी अधिक लम्बी होती हैं। यदि प्राणी आगे को झुका होता है तो उसके अग्रपाद शीघ्र ही धरती को छू लेते हैं। क्या इन अग्रपादों का संचलन में कोई कार्य है? सच तो यह है कि उनका कार्य है, क्योंकि कंगारूओं की चाल रेंगने-जैसी होती है जिसमें अग्रपाद तथा पूंछ टेकनों का सा काम करते हैं।

कंगारू (मार्सुपियल-प्राणी) थैली युक्त, अंडशिशुप्रज (ovoviviparous) स्तनी होते हैं जिनमें जनन का एक दूसरा प्रतिरूप देखने को मिलता है। इन मार्सुपियलों में निश्चय ही एक आदिम प्रकार का अपरा पाया जाता है कोरियोविटेलाइन (choriovitelline) अथवा पीतक थैला अपरा कहते हैं। मार्सुपियल का भ्रूण अथवा ब्लास्टोसिस्ट पहले-पहल कवच झिल्लियों द्वारा घिरा हुआ एक केप्सूल जैसा बन जाता है जो गर्भाशय तरल में कई दिन तक मुक्त रूप में तिरता रहता है। कवच झिल्लियों में से फूट कर बाहर निकल आने के बाद भ्रूण का रोपण नहीं होता यानि वह उस प्रकार गर्भाशय में जड़ नहीं जमा लेता जैसे कि अन्यथा यूथीरियनों में होता है, परंतु यह गर्भाशय की दीवार में एक उथला गढ़ा बना देता है जिसके भीतर यह आ टिकता है और फिर रक्त वाहिका युक्त पीतक थैले के माध्यम से म्यूकोसा के पोषक स्रावों को सोखता है। गर्भावधि अर्थात् अंतःगर्भाशयी परिवर्धन का काल मार्सुपियलों में छोटा होता है तथा सभी मार्सुपियल-प्राणी अपने बच्चों को बहुत ही छोटे आकार की अवस्था पर जन्म देते हैं, ये बच्चे शरीर रचना तथा कार्यिकी इन दोनों ही दृष्टि से अब भी भ्रूण ही होते हैं। परंतु इस समयपूर्व जन्म के बाद दुग्धस्रवण एवं जनकीय देख रेख का एक लम्बा अंतराल आता है। गर्भावधि के बाद बच्चा जन्मता है और चूचुक से जुड़ जाता है। मां तुरंत फिर से गर्भवती हो जाती है परंतु थैली में दूध पीता रहता बच्चा विद्यमान होने के कारण गर्भाशय के नए भ्रूण का परिवर्धन लगभग 100 कोशिका अवस्था पर आकर रुक जाता है।

चित्र 4.5 : मैक्रोपस (*Macropus*)

उपक्लास III: यूथीरिया/प्लैसेंटेलिया (EUTHERIA/PLACENTALIA)

भ्रूण पूरी तरह मां के गर्भाशय के भीतर ही परिवर्धित होता है। एक अपरा बनता है जो भ्रूण को पोषण पहुंचाता तथा उसकी रक्षा करता है। बच्चे अपेक्षाकृत अधिक विकसित परिवर्धन-अवस्था पर जन्मते हैं। उनका पोषण स्तन ग्रंथियों से स्रवित दूध पर किया जाता है। इस उपक्लास में कुल मिलाकर 28 ऑर्डर हैं जिनमें से जीवित उदाहरणों वाले ऑर्डर केवल 16 ही हैं। यहां कुछ थोड़े से महत्वपूर्ण ऑर्डरों का ही वर्णन किया जा रहा है।

ऑर्डर

1. **इंसेक्टिवोरा (Insectivora)** (कीट-भक्षी): इसमें कीट भक्षी एवं बिल बनाने वाले स्तनी आते हैं। उदाहरण: श्रियू (shrew) तथा छछूंदर (mole) (चित्र 4.6 तथा 4.7)।

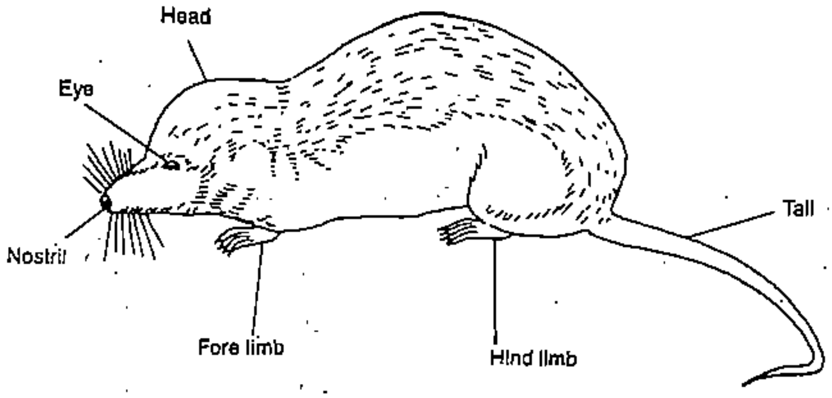

चित्र 4.6: सोरेक्स (श्रियू)

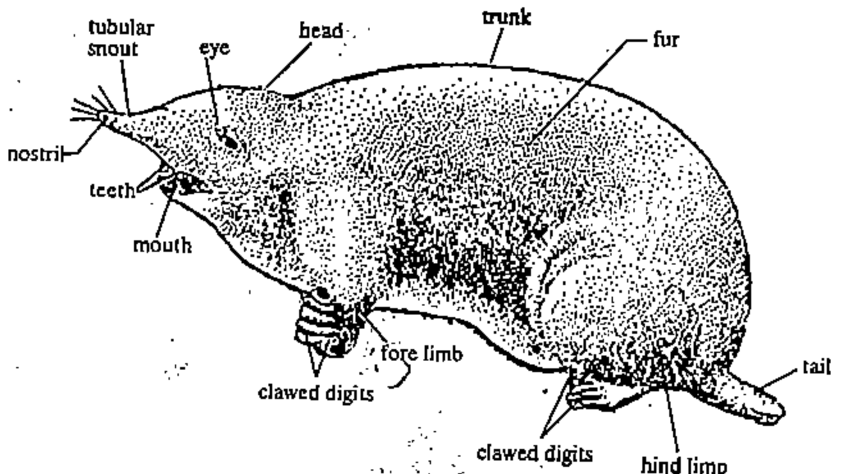

चित्र 4.7: टाल्पा (*Talpa*) (छछूदर)

इन्सेक्टिवोर-प्राणि अधिकतर छोटे और रात्रिचर होते हैं। इनमें अभी तक अनेक आदितम स्तनीय लक्षण पाये जाते हैं जिसका कारण कदाचित उनकी विशिष्ट आदतें हैं। ये भूमिगत बिलकारी आवास के लिए अनुकूलित हैं और सुरंग बनाकर उसके भीतर रहते हैं। इन्हें जब जो मिल जाए ये खा लेते हैं, इनके खाने में छोटे-विविध अकशेरुकी होते हैं जैसे कृमि, कीटों के ग्रब लार्वा और कीट भी। इन्सेक्टिवोर-प्राणी आदिम यूथीरियन लक्षणों के प्रतिरूप हैं। इनके आदिम लक्षणों में ये आते हैं: छोटी कपाल गुहा, निम्न स्तर का मस्तिष्क जिसमें प्रमस्तिष्क गोलार्ध चिकने सपाट होते हैं, वृषण इंग्वाइनल (inguinal) (वंक्षणी) होते हैं, अपरा डिस्कॉइडल (चक्रिकाभ) एवं पाती (deciduous) प्रकार का होता है जिसमें "पीतक-कोष अपरा" का प्रावधान भी होता है। अनेक इंसेक्टिवोरों में शीत ऋतु में शीतनिष्क्रियता पायी जाती है तथा इस हेतु उनमें विशेष वसा भंडार संचित किए गए होते हैं। इनमें से अधिकतर प्राणी एकल होते हैं मगर कुछ में सामाजिक स्वभाव भी पाया जाता है तथा वे श्रवण एवं सूंघने के संकेतों का आदान-प्रदान करते हैं। ये सरल प्रकार के घोंसले बनाते हैं।

2. काइरॉप्टेरा (**Chiroptera**) (GK. Cheir: हाथ, pteron: पंख) उड़ने वाले स्तनी हैं (चित्र 4.8)। यदि उड़ने के विशेषीकरण को छोड़ भी दें तो चमगादड़ें इन्सेक्टिवोरों के बहुत निकट हैं। इन प्राणियों ने आरंभ में ही अपनी एक अलग शाखा बना ली थी तथा इनके विशिष्ट लक्षण आरंभिक ईओसीन में ही विकसित हो गए थे। केवल ये ही ऐसे स्तनी हैं जो सच्चे अर्थ में अपने पंखों को फड़फड़ा कर उड़ते हैं। उड्डयन शक्ति प्राप्त करने में इनमें ऐसे अनेक लक्षण विकसित हुए हैं जो पक्षियों के समांतर हैं जैसे कि कंकाल एवं आहार नली में वज़न की बचत होना तथा सक्रिय उपापचय (मेटाबोलिज़्म)। चमगादड़ें सामान्यत: जब उड़ नहीं रही होतीं, तब वे सिर नीचे लटकाएं उलटी टंगी होती हैं और मलमूत्र विसर्जन करते समय वे घूमकर अपने हस्तांगुष्ठ (अंगूठे) (pollex) के नखर के सहारे लटकतीं और तब मलमूत्र विसर्जन करती हैं ताकि उनके पंख गंदे न हो जाएं। जब चमगादड़ उलटी लटकी होती है तब उसमें तापमान को बढ़ाने की दिशा में नियमन नहीं होता। हर बार जब भी प्राणी इस विश्राम स्थिति में होता है तब वह बहुत ठंडा होता जाता है। ठंडा हो जाने में आहार की बहुत बचत होती है। जैसे ही चमगादड़ विश्राम के बाद

जागती है तो वह चल सकती, मुंह खोल सकती, काट सकती है या चीख सकती है मगर उड़ वह तभी पाती है जब कुछ मिनटों तक अपनी टांगों को झटके दे-देकर अथवा शरीर में कँपकँपी पैदा करके अपने को गर्म कर लेती है।

चित्र 4.8: चमगादड़

3. ईडेण्टेटा (**Edentata**) (दंत विहीन): दांत या तो नहीं होते या ह्रासित होते हैं और ऐसा इनके कीटभक्षी आहार के कारण होता है। उदाहरण: आर्मेडिल्लो (armadillo) तथा शल्की चींटीख़ोर (scaly ant-eater) (चित्र 4.9 तथा 4.10)। इन सभी में एक लम्बा थूथन तथा लम्बी जीभ होती है और लार-ग्रंथियां बहुत बड़ी होती हैं। ईडेण्टेटा के विशिष्ट लक्षण इनकी विशिष्ट जीवन शैली के कारण हैं जिससे इनका बाहरी स्वरूप बड़ा अजीब सा हो गया है। इसके उदाहरण हैं विशाल चींटीख़ोर का लम्बा थूथन अथवा आर्मेडिल्लों का कैरापेस (carapace)। आर्मेडिल्लो रात्रिचर तथा बिलकारी होते हैं और इनकी त्वचा में अस्थिल प्लेटें बनी होती हैं जिनसे सुरक्षा प्राप्त होती है तथा इन प्लेटों के ऊपर शृंगीय स्कयूट (ढालें) बनी होती हैं। दांत सरल एकरूपी खूंटिया जैसे इनैमल रहित, एवं उनकी जड़ें खुली होती हैं और उनकी वृद्धि निरंतर होती रहती है। इसकी पूंछ परिग्राही होती है। जब मेनिस को उत्तेजित कर दिया जाता है तो वह अपने अग्रपाद के बीच में सर के सहित रोल कर जाता है। मैनिस (*Manis*) जीनस के प्राणी सामान्यतः शल्की चींटाख़ोर अथवा सल्लूसांप (pangolins) कहलाते हैं। दांतों का न होना, लम्बा थूथन, लम्बी पतली जीभ, सरल जठर, ह्रासित कान तथा लम्बे नखर ये सारे लक्षण अन्य चींटीख़ोरों में और साथ ही साथ मैनिस में भी पाए जाते हैं।

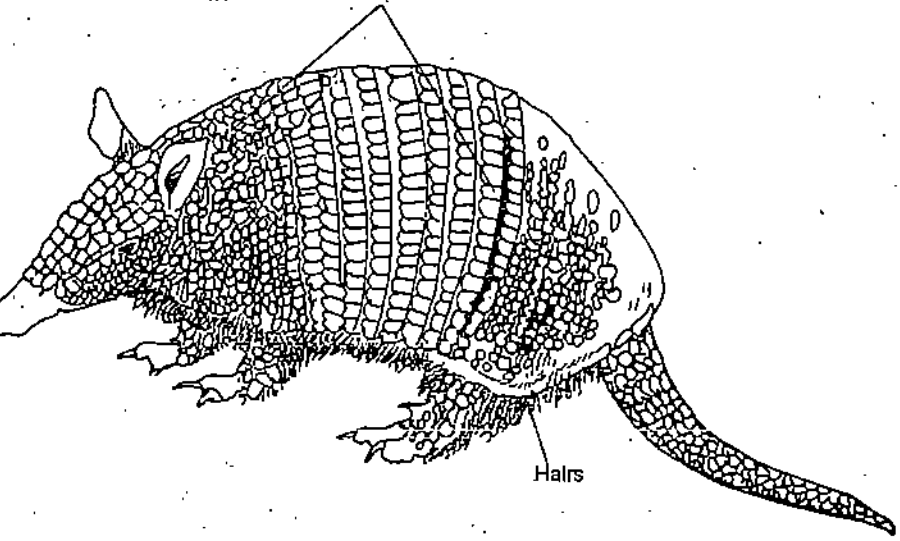

चित्र 4.9: डेसिपस (*Dasypus*) (आर्मेडिल्लो)

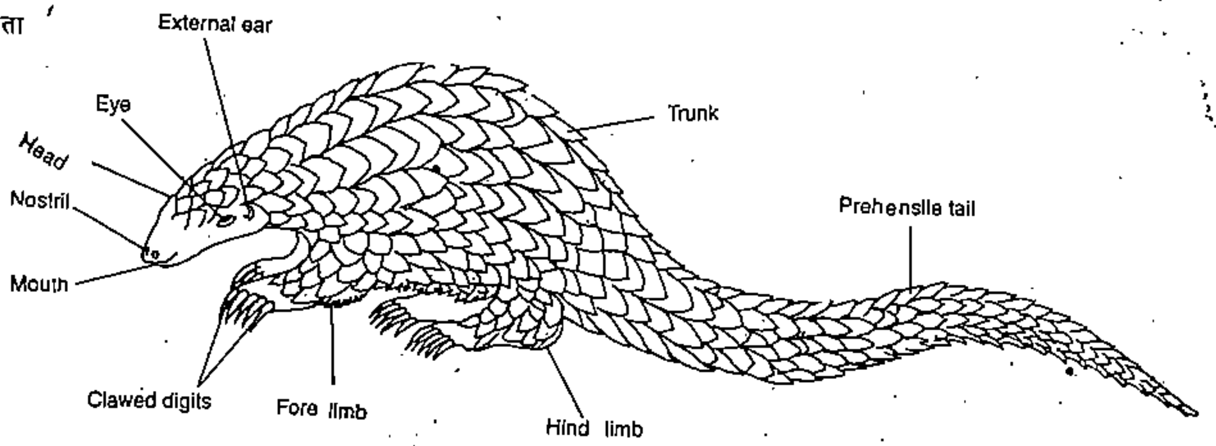

चित्र 4.10: मैनिस (*Manis*) (शल्की चींटीखोर अथवा पेंगोलिन)

4. लैगोमॉर्फा **(Lagomorpha)** (खरगोश-रूपी) इनमें लम्बे लगातार वृद्धि करते हुए कृंत्तक (incisors) होते हैं जैसे कि रोडेण्टों में पाए जाते हैं, परंतु जैसा कि रोडेण्टों में नहीं होता इनमें खूंटी-जैसे कृन्तकों की एक अतिरिक्त जोड़ी पहली जोड़ी के पीछे उगती हुई पायी जाती है। अत: इनमें तीन जोड़ी कृन्तक पाए जाते हैं। जंगली खरगोश (hare) तथा पालतू खरगोश (rabbit) जिसे शशक भी कहते हैं, इनके दो उदाहरण हैं (चित्र 4.11 तथा 4.12)। सभी लैगोमॉर्फ़ शाकभक्षी (herbivores) होते हैं तथा ये सारे विश्व में पाए जाते हैं। जंगली खरगोश, पालतू खरगोश तथा कुछ रोडेण्ट-प्राणी अक्सर अपनी ही विष्ठा-गुटिकाएं (faecal pellets) को खा लेते हैं (शमलभक्षिता, coprophyagy) जिसके द्वारा भोजन एक बार फिर से, आहार नाल में जाता हुआ आंत्र-बैक्टीरिया की किण्वन-क्रिया में से होकर गुज़रता है। इस प्रकार शमलभक्षिता द्वारा प्राणी को अपने सीकम के बैक्टरीरिया द्वारा बने विटामिनों को प्राप्त करने का अवसर मिलता है।

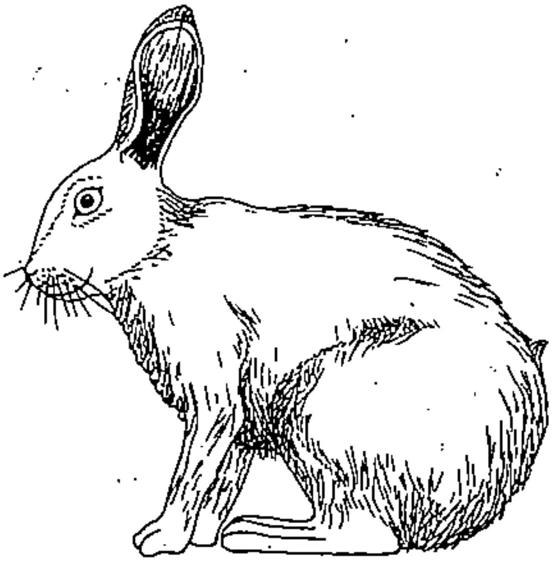

चित्र 4.11: जंगली खरगोश **(Hare)** (लीपस, *Lepus*)

चित्र 4.12: पालतू खरगोश **(Rabbit)** (ओरिक्टोलैगस, **Oryctolagus**)

5. रोडेन्शिया (Rodentia) कुतरने वाले प्राणी होते हैं (चूहे, गिलहरी, चित्र 4.13 तथा 4.14, मूषक, आदि)। समस्त स्तनी स्पीशीज़ की लगभग 40% स्पीशीज़ इसी वर्ग में आती हैं। इनकी सबसे बड़ी विशिष्टता है दो जोड़ी उस्तरें-जैसे तेज़ कृन्तक दांतों का होना जिनके द्वारा ये कड़े से कड़े फलों, फलियों और कवचों को कुतर-कुतर कर आहार कर सकते हैं। इनकी जबर्दस्त जनन क्षमता, अनुकूलनशीलता एवं हर प्रकार के स्थलीय आवासों में पहुंच कर रह सकने की क्षमता के कारण इनका पारिस्थितिकीय महत्व बहुत ज्यादा बन गया है।

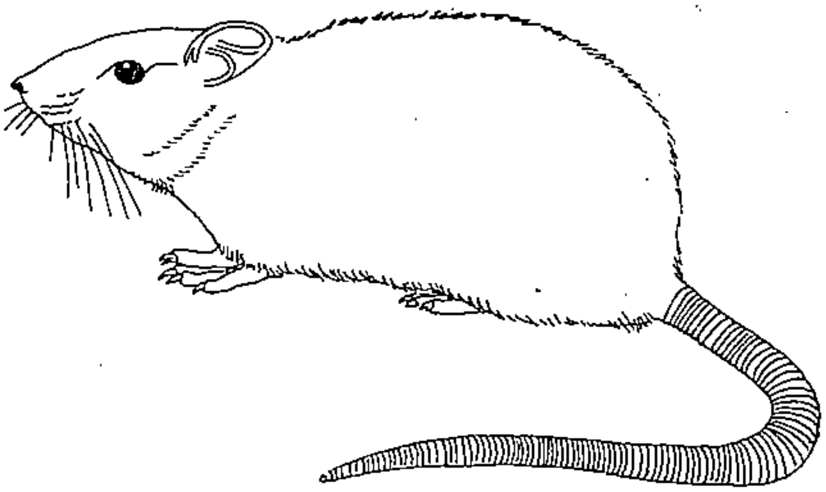

चित्र 4.13: रैटस रैटस (*Rattus rattus*)

चित्र 4.14: गिलहरी (फ्यूनैम्बुलस, *Funambulus*)

6. सिटेसिया (Cetacea) (हेलें, Whales) जलीय स्तनी हैं। इनके अग्रपाद चप्पू जैसे फ्लिपर के रूप में बदल गए हैं। पश्च-पाद नहीं होते। शरीर पर बाल इक्के-दुक्के ही होते हैं। नथुनों के रूप में शीर्ष के सबसे ऊपर एक अकेला अथवा दोहरा वात छिद्र (blow hole) या यूँ कहे कि फूंक-छिद्र होता है। भांति-भांति की हेल, सूंस (चित्र 4.15) तथा पौरपॉइज़ (porpoise) इस वर्ग के उदाहरण हैं। बड़ी हेलें तथा सूंस समुद्र में ही सोती हैं। अनेक बातों में हेले वापिस मछली-जैसी जीवन-शैली में लौट आयी हैं जिनमें विशेषकर लम्बे शीर्ण वाली देह-आकृति, गर्दन का न होना तथा शरीर का आगे-पीछे नुकीला धारारेखित (streamlined) हो जाना। सूंसे 40 किलोमीटर प्रति घंटा तक की रफ्तार से कई-कई घंटों तक तैर सकती हैं। नोदन प्रणोद (propulsive thrust) अर्थात् सामने को गति देने वाला धक्का मुख्यत: क्षैतिजश: स्थित पुच्छ-पर्णाभों (tail flukes) द्वारा प्रदान होता है। अग्रपाद में ह्यूमरस छोटी होती है, कोहनी की संधि लगभग गतिहीन होती है तथा हाथ लम्बा हो जाता और कभी-कभी चौड़ा हो जाता है। उंगलियों की संख्या अक्सर घट कर चार रह जाती है तथा कुछ उंगलियों की अंगुलास्थियां (phalanges) संख्या में बहुत अधिक हो जाती हैं (अधिअंगुलास्थिता, hyperphalangy)। स्कैपुला चपटी हो गयी होती है तथा क्लैविकल नहीं होती। हेल में एक विशद व्यवहार पाया जाता है जिसमें सामाजिक जीवन, ध्वनि द्वारा संचार-व्यवस्था एवं कदाचित् सीख जाना (शिक्षण) भी शामिल

है। क्रीड़ा सामान्यतः पायी जाती है तथा इनमें लयबद्ध नृत्य भी देखा गया है। साथ ही इनमें बंदी बनाकर रखी गयी स्थिति में समलैंगिक व्यवहार एवं हस्तमैथुन किया जाना देखा गया है।

पोरपॉइज: एक समुद्री प्राणी न कि कोई सूंस अथवा छोटी ह्वेल।

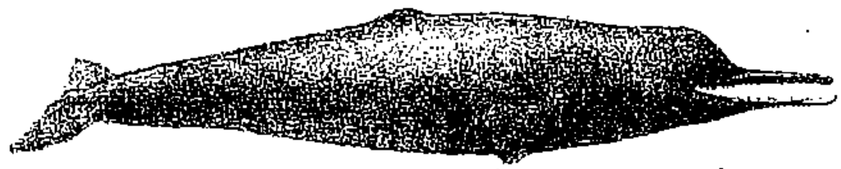

चित्र 4.15: प्लेटेनिस्टा (*Platanista*) (सूंस, ganga dolphin)

7. **प्रोबोसॉयडीस (Proboscoides)** (सूंड से युक्त): ये प्राणी वनस्पति भोजी विशालकाय स्थलीय स्तनी हैं (चित्र 4.16) जिनमें आहार ढूंढने के लिए एक कारगर तंत्रिका संघटना पायी जाती है, उसे प्राप्त करने के लिए कारगर साधन होते हैं तथा उसे पीसने के लिए संघटित सतहें होती हैं। जब कोई उपयुक्त वृक्ष मिल जाता है तब वह उसे अपनी सूंड से खूब हिलाता है ताकि उसके फल नीचे आ गिरे और फिर अपने भार का उपयोग करते हुए अपने मस्तक से उसे धकेल कर गिरा देता है। हो सकता है कि वह अपने लम्बे नुकीले गजदन्तों (tusks) से उनकी छाल उतार दे। सूंड ही मुख्य अंग है जिसके द्वारा वह चीज़ों को पकड़ता-उठाता है, यह सूंड वास्तव में बहुत लम्बी हो गयी नाक तथा ऊपरी होठ है जिसमें सही प्रकार की पेशियां एवं एक संवेदनशील नोक बन गयी है। प्रत्येक जबड़े में 3 चवर्णक दांत होते हैं। परन्तु एक समय में एक (कभी-कभी दो) चवर्णक क्रियाशील होता है क्योंकि चवर्णक का विकास एक शृंखला में होता है। कई वर्ष क्रियाशील होने के बाद क्रियाशील चवर्णक घिस कर गिर जाते हैं और उसके बाद दूसरा चवर्णक इसका स्थान ले लेता है। यह सब इस वजह से संभव है कि गर्तदंती (thecodont) होने के बावजूद हाथी के चवर्णक साकेट (socket) में न आबद्ध हो कर एक हड्डीदार नली में आबद्ध रहते हैं। बड़े आकार का होना तथा बड़ा मस्तिष्क होना हाथी की लम्बी आयु के साथ जुड़ा है तथा उसका संबंध चर्वणक दांतों के क्रमवत उपयोग से भी है। घास स्थलों में मादा हाथी 60 वर्ष तक तथा नर हाथी 50 वर्ष तक जीवित रहते हैं, और पर्वतीय क्षेत्रों में कदाचित 80 वर्ष तक।

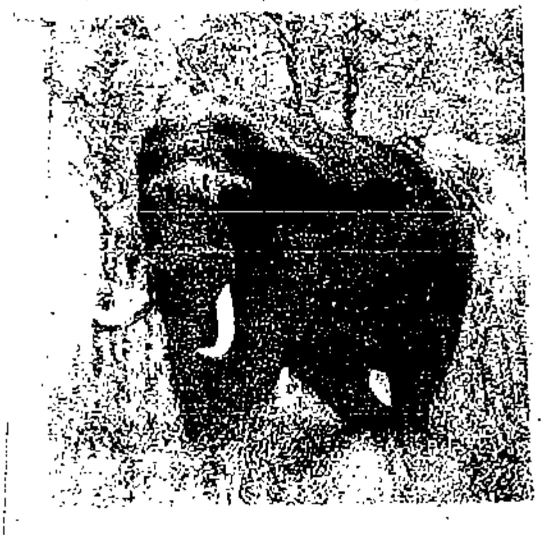

चित्र 4.16: *ऐलीफ़स मैक्सिमस* (हाथी)

8. **कार्निवोरा (Carnivora)** (मांसभक्षी) ये सब परभक्षी स्वभाव के होते हैं तथा इनकी उंगलियों में तेज़ नखर होते हैं। शिकार को पकड़ने तथा उसे चीरने-फाड़ने के लिए दांत विशेषित हो गए हैं। इनका भोजन मांसाहारी होता है। इनके उदाहरण हैं बिल्लियां, चीता (चित्र 4.17), तेंदुआ, सिंह (चित्र 4.18), जांघ, पालतू बिल्ली (चित्र 4.19), लौमड़ी, भेड़िया गा (चित्र 4.20) सामान्य कुत्ता आदि।

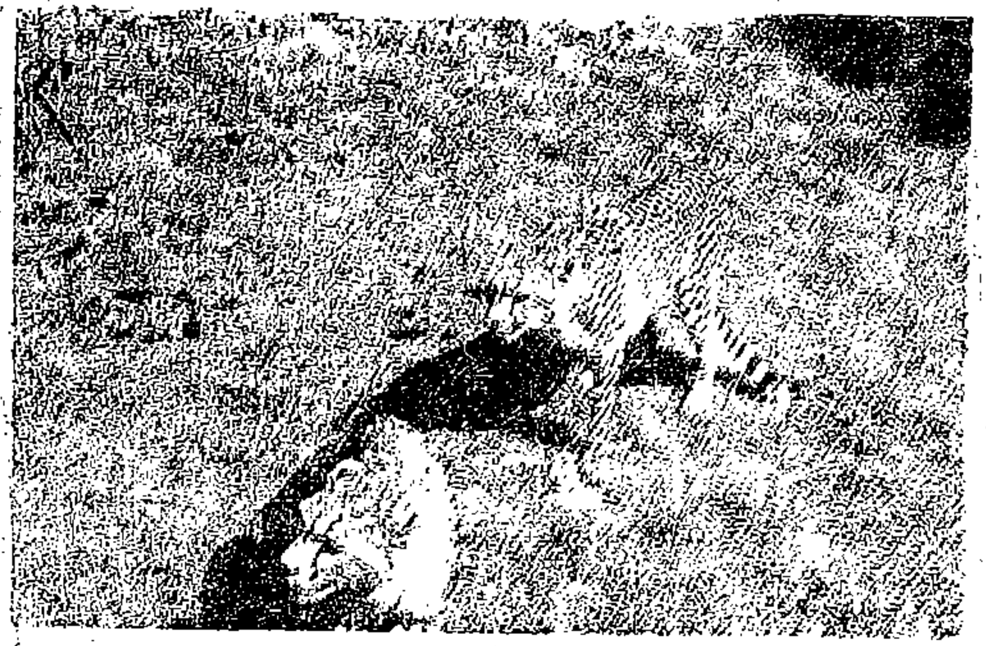

चित्र 4.17: ऐसिनोनिक्स जुबैटस (*Acinonyx jubatus*) (चीता)

चित्र 4.18: पैंथेरा लीओ (*Panthera leo*) (सिंह/बबर शेर)

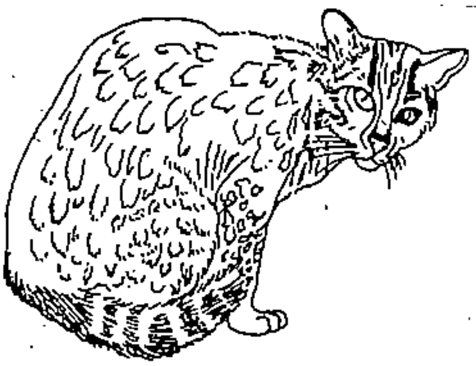

चित्र 4.19: फीलिस बेंगालेंसिस (*Felis bengalensis*) (लेपर्ड-कैट)

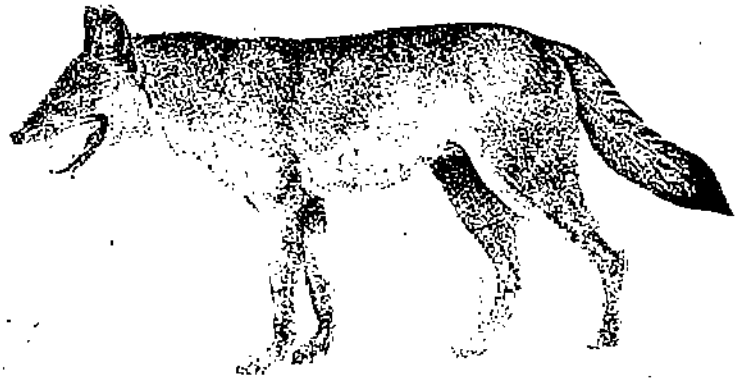

चित्र 4.20: कैनिस लुपस (*Canis lupus*) (भेड़िया)

9. **आर्टियोडेक्टाइला (Artiodactyla)** (समांगुलिक even toed): ये खुर वाले स्तनी हैं जिनमें एक रोमंथी (ruminant) जठर होता है तथा पादों में उंगलियों की सम संख्या होती है। इन प्राणियों में सींग (श्रृंग, horns) अथवा श्रृंगाभ (antlers) होते हैं। इस वर्ग के उदाहरण हैं: सूअर (चित्र 4.21), पशु (गाय-बैल) (चित्र 4.22), भेड़ (चित्र 4.23), बकरी, हिरन (चित्र 4.24), ऊंट (चित्र 4.25), जिराफ़ (चित्र 4.25)। इनमें से अधिकतर अंगुलेटों में दो-दो उंगलियां होती हैं हालांकि दरियाई घोड़े एवं अन्य कुछ में चार-चार भी होती हैं। प्रत्येक उंगली एक श्रृंगित (cornified) खुर के आवरण से घिर जाती है। अनेक उदाहरणों, जैसे कि गाय, हिरन तथा भेड़ में सींग होते हैं। अनेक सदस्य रोमन्थी होते हैं जिसका अर्थ है ऐसे जानवर जो जुगाली करते हैं। ये पूर्णतः शाकाहारी होते हैं।

चित्र 4.21: सस स्क्रोफा (*Sus crofa*) (जंगली सूअर)

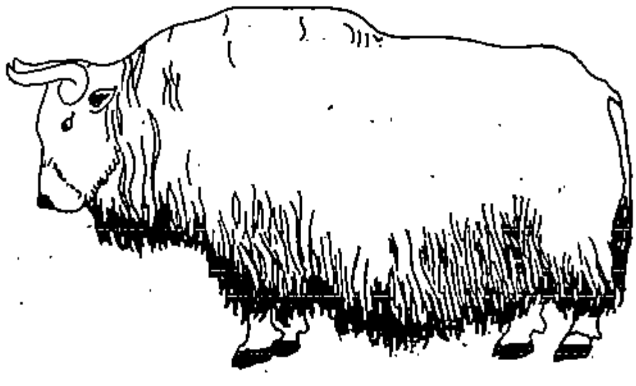

चित्र 4.22: "मस्क ऑक्स" (Musk ox)

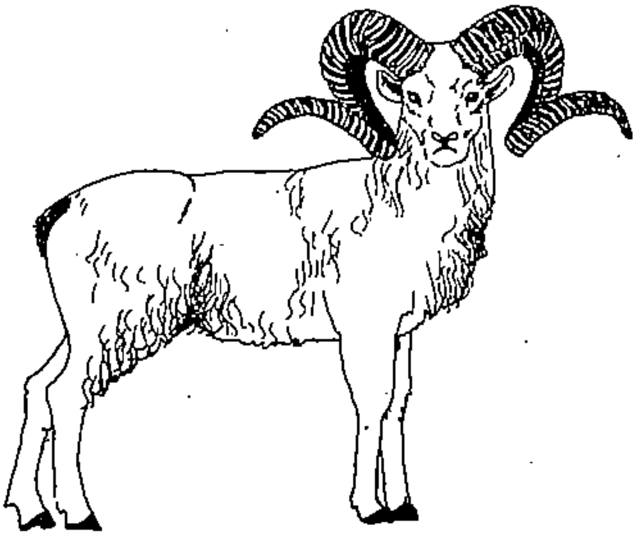

चित्र 4.23: ओविस (*Ovis*) (भेड़)

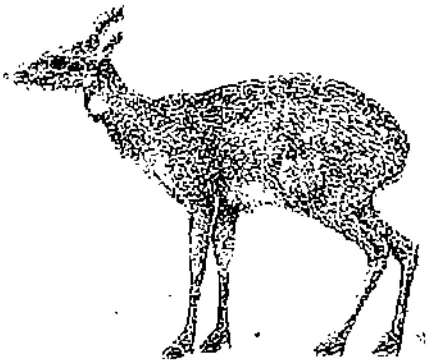

चित्र 4.24: कस्तूरी मृग

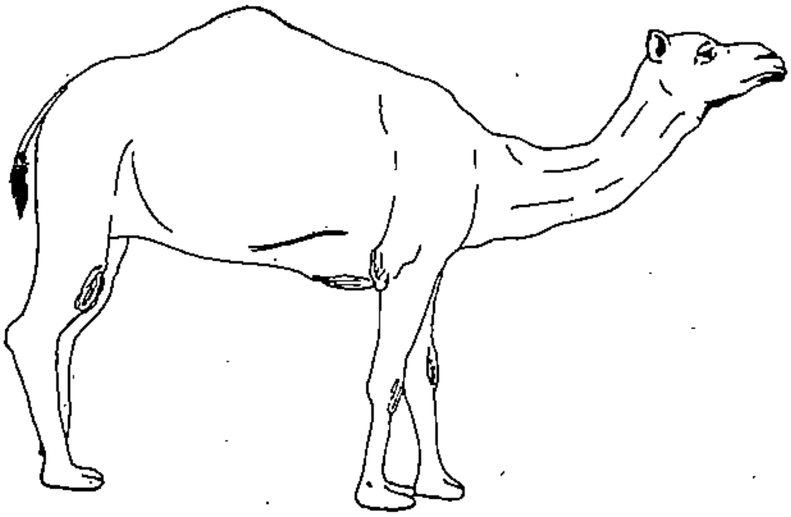

चित्र 4.25: कैमेलस ड्रोमेडेरियस (*Camelus dromedarius*)

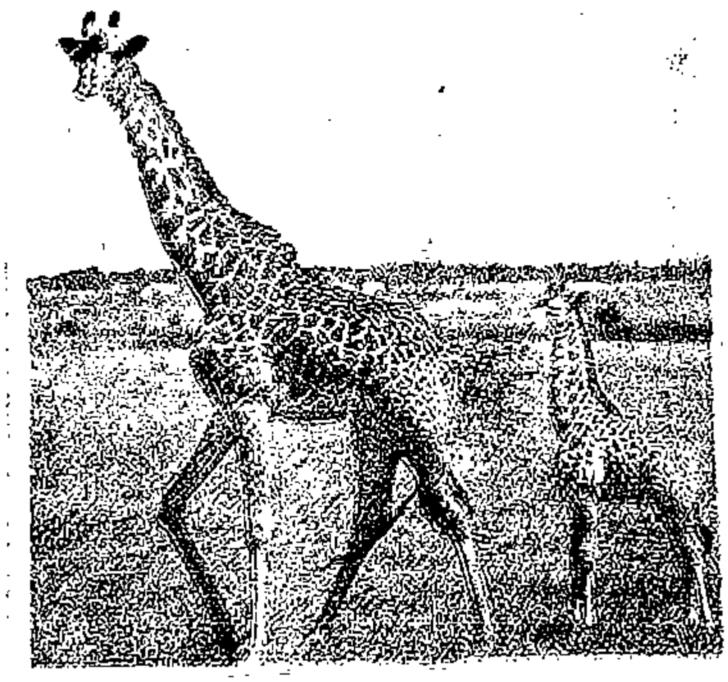

चित्र 4.26: *जिराफ़ा कैमेलोपार्डेलिस* (*Giraffa camelopardalis*) (जिराफ)

10. **पेरिस्सोडेक्टाइला (Perissodactyla)** (विषमांगुलिक, Odd-toed) ये विषम संख्या में उंगलियों वाले खुरदार स्तनी हैं तथा इनका आहार शाकभक्षीय होता है। इनके उदाहरण हैं घोड़ा (चित्र 4.27), जेबरा (चित्र 4.28), गैंडा (चित्र 4.29), गधा (चित्र 4.30), आदि। घोड़े की फेमिली (ईक्विडी, Equidae) में जेबरा भी आता है, और इसमें केवल एक ही कार्यशील पादांगुलि होती है। टैपीरों (tapirs) में ऊपरी होंठ तथा नाक से बनी एक छोटी सूंड होती है।

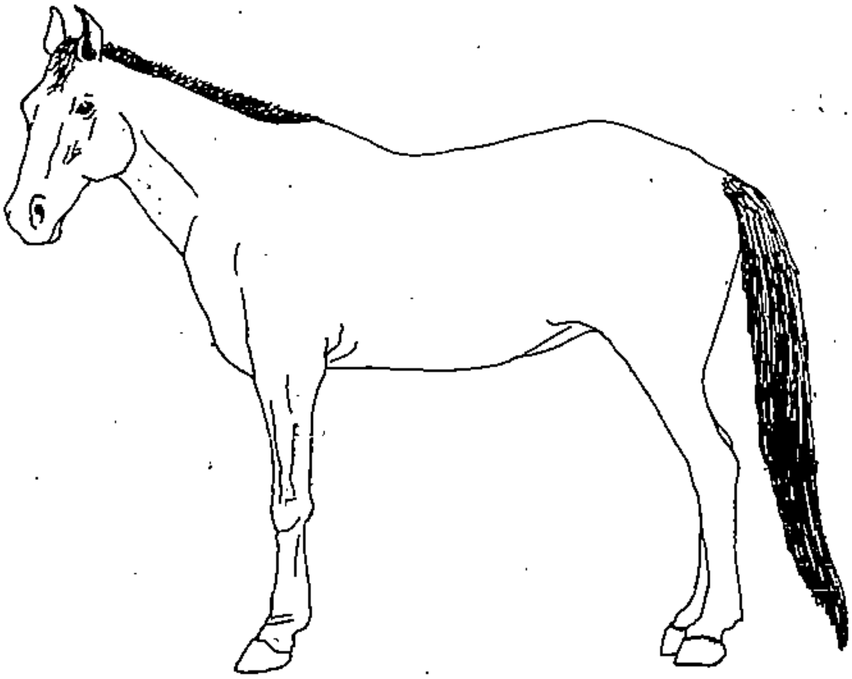

चित्र 4.27: *ईक्वस कैबेलस* (*Equus caballus*) (घोड़ा)

चित्र 4.28: ईक्वस ज़ेबरा (*Equus Zebra*) (ज़ेबरा)

चित्र 4.29: गैंडा

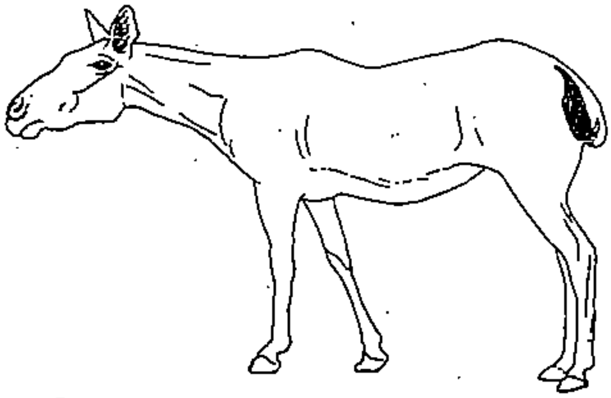

चित्र 4.30: ईक्वस हेमिओनस (*Equius heminous*) (गधा)

11. प्राइमेटीज़ **(Primates)** (उच्चतम) का वह वर्ग है जिसमें सामान्य रूप में अग्रपादों तथा पश्चपादों दोनों ही में पांच-पांच उंगलियां होती हैं तथा इनमें एक सम्मुखी (opposable) अंगूठा होता है। सभी उंगलियों में नाखून होते हैं। सभी के शरीर पर बाल होते हैं, केवल मानव में नहीं होते। अग्रपाद परिग्राही (grasping) किया के लिए अनुकूलित होते हैं, और इसी प्रकार कभी-कभी पश्चपाद भी होते हैं। इनके उदाहरण हैं, लीमर, टार्सियर, बन्दर (**चित्र 4.31**), कपि, गिब्बन (चित्र 4.32)।

चित्र 4.31: रीसस बंदर (मैकेका, *Macaca*)

चित्र 4.32: गिब्बन (*Hylobates lax*) मनुष्य के अतिरिक्त गिब्बन ही ऐसे प्राइमेट हैं जो अपने पिछले पैरों पर चलते हैं।

बोध प्रश्न 1

i) क्लास मैमेलिया के चार महत्वपूर्ण लक्षण बताइए:

....

....

....

....

....

....

ii) वर्ग क में स्तनियों के नाम तथा वर्ग ख में इनके पाए जाने के स्थानों के नाम दिए गए हैं। वर्ग क में दिए गए नामों को वर्ग ख में दिए गए स्थानों से मिलाइए

वर्ग क	वर्ग ख
1. ऐकिड्ना	अ. अफ़्रीका
2. ऑपोसम	ब. असम/भारत
3. गैंडा	स. अमेरिका
4. ज़ेबरा	द. ऑस्ट्रेलिया

iii) वर्ग क में दिए गए स्तनियों को वर्ग ख में दिए गए ऑर्डरों से मिलाइए

वर्ग क	वर्ग ख
1. चमगादड़	अ. रोडेंशिया
2. चूहा	ब. कार्निवोरा
3. बिल्ली	स. काइरॉप्टेरा
4. बकरी	ड. आर्टियोडेक्टाइला

iv) वर्ग क में दी गयी संचलन विधि को वर्ग ख में दिए गए स्तनियों से मिलाइए

वर्ग क	वर्ग ख
1. उड़ने वाले स्तनी	अ. ह्वेल
2. तैरने वाले स्तनी	ब. चमगादड़
3. झूलने वाले स्तनी	स. मानव
4. चलने वाले स्तनी	ड. चिम्पैंजी

iv) क्लास मैमेलिया के तीन उपक्लासों के नाम लिखिए तथा उनमें से प्रत्येक के दो-दो उदाहरण दीजिए।

....

....

....

4.3 प्राकृतिक-इतिहास

क्लास मैमेलिया में सर्वाधिक सफल चतुष्पाद कशेरुकी आते हैं। अपने व्यवहार-प्रतिरूपों के लिए मैमेलिया अत्यन्त रोचक हैं। ये बहुत ही सतर्क होते हैं और इनमें अधिक विकसित तंत्रिका-तंत्र पाया जाता है और उसमें भी विशेषकर मस्तिष्क। इस लक्षण से उन्हें यह लाभ मिला कि ये किसी भी परिस्थिति तथा किसी भी आवास में अपने आपको अनुकूलित कर सकते हैं। अन्य सभी कशेरुकियों की अपेक्षा इनमें बुद्धिमता (समझबूझ) का स्तर सबसे ऊँचा होता है। इनमें विलक्षणत: नानाविध क्रियाकलाप देखे जाते हैं। स्तनियों की देह का तापमान लगभग 37°C से 42°C के बीच रहता है। मनुष्य के शरीर का सामान्य तापमान 37°C (98.6°F) होता है। शरीर के चारों ओर बालों के आवरण के द्वारा प्रदान किए गए रोधन से ही संभव हो पाता है कि शरीर का तापमान स्थिर बना रहे। स्तनियों की त्वचा में स्वेद (पसीना) ग्रंथियां तथा तैल ग्रंथियां होती हैं। पसीना आना केवल स्तनियों में ही पायी जाने वाली एक विशेष शरीरक्रियात्मक प्रक्रिया है। इसके द्वारा शरीर की अधिशेष गर्मी को बाहर निकाल देने में सहायता मिलती है। स्वेद ग्रंथियों से एक जलीय पसीना निकलता है और जब त्वचा की सतह से इस पसीने का वाष्पन होता है तब त्वचा में से गर्मी बाहर को आ जाती है और त्वचा ठंडी हो जाती है। जब बाहर का तापमान अधिक हो तब पसीना आने से देह के तापमान को ठंडा करने में सहायता मिलती है। साथ ही पसीने के माध्यम से शरीर के कुछ वर्ज्य पदार्थ भी बाहर निकल जाते हैं। तो इस प्रकार पसीना निकलना उत्सर्जन में भी सहायक है। इन गुणों ने, स्तनियों को अन्य स्थलीय कशेरुकियों के साथ गहरी प्रतिस्पर्धा में उत्तरजीवी बने रहने में सहायता प्रदान की है।

स्तनियों का वितरण सर्वाधिक व्यापक है। ये नानाविध प्रकार के आवासों में रह सकने के लिए समर्थ हैं। ये पृथ्वी के प्रत्येक महाद्वीप पर पाए जाते हैं। ध्रुवी भालू तथा सील उत्तरी ध्रुव प्रदेशों के शून्य से भी नीचे के तापमानों पर रह सकने के लिए अनुकूलित हैं। ऊँट तथा अनेक स्पीशीज़ के चूहे गर्म से गर्म रेगिस्तानों में रह सकने के लिए अनुकूलित हैं। सीलों ने समुद्रों पर विजय पा ली है। बीवर तथा ऊदबिलाव अलवणजलीय झीलों तथा नदियों में रहते हैं। चमगादड़ों में उड़ने की जीवन शैली आ गयी है। इस सब के बावजूद स्तनी अनिवार्यत: स्थलीय प्राणी हैं। ये थल पर अनेक प्रकार के आवासों में रहते हैं। ये वृक्षवासी रूप में वृक्षों की शाखाओं में रहते हैं, बिल बनाकर अंधेरी गुफ़ाओं में धरती के नीचे रहते हैं और ऊँची ऊँची पर्वतमालाओं में 20,000 फुट तक की सभी ऊँचाइयों पर पाए जाते हैं। बकरियों और भेड़ों की स्पीशीज़ चट्टानी पहाड़ियों तथा पर्वतों पर पायी जाती हैं। अधिसंख्य रोडेण्ट, कार्निवोर तथा अंगुलेट घने उष्णकटिबंधीय जंगलों से लेकर वृक्षविहीन उत्तरध्रुवीय टुंड्रा तक के घास स्थलों तथा जंगलों में रहते हैं। अधिसंख्य स्तनी दिवाचर होते हैं तथा कुछ थोड़े से ही रात्रिचर होते हैं।

टुंड्रा: रूस और साइबेरिया के उत्तरी ध्रुव प्रदेश का दूर-दूर तक फैला वृक्षविहीन मैदान जो ग्रीष्म में दलदली तथा शीतऋतु में जमकर कड़ा हो जाता है।

स्तनियों में अनेक प्रकार से भारी विविधता पायी जाती है - जैसे उनका कद, आकृति, रंग और जीवन शैली, खाया जाने वाला आहार, इस्तेमाल किया जाने वाला शरण-स्थान, उनकी सामाजिक संघटना तथा रीति-रिवाज। प्रत्येक प्रकार के स्तनी का अपना ही एक निश्चित भौगोलिक एवं पारिस्थितिक परास होता है। आवासीय सीमाएं या तो बहुत सीमित हो सकती हैं जैसे बीवर में या बहुत व्यापक हो सकती हैं जैसे चूहों में। अनेक एकचर होते हैं (जैसे सिंह, मिंक, रोडेण्ट, आदि), कुछ अन्य झुण्ड बना कर रहते हैं (भेड़िए, लकड़बग्घे), प्रेअरी कुत्ते कॉलोनी बनाकर बिलों में रहते हैं, भैंस और मृग आदि झुण्ड बना कर रहते हैं या फिर कुछ सामाजिक समूहों में रहते हैं जैसे कि प्राइमेट। समष्टियों का घनत्व कितना हो गया यह उपलब्ध आहार तथा आश्रय पर निर्भर होता है। श्रियू तथा मूषक 51-100 प्रति एकड़, गिलहरियां 2-10 प्रति वृक्ष समूह, हिरन 25-40 प्रति एकड़ आदि, आदि संख्या में रहते पाए जाते हैं। स्तनी उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में सबसे अधिक तथा ध्रुवीय क्षेत्रों में सबसे कम संख्या में पाए जाते हैं। स्तनियों की समष्टियां सामान्यतः स्थिर बनी रहती हैं मगर सूखे, बाढ़ भोजन का अभाव जैसी प्राकृतिक आपदाओं तथा मानव हस्तक्षेप के कारण ये बदलती भी रहती हैं।

स्तनियों की त्वचा में अनेक ग्रंथियां पायी जाती हैं जैसे कि स्वेद ग्रंथियां, तेल ग्रंथियां, गंध ग्रंथियां और सबसे महत्वपूर्ण स्तन-ग्रंथियां। स्तन-ग्रंथियों से दूध निकलता है जो बच्चों को पिलाया जाता है। गंध-ग्रंथियों से निकलने वाला स्राव एक ही स्पीशीज़ की नर-मादा सेक्सों के बीच अथवा किसी स्पीशीज़ के दल अथवा समूह के सदस्यों के बीच रासायनिक संचार के माध्यम के रूप में उपयोगी होता है। गंध-ग्रंथि के स्राव नर-मादा के बीच आकर्षण पैदा करते तथा उन्हें सम्पर्क में आने एवं मैथुन करने में सहायक होते हैं। स्कंक (skunk) की गंध-ग्रंथियां उसकी गुदा में खुलती हैं। इसका स्राव एक धारा की तरह बाहर को फूट पड़ता है और इसकी तीव्र दुर्गंध शत्रुओं को दूर भगा देती है। इस प्रकार इसे शत्रुओं के प्रति एक रक्षा-विधि की तरह इस्तेमाल किया जाता है। स्वेद ग्रंथियां देह के तापमान के नियमन में सहायक होती हैं। तेल ग्रंथियों का स्राव रोम पुटकों (hair follicles) में छोड़ा जाता है और उससे बाल नरम तथा चमकीले, चटकीले बने रहते हैं। इस स्राव से त्वचा भी नरम बनी रहती है। अश्रु ग्रंथियां (tear glands अथवा lachrymal glands) आंखों के समीप बनी होती हैं तथा इनके स्राव नेत्र गोलों को साफ एवं आर्द्र बनाए रखते हैं। स्तन-ग्रंथियां रूपांतरित तेल-ग्रंथियां होती हैं और वे सामान्यतः मादा स्तनियों में सुविकसित एवं स्रावी होती हैं। स्तन-ग्रंथियों का परिवर्धन, उनका विभेदन एवं उनका कार्य करना हॉर्मोनों द्वारा नियंत्रित-नियमित होता है। ये ग्रंथियां बच्चे के जन्म लेने के बाद शीघ्र ही स्रावी बन जाती हैं। स्तन-ग्रंथियों की संख्या तथा उनका स्थान स्तनियों के विभिन्न ऑर्डरों में अलग-अलग होता है। कार्निवोरों तथा रोडेण्टों में स्तन ग्रंथियों के एक से अधिक जोड़े होते हैं जो वक्ष-उदर क्षेत्र की अधर सतह पर बने होते हैं। रोमंथी अंगुलेटों (पशु, भेड़, बकरी, आदि) में ये इंग्विनल (वंक्षणी) होते हैं। प्राइमेटों (बंदर, कपि तथा मानव) में स्तन-ग्रंथियों की केवल एक जोड़ी होती है जो वक्ष प्रदेश की अधार सतह पर बनी होती है।

दांत सुविकसित होते हैं। सीटेसिया, ईडेंटेटा तथा प्रोटोथीरिया में दांत नहीं होते। दांतों की संख्या तथा उनकी व्यवस्था अलग-अलग स्पीशीज़ में अलग-अलग होती है। दांतों की प्रकृति एवं उनकी व्यवस्था को **दंत-विन्यास (dentition)** कहते हैं तथा किसी विशिष्ट स्पीशीज़ में विभिन्न प्रकार के दांतों की संख्या की अभिव्यक्ति को दंत-सूत्र (dental formula) कहते हैं। प्राणी विविधता-II पाठ्यक्रम के ब्लाक II की इकाई 6 में आप दंत-व्यवस्था के विषय में विस्तार से पढ़ेंगे।

स्तनियों के प्रतिरूपी दांत में दो भाग होते हैं। एक तो वह भाग है जो जबड़े की हड्डी में बने गढ़े में जमा होता है इसे मूल अथवा जड़ (root) कहते हैं तथा दूसरा भाग वह है जो बाहर को निकला होता एवं जबड़ों के ऊपर सामान्यतः दृष्यमान होता है उसे शिखर (crown) कहते है। यही शिखर भोजन के चबाने में काम आता है। दांत मूलतः एक विशिष्ट पदार्थ डेण्टीन **(dentine)** का बना होता है। डेण्टीन जड़ तथा शिखर दोनों ही में पायी जाती है। शिखर वाले भाग में डेण्टीन के ऊपर एक चमकीला पदार्थ **इनैमेल (enamel)** चढ़ा होता है तथा जड़ के ऊपर एक सिमेंट चढ़ा होता है। दांत के बीचों-बीच एक गुहा होती है जिसके भीतर संयोजी ऊतक, तंत्रिकाएं तथा रक्त कोशिकाएं भरी होती हैं। इस गुहा को **मज्जा-गुहा (pulpcavity)** कहते हैं। कशेरुकियों में दांत सामान्य रूप में मछलियों के प्लैकॉइड शल्कों के व्युत्पन्न हुआ है। स्तनियों को छोड़कर अन्य कशेरुकियों के दांतों की संरचना, आकृति एवं उनके कार्य समान होते हैं। इस दशा को **समदंती (homodont)** कहते हैं। परंतु स्तनियों में दांतों की संरचना एवं उनके कार्य अलग-अलग होते हैं। इस दशा को **विषमदंती (heterodont)** कहते हैं। स्तनियों में चार

विभिन्न प्रकार के दांत पाए जाते हैं - ये हैं सामने छेनी-जैसे **कृंतक (incisors)**, पार्श्वों में नुकीले **रदनक (canines)** तथा जबड़ों के अंत में दोनों ओर पाए जाने वाले **अग्रचर्वणक (premolars)** और उनके पीछे **चर्वणक (molars)**। कृंतक आहार को काटने में मदद करते हैं, रदनक आहार को चीरने में तथा अग्रचर्वणक एवं चर्वणक आहार को पीसने में। अधिसंख्य स्तनियों में दांत जीवन में दो बार आते हैं। दांतों का पहला सेट जीवन के आरम्भ में ही आ जाता है। इन्हें दूध के दांत कहते हैं। आगे चलकर इन दांतों के स्थान पर एक स्थायी सेट आ जाता है जो प्राणी के शेष समस्त व्यस्क जीवन में चलता जाता है। इस प्रकार जीवन काल में दांतों के दो सेटों के बनने की व्यवस्था को **द्विबारदंती (diphyodont)** कहते हैं।

दंत-विन्यास की अपरायुक्त यानि प्लैसेण्टल स्तनियों के वर्गीकरण में इस्तेमाल किया जाता है। स्तनियों का दंत-विन्यास इन प्राणियों के आहार के प्रकार एवं आहार-स्वभावों के संदर्भ में एक अनुकूली विकिरण (adaptive radiation) दर्शाता है। स्तनी के दंत-विन्यास की दशा को दंत-सूत्र के द्वारा भली प्रकार दर्शाया जा सकता है। कार्निवोरा में रदनक बड़े आकार के तथा मज़बूत होते हैं जो शिकार एवं मांस को पकड़ने में सहायता करते हैं। यही नहीं, इनके दोनों ओर के, ऊपरी जबड़े का अंतिम अग्रचर्वणक तथा निचले जबड़े का प्रथम चर्वणक विशेषित होकर एक-दूसरे के सामने आकर काट सकने के लिए ढल गए हैं। कार्निवोरा के इस रूपांतरित दंत-समुच्चय को **दारक दंत (carnassial teeth)** कहते हैं। यह केवल कार्निवोरा की ही विशेषता है। खरगोशों में रदनक नहीं होते। ऐसा होने से हर जबड़े में दोनों ओर कृंतकों तथा अग्रचर्वणकों के बीच एक काफ़ी बड़ा खाली स्थान रह जाता है। इस रिक्त स्थान को **दंतावकाश (diastema)** कहते हैं। लेकिन इनमें कुतरने के वास्ते कृंतक सुविकसित होते हैं। **रोडेंशिया** तथा **लैगोमॉर्फा** के कृंतकों में मज्जा चिरस्थायी होती है तथा ये दांत आजीवन वृद्धि करते रहते हैं। अन्य शाकाहारी स्तनियों में जैसे कि अंगुलेटों में रदनक छोटे एवं अल्पवर्धित होते हैं। परंतु, चर्वणक सुविकसित होते हैं जिनमें उनके शिखर पर सुव्यक्त पीसने वाले कटक (ridges) बने होते हैं। हाथियों में कृंतकों की केवल एक जोड़ी, ऊपरी जबड़े में ही होती है जो आजीवन बढ़ते रहते हैं और ऊपर की ओर को घूमे हुए दो रदों (tusks) का रूप ले लेते हैं। ये दांत ठोस डेंटीन के बने होते हैं जिसके अग्र भाग के ऊपर इनैमल की एक अस्थायी टोपी चढ़ी होती है। ये हाथी दांत सुरक्षा और कदाचित आहार-संचय में काम आते हैं, परन्तु इनका काम सिर्फ़ खाना खाने में नहीं है। हाथियों के रद (tusks) हाथीदांत के गहनों में काम आते हैं। इस उपयोग के कारण रद प्राप्त करने के लिए हाथियों को बड़ी संख्या में मारा जाता रहा है और उनकी संख्या घट गयी है। अब इधर हाथीदांत के क्रय-विक्रय के विरुद्ध एक विश्वव्यापी आन्दोलन छिड़ा है जिससे संभावना बनी है कि ये प्राणी भविष्य में जीवित बचे रहेंगे। रद मादा हाथियों में छोटे होते हैं। नर हाथियों में रद रूपांतरित कृंतक होते हैं। जंगली सूअर में रद रूपांतरित रदनक होते हैं।

दंत-सूत्र (Dental formula) (जिसका अर्थ है विभिन्न प्रकार के दांतों की संख्या एवं उनकी व्यवस्था) में प्रत्येक जबड़े के प्रत्येक अर्धांश में चारों में से हर प्रकार के दांतों की संख्या दी जाती है। प्रत्येक जबड़े में दांतों की व्यवस्था में द्विपार्श्व सममिति पायी जाती है। इसे समझने के लिए आप मानव का दंत-सूत्र ले लीजिए जो इस प्रकार है:-

$$\frac{2-1-2-3}{2-1-2-3} \quad \text{या} \quad i\frac{2}{2}\ c\frac{1}{1}\ pm\frac{2}{2}\ m\frac{3}{3} = 32$$

यहा अंग्रेज़ी के अक्षर "i", "c", "pm" तथा "m" क्रमश incisors (कृंतकों), canines (रदनकों), premolars (अग्रचर्वणकों) तथा molars (चर्वणकों) के लिए दिए गए हैं। प्रत्येक प्रकार को या तो उस संख्या के पहले एक संकेतक अक्षर द्वारा लिखा जा सकता है या मात्र संख्या द्वारा ही दर्शाया जा सकता है। ऊपरी पंक्ति की संख्याएं ऊपरी जबड़े के एक अर्धांश के दांतों को दर्शाती हैं और नीचे की पंक्ति की संख्याएं निचले जबड़े के एक अर्धांश के दांतों को। दोनों पंक्तियों की संख्याओं को एक साथ जोड़ लीजिए और फिर उसे दो से गुणा करने पर उस प्राणी के कुल दांतों की संख्या प्राप्त हो जाएगी। उदाहरण के लिए, मानव के दांतों की कुल संख्या 32 है। स्तनी के दांतों की आधारभूत कुल संख्या 44 है तथा दंत सूत्र $\frac{3-1-4-3}{3-1-4-3}$ है।

यह प्ररूपी दंत सूत्र घोड़े में पाया जाता है। कुछ सामान्य स्तनियों के दंत-सूत्र नीचे दिए गए हैं:-

कुत्ता $\frac{3-1-4-2}{3-1-4-3}=42$, बिल्ली $\frac{3-1-3-1}{3-1-2-1}=30$, गाय $\frac{3-0-1-3}{3-0-1-3}=28$,

हाथी $\frac{1-0-0-6}{0-0-0-6}=26$ हाथियों में हर जबडों में छह जोड़ी चर्वणक एक ही समय पर कार्य करने वाले नहीं होते। एक समय में केवल एक ही जोड़ी काम करती है।

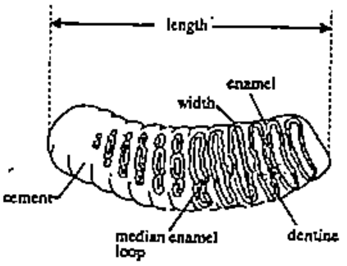

चित्र 4.33: हाथी का चर्वणक जिसमें उसके प्राकृतिक लक्षण दिखायी पड़ रहे हैं।

हाथी में दांत खोपड़ी में बहुत ऊपर की तरफ बनते हैं जिसके कारण प्रत्येक दांत को एक बहुत बड़ा क्षेत्र मिल जाता है। ये दांत बहुत अधिक संख्या में, यहां तक कि 27 पृथक प्लेटों से बनते हैं। ये प्लेटें डेंटीन तथा इनैमेल की पृथक्-पृथक् शंकुओं के रूप में बनती हैं तथा इनमें से प्रत्येक में अपनी-अपनी मज्जा गुहा होती है। तीन दांत सतह पर उभर आते हैं और वे थोड़े-थोड़े अलग दर से घिसते जाते हैं और इस घिसने की वजह से एक ऊबड़-खाबड़ सतह बन जाती है। प्रत्येक दांत धीरे-धीरे आगे से पीछे की दिशा में घिसता जाता है। हाथी का चर्वणक पीसने की युक्ति न होकर एक कर्तन (कतरने वाली) युक्ति है। जैव विकास के दौरान प्लेटों की संख्या बढ़ गयी है तथा वे अधिक पतली हो गयी है, और वे अधिक निकट-निकट आ सटी हैं जिससे कि हर एक गति में अधिक संख्या में कर्तन सतहें प्रदान की जा सकें (चित्र 4.33)।

संचलन की विधि तथा संचलन में पादों को किस प्रकार उपयोग में लाया जाता है, यह स्तनियों में अलग-अलग तरह से पाया जाता है। अधिसंख्य स्तनी चतुष्पाद होते हैं और वे संचलन में चारों पादों का उपयोग करते हैं। मानव एक अपवाद है। मानव केवल अपने पिछले पैर ही प्रयोग में लाता है। यह बहुत हद तक आवास और आदतों पर निर्भर करता है और ये दोनों बातें मिल कर पैर की संस्थिति (posture) को प्रभावित करते हैं। कंकाल तथा टांगों की पेशियों में भी अनुकूली रूपांतरण पाए जाते हैं जो संचलन के प्रकार पर निर्भर होता है। इसका पूर्वजी मूल रूप यह था कि संचलन के दौरान पैरों के तलवे (या अग्रपाद की हथेली) जमीन पर कसकर जमाए जा सकें। इस संस्थिति को प्लैंटिग्रेड **(plantigrade)** (तलवा-चालन) प्रकार का संचालन कहते हैं। यह बेहतर और जमावदार कदम रखना प्रदान करता है। मानव प्लैंटिग्रेड है। अधिसंख्य कार्निवोर अपनी उंगलियों पर चलते अथवा दौड़ते हैं। इसे डिजिटिग्रेड **(digitigrade)** (उंगली-चालन) प्रकार का संचलन कहते हैं। इस विधि में उंगलियों का केवल एक छोटा सा हिस्सा ही जमीन के सम्पर्क में आता है। इससे घर्षण (friction) कम हो जाता है तथा तीव्रतर गति में सहायता मिलती है। इस विधि में हथेली या तलवा और कलाई या टखना ज़मीन से ऊपर उठ जाते हैं जिससे टांगों की लम्बाई में बढ़ोतरी हो जाती है तथा टांगों के इस प्रकार लम्बे होने से डग अधिक लम्बी एवं रफ़्तार तीव्रतर हो जाती है। उच्चतर वेग प्राप्त करने में चरम विधि खुरदार स्तनियों (आर्टियोडेक्टिला तथा पेरिसोडेक्टिला) में देखी जाती है। इनमें उंगलियों की संख्या घट गयी है तथा ये स्तनी अपनी उंगलियों के अंतिम सिरों पर चलते हैं। इनमें श्रृंगित खुर बन गए हैं ताकि उपयोग के कारण उनका घिसना कम हो सके। इस प्रकार के संचलन को अंगुलिग्रेड **(unguligrade)** (खुर-चालन) प्रकार का संचलन कहते हैं। इससे लंबाई और ज़्यादा बढ़ जाती है तथा उसके कारण वेग भी और बढ़ जाता है। इसी लाभ के फलस्वरूप घोड़ा बहुत तेज सरपट दौड़ सकता है। इस प्रकार के संचलन को **कर्सोरियल (cursorial)** यानि धावी (दौड़ने) प्रकार का कहा जाता है। इस प्रकार ये प्राणी तेज़ तथा दूर तक दौड़ सकते हैं। ये वेग तथा लगातार दौड़ते रहने की क्षमता के लिए अनुकूलित हो गए हैं। मानव 22.3 मील प्रति घंटा, चीता 70 मील प्रति घंटा और घोड़ा लगातार 35 मील तक 15 मील प्रति घंटा की

रफ़्तार प्राप्त कर लेता है। "जैकरैबिट" 40 मील प्रति घंटा, कुरंग (antelope) 60 मील प्रति घंटा, लौमड़ी 45 मील प्रति घंटा तथा ऊँट लगातार 115 मील तक 12 मील प्रति घंटा रफ़्तार से दौड़ सकता है। इस रफ़्तार को उस रूप में लगातार चलते जाने की तरह नहीं लेना चाहिए जैसे कि कोई आटोमोबाइल (कार आदि) चल रहे हों। यह वह रफ़्तार है जो दौड़ते रहने के दौरान किसी एक समय बिंदु पर प्राप्त की जा सकती है। ये लगातार लम्बे समय तक एक ही रफ़्तार से नहीं दौड़ते रह सकते।

स्तनी उष्ण-रक्ततापीय प्राणी होते हैं। इनमें अपने शरीर के तापमान को स्थिर बनाए रखने की क्षमता होती है, भले ही परिवेशी पर्यावरण में कैसे भी तापमान-परिवर्तन क्यों न हो रहे हों। कोशिकाओं के भीतर होने वाली ऑक्सिडेटिव प्रक्रियाओं के द्वारा ऊष्मा पैदा होती है। विकिरण अथवा वाष्पन के द्वारा होने वाली इस ऊष्मा की हानि को बालों का रोधी आवरण रोकता है। अधिशेष ऊष्मा वाष्पन के द्वारा बाहर निकाल दी जाती है। पसीना आना तथा पसीने के वाष्पन में उपयोग होने वाली ऊष्मा के द्वारा शरीर को ठंडा रखने तथा देह के तापमान को सहनीय स्तरों पर बनाए रखने में सहायता मिलती है। गर्मी के समय में भरपूर पसीना निकलता है। इस प्रकार की क्रियाविधि के द्वारा ही स्तनी अपने आप को ग्रीष्म की अत्यधिक गर्मी से तथा शीत की अत्यधिक ठंडक से अनुकूलित किए रहते हैं। मरूस्थलीय स्तनी अपने ऊपर गर्म धूप न पड़ने देकर दिन का समय या तो छाया में या गहरे बिलों के भीतर बिताते हैं। इनमें से अधिकतर तो रात्रिचर हो गए हैं। वे रात में सक्रिय होते हैं। उपोष्ण क्षेत्रों के देशों अथवा उत्तरी ध्रुव प्रदेश में रहने वाले स्तनी, वहां की बहुत तीव्र शीत ऋतु से बचने के लिए प्रवास द्वारा उष्णतर प्रदेशों में चले जाते हैं। सील, रेनडीयर, बाइसन, लाल चमगादड़ तथा ह्वेलों की कुछ स्पीशीज़ जाड़ों में उष्णतर प्रदेशों में प्रवास कर जाते हैं। जो स्तनी प्रवास नहीं कर पाते वे जाड़ों में अपेक्षाकृत निष्क्रिय अवस्था में आकर गर्म गुफ़ाओं अथवा बिलों के भीतर समय बिताते हैं। जाड़ों को इस प्रकार निष्क्रिय अवस्था में गुज़ारने की दशा को शीतनिष्क्रियता **(hibernation)** (शीत निद्रा) कहते हैं। शीतनिष्क्रियता एक ऐसी निद्रा-अवस्था है जिसमें शरीर का उपापचय (मेटाबोलिज़्म) धीमा हो जाता है, हृदय स्पंदन धीमा हो जाता है, रक्त परिसंचरण मंद हो जाता है, देह का तापमान गिर जाता है तथा प्राणी अपना समय सोते-आराम करते बिताता है, खाता बहुत कम है या बिल्कुल नहीं खाता। कुछ प्राणी वसा संचित कर लेते हैं जिसका वे शीतनिष्क्रियता के दौरान उपयोग करते हैं। शीत निष्क्रियता के दौरान प्राणी अधिक लम्बे समय तक जीवित बने रह सकते हैं, इस दशा में ये अपेक्षाकृत कम ऊर्जा का व्यय करते हैं जिसे वे संचित वसा से प्राप्त करते हैं। वसंत आने पर प्राणी इस निद्रा से जाग जाते और अपनी सामान्य क्रियाएं करने लग जाते हैं। सभी शीतनिष्क्रिय प्राणी विषमतापी (heterothermic) होते हैं। "चिपमंक" तथा "धरती-गिलहरियां" ठंडे जाड़ों को भूमिगत घोंसलों में शीत निष्क्रिय अवस्था में बिताती हैं तथा चमगादड़ें इसी तरह गुफ़ाओं के भीतर शीतनिष्क्रियता में बिताती हैं। शीतोष्ण प्रदेशों के भालू जाड़ों में गुफ़ाओं के भीतर शीतनिष्क्रिय रहते हैं। चमगादड़ों में उत्तर भारत में शीतनिष्क्रियता पायी जाती है, मगर दक्षिण भारत की चमगादड़ों में नहीं।

शीत निष्क्रियता के विपरीत कुछ स्तनी जैसे कि भू-गिलहरी गर्मी की ऋतु को गहरे बिलों के भीतर बिताती है और सारी गर्मी सोती है। इसे ग्रीष्मनिष्क्रियता **(aestivation)** कहते हैं। ये गर्मी के मौसम को एक अपेक्षाकृत अक्रियता की दशा में गुज़ारती हैं जो बहुत कुछ शीतनिष्क्रियता की तरह होती है।

स्तनियों में आहार करने के स्वभाव में एवं वे क्या-क्या खाते हैं इन दोनों में बहुत विविधता पायी जाती है। ये **शाकभक्षी** हो सकते हैं, **मांसभक्षी**, **कीटभक्षी** अथवा **सर्वभक्षी (omnivorous)** भी। शाकभक्षी प्राणी घास तथा अन्य वनस्पति खाते हैं। अधिकतर पालतू स्तनी जैसे कि हिरन, खरगोश, हाथी, गिलहरियां आदि शाकभक्षी होते हैं। बिल्ली वर्ग के प्राणी जैसे सिंह, बाघ, तेंदुआ, भेड़िया, लौमड़ी, आदि शाकभक्षियों को खाते हैं। सर्वभक्षी स्तनी जैसे मानव, चूहा, भालू आदि पौधों तथा जानवरों दोनों को खाते हैं। कीटभक्षी जैसे कि चमगादड़ें, छछूंद, चूहे, श्रियू, सल्लू-सांप भालू, रेकून, भू-गिलहरी आदि अधिकतर कीटों को खाते हैं और कभी-कभार अन्य भोजन भी कर लेते हैं। ऐसा पाया गया है कि कुछ मांसभक्षी अपने आहार की कमी पूरी करने के लिए जंतु-आहार के अलावा फल और अनाज आदि भी खा लेते हैं। चमगादड़ों की कुछ स्पीशीज़ जैसे वैम्पायर चमगादड़ विशिष्टत: अन्य स्तनियों के रक्त का आहार करती हैं। इन्हें **रक्तभक्षी (sanguivorous)** कहा जाता है। विभिन्न स्तनियों में उपयुक्त अनुकूलन पाए जाते हैं जिनके द्वारा वे अपना-अपना विशिष्ट आहार प्राप्त करके उसे खा सकते हैं। ऐसा ही अनुकूलन दांतों का है। चमगादड़ अपने उस्तरे जैसे कृंतकों से शिकार की एपिडर्मिस को छील डालती है जिससे नीचे की रक्त कोशिकाएं खुल जाती हैं। उस घाव पर चमगादड़ अपने मुंह से एक प्रतिस्कंदक (anticoagulant) छोड़ती है ताकि रक्त लगातार बहता रह सके और फिर वह उस आहार को चाटती-चूसती है। इस आहार

को वह अपने एक विशेष रूपांतरित जठर में भंडारित कर लेती है। अन्य अनुकूलन उनके व्यवहारपरक समंजनों के संदर्भ में होते हैं।

स्तनियों में, एक प्राणि-वर्ग के रूप में कुछ ऐसे विशेष व्यवहार प्रतिरूप पाए जाते हैं जो अन्य वर्गों में नहीं पाए जाते। इनमें सीख जाने (अधिगम, learning) की क्षमता पायी जाती है। स्तनी अपेक्षाकृत अधिक समझदार (बुद्धिमान) होते हैं। वे अपनी इस क्षमता को अनेक प्रकार से काम में लाते हैं जैसे कि एक दूसरे को सचेत करने के लिए ध्वनियां निकालना, शत्रुओं को डराने के लिए, अपने बच्चों को बुलाने के लिए, मैथुन ऋतु में अपने संगमियों को बुलाने के लिए तथा संकट-काल में सहायता की पुकार के लिए। अनेक माएं अपने शिशुओं को कुछ समय तक अपने साथ ही रखती हैं और उन्हें आखेट करना, अपने को बचाना, आहार को ढूंढना तथा अच्छे और खराब भोजन में विभेद कर सकना आदि सिखाती हैं।

4.3.1 मॉनोट्रीमैटा (Monotremata) (प्रोटोथीरिया Prototheria)

मॉनोट्रीमैटा (GK. mono = एकल, tremos = छिद्र) अथवा प्रोटोथीरिया (GK. proto = प्रथम, theria = प्राणी/स्तनी) आदितम स्तनी हैं। मॉनोट्रीमैटा नाम उस दशा का संकेत देता है जिसमें इन प्राणियों में बाहर को खुलता हुआ केवल एक ही छिद्र बना होता है जिसमें से मल, मूत्र तथा जनन उत्पाद भी बाहर को निकलते हैं। शेष सभी अन्य स्तनियों में मूत्र-जनन वाहिनयों तथा मलाशय के छिद्र पृथक होते हैं। प्रोटोथीरिया शब्द संकेत देता है कि सबसे पहले विकसित होने वाले स्तनी-प्राणी ये ही हैं। ये प्राणी आज एक सीमित क्षेत्र में ही पाए जाते हैं, ये स्थान हैं ऑस्ट्रेलिया एवं उसके निकटवर्ती द्वीप (तसमानिया तथा न्यूगिनी)। यह एक विचित्र वर्ग है जिसमें सरीसृपीय एवं स्तनीय दोनों प्रकार के लक्षण एक साथ पाए जाते हैं। इस वर्ग में आज केवल दो ही जीनस ही पाये जाते हैं।

उदाहरण: डकबिल प्लैटिपस (ऑर्निथोरिंकस ऐनेटिनस, **Ornithorhynchus anatinus**) (चित्र 4.4)

कंटीला चींटीखोर/एकिडना (टैकिग्लॉसस ऐक्यूलिएटा, **Tachyglossus aculeata**) (चित्र 4.3)

अंडा दिया जाना सरीसृपीय लक्षण है। मगर इन प्राणियों में अण्डा मां के शरीर के भीतर ही रोक लिया जाता है और वहीं पर उसका ऊष्मायन होता है। बच्चों का पोषण मां करती है। इन प्राणियों में कुछ इनके ही अपने विचित्र लक्षण पाए जाते हैं जैसे कि पृष्ठीय नथुनों का पाया जाना, समूर का छोटे-छोटे होना और बाहरी कान पिन्ना का न होना।

प्लैटिपस जलीय जीवन के लिए अनुकूलित है। यह ऑस्ट्रेलिया के एक सीमित क्षेत्र में नदियों एवं तालाबों में रहता है। इसके पैरों में झिल्लियां होती हैं तथा एक पैडल-जैसी पूंछ होती है, जिनसे तैरने में मदद मिलती है। यह प्राणी 45 cm तक लम्बा हो जाता है। इसका मुंह आगे को लम्बा होकर बत्तख की चोंच जैसा हो गया है, और इसी आधार पर इसे डकबिल (बत्तखचोंची) का नाम दिया गया है. इस चोंच के ऊपर कोमल त्वचा का एक आवरण चढ़ा होता है। ये प्राणी अलवणजलीय अकशेरुकियों का आहार करते हैं जैसे कि कीटों और कवची प्राणियों का/शरीर पर घना समूर (fur) होता है। दांत केवल बच्चों में ही निकलते हैं वयस्कों में नहीं होते। नर सदस्यों के पिछले पैरों में विष ग्रंथियां होती हैं तथा इन ग्रंथियों से जुड़ा हुआ श्रृंगीय कांटा होता है। मादाओं में चूचुक रहित स्तन-ग्रंथियां होती है। ये एक समय में 1 से 3 पीतकी अण्डे देती हैं जो सरीसृपों के अण्डों के समान होते हैं। एक अकेला अवस्कर-छिद्र (cloacal opening) होता जिसके द्वारा मूत्रजनन वाहिनियां एवं मलाशय दोनों ही बाहर को खुलते हैं। ये नदियों के किनारे बिलों के भीतर अपना घोंसला बनाते हैं। अण्डे घोंसले के भीतर दिए जाते हैं जिन्हें वे स्वयं सेते, और फिर उनसे निकले बच्चों को पोषण कराते हैं। अण्डों में से बच्चे दो सप्ताह में निकल आते हैं। स्तन-ग्रंथियों में दूध का उत्पादन होता है जो समूर में से रिस कर बाहर को आता है और बच्चे इसे चाटते जाते हैं।

एकिड्ना एक स्थलीय प्राणी है। यह 45 cm तक लम्बा हो जाता है। शरीर पर रूखे-सूखे बाल तथा कांटे बने होते हैं। यह खास तौर से दीमकों को खाने के लिए विशेषित होता है। इसमें शक्तिशाली नखर होते हैं। थूथन संकरा, लम्बा और चोंच-जैसा होता है। इसकी एक लम्बी लसलसी चिपकदार जीभ होती है जिसके द्वारा यह दीमकों के घोंसलों में सूराख कर सकता है। यह चींटियों-दीमकों को खाता है और इसीलिए इसका नाम चींटीखोर पड़ा है। दांत समाप्त हो गए हैं। ये प्राणी अपनी सुरक्षा के लिए एक गढ़ा खोद कर उसमें इस तरह बैठ जाते हैं कि कांटे धरती की सतह से ऊपर निकले हुए हों। हर प्रजनन

ऋतु में मादा के उदर की अधर दिशा में एक नयी थैली बन जाती है। यह एक समय में केवल एक ही अण्डा देती है और उसमें से बच्चा मां के बालों में से रिसता दूध पीता है। आज केवल दो जीवित जीनस तथा दो ही स्पीशीज़ पायी जाती है: आस्ट्रेलिया में पायी जाने वाली टैकीग्लॉसस तथा न्यूगिनी में पायी जाने वाली थोड़े बड़े आकार की जीनस ग्लौसस **(Glossus)**।

4.3.2 मार्सुपिऐलिया (Marsupialia)

मार्सुपियल का अर्थ है थैली वाले स्तनी (GK. marsupion = थैली)। मार्सुपियल प्राणी तथा प्लैसेंटल प्राणी दो पृथक शाखाएं हैं जो लगभग 6 करोड़ वर्ष पूर्व स्तनियों के एक समान पूर्वज वर्ग से अलग-अलग दिशाओं में विकसित होने लगी थीं। अत: इन दोनों का एक समान उद्गम रहा है। मार्सुपियल प्राणी ऑस्ट्रेलिया तथा निकटवर्ती द्वीपों तक ही सीमित है, बस केवल एक अपवाद है ऑपोसम जो अमेरिका महाद्वीप में पाया जाता है। स्तनीय लक्षण मौजूद होने के बावजूद इस वर्ग में कुछ अपने ही विचित्र विशेष लक्षण पाए जाते हैं। इनमें एक अधर थैली होती है जिसे मार्सुपियम **(marsupium)** कहते हैं। गर्भाविधि बहुत छोटी होती है। कंगारू में यह केवल 13 दिन होती है। बच्चों का जन्म अल्पविकसित दशा में होता है, जन्म के बाद इन्हें थैली में पहुंचा दिया जाता है और उन्हें उसी में तब तक सुरक्षित एवं पोषित किया जाता रहता है जब तक कि वे स्वयं स्वतंत्र रहने लायक नहीं हो जाते। अण्डों में पीतक की थोड़ी मात्रा होती है जिसे परिवर्धनशील भ्रूण उपयोग में लाता रहता है। जन्म लेने के समय बच्चे बाल रहित, अंधे तथा बहरे होते हैं। परंतु उनमें सूंघने (घ्राण) की शक्ति बहुत जबर्दस्त होती है। जिसकी सहायता से वे मूत्रजनन छिद्र से निकल कर थैली तक पहुंचने का मार्ग ढूंढ लेते हैं। थैली के भीतर वे उसके एकल चूचुक से जुड़ जाते हैं और वहीं थैली में सुरक्षित रहते हुए दूध पीते एवं बढ़ते पनपते जाते हैं। कई सप्ताह तक परिवर्धित होते रहने के बाद ये बच्चे थैली में से बाहर आने लगते, इधर-उधर खेलते और खाने-पीने लगते हैं तथा जैसे ही कोई ख़तरा नज़र आया कि वे झट से वापिस अपनी मां की थैली में लौट आते हैं। इन बच्चों को मां अपनी थैली में लिए-लिए ही भोजन की तलाश अथवा अन्य क्रियाकलापों के लिए घू -फिरती रहती है। जन्म के समय बच्चों के अग्रपाद पश्चपादों की अपेक्षा बेहतर विकसित हुए होते है क्योंकि मां की थैली तक की यात्रा में मां के बालों को कस कर पकड़ते रहने का काम इन्हीं अग्रपादों से लिया जाता है (चित्र 4.34)।

कंगारू (मैक्रोपस) केवल ऑस्ट्रेलिया में ही पाए जाते हैं (चित्र 4.5)। यही कारण है कि कभी-कभी आस्ट्रेलिया की क्रिकेट टीम को "कंगारूज़" भी कह दिया जाता है। अग्रपाद पश्चपादों से छोटे होते हैं। पूंछ लम्बी तथा शक्तिशाली होती है। बैठते समय वे अपनी पिछली टांगों तथा पूंछ की तिपाही बना लेते हैं मानों पूंछ भी एक टांग हो। कंगारू सामान्यत: कूद-कूद कर चलता है और इस कूदने में पूछ एक धक्का अथवा संवेग प्रदान करती है। कंगारू दुपाए हैं तथा शाक भक्षी होते हैं।

ऑपोसम (Opossums) अमेरिका में पाए जाते हैं। ये वृक्षवासी तथा कीटभक्षी होते हैं। इनमें एक परिग्राही (prehensile) पूंछ होती है जो वृक्षों के बीच गति के दौरान शाखाओं के चारों ओर लिपट कर उन्हें सहारा देती है। इनमें मार्सुपियम नहीं होता। बच्चे मां की पीठ पर बैठा लिए जाते हैं। ऑपोसमों की दो उपस्पीशीज़ पायी जाती हैं जो उत्तरी अमेरिका के मध्य एवं दक्षिणी राज्यों में रहती हैं। अमेरिकी स्तनीय प्राणिजात (fauna) में सबसे आदिम प्राणी ये ही जीव हैं। अत: इन्हें अक्सर "ज़ीवित जीवाश्म" (living fossils) भी कह दिया जाता है। ऑपोसमों का उनके समूर एवं मांस के लिए शिकार भी किया जाता है।

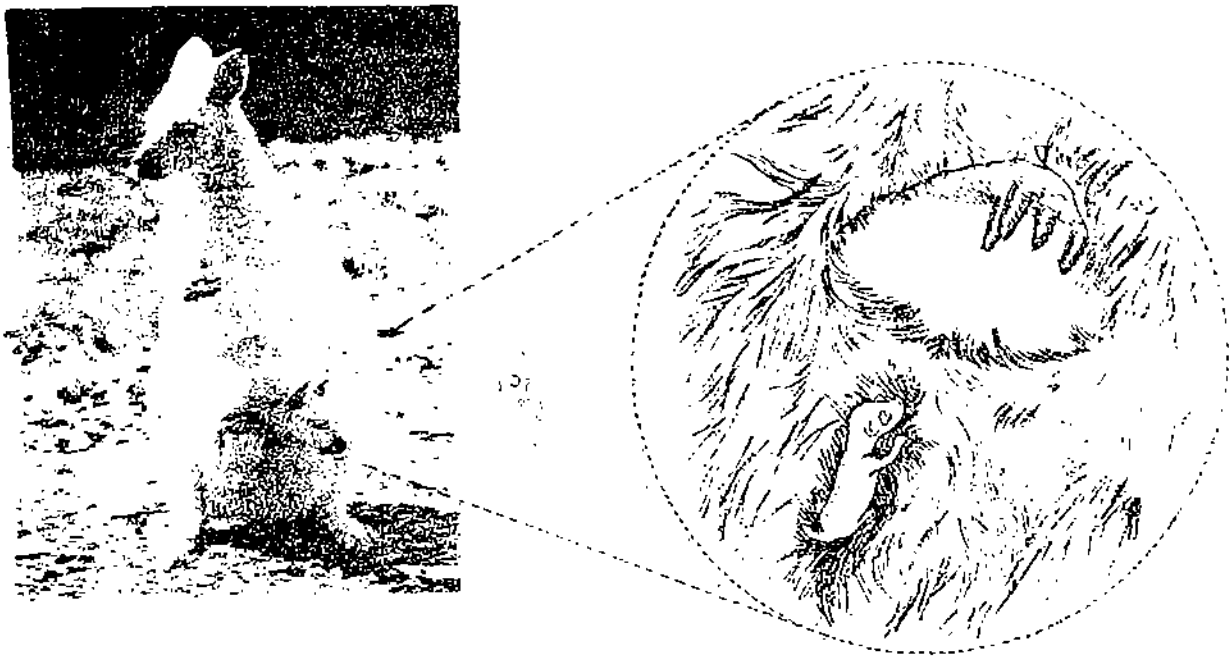

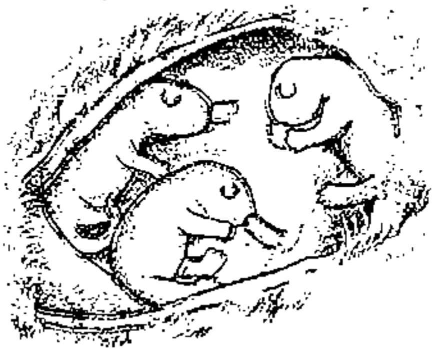

चित्र 4.34: कंगारू (मैक्रोपस, *Macropus*), मादा अपने बच्चों के साथ

4.3.3 यूथीरिया (Eutheria)

ावी हिमखण्ड (Floe): तिरती ई हिम चादर

दृढ़िसी: अधिसंख्य स्तनियों के ग्र के पास और मानव की नाक भीतर पाए जाने वाले कड़े मोटे ल

यूथीरिया को प्राय: प्लैसेण्टल-प्राणी भी कहा जाता है क्योंकि ये यथार्थत: शिशुप्रज होते हैं एवं स्तनियों में अधिक विकसित होते हैं। भ्रूण के गर्भाशयगत परिवर्धन के दौरान एक अपरा (प्लैसेंटा) बनता है। भ्रूण-परिवर्धन के दौरान यह अपरा भ्रूण को सुरक्षित रखता, उसका पोषण करता तथा उत्सर्जन में सहायता करता है। अपरा का बनना गर्भ के तथा मां के कुछ ऊतकों का एक साथ आकर जुड़ जाने से होता है। अपरा के द्वारा पोषण तथा ऑक्सीजन भ्रूण को पहुंच जाते हैं तथा भ्रूण में से नाइट्रोजनी अपशिष्ट एवं कार्बन डाइऑक्साइड बाहर को निकल जाते हैं। आज थल पर रहने वाले जीवों में यूथीरिया ही प्रभावी प्रणी हैं। ये 28 ऑर्डरों में विभाजित किए जाते हैं जिनमे से केवल 16 ही में जीवित उदाहरण हैं। अपने अस्तित्व के पिछले 6 करोड़ वर्ष के दौरान यूथीरियनों में एक विलक्षण अनुकूली विकिरण हुआ है। ये बिल बनाते, चलते, दौड़ते, तैरते और उड़ते हैं। ये लगभग हर कोई चीज़ खाते हैं- घास, खरपतवार, समुद्री खरपतवार, कृमि, कीट, फल, छाल, स्क्विड, क्रस्टेशियन, अन्य प्राणी और स्वयं एक-दूसरे को भी। ये तरह-तरह के आवासों में रहते हैं जैसे थल पर, गुफ़ाओं और बिलों में, उष्णकटिबंधीय वृक्षों की ऊँची शाखाओं में (बंदर एवं कपि), खुले समुद्रों में (ह्वेल, सूंस, पॉरपॉइज़), उत्तरी ध्रुव महासागरीय प्लावी हिमखण्डों पर (ध्रुवी भालू, सील), रेतीले मरूस्थलों में (ऊँट, चूहे) और निश्चय ही कृत्रिम आवासों में जैसे कि आवासी मकानों में (मानव)।

ऑर्डर इन्सेक्टिवोरा में कीट-भक्षी स्तनी हैं और ये आदितम एवं सर्वाधिक व्यापक वितरण वाले यूथीरियनों के प्रतिदर्श हैं। इन्सेक्टिवोरों को पूर्वज शाखा माना जाता है। जिसमें से मानव सहित अधिसंख्य अपरायुक्त स्तनी विकसित हुए कहे जाते हैं। ये छोटे आकार के स्तनी होते हैं तथा इनका थूथन पैना होता है। ये रात्रिचर होते हैं तथा अपना अधिकतर जीवन भूमिगत रूप में ही बिताते हैं। इनके शरीर पर एक नरम समूर होता है मगर झाऊमूसे (hedgehogs) इसका अपवाद हैं क्योंकि उनमें पृष्ठ सतह के बाल रूपांतरित होकर कांटे बन गए हैं। इनमें थोड़े से वाइब्रिसी (vibrissae) होते हैं और इन प्राणियों में तीव्र श्रवण-संवेद पाया जाता है। छछुन्दों की आंखें छोटी तथा कम विकसित होती हैं। कुछ इन्सेक्टिवोरों में अब भी अवस्कर मौजूद है। ये एक समय में अनेक बच्चों को जन्म देते हैं। वृषण उदर के भीतर होते हैं। स्तन-ग्रंथियों की बहुत संख्या होती है और वे उदर एवं वक्ष की अधर सतह के एक अक्ष पर बनी होती है। पादों में पंचांगुलिक व्यवस्था होती है तथा उंगलियों में नखर होते हैं जो खोदने में सहायता करते हैं इनमें दांतों की आदिम संख्या 44 पायी जाती है तथा इन दांतों में कोई विभेदन नहीं हुआ होता। अपरा चक्रिकाभ (डिस्कॉइडल) एवं हीमोकोरियल प्रकार का होता है। अधिकतर इन्सेक्टिवोर जाड़ों में शीतनिष्क्रिय अवस्था में चले जाते हैं।

रोडेन्शिया वर्ग, स्पीशीज़ तथा व्यष्टियों की संख्या की दृष्टि से बाकी सभी प्लैसेण्टलों से कहीं आगे हैं। रोडेन्शिया वर्ग यूथीरिया का सबसे बड़ा तथा सबसे महत्वपूर्ण वर्ग है। इसमें लगभग 3000 जीवित स्पीशीज़ आती हैं। इस वर्ग का आर्थिक महत्व अपार है। भारत में खाद्य अनाजों को होने वाली हानि का लगभग 30 प्रतिशत भाग रोडेन्शिया के ही कारण है। ये खेत में खड़ी फसल तथा भंडारित अनाज दोनों को ही नुकसान पहुंचाते हैं। ये बहुत ही खराब घरेलू नाशीजीव हैं। ये रोगवाहक भी हैं तथा प्लेग जैसी बीमारियां फैलाते हैं। दांत कुतरने के लिए रूपांतरित हो गए हैं। इनके दांतों की सबसे बड़ी विशेषता है चिरस्थायी पल्प से युक्त मज़बूत छेनी-जैसी आकृति के कृंतकों का होना। कृंतकों की जड़ें नहीं होतीं और वे आजीवन वृद्धि करते रहते हैं। रदनक नहीं होते। रोडेन्शिया अधिकतर शाकभक्षी होते हैं। इस ऑर्डर में सभी प्रकार के चूहे, जर्बिल, मूषक (mice), गिनीपिग, गिलहरी, बीवर, सेही (porcupine) आदि पाए जाते हैं। ये हर जगह पाए जाते हैं। इनमें से कुछ जलस्थलचर (amphibious) होते हैं लेकिन पूर्णत: जलीय नहीं होते। ये बहुमदचक्रीय (polyoestrous) होते हैं तथा ये चक्र सारे साल चलते रहते हैं। ये एक समय में 10-12 बच्चे देते हैं। ये सर्वाधिक हानिकारक स्तनी हैं। मगर प्रयोगशालाओं में इनका अनुसंधानों में इस्तेमाल होता है।

4.3.4 प्राइमेटीज

मानव समस्त स्तनियों में सर्वाधिक बुद्धिमान प्राणी है। मानव तथा उसके निकट संबंधी अर्थात् कपि एवं वानर अपेक्षाकृत अधिक चलते-पुर्जे और बुद्धिमान होते हैं, यही कारण है कि इस ऑर्डर को प्राइमेटीज़ नाम दिया गया (prime = मुख्य/प्रथम)। फिर भी याद रखना चाहिए कि सभी प्राइमेटों के समान बुद्धिमता नहीं पायी जाती। प्राइमेट-प्राणी अपरा-युक्त प्राणियों के एक आदिम वर्ग, कदाचित् इन्सेक्टिवोरा से विकसित हुए हैं। अग्रपादों को संचलन में कार्य करने से मुक्ति मिल जाना प्राइमेटों का सबसे असाधारण लक्षण है। मगर बंदर तथा अन्य आदिम प्राइमेट चौपाए ही हैं। मानव तथा कपियों में अग्रपादों को हाथ के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। इससे इन्हें वस्तुओं को पकड़ने तथा वस्तुओं से कुछ काम-काज करने की क्षमता प्राप्त हो गयी। ये प्राणी अपने दृष्टि बोध का समन्वय कर सकते हैं। यूथीरियन स्तनियों में प्राइमेट सर्वाधिक अविशेषित हैं। ऊपरी तौर पर शायद ये एक अलाभ दिखायी पड़ता हो मगर वास्तव में यह एक लाभ है। सबसे आदिम प्लैसेंटलों से विकसित होने में उनमें बुद्धिमता का वह उच्चतम स्तर विकसित हो गया है जो विकास के दौरान अब तक और किसी भी प्राणी में नहीं आ पाया है।

प्राइमेट-प्राणी केवल ऑस्ट्रेलिया को छोड़कर शेष सभी महाद्वीपों में व्यापक रूप में पाए जाते हैं। आदितम प्राइमेट प्रोसीमियन (**Prosimians**) (प्राक्वानर, premonkeys) हैं। ये प्रोसीमियन (उदाहरण: लीमर, टार्सियर, आदि) अफ्रीका, मैडागास्कर तथा दक्षिण एशिया में पाए जाते हैं। प्रोसीमियनों से तीन प्रमुख वर्गों का विकास हुआ: (1) सेबॉयडिया (**Ceboidea**) (नई दुनिया के वानर) जो केवल मध्य तथा दक्षिण अमेरिका में ही पाए जाते हैं, (2) सर्कोपियेकॉयडिया (**Ceropithecoidea**) (पुरानी दुनिया के वानर) जो आस्ट्रेलिया को छोड़कर पूर्वी गोलार्ध के उष्णतर भागों में पाए जाते हैं, (3) सर्वोच्च वर्ग होमिनिडी (**Hominidae**) (मानव-सम) में मानव की सभी विभिन्न स्पीशीज़ एवं जातियां आती हैं (*होमोसेपियन्स*, *Homo sapiens*, को छोड़कर सभी स्पीशीज़ विलुप्त हो चुकी हैं)। मानव का मस्तिष्क कोश वानरों के मस्तिष्क कोश से दोगुना होता है। मानव द्विपादी (दुपाया) है, वह सीधा खड़ा होता है, तथा अन्य प्राइमेटों की अपेक्षा उसके शरीर पर बहुत ही कम बाल हैं। पैर का अंगूठा सम्मुखी (opposable) नहीं होता जैसा कि अन्यथा हाथ का अंगूठा होता है. वानरों में पैर का अंगूठा भी सम्मुखी होता है।

चक्रिकाभ अपरा (Discoidal placenta)
जैसे-जैसे भ्रूण तथा जरायु (chorion) बड़े होते जाते हैं वैसे-वैसे केवल वे विलाई कायम बने रहते हैं जो एंडोमीट्रियम के सम्पर्क में होते हैं, शेष नष्ट हो जाते हैं। जो क्षेत्र अब भी एंडोमीट्रियल के साथ सम्पर्क बनाए रखता है वह डिस्क (चक्रिका) की आकृति का अपरा बन जाता है। ट्रोफोब्लास्ट जिस विधि से मातृक ऊतकों के साथ अन्योन्यक्रिया करता है उस पर निर्भर करता है कि अपरा की आकारिकी क्या होगी। मानवों तथा रोडन्टों के अपरा में मां और भ्रूण के बीच बहुत निकट का संबंध बन जाता है। इस प्रकार उन प्राणियों में जिनमें विलाई का बनना ऐलेण्टोकोरियॉन (allantochorion) (अपरापोषी-जरायु) के एक अंश में होता है और वे एक डिस्क (चक्रिका) अथवा प्लेट का रूप ले लेते हैं। ऐसा अपरा डिस्काइड कहलाता है।

रक्त-जरायु अपरा (haemochorial placenta)
जरायु विलाई बढ़ते जाते हुए गर्भाशय-ऊतक में गहराई तक चले जाते हैं और वे मातृक रक्त वाहिकाओं को तब तक तोड़ते चले जाते हैं जब तक कि वे पूरी तरह मातृक रक्त में डूब नहीं जाते। इस प्रकार के अपरा को रक्त-जरायु अपरा कहते हैं इसमें एक पतली झिल्ली होती है जो जरायु विलस की केशिका के भीतर के भ्रूण रक्त को एंडोमीट्रियम की गर्तिकाओं (crypts) में मातृक रक्त से पृथक करती है। इसी झिल्ली में से गैसों का विनिमय होता है. ऑक्सीजन एवं पोषक पदार्थ मातृक रक्त से भ्रूण को तथा गर्भ के रक्त में से कार्बन डाइऑक्साइड एवं अन्य अपशिष्ट मां के रक्त में इसी झिल्ली में से गुजरते हुए जाते हैं।

बुद्धिमत्ता

1. यह एक स्वभाव-गुण है जिसमें प्रकट होता है कि किसी जीव में जल्दी से सीख लेने की क्षमता किस स्तर की है तथा किसी भी नयी स्थिति का सामना करने पर वह कितनी जल्दी और कितने कारगर रूप में अनुक्रिया करने लग जाता है।
2. संकेतों से काम निकालने की तथा समस्याओं के समाधान की दिशा में अमूर्त संबंधों को जान लेना और फिर किसी निर्दिष्ट संदर्भ में परिवर्तनरत मांगों के लिए जब जैसी जरूरत हो उसके अनुसार अनुक्रिया करना। मानव बुद्धिमत्ता उन तमाम बोधात्मक शक्तियों का भण्डार होती है जो किसी भी व्यक्ति में पायी जाती है; अर्थात् ऐसी शक्तियों का जो कठिन से कठिन और जटिल से जटिल समस्याओं के हल करने में लगायी जा सकती हैं। ये शक्तियां हैं- तर्क, अंतर्दृष्टि, दूरदर्शिता, निर्णयन, अथवा कल्पना कर सकना।

लीमर मैडागास्कर में पाए जाते हैं। इनमें एक लम्बी परिग्राही पूंछ होती है। लोरिस **(Loris)** (चित्र 4.35) में पूंछ नहीं होती और यह दक्षिण भारत में पाया जाता है। लोरिस पादप-आहार को तथा छोटे-छोटे जंतुओं को खाता है, इसमें मद चक्र (oestrus cycle) पाया जाता है न कि सभी अन्य प्राइमेटों की तरह का रजोचक्र (menstrual cycle)।

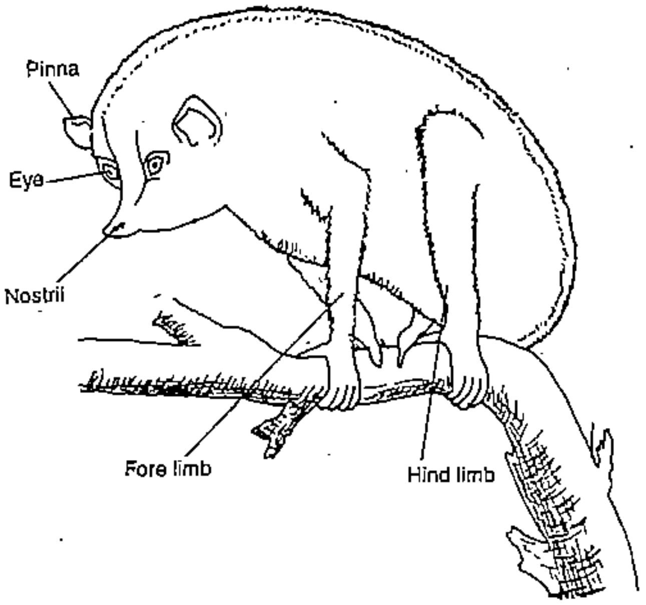

चित्र 4.35: *लोरिस (Loris)*

टार्सियर **(Tarsier)** एक अन्य प्रोसीमियन है जो फिलीपीन द्वीप समूह में पाया जाता है। यह एक बिल्ली के आकार तक का बड़ा हो जाता है। इसकी आंखें बड़ी होती हैं। इसकी उंगलियों में गद्दियां होती हैं। एक अन्य प्रोसीमियन मार्मोसेट (Marmoset) मध्य अमेरिका (ब्राज़ील) में रहता है। यह एक छोटी गिलहरी के जितना बड़ा होता है। इसके शरीर पर कोमल समूर होता है। केवल पैर के अंगूठे को छोड़कर जिसमें नाखून होते हैं शेष सभी उंगलियों में नखर होते हैं।

सेबॉयडिया **(Ceboidea)** के सभी सदस्य केवल अमेरिकी महाद्वीपों में ही पाए जाते हैं। इनमें हाथों और पैरों दोनों के अंगूठे सम्मुखी होते हैं। सभी उंगलियों में नाखून होते हैं। दुम लम्बी तथा परिग्राही होती है। यह पूंछ शाखाओं में लिपट-लिपटकर पेड़ों पर चढ़ने में सहायता करती है। दोनों नथुने एक-दूसरे से हटे हुए होते हैं। उदाहरण: "गिलहरी वानर", "मकड़ी वानर", "हाऊलर-वानर" आदि।

पुरानी दुनिया के बंदरों में पूंछ लम्बी होती है मगर वह परिग्राही नहीं होती। दो नथुने पास-पास सटे होते हैं। इनमें कपोल-कोष्ठ (cheek pouches) होते हैं। ये अधिकतर अफ्रीका तथा एशिया में रहते हैं। उदाहरण: बैबून (baboons), मैकेका (mácaqua), रीसस बंदर (चित्र 4.31) आदि।

कपि उपऑर्डर पौंगिडी **(Pongidae)** में आते हैं। इनमें दुम नहीं होती, अग्रपाद पश्चपादों की अपेक्षा अधिक लम्बे होते हैं, तथा ये प्राणी अपने पिछले दो पैरों पर चलते हैं। उदाहरण: गिब्बन (Gibbon) (*हाइलोबेटीज़ एजिलिस, Hylobates agilis*) दक्षिण-पूर्वी एशिया तथा पूर्वी द्वीप समूह में रहता है (चित्र 4.32)। यह वृक्षवासी और सर्वभक्षी होता है। ये 3 फुट की ऊँचाई तक लम्बा हो जाता है। यह अपने अग्रपादों से एक शाखा से दूसरी शाखा पर झूलता है और जमीन पर अपनी पिछली टांगों से चलता है।

औरंग-उटान (*पौंगो पिग्मीयस, Pongo pygmaeus*) बोर्नियो तथा सुमात्रा के जंगलों में रहता है (चित्र 4.36)। यह शाकभक्षी है। यह वृक्षों की ऊँची डालियों में रहता है, और 4.5 फुट की ऊँचाई तक लम्बा हो जाता है। इसका मस्तिष्क मानव के मस्तिष्क से छोटा होता है।

चित्र 4.36: औरंग-उटान (Orang-utan)

गौरिला (*गौरिला गौरिला, Gorilla gorilla*) - यह पश्चिमी अफ़्रीका में पाया जाता है (चित्र 4.37)। कपियों में यही सबसे बड़ा होता है। यह शाकाहारी है, आकार में बड़ा है और मज़बूत हड्डियों वाला है। यह 5.5 फुट तक की ऊँचाई का हो जाता है और वजन में लगभग 500 पौंड तक का होता है। यह घोंसला बनाता तथा छोटे-छोटे दल बनाकर रहता है।

चित्र 4.37: गौरिला

चिम्पैंज़ी (*पैन ट्रॉग्लोडाइटीस; Pan troglodytes*) - यह भी पश्चिमी अफ़्रीका में ही पाया जाता है (चित्र 4.38)। यह गौरिला से मिलता-जुलता होता है मगर साइज़ में उससे छोटा होता है, इसकी भुज़ाएं भी कम लम्बी होती हैं और बुद्धिमता में भी अपेक्षाकृत कम होता है।

चमगादड़ें ऑर्डर काइरॉप्टेरा में आती हैं तथा ये उड़ने के जीवन के लिए अनुकूलित हुई होती हैं। अग्रपादों की उंगलियां लम्बी हो गयी हैं। इन उंगलियों के बीच एक चर्मीय त्वचा फैली होती है और यही त्वचा अग्र तथा पश्चपादों के बीच एवं प्राणी के पश्च सिरे को घेरती हुई और कभी-कभी उसमें पूंछ को भी शामिल करती हुई एक समूचा लम्बा-चौड़ा पंख बनाती है। इनकी पादांगुलियों के सिरों पर हुक बने होते हैं जिनके द्वारा ये चमगादड़ें जब उड़ नहीं रही होतीं तो किसी शाखा पर अथवा अन्य किसी स्थान से उलटी लटकी रहती हैं। ये सदा उलटी ही लटकती हैं। चमगादड़ों की लगभग 600 स्पीशीज़ हैं। साइज़ तथा आहार के आधार पर इस ऑर्डर को दो उपऑर्डरों में विभाजित किया जाता है।

चित्र 4.38: चिम्पैंजी

मेगाकाइरॉप्टेरा (Megachiroptera) में बड़ी चमगादड़ें आती हैं जो अधिकतर फल खाने वाली होती हैं (चित्र 4.39)। माइक्रोकाइरॉप्टेरा (Microchiroptera) में छोटी चमगादड़ें आती हैं जो कीटभक्षी होती हैं (चित्र 4.8)। चमगादड़ों की कुछ स्पीशीज़ रक्तभक्षी भी होती हैं जो घोड़ों, मवेशी- जैसे अन्य जानवरों का रक्त चूसती हैं। इन चमगादड़ों को वैम्पायर (vampire) कहते हैं। वैम्पायर चमगादड़ें रोगवाहकों के रूप में कार्य करती हैं तथा घोड़ों में रेबीज, पीत ज्वर, चगा-रोग तथा ट्रिपैनोसोम आदि फैलाती हैं। चमगादड़ों में एक अतिविशेष संवेद ज्ञान पाया जाता है जिसे प्रतिध्वनिनिर्धारण (echolocation) कहते हैं। ये उड़ते समय अपने परिवेश का ज्ञान इसी परिघटना द्वारा करती हैं। उड़ते समय ये अपने शरीर से उच्च बारंबारता की ध्वनियां निकालती हैं और फिर इर्द-गिर्द की वस्तुओं से टकरा कर आने वाली इनकी प्रतिध्वनियों को ये पहचान लेती हैं। ये मानों एक प्रकार की रडार क्रियाविधि है जिसका चमगादड़ों ने बहुत पहले ही आविष्कार कर लिया था, मानव ने तो इसे बहुत बाद में खोजा। चमगादड़ों में आंखें होती हैं और वे भली भांति देख सकती हैं। अधिसंख्य चमगादड़ें रात्रिचर होती हैं तथा अपने मार्ग को ढूंढने, शत्रुओं या शिकार या आहार को जान सकने या मार्ग की बाधाओं को पहचानने में अपनी इसी अलौकिक शक्ति पराध्वनि निर्धारण का सहारा लेती हैं। पराध्वनि निर्धारण की सजीव क्रियाविधि को मानव-निर्मित रडार से कहीं अधिक कारगर कहा जाता है। चमगादड़ों का सोनार तंत्र (sonar system) लाखों गुना अधिक कारगर और अधिक संवेदनशील होता है। इससे भी बड़ी बात यह है कि इन प्राणियों को लाखों-लाखों वर्ष के क्रमविकासीय अनुभव का लाभ मिला है। सम्पूर्ण अंधेरे में भी चमगादड़ें अपने कीट-आखेट को ढूंढ सकती हैं तथा ऐसा तब होता है जब कि कीट किसी भी ऐसी ध्वनि को नहीं निकालता जिसे मानव सुन सकता हो। ध्वनि की पराध्वनि के द्वारा चमगादड़ें अपने परिवेश का पूरा चित्र प्राप्त कर सकती हैं।

पराध्वनि निर्धारण (Echolocation) में वस्तु के स्थान का निर्धारण उससे परावर्तित होने वाली ध्वनि के द्वारा होता है। चमगादड़ें इस क्रियाविधि का उपयोग करके अपने परिवेश की जानकारी प्राप्त कर लेती हैं।

सिटेसिया (Cetacea) में जलीय जीवन के लिए अनुकूलित स्तनी आते हैं। इस ऑर्डर में 100 से अधिक स्पीशीज़ हैं। ह्वेलें आज की विशालतम प्राणी हैं। ह्वेलों के अग्रपाद फ़्लिपरों (चप्पुओं) में रूपांतरित हो गए हैं जो तैरने में सहायता करते हैं। पश्चपाद समाप्त हो गए हैं। पूंछ क्षैतिजश: चपटी होकर दो पालियों से युक्त एक पर्णाभ (पत्तूक) जैसी संरचना बन जाती है। यह भी तैरने में सहायता देती है। आंखें छोटी होती हैं, बाहरी कान नहीं होते, इनके शरीर पर बाल कहीं-कहीं पर ही होते हैं। लेकिन इनकी त्वचा के नीचे चर्बी की एक मोटी परत होती है जिसे तिमिवसा (blubber) कहते हैं। बालों के अभाव में यही परत ऊष्मारोधक का कार्य करती हैं। दांतों का अपकर्ष हो चुका है मगर संख्या में बहुत ज़्यादा होते हैं। ह्वेलबोन ह्वेलों में ऊपरी जबड़े के पार्श्वों में दांतों की बजाए ह्वेलबोन (whalebone) नामक संरचना पायी जाती है। यह ह्वेलबोन समानांतर व्यवस्थित श्रृंगीय प्लेटों की बनी होती हैं। ह्वेलें समुद्र के छोटे-छोटे प्राणियों का आहार करती हैं। ह्वेलबोन एक छलनी जैसा काम करती है, यह जीव जंतुओं को मुंह के भीतर रोक लेती तथा जल बाहर को निकाल देती है, यही भीतर रुके हुए जीव ह्वेलों का भोजन होते हैं जिन्हें वे निगल लेती हैं। ह्वेलें 105 फुट तक की लम्बी हो जाती हैं। नीली ह्वेल सबसे बड़ी होती है। यह 125 टन तक के वज़न की होती है।

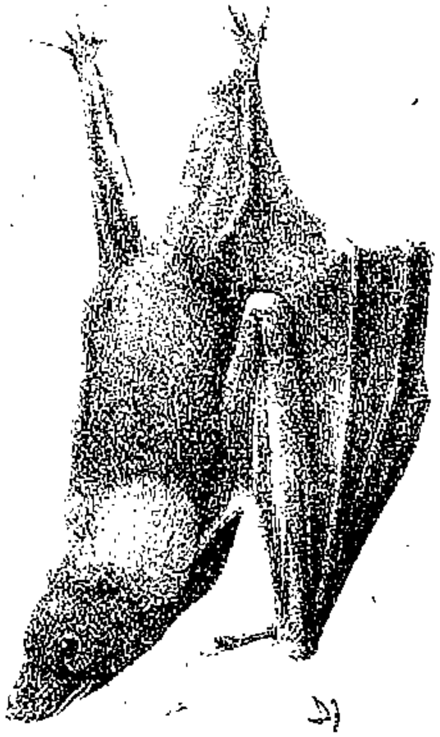

चित्र 4.39: टेरोपस (*Pteropus*) (बड़ी चमगादड़ flying fox)

ऑर्डर कार्निवोरा (**Order carnivora**) में आने वाले स्तनी मांस खाने के लिए अनुकूलित हुए होते हैं। इनमें थलीय तथा जलीय दोनों प्रकार के प्राणी हैं। इनके दांत मांस खाने के लिए रूपांतरित हो गए हैं। सुविकसित रदनक तथा दारक (**carnassial**) दांत शिकार को पकड़ने तथा मांस को चीरने में सहायता करते हैं। उंगलियों में आंकुचनी (retractile) यानि भीतर को सिकोड़ लिए जा सकने वाले नखर होते हैं जैसे कि बिल्ली में होते हैं। कृंतक छोटे होते हैं। इनके थलीय उदाहरणों में ये सब आते हैं: सिंह, बाघ, चीता, भेड़िया, लौमड़ी, तेंदुआ, कुत्ता, बिल्ली, नेवला (चित्र 4.40) आदि. समुद्री उदाहरण हैं सील (चित्र 4.41) तथा अलवणजलीय उदाहरणों में आते हैं ऊदबिलाव और सूंस (चित्र 4.42 और 4.43)। कार्निवोर-प्राणी अंगुलिचारी (digitigrade) संचलन विधि के लिए अनुकूलित हैं। इस लक्षण की दृष्टि से भालू (चित्र 4.44) अपवाद हैं जिनमें पादतलचारी (plantigrade) प्रकार का संचलन पाया जाता है। सील तथा वालरस ("समुद्री-सिंह") जलीय जीवन के लिए अनुकूलित हो गए हैं। इनमें दोनों जोड़ी पादों में झिल्लियां बनी होती हैं जो तैरने में मदद करती हैं। शरीर की आकृति मछली जैसी हो गयी है। ये अधिकतर समुद्री होते हैं और कुछ थोड़े से अलवण जलीय हैं वालरस अपेक्षाकृत बड़े होते हैं और उनमें ऊपरी जबड़े के रदनक बड़े होते हैं। वालरस अपने रदनकों से रेत को खोदकर उमें दबे-गड़े क्रस्टेशियनों तथा मौलस्कों को ढूंढते हैं जिन्हें वे खाते हैं।

वालरस: उत्तर ध्रुवीय प्रदेशों का बड़े आकार का समुद्री प्राणी जिसमें दो बड़े "गजदंत" होते हैं।

चित्र 4.40: हर्पेस्टीस (*Herpestes*) (नेवला)

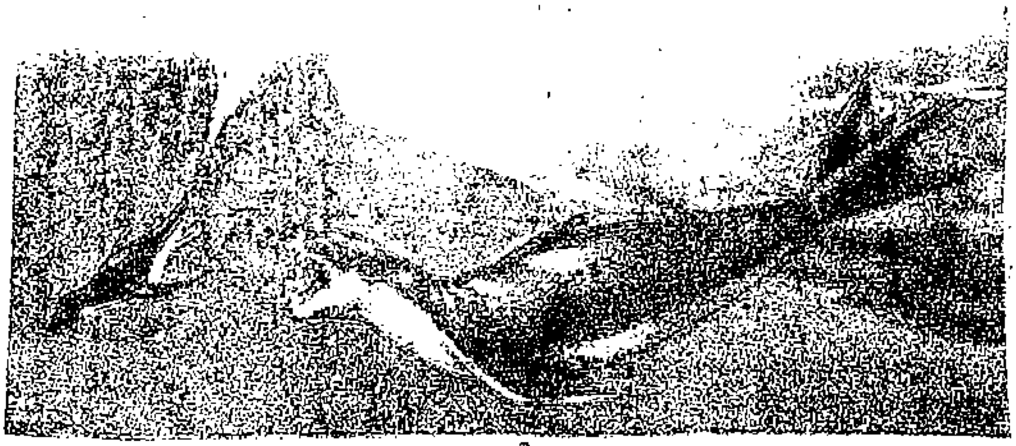

चित्र 4.41: फोका (*Phoca*) (सील)

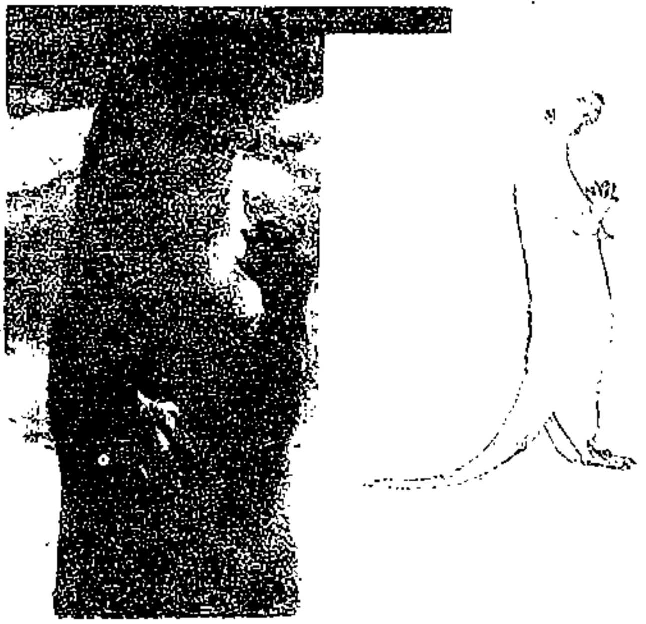

चित्र 4.42: लुट्रा (*Lutra*)

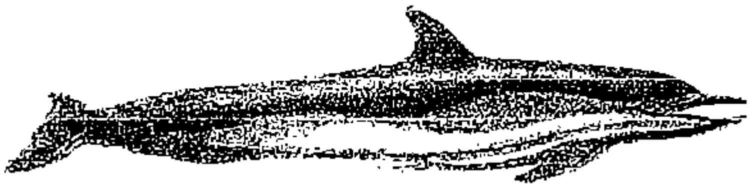

चित्र 4.43: सामान्य सूंस (*डेल्फ़ाइनस डेल्फिस, Delphinus delphis*)

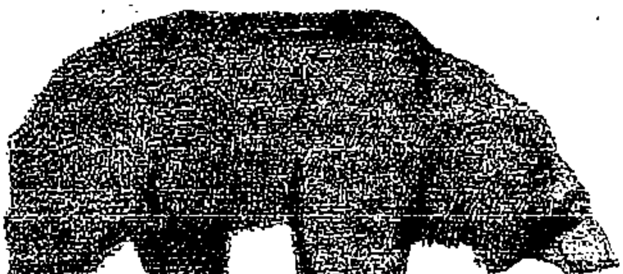

चित्र 4.44: *मैलर्सस अर्सिनस* ("स्लाथ" भालू)

हाथी, ऑर्डर प्रोबोसॉइडिया (**Proboscoidea**) में रखे जाते हैं। इस ऑर्डर में आज के विशालतम थलवासी प्राणी आते हैं। ये 16 फुट तक की ऊँचाई तक हो जाते हैं और वज़न में लगभग 1500 पौंड तक। ये अफ्रीका तथा एशिया में पाए जाते हैं। शरीर पर बाल बहुत ही थोड़े कहीं कहीं होते हैं। खाल ढीली और मोटी होती है तथा इनमें एक बड़ी पेशीय सूंड (proboscis) होती है। नासा छिद्र सूंड के अंतिम सिरे पर होते हैं। नर के ऊपरी कृंतक रूपांतरित होकर गजदंत बन गए हैं। रदनक नहीं होते। प्रत्येक जबड़े में 6 जोड़ी बड़े आकार के चबाने वाले चर्वणक दांत होते हैं। लेकिन इनमें से केवल एक ही जोड़ी के चर्वणक एक समय में काम करते हैं। करोटि यानि खोपड़ी बड़े आकार की होती है और उसकी हड्डियां मोटी होती हैं, इन हड्डियों में वायु गुहाएं होती हैं जिससे खोपड़ी हल्की हो जाती है। हाथियों में गर्भावधि सबसे ज़्यादा 23 महीने की होती है।

पेकैरी (**Peccary**): अमेरिका में पाया जाने वाला एक प्रकार का सूअर

खुर वाले स्तनी (अंगुलैटा, Ungulata) सामान्यत: खुले घास-स्थलों में रहते हैं। ये शाकभक्षी तथा स्वभाव से धावीय (cursorial) (दौड़ने वाले) होते हैं। उंगलियों के सिरों पर खुर बने होने के कारण ही इस वर्ग को अंगुलैटा का नाम दिया गया है। पैरों में उंगलियों की संख्या के आधार पर इनके दो वर्ग बनाए गए हैं: आर्टिओडेक्टाइला (**Artiodactyla**) जिसमें उंगलियों की समसंख्या होती है (2 या 4 उंगलियां), उदाहरण: सूअर, पेकैरी, दरियाई घोड़ा, ऊंट, लामा, गाय, भैंस, बाइसन (चित्र 4.45), भेड़, बकरी, प्रॉन्गहार्न, कुरंग (चित्र 4.46 तथा 4.47), जिराफ़, हिरन (चित्र 4.48), आदि; तथा पेरिसोडेक्टाइला (**Perissodactyla**) जिसमें उंगलियों की विषम संख्या होती है (1 या 3), जैसे घोड़े, टपीर, गैंडा, गधा, आदि। आर्टिओडेक्टाइला को बड़े आखेट प्राणी कहा जाता है क्योंकि इनका शिकार मानव तथा परभक्षी जानवर क्रमश: आखेट तथा भोजन दोनों के लिए करते हैं। कुछ आर्टिओडेक्टाइला जैसे कि ऊंट, हिरन, प्रॉन्ग हार्न, कुरंग, गाय-भैंस, ये सब रोमंथी (**ruminants**) हैं। यह व्यवस्था खुले घास स्थलों के आवास में जीवन के लिए एक अनुकूलन है जहां सुरक्षा उपलब्ध नहीं है। इन प्राणियों ने चबाने में बिना समय खोए थोड़े से ही समय में अधिक से अधिक भोजन निगलना और झट से किसी सुरक्षित स्थन पर चले जाना सीख लिया। वहां पहुंचकर वे फुर्सत से आहार को जठर से उद्गलित करके उसे खूब अच्छी तरह से चबाते हैं और फिर से उसे निगल लेते हैं ताकि उसे पचाया तथा स्वांगीकृत किया जा सके। इस स्वभाव के लिए इनके जठर में विशेष रूपांतरण हो गया है (चित्र 4.49)। जठर में चार कक्ष होते हैं- रूमेन (**rumen**), रेटिकुलम (**reticulum**), साल्टीरियन (**psalterium**) तथा ऐबोमैसम (**abomassum**)। रूमेन सबसे बड़ा कक्ष है जिसमें बिना चबाया हुआ भोजन भंडारित किया जाता है। इस स्वभाव को रूमिनेशन (rumination) कहा जाता है।

चित्र 4.45: बाइसन (गौड़)

चित्र 4.46: (कश्मीरी हिरन अथवा हंगुल, *Cervus elephas hanglu*)

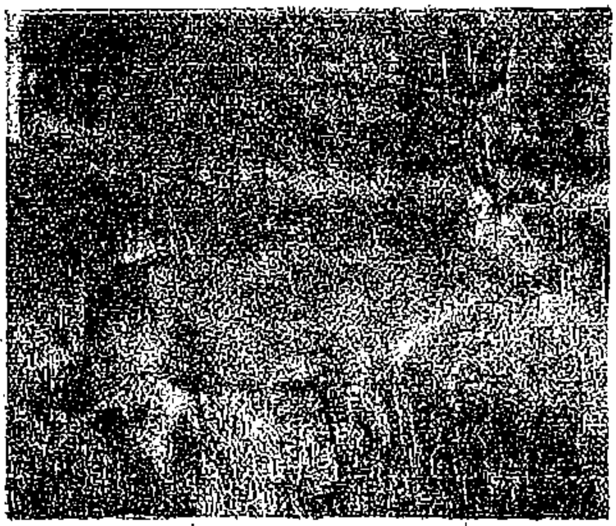

चित्र 4.47: सांभर (*Cervus unicolor*)

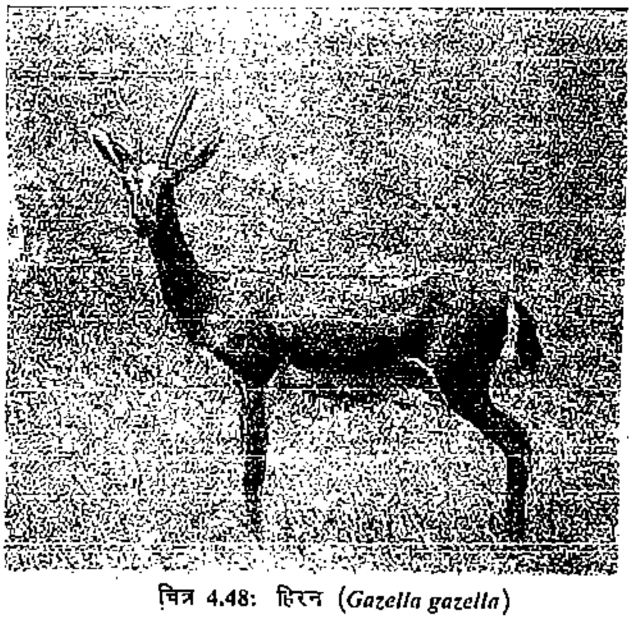

चित्र 4.48: हिरन (*Gazella gazella*)

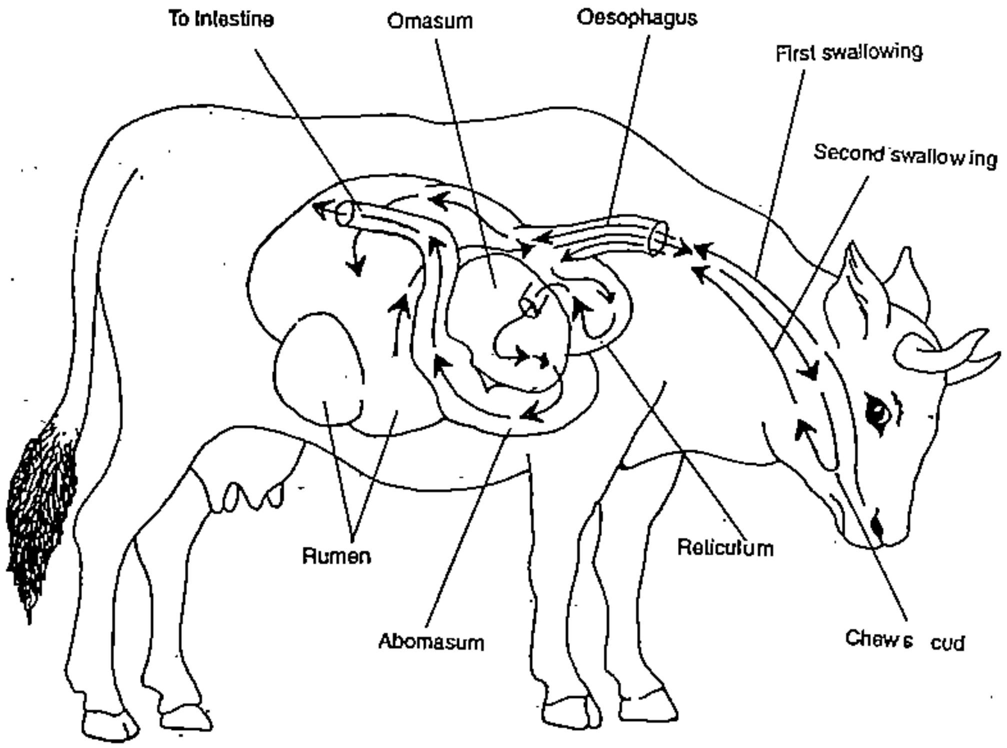

चित्र 4.49: रोमंथियों में जैसे कि गाय में सेलुलोज़ के पाचन के लिए विशेष पाचन संरचनाएं होती हैं। सेलुलोज का पाचन रूमेन में आरम्भ होता है जिसके भीतर विशाल संख्या में मौजूद प्रोटोज़ोआ तथा बैक्टीरिया अवायवीय दशा में सेलुलोज का विघटन प्रारंभ कर देते हैं। इससे होने वाले उत्पाद का उद्गलन होकर उस आहार की गोली वापिस मुंह में आती है और फिर जानवर उसको जुगाली करते हुए खूब अच्छी तरह चबाता है तथा चबाकर निगलता है मगर इस बार यह भोजन रेटिकुलम में पहुंचता है (चित्र में तीर का निशान देखें)। अंशतः पचा हुआ यह भोजन उसके बाद ओमैसम में और फिर अंततः ऐबोमैसम में (वास्तविक जठर) पहुंचता है। ऐबोमैसम में स्वयं सूक्ष्मजीवों का भी पाचन होने लगता है। शेष पाचन छोटी अंतड़ियों में सम्पूर्ण हो जाता है।

ऊँट (एक कूबड़ वाले) अरब तथा भारत के रेगिस्तानी क्षेत्र में पाए जाते हैं। एक अन्य स्पीशीज़ का ऊँट (दो कूबड़ वाला) हिमालय के उत्तर में गोबी रेगिस्तान में पाया जाता है। ऊँट सवारी तथा बोझा ढोने के काम में लाए जाते हैं। इनका पैर बहुत चौड़ा-फैला हुआ होता है ताकि रेत पर इनका वज़न बड़े क्षेत्र में फैल जाए। कूबड़ में चर्बी का तथा पेट में पानी का संचय होता है। इन दो बातों के द्वारा ऊंट बिना खाना और पानी के दूर-दूर तक चलता जा सकता है।

खच्चर (**Mule**) एक मानव-निर्मित अंगुलेट है। 3000 वर्ष से भी ऊपर के समय से यह मानव की सेवा करता आया है। मानव द्वारा सृजन किए हुए थोड़े से प्राणियों में कोई भी इतना मूल्यवान और जीव विज्ञान की दृष्टि से इतना रोचक नहीं है जितना कि यह खच्चर। इसने नितांत दुर्गम रास्तों से मनुष्यों और सामान को लाने-ले जाने में मानव की अपूर्व सहायता की है। खच्चर को एक नर गधे तथा मादा घोड़े के बीच संकरण कराके प्राप्त किया जाता है। नर खच्चर बंध्य (sterile) होते हैं मगर मादा खच्चर में जनन क्षमता होती है और वह बच्चों को जन्म देती है। नर घोड़े तथा मादा गधे के संकरण से उत्पन्न होने वाले को हिन्नी (**hinny**) कहते हैं और वह उतना उपयोगी नहीं होता जितना खच्चर। आज के मशीनी युग के प्रभाव से मनुष्य के लिए हज़ारों वर्ष से उपयोगी बना आ रहा खच्चर आज विलोप के कगार पर पहुंच गया है। खच्चर ने मनुष्य के निजी मामलों में कमाल की भूमिकाएं निभाई हैं और इतिहास के रचे जाने में सहायता की है। यह वास्तव में एक बेहतर किस्मत का हकदार है न कि इसको किसी शून्य भविष्य में धकेल दिया जाए।

खुरदार स्तनियों का शीर्ष-अलंकरण बड़ा ही रोचक होता है। इनके सींग (**horn**) तथा शृंगाभ (**antlers**) होते हैं। सींग और शृंगाभ देखने में एक जैसे लगते हैं परंतु मूलतः भिन्न होते हैं। शीर्ष की यह सज-धज अंगुलेटों की पांच फेमिलियों में पायी जाती हैं: राइनोसेरोटिडी (**Rhinocerotidae**) (उदाहरण: गैंडा), बोविडी (**Bovidae**) (उदाहरण: गाय, कुरंग, बकरी), ऐंटिलोकैप्रिडी

(**Antilocapridae**) (उदाहरण: अमेरिका का प्रॉन्गहार्न कुरंग), सर्विडी (**Cervidae**) (उदाहरण: मूज़, केरिबू, एल्क, हिरन) तथा जिराफ़िडी (Giraffidae) (उदाहरण: जिराफ़)। सींग और शृंगाभ सामान्यत: आर्टियोडेक्टाइल अंगुलेटों में तथा पेरिसोडेक्टाइल के एकमात्र अपवाद गैंडे में पाए जाते हैं। गैंडों में नाक की मध्य रेखा पर बना स्थायी एक सींग (एशियाई स्पीशीज़ में) तथा दो सींग (अफ्रीकी स्पीशीज़ में) पाए जाते हैं। बोविडी में पाए जाने वाले सींग सममित एवं स्थायी होते हैं। प्रॉन्गहार्न कुरंगों में एक जोड़ी सममित सींग होते हैं जो हर वर्ष गिर जाते और फिर दुबारा से निकल आते हैं। सर्विडी में भी प्रति वर्ष दुबारा बनने वाले एक जोड़ी सींग पाए जाते हैं। जिराफ़ में अनिश्चित प्रकार्य वाले युग्मित शीर्ष-उभार बने होते हैं। इस प्रकार शृंगाभ (antlers) मुख्यत: हिरन फ़ेमिली में ही पाए जाते हैं और वे हड्डी के बने होते हैं। शृंगाभ केवल नर सेक्स में ही पाए जाते हैं। शृंगाभ की संरचना सम्मिश्र प्रकार की और आकृति सजावटी होती है। पुराने समय में लोग घरों की दीवारों पर इन शृंगाभों को सजाने में शान समझते थे। इन श्रृंगाओं का प्राणी को कोई उपयोग नहीं है, उलटे कभी-कभी मुसीबत ही बन जाते हैं और जानवर की जान पर आ बनती है। ये शृंगाभ वृक्षों की शाखाओं में उलझ जाते या अन्य प्रतिद्वन्दियों के सींगों में फंस जाते और ऐसी स्थिति में वे अपने परभक्षी दुश्मनों का शिकार बन जाने के खतरे में आ जाते हैं। शृंगाभ बहुत नाजुक होते हैं और मैथुन ऋतु में नर इन्हें अपनी मादाओं को रिझाकर उन्हें पास लाने में उपयोग करते हैं। विकासविदों का कहना है कि शृंगाभों का प्रकट होना प्रकृति के लिए एक महंगा प्रयोग रहा है। इसके विपरीत सींग स्थायी संरचनाएं होती हैं और ये नर-मादा दोनों में पाए जाते हैं। एक बार कट या टूट जाने के बाद सींग दोबारा नहीं बनते परंतु शृंगाभों में यह क्षमता पायी जाती है। सींग जानवरों के लिए सुरक्षा और आक्रमण का एक अच्छा साधन हैं। ये सींग किरेटिन के बने होते हैं तथा इनमें रक्त वाहिकाओं एवं तंत्रिकाओं का संभरण होता है। सींग सजावट की संरचनाएं नहीं हैं। ये घुमावदार, ऐंठे हुए, कुंडलीनुमा, लहरदार या बिल्कुल सीधे नुकीले सिरे वाले होते हैं जिन्हें ये मानों छुरे की तरह अपने दुश्मन या प्रतिद्वन्द्वी के शरीर में भोंक कर उसे मार डाल सकते हैं। गैंडे का सींग बालों का बना होता है जो एक ठोस किरेटिनी संरचना का रूप ले लेता है। मवेशियों के सींग खोखले होते हैं और ऑस कॉर्नुआ (**os cornua**) नामक एक नुकीली संरचना के ऊपर एक खोल की तरह चढ़े होते हैं।

4.3.5 आर्थिक महत्व

स्तनियों ने ही वह पालनगृह उपलब्ध कराया है जिसमें से मनुष्य का विकास हुआ। मानव क्लास मैमेलिया में आता है स्तनियों ने ही सब पदार्थ तथा अवसर प्रदान किया जिसके द्वारा मानव का शारीरिक, जैविकीय तथा सांस्कृतिक विकास हुआ है। इन्होंने ही उसे जैविकीय पर्यावरण प्रदान किया हैं। इन्होंने ही उसका जीवन संभव और साध्य बनाया है। मानव को अपना अधिकतर भोजन एवं वस्त्रावरण स्तनियों से ही प्राप्त हुआ है। प्राचीन मानव अपने भोजन तथा वस्त्र के लिए पूरी तरह स्तनियों पर ही निर्भर था। तरह-तरह का मांस जैसे गाय-भैंसों का मांस (beaf), भेड़-बकरी का मांस (mutton), सूअर का मांस (pork) तथा ऊंट आदि का मांस मानव अपने भोजन के रूप में इस्तेमाल करता था। इन्हीं से दूध तथा दूध के उत्पाद प्राप्त होते हैं जो उत्तम पोषण होते हैं। इन्हीं तथा अन्य स्तनियों की खाल को कमा कर (tanning) उसे चमड़े का रूप दिया जाता रहा है जिससे जूते, पेटी, पर्स, बैग, सूटकेस, जाड़ों में पहनने के वस्त्र आदि बनाए जाते रहे हैं। उत्तरी अमेरिका की भैंसों ने अमेरिकी आदिवासी इंडियनों की आबादियों की सभ्यता बनाए रखी है। ह्वेलों तथा सीलों की मोटी चर्बी (ब्लबर) को इंधन-तेल के रूप में तथा साबुन आदि के बनाने में काम में लाया जाता रहा है। मिंक, बीवर, लौमड़ी, मुश्क-चूहा, ऑपोसम आदि की कोमल समूर को रईसों और शानों-शौकत वाले लोगों द्वारा पसंद किए जाने वाली गर्म पोशाकों में इस्तेमाल किया जाता है। इन जानवरों को पालने और उनके प्रजनन के लिए अच्छा खासा उद्योग शुरू हो गया है जिससे कितने ही लोगों को व्यवसाय उपलब्ध हो रहा है। अनेक स्तनियों का न केवल भोजन के लिए वरन् आखेट के नाम पर मनोरंजन के लिए भी शिकार किया जाता रहा है। यही कारण है कि अंगुलेटों की अधिसंख्य वन्य आबादियों को आखेट प्राणी (**game animals**) कहा जाता है। इसका परिणाम यह हुआ कि इनकी अनेक स्पीशीज़ या तो विलुप्त हो गयीं या विलुप्त होने की कगार पर हैं। इन दुर्लभ स्पीशीज़ में से अधिकतर को आज अभ्यारण्यों (**sanctuaries**) अथवा चिड़ियाघरों में देखा जा सकता है। चिड़ियाघरों को शिक्षा के नाम पर मनोरंजन प्रदान करने तथा उनमें से अनेक के संरक्षण का बहाना लेकर स्थापित किया जाता है। अनेक जंगली जानवरों से मनुष्य को मूल्यवान पदार्थ मिलते हैं जैसे हाथीदांत। हाथीदांत को कलाकृतियां बनाने तथा खेल कूद की एक अन्य प्रकार की सामग्री बनाने में काम में लाया जाता है। जैसे बिलियर्ड की गेंद, कैरम का स्ट्राइकर, कलम, कंघे आदि। सींगों से तरह-तरह के सजावटी सामान बनाए जाते हैं। सींग प्रोटीन का भी स्रोत हैं। हिरन के शृंगाभ, हाथी का सिर और सूंड,

हाथी की टांगों आदि को सजावटी वस्तुएं तथा कीमती फर्नीचर बनाने में इस्तेमाल किया जाता है। अनेक वन्य जानवरों को "स्टफ़" करके उन्हें घरों तथा संग्रहालयों में प्रदर्शित किया जाता है। अनेक स्तनियों को जैसे कि भैंस, मवेशी, गधा, ऊँट, घोड़ा आदि को सवारी तथा बोझा ढोने के काम में एवं कृषि में इस्तेमाल किया जाता है। कुत्तों को बर्फ़ पर गाड़ी खींचने में काम में लाया जाता है। भेड़-बकरी जैसे अनेक स्तनियों की ऊन और बालों को कात-बुन कर ठंडे जलवायु में रहने वाले लोगों के वास्ते गर्म कपड़े उपलब्ध कराए जाते हैं। कुत्ता, बिल्ली तथा ऊदबिलाव को पाला जाता है। कुत्तों को प्रशिक्षित करके उनके द्वारा मानव को सुरक्षा प्रदान की जाती है तथा घरों, खेतों और भेड़-बकरियों के दलों की चौकसी करायी जाती है। अनेक स्तनी प्रयोगशाला के प्रयोग-प्राणियों के रूप में सहायता करते हैं (जैसे चूहे, गिनीपिग, कुत्ते, बिल्ली, मवेशी, घोड़ा इत्यादि)। घुड़ दौड़ तथा कुत्ता दौड़ एक सामान्य क्रीड़ा तथा मनोरंजन-क्रियाकलाप हैं जो स्वयं एक उद्योग बन गया है और इन प्राणियों का प्रजनन कराया जाता है।

जहां एक ओर अनेक स्तनी मानव के लिए उपयोगी हैं वहीं उनमें से अनेक हानिकारक और आघात पहुंचाने वाले भी हैं। इनसे शारीरिक नुकसान हो सकता है या फिर ये तरह-तरह के रोग फैलाते हैं जैसे प्लेग, टाइफ़स, "रैबिट-फीवर", ट्राइकोसिस तथा रेबीज़। अनेक परभक्षी पालतू स्तनियों को मार डालते और खा जाते हैं और कभी-कभी उनमें से कई आदमखोर बनकर मानव के लिए ख़तरा बन जाते हैं।

बोध प्रश्न 2

(i) नीचे कुछ स्तनियों के दंत सूत्र दिए गए हैं। प्रत्येक सूत्र के बाद में दिए गए स्तनियों के नामों में से उस सही स्तनी का नाम चुनिए जिसके लिए वह दंत-सूत्र ठीक बैठता है।

1. $\frac{2-1-2-3}{2-1-2-3} = 32$ (हाथी, घोड़ा, मानव)

2. $\frac{3-1-4-2}{3-1-4-3} = 42$ (हाथी, मानव, कुत्ता)

3. $\frac{3-1-3-1}{3-1-2-1} = 30$ (कुत्ता, बिल्ली, घोड़ा)

4. $\frac{3-1-4-3}{2-1-2-3} = 38$ (गाय, सूअर, मानव)

5. $\frac{3-0-1-3}{3-0-1-3} = 28$ (गाय, कुत्ता, बिल्ली)

6. $\frac{1-0-0-6}{0-0-0-6} = 26$ (बिल्ली, हाथी, गाय)

(ii) वर्ग अ में दी गयी संचलन संस्थिति को वर्ग ब में दिए गए स्तनी से मिलाइए:-

वर्ग अ	वर्ग ब
1. पादतलचारी	क घोड़ा
2. अंगुलिचारी	ख मानव
3. खुरचारी	ग कुत्ता

(iii) निम्न वाक्यों में उनके अंत में कोष्ठकों में दिए गए शब्दों में से उपयुक्त शब्द छांट कर रिक्त स्थानों में भरिए:-

1. घोड़ों में उनकी उंगलियों के अंतिम सिरों पर .... बने होते हैं। (नाखून, नखर, खुर)

2. मानव की उंगलियों पर .... बने होते हैं। (खुर, नखर, नाखून)

3. कार्निवोरों में उनकी उंगलियों में .... बने होते हैं। (नाखून, नखर, खुर)

4. शीतोष्ण क्षेत्र जलवायु में कुछ स्तनी शीत ऋतु को .... की अवस्था में बिताते हैं। (ग्रीष्मनिष्क्रियता, शीतनिष्क्रियता, परिसंचरण)

5. नाखून, बाल, नखर तथा खुर स्तनियों के .... बाह्यकंकाल होते हैं। (एंडोडर्मल, मीज़ोडर्मल, एपिडर्मल)

iv. प्रत्येक कथन के सामने दिए गए चौकोर में लिखिए कि कथन सही है या गलत:-

1. चूहें उपयोगी स्तनी हैं। ☐
2. हाथी विशालतम स्थलीय प्राणी हैं। ☐
3. ब्लबर (तिमिवसा) बंदरों में पायी जाती है। ☐
4. कार्निवोर घास खाने वाले स्तनी है। ☐
5. छछूंद बिलकारी इन्सेक्टिवोर हैं। ☐
6. ह्वेल समुद्र में रहती हैं। ☐
7. कंगारू भारत के निवासी हैं। ☐
8. गायें दूध देती हैं ☐
9. घोड़ा रोमंथी स्तनी है। ☐

(v) वर्ग A में दिए गए स्तनियों के सामान्य नामों को वर्ग B में दिए गए उनके जीनस नामों से मिलाइए:-

वर्ग A	वर्ग B
1. डकबिल	क *मैक्रोपस*
2. एकिड्ना	ख *होमो*
3. कंगारू	ग *ऑर्निथोरिंकस*
4. मानव	घ *हाइलोबेटीज़*
5. गिब्बन	च *टैकिग्लॉसस*

4.4 विकास तथा सजातीयताएं

स्तनियों का विकास स्तनीसम सरीसृपों से हुआ है। ये स्तनीसम सरीसृप सिनैप्सिडा (**Synapsida**) थे जो अतीत में बाद के ट्राइएसिक युग अथवा आरंभिक युग में हुआ करते थे। इन आरंभिक पूर्वज उदाहरणों में स्तनियों तथा सरीसृपों दोनों के लक्षण पाए जाते थे। वे बहुत छोटे आकार के थे और उस समय के विशालकाय डाइनोसौरों से उनकी कोई तुलना नहीं की जा सकती। उनका विकास पुष्पी पौधों, मगर-मच्छों तथा कछुओं के विकास के साथ-साथ हुआ। स्तनी उच्चत: विकसित कशेरुकियों के प्रतिदर्श हैं। आरंभिक स्तनियों का जीवाश्म (फ़ॉसिल) रिकार्ड बहुत अधूरा है। अभी तक का ज्ञात आदितम स्तनी-सदृश सरीसृप साइनोग्नैथस (**Cynognathus**) था। वह आज के मांसाहारी कुत्ते के साइज़ का था। शुरू में विकास की गति बहुत धीमी थी। इस धीमी गति का कारण था आवासों की अनुपलब्धता क्योंकि अधिकांश आवास पहले से ही सरीसृपों द्वारा व्यापक रूप में अपनाए जा चुके थे। ये सरीसृप भली भांति अनुकूलित हो चुके थे और उन्हें उन आवासों से हटा सकना आसान न था। बाद के जुरैसिक काल के आते-आते स्तनियों के विकास में कुछ विविधता आनी प्रारंभ हो गयी थी। क्रिटेशियस के स्तनी बहुत छोटे, लगभग चूहे के आकार के थे। तब के उपलब्ध जीवाश्म बहुत थोड़े और अलग-थलग मिलते हैं एवं उनके कंकालों के केवल टूटे-फूटे अंश ही प्राप्त हुए हैं। सुपरिरक्षित दंत-विन्यास के अध्ययन से पता चलता है कि स्तनियों का विकास तीन दिशाओं में हुआ है। इसमें इनके आहार-स्वभावों में विभिन्नता आयी जान पड़ती है। इनमें शाकाहारी थे जो फलों तथा बीजों को खाते थे, मांसाहारी थे जो अन्य प्राणियों का मांस खाते थे तथा कीटभक्षी थे जो कीटों एवं छोटे आकार के जीव जंतुओं को खाते थे। मीज़ोज़ोइक (Mesozoic) को सरीसृपों का स्वर्ण युग कहा जाता है। उस समय में रह रहे स्तनी रूपरंग और ढंग में सरीसृपों के विशेषित वंशज जैसे लगते हैं। उस समय के सरीसृपों से तीव्र प्रतिस्पर्धा के बावजूदर ये आदि स्तनी किसी प्रकार जुरैसिक तथा क्रिटेशियस युग में जीवित रहते चले आने में सफल हो गए। इन स्तनियो

के इस बच निकलने में दो बातों ने बहुत योगदान दिया - एक तो इनकी बेहतर एवं अधिक कारगर शरीरक्रिया और दूसरे इनकी जनन रणनीतियां। अगले भूवैज्ञानिक युग सीनोज़ोइक (Cenozoic) काल की ही विशिष्टताएं थीं एक तो महाद्वीपीय अपवाह (continental drift) और दूसरे व्यापक अपरदन। ऐसा होने से उस काल के जीवाश्म अधिक संख्या में उपलब्ध नहीं हैं। पेलियोसीन युग के कुछ जीवाश्म अधिकतर उत्तर अमेरिका में पाए जाते हैं। बाद के पेलियोसीन युग के जीवाश्म एशिया, यूरोप तथा दक्षिण अमेरिका के महाद्वीपों में मिलने लगते हैं। इस समय के आते-आते स्तनियों का विकिरण आरंभ हो गया था। इस प्रकार पेलियोसीन का युग पृथ्वी के इतिहास में सरीसृपों के युग में स्तनियों के युग की दिशा में संक्रमण का युग था। विचित्र बात है कि पेलियोसीन की ऊषा के आते-आते डाइनोसौर समाप्त हो गए और महाद्वीपीय प्राणिजात में अचानक स्तनियों का बोलबाला होने लगा। पेलियोसीन स्तनियों में अधिकतर मार्सुपियलों तथा इन्सेक्टिवोरा-स्तनियों का ही प्रतिदर्श मिलता है। शाकाहारी अंगुलेट, मांसाहारी परभक्षी एवं छोटे बंदर जैसे प्राणी, रोडेन्ट तथा अन्य स्तनी पेलियोसीन के अंत में प्रकट हुए। इस युग के आते-आते लगता है कि मानो स्तनियों ने ही पृथ्वी को विरासत में पाया हो। अधिसंख्य मीज़ोजोइक सरीसृपों के विलोप से कितने ही आवास खाली हो गए और स्तनियों ने बिना अवसर खोए उन्हें तुरत अपने अधिकार में ले लिया। पेलियोसीन युग के दौरान स्तनियों में बहुत व्यापक विकिरण एवं विविधिकरण हुआ। अंतत: स्तनियों ने सरीसृपों को पीछे छोड़ते हुए अपने परिवेश का हर कोना अपना लिया। यहां यह बात याद रखनी होगी कि सरीसृपों के विलोप का कारण स्तनी नहीं थे। वास्तव में, सरीसृपों के विलोप होने से ही स्तनियों को फैलते जाने और विविध होते जाने का अवसर मिला। इसी समय के आसपास स्तनियों के विकास में जो एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं सबसे ज़्यादा ध्यानाकर्षक परिवर्तन आया वह था मस्तिष्क के आकार का बढ़ना जिसका प्रमाण उपलब्ध जीवाश्मों में मस्तिष्क कोश से प्राप्त होता है।

अपरा (प्लैसेंटा):- गर्भावस्था के दौरान गर्भाशय का अस्तर बनाता हुआ एक अंग जिसके द्वारा गर्भ का पोषण होता है प्रसव हो जाने पर यह अंग गर्भ और नाभि रज्जु (umbilical cord) के साथ बाहर आ जाता है। जिन स्तनियों में अपरा (प्लैसेंटा) होता है उन्हें अपरा-प्राणी या प्लैसेंटल कहते हैं।

मार्सुपियल: ये उस स्तनी-क्लास के प्राणी होते हैं जिनमें मादा के पेट पर एक थैली बनी होती है जिसके भीतर वे अपने बच्चे को लिए रखती हैं। ये बच्चे अपूर्ण परिवर्धित दशा में जन्म लेते हैं।

मार्सुपियलों तथा प्लैसेंटलों इन दोनों ही प्रकार के स्तनी क्रीटेशियस युग में किसी एक समान पूर्वज से अलग-अलग विकसित हुए जान पड़ते हैं। विकास-क्रम के दौरान प्लैसेण्टल-प्राणी अधिक प्रभावी हो गए क्योंकि इनमें श्रेष्ठतर बुद्धि का विकास होने लगा था। इन्सेक्टिवोर-प्राणी परिकल्पित यूथीरियन पूर्वज हैं। ये आकार में छोटे तथा पादतल प्रकार के संचलन वाले होते हैं। ये ही आदिम सामान्यीकृत लक्षणों से युक्त प्लैसेण्टल (अपरायुक्त) पूर्वज के निकटतम आते हैं। आज के किसी भी जीवित सरीसृप को वह मूल सरीसृप शाखा नहीं कहा जा सकता जिससे इन्सेक्टिवोरों का उदय हुआ, इन सभी सरीसृपों में अनेक विशिष्टताएं पायी जाती हैं। आज यह कहना बिल्कुल असंभव है कि किस बिंदु पर स्तनी-सदृश सरीसृप यानि थीरेप्सिड-प्राणी समाप्त हो गए तथा स्तनी आरंभ हुए, ऐसा इसलिए है क्योंकि सरीसृपों का स्तनी में कोई सहसा परिवर्तन नहीं हुआ और न ही कोई ऐसी नाटकीय घटना घटी जिससे हमारे अपने क्लास मैमेलिया का प्रकट होना जान पड़ता है।

ईओसीन काल में साधारण प्लैसेंटल-प्राणी और अधिक प्रकट हुए तथा ओलाइगोसीन में उनका विविधिकरण जारी रहा। ओलाइगोसीन समाप्त होते-होते आज के अधिकतर प्लैसेंटलों का अस्तित्व बन चुका था। ईओसीन तथा ओलाइगोसीन युगों के होते-होते पृथ्वी का प्राणिजात और उसमें भी ख़ास तौर से स्तनियों का प्राणिजात बहुत नया-नया और अजीब सा लगने लगा था। इसी काल के दौरान भांति-भांति के नए प्राणी प्रकट हुए जैसे पूर्वज कार्निवोर सेब्रे-टूथ (sabre tooth), खुरदार स्तनियों का पूर्वज रूप जैसे कि पूर्वज ऊँट प्रोटाइलोपस **(Protylopus)**, पूर्वज घोड़ा ईओहिप्पस **(Eohippus)**, पूर्वज हाथी मोरीथीरियम **(Moeritherium)**। इंसेक्टिवोर-प्राणी सभी यूथीरियन स्तनियों के एवं आज के उन अधिसंख्य वंशजों के पूर्वज रूप हैं जिन्हें हम मुश्किल से अपने संबंधी मानने के लिए तैयार होंगे। अत: इंसेक्टिवोरों में चार अपेक्षाकृत भिन्न स्वरूप पाए जाते हैं। पहले तो आज के प्ररूपी श्रियू, छछूंदर एवं झाऊमूसे हैं। दूसरे प्ररूपों में आते हैं आज के वृक्ष श्रियू जो कदाचित् आज के जीवित यूथीरियनों में सबसे आदिम हैं एवं वे जीवाश्म भी आते हैं जो इतने सामान्यीकृत हैं कि उन्हें किसी भी अन्य प्लैसेंटल ऑर्डर में नहीं रखा जा सकता। इंसेक्टिवोरों के शेष अन्य दो स्वरूपों में इंसेक्टिवोरों की दो अलग होती जाती शाखाओं के प्राणी आते हैं- एक तो "एलिफैंट-श्रियू" और दूसरे "उड़न-लीमर"।

सौभाग्य की बात है कि ऊँट, हाथी तथा घोड़े के विकासीय इतिहास को दर्शाने वाले सभी फ़ॉसिलों का पूरा क्रम प्राप्त हो चुका है। इनके विकास को एक-एक चरण के अनुसार देखा जा सकता है और इस चरणबद्ध विकास को उन सब परिवर्तनों के साथ जोड़ा जा सकता है जो उस समय उनके आवासों में हो रहे थे। आवासों में होने वाले ये परिवर्तन ही इन प्राणियों के विकास के उत्तरदायी थे। इन नाटकीय

घटनाओं के होने का मंच उत्तरी अमेरिका का महाद्वीप था। ऊँट तथा घोड़े का विकास उत्तरी अमेरिका में हुआ और वहां पूरे सीनोज़ोइक काल में इनके जीवाश्म भरपूर पाए जाते हैं मगर कैसी विडम्बना है कि बाद के प्लायोसीन में ये फॉसिल उत्तर अमेरिका में समाप्त हो गए (चित्र 4.50)। आश्चर्य की बात है कि आज कोई भी देशज (स्थानीय) ऊंट या घोड़ा उत्तर अमेरिका में नहीं पाया जाता। घोड़े का विकास ईओहिप्पस **(Eohippus)** से शुरू होकर विभिन्न भूवैज्ञानिक युगों में विभिन्न अवस्थाओं से गुज़रता हुआ आज के घोड़े ईक्वस **(Equus)** तक पहुंच गया है। इसी प्रकार ईओसीन से प्रोटाइलोपस, ओलाइगोसीन से पीब्रोथीरियम **(Poebrotherium)** और मायोसीन तथा प्लायोसीन से प्रोकैमेलस **(Procamelus)** प्राप्त हुए हैं। बाद के ईओसीन से प्राप्त हुआ आज के हाथियों का आदिम पूर्वज मीरीथीरियम मात्र 2 फुट ऊँचा होता था। इसी से प्रकट हुआ प्लायोसीन का मैस्टोडॉन **(Mastodon)** जिसकी ऊँचाई लगभग 6 फुट थी, यही और आगे बढ़ता हुआ 11 फुट ऊँचा अफ़्रीका का हाथी लॉक्सोडॉण्टा **(Loxodonta)** एवं एशिया का हाथी ऐलीफ़स **(Elephas)** बना। इन शाकभक्षी स्तनियों के विकास का इतिहास 6 करोड़ वर्ष के दौरान चलता रहा और इस बीच 350 पहचानी जा सकने वाली स्पीशीज़ प्रकट हुई।

मानव के विकास को ढूंढ निकाल पाना इतना आसान नहीं है। मानव तथा कपियों का एक समान उद्गम रहा जान पड़ता है। ये दोनों वर्ग बहुत पहले ही लगभग 2.50 करोड़ वर्ष पूर्व एक-दूसरे से भिन्न दिशाओं में विकसित होने लगे थे। उन सभी प्रकटतः समान पूर्वजों को जो मानव-विकास की सीधी रेखा पर आते हैं एक साथ मिलाकर एकल फ़ैमिली होमिनिडी **(Hominidae)** में रखा जाता है। इस फ़ैमिली में रखे जाने वाले स्तनियों को सामान्यतः होमिनिड (मानवसम प्राणी) कहा जाता है। होमिनिडों के विकास का मुख्य लक्षण था शरीर के सीधे खड़े होने की संस्थिति का बनना एवं धरातल पर जीवन यापन की विधि। मानव के निकटतम संबंधी कपि (apes) हैं। ये कपि वन्य जीवन के लिए अनुकूलित हैं। अतः इनमें लम्बी पेशीय भुजाएं बनना ज़रूरी था ताकि उनकी सहायता से वे वृक्षों पर जीवन बिता सकें एवं एक शाखा से दूसरी शाखा पर झूलते हुए आ-जा सकें।

मानव तथा कपियों का ज्ञात प्राचीनतम समान पूर्वज प्रोकौंसल **(Proconsul)** है। यह प्राणी लगभग 2.50 करोड़ वर्ष पूर्व रहा करता था। विश्व के विभिन्न भागों से ऐसे अनेक जीवाश्म प्राप्त हुए हैं जिनसे मानव के विकास की विभिन्न संभावित दिशा-रेखाओं को फिर से जोड़ कर देख सकने में सहायता मिलती है। भारत में खोजा गया रामापिथेकस **(Ramapithecus)** एक जीवाश्म मानव है। इसे मानव-विकास की दिशा-रेखा में दूसरा अगला पड़ाव माना गया है। अनुमान है कि यह लगभग 1.0 से 1.5 करोड़ वर्ष पहले रहता था (चित्र 4.51)। अफ़्रीका से ऐसे बहुत से प्रमाण मिले हैं जिनसे मानव-सरीखे प्राणियों की अनेक स्पष्ट दिशा-रेखाएं प्रकट होती हैं। ऑस्ट्रेलोपिथेकस **(Australopithecus)** (दक्षिणी कपि, southern ape) की हड्डियों से तीन स्पीशीज़ का संकेत मिलता है। इनमें से कोई भी एक स्पीशीज़ वास्तव में हमारी पूर्वज नहीं कही जा सकती, मगर हां, वे हमारे पूर्वजों के समानांतर विकसित हुई। अफ़्रीका से प्राप्त होने वाला पहला जीवाश्म नमूना एक बालक-खोपड़ी थी जिसका नाम ऑस्ट्रेलोपिथैकस ऐफ्रिकैनस **(Australopithecus africanus)** रखा गया। ऑस्ट्रेलोपिथेकस जीनस में रखे जाने वाले अन्य जीवाश्म जो पूर्वी अफ़्रीका से प्राप्त हुए हैं 30 से 10 लाख वर्ष पूर्व समय के हैं। ऑस्ट्रेलोपिथेकस की खोपड़ियों की कपाल धारिता लगभग 450-500 ml आकलित की गयी है जो किसी कपि के देह-आकार के अनुपात में कुछ अधिक बड़ी थी। ये जीवाश्म पूर्वी अफ़्रीका में पाए गए हैं एवं इनके साथ-साथ पत्थर के औज़ार भी मिलते हैं। ऐसा प्रमाण मिलता है कि ये प्राणी अपनी पिछली दो टांगों पर चलते थे। करोटि यानि खोपड़ी के पिछले भाग का वह क्षेत्र जहां गर्दन की पेशियां जुड़ी होती हैं इन जीवाश्मों में कपियों की तुलना में छोटा था, और कर्णमूल प्रवर्ध (mastoid process) अपेक्षाकृत बड़ा था। महारंध्र (foramen magnum) करोटि के केंद्र पर बना है। इन लक्षणों से जान पड़ता है कि इनका शीर्ष गर्दन पर संतुलित रहता था न कि कपियों में आगे को लटका-झुका हुआ जैसा। जबड़े आज के मानव की अपेक्षा बड़े थे मगर दांतों की व्यवस्था ज़्यादा चाप ज़्यादा गोल थी। कृंतक सीधे खड़े (उदग्र) थे और रदनक चपटे-चम्मच जैसे (spatulate) हो गए थे एवं ये रदनक कपियों के रदनकों की अपेक्षा छोटे थे मगर मानव की अपेक्षा अधिक बड़े थे। चर्वणक मानव की अपेक्षा अधिक बड़े थे परंतु इनका प्रतिस्थापन-प्रतिरूप वैसा ही था जैसा मानव में होता है। कुछ अध्ययनकर्त्ताओं का मानना है कि ऑस्ट्रेलोपिथेकस चलने की बजाए दौड़ता अधिक था। वे ऐसा इसलिए कहते हैं क्योंकि इस प्राणी की लम्बी इलियम हड्डिया पृष्ठ दिशा को रुख किए हुए है एवं मध्य मेटाटार्सल अधिक मोटी है न कि होमों के प्रकार की पहली मेटाटार्सल। कुछ अन्य अध्येताओं का विचार है कि इन जीवाश्मों की हड्डियां मानव की हड्डियों के ही पंक्ति में आती हैं।

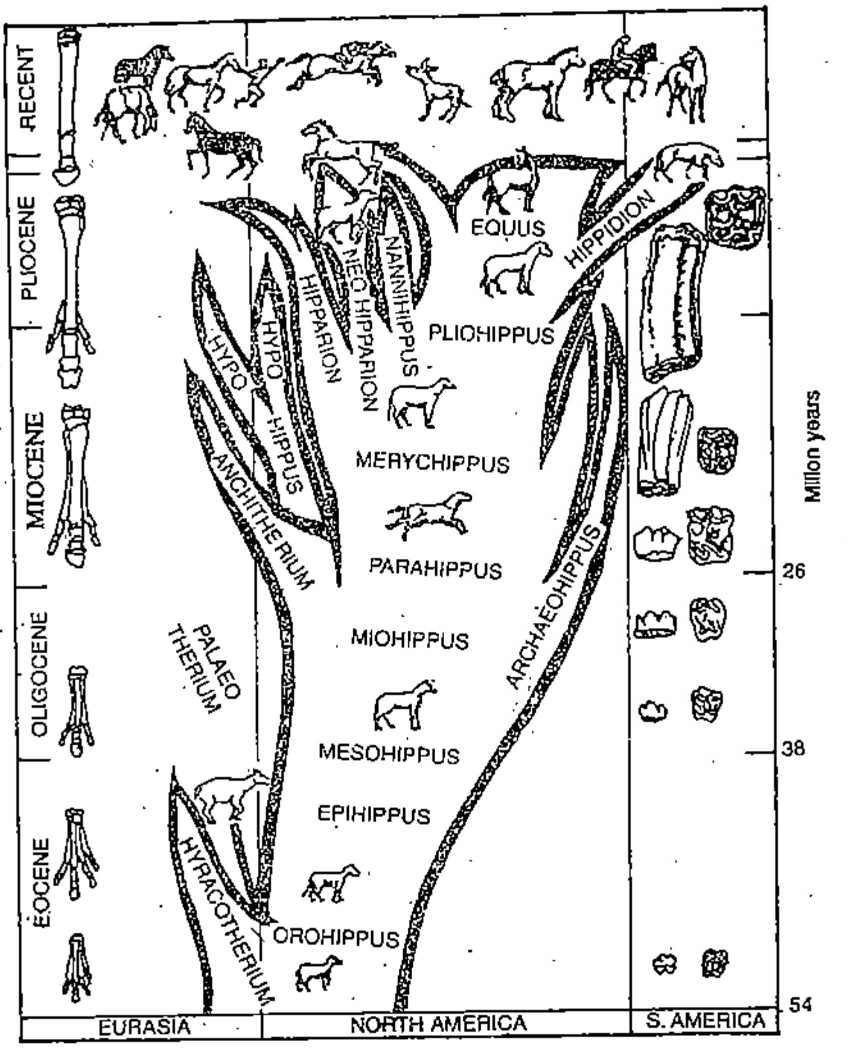

चित्र 4.50: तालिका जिसमें घोड़ों का विकास दिखाया गया है। प्रत्येक काल के दौरान पादों एवं दांतों की लगभग जो दशाएं रही होंगी उन्हें तालिका में क्रमशः बायीं और दायीं ओर दर्शाया गया है।

जैसा भी हो, जीवाश्म रिकार्ड से पता चलता है कि लगभग मानव समान प्राणी काफ़ी विविध रूपों में अफ़्रीका में पाए जाते रहे थे। जीवाश्म रिकार्ड में पाए जाने वाले सबसे पहले वास्तविक मानवाभ (**hominid**) प्राणियों को आस्ट्रेलोपिथेकस जीनस में रखा जाता है (यह नाम australis : दक्षिणी तथा pithecus : कपि के आधार पर रखा गया है, इसमें "दक्षिणी" इसलिए कहा गया क्योंकि इसके सबसे पहले नमूने दक्षिण अफ़्रीका में पाए गए थे)। सीधे खड़े होने की संस्थिति को मानव के विकास की दिशा में एक महत्वपूर्ण लक्षण समझा जाता है। जीव-विज्ञान की दृष्टि से सीधे खड़े होने की संस्थिति वास्तव में अलाभकर है। इससे पेट सामने को खुल जाता है जिससे एक तो ख़तरा हो सकता है और दूसरे तीव्र एवं सरल गति में बाधा भी आती है। फिर भी, इससे एक बहुत बड़ा लाभ था। इसके कारण अगले हाथ स्वतंत्र हो गए और उन्हें संचलन में उपयोग करने के झंझट से छुटकारा मिल गया। इसी परिवर्तन ने उस एक स्पीशीज़ के विकास का अवसर प्रदान किया जिसमें हाथ स्वतंत्र है। अब इन हाथों को अन्य कामों में इस्तेमाल किया जा सकता था जैसे कि शत्रुओं से अपने को बचाने के लिए। इन स्वतंत्र हाथों ने वस्तुओं को औज़ारों एवं हथियारों की तरह पकड़ सकना संभव बनाया। जान पड़ता है कि ऑस्ट्रेलोपिथेकस औज़ार निर्माता भी था और औज़ार उपयोगकर्ता भी। इन जीवाश्मों के साथ ऐसे अवशेष मिले हैं जिन्हें औज़ार कहा जा सकता है। लगता है कि वस्तुओं को पकड़ सकने की क्षमता ने मस्तिष्क के तीव्र विकास में भारी योगदान दिया। सीधे खड़े होने की संस्थिति ने जो एक और बहुत बड़ा लाभ प्रदान किया वह था अधिक ऊँचाई से और अधिक दूरी तक देख सकना। हाथों द्वारा कसकर पकड़ सकने की क्षमता ने औज़ारों/हथियारों का उपयोग कर सकना संभव बनाया। ये प्राणी अधिक कारगर रूप में अपनी सुरक्षा कर सकते थे और आहार प्राप्ति के लिए पौधों से फूलों, फलों और पत्तियों को तोड़ सकते थे, जड़ों को खोद सकते थे और अन्य जानवरों को मार सकते थे। अतः सीधी खड़ी संस्थिति और स्वतंत्र हाथों को मानव विकास की दिशा में सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटनाएं माना जाता है।

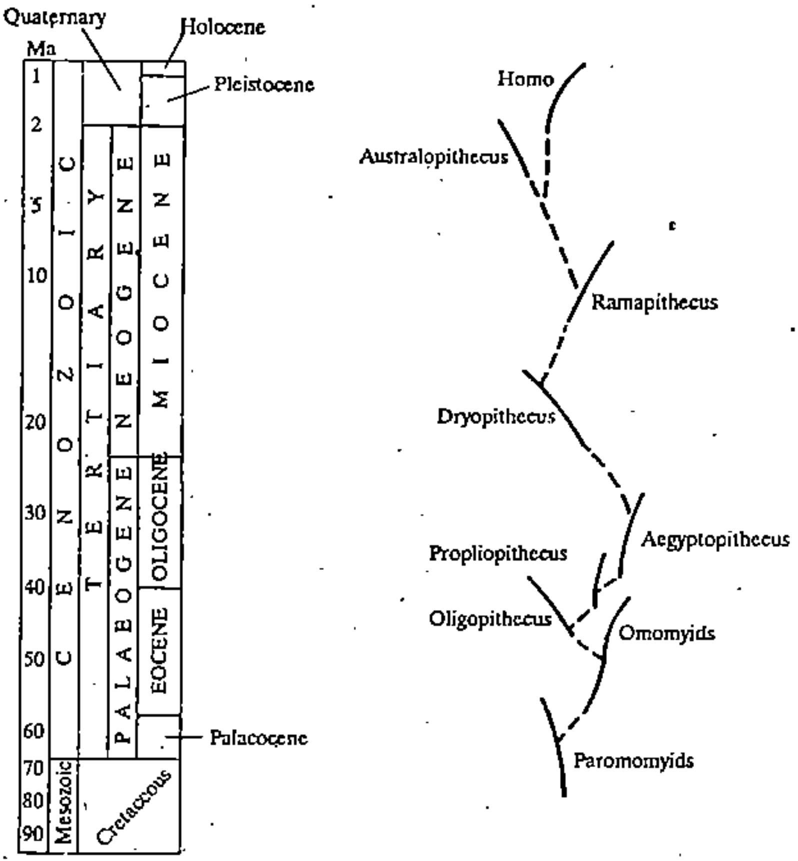

चित्र 4.51: जीवाश्म होमोनिडों के बनने की दिशा में विभिन्न टेक्सॉनों का वितरण एवं उनका परिकल्पित जातिवृत्तीय वृक्ष।

आधुनिक मानव को जीनस होमों **(Homo)** में रखा जाता है। जीनस होमों का विकास लगभग 5,00,000 वर्ष पहले हुआ। जावा-मानव होमो का पहला जीवाश्म था जिसकी खोज जावा में हुई थी। जावा-मानव को होमो इरेक्टस **(Homo erectus)** में वर्गीकृत किया जा सकता है (मूलत: इसका वर्णन **पिथेकैंथ्रोपस** इरेक्टस, **Pithecanthropus erectus** के नाम से किया गया था)। इन जीवाश्मों के नमूने एशिया, अफ्रीका तथा यूरोप में पाए गए हैं। बाद में इसी प्रकार के जीवाश्म अफ्रीका तथा बीजिंग (पुराना पेकिंग) में भी पाए गए। इन सभी जीवाश्मों को एक ही स्पीशीज़ होमो इरेक्टस में शामिल कर लिया गया है। होमो इरेक्टस सीधा खड़ा होता था और वह आस्ट्रेलोपिथेकस से थोड़ा सा ज्यादा 5 फुट ऊँचा था। जावा मानव का मस्तिष्क-कोश अपेक्षाकृत बड़ा था। मानव का अधिक आधुनिक पूर्वज, नीएंडरथल मानव **(neanderthal man)** को माना गया है। यह मानव समूचे यूरोप में तथा एशिया एवं अफ्रीका के कुछ भागों में लगभग 1,60,000 वर्ष पूर्व से लेकर 60,000 वर्ष पूर्व तक रहता था। हो सकता है कि यह मानव या तो **H. erectus** की ही किसी उपजाति का एक सदस्य रहा हो या फिर हो सकता है कि यह होमो जीनस की ही कोई अलग नई स्पीशीज़ हो। जान पड़ता है कि यह मानव कठिन ठंडे पर्यावरणों में रहता था और वहीं पर फला-फूला (चित्र 4.52)। प्रमाणों से संकेत मिलता है कि यह मानव अपने भोजन के लिए जानवरों को मारने में शस्त्रों का उपयोग करता था। उसके रहन-सहन में किसी प्रकार की संस्कृति का विकास हो गया था और लगता है कि वह बस यूं ही नहीं वरन् किसी खास रस्म-रिवाज के अनुसार अपने मृत संबंधियों को ज़मीन में दफ़नाता था क्योंकि इस प्रकार के दफ़न-स्थानों से ऐसा प्रमाण मिलता है। इसका मस्तिष्क आज के मानव के मस्तिष्क से अपेक्षाकृत बड़ा था तथा पता चलता है कि वह बुद्धिमान भी था। सहसा 40,000 से 30,000 साल पहले नीएंडरथल मानव का विलोप हो गया। कुछ लेखक नीएंडरथल मानव को होमो इरेक्टस तथा आधुनिक मानव होमो सेपिएन्स के बीच की एक पृथक् स्पीशीज़ मानते हैं। होमो सेपिएन्स के विकास में इसी नीएंडरथल मानव को अगला मानव माना जाता है। नीएंडरथल के बाद क्रोमैग्नॉन मानव **(Cromagnon man)** आया। क्रोमैग्नॉन मानव साइज़ तथा सामान्य देह-गठन में आज के मानव जैसा था। लगता है वह एक जबर्दस्त शिकारी था। उसने भाले-बर्छी और चाकू जैसे पत्थर के बने शस्त्रों तथा औज़ारों का इस्तेमाल किया। उसने चित्र बनाने की कला विकसित कर ली थी। उसने अपनी चित्रांकन क्षमता के अनेक प्रमाण छोड़े हैं जो समूचे फ़्रांस तथा स्पेन की गुफ़ाओं की दीवारों पर जानवरों के चित्रों के रूप में आज भी मौजूद हैं।

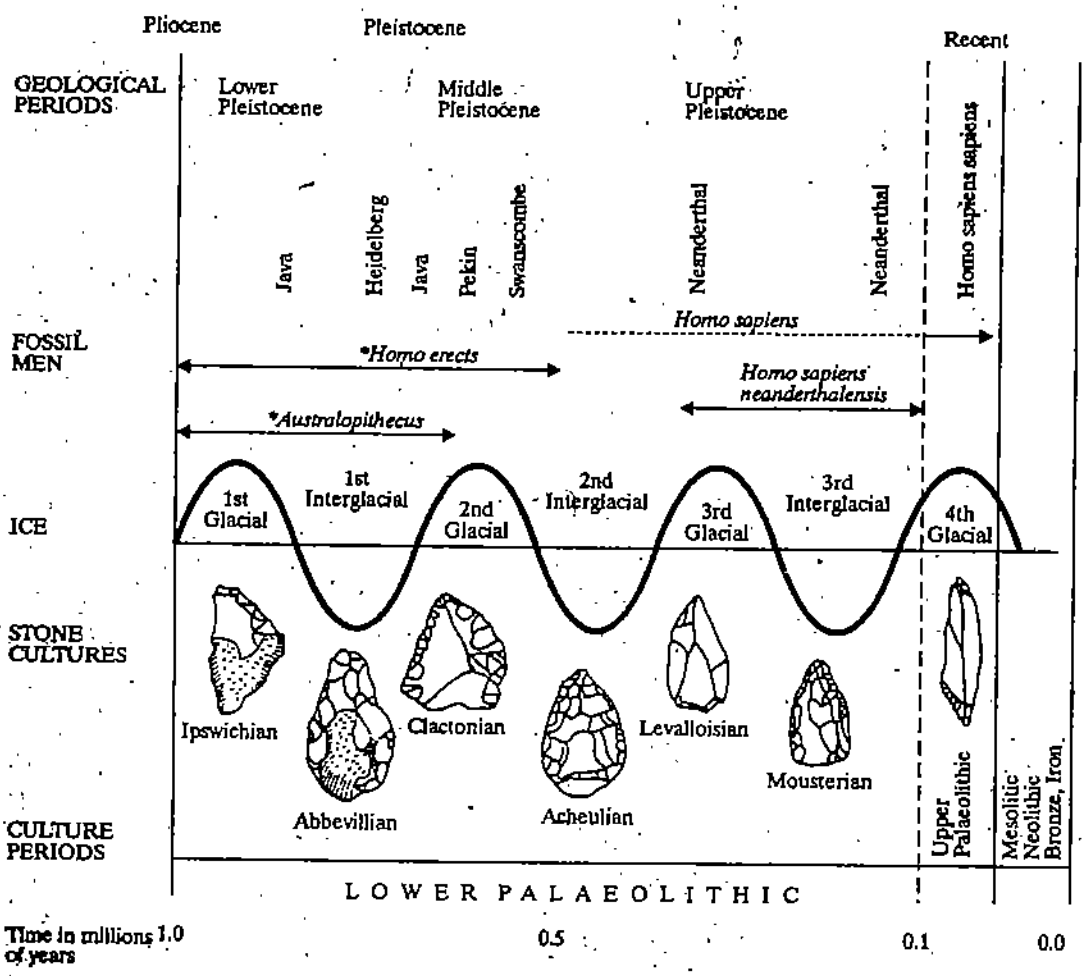

चित्र 4.52: प्लीस्टोसीन युग और उसमें पायी गयी, मानव सांस्कृतिक विकास की कुछ अवस्थाओं का आरेख।

गुफावासी शिकारी कोमैग्नॉन मानव आगे चलकर एक ग्रामवासी कृषक अर्थात् आधुनिक मानव में विकसित हो गया। यह है मानव के विकास की एक संक्षिप्त गाथा। प्रमाण अभी थोड़े हैं। समूचे कंकाल के ज़ीवाश्म अभी नहीं मिले हैं। टूटे जबड़े, कपाल, दांत तथा जीवाश्मों के रूप में मिले प्रमाणों को जोड़-तोड़ कर जीवाश्म व्यक्तियों के शरीर की पुनर्रचना की गयी है और इस प्रकार मानव के विकास की दिशा-रेखाएं पता लगायी गयी हैं। इन अध्ययनों से पता चलता है कि **मानव का विकास न केवल अतीत की ही एक उपलब्धि है वरन भविष्य के लिए भी एक प्रबल आशा है।** देखना है कि मानव इस आशा को पूरा करेगा या अन्य प्राणियों की तरह किसी बेहतर स्पीशीज़ के लिए मार्ग बनाता हुआ स्वयं नष्ट हो जाएगा।

इस प्रकार मानव का आरंभिक इतिहास असम्पूर्ण है। यह आधा प्रमाण है और आधा एक कल्पना। लगता है वह आरम्भ में अफ्रीका में समूहों में रहता था जैसा कि आज भी वहां के कुछ मूल निवासी जनजातियों के रूप में रहते चले आ रहे हैं। आदि मानव बेहतर अवसरों की तलाश में अन्य महाद्वीपों में फैल गया।

अनुमान लगाया गया है कि करीब 10 लाख वर्ष पूर्व मानव की कुल आबादी मात्र 12,000 के रही होगी। सभ्यता के उदय काल के आते-आते यानि लगभग पिछले 12,000 वर्ष के लगभग, परिवार की संकल्पना ने जन्म लिया। आज **होमो सेपिएन्स** की चार उपजातियां मानी जाती हैं। हालांकि जनसंख्या जीव विज्ञानी डा० डॉब्जांस्की ने सत्तरह उपजातियां बतायी हैं। चार उपजातियां इस प्रकार है। **ऑस्ट्रेलॉइड (Australoid), कॉकेशॉइड (Caucasoid), मंगोलॉइड (Mongoloid)** तथा नीग्रोइड **(Negroid)** ऑस्ट्रेलॉइड में घुंघराले बाल, मामूली सी चौड़ीं नाक और भूरी त्वचा होती है। कॉकेशॉइड में लहरदार बाल, संकरी नाक और गोरी त्वचा होती है। मंगोलॉइड में सीधे बाल, मामूली सी चौड़ी नाक और पीली-भूरी त्वचा होती हैं। नीग्रोइडों में उलझे उबड़-खाबड़ ऊन जैसे बाल, चौड़ी नाक तथा काली त्वचा होती है। तो इस प्रकार मानव की उपजातियों का त्वचा के रंग, बालों का गठन तथा चेहरे की बनावट के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है।

मानव स्पीशीज़ अभी अपने युवा काल में ही है। यदि अपने ग्रह पृथ्वी के आयु काल को घंटों में मापें और उसे 24 घंटे की अवधि का कहे तो उसमें मानव अभी पिछले पांच मिनट पहले ही प्रकट हुआ है। मानव अपने पर्यावरण में सुअनुकूलित जान पड़ता है। इससे उसके विकास की विस्मयकारी गति का पता चलता है। उसमें कारण जानने की क्षमता आ गयी है और उसकी सबसे बड़ी सम्पत्ति है जिज्ञासा। उसके ये ही गुण आज भी उसके साथ सामने आकर खड़े हो जाने चाहिए ताकि वे व्यापक विनाशकारी शस्त्रों पर, पर्यावरण को प्रदूषित करने वाले उद्योगों पर, अनियंत्रित जनसंख्या वृद्धि एवं कभी न थमने वाले प्रकृति-विनाश पर, और अपने परिवेश के साथ इतना अधिक हस्तक्षेप करने पर नियंत्रण कर सके यानि उन समस्त कार्य कलापों पर नियंत्रण कर सकें जो प्रकृति-विरोधी हैं। यदि आज का मानव सावधान नहीं रहा तो हो सकता है कि वह भी एक दिन विलोप के गढ़े में जा गिरेगा।

यदि किसी भी प्राणि-स्पीशीज़ को अपना अस्तित्व बनाए रखना है तो उसे पर्याप्त आहार, तथा शत्रुओं एवं प्रतिस्पर्धा से सुरक्षा चाहिए। मानव के मामले में आज उसकी तात्कालिक आवश्यकताएं हैं तेज़ी से बढ़ती जाती जनसंख्या को नियंत्रित करना, अधिक आहार पैदा करना, नाभिकीय शस्त्रों एवं उन रोग जनक जीवों पर नियंत्रण पाना है जो न केवल स्वयं मानव जीव के लिए वरन् पृथ्वी के समस्त जीवों के अस्तित्व के लिए एक ख़तरा है। उसे पर्यावरण के साथ ताल-मेल मिलाकर जीना सीखना होगा। मानव को अन्य जीवों को भी जीवित बने रहने देना सीखना होगा। उसे महसूस करना होगा कि अन्य जीवों को भी जीने का, अगर ज़्यादा नहीं तो उतना ही अधिकार है जितना उसे स्वयं अपने को है। शांतिपूर्ण सहअस्तित्व का दर्शन केवल मानवों तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए वरन् समस्त सजीव सृष्टि भी उसमें शामिल होनी चाहिए।

बोध प्रश्न 3

1. वर्ग अ में दिए गए स्तनियों को वर्ग ब में दिए गए उनके आदितम पूर्वजों के नामों से मिलाइए:-

वर्ग अ	वर्ग ब
(i) मानव	(क) *इओहिप्पस*
(ii) ऊँट	(ख) *प्रोकौंसल*
(iii) घोड़ा	(ग) *प्रोटाइलोपस*
(iv) हाथी	(घ) *मीरीथीरियम*

2. नीचे मानव के विभिन्न जीवाश्म पूर्वजों के नाम दिए गए हैं। इन्हें आदितम से प्रारंभ करके मानव-विकास में एक के बाद एक प्रकट होने के सही क्रम में लिखिए:-

   होमो सैपिएंस (Homo sapiens)

   होमो इरेक्टस (Homo erectus)

   रामापिथेकस (Ramapithecus)

   अस्ट्रैलोपिथेकस (Australopithecus)

   प्रोकौंसल (Proconsul)

   क्रोमैग्नॉन (Cromagnon man)

   निएंडर्थल मानव (Neanderthal man)

3. सरीसृपों का वह कौन सा संभावित वर्ग है जिससे स्तनियों का विकास हुआ है? कोष्ठकों में दिए गए नामों में से सही नाम चुनिए। (क्रोकोडीलिया, लैसर्टीलिया, सिनैप्सिडा)

4. कोष्ठकों में दी गयी सूची में से एक नाम छांटकर अभी तक के ज्ञात आदितम स्तनी-सदृश सरीसृप का नाम बताइए (ऑर्निथोरिंकस, ईओहिप्पस, साइनोग्नैथस)

5. स्तनियों के उस आदिम वर्ग पर सही का निशान लगाइए जिसे सरीसृप और साथ ही साथ स्तनी के भी लक्षण पाए जाते हैं (मिटाथीरिया, यूथीरिया, प्रोटोथीरिया)

4.5 भारत की संकटग्रस्त स्पीशीज़

हमारे इस ग्रह पृथ्वी पर मिट्टी, जंगल, पानी, वन्य जीवन तथा खनिजों जैसे संसाधनों की भरपूर मात्रा पायी जाती है। इससे इस ग्रह पर जीवन के उद्भव, उसके विकास एवं उसके प्रसार में सहायता मिली है। अधिसंख्य जीवों ने इन प्राकृतिक संसाधनों को अपने अस्तित्व, उत्तरजीविता और अपनी पीढ़ी को आगे चलाने भर के लिए ही इस्तेमाल किया है। परंतु पृथ्वी पर मानव के प्रकट होने के बाद से यह सब बदल गया है। निरंतर लाखों-लाखों की संख्या में बढ़ती जाती हुई जनसंख्या को आहार प्राप्त कराने, उन्हें आवास तथा कपड़ा उपलब्ध कराने के लिए इन प्राकृतिक संसाधनों का अतिशोषण किया जा रहा है। मानव जनसंख्या तथा प्राकृतिक संसाधनों के पनपने-बढ़ने के बीच व्युत्क्रमी (उल्टा) संबंध है। मानव जनसंख्या लगातार बढ़ती जा रही है। आवासों का व्यापक विनाश होता जा रहा है। और जो कुछ बचा भी रह जाता है वह प्रदूषित हो रहा है। जंगल वन्य जीव-जन्तुओं के लिए न केवल पदार्थों एवं आवास का स्रोत ही है वरन् समस्त प्रकृति का भी जीवन और प्राण है। विशाल जल संहतियों के बाद जंगल ही हमारे पर्यावरण का मुख्य भाग है। वन एक सम्पदा हैं। वनों से वर्षा का नियमन होता है और इस प्रकार वे परोक्ष रूप में पृथ्वी के जल संसाधन हैं। वन मृदा को टिकाए रखते हैं और इस प्रकार अपरदन (erosion) को रोकते हैं। मानव जन-संख्या की वृद्धि के अलावा स्पीशीज़ की अत्यधिक संख्या बढ़ते जाना (जनन शीलता), उत्प्रवास, संसाधनों के लिए प्रतिस्पर्धा, परभक्षण, परजीवी तथा विभिन्न रोग जैसे घनत्व-निर्भर कारक समष्टियों का नियंत्रण करते हैं एवं स्पीशीज़ के विस्तार के अस्तित्व के लिए खतरा बनते हैं। प्रतिस्पर्धा एक ही स्पीशीज़ की सदस्य-व्यष्टियों के बीच हो सकती है अथवा विभिन्न स्पीशीज़ की व्यष्टियों के बीच। वन्य जीवन के लिए खतरा बनने वाले कारकों पर विस्तृत चर्चा पारिस्थिति पाठ्यक्रम में की जा चुकी है। इस विषय में और अधिक जानकारी के लिए विद्यार्थियों को ब्लाक 4 इकाई 14 के LSE-02 को देखने की सलाह दी जाती है।

वन्य जीवन का मुख्य रचक स्तनियों की स्पीशीज़ है, इनमें परभक्षी है, आखेट प्राणी हैं तथा कुछ दुर्लभ स्पीशीज़ है जैसे कि हाथी, गैंडे, पतला लोरिस, ऊदबिलाव आदि। ये सब पृथ्वी की जीव सृष्टि में सौंदर्य एवं भव्यता प्रदान करते हैं तथा जीवन को जीने योग्य बनाते हैं। ये पृथ्वी पर विद्यमान जीवन में विविधता के साथ एक सार्थकता भी लाते हैं। ये हमें स्वयं अपने को समझने में मदद करते हैं। प्राकृतिक साधनों को दो वर्गों में बांटा जाता है: (i) नवीकरणीय संसाधन (renewable resources) जैसे कि एक तो पादपजात तथा प्राणिजात जो एक साथ मिलकर जैविक कारक बनाते हैं और दूसरे मृदा एवं जल जो भौतिक कारक हैं, तथा (ii) अनवीकरणीय (non-renewable) संसाधन जैसे कि खनिज।

नवीकरणीय संसाधन एक दूसरे से बड़े जटिल रूप में संबंधित रहते हैं और इन्हीं से बनते हैं खाद्य-जाल तथा खाद्य-शृंखलाएं, संख्याओं, ऊर्जा, उत्पादकों एवं उपभोक्ताओं के पिरामिड। किसी भी एक स्तर पर होने वाली गड़बड़ी पूरी शृंखला को विक्षुब्ध कर देती है तथा पिरामिडों को तोड़-फोड़ देती है। अधिसंख्य जीव इन प्राकृतिक संसाधनों को अपने अस्तित्व, उत्तर जीविता तथा निरंतरता के लिए ही उपयोग किया करते हैं। नवीकरणीय संसाधनों का उचित प्रबंधन इस बात में हैं कि इन्हें सोच-समझ कर इस स्तर तक इस्तेमाल किया जाए कि इनका नवीकरण लगातार होता रह सके।

मानव के आगमन के उपरांत एक आमूल परिवर्तन हुआ, एक ऐसा परिवर्तन जो अच्छे से बुरे की ओर ले जाने वाला था। वन प्राथमिक नवीकरणीय संसाधन हैं। ये वन दुर्लभ मूल्यवान प्राणी तथा पादप स्पीशीज़ के आवास होते थे। विशाल जल राशि के बाद हमारे पर्यावरण का मुख्य भाग ये वन ही हैं।

खेती के लिए भूमि प्राप्त करने तथा नगर विस्तार एवं विकास कार्यों के लिए लगातार जंगलों का अतिक्रमण किया जाता रहा है। इन दो मानव क्रियाकलापों ने भारत में वन्य जीवन के अस्तित्व मात्र को ही ख़तरा पैदा कर दिया है और एक प्रकार से इनसे स्वयं मानव के अस्तित्व को भी खतरा पैदा होने लगा है। यही दशा संसार में हर तरफ़ है। इससे आवास नष्ट हो रहे हैं तथा जलवायु गड़बड़ा रही है। वर्षा या तो बहुत ज़्यादा हो रही है या बहुत कम जिसके फलस्वरूप या तो बाढ़ आ रही है या अकाल पड़ रहे हैं। भारत के उत्तर-पूर्व भाग तथा तटीय दक्षिण भारत में बार बार आने वाली बाढ़ों से एक ओर वन नष्ट हो रहे हैं तो दूसरी ओर कृषि फ़सले भी बरबाद हो रही हैं। उत्तर अफ़्रीका में लगातार होते हुए अकालों से लाखों-लाखो लोगों की मौत का कारण भी इसी प्रकार के परिवर्तन रहे हैं। भारत में इसका मुख्य कारण वनोन्मूलन (deforestation) है तथा हिमालय की निचली पहाड़ियों एवं पश्चिमी घाटों में

वृक्षों का काटा जाना रहा है। मानसून या तो होते नहीं या दोषपूर्ण होते हैं जिससे अकाल पड़ते अथवा वन्य जीवन को अपरिहार्य कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है जिससे उनके अस्तित्व को ही ख़तरा पैदा हो रहा है। हाथियों को उनके हाथी दांत के लिए चोरी छुपे मारा जाता है या शिकारी उन्हें आखेट के नाम पर मार डालते हैं। गैंडों को उनके सींग के लिए तथा पतले लोरिस को उसकी आंखों के लिए मारा जाता है, कहा जाता है कि इन दो जानवरों के ये भाग कामोत्तेजक होते हैं (अर्थात कामेच्छा एवं काम क्रिया को बढ़ाते हैं)। मनोरंजन आखेट के नाम में परभक्षी जानवरों का शिकार किया जाता है। कागज़ पर बने तमाम कानूनों के बावजूद जानवरों का चोरी-छुपे मारा जाना लगातार जारी है। अनेक स्पीशीज़ निकट अतीत में विलुप्त हो चुकी हैं तथा और भी अनेक विलुप्त होने के कगार पर हैं। वन्य जीवन एक प्राकृतिक सम्पदा है तथा किसी भी प्रकृति प्रेमी के लिए आनन्द और सुख की अनुभूति का एक स्रोत है। किसी समय भारत में वन्य जीवन शान की चरम सीमा पर था। ये प्राणी जंगलों में स्वच्छंद घूमते विचरते थे। स्थानीय लोग एवं बाहर से आने वाले दोनों ही इन प्राणियों की प्रशंसा करते थे। रुडयार्ड किप्लिंग को ये वन्य प्राणी इतने लुभाए और वह इनसे इतना प्रभावित हुआ कि उसने वन्य जीवन के विषय में इतना ढेर सारा लिख डाला। भारतीयों को इन प्राणियों का गर्व होना चाहिए। मगर अफ़सोस हमें इनके लिए कोई दर्द नहीं रहा और हमारे इन वन्य प्राणियों का क्या होगा इसकी हमें परवाह ही नहीं। बादशाहों और शहज़ादों ने आखेट के नाम पर मात्र अपने मनोरंजन के लिए या स्वतंत्रता पूर्व युग में कदाचित अंग्रेज़ शासकों को प्रसन्न करने के लिए इनका शिकार किया था। पर्यटन को बढ़ावा देने के नाम पर प्राणियों के आवास को विक्षुब्ध करना आज भी लगातार जारी है। यह ठीक है कि वन्य जीवन के लिए प्राकृतिक घर प्रदान करने के वास्ते अभ्यारण्य और सफ़ारी बने हैं, मगर इससे समस्या का समाधान नहीं हुआ है। इससे सघनता (सिमटती जाती जगह में भीड़ की स्थिति) आ गयी है और जानवरी की जनन कार्यिकी में व्यवधान आया है जिससे प्रेरित बंध्यता आ गयी है। इसके परिणास्वरूप वन्य प्राणियों की संख्या घटती जा रही है। आज का संरक्षण बस उस थोड़े बहुत का ही संरक्षण है जो इस तमाम मानव क्रिया कलाप के बाद बचा खुचा रह गया है। इसका उद्देश्य इन प्राणियों की संख्या को प्राकृतिक रूप में बढ़ाया जाना होना चाहिए और उन सभी को सुरक्षा प्रदान किया जाना होना चाहिए।

नीचे दी गयी एक छोटी सी सूची में भारत की कुछ महत्वपूर्ण संकटग्रस्त स्पीशीज़ गिनाई गयी हैं। (मॉर्गिज़, स्विटज़रलैंड में स्थित "इंटरनेशनल यूनियन फ़ॉर कन्ज़र्वेशन ऑफ़ नेचर (IUCN)" द्वारा जारी "रेड डैटा बुक" से)

कार्निवोर-प्राणी

1. बादली तेंदुआ (*Neofelis nebulosa*)
2. हिम तेंदुआ

   ये दोनों हिमालय तथा कश्मीर के आवास के हैं जो किसी समय बहुतायत से होते थे, मगर घटते-घटते आज कुछ थोड़े से ही शेष रह गए हैं।

3. बाघ (*Panthera tigris*), बाघ परियोजना से इनकी नस्ल कुछ बढ़ गयी जान पड़ती है।
4. बबर शेर (*Panthera leo*) आज केवल गुजरात के गीर जंगलों तक ही सीमित हैं।
5. "सिवेट" बिल्ली (विवेरिडी फैमिली), इसे पकड़ा जाता और ऐरोमैटिक (सुगंध संबंधी) उद्योग में काम में लाने के लिए इसकी गंध ग्रंथियों को प्राप्त करने के वास्ते इसे मारा जाता है।

अंगुलेट-प्राणी

1. गैंडा (राइनोसेरॉस यूनिकॉर्निस, *Rhinoceros unicornis*) एक सींग वाला गैंडा आज केवल असम में काज़िरंगा अभ्यारण्य में ही पाया जाता है। हर साल आने वाली भीषण बाढ़ से इसे बहुत मुसीबतें झेलनी पड़ती हैं।
2. भारतीय जंगली गधा (ईक्वस हेमिओनस, *Equus hemionus*) यह किसी समय गुजरात में भारत-पाकिस्तान सीमा के निकट कच्छ में बड़ी संख्या में पाया जाता था।
3. हंगल कश्मीर का बारहसिंगा (सर्वस ऐलीफ़ेस, *Cervus elephas*) जो केवल दचीगम कश्मीर में ही पाया जाता है।

4. भूरे सींग वाला हिरण (*सांगल, Sangal*) आज केवल मणिपुर में लॉगटेक झील के क्षेत्र में मात्र 14 वर्ग किलोमीटर के दलदली इलाके में ही पाया जाता है।

5. काला हिरन (Black buck) (*ऐंटिलोपा सर्विकैप्रा, Antilopa cervicapra*) दक्षिण भारत के मैदानी इलाकों में पाया जाता है।

6. कस्तूरी मृग (Musk deer) (*मॉस्कस मॉस्किफ़ेरस, Moschus moschiferus*) हिमालय में पाया जाता है।

7. नीलगिरी त्हार (*हेमिट्रैगस हाइलोक्रियस, Hemitragus hylocrius*) यह केरल के इवैविकोलम रिज़र्व के टाड्रा में पाया जाता हैं।

8. हिमालयी त्हार (*हेमिट्रैगस जेमलेहिकस, Hemitragus jemlahicus*) यह किसी समय कश्मीर से भूटान तक व्यापक रूप में पाया जाता था।

9. दलदल मृग (*सर्वस दुवर्केलि, Cervus duvarkeli*), यह नेपाल में उत्तर प्रदेश के दुधवा रिज़र्व में एवं ऊपरी असम के काज़िरंगा अभ्यारण्य में पाया जाता है।

10. हिमालयी मारखर (Himalayan markhar) (*कैप्रा फ़ाल्कोनिरी, Capra falconiri*), यह एक पर्वतीय बकरी है जो उत्तर पश्चिम हिमालय में पायी जाती है।

11. भारतीय जलभैंसा (Indian water buffalo) (*ब्यूबैलस ब्यूबैलिस Bubalus bubalis*). किसी समय असम, उड़ीसा के कुछ भागों, तथा मध्य प्रदेश के दलदलों में बहुतायत से पाया जाता था।

12. गौड़ (Indian bison) इसे "व्हाइट सॉक्स", "White socks" भी कहा जाता है क्योंकि इसके पैरों के टखने वाला भाग सफ़ेद रंग का होता है। किसी ज़माने में पश्चिमी घाटों में भरपूर पाया जाता था।

अन्य प्राणी

1. "सल्लू सांप" (Pangolins) यानि शल्की चींटीखोर (scaly ant-eater), अब भी काफ़ी व्यापक पैमाने पर पाए जाते हैं।
2. "लाएन टेल्ड मैकाक, Lion-tailed macaque" नामक बंदर पश्चिमी घाट में पाया जाता है।
3. मलाबार की उड़न गिलहरी केरल तथा पश्चिमी घाट में पायी जाती हैं।
4. पतला लोरिस (Slender loris) केवल दक्षिण भारत में ही पाया जाता हैं।

बोध प्रश्न 4

(i) प्राकृतिक संसाधनों की दो श्रेणियों के नाम बताइए।

....

....

(ii) नीचे दी गयी स्तनियों की सूची में से संकटग्रस्त स्पीशीज़ पर सही का निशान लगाइए।

क.	वृषभ	च.	पतला लोरिस
ख.	ऊँट	छ.	भेड़
ग.	बाघ	ज.	कुत्ता
घ.	गैंडा	झ.	काला हिरन

4.6 सारांश

स्तनी-प्राणी कशेरुकियों का एक उच्च विकसित वर्ग है। ये शिशुप्रज होते हैं। ये बच्चों को जन्म देते हैं और उन्हें अपना दूध पिलाते हैं, यह दूध एक विशेष प्रकार की ग्रंथियों का स्राव होता है, इन ग्रंथियों को स्तन ग्रंथियां (mammary glands) कहते हैं और इसी आधार पर इस वर्ग का यह नाम स्तनी अर्थात्

Mammals पड़ा है। ये उष्ण रक्त तापी होते हैं। इनकी देह पर बाल होते हैं, ये बाल एपिडर्मिसी बाह्यकंकाल हैं। त्वचा में स्वेद ग्रंथियां तथा तैल ग्रंथियां होती हैं। स्वेद ग्रंथियों से पसीना निकलता है। यह एक प्रकार से उत्सर्जन विधि भी है तथा गर्म मौसम में शरीर को ठंडा रखने की एक विधि भी। इनके पैर चलने, दौड़ने, तैरने तथा उड़ने के लिए तरह-तरह से रूपांतरित होते हैं। ये व्यापक रूप से सभी महाद्वीपों एवं सभी समुद्रों में पाए जाते हैं। स्तनियों के दांत विषमदंती, गर्तदंती तथा द्विबारदंती होते हैं। करोटि द्विअस्थिकंदीय होती है। निचला जबड़ा केवल एक ही हड्डी का बना होता है तथा वह करोटि के साथ सीधा ही संधिस्थ रहता है। मध्य कान में तीन जोड़ी कर्णास्थिकाएं होती हैं। हृदय में चार कक्ष होते हैं तथा इसमें द्विवलनी एवं त्रिवलनी वाल्व होते हैं जो रक्त को क्रमश: बायें तथा दाहिने निलयों में से उन्हीं दिशाओं के अलिंदों में वापिस आने से रोकते हैं। केवल एक महाधमनी चाप बायीं महाधमनी चाप होती है। स्तनियों में प्रोटोथीरिया सबसे आदिम तथा प्राइमेट सबसे उन्नत वर्ग हैं। ह्वेलें विशालतम जीवित जल प्राणी हैं तथा हाथी विशालतम जीवित थल प्राणी हैं। मानव के एकतर्फ़ा और स्वार्थपूर्ण व्यवहार ने अनेक प्राणियों को अथाह मुसीबतें पहुंचायी हैं और पर्यावरण को गडबड़ा दिया है जिसके फलस्वरूप अनेक स्पीशीज़ विलुप्त हो गयी हैं अथवा विलुप्त होने की कगार पर हैं। यदि मानव ने अपने तौर-तरीके ठीक नहीं किए तो स्वयं उसका अपना अस्तित्व भी ख़तरे में पड़ने वाला है।

4.7 अंत में कुछ प्रश्न

1. हृदय तथा करोटि के संदर्भ में स्तनियों के लक्षण बताइए।

   ....
   ....
   ....
   ....
   ....
   ....

2. स्तनीय दांत की संरचना का वर्णन कीजिए तथा उसके स्तनीय लक्षण बताइए।

   ....
   ....
   ....
   ....
   ....
   ....

3. आपके अपने दैनिक जीवन में दीख पड़ने वाले कुछ स्तनियों के नाम लिखिए और वे किन किन ऑर्डरों में आते हैं उनके नाम लिखिए।

   ....
   ....
   ....
   ....

....

....

....

....

4. चमगादड़ों में उड़ने से संबंधित अनुकूलनों का वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

....

....

5. वर्ग अ में दिए गए स्तनियों के नामों को वर्ग ब में दिए गए लक्षणों में मिलाइए:-

वर्ग अ	वर्ग ब
(i). ऊंट	क. दंतावकाश
(ii). खरगोश	ख. अवस्कर
(iii). एकिड्ना	ग. प्रतिध्वनि निर्धारण
(iv). चमगादड़	घ. ऊन
(v). भेड़	च. कूबड़
(vi). चिम्पैंज़ी	छ. समूर
(vii). मिंक	ज. ब्लबर (तिमिवसा)
(viii). ह्वेल	झ. भुजाओं द्वारा झूल कर गति करना

6. बताइए कि निम्न स्तनी किस उपयोग में आते हैं:-

(i). ह्वेल	(ii). हाथी	(iii). भेड़	(iv). गाय
(v). घोड़ा	(vi). ऊंट	(vii). गिनिपिग	(viii). गैंडा

....

....

....

....

....

....

....

....

7. शीतनिष्क्रियता की प्रक्रिया को उदाहरण देकर समझाइए:-

....

....

....

8. स्तनियों की किन्हीं चार संकटग्रस्त स्पीशीज़ के नाम लिखिए:-

....

....

....

....

4.8 उत्तर

बोध प्रश्न

1. (i) क. शरीर पर बाल बने होते हैं
   ख. विषमदंती, गर्तदंती तथा द्विबारदंती दंत विन्यास
   ग. बायीं महाधमनी चाप का पाया जाना
   घ. भ्रूण परिवर्धन में अपरा का बनना

   (ii) 1. ऑस्ट्रेलिया, 2. अमेरिका, 3. असम/भारत, 4. अफ्रीका

   (iii) 1. काइरॉप्टेरा, 2. रोडेंशिया, 3. कार्निवोरा, 4. आर्टियोलेक्टाइला

   (iv) 1. चमगादड़, 2. ह्वेल, 3. चिम्पैंज़ी, 4. मानव

   (v) उपवर्ग I प्रोटोथीरिया, उदा० एकिड्ना तथा प्लेटिपस
   (v) II मेटाथीरिया, उदा० कंगारू तथा ऑपोसम
   (v) III यूथीरिया, उदा० मानव तथा बंदर

2. (i) 1. मानव, 2. कुत्ता, 3. बिल्ली, 4. घोड़ा, 5. गाय, 6. हाथी

   (ii) 1-ख, 2-ग, 3-क

   (iii) 1. खुर, 2. नाखून, 3. नखर, 4. शीतनिष्क्रियता, 5. एपिडर्मिसी

   (iv) 1. गलत, 2. सही, 3. गलत, 4. गलत, 5. सही, 6. सही, 7. गलत, 8. सही, i. गलत

   (v) 1-ग, 2-च, 3-क, 4-ख, 5-घ

3. 1. (i). ख, (ii). ग, (iii). क तथा (iv). घ

   2. *प्रोकौंसल (Proconsul)*
      रामापिथेकस (Ramapithecus)
      अस्ट्रेलोपिथेकस (Australopithecus)
      होमो इरेक्टस (Homo erectus)
      निएंडर्थल मैन (Neanderthal man)
      क्रोमैग्नॉन मैन (Cromagnon man)
      होमो सैपियंस (Homo sapiens)

   3. सिनैप्सिड़ा

   4. सिएनोग्नैथस

   5. प्रोटोथीरिया

4. (i) (क) नवीकरणीय संसाधन : जैविक तथा भौतिक कारक

   (ख) अनवीकरणीय संसाधन : जैसे खनिज

   (ii) घ, च तथा झ

अंत में कुछ प्रश्न

1. हृदय: अलिंद तथा निलय दोनों ही पूरी-पूरी तरह विभाजित होते हैं। अत: स्तनी हृदय चार-कक्षीय हैं। बायें अलिंद तथा बाएं निलय के बीच के छिद्र पर द्विवलनी वाल्व तथा दाहिने अलिंद और दाहिने निलय के बीच त्रिवलनी वाल्व बना होता है। हृदय से केवल एक ही महाधमनी चाप बायीं चाप निकलती है।

अंत:कंकाल: करोटि द्विकंदीय होती है, निचला जबड़ा केवल एक हड्डी डेंटरी का बना होता है, मध्यकान में तीन अस्थिकाएं होती हैं; ऊपरी जबड़ा करोटि से समेकित हो गया है और निचला जबड़ा सीधा करोटि से संधि करता है, बाहरी कान का छिद्र पाया जाना।

2. प्ररूपी स्तनी दांत में दो भाग होते हैं- जबड़े के बाहर उभरा हुआ भाग जिसे शिखर कहते हैं तथा जबड़े के भीतर गढ़े में गड़ा हुआ भाग जिसे जड़ कहते हैं। दांत डेण्टीन का बना होता है। शिखर वाले भाग पर इनैमेल चढ़ा होता है और जड़ वाले भाग पर एक सिमेंट होता है। दांत के मध्य में एक मज्जा गुहा होती है जिसके भीतर रक्त कोशिकाएं, तंत्रिकाएं तथा संयोजी ऊतक होता है।

स्तनियों के दांत विषमदंती, गर्तदंती तथा द्विबारदंती होते हैं। स्तनीय दांत आहार तथा आहार-स्वभावों के अनुसार रूपांतरित हुए होते हैं।

3. गाय, भैंस, भेंड, बकरी - आर्टियोडेक्टाइला
घोड़ा, गधा
बिल्ली और कुत्ते - कार्निवोरा
चूहे - रोडेंशिया
बंदर - प्राइमेट
चमगादड़ - काइरॉप्टेरा

4. चमगादड़ों में पंख होते हैं जो चर्मीय त्वचा के बने होते हैं, यह त्वचा उंगलियों के बीच एवं अग्रपादों तथा पश्चपादों के बीच और पिछले भाग को घेरती हुई फैली होती हैं। यह फैली हुई त्वचा पूंछ को भी शामिल किए हो सकती है या नहीं भी शामिल किए हो सकती। ये पंख उड़ने में सहायता करते हैं। चमगादड़ों में पराध्वनि निर्धारण विकसित हो गया है जिसके द्वारा वे अपने परिवेश को जान सकतीं तथा शिकार को पकड़ सकतीं एवं उड़ते समय बाधाओं से बच सकती हैं।

5. (i). च, (ii). क, (iii). ख, (iv). ग, (v). घ, (vi). झ, (vii). छ, (viii). ज

6. (i). ब्लबर (तिमिवसा) प्राप्त होती है

(ii). हाथी दांत प्राप्त होता है

(iii). ऊन प्राप्त होती है

(iv). दूध मिलता है

(v). सवारी तथा बोझा ढोने के काम आता है

(vi). रेगिस्तान में परिवहन के काम आता है

(vii). प्रयोगशाला में काम आता है

(viii). सींग काम में लाया जाता है

7. शीतनिष्क्रियता ठंडे जाड़ों में अपेक्षाकृत निष्क्रिय अवस्था में समय गुज़ारने को कहते हैं उदाहरण: शीतोष्ण क्षेत्रों की चमगादड़ें तथा गिलहरियां।

8. बादली तेंदुआ, *निओफेलिस निबुलोसा (Neofelis nebulosa)*
गैंडा *राइनसिरॉस यूनिकार्निस (Rhinoceros unicornis)* - पेरिसोडेक्टाइला
काला हिरन *एंटीलोपा सर्वीकैप्रा (Antilopa cervicapra)*
पतला लोरिस *स्लेंडर लोरिस (Slender loris)*

शब्दावली

कूपिका (Alveolus) : कोई छोटी गुहा जैसे कि फेफड़े में पाए जाने वाले सूक्ष्म वायु थैले अथवा किसी संयुक्त ग्रंथि का थैला, अथवा किसी दांत के लिए खांचा।

अपरा पोषिका (Allantois) : ऐम्नियोटों की भ्रूणबाह्य झिल्लियों में से एक जिसका कार्य पक्षियों तथा सरीसृपों में श्वसन एवं उत्सर्जन है और जो अधिकांश स्तनियों में अपरा के बनने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

ऐम्नियॉन (Amnion) : इसे उल्व भी कहते हैं यह सबसे भीतरी भ्रूणबाह्य झिल्ली है जो ऐम्नियोटों में भ्रूण को घेरती हुई एक तरलयुक्त थैली होती है।

गुदा (Anus) : आहार नाल का अंतिम छिद्र

एट्रियम (Atrium) : कोई मुख्य कक्ष, हृदय का मुख्य प्राप्त कर्ता कक्ष, ट्यूनिकेटों तथा सेफैलोकॉर्डेटों में ग्रसनी को घेरती हुई एक बड़ी गुहा

स्वनिलंबता (Autostyly) : जबड़ा निलंबन का एक प्रकार जिसमें हायोमैंडिबुलर एक आलम्बकारी संरचना के रूप में आकार्यात्मक होती है तथा निलंबन के लिए ऊपरी जबड़ा प्रदेश स्वयं ही उत्तरदायी होता है, यह डिप्नोआई में पाया जाता है।

औरिकुलेरिया लार्वा (Auricularia larva) : इकाइनोडर्मों के होलोथ्यूरॉइडिया में पाया जाता है।

बाहुगमन (Brachiation) : एक प्रकार का संचलन जिसमें वृक्षों पर एक टहनी से दूसरी टहनी पर भुजाओं द्वारा झूल-झूल कर चला जाता है, एक विशेष प्रकार का निलंबन संचलन, भुजाओं को झुलाते हुए संचलन।

बाइपिन्नेरिया लार्वा (Bipinnaria larva): ऐस्टेरॉइड इकाइनोडर्मों का मुक्त तैरने वाला सिलियायित लार्वा।

रदनक (Canine) : कृंतकों तथा अग्रचर्वणकों के बीच का नुकीला दांत।

कोरियॉन (Chorion) : इसे जरायु भी कहते हैं। सरीसृपों, पक्षियों तथा स्तनियों में भ्रूण को घेरती हुई दोहरी झिल्ली में से बाहरी झिल्ली। स्तनियों में यह अपरा बनाने में योगदान देती है।

अवस्कर (Cloaca) : वह सम्मिलित कक्ष जिसमें को आहार नाल, उत्सर्गी नलिकाएं तथा जनन नलिकाएं अपनी अपनी अंतर्वस्तुएं निकालती हैं।

डेन्टीन (Dentine) : दांत का हड्डी-जैसा ऊतक जिसका स्रवण ओडोण्टोब्लास्टों से होता है।

डायाफ्राम (Diaphragm) : स्तनियों में उदर और वक्ष गुहाओं के बीच गुंबद सरीखा पेशीय विभाजकपट जिसका कार्य साधारण अंतःश्वासन तथा मलोत्सर्ग में योगदान देना है।

दंतावकाश (Diastemma) : स्तनियों में रदनक और अग्रचर्वणकों के बीच का दंतविहीन खाली स्थान।

प्रतिध्वनिनिर्धारण (Echolocation) : वस्तुओं से परावर्तित ध्वनि पहचान कर वस्तुओं के होने का पता लगाना।

इनैमल (Enamel) : चतुष्पादों तथा उनके तत्काल पूर्वजों में एपिडर्मल कोशिकाओं द्वारा पैदा किया जाने वाला कड़ा, क्रिस्टलीय पदार्थ जो दांत के डेण्टीन पर जम जाता है।

ईओसीन (Eocene) : सीनोज़ोइक कल्प के तृतीयक (टर्शियरी) काल का दूसरा युग।

ग्रसिका (Oesophegus) : आहार नाल का वह भाग जो ग्रसनी तथा आमाशय के बीच होता है।

गवाक्ष (Fenestra) : बड़ा छिद्र अथवा खिड़की, प्रायः किसी हड्डी में अथवा हड्डियों के मध्य।

विषमपालि पुच्छ (Heterocercal tail) : कार्टिलेजी मछलियों (शार्कों और रे) में पाये जाने वाले पुच्छ फिन का प्रकार जिसमें फिन की पालियां असममित होती है, ऐसा कुछ फिन-अरों के लम्बे हो जाने से होता है।

पूर्णनिलंबता (Holostyly) : एक प्रकार का जबड़ा निलंबन जिसमें हायोमैंडिबुलर द्वारा और ऊपरी जबड़े का मस्तिष्क कोश के साथ सीधे संधियुक्त होना, इन दोनों से आलम्ब प्राप्त होता है, यह होलोकेफैलाई में देखा जाता है।

समतापी (Homeotherms) : उष्ण रक्तीय प्राणी जिनमें एक स्थिर देह तापमान रहता है एवं वह परिवेश के तापमान के साथ बदलता नहीं है।

समपालि पुच्छ (Homocercal tail) : पुच्छ पालि का वह प्ररूप जो अधिकतर जीवित अस्थिल मछलियों में पाया जाता है। पूंछ की दोनों पालियां सममित होती हैं और जिन्हें केवल डर्मिसी फ़िन अरों का आलम्ब मिला होता है।

हायोस्टाइली (Hyostyly) : जबड़ा निलंबन का वह प्ररूप जिसमें ऊपरी जबड़े का मस्तिष्क कोश के साथ कोई सीधा संयोजन नहीं होता तथा जबड़ा संधि पूरी तरह हायोमैंडिबुलर हड्डी से ही बनी होती है। अधिकतर आधुनिक मछलियों में पायी जाती है।

गर्भावधि (Gestation) : वह समयावधि जो किसी जनक के शरीर के भीतर निषेचन से लेकर भ्रूण के परिवर्धित होकर उसके जन्म लेने तक की होती है।

वंशवृत्त (Genealogy) : पूर्वज से वंशज तक का हिसाब-किताब, वंशावली की खोज, पूर्ववर्ती स्वरूपों से पौधों अथवा प्राणियों की परिवर्धन रेखा।

कृंतक (Incisor) : स्तनी का कोई एक दांत जो रदनकों के आगे स्थित होता एवं काटने के काम में आता है। ऊपरी कृंतक प्रीमैक्सिला में गड़े होते हैं तथा निचले कृंतक डेण्टरी में लगे होते हैं।

लैबिरिंथोडॉन्ट (Labyrinthodont) : क्रॉसोप्टेरिजियनों से व्युत्पन्न विलुप्त ऐम्फ़िबियनों का एक वर्ग जिनमें दंत-डेंटीन बड़े सम्मिश्र रूप में अंतःवलनित होता है; ऐम्फ़िबियनों के उस वर्ग के "समान" अथवा उससे संबंधित।

पार्श्व रेखा ग्राही (Lateral line receptors) : कुछ खास मछलियों तथा ऐम्फ़िबियनों के पार्श्वों पर बनी यांत्रिक ग्राही कोशिकाओं की पंक्ति। ये ग्राही जल में ध्वनि तथा तरंग क्रिया के लिए संवेदी होते हैं।

लैरिंक्स (Larynx) अथवा स्वर-कोश: श्वास नली के ग्रसनी छिद्रों पर स्थित कार्टिलेजी तत्वों, पेशियों तथा तंतुओं का सम्मिश्र जिसका कार्य छिद्र की सुरक्षा करना है तथा कुछ उदाहरणों में ध्वनि उत्पादन करना है, विशेषकर मनुष्यों में स्वर कोश।

लोफ़ोफोर (Lophophore) : सिलियायित स्पर्शक जो आहार एकत्रित करने में काम आता है।

स्तनी (Mammal) : मैमेलिया क्लास में आने वाला कोई प्राणी। स्तनियों में स्तन ग्रंथियां, बाल, उष्ण देह तथा तीन कर्णास्थिकाएं इंकस, मैलियस और स्टेपीज़ होती हैं।

मार्सुपियल (Marsupial) : स्तनीय आर्डर मार्सुपिऐलिया का कोई एक प्राणी, इस आर्डर में आने वाले प्राणी हैं ऑपोसम, कंगारू तथा वलाबी।

मार्सुपियम (Marsupium) : अधिकतर मार्सुपियलों में पाया जाने वाला उदरीय प्रजनन कोष्ठ जिसके भीतर बच्चे पनपते हैं।

एकमूलोद्भवी (Monophyletic) : ऐसी स्पीशीज़ का समूह जिसमें सब के सब एक समान पूर्वज अथवा एक जनक मूल से व्युत्पन्न हुए है।

चिरडिम्भता (Neoteny) : वह दशा जिसमें कोई जीव लैंगिक परिपक्वता तो प्राप्त कर लेता है मगर साथ ही उसमें लार्वा अथवा बाल्य लक्षण स्थायी रूप में कायम बने रहते हैं।

रात्रिचर (Nocturnal) : रात का अथवा रात से संबंधित; रात्रिक, नैश

ऑक्सिपिटल अस्थिकंद (Occipital condyle) : करोटि के ऑक्सिपिटल प्रदेश की एक संधि-सतह जो ऐटलस से संधि करती है।

अस्थिभवन (Ossification) : ऊतकों में कोलैजन तंतुओं को घेरते हुए खनिज लवणों, कैल्सियम फ़ॉस्फ़ेट तथा कैल्सियम कार्बोनेट का जमाव जिससे ऊतक कड़ा तथा अस्थिभूत हो जाता है।

बहुमूलोद्भवी (Polyphyletic) : एक से अधिक पूर्वज स्रोतों से व्युत्पन्न, एकमूलोद्भवी के विपरीत।

असमतापी (Poikilotherms) : शीत-रक्तीय प्राणी जिनके शरीर का तापमान परिवेश के तापमान के अनुसार बदलता रहता है।

वर्गिकीय शाखा (Taxonomic clade) : कोई टैक्सॉन अथवा अन्य समूह जिसमें एक अकेली स्पीशीज़ अथवा उसके सभी वंशज जातिवृत्तीय वृक्ष पर एक स्पष्ट शाखा का रूप ले लेता है।

टॉर्नेरिया लार्वा (Tornaria larva) : एंटेरॉप्न्यूस्टा का स्वच्छंद तैरने वाला लार्वा जो तैरते समय घूर्णन करता जाता है।

शिशुप्रजता (Vivipary) : ऐसी दशा जिसमें बच्चा वयस्क के शरीर के भीतर काफी अधिक परिवर्धित होकर पैदा होता है।

पंख (Wing) : कोई उपांग जो मुख्य एयरोफ़ॉइल की तरह कार्य करता है, विशेषकर पक्षियों, चिमगादड़ों तथा टेरासौरों के अग्रपाद।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. The Life of Vertebrates, J.Z. Young (Third Edition) ELBS Oxford University Press.
2. The Veterbrates Body, A.S. Romer and T.S. Parson (Sixth Edition) CBS College Publishing.
3. कॉर्डेटा संरचना एवं उद्विकास, डैनिस जेकब, आशा शर्मा, कुमकुम नन्दचहल (1994) रमेश बुक डिपो, जयपुर।

परिशिष्ट I

भूगर्भिय काल तालिका

महाकल्प	कल्प	युग	जैविक घटनाएं	वर्तमान से पूर्व (वर्ष) (B.P.)
सीनोज़ोइक (नूतनजीव)	चतुर्थ	अभिनव अत्यंतनूतन	आधुनिक मानव आदि मानव	11 हजार 17 लाख
	तृतीय	अतिनूतन मध्यनूतन अल्पनूतन आदिनूतन पेलिओसीन	विशाल माँसाहारी चारण स्तनियों की बहुलता ऐप, बंदर, हेल अपरास्तनियों का प्रसारण पहले अपरास्तनी	50 लाख 2 करोड़ 30 लाख 3 करोड़ 80 लाख 5 करोड़ 40 लाख 6 करोड़ 50 लाख
मेसोज़ोइक (मध्यजीवी)	क्रिटेशस		विशाल स्थलीय तथा समुद्री सरीसृपों का चरम विकास जिसके बाद उनका विलोपन हुआ; जिम्नोस्पर्म का ह्रास हुआ तथा पुष्पीय पौधी की उन्नति	13 करोड़ 50 लाख
	जुरैसिक		डाइनोसॉर की बहुलता; प्रथम पक्षी तथा प्रथम स्तनी का उद्भव	19 करोड़ 20 लाख
	ट्राइऐसिक		प्रथम डाइनोसॉर; स्तनी जैसे सरीसृप; पादपों में शंकुवृक्ष प्रभावी थे	23 करोड़
पैलियोज़ोइक (पुराजीवी)	पर्मियन		सरीसृपों का प्रसारण; उभयचरों का विस्थापन; अनेकों समुद्री अकशेरुकियों का विलोपन	28 करोड़
	कार्बनी	पेनसिलवेनियन	प्रथम सरीसृप; विशाल कीट; विशालकाय शंकुवृक्ष वन	32 करोड़
		मिसिसिप्पीयन	उभयचरों का प्रसारण; शार्क मछलियों की बहुलता; स्केल वृक्ष तथा बीज़ फ़र्न की बहुलता	34 करोड़ 50 लाख
	डिवोनी		प्रथम उभयचर; अलवणजली मछलियों की बहुलता; ब्रायोजोअन तथा कोरल (मूंगा)	40 करोड़ 50 लाख
	सिल्यूरियन		प्रथम जबड़ा युक्त मछलियां	43 करोड़

महाकल्प	कल्प	युग	जैविक घटनाएं	वर्तमान से पूर्व (वर्ष) (B.P.)
	ऑर्डोविशन		ऑस्ट्रेकोडर्म-प्रथम कशेरुकि; समुद्री अकशेरुकी की बहुलता; प्रथम स्थलीय पौधे	50 करोड़
	कैम्ब्रियन		अनेकों अकशेरुकियों का उद्‌भव; ट्राइलोबाइट की प्रमुखता थी; समुद्री शैवाल बहुल थे	57-60 करोड़
कैम्ब्रियनपूर्व	कैम्ब्रियनपूर्व		शैवाल के जीवाश्म पाये गये; अन्य जीवाश्म बहुत विरल थे; स्पंज तथा कृमियों के बिलों के प्रमाण मिलते हैं	

परिशिष्ट II

कशेरुकियों का वर्गीकरण

कशेरुकियों के इस वर्गीकरण की रूपरेखा में हमने केवल जीवित फाइलमों का ही उल्लेख किया है।

फ़ाइलम	-	कॉर्डेटा
उपफ़ाइलम	-	यूरोकॉर्डेटा (= ट्यूनिकेटा)
उपफाइलम	-	सेफैलोकॉर्डेटा (= ऐक्रैनिया)
उपफाइलम	-	वर्टिब्रैटा
अधिक्लास	-	एगनैथा (= साइक्लोस्टोमैटा)
समूह	-	नैथोस्टोमैटा
अधिक्लास	-	पिसीज़
क्लास	-	ऐम्फ़िबिया
क्लास	-	रेप्टीलिया
क्लास	-	एवीज़
क्लास	-	मैमेलिया

मछलियों का वर्गीकरण

अधिक्लास	-	एगनैथा
क्लास	-	मिक्सिनी (हैगमीन)
क्लास	-	सेफेलैस्पिडोमॉर्फी (लैम्प्रे)
अधिक्लास	-	पिसीज़
क्लास	-	कॉन्ड्रिक्थीज़
उपक्लास	-	इलास्मोब्रैंकिआइ
ऑडर	-	सिलैकिआइ (शार्क, स्केट, रे)
उपक्लास	-	होलोसेफेलाई (काइमेरा, मूषक मछलियाँ)
क्लास	-	ऑस्टिक्थीज़
उपक्लास	-	सार्कोप्टेरिजिआइ (मासल फिन की मछलियां)
ऑडर	-	क्रॉसोप्टेरिजिआइ (सीलाकैन्थ)
ऑडर	-	डिप्नोआई (फप्फुस मीन)
उपक्लास	-	ऐक्टिनॉप्टेरिजिआई (अर फिन युक्त मछलियां)
अवक्लास	-	कॉन्ड्रोस्टीआइ
ऑडर	-	पॉलिप्टेरीफॉर्मिस (बिचिर)
ऑडर	-	ऐसीपेन्सरीफॉर्मिस (स्टर्जियन, पैडल फिश)
अवक्लास	-	नियोप्टेरीजाई
ऑडर	-	लेपिस्टोफॉर्मिस (गार)
ऑडर	-	ऐमिफॉर्मिस (बोफिन)
डिविज़न	-	टीलियोस्टिआई
अधिऑडर	-	इलोपोमॉर्फा (टार्पोन, ईल)
अधिऑडर	-	ऑस्टिओग्लॉसोमॉर्फा (बोनी टंग)
अधिऑडर	-	क्लूपियोमॉर्फा
अधिऑडर	-	ऑस्टेरिओफाइसी (कैट फिश, तथा मिनो)
अधिऑडर	-	प्रोटैकैन्थोप्टेरिजिआई (ट्राउट, पाइक)
अधिऑडर	-	स्टोमिअटिफॉर्मिस (लाइट फिश)
अधिऑडर	-	स्कोपेलोमॉर्फा (लैंटर्न फिश)
अधिऑडर	-	पैराकैन्थोप्टेरिजिआई (एंग्लर, सकर फिश)
अधिऑडर	-	एकैन्थॉप्टेरिजिआई (आधुनिक मछलियां- पर्च, उड़न-मछली, मलिट, इत्यादि)

उभयचरों का वर्गीकरण

क्लास	– ऐम्फ़िबिया
ऑडर	- ऐन्यूरा (= सैलिएन्शिया) (मेढ़क, टोड)
ऑडर	- कॉडेटा (= यूरोडेला) (सैलामैन्डर)
ऑडर	- जिम्नोफाइओना (= ऐपोडा) (सिसीलियन)

सरीसृपों का वर्गीकरण

क्लास	- रेप्टीलिया
उपक्लास	- ऐनेप्सिडा
ऑडर	- टेस्ट्यूडाइनस (= कीलोनिया) कच्छप गण
उपक्लास	- डाइऐप्सिडा
अधिऑडर	- लेपिडोसौरिया
ऑडर	- स्फेनोडॉन्शिया (स्फीनोडॉन)
ऑडर	- स्क्वैमेटा (सर्प, छिपकली)
अधिऑडर	- आर्कोसौरिया
ऑडर	- क्रोकोडिलिया (नक्रगण - घड़ियाल, मगरमच्छ)

पक्षियों का वर्गीकरण

क्लास	- एवीज
उपक्लास	- आर्किओर्निथीज़ (लुप्त) (*आर्किओप्टेरिक्स*)
उपक्लास	- नियोर्निथीज़
अधिऑडर	- पैलियोग्नैथी
ऑडर	- स्ट्रूथियोनीफॉर्मीज (शुर्तुमुर्ग)
ऑडर	- राइफॉर्मीज (रीआ)
ऑडर	- कैसुअरीफॉर्मीज (कैसुअरी, इमू)
ऑडर	- ऐप्टेरीजीफॉर्मीज़ (कीवी)
ऑडर	- टिनैमीफॉर्मीज (टिनैमू)
अधिऑडर	- नियोग्नैथी
ऑडर	- कुकुलिफॉर्मीज (कोकिल, रोडरनर)
ऑडर	- फैल्कोनिफॉर्मीज (चील, बाज, गिद्ध, कॉडोर)
ऑडर	- गैलीफॉर्मीज (मुर्ग, क्वेल, टर्की, बटेर)
ऑडर	- कोलम्बीफ़ॉर्मीज (कबूतर, फ़ाख़्ता)
ऑडर	- सिटैसीफॉर्मीज (तोते, पैराकीट)
ऑडर	- कोलाइफॉर्मीज (मूषक पक्षी)
ऑडर	- (नीलकंठ, हॉर्नबिल)
ऑडर	- स्ट्रिजीफ़ॉर्मीज (उल्लू)
ऑडर	- कैप्रीमुल्जीफॉर्मीज
ऑडर	- ऐपीडीफॉर्मीज
ऑडर	- ट्रोगोनिफॉर्मीज (ट्रोगन)
ऑडर	- पिसिफ़ॉर्मीज (कटफुडवा, टूकान, पफ पक्षी)
ऑडर	- पैसेरीफॉर्मीज (गायक पक्षी)
ऑडर	- ग्रइफ़ॉर्मीज (सारस, कारण्डव)
ऑडर	- पोडीसिपैडीफॉमिज (पनडुब्बी पक्षी)
ऑडर	- कैरेड्रीफ़ॉर्मीज (घोमरा, टिटिहरी, शुक्तिग्राही गंगाचील)
ऑडर	- फोनिकोप्टेरिफ़ॉर्मीज

ऑडर	-	ऐन्सेरिफ़ॉर्मीज (हंस, बतख, राजहंस)
ऑडर	-	साइकोनाइफ़ॉर्मीज (बक, बिटर्न, बलाक, फ्लेमिंगो, आइबिस, चमस चंचु)
ऑडर	-	पेलिकैनिफ़ॉर्मिज (पेलिकन, गैनट, कोरमोरेन्ट)
ऑडर	-	प्रोसेलेराइफ़ॉर्मीज (एल्बाट्रोस, पेट्रेल)
ऑडर	-	गैविआइफ़ॉर्मीज (लून)
ऑडर	-	स्फेनिसीफ़ॉर्मीज (पेंग्विन)

स्तनधारियों का वर्गीकरण

क्लास	-	मैमेलिया
उपक्लास	-	प्रोटोथीरिया (= मोनोट्रिमेटा) एकिड्ना
उपक्लास	-	मेटाथीरिया (= मार्सूपिएलिया) (प्लैटिपस तथा अन्य शिशुधानी स्तनी)
उपक्लास	-	यूथीरिया (= प्लासेन्टेलिया)
ऑडर	-	इन्सैक्टिवोरा (छछुन्दर, श्रू)
ऑडर	-	मैक्रोस्केलिडिया (गजश्रू)
ऑडर	-	डर्मोप्टेरा (उडन लैमूर)
ऑडर	-	काइरॉप्टेरा (चमगादड़ गण)
ऑडर	-	इडेन्टेटा (अदंतगण - आर्माडिलो)
ऑडर	-	फोलिडोटा (पैन्गोलिन)
ऑडर	-	ट्यूबूलीडेन्टेटा (आर्डवार्क)
ऑडर	-	लैगोमॉर्फा (खरगोश, शश)
ऑडर	-	रोडेन्शिया (कृन्तकगण, गिलहरी, मूषक)
ऑडर	-	सिटेसिया (तिमिगण, व्हेल, डॉलफिन आदि)
ऑडर	-	प्रोबोसीडिया (गज, हाथीगण)
ऑडर	-	साइरेनिया (समुद्री गाय, डूगॉग, मैनेटी)
ऑडर	-	हाइरैकॉइडेया (हाइरैकॉइड)
ऑडर	-	कार्निवोरा (कुत्ते, बिल्ली, शेर, भालू, वीसल इत्यादि)
ऑडर	-	आर्टिओडैक्टाइला (खुर युक्त स्तनी, गाय, भैंस, हरिण, बकरी इत्यादि)
ऑडर	-	पेरिसोडैक्टाइला (घोड़े, जैबरा, गधा, गैंडा)
ऑडर	-	प्राइमेट्स (नर-वानर गण)

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

UGZY -02
प्राणि विविधता - II

खंड

2

कॉर्डेटों का कार्यात्मक शारीर - I

इकाई 5

अध्यावरण 5

इकाई 6

पाचन तंत्र 31

इकाई 7

श्वसन तंत्र 67

इकाई 8

परिसंचरण तंत्र 91

खण्ड 2 कॉर्डेटों का कार्यात्मक शारीर – I

सभी प्राणी अपने जीवन के लिए अनेक निर्णायक अवश्यकताओं की पूर्ति पर निर्भर होते हैं। पोषकों, हार्मोनों तथा अपशिष्टों को कोशिकाओं तक, कोशिकाओं से बाहर और परस्पर कोशिकाओं के बीच लाना-ले जाना होता है। प्राणियों को जहां-तहां चलकर जाना पड़ता है आहार की तलाश में, आश्रय के लिए और अपने मैथुन साथी की तलाश में। आहार को पचाना और स्वांगीकृत किया जाना होता है। कोशिकाओं, ऊतकों तथा अंगो के कार्य करने को समन्वित करना होता है। पर्यावरण के प्रति अनुक्रिया करनी होती है तथा शत्रुओं से बच निकलना अथवा उनसे टक्कर लेना होता है। इनमें से किसी भी ज़रूरत को पूरा करना आसान नहीं है। हर जरूरत को पूरा करने के लिए विशेष अंग एवं कोशिकाएं चाहिए। हर अंग अपने आपमें अकेला जीवित नहीं रह सकता है लेकिन परस्पर मिलकर सब अंग जीवन को सुनिश्चित करते हैं। खण्ड 2 और खण्ड 3 में कोर्डेटों के कार्यात्मक शारीर का तुलनात्मक शैली में वर्णन किया गया है। इस खण्ड में अध्यावरण, पाचन, श्वसन एवं परिसंचरण तंत्रों का वर्णन किया गया है।

इकाई 5. कशेरुकी आकारिकी के एक व्यवस्थित वर्णन का आरम्भ अध्यावरण से किया गया है। इस इकाई में आपको अध्यावरण के भ्रूणीय-उद्‌भव, तथा एपिडर्मिस एवं डर्मिस की संरचना के विषय में बताया गया है। एपिडर्मिस तथा डर्मिस के व्युत्पादों को भी समझाया गया है। आप देखेंगे कि अध्यावरण उनसे कहीं ज्यादा जटिल है जितना कि ऊपरी तौर पर पहली नज़र में जान पड़ता है। मछलियों तथा चतुष्पादों के अध्यावरण का विस्तार से वर्णन किया गया है तथा स्तनियों के अध्यावरण के विशेषीकरण का काफ़ी विस्तार से विवेचन किया गया है।

इकाई 6 पाचन-तंत्र में आप जान सकेंगे कि ऊर्जा तथा खाद्य सामग्री की निरंतर आवश्यकता के कारण कशेरुकियों समेत सभी प्राणियों को आहार प्राप्त करने और आहार के संसाधन के लिए उच्च प्राथमिकता देनी होती है। कशेरुकियों में इस आवश्यकता की पूर्ति एक पाचन तंत्र द्वारा होती है। इस इकाई में कॉर्डेटों के विभिन्न वर्गों में दंत-विन्यास का प्ररूप तथा अशन अनुकूलनों का वर्णन किया गया है। इसमें आप स्तनीय कशेरुकियों के आहार नाल के विकास एवं इन प्राणियों की विविध आहार आदतों से संबंधित संघटनात्मक विभिन्नताओं के विषय में अध्ययन करेगें।

इकाई 7 श्वसन-तंत्र में आप जान सकेंगे कि प्राणियों को खाद्य पदार्थ के संसाधन एवं ऊर्जा प्राप्त करने के लिए ऑक्सीजन की ज़रूरत होती है। इस प्रक्रिया में कार्बन डाइऑक्साइड बनती है जिसे शरीर से बाहर निकालना होता है। निम्नतर कॉर्डेटों तथा मछलियों में यह विनिमय तंत्र गिलों के रूप में होता है। जो स्थल पर रहते हैं और वे जो हवा में उड़ते हैं, उन सब प्राणियों में यह विनिमय तंत्र फेफड़ों में होता है। साथ ही हमने मछलियों में वायु श्वसन के लिए विविध सहायक श्वसन अंगों का तथा मेंढ़कों मे मुख-गुहा श्वसन का भी वर्णन किया है।

इकाई 8 परिसंचरण-तंत्र इस खण्ड की अंतिम इकाई है और इसमें कॉर्डेटों के देह तरलों के परिसंचरण की चर्चा की गयी है। रक्त शरीर में परिसंचरण करता है। हृदय इसे रक्त वाहिकाओं में पम्प करता है, जो विशाखित होती, पुन: विशाखित होती और शरीर की प्रत्येक कोशिका के पास से गुजरती है। आप जानेगें कि कशेरुकी हृदय का विकास किस प्रकार हुआ, और यह भी कि रक्त वाहिकाओं के दो चक्र बनते हैं- एक फुफ्फुस चक्र तथा दूसरा दैहिक चक्र। इसके अलावा पतली दीवार वाली अंतिम सिरों पर बंद सारणियां होती हैं जिनसे लसीका (लिम्फ) तंत्र बनता है और सारे शरीर में व्यापक रूप में छितरायी लसीका ग्रंथिकाए होती हैं जो प्रतिरक्षा तंत्र का महत्वपूर्ण अंश होती हैं।

उद्देश्य

इस खण्ड का अध्ययन करने के बाद आप:

- कशेरुकियों में अध्यावरण का तुलनात्मक वर्णन कर सकेंगे,
- कशेरुकियों में हृदय ही संरचना का तुलनात्मक विवरण प्रस्तुत कर सकेंगे एवं शरीर में तरलों का परिसंचरण भी बता सकेंगे,
- कॉर्डेटों में अशन अनुकूलनों का वर्णन कर सकेंगे तथा उनके पाचन तंत्रों का वर्णन प्रस्तुत कर सकेंगे, और
- कशेरुकियों में विभिन्न जल एवं वायु श्वसनी श्वसन संरचनाओं एवं उनके सहायक श्वसन अंगों का वर्णन कर सकेंगे।

इकाई 5 अध्यावरण

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
5.2 भ्रूणीय उद्भव
5.3 अध्यावरण के सामान्य लक्षण
चर्म
अधिचर्म
5.4 जातिवृत्त
मत्स्य का अध्यावरण
चतुष्पादों का अध्यावरण
5.5 त्वचा के विशेषित व्युत्पाद
नाखून, नखर, खुर
सींग तथा श्रृंगाभ
वैलीन (विमि - श्रृंगास्थि)
शल्क
चर्मीय कवच
श्लेष्मा
वर्ण
5.6 सारांश
5.7 अंत में कुछ प्रश्न
5.8 उत्तर

5.1 प्रस्तावना

अध्यावरण (integument) एक संयुक्त अंग है। सतह पर अधिचर्म (epidermis) होती है, उसके नीचे चर्म (dermis) होती है और इन दोनों के बीच में आधार झिल्ली (basement membrane) होती है।

अध्यावरण शरीर का सबसे बड़ा अंग है, जो पूरे मानव शरीर के भार का लगभग 15 प्रतिशत होती है। अधिचर्म तथा चर्म दोनों एक साथ मिलकर कशेरुकियों की सर्वाधिक विविध संरचना बनाते है। अधिचर्म से भांति-भांति की संरचनाएं बनती हैं, जैसे - रोम, पिच्छ (पर), बैलीन (baleen अथवा whale bone), नखर, नाखून, सींग, चोंच तथा कुछ प्रकार के शल्क। चर्म से सरीसृपों की चर्मी अस्थियां (dermal bones) तथा अस्थिलचर्म (osteodermis) बनती हैं। अधिचर्म तथा चर्म दोनों मिलकर मछलियों के दांत, दंतिकाएं तथा त्वचा बनाती हैं।

अध्यावरण जो जीव तथा पर्यावरण के बीच की एक क्रांतिक सीमा होती है, अनेक प्रकार के विशेष कार्य करती है। यह बाह्य कंकाल का अंश होती है और मोटी होकर यांत्रिक क्षति को रोकती है। अध्यावरण जीव की आकृति को बनाए रखने में भी सहायता करती है। अन्य तंत्रों के साथ सहयोग देते हुए अध्यावरण में गैसों एवं आयनों की गति में और साथ ही परासरण नियमन करने में भी सहायता करती है। अध्यावरण आवश्यक ऊष्मा को ग्रहण भी करती है और अगर अधिकता रही, तो ऊष्मा को बाहर भी निकालती है तथा इसके भीतर संवेदग्राही अंग भी होते हैं। अध्यावरण पर संचलन के लिए पिच्छ (पर) होते हैं, ऊष्मारोधन के लिए रोम होते है तथा सुरक्षा के लिए सींग। त्वचा का वर्णक सूर्य के प्रकाश को रोकता है।

तो आइए, आरम्भ करते हैं, त्वचा के भ्रूणीय उद्भव और परिवर्धन से।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- अध्यावरण की संरचना को समझ सकेगें,
- चतुष्पादों के अध्यावरण का विवरण दे सकेंगें,
- त्वचा के विशेषित व्युत्पादों को समझा सकेगें।

5.2 भ्रूणीय उद्भव

भ्रूण में तंत्रिकाभवन की समाप्ति पर अधिसंख्य त्वचा पूर्वगामी स्पष्ट बन गए होते हैं। एकल परती सतह बाह्यजनस्तर (ectoderm) में प्रचुरोद्भवन होकर बहुपरती अधिचर्म बन जाती है। अधिचर्म की गहरी परत स्ट्रैटम बेसेली (stratum basale) अर्थात् आधारीय स्तर आधार-झिल्ली पर टिकी होती है। सक्रिय कोशिका-विभाजन से आधार झिल्ली बाहरी कोशिकाओं की परिचर्म (periderm) नामक एकल परत का पुन:स्थापन करती रहती है। (चित्र 5.1 क)।

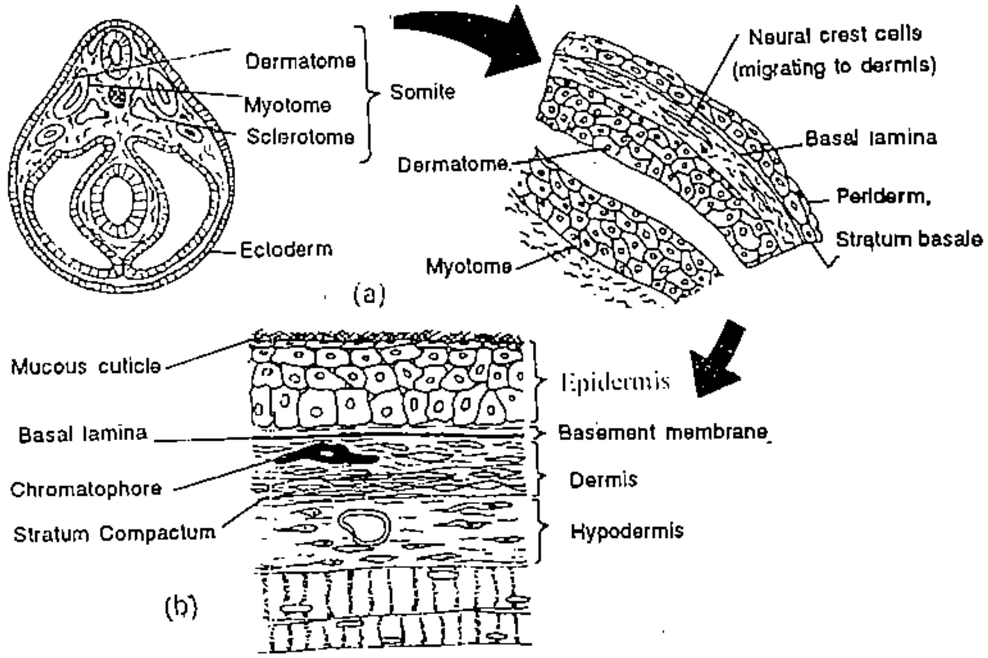

चित्र 5.1 : अध्यावरण का भ्रूणीय परिवर्धन। क) एक प्रतिनिधि कशेरुकी भ्रूण का अनुप्रस्थ काट। ख) विभेदित होकर एक स्तरित परत बनतीं है, जिसकी सतह पर उपचर्म होती है।

चर्म कई स्रोतों से बनता है लेकिन डर्मेटोम (dermatome) इसका मुख्य स्रोत है। मूलत: अध्यावरण दो परतों अधिचर्म तथा चर्म की बनी होती है, जिन्हें एक-दूसरे से पृथक करती हुई आधार झिल्ली होती है। बाद में संवहनीभवन और तंत्रिकान्यास का विकास हो जाता है, साथ ही तंत्रिक शिखर (neural crest) का भी योगदान होता है। और साथ ही कुछ भाग तंत्रिक शिखर से भी आते हैं। अधिचर्म तथा चर्म के बीच परस्परक्रिया होकर, कुछ विशेष संरचनाओं, जैसे - दांत, पिच्छ, रोम तथा अनेक प्रकार के शल्कों का बनना भी उत्तेजित होता है (चित्र 5.2)।

5.3 अध्यावरण के सामान्य लक्षण

5.3.1 चर्म

अनेक कशेरुकियों के चर्म में सीधे ही अंतराझिल्ली अस्थिभवन होकर प्लेटें बन जाती हैं। इन अस्थियों के भ्रूणीय स्रोत होने तथा आरंभ में चर्म के ही भीतर बने होने के कारण इन्हें चर्मीय अस्थियां (dermal

bones) कहा जाता है। ऑस्ट्रैकोडर्म मछलियों में ये सुव्यक्त बनी होती हैं मगर व्युत्पन्न वर्गों तक में जैसे कि स्तनधारियों की कुछ स्पीशीज़ में ये द्वितीयक रूप में प्रकट होती हैं।

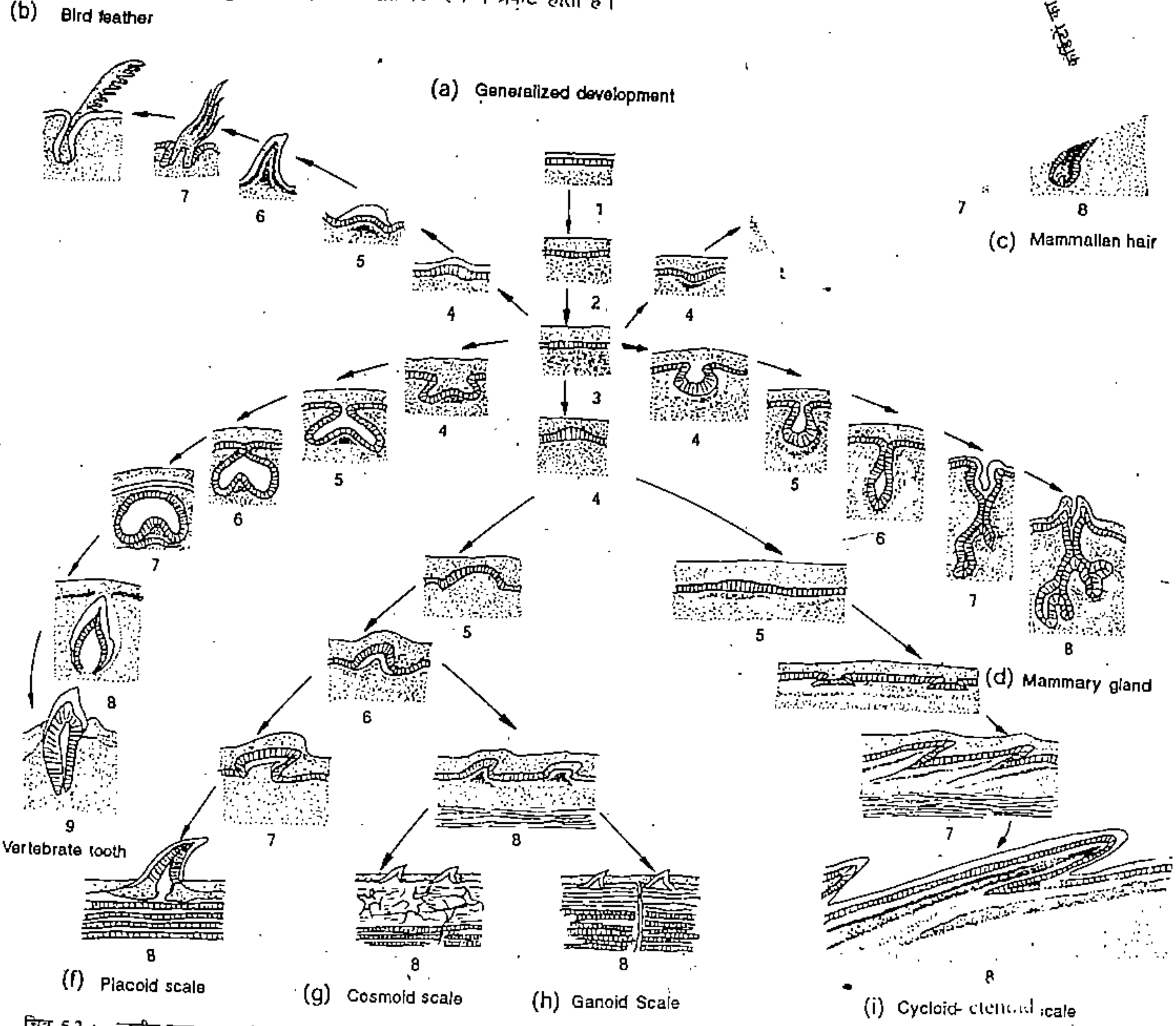

चित्र 5.2 : त्वचीय व्युत्पाद । क) आधार झिल्ली से युक्त अधिचर्म तथा चर्म सरल व्यवस्था से कशेरुकी त्वचाओं की विशाल विविधता विकसित होती है। अधिचर्म तथा चर्म की परस्परक्रिया से पक्षियों में पिच्छ (पर) बन जाते हैं। ख) स्तनधारियों में रोम और स्तन ग्रंथियां। ग तथा घ) कशेरुकियों में दांत ङ) कॉन्ड्रिक्थीइस में प्लैकॉइड (पट्टाभ) शल्क। च) अस्थित मछलियों में कास्मीनी एवं गैनॉइड शल्क (छ-झ)।

चर्म का सर्वाधिक सुव्यक्त घटक तंतुकी संयोजी ऊतक का बना होता है, जिसका अधिकतर अंश कालेजेन तंतुओं का होता है। कोलेजेन तंतुओं का एक ताना-बाना इस तरह बना होता है कि उसमें स्पष्ट परतें बन जाती है, जिन्हें प्लाइ (plies) कहते हैं। ऐम्फिऑक्सस नामक प्रोटोकॉर्डेट में प्रत्येक प्लाई के भीतर कोलेजेन की एक विशेष क्रम-व्यवस्था दिखाई पड़ती है (चित्र 5.3)। ये प्लाइ एक बहुत ही नियमित मगर एकांतर दिशा क्रम के अनुसार परस्पर पटलित होती है।

एकांतर क्रम ये बनी परतें मानों वस्त्र के ताने-बाने के धागों जैसा काम करती हैं, जो एक तो त्वचा को आकृति प्रदान करती हैं और दूसरे उसे झोल पड़ने से रोकती हैं। ज़लीय कशेरुकियों जैसे कि शार्क में कोलेजेन के बंडल एक दूसरे से कोण बनाते हुए व्यवस्थित होते हैं, जिससे त्वचा में एक कपड़े जैसा बायस (तिरछापन) आ जाता है। इसका यह अर्थ हुआ कि बंडलों की दिशा की साथ तिरछा कोण बनाते हुए यदि इसे खींचा जाए तो यह फैल जाती है। उदाहरण के लिए, यदि आप एक कपड़ा लें, जैसे कि कोई रूमाल

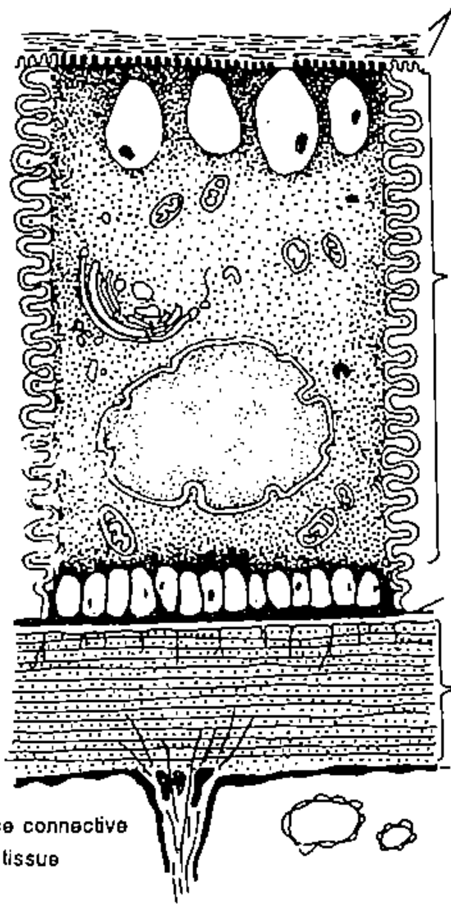

चित्र 5.3 ; प्रोटोकॉर्डेट, ऐम्फिऑक्सस की त्वचा। इसमें अधिचर्म घनाकार अथवा स्तम्भाकार कोशिकाओं की घनी एकल परत होती है, इन कोशिकाओं से श्लेष्मा का स्रवण होता है, जो सतह को ढ़क देती हैं। यह अधिचर्म आधारीय पटलिका पर टिकी होती है। चर्म बहुत ही सुक्रमानुसार व्यवस्थित प्लाइ की बनी होती है, जिनसे एक "कपड़े जैसी" संरचना बन जाती है।

और फिर उसे ताने के अथवा बाने के धागे के सहारे खींचें तो इस समांतर तनाव के अंतर्गत कपड़ा बहुत ही कम फैलता है। परंतु यदि आप विपरीत कोणों पर खींचते हैं, तब तनाव धागों पर 45° के कोण पर तिरछा पड़ता है जिसमें कपड़ा अधिक फैल जाता है (चित्र 5.4 क, ख)। यही वह सिद्धांत है, जो शार्क-त्वचा के कसकर बुने कोलेजेन पर लागू होता जान पड़ता है। शार्क की त्वचा बिना सलवटें पड़े फैलती हैं। चूकिं इसमें सलवटें नहीं पड़ती, इसलिए जल शरीर की सतह पर से बिना किसी विक्षोभ के सपाट रूप में बहता जाता है (चित्र 5.4 घ)

मछलियों तथा जलीय कशेरुकियों में और साथ ही क्रस्टेशियाई एवं जलीय स्क्वैमेटा में सभी चर्म के कोलेजेन तंतु प्रायः एक क्रम में बनी प्लाई में व्यवस्थित रहते हैं और कुल मिलाकर एक स्पष्ट पहचान वाली स्ट्रैटम कॉम्पेक्टम (stratum compactum) बन जाती है।

5.3.2 अधिचर्म

अनेक कशेरुकियों के अधिचर्म से श्लेष्मा का स्रवण होता है, जो त्वचा की सतह को नम करता रहता है। मछलियों में श्लेष्मा द्वारा जीवाणुओं द्वारा संक्रमण से कुछ सुरक्षा प्रदान होती जान पड़ती है और यही श्लेष्मा देह के ऊपर जल के पटलीय प्रवाह को सुनिश्चित करने में भी सहायता करती है। जलस्थलचरों में श्लेष्मा कदाचित ये दोनो भूमिकाएं तो निभाती ही है साथ ही जब ये प्राणी थल पर आते हैं, उस दौरान यह त्वचा को सूखने भी नहीं देती।

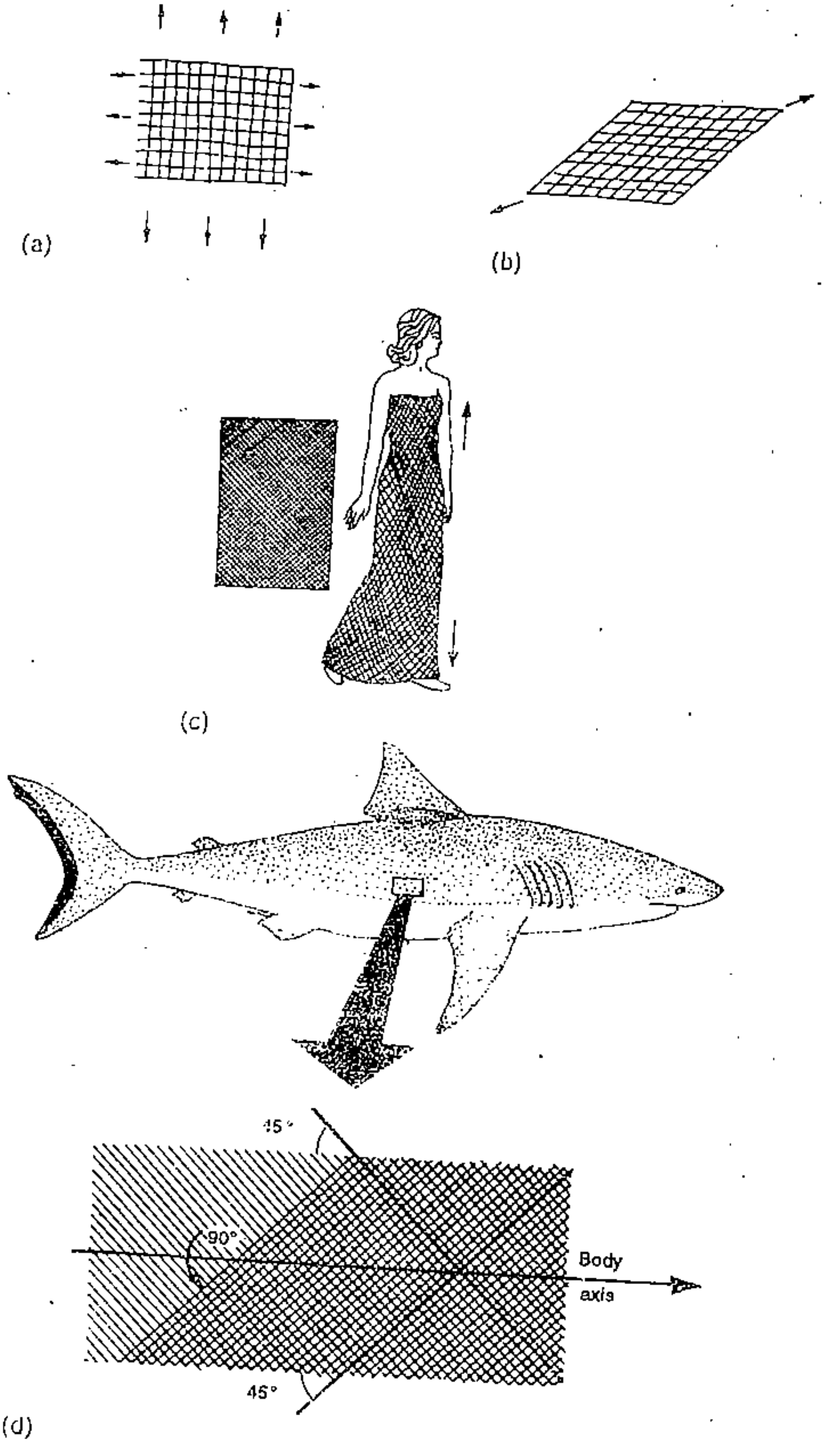

र 5.4 : बुनी हुई सामग्री में बायस। क) कपड़े में ताना-बाना उसके रेशे (तंतु) होते हैं। यदि तनाव-बल धागे के समान्तर हुआ तो कपड़े में न्यूनतम विकृति आती है। ख) मगर यदि तनाव 45° पर बायस के सहारे हुआ तब आकृति में काफी परिवर्तन आ जाता है। ग) फैशन डिजाइनर वस्त्रों को [illegible] प्रदान करते [illegible] कपड़े के इस प्रकार के लक्षणों का लाभ उठाते हैं। घ) मछली की त्वचा की स्ट्रैटम कॉम्पेक्टम के कोलेजेन की [illegible] है। [illegible] का लचीला बायस शरीर की लंबाई के प्रति 45° पर बना होता है।

थल-कशेरुकियों में शरीर को ढकती हुई अधिचर्म प्रायः एक बाहरी किरेटिनीकृत (keratinized) अथवा श्रृंगीकृत (cornified) परत बन गई होती है, जिसे **स्ट्रैटम कॉर्नियम (stratum corneum)** कहा जाता है। नई अधिचर्म कोशिकाएं मुख्यतः गहरी स्ट्रैटम बेसेली में होने वाले समसूत्रण विभाजनों के द्वारा बनती जाती हैं। ये नई बनती हुई कोशिकाएं अधिक ऊपरी कोशिकाओं को सतह की ओर धकेलती जाती हैं, जहाँ पर वे एक क्रमिक रूप में स्वनष्ट होती जाती हैं। इस प्रक्रिया में विविध प्रोटीन उत्पाद एक साथ मिलकर **किरेटिन (keratin)** बनाते हैं और इस संपूर्ण प्रक्रिया को किरेटिनीकरण कहते हैं।

किरैटिनीकरण तथा स्ट्रैटम कॉर्नियम का बनना वहाँ भी होता है, जहाँ घर्षण होता हो या यांत्रिकीय खरोंच से अधिचर्म को क्षति पहुंचती हो, जैसे कि मुख-गुहा का अधिचर्म में, मुख्य रूप से तब, जब कि खाया गया भोजन असाधारण नुकीला तथा अपघर्षी हो। स्ट्रैटम कॉर्नियम रोम, खुर, सींग, आच्छद अथवा अन्य विशेषित श्रृंगीकृत सरंचनाओं के रूप में विभेदित हो सकता है। शल्क नामक संरचनाएँ अनेक जलीय तथा थलीय कशेरुकियों की त्वचा में होती हैं। शल्क आधारभूत रूप में त्वचा के वलन होते हैं। इनके बनने में जब चर्म का योगदान मुख्य रूप में होता है, तब ऐसे वलन को चर्म शल्क **(dermal scale)** कहते हैं। अधिचर्मी वलन से बनने वाले शल्क को अधिचर्मी शल्क कहते हैं।

5.4 जातिवृत्त

5.4.1 मत्स्य का अध्यावरण

कुछ अपवादों को छोड़कर अधिकतर जीवित मछलियों का अध्यावरण अकिरैटिनीकृत होता है, और उसके बजाए श्लेष्मा से ढका होता है। अपवादों में शामिल हैं - कुछ समूहों में पाए जाने वाले किरैटिनीकृत विशेषीकरण। लैम्प्रियों की मुख्य-डिस्क का भीतरी अस्तर, कुछ शाकभक्षी मिन्नो मछलियों के जबड़ों के आवरण तथा कुछ अर्ध-थलीय मछलियों के पेट पर बनी घर्षण सतह। ये सब किरैटिनीकृत व्युत्पाद हैं। मगर अधिकतर सजीव मछलियों में अधिचर्म शरीर की सतह पर जीवित तथा सक्रिय होती है और उनमें मृत किरैटिनीकृत कोशिकाओं की कोई सुव्यक्त सतही परत नहीं होती।

मछलियों के अधिचर्म के भीतर दो प्रकार की कोशिकाएं पाई जाती हैं: अधिचर्म कोशिकाएं तथा विशेषित एककोशिकीय ग्रंथियां। साइक्लोस्टोम सहित जीवित मछलियों में अधिक पाई जाने वाली अधिचर्म कोशिकाएं स्तरित अधिचर्म बनाती हैं। अधिचर्म कोशिकाएं कोशिका-संधियों द्वारा कसकर एक-दूसरे से जुड़ी रहती हैं और उनके भीतर बहुसंख्यक स्रावी आशय होते हैं। ये आशय कोशिकाओं से बाहर सतह पर निकाल दिए जाते हैं, जहाँ वे श्लेष्मी उपचर्म बनाने में योगदान देते हैं।

एककोशिकीय ग्रंथियां एकल, विशेषीकृत तथा अधिचर्म कोशिका समिष्ट में अंतःप्रकीर्ण होती हैं। ये एककोशिकीय ग्रंथियां अनेक प्रकार की होती हैं। गदाकार कोशिका (club cell) एक लम्बी तथा यदाकदा द्विकेंद्रिकित एककोशिकीय ग्रंथि होती है (चित्र 5.5)।

स्ट्रैटम कॉम्पैक्टम (निविड स्तर) के भीतर कोलेजन नियमित रूप में संघटित होकर प्लाइयां बना देती है जो मछली के शरीर को चारों ओर से सर्पिल रूप में घेरती हुई होती है जिसके कारण त्वचा बिना सलवटें पड़े झुक-मुड़ सकती है। कुछ मछलियों में चर्म में लचीलेपन का गुणधर्म होता है। जब कोई तैरती हुई मछली अपने शरीर को मोड़ती है, तब फैली हुई दिशा की त्वचा में एक ऊर्जा संचित हो जाती है, जो शरीर के मोड़ को सीधा करने में सहायता करती है। मछली का चर्म प्रायः चर्मी अस्थि का निर्माण करता है, जिससे चर्मी शल्क का निर्माण होता है। इसके अतिरिक्त कभी-कभी मछली के शल्कों की सतह पर चर्मी मूल की एक कड़ी अकोशिकीय इनैमेल की परत भी चढ़ जाती है तथा चर्मी मूल की एक गहरी डेण्टीन (dentine) परत बन जाती (चित्र 5.6) है।

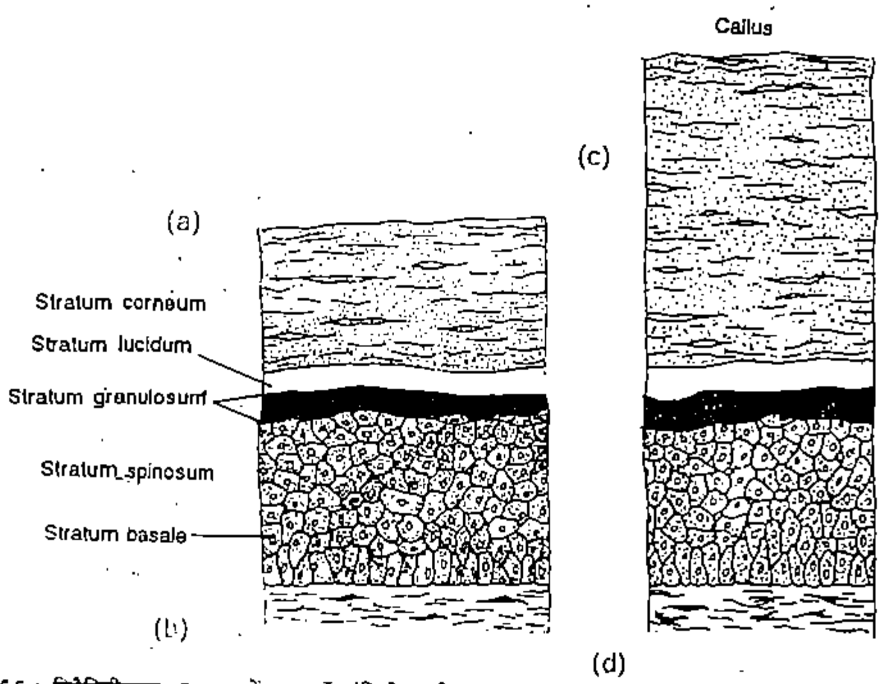

चित्र 5.5 : किरैटिनीकरण। उन स्थानों पर जहाँ यांत्रिकीय घर्षण बढ़ जाता है, त्वचा में सुरक्षाकारी कैलस के अधिकाधिक बनने की प्रतिक्रिया होती है और उसके परिणामस्वरूप स्ट्रैटम कॉर्नियम मोटी होती जाती है।

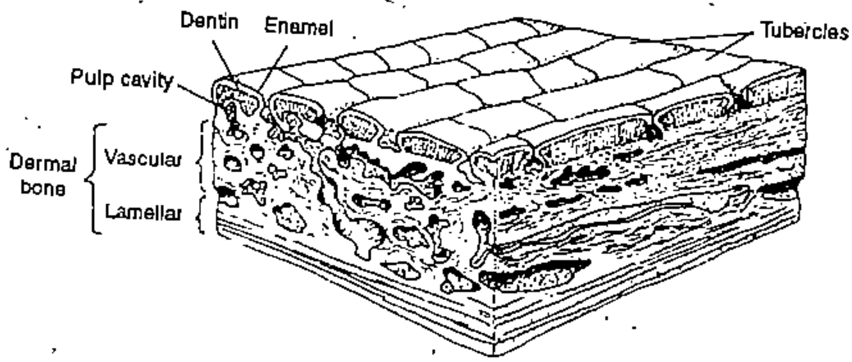

चित्र 5.6 : एक विवर्धित ऑस्ट्रैकोडर्म शल्क का सेक्शन। शल्क में गुलिकाएं बनी थीं जिनके ऊपर डेण्टीन तथा इनैमल की टोपी चढ़ी होती थी।

आदिम मछलियाँ

ऑस्ट्रैकोडर्म तथा प्लैकोडर्म मछलियों में त्वचा से चर्मी कवच की सुव्यक्त अस्थिल प्लेटें बन गई थीं, जिन्होंने उनके शरीर को बाहर से एक बाह्य कंकाल में बंद कर लिया था। कपालीय क्षेत्र की चर्मी हड्डियां बड़े आकार की थीं जो शीर्ष शील्डें बन गई थीं, मगर शरीर के अधिक पश्चतर भागों में चर्मी हड्डियां छोटे अंशों में टूट गई हुआ करती थीं, जिन्हें चर्मी शल्क कहा जाता है। इन शल्कों की सतह प्राय: छोटी-छोटी कुकुरमुत्ता (mushroom) के आकार की गुलिकाओं (घुंडियों) से सुसज्जित रहती थीं। इन गुलिकाओं पर या तो इनैमल की एक सतही परत होती थी या उनमें भीतरी डेण्टीन परत के ऊपर एक इनैमल जैसा पदार्थ चढ़ा होता था।

जीवित हैगफिश तथा लैम्प्रे की त्वचा आदि जीवाश्म मछलियों की त्वचा में काफी भिन्न हो गई है। चर्मी हड्डी समाप्त हो गई है और त्वचा की सतह चिकनी तथा शल्करहित होती है। अधिचर्म बहुसंख्यक जीवित अधिचर्मी कोशिकाओं की चट्टे लगी परतों की बनी होती हैं। इन कोशिकाओं के बीच-बीच में जहाँ-तहाँ एककोशिकीय ग्रंथियां होती हैं अर्थात् बड़ी कणिकीय कोशिकाएं एवं लम्बी मदगराकार कोशिकाएं। साथ ही हैगफिश की त्वचा में धागा कोशिकाएं (**thread cells**) भी होती हैं। जब कभी मछली को छेड़ा जाता है, तब इन कोशिकाओं में से श्लेष्मा के मोटे-मोटे धागे त्वचा की सतह पर तीव्रता से निकलते हैं। चर्म बहुत ही संघटित रूप में तंतुकी संयोजी ऊतक की नियमित परतों की बनी होती है। हैगफिश में चर्म के भीतर बहुकोशिकीय श्लेष्माभ ग्रंथियां भी होती हैं, जिनके उत्पाद वाहिनियों द्वारा बाहर सतह पर निकलते हैं।

काण्ड्रिक्थीइस : कार्टिलेजी मछलियों में चर्मी हड्डियां नहीं होतीं किन्तु सतह दंतिकाएं होती हैं, जिन्हें प्लैकॉइड शल्क कहते हैं। इन शल्कों की त्वचा की सतह खुरदरी महसूस होती है (चित्र 5.7 क)।

नवीन प्रमाणों से ऐसा लगता है कि जब मछली आगे को तैरती होती है, तब ये सूक्ष्म प्लैकाइड शल्क पानी को त्वचा के ऊपर से सकारात्मक रूप में बहने में सहायक होते हैं, जिससे घर्षण का उल्टा खिंचाव कम हो जाता है। बहुसंख्यक द्वितीय कोशिकाएं अधिचर्म में और साथ ही साथ स्तरित अधिचर्मी कोशिकाओं के बीच-बीच में भी पाई जाती हैं। चर्म तंतुकी संयोजी ऊतक की बनी होती है, जिसमें मुख्य रूप से प्रत्यास्थ एवं कोलेजेन तंतु होते हैं, जिसकी नियमित व्यवस्था से डर्मिस के भीतर ताने-बाने जैसा परिधान (वस्त्र) बन जाता है (चित्र 5.4 घ)। इससे त्वचा में मजबूती आ जाती है और तैरने के दौरान सलवटें बनना रुक जाता है।

प्लैकॉइड शल्क चर्म में बनता है, लेकिन अधिचर्म में से पार होता हुआ सतह पर पहुंच जाता है। इसकी चोटी इनैमेल के आवरण की बनी होती है, डेण्टीन नीचे होती है तथा भीतर मज्जा गुहा (pulp cavity) होती है (चित्र 5.7 क, ख)।

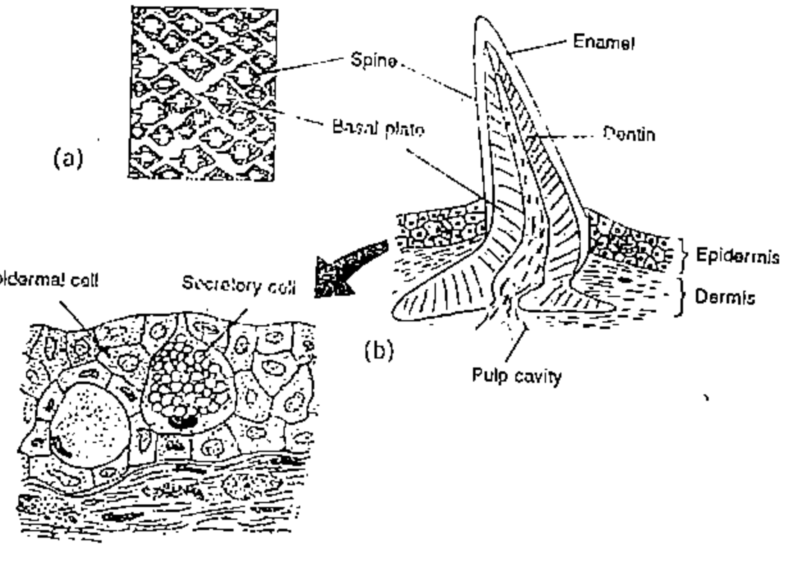

चित्र 5.7 . शार्क की त्वचा। क) त्वचा का सतह दृश्य, जिसमें बाहर को उभरे प्लैकॉइड शल्कों की नियमित व्यवस्था दर्शाई गई है। ख) शार्क के प्लैकॉइड शल्क में से लिया गया सेक्शन।

अस्थिल मछलियाँ

अस्थिल मछलियों की चर्म दो परतों में विभाजित रहती है। एक, सतही परत अदृढ़ संयोजी ऊतक की और दूसरी, गहरी परत सघन तंतुकी संयोजी ऊतक की। रंजकधर कोशिकाएं (chromatophores) चर्म के भीतर पाई जाती हैं। चर्म का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उत्पाद शल्क ही होता है। अस्थिल मछलियों में चर्मी शल्क वास्तव में अधिचर्म को चीरते हुए बाहर को नहीं आते बल्कि वे सतह के इतने निकट होते हैं कि उससे लगता है मानो त्वचा कड़ी हो गई है (चित्र 5.8 क, ख)।

बाह्य स्वरूप के आधार पर अस्थिल मछलियों के शल्क अनेक प्रकार के होते हैं। आदि सार्कोप्टेरिजियनों में पाये जाने वाले कॉस्माइड शल्क हड्डी की एक दोहरी परत पर टिके होते हैं – जिनमें से पहली परत रक्तवाहिकीय होती है तथा दूसरी परत पटलीय होती है। इस हड्डी की बाहरी सतह पर एक ऐसी परत होती है, जिसे अब डेन्टीन माना जाता है और इस डेण्टीन के ऊपर सतही रूप में फैली हुई ऐसी परत होती है, जिसे मैजिकल इनैमेल समझा जाता है (चित्र 5.9 क)।

गैनॉइड शल्क की विशेषता होती है कि इसमें इनैमेल का बना एक मोटा सतही आवरण होता है परन्तु नीचे वाली डेण्टीन की परत बनती है (चित्र 5.9 ख)। चर्मी हड्डी गैनाइड शल्क की नींव होती है, जो या तो रक्त वाहिकीय एवं पटलीय हड्डी के बाहरी परत के रूप में प्रकट होती है या पटलीय हड्डी की एकल परत होती है। गैनॉइड शक्ल जातिव्यापी एवं अंतर्ग्रन्थनीय होते हैं।

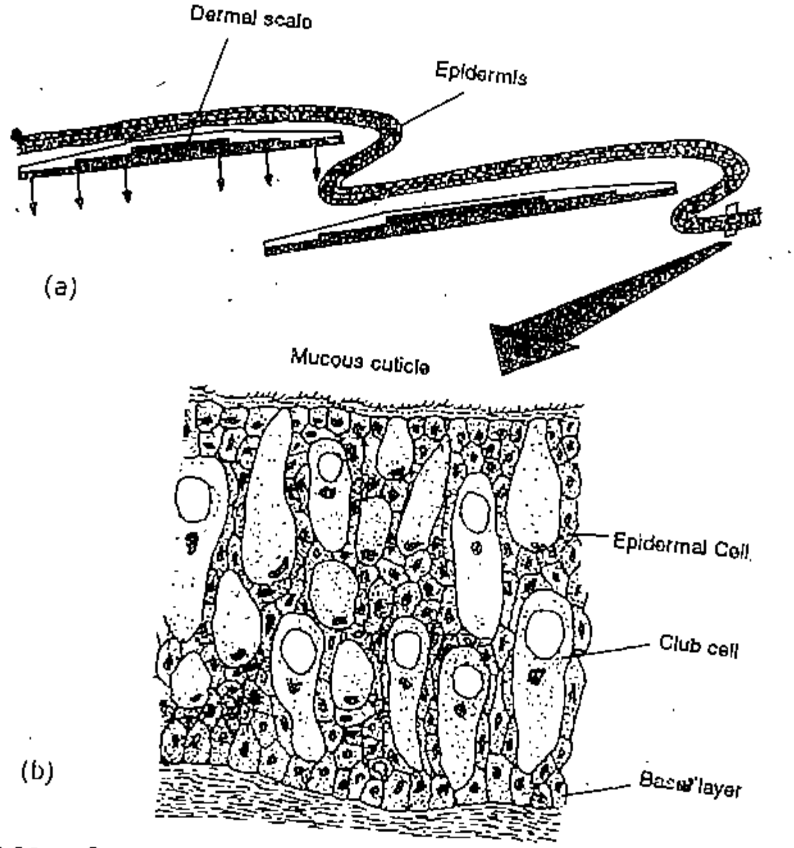

चित्र 5.8 : अस्थिल मछली की त्वचा। क) टीलियोस्ट मछली की त्वचा के भीतर शल्कों की व्यवस्था। ख) अधिचर्म का विवर्धन।

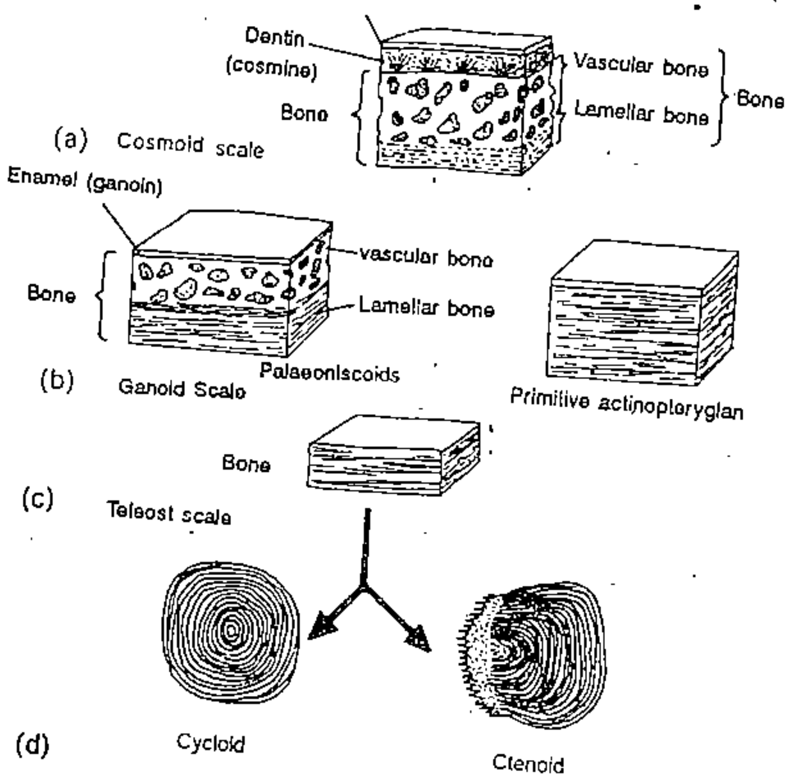

5.9 : अस्थिल मछलियों के शल्क प्रकार। क) कॉस्मीनी शल्क, ख) गैनॉइड शल्क तथा ग) दो प्रकार के टीलियोस्ट शल्कों – चक्राभ तथा कंकताभ शल्कों के सतही दृश्य।

ॉस्ट शल्क में इनैमेल, डेण्टीन तथा रक्तवाहिनीय हड्डी परत नहीं होती। केवल पटलीय हड्डी ह जाती है, जो अकोशिकीय तथा अधिकतर अकैल्सीकृत होती है (चित्र 5.9 ग)। टीलियॉस्ट शल्क ार के होते हैं। इनमें से एक प्रकार चक्राभ शल्क (cycloid scale) का होता है, जो वृत्तकों

(circuli) का बना होता है तथा दूसरा कंकताभ शल्क (ctenoid scale) होता है, जिसके पश्च सीमांत पर प्रवर्धों की कतार बनी होती है (चित्र 5.9 च)।

5.4.2 चतुष्पादों का अध्यावरण

स्थलीय कशेरुकियों की त्वचा का एक मुख्य लक्षण किरैटिनीकरण है। व्यापक किरैटिनीकरण से एक सुव्यक्त बाहरी श्रृंगीकृत परत स्ट्रैटम कॉर्नियम बन गई होती है, जो यांत्रिकीय खरोंच के प्रति रोधी होती हैं। कुछ विशेषित ग्रंथियों से निकले लिपिड भी अक्सर किरैटिनीकरण की प्रक्रिया में शामिल हो जाते हैं या वे सतह पर फैला दिए जाते हैं। इन लिपिडों सहित श्रृंगीकृत परत चतुष्पाद त्वचा को निर्जलीकरण के प्रति और ज्यादा प्रतिरोधी बना देती है। बहुकोशिकीय ग्रंथियां मछली की त्वचा में अधिक पाई जाती हैं। मछलियों में श्लेष्मीय क्यूटिकल तथा एककोशिकीय ग्रंथियों का त्वचा की सतह पर अथवा सतह के निकट होने वाला स्राव त्वचा का आवरण बना लेते हैं। इसके विपरीत चतुष्पादों में बहुकोशिकीय ग्रंथियां प्रायः चर्म के भीतर होती हैं और उनके स्राव श्रृंगीकृत परत को बेधती जाती हुई सम्मिलित वाहिनियों के द्वारा सतह पर पहुंचते हैं।

1. उभयचर प्राणी

उभयचर प्राणी विशेष महत्त्व के हैं, क्योंकि अपने जीवन के दौरान वे प्रायः एक जलीय स्वरूप से कायांतरण करके एक थलीय स्वरूप ग्रहण करते हैं। जातिवृत्त की दृष्टि से उभयचर प्राणी जलीय तथा थलीय कशेरुकियों के बीच की संक्रमणी कड़ी भी है। अधिसंख्य आधुनिक उभयचरों में त्वचा एक श्वसन सतह के रूप में भी विशेषित हो गई है, जिसकी निचली अधिचर्मी तथा गहरी चर्म में बने कोशिका जाल में से गैसों का विनिमय होता है। वास्तव में, कुछ सैलामैन्डर (सरट) में फेफड़े नहीं होते और वे अपनी उपापचयी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पूरी तरह त्वचीय श्वसन पर ही निर्भर होते हैं, जो त्वचा के माध्यम से होता है।

सबसे आदिम उभयचरों में मछलियों की ही तरह शल्क होते हैं और हो भी क्यों नहीं, आखिर ये प्राणी विकसित भी तो मछलियों से ही हुए हैं। चर्मी शल्क उष्णकटिबंधीय सेसीलाइन की कुछ स्पीशीज़ में केवल अवशेषों के रूप में पाए जाते हैं। मेंढ़कों तथा सालामैण्डरों में चर्मी शल्कों का पूर्ण अभाव होता है (चित्र 5.10 क)। सालामैण्डरों के जलीय लार्वा की त्वचा में तंतुकी संयोजी ऊतक की एक चर्म बना होता है। इसमें चारों तरफ छितराई हुई मुख्य (लीडिग) कोशिकाएं होती हैं, जिनसे कुछ ऐसे पदार्थों का स्राव निकलता

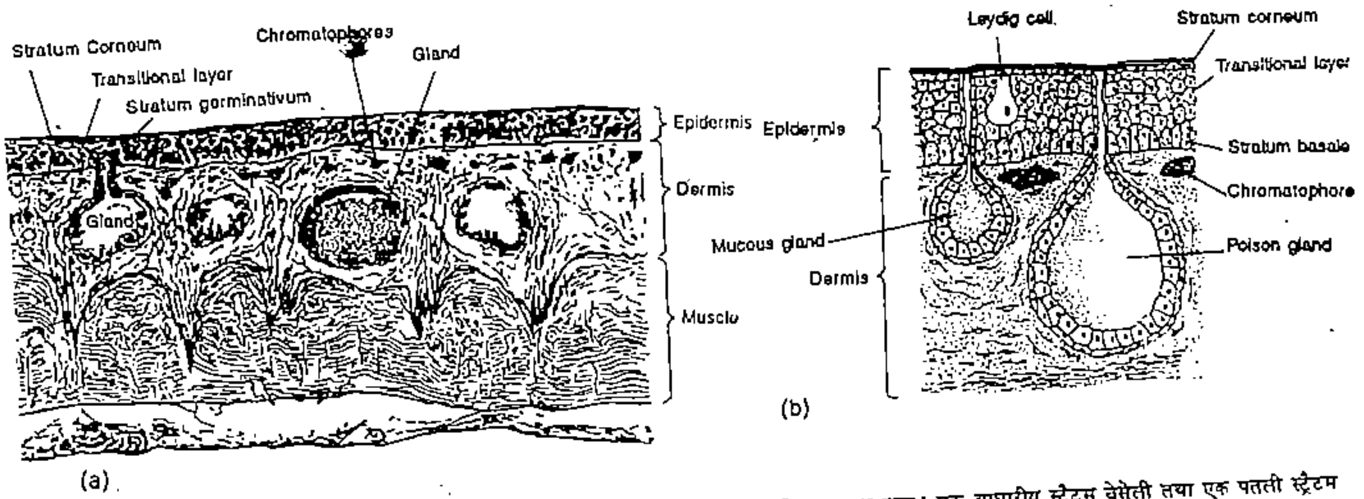

चित्र 5.10 : उभयचर की त्वचा। क) वयस्क मेढ़क की त्वचा का भाग। एक आधारीय स्ट्रैटम बेसेली तथा एक पतली स्ट्रैटम कॉर्नियम मौजूद होती है। ख) उभयचर त्वचा का आरेखीय दृश्य जिसमें श्लेष्मा ग्रंथियां एवं विष ग्रंथियां दिखाई गई हैं, जिनसे निकलने वाले स्राव छोटी-छोटी वाहिनियों के माध्यम से अधिचर्म की सतह पर आ जाते हैं।

है, जो जीवाणु अथवा विषाणु के भीतर प्रवेश करने को रोकते हैं (चित्र 5.10 ख)। थलीय वयस्कों में भी चर्म इसी प्रकार तंतुकी संयोजी ऊतक का बना होता है। प्रजनन ऋतु में नर सालामैण्डरों अथवा मेंढ़कों के पादों पर अथवा उंगलियों पर मैथुन गद्दियां (nuptial pads) बन जाती हैं। मैथुन गद्दियां श्रृंगीकृत

अधिचर्म के ऊपर को उभरे हुए कैलस होते हैं, जो संगमन के दौरान मादा को पकड़े रखने में नर की सहायता करता है।

मेंढ़कों तथा सालामैण्डरों की त्वचा में सामान्यत: दो प्रकार की बहुकोशिकीय ग्रंथियां होती है - श्लेष्मा ग्रंथियां तथा विष ग्रंथियां (चित्र 5.10 ख)। वर्णकधर उभयचर के अधिचर्म में कभी-कभी ही पाए जाते हैं, परंतु वे अधिकतर चर्म के भीतर ही होते हैं।

2. सरीसृप

सरीसृप की त्वचा में थलीय अस्तित्व के लिए अधिक सुनियोजित व्यवस्था की झलक मिलती है। किरैटिनीकरण अधिक व्यापक है, और उभयचर की अपेक्षा इनमें त्वचा ग्रंथियां बहुत ही कम होती हैं। शल्क होते हैं, मगर ये मछलियों के चर्मी शल्कों से आधारभूत रूप में भिन्न होते हैं, जिनमें ये चर्मी उद्भव वाली अस्थि अध:आश्रय नहीं बना होता है और न हीं चर्म का कोई मुख्य संरचनात्मक योगदान होता है। उसकी बजाए यह सतही अधिचर्म का एक वलन होता है, और इसलिए इसे अधिचर्मी शल्क कहते हैं (चित्र 5.11 क)। जब यह अधिचर्मी शल्क बड़ा तथा प्लेट जैसा होता है, तब इसे स्क्यूट (scute) कहते हैं। इन अधिचर्मी शल्कों में ऐसा भी हो सकता है कि इनमें रूपांतरण होकर किरीट, कटक अथवा सींग जैसी संरचनाएं भी बना जाएं।

चर्मी हड्डी अनेक सरीसृपों में पाई जाती है। जब कभी चर्मी हड्डियां अधिचर्म को अपने ऊपर संभाले रखती है, तब उन्हें ऑस्टियोडर्म (**osteoderm**) कहते हैं अर्थात् चर्मी हड्डी की ऐसी प्लेटें, जो अधिचर्मी शल्कों के नीचे स्थित होती हैं। ऑस्टियोडर्म मगरमच्छों तथा कुछ छिपकलियों में पाई जाती हैं। सरीसृप त्वचा की चर्म तंतुकी संयोजी ऊतक की बनी होती है। कछुओं तथा मगरमच्छों में पक्षियों तथा स्तरधारियों की अपेक्षा त्वचा का विमोचन कम होता है और उनमें त्वचा पर से छोटी-छोटी पपड़ियां अनियमित अंतरालों पर उतरती रहती हैं। मगर छिपकलियों तथा सांपों में श्रृंगीकृत परत का उतरना जिसे केंचुली **उतारना** अथवा **निर्मोचन** (**moulting**) कहते हैं, होता है और उसके परिणामस्वरूप अधिचर्म के व्यापक अंश निकलते रहते हैं (चित्र 5.11 ख)।

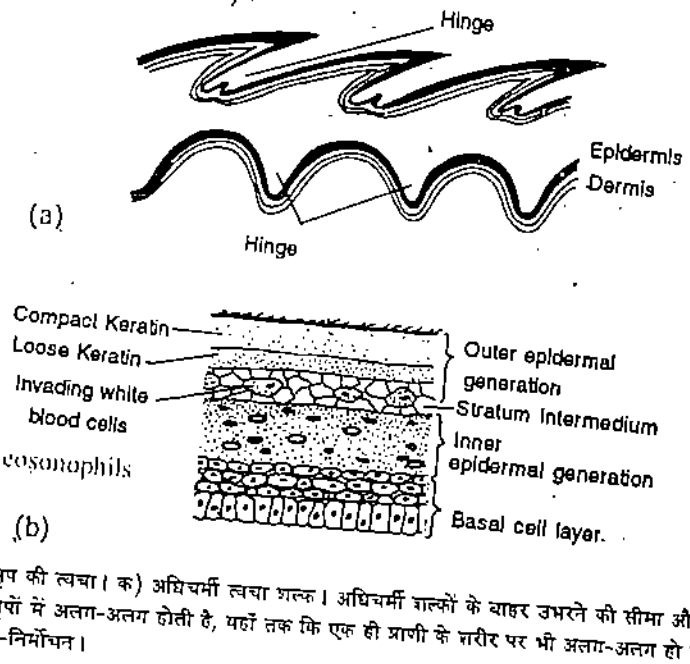

5.11 : सरीसृप की त्वचा। क) अधिचर्मी त्वचा शल्क। अधिचर्मी शल्कों के बाहर उभरने की सीमा और उनकी अतिव्याप्ति सरीसृपों में अलग-अलग होती है, यहाँ तक कि एक ही प्राणी के शरीर पर भी अलग-अलग हो सकती है। ख) त्वचा-निर्मोचन।

पों की त्वचा ग्रंथियां शरीर के कुछ ही प्रमुख क्षेत्रों तक सीमित होती हैं। अनेक छिपकलियों में पिछली की जांघ के नीचे की ओर उरू ग्रंथियों (**femoral glands**) की कतारें होती हैं। मगरमच्छों तथा ां में गंध-ग्रंथियां (**scent glands**) होती हैं। सरीसृपों की अधिकतर त्वचीय ग्रंथियां जनन व्यवहार में भूमिका निभाती हैं।

3. पक्षी

आधारभूत संरचना

पक्षियों के पिच्छों (परों) को सरीसृपों के शल्कों से अधिक कुछ नहीं कह सकते। इससे समजातता को कुछ अधिक ही सीधा सरल बना दिया गया है, शायद बहुत अधिक नहीं। पक्षियों की त्वचा की चर्म में और वह भी मुख्य रूप से पिच्छ-पुटकों के समीप बहुत अधिक रक्त वाहिकाएं तथा संवेदी तंत्रिका सिरे होते हैं। अध्यासन के दौरान कुछ पक्षियों की छाती की चर्म रक्तवाहिकीय हो जाती है, जिससे एक ऊष्मायन क्षेत्र (brood patch) बन जाता है, जिसमें गर्म रक्त सेके जा रहे अण्डों के निकट साहचर्य में आ जाता है।

अधिचर्म दो भागों - स्ट्रैटम बेसेली (आधारीय स्तर) तथा स्ट्रैटम कॉर्नियम (शृंगीय परत) की बनी होती है। इन दोनों के बीच एक संक्रमणी कोशिका परत होती है, जिसकी कोशिकाएं स्ट्रैटम कॉर्नियम की किरैटिनीकृत सतह में रूपांतरित हो जाती है। (चित्र 5.12 क, ख)।

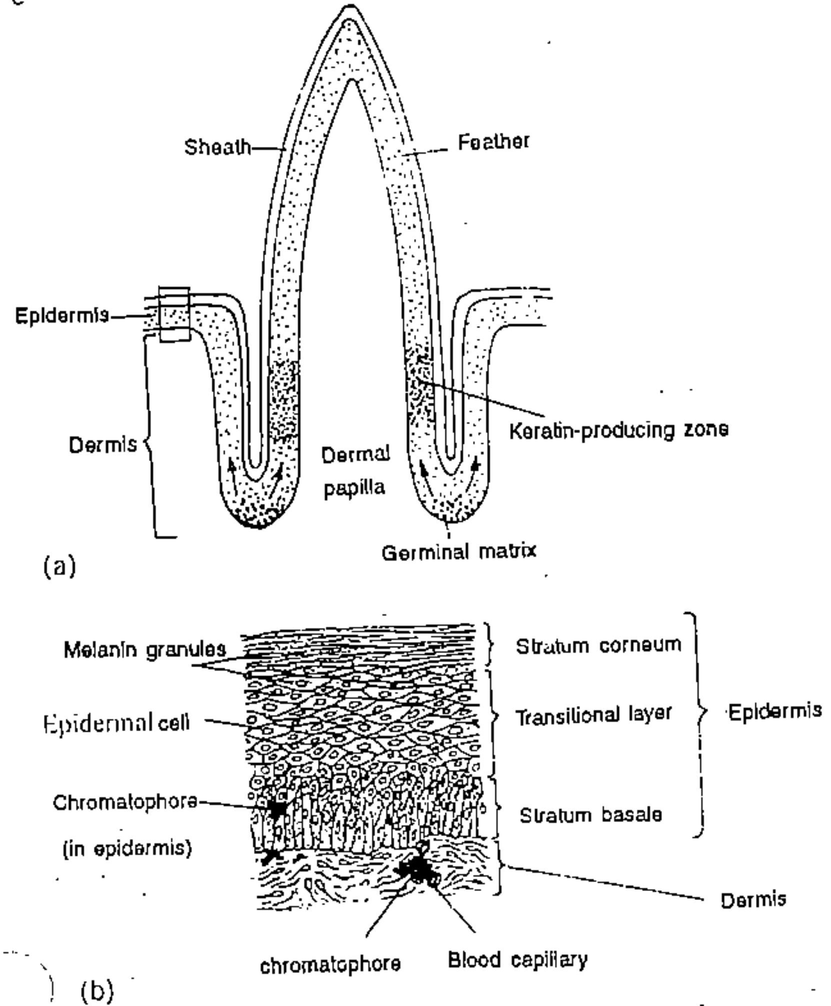

चित्र 5.12 : पक्षी की त्वचा। क) पिच्छ पुटक की वृद्धि। पिच्छ एक आच्छद के भीतर बनता है। यह आच्छद अधिचर्म का किरैटिनीकृत व्युत्पाद होता है। (ख) त्वचा का सेक्शन जिसमें स्ट्रैटम बेसेली तथा किरैटिनीकृत सतही परत स्ट्रैटम कॉर्नियम दर्शाई गई हैं।

कम से कम एक पक्षी तो ऐसा है, जिसके पिच्छों तथा त्वचा पर एक ऑक्सिन (अवधि) का हल्का सा आवरण बना होता है, जिसके बारे में अनुमान है कि वह परभक्षियों को दूर रखता है। चटकीले रंगो वाले इस पक्षी को "हुडेड पिटोहुई" कहते हैं। यह न्यूगिनी में पाया जाता है और लगभग नीलकंठ के आकार का होता है। विष का कार्य सांपों, शिकरों तथा अन्य परभक्षी प्राणियों को पीछे हटाए रखने का है, जो इसका एक पंख चखते ही प्रतिकर्षित हो जाते हैं। पिटोहुई के चटकीले पिच्छ परभक्षियों के लिए भयसूचक रंग व्यवस्था के रूप में हो सकते हैं।

पक्षियों की त्वचा में ग्रंथियां कम होती हैं। पूंछ के आधार पर स्थित पश्चांतकूट ग्रंथि (uropygial gland) से लिपिड एवं प्रोटीन के एक उत्पाद का स्राव निकलता है जिसे पक्षी अपनी चोंच के पार्श्वों पर उठा लेते हैं तथा उसे अपने पंखों पर फैला लेते हैं। एक अन्य ग्रन्थि जिसे लवण ग्रंथि (salt gland) कहते हैं, कुछ पक्षियों के शीर्ष पर बनी होती है। यह ग्रंथि समुद्री पक्षियों में सुविकसित होती है। ये पक्षी जब समुद्री आहार खाते हैं, तथा समुद्री पानी पीते हैं, तब इस तरह प्राप्त अधिशेष लवण को इनकी यही लवण ग्रंथियां शरीर से बाहर निकाल देती हैं।

पिच्छ पक्षियों को अन्य कशेरुकियों से भिन्न पहचान वाले बना देते हैं। संरचना की दृष्टि से पिच्छ बहुत ही विस्तारित हो सकते हैं और इनमें नानाविध स्वरूप पाए जाते हैं। फिर भी पिच्छ त्वचा के अरक्तवाहिकीय एवं अतंत्रिकीय उत्पाद होते हैं। इनकी रचना प्रधानत: अधिचर्म तथा किरैटिनीकारी तंत्र से हुई होती है। ये शरीर की सतह पर पिच्छ क्षेत्र नामक स्पष्ट पयों पर बने होते हैं (चित्र 5.13)। भ्रूण विकास की दृष्टि से पिच्छ पिच्छ-**पुटकों** से परिवर्धित होते हैं। ये पुटक अधिचर्म के अंतर्वलनों के रूप में होते हैं, जो नीचे चर्म में चले जाते हैं।

स्वयं पिच्छ अपने आच्छद के भीतर और बाहर की ओर को बढ़ता जाता है। आच्छद के भीतर केंद्रीय अक्ष दो भागों में विभाजित हो जाता है, एक तो दूरस्थ पिच्छाक्ष (rachis) जिस पर **पिच्छक (barbs)** बने होते हैं और इन पिच्छकों में अंतर्ग्रथनी संयोजन बने होते हैं, जिन्हें लघुपिच्छक **(barbules)** कहते हैं और दूसरा समीपस्थ पिच्छवृत्त **(calamus)** जो शरीर के साथ जुड़ा होता है।

पिच्छ अनेक प्रकार के होते हैं (चित्र 5.13) आकृति पिच्छ (contour feathers) त्वचा के समीप बने होते हैं, जो तापरोधिता का कार्य करते हैं। रोमपिच्छ (filoplumes) प्राय: प्रदर्शन के लिए विशेषित हुए होते हैं तथा उड्डयन पिच्छ (flight feathers) प्रधान वायुगतिकीय सतह बनाते हैं।

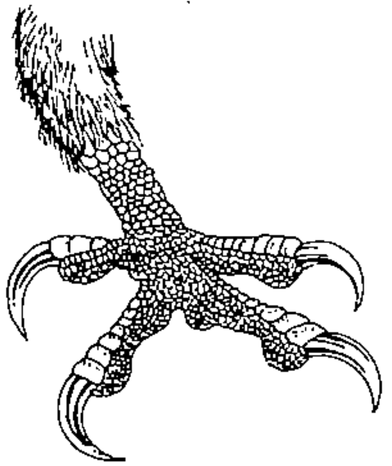

(a)

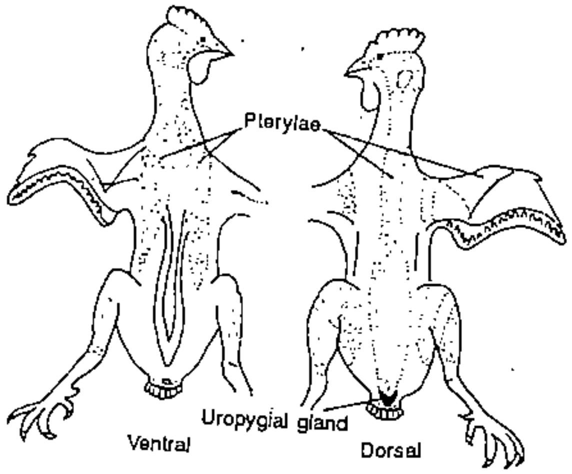

(b)

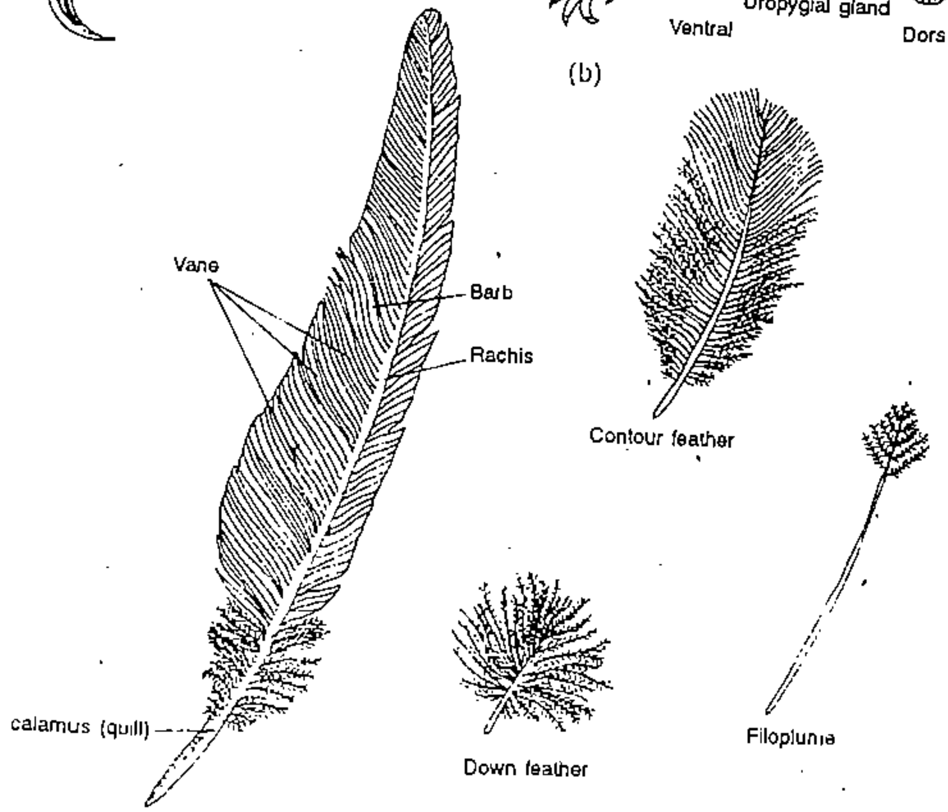

(G) Flight feather

चित्र 5.13 : पक्षी में विभिन्न अधिचर्मी व्युत्पाद। क) अधिचर्मी शल्क पक्षियों की टांगों और पैरों पर बने होते हैं। ख) पिच्छ कुछ मुख्य पिच्छ-क्षेत्रों पर बनते हैं। ग) पिच्छ के विभिन्न प्रकार।

उड्डयन पिच्छों की विशेषता होती है कि उनमें एक लम्बी पिक्षाभ होती है और एक सुव्यक्त पिच्छ-फलक होता है (चित्र 5.13 ग)। इनका प्रथम कार्य संचलन प्रदान करना है। अधिकतर पिच्छ संवेदी उद्दीपन प्राप्त करते हैं और उनमें प्रदर्शन अथवा प्रणय के लिए विभिन्न रंग होते हैं। वर्णकधर कोशिकाएं अधिचर्म में बनी होती हैं तथा उनके वर्णक पिच्छों में पहुंचकर उन्हें रंगदार बना देते हैं।

4. स्तनधारी

अन्य कशेरुकियों की तरह स्तनधारियों की त्वचा में भी दो मुख्य परतें अधिचर्म तथा चर्म होती हैं जो आधार झिल्ली के माध्यम से एक-दूसरे से जुड़ी और परस्पर सम्मुखी होती हैं। इसके नीचे हाइपोडर्मिस होती है, जो संयोजी ऊतक तथा वसा की बनी होती है।

अधिचर्म (एपिडर्मिस)

अधिचर्म स्थानिक रूप में विशेषित हो सकता है, जिससे रोम, नाखून तथा ग्रंथियां बनती हैं। अधिचर्म की एपिथीलियम कोशिकाएं किरैटिनाणु (keratinocytes) हैं और वे किरैटिनीकारी तंत्र में आती हैं, जिससे त्वचा की मृत सतही श्रृंगीय परत बनती है। सतह की किरैटिनीकृत कोशिकाओं का प्रतिस्थापन उन कोशिकाओं से होता है, जो मुख्यत: स्ट्रैटम बेसेली कोशिकाओं से बनती हैं। बेसेली के भीतर की कोशिकाएं समसूत्री विभाजन से विभाजित होती हैं। जैसे - जब ये कोशिकाएं ऊपरी स्तरों की ओर विस्थापित होती हैं, वे विभिन्न किरैटिनीकारी अवस्थाओं में से होकर गुजरती हैं। ये अवस्थाएं स्पष्टत: इन क्रमिक परतों के रूप में दिखाई पड़ती हैं - स्ट्रैटम स्पिनोसम (stratum granulosum) स्ट्रैटम ग्रैनुलोसम (**stratum granulosum**) स्ट्रैटम लुसिडम (**stratum lucidum**) तथा स्ट्रैटम कॉर्नियम (**stratum corneum**) (चित्र 5.14)।

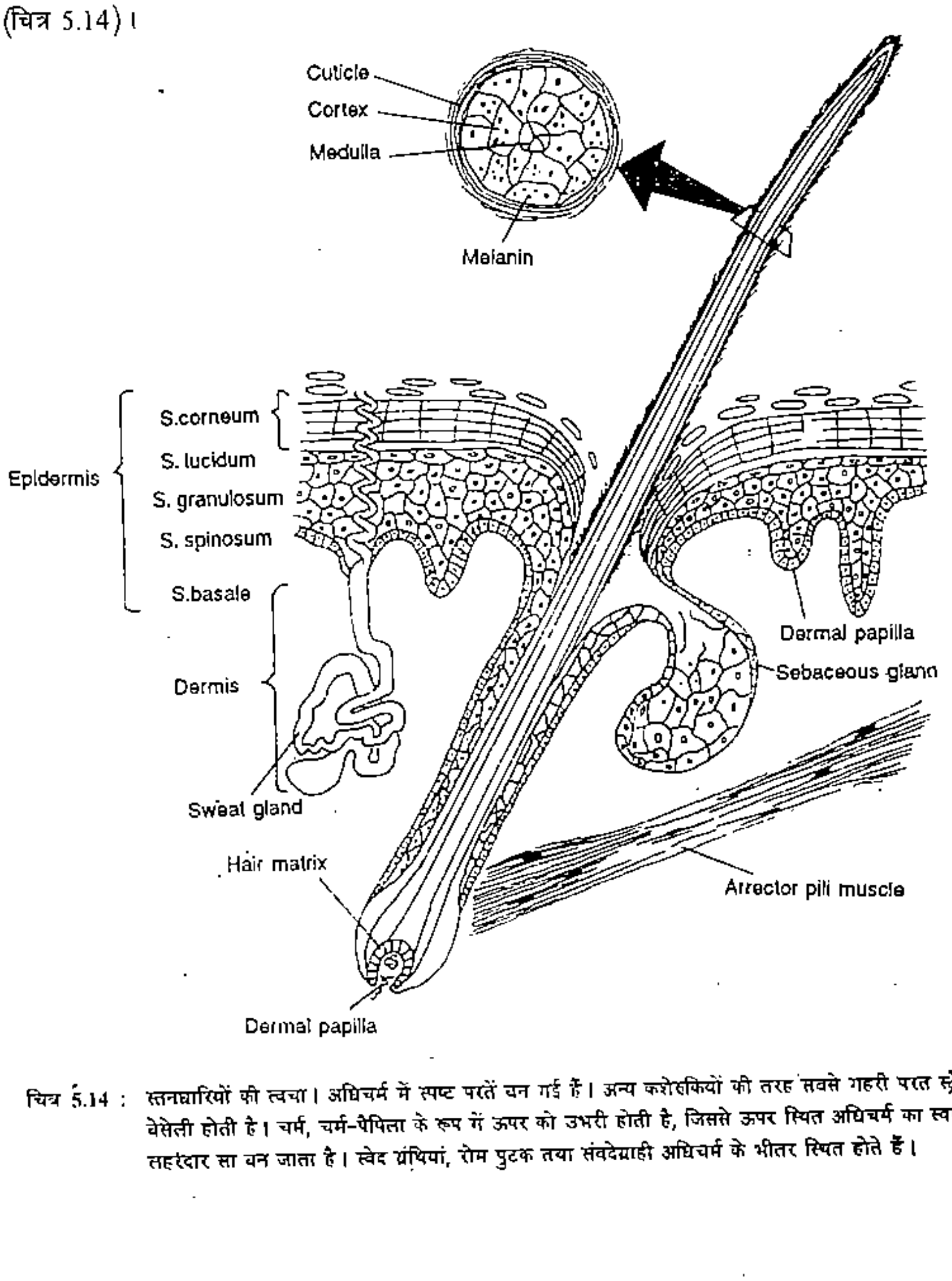

चित्र 5.14 : स्तनधारियों की त्वचा। अधिचर्म में स्पष्ट परतें बन गई हैं। अन्य कशेरुकियों की तरह सबसे गहरी परत स्ट्रैटम बेसेली होती है। चर्म, चर्म-पैपिला के रूप में ऊपर को उभरी होती है, जिससे ऊपर स्थित अधिचर्म का स्वरूप लहरदार सा बन जाता है। स्वेद ग्रंथियां, रोम पुटक तथा संवेदग्राही अधिचर्म के भीतर स्थित होते हैं।

किरैटिनीकरण की प्रक्रिया शरीर के उन क्षेत्रों में, जहाँ त्वचा मोटी होती है, जैसे कि पैरों के तलवों पर, सर्वाधिक स्पष्ट होती है। अन्य स्थानों पर ये परत कम स्पष्ट हो सकती हैं।

अधिचर्म में सबसे अधिक सुव्यक्त कोशिका प्रकार किरैटिनाणुओं का है, परंतु कुछ अन्य प्रकार की कोशिकाएं भी पाई जाती हैं। लेकिन उनके कार्यों के विषय में स्पष्ट जानकारी नहीं है। लैंगरहैंस कोशिकाएं (**Langerhans cells**) ताराकार कोशिकाएं होती हैं, जो स्ट्रैटम स्पिनोसम के ऊपरी भाग में चारों तरफ फैली होती हैं। ये कोशिकाएं प्रतिरक्षा तंत्र की कोशिका-माध्यमित क्रिया में भूमिका निभाती हैं। मर्केल कोशिकाएं (**Merkel cells**) जो तंत्रिक किरीट से निकलती हैं, और निकटवर्ती संवेदी तंत्रिकाओं के साथ संबंधित होती हैं, उत्तेजन के प्रति अनुक्रिया करती हैं। ये मेलैनिन नामक वर्णक की कणिकाओं का स्राव करती हैं और ये कणिकाएं सीधी एपिथीलियम कोशिकाओं में पहुंचा दी जाती हैं। त्वचा का रंग तीन चीजों के संयोजन से बनता है - पीली स्ट्रैटम कॉर्नियम, उसके नीचे स्थित रक्त वाहिकाएं तथा वर्णकीलवक स्रावित काली वर्णक कणिकाएं।

चर्म (डर्मिस)

स्तनी डर्मिस दो परतों वाली होती है। बाहरी पैपिलरी परत में से उंगलियों जैसे प्रवर्ध, जिन्हें डर्मिसी पैपिला (**dermal papillae**) कहते हैं, ऊपर स्थित अधिचर्म की ओर दिए जाते हैं। गहरी जालकीय परत में अनियमित रूप से व्यवस्थित तंतु, संयोजी ऊतक, रक्त वाहिकाएं, तंत्रिकाएं तथा ऐसी चिकनी पेशियां होती है, जो अधिचर्म में नहीं पहुंची होतीं। स्तनीय चर्म से चर्मी हड्डियां बनती है, मगर ये केवल करोटि तथा अंस-मेखला में ही योगदान देती हैं और शायद ही कभी त्वचा में चर्मी शल्क बनाती हैं।

रक्त वाहिकाएं तथा तंत्रिकाएं अधिचर्म में प्रवेश करती हैं। रोम-पुटक तथा ग्रंथियां अधिचर्म में से भीतर को बनी होती हैं (चित्र 5.14)। चर्म आमतौर पर अनियमिततः व्यवस्थित तंतुकी संयोजी ऊतक की बनी होती है तथा इसमें प्रायः लचीले तंतु भी समाए होते हैं, जिससे इसमें फैल सकने की क्षमता आ जाती है और साथ ही पुनः वापिस मूल आकृति भी प्राप्त की जा सकती है। जैसे-जैसे व्यक्ति की उम्र बढ़ती जाती है, त्वचा का लचीलापन समाप्त होता जाता है और त्वचा लटकने लगती है।

रोम

रोम पतले किरैटिनी सूत्र होते हैं। बाल का आधार उसकी जड़ होती है। इसकी शेष लम्बाई को शैफ्ट (shaft) कहते हैं। शैफ्ट की बाहरी सतह पर प्रायः एक उपचर्म बनी होती है। इस परत के नीचे रोम वल्कुट (**hair medulla**) होता है तथा केन्द्रीय भाग रोम-मध्यांश होता है (चित्र 5.14)।

रोम शैफ्ट त्वचा की सतह से बाहर को निकला हुआ होता है परंतु यह चर्म में गड़े अधिचर्मी रोम पुटक के भीतर बनता है। इस पुटक के फैले हुए आधार पर चर्म का एक छोटा-सा गुच्छा जिसे रोम पैपिला (**hair papilla**) कहते हैं, फॉलिकल को उभरा होता है। फॉलिकल के भीतर स्थित वर्णकधर वर्णक कणिकाएं बनाकर उन्हें रोम शैफ्ट में पहुंचा देते हैं, जिससे उसे और अधिक रंग प्राप्त हो जाता है। चर्म में गड़ी चिकनी पेशियों की एक पतली पट्टी जिसे रोम-उद्धर्षी पेशी (arector pili) कहते हैं, फॉलिकल से जुड़ी होती है और यही पेशी ठंड, भय अथवा क्रोध की दशा की अनुक्रिया के रूप में रोम को खड़ा कर देती है।

कुछ रोम विशेषित हुए होते हैं। अनेक स्तनधारियों के थूथनों को घेरती हुई गलमुच्छों (**vibrissae** अथवा **whiskers**) की जड़ों के साथ संवेदी तंत्रिकाएं संबंधित रहती हैं। ये संरचनाएं रात्रिचर स्तनधारियों और सीमित प्रकाश वाले बिलों में रहने वाले स्तनधारियों में आमतौर से पाई जाती हैं। सेही (porcupines) के गल (gulls) दृढ़, स्थूल बाल वाले होते हैं, जो सुरक्षा के लिए विशेषित हो गए हैं।

ग्रंथियां

स्तनधारियों में मुख्यतः दो प्रमुख प्रकार की ग्रंथियां पाई जाती हैं : तैल ग्रंथियां तथा स्वेद (पसीना) ग्रंथियां। इन्ही से व्युत्पन्न हुई है- गंध ग्रंथिया एवं स्तन ग्रंथियां।

तेल ग्रंथियों से एक तैलीय स्राव सीबम (sebum) निकलता है, । यह रोम-पुटक पर छोड़ा जाता है ताकि समूर (fur) ठीक और जलरोधी बना रहे। तेल ग्रंथियां हथेलियां तथा तलवों पर अनुपस्थित होती है, मगर वे बिना रोमों से संबंध बनाए मुख के कोणों पर, शिश्न पर, योनि के निकट तथा स्तन चुचकों के बराबर में बनी होती हैं। बाहरी कान की नलिका की मोम ग्रंथियां तथा पलक की मायबोमी ग्रंथियां (Meibomian glands) जिनसे स्रावित एक तैलीय पतली परत नेत्रगोले की सतह पर बनती है, ये दोनों भी तेल ग्रंथियों के रूपांतरण हैं।

स्वेद ग्रंथियों से एक जलीय उत्पाद पसीना निकलता है। पसीने की श्यानता (viscosity) (यानि गाढ़ा या पतला) के आधार पर दो प्रकार की स्वेद ग्रंथियां होती हैं, जो रोम पुटक से संबंधित हो सकती है या नहीं भी हो सकती और इस आधार पर कि वे कार्य करना कब आरम्भ करती हैं (यौवनारम्भ) के समय से या उससे पहले से)। इनका एक प्रकार वे हैं, जिनसे पतला पसीना निकलता है, जो रोम पुटक से संबंधित होती है तथा जो यौवनारम्भ से पहले ही कार्य करना शुरू कर देती हैं। इनके उत्पाद देह-तापमान के नियमन में कार्य करते हैं। दूसरे प्रकार की ग्रंथियां गाढ़ा (श्यान) पसीना निकालती हैं, ये रोम फॉलिकल के साथ संबंधित होती हैं और यौवनारम्भ से पहले ही कार्य करने लगती हैं। इस दूसरे प्रकार की ग्रंथियों का कार्य देह गंध को प्रदान करना है।

स्वेद ग्रंथियां सभी स्तनधारियों मे नही पाई जाती और शरीर पर उनका वितरण भी अलग-अलग होता है। चिम्पैंजियों तथा मानवों में स्वेद ग्रंथियां सर्वाधिक संख्या में पाई जाती हैं, जिनमें से कुछ ग्रंथियां हथेलियों तथा तलवों पर भी पाई जाती हैं। बत्तखचोंची प्लैटिपस (platypus) में स्वेद ग्रंथियां केवल थूथन तक ही सीमित होती हैं। हिरनों में ये पूंछ की जड़ पर बनी होती हैं। हाथियों में स्वेद ग्रंथियां तथा तैल ग्रंथियां पूर्णतः अनुपस्थित होती है।

गंध ग्रंथियां स्वेद ग्रंथियों से ही व्युत्पन्न होती हैं और इनसे ऐसे स्राव निकलते हैं, जिनका काम सामाजिक संचार में योगदान देना है। इन ग्रंथियों के स्राव प्राणियों के अपने-अपने क्षेत्र को चिह्नित करने में प्राणी को पहचानने में तथा प्रणय के दौरान परस्पर संचार करने में प्रयोग होते हैं।

स्तन ग्रंथियों को भी स्वेद ग्रंथियों से अथवा कदाचित तैल ग्रंथियों से व्युत्पन्न हुआ माना जाता है। ये केवल मादा में कार्यशील होती हैं और इनसे दूध निकलता है, जो वसा, कार्बोहाइड्रेट तथा प्रोटीन का एक जलीय मिश्रण होता है और जिससे बच्चे का पोषण होता है। स्तन ग्रंथियों की संख्या अलग-अलग स्पीशीज़ में अलग-अलग होती है। शिशु को स्तनपान कराने के लिए दूध का निकलना दुग्ध स्रवण (lactation) कहलाता है। स्तन ग्रंथियां बहुसंख्यक लघुपालियों (lobules) की बनी होती हैं। प्रत्येक लघुपालि, स्रावी कूपिकाओं (alevoli) का एक समूह होती है जिस पर दूध बनता है। कूपिकाएं एक सम्मिलित वाहिनी पर खुलती हैं और फिर यह वाहिनी एक उठे हुए अधिचर्मी पैपिला अथवा निपल (nipple) के द्वारा बाहर सतह पर खुलती है। निपल को घेरता हुआ त्वचा का एक वर्णकित क्षेत्र होता है, जिसे एरियोला (areola) कहते हैं। कूपिका वाहिनियां एक सम्मिलित कक्ष अथवा सिस्टर्न में खुलती हैं, जिस पर अधिचर्म का एक लम्बा कॉलर बना होता है, जिसे "टीट" (teat) अथवा चूचुक कहते हैं (चित्र 5.15 क, ग)। स्तन ग्रंथियों के नीचे वसा ऊतक बन गया होता है, जिससे स्तन (breasts) बन जाते हैं।

अंडजस्तनियों में निपल तथा चूचुक नहीं होते तथा स्तन भी नहीं होते। दूध वाहिनियों में से त्वचा की सतह पर बने चपटे हो गए दुग्ध-चप्पों अथवा एरियोला पर छोड़ा जाता है (चित्र 5.15 क)। शिशु के थूथन का बिंदु सतह पर ठीक से बैठे जाने के लिए अनुकूल आकृति का होता है, जिससे दूध का प्रबल चूषण हो सके। लैंगिक परिपक्वता आने पर स्तन ग्रंथियों के नीचे वसा ऊतक बनता जाता है, जिससे स्तन बन जाते हैं और दूध निकलता है।

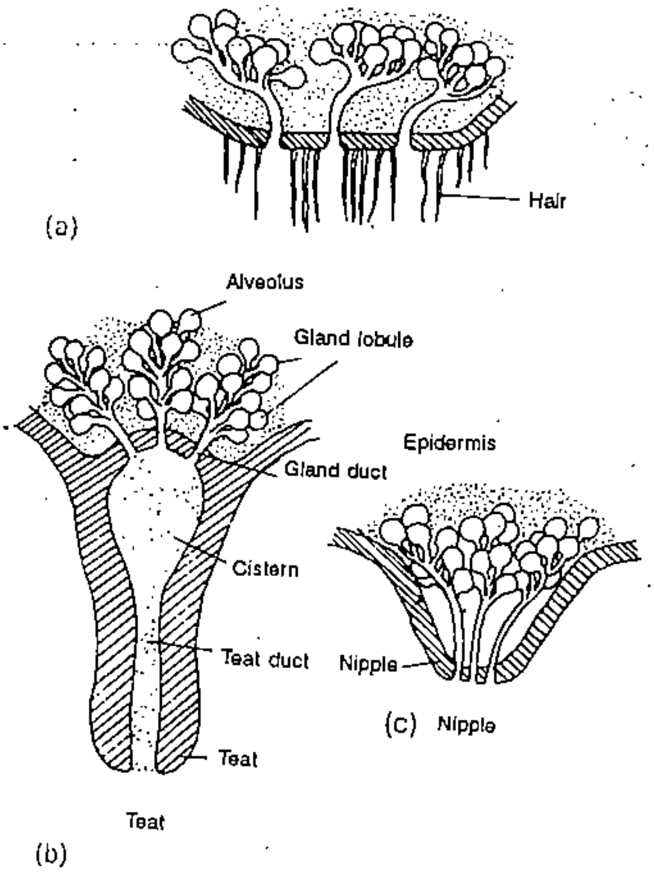

चित्र 5.15 : स्तन ग्रंथियां। क) अंडजस्तनियों में, स्तन ग्रंथियां बाहर को त्वचा की अविशेषित सतह पर खुलती हैं, तथा शिशु अपने चूषन से त्वचा को उस जगह जहाँ ये ग्रंथियां खुलती हैं, दबाते हैं। ख) कुछ शिशुधानी स्तनधारियों की स्तन वाहिनियां त्वचा के विशेषित भागों पर खुलती हैं। ग) निपल एक उभरा हुआ अधिचर्मी पैपिला होता है, जिसके चारों ओर शिशु के ओष्ठ ठीक से बैठ जाते हैं और वह दूध पीता जाता है।

बोध प्रश्न 1

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

क) चर्मी हड्डियां .... में सर्वाधिक सुव्यक्त होती हैं।

ख) मछलियों तथा जलीय कशेरुकियों में चर्म के कोलैजेन तंतु व्यवस्थित होकर त्वचा की .... परत बनाते हैं।

ग) थलीय कशेरुकियों में शरीर को ढकने वाली अधिचर्म प्रायः एक किरैटिनीकृत परत बनाती है, जिसे .... कहते हैं।

घ) मोटी हो गई किरैटिनीकृत परत के रूप में अधिकर्मी वलनों से .... बनते हैं।

च) अधिचर्म की सबसे गहरी परत स्ट्रैटम बेसेली .... के ऊपर टिकी होती है।

बोध प्रश्न 2

निम्न को परस्पर मिलाइए :

i) उरू ग्रंथियां	क) पक्षी
ii) पश्चातकूट	ख) मगरमच्छ
iii) गंध ग्रंथियां	ग) छिपकलियां
iv) स्तन ग्रंथियां	घ) स्तनधारियों की पलकें
v) मायोबोमी ग्रंथियां	च) मादा स्तनी
vi) तैल ग्रंथियां	छ) स्तनधारी

बोध प्रश्न 3

निम्न के नाम लिखिए :

क) मछलियों की अधिचर्म में पाई जाने वाली दो प्रकार की कोशिकाएं।

....

ख) कॉण्ड्रिक्थीइस में पाई जाने वाली सतही दंतिकाएं।

....

ग) अस्थिल मछलियों में पाए जाने वाले ऐसे शल्क जिनमें विशेषकर एक मोटी इनैमेल होती है।

....

घ) वे चतुष्पाद, जिनमें त्वचा विशेषित होकर एक श्वसन सतह बन गई है।

....

च) वे सरीसृप जिनमें आस्टियोडर्म होते हैं।

....

छ) वह मुख्य संरचना, जो पक्षियों को अन्य सभी कशेरुकियों से पृथक करती है।

....

बॉक्स 5.1 : विष बाण तथा विषैले मेंढ़क

अधिसंख्य उभयचरों की त्वचा में ग्रंथियां होती हैं, जिनसे ऐसे उत्पाद स्रावित होते हैं, जो दुस्सवाद होते हैं या यहाँ तक कि अपने परभक्षियों के लिए विषैले भी हो सकते है। नया दुनिया के उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में मेंढ़कों का एक ऐसा वर्ग रहता है, जिन्हें विष बाण मेंढ़क कहा जाता है, इनसे मुख्य रूप से विषैले स्राव निकलते हैं। इस क्षेत्र के मूल निवासी प्रायः इन मेंढ़को को इकठ्ठा करते हैं और फिर उन्हें छड़ियों के ऊपर टिका कर आग के ऊपर लाते हैं जिससे कि मेंढ़क उत्तेजित होकर इन स्रावों को बाहर छोड़ते हैं जिन्हें ये लोग अपने बाणों की नोक पर लगा लेते हैं। इन विषयुक्त बाणों से आहत शिकार शीघ्र ही अचेत हो जाता है अथवा मर जाता है।

5.5 त्वचा के विशेषित व्युत्पाद

5.5.1 नाखून, नखर, खुर

नाखून: नाखून हाथ-पैरों की उंगलियों की सतहों पर बनी कसकर संहत हुई, श्रृंगीकृत एपिथीलियमी कोशिकाओं की प्लेटों के रूप में होते हैं। अतः इस प्रकार ये त्वचा के किरैटिनीकारी तंत्र के उत्पाद होते हैं। नाखून के आधार पर नाखून का मैट्रिक्स (आधात्री) नया नाखून बनाता जाता है, जिससे पहले से बना नाखून आगे-आगे को बढ़ता जाता है ताकि मुक्त सिरे पर घिस गए अथवा टूट गए नाखून की पीछे से कमी पूरी होती रहती है। नाखून उंगलियों के सिरों की सुरक्षा करते हैं ताकि उनमें कोई अचानक यांत्रिक क्षति न आ जाए। ये हाथ-पैरों की उंगलियों के सिरों पर मौजूद त्वचा को स्थायी बनाए रखने में भी सहायता करते हैं ताकि उसकी विपरीत दिशा में पकड़ी जा रही वस्तु एक मजबूत घर्षण पकड़ बन सके।

नाखून केवल प्राइमेट्स में ही होते हैं (चित्र 5.16 क)। अन्य कशेरुकियों में प्रत्येक उंगली के अंत पर किरैटिनीकारी तंत्र से या तो नखर (claws) बनते हैं या खुर (hooves) (चित्र 5.16 ख, ग)।

नखर : नखर अथवा टैलॉन (talons - पंजे) उंगलियों के सिरों से निकले वक्रत: घुमावदार एव पाश्वत: सम्पीड़ित किरैटिनीकृत प्रवर्ध होते हैं। ये कुछ उभयचरों में तथा अधिसंख्य पक्षियों, सरीसृपों तथा स्तनधारियों में होते हैं।

खुर : खुरधारी प्राणियों की उंगलियों के सिरों पर बनी बड़े आकार की किरैटिनीकृत प्लेटे होती हैं।

5.5.2 सींग तथा श्रृंगाभ

सींगदार छिपकलियों में शीर्ष के पीछे से निकले हुए प्रवर्ध जो सींग जैसे दिखाई पड़ते हैं, वे वास्तव में विशेषित नुकीले अधिचर्मी शल्क होते हैं। कशेरुकियों में वास्तविक सींग (Horn) अथवा श्रृंगाभ (antelers) केवल स्तनधारियों में ही होते पाए जाते हैं।

सींगों तथा श्रृंगाभों के बनने में त्वचा और उसके साथ-साथ नीचे स्थित हड्डी दोनों का योगदान होता है। जैसे-जैसे ये संरचनाएं आकृति प्राप्त करती जाती हैं, वैसे-वैसे नीचे पड़ी हड्डी भी ऊपर को उठती है और अपने साथ ऊपर की त्वचा को भी ऊपर उठाती है। सींगों के मामले में संबंधित त्वचा. से एक कड़ा श्रृंगीकृत आच्छद बन जाता है, जो अस्थिल क्रोड के ऊपर सही-सही बैठ जाती है (चित्र 5.17 क)। श्रृंगाभों में ऊपर स्थित जीवित त्वचा (जो मखमल - velvet कहलाती है) प्रकटत: आकृति प्रदान करती है और वृद्धिशील हड्डी में रक्तवाहिकीय आपूर्ति करती है। अंतत: "वेलवेट" झड़ जाती है और आधारीय हड्डी अब अनावृत्त हो जाती है। यह वह हड्डी वाला भाग है, जो अंतिमरूपी श्रृंगाभों का वास्तविक पदार्थ होता है (चित्र 5.17 ख)।

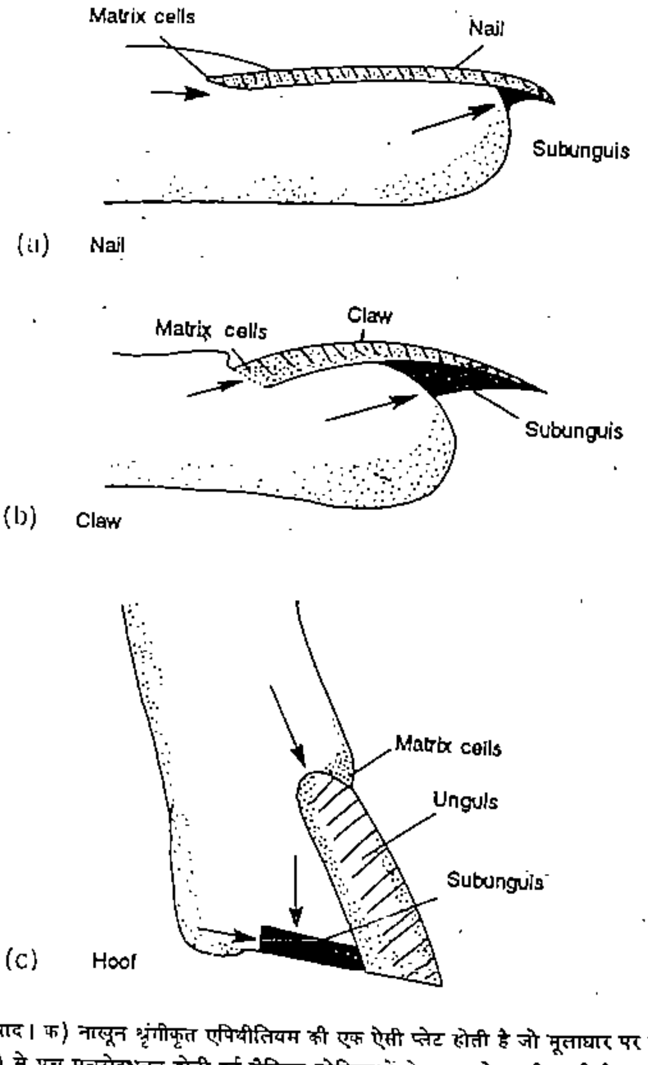

चित्र 5.16 : अधिचर्मी व्युत्पाद। क) नाखून श्रृंगीकृत एपिथीलियम की एक ऐसी प्लेट होती है जो मूलाधार पर तथा अवनखर (subunguis) से प्रच प्रचुरोद्भवन होती हुई मैट्रिक्स कोशिकाओं से बाहर हो बढ़ती जाती है। ख) नखर, ग) खुर।

वास्तविक श्रृंगाभ केवल सर्विडी (cervidae) फैमिली के सदस्यों में ही (जैसे मृग, एल्क, मूज आदि में) पाए जाते हैं। प्ररूपत: केवल नर प्राणियों में ही श्रृंगाभ होते हैं। इनमें ये विशाखित होते हैं तथा हर वर्ष झड़ जाया करते हैं। मगर कुछ अपवाद भी हैं। मृग में श्रृंगाभ आम तौर पर एक मुख्य शालाख होती है, जिसमें से छोटी-छोटी नुकीली शाखाएं सी निकली होती हैं।

श्रृंगाभों की वृद्धि एवं उनके झड़ जाने का वार्षिक चक्र, उदाहरण के लिए सफेद पूंछ वाले मृग में, हॉर्मोनी नियंत्रण में होता है। बसंत में बढ़ती जाती दिन की रोशनी से पीयूष ग्रंथि उत्तेजित होती है, जिससे हॉर्मोन निकलते हैं और ये हॉर्मोन श्रृंगाभों को करोटि की हड्डियों के स्थलों से उगने-उभरने के लिए प्रेरित करते हैं। बसंत के समाप्त होते-होते वृद्धिशील श्रृंगाभों पर मखमल (वैलवेट) बन चुका होता है। शरद ऋतु आने के पूर्व वृषणों से निकलने वाले हॉर्मोन पीयूष का संदमन करते हैं और मखमल सूख जाता है।

वास्तविक सींग स्तनधारियों में बावाइडी (bovidae) फैमिली के सदस्यों में ही पाए जाते हैं (जैसे कि गाय-भैंसों, कुरंगों, भेड़ों, बकरियों, बिसॉन में)। सींग सामान्यत: नर और मादा दोनों में ही पाए जाते हैं और वे वर्ष पर्यंत बने रहते हैं तथा प्राणी के पूरे जीवनकाल में वृद्धि करते रहते हैं। सींग अविशाखित होता है तथा ये एक अस्थिल क्रोड और उसके ऊपर चढ़े एक किरैटिनीकृत आच्छद के बने होते हैं।

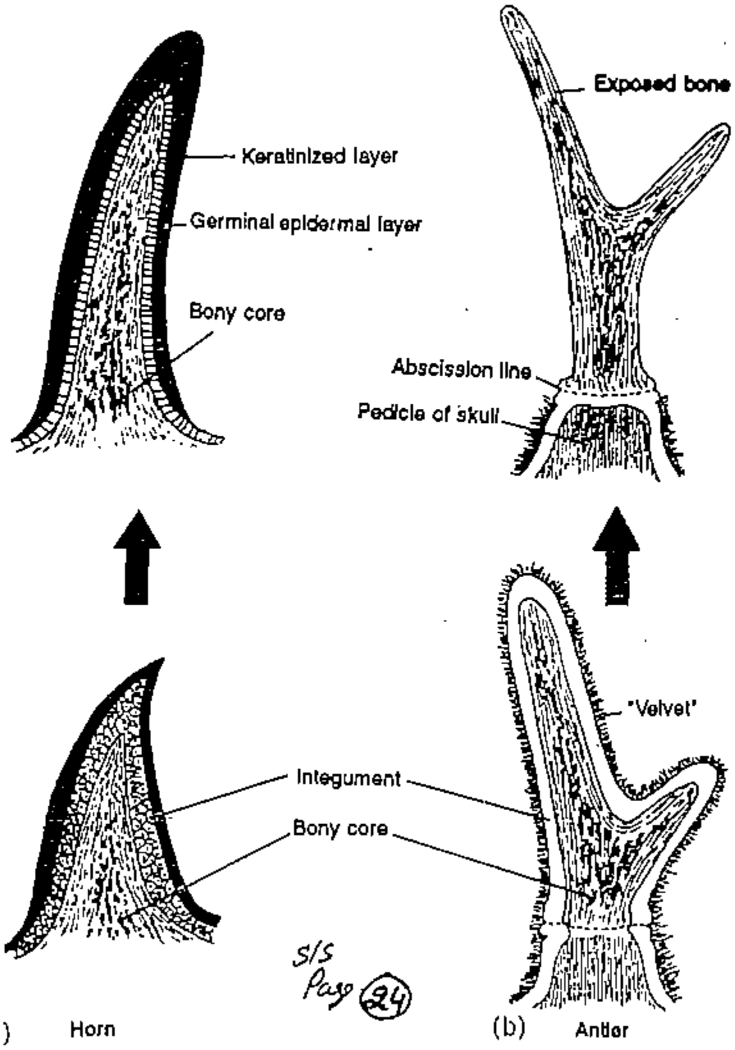

चित्र 5.17 : सींग तथा श्रृंगाभ। क) सींग त्वचा के नीचे से निकली बहिर्वृद्धियों के रूप में प्रकट होते हैं और यह त्वचा एक किरैटिनीकृत आच्छद बना लेती है। ख) श्रृंगाभ भी उपरिशायी त्वचा के नीचे करोटि की बहिर्वृद्धियों के ही रूप में प्रकट होते हैं, इस उपरिशायी त्वचा को उसके स्वरूप के ही कारण "वैलवेट" कहते हैं।

बोवाइडों के वास्तविक श्रृंगों से भिन्न, प्रॉन्गहार्न (pronghorn) ऐंटीलीकैप्रिडी (Antelocapridae) फैमिली के सींग वयस्क नरों में द्विशाखित होते हैं। गैंडे के सींग में अस्थिल क्रोड नहीं होता, जिससे कि यह पूर्णत: त्वचा का ही उत्पाद होता है। यह संहत किरैटिनी तंतु से बनता है।

5.5.3 तिमि श्रृंगास्थि

मिस्टिसेटी (Mysticete) ह्वेलों के मुख के भीतर की त्वचा से तिमि श्रृंगास्थि (baleen) की प्लेटें बनती हैं, जो फैलाए हुए मुख के भीतर को खींच लिए गए पानी में से क्रिल (krill) को निकाल लेने के लिए एक छलनी का सा काम करती है। यद्यपि कभी-कभी इस संरचना को "ह्वेलबोन" भी कहा जाता है मगर वास्तव में इसमें कोई हड्डी नहीं होती। यह त्वचा से निकली हुई किरैटिनीकृत प्लेटों की एक श्रृंखला होती है। इसके बनने के दौरान चर्म-पैपिलाओं के समूह बाहर की ओर को बढ़ते और लम्बे होते जाते हैं और साथ में ऊपर बनी अधिचर्म को भी लेते जाते हैं। यह अधिचर्म इन प्रवर्धी पैपिलाओं की सतह के ऊपर किरैटिनीकृत परत बन जाती है। ये सारे पैपिला तथा उनकी आवरक अधिचर्म ही सामूहिक रूप में बैलीन की प्लेटें होती हैं (चित्र 5.18)।

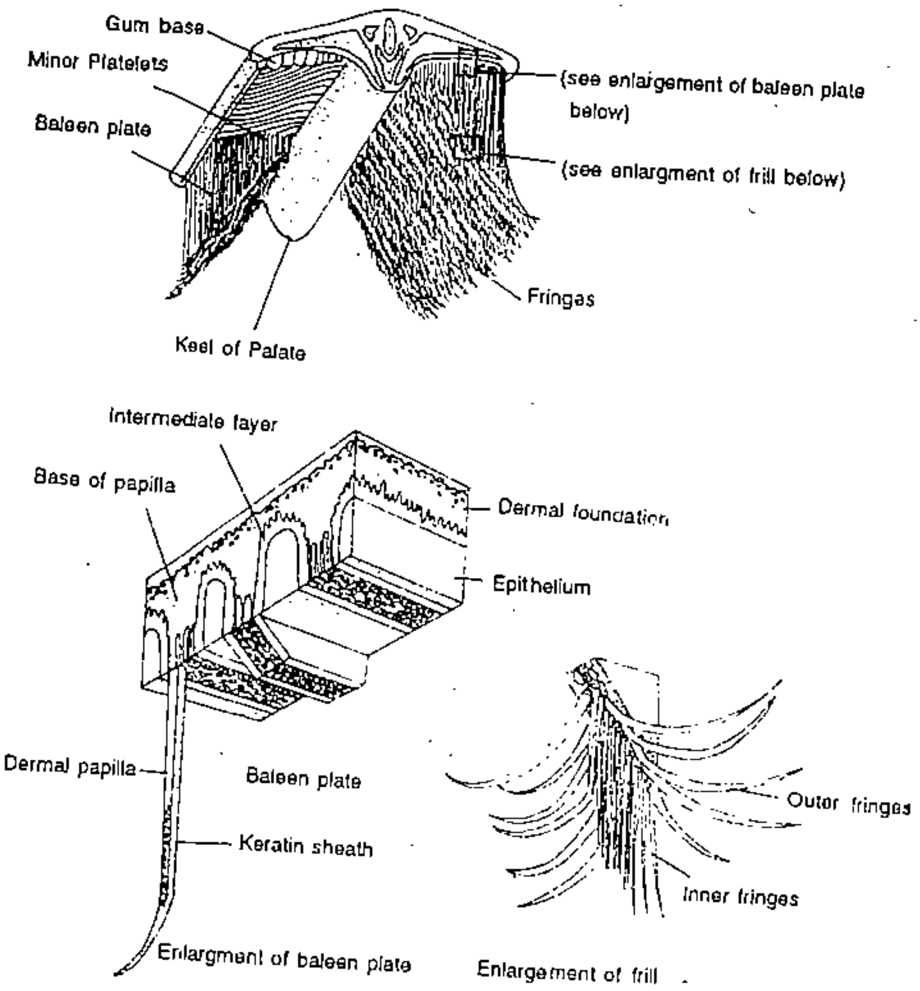

चित्र 5.18: ह्वेल की बेलीन। मुख के भीतर के अस्तर में एक एपिथीलियम शामिल होती है, जिसमें किरैटिनीकृत संरचनाओं को बनाने की क्षमता होती है। बाहर को वृद्धि करती एपिथीलियम के समूह किरैटिनीकृत हो जाते हैं तथा झालर जैसा स्वरूप ग्रहण करते हुए बेलीन बना देते हैं।

5.5.4 शल्क

शल्कों के अनेक कार्य हैं। अधिचर्मी तथा चर्मी दोनों ही प्रकार के शल्क कड़े होते हैं, जिसके कारण जब कभी उनके ऊपर कोई यांत्रिकीय आघात अथवा सतह पर खरोंच-रगड़ लगती हो, तो ये नीचे स्थित ऊतकों को क्षति नहीं पहुंचने देते। शल्कों के सघन होने से दो लाभ मिलते हैं- एक तो बाहर के रोगजनकों के लिए अवरोध प्रदान करना और दूसरा शरीर से जल को बाहर निकल जा सकने को कम करना।

शार्कों तथा मछलियों में शल्क शरीर की परिसीमा परत पर होने वाले विक्षोभ को कम करके तैरने की दक्षता को बढ़ाते हैं। कुछ सरीसृप अपना शरीर सूरज की ओर घुमाकर अथवा उससे दूसरी तरफ ले जाकर अवशोषित होने वाली सतही गर्मी की मात्रा का नियमन करते हैं।

अधिचर्मी शल्क सरीसृपों की त्वचा के प्रमुख घटक होते हैं। ये पक्षियों की टांगों पर और कुछ स्तनधारियों में जैसे कि बीवर में वे पूंछ पर बने होते हैं।

5.5.5 चर्मीय कवच

ऑस्ट्रैकोडर्म तथा प्लैकोडर्म मछलियों में उनके ऊपर का कवच चर्मी हड्डी का बना होता है। चर्मी हड्डी (dermal armour) चर्म का उत्पाद होती है, इसलिए इसमें विविध संरचनाएं पाई जाती हैं। अस्थिल मछलियों के शल्कों को चर्म हड्डी की सहारा प्रदान करती है लेकिन चतुष्पादों में चर्मी हड्डी के समाप्त हो जाने की प्रवृत्ति होती है। पक्षियों तथा अधिकतर स्तनधारियों की त्वचा में यह चर्मी हड्डी होती ही नहीं। इसके दो अपवादों का वर्णन पहले ही किया जा चुका है। एक तो जीवाश्म स्तनी ग्लिप्टोडॉन (Glyptodon) और दूसरा जीवित आर्मेडिल्लो (Armadillo) जिनकी त्वचा पर चर्मी हड्डियां होती हैं। मगर कुछ चर्मी हड्डियां मछलियों की करोटि एवं उनकी अंस मेखला में भी होती हैं।

कछुए का कवच एक मिली-जुली संरचना है। कवच का पृष्ठ आधांश पृष्ठवर्म (carapace) है, जो फैल गई पसलियों तथा कशेरुकाओं के साथ चर्मीय हड्डियों के समेकन से बनता है। अधर दिशा में अधरवर्म (plastron) होता है, जो पेट के सहारे-सहारे चर्मीय हड्डियों के समेकन से बना हुआ है। अर्धांश पृष्ठवर्म तथा अधरचर्म दोनो की सतह पर अधिचर्म की किरैटिनीकृत प्लेटें नीचे पड़ी हड्डी को बाहर से ढके रहती है।

5.5.6 श्लेष्मा

त्वचा से निकलने वाले श्लेष्मा (mucus) के अनेक कार्य हैं। जलीय कशेरुकियों में यह रोगजनकों को भीतर प्रवेश करने से रोकता है और यहां तक कि इसमें कुछ मात्रा में जीवाणु-प्रतिकारी क्रिया भी होती हैं। थलीय उभयचरों में श्लेष्मा त्वचा को गीला बनाए रखता है ताकि विनिमय का कार्य होता रहे। त्वचा श्वसन यद्यपि उभयचरों में ही अधिक मात्रा में होता है, मगर यह अन्य अनेक कशेरुकियों में भी होता पाया जाता है। उदाहरणत: कई कछुए जब वे जाड़ों में हिमाच्छादित तालाबों में नीचे डूबे रहकर शीतनिष्क्रियता में लीन हुए रहते हैं, तब ये त्वचीय गैस विनिमय पर निर्भर रहते हैं। समुद्री सांपों में उनके पूरे ऑक्सीजन ग्रहण का 30 प्रतिशत तक का भाग त्वचीय श्वसन द्वारा लिया जाता हो सकता है। इसी प्रकार प्लेस, यूरोपीय ईल तथा मडस्किपर जैसी कुछ मछलियां भी अपनी उपापचयी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कुछ मात्रा में त्वचीय गैस-विनिमय पर भी निर्भर रहती हो सकती हैं।

श्लेष्मा का कुछ योगदान जलीय संचलन में भी हो सकता है। सतही आवरण के रूप में यह सतही अनियमितताओं तथा अधिचर्म के ऊपर के खुरदरेपन को चिकना-सपाट सा बना देता है, जिससे अपेक्षाकृत श्यान जल में से तैरते समय सामने आने वाला घर्षण-प्रभाव कम हो जाता है।

5.5.7 वर्ण

त्वचा का रंग तीन प्रकार की मिश्रित परस्परक्रिया से बना होता है। ये हैं: त्वचा के भौतिकीय, रासायनिक तथा संरचनात्मक गुणधर्मों के बीच होने वाली परस्पर क्रियाएं। रक्त की आपूर्ति से त्वचा लाल हो सकती है। जैसे - चेहरे का लाल हो जाना (blushing)। अनेक पक्षियों में जो नीले रंग के पर होते हैं, जैसे कि किलकिला (kingfisher), नीलकंठ (blue jag) तथा "ब्लू बर्ड"। इन रंगों का आधार इनके परों के पिच्छकों के भीतर वायु से भरी गुहाओं का होना है, जो प्रकाश के टिण्डल प्रकीर्णन (Tyndall scattering) के सिद्धांत का उपयोग करके रंग प्रदान करती है। टिण्डल प्रकीर्णन से, जिसे विभेदनी प्रकीर्णन् भी कहते हैं, प्रकृति में दिखने वाले अनेक रंग प्रकट होते हैं। इसी सिद्धांत के आधार पर स्वच्छ आकाश नीला दिखाई पड़ता है। पक्षियों के अन्य बहुत से रंग जैसे कि काला, भूरा, लाल, नारंगी तथा पीला वर्णकों के कारण होते हैं। वर्णकों से रंग का प्रकट होना चयनात्मक प्रकाश परावर्तन द्वारा होता है। व्यतिकरण (interference) की परिघटना से रंगदीप्ति (iridescence) के रंग बनते हैं।

इन विविध प्रकार की भौतिक परिघटनाओं से रंग बनाने वाले वर्णक वर्णकधरों में संश्लिष्ट होते हैं और वहीं पाए जाते हैं। अधिकतर वर्णकधर भ्रूणीय तंत्रिकाकिरीट से निकले होते हैं और वे शरीर में लगभग कहीं भी जाकर टिक सकते हैं।

आकृति, संघटना तथा कार्य के आधार पर वर्णकधरों के चार वर्ग होते हैं। इनमें से सर्वाधिक जाना-माना वर्ग मेलैनोफोरों (melanophores) का है, जिनमें मैलेनिन वर्णक होता है। मेलैनोफोर दो प्रकार के होते हैं। चर्मी मेलैनोफोर चौड़ी चपटी कोशिकाएं होती हैं, जिनसे रंग जल्दी से बदल जाता है और ये केवल बाह्योष्मी (ectotherm) प्राणियों में पाए जाते हैं। अधिचर्मी मेलैनोफोर पतली और लम्बी कोशिकाएं होती हैं जो आन्तरोष्मी प्राणियों (endotherms) में मुख्य रूप से पाई जाती हैं, यद्यपि वे होतीं तो सभी कशेरुकियों में हैं। दूसरी प्रकार के वर्णकधरों को इरिडोफोर (iridophore) कहते हैं, जिनके भीतर प्रकाश-परावर्ती, क्रिस्टलीय ग्वानीन पट्टिकाएं होती हैं। इस प्रकार की कोशिकाएं बाह्योष्मी (ectothermic) कशेरुकियों में होती हैं तथा कुछ पक्षियों की आंख के आइरिस में होती हैं। अन्य दो प्रकार के वर्णकधर एक तो पीले रंग को भीतर समेटे हुए जैंथोफोर (xanthrophore) होते हैं और दूसरे लाल वर्णकधारी एरिथ्रोफोर (erythrophore) होते हैं।

सूर्य के प्रकाश से वर्णकधर की क्रिया में शरीरक्रियात्मक परिवर्तन हो सकते हैं। अधिक प्रकाश-उद्भासन से वर्णक कणिकाओं का अधिक मात्रा में बनना उत्तेजित होता है, जिससे कुछ दिनों के भीतर त्वचा काली पड़ जाती है।

बॉक्स 5.2: त्वचा का रंग

मनुष्यों में डीहाइड्रोकोलेस्ट्रॉल का विटामिन "डी" में परिवर्तित होने के लिए अल्प मात्रा में UV (परावैंगनी) विकिरणों की आवश्यकता होती है। यह विटामिन सामान्य अस्थि-उपापचयन के लिए आवश्यक है। विटामिन "डी" के अपर्याप्त होने पर हड्डियां नरम और विकृत हो जाती हैं। इसके विपरीत आवश्यकता से अधिक पराबैंगनी विकिरण से गहराई में स्थित सजीव ऊतकों को बहुत क्षति पहुंचती है। सौर विकिरण के इन तरंगदैर्घ्यों (wave lengths) को परावर्तित करने अथवा सुरक्षित रूप में उन्हें अवशोषित करने के उद्देश्य के लिए मात्र त्वचा ही उत्तरदायी नहीं होती। यह कार्य वर्णकधरों तथा वर्णकों का होता है।

प्रतिदिन मात्र कुछ ही मिनटों का सूर्य के प्रकाश का उद्भासन चाहिए होता है, जिससे व्यक्ति की उपापचयी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विटामिन "डी" के पूर्वगामी (डीहाइड्रोकोलेस्ट्रॉल) का पर्याप्त मात्रा में विटामिन में परिवर्तन हो जाता है। उष्णकटिबंधीय प्रदेशों में, भूमध्यरेखा के समीप सूर्य से आने वाला प्रकाश वायुमंडल की अवशोषी परतों में से सीधा गुजरता हुआ पृथ्वी की सतह पर आकर टकराता है। बालों, पिच्छों तथा शल्कों से ढके थलीय कशेरुकियों को सौर-उद्भासन के प्रति कुछ बाह्य सुरक्षा तो मिली ही होती है, आवश्यकता से अधिक विकिरण से विटामिन "डी" की हानिकारक मात्रा बन जाती है,। "सन बर्न" यानि धूप से रंग काला पड़ सकता है तथा त्वचा के कैंसर के होने की अधिक सम्भावना हो जाती है।

त्वचा में वर्णकधरों की संख्या का पाया जाना पराबैंगनी विकिरण के उद्भासन के स्तर के प्रति एक विकासगत अनुकूल है।

बोध प्रश्न 4.

(क) स्तनधारियों की त्वचा में पाई जाने वाली चार अनुक्रमिक परतें कौन-कौन सी होती हैं?

....

....

(ख) मनुष्यों में रोम पुटक से संलग्न वह कौन-सी पेशी है, जिसके द्वारा रोम सीधा खड़ा हो जाता है?

....

....

बोध प्रश्न 5

(क) मनुष्यों में त्वचा को रंग प्रदान करने वाला वर्णक कौन-सा होता है?

....

....

(ख) भ्रामक नाम दिए गए शब्द "ह्वेल बोन" से जिस संरचना का बोध दिया जाता है, वह वास्तव में हड्डी नहीं होती, तो फिर क्या है?

....

....

5.6 सारांश

- त्वचा एक सम्मिश्र अंग है। मूलत: यह अधिचर्म तथा चर्म की बनी होती है, जिनके बीच में आधारक झिल्ली होती है।
- अनेक कशेरुकियों की चर्म से चर्मी हड्डियां बनती हैं, जो मछलियों में सुव्यक्त होती हैं। थलीय कशेरुकियों की अधिचर्म से किरैटिनीकृत परत बनती है, जिसे स्ट्रैटम कॉर्नियम कहते हैं।
- कार्टिलेजी मछलियों में पट्टाभ शल्क होते हैं। अस्थिल मछलियों की विशेषता है, उनमें कॉस्मीनी शल्क तथा चक्राभ शल्क और कंकताभ शल्क होते हैं।
- उभयचरों की त्वचा श्वसन के लिए विशेषित होती है, जिसके द्वारा त्वचीय श्वसन होता है। श्लेष्मा ग्रंथियां तथा विष ग्रंथियां उभयचरों की विशेषताएं हैं। उभयचरों की त्वचा में कभी-कभार वर्णकधर भी पाए जाते हैं।
- सरीसृपों में किरैटिनीकरण कहीं ज्यादा व्यापक होता है। सरीसृपों की त्वचीय ग्रंथियां शरीर के कुछ खास भागों तक ही सीमित होती हैं। अनेक छिपकलियों की जांघों में उरू ग्रंथियां होती हैं। मगरमच्छों तथा कछुओं में गंध ग्रंथियां होती हैं।
- पिच्छों से पक्षियों को अन्य सभी कशेरुकियों से एक अलग पहचान प्राप्त होती है। पक्षियों की त्वचा में पूछ के आधार पर पश्चांतकूट ग्रंथियां होती हैं तथा शीर्ष पर लवण ग्रंथि।
- स्तनधारियों की अधिचर्म विशेषित होकर बाल, नाखून अथवा ग्रंथियां बना लेती हैं। केरैटिनाणु नामक कोशिकाएं अधिचर्म की सबसे सुव्यक्त कोशिकाएं होती हैं। स्तनधारियों की त्वचा का रंग मेलैनिन के कारण होता है। स्तनधारियों में मुख्यत: दो प्रकार की ग्रंथियां होती हैं - तैल तथा स्वेद ग्रंथियां। इन्हीं से व्युत्पन्न हुई होती हैं गंध ग्रंथियां एवं स्तन ग्रंथियां।
- बैलीन, नखर, खुर, सींग, श्रृंगाभ तथा चर्मी कवच, ये सभी त्वचा के विशेषित व्युत्पाद हैं।

5.7 अंत में कुछ प्रश्न

1. टीलियोस्टों के चक्राभ शल्क तथा कंकताभ शल्क में क्या अंतर है?

....

....

....

2. सरीसृपों तथा मछलियों के शल्कों में दो प्रमुख अंतर बताइए।

....

....

....

3. पिच्छों के कौन-कौन से विभिन्न प्रकार होते है? इनके क्या-क्या कार्य हैं?

....

....

....

4. तैल ग्रंथि का क्या कार्य है? स्तनधारियों में पाई जाने वाली विभिन्न प्रकार की तैल ग्रंथियां कौन-कौन सी होती हैं?

....

....

....

5. थलीय कशेरुकियों में किरैटिनीकरण समझाइए।

....

....

....

5.8 उत्तर

बोध प्रश्न

1. क) आस्ट्रैकोडर्म मछलियों
   ख) स्ट्रैटम कॉम्पैक्टम
   ग) स्ट्रैटम कॉर्नियम
   घ) चर्मी शल्क
   च) आधारक झिल्ली

2. i) ग ii) क iii) ख iv) च v) घ vi) छ

3. क) अधिचर्मी कोशिकाएं तथा एक कोशिकीय ग्रंथियां
   ख) पट्टाभ शल्क
   ग) गैनॉइड शल्क
   घ) उभयचर
   च) मगरमच्छ और कुछ छिपकलियां
   छ) पर/पिच्छ

4. क) i) स्ट्रैटम स्पिनोसम
   ii) स्ट्रैटम ग्रैनुलोसम
   iii) स्ट्रैटम ल्युसिडम
   iv स्ट्रैटम कॉर्नियम

   ख) इरेक्टर पाइलाई/रोम उद्धर्षी

5. क) मेलैनिन
   ख) बैलीन

अंत में कुछ प्रश्न

1. चक्राभ शल्क संकेंद्री वलयों के बने होते हैं तथा कंकाभ शल्क में उसके पश्च सीमांत पर पीछे को प्रवर्ध बने होते हैं।

2. मछलियों के शल्क चर्मी उद्भव वाले होते हैं। मगर सरीसृपीय शल्कों में अस्थिल अध:आश्रय नहीं होता और उनमें न ही चर्म का कोई खास संरचनात्मक योगदान होता है। यह अधिचर्म की सतह में बना हुआ एक वलन होता है।

3. पक्षियों में चार मुख्य प्रकार के पिच्छ होते हैं - आकृति पिच्छ, कोमल पिच्छ, रोम पिच्छ तथा उड्डयन पिच्छ। देह पिच्छ देह की सतह को वायुगतिकीय आकृति प्रदान करते हैं। कोमल पिच्छ प्राय: प्रदर्शन के लिए होते हैं और उड्डयन पिच्छ प्रमुख वायुगतिकीय सतह बनाते हैं।

4. तैल ग्रंथियों से एक स्राव सीबम निकलता है। बाहरी कान-नलिका की मोम स्रावित करने वाली मोम ग्रंथियां, पलकों की मीबोमियन ग्रंथियां जो नेत्र गोले की सतह पर एक तैलीय परत का स्रवण करती हैं, ये दोनों तैल ग्रंथियों से ही व्युत्पन्न हुई होती हैं।

5. अधिचर्म के किरैटिनाणु त्वचा की मृत, सतही श्रृंगीकृत परत बनाती हैं। किरैटिनीकृत कोशिकाओं की सतह लगातार निकलती रहती हैं और स्ट्रैटम कॉर्नियम की कोशिकाओं द्वारा प्रतिस्थापित होती रहती हैं।

इकाई 6 पाचन-तंत्र

इकाई की रूपरेखा

6.1 प्रस्तावना

उद्देश्य

6.2 दंत-विन्यास

6.3 अशन क्रियाविधियां

मछलियां तथा ऐम्फ़िबियन

सरीसृप तथा पक्षी

स्तनी

6.4 गैर-स्तनी कशेरुकियों में पाचन-तंत्र

मछलियां तथा ऐम्फ़िबियन

सरीसृप तथा पक्षी

6.5 स्तनीय कशेरुकियों में पाचन-तंत्र

6.6 सारांश

6.7 अंत में कुछ प्रश्न

6.8 उत्तर

6.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने पढ़ा था कि लगभग सभी कशेरुकियों में उनकी त्वचा के भीतर अस्थिल अथवा श्रृंगीय जमाव बन गए होते हैं जो या तो एपिडर्मिसी या डर्मिसी या दोनों ही हो सकते हैं मगर ये उस तरह के न तो कभी क्यूटिकलीय ही होते हैं जैसे कि आर्थ्रोपोड़ों का कवच होता है और न ही कभी मौलस्कों के जैसे केल्सियमी कवच हो सकते हैं। आपने कशेरुकियों के विभिन्न वर्गों में त्वचा के प्रकार्यात्मक रूपांतरणों के विषय में भी पढ़ रखा है। इस इकाई में आप पढ़ेगें कि सभी कशेरुकियों में आहार पदार्थ के पाचन तथा अवशोषण के अंग के रूप में एक आहार-नाल पायी जाती है। पाचन की क्रिया आहार-नाल के किसी एक विशिष्ट क्षेत्र में ही नहीं होती वरन् उसके विभिन्न क्षेत्रों में होती है ताकि आहार-पदार्थ का पाचन पूरा हो सके। यहां हम कशेरुकियों के विभिन्न वर्गों की अशन-क्रिया विधि (feeding mechanism) का वर्णन करेगें जैसे कि मछलियों, ऐम्फ़िबियनों, सरीसृपों, पक्षियों में और स्तनियों में भी। विभिन्न स्तनीय वर्गों जैसे के शाकभक्षियों एवं मांसभक्षियों में हम दंत-सूत्र (dental formula) तथा पाचन-तंत्र का विस्तार से तुलनात्मक वर्णन करेगें।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- कशेरुकियों में दंत-विन्यास के प्रतिरूप का वर्णन कर सकेंगे,
- कशेरुकियों में अशन अनुकूलनों का वर्णन कर सकेंगे,
- स्तनीय कशेरुकियों में आहार-नाल का विकास समझा सकेंगे, और
- शाकभक्षियों, मांसभक्षियों तथा सर्वभक्षियों में आहार-नाल की संघटना को विस्तार से बता सकेगें।

6.2 दंत-विन्यास

इस पाठ्यक्रम की इकाई 4 (खण्ड 4.3) में अपने स्तनियों के दंत-विन्यास (dentition) के विषय में संक्षेप में पढ़ा था। अब आप स्तनियों के दंत-विन्यास के विषय में अधिक विस्तार से पढ़ेगें।

दांत लगभग सभी स्तनियों में पाए जाते हैं, परंतु कुछ में वे वयस्कों में नहीं पाए जाते जैसे कि ह्वेल-बोन ह्वेलों में। ऑर्निथोरिंकस (Ornithorhychus) तथा टैकिग्लॉससं (Tachyglossus) (ऐकिड्ना) में दांत जीवन भर-नहीं होते। कुछ चींटीखोरों जैसे कि एकिड्ना में दांत केवल गर्भावस्था में ही विकसित होते हैं और जब बच्चा गर्भाशय में ही होता है तभी ये दांत झड़ जाते हैं, जिसके फलस्वरूप वयस्क बिना दांतों वाला होता है।

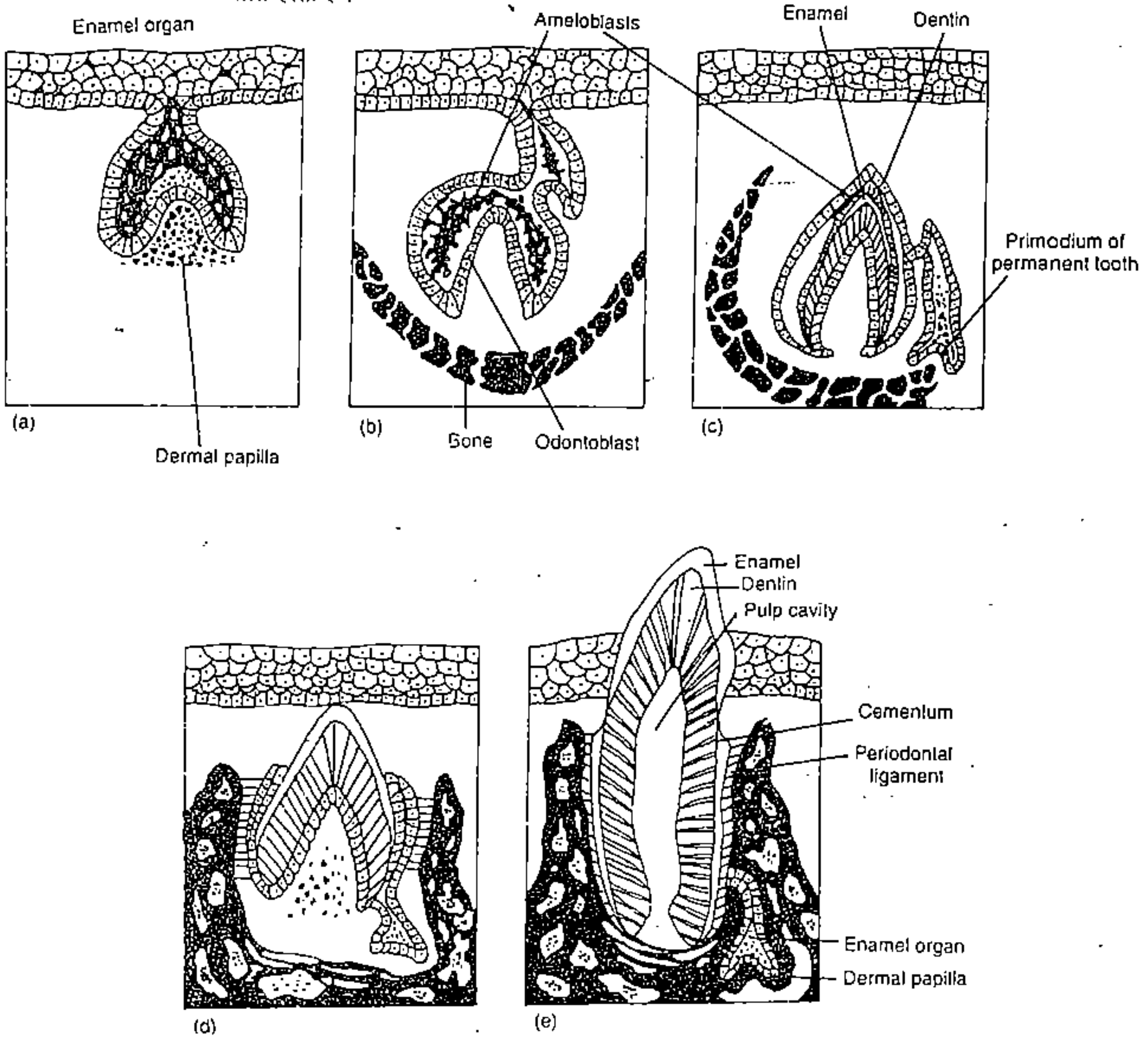

चित्र 6.1: स्तनीय दांत का परिवर्धन। (a) इनैमल अंग (एपिडर्मिस से) तथा डर्मल पैपिला (डर्मिस से) प्रकट होते हैं, (b) ऐमेलोब्लास्ट (ameloblasts) नामक कोशिकाएं इनैमल-अंग से बनती हैं तथा यही कोशिकाएं दांत के इनैमल का स्रोत होती हैं। ओडोण्टोब्लास्ट (odontoblasts) नामक कोशिकाएं डेंटीन का स्रोत होती हैं और वे डर्मल पैपिला से बनती हैं। हड्डी प्रकट होती है और वह उस खांचे यानि गर्त को बनाने लगती है जिसकें भीतर दांत टिकने वाला होता है। (c) स्थायी दांत का आद्यक (primordium) प्रकट होता है। (d) दांत की वृद्धि जारी रहती है। (e) पाती (झड़ने वाला) दांत बाहर को प्रकट हो जाता है तथा एक सुस्थापित पेरिओडाण्टल स्नायु द्वारा खांचे में संलग्न हो जाता है। स्थायी दांत का इनैमल-अंग तथा डर्मल पैपिला तब तक बनना शुरू नहीं होता जब तक कि पाती (कच्चे) दांत के गिरने का समय नज़दीक नहीं आ जाता।

दांत अंशत: एपिडर्मिस से तथा अंशत: उसके नीचे की डर्मिस से बनता है (चित्र 6.1)। स्तनियों में प्रत्येक दांत जबड़े में बने एक खांचे में जमा हुआ होता है, इस खांचे को कूपिका (alveolus) कहते हैं। एपिडर्मिस से दांत का इनैमल बनता है। दांत का शेष भाग यानि डेंटीन, सिमेंट तथा मज्जा (पल्प) सहवर्ती मीजोडर्मल ऊतक से बनता है।

जबड़े की मुखीय सतह के सहारे-सहारे एक्टोडर्म से एक कंटक-जैसी अंतर्वृद्धि दंत स्तरिका (dental lamina) बनती है और हर दांत जिस-जिस स्थान पर बनना है वहां-वहां इस स्तरिका में से एक मुकुल बन जाता है। यह मुकुल एक शंक्वाकार कोशिका-टोपी का रूप लेकर एक अलग भाग सा बन जाता है, इस कोशिका-टोपी को इनैमल-अंग कहते हैं, यह इनैमल-अंग एक संकरे जोड़ द्वारा स्तरिका से जुड़ा रहता

है। इनैमल-अंग की टोपी जैसी आकृति एक डर्मिसी ऊतक जिसे दंत-पैपिला (**dental papilla**) का नाम दिया जाता है, के संकेद्रण के ऊपर बनती है। दंत-पैपिला में भरपूर रक्त आपूर्ति होती है। इस पैपिला की सतह पर इनैमल-अंग से सम्पर्क बनाते हुए ओडोन्टोब्लास्ट नामक कोशिकाओं की एक परत कुछ-कुछ एपिथीलियम की तरह व्यवस्थित हो जाती है। यह, ओडोन्टोब्लास्ट परत डेंटीन-निर्मात्री परत होती है। इनैमल-अंग की वे कोशिकाएं जो दंत-पैपिला के सम्पर्क में होती हैं लम्बी और सिलिंडराकार होकर **ऐमेलोब्लास्ट** कोशिकाएं बन जाती हैं। ऐमेलोब्लास्ट की परत से भीतरी **इनैमल एपिथीलियम** बन जाती है। इनैमल -अंग की सतह के उस भाग की कोशिकाएं जो दंत-पैपिला के सम्पर्क में नहीं होती, से एक परत घनाकार-कोशकाओं की बनती है, इस परत को, बाहरी इनैमल एपिथीलियम कहते हैं। इन दो परतों के बीच बची इनैमल-अंग की कोशिकाएं रूपांतरित हो जाती हैं जो कोशिकाएं भीतरी इनैमल एपिथीलियम के सम्पर्क में होती हैं उनसे तो स्ट्रैटम इंटरमीडियम (stratum intermedium, यानि मध्य स्तर) बनती है जबकि शेष रिक्तकयुक्त हो जाती और उनसे एक अदृढ़ ऊतक स्टैलेट रेटिकुलम (stellate reticulum) बन जाता है इनैमल-अंग तथा दंत-पैपिला के चारों ओर संयोजी ऊतक की एक परत बन जाती है जिसे दंत फालिकल (dental follicle) कहते हैं। इसके भीतर अनेक रक्त वाहिकाएं होती हैं।

दांत का कड़ा भाग दो निर्मितियों से बनना शुरू होता है - एक तो होती है पूर्वडेंटीन टोपी जो ओडोन्टोब्लास्टों से बनती है तथा दूसरी होती है इनैमल मैट्रिक्स की परत जो इस पूर्वडेंटीन टोपी की सतह पर बनती है, यह इनैमल मैट्रिक्स ऐमेलोब्लास्टों से बनता है। पूर्वडेंटीन तथा इनैमल मैट्रिक्स में केल्सीकरण होकर डेंटीन तथा इनैमल बन जाते हैं। इनके ऊपर अतिरिक्त परतें तब तक बनती-चढ़ती जाती हैं जब तक कि दांत का किरीट सम्पूर्ण नहीं हो जाता। तदुपरांत इनैमल-अंग तो अपकर्षित हो जाता है मगर दंत-पैपिला मज्जा (पल्प) के रूप में पूर्ण विकसित दांत में कायम बना रहता है। जड़ें बन जाती हैं तथा दांत का किरीट खाल को फोड़कर मुख गुहा में उभर आता है। दांत की जड़ें डेंटीन की बनी होती हैं जिनके ऊपर एक परत सिमेंट की जम जाती है। यह परत दंत फॉलिकल की कोशकाओं से बनती है। जड़ों के ऊपर इनैमल नहीं होता। कुछ स्तनियों में जैसे कि आज के घोड़ों, खरगोशों, कुछ रोडेंटों, कुछ आर्टियोडेक्टाइलों तथा हाथियों में किरीट के इनैमल की सतह पर भी सिमेंट बना होता हैं स्तनियों में दांतों की जड़ो में आमतौर से बारीक सूराख बने होते हैं जिनमें से तंत्रिकाएं तथा रक्त वाहिकाएं भीतर को प्रवेश करके मज्जा के भीतर पहुंचती हैं (चित्र 6.2)। मगर कुछ मामलों में (जैसे कि आज के घोड़ों एवं हाथियों के चर्वणक दांतों में) जड़ों का बनना विलम्ब से होता है और किरीट के पार्श्वों एवं उसके वलनों के बीच-बीच लगातार मौजूद बना हुआ इनैमल-अंग दांत की ऊंचाई को दांत निकलने और उसके उपयोग में आने के बाद भी लगातार बढ़ाता रहता है। अन्य स्तनीय दांतों में (जैसे कि रोडेंटों तथा हाथियों के कृंतकों में एवं खरगोशों के सभी दांतों में जड़े कभी नहीं बनती तथा दांतों के शिखरों में जीवन पर्यन्त वृद्धि होती रहती है। इस प्रकार के दांतों को चिरस्थायी मज्जा वाले दांत कहा जाता है।

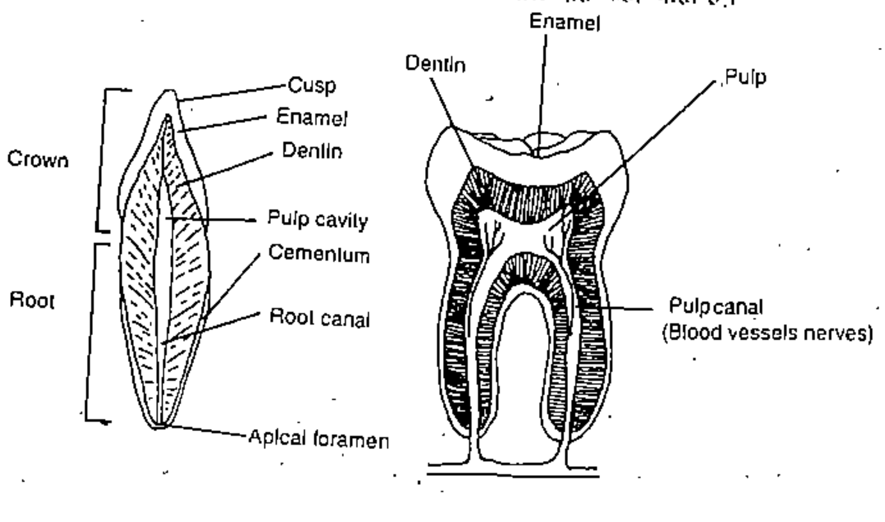

चित्र 6.2: दांत की संरचना (a) एकल जड़ वाला दांत, (b) चर्वणक दांत जिसमें एक से अधिक जड़े होती हैं।

तनियों में सामान्यत: दांतों के दो स्पष्ट सेट निकलते पाए जाते हैं- पाती यानि गिर जाने वाले दूध के त, तथा स्थायी यानि पक्के दांत (चित्र 6.3)। कभी-कभी दांतो का केवल एक ही सेट होता है। इस

प्रकार दांतों में दो व्यवस्थाएं पायी जाती हैं- **द्विबारदंती (diphyodont)** तथा **एकबारदंती (monophydont)** जिनमें एकबारदंती व्यवस्था पायी जाती है उनमें भी लगभग सभी में दांतों का दूसरा सेट भी विकसित होता है मगर ये दांत या तो आरंभ में ही अवशोषित हो जाते हैं या ये कार्यहीन अवशेष मात्र बन कर रह जाते हैं। प्ररूपी द्विबारदंती दंतविन्यास वाले स्तनियों के दूध के दांत कभी-कभी बहुत ही आरम्भिक अवस्था में ही गायब हो जाते हैं (जैसे सील में) और कभी-कभी जन्म के बहुत बाद में उनके स्थान पर पक्के दांत निकल आते हैं (जैसे मानव में)। निम्नतर कशेरुकियों में दांत सामान्यत: **समदंती (homodont)** होते हैं यानि सारे मुंह में वे लगभग एक जैसी ही आकृति के होते हैं। आधुनिक कछुओं में तथा पक्षियों में दांत बिल्कुल नहीं होते मगर स्तनियों में **विषमदंती (heterodont)** दांत होते हैं और पूरे मुंह के भीतर इन दांतो की सामान्य आकृति भिन्न होती हैं। कुछ स्तनियों में दांतों की संख्या निश्चित नहीं होती जैसे कि सूंस तथा पारपाइज़ में। इस प्रकार के दांत एकसमान होते हैं और इन्हें **समदंती (homodont)** कहते हैं। अधिकतर निम्नतर कशेरुकियों में **बहुबारदंती (polyphyodont)** व्यवस्था पायी जाती है जिसका अर्थ है कि दांतों का लगातार प्रतिस्थापन यानि एक के बाद एक का आना जारी रहता है। बहुबारदंती प्रकार के प्रतिस्थापन से दांतों का पुनर्नवीकरण सुनिश्चित हो जाता है यानि घिसते जाने या टूटते जाने से जब भी उनकी कार्यशीलता घट जाती है तो उनके स्थान पर दूसरे दांत निकल आते हैं। मगर अधिसंख्य स्तनी द्विबारदंती होते हैं जिनमें दांतों के केवल दो सेट ही होते हैं।

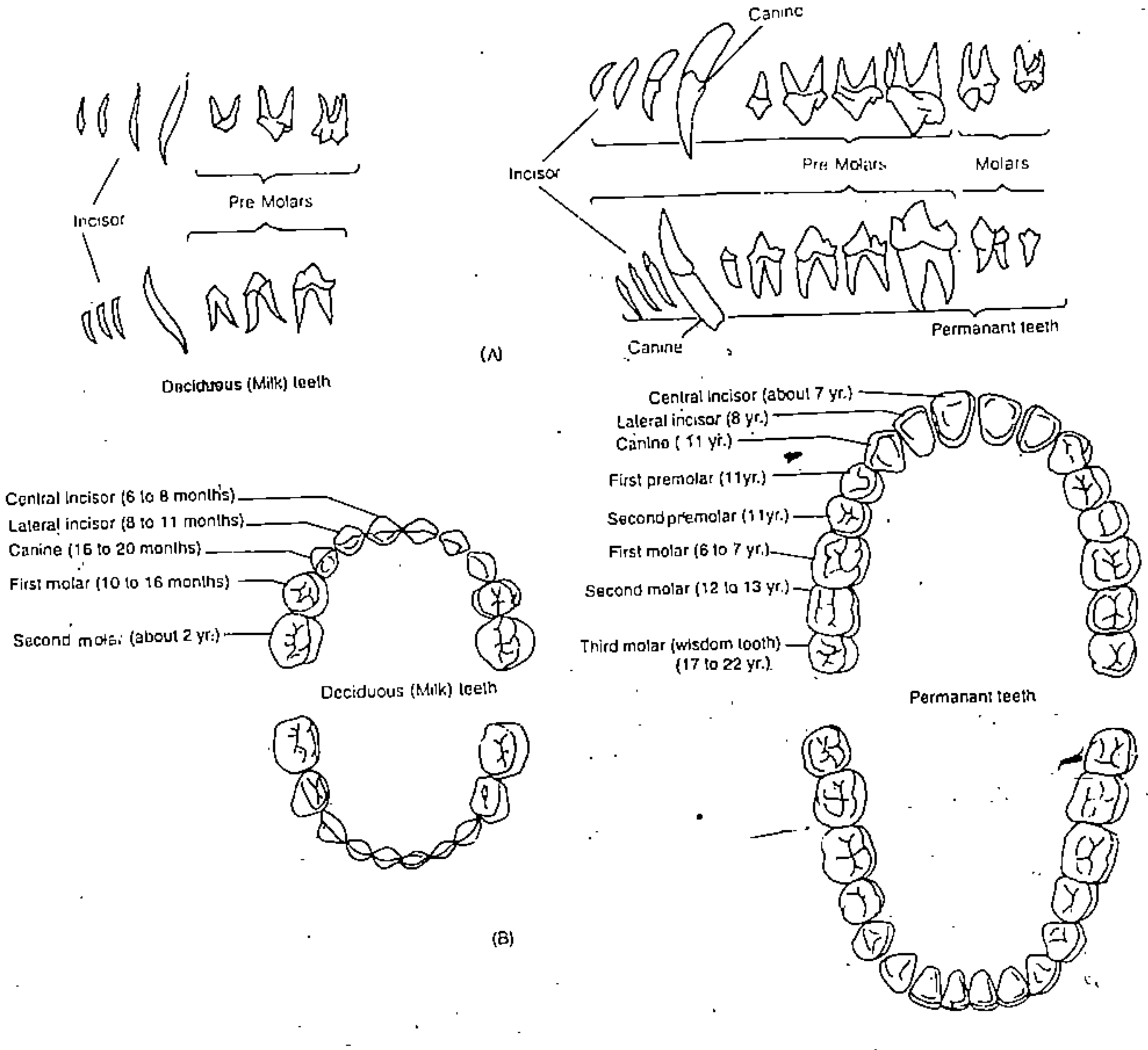

चित्र 6.3: A- कैनिस: पाती तथा स्थायी दंत विन्यास। कुत्ते का ऊपरी (I) तथा निचला (II) जबड़ा। B- मानव के पाती तथा स्थायी दांत (a) पाती दांत, इनके निकलने का लगभग समय कोष्ठकों के भीतर दिया गया है (b) स्थायी दांत। जबड़े का एक चतुर्थांश छायांकित है।

स्तनियों में विशेषित दांत

स्तनियों में दांत न केवल आहार को पकड़ने-दबोचने एवं कुतरने-काटने के लिए ही विशेषित हो गए हैं वरन् इसे चबाने के लिए भी विशेषित हुए हैं। वास्तव में दंत विन्यास अलग-अलग वर्गों में इतना स्पष्टतः भिन्न होता है कि यह अक्सर सजीव प्राणियों एवं जीवाश्म स्पीशीज़ की पहचान का आधार बन जाता है।

स्तनियों की विषमदंती दंत-व्यवस्था में मुंह में चार प्रकार के दांत पाए जाते हैः सामने की ओर कृंतक (incisors), उसके बाद रदनक (carines), मुख के पार्श्वों पर अग्रचर्वणक (premolars) और सबसे पीछे चर्वणक (molars)। इनमें से प्रत्येक प्रकार के दांतो की संख्या स्तनियों के विभिन्न वर्गों में अलग-अलग होती है। दंत-सूत्र मुख के भीतर जबड़े के एक पार्श्व पर प्रत्येक प्रकार के दांतों की संख्या की मानो आशुलिपि अभिव्यक्ति होता है। उदाहरण के लिए, सोयोटे (*केनिस लेट्रेंस, Canis latrans*) का दंत-सूत्र इस प्रकार है:

$$I.\frac{3}{3},\ C\frac{1}{1},\ Pm\frac{4}{4},\ M\frac{2}{3}$$

इसका यह अर्थ हुआ कि इसमें तीन ऊपरी तथा तीन निचले कृंतक (I), एक ऊपरी तथा एक निचला रदनक (C), चार ऊपरी तथा चार निचले अग्रचर्वणक (Pm) तथा दो ऊपरी एवं तीन निचले चर्वणक (M) होते हैं। इस प्रकार इस प्राणी में एक ओर 21 तथा दोनों ओर कुल मिलाकर 42 दांत हुए। कभी-कभार दंत-सूत्र को इस प्रकार भी लिखा जाता है। 3-1-4-2/3-1-4-3, इसमें पहली चार संख्याएं सोयोटे के ऊपरी दांतों की तथा बाद की चार संख्याएं निचले दांतों की संख्याए दर्शाती हैं। "खच्चर हिरन" (*Odocoileus hemionus*) का दंत-सूत्र 0-0-3-3/3-1-3-3 है। इसमें आप देखेंगें कि ऊपर के कृंतको तथा रदनकों का न पाया जाना शून्यों द्वारा दर्शाया गया है।

कृंतकों का उपयोग सामान्यतः काटने या कुतरने के लिए किया जाता है, रदनकों का वेधन करने या जकड़े रखने के लिए और अग्रचर्वणकों तथा चर्वणकों का उपयोग आहार को पीसने-चूरा करने में किया जाता है। कई बार बाहर से देखने पर चवर्णकों में विभेद कर पाना कठिन होता है। इन दोनों के लिए एक सम्मिलित शब्द कपोल दांत अथवा चर्वणाकण (molariform) दांत इस्तेमाल किया जाता है। ये कपोल दांत काफ़ी विविध भी हो सकते हैं जो दर्शाता है कि इन दांतों के कई विशेषित प्रकार्य हो सकते हैं। मानव तथा सूअरों में दांतों के किरीट ऊँचाई में छोटे होते हैं (लघुदंती, brachyodont) (चित्र 6.4)। घोड़ों में किरीट ऊंचे होते हैं जिन्हें तुंगदंती (hypsodont) कहा जाता है (चित्र 6.4)।

यदि दंताग्र (cusps) शिखरों की तरह उठे होते हैं जैसे कि सर्वभक्षियों में तब ऐसे दांतों को वप्रदंती (bunodont) कहते हैं (चित्र 6.4)। पेरिसोडेक्टाइला तथा रोडेण्टों में दंताग्र खिंचकर लंबे होकर कटक बना लेते हैं और ऐसे दांतों को कटक्दंती (lophodont) दांत कहते हैं (चित्र 6.4)। आर्टियोडेक्टाइला में नवचंद्र के आकार के दंताग्रों की विशिण्टता वाले दांतों को चंद्रदंती (selenodont) दांत कहते हैं (चित्र 6.4)। तुंगदंती दात प्ररूपतः शाकभक्षियों मे पाए जाते हैं, ये प्राणी पादप पदार्थ को चबाते हैं ताकि कड़ी कोशिका-भित्तियां टूट जाएं। इनकी परस्पर सम्पर्की सतह कहीं कम कहीं ज्यादा घिसती है क्योंकि सतही इनैमल, डेंटीन तथा सिमेंट बनाने वाले खनिज अपनी कठोरता में अलग-अलग होते हैं। प्रकार्य की दृष्टि से परस्पर सम्पर्की सतहें महत्वपूर्ण होती हैं क्योंकि इन्हीं के द्वारा सुनिश्चित होता है कि कटक और गढ़े आजीवन कायम बने रहेगें जिसके फलस्वरूप एक खुरदरी पेषणी सतह बन जाती है जो लगातार इस्तेमाल के बावजूद चिकनी बनी रहती है (6.4)।

स्तनियों में विविध प्रकार के विशेषित दांत होते हैं। कुछ में कर्तन (sectorial) दांत इस प्रकार रूपांतरित होते हैं कि सम्मुखी दांतों के कटक एक दूसरे के ऊपर से चलते हुए ऊतकों को काट देते हैं। कुछ प्राइमेटों में ऊपरी रदनक तथा निचले प्रथम अग्रचर्वणक पर ये कर्तन-सीमांत बन जाते हैं, इन प्राणियों में ये दांत कर्तन दांत होते हें। दो व्यष्टियों के बीच परस्पर लड़ाई में अथवा सुरक्षा करने में इन दांतों का उपयोग किया जाता है। कार्निवोरा-प्राणियों में ऊपरी अंतिम अग्रचर्वणक तथा निचला प्रथम चर्वणक दारक

(carnassial) दांत र . गाते हैं जो विशेषित क..न दांत होते (जिनका काम एक दूसरे पर एक कैंची की तरह फिसलना होता है ताकि उनके द्वारा स्नायुओं एवं मांस को काटा जा सके। गजदंत अलग-अलग

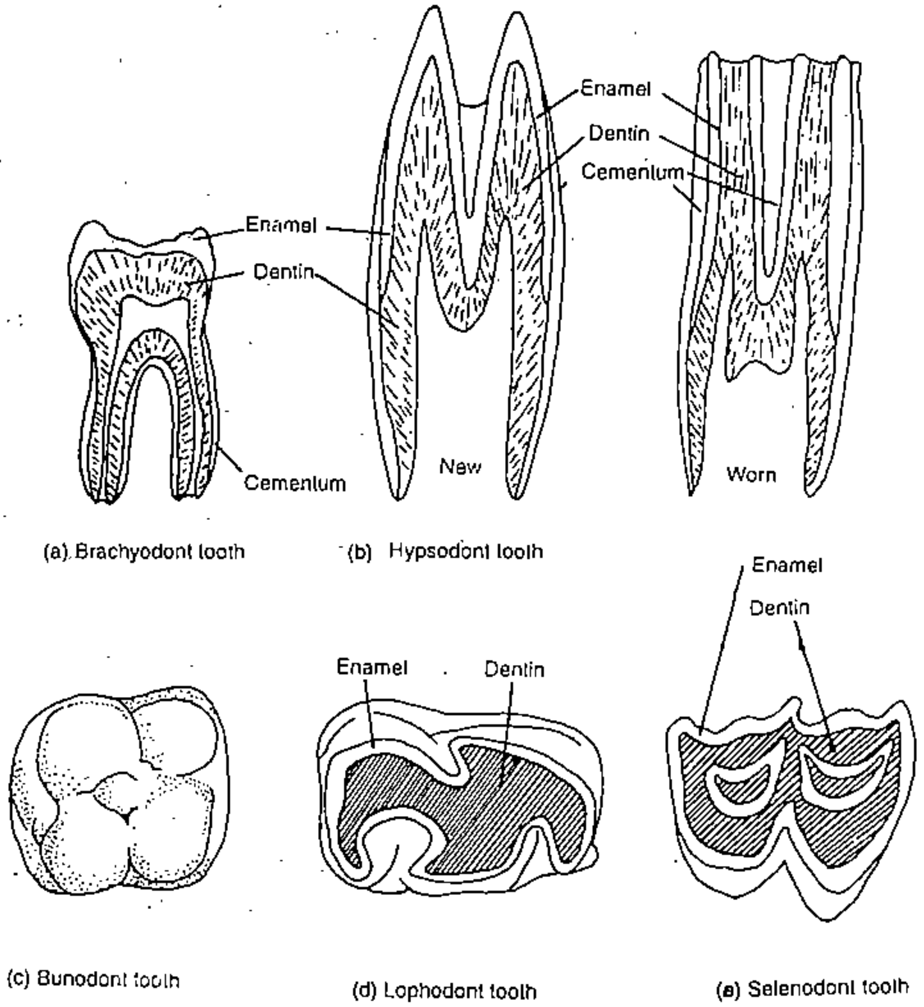

चित्र 6.4: किरीट की ऊँचाई तथा परस्पर बंद होनेवाली (परस्पर सम्पर्की, occlusal) सतहें। दांत की ऊँचाई: (a) लघुदंती दांत, (b) तुंगदंती दांत। जब किसी नए-नए निकले लघुदंती दांत (बायीं ओर) की बंद होने वाली सतह घिस जाती है तब डेंटीन तथा इनैमल की एकांतर परतें खुली दीखने लगती हैं (दाहिनी ओर)। कम-ज्यादा कड़ी परतों के एकांतर क्रम से सुनिश्चित हो जाता है कि कटक तथा खांचें बन जाएंगी जिससे सतह खुरदरी बनी रहती है जो लम्बे समय तक इस्तेमाल होते रहने के बाद भी चिकनी नहीं बनती। स्तनीय दांतों में बंद होने वाली परस्पर सम्पर्की सतहें अनेक प्रकार की पायी जाती हैं (C) वप्रदंती (bunodont) दांत (d) कटकदंती (lophodont) दांत e) चंद्रदंती (selenodont) दांत।

स्पीशीज़ में अलग-अलग दांतों से बनते हैं। हाथियों के गजदंत लम्बे हो गए कृंतक होते हैं (चित्र 6.5) तथा वालरसों के गजदंत उनके ऊपरी रदनक होते हैं जो नीचे को बाहर निकले होते हैं (चित्र 6.5)। कार्निवोर स्तनियों में रदनक दांत और उनके शक्तिशाली जबड़े शिकार को मारने में काम आते हैं। कभी-कभार इन दांतों के द्वारा शिकार की गर्दन की प्रमुख शिराओं में सूराख़ बना दिया जाता है जिससे उसका खून बहुत मात्रा में बह जाता और वह दुर्बल हो जाता है। व्यस्क बबर शेर (सिंह) जैसा मांसाहारी अधिकतर अपने शिकार की गर्दन में ही मुंह मारता है और उसकी श्वासनली को पिचका देता है जिससे शिकार का दम घुट जाता है। कुछ स्तनियों में जैसे कि चींटीख़ोरों तथा बैलीन-ह्वेलों में दांत बिल्कुल ही नहीं होते (चित्र 6.5)।

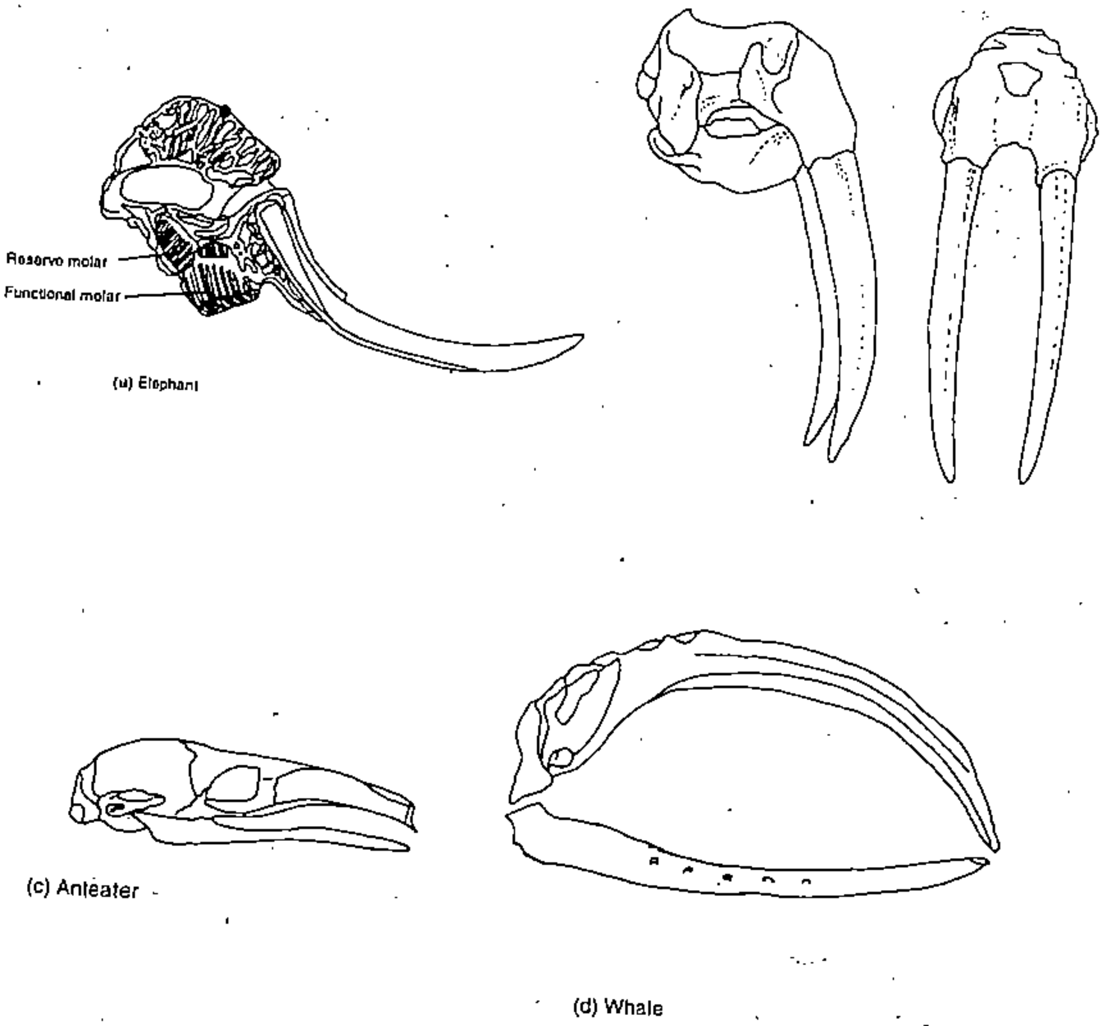

चित्र 6.5: स्तनियों के विशेषित दांत। गजदंत, हाथी में ऊपर के दोनों कृंतकों से बने होते हैं (a) हाथी, और वालरसों में रदनकों से, (b) वालरस। वयस्क चींटीखोरे में दांत होते ही नहीं (c) चींटीखोर तथा वैलीन-ह्वेलों में भी दांत नहीं होते, (d) ह्वेल।

बोध प्रश्न 1

नीचे दिए गए कथनों में सही कथनों के आगे दिए गए चौकोर में सही (✓) का निशान तथा गलत कथनों के आगे चौकोर के भीतर काटे (✗) का निशान लगाइए।

(i) दांत का वह भाग जो एपिडर्मिस से बनता है इनैमल कहलाता है। ☐

(ii) पूर्वडेंटीन तथा इनैमल आधात्री में कैल्सीकरण न होकर डेंटीन तथा इनैमल बनते हैं। ☐

(iii) इनैमल-अंग में अपकर्ष हो जाता है मगर दंत-पैपिला कायम रहते हुए पूर्ण निर्मित दांत की मज्जा (पल्प) बन जाता है। ☐

(iv) कुछ स्तनियों जैसे कि हाथी तथा बंदर में दांतों की संख्या अनिश्चित होती है। ☐

(v) हाथियों में अत्यन्त विशेषित दांत होते हैं क्योंकि इनमें रदनक और निचले कृंतक नहीं होते। ☐

(vi) कीटभक्षी काइराप्टेरा में चर्वणकों में नुकीले दंताग्र नहीं होते जबकि फलभक्षी उदाहरणों में चवर्णकों में लम्बी खांचें बनी होतीं अथवा वे खोखले से होते हैं। ☐

6.3 अशन क्रियाविधियां

कार्यिकी के पाठ्यक्रम की इकाई 7 (LSE-05) में अशन क्रियाविधियों (feeding mechanisms) का विस्तार से वर्णन किया गया है, मगर कॉर्डेटों में अशन क्रियाविधियों के तुलनात्मक अध्ययन के लिए यहां पर विविध अशन युक्तियों का वर्णन उनके व्यवस्थापूर्ण क्रमिक विकासीय अनुक्रम के अनुसार दिया जा रहा है। अनिवार्य पोषक तत्वों को प्राप्त करना ही वास्तव में वह कुंजी है जिस पर किसी भी प्राणी अथवा स्पीशीज़ की सफलता निर्भर होती है। प्राणी की दिनचर्या का अधिकतर काम-काज इसी उद्देश्य की ओर प्रेरित होता है। उदाहरण के लिए, तंत्रिका-तंत्र की जटिलता एवं उसकी कार्यकुशलता अधिकतर उस वरणात्मक दबाव के ही कारण आयी है जो एक ओर तो पर्याप्त आहार की प्राप्ति के लिए होता है तथा दूसरी ओर किसी अन्य का भोजन बनने से बचने के लिए। प्राणी आहार करने के लिए तरह-तरह की रणनीतियां अपनाते हैं। कुछ स्पीशीज़ अपने शिकार को ढूंढती, ताक लगाती, झपट्टा मारतीं, पकड़ती, और मारती हैं। स्थानबद्ध प्राणी जो चलने में असमर्थ होते हैं, कुछ अलग ही तरीके अपनाते हैं जैसे कि वे अपनी सतह द्वारा अवशोषण करते, चलनी की तरह छानते हुए निस्यंदी (filter) अशन करते अथवा जाल बिछाते हैं। अब हम उन विविध युक्तियों का विवेचन करेगें जिन्हें कॉर्डेट प्राणियों के अलग-अलग वर्ग काम में लाते हैं।

6.3.1 मछलियां तथा ऐम्फ़िबियन-प्राणी

(i) मछलियां - निम्नतर कशेरुकी जैसे कि साइक्लोस्टोम, इलैस्मोब्रैंक, टिलियोस्ट, ऐम्फ़िबियन विविध प्रकार की अशन क्रियाविधियां काम में लाते हैं। किसी भी मछली के लिए उसके दिन-प्रति-दिन के जीवन के वास्ते आहार करना ही मुख्य काम है। अधिसंख्य मछलियां मांसभक्षी होती हैं। वे प्राणिप्लवक (zooplankton) तथा कीट-लार्वों से लेकर बड़े आकार के कशेरुकियों तक के नानाविध प्रकार के प्राणि-भोजन का शिकार करती हैं। गहरे समुद्रों की कुछ मछलियां तो अपने से लगभग दोगुने आकार तक के शिकार को खा जाती हैं। यह उस संसार के जीवन के लिए अनुकूल है जहां पर भोजन जल्दी-जल्दी नहीं मिल पाता। अधिसंख्य उन्नत "रे-फ़िन" मछलियां अपने आहार को चबा नहीं सकतीं। कुछ में जैसे कि "वुल्फ़ ईल" में जबड़ों में चर्वणकों-जैसे दांत होते हैं जिनके द्वारा वे क्रस्टेशियनों के समान कड़े शरीर वाले शिकार को चूरा कर देती हैं। कुछ अन्य मछलियां ग्रसनी में बने दांतों द्वारा शिकार को पीस डालती हैं। बड़े मुख वाले अनेक परभक्षियों में जल की असंपीडनशीलता, अशन के इस काम को और भी सरल बना देती है। जैसे ही वे अपना मुख खोलतें हैं तो एक ऋणात्मक दबाव बन जाता है जिससे शिकार पानी के साथ खुद-ब-खुद मुंह के भीतर खिंचा चला आता है।

मछलियों का एक और वर्ग शाकभक्षियों का है जो पुष्पी पौधों, शैवालों तथा घासों को खाती हैं। यद्यपि पादपभोजियों की संख्या अपेक्षाकृत कम होती है, फिर भी आहार-श्रृंखला में उनका एक महत्वपूर्ण मध्यवर्ती स्थान होता है, ख़ासतौर से नदियों, झीलों तथा तालाबों मे जहां प्लवक (plankton) की मात्रा बहुत थोड़ी होती है।

मछलियों के तीसरे तथा विविध वर्ग में वे आती हैं जो समुद्र के सूक्ष्मजीवों का फ़िल्टर-अशन विधि से आहार करती हैं। इस वर्ग में मछलियों के लार्वों से लेकर "बास्किंग" शार्क तक आती हैं। फ़िल्टर-अशन के रूप में एक ऐसी अशन विधि विकसित हुई है जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण, सफल तथा व्यापक रूप में अपनायी गयी है (चित्र 6.6)। अधिसंख्य फ़िल्टर अशनकारी सिलियायुक्त सतहों का इस्तेमाल करके अपवाही जलकणों को अपने मुख के भीतर ले लेते हैं। स्वच्छंद तैरने वाले फ़िल्टर अशनकारियों को यह लाभ भी है कि वे अपने आहार के बीच में से तैरते चले जाते हैं और इस प्रकार अपने आहार का चयन भी कर सकते हैं। फ़िल्टर-अशन विधि उन वर्गों के प्रतिनिधियों में भी द्वितीयक रूपांतरण के रूप में विकसित हो गयी है जो मूलत: चयनात्मक अशनकारी हैं, जैसे कि मछलियों तथा "बास्किंग" शार्क में। मछलियों का एक चौथा वर्ग सर्वभक्षियों (omnivores) का है जो पौधों तथा प्राणियों दोनों का आहार करती हैं। अंतत: अपमार्जक (scavengers) मछलियां होती हैं जो जैविक कचरे-कूड़े को खाती हैं तथा परजीवी होती हैं जो अन्य मछलियों के देह-तरलों को चूसती हैं।

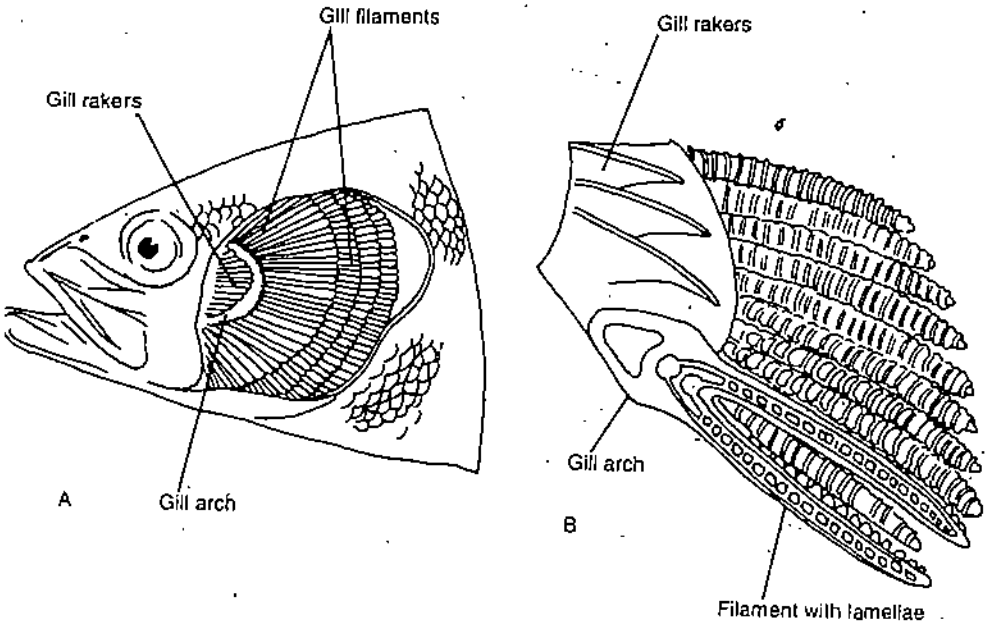

चित्र 6.6: हेरिंग तथा अन्य फ़िल्टर अशनी मछलियां (क्लास ऑस्टिइक्थीइस, फ़ाइलम कॉर्डेटा) प्लवक को छानने के वास्ते गिल-कर्षणियों (gill-rakers) का इस्तेमाल करती हैं। ये गिल-कर्षणियां गिल-छड़ों पर से आगे ग्रसनी गुहा में निकली हुई होती हैं। हेरिंग लगभग लगातार तैरती ही रहती है और जल एवं उसमें निलंबित आहार को बलपूर्वक मुंह में धकेलती रहती हैं, आहार गिल-कर्षणियों द्वारा छनता जाता है तथा गिल-छिद्रों में से होता हुआ बाहर निकल जाता है।

निम्नतर कशेरुकियों जैसे कि साइक्लोस्टोमों, इलास्मोब्रैंकों, तथा टीलियोस्टों में उनके जबड़ों पर अथवा तालू पर नुकीले दांत बने होते हैं जो शिकार को पकड़े रहने फाड़ने अथवा निगलने में सहायता करते हैं। निम्नतर कशेरुकियों में शिकार को समूचे निगल जाना एक आम बात है।

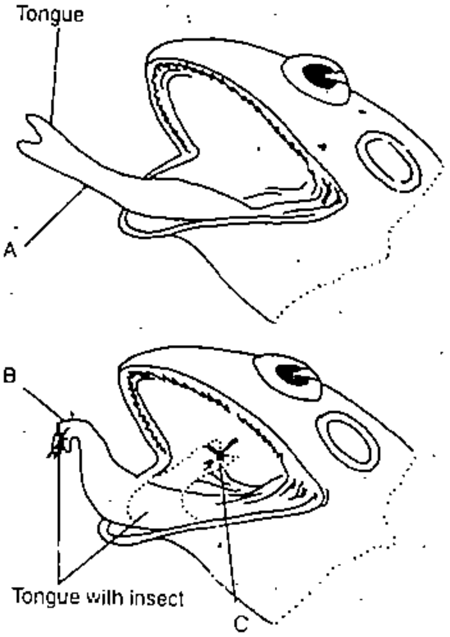

चित्र 6.7 : मेंढ़क। किसी कीट को पकड़ते समय जीभ की स्थिति। A- जीभ झटके से बाहर को निकाली गयी है। B- कीट जीभ से चिपक जाता है। C- जीभ वापिस मुंह के भीतर लायी जाती है। मेंढ़क की जीभ अति गतिशील होती है। वास्तव में मेंढ़क अपनी जीभ को कीटों को पकड़ने में इस्तेमाल करते हैं। इसी व्यवस्था के कारण यह लसलसी जीभ काफ़ी तेज़ रफ़्तार से और बहुत सही-सही रूप में बाहर को लाई जा सकती है, उन जीभों को जो पीछे की ओर जुड़ी होती है इस तरह तेज़ी से सही-सही बाहर निकालना संभव नहीं होता। तदुपरांत यह शिकार मेंढ़क के मुंह में ऊपर की तरफ़ बने दांतों के एक विभिन्न क्षेत्रक द्वारा कुचल दिया जाता और फिर समूचा निगल लिया जाता है। ऐम्फ़िबियन-प्राणी चबा नहीं सकते।

रोडेंट-प्राणी: विविध कुतरने वाले स्तनी, जिनमें चूहे, मूषक, बीवर आदि आते हैं, इनमें लगातार वृद्धि करने वाले कृंतक होते हैं, चूहा या मूषक।

कुतरना: इस तरह काटना कि वस्तु मे से थोड़ा-थोड़ा पदार्थ उतरता चला आए।

(ii) **ऐम्फ़िबियन-प्राणी** - अधिसंख्य वयस्क ऐम्फ़िबियनों की तरह मेंढक भी मांसभक्षी हैं। ये कीटों, मकड़ियों, कृमियों, स्लगों, मिलिपीडों या अन्य किसी भी ऐसी चीज को खा लेते हैं जो समूची निगली जा सकने के लिए पर्याप्ततः हो। ये अपनी बहिःसारी (protrusible) जीभ के द्वारा गतिशील शिकार को फ़र्राटे से दबोच लेते हैं (चित्र 6.7) यह जीभ मुंह में आगे की ओर जुड़ी होती है तथा उसका पिछला हिस्सा मुक्त होता है। जीभ का मुक्त सिरा बहुत ज़्यादा ग्रंथीय होता है तथा उससे एक चिपचिपा स्राव निकलता है जो शिकार को जीभ से चिपका लेता है। प्रीमैक्सिली, मैक्सिली तथा वोमर हड्डियों पर बने दांत शिकार को बचकर बाहर निकल जाने से रोकते हैं मगर वे काटने या चबाने का काम नहीं करते। ऐन्यूरनों (anurans) की लार्वा-अवस्थाएं शाकभक्षी होती हैं जो तालाब के शैवालों एवं अन्य वनस्पति पदार्थ पर भोजन करते हैं।

6.3.2 सरीसृप तथा पक्षी

(i) सरीसृप : आप देखेंगे कि सरीसृपों में बहुत विविध प्रकार की अशन युक्तियां पायी जाती हैं। जब कैमीलियॉन किसी ड्रैगनफ़्लाई को देख लेता है तो, अपनी पूंछ को किसी टहनी आदि पर कसकर लपेट लेता पैरों को डालियों पर गड़ा लेता है, उसके बाद कुछ ही सेकंडों में अपनी, सिरे पर चिपचिपी एक-फुट लंबी जीभ को ज़ोर से बाहर निकाल कर उसमें शिकार को चिपका लेता है।

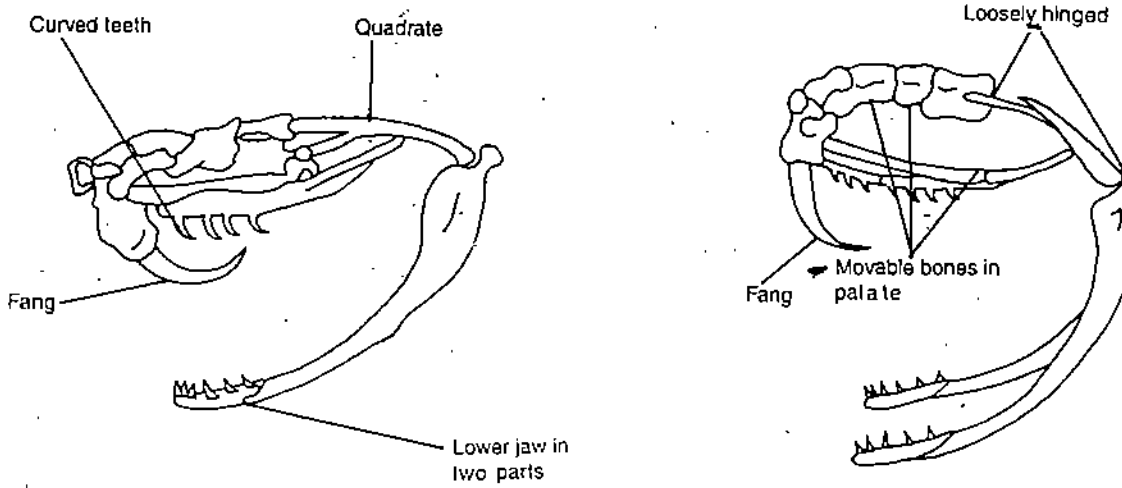

चित्र 6.8: रैटल-सर्प की करोटि, पार्श्व दृश्य में। (A)- अंशतः खुली हुई। (B) काटने के लिए तैयार खुली अवस्था में। विषदंत नलिकाकार होते हैं जिनके द्वारा टॉक्सिन छोड़ा जाता है, ये विषदंत इस तरह हिंज-संधि बनाए होते हैं कि जब काटना नहीं होता तब ये आसानी से मुड़ी अवस्था में मुंह में बंद रहते हैं।

सरीसृपों के जबड़ों अथवा तालू में नुकीले दांत बने होते हैं जो इन प्राणियों को अपना शिकार पकड़े रखने, उसे चीरने अथवा उसे निगलने में सहायता करते हैं। स्तनियों के नीचे के स्तर के प्राणियों में दांत सामान्यतः एक दूसरे से बहुत ही कम विभेदित होते हैं। इसका एक ही अपवाद विषैले सर्प होते हैं जैसे कि वाइपर (घोणस), नाग तथा रैटल-सर्प जिनमें रूपांतरित विषदंत बन गए होते हैं जिनका उपयोग वे विष को अंदर पहुंचाने में करते हैं (चित्र 6.8)। इन विषदंतों में या तो एक खांच बनी होती है या ये भीतर से खोखले होते हैं बहुत कुछ एक इंजेक्शन की पिचकारी की सुई की तरह और इन विषदंतों से सांप काटने के स्थान पर अपना विष भीतर पहुंचा देता है। रैटल-सर्प में विषदंत मुंह के भीतर ऊपरी सीमा के सहारे मुड़े रहते हैं मगर जब काटने के लिए मुंह खोला जाता है तब ये विषदंत बाहर को फैलकर सीधे लंबवत तन जाते हैं। सांप अपने आहार को न चीर सकते और न ही चबा सकते हैं। पकड़ा गया शिकार समूचा ही निगला जाता है। यह निगल लेना वास्तव में एक विस्मयकारी करतब ही कहा जा सकता है क्योंकि शिकार अक़्सर सांप से अधिक मोटा ही होता है। मुख अत्याधिक लचीला होता है, और इस लचीलेपन का आधार है शीर्ष एवं जबड़ों में हड्डियों की एक ख़ास व्यवस्था का होना। निचला जबड़ा अदृढ़ रूप में क्वाड्रेट हड्डी से जुड़ा होता है और यहां तक कि तालू की हड्डियां भी गतिशील होती हैं, तथा ये सभी एक साथ मिलकर शिकार को फैले हुए मुख के भीतर खींचने में सहायता करती हैं। ग्रसिका (ईसोफैगस) तथा जठर और यहां तक कि देह-भित्ति भी बहुत ज्यादा फैल सकने योग्य होती हैं। स्टनर्म (उरोस्थि) नहीं होती

जिसके फलस्वरूप जब शिकार आहार-सील में से आगे चलता जाता है तो पसलियां मुक्त रूप में गति कर लेती हैं। यही व्यवस्था है जो सांप को अपने शीर्ष की मोटाई से भी बड़े-बड़े जानवरों को निगल जाने में सहायक होती है।

(ii) पक्षी : पक्षियों को उड्डयन का लाभ है जिसके द्वारा वे उड़-उड़ कर कीटों को पकड़ सकते हैं और अपना आक्रमण कीटों के उन शरणस्थलों तक पहुंचा सकते हैं जो अन्यथा पक्षियों के, धरती से जुड़े-बंधे चतुष्पाद संगी-साथियों की पहुंच से दूर होते हैं। आज लगभग हर प्रकार के कीट को शिकार बना सकने वाले पक्षी मौजूद हैं। वे इन्हें मिट्टी के भीतर से ढूंढ निकालते हैं, वृक्षों की छालों के नीचे से खोज लेते हैं, हर पत्ती और डाल की छान-बीन कर लेते हैं, और वृक्षों के तनों में छिपे कीट-गलियारों तक खोद लेते

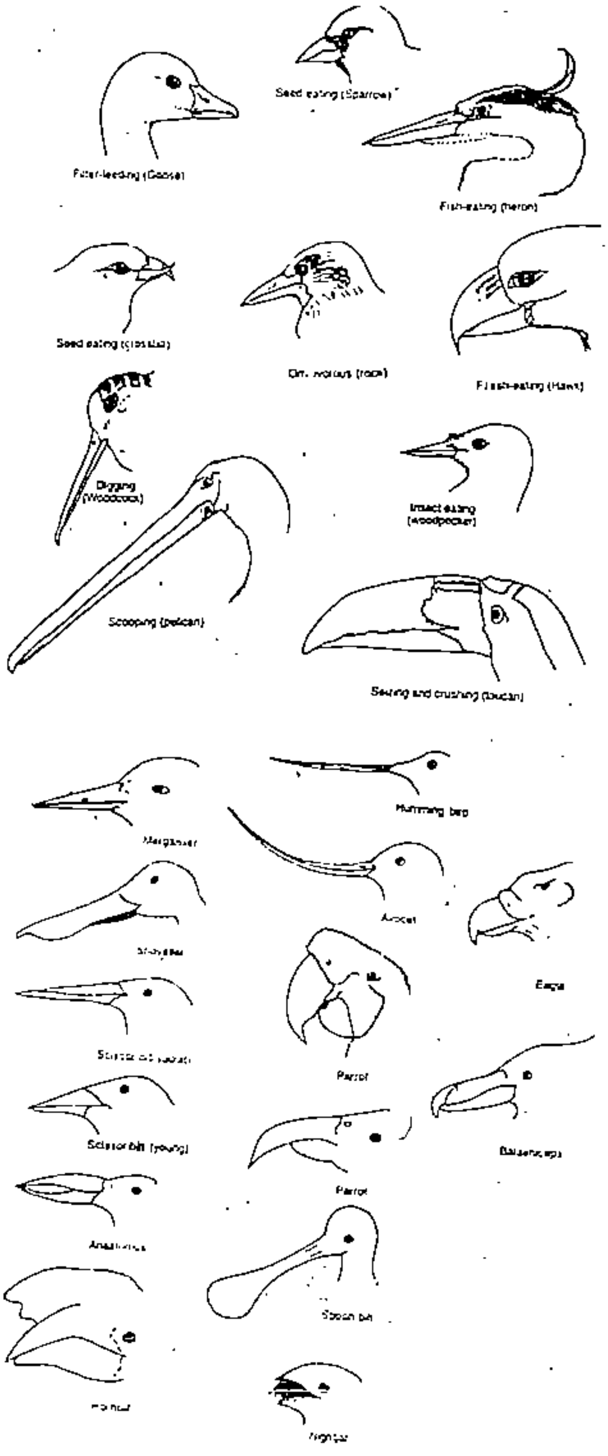

चित्र 6.9: पक्षियों की चोंचे जो विविध अशन-विधियों के लिए अनुकूलित हो गयी हैं।

हैं। पक्षी और भी अनेक प्रकार के प्राणियों को अपना आहार बना लेते हैं जैसे कि कृमियों, मौलस्कों, क्रस्टेशियनों, मछलियों, मेंढ़कों, सरीसृपों, स्तनियों और यहां तक कि अन्य पक्षियों को भी। पक्षियों की एक बहुत बड़ी संख्या फूलों के मकरंद का आहार करती है। कुछ पक्षी सर्वभक्षी होते हैं और मौसम के अनुसार जो कुछ भरपूर मिल सकता है सब कुछ खा लेते हैं, परंतु सर्वभक्षी पक्षियों को उन्हीं के समान बहुविध आहार के लिए अन्य सर्वभक्षियों के साथ प्रतिस्पर्धा करनी पड़ती है। कुछ अन्य पक्षी हैं जो अल्पविधभक्षी (stenophagus) हैं अर्थात् बस इनी-गिनी चीज़ें खाने वाली स्पीशीज़ जिनकी मानो अपनी ही पाकशाला हो मगर जिसकी उन्हें कीमत चुकानी पड़ती है।

पक्षियों की चोंच उनके अलग-अलग प्रकार के आहार के लिए बहुत अनुकूलित होती है। इसमें सामान्य प्रकार की चोंच से लेकर जैसी कि कौओं की मज़बूत नुकीली चोंच होती है विशाल आकृति की अति विशेषित चोंच तक होती हैं जैसी कि हंसावरों (flamingoes), धनेशों (hornbills) तथा "टूकान" पक्षियों में होती है (चित्र 6.9)। कठफोड़वों की चोंच सीधी कड़ी छेनी-जैसी युक्ति होती है। अपनी दुम को पेड़ के तने पर कसकर गड़ा कर कठफोड़वा ज़ोर-ज़ोर से पेड़ पर चोंच से प्रहार करता है ताकि या तो पेड़ में खोखला बना कर उसमें अपना घोंसला रख सके या पेड़ के भीतर सूराख़ बनाकर भीतर रहने वाले कीड़े-मकौड़े नज़र आ जाएं। तदुपरांत वह अपनी लम्बी, लचीली कांटेदार जीभ के उन कीटों के गलियारों में डालकर उन्हें बाहर खींच कर खा लेता है (चित्र 6.10)। कठफोड़वों की करोटि ख़ास तौर से मोटी होती है ताकि वह झटके सहन कर सके।

पक्षियों में दांत नहीं होते, मगर उनकी जगह श्रृंगीय चोंचे होती हैं। इन चोंचों में बहुत व्यापक अनुकूली विकिरण पाया जाता है जो तरह-तरह के मनपसंद भोजन के लिए अनुकूल हो गयी हैं। उदाहरण के लिए, चोंच के किनारे तेज़ धार वाले हो सकते हैं या ऊपरी चोंच तेज़ हुक जैसी हो सकती है या लकड़ी में सूराख़ कर सकने वाली तेज़ नुकीली हो सकती है (चित्र 6.10)। कुछ मामलों में आहार-स्वभाव की झलक पैरों तक में मिलती पायी जाती है। प्ररूपत: जितने भी शिकारी पक्षी हैं उन सबमें शिकार को दबोच सकने के लिए लम्बे वक्र पंजे बने होते हैं। मिट्टी में आहार खोजने वाली स्पीशीज़ में जैसे कि तीतर तथा "फीजेंट" में मिट्टी को खुरचने के लिए भारी और मज़बूत पैर होते हैं। जबकि दूसरी ओर शुतुरमुर्ग तथा एमू के पैर भयंकर शस्त्र का काम करते है। बीज खाने वाले पक्षी अपने आहार को पूरा-पूरा निगल जाते हैं लेकिन उनके पेट में एक ख़ास भाग पेशीय गिज़र्ड होता है जिसके भीतर कुछ कंकड़-पत्थर होते हैं जिनके द्वारा इन बीजों को पीसने में मदद मिलती है।

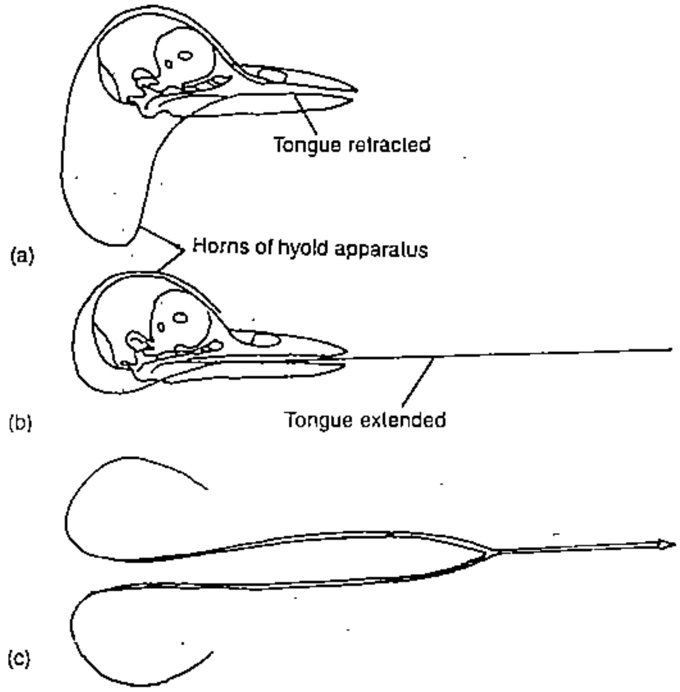

चित्र 6.10 : कठफोड़वें में जीभ का बहि:सरण। (a) लचीला पतला हायॉइड उपकरण-मांसल जीभ को साधे रखता है। (b) जब कठफोड़वा जीभ को बाहर को निकालता है तब यह हायॉइड उपकरण आगे को फिसलता तथा उससे जीभ आगे को निकल जाती है। (c) कठफोड़वा पाइकस (*Picus*) के हायॉइड उपकरण का ऊपर दृश्य।

हंसावर एक फ़िल्टर-अशन उपकरण (चित्र 6.11) का इस्तेमाल करके उन छोटे-मोटे जीव जंतुओं एवं अन्य निवालों को छान लेता है जो अलवण जलीय आवासों की दलदली तलहटियों में पड़े रहते हैं।

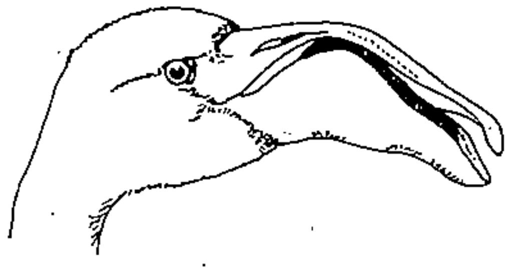

चित्र 6.11: हंसावर (फ़्लेमिंगो) में फ़िल्टर-अशन क्रियाविधि की समाभिरूपता। हंसावर की चोंच के किनारे-किनारे जो झब्बा-सा बना होता है वह छलनी का सा काम करता है।

6.3.3 स्तनी

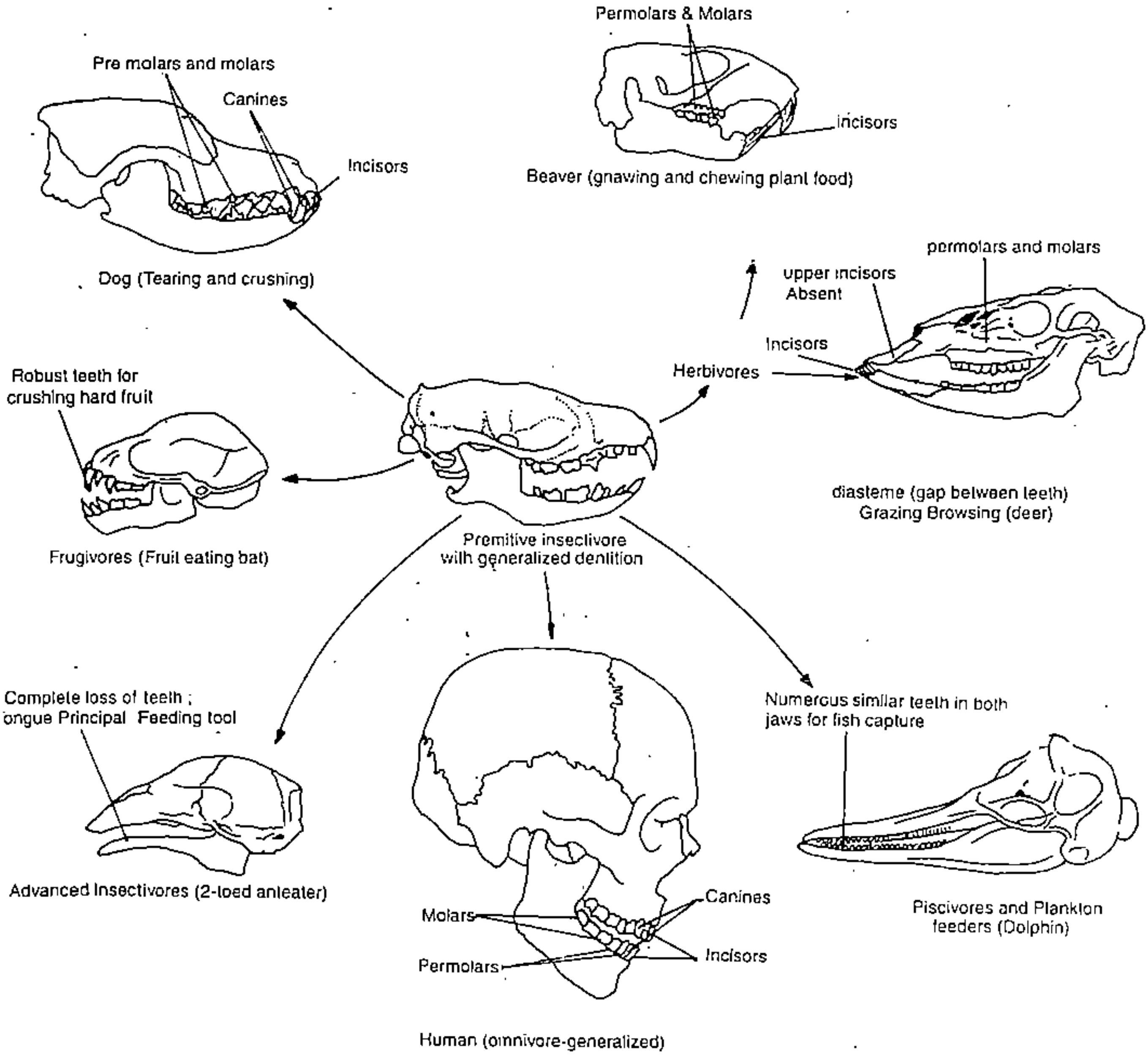

चित्र 6.12: यूथीरियन स्तनियों के मुख्य पोषण वर्गों में पाए जाने वाले अशन रूपांतरण। आरंभिक यूथीरियन कीटभक्षी होते थे, अन्य सभी प्ररूप इन्हीं से विकसित हुए।

लिया। सभी स्तनियों में आहार-स्वभावों तथा शारीरिक संरचना में निकट संबंध होता है। स्तनियों में आक्रमण करने के लिए तथा शत्रुओं से अपनी रक्षा करने के लिए भी पूरी तरह अनुकूल हुए होते हैं। आहार को ढूंढने, पकड़ने, काटने- फाड़ने, निगलने तथा पचाने के लिए भांति-भांति के विशेषीकरण होते हैं और उन्हीं पर निर्धारित होता है कि स्तनी के शरीर की रचना क्या होगी एवं उसका स्वभाव क्या होगा। सब कुछ अगर छोड़ भी दें तो अकेले दांतों की ही रचनात्मक विशिष्टता बता देती है कि उस स्तनी का जीवन-स्वभाव कैसा होगा (चित्र 6.12)। सभी स्तनियों में दांत होते हैं, बस केवल कुछ ह्वेलों, मॉनोट्रीमों तथा चींटीखोरों में नहीं होते। स्तनियों के दांतों के रूपांतरणों का संबंध उस भोजन से है जिसे वे खाते हैं।

स्तनियों के विकास के दौरान उनके दांतों में प्रमुख परिवर्तन मीज़ोज़ोइक युग में हुए। सरीसृपों के एकसमान समदंती दंत-विन्यास के विपरीत स्तनियों के दांत अलग-अलग विशेष प्रकार्यों के लिए विशेषित हो गए जैसे कि काटने, पकड़ने, कुतरने, फाड़ने, पीसने तथा चबाने के लिए। इस प्रकार विभेदित हुए दांतों को विषमदंती कहा जाता है। प्ररूपत: स्तनियों के दंत-विन्यास में चार प्रकार के दांत पाए जाते है: कृंतक (incisors) जो सरल शिखरों एवं धारदार किनारों वाले होते हैं जिन्हें मुख्यत: काटने या कुतर लेने में उपयोग किया जाता है; रदनक (canines) जिनके शिखर लम्बे और शंक्वाकार होते हैं, ये वेधन के लिए विशेषित होते हैं; अग्रचर्वणक (premolars) तथा चर्वणक (molars) जो मोटी काय के होते हैं एवं उनके दंताग्रों में अलग-अलग व्यवस्था पायी जाती है, इन दांतों का इस्तेमाल वे चूरा करने तथा पीसने में करते हैं। आदिम दंत सूत्र जो ऊपरी तथा निचले जबड़े के एक-एक अर्धांश में पाए जाने वाले प्रत्येक प्रकार के दांतों की संख्या दर्शाता है इस प्रकार था I, 3/3, C 1/1, PM 4/4, M 3/3। आर्डर इंसेक्टिवोरा के सदस्य जैसे कि श्रियू, कुछ सर्वभक्षी एवं मांसभक्षी इस आदिम प्रतिरूप के सबसे निकट आते हैं (चित्र 6.12)। सरीसृपों

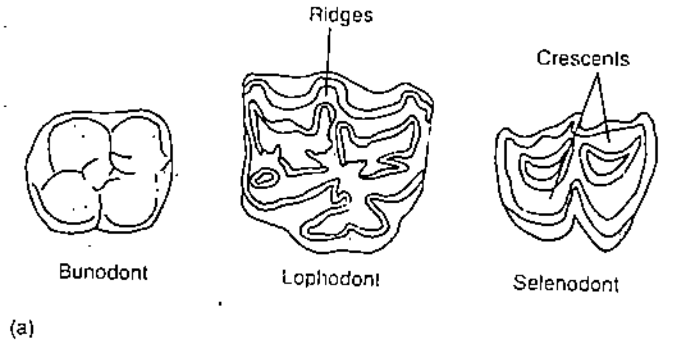

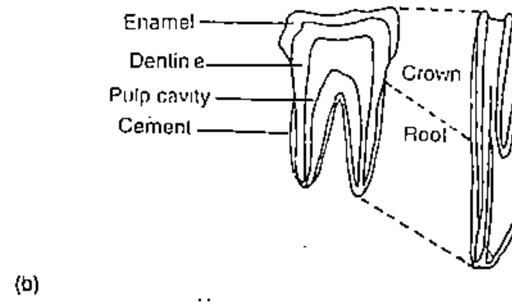

चित्र 6.13: शाकभक्षी स्तनियों में चर्वणक दांतों एवं जबड़ों में पाए जाने वाले रूपांतरण। (a) सामान्य दंताग्र प्रतिरूपों के शिखरीय दृश्य। (b) एक नीचे शिखर वाले और एक ऊंचे शिखर वाले दांत के उदग्र सेक्शन; (c) खरगोश तथा अन्य शाकभक्षियों के जबड़े इस प्रकार संधि बनाए होते हैं कि चर्वणक दांत एक साथ आकर मिल सकते हैं।

से भिन्न, स्तनियों के दांतों का उनके जीवन के दौरान लगातार प्रतिस्थापन नहीं होता रहता। अधिकतर स्तनियों में दांतों के मात्र दो सेट ही पाए जाते हैं- एक तो अस्थायी सेट जिन्हें पाती अथवा दूध के दांत कहते हैं और दूसरे पक्के दांत जो करोटि के पर्याप्ततः बढ़ चुकने पर जबकि जबड़ों में दांतों का पूरा सेट ठीक से आ सकता है, दूध के दांत गिर जाने के बाद निकलते हैं। केवल कृंतक, रदनक तथा अग्रचर्वणक ही पाती होते हैं, चर्वणकों का कभी प्रतिस्थापन नहीं होता। इस प्रकार दांतों का एकल स्थायी सेट आजीवन चलता रहता है।

स्तनी अपने दांतों को शिकार को मारने, आहार को काटने-पीसने आदि के लिए बहुत व्यापक रूप में इस्तेमाल करते हैं। अतः इनमें इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए दांतों के बहुत भिन्न-भिन्न प्ररूप विकसित हो गए हैं (चित्र 6.12)। छेनी-जैसे कृंतकों को खास तौर से रोडेंट-प्राणी तथा लैगोमार्फ़ प्राणी (खरगोश आदि) कुतरने के काम में लाते हैं। प्रोबोसीडिया (हाथियों, मैमथों) में कृंतक रूपांतरित होकर एक जोड़ी गजदंत बन गए हैं। कार्निवोरों में नुकीले छुरे-जैसे रदनक इस्तेमाल किए जाते हैं। कुछ वर्गों में जैसे कि जंगली सूअरों तथा पिन्निपीड-प्राणियों में रदनक लम्बे होकर गजदंत बन जाते हैं जिन्हें शिकार करने तथा शस्त्र की तरह इस्तेमाल करने में काम में लाया जाता है। दारक दांत चाकू-जैसे चर्वणक होते हैं जिन्हें तेज धार वाले कृंतकों के साथ-साथ कार्निवोर-प्राणी मांस को ऐसे छोटे-छोटे टुकड़ों में काटने में इस्तेमाल करते हैं जिन्हें आसानी से निगला जा सकता है। पत्तियों तथा अन्य नरम वनस्पति को खाने वाले शाकभक्षियों में आदिम कम ऊँचे शिखर वाले चर्वणक दांत बने हुए रहते हैं। मगर जो शाकभक्षी अधिक मोटी-कड़ी घास खाते हैं उनमें अधिक ऊँचे शिखर वाले चर्वणक दांत विकसित होते हैं (चित्र 6.13)। आकृति में सर्वाधिक जटिल एवं रोचक दांत होते हैं गाय, सूअर, दरियाई घोड़े (आर्टियोडेक्टाइला) तथा घोड़े, ज़ेबरा (पेरिसोडेक्टाइला) तथा हाथियों (प्रोबोसीडिया) के चर्वणक। ये दांत जोकि दाएं-बाएं पीसने की गति करते हैं इनैमल सिमेंट तथा डेंटीन की वलनित परतों के बने होते हैं, ये पदार्थ अलग-अलग कठोरता वाले होते हैं तथा इनके घिसने की दर भी अलग-अलग होती है। ऐसा इसलिए कि इनमें अधिक नरम डेंटीन अपेक्षाकृत जल्दी घिसती है जबकि कठोरतर इनैमल एवं सिमेंट परतों के उभरे हुए कटक बन जाते हैं, इन कटकों से घास तथा अन्य वनस्पति के चबाने में चर्वणक दांतों की कारगरता बढ़ जाती है। ह्वेल-बोन ह्वेलें अपनी ह्वेल-बोन यानि बैलीन से मुख्यतः "क्रिल" नामक बड़े क्रस्टेशियमों को छान लेती हैं। मुंह खोलकर तैरती जाती हुई ह्वेल की अपनी ही आगे की दिशा में गति होने से उत्पन्न बल के द्वारा जल उसके मुंह के भीतर भर जाता है और फिर उसे मुंह की छत से एक पर्दे के रूप में नीचे को लटकी 300 से अधिक संख्या में श्रृंगीय बैलीन प्लेटों में से छनता हुआ बाहर को निकाल दिया जाता है (चित्र 6.14)। ऐसा करने पर क्रिल तथा अन्य प्लवक बेलीन में फंस जाते हैं जिन्हें ह्वेल अपनी विशाल जीभ द्वारा बीच-बीच में छुड़ा करके उन्हें निगल जाती है।

बोध प्रश्न 2

नीचे दिए गए कथनों में मूल पाठ से उचित शब्द लेकर रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:-

(i) अधिसंख्य .... ऐसी जलधाराओं को पैदा करने के लिए जिनके द्वारा अपवाही आहार कणों को उनके मुख में खींच लिया जाता है .... का इस्तेमाल किया जाता है।

(ii) विषदंतों में या तो .... बनी होती है जो .... को बहने की दिशा प्रदान करती है, वे खोखले होते हैं बहुत कुछ उसी तरह जैसे कि इंजेक्शन की .... की सुई।

(iii) शिकारी पक्षी अपने शिकार को .... अथवा .... की सहायता से पकड़ते हैं।

(iv) राजहंस एक .... उपकरण का इस्तेमाल करके छोटे .... तथा अन्य निवालों को अलवणजलीय आवासों की कीचड़दार नली में से छान लेते हैं।

(v) हाथियों में .... रूपांतरित होकर .... बन जाते हैं।

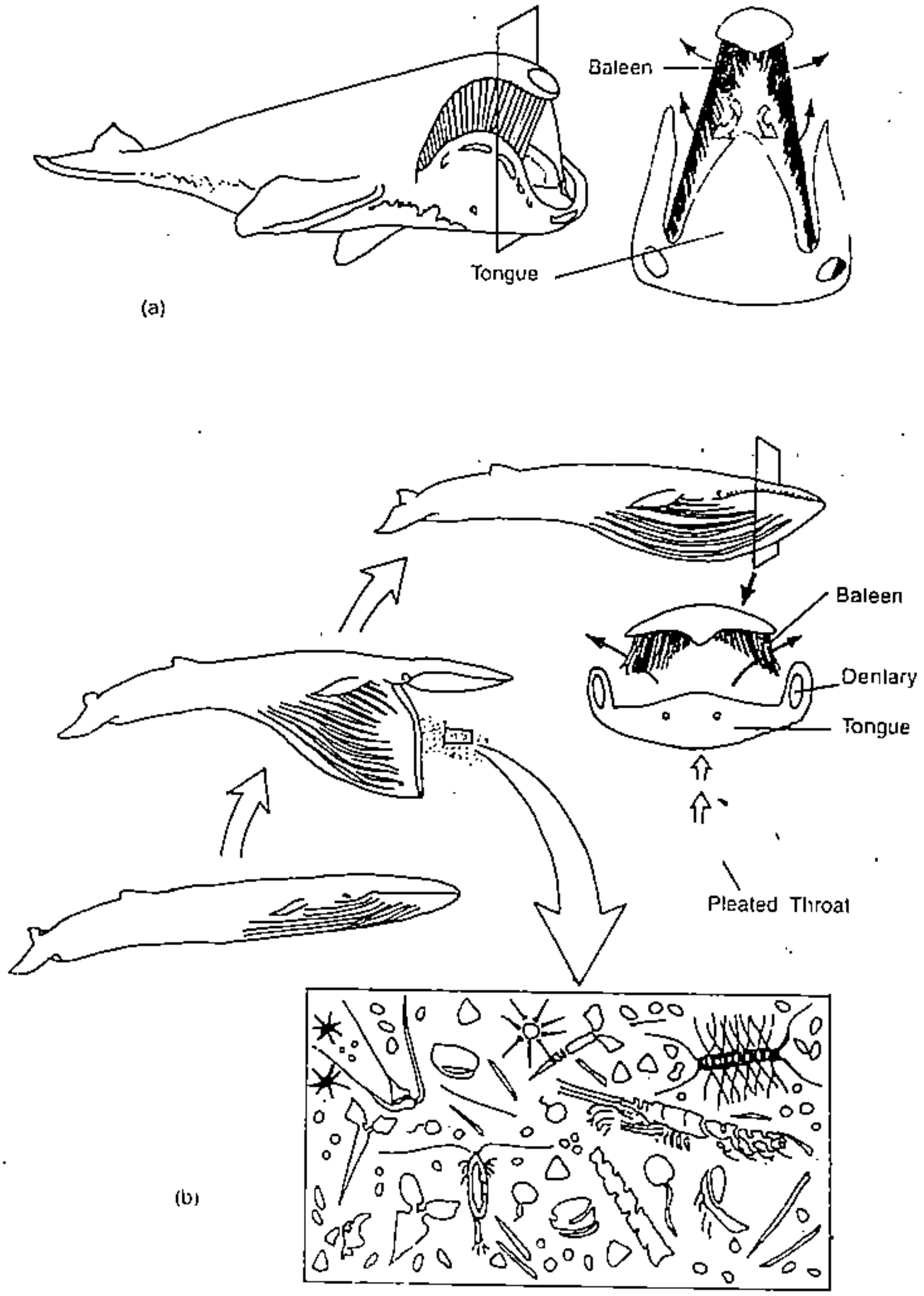

चित्र 6.14: फिल्टर-अशन क्रियाविधि। हेल-बोन हेलें (क्लास मैमेलिया, फ़ाइलम कॉर्डेटा) अपनी हेल-बोन यानि बैलीन से प्लवक को छानती हैं जिसमें मुख्यतः "क्रिल" ("krill") नामक बड़े-बड़े क्रस्टेशियन होते हैं। मुंह को खोलकर तैरती जाती हेल की अपनी ही आगे की दिशा में होने वाली गति से उत्पन्न बल के द्वारा जल उसके मुंह के भीतर भर जाता है और फिर मुंह की छत से एक पर्दे के रूप में नीचे को लटकी 300 से अधिक की संख्या में श्रृंगीय बैलीन प्लेटों में से छनता हुआ बाहर निकाल दिया जाता है। बैलीन में फंसी क्रिल तथा प्लवक को बीच-बीच में हेल अपनी विशाल जीभ से उतार लेती और उन्हें निगल जाती है।

6.4 गैर-स्तनी कशेरुकियों में पाचन-तंत्र

आहार नाल के भीतर कोशिकाबाह्य पाचन का हो सकना एक महत्वपूर्ण विकासीय नवपरिवर्तन था। इस विधि ने अनेक प्राणियों को लगातार अशन करते रहने से मुक्ति दे दी, ऐसा इसलिए कि वे प्राणी जल्दी से बहुत सा आहार एक साथ भीतर नहीं ले जा सकते थे, बल्कि वे धीरे-धीरे बहुत से इतने छोटे कणों को भीतर लेते थे जो कोशिकाओं के भीतर प्रविष्ट होकर अंतःकोशिक पाचन विधि से पचाए जाते थे। कुल मिलाकर एक नलिकाकार आहार-नाल अधिक कारगर होती है क्योंकि इसमें आहार लगातार एक ही दिशा में चलता जाता एवं पाचन-सबंधी विशिष्ट बन गए अलग-अलग क्षेत्रों में से गुज़रता आगे बढ़ता जाता है।

इस प्रकार अम्लीय तथा क्षारीय दोनों प्रावस्थाएं कशेरुकियों के आहार पथ मे मौजूद होती पायी जाती हैं, और दोनों ही सक्रिय बनी रहती हैं जिससे एक ही समय पर विभिन्न प्रकार की पाचन क्रियाएं होती रहती हैं। सामान्य रूप में आहार नालों के चार मुख्य विभाजन होते है; इन विभाजनों के कार्य इस प्रकार हैं (1) ग्रहण करना, (2) संवहन तथा संचय, (3) पाचन एवं पोषक तत्वों का अवशोषण करना तथा (4) जल का अवशोषण एवं मलत्याग। आगे वर्णन किए गए सेक्शनों में विभिन्न गैर-स्तनी कशेरुकी क्लासों से प्रतिदर्शी आहार-नालों का विवेचन किया गया है।

6.4.1 मछलियां तथा ऐम्फ़िबियन

1 मछलियां

(क) कार्टिलेजी मछलियां

कार्टिलेजी मछलियों के पाचन-तंत्र में आहार-नाल, आहार-नाल की ग्रंथियां तथा पाचन की कार्यिकी शामिल हैं (चित्र 6.15)।

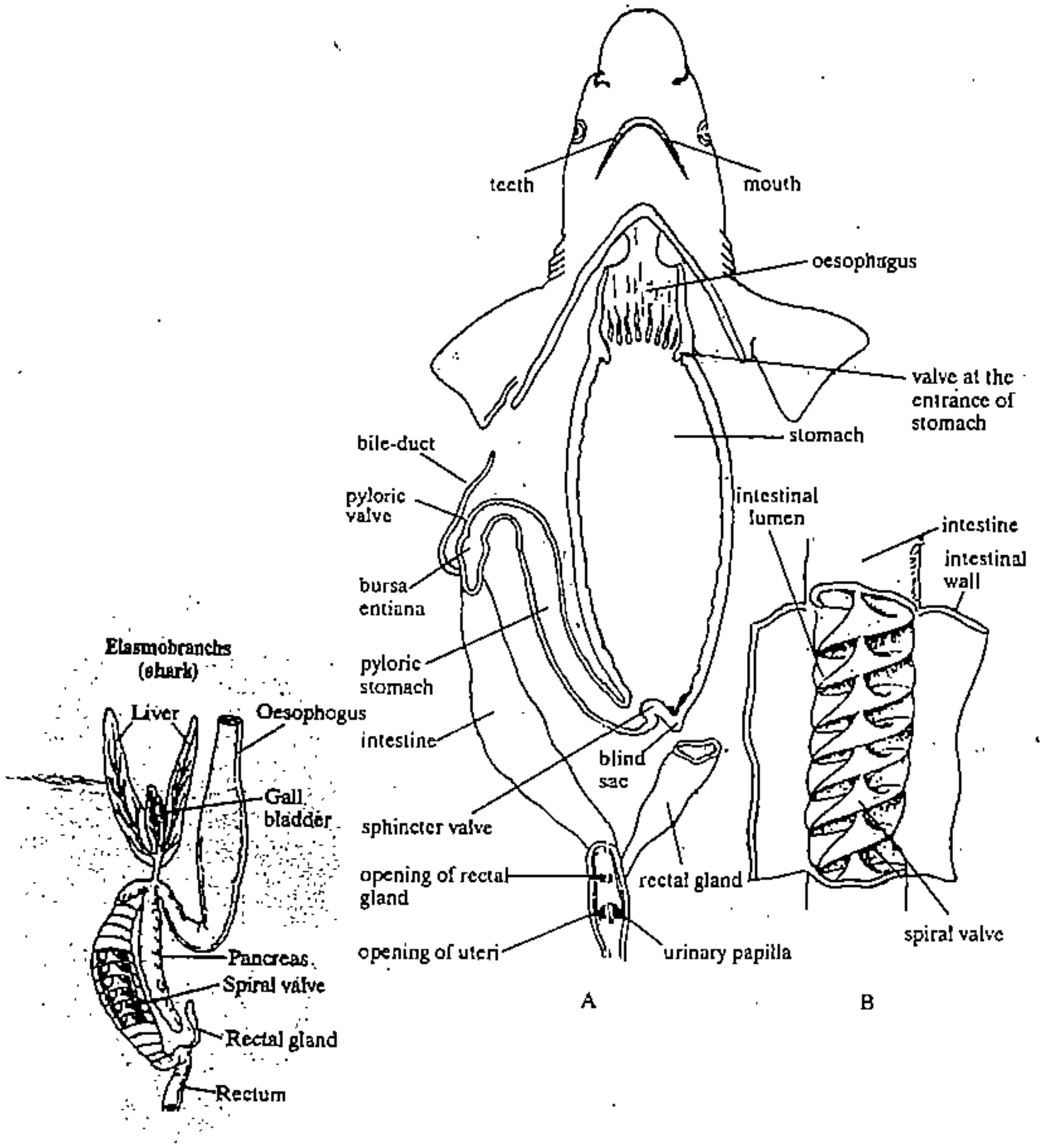

चित्र 6.15: स्कोलियोडॉन (*Scoliodon*) पाचन पथ।

स्कोलियोडॉन की आहार-नाल में मुख्य भाग मुख, मुख-गुहा, ग्रसनी (pharynx), ग्रसिका (oesophagus), जठर (stomach), आंत्र (intestine) तथा मलाशय (rectum) होते हैं। मुख अधर दिशा में एक

नवचंद्राकार खुला भाग होता है जो भीतर को एक बड़े आकार की पृष्ठ-अधरत: सम्पीडित मुख-गुहा में खुलता है। मुख-गुहा का अस्तर बनाती हुई एक मोटी श्लेष्मल झिल्ली (mucous membrane) होती है जो अधरत: एक मोटे वलन के रूप में उठी होकर एक तथाकथित जीभ बना देती है, मगर यह जीभ न तो पेशीय ही होती है और न ही ग्रंथीय। श्लेष्मल झिल्ली में चर्मीय दंतिकाएं (dermal denticles) होती हैं जिनके कारण झिल्ली खुरदरी हो जाती है। दांत तिर्यक (तिरछे) होते हैं और उनमें तेज़ न्यूनाधिक रूप में संपीडित दंताग्र होते हैं जिनके सीमांत चिकने तथा बिना-दंदानेदार (non-serrated) होते हैं। सभी दांत समान आकृति के समदंती (homodont) होते हैं और वे अनेक समांतर पंक्तियों में व्यवस्थित, ऊपरी तथा निचले जबड़ों के भीतरी सीमांतों पर बने होते हैं। दांत शिकार पकड़ने में काम आते हैं और शिकार को मुंह से बाहर निकल जाने को रोकते हैं, शिकार को चूरा करने या उसे चबाने में उनका कोई काम नहीं होता। यद्यपि इनमें (बहुबारदंती, polyphyodont) दांतों की अनेक पंक्तियां होती हैं, फिर भी एक समय में केवल एक ही पंक्ति काम करती है, और पुरानी पंक्ति के स्थान पर नई पंक्ति बनती जाती है। मुख गुहा के भीतर उच्चतर कशेरुकियों की तरह की लार-ग्रंथियों के समान इनमें कोई ग्रंथि नहीं होती।

मुख-गुहा पीछे ग्रसनी (फ़ेरिंक्स) में खुलती है, जिसके दोनों पार्श्वों पर स्पाइरैकल का छिद्र तथा पांच गिल-कोष्ठों के छिद्र बने होते हैं। स्पाइरैकल अवशेषी होता है और उसका प्रतिदर्श एक अस्पष्ट अण्डाकार गढ़े के रूप में होता है तथा गिल-कोष्ठ बड़े होते हैं। ग्रसनी गुहा का अस्तर बनाते हुए एक श्लेष्मल-झिल्ली होती है जिसके भीतर बहुसंख्यक चर्मीय दंतिकाएं होती हैं। ग्रसनी पीछे की ओर संकीर्ण होती हुई ग्रसिका का रूप ले लेती है। ग्रसिका की मोटी पेशीय दीवारें होती हैं और उसकी श्लेष्मल झिल्ली के भीतरी अस्तर में उभरते हुए अनुदैर्घ्य वलन बने होते हैं।

ग्रसिका पीछे की ओर चौड़ी होकर एक बड़ा पेशीय जठर बना लेती है। जठर अपने ही ऊपर मुड़कर एक J- की आकृति का अंग बन जाता है। इस जठर की समीपस्थ शाखा को आगमी जठर (cardiac stomach) तथा छोटे दूरस्थ भाग को निर्गमी जठर (pyloric stomach) कहते हैं। आगमी तथा निर्गमी शाखाओं के संधि स्थल पर एक बाहरी सिरे पर बंद अंधवर्ध निकलता है जिसे अंध-थैला (blind sac) कहते हैं। आगमी जठर का भीतरी श्लेष्मल अस्तर भी सुव्यक्त अनुदैर्घ्य वलनों के रूप में उभरा रहता है, ये वलन अंध-थैले के गढ़े में आकर समाप्त होते हैं। निर्गमी जठर के अंत में एक पेशीय बर्सा एंटियाना (bursa entiana) बना होता है। निर्गमी जठर के बर्सा एंटियाना में खुलने वाले छिद्र पर पेशी तंतुओं की एक वृत्ताकार पट्टी नियंत्रण रखती है जिसे **निर्गमी वाल्व (pyloric valve)** कहते हैं।

बर्सा एंटियाना पीछे अंतड़ी में खुलता है। अंतड़ी अथवा आंत्र एक चौड़ी नलिका होती है जो सीधी पीछे उदर गुहा में से चलती जाती है और पश्चत: मलाशय (रेक्टम) में खुलती है। आंत्र की भीतरी सतह श्लेष्मल झिल्ली के एक विशेष वलन के रूप में बढ़ गयी होती है जिसे **सर्पिल वाल्व (spiral valve)** कहते हैं, इस वाल्व का एक सीमांत आंत्र की भीतरी दीवार से संलग्न रहता है और दूसरा सीमांत स्वयं अपने ही ऊपर अनुदैर्घ्य रूप में गोल लिपटा हुआ रहता है, यह गोल लिपटना घड़ी की सुइयों के विपरीत दिशा में होता है, और इसमें लगभग ढाई घुमाव आते हैं। अनुप्रस्थ सेक्शन में सर्पिल वाल्व एक "वाच स्प्रिंग" जैसा दिखायी पड़ता है। यह सर्पिल वाल्व न केवल अंतड़ी की अवशोषी सतह को ही बढ़ा देता है वरन् अंतड़ी में से भोजन के जल्दी से प्रवाह को भी रोकता है।

मलाशय आहार नाल का अंतिम भाग होता है। मलाशय की पृष्ठ दिशा में नलिकाकार मलाशय (अंधनाल) ग्रंथि मलाशय में खुलती है। मलाशय अवस्कर (cloaca) में खुलता है, अवस्कर में आहार नाल के अलावा मूत्रजनन वाहिनियां भी खुलती है। आहार नाल की ग्रंथियों में यकृत, अग्न्याशय तथा मलाशय ग्रंथियां होती हैं।

स्कोलियोडॉन मांसभक्षी प्राणी है और वह अन्य मछलियों को खाती है, मगर उसके भोजन में शैल-केकड़े, लॉब्स्टरें तथा मकड़ा-केकड़े भी शामिल होते हैं। स्कोलियोडॉन के दांतों का काम मात्र शिकार को मुंह से बाहर निकल जाने से रोकना है, आहार चबाने में उनका कोई कार्य नहीं होता। चूंकि मुंह में लार ग्रंथियां नहीं होती इसलिए मुख गुहा के भीतर पाचन भी नहीं होता। ग्रसनी की दीवार में बहुसंख्यक श्लेष्मल ग्रंथियां होती हैं। इन ग्रंथियों के स्रावों का कोई पाचन कार्य नहीं होता वे केवल आहार के मार्ग को चिकना

फिसल जाने वाला बना देती हैं। ग्रसिका का भी कोई पाचन कार्य नहीं होता। आगमी जठर की श्लेष्मल झिल्ली से जठर-रस का स्राव निकलता है जिसमें पेप्सिन तथा हाइड्रोक्लोरिक अम्ल होते हैं जो प्रोटीनों को प्रोटिओज़ों तथा पेप्टोनों में बदल देते हैं। जठर रस काइटिन को नहीं पचा पाता। अग्न्याशय से ट्रिप्सिन, ऐमाइलॉप्सिन तथा लाइपेज़ों का स्राव होता है। अधपचा भोजन जब आंत्र में प्रवेश करता है तब उस पर पित्त (bile) एवं अग्न्याशय रस की क्रिया होती है। पित्त आहार को क्षारीय बना देता है जिससे अग्न्याशय रस की क्रिया में सहायता मिलती है। ट्रिप्सिन शेष प्रोटीनों पर क्रिया करता है, ऐमाइलॉप्सिन स्टार्च को शर्करा में बदल देता है तथा लाइपेज़ वसाओं को वसा अम्लों में परिवर्तित कर देता है। पचा हुआ भोजन आंत्र एवं सर्पिल वाल्व में अवशोषित हो जाता है।

(ख) अस्थिल मछलियां

पाचन अंगों की संरचना में बहुत विविधता पायी जाती है। मुख शीर्ष के ठीक अग्र सिरे पर या उसके समीप बना होता है। यह मुख सामान्यत: एक अनुप्रस्थ झिरी के रूप में होता है और कभी-कभी ऊपरी तथा निचले जबड़ों की गतिशील आलम्बी हड्डियों के द्वारा आगे को फैला दिया जाता है। कुछ मछलियां दंतविहीन होती हैं मगर अधिकतर उदाहरणों में दांत होते हैं जो प्रीमैक्सिला, पैलेटाइन, टेरिगॉइड, प्रीवोमर, पैरास्फ़ीनॉइड, डेंटरी, बेसीहायल, गिल-चापों की हड्डियों पर बने हो सकते हैं। आइसोस्पॉन्डाइलाई (Isospondyli) वर्ग की मछलियों को छोड़कर शेष अधिसंख्य टीलियोस्टिआई (Teleostei) मछलियों की विशिष्टता है कि इनमें मेक्सिला अदंती (edentulous) (अर्थात् दंतविहीन) होता है और वह फैले मुख का भाग नहीं बनती। दांत या तो बस श्लेष्मल झिल्ली में दबे-गड़े से होते हैं जो हड्डियों के मृसरण (maceration) में अथवा उनके खौलाए जाने पर अपनी जगहों से बाहर निकल आते हैं, या फिर हड्डियों में बने गर्तों के भीतर रोपित होते हैं या फिर हड्डियों के साथ समेकित होते हैं। ये दांत लगातार एक के बाद एक आते ही रहते हैं, यानि कोई दांत आक्षत हुआ या घिस गया तो उसकी जगह नए दांत का आना आजीवन चलता रहता है।

टीलियोस्ट मछलियों में से अति बहुसंख्यक स्पीशीज़ में दांत छोटे, शंक्वाकार, प्रतिवक्रित होते हैं जो प्रयत्नरत शिकार को मुंह से बाहर फ़िसल जाने से रोकने के लिए तो अनुकूल होते हैं मगर चीरने-फाड़ने या कुचलने के लिए बिल्कुल अनुपयुक्त होते हैं। पाइक जैसी कुछ मछलियों में ये दांत पीछे की ओर रुख़ किए हुए कब्ज़े (हिंज) के समान जुड़े रहते हैं, इस व्यवस्था से जब शिकार को पीछे ग्रसिका में निगला जा रहा हो, तब ये दांत पीछे को बंद हो जाते हैं जिससे निगलने की क्रिया में बाधा नहीं पड़ती, मगर यदि इससे उलटी गति हो यानि मुंह से बाहर की ओर को हो, तब ये दांत सीधे खड़े हो जाते और भोजन को बाहर जाने से रोक देते हैं। गहरे समुद्रों की अनेक मछलियों में दांत बहुत बड़े-बड़े होते हैं और वे जबड़ों की एक भयावह संरचना दर्शाते हैं। ऐसे भी अनेक उदाहरण पाए गए हैं जिनमें दांतों का एक बहुत स्पष्ट विभेदन हो गया है, इनमें जबडों में आगे की ओर के दांत नुकीले अथवा छेनी-जैसे होते हैं और वे पकड़े रखने के लिए अनुकूल होते हैं, जबकि पीछे की ओर बने दांत गोल सतहों वाले होते हैं जिनसे कुचला जा सकता है।

अनेक अस्थिल मछलियों मे आहार नाल के विभिन्न क्षेत्रों ग्रसिका, जठर, डुओडिनम, क्षुद्रांत्र तथा मलाशय जैसे क्षेत्रों का बाहर से कोई विभेदन नहीं हुआ होता मगर ऊतक-संरचना की दृष्टि से ये भाग न्यूनाधिक रूप में स्पष्टत: अलग-अलग पहचाने जा सकते हैं। जठर V-आकृति का होता है लेकिन इसका आगमी क्षेत्र एक लम्बे अंध-कोश में लम्बा बढ़ गया होता है (चित्र 6.16)। यह भाग अक्सर बहुत फैल सकने वाला होता है जिससे गहरे समुद्र की कुछ टीलियोस्ट मछलियां अपने ही जितनी बड़ी मछलियों को निगल सकती हैं। कई फ़ैमिलियों की अनेक जीनसों में जठर कतई नही होता है। यही दशा होलोसेफ़ेलाई (Holocephali) वर्ग की मछलियों में भी पायी जाती है और निस्संदेह यह दशा परवर्ती (बाद में बनी) एवं अनुकूली होती है।

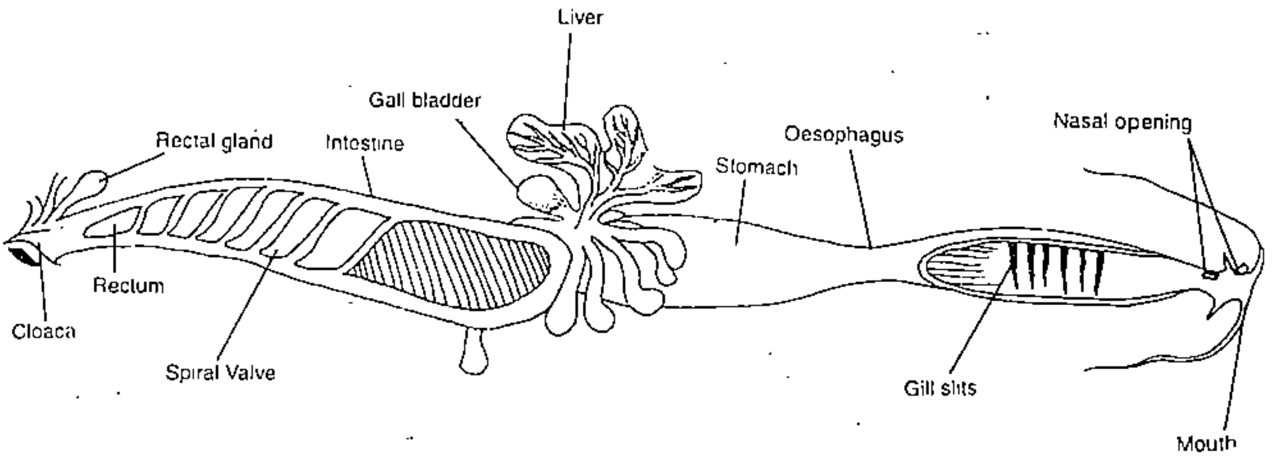

चित्र 6.16: एक टीलियोस्ट मछली ("बास") का पाचन पथ।

ग्लोब मछलियां अपनी ग्रसिका में हवा या पानी भरकर उसे फुला सकती हैं, जिसके फलस्वरूप वे उलटी होकर पानी की सतह पर तैरती रह सकती हैं। सर्पिल वाल्व पौलिप्टेरस तथा स्टर्जियनों में बहुत सुविकसित होता है, लेपिसोस्टियस तथा ऐमिया में अवशेषी, और कदाचित काइरोसेंट्रस (आइसोस्पॉण्डाइलाई) को छोड़कर शेष सभी टीलियोस्टिआई में होता ही नहीं या अवशेषी होता है। हेरिंग में इसका एक मामूली सा अंश जैसा पाया जाता है। यकृत सामान्यत: बड़ा होता है। अग्न्याशय या तो एक संहत ग्रंथि के रूप में हो सकता है जैसे कि कॉण्ड्रिक्थीइस वर्ग में या आंत्रयोजनी (मीज़ेंट्री) की परतों के बीच-बीच में बहुत विसरित हुआ होता है, या अंशत: यकृत द्वारा घिरा रहता है। जठरनिर्गमी (पाइलोरिक) अंधनाल (polyoric caeca) सामान्यत: विद्यमान होते हैं, तथा इनकी संख्या 1 से लेकर दो सौ तक अलग-अलग होती है। गुदा मूत्रजनन छिद्र से सदैव स्पष्ट अलग और उसके सामने स्थित होती है।

2. ऐम्फिबियन-प्राणी

मुख छिद्र एक चौड़ी झिरी जैसा होता है। दांत हड्डियों के साथ समेकित हो गए होते है तथा वे प्रीमैक्सिलाओं, मैक्सिलाओं तथा वोमरों और कभी-कभार डेंटरियों, पैलेटाइन तथा पैरास्फीनॉइड पर बने होते हैं। पाइपा (Pipa) में तथा कुछ टोडों में दांत नहीं होते। जीभ यूरीडेलों में गतिविहीन, एग्लौसा में अविद्यमान:, तथा ऐन्यूरा में जिनमें इसे एक परिग्राही अंग के रूप में इस्तेमाल किया जाता है यह गतिशील एवं पिछले सिरे पर मुक्त होती है। लार-ग्रंथियां नहीं होती। अनेक नर ऐन्यूरा में मुख-गुहा का भीतर अस्तर थैलों के रूप बाहर को बढ़ गया होता है, इन्हें वाक्-कोश (vocal sacs) कहते हैं तथा ये अनुनादी (resonators) की तरह कार्य करते हैं। राइनोडर्मा (Rhinoderma) में इन्हें बच्चों के पाल-ग्रह के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। ग्रसिका, जठर, छोटी अंतड़ी तथा मलाशय विद्यमान होते हैं।

मेंढ़क के पाचन-तंत्र में मुख्यत: आहार पकड़ने वाले अंग आहार नाल तथा पाचन ग्रंथियां होती हैं। आहार नाल के भीतर भोजन का मिसृणन, पाचन तथा अवशोषण होता है, और उस दौरान पाचन ग्रंथियों से निकले एंज़ाइम खाए गए आहार के पाचन में सहायता करते हैं। मेंढ़क की आहार नाल शरीर के एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक फैली हुई एक कुंडलित नलिका होती हैं। इसमें पाए जाने वाले क्षेत्र-मुख गुहा, ग्रसनी, ग्रसिका, जठर तथा आंत्र हैं। मुख भीतर की ओर एक चौड़ी मुख-गुहा में खुलता है जो ऊपरी तथा निचले जबड़ों के बीच बनी होती है। मुख गुहा की छत में वोमेराइन दांतों के समीप दो छिद्र "भीतरी नासारंध्र" होते हैं जो नासाद्वारों (nostrils) से जुड़े होते हैं, इन्हीं नासा द्वारों में सांस लेते समय श्वसन गैसें मुख गुहा में भीतर जाती एवं मुख-गुहा में से बाहर आती हैं।

ग्रसनी पीछे को आहार-नाल के एक चौड़े नलिकाकार भाग ग्रसिका (ईसोफ़ैगस) में खुलती है। आहार नाल का यह भाग बहुत छोटा होता है क्योंकि मेंढ़क में गर्दन नहीं होती। मगर ग्रसिका बहुत प्रसारशील होती है क्योंकि इसका भीतरी अस्तर बहुसंख्यक अनुदैर्ध्य वलनों के रूप में बना होता है जिससे आहार के जठर में

जाते समय ग्रसिका का चौड़ा फैलते जाना संभव होता है। जठर के दो भाग होते हैं एक तो सामने वाला फैला हुआ आगमी भाग और दूसरा पीछे का छोटा संकरा निर्गमी (पाइलोरिक) भाग। जठर पीछे एक लम्बे नलिकाकार भाग "अंतड़ी" में खुलता है जिसके दो भाग छोटी तथा बड़ी अंतड़ी होते हैं। छोटी अंतड़ी एक छोटी चौड़ी बड़ी अंतड़ी में खुलती है जिसे मलाशय कहते हैं। मलाशय का पश्च सिरा अवस्कर (cloaca) कहलाता है (चित्र 6.17) तथा उसमें एक मध्यक अधर उपांग मूत्राशय बना होता है। मूत्र-वाहिनियां एवं जनन वाहिनियां अवस्कर में खुलती हैं। अवस्कर बाहर को गुदा के माध्यम से खुलता है। यकृत एवं अग्न्याशय जैसी पाचन ग्रंथियां होती हैं तथा यकृत में एक पित्ताशय होता है।

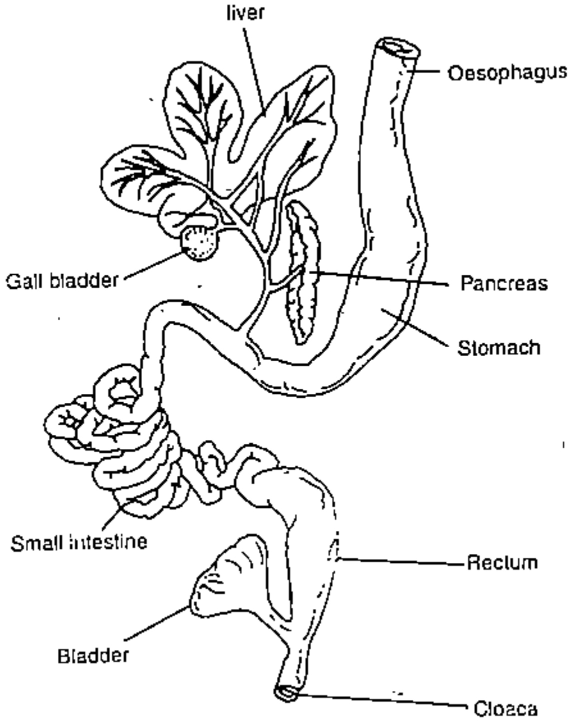

चित्र 6.17: एक ऐम्फिबियन (मेंढ़क) का पाचन पथ।

6.4.2 सरीसृप तथा पक्षी

1. सरीसृप

दांत सामान्यतः प्रीमैक्सिलाओं, मैक्सिलाओं, तथा डेण्टरी पर बने होते है, और कभी-कभी पैलेटाइन तथा टेरिगॉइड पर भी होते हैं। इनका लगातार प्रतिस्थापन होता रहता है और ये पार्श्वदंती (pleurodont), अग्रदंती (acrodont) अथवा गर्तदंती (thecodont) प्रकार के होते है ये शंक्वाकार अथवा हुकनुमा होते है जो केवल कुछ विलुप्त उदाहरणों को छोड़कर शेष सभी में परिग्रहण के लिए अनुकूलित होते हैं चबने के लिए नहीं। कीलोनिया (chelonia) में दांत होते ही नहीं, उनकी जगह पर जबड़ों को ढकता हुआ श्रृंगीय एपिडर्मिसी चोंच-जैसा आवरण बना होता है।

यूरोमैस्टिक्स (Uromastix) नामक एक छिपकली की आहार-नाल एक लम्बी संवलित नलिका होती है। इसे मुख, मुख-गुहा, ग्रसनी, ग्रसिका, जठर, डुओडेनम, इलियम अथवा छोटी अंतड़ी (क्षुद्रांत्र), कोलन अथवा बड़ी अंतड़ी (बृहदांत्र), मलाशय तथा अवस्कर में विभाजित किया जा सकता है। मुख-छिद्र चौड़ा होता है और ऊपरी तथा निचले अगतिशील होठ से परिसीमित रहता है, ये होठ पेशीय होते हैं। मुख-छिद्र मुख-गुहा में खुलता है जिसके भीतर फ़र्श से लगी हुई एक सुविकसित पेशीय जीभ होती है। यह जीभ मुख-गुहा के फ़र्श की मध्य रेखा पर संलग्न रहती है। जीभ लम्बी, द्विशाखी तथा बहिःकर्षी होती है। जिसमें ऐच्छिक पेशियां, स्वाद कलिकाएं तथा श्लेष्मल ग्रंथियां होती हैं। ऊपरी जबड़े में दांत प्रीमैक्सिलाओं तथा मैक्सिलाओं पर पाए जाते हैं। मगर निचले जबड़े में दांत केवल डेंटरी पर बने होते हैं। यूरोमैस्टिक्स के दांत पार्श्वदंती प्रकार के होते हैं जिसका अर्थ है कि दांत जबड़े की हड्डियों के बाहरी सीमांत से जुड़े होते हैं।

ग्रसनी जीभ के पीछे होती है। ग्रसनी का अस्तर अनुदैर्घ्य वलनों के रूप में मुड़ा हुआ होता है। ग्रसनी के पीछे ग्रसिका आती है। ग्रसिका बहुत प्रसारशील होती है और पीछे की ओर एक लम्बी सिलिंडराकार थैले-जैसी संरचना जठर में खुलती है जो ग्रसिका से अधिक चौड़ी होती है। जठर की दीवारें मोटी और पेशीय होती हैं, यह जठर देह के बायें अर्धांश में पड़ा होता है एवं इसकी आकृति U- अक्षर के तरह की होती है। जठर के दो भाग हैं एक तो अगला भाग आगमी जठर जो यकृत की बायीं नली के पृष्ठ पर स्थित होता है और दूसरा पश्च भाग निर्गमी (पाइलोरिक) जठर जो थोड़ा सा दाहिनी ओर को होता है। जठर की दीवार ग्रसिका अथवा अंतड़ी की दीवार से काफ़ी ज़्यादा मोटी होती है। आगमी तथा निर्गमी, दोनों जठरों की अवकाशिका (lumen) में निकलते हुए श्लेष्मल झिल्ली के बहुसंख्यक अनुदैर्घ्य वलन देखे जा सकते हैं (चित्र 6.18)। पाचन क्रिया का स्थान जठर होता है। जठर निर्गम (पाइलोरस) की दीवार, निर्गमी जठर के पश्च सिरे के अस्तर के एक पेशीय वलय के रूप में होती है।

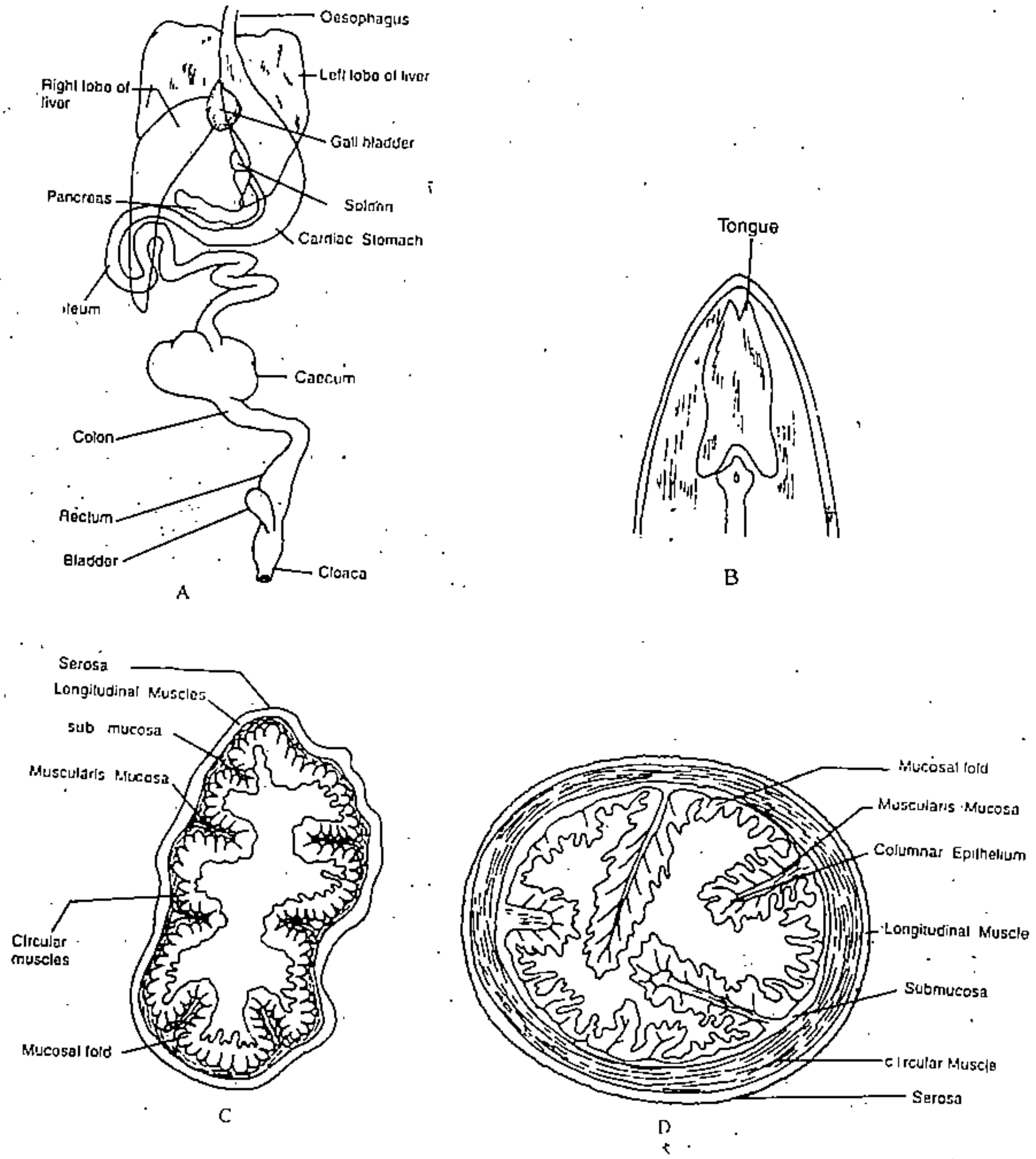

चित्र 6.18 : यूरोमैस्टिक्स। A-आहार-नाल ; B-जीभ ; C-निर्गमी जठर का T.S. ; D- आगमी जठर का T.S।

छोटी अंतड़ी में दो भाग एक अग्र डुओडेनम तथा एक पश्च भाग इलियम (क्षुद्रांत्र) आते हैं। डुओडेनम U- आकृति की होती है तथा इसमें पित्त एवं अग्न्याशय वाहिनियां आकर गिरती हैं। डुओडेनम तथा इलियम दोनों में श्लेष्मिका (म्यूकोसा) के पास-पास सटे लहरदार अनुदैर्घ्य वलन बने होते हैं। इलियम पीछे बड़ी

अंतड़ी में खुलती है। बड़ी अंतड़ी के दो भाग-समीपस्थ कोलन (बृहदंत्र) तथा दूरस्थ मलाशय होते हैं। इलियम तथा कोलन के संधिस्थल से एक अंध कोष्ठ सीकम (अंधनाल) निकलता है। मलाशय अवस्कर में खुलता है जो अवस्कर द्वार के द्वारा बाहर को खुलता है। अवस्कर में तीन कक्ष होते हैं- कॉप्रोडियम (coprodaeum) अर्थात् मल-पथ, यूरोडियम (urodaeum) अर्थात् मूत्र-पथ तथा प्रॉक्टोडियम (proc-odaeum) अर्थात् गुदा-पथ। अवस्कर के इन कक्षों में विष्ठा एवं मूत्र दोनों में जल का अवशोषण होता है। आहार नाल से संबंधित पाचन ग्रंथियां चार होती हैं - जठर ग्रंथियां, यकृत, अग्न्याशय तथा आंत्र ग्रंथियां।

लार ग्रंथियां सामान्यत: नहीं होतीं। कीलोनिया में जीभ के नीचे एक ग्रंथि (अधोजिह्वा ग्रंथि) होती है। ऊपरी तथा निचली दोनों लेबियल ग्रंथियां और पैलेटल (तालव) एवं जिह्वा (lingual) ग्रंथियां हमेशा ही पायी जाती हैं। सांपों की विष ग्रंथियां ऊपरी लेबियल लार ग्रंथियां होती हैं। आहार-नाल में कोई विशेष ध्यानाकर्षक लक्षण नहीं होते। बड़ी अंतड़ी लम्बाई में छोटी होती है और अक्सर उसमें एक छोटा सीकम होता है (चित्र 6.18)। यह अवस्कर में खुलता है जिसके भीतर मूत्र जनन वाहिनियां खुलती हैं और लेसर्टीलिया तथा कीलोनिया में उन्हीं के साथ-साथ एक ऐलेन्टोइक (अपरापोषीय) आशय भी खुलता है। गुदा छिपकलियों तथा सांपों में एक अनुप्रस्थ झिरी के रूप में होती है, कीलोनियमों तथा मगर-मच्छों में यह एक अनुदैर्घ्य झिरी अथवा गोल छिद्र के रूप में होती है।

2. पक्षी

पक्षियों के पोषण-विधियों में भारी अंतर पाए जाने के बावजूद इनके पाचन अंगों में काफ़ी एकरूपता पायी जाती है: इनकी जो भी विचित्रताएं हैं वे सब इनकी उड्डयन-शक्ति से जुड़ी हैं। इनके जबड़ों के ऊपर एक श्रृंगीय कड़ा आच्छद (रैम्फ़ोथीका, rhamphotheca) चढ़ा होता है, और जबड़ों ने एक चोंच का रूप ले लिया है। रैम्फ़ोथीका अक्सर कई अंशों की बनी होती है (यानि संयुक्त)। वास्तविक दांत बिल्कुल नहीं होते तथा ऐसा कम से कम जीवित पक्षियों में तो है ही, हालांकि कुछ जीवाश्म उदाहरणों में जैसेकि इक्थियोर्निस (Ichthyornis), हेस्पेरॉर्निस (Hesperornis) तथा आर्कियॉप्टेरिस (Archeopteryx) में तो पाए जाते थे। ऊपरी चोंच समेकित प्रीमैक्सिलाओं, मैक्सिलाओं तथा नासा-अस्थियों से बनी होती है और निचली चोंच निचले जबड़े की दो शाखाओं के अनुरूप होती है, जिनके सबसे आगे के सिरों को "मिक्सा" (Myxa) कहते हैं। ठोड़ी से चलकर चोंच के सामने तक चलते जाने वाले, निचले सीमांत को "गोनिस" (gonys) तथा ऊपरी चोंच के सीमांत को "कल्मेन" (culmen) कहते हैं (चित्र 6.19), आंख तथा चोंच के मूल के बीच का क्षेत्र जिसके ऊपर "सेरी" (cere) परत चढ़ी होती है "लोरे" (lore) कहलाता है। चोंच की आकृति और उसका संरचना-वर्धन बहुत ज़्यादा भिन्न होते हैं, और यह भिन्नता पक्षियों की भांति-भांति से अति विशेषित आहार-विधियों पर आधारित है (चित्र 6.20)।

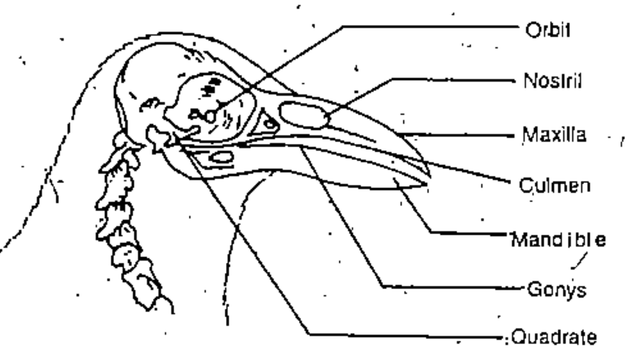

चित्र 6.19: एक पक्षी की चोंच।

जीभ सदैव गतिशील होती है तथा मुख-गुहा के फ़र्श में पड़ी होती है। इसमें दो कार्टिलेजों के ऊपर श्रृंगीय अथवा मांसल आवरण चढ़े होते हैं, ये कार्टिलेज हायॉइड हड्डी के अग्र सिरे से जुड़े होते हैं। जीभ निगलन (deglutition) और कभी-कभार आहार को काबू में किए रखने में सहायता करती है। मुख-गुहा, जो हवासिल (पेलिकन) पक्षियों में फैलकर एक बहुत बड़ा गल-कोश (gular sac) बना लेती है और यह गलकोश निचले जबड़े की विशाखाओं से आलंबित रहता है, में अध:जिह्वा अध:मेक्सिलरी तथा पेरोटिड ग्रंथियों के समान छोटी-छोटी अनेक लार-ग्रंथियों का स्राव आता रहता है, कठफोड़वों में अध:जिह्वा ग्रंथियां

बड़ी होती हैं तथा "वीलम पैलेटाई" नहीं होता। ग्रसिका पेशीय एवं अनुदैर्ध्यतः वलनित रहती है तथा इसकी लंबाई सामान्यतः गर्दन की लम्बाई पर निर्भर होती है। इसमें अक्सर एक क्रॉप (crop) (अन्नपुट) के रूप में फूला हुआ भाग होता है ऐसा यह ख़ास तौर से शिकारी पक्षियों, मगर बीजभक्षी पक्षियों में भी, पाया जाता है (चित्र 6.19) इस फूले हुए क्रॉप के भीतर आहार को नरम किया जाता है। कबूतर में क्रॉप के भीतर दो गोल छोटे-छोटे सहायक थैले बने होते हैं।

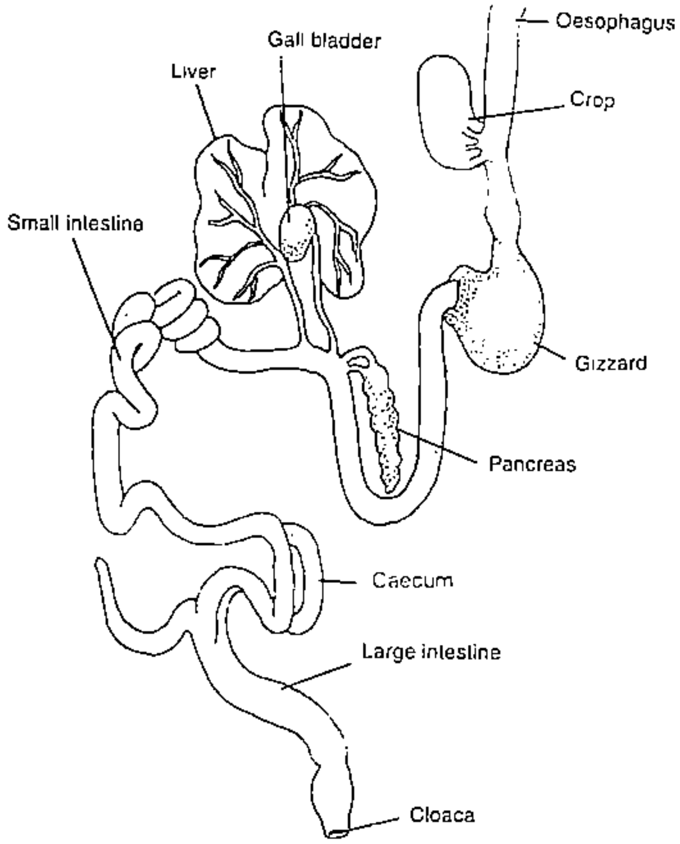

चित्र 6.20: कबूतर का पाचन पथ।

ग्रसिका का निचला सिरा फैल कर एक ग्रंथीय प्रोवेंट्रिकुलस (proventriculus) बन जाता है और फिर उसके पीछे आता है एक चौड़ा पेशीय जठर जिसे गिज़र्ड (gizzard) कहते हैं। जब कि एक ओर प्रोवेंट्रिकुलस नियमितः अंडाकार एवं गिज़र्ड से छोटा होता हैं, वहीं दूसरी ओर गिज़र्ड की दीवारें पेशीय होती हैं, ये पेशियां खाए आहार के अनुसार शिकारी पक्षियों में दुर्बल तथा बीज-भक्षियों में सबल होती हैं। बीजभक्षी पक्षियों में गिज़र्ड नरम किए गए आहार को रगड़ कर पीसने के लिए अनुकूलित होता है, इसमें दो ठोस प्लेटें होती हैं जो गिज़र्ड की भीतरी दीवार बन जातीं और एक दूसरे के प्रति रगड़ती हैं। गिज़र्ड के भीतर छोटे-छोटे पत्थर भी होते हैं जिन्हें पक्षी निगल लिया करते हैं, ये पत्थर आहार को पीसने में सहायता करते हैं। छोटी अंतड़ी का पहला पाश (लूप) डुओडेनम के अनुरूप होता है जो लंबे हो गए अग्न्याशय को लपेटे रहता है। अग्न्याशय की वाहिनियाँ जिनकी संख्या 1 से 3 तक होती है और साथ ही सामान्यतः दोहरी पित्त वाहिनियाँ इस भाग में आकर खुलती हैं। पित्ताशय आमतौर से पाया जाता है। बड़ी अंतड़ी लम्बाई में छोटी होती है और इसके आरम्भ होने का बिंदु एक तो वृत्ताकार वाल्व होने के रूप में और दूसरे दो अंधनालों (सीकमों) के उद्भव के रूप में होता है। बड़ी अंतड़ी में कोलन तथा मलाशय के रूप में कोई विभेदन नहीं होता, यह सीधी अवस्था में पहुंच जाती है, और अवस्कर में ही मूत्रजनन उपकरण भी खुलता है। जिस समय बड़ी अंतड़ी अवस्कर में खुलती है वहीं इसके प्रवेश पर एक संवरणी (स्फिंक्टर) जैसा वृत्ताकार वलन बना होता है। बर्सा फेब्रिसिआई (Bursa fabricii) नाम का एक विचित्र ग्रंथीय थैला अवस्कर की पृष्ठ दीवार में खुलता है। मूत्राशय वयस्कों में नहीं होता।

अवस्कर में तीन सुस्पष्ट विभाजन बने होते हैं जो वलनों द्वारा पृथक हुए होते हैं। इनमें से सबसे आगे के विभाजन को कॉप्रोडियम कहते हैं और यह भाग मलाशय का निचला सिरा होता है। मगर कॉप्रोडियम का

भीतरी अस्तर मलाशय के अस्तर से भिन्न होता है और दोनों के बीच एक वलन द्वारा पृथक्करण होता है। बीच के कक्ष को यूरोडियम कहते हैं, यह बाकी दो कक्षों से छोटा होता है तथा इसमें मूत्रजनन वाहिनियों के छिद्र आकर खुलते हैं। पश्च कक्ष को, जो सूराख़ द्वारा बाहर को खुलता है, वेस्टिब्यूल (vestibule) कह दिया जाता है, इसके पृष्ठ में बर्सा फ़ेब्रिसियाई आकर खुलता है। अधिसंख्य पक्षियों में मैथुन अंग नहीं होता, शुक्राणुओं का स्थानांतरण अवस्कर के थोड़े से बहिर्वर्तन के द्वारा सम्पन्न हो जाता है। रेटाइटी (Ratitae) (रीया, Rhea को छोड़कर) में एक ठोस खांचयुक्त शिश्न (penis) पाया जाता है जो अवस्कर के वेस्टिब्यूल वाले विभाजन की अधर दीवार से संलग्न रहता है। यह बहुत कुछ कीलोनिया में पाए जाने वाले इसी प्रकार के अंग के समान होता है, इसमें उच्छ्रायी ऊतक होता है तथा विशिष्ट पेशियों के द्वारा इसे बाहर को निकाला अथवा भीतर को खींच लिया जा सकता है। रीया तथा ऐंसर (Anser) (बत्तख) जैसे पक्षियों में बहुत कुछ इसी प्रकार का अंग पाया जाता है, मगर इसका अंतस्थ भाग विश्रामावस्था में अंतर्वलित रहता है और उद्धर्षण (erection) में मानों दस्ताने की उंगली के समान बहिर्वलित हो जाता है।

बोध प्रश्न 3

कालम B में दिए गए कथनों को कालम A में दिए गए कॉर्डेट वर्गों के साथ मिलाइए :-

कालम A	कालम B
मछली	(i) मुख-गुहा का भीतरी अस्तर थैलों के रूप में बाहर को निकला हुआ होता है, जिन्हें स्वर-कोश कहते हैं और ये स्वर कोश अनुनादियों के रूप में कार्य करते हैं।
ऐम्फ़िबियन-प्राणी	(ii) लार ग्रंथियां नहीं होतीं
सरीसृप	(iii) अनेक फ़ैमिलियों की जीनसों में जठर पूर्णतः अविद्यमान होता है
पक्षी	(iv) वास्तविक दांत पूर्णतः अविद्यमान होते है

6.5 स्तनीय कशेरुकियों में पाचन तंत्र

स्तनी के अशन उपकरण में दांत, जबड़ें, जीभ तथा पाचन-तंत्र शामिल होते हैं और यह उपकरण स्तनी के विशिष्ट अशन स्वभावों के अनुसार अनुकूलित हुआ होता है। अशन स्वभावों के अनुसार स्तनियों को कई अशन अथवा पोषण वर्गों में विभाजित किया जा सकता है (चित्र 6.14)। तीन मूलभूत अशन वर्ग ये हैं- कीटभक्षी, मांसभक्षी तथा शाकभक्षी, मगर इनके अलावा और भी अनेक अशन विशेषीकरण विकसित हो चुके हैं।

इन्सेक्टिवोर-प्राणी छोटे आकार के स्तनी होते हैं और ये सामान्यतः अवसरवादी प्रकार के अशनकर्ता होते हैं। ये छोटे आकार के विविध अकशेरुकियों का भोजन करते हैं जैसे कि कृमियों, ग्रबों तथा कीटों का। इनके उदाहरण हैं विविध श्रियू, छछूंदरें चींटीखोर तथा अधिसंख्य चमगादड़ें। चूंकि कीटभक्षियों के आहार में रेशेदार वनस्पति पदार्थ न के बराबर होता है जिसे लम्बी किण्वन अवधि की आवश्यकता होती है, इसलिए इनके आंत्र पथ छोटी लम्बाई के हुआ करते हैं (चित्र 6.21)। कीटभक्षी एक बहुत स्पष्ट श्रेणी नही कही जा सकती क्योंकि मांसभक्षी तथा सर्वभक्षी भी अक्सर अपने आहार में कीटों को भी जोड़ लेते हैं। और तो और, अनेक रोडेन्ट भी जो अन्यथा शाकभक्षी माने जाते हैं, कीटों के लार्वों, बीजों तथा फलों का मिला-जुला आहार किया करते हैं।

घास तथा अन्य वनस्पति को खाने वाले शाकभक्षी स्तनियों को दो मुख्य वर्गों में बांटा जा सकता है- प्रथम, चरने वाले प्राणी जैसे कि अंगुलेट जिनमें घोड़े, हिरन, मवेशी, भेड़, बकरी आदि खुर वाले स्तनी आते हैं, और दूसरा कुतरने वाले प्राणी जैसे कि रोडेण्ट जिनमें खरगोश आते हैं। शाकभक्षियों में रदनक या तो छोटे हो गए होते हैं या होते ही नहीं, और चर्वणक चौड़े तथा सामान्यतः ऊँचे शिखर वाले होते हैं जो

चबाने के लिए अनुकूल बन गए हैं। रोडेण्टों में कृंतक छेनी-जैसे और तेज़ धार वाले होते हैं जिनमें प्राणी के जीवनपर्यन्त वृद्धि होती रहती है और इस सतत वृद्धि के साथ मेल बिठाए रखने के लिए ये जीवन भर घिसते भी रहते हैं (चित्र 6.12)। यदि कृंतकों में लगातार वृद्धि नहीं होती तो इन दांतों की काटने वाली सतह जल्दी ही घिस जाती क्योंकि ये प्राणी अपने सतत कुतरते रहने के स्वभाव के कारण इन दांतों का अत्यधिक इस्तेमाल करते हैं।

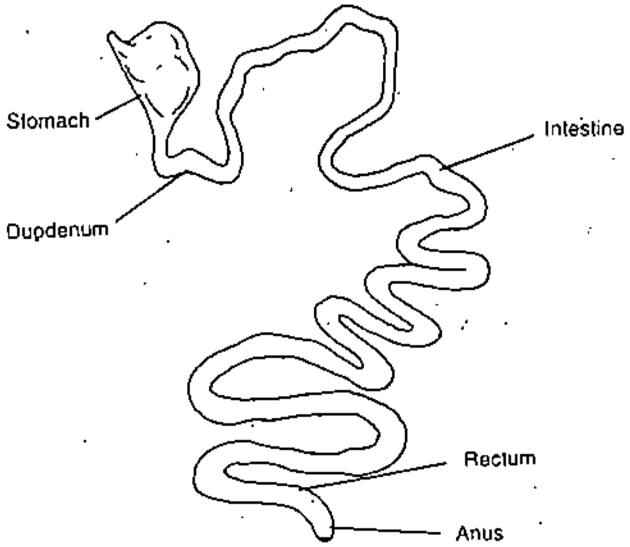

चित्र 6.21: एक इंसेक्टिवोर-प्राणी (कीटभक्षी) का पाचन-तंत्र जिसमें छोटी लम्बाई की अंतड़ी दिखायी पड़ रही है, अंधनाल (सीकम) नहीं होती।

शाकभक्षी स्तनियों में अपने रेशेदार पादप आहार से जूझने-निपटने के लिए अनेक बड़े ही रोचक अनुकूलन किये हैं। सेलुलोज़ पौधों का संरचनात्मक कार्बोहाइड्रेट है, यह एक संभावित पोषक आहार-तत्व है जो ग्लूकोज़ इकाइयों की लम्बी श्रृंखलाओं का बना होता है। मगर सेलुलोज़ में ग्लूकोज के अणु एक इस प्रकार के रासायनिक बंधन (बॉण्ड) से जुड़े होते हैं जिसे कुछ इने-गिने एंज़ाइम ही तोड़ सकते हैं। किसी भी कशेरुकी में सेलूलोज़-विदारक एंज़ाइमों का संश्लेषण नहीं होता। उसकी बजाए शाकभक्षियों की आहार नाल में अवायवीय बैक्टीरिया एवं प्रोटोज़ोआ का एक भरपूर सूक्ष्मपादपजात (microflora) पाया जाता है। ये बेक्टीरिया तथा प्रोटोज़ोआ सेलुलोज़ को तोड़कर उसका उपापचय करते हैं जिससे विविध वसा अम्लों, शर्कराओं एवं स्टार्चों का विमोचन होता है जिन्हें परपोषी अवशोषित कर सकता एवं उनका उपयोग कर सकता है।

कुछ शाकभक्षियों में जैसे कि घोड़ों, ज़ेबरों, खरगोशों, हाथियों तथा अनेक रोडेण्टों में आहार-नाल में एक खूब बड़ा पार्श्व थैला अथवा अंधवर्ध बना होता है जिसे अंध-नाल (सीकम) कहते हैं, इस कक्ष के भीतर किण्वन की क्रिया होती है एवं पचे भोजन का अवशोषण भी होता है (चित्र 6.22 तथा 6.23)। खरगोश तथा कुछ रोडेण्ट अक्सर अपनी विष्ठा-गोलियों को खा जाया करते हैं (मलभोजिता, coprophagy) जिसके द्वारा आहार एक बार फिर से अंतड़ियों के बैक्टीरिया की किण्वन क्रिया से होकर गुज़रता है। मलभोजिता से प्राणी को यह अवसर भी मिलता है कि अंध-नाल में स्थित बैक्टिरिया द्वारा निर्मित विटामिनों को भी वह प्राप्त कर सकें।

रोमंथकों में जैसे कि गाय-भैंसों, बाइसन, बकरियों, कुरंगों, भेड़ों, बकरियों, जिराफ़ों आदि में चार कक्षीय जठर होता है (चित्र 6.23)। जब कोई रोमंथी आहार करता है तब खाई गयी घास ग्रसिका में होकर उसके रूमेन (rumen) में पहुंचती है जहां पर उसे वहां का भरपूर सूक्ष्मपादपजात तोड़ता-विघटित करता है और उसकी जुगाली की छोटी-छोटी गोलियां बना दी जाती हैं। तदुपरांत रोमंथक प्राणी फुरसत से जुगाली की गोलियों को एक-एक करके वापिस मुंह में लाता और उन्हें देर तक खूब अच्छी तरह चबाता है जिससे आहार के रेशे बिल्कुल चूरा हो जाते हैं। इस आहार को दोबारा निगलने पर यह वापिस रूमेन में जाता है जहां सेलुलोज़-अपघटक बैक्टीरियां द्वारा इसे पचाया जाता है (चित्र 6.24)। लुगदी बना आहार अब अगले कक्ष रेटिकुलम (reticulum) में पहुंचाता है, उसके बाद ओमैसम (omasum) में और अंततः ऐबोमेसम

(abomasum) में पहुंचता है, यही ऐबोमेंसम वास्तविक अम्ल जठर होता है जहां प्रोटीन-अपघटनी एंज़ाइमों का स्राव होता एवं सामान्य पाचन होता है। सामान्यत: शाकभक्षियों में पाचन-पथ बड़े और लम्बे होते हैं तथा इन प्राणियों को जीवित बने रहने के लिए बहुत मात्रा में पादप आहार का सेवन-करना होता है। 6 टन वज़न के एक अफ्रीकी हाथी को जीवित बना रहने के लिए पर्याप्त पोषण प्राप्त करने हेतु रोज़ाना 135-150 किलोग्राम मोटा आहार करना ज़रूरी है।

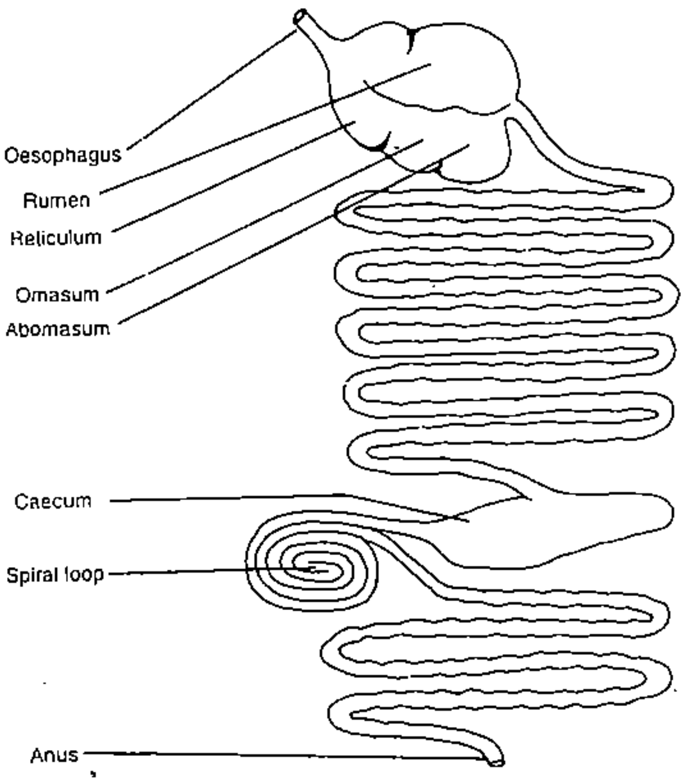

चित्र 6.22: एक रोमपंथी शाकभक्षी (हिरन) का पाचन-तंत्र जिसमें बड़े आकार के रूमेन से युक्त चार-कक्षीय जठर, तथा लम्बे आकार की छोटी एवं बड़ी अंतड़िया दिखायी गयी हैं।

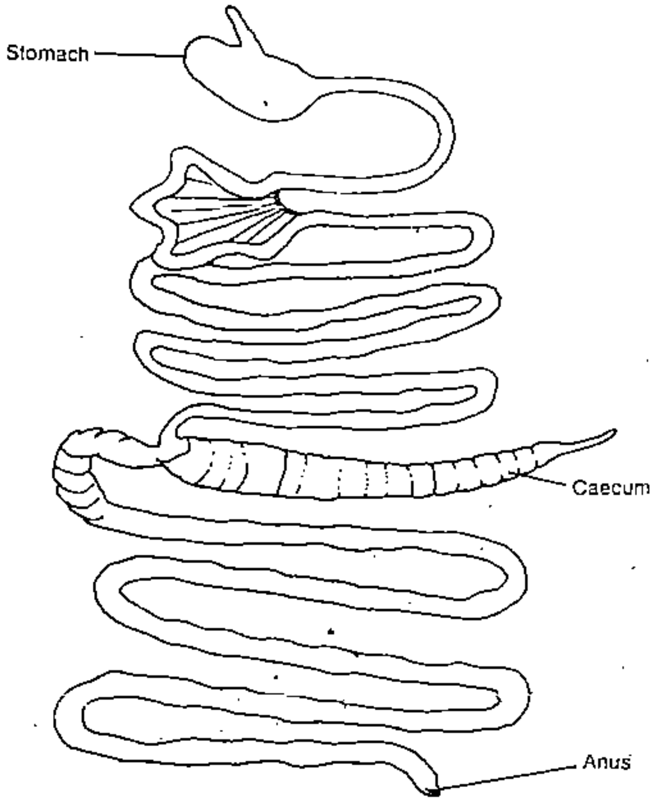

चित्र 6.23: एक अरोमंथी शाकभक्षी (खरगोश) का पाचन-तंत्र जिसमें एक सरल जठर एवं बड़े आकार की अंधनाल (सीकम) दिखाई गई है।

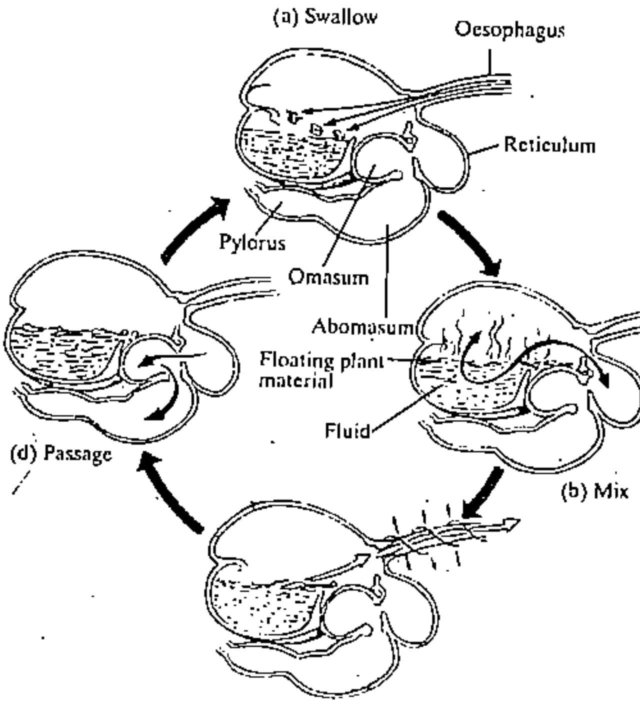

चित्र 6.24: गोवंशी प्राणियों के जठर में अग्रांत्र किण्वन। (a) रोमंथकों में आहार को कुतर कर, उसकी गोली बनाकर, लार को उसके साथ मिलाकर, उसे निगल लिया जाता है। (b) समूचे रूमेन तथा रेटिकुलम में संकुचनों के चक्र चलते हैं तो निवालों की गोलियों को खूब घुमाते तथा मिश्रित कर देते हैं। इनमें भरे पदार्थ के दो भाग हो जाते हैं एक तो तरल भाग और दूसरा कणिकीय पदार्थ का भाग। किण्वन के दौरान, तैरती हुई रेशेदार पादप सामग्री में थोड़ी-थोड़ी गैस भी बन जाती है। (c) बाद में पादप-पदार्थ की कम चबायी गयी गेंदें उद्गलन द्वारा फिर से मुंह में लायी जाती हैं और चबाई जाती हैं जिससे रेशेदार कोशिका-भित्तियां यांत्रिक रूप में टूटती-खुलती हैं और इस तरह और अधिक पादप ऊतक सेलुलेज़ों की क्रिया के लिए खुल जाता है। श्वासनली को बिना खोले हुए अंत: श्वासन (inhalation) करने पर ग्रसिका के चारों ओर एक ऋणात्मक दाब पैदा हो जाता है जिससे कम चबे हुए पदार्थ की कुछ मात्रा जठर-ग्रसिका संवरणी (gastro-esophageal sphincter) में से होकर ग्रसिका में खिंची चली आती है। ग्रसिका की दीवार में आगे की दिशा में होने वाली, क्रमांकुंचनी लहर गतियां आहार की इस गोली को फिर से मुंह में पहुंचा देती है। (d) फिर से चबाई गयी आहार की गोली का पदार्थ रेटिकुलम से ऐबोमैसम को दो प्रावस्थाओं के द्वारा पहुंचाया जाता है। पहली प्रावस्था में ओमैसम की दीवारों का शिथिलन होता है जिससे एक ऋणात्मक दाब बनता है जो रेटिकुलम में से सूक्ष्म कणिकीय पदार्थ को अपनी अवकोशिका में खींच लेता है। उससे अगली प्रावस्था में ओमैसम का संकुंचन इन कणों को बलपूर्वक ऐबोमैसम में पहुंचाता है, यही वास्तविक जठर क्षेत्र है जिसमें भरपूर जठर ग्रंथियां पायी जाती हैं। इस प्रकार ऐबोमैसम ही जठर का प्रथम यथार्थ भाग होता है।

कार्निवोर स्तनी मुख्यत: शाकभक्षियों का आहार करते हैं। इस वर्ग में लोमड़ियां, कुत्ते, वीज़ेल, बिल्लियां, बबर शेर, बाघ, इत्यादि आते है। इन मांस भक्षियों में शिकार को मार सकने के लिए बहुत सक्षम कर्तन एवं वेधनी दांत और शक्तिशाली नखरयुक्त पांव बने होते हैं। चूंकि इनका प्रोटीन आहार शाकभक्षी प्राणियों के काष्ठीय आहार की तुलना में आसानी से पच जाता है, इनका पाचन पथ छोटा होता है तथा सीकम या तो छोटा होता है या होता ही नहीं (चित्र 6.25)। मांसभक्षी पृथक-पृथक् प्रकार के आहार करते हैं और उन्हें बीच-बीच में अधिक खाली समय मिल जाता है जिसके दौरान वे क्रीड़ा करते अथवा खोजबीन करते रहते हैं।

सामान्य रूप में मांसभक्षी प्राणी शाकभक्षी प्राणियों की अपेक्षा अधिक सक्रिय जीवन बिताते हैं। चूंकि मांसभक्षी प्राणी को अपना शिकार ढूंढना और पकड़ना होता है इसलिए उनकी गति और समझ-बूझ का विशेष महत्व बन जाता है। अनेक मांस भक्षी जैसे कि बिल्लियां अपने चोरी-छिपे और चालाकी से शिकार पकड़ने के लिए विख्यात हैं। इसका एक नतीजा यह भी हुआ कि उन शाकभक्षियों का उत्तरोत्तर वरण (selection) होता गया जो या तो अपनी सुरक्षा करने में सक्षम थे या अपने शत्रु-मांस भक्षियों को पहचान कर उनसे दूर भागने में समक्ष थे। इस प्रकार शाकभक्षियों में तीव्र संवेद-ज्ञान और चुस्ती-फुर्ती का विशेष महत्व बन गया। मगर कुछ शाकभक्षी मात्र अपने विशालकाय शरीर के गुणाधार पर ही जीवित बने रह जाते हैं जैसे कि हाथी, या फिर अपने सुरक्षाकारी सामूहिक व्यवहार के आधारपर जैसे कि उत्तरी अमेरिका के कस्तूरी वृषभ (musk oxen)।

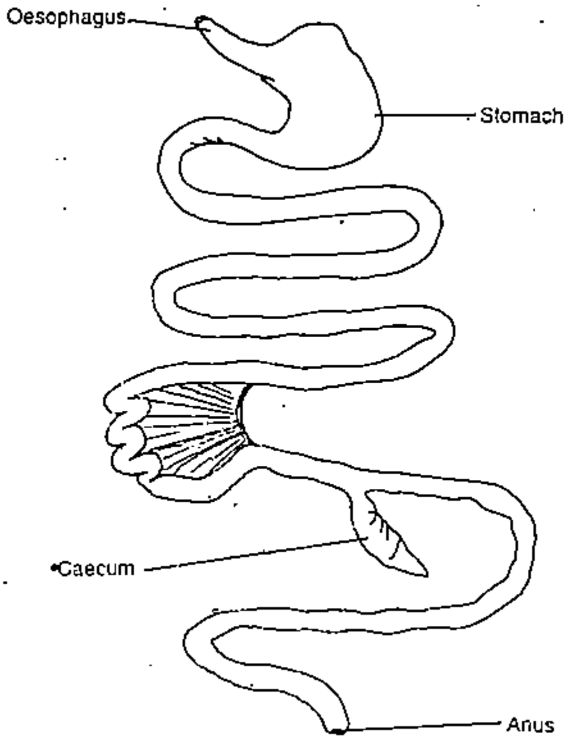

चित्र 6.25: एक मांसभक्षी (कार्निवोर-प्राणी) का पाचन तंत्र जिसमें कम लम्बी अंतड़ी तथा कोलन, तथा छोटी अंधनाल (सीकम) दिखाई गई हैं।

सर्वभक्षी'स्तनी अपने व्यवहार के लिए पौधों तथा प्राणियों दोनों पर निर्भर रहते हैं। इनके उदाहरण हैं विभिन्न सूअर, रैकून, चूहे, भालू, तथा मानव समेत अधिसंख्य प्राइमेट। अनेक मांसभक्षी भी मजबूर होने पर फल, सरस-फल ("बेरी") और घास तक खा लेते हैं। लोमड़ी सामान्यत: चूहे, छोटे आकार के रोडेण्ट और पक्षी खाती है, मगर जब इनके प्राकृतिक आहार का अभाव हो जाता है तब ये बर्फ़ से जमे सेबों, "बीच-नटों" तथा मक्का तक को खा जाती हैं। अधिकतर स्तनियों के सक्रिय जीवन का अधिकतर भाग आहार ढूंढ़ने और खाने में ही बीतता है। जाड़ों के महीनों में इनमें से कुछ प्राणी ऐसे क्षेत्रों में चले जाते हैं जहां आहार भरपूर मात्रा में उपलब्ध होता हो, अथवा कुछ ऐसे भी हैं जो इस समय का शीतनिष्क्रियता द्वारा सो कर गुज़ार देते है। मगर ऐसे भी अनेक दूरदर्शी स्तनी हैं जो विपुलता की कालावधि में आहार का भण्डार भी एकत्रित कर लेते हैं। यह स्वभाव कुछ रोडेण्टों में बहुत ही सुस्पष्ट बन गया है जैसे कि गिलहरियों, "चिपमंकों", गोफ़रों" तथा कुछ ख़ास चूहों में पाया जाता है।

स्तनियों का मुख मांसल होठों द्वारा परिसीमित होता है। मुख के फ़र्श पर जीभ होती है। जो सामान्यत: सुविकसित होती है, मगर इसका साइज़ और आकृति अलग-अलग आर्डरों में भिन्न होती हैं। कुछ शाकभक्षी प्राणियों में इसे घास के चारों ओर लपेटा जा सकता है और फिर जीभ खींचते हुए घास को उखाड़ कर मुंह के भीतर ले लिया जाता है। इसकी सतह पर अनेक प्रकार के पैपिला बने हो सकते हैं। कभी तो ये पैपिला श्रृंगीय होते हैं जिससे इनके द्वारा आहार को मसला-पीसा जा सकता है या फिर शरीर पर बने बालों को संभाला-संवारा जा सकता है। अनेक स्तनियों में जीभ तथा होठों के सीमांतों पर उभरे हुए प्रवर्ध बने होते हैं जिन्हें दांतों के बीच-बीच की जगहों में (और दांतों की सतहों पर भी) ऊपर-नीचे चलाया जा सकता है और इस प्रकार चलाकर मानों सफ़ाई की जा सकती है। जीभ के पैपिलों के साथ संबंध बनाते हुए स्वाद के विशेष अंत्य अंग होते हैं (स्वाद कलिकाएं, taste buds), जो प्राय: क्षेत्रों में व्यवस्थित होते हैं। विभिन्न वर्गों में स्वाद का ज्ञान बहुत अलग-अलग प्रकार का होता है। मुख के भीतर की छत साम्हने की ओर एक कड़े तालू (hard palate) की बनी होती है यह तालू मैक्सिला तथा पैलेटाइन हड्डियों की क्षैतिज तालू प्लेटों से बना होता है जिनके ऊपर एक श्लेष्मल झिल्ली होती है; इस झिल्ली में तालू वलन बने होते हैं। इस कड़े तालू के पीछे कोमल तालू का एक नरम पेशीय वलन पीछे को रुख़ किए हुए होता है और यह कोमल तालू ग्रसनी को गुहा को ऊपर-नीचे के दो कक्षों में विभाजित कर देता है। कुछ उदाहरणों में कोमल तालू पर भी स्वाद कलिकाएं बनी होती हैं। प्राइमेटों में एक मुक्त लटकता हुआ युवुला (uvula) और कोमल तालू होता है जब भोजन को निगला जा रहा हो तो उस समय ऊपर को उठ कर नासाग्रसनी को बंद कर देते

हैं ताकि भोजन उसमें प्रवेश न कर सके। उस छिद्र के आगे, जो ग्रसनी के निचले विभाजन से कंठ (लैरिंक्स) में खुलता है, एक कार्टिलेजी प्लेट एपिग्लाटिस (epiglottis) की बनी होती है, इस एपिग्लाटिस का एक आदिम स्वरूप मेंढ़क जैसे कुछ निम्नतर कशेरुकियों में भी पाया जाता है। एपिग्लाटिस जो शरीर रचना की दृष्टि से कंठ का ही एक भाग है निगलने की प्रतिवर्त (reflex) क्रियाविधि में कार्य करता है और आहार को श्वासनली में जाने से रोकता है।

ग्रसिका एक सरल सीधी-नलिका होती है जिसमें आहार इसकी पेशीय दीवारों के क्रमांकुंचनी संकुंचनों के द्वारा चला जाता है। ये क्रमांकुचन होना भी उसी प्रकार से एक प्रतिवर्त (reflex) क्रिया हैं एवं अनैच्छिक भी है जैसी कि निगलने अथवा उद्गलन की क्रिया होती है। इसी की विपरीत क्रिया प्रतिक्रमांकुंचन (retroperistalsis) के द्वारा रोमंथक प्राणी अपने जठर के भीतर के अंत:पदार्थ का उद्गलन करके फुर्सत से चबाने की क्रिया करते हैं, तथा कई अन्य प्राणी संयोगवश निगले गए हानिकारक पदार्थों के बाहर निकाल देने के लिए उलटी करने में इस्तेमाल करते हैं। मुनष्यों में कभी-कभार इस प्रतिक्रमांकुंचन का इस्तेमाल ढोंगी प्रेतात्माविदों द्वारा किया जाता है, वे धीमे प्रकाश वाली अपनी आत्मायन सभाओं में मुंह से एक "एक्टोप्लाज्म" अर्थात् "ज्योतिर्मय निर्गम" निकालने का करिश्मा दिखाते हैं, यह ज्योतिर्मय निर्गम और कुछ नहीं पहले से निगल लिया गया कोई पतला परतदार कपड़ा या कोई अन्य पदार्थ होता है।

विभिन्न स्तनीय आर्डरों में जठर में भारी विभिन्नता पायी जाती है अधिसंख्य स्तनियों में जैसे खरगोश में अपेक्षाकृत सरल जठर होता है (चित्र 6.26)। मगर कुछ वर्गों में इसके भीतर वलनों के बन जाने से यह जटिल हो जाता है, तथा संकीर्णनों के बन जाने से इसके अनेक विविध प्रकार्यगत कक्ष बन जाते हैं। इस प्रकार की चरम जटिलता रूमिनेंशिया में विशेषकर टाइलोपोडा एवं सीटेसिया में पायी जाती है। प्ररूपी रोमंथी जैसे भेड़ या गाय (चित्र 6.27) में जठर चार कक्षों में विभाजित हो जाता हैं रूमेन (rumen अथवा punch), रेटिकुलम (reticulum), साल्टीरियम (psalterium) तथा ऐबोमैसम (abomasum) (अथवा रेनेट-जठर, rennet stomach)। रूमेन तथा रेटिकुलम, इन दोनों की एपिथीलियम बहुत कुछ ग्रसिका की एपिथीलियम जैसी होती है।

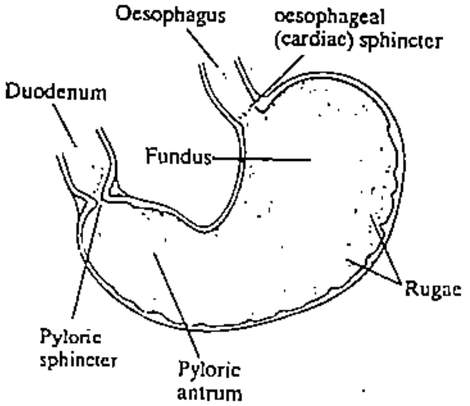

चित्र 6.26: एक जठरिक (monogastric) जठर जिसमें स्तनी जठर के प्रधान भाग दर्शाए गए हैं।

ग्रसिका का रूमेन में खुलना रूमेन तथा रेटिकुलम की संधि के समीप होता है। शेष भागों की अपेक्षा रूमेन कहीं ज़्यादा बड़ा होता है। इसकी श्लेष्मल झिल्ली में छोटे-छोटे बहुसंख्यक विलाई (villi) बने होते हैं। रेटिकुलम में, जो कि रूमेन से बहुत छोटा होता है, श्लेष्मल-झिल्ली बहुत से परस्पर जाल बनाकर कटक का निर्माण करता है। इनमें इस प्रकार से बंद हो सकने की क्षमता होती है कि खांच एक नली के रूप में बदल जाती है। साल्टीरियम की श्लेष्मल झिल्ली पत्ती-जैसे बहुसंख्यक अनुदैर्ध्य वलनों के रूप में उभरी होती है। ऐबोमैसम, जो कि रूमेन से छोटा मगर रेटिकुलम से बड़ा होता है, में एक चिकनी रक्तवाहिकामय एवं ग्रंथीय श्लेष्मल-झिल्ली होती है। रोमंथी वनस्पति को बिना चबाए निगल जाते हैं। इस स्वभाव से डरपोक शाकभक्षियों को समय-समय पर रुक-रुक कर आहार को झट से मुंह में लेने और निगलने का मौका मिलता है जिसे बाद में किसी सुरक्षित स्थान पर बैठकर पचाया जा सकता है। यही व्यवस्था समांतर विशेषीकरण के रूप में एक अन्य चारण-प्राणी "कुओका-वैलेबी" में भी विकसित हुई है (चित्र 6.28)।

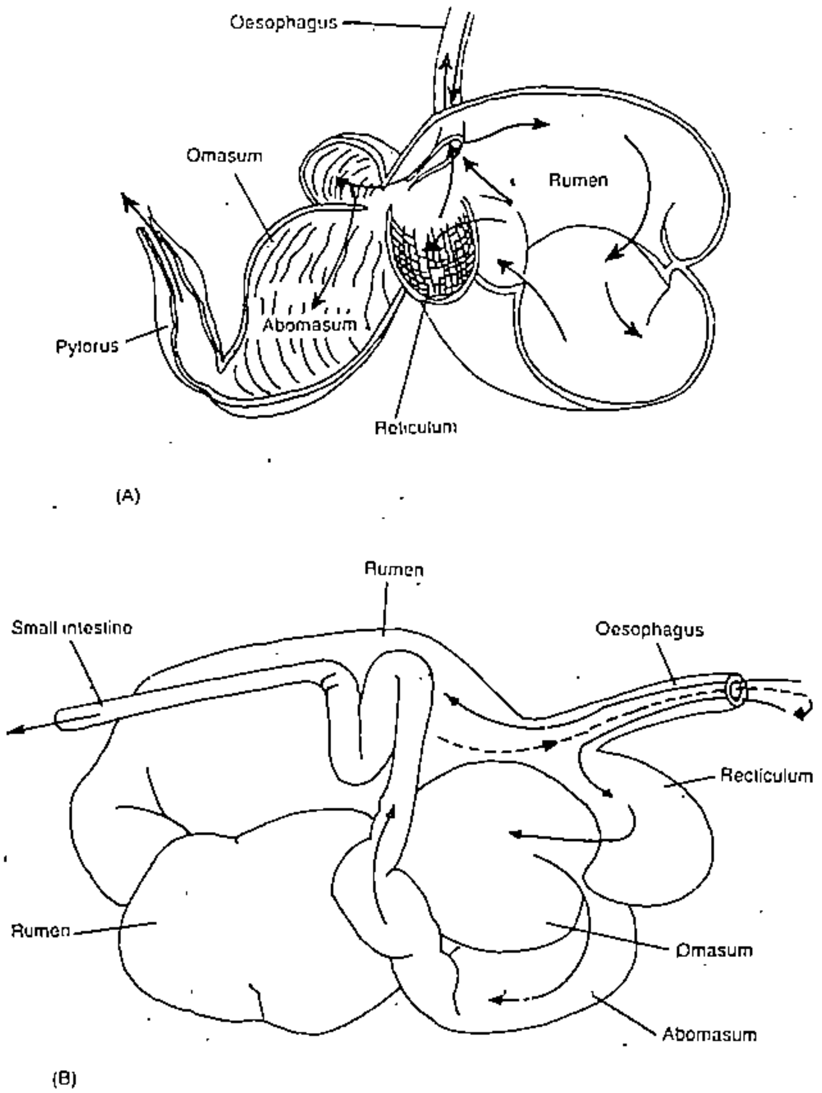

चित्र 6.27: द्विस्यूती (Digastric) जठर। A. रूमिनिडी फेमिली की विशिष्टता के रूप में पाया जाने वाला भेड़ का जठर, इसमें चार कक्षों के बने हुए दो विभाजन होते हैं। रूमेन और रेटिकुलम, ये दोनों मिलकर किण्वन विभाजन बनाते हैं। ओमैसम तथा ऐबोमैसम (वास्तविक जठर) ये दोनों मिलकर पाचन विभाजन बनाते हैं। B. गाय का चार कक्षीय जठर जिसमें सेलुलोज़ का पाचन बहुकक्षीय जठर में रहने वाले सूक्ष्मजीवों के द्वारा होता है। आहार पहले रूमेन तथा रेटिकुलम में पहुंचता है जिनमें पाचन का प्रारम्भ होता है। बीच-बीच में आहार का उद्गलन होता रहता है, उसे और अधिक चबाया जाता और दोबारा निगल लिया जाता है। पाचन के अनेक उत्पाद रूमेन में ही अवशोषित हो जाते हैं परंतु शेष आहार और उसके साथ-साथ रूमेन तथा रेटिकुलम में प्रगुणित होते हुए कुछ बैक्टीरिया भी ओमैसम में होकर ऐबोमैसम में चले जाते हैं जहां प्रोटीन का पाचन शुरू हो जाता है।

रोमंथियों में आहार को निगल लिया जाता है, यह आहार भरपूर लार से मिला हुआ रूमेन तथा रेटिकुलम में पहुंचता है और वहां तब तक पड़ा रहता है जब तक कि अशन करना समाप्त नहीं हो जाता। तदुपरांत प्राणी जुगाली करना आरम्भ करता है, चबाने की इस क्रिया में गीला नरम हुआ आहार रूमेन से गोलियों (boluses) के रूप में वापिस मुंह में आता है। इस प्रकार ऐसी एक-एक गोली को खूब अच्छी तरह चबाने के बाद जब वह अर्ध-तरल अवस्था प्राप्त कर लेती है तब उसे फिर से निगल लिया जाता है। अब यह अर्ध-तरल आहार एक खांच के ऊपर से गुज़रता हुआ रेटिकुलम में जाता अथवा इस कक्ष में भरे बिना चबे आहार के ऊपर से होता हुआ साल्टीरियम (ओमैसम) की पत्तियों के बीच से छनता जाता हुआ अंततः ऐबोमैसम में पहुंचता है। कुछ रोमंथियों में साल्टीरियम नहीं होता। हिरन, गाय, भेड़ आदि के रूमेन तथा साल्टीरियम में ऐसे प्रोटोज़ोआ तथा बैक्टीरिया बहुत ज्यादा संख्या में पाए जाते हैं जो इन जानवरों के आहार के मुख्य भाग सेलुलोज़ पर आक्रमण करके उनका अपघटन करते हैं। किण्वन होने से ऐसीटिक, ब्यूटिरिक तथा प्रोपिओनिक अम्ल बनते हैं जिनका उदासीनीकरण लार में स्रावित सोडियम बाइकार्बोनेट द्वारा होता है। अवशोषण रूमेन में होता है तथा मीथेन एवं कार्बन डाई आक्साइड (CO_2) जैसी निकलने वाली गैसों का उद्गलन हो जाता है।

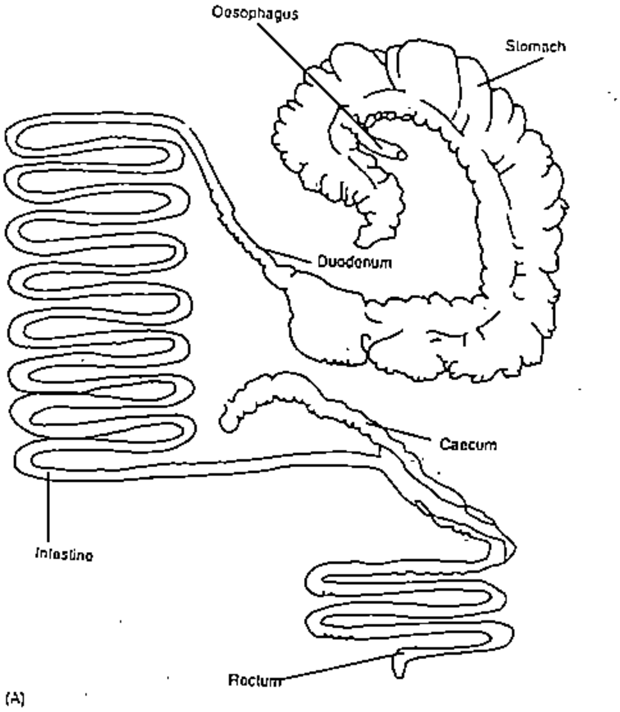

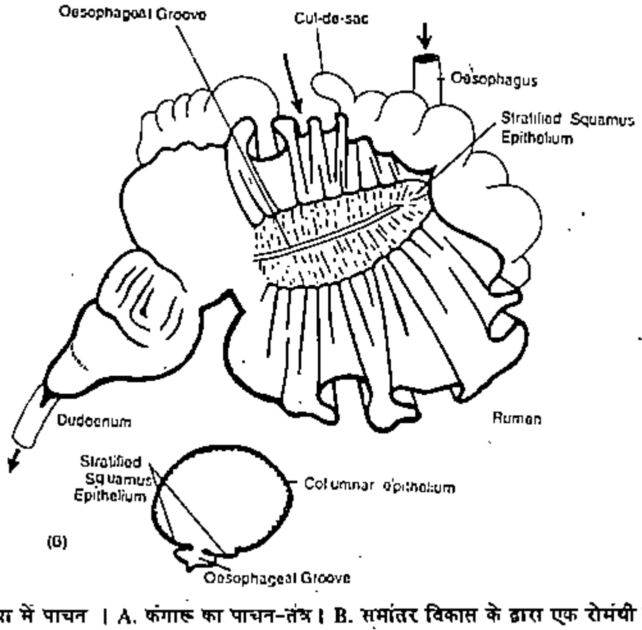

चित्र 6.28: मार्सुपिऐलिया में पाचन । A. कंगारू का पाचन-तंत्र। B. समांतर विकास के द्वारा एक रोमंथी जैसा पाचन चरने वाले मार्सुपियलों (जैसे "कुओका", *Setonix brachyurus*) में भी विकसित हुआ है हालांकि इनके जठर में यूथीरियन स्तनियों के जैसा चार कक्षों में विभाजित हुआ नहीं होता। सीटोनिक्स (Setonix) में ग्रसिका एक अनुमानित रूमेन में खुलती है (I)। एक ग्रसिका खांच जो एक विस्तृत कोषों से युक्त किण्वन क्षेत्र (नलिकाकार ग्रंथियों का) से बचकर उपमार्ग के द्वारा होती हुई एक उसी तरह की स्तरित शल्की एपिथीलियम के क्षेत्र से गुजरती है जैसी कि भेड़ के रूमेन, रेटिकुलम तथा ओमैसम में पाया जाता है। क्षेत्र III ऐबोमैसम के समवृत्ति (analogous) हो सकता है; II तथा IV क्षेत्र के प्रकार्य अभी तक मालूम नहीं हैं। ये तथा इसी प्रकार की अन्य जटिलताओं का संबंध इनमें एक बहुत सघन बैक्टीरिया समष्टि के पाए जाने से और एक बहुत छोटे सीकम से है, (बैक्टीरिया समष्टि का पता अम्ल के उत्पादन के साथ संबंध होना दर्शाया जा सकता है)।

शेष आहार, तरल तथा सूक्ष्मजीव, ये सब आहार-नाल में आगे बढ़ते हैं। ओमैसम में तरल पदार्थ अवशोषित हो जाता है। ऐबोमैसम में प्रोटोज़ोआ और कदाचित बैक्टीरिया भी स्रावित हाइड्रोक्लोरिक अम्ल द्वारा नष्ट हो जाते हैं। ऐबोमैसम में भी पाचन एंज़ाइमों का स्राव होता है, तथा और आगे अवशोषण छोटी आँतड़ी में होता है। रोमंथियों में सीकम अपेक्षाकृत छोटा होता है; जियॉर्जियन युग में भेड़ के सीकमों को कंडोमों की तरह इस्तेमाल किया जाता था। रोमंथियों में कोलन भी अपेक्षाकृत महत्वहीन होता है, परंतु गैर रोमंथी

शाकभक्षियों में जैसे कि घोड़ों में सीकम तथा कोलन दोनों ही बहुत बड़े होते हैं। इलीयम से कोलन में प्रवेश करने वाला सारा पदार्थ सीकम के भीतर पहुंचता है, यह सीकम घोड़ों में चार फुट तक लम्बा हो सकता है तथा इसकी क्षमता बहुत ज़्यादा आठ गैलन तक की होती है। घोड़ों में सीकम का कार्य भंडारन एवं पाचन है। घोड़ों के बड़े आकार के कोलन का मुख्य कार्य अवशोषण करना है हालांकि इसके भीतर कुछ बैक्टीरियाई पाचन भी होता है मगर एंज़ाइमी पाचन नहीं होता।

ऊंटों के मामले में जठर इतना ज्यादा जटिल नहीं होता जितना कि अधिक प्ररूपी रोमंथियों में। कोई स्पष्ट साल्टीरियम नहीं होता, तथा रूमेन में विलाई नहीं बने होते। रूमेन तथा रेटिकुलम दोनों ही के साथ जुड़े हुए अनेक कोष्ठों के जैसे अंधवर्ध निकले होते हैं जिनके छिद्रों को संवरणी पेशियों के द्वारा बंद किया जा सकता है। सीटेसिया का जठर भी कक्षों में विभाजित हुआ होता हैं, पॉर्पाइज़ों में (जो कि सूंस जैसे अथवा एक छोटी हेल जैसे समुद्री प्राणी होते हैं) ग्रसिका एक विस्तृत रूमेन में खुलती है जो जठर का आगमी कक्ष होता है, इस कक्ष में एक चिकनी, मोटी श्लेष्मल झिल्ली होती है। इस कक्ष के पीछे दूसरा मध्यक कक्ष आता है जो अपेक्षाकृत काफ़ी छोटा होता हैं इसके भीतर एक ग्रंथीय श्लेष्मल झिल्ली होती है जिसके बहुसंख्यक जटिल वलन होते हैं। इसके पीछे आता है एक लम्बा संकरा तीसरा अथवा निर्गमी (पाइलोरिक) कक्ष और इस कक्ष के अंत में एक संकीर्ण निर्गमी (पाइलोरिक) छिद्र बना होता है। इस छिद्र के आगे छोटी अंतड़ी के आरंभ में ही एक फूला हुआ भाग "बल्ब" बना होता हैं।

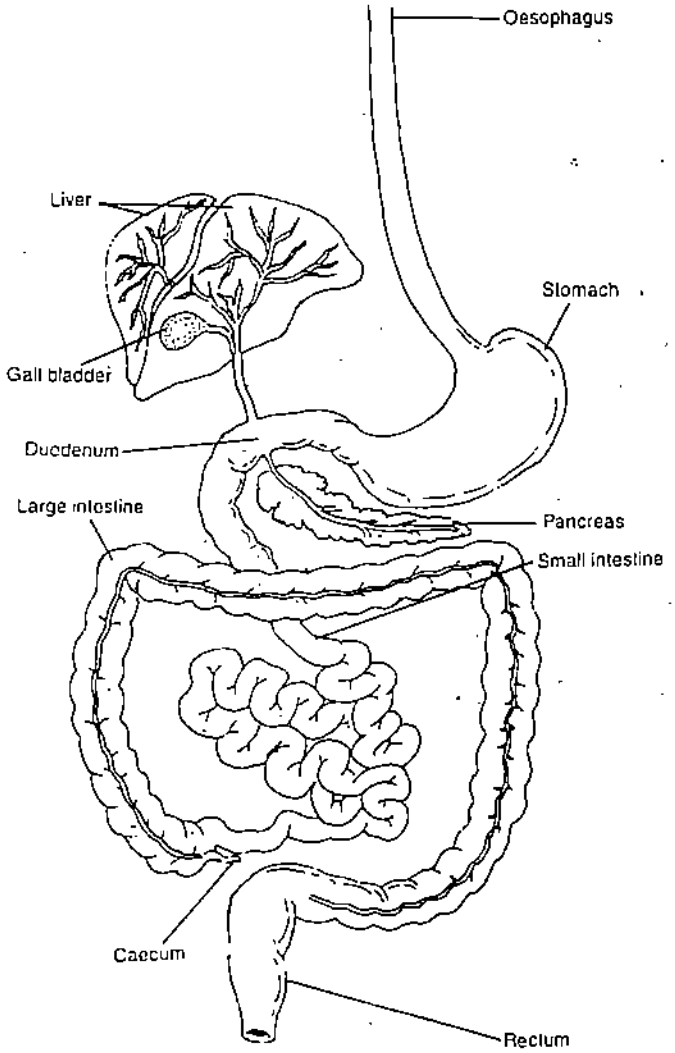

चित्र 6.29: मानव का पाचन पथ।

बड़ी तथा छोटी अंतड़ियों के संधि-स्थल पर स्थित सीकम सामान्यत: मौजूद होता है मगर विभिन्न आर्डरों तथा फैमिलियों में इसमें बहुत अंतर पाए जाते हैं। सामान्यत: यह मांसभक्षी की अपेक्षा शाकाहारियों में

अधिक बड़े आकार का होता है। उन शाकभक्षियों में जिनमें जठर सरल होता है जैसे कि खरगोश में सीकम का आकार सबसे बड़ा होता है (चित्र 6.23)। हिरैक्सों (hyraxes) में शेष क्लास से भिन्न व्यवस्था पायी जाती है, इनमें चार स्पष्ट सीकम पाए जाते हैं जिनमें से एक जोड़ी पश्च सीकमों में से एक कृमिरूप अवशेषिका (vermiform appendix) होती है। सीकम मॉनोट्रीमों में सबसे सरल होता है तथा स्लॉथों (भालुओं), कुछ सीटेसिअनों और थोड़े से कार्निवोरा-प्राणियों में होता ही नहीं। यह कोआला नामक मार्सुपियल फ़ैस्कोलेर्क्टॉस (Phascolarctos) में बहुत बड़ा (लगभग 250 cm लम्बा) होता है (अधिकतर यूकेलिप्टस की पत्तियां ही खाता है); इसके बाद अपेक्षाकृत दीर्घतम सीकम दो अन्य मार्सुपियलों (ट्राइकोस्यूरस, Trichosurus, डाइडेल्फ़िस Didelphis) में पाया जाता है और सभी फ़ैलेंजरों में बड़े आकार का होता है। मानव तथा कुछ अन्य प्राणियों (सिवेटों, कुछ रोडेण्टों, बंदरों) में सीकम का दूरस्थ सिरा अपकर्षित होकर कृमिरूप अवशेषिका (ऐपेंडिक्स) बन गया है (चित्र 6.29)। मगर सीकम कितना बड़ा होगा यह केवल इस एक ही कारक पर निर्भर नहीं होता कि प्राणी द्वारा खाए जाने वाले आहार में वनस्पति पदार्थ का अनुपात कितना है।

अवस्कर के बने रहेने में प्रोटोथीरियन प्राणी, एक ओर सरीसृपों, पक्षियों तथा ऐम्फ़िबियनों के समान होते हैं मगर दूसरी ओर अधिसंख्य स्तनियों से भिन्न होते हैं। इस अवस्कर में न केवल मलाशय ही खुलता है वरन् मूत्र तथा जनन वाहिनियां भी खुलती हैं। मार्सुपियलों में एक उभयनिष्ठ संवरणी गुदा एवं मूत्र जनन छिद्र, दोनों ही को घेरे रहती है। मादा में एक निश्चित अवस्कर होता है। लगभग सभी यूथीरियनों में ये दोनों छिद्र अलग-अलग होते हैं और दोनों के बीच काफ़ी बड़ी जगह होती है जिसे पेरिनियम (perinaeum) कहते हैं।

आहार-नाल से संबंधित एक यकृत होता है। इसके दो भाग या मुख्य विभाजन (दाएं और बायें) होते हैं जो एक दरार (नाभि-दरार umbilical fissure) द्वारा एक-दूसरे से पृथक हुए होते है, यह दरार वह स्थान है जहां गर्भ की नाभि-शिरा (umbilical vein) होती थी। पित्ताशय जब भी होता है, जैसा कि अधिसंख्य स्तनियों में, तो यह दाहिनें केंद्रीय पालि के साथ जुड़ा होता या उसके भीतर गड़ा होता है। पेरिसोडैक्टाइलों, हिरैकॉइडों तथा कुछ रोडेण्टों में पित्ताशय नहीं होता। मगर फल-चमगादड़ों (एपोमोफ़ोरस, Epomophorus) में पित्ताशय होता है।

बोध प्रश्न 4

नीचे दिए गए कथनों में रिक्त स्थानों में आने वाले उत्तर को दिए-गए चौकरों में सही (✓) का निशान लगाएः-

(i) शाकभक्षियों का कौन सा अंग किण्वन कक्ष का कार्य करता और अवशोषण क्षेत्र प्रदान करता है?
- (a) यकृत ☐
- (b) पित्ताशय ☐
- (c) अग्न्याशय ☐
- (d) सीकम ☐

(ii) किन स्तनियों में जठर 4 कक्षों में विभाजित हुआ होता है?
- (a) कार्निवोर-प्राणी ☐
- (b) रोमंथी-प्राणी ☐
- (c) रोडेण्ट-प्राणी ☐
- (d) इन्सेक्टिवोर-प्राणी ☐

(iii) किस स्तनी में सीकम के दो कार्य तरल-भण्डारन एवं पाचन होते हैं?
- (a) कंगारू ☐
- (b) सिंह ☐
- (c) घोड़ा ☐
- (d) मानव ☐

(iv) किस स्तनी में सीकम का दूरस्थ सिरा अपकर्षित होकर ऐपेंडिक्स (कृमिरूप अवशेषिका) बन गया है?

(a) घोड़ा ☐

(b) मानव ☐

(c) गाय ☐

(d) भेड़ ☐

6.6 सारांश

- आइए संक्षेप में देखें कि इस इकाई में हमने क्या सीखा। दांत लगभग सभी स्तनियों में होते हैं लेकिन कुछ में जैसे कि ह्वेल-बोन ह्वेलों में व्यस्क अवस्था में नहीं होते। दांत अंशतः एपिडर्मिस से और अशंतः नीचे स्थित डर्मिस से परिवर्धित होते हैं। स्तनियों में दांतों के दो स्पष्ट सेट पाए जाते हैं एक तो पाती (दूध के) दांत और दूसरे पक्के यानि स्थायी दांत। स्तनियों के दूध के दांत कभी-कभी आरंभिक अवस्था में ही गिर जाते है जैसे सील में और कभी-कभी ये जन्म के बहुत बाद तक कायम रहते हैं उसके बाद ही उनकी जगह पर पक्के दांत आते हैं। कुछ स्तनियों में दांतों की संख्या अनिश्चित होती है जैसे सूंसों तथा पॉर्पाइज़ों में। जबड़ों में विभिन्न श्रेणियों के दांतों की संख्या को परम्परानुसार एक दंत-सूत्र के द्वारा व्यक्त किया जाता है, जिसमें विभिन्न दांतों के प्रकार को जैसे कि कृंतक, रदनक, अग्रचर्वणक तथा चर्वणक को उनके अंग्रेज़ी नामों के प्रथम अक्षरों i,c, pm, m द्वारा व्यक्त किया जाता है।

- प्राणी आहार करने के लिए नानाविध रणनीतियां अपनाते हैं। कुछ स्पीशीज़ ढूढंती, ताक लगाती बैठती, झपट्टा मारती, पकड़ती तथा मारती हैं। निम्नतर कशेरुकी जैसे साइक्लोस्टोमों, इलैस्मोब्रैंकों, टीलियोस्टों, ऐम्फ़िबियनों में आहार करने की सर्वाधिक सफल और व्यापक रूप में उपयोग में लायी जाने वाली विधि फ़िल्टर-अशन द्वारा आहार करना है। ये फ़िल्टर-अशनकारी सिलियायित सतहों का उपयोग करके जलधाराएं पैदा करते हैं जिनके द्वारा अपवाही आहार कण खिंचकर उनके मुख के भीतर आते हैं। सरीसृपों में जबड़ों अथवा तालू पर नुकीले दांत बने होते हैं जो शिकार को पकड़े रखने, फाड़ने तथा निगलने में सहायता करते हैं। पक्षियों में दांत तो नहीं होते मगर उनकी बजाए उनमें श्रृंगीय चोंच होती हैं, इन चोंचों में भांति-भांति के आहार स्वभावों के अनुरूप अनुकूली विकिरण पाया जाता है। स्तनी अपने दांतों को मारने, काटने तथा चबाने के काम में लाते हैं और इन्हीं विविध उद्देश्यों की पूर्ति के लिए दांतों की आकृतियां भी अलग-अलग विकसित हो गयी हैं।

- पाचन-अंगों की संरचना अलग-अलग कशेरुकी वर्गों में बहुत अलग-अलग पायी जाती है। सकल रूप से आहार नाल में एक नलिकाकार संघटना पायी जाती है, इसी के द्वारा संभव हो पाता है कि आहार एक ही दिशा में, पाचन की दृष्टि से अलग-अलग प्रकार से विशेषित हुये क्षेत्रों से होकर गुजरता जाए। सामान्य रूप में आहार नाल के चार मुख्य विभाजन होते हैं जिनके अपने-अपने कार्य इस प्रकार हैं। (1) ग्रहण करना (2) संवाहन एवं भण्डारण (3) पाचन एवं पोषकों का अवशोषण तथा (4) जल का अवशोषण एवं मलोत्सर्ग।

- अधिसंख्य स्तनियों में जठर अपेक्षाकृत एक सरल थैले-जैसी संरचना होती है मगर रोमंथियों जैसे कि गाय, भैंसों, बकरियों, भेड़ों, हिरनों आदि में इसमें चार कक्ष पाए जाते हैं। रोमंथियों में आहार को निगल लिया जाता है, उस में बहुत मात्रा में निकली लार को ज़्यादा से ज़्यादा मिला लिया जाता है और फिर उसे रूमेन तथा रेटिकुलम में पहुंचा दिया जाता है जहां वह तब तक पड़ा रहता है जब तक आहार करना समाप्त नहीं हो जाता और उसके बाद प्राणी जुगाली करना आरम्भ करता है। सीकम मॉनोट्रीमों में सरल होता है, भालुओं, कुछ सीटेसिअनों तथा कुछ कार्निवोरा प्राणियों में नहीं होता। मानव तथा कुछ अन्य प्राणियों जैसे सिवेटों, कुछ रोडेण्टों, बंदरों में सीकम का दूरस्थ सिरा अपकर्षित होकर ऐपेंडिक्स (कृमिरूप अवशेषिका) बन गया है।

6.7 अंत में कुछ प्रश्न

1. शाकभक्षी तथा मांसभक्षी के दंत-विन्यास में क्या अन्तर होता है? उपयुक्त उदाहरण देकर समझाइए।

   ....

   ....

   ....

   ....

2. आहार प्राप्त करने के लिए मछलियों तथा ऐम्फ़िबियनों द्वारा अपनायी जाने वाली रणनीतियों का वर्णन कीजिए।

   ....

   ....

   ....

   ....

3. सरीसृपों तथा पक्षियों के पाचन तंत्रों में मुख्य अंतर क्या हैं, समझाइए।

   ....

   ....

   ....

   ....

4. शाकभक्षियों तथा मांसभक्षियों के पाचन-तंत्रों में क्या-क्या अंतर हैं, बताइए।

   ....

   ....

   ....

   ....

6.8 उत्तर

बोध प्रश्न

1. (i) सही (ii) गलत (iii) सही (iv) गलत (v) सही (vi) गलत
2. (i) फ़िल्टर-अशनकारी, सिलियायित सतहों (ii) खांच, विष, पिचकारी
   (iii) टेलॉन, चोंच (iv) फ़िल्टर-अशन, प्राणियों
   (v) कृतंक, गजदंत
3. (i) ऐम्फ़िबियन (ii) सरीसृप (iii) मछली (iv) पक्षी
4. (i) d (ii) b (iii) c (iv) b

अंत में कुछ प्रश्न

1. इसी इकाई का खण्ड 6.2 देखिए
2. इसी इकाई का खण्ड 6.3 देखिए
3. इसी इकाई का खण्ड 6.4 देखिए
4. इसी इकाई का खण्ड 6.5 देखिए

इकाई 7 श्वसन तंत्र

इकाई की रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना
    उद्देश्य
7.2 जलीय कशेरुकियों का श्वसन तंत्र
    ऐम्फिऑक्सस में श्वसन
    साइक्लोस्टोमों में श्वसन
    मछलियों में श्वसन
    मछलियों में सहायक श्वसन अंग
    जलीय उभयचरों में श्वसन
7.3 स्थलीय कशेरुकियों में श्वसन
    फेफड़ों से युक्त मछलियां
    उभयचरों में श्वसन
    सरीसृपों में श्वसन
    पक्षियों में श्वसन
    स्तनियों में श्वसन
7.4 वाक् उपकरण
    लैरिंक्स
    शाब्दिनी
7.5 सारांश
7.6 अंत में कुछ प्रश्न
7.7 उत्तर

7.1 प्रस्तावना

जीवधारी की प्रत्येक जीवित कोशिका ऑक्सीजन का उपयोग करती है। कोशिकाओं के भीतर पदार्थों के ऑक्सीकरण से ऊष्मा तथा ऊर्जा दोनों ही निकलतीं हैं और कार्बन डाइऑक्साइड बनती है। कार्बन डाइऑक्साइड श्वसन उपापचय की अन्त्य उत्पाद होती है और वह लगातार शरीर से बाहर निकाली जाती रहती है। किसी जीवधारी तथा उसके पर्यावरण के बीच ऑक्सीजन एवं कार्बन डाइऑक्साइड के विनिमय (आदान-प्रदान) को श्वसन कहा जाता है।

कशेरुकियों में ऑक्सीजन तथा कार्बन डाइऑक्साइड के लाने-ले जाने का काम रक्त करता है। सभी कशेरुकियों के रक्त में पाया जाने वाला श्वसन वर्णक "हीमोग्लोबिन" ऑक्सीजन को अपने साथ जोड़ लेता है और उसे श्वसन संबंधी संरचनाओं से ग्रहण करके कोशिकाओं एवं ऊतकों तक पहुंचाता है। कशेरुकियों में हीमोग्लोबिन लाल रक्त कोशिकाओं (RBCs) अर्थात् रक्ताणुओं (एरिथ्रोसाइटों) के भीतर सीमित होता है। कार्बन डाइऑक्साइड के अभिगमन में मुख्य भूमिका RBCs तथा प्लाज्मा की होती है। श्वसन संबंधी संरचनाओं द्वारा पर्यावरण से ऑक्सीजन को प्राप्त करके और फिर उसे कोशिकाओं एवं ऊतकों में पहुंचाने की प्रक्रिया को, बाह्य श्वसन (external respiration) कहते हैं। कोशिकाओं तथा ऊतकों के भीतर पोषकों के ऑक्सीकरण में ऑक्सीजन का उपयोग किया जाना आंतर श्वसन (internal respiration) कहलाता है। आंतर श्वसन का विस्तृत विवरण LSE-01 (कोशिका जैविकी) तथा LSE-05 (शरीरक्रियाविज्ञान) पाठ्यक्रमों में किया जा चुका है। इस इकाई में आप श्वसन संरचनाओं के विषय में पढ़ेंगे जिनके द्वारा बाह्य श्वसन होता है।

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप:

- कशेरुकियों की विविध जल एवं वायु श्वसन संबंधी सरंचनाओं का वर्णन कर सकेंगे,
- गैसों के विनिमय में निहित क्रियाविधियां समझा सकेंगे,
- मछलियों में वायु श्वसन के लिए सहायक श्वसनी अंगों का तथा मेंढक में मुख श्वसन का वर्णन कर सकेंगे,
- ग्रसनी, श्वासनली, श्वसनियों तथा कूपिकाओं के प्रकार्यों का वर्णन कर सकेंगे।

7.2 जलीय कशेरुकियों का श्वसन तंत्र

बाह्य श्वसन श्वसनी अंगों की सहायता से होता है जिनमें गिल आते हैं या फेफड़े (फुफ्फुस) या कुछ उदाहरणों में त्वचा आती है। कारगर रूप में कार्य कर सकने के लिये श्वसन अंगों में निम्न तीन बातें होनी आवश्यक हैं

1. एक बड़ा सतही अर्थात् पृष्ठीय क्षेत्रफल (surface area) जिसमें एक प्रचुर केशिका जाल बना हो एवं जिसका पर्यावरण से सम्पर्क बना हो।
2. एक पतली एवं आर्द्र झिल्ली सतह जिसमें से गैसों का आना-जाना सुगमता से हो सके।
3. एक ऐसा प्रावधान जिसके द्वारा एक तो उस ऑक्सीजन-धारी माध्यम, अर्थात् वायु अथवा जल, जो श्वसन सतह के सम्पर्क में आता है, की आपूर्ति हो सके और दूसरे उस सतह से बाहर निकली कार्बन डाइऑक्साइड को वहां से हटाया जा सके।

कुछ-एक अपवादों को छोड़कर कशेरुकियों के श्वसन अंग ग्रसनी से संबंधित बने होते हैं। मगर एक खास मछली "लोच" (loach) में एक विचित्र स्वभाव बन गया है, यह वायु निगल लेती और वायु के उस बुलबुले को अपनी अंतड़ी में से चलाती जाती है तथा अंत में उसे गुदा के माध्यम से बाहर को निकाल देती है। वायु के इस मार्ग में, अंतड़ियों की दीवारों में पायी जाने वाली बहुत संख्या में बनी रक्त वाहिनियां वायु की ऑक्सीजन को अवशोषित कर लेती है।

जल श्वासी प्राणियों में मुख्य श्वसन अंग गिल अथवा क्लोम होते हैं। गिल बहुसंख्यक गिल-तंतुओं (gill filaments) अथवा गिल पटलिकाओं (gill lamellae) के बने होते हैं। ये दोनों प्रकार की रचनाएं एपिथीलियम की सतह के पतली दीवार वाले प्रसार होते हैं। प्रत्येक गिल में एक रक्त वाहिकीय जाल होता है। रक्त को सतह के बहुत निकट ले आया जाता है, जिससे गैसों का आदान प्रदान शीघ्र ही सरलता से हो जाता है।

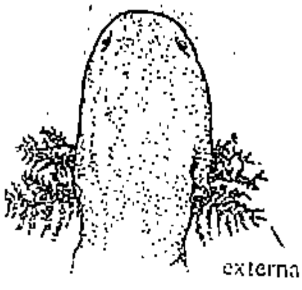

चित्र 7.1 : सालामैण्डर (salamander) के लार्वा के बाह्य गिल

गिल दो प्रकार के होते हैं- 1. बाह्य गिल तथा 2. आंतरिक गिल।

बाह्य गिल (external gills) (चित्र 7.1) उस अध्यावरण से परिवर्धित होते जो ग्रसनी चापों (visceral arches) की बाहरी सतह को ढके रहता है। ये गिल सामान्यत: विशाखित एवं तंतुकी संरचनाएं होती हैं जो एक्टोडर्म से व्युत्पन्न होती हैं। आंतरिक गिल (internal gills) (चित्र 7 2) श्रृंखलाबद्ध समांतर गिल पटलिकाओं के बने होते हैं। हालांकि कुछ उदाहरणों में वे तंतुओं के रूप में भी हो सकते हैं। ये गिल अंतरागिल पटों (inter branchial septa) के दोनों ओर बने हो सकते हैं, लेकिन कुछ उदाहरणों में, ये केवल एक ओर ही बने होते हैं। जब पटलिकाएं अंतरागिल पट के केवल एक ओर बनी होती हैं, तब ऐसी रचना को अर्धगिल (half-gill) अथवा हेमिब्रैंक (hemibranch) कहते हैं। दो अर्धगिल अंतरागिल पट के साथ जुड़कर एक पूर्ण गिल अथवा होलोब्रैंक (holobranch) बना लेते हैं। सामान्यत: माना जाता है कि भीतरी गिल एंडोडर्म से व्युत्पन्न होते हैं, हालांकि इनका सही सही उद्‌भव मालूम नहीं है। कुछ प्राणियों में बाह्य तथा आंतरिक दोनों प्रकार के गिल पाए जाते हैं।

क्रमवत संकुचनों से जल का प्रवाह पैदा होता है। अंत:श्वसन अथवा उच्छवास (inspiration) की क्रिया से जल मुख और ग्रसनी में प्रवेश करता है तथा नि:श्वसन (expiration) से वह बाहर निकल जाता है।

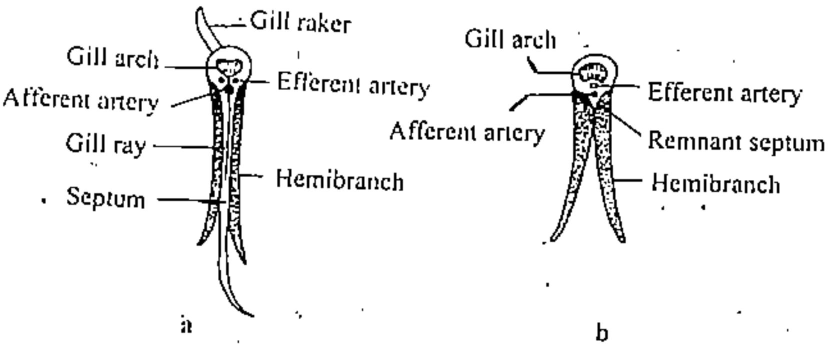

चित्र 7.9: मछलियों में पाए जाने वाले गिल, (a) उपास्थिमीन में, (b) अस्थिलमीन में।

अधिसंख्य इलास्मोब्रैंको तथा कुछ अन्य मछलियों (*ऐसिपेन्सर, Acipensor, पॉलीडॉन, Polydon, पॉलिप्टेरस, Polypterus*) में प्रथम गिल कोष्ठ रूपांतरित होकर एक स्पाइरेकल् द्वारा बाहर को खुलता है। अल्पवर्धित गिल पटलिकाएं स्पाइरेकल् की अग्र दीवार में बनी हो सकती हैं। क्योंकि इन पटलिकाओं में होने वाली रक्त आपूर्ति में ऑक्सीजनित रक्त होता है इसलिए उनमें श्वसन का प्रकार्य नहीं होता और इस कारण इन्हें कूटगिलों (false gill/pseudobranchs) का नाम दिया जाता है। स्पाइरेकल् सामान्यत: शीर्ष के उपर के स्थान पर खुलते होते हैं तथा कुछ स्पीशीज़ में इनमें वाल्व भी बने होते हैं। अधिसंख्य अस्थिल मछलियों में, हाइऑइड चाप की पीछे की दिशा में गैर-ऑक्सीजनित रक्त प्राप्त करने वाला वास्तविक अर्धगिल मौजूद नहीं होता। उसकी बजाए एक रूपांतरित प्रच्छद गिल अथवा एक कूटगिल मौजूद होता पाया जा सकता है जिसमें ऑक्सीजनित रक्त आता है। इस प्रकार के प्रच्छद गिल *एमिया (Amia)*, डिप्नोई तथा अनेक अस्थिलमीन में पाया जाता है। कूटगिल की पटलिकाओं में अनेक ग्राही एवं आयनाणुओं (ionocytes) (क्लोराइड स्रावी कोशिकाओं) का होना देखा गया है। ग्राहियों (receptors) में रक्त में होने वाले परिवर्तनों के प्रति अनुक्रिया होती है; इन परिवर्तनों में शामिल है ऑक्सीजन तथा कार्बन डाइऑक्साइड के आंशिक दाब तथा परासरण दाब pH। इस प्रकार यह अंग स्तनियों के केरोटिड काय (carotid body) के समान कहा जा सकता है। अधिसंख्य इलास्मोब्रैंकों में स्पाइरेकलों के अतिरिक्त पांच जोड़ी गिल विदर होते हैं। एक उदाहरण *हेक्सैंकस (Hexanchus)* में छह तथा एक अन्य उदाहरण *हेप्टैंकस (Heptanchus)* में सात गिल विदर होते हैं। नैथोस्टोम प्राणियों में से *हेप्टैंकस* में ही सर्वाधिक संख्या में गिल विदर पाए जाते हैं। *काइमेराओं (Chimaeras)* में चार जोड़ी विदर होते हैं परंतु स्पाइरेकल नहीं होता तथा अंतिम विदर बंद होता है। अधिसंख्य इलास्मोब्रैंकों की तरह *पॉलिप्टेरस, ऐसिपेंसर* तथा *पॉलिडॉन* में पांच जोड़ी विदर होते हैं। डिप्नोई में स्पाइरेकल् नहीं होते और साथ ही उनमें विदरों की संख्या में भी अंतर पाया जाता है। *नीओसेरैटोडस (Neoceratodus)* तथा *प्रोटोप्टेरस (Protopterus)* में पांच जोड़ी विदर होते हैं लेकिन *लेपिडोसाइरन (Lepidosiren)* में केवल चार जोड़ी ही होते हैं। मछलियों में बाहरी गिल बहुत ही कम पाए जाते हैं। *पॉलिप्टेरस* में एक जोड़ी बाहरी अध्यावरणी गिल हाइऑइड चाप के क्षेत्र में पाए जाते हैं। डिप्नोई के लार्वों में चार जोड़ी बाहरी त्वक् गिल (cutaneous gills) ग्रसनी चापों के ऊपर स्थित होते हैं। अधिसंख्य मछलियां पानी से बाहर हवा में लाने पर शीघ्र ही मर जाती हैं भले ही उनके गिलों को गीला ही क्यों न रखा जाए। गिल कक्षों के भीतर जल का अभाव होना और उसके साथ-साथ श्लेष्मा (म्यूकस) का जमाव होना, इन दो बातों से गिल आपस में चिपक जाते हैं। परिणामत: खुली श्वसन सतह घट जाती है और गैसों का पर्याप्त आदान-प्रदान नहीं हो पाता। अलवण जलीय मछलियों के समक्ष यह समस्या आती है कि जब-तब उनका पर्यावरण सूख जाया करता है इस समस्या से पार पाने के लिए इन मछलियों में गिलों के अतिरिक्त ऐसे सहायक अंग भी बन गए हैं जिनके द्वारा वायु द्वारा श्वास लिया जा सकता है। अगले उपखण्ड में आप कुछ अलवण जलीय मछलियों की सहायक श्वसन संरचनाओं के विषय में संक्षेप में जानकारी प्राप्त करेंगे।

बोध प्रश्न 2

उपयुक्त शब्दों द्वारा रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:

1. .... *ऐम्फिऑक्सस* का मुख्य श्वसन अंग होती है।
2. गिल कोष्ठों की संख्या लेम्प्रेयों में .... जोड़ी तथा मिक्साइनों में .... जोड़ी होती है।
3. लैम्प्रेयों में अंत: प्रवाह एक .... प्रक्रिया है तथा बहि:प्रवाह एक .... क्रिया है।
4. लैम्प्रेयों में गिल छिद्रों की संख्या .... तथा मिक्साइनों में .... होती है।
5. कशेरुकियों की प्रथम ग्रसनी चाप का नाम .... चाप तथा दूसरी ग्रसनी चाप का नाम .... चाप है।
6. मछलियों में गिलों के ऊपर से जल प्रवाह का वह तंत्र जिसके द्वारा 80% ऑक्सीजन का ग्रहण कर लेना सुनिश्चित होता है .... प्रवाह कहलाता है।
7. इलास्मोब्रैंकों में .... सुविकसित होते हैं तथा अर्धगिलों से आगे निकल गए होते हैं।
8. वे प्रच्छद गिल जो वास्तविक अर्ध गिल नहीं होते मगर जिनके भीतर ग्राही तथा आयनाणु होते हैं .... कहलाते हैं।
9. नैथोस्टोमों में गिलों की सर्वाधिक संख्या .... होती है।
10. बाह्य अध्यावरणी गिलों की एकल जोड़ी का मौजूद होना .... की विशिष्टता है।

7.2.4 मछलियों में सहायक श्वसन अंग

मछलियों के सहायक श्वसन अंग या तो ग्रसनी की या गिल कोष्ठ की बहिर्वृद्धियां होती हैं जिनमें रक्त वाहिकाएं भरपूर पायी जाती हैं। बाहर की वायु मुख द्वारा इन कोष्ठों में लायी जाती है और वहां रोकी रखी जाती है ताकि रक्त का वायवन होता रह सके। ऐक्टिनॉप्टेरिजियन *ऐनाबस (Anabas)*, *ओफियोसेफैलस (Ophiocephalus)*, *ऐम्फिप्नस (Amphipnous)*, *क्लैरिअस (Clarias)* तथा *सैक्कोब्रैंकस (Saccobranchus)* कुछ ऐसी ही मछलियों में से है जिनमें सहायक श्वसन अंग बने होते हैं। *ऐनाबस* जिसे आरोही "पर्च" अथवा "कोई" माछ कहते हैं, एक ताल से दूसरे ताल में जाती रहती है और उस दौरान जब वह स्थल के ऊपर से चलती जाती है वायुमण्डल में से वायु का श्वास भरती है। इसके दो वायु-कक्ष गिल गुहाओं के प्रसार होते हैं और शीर्ष के दोनों ओर एक-एक पाए जाते हैं। इसके सहायक अंग जिन्हें लैबिरिंथी अंग (labyrinthine organs) कहते हैं (चित्र 7.10) प्रथम-गिल चाप के ऊपरी भाग की बहिर्वृद्धियां होते हैं। प्रत्येक अंग संकेंद्रिक तरह से व्यवस्थित प्लेटों का बना होता है जिसके ऊपर एक रक्तवाहिकामय झिल्ली चढ़ी होती है। हाइऑइड तथा पहली गिल चाप के बीच में बना एक छिद्र ग्रसनी तथा वायु कोष्ठ को एक दूसरे से जोड़ देता है। अनिवार्यत: वह वायु जो मुख द्वारा भीतर को खींची जाती है गिल कोष्ठ में पहुंच जाती और फिर गिल छिद्र के द्वारा बाहर को निकल जाती है। *ऐनाबस* लगभग छह से सात घंटे तक जल के बाहर रह सकती है।

ऑफियोसेफैलस जिसे "मरेल" (murrel) भी कहते हैं, में एक जोड़ी वायु कोष्ठ होते हैं, जो शीर्ष के प्रत्येक पार्श्व में एक-एक बने होते हैं (चित्र 7.11) प्रत्येक वायु-कोष्ठ प्रथम गिल-चाप के ऊपर ग्रसनी की एक बहिर्वृद्धि के रूप में बनता है तथा पीछे बहुत दूर अंतिम गिल विदर तक फैला होता है। रक्तवाहिकामय सतहें हायोमैण्डिबुलर चाप से तथा पहली दो गिल चापों के अधिगिलों से व्युत्पन्न हुई हैं। वायु मुख के द्वारा कक्ष के भीतर जाती है और प्रच्छद चाप से बाहर निकल जाती है।

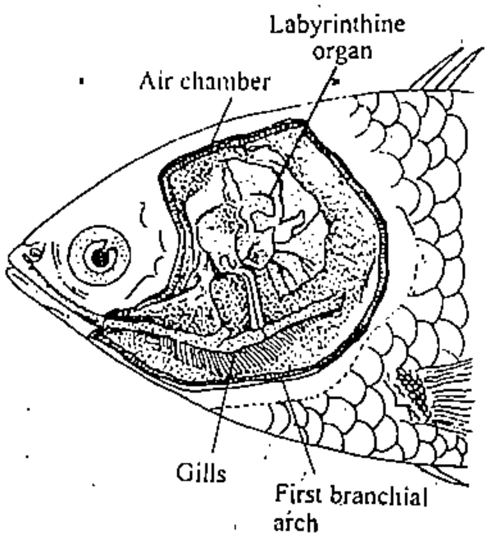

चित्र 7.10: ऐनाबस का लैबिरिंथीन अंग

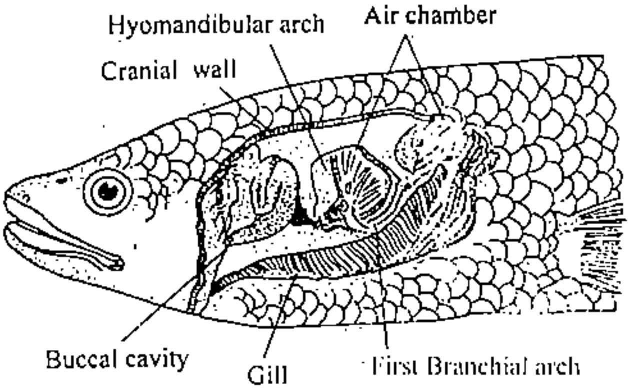

चित्र 7.11: ऑफियोसेफैलस का सहायक श्वसन अंग

क्लैरिअस (Clarias) एक कैटफिश (मुच्छमछली) है जिसमें पाए जाने वाले अतिविशाखित तथा रक्तवाहिकामय युग्मित सहायक श्वसन अंग गिल-गुहा की बहिर्वृद्धियां होते हैं इन अंगों को वृक्षरूपी (arboriform) अथवा द्रुमरूपी (dendrifoum) अंग (चित्र 7.12) कहते हैं और ये विशिष्टत: दूसरी तथा चौथी गिल चापों के ऊपरी भागों से व्युत्पन्न हुए होते हैं।

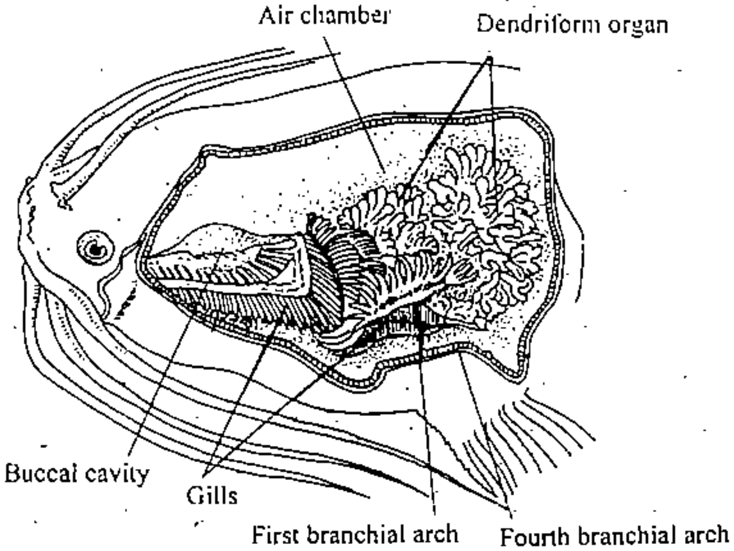

चित्र 7.12: *क्लैरिअस* का वृक्षरूपी सहायक श्वसन अंग

ऐम्फिप्नस में वायु कक्ष (चित्र 7.13) ग्रसनी की पृष्ठ दीवार की थैलेनुमा बहिर्वृद्धियों के रूप में निकलते हैं और बहुत पीछे तीसरी गिल चाप तक पहुंच जाते हैं। इन थैलों की दीवारें वलनित जाते तथा रक्तवाहिकाएं युक्त होती हैं। ये थैले एक छिद्र के द्वारा ग्रसनी में खुलते हैं और इसी छिद्र के द्वारा इन में वायु भरती है। वायु का शरीर से बाहर निकलना गिल दरारों तथा प्रच्छद छिद्र से होता है। प्रथम गिल चापों के गिल तंतु बहुत ह्रासित होते हैं।

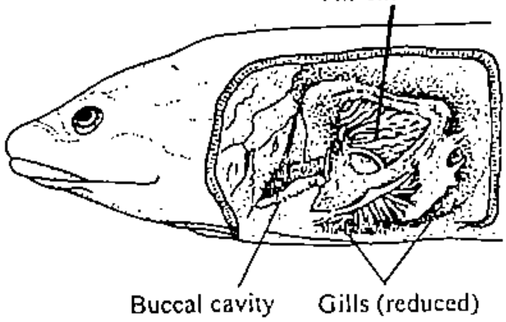

चित्र 7.13: *ऐम्फिप्नस* का वायु कक्ष

सैकोब्रैंकस (Saccobranchus) में एक जोड़ी नलिकाकार थैले होते हैं जो गिल-कक्षों में से निकलकर पूंछ क्षेत्र के मध्य तक फैले होते हैं (चित्र 7.14)। इन नलिकाओं के वलन एक प्रकार का वायु-कक्ष बना लेते है जो एक विदर के द्वारा मुखगुहा के साथ संबंध बनाए रखता है। वायु इसी विदर के द्वारा कक्ष के अंदर बाहर आती जाती है। "मडस्किपर" *पेरिऑफथैलमस (Periophthalmus)* जो नुनखरे जल में रहता है, में बड़ी प्रच्छद गुहाएं होती हैं जो मुख से भीतर ले जायी गयी वायु से भर जाते हैं। यह मछली "मडस्किपर" जल के बाहर जीवन के लिए इतनी अभ्यस्त हो जाती है कि यदि लम्बे समय तक इसे स्थल पर रहने से रोका रखा जाए तो इसका दम घुट जाता है। ऐसी ही एक व्यवस्था उष्ण कटिबंधीय रॉक स्किपर *ऐन्डेमिया (Andamia)* में भी पायी जाती है जिसमें प्रच्छद गुहा एक वायु श्वसन अंग के रूप में कार्य करती है।

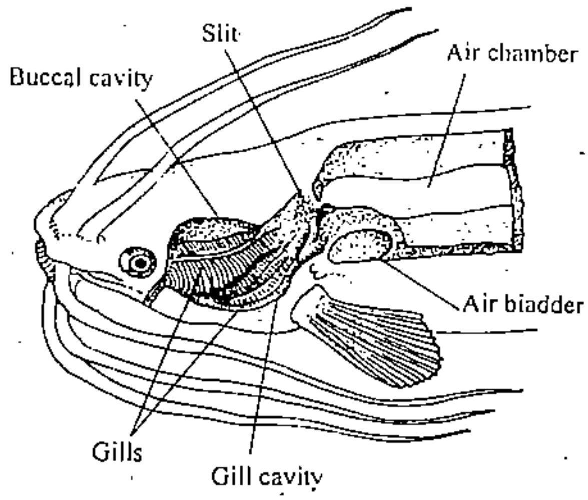

चित्र 7.14: *सैकोब्रैंकस* का सहायक श्वसन अंग

बोध प्रश्न 3

सहायक श्वसन अंग और जिस मछली में वह पाये जाते हैं, उसे मिलाइए

क)	वायु कक्ष	1.	*ऐम्फिप्नस*
ख)	नलिकाकार कक्ष	2.	*ऐनाबस*
ग)	वृक्षाभ अंग	3.	*ओफियोसेफैलस*
घ)	थैलानुमा कक्ष	4.	*सैकोब्रैंकस*
च)	लैबिरिंथीन अंग	5.	*क्लैरिअस*

7.2.5 जलीय उभयचरों में श्वसन

अधिसंख्य उभयचर अपना लार्वा जीवन जल के भीतर बिताते हैं, और कायांतरण के उपरांत वयस्क बन जाने पर वे स्थल पर पहुंच जाते हैं। लार्वा जीवन के दौरान अध्यावरणी प्रकार के बाह्य गिलों को गैस विनिमय के अंगों के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। इसके अतिरिक्त इनकी गीली और अति रक्तवाहिकामय त्वचा भी श्वसन अंग का कार्य करती है।

अंडे से निकलने के समय जो तीन जोड़ी बाह्य गिल प्रकट होते हैं वे तीसरी, चौथी तथा पांचवी गिलचापों के ऊपरी बाह्य सीमांतो से निकले हुए विशाखित प्रवर्ध होते हैं। अंतिम जोड़ी पहली दो जोड़ियों से छोटी होती है। प्रत्येक गिल में एक एक्टोडर्मी अस्तर बना होता है जिसमें भीतर एक मीज़ोडर्मी क्रोड होता है तथा महाधमनी चापों से आयी हुई रक्त वाहिकाओं से जुड़ा रहता है। बाद में हाइऑइड चापों के पश्च सिरों से निकले वलन प्रच्छद के रूप में गिलों को बाहर से ढक लेते हैं, इसके बाद की अवस्था में गिल अवशोषित हो जाते हैं।

भीतरी गिलों का बनना मुख के स्थापित होने के साथ-साथ सम्पन्न होता है। भीतरी गिल क्लोम तंतुओं के बने होते हैं और गिल चापों पर बाह्य गिलों के अधर से प्रच्छद गुहा में प्रक्षेपित होते हैं। तीसरी, चौथी और पांचवी ग्रसनी चापों पर दो पंक्तियों में तंतु होते हैं तथा छठी चाप पर अग्र दिशा में इनकी केवल एक ही पंक्ति होती है। महाधमनी चापों से निकली हुई रक्त वाहिकाएं इन गिलों की रक्त वाहिकाओं से जुड़ जाती हैं। जल मुख में से होकर ग्रसनी में और फिर वहां से गिल छिद्र में से प्रच्छद कक्ष में बहता जाता है। आंतरिक गिल कायांतरण के समय विलीन हो जाते हैं।

कुछ यूरोडेलों में गिल आजीवन कायम बने रहते हैं मगर अधिसंख्य यूरोडेलों में एवं सभी पुच्छविहीन उभयचरों में ये कायांतरण के समय विलोपित हो जाते हैं। तब नए बने फेफड़े श्वसन का कार्य करने लग जाते हैं। कुछ अपवादों को छोड़कर अधिकतर भ्रूण परिवर्धन के दौरान पांच जोड़ी ग्रसनी कोष्ठ एक विशेष प्रकार से बनते हैं। प्रथम तथा अंतिम कोष्ठ में सूराख नहीं बनता और केवल 2,3 तथा 4 ही वास्तव में बाहर को खुलते है। कुछ खास यूरोडेलों में सभी गिल दरारें सम्पूर्ण वयस्क जीवन में कायम बनी रहती है। *साइरन (Siren)* (चित्र 7.15a) में सभी तीन विदर कार्यशील बने रहते हैं। *नेक्ट्यूरस (Necturus)* (चित्र 7.15b) *टिफ्लोमॉल्गे (Typhlomolge)* तथा *प्रोटीअस (Proteus)* में केवल दो-दो जोड़ी विदर पाए जाते हैं। *ऐम्फियूमा (Amphiuma)* में केवल एक जोड़ी कायम बने रहते हैं। "हेलबेण्डर" *क्रिप्टोब्रैंकस ऐलिगैनिऐन्सिस (Cryptobranchus alleganiensis)* में जब बाह्यगिल समाप्त हो जाते हैं तब प्रच्छद के सीमांत, केवल पृष्ठ दिशा को छोड़कर, जहां प्रत्येक पार्श्व पर एक-एक छिद्र बना रह जाता है, कंठ के साथ समेकित हो जाते हैं। गिलों की समवृत्ति (analogous) संरचनाएं सरीसृपों, पक्षियों तथा स्तनियों में भी परिवर्धित हो सकती हैं। सरीसृपों में भ्रूण जीवन के दौरान पांच जोड़ी ग्रसनी कोष्ठ बनते हैं तथा पक्षियों एवं स्तनियों मे केवल चार जोड़ी बनते हैं। पक्षियों एवं स्तनियों में पांचवी जोड़ी भी बन सकती है परंतु वह अविकसित बनी रहती हुई चौथी जोड़ी से संलग्न पायी जाती है। ये कोष्ठ कोई छिद्र बनाकर बाहर को नहीं खुलते, परंतु यदाकदा ऐसा हो सकता है। यदि ग्रसनी कोष्ठ सामान्य रूप में समाप्त नहीं होते तब उनसे क्लोम सिस्ट तथा फ़िस्टुले (fistulae) बन जाते हैं।

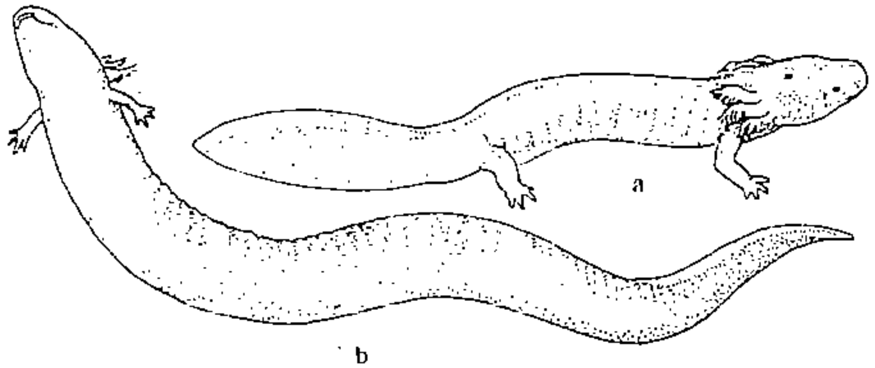

चित्र 7.1.5: साइरेन (a) तथा नेक्ट्यूरस (b) के बाह्य गिल।

जब ये ग्रसनी कोष्ठ बंद नहीं हो पाते तब गर्दन के क्षेत्र में एक सूराख रह जाता है जो भीतर ग्रसनी में खुलता है। ऐसे मामलों में गिल विदर समाप्त होने में विफल हो गए होते हैं। वास्तव में सरीसृपों, पक्षियों तथा स्तनियों में गिल, ग्रसनी कोष्ठों के सम्बद्ध में नही बनते। चूज़े के भ्रूणों तथा कुछ कछुओं के भ्रूणों में, परिवर्धन के दौरान थोड़े समय के लिए गिल-कोष्ठों की बहिर्वृद्धियों के रूप में कुछ अस्थायी संरचनाएं बन जाती हैं जो क़दाचित समजात गिल हो सकते हैं। निश्चय ही श्वसन में उनका कोई प्रकार्य नहीं होता।

बोध प्रश्न 4

नीचे दिए गए वाक्यों में सही विकल्प को चुनिए:-

1. अधिसंख्य लार्वीय उभयचरों में अध्यावरणी प्रकार के बाह्य गिल/आंतरिक गिल होते हैं।
2. कायांतरण के समय आंतरिक गिल प्रकट होते/विलीन हो जाते हैं।
3. कुछ पुच्छविहीन उभयचरों/यूरोडेलों में गिल समूचे वयस्क जीवन में बने रहते हैं।
4. *प्रोटियस* में केवल दो/तीन गिल विदर ही कार्यशील होते हैं।
5. सरीसृपों, पक्षियों तथा स्तनियों में गिल, ग्रसनी कोष्ठों के सम्बद्ध में परिवर्धित होते/परिवर्धित नहीं होते हैं।

7.3 स्थलीय कशेरुकियों में श्वसन

वायु-श्वासी प्राणियों में मुख्य श्वसन अंग फेफड़ा (फुफ्फुस) होता है। भ्रूण में से जो अंधवर्ध अंतिम गिल-कोष्ठ के पीछे ग्रसनी के तले से अधर दिशा में निकलता है, उसी से फेफड़े बनते हैं। अंधवर्ध दो भागों में बंट जाता है जिन्हें फुफ्फुस-मुकुल कहते हैं इन्ही से श्वसनियां तथा फेफड़े बनते हैं। फुफ्फुस मुकुलों में पश्च दिशा में वृद्धि होती है, उनके ऊपर मीज़ोडर्म का एक आवरण बन जाता है, और वे तब तक बढ़ते जाते हैं जब तक कि वे शरीर में अपने अंतिम लक्ष्य-स्थान तक नहीं पहुँच जाते। इनमें अलग-अलग स्पीशीज़ के आधार पर अलग-अलग मात्राओं में विशाखन हो सकता है। मूल अयुग्मित वाहिनी जो फेफड़ों को ग्रसनी से जोड़े रहती है, वायु को अंदर-बाहर लाने ले जाने का काम करती है और अधिकतर मामलों मे इसे वायु नली अथवा श्वास नली (trachea) कहते हैं। सेलिएंशिया वर्ग के उभयचरों के अधिसंख्य उदाहरणों में यह वाहिनी इतनी छोटी होती है कि इसे लगभग अविद्यमान कहा जा सकता है। श्वासनली पिछले सिरे पर दो श्वसनियों में विभाजित हो जाती है और सीधे फेफड़ों में प्रवेश कर जाती है।

7.3.1 फेफड़ों से युक्त मछलियां

अधिसंख्य ऐक्टिनॉप्टेरिजियन मछलियों में आहार नाल तथा कशेरुक दंड के बीच तरण-आशय (swim bladder) अथवा वाताशय (air bladder) नामक संरचनाएं पायी जाती हैं। फूला हुआ थैले-जैसा वाताशय अलग-अलग मछलियों में अलग-अलग लंबाई एवं आकृति का होता है। यह अनिवार्यतः एक द्रवस्थैतिक (hydrostatic) अंग के रूप में कार्य करता है। परंतु क्रॉसाप्टेरिजियन (crossopterygian) मछलियों और साथ ही कॉण्ड्रास्टियन (chondrostean) मछलियों में भी, फेफड़े जो कि वायुआशय की ही तरह व्युत्पन्न हुए होते हैं, श्वसन का ही कार्य करते हैं। कॉण्ड्रॉस्टियन *पॉलिप्टेरस (Polypterus)* में सममित रूप में विकसित द्विपालिक फेफड़ा होता है (चित्र 7.16)। फेफड़े की एपिथीलियम सपाट नहीं होती वरन उसमें कुछ खांचे बनी होती हैं जिससे वायु के सम्पर्क में आने वाली सतह बढ़ जाती है। *पॉलिप्टेरस* में फेफड़ों में आपूर्ति करने वाली फुफ्फुस-धमनियां भ्रूण की छठी महाधमनी चाप से निकली हुई होती हैं, मगर शिरा-रक्त की वापसी यकृत शिराओं के द्वारा होती है। फुफ्फुस मीन डिप्नोअनों में (विशिष्टतः या तो एक द्विपालिक फेफड़ा होता है जैसा कि अधिसंख्य मामलों में, या केवल एक ही पालि होती है जैसा कि *नीओसरैटोडस (Neoceratodus)* में होता है। डिप्नोअनों में वाहिनियां ग्रसनी में मध्य अधर रेखा के थोड़ा बायीं ओर खुलती हैं, मगर थैले आहार नाल की पृष्ठ आंत्रयोजनी में वृद्धि करती जाती है और वयस्क में वे उसी में पड़े रहते हैं। अनेक कक्ष बन गए होते हैं। *नीओसेरैटोडस* वायु में श्वास लेने के लिए ऊपर सतह पर आती है, मगर ऐसा वह तभी करती है जब ऑक्सीजन तनाव 83mm Hg से नीचे आ जाता है।

यह मछली उन गंदे जलों में भी जीवित रहती पायी गयी है जिनमें अन्य मछलियां मर जाती हैं। साथ ही, यह मछली बिना पानी के भी जीवित नहीं रह सकती। अन्य फुफ्फुस मीनों *प्रोटोप्टेरस (Protopterus)* तथा *लीपिडोसाइरन (Lepidosiren)* वायु से अपनी लगभग 98% प्रतिशत ऑक्सीजन आवश्यकता पूरी कर लेती हैं। मुख का तला नीचा किए जाने पर वायु मुख के भीतर खिंच जाती है और एक मुख-पम्प के द्वारा जिसमें मुख को बंद करके जीभ को ऊपर छत से दबाया जाता है, वायु पीछे को धकेल दी जाती है। हाइऑइड उपकरण तथा अंस मेखला अंत:श्वास की प्रक्रिया में सहायता करते है। नि:श्वसन पूर्णत: फेफड़ों की प्रत्यास्थता के कारण होता हैं और इस प्रक्रिया में पसलियों की कोई भूमिका नहीं होती।

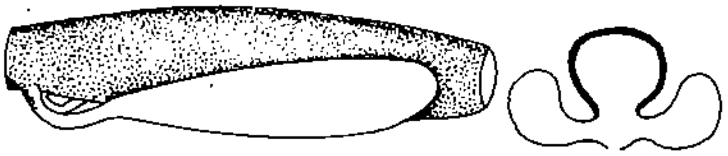

चित्र 7.16: पौलिप्टेरस का द्विपालिक फेफड़ा।

7.3.2 उभयचरों में श्वसन

सामान्यत: उभयचरों में फेफड़ों और साथ ही साथ त्वचा से भी श्वसन होता है। त्वचा से होने वाले श्वसन को त्वक् श्वसन (cutaneous respiration) कहते हैं तथा फेफड़ों द्वारा होने वाले श्वसन को फुफ्फुस-श्वसन (pulmonery respiration) कहते हैं।

- **त्वक् श्वसन**

उभयचरों की त्वचा उसमें पायी जाने वाली त्वक् ग्रंथियों के द्वारा गीली बनायी रखी जाती है। इसके साथ-साथ त्वचा में त्वक धमनी की केशिकाएं फैली होती हैं, यह धमनी विऑक्सीजनित रक्त लाती है। गैसों का श्वसनीय आदान-प्रदान वायुमण्डल की ऑक्सीजन तथा रक्त द्वारा लायी गयी कार्बन डाइऑक्साइड के बीच होता है। ऑक्सीजनित रक्त त्वक् शिरा के द्वारा वापिस हृदय में पहुंचा दिया जाता है जहां से वह सामान्य परिसंचरण में पहुंच जाता है।

- **फुफ्फुस श्वसन**

उभयचरों के फेफड़े दो सरल थैलों के रूप में प्रकट होते हैं जो यूरोडेलों में लम्बे तथा ऐन्यूरनों में कंदाकार (bulbous) होते हैं। ये अन्य अंतरंगों के साथ प्ल्यूरोपेरिटोनियल गुहा में स्थित रहते हैं। बायां फेफड़ा सामान्यत: अधिक लम्बा होता है अगर सिसीलियनों में यह आद्यांगी होता है। उभयचरी फेफेड़े का भीतरी अस्तर या तो पूर्णत: सपाट बना हो सकता है या फिर उसके समीपस्थ क्षेत्र में कोष बने हो सकते हैं अथवा सम्पूर्ण फेफड़े में कोटरिकाएं (pockets) बनी हो सकती हैं।

अपातिक्लोम (Perennribranchiate) उभयचरों के फेफड़ों का प्रकटत: प्राथमिक कार्य द्रवस्थैतिक अंगों के रूप में कार्य करना है, बस ऐसा तब नहीं होता जब जल में घुली ऑक्सीजन इतनी अपर्याप्त मात्रा में हो कि उसके द्वारा गिल-श्वसन नहीं हो सकता। कुछ यूरोडीलों में फुफ्फुस-मुकुल नहीं बनते और उनमें जीवन भर गिल तथा फेफड़े दोनों ही नहीं होते। ग्रसनी तथा ग्रसिका के अस्तर का एक विशेष रक्तवाहिकामय क्षेत्र होता है जिसे त्वचा के साथ-साथ एक अतिरिक्त श्वसन झिल्ली की तरह इस्तेमाल किया जाता है। तेज़ बहने वाली पर्वत जलधाराओं में रहने वाले सरट (सैलामैन्डर) में केवल कुछ ही मिलीमीटर लम्बे अवशेषी फेफड़े होते हैं क्योंकि तेज़ बहने वाली जलधाराओं में उत्प्लावकता (buoyancy) यानि ऊपर को उछाल आना अलाभकारी होगा।

मेंढकों में श्वसन तंत्र में आने वाले अंग हैं बाहरी नासाद्वार, भीतरी नासाद्वार, मुख गुहा, कंठश्वासनली कक्ष

(laryngo-tracheal chamber) तथा फेफड़े (चित्र 7.17)। फेफड़े अग्र दिशा में कंठश्वासनली कक्ष में खुलते हैं जिसकी दीवार में पांच कार्टिलेजी प्लेटों का आलम्ब बना होता है, ये प्लेटे हैं एक वलय-जैसी क्रिकॉइड (cricoid), एक जोड़ी छोटी ऐरिटिनॉइडें (arytenoids) तथा एक जोड़ी छोटी प्रीऐरिटिनॉयडें (prearytenoids)। यह कक्ष मानव शरीर के कंठ तथा श्वासनली के अनुरूप होता है मगर मेंढक में ये दो क्षेत्र छोटे एवं अविभेदित होते हैं। कंठश्वासनली कक्ष ग्लॉटिस (glottis) यानि कंठद्वार द्वारा मुख-गुहा में खुलता है। मुख-गुहा मुख और बाहरी नासाद्वारों इन दोनों के द्वारा बाहर को खुलती है। मुख-गुहा के भीतर वायु का आना और बाहर जाना बाहरी नासाद्वारों में से ही होता है।

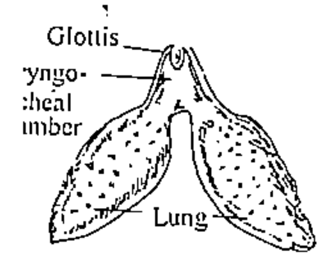

चित्र 7.17: मेंढक के फेफड़े तथा कंठश्वासनली कक्ष

फुप्फुस श्वसन में दो प्रक्रियाएं शामिल हैं। पहली प्रक्रिया में वायु को फेफड़ों के भीतर लाया जाता है अर्थात् अंत:श्वसन (inspiration) या उच्छ्वास और दूसरी प्रक्रिया है वायु को फेफड़ों से बलपूर्वक बाहर निकालना अर्थात् नि:श्वसन (expiration)। अंत:श्वसन (चित्र 7.18) दो चरणों में होता है। प्रथम चरण में बाहरी नासाद्वारों को खुला और मुख को कसकर बंद रखा जाता है। मुख-गुहा के फर्श को नीचे गिराने से मुख के भीतर का स्थान बढ़ जाता है। ऐसा होने से बाहर की हवा बाहरी नासाद्वारों में से होती हुई तेज़ी से मुख अवकाश के भीतर भर जाती है। इस प्रकार मुख-गुहा एक प्रकार के चूषण-पम्प जैसा कार्य करती है। प्रथम चरण में अनिवार्यत: बाहरी वायु का मुख-गुहा के भीतर खींच लाना तक ही होता है। दूसरे चरण में बाहरी नासाद्वारों को वाल्व से और साथ ही साथ मुख को भी बंद रखा जाता है। अब मुख-गुहा के फ़र्श को ऊपर को उठाया जाता है। इससे मुख-गुहा के भीतर की वायु दबती है मगर यह दाब इतना पर्याप्त नहीं होता कि इससे मुख या ग्रसनी खुल सके। वायु का कंठश्वासनली कक्ष में प्रवेश करना ग्लॉटिस में से होता है। फेफड़ों की प्रत्यास्थ दीवारें फेफड़ों को फैला देती हैं जिससे वायु उनके भीतर खिंच आती है। गैसों का आदान-प्रदान फेफड़ों की कूपिकाओं के भीतर होता है। नि:श्वसन के दौरान फेफड़ों की प्रत्यास्थ दीवारें फिर से सिकुड़ती और हवा को फेफड़ों के बाहर निकाल देती हैं फेफड़ों से निकली हवा मुख-ग्रह में आती तथा बाहरी नासाद्वारों से होती हुई फिर से बाहर निकल जाती है।

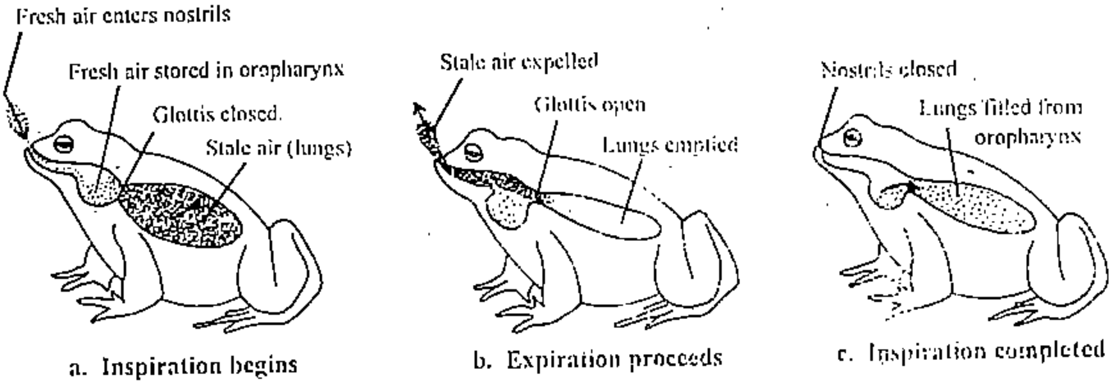

चित्र 7.18: मेंढक में श्वसन a) अंत:श्वसन प्रथम चरण b) नि:श्वसन c) अंत:श्वसन दूसरा चरण।

7.3.3 सरीसृपों में श्वसन

स्फीनोडॉन (Sphenodon) तथा सर्प में फेफड़े सरल थैलों जैसे होते हैं। सांप के फेफड़े के पश्च तिहाई भाग का अस्तर पटयुक्त होता है जिसमें संचित हवा भरी रहती है। उच्चतर छिपकलियों,क्रोकोडीलियनों तथा कछुओं में पट इस प्रकार बने होते हैं कि बहुत से बड़े-बड़े कक्ष बन गए होते हैं, और ऐसे प्रत्येक कक्ष के भीतरी बहुत संख्या में व्यष्टिगत उपकक्ष बने होते हैं (चित्र 7.19)। श्वासनली में विभाजन होकर दो श्वसनियाँ (bronchi) बन जाती है और प्रत्येक श्वसनी से बहुसंख्यक श्वसनिकाएं(bronchioles) निकलती हैं जो आगे वायु-कोष्ठों में खुलती है। फेफड़े स्पंजी होते हैं क्योंकि उनके अंदर वायु को भीतर रोके हुए बहुत संख्या में कोटरिकाएं होती हैं। इनके फेफड़ों का आयतन तो स्तनियों के फेफड़ों के आयतन से अपेक्षाकृत अधिक होता है मगर पृष्ठीय क्षेत्रफल (surface area) कभी-कभी देह-भार के अनुपात में 100 गुना से भी कम होता है। अधिक बड़े आयतन का उद्देश्य एक वायु-आगार का प्रदान करना होता है जो गोता लगाने वाली स्पीशीज़ में उपयोगी होता है- चौंका दिए जाने पर ये स्पीशीज़ अपना सांस रोक

कर पानी के नीचे शांत पड़ी रहती है। जलीय उदाहरणों में फेफड़ों के साथ कभी-कभी चिकने वाहिका रहित वायु-थैले भी बने होते हैं, ये उत्प्लावकता बनाए रखने में उपयोगी होते हैं।

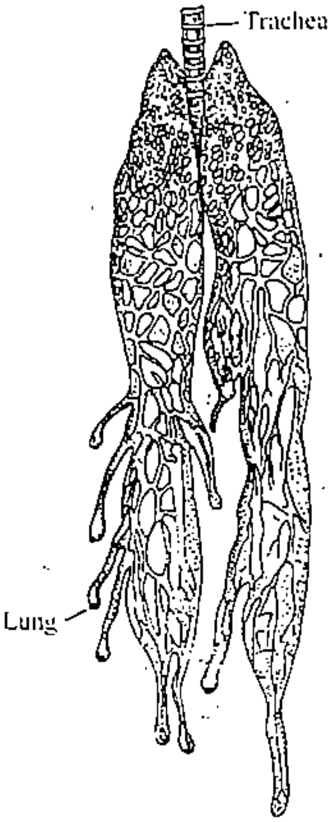

चित्र 7.19: कैमिलिऑन (गिरगिट) के फेफड़े

फेफड़ाविहीन छिपकलियों तथा सांपों में बायां फेफड़ा आवर्धित होता है या बिल्कुल नहीं होता, हां अपवाद स्वरूप किन्हीं उदाहरणों में जैसे कि काले सांपों में यह फेफड़ा मौजूद होता है। "पफ-ऐडर"नामक सांप में बायें फेफड़े का एक विशाल अंधवर्ध गर्दन के क्षेत्र में पहुंचा हुआ होता है। इस अंधवर्ध को फुलाने से गर्दन फैल जाती है जो इन सांपों की विशिष्टता है, तथा फेफड़ों के फुलाने से शरीर फूल जाता है। "स्पॉटेड किंग स्नेक" नामक सर्प में फेफड़ा तथा इसकी श्वसनियां शरीर की लंबाई के पूरे दो-तिहाई भाग तक फैली होती हैं।

सरीसृपों की ऑक्सीजन-आवश्यकता अपेक्षाकृत कम होती है। इनकी मानक उपापचय दर समतापियों (homeotherms) की अपेक्षा केवल 10 से 20 प्रतिशत ही होती है। अत: अधिसंख्य सरीसृप लगातार क्रियाशील रहने में अक्षम होते हैं। इनकी गतियां एकदम से थोड़े-थोड़े समय के लिए होती हैं और उस दौरान इनकी पेशियों में संकुचन अवायवीय होता है। मगर सरीसृप अपने परिसंचारी रक्त घटकों में स्तनियों की अपेक्षा ज़्यादा परिवर्तनों को सहन कर सकते हैं। इस गुणधर्म के कारण ही ये प्राणी निम्न ऑक्सीजन दशाओं में भी लम्बे-लम्बे समय तक जीवित बने रहते हैं। छिपकलियां, सांप तथा मगरमच्छ आदि शुद्ध नाइट्रोजन में 30 मिनट तक तथा कूर्म (turtles) कई-कई घंटों तक जीवित बने रहते हैं।

छिपकलियों के श्वसन-तंत्र में सामान्यत: निम्नलिखित लक्षण पाए जाते हैं। ग्लॉटिस (कंठद्वार) पीछे लैरिंक्स (स्वर-कोष) में खुलता है जिसमें क्रिकॉइड तथा ऐरिटिनॉइड कार्टिलेजों का आलम्ब बना होता है। लैरिंक्स से निकल कर श्वासनली पीछे गर्दन की अधर दिशा में चलती जाती है। इस लम्बी श्वासनली को कार्टिलेज के छल्ले (वलय) दृढ़ता प्रदान करते हैं। यह पीछे की ओर दो शाखाओं में बंटकर श्वसनियां बनाती है, और हर श्वसनी एक फेफड़े में प्रवेश कर जाती है। फेफड़े का भीतरी अस्तर कोमल कूटकों (ridges) के रूप में उभर कर उनका एक जाल सा बना लेता है जिससे फेफड़े की आकृति स्पंजी अथवा मधुमक्खी के छत्ते के जैसी हो जाती है। पसलियाँ पेशियों द्वारा आगे-पीछे को खींची जाती हैं, ये पेशियां

परस्पर पसलियों के बीच पायी जाती हैं, पसलियों की इस गति से देह-गुहा का साइज़ घटता-बढ़ता रहता है। जब देह-गुहा का साइज़ बढ़ता है तब बाहर की वायु नासाद्वारों में से होती हुई फेफड़ों में पहुंचती है जिससे फेफड़े फूल जाते हैं और अंत:श्वसन हो जाता है। नि:श्वसन निष्क्रिय क्रिया होती है। त्वचा श्वसन में कोई भाग नहीं लेती।

यूँ तो अनेक सरीसृप अपनी मुख-गुहा के फ़र्श को एक वायु-पम्प की तरह इस्तेमाल करते हैं, परंतु अन्य सरीसृप अपने फेफड़ों को भरने के वास्ते वायुमण्डलीय दाब का लाभ उठाते हैं। लम्बी अस्थिल पसलियां (पर्शुकाएं) ऊपर को उठा ली जाती हैं जिससे देह-गुहा बड़ी हो जाती है। फेफड़ों के चारों ओर की सीलोम का दाब कम हो जाता है और तुरंत ही वायुमण्डलीय दाब के कारण फेफड़े फूल जाते तथा अतिरिक्त उपलब्ध स्थान घेर लेते हैं। इस विधि से फेफड़े बलपूर्वक न फुलाए जाकर निष्क्रिय रूप में फूल जाते हैं। कूर्म श्वसन के लिए पसलियों का उपयोग नहीं कर सकते क्योंकि पसलियां कवच के साथ समेकित हो गयी होती हैं, मगर पेशीय पेरिटोनियल (उदर्यीय) झिल्लियां गुहा को बढ़ा देती है (अंत:श्वसन के लिए) तथा अन्य पेशियां फेफड़ों को दबाती हैं (नि:श्वसन के लिए)।

7.3.4 पक्षियों में श्वसन

सरीसृपों की ही तरह पक्षियों में भी श्वसन फुप्फुसीय होता है। श्वसन तंत्र शरीर के आयतन का बहुत बड़ा, यहां तक कि 20% तक भाग घेरे रहता है जबकि मानव में केवल 5% भाग ही घेरे रहता है। पक्षियों में फेफड़े तथा श्वसन मार्ग अंत्यधिक रूपांतरित हो गए हैं। इन रूपांतरणों की मुख्य बातें इस प्रकार हैं : (i) फेफड़ों में बड़े-बड़े अंधवर्ध अथवा वायु-थैले बन गए हैं जो लम्बे होकर देह के अधिकतर भागों में फैल गए हैं, (ii) फेफड़ों के भीतर वायु वाहिनियों का शाखामिलन (anastomosis) हो गया होता है जिसके फलस्वरूप फेफड़े के भीतर कोई भी मार्ग अंत में बंद नहीं होता, तथा (iii) फेफड़े फुफ्फुसावरणी गुहा में सीमित हो गए हैं। वायु-थैले फेफड़ों में से निकले हुए पतली दीवार वाले और सिरों पर बंद प्रसारशील अंधवर्ध होते हैं जो शरीर के अधिसंख्य भागों में पहुंच जाते हैं (चित्र 7.20)।

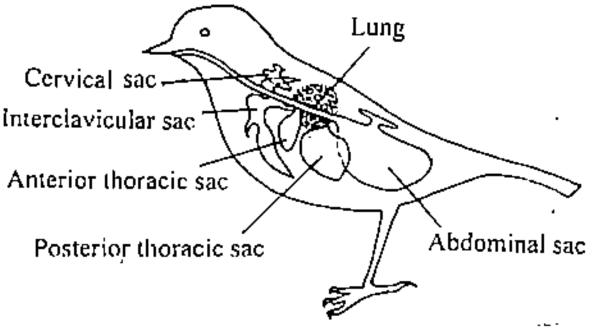

चित्र 7.20: पक्षी के फेफड़े तथा वायु थैले। मुख्य श्वसनी, फेफड़े में से गुज़रती जाती है और वह वायु थैलों एवं फेफड़े से संयोजन-संबंध बनाए रहती है।

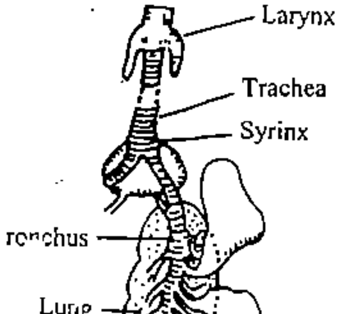

चित्र 7.21: पक्षी का श्वसन-तंत्र

ग्लॉटिस (कंठद्वार) लैरिंक्स में खुलता है। लैरिंक्स की दीवारों में युग्मित ऐरिटिनॉइड तथा क्रिकॉइड कार्टिलेजों का आलम्ब बना होता है। लैरिंक्स के पीछे एक लम्बी श्वासनली निकली होती है। जिसमें अस्थिभूत कार्टिलेजों के बने सम्पूर्ण छल्लों का आलम्ब बना होता है। श्वासनली में द्विशाखन होकर दो श्वसनियां बन जाती हैं जिनमें एक विचित्र विशाखन व्यवस्था के द्वारा फेफड़े तथा वायु-थैले बन जाते हैं। प्रत्येक पार्श्व की प्राथमिक श्वसनी फेफड़े की मध्य-अधर दिशा में प्रवेश करती है और फैल कर एक आशय बना लेती है। वहां से यह मध्य श्वसनी (mesobronchus) के रूप में फेफड़े के दूरस्थ सिरे में पहुंच जाती है (चित्र 7.21)। मध्य श्वसनी से द्वितीयक श्वसनियां निकलती हैं जिन्हें, उनके स्थान के आधार पर, तरह-तरह के नाम दिए जाते हैं जैसे बहि:श्वसनी (ectobronchus), अंत:श्वसनी (endobronchus), पार्श्वश्वसनी (laterobronchus) तथा पृष्ठश्वसनी (dorsibronchus)। इन द्वितीयक श्वसनियों में और आगे विशाखन होकर तृतीयक श्वसनियां अथवा पराश्वसनियां (parabronchi) बन जाती हैं जिनमें विभाजन तथा उपविभाजन होकर श्वसनिकाओं का तंत्र बन जाता है। इन श्वसनिकाओं से वायु केशिकाओं का तंत्र बन जाता है और प्रत्येक वायु कोशिका को चारों ओर से रक्त कोशिकाएं घेरे रहती हैं।

यही वे स्थान हैं जहां गैसों का विनिमय होता है। तृतीयक श्वसनिकाएं एक दूसरे के साथ संयोजित रहती हैं तथा इन्हीं के कारण फेफड़ों में शुद्ध वायु का परिसंचरण होता रहता है। वायु कोशों से बहिर्वृद्धियों के रूप में निकलने वाली "पुनरावर्ती श्वसनियां (recurrent bronchi)" नामक संरचनाएं फेफड़ों को वायु कोशों के साथ जोड़ती हैं।

फेफड़े छोटे स्पंजी अप्रत्यास्थ अंग होते हैं। पतली दीवारों वाले वायु-कोश दो प्रकार के कक्षों में वर्गीकृत किए जाते हैं एक तो पश्चीय अंतःश्वासी कक्ष और दूसरे अग्र निःश्वासी कक्ष। उदरीय तथा पश्च वक्षीय वायु-कोश पश्च कक्षों की श्रेणी में आते हैं तथा प्राथमिक श्वसनी में तेज़ी से आने वाली वायु उनमें भर जाती है। अग्र वक्षीय, मध्य अंतराक्लेविकली एवं ग्रीवा वायु कोश अग्र समुच्चय में आते हैं। ये वायु कोश आगे हड्डियों की गुहाओं में जारी रहते हैं। अंतःश्वसन के दौरान कुछ वायु सीधे पश्च कोशों में पहुंच जाती है। शेष वायु निष्क्रिय रूप में द्वितीयक तथा तृतीयक श्वसनियों में तथा वायु-कोशों में चली जाती है। निःश्वसन के दौरान वायु फिर से तृतीयकों तथा द्वितीयकों में और उसके बाद अग्र कोशों तथा श्वासनली में से होकर गुजरती है (चित्र 7.22)।

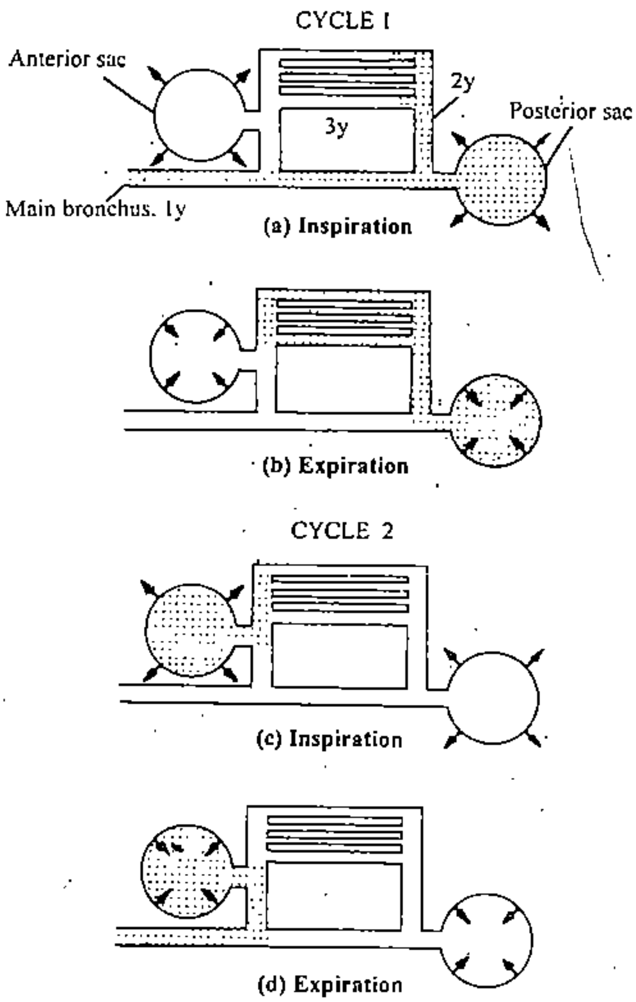

चित्र 7.22: पक्षियों के श्वसन-तंत्र में वायु का आवागमन। अपना पथ पूरा करने के लिए वायु दो सम्पूर्ण चक्रों में से गुज़रती है।

पश्च कोशों में 4% CO_2 तथा 17% O_2 होती है और अग्र कोशों में ये क्रमशः 7% CO_2 तथा 14% O_2 होती हैं। रक्त वाहिकाएं इस प्रकार व्यवस्थित होती हैं कि ऑक्सीजन से सबसे ज़्यादा भरपूर वायु का फेफड़ों से बाहर निकलने से तुरंत पहले ही रक्त से सम्पर्क हो जाता है। इस प्रकार आगे पीछे दो बार प्रवाहों की व्यवस्था से रक्त का पूरी तरह ऑक्सीजनन हो जाता है (चित्र 7.23)।

पक्षियों के फेफड़ों में फैलने की क्षमता न के बराबर होती है, क्योंकि ये पसलियों तथा वक्ष कशेरुकों के साथ संलग्न रहते हैं। पक्षी के बैठे रहने की स्थिति में स्टर्नम (उरोस्थि) को ऊपर उठाने से तथा उड़ते रहने

की स्थिति में रीढ़ की हड्डी को नीचे करने से देह-गुहा का आकार कम हो जाता है जिससे हवा बलपूर्वक बाहर को निकाल दी जाती है (नि:श्वसन)। इस प्रकार पक्षियों में नि:श्वसन एक सक्रिय प्रक्रिया होती है। अंत:श्वसन निष्क्रिक प्रक्रिया होती है जिसमें पेशियां वापिस अपने पूर्ववित आकार में आ जाती, जिससे देह-गुहा का आकार बढ़ जाता है।

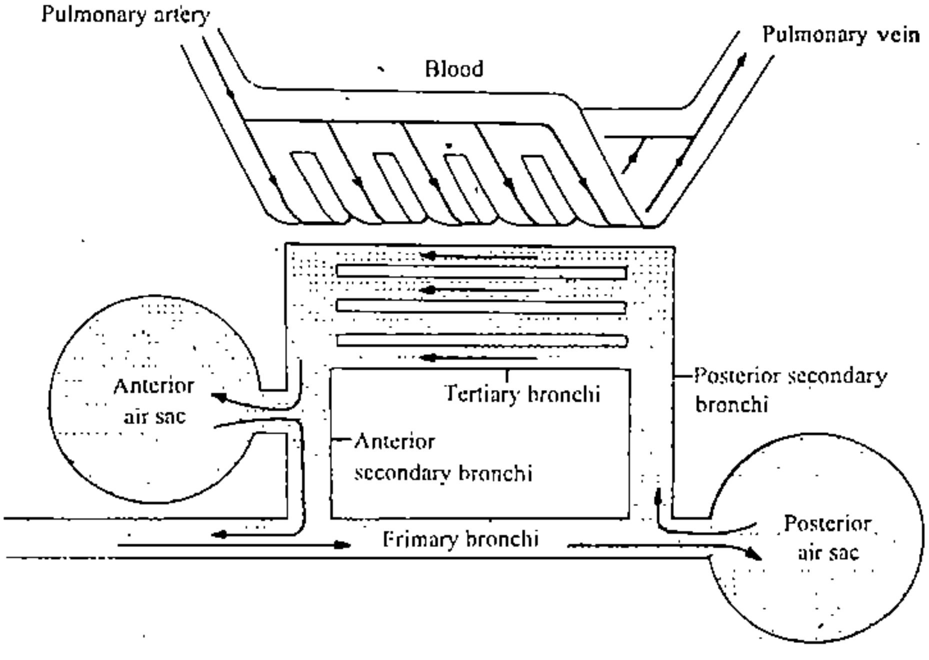

चित्र 7.23: पक्षी के फेफड़ों में वायु प्रवाह का मार्ग एवं रक्त का प्रतिधारा प्रवाह।

7.3.5 स्तनियों में श्वसन

स्तनियों में एक जोड़ी फेफड़े होते हैं जो वक्षगुहा में बंद होते हैं। वक्ष-गुहा का अस्थिल ढांचा वक्ष-कशेरुकों, पसलियों तथा स्टर्नम का बना होता है। स्तनियों के फेफड़े बहुकक्षीय होते हैं और वे सामान्यत: पालियों में विभाजित होते हैं। सामान्यत: दाहिनी ओर के फेफड़े में बायीं ओर के फेफड़े से अधिक पालियां होती हैं। मानव में तीन दाहिनी तथा दो बायीं पालियां होती हैं (चित्र 7.24) खरगोशों में प्रत्येक पार्श्व में तीन-तीन पालियां होती हैं मगर इनकी दाहिनी पश्च पालि उपविभाजित होती है। बिल्लियों में तीन बायीं तथा चार दाहिनी पालियां होती हैं, और उनमें से कई उपविभाजित होती हैं। ह्वेलों, समुद्री गायों, हाथियों तथा पेरिस्सोडेक्टाइलों में पालियां नहीं होती। मॉनोट्रीमों तथा चूहों में केवल दाहिना फेफड़ा पालियुक्त होता है।

बाहर की वायु बाहरी नासाद्वारों तथा नासा-मार्गों से होती हुई ग्रसनी में पहुंचती है। ग्रसनी से फिर यह वायु ग्लॉटिस में से होती हुई श्वासनली में पहुंचती है। श्वासनली एक लम्बी नलिका होती है जो गर्दन में से होती हुई चलती जाती है तथा ग्रसिका के अधर दिशा में पड़ी होती है। श्वासनली का अग्र भाग बड़े आकार का होकर स्वर-कोश अर्थात् लैरिंक्स बनाता है। लैरिंक्स की दीवारें चार कार्टिलेजी प्लेटों के द्वारा

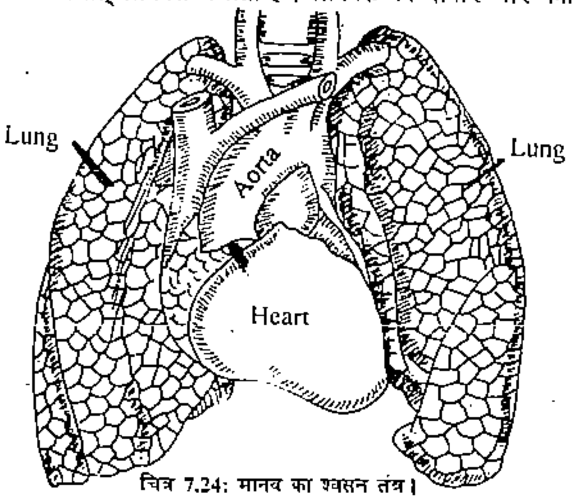

चित्र 7.24: मानव का श्वसन तंत्र।

कड़ी बनी होती हैं। थाइरॉइड कार्टिलेज लैरिंक्स की अधर दीवार को तथा पार्श्व दीवारों को आलम्ब देता है, श्वासनली का निचला भाग छल्ले जैसे क्रिकॉइड से आलम्बित रहता एवं एक जोड़ी ऐरिटिनॉइड पृष्ठ भाग को आलम्ब दिए रहते हैं। स्वर रज्जु (vocal cords) लैरिंक्स के भीतर स्थित होते हैं तथा इन स्वर रज्जुओं के कम्पन से ध्वनि पैदा होती है। श्वासनली में द्विशाखन होकर दो प्राथमिक श्वसनियां बनती हैं। प्रत्येक प्राथमिक श्वसनी फेफड़ों में चली जाती है और उनके भीतर विशाखित होते हुए उससे द्वितीयक तथा तृतीयक श्वसनियां और अंततः श्वसनिकाएं बन जाती हैं। अंतिम श्वसनिकाएं पतली दीवारों वाली कोमल कूपिकीय वाहिनियों (alveolar ducts) में खुलती हैं। कूपिकीय वाहिनियों की दीवारों में से बहिर्वलन होकर कूपिकाओं के गुच्छे बन जाते हैं।

प्रत्येक फेफड़ा फुफ्फुसावरणी गुहा (pleural cavity) के भीतर बंद रहता है और यह गुहा की दीवार दो पतली परतों से बनी होती है। एक बाहरी भित्तीय परत (parietal layer) वक्ष गुहा का अस्तर बनाते हुए होती है और एक भीतरी अंतरंग परत (visceral layer) होती है जो फेफड़े का आवरण होती है। अधर दिशा में भित्तीय परत परावर्तित होकर अंतरंग परत में मिल जाती है। भित्तीय परत की परावर्तित परत परिहृद (pericardium) के साथ जारी रहती है (चित्र 7.25 तथा b) इस प्रकार वक्ष की गुहा एक तो भित्तीय गुहाओं में विभाजित हो गयी होती है जिनके भीतर फेफड़े बंद होते हैं, और दूसरे परिहृद गुहा में जिसमें हृदय स्थित रहता है। दो फेफड़ों के बीच का खाली स्थान मीडिएस्टिनम (mediastinum) कहलाता है।

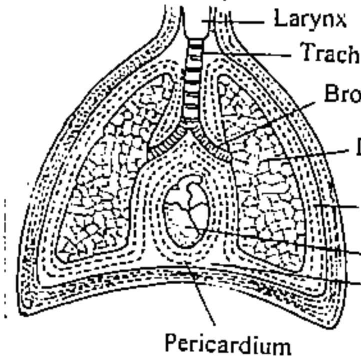

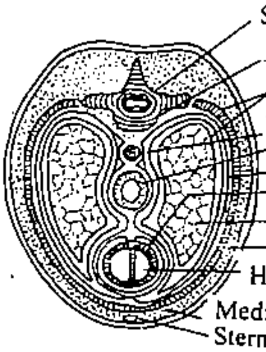

चित्र 7.25 : (a) खरगोश के श्वसन अंग (b) वक्ष में से अनुप्रस्थ सेक्शन।

स्तनियों में श्वसन के दौरान मुख गुहा की कोई भूमिका नहीं होती तथा डायाफ्राम और पसलियां ही मुख्य कार्य करती हैं। श्वसन में पसलियों को ऊपर को उठाना तथा डायाफ्राम का नीचे को गिराना (चपटा करना), इन दो क्रियाओं से वक्ष गुहा का आकार बढ़ जाता है। बाह्य अंतरापर्शुक पेशियों (intercostal muscle) जो दो दो पसलियों के बीच में फैली होती है, के संकुचन से पसलियां ऊपर को उठ जाती हैं और इससे वक्ष गुहा का आकार बढ़ जाता है जिससे फेफड़ों को घेरे रहने वाली फुफ्फुसावरणी गुहाएं भी बढ़ जाती हैं। फुफ्फुसावरणी गुहा के भीतर का दाब घट जाता है और वायु फेफड़ों के भीतर प्रवेश कर जाती है। यह सम्पूर्ण प्रक्रिया अंतःश्वसन है। निःश्वसन निष्क्रिय प्रक्रिया है जो अंतरापर्शुक पेशियों एवं डायाफ्राम के शिथिलन से होती है। वक्ष गुहा वापिस अपने सामान्य आकार में आ जाती और परिणामस्वरूप वायु बलपूर्वक बाहर निकाल दी जाती है।

बोध प्रश्न 5

बताइए कि निम्न कथन सही हैं या गलत

1. स्थलीय कशेरुकियों में ग्रसनी के फर्श से अधरतः निकला हुआ एक अंधवर्ध पश्चतः बढ़ता जाता हुआ अंतिम गिल कोष्ठ तक पहुंच जाता और फेफड़ों को बनाता है।
2. सेलिएंशिया-उभयचरों में एक लम्बी सुविकसित श्वासनली नलिका होती है।
3. डिप्नोअनों में फेफड़ों का कार्य केवल द्रवस्थैतिक होता है।

4. *प्रोटोप्टेरस* तथा *लेपिडोसाइरन* नामक फेफड़ा मछलियाँ वायु से अपनी लगभग 98% ऑक्सीजन प्राप्त कर सकती हैं।
5. उभयचरों में त्वक् धमनी विऑक्सीजनित रक्त तथा त्वक् शिरा ऑक्सीजनित रक्त ले जाती हैं।
6. मेंढकों में लैरिंजो-ट्रैकियल (स्वर कोश-श्वासनली) कक्ष में कार्टिलेजो का आलम्ब होता है।
7. मेंढकों में फुफ्फुस-श्वसन के दौरान मुख-गुहा एक चूषण पम्प का कार्य करती है।
8. क्रॉकोडीलियनों तथा कूर्म-कछुओं में फेफड़े एक सरल बड़े आकार के कक्ष के रूप में प्रकट होते हैं जिनके भीतर कोई उपविभाजन नहीं हुआ होता।
9. उच्चतर सरीसृपों में फेफड़े बड़े आकार के होते हैं मगर उनका क्षेत्रफल देह भार के अनुपात में 100 गुना कम होता है।
10. जलीय सरीसृपों में फेफड़ों में रक्तवाहिकामय कोश बने होते हैं जिनका कार्य द्रवस्थैतिक होता है।
11. छिपकलियों सांप और मगरमच्छों में उच्चतर मानक उपापचय दर पायी जाती है और इसलिए उनकी ऑक्सीजन-आवश्यकता भी काफी ज्यादा होती है।
12. अन्य सरीसृपों की तरह कूर्म-कछुओं में भी अस्थिल पसलियां ऊपर उठायी जाती हैं तथा इस क्रिया में देह गुहा बढ़ जाती है जिसके फलस्वरूप अंत:श्वसन होता है।
13. पक्षियों के श्वसन तंत्र शरीर के आयतन का 5% स्थान घेरता है जबकि मानव में 20% घेरता है।
14. पक्षियों के श्वसन तंत्र का एक विशेष लक्षण यह है कि इसमें फेफड़ों के अंतिम सिरे पर बंद पतली दीवार वाले प्रसारशील अंधवर्ध बने होते हैं जो शरीर के अधिसंख्य भागों में पहुंच गए होते हैं।
15. मानव में दाहिने फेफड़े में दो पालियां होती हैं तथा बायें फेफड़े में तीन पालियां
16. स्तनियों में अत:श्वसन एक सक्रिय प्रक्रिया है तथा नि:श्वसन निष्क्रिय क्रिया है परंतु पक्षियों में इसके विपरीत होता है।

7.4 वाक् उपकरण

कशेरुकियों में मुख्य वाक् उत्पादक संरचनाएं हैं कंठ अथवा लैरिंक्स (larynx)तथा शब्दिनी (syrinx)

7.4.1 लैरिंक्स

स्थलीय जीवन में फेफड़ों का महत्व बढ़ जाने के साथ चतुष्पादों के फुफ्फुस मार्ग के प्रवेश खण्ड में विभेदन होकर लैरिंक्स कंठ बन गया है। लैरिंक्स कहा जाने वाला भाग श्वासनली के आगे का चौड़ा हो गया हुआ प्रवेश-कोष्ठ होता है। लैरिंक्स की गुहा को घेरते हुए कुछ उपास्थि अथवा हड्डियां पायी जाती हैं। संबद्ध पेशियां लैरिंक्स-उपास्थियों को समंजित करती तथा ग्लॉटिस (कंठद्वार) को खोलती और बंद करती हैं। ग्रसनी में से इसमें को खुलने वाला झिरी जैसा छिद्र अनेक उदाहरणों में त्वचा के एक वलन द्वारा सुरक्षित ढका रहता है जो सामने की ओर से इसके ऊपर को वलनित रहता है स्तनियों में यह वलन एपिग्लॉटिस (epiglottis) का रूप ले लेता है जिसके भीतर एक विशेष उपास्थि बनी होती है (चित्र 7.26)

अनेक चतुष्पाद सही अर्थ में अवाक् यानि बोलीविहीन होते हैं। ऐसा वास्तव में उभयचरों में सरट एवं एपोडनों में तथा अधिसंख्य सरीसृपों में तो होता ही है, हालांकि कुछ सरीसृप वायु को अपने ग्लॉटिस में से जोर से बाहर को निकालते हुए फुफकारने अथवा गुर्राने की आवाज निकालते हैं। मेंढक, टोड तथा कुछ छिपकलियों और ख़ास तौर से स्तनियों में लैरिंक्स एक वाक् अंग होता है। आवाज़ का निकलना एक जोड़ी स्वर रज्जुओं के मौजूद होने के कारण होता है, ये स्वर रज्जु कटक (ridges) होते हैं जिनके भीतर एक प्रत्यास्थ (लचीला) ऊतक होता है, ये रज्जु लैरिंक्स में आर-पार फैले होते हैं। इन दो रज्जुओं के बीच में

से जब निःश्वासी वायु की धारा जोर से बाहर को निकाली जाती है तब इन रज्जुओं में कम्पन होने लगते हैं।

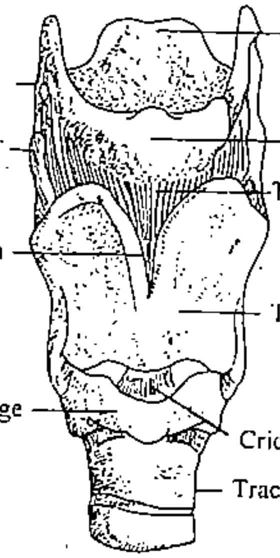

चित्र 7.26 : मानव में लैरिंक्स, सामने से।

पक्षियों में लैरिंक्स होता है परंतु उसमें स्वर रज्जु नहीं होते हैं। पक्षियों में स्वर का पैदा होना एक विशेष अंग शब्दिनी अर्थात् सिरिंक्स (syrinx) के भीतर होता है। यह संरचना कुछ-कुछ लैरिंक्स के ही समान होती है परंतु वायु मार्ग में यह और पीछे की ओर स्थित होती हैं प्रतिरूपतः जहां श्वासनली दो प्रधान श्वसनियों में विभाजित होती है।

7.4.2 शब्दिनी

श्वसनीय द्विशाखन के स्थान पर एक छोटी या बड़ी शब्दिनी बनी होती है, जो केवल पक्षियों में ही पायी जाने वाली विशेष स्वर-कोष्ठ होती है (चित्र 7.27) शब्दिनी तीन प्रकार होती हैं श्वसनीनाल (bronchotracheal), श्वासनलीय (tracheal) तथा श्वसनीय (bronchial)। श्वसनीनाल शब्दिनी में अंतिम कई श्वासनली वलय एक फैल गए हुए अनुनादी (resonating) कक्ष (ध्वनिपटह, tympanum) की दीवारों में आलम्ब प्रदान करते हैं। इस कक्ष के भीतर एक शब्दिनी के झिल्लीनुमा अस्तर के वलन प्रक्षेपित होते है और अर्धचन्द्र झिल्ली युक्त अस्थिल संरचना बनी हो सकती है।जब फेफडों में से वायु को बलपूर्वक बाहर निकाला जाता है और रेखित पेशियों को संकुचित किया जाता है तब झिल्लियां तन जाती हैं और पक्षियों की बोलियां तथा गाने पैदा होते हैं। श्वसनीनाल शब्दिनी मध्य में बना हो सकता है या असममित हो सकती है।

अन्य दो प्रकार की शब्दिनी सरल होतीं हैं। श्वासनली शब्दिनी में अंत के कई श्वासनली-वलयों के पार्श्व अंश नहीं होते। इसके परिणामस्वरूप बनी झिल्लीदार दीवार कम्पन करने लगती है जिससे आवाज पैदा होती है। श्वसनीय शब्दिनी में दो श्वसनीय कार्टिलेजों के बीच की झिल्ली श्वसनी की अवकाशिका में को वलनित होती है। जब ये उपास्थियां पास खिंचतीं हैं तब सरल वाक् रज्जुओं के कम्पनों से आवाज पैदा हो जाती है।

बोध प्रश्न 6

रिक्त स्थानों में उपयुक्त शब्द भरिए

1 लैरिंक्स श्वासनली के आरम्भ में एक बड़ा हो गया हुआ .... होता है और उसके भीतर एक .... बना हुआ होता है।

2 उभयचरों में .... तथा .... स्वरविहीन होते हैं

3 पक्षियों में लैरिंक्स होता है मगर उसके अंदर ....नहीं होता।

4 सिरिंक्स .... पर स्थित होता है और वह केवल .... में पाया जाता है।

5 .... के कम्पनों से ध्वनि पैदा होती है।

7.5 सारांश

इस इकाई में आपने सीखा कि:

- श्वसन-तंत्र इस प्रकार बना हुआ होता है कि जीव तथा पर्यावरण के बीच ऑक्सीजन तथा कार्बन डाइऑक्साइड का विनिमय हो सके।
- सभी कार्डेट भ्रूणों में ग्रसनी कोष्ठों की एक श्रृंखला ग्रसनी के दोनों पार्श्वों पर बन जाती है। मछलियों तथा उभयचरों के लार्वों में सूराख बन जाते हैं जिससे गिल छिद्र बनते है। जिनके द्वारा ग्रसनी का बाहर की ओर से संबंध बन जाता है। तब कोष्ठों को गिल विदर कहा जाता है।
- बाह्य गिल, जिन पर सामान्यत: एक्टोडर्म चढ़ी होती है, सूत्रीय बहिर्वृद्धियों के रूप में ग्रसनी चापों की बाहरी सतह से प्रवर्धों के रूप में निकले होते हैं।
- आंतरिक गिलों को ग्रसनी चापों का आलम्ब मिला होता है, ये गिल, गिल-कोष्ठों की एपिथीलियमी सतह की रक्तवाहिकामय, पटलिकीय और कभी-कभी सूत्रीय बहिर्वृद्धियां होती हैं। इलास्मोब्रैंको में आंतरगिल पट असाधारण रूप में सुविकसित होते हैं तथा अर्धगिलों से काफी आगे तक निकले होते हैं।
- अन्य मछलियों में आंतरगिल पट अलग-अलग मात्रा में ह्रासित हुए होते हैं जिनमें से अर्धगिल एक अकेले गिल कक्ष अथवा गिलबाह्य कक्ष में स्थित होते हैं जो प्रत्येक पार्श्व पर प्रच्छद तथा गिलों के बीच स्थित होता है। इस प्रकार गिल प्रच्छद द्वारा सुरक्षित रहते हैं।
- उभयचरों में गिल सामान्यत: केवल लार्वा-जीवन में ही पाए जाते हैं और कायांतरण के समय विलीन हो जाते हैं। मगर कुछ यूरोडीलों में गिल सम्पूर्ण वयस्क जीवन में बने रहते हैं, उभयचरों के भ्रूणीय जीवन के दौरान परिवर्धित होने वाले पांच जोड़ी गिल-कोष्ठों में से केवल दूसरी, तीसरी तथा चौथी जोड़ियों में ही सूराख बनता और बाहर से संबंध जुड़ाता है। साथ ही, कायांतरण के दौरान शुरू में बाह्य गिल प्रकट होते हैं जो अपविकसित हो जाते तथा उन्हीं ग्रसनी चापों के आवरक ऊतक से भीतरी गिलों का एक नया समुच्चय बन गया होता है।
- कुछ अलवणजलीय मछलियों में सहायक श्वसन संरचनाएं विकसित हो गयी हैं। ये संरचनाएं उस समय लाभकारी होती हैं जब उनके रहने के माध्यम में ऑक्सीजन का अभाव हो गया होता है। ये अत्यधिक रक्तवाहिकामय संरचनाएं अनिवार्यत: ग्रसनी अथवा गिल-कक्ष की बहिर्वृद्धियां होती हैं। *ऐनाबस, ऐम्फिप्नस क्लैरिअस, सैकोब्रैंकस* तथा *ओफियोसेफैलस* कुछ ऐसे ऐक्टिनॉप्टेरिजियन हैं जिनमें ये अंग पाए जाते हैं।
- फेफड़ों का बनना एक द्विपालिक अंधवर्ध से होता है जो प्रथम गिल कोष्ठ के पीछे ग्रसनी के फर्श से निकलता है। उच्चतर उदाहरणों में, फेफड़ों तथा ग्रसनी के बीच का संयोजक लम्बा हो जाता है जिसे श्वासनली कहते हैं। श्वासनली का ऊपर का भाग रूपांतरित होकर लैरिंक्स अथवा कंठ बन जाता है जिसकी दीवारों में ग्रसनी चापों से व्युत्पन्न कंकालीय संरचनाएं आलम्ब प्रदान करती हैं। पक्षियों में ध्वनि उत्पादक अंग शब्दिनी होती है जो श्वासनली के निचले सिरे पर बना होती है।
- निम्नतर कशेरुकियों के फेफड़ों अपेक्षाकृत सरल रक्तवाहिकामय कोश होते हैं, परंतु उच्चतर कशेरुकियों में इनकी दीवारें उपविभाजित होकर बहुसंख्यक कोटरिकाएं जैसी वायु अवकाशिकाएं बन

जाती हैं। इस प्रकार के विभाजन कशेरुकियों के उच्चतर क्लासों में अधिकाधिक जटिल होते जाते तथा स्तनियों में इनकी विशाखन व्यवस्था चरम सीमा पर पहुंच जाती है। पक्षियों के फेफड़े इस बात में जटिल हो गए हैं कि इनसे वायु-कोश निकलते हैं जो अंतरंग में को और यहां तक कि खोखली हड्डियों तक में प्रवेश कर गए होते हैं। इसी प्रकार की संरचनाएं कुछ छिपकलियों में भी पायी जाती हैं जो पक्षियों की संरचनाओं का पूर्वाभास कराती है। फेफड़ों की पतली दीवार वाला गीला एवं अतिरक्तवाहिकामय अस्तर एक आदर्श श्वसन सतह बन गयी है।

- फेफड़ों को फुलाने तथा पिचकाने में काम आने वाली क्रियाविधि अलग-अलग कशेरुकियों में अलग-अलग प्रकार की होती है। सर्वाधिक जटिल दशा स्तनियों में पायी जाती है। जिनमें फ़ेफड़ें अलग-अलग फुप्फुसावरणी गुहाओं में पड़े होते हैं और ये गुहाएं उदर गुहा से एक पेशीय डायाफ़्राम द्वारा पृथक हुई रहती हैं।
- नासा-मार्ग घ्राण (सूंघने) के उपकरण से संबंध बनाए हुए बनते है। अंध नासा-गर्त अधिकतर मछलियों में पाए जाते हैं परंतु कोएनिक्थीज़ में ये मुख गुहा तथा बाहर के बीच संबंध बनाए रहते हैं। यह दशा एम्फ़िबियनों में कायम बनी रहती है, इन्हीं में पहली बार नासा-मार्गों को वायु के भीतर लेने और बाहर निकालने में उपयोग किया जाता है। सरीसृपों में द्वितीयक तालु, बनना आरंभ हो गया है जो मुखगुहा एवं नासा-गुहा को आंशिक रूप में पृथक किए रहता है। मगरमच्छों तथा स्तनियों में द्वितीयक तालु सम्पूर्ण हो गया होता है जिससे ये दो मार्ग केवल ग्रसनी प्रदेश में ही जाकर एक दूसरे में जुड़ते हैं। इन प्राणियों में भीतरी नासा छिद्र अपेक्षाकृत काफी पीछे जाकर खुलते हैं तथा वे श्वासनली के छिद्र के समीप स्थित होते हैं।
- कशेरुकियों में मुख्य वाक् उपकरण लैरिंक्स तथा शब्दिनी होते हैं। लैरिंक्स अधिकतर उभयचरों, सरीसृपों तथा स्तनियों में होता है मगर शब्दिनी केवल पक्षियों में होती है।

7.6 अंत में कुछ प्रश्न

1 निःश्वसन तथा आंतरिक श्वसन की परिभाषा लिखिए।

....
....
....
....
....

2 उपास्थिल मछलियों के श्वसन तंत्र की संरचना का वर्णन कीजिए और बताइए कि यह अस्थिल मछलियों के श्वसन तंत्र की संरचना से किस प्रकार भिन्न है।

....
....
....
....
....

3 मेंढक में फुप्फुस-श्वसन का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

....
....
....
....
....
....

4 पक्षियों में उनके लिए बहुत मात्रा में आवश्यक ऑक्सीजन प्रदान कराने के लिए उनका श्वसन तंत्र किस प्रकार रूपांतरित हो गया है?

....

....

....

....

7.7 उत्तर

बोध प्रश्न

1. 1. गलत, 2. सही, 3. गलत, 4. गलत
2. 1. त्वचा 2. सात, छह 3. निष्क्रिय सक्रिय 4. सात, एक 5. मेंडिबुलर, हाइऑइड 6. प्रतिधारा 7. अंतरागिल पट 8. कूटगिल 9. *हेप्टैकस* 10. *पॉलिप्टेरस*
3. क-3; ख-4; ग-5; घ-1; च-2
4. बाह्य गिल, 2. विलीन, 3. यूरोडेल, 4. दो; 5. नहीं
5. 1. सही; 2. गलत; 3. सही; 4. सही; 5.सही; 6. सही; 7. सही; 8. गलत; 9. सही; 10. सही; 11. गलत; 12. गलत; 13. गलत; 14. सही; 15. गलत; 16.गलत
6. कोष्ठ/वेस्टिब्यूल 2. सरट, एपोडन, 3. स्वर रज्जु, 4. श्वसनी द्विशाखन, पक्षियों 5. स्वर रज्जुओं

अंत में कुछ प्रश्न

1. भूमिका देखिए
2. खंड 7.2.3 देखिए
3. खंड 7.3.2 देखिए
4. खंड 7.3.4 देखिए

इकाई 8 परिसंचरण तंत्र

इकाई की रूपरेखा

8.1 प्रस्तावना

उद्देश्य

8.2 हृदय

प्रोटोकॉर्डेट हृदय

मत्स्य हृदय

आरम्भिक चतुष्पाद हृदय

वाह्यतापी प्राणियों का हृदय

अंत:तापी प्राणियों का हृदय

8.3 धमनी तंत्र

महाधमनी चापें

ऐम्फिऑक्सस

मछलियां

उभयचर

सरीसृप

पक्षी

स्तनी

महाधमनी चापों के विकास का उपरिदृश्य

धमनियों के प्रकार

8.4 शिरा तंत्र

ऐम्फिऑक्सस

मछलियां

उभयचर

सरीसृप

पक्षी

स्तनी

8.5 हृदवाहिका तंत्र का भ्रूणीय परिवर्धन

8.6 रक्त

रक्त की संघटना

श्वसन वर्णक

8.7 लसीका तंत्र

मछलियां

उभयचर

सरीसृप

पक्षी

स्तनी

अन्य लसीका अंग

8.8 सारांश

8.9 अंत में कुछ प्रश्न

8.10 उत्तर

8.1 प्रस्तावना

कशेरुकियों के परिसंचरण तंत्र के दो भाग हैं, एक में हृदय धमनियां, शिराएं, केशिकाएं तथा रक्त (रक्त संवहन तंत्र) आते हैं, और दूसरे में लसीका वाहिकाएं तथा लसीका (लसीका तंत्र,lymphatic system) आते हैं। रक्त श्वसन अंगों से एकत्रित की गयी ऑक्सीजन और भ्रूणों की भ्रूण बाह्य झिल्लियों एवं वयस्क के

पाचन पथ से लिए गए पोषक अपने साथ बहाता जाता है। साथ ही यह अंत:स्रावी ऊत्तकों से निकले हार्मोनों को समस्थिति (होमियोस्टेसिस homeostasis), प्रतिरक्षा (immunity) एवं रोग से संबंधित पदार्थों को भी लाता-ले जाता है। प्रवाहरत होते हुए यह उपापचय के अपशिष्ट उत्पादों को उत्सर्गी अंगों में से बाहर निकाल देता है। लसीका वाहिकाएं एक तो उन अंतराली ऊतक तरलों को, जिन्हें रक्त धारा अपने में नहीं ले पाती और दूसरे क्षुदांत्र से अवशोषित पायसीकृत (emulsified) वसा, को अपने में ले लेती हैं। ये लसीका वाहिकाएं अंत में एक या एक से अधिक बड़ी शिरा वाहिकाओं में मिलती हैं।

धमनियां रक्त को हृदय से दूर ले जाती हैं। इनकी दीवारें पेशीय, लचीली तथा तंतुकी होती है। जो हर बार रक्त के भीतर आने से फूल जाती हैं और तंत्रिक आवेगों की अनुक्रिया से सक्रिय रूप में संकीर्णित हो सकती एवं फैल सकती हैं। इसी कारण से ये रक्त दाब के नियमन में सहायता करती हैं। ये अंतत: केशिका जाल बनाती हैं। शिराओं में पेशी तथा लचीला ऊतक अपेक्षाकृत कम होते हैं पर तंतुकी ऊतक अधिक होता है जिसके फलस्वरूप उनमें संकीर्णन एवं प्रसार की क्षमता कम होती है। ये केशिका जालों से रक्त को हृदय की ओर ले जाती हैं। केशिकाओं में केवल एंडोथीलियम होती है और बीच की नलिका (अवकाशिका, lumen) बस इतनी बड़ी होती है कि उसमें लाल रक्त कोशिकाएं आ सकें। वास्तव में लाल कोशिकाओं को केशिकाओं में से "भींच कर निकलना" पड़ता है, और ऐसा करने में उनमें विकृति भी आ जाती है। उन कशेरुकियों में जिनमें गिलों द्वारा श्वसन होता है, रक्त को हृदय में से गिलों में पम्प किया जाता है जहां बाह्य श्वसन होता है। गिलों से चलकर यह रक्त धमनियों में से होता हुआ सारे शरीर की केशिकाओं में पहुंच जाता है।

निवाहिका तंत्र (portal system) शिराओं का एक तंत्र होता है जिसमें शिराएं जो एक या अधिक अंगों की केशिकाओं से आरम्भ होकर किसी अन्य अंग की केशिकाओं में जा मिलती हैं।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ चुकने के बाद आप :

- कशेरुकियों के हृदय के उद्भव और उसके विकास का क्रम बता सकेंगे,
- कशेरुकियों के धमनी एवं शिरा तंत्रों का वर्णन कर सकेंगे,
- महाधमनी चापों के उद्भव और उनके विकास क्रम का वर्णन कर सकेंगे,
- रक्त की संघटना का वर्णन कर सकेंगे,
- लसीका तंत्र का वर्णन कर सकेंगे,
- दोहरे परिसंचरण की परिघटना को समझा सकेंगे।

8.2 हृदय

हृदय एक रूपांतरित रक्त वाहिका है जिसकी दीवारें अधिक पेशीय हो गयी हैं। रक्त के उल्टे प्रवाह को रोकने वाले वाल्व हृदय तथा शिराओं में होते हैं। हृदय में तीन परतें होती हैं-

1. एंडोकार्डियम (Endocardium)- भीतरी परत (एंडोथीलियम तथा प्रत्यास्थ ऊतक)
2. मायोकार्डियम (Myocardium)- एंडोकार्डियम तथा एपिकार्डियम के बीच (पेशीय परत)
3. एपिकार्डियम (Epicardium)- बाहरी तंतुकी ट्यूनिका, अंतरंग पेरिकार्डियम (सीलोम का उपविभाजन) द्वारा आवरित

हृदय में स्पंदन उसकी पेशी कोशिकाओं में होने वाली उस अनुक्रिया के फलस्वरूप होता हैं जो उनमें प्रवेश करने वाले विद्युत अपघटकों (इलेक्ट्रोलाइटों) के प्रति होती है। हृदय में होने वाले विकासीय परिवर्तनों का क्रम मोटे तौर पर इस प्रकार रहा है- शुरू में यह प्रोटोकॉर्डेटों में एक आदिम सरल सीधी नलिका थी, उसके बाद मछलियों में आकृति में जुड़ा हुआ बहुकक्षीय अंग बन गया और फिर बना आरंभिक चतुष्पादों

में अंशतः उपविभाजित मगर अन्यथा सरल संरचना और अंततः स्तनियों एवं पक्षियों की अति कारगर संरचना। संक्षेप में इस विकास के विभिन्न चरणों को इस प्रकार बताया जा सकता है-

1 प्रोटोकॉर्डेट चरण जिसमें ग्रसनी खाद्यग्राही कार्य करती थी

2 मत्स्य चरण जिसमें ग्रसनी गिल श्वसनकारी थी

3 आरंभिक चतुष्पाद चरण जिसमें आदिम फेफड़े बने

4 बाद का चतुष्पाद चरण जिसमें उच्चतर बाह्यतापी प्राणी आए

5 अंतःतापी चतुष्पादों का चरण

जैसा कि इन चरणों के नामों में ही अंतर्निहित है हृदय के विकास में अन्य संरचनाओं विशेषकर श्वसन अंगों में होने वाले परिवर्तन भी झलकते हैं।

8.2.1 प्रोटोकॉर्डेट हृदय

प्रोटोकॉर्डेटों में एक सरल नलिकाकार हृदय होता है जिसका स्पंदन सीधा-साधा केवल क्रमांकुंचनी (peristaltic) गतियों से ही होता है। शिराओं की अपेक्षा धमनियों का अधिक पेशीय होने के आधार पर इन्हीं धमनियों को ही आदिम हृदय माना जा सकता है। धमनियों का व्यापक रूप में पेशीय हो जाने का विशेष कार्यात्मक महत्त्व हो जाता है क्योंकि ये रक्त को लघुकर वाहिकाओं (केशिकाओं, capillaries) में बलपूर्वक धकेल सकती हैं। इन लघुतर केशिकाओं में से रक्त बिना किसी शेष प्रणोद माध्यम के द्वारा वापिस लौट सकता है क्योंकि रक्त लघुतर वाहिकाओं से बृहद्तर केशिकाओं में आना होता है।

प्रोटोकॉर्डेटों में एक अधिक विशेषित हृदय की आवश्यकता न होने का स्पष्टीकरण इस आधार पर किया जा सकता है कि इन प्राणियों में ग्रसनी दरारों का कोई सही रूप से श्वसन कार्य नहीं होता। प्रोटोकॉर्डेटों की ये ग्रसनी दरारें मूलतः आहार पकड़ने के लिए एक चलनी के जैसा कार्य करती हैं।

8.2.2 मत्स्य हृदय

जब ग्रसनी में केशिका जाल बना होता है तब गैस विनिमय को अधिक सुसाध्य बनाने के लिए एक अधिक कारगर एवं विशेषित पम्प की आवश्यकता होती है ताकि रक्त को पृष्ठ महाधमनी में को बलपूर्वक पहुंचाया जा सके। अतः मछलियों में पहली बार एक यथार्थ हृदय पाया जाता है, यह एक ऐसा हृदय होता है जिसमें श्रृंखलावत विशेषित कक्ष (कोष्ठ) बने होते हैं और रक्त को बलपूर्वक धमनी वाहिकाओं में चलाने का कार्य इन्हीं कोष्ठों तक ही सीमित होता है।

गिल श्वसनकारी कशेरुकियों में हृदय कार्य को कारगर रूप में चलाने के लिए वास्तव में दो कार्यचालन करने जरूरी हैं: पहले तो रक्त को भीतर एकत्रित करना और फिर उसके बाद उसे आगे को बढ़ाना। अतः संग्रहकारी कक्ष पीछे की ओर प्रकट होते हैं तथा प्रणोदकारी कक्ष आगे की ओर। मछलियों में एक पश्चीय शिरा कोटर अर्थात् साइनस विनोसस (sinus venosus) उसके आगे एक एंट्रियम (atrium) तथा उसके बाद एक निलय अर्थात् वेंट्रिकल (ventricle) और अंत में अग्र सिरे पर धमनी शंकु अर्थात् कोनस आर्टीरियोसस (conus arteriosus) होता है (चित्र 8.1) अनेक मछलियों में, अगर सबमें नहीं तो, एट्रियम (atrium) के प्रत्येक पार्श्व पर एक पल्ले जैसा विवर्ध अलिंद (auricle) बना होता है। स्पंदन क्रम क्रमांकुंचनी जैसा होता है पीछे से चलता हुआ आगे की ओर चलता जाता है जिनके कारण रक्त पश्च कक्षों से अग्र कक्षों में बहता है।

शिरा कोटर उस संधि स्थल का बस थोड़ा सा ही प्रसार हुआ भाग होता है जहां प्राथमिक दैहिक (सम्मिलित कार्डिनल, common cardinal) तथा अंतरंग (यकृत) शिराएं आकर मिलती हैं। इसकी दीवारें बहुत पतली

और संकुचन के लिए प्रकटतः अक्षम होती हैं। वास्तव में इस कक्ष में एक हल्की सी ऋणात्मक दाब होती है जो एट्रियम संकुचन एवं साइनुएट्रियल वाल्व की क्रिया के संयुक्त प्रभाव से उत्पन्न होती है। शिरा रक्त साइनस विनोसस (शिरा कोटर) में भर जाता है और फिर साइनुएट्रियल वाल्व द्वारा गुजरता हुआ यह रक्त हृदय पेशी की न्यूनतम सहायता से एट्रियम में पहुंच जाता है। चूंकि मछली के हृदय में कक्षों की व्यवस्था S आकृति में होती हैं (चित्र 8.1) इससे पतली दीवार वाला साइनस विनोसस एवं एट्रियम वेंट्रिकल (निलय) की पृष्ठ दिशा पर आ जाते हैं, और इसलिए गुरूत्व बल एवं एट्रियम के संकुंचन से रक्त एट्रियोवेंट्रिक्लर (एट्रियम निलय) वाल्व द्वारा गुजरता हुआ वेंट्रिकल में पहुंच जाता है। साइनुएट्रियल तथा एट्रियोवेंट्रिकुलर वाल्व रक्त के उलटे प्रवाह को रोक देते हैं। वेंट्रिकल की मोटी दीवार से भीतर आने वाले रक्त को कुछ प्रतिरोध का सामना करना पड़ता है, इसलिए साइनस विनोसस की अपेक्षा एट्रियम में अधिक सक्रिय होना पड़ता है ताकि रक्त को आगे वेंट्रिकल में पम्प किया जा सके। उसके बाद अपेक्षाकृत अधिक शक्तिशाली वेंट्रिकल दीवारें रक्त को गिलों में पहुंचाने के लिए बल प्रदान करती हैं।

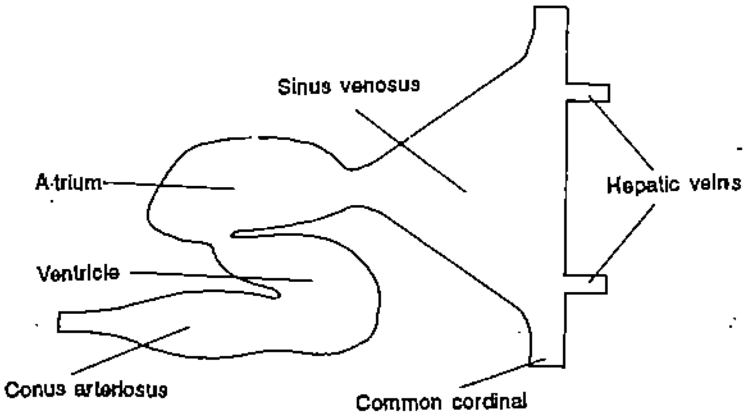

चित्र 8.1: मत्स्य हृदय अधर दृश्य जिसमें वास्तविक जीवन में ऊपर बने भागों को यथावत न दिखा कर पार्श्व में हटा कर दिखाया गया है।

एक बार वेंट्रिकल में पहुंच जाने के बाद रक्त एक या एक से अधिक श्रृंखलावत अर्धचंद्र वाल्वों (शंकु वाल्वों, conal valves) द्वारा गुजरता हुआ धमनी शंकु (conus arteriosus) में पहुंचता है जहां पर रक्त को और आगे बढ़ने के लिए धक्का लगता है जिससे अधर महाधमनी की ओर यह रक्त प्रवाह आसानी से आगे को बढ़ता जाता है। अधर महाधमनी में होने वाले प्रवेश पर अन्य अर्धचंद्र वाल्वों (semilunar valves) की कई पंक्तियां बनी होती है। अर्धचंद्र वाल्व भित्तियों के वलन होते हैं जो रक्त के उलटे प्रवाह को रोकते हैं और कदाचित रक्त को महाधमनी चापों में वितरित करने में सहायता करते हैं (चित्र 8.2 तथा 8.3)

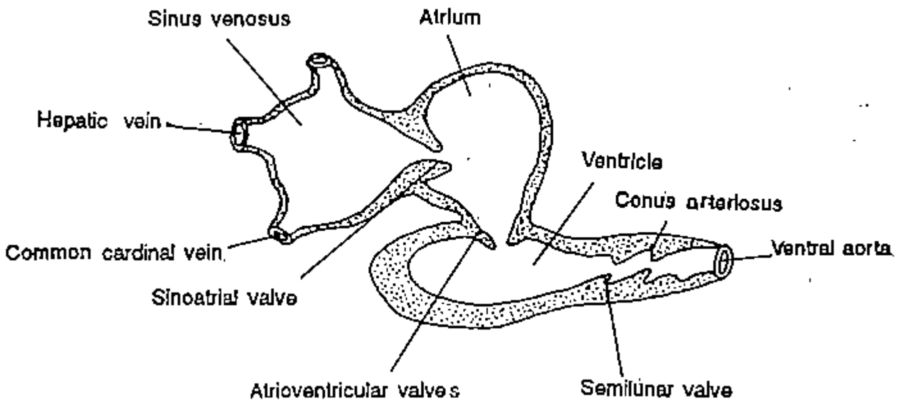

चित्र 8.2: लैम्प्री का हृदय जिसमें कक्ष दिखाए गए है, और यही विशिष्ट व्यवस्था अधिसंख्य मछलियों में पायी जाती हैं।

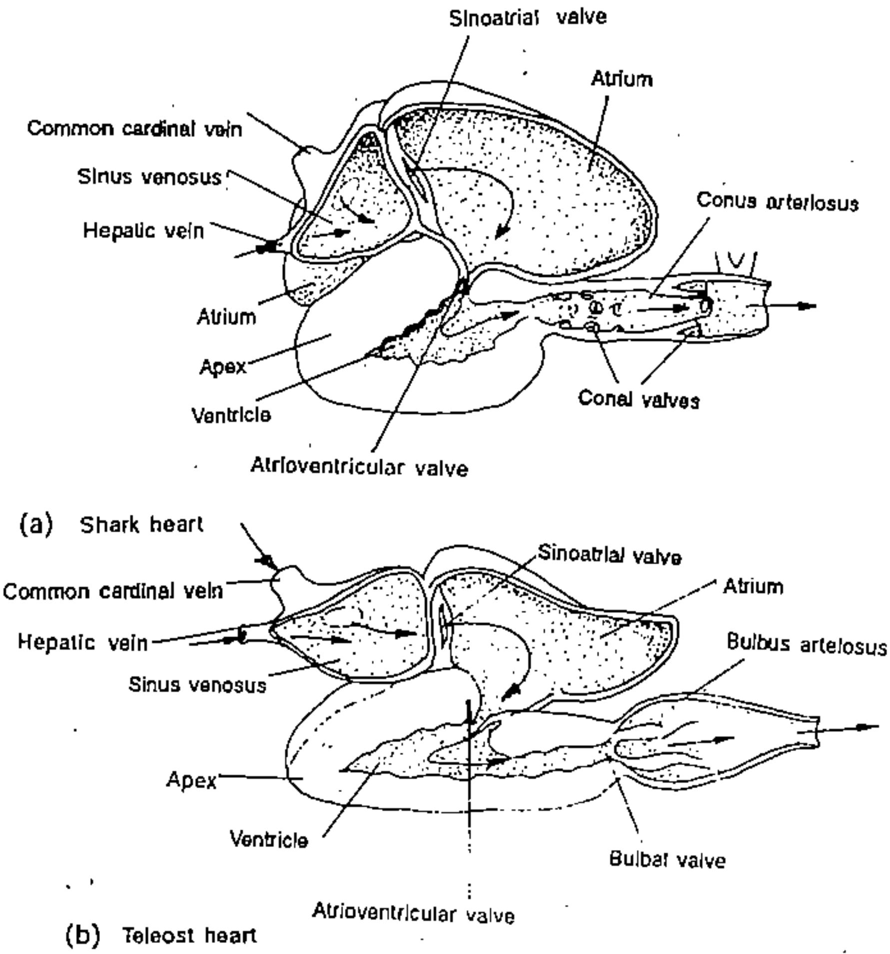

चित्र 8.3: मछलियों के हृदय a शार्क b टीलियोस्ट शार्क हृदय से रक्त बाहर की ओर पेशीय धमनी शंकु के माध्यम से आता है, यह धमनी शंकु एक ऐसा कक्ष है जो टीलियोस्ट मछलियों में नहीं होता। टीलियोस्ट हृदय में अधर महाधमनी का आधार फूला हुआ होता है। और यह भाग एक प्रत्यास्थ असंकुंचनी धमनी कंद (bulbous arteriosus) बन जाता है। एक जोड़ी कंदीय वाल्व (bubous valve) रक्त को वापिस निलय में प्रवाहित होने से रोकते हैं।

8.2.3 आरंभिक चतुष्पाद हृदय

चतुष्पादपूर्वी पूर्वजों में वायु आशय (air bladder) के बनने से चतुष्पादों में वायवीय श्वसन के परिपूर्ण होने की दिशा में मार्ग खोला गया था। धीरे-धीरे वायु आशय परिपूर्ण होकर बाह्य श्वसन की भूमिका करने लग गया। इस प्रकार फेफड़ों के रूप में हुए रूपांतरण से उस क्रियाविधि अथवा उन क्रियाविधियों में सुधार हुआ जो शरीर में वायवित रक्त की आपूर्ति करने के लिए उत्तरदायी हैं। इसमें मुख्यत: हृदय में होने वाले परिवर्तन निहित थे। पहला परिवर्तन था एट्रियम का दो कक्षों में उपविभाजित हो जाना, जिससे एक दैहिक कक्ष (systemic chamber) (दाहिना) बना जिसमें शिरा कोटर से अवायवित रक्त पहुंचता है और दूसरा फुप्फुस कक्ष (pulmonary chamber) (बायाँ) जिसमें फुप्फुस शिरा वायवित रक्त आता है (चित्र 8.4)

हृदय संरचना में यह परिवर्तन विशिष्टत: वायु श्वासी क्रियाविधि (फेफड़ों) के विकास से संबंधित था जिसने गैस विनिमय की जलीय युक्ति का स्थान ले लिया और इस प्रकार हृदय में दोहरे परिसंचरण चक्र की कम से कम आरम्भिक प्रावस्था तो स्थापित हो ही गयी।

इससे ऐसा जान पड़ेगा कि एट्रियम में फुप्फुस (pulmonary) तथा दैहिक (systemics) कक्षों के पृथक करने से सभी प्रयास सफल नहीं हुए थे क्योंकि अगले कक्ष (वेंट्रिकल निलय) में, जिसमें रक्त पहुंचता है, इन दोनों प्रकार के रक्त को अलग-अलग रखने की क्रियाविधि मौजूद नहीं थी। पर ऐसा पूर्णत: सत्य नहीं है। इसी से संबंधित एक और परिवर्तन था जिसमें धमनी पर शंकु (कोनस आर्टीरियोसस) में आंशिक पृथक्करण से दो कक्ष बन गए थे, इससे प्रकटत: यह हुआ कि वायवित रक्त (बायीं ओर से) अधर

महाधमनी की मुख्यत: अग्र वाहिकाओं को पहुंचा दिया जाता है जब कि अवायवित रक्त (दायीं ओर से) मुख्यत: पश्च जोड़ियों की वाहिकाओं में पहुंचा दिया जाता है जिनमें फुफ्फुस धमनियां होती हैं। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि शंकु महाधमनी के भीतर ही एक फुफ्फुसीय एवं एक दैहिक कक्ष बन गए हैं। अत: कार्यशील फेफड़ों वाले उभयचरों में हृदय में ये भाग होते हैं: एक शिरा कोटर, दाहिने एवं बायें एट्रियमों में पूर्णत: विभाजित एट्रियम, एक वेंट्रिकल और एक धमनी शंकु सर्पिल वाल्व की सहायता से अंशत: विभाजित हुई।

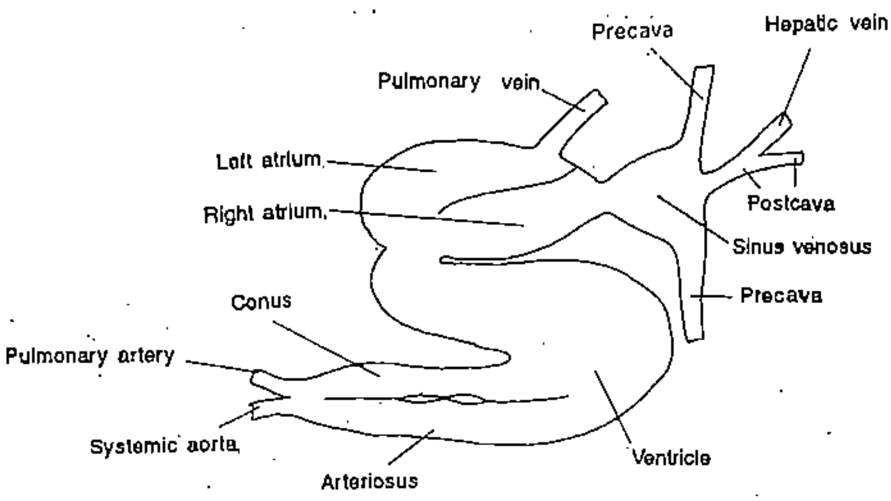

चित्र 8.4: आरंभिक चतुष्पाद हृदय (अधर दृश्य) जिसमें वास्तविक जीवन में ऊपर बने अंगों को यथावत न दिखाकर पार्श्व में हटाकर दिखाया गया है।

मेंढकों में, जिनका हृदवाहिका तंत्र सबसे अच्छी तरह अध्ययन किया गया है, धमनी शंकु एक ट्रैबेक्युलित (trabeculate) वेंट्रिकल से निकलती है, ट्रैबेकुला वेंट्रिकल के मायोकार्डियम की भीतरी दीवार से निकलने वाली पेशियों के उभरे हुए शंकु होते हैं और इन उभारों के कारण वेंट्रिकल की दीवार में गहरे खोखले स्थान अथवा कक्ष बन जाते हैं, जैसा कि चित्र 8.5 में दिखाया गया है। धमनी शंकु के आधार पर अर्धचंद्र वाल्व बने होते हैं जिनका काम रक्त के वापिस वेंट्रिकल में उल्टे प्रवाह को रोकना होता है। सर्पिल वाल्व जो धमनी शंकु के भीतर लगभग पूरा एक घूर्णन कर लेता है, धमनी शंकु के भीतर कक्ष स्थापित कर देता है और ये कक्ष रक्त को दैहिक तथा फुफ्फुस त्वचिक (पल्मोकुटेनियस) चापों को पहुंचाते हैं। ये दोनों चापें धमनी कांड यानि धमनी महावाहिका (truncus arteriosus) से निकलती हैं, और यह धमनी कांड अधर महाधमनी का अवशेष है। उभयचरों में ऑक्सीजनित रक्त के स्रोत अलग-अलग होते हैं क्योंकि श्वसन के लिए ये या तो त्वचा, या गिलों, या फेफड़ों या इन सभी तीनों विधियों पर निर्भर होते हैं। यही कारण है कि अलग-अलग उभयचरों में हृदय की संरचना भी अलग-अलग होती हैं।

फेफड़ाविहीन सालामैंडरों में अथवा उनमें जिनमें फेफड़ों को कार्य ह्रासित हुआ होता है, एट्रियम का विभाजनकारी पट और साथ ही सर्पिल वाल्व भी बहुत ह्रासित हुआ हो सकता है अथवा पूरी तरह अनुपस्थित भी हो सकता है। उदाहरणत: फेफड़ा विहीन प्लैथोडॉण्टिडों में, जिनमें 90% श्वसन आवश्यकताएं त्वचा द्वारा तथा 10% मुख गुहा द्वारा पूरी होती है, हृदय में बायां एट्रियम नहीं होता यानि वह कक्ष जिसमें अन्यथा फेफड़ों से लौट रहा रक्त पहुंचता है। *नेक्ट्यूरस (Necturus)* जैसे उभयचरों में जिनमें फेफड़ों की अपेक्षा गिल अधिक प्रभावी श्वसन अंग होते हैं अंतराएट्रियल पट या तो ह्रासित होता है या छिद्रित। आधुनिक ऐन्यूरनों तथा सभी जीवित सरीसृपों, पक्षियों तथा स्तनियों में एट्रियम पूर्णत: विभाजित होता है। अधिसंख्य जीवित मछलियों का हृदय जिसमें फुफ्फुस शिरा अथवा उसकी कोई समजात संरचना नही होती, वास्तव में एक विकासीय पार्श्व रेखा है जो चतुष्पाद के विकास की रेखा में कतई निहित नहीं होती। चतुष्पाद विकास रेखा में सभी अवस्थाओं में एक फुफ्फुस शिरा होती थी।

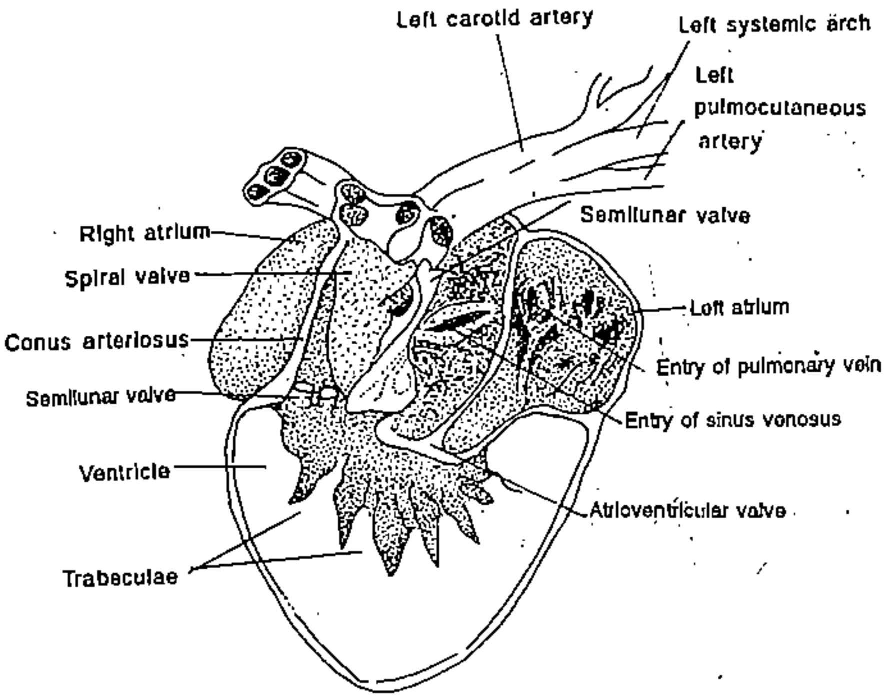

चित्र 8.5: बुल फ्रॉग के हृदय की संरचना

उभयचर हृदय में एक अन्य परिवर्तन है शिरा कोटर में ह्रास। यह ह्रास उसके आकार में भी है और रक्त संग्राहक कक्ष के रूप में उसकी महत्ता में भी है।

मछलियों में जरूरी था कि एक बड़ा पतली दीवारों वाला ऐसा हृदय कक्ष (शिरा कोटर) हो जिसके भीतर रक्त पूर्णत: न्यूनतम प्रतिरोध के प्रति प्रवाहित हो सके। थलवासी कशेरुकी अपेक्षाकृत कम वायुमण्डलीय दबाव में रहते हैं; इसलिए उनमें इस प्रकार की कोई विशद संग्राहक संरचना का होना अनिवार्य नहीं था, और बाद की अवस्थाओं में यह पूरी ही तरह समाप्त हो गयी। इस प्रकार आरम्भिक चतुष्पाद इस अवस्था तक उन्नत हो गए कि उसमें हृदय में छह पूर्णत: अथवा अपूर्णत: पृथक हो गए कक्ष बन गए और दो मुख्य प्रवेश एवं दो मुख्य निर्गम बन गए।

उभयचरों में दैहिक तथा फुप्फुसी परिपथों से लौटने वाली रक्तधाराएं जब हृदय के भीतर से बह रही होती हैं तब उन्हें हृदय में पूर्णत: पृथक रखा जाता है। विऑक्सीजनित रक्त को चयनात्मक रूप में फुप्फुस धमनी के माध्यम से फेफड़ों में पहुंचाया जाता है और ऑक्सीजनित रक्त को धमनी चापों के माध्यम से दैहिक ऊतकों में पहुंचाया जाता है। मेंढकों में वायु श्वसन के समय वेंट्रिकल के ट्रैबेकुला हृदय के भीतर रक्त की दो भिन्न धाराओं को पृथक किए रहते हैं। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि जब एक धारा वेंट्रिकल में प्रवेश करती है तब वह ट्रैबेकुला के बीच के कक्षों को भर देती है और उसके बाद दूसरी रक्त धारा वेंट्रिकल के मध्य को भर देती है। अपने अलग-अलग स्थान होने के कारण ऑक्सीजनित तथा विऑक्सीजनित रक्त धाराएं अलग-अलग निर्गमों से बाहर जाती हुई अपनी-अपनी सही धमनियों में पहुंच जाती हैं। जब भी मेंढक पानी में गोता लगाता है, तब देहभित्ति पर पड़ने वाली जल दाब के कारण उसके फेफड़े पिचक जाते हैं। फलत: फेफड़ों में रक्त प्रवाह कम हो जाता है और त्वचा में बढ़ जाता है। इस प्रकार जलमग्न मेंढकों में फुप्फुस श्वसन में आयी कमी कुछ हद तक त्वचिक श्वसन में बढ़ोतरी होने से पूरी हो जाती है। अब और आगे बढ़ने से पूर्व आइए, निम्नलिखित बोध प्रश्नों को हल करें।

ऐप्निया (apnea), अर्थात् अवातता सांस को रोकने की दशा है जो केवल गोता मारने की स्थिति में ही नहीं होती है। अधिसंख्य सरीसृप थल पर विश्राम करते समय भी बिना सांस लिए लम्बी अवधि निकाल देते हैं। ऐप्निया जारी रहती दशा में फेफड़ों के भीतर की ऑक्सीजन समाप्त हो जाती है और फुप्फुस परपूर्जन नीचे आ जाता है और यह दशा तब तक चलती जाती है जब तक कि अगली सांस न ले ली जाए।

बोध प्रश्न 1

उपयुक्त शब्दों से रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. प्रोटोकॉर्डेटों के नलिकाकार हृदय का स्पंदन .... के द्वारा होता है।
2. आरम्भिक चतुष्पाद हृदय में .... दो कक्षों में विभाजित हुआ होता है।
3. मेंढकों में वेंट्रिकल .... से युक्त होता है।

4 नेक्ट्यूरस में .... ह्रासित होता अथवा छिद्रयुक्त होता है।

5 उभयचरों में गोता लगाने के दौरान .... श्वसन बढ़ जाता है।

8.2.4 बाह्यतापी प्राणियों का हृदय

जीवित सरीसृपों में हृदय की संरचना में विविधता है हालांकि उन सबमें आरंभिक चतुष्पाद हृदय की तुलना में समान रूप से अनेक सुधार आ चुके हैं (चित्र 8.6)। चूंकि सरीसृप अधिक पूर्णतः थलीय पर्यावरण के लिए अनुकूलित हैं और उनकी जीवन शैली अधिक सक्रिय होती है। इसलिए उनका हृदय वाहिका तंत्र भी अधिक उच्चतरं उपापचय दर एवं ऑक्सीजन कार्बन डाइऑक्साइड परिवहन के बढ़ गए स्तरों को सहारा देता हैं। साथ ही यह अधिक मात्रा में हृद कार्य करा पाता है, रक्त दाब को बढ़ा देता है और उभयचरों की तुलना में ऑक्सीजनित तथा विऑक्सीजनित रक्त धाराओं को अधिक कारगर रूप में पृथक किए रहता है। मूलतः सरीसृपों में दो प्रकार के हृदय देखे जाते हैं (एक तो कीलोनियन यानि कछुओं के प्रकार के और दूसरे स्क्वैमेट यानि छिपकली के प्रकार के)।

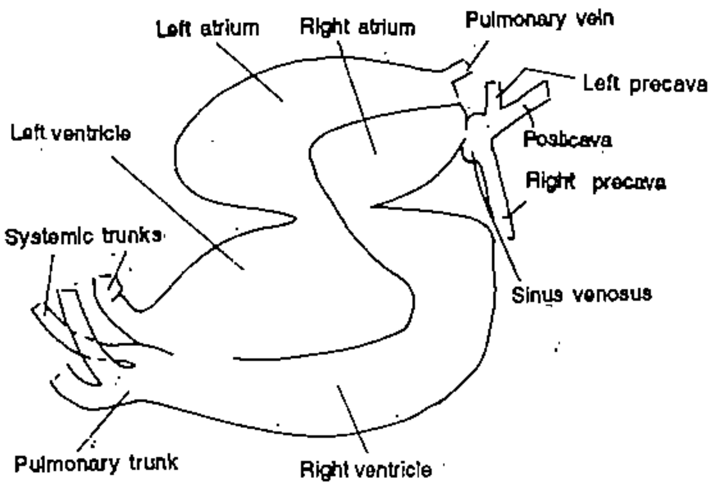

चित्र 8.6: बाद का बाह्यतापी हृदय (अधर दृश्य) जिसमें वास्तविक जीवन में ऊपर बने भागों को यथावत न दिखाकर पार्श्व में हटा कर दिखाया गया है।

कीलोनियन/स्क्वैमेट हृदय में शिरा कोटर उभयचरों की अपेक्षा आकार में घट गया है तथा उन्नत प्ररूपों में जो कि स्तनियों के पूर्वज थे, कक्ष के रूप में यह पूरी तरह गायब हो गया हालांकि सभी जीवित सरीसृपों में यह मौजूद है। मगर कशेरुकियों के एकदम आरंभ से ही शिरा कोटर न केवल एक संग्राहक कक्ष का ही कार्य करता है, हृदय स्पंदन के उद्‌भव के स्थान के रूप में भी कार्य करता है। हालांकि एक कक्ष के रूप में इसका अस्तित्व भले ही समाप्त हो गया है, और कम से कम कुछ सरीसृपों में और पक्षियों एवं स्तनियों में तो ऐसा निश्चय ही हुआ है, फिर भी हृदय स्पंदन के समारम्भ का जो कार्य यह शुरू में करता था वह खत्म नही हो सका। उत्तेजनकारी ऊतक दाहिने अलिन्द (एट्रियम) में उन शिराओं के प्रवेश बिंदु के निकट दबा गड़ा रहता है जो सीधे एट्रियम में खुलती है क्योंकि शिरा कोटर के एक कक्ष के रूप में समाप्त हो चुका है। यही पेशीजनी केंद्र साइनुएट्रियल नोड (SAN) होता है और उन सभी ऐम्नियोटों में जिनमें शिरा कोटर नहीं होता, प्रत्येक हृदय स्पंदन का आरम्भकारी होता है। धमनी शंकु भी विलीन हो गयी, लेकिन ऐसा मात्र आकार में घट जाने के कारण ही नही हुआ। यद्यपि आरंभिक भ्रूण परिवर्धन के दौरान यह प्रकट होती है वयस्कों में यह उपविभाजित होकर वेंट्रिकल (निलय) से निकलने वाली तीन बड़ी धमनियों के आधार काण्ड (trunks) बनाती है ये तीन धमनी काण्ड हैं फुफ्फुस काण्ड तथा दाहिना एवं बायां धमनी काण्ड (दैहिक काण्ड systemic trunks)। दैहिक काण्ड का यह जोड़ा बनना अनेक सरीसृपों में दिखायी पड़ता है, दाहिना धमनी काण्ड हृदय की बायीं ओर से जुड़ा होता है और बायां हृदय के दाहिनी ओर वायु श्वासी कशेरुकियों में शंकु अनिवार्य नहीं है और अंततः बाद की बाह्यतापी अवस्था में आते आते उपविभाजित होकर समाप्त हो गयी हैं। सरीसृपों में धमनी शंकु की भूमिका एक हृदय कक्ष के रूप में समाप्त हो गई पर इसमें जो अर्धचंद्र वाल्व थे वे अब भी समूचे अपरिवर्तित बने रहे हैं। सभी ऐम्नियोटों में ये वाल्व फुफ्फुस तथा दैहिक धमनी काण्डों के मूल स्थानों पर बने हुए हैं मगर ये घटकर

कोएनिक्थीइस अथवा सार्कोप्टेरिजियन प्राणी अस्थिल मछलियों का एक उपवर्ग होते हैं। मछलियों के इस समूह में बाह्य नासाछिद्र कोएने नामक छिद्रों द्वारा भीतर मुख में खुलते हैं, और इसी आधार पर इन प्राणियों का यह नाम कोएनिक्थीइस पड़ा।

तीन वाल्व प्रति वाहिका में रह गए हैं। एट्रियम का विभाजन होकर दाहिना और बांया एट्रियम बन गए हैं- वेंट्रिकल के प्रवेश मार्ग पर एट्रियोवेंट्रिकुलर वाल्व तैनात रहते हैं। वेंट्रिकल भीतर की ओर अंशत: विभाजित रहता है जिससे शिरा रक्त तथा धमनी रक्त में पृथक्करण लगभग प्रभावकारी बन जाता है। जैसा कि आप चित्र 8.7 में देख सकते हैं इसमें तीन परस्परसंयोजित कक्ष हो गए हैं: शिरा गुहिका (cavum venosum) फुफ्फुस गुहिका, (cavum pulmonale) और धमनी गुहिका (cavum arteriosum)।

जैसा कि आप चित्र 8.8 में देख सकते हैं कीलोनिया तथा स्क्वैमैटा के हृदयों में से होने वाले रक्त प्रवाह का पथ अलग-अलग प्रकार का होता है और यह इस बात पर निर्भर करता है कि वे वायु का श्वासन करते हैं या कि सांस रोके रखते हैं सांस रोकने की दशा को अवातती (apnea) कहते हैं। उदाहरण के लिए जब कछुए थल पर हवा में सांस ले रहे होते हैं, तब दैहिक ऊतकों से लौट रहे अधिकतर वेऑक्सीजनित रक्त को फेफड़ों को पहुंचाया जाता है और फेफड़ों के लौट रहे अधिकतर ऑक्सीजनित रक्त को महाधमनी काण्ड के माध्यम से दैहिक ऊतकों को पहुंचाया जाता है। जब कछुआ पानी में डुबकी

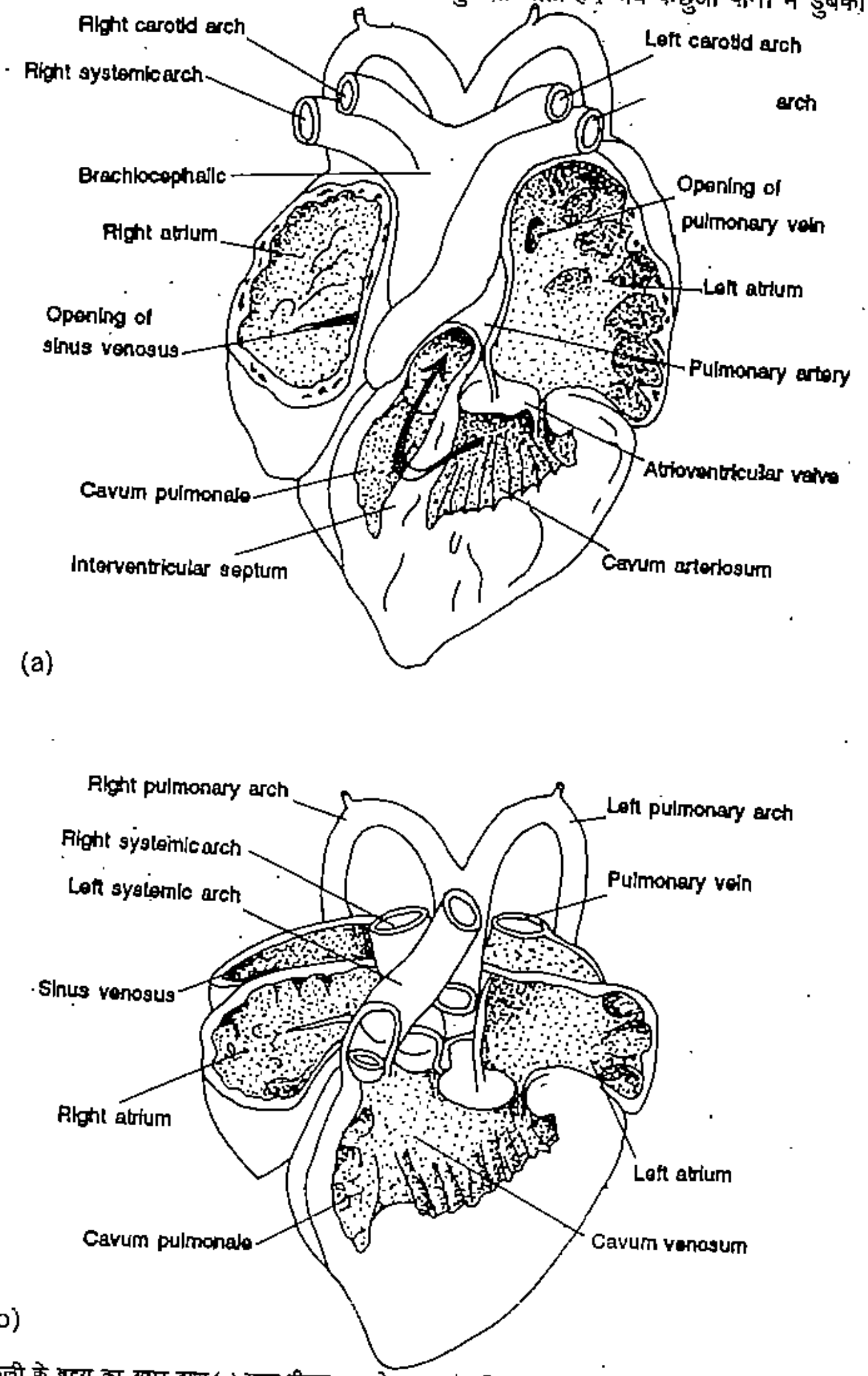

चित्र 8.7: छिपकली के हृदय का अधर दृश्य (a) अधर दीवार का छोटा सा अंश निकाल दिया गया है। तीर के निशान के द्वारा धमनी गुहिका से अंतरा वेंट्रिकल नाल के द्वारा शिरा गुहिका में रक्त प्रवाह की दिशा दर्शायी गयी है। शिरा गुहिका से रक्त दैहिक चापों में को जाता है। (b) और ज्यादा आधारीय दीवार निकाल देने के बाद हृदय की संरचना।

लगाता है तब उसके हृदय में एक अनुक्रिया होकर रक्त हृदय के भीतर ही दाहिनी ओर से बायीं ओर चला जाता है। इस प्रकार शिरा गुहिका में प्रवाहित रक्त को फुफ्फुस परिपथ में न जाने देकर सीधे महाधमनी को पहुंचा दिया जाता है। इस प्रकार रक्त की शंटिंग का नियंत्रण दैहिक तथा फुफ्फुस परिपथों के प्रतिरोधों में पैदा होने वाले अंतरों द्वारा होता है।

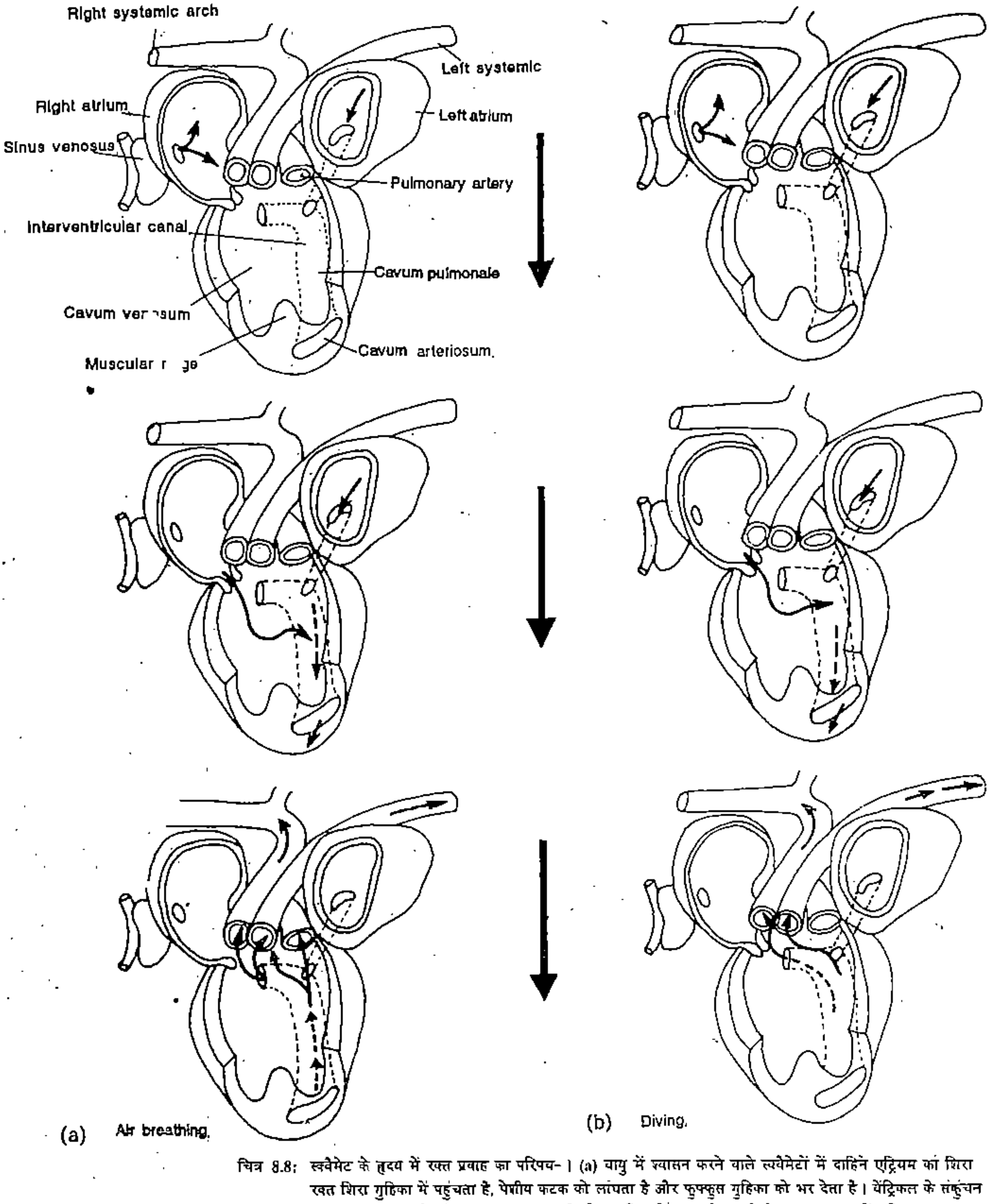

चित्र 8.8: स्क्वैमेट के हृदय में रक्त प्रवाह का परिपथ- । (a) वायु में श्वासन करने वाले स्क्वैमेटों में दाहिने एट्रियम का शिरा रक्त शिरा गुहिका में पहुंचता है, पेशीय कटक को लांघता है और फुफ्फुस गुहिका को भर देता है। वेंट्रिकल के संकुचन पर इस रक्त का अधिकांश भाग फुफ्फुस धमनी को प्रवाहित हो जाता है। उसी के साथ-साथ, बायें एट्रियम का रक्त गहरे केवम आर्टीरियोसम में पहुंच जाता है। वेंट्रिकल के संकुचन पर यह रक्त अंतरा वेंट्रिकल नाल में से होकर बायीं तथा दाहिनी महाधमनी चापों में चला जाता है। (b) गोता मारने के बाद, फुफ्फुस रक्त प्रवाह के प्रतिरोध के कारण रक्त पेशीय कटक के ऊपर से लांघ जाता है और मुख्यत: बायीं महाधमनी चाप में होता हुआ शरीर में चला जाता है।

मगरमच्छों का हृदय अनेक पहलुओं में अन्य सरीसृपों के ही जैसा होता है। फिर भी इसमें कुछ बातों में संरचानात्मक विभिन्नताएं पायी जाती हैं। एक सम्पूर्ण अंतरा वेंट्रिकल पट के द्वारा वेंट्रिकल पूरी तरह दाहिने और बायें कक्षों में विभाजित हो गया होता है। फुप्फुस काण्ड तथा बायीं महाधमनी चाप दाहिने वेंट्रिकल से निकलती है, और दाहिनी महाधमनी चाप बायें वेंट्रिकल से निकलती है। यह एक विचित्र बात है कि बायीं चाप रक्त को सीधे अपने (दाहिने) वेंट्रिकल से प्राप्त नहीं करती क्योंकि अर्धचंद्र वाल्व वास्तव में प्रवाह को वेंट्रिकल से महाधमनी में नहीं जाने दिया जाता है, मगर अपवाद के रूप में असाधारण तनाव-दबाब की स्थिति में ऐसा होता है। बायीं महाधमनी रक्त को पेनिजा रंध्र (Foramen of Panizza) में से प्राप्त करती है। यह रंध्र दाहिनी और बायीं चापों को हृदय से थोड़ी ही दूर उस स्थान पर जहां ये एक दूसरे के ऊपर से काटती जाती हैं परस्पर संयोजित करता है (चित्र 8.9)। चित्र 8.10 में कीलोनिया/स्क्वैमेटों तथा मगरमच्छों के हृदयों में रक्त प्रवाह के पथ की तुलना देखी जा सकती है।

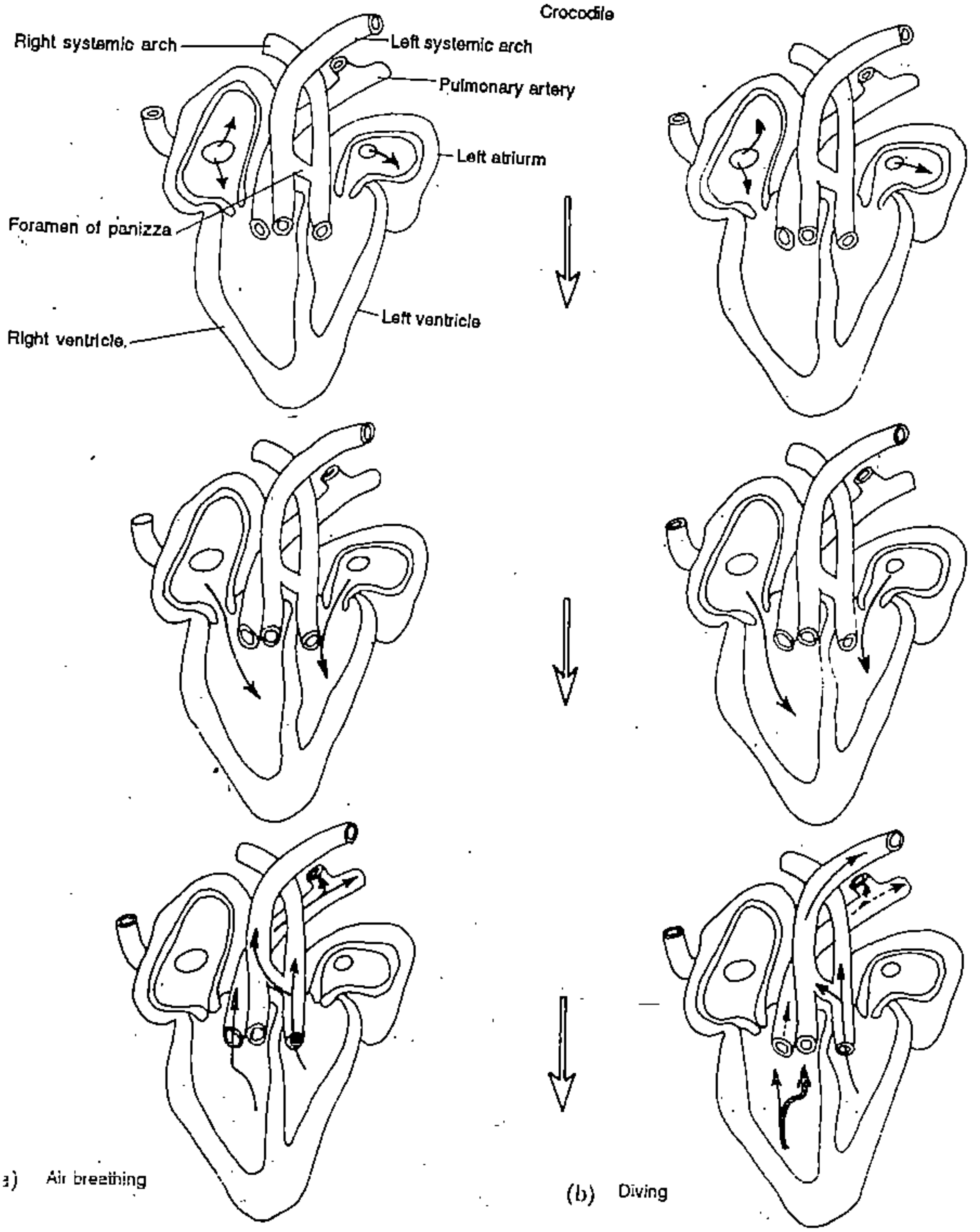

चित्र 8.9 : मगरमच्छ के हृदय में रक्त प्रवाह। (a) वायु श्वासन काल के दौरान दैहिक तथा फुप्फुस रक्त प्रवाह। (b) मगरमच्छ के गोता लगाने के दौरान होने वाले भीतरी परिवर्तन जिनके परिणामस्वरूप फुप्फुस प्रवाह घट जाता है।

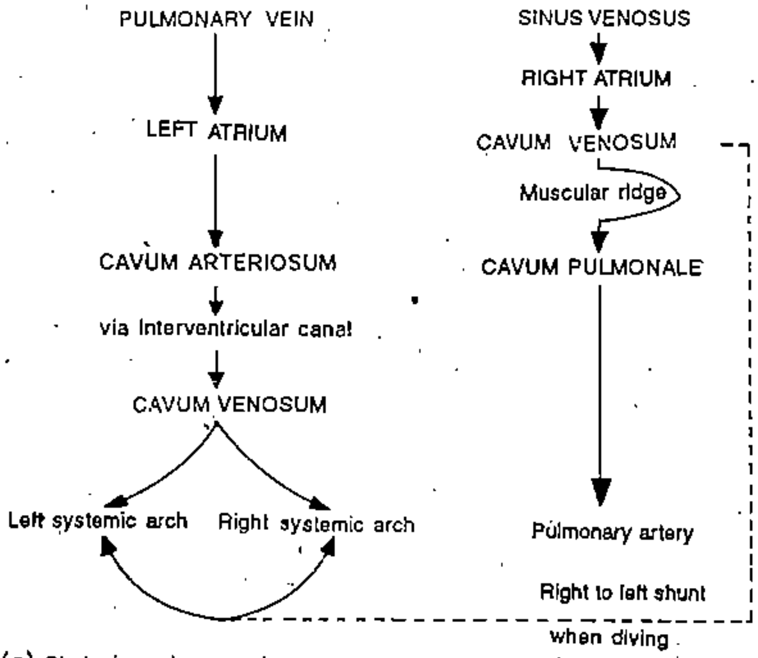

(a) Chelonia and squamates.

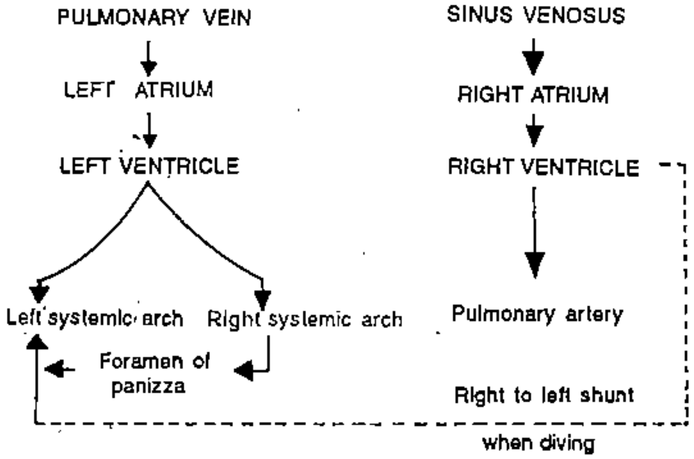

(b) Crocodilians

चित्र 8.10: इस प्रवाह चार्ट में दो प्रकार के हृदयों, एक तो (a) कीलोनिया एवं स्क्वैमेट प्रकार के और दूसरा (b) मगरमच्छों के प्रकार के हृदयों के भीतर रक्त के प्रवाह की तुलना की गयी है। डैश रेखाएं हृद शंट दर्शाती है जिसके द्वारा गोता लगाने के समय फुफ्फुस परिपथ से आने वाला रक्त प्रवाह दैहिक परिपथ की ओर को मोड़ दिया जाता है। इस हृद शंट के दौरान फुफ्फुस धमनी के मूल पर बनी संवरणी पेशी (sphincter) के संकुचन से फुफ्फुस प्रवाह के लिए प्रतिरोध बढ़ जाता है। मगरमच्छों में फेफड़ों की वाहिकीय आपूर्ति के वाहिकासंकीर्णन से भी प्रतिरोध में सहायता मिलती है

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि बाद की बाह्यतापी अवस्था में, पूर्ववर्ती अवस्था में पायी जाने वाले छह हृद कक्षों में से केवल तीन हृद कक्ष ही शेष बचे है। इन तीन में से एक वेंट्रिकल में और आगे विभाजन हो गया है जिसमें कि इस अवस्था में चार हृद कक्ष बन गए हैं जो एक दूसरे से कम से कम अंशत: पृथक तो हैं ही।

8.2.5 अंत:तापी प्राणियों का हृदय

अंत:तापी (endothermic) प्राणियों में कुछ थोड़े से ही अपेक्षाकृत मामूली परिवर्तन हुए हैं जिनसे हृदय में अधिकतम कार्यकुशलता आ गयी (चित्र 8.11)

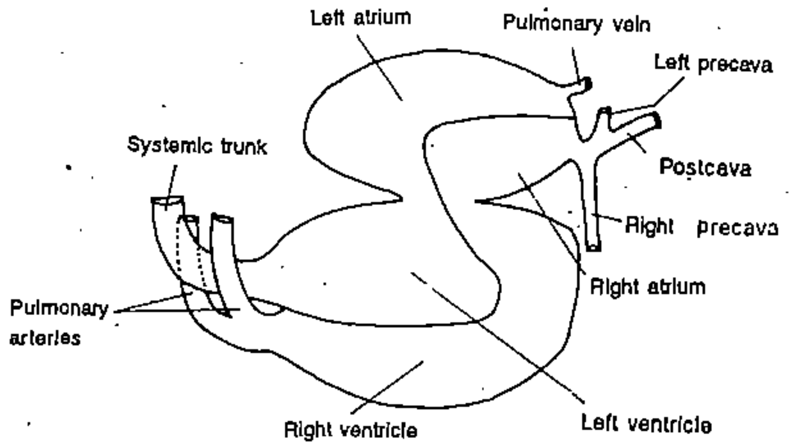

चित्र 8.11: अंत:तापीय हृदय (अधर दृश्य) जिसके कुछ भाग पार्श्व में दिखाए गए हैं।

इनमें सबसे महत्वपूर्ण बात है वेंट्रिकल की दीवार का पूरी तरह बंद हो जाना जिसके कारण वायवित तथा अवायवित रक्त का मिश्रण सर्वथा असंभव हो जाता है। हृदय के भीतर दोहरे परिसंचरण की प्रवृति निश्चय ही कोऐनिक्थीइस में आरम्भ हो गयी थी। इसका अंतिम परिपूर्ण रूप अंत:तापियों में विकसित हो गया। वेंट्रिकल का बंद होना और उसी के साथ-साथ दैहिक महाधमनी का सरल हो जाना वह अंतिम चरण था जिसके द्वारा पक्षियों तथा स्तनियों में पायी जाने वाली अद्वितीय किस्म की "बलपूर्वक वायु प्रवाह" श्वसन क्रियाविधि का हृदय के साथ सर्वाधिक परिपूर्ण परस्पर संबंध बन सका है और मुख्यत: यही परस्पर संबंध इन दो प्राणी वर्गों की अंत:तापी दशा के लिए उत्तरदायी है।

पक्षियों में हालांकि शिरा कोटर ह्रासित होता है मगर अब भी वह एक छोटा अलग क्षेत्र बना हुआ है। धमनी शंकु भ्रूण अवस्था में केवल अस्थायी रूप में मौजूद होता पाया जाता है जिससे वयस्क में फुफ्फुस काण्ड एवं एकल महाधमनी काण्ड बनता है (चित्र 8.12)।

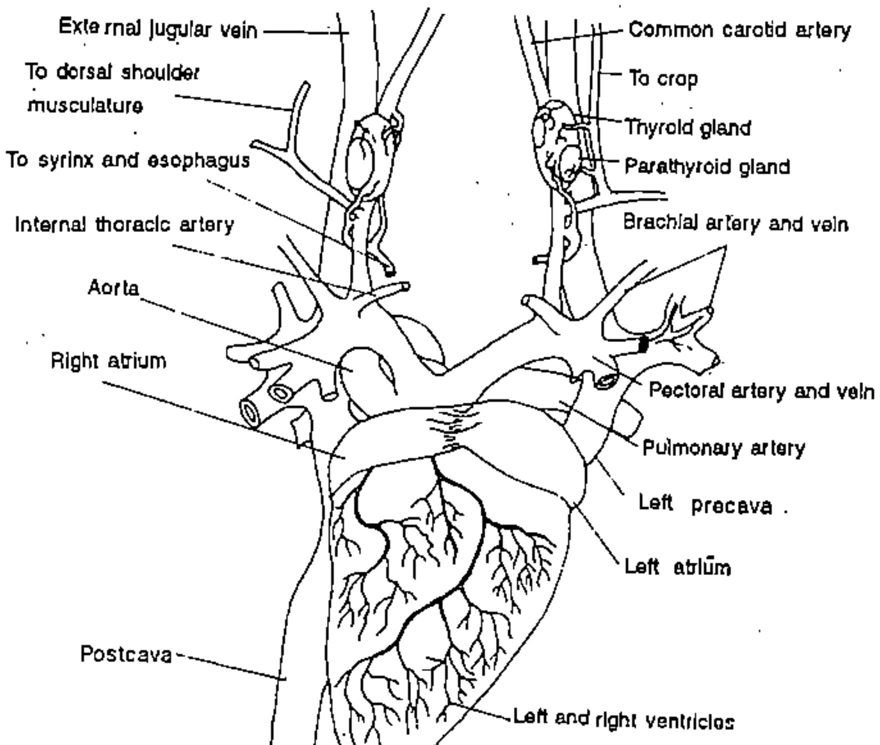

Avian heart (ventral view)

चित्र 8.12: पक्षी का हृदय (अधर दृश्य)

स्तनियों मे शिरा कोटर ह्रासित होकर दाहिने एट्रियम की दीवार में पुर्किंजे तंतुओं (Purkinje fibre)का एक क्षेत्रक बन गया है (जिसे साईनुएट्रियल नोड भी कहते हैं)। यह नोड पेसमेकर की तरह कार्य करती हैं जो संकुचन तरंग यानि तालबद्ध हृदय स्पंदन तरंग का समारम्भ करती है जो अन्य कशेरुकियों की ही तरह हृदय पर चलती जाती है। चार कक्षीय हृदय के दाहिने एट्रियम की दीवार में प्ररूपी पेशी तंतुओं की एक और संहति पायी जाती है जिसे एट्रियोवेंट्रिकुलर नोड कहते हैं। यह नोड भी उस स्थिति में पेसमेकर की ही तरह कार्य करती है जब प्रयोग के तौर पर साइनुएट्रियम नोड को नष्ट कर दिया जाए या उसे कार्य न करने दिया जाए। जैसा कि पक्षियों में था उसी तरह स्तनियों में भी शंकु धमनी भ्रूण परिवर्धन के दौरान दो भागों में विभाजित होकर वयस्क की फुफ्फुस काण्ड तथा एक महाधमनी काण्ड बना लेती है (चित्र 8.13)। स्तनीय हृदय में मत्स्य पूर्वजों के तीन वाल्व समुच्चयों में से केवल दो ही समुच्चय अर्धचंद्र वाल्व तथा एट्रियोवेंट्रिकुलर वाल्व पाए जाते हैं। एट्रियोवेंट्रिकुलर वाल्व अब दो में विभाजित हो गए हैं जिनमें से एक को ट्राइकस्पिड (त्रिवलनी) और दूसरे को बाइकस्पिड (द्विवलनी) अथवा मिट्रल वाल्व कहते हैं।

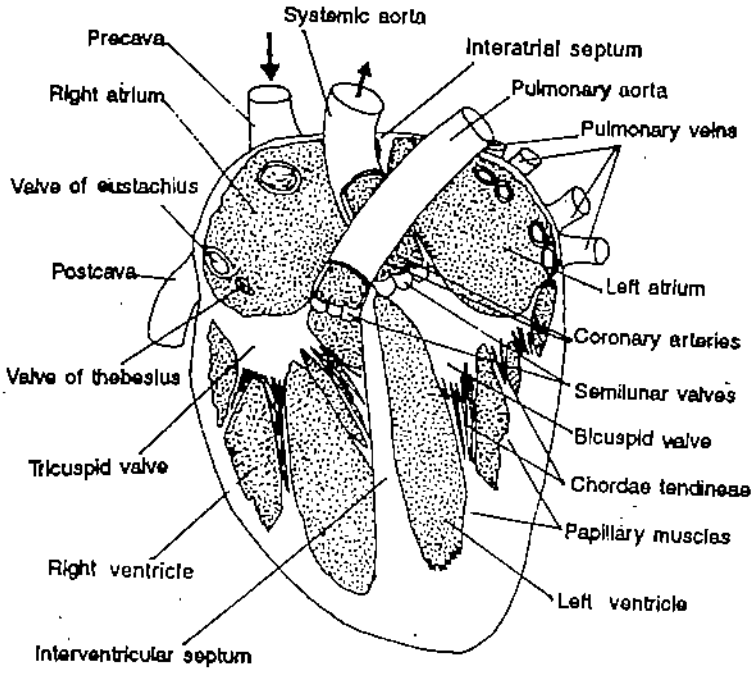

चित्र 8.13: स्तनीय हृदय का अधर दृश्य

पक्षियों और स्तनियों के हृदय की संरचना यद्यपि समान है मगर ये दोनों अलग-अलग सरीसृपीय मूल से विकसित हुए हैं। यह भिन्नता इनके भ्रूण परिवर्धन में ही झलकने लगती है। ये दोनों हृदय समान ही रूप में कार्य करते हैं क्योंकि दोनों ही में दोहरे परिसंचरण परिपथों के लिए समांतर पम्प होते हैं। हृदय की दाहिनी दिशा दैहिक ऊत्तकों से आने वाले विआक्सीजनित रक्त को एकत्रित करती है और उसे फुफ्फुस परिपथ को पम्प कर देती हैं। हृदय की बायीं दिशा फेफड़ों से आने वाले ऑक्सीजनित रक्त को दैहिक परिपथ को पम्प करती है। पक्षियों तथा स्तनियों के हृदय में कोई शंट-प्रवाह नहीं होता क्योंकि इनमें हृदय की पूरी तरह दाएं और बायें कक्षों में विभाजित हुआ होता है।

एकल परिसंचरण प्रतिरूप में एक समूचे चक्कर में रक्त हृदय में से केवल एक ही बार प्रवाहित होता है जैसा कि अधिकतर मछलियों में होता है (चित्र 8.14a) ऐम्नियोटों में दोहरा परिसंचरण प्रतिरूप होता है जिसमें हर परिपथ में रक्त हृदय के भीतर से दो बार गुजरता है (चित्र 8.14b) हृदय से रक्त फेफड़ों में जाता है, वहां से वापिस हृदय में आकर दैहिक ऊतकों में पहुंचता है और फिर वहां से लौटकर पुन: वापिस हृदय में आता है। विकास की दृष्टि से मुख्य घटना यह थी कि परिसंचरण प्रतिरूप में फुफ्फुस परिपथ जुड़ गया। इन दोनों के बीच की स्थिति दर्शाने वाले प्राणी हैं, फेफड़ा मछलियां, उभयचर तथा सरीसृप। इस प्रकार के परिसंचरण तंत्र के प्ररूप का विकास होना उन प्राणियों के लिए एक बड़ा अनुकूलनी लाभ था जो पानी से निकल कर थल पर आने लगे।

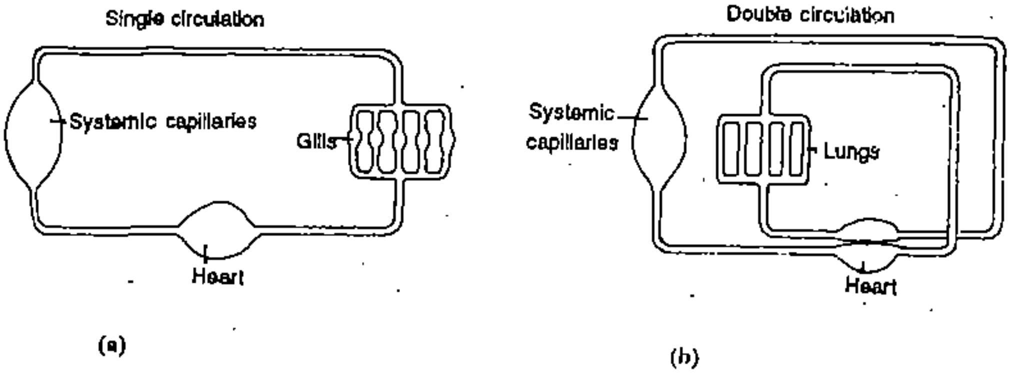

चित्र 8.14: एकल परिसंचरण (a) तथा दोहरे परिसंचरण (b) का आरेखीय निरूपण

आपने हृदय के विकास और उसकी संरचना के विषय में पढ़ लिया। तो यह जानने के लिए कि आपने कितनी प्रगति की, आइए नीचे दिए गए बोध प्रश्न हल कीजिए।

बोध प्रश्न 2

1 उपयुक्त शब्दों द्वारा रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:-

(i) कीलोनियन हृदय में शिरा कोटर आकार में .... हुआ होता है;

(ii) पेसमेकर अर्थात् साइनुएट्रियल नोड हृदय स्पंदन का .... करती है।

(iii) स्क्वैमेटों में वेंट्रिकल .... विभाजित तथा मगर-मच्छों में .... विभाजित होता है।

(iv) दैहिक काण्ड .... तथा ...... में युग्मित होती है।

(v) हृदय में दोहरे परिसंचरण का पहले पहल .... में आरम्भ हुआ था।

(vi) त्रिवलनी तथा द्विवलनी वाल्व .... हृदय में पाए जाते हैं।

2 स्तनियों में हृदय की तालबद्धता से आप क्या समझते हैं?

....

....

....

....

8.3 धमनी तंत्र

हालांकि ऊपरी तौर से देखने पर लगता है कि अलग-अलग कशेरुकियों का धमनी तंत्र अलग-अलग प्रकार का है, मगर परिवर्धन के अध्ययन से स्पष्ट दिखायी पड़ता है कि सभी में यह तंत्र एक ही मूलभूत योजना पर निर्मित है। निम्नतर उदाहरणों की सरल द्विकक्षीय हृदय-संरचना से मगर-मच्छों, पक्षियों तथा स्तनियों में पायी जाने वाली उत्तरोत्तर बढ़ती जाती जटिल संरचना का संबंध उन कुछ खास विभिन्नता से है जो रक्त वाहिका तंत्र में पायी जाती है। बाद के जाति वृत्त के दौरान भ्रूण प्रतिरूप में जो रूपांतरण होते पाए जाते है वे इस तरह के हैं कि वे महाधमनी चापों को या तो गिलों द्वारा या फेफड़ों द्वारा श्वसन प्रक्रिया के लिए अनुकूलित कर देते हैं।

8.3.1 महाधमनी चापें

भ्रूण परिवर्धन के दौरान अधर महाधमनी (ventral aorta) का अग्र सिरा दो चापों (arches) में विभाजित हो जाता है जिन्हें महाधमनी चाप (aortic arches) कहते हैं और जो पृष्ठ की ओर [illegible] क्षेत्र में

चली जाती हैं। ग्रसनी के पृष्ठ पर पहुंचकर ये पीछे की ओर को जारी रहती हैं जहां इन्हें युग्मित पृष्ठ महाधमनी (paired dorsal aorta) कहा जाता है। उसके बाद अग्र पश्च क्रम में अतिरिक्त महाधमनी चापें युग्मित रूप में बनती होती हैं जो प्रत्येक पार्श्व पर अधर तथा पृष्ठ महाधमनियों के बीच संयोजन स्थापित करती हैं और इन्हें महाधमनी चापें कहते हैं। ऐसी प्रत्येक महाधमनी चाप संलग्न कोष्ठ के भीतर के ऊतक में से होकर गुजरती है। कशेरुकियों में महाधमनी चापों की प्ररूपी ली जाने वाली संख्या जो आधारभूत भ्रूण प्रतिरूप के अनुसार होती है वह छह जोड़ी है हालांकि यह बात और है कि निम्नतर प्राणियों में कुछ विसंगतियां भी हैं जैसे कि लैम्प्रियों में आठ, हैगफिशों में पंद्रह तथा शार्कों की कुछ स्पीशीज में दस या बारह जोड़ी होती है। पहली महाधमनी चाप को मैंडिबुलर महाधमनी चाप (mandibular aortic arch) कहते हैं तथा दूसरी को हाइऑइड महाधमनी (hyoid aortic arch) चाप कहते हैं। शेष को क्रमश: तीसरी, चौथी, पांचवी तथा छठी महाधमनी चाप कहते है। सभी को रोमन अंकों में व्यक्त किया जाता है। (चित्र 8.15) प्रत्येक महाधमनी चाप अनुरूपी संख्या वाली ग्रसनी दरार की अग्र दिशा में पड़ी होती है। दो पृष्ठ महाधमनियां शीघ्र ही ग्रसनी क्षेत्र के पीछे समेकित हो जाती हैं जिससे कि अंतत: केवल एक ही पृष्ठ महाधमनी मौजूद होती पायी जाती है। यही पीछे पूंछ के क्षेत्र में पुच्छ धमनी के रूप में चलती जाती है। हृदय द्वारा आगे की ओर को पम्प किया जाने वाला रक्त अधर महाधमनी में से होता हुआ महाधमनी चापों में पहुंचता है। ये वाहिकाएं रक्त को युग्मित पृष्ठ महाधमनियों में ले जाती हैं। जहां से यह एक तो आगे की ओर शीर्ष में चला जाता है और दूसरे पीछे की ओर एकल पृष्ठ महाधमनी में चला जाता है जो इसे शेष शरीर में वितरित कर देती है। शिराएं रक्त को वापिस शिरा कोटर में ले आती हैं, और ऐसा कम से कम परिवर्धन की आरंभिक अवस्थाओं में तो होता ही है। प्राणियों के विभिन्न वर्गों में महाधमनी चापों में हुए परिवर्तनों का नीचे वर्णन किया जा रहा है।

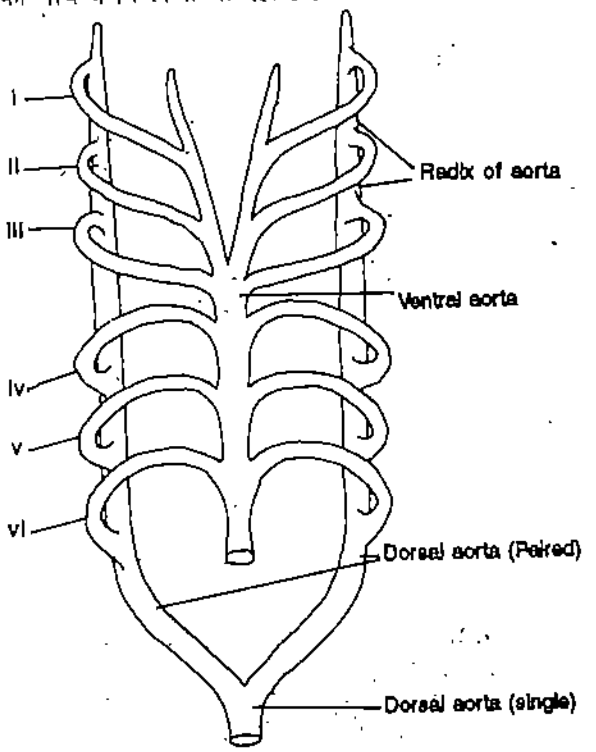

चित्र 8.15: कशेरुकी भ्रूणों में महाधमनी चापों के मूल प्रतिरूप को दर्शाता आरेख। अधर दृश्य। छह युग्मित चापें अधर और पृष्ठ महाधमनियों को संयोजित करती है।

8.3.2 ऐम्फिऑक्सस

युग्मित पृष्ठ महाधमनियां अधर महाधमनी (हृदय) के साथ अभिवाही (afferent) तथा अपवाही (efferent) गिल धमनियों (branchial arteries) के द्वारा संयोजन बनाती हैं, ये गिल धमनियां गिल शलाकाओं को घेरती हुई व्यवस्थित होती हैं। ऐम्फिऑक्सस में उच्चतर कशेरुकियों की अपेक्षा महाधमनी चापों की संख्या कहीं ज्यादा होती हैं (चित्र 8.16)। महाधमनी चाप का वह भाग जो गिलों में रक्त पहुंचाता है अभिवाही धमनी कहलाता है और महाधमनी चाप का वह पृष्ठ खण्ड जो रक्त को गिलों से दूर ले जाता है अपवाही धमनी कहलाता है।

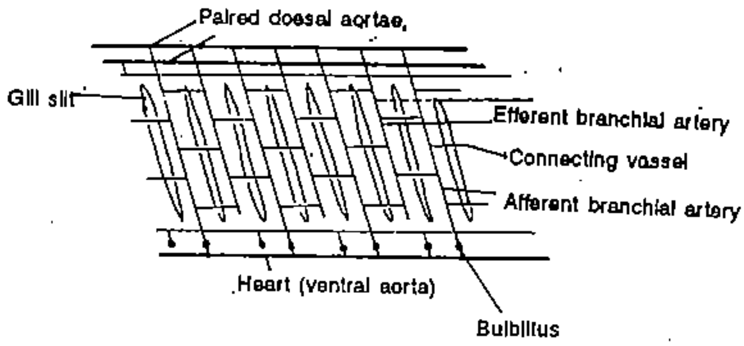

चित्र 8.16: ऐम्फ़िऑक्सस के ग्रसनी क्षेत्र के एक अंश का आरेख जिसमें महाधमनी चापों की व्यवस्था दिखायी गयी है

8.3.3 मछलियां

मछलियों के इस सुपरक्लास के भीतर महाधमनी चापों की संख्या में कमी आयी है। सर्वाधिक संख्या कुछ आदिम शार्कों में पायी जाती है जिनमें इनकी संख्या का सीधा संबंध गिल-कोष्ठों की संख्या से होता है। मगर सभी मछलियां एक ऐसी भ्रूण परिवर्धन अवस्था में से होकर गुजरती हैं जिनमें छह जोड़ी महाधमनी चापें पृष्ठ तथा अधर महाधमनियों को परस्पर जोड़ती है। युग्मित पृष्ठ महाधमनियों के आगे को जारी भाग भीतर कैरोटिड धमनियां बनाते हैं जो मस्तिष्क में रक्त की आपूर्ति करती हैं तथा वे भाग जो अधर महाधमनी के निकलते हैं बाह्य कैरोटिड धमनियां बनते हैं जो जबड़ों और चेहरे को रक्त की आपूर्ति करती है। अधिकतर मछलियों में पहली अर्थात् मैंडिबुलर महाधमनी को छोड़कर शेष प्रत्येक महाधमनी चाप दो अंशों यानि अभिवाही तथा अपवाही गिल अंशों, की बनी होती है तथा दोनों अंशों के बीच में एक अंतराधमनीय केशिका जाल बना होता है। यह केशिका जाल गिलों को अंशत: अथवा पूर्णत: घेरे रहता है तथा सर्वप्रथम संग्राहक लूप (collectine loop) में रक्त को पहुंचाता है जहां से रक्त आगे अपवाही धमनी में पहुंचाया जाता है। गिल पटलिकाओं में बने इसी केशिका जाल के भीतर रक्त का वायवीकरण होता है।

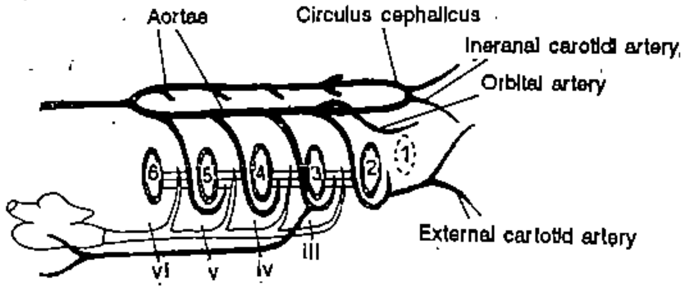

चित्र 8.17: इस आरेख में महाधमनी चापों का क्षेत्र दिखाया गया है जैसी कि वे अधिकतर टीलियोस्ट मछलियों में पायी जाती हैं, अधर दृश्य। चाप I तथा II अपह्रासित हो गयी हैं। शेष प्रत्येक चाप अभिवाही तथा अपवाही गिल धमनियों में विभाजित हो गयी होती है जो गिल केशिकाओं के द्वारा परस्पर संयोजित होती हैं।

टीलियोस्टों तथा अधिसंख्य अन्य मछलियों में अंतिम चार जोड़ी महाधमनी चापें शेष रह गयी हैं I तथा II चापें या तो रूपांतरित हो गयी या ह्रासित होकर तीसरी चाप की छोटी-छोटी शाखाएं जैसी रह गयी हैं (चित्र 8.17) प्रोटोप्टेरस में तीसरे और चौथे गिल पूर्णत: अनुपस्थित हैं लेकिन तीसरी और चौथी महाधमनी चापें कायम हैं और वे बिना किसी बीच की बाधा के सीधे पृष्ठ महाधमनी में खुल जाती हैं (चित्र 8.18)। अधिकतर शार्कों में केवल पांच जोड़ी महाधमनी चापें बनी हैं, पहली रूपांतरित हो गयी है। पांच अभिवाही और चार अपवाही गिल धमनियां मौजूद होती हैं। क्लैडिस्टिअनों, तथा डिप्नोएनों में एक फुफ्फुस धमनी होती है जो छठी चाप से (अथवा पृष्ठ महाधमनी से) निकलती है तथा रक्त को तरण आशय (swim bladder) को ले जाती है।

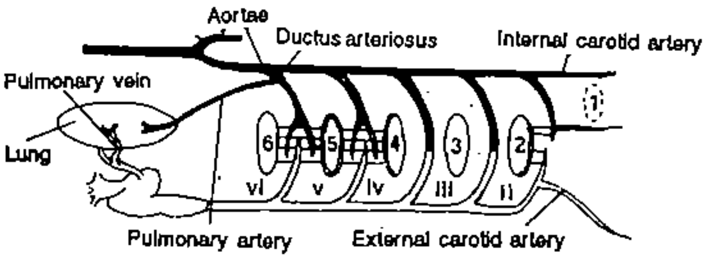

चित्र 8.18: प्रोटोप्टेरस (फेफड़ा मछली, lung fish) की महाधमनी चापें।

8.3.4 उभयचर

उभयचरों में चूंकि महाधमनी चापों की संख्या में कमी आ गयी है और गिल पटलिकाएं नही बनी होती इसलिए इनका और आगे अभिवाही एवं अपवाही अंशों में विभाजन नही हुआ होता। उभयचरों में कम से कम उनकी आरंभिक परिवर्धन अवस्थाओं में तो गिल सूत्र होते ही हैं लेकिन ये संरचनाएं न तो मछलियों की भीतरी गिल पटलिकाओं के समजात ही होती हैं और न ही उनमें उसी प्रकार से रक्त की आपूर्ति होती है। उभयचरों में सामान्यत: पहली दो महाधमनी चापें (I. II) आरम्भिक परिवर्धन अवस्था में समाप्त हो जाती हैं शेष चापों का प्रतिरूप लार्वों तथा कायांतरित वयस्कों में अलग-अलग होता है। मेंढक के लार्वा में अंतिम चार चापें (III-VI) होती हैं जो भीतरी गिलों में रक्त पहुंचाती हैं। भ्रूण में फुफ्फुस धमनी चाप VI से निकलती है। कायांतरण के दौरान गिल तथा चाप V समाप्त हो जाते हैं।

तो इस प्रकार वयस्क मेंढक में महाधमनी चाप (I.II) तथा V विलीन हो गयी हैं (चित्र 8.19)। अधर महाधमनी के आगे की ओर के भागों से बाहरी कैरोटिड धमनियां बन जाती हैं। तीसरी चाप भीतरी कैरोटिड धमनी बन जाती हैं और ये दोनों ही कैरोटिड धमनियां उस मूल ग्रीवा धमनी यानि कैरोटिड (common carotid) से निकलती है जो III और IV की चापों के बीच स्थित अधर महाधमनी का ही भाग हैं। भीतरी कैरोटिड के मूल पर कैरोटिड बॉडी (carotid body) होती है जो कैरोटिड धमनियों का ही फूला हुआ भाग है और कैरोटिड-धमनियों के विशाखन बिंदु पर ही बना होता है।

चौथी महाधमनी चाप कायम बनी रहती है और यही दैहिक चापों का रूप ले लेती है जो पश्चत: समेकित होकर पृष्ठ महाधमनी बनाती है। चाप VI से प्रत्येक पार्श्व से निकलने वाली एक शाखा तो परिवर्धनशील फेफड़े में पहुँचती है और दूसरी शाखा त्वचा में जाती है और इस तरह यह चाप फुफ्फुस त्वचीय धमनी बन जाती है। चाप VI में फुफ्फुस धमनी तथा महाधमनी के मूलांक (radix) के बीच का भाग (चित्र 8 15) धमनीवाहिनी (ductus arteriosus, डक्टस आर्टीरिओसस) अथवा बोटैलस वाहिनी (Duct of Botallus) कहलाता है। कायांतरण के समय यह भाग गायब हो जाता है। चित्र 8.20 में वयस्क मेंढक का धमनी तंत्र दिखाया गया है।

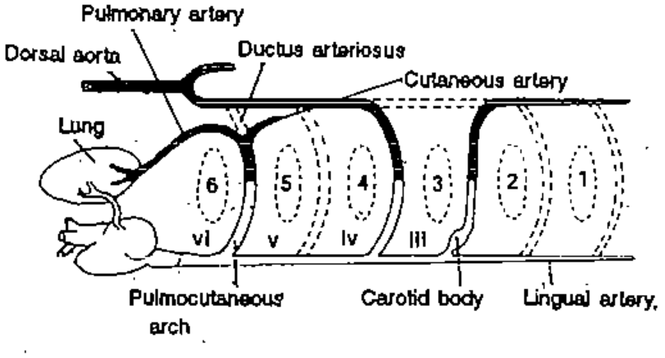

चित्र 8.19: वयस्क मेंढक में पाये जाने वाले महाधमनी चापों के रूपांतरण का आरेखित चित्र।

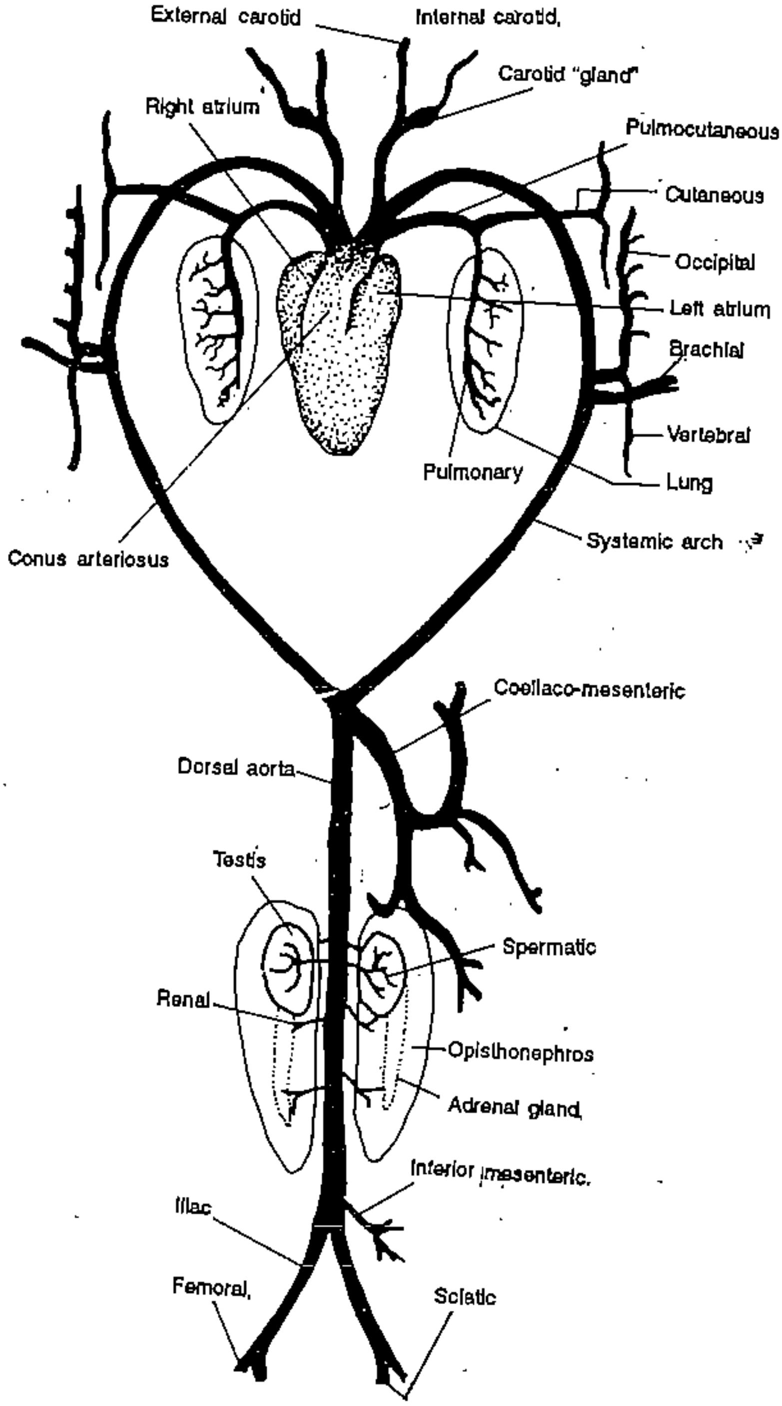

चित्र 8.20: वयस्क मेंढक का धमनी तंत्र अधर दृश्य

सालामैण्डरों (कॉडेटों, caudates) में पांचवी चाप एक अत्यंत ह्रासित रूप में कायम रहती हो सकती है। कभी कभी चाप III और IV के बीच का मूलांक पूरी तरह अपकर्षित नही हो पाता। डक्टस आर्टीरिओसस (धमनी वाहिनी) भी कॉडेटों में मौजूद बनी हुई है। लार्वा कॉडेटों के बाह्य गिलों में वाहिकीय लूप होते हैं जो महाधमनी चापों से जुड़े होते हैं। कॉडेटों में कायांतरण के अंत में गिलों का अपकर्ष हो जाता है तथा वाहिकीय लूपों अर्थात गिल पटलिकाओं तथा संग्राहक लूप को घेरे हुए केशिका जाल में भी क्षीणता आ जाती है (चित्र 8.21)

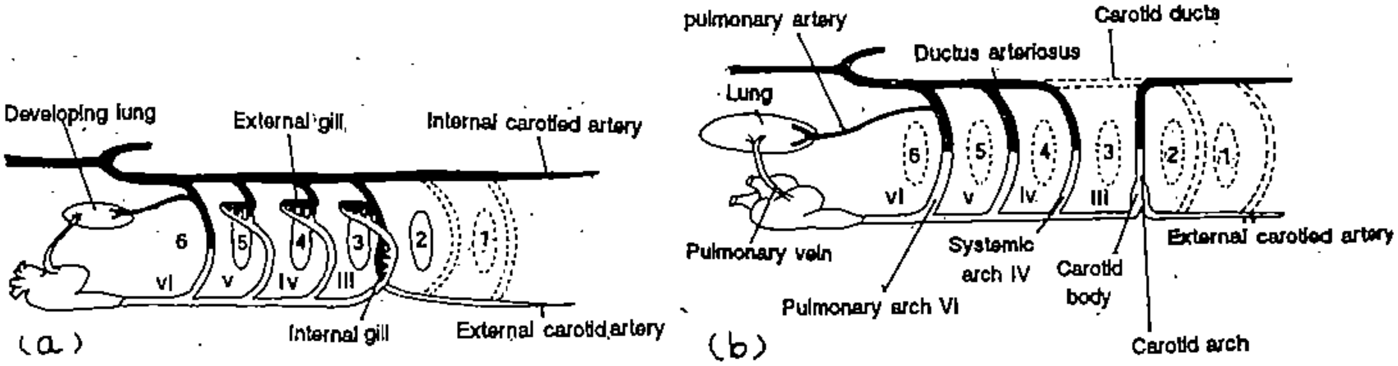

(a) (b)

चित्र 8.21: धमनी चापों का रूपांतरण जैसा कि वह अधिकतर कॉर्डेट उभयचरों में पाया जाता है, a) सालामैण्डर (लार्वा रूप), b) सालामैण्डर (वयस्क)।

कुछ कॉडेट प्राणियों जैसे कि नीओटेनिक सालामैण्डर *नेक्ट्यूरस (Necturus)* को "पेरेनीब्रैंकिएटीज, (perennibranchiates)" अर्थात् "चिर गिलधारी" कहते हैं क्योंकि इनमें गिल आजीवन बने रहते हैं एवं इन प्राणियों में कायांतरण नही होता। इन उभयचरों में पांचवी महाधमनी चाप कायम बनी रहती है और फुफ्फुस धमनी छठी चाप से न निकलकर पांचवी चाप से निकलती है और जिसका अधर अंश नहीं होता है। *नेक्ट्यूरस* में फेफड़ों में पहुंचने वाला रक्त पहले से ही ऑक्सीजनित होता है। अत: सामान्य परिस्थितियों में फेफड़े श्वसन-अंगों की तरह काम नहीं कर पाते और गिल कायम बने रहते हैं। आपने क्या कुछ जाना और सीखा इसका पता लगाने के लिए नीचे दिए जा रहे बोध प्रश्नों को हल कीजिए।

बोध प्रश्न 3

कॉलम I में दिए गए मदों का कॉलम II में दिए गए मदों से मिलाइए

	कॉलम I		**कॉलम II**
1	कशेरुकियों में मूलभूत भ्रूण प्रतिरूप	क)	जबड़ों और चेहरे में रक्त आपूर्ति करते है।
2	बाह्य कैरोटिड धमनी	ख)	सामान्यत: उभयचरों में
3	I तथा II महाधमनी चापों का ह्रास/रूपांतरण	ग)	कॉडेटों में होती है
4	आरंभिक परिवर्धन के दौरान I और II महाधमनी चापों का विलीन हो जाना	घ)	टीलियोस्टों की विशिष्टता
5	कायांतरण के अंत में वाहिकीय लूपों का ह्रास	च)	छह जोड़ी महाधमनी चापें

8.3.5 सरीसृप

ठीक उभयचरों ही की तरह सरीसृपों में भी III, IV और VI महाधमनी चापें बदस्तूर बनी हुई है। कुछ छिपकलियों में पांचवी चाप भी ह्रासित रूप में बनी हो सकती है, तथा महाधमनी III और IV के बीच का मूलांक कुछ सांपों में कायम बना हो सकता है।

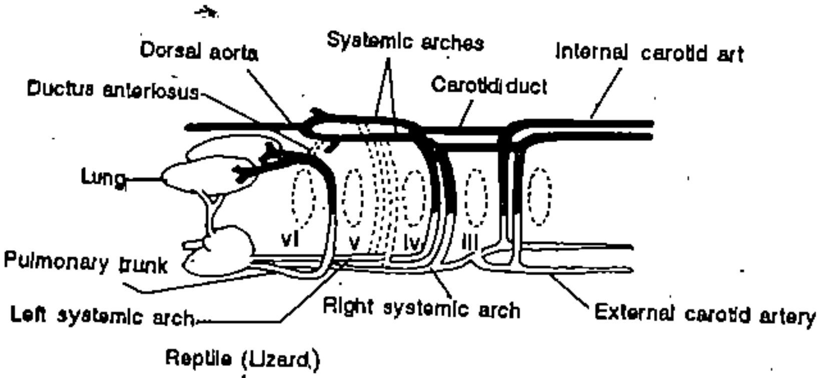

चित्र 8.22: महाधमनी चापों का सरीसृपों में पाया जाने वाला रूपांतरण। अधर महाधमनी तीन वाहिकाओं में विभाजित हो गयी है।

अधिकतर सरीसृपों में, महाधमनी चापों में और आगे रूपांतरण होते हैं (चित्र 8.22)। इन रूपांतरणों में मुख्यतः धमनी शंकु के दूरस्थ भागों का और अधर महाधमनी के एक अंश का तीन वाहिकाओं में विभाजन होता है- ये वाहिकाएं है बायीं महाधमनी चाप, दाहिनी महाधमनी चाप और फुप्फुस काण्ड। इस प्रकार महाधमनी चापों के रूपांतरण से एक फुप्फुस परिपथ और दो दैहिक परिपथ बन गए तथा हर परिपथ हृदय से स्वंतत्र रूप में निकलता है। छठी चाप में से प्रत्येक पार्श्व पर फेफड़ों में जाने वाली एक फुप्फुस धमनी निकलती है और अधिकतर मामलों में मूलांक से इसका संयोजन समाप्त हो जाता है। अतः दो फुप्फुस धमनियां फुप्फुस महाधमनी नामक एक मूल महावाहिनी अर्थात् काण्ड से निकलती हैं जो वेंट्रिकल की दाहिनी ओर से आती है और छठी चाप के रूप मे आगे चलती जाती है। बायीं ओर की चौथी महाध मनी चाप अंशतः विभाजित वेंट्रिकल की दाहिनी ओर के साथ एक पृथक संयोजन स्थापित कर लेती हैं। यह अपने साथ बायीं ओर के मूलांक के एक अंश समेत महाधमनी की बायीं चाप बन जाती है। धमनी काण्ड से व्युत्पन्न शेष वाहिका वेंट्रिकल के बायें पार्श्व से संयोजन बना लेती है, आगे को चलती जाती है और दाहिनी ओर पर चौथी महाधमनी चाप को पार करते हुए अंततः दो मूल कैरोटिड धमनियों में विभाजित हो जाती हैं जिसमें से बाह्य और भीतरी शाखाएं निकलती हैं। दाहिनी चौथी महाधमनी चाप उसी ओर के मूलांक के एक अंश के साथ मिलकर महाधमनी की दाहिनी चाप बन जाती है। यह दाहिनी चाप हृदय के पीछे बायीं महाधमनी के पश्च भाग के साथ जुड़कर पृष्ठमहाधमनी अर्थात् मूल पृष्ठ महाधमनी बनाती है। चूंकि दाहिनी महाधमनी में अधिकत्तर ऑक्सीजनित रक्त होता है और बायीं महाधमनी में मुख्यतः विऑक्सीजनित रक्त होता है इसलिए दोनों रक्त का मिश्रित होना पृष्ठ महाधमनी विशेष में होता है। कुछ मात्रा में मिश्रण पैनिजा-रंध्र के द्वारा भी होता है। ऑक्सीजनित तथा विऑक्सीजनित रक्त के मिश्रण का संबंध असमतापी जीवन विधि से है (असमतापी प्राणी वे होते हैं जो बदलते तापमान के प्रति अपने आप को ढाल नहीं सकते, जैसे मछलियां तथा उभयचर)।

8.3.6 पक्षी

अधर महाधमनी दो भागों में विभाजित हो जाती है — एक दैहिक महाधमनी तथा एक फुप्फुस महावाहिनी अथवा महाधमनी। दैहिक महाधमनी बाएं वेंट्रिकल से संयोजित रहती है तथा फुप्फुस महाधमनी दाहिने वेंट्रिकल से। दाहिनी ओर की चौथी महाधमनी चाप दाहिनी महाधमनी से बाहर आती है और मूलांक के साथ मिलकर पृष्ठ महाधमनी बन जाती है जिसके द्वारा सारे शरीर में ऑक्सीजनित रक्त की आपूर्ति होती है। बायीं दैहिक महाधमनी पूरी तरह विकसित नहीं होती। दाहिने वेंट्रिकल से निकलने वाली फुप्फुस महाधमनी अर्थात् काण्ड से फुप्फुस धमनियां निकलती हैं जो वास्तव में छठी महाधमनी चाप की बहिर्वृद्धि होती हैं। अंडे में से स्फुटन के समय तक प्रत्येक पार्श्व पर धमनी वाहिका होती है जो फुप्फस धमनी तथा मूलांक के बीच छठी महाधमनी चाप का निरूपण करती है (चित्र 8.23)। ये दाहिने वेंट्रिकल से पृष्ठ महाधमनी में तब तक शण्ट का कार्य करती है जब तक कि फेफड़ें कार्यशील नहीं हो जाते। ये स्फुटन के समय पर बंद हो जाती हैं और तब दाहिने वेंट्रिकल का तमाम रक्त वायवन के लिए फेफड़ों में पहुंचाया जाने लगता है।

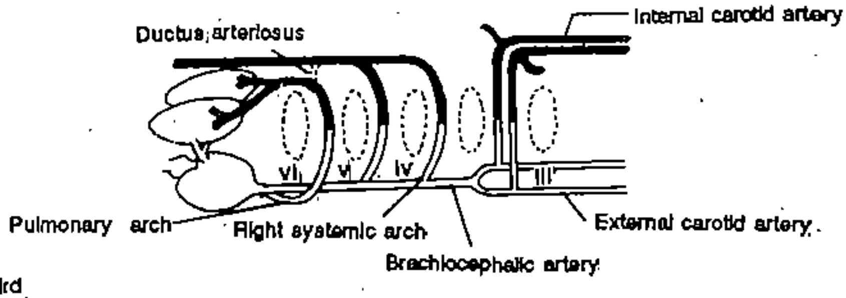

चित्र 8.23: पक्षियों में पाया जाने वाला महाधमनी चापों का रूपांतरण

8.3.7 स्तनी

स्तनियों में महाधमनी चापों में होने वाले परिवर्तन लगभग पक्षियों के ही समान होते है, बस अंतर इतना है कि दाहिनी ओर के मूलांक का महाधमनी के साथ का संयोजन समाप्त हो गया होता है। बायीं ओर की चौथी महाधमनी चाप और उसके साथ उसका मूलांक महाधमनी की चाप बन जाता है और यही स्तनियों की बायीं दैहिक चाप होती है। दाहिनी ओर की चौथी चाप और उसके साथ-साथ दाहिने मूलांक का अंश दोनों मिलकर दाहिनी अधोजत्रुक (सबक्लेवियन, subclavian) धमनी बन जाती है। बायीं अधोजत्रुक इसी क्षेत्र की महाधमनी (बायीं दैहिक चाप) से निकलने वाली अंतराखंडीय धमनियों में से एक के उत्फूलन के रूप में बनती है (चित्र 8.24) फुफ्फुस चाप युग्मित छठी चाप और उसकी शाखाओं से बनती है। स्तनीय भ्रूणों में पहले तो प्रत्येक पार्श्व पर एक-एक धमनी वाहिका (ductus arteriorus) होती है मगर इनमें से दाहिनी धमनी वाहिका केवल थोड़े से ही समय तक बनी रहती है। बायीं धमनी वाहिका जो फुफ्फुस एवं दैहिक महाधमनियों के बीच शण्ट का कार्य करती है जन्म के समय तक बनी रहती है और फिर अंततः भीतर से बंद हो जाती है। कैरोटिड धमनियां युग्मित तीसरी चाप से बनती है।

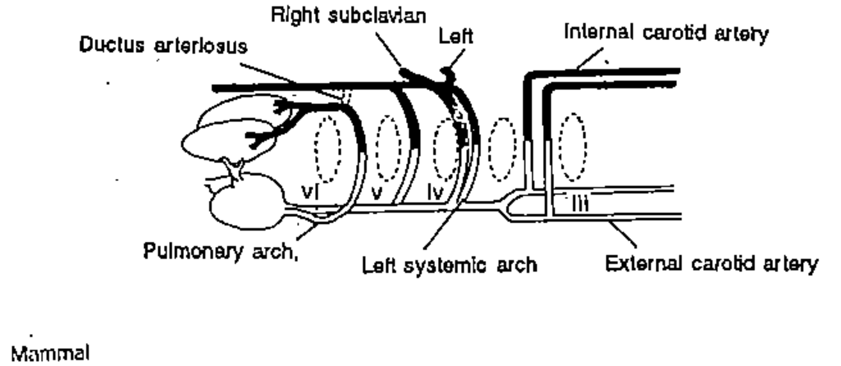

चित्र 8.24: स्तनियों में पाया जाने वाला महाधमनी चापों का रूपांतरण

8.3.8 महाधमनी चापों के विकास का उपरिदृश्य

अधिकतर मछलियों में महाधमनी चापों का काम विऑक्सीजनित रक्त को गिलों की श्वसन सतहों तक पहुंचाना और फिर वहां से ऑक्सीजनित रक्त को कैरोटिड धमनियों से में तथा पृष्ठ महाधमनी द्वारा शेष शरीर में पहुंचाना होता है। फेफड़ा मछलियों तथा चतुष्पादों में महाधमनी चापें दो परिपथ बनाती हैं एक तो फुफ्फुस चाप के माध्यम से फेफड़ों की ओर जाने वाला धमनी परिपथ और दूसरा दैहिक चापों के माध्यम से शेष शरीर में जाने वाला धमनी परिपथ। चतुष्पादों में शीर्ष को रक्त की आपूर्ति दैहिक चाप से निकलने वाली कैरोटिड धमनियों से होती है। बायीं और दाहिनी चापें सरीसृपों में भी होती हैं। मगर आगे चलकर इनमें ह्रास होकर एकल दैहिक चाप रह जाती है- पक्षियों में दाहिनी चाप तथा स्तनियों में बायीं चाप। महाधमनी चापों के विकास को आप चित्र 8.25 में देख सकते है।

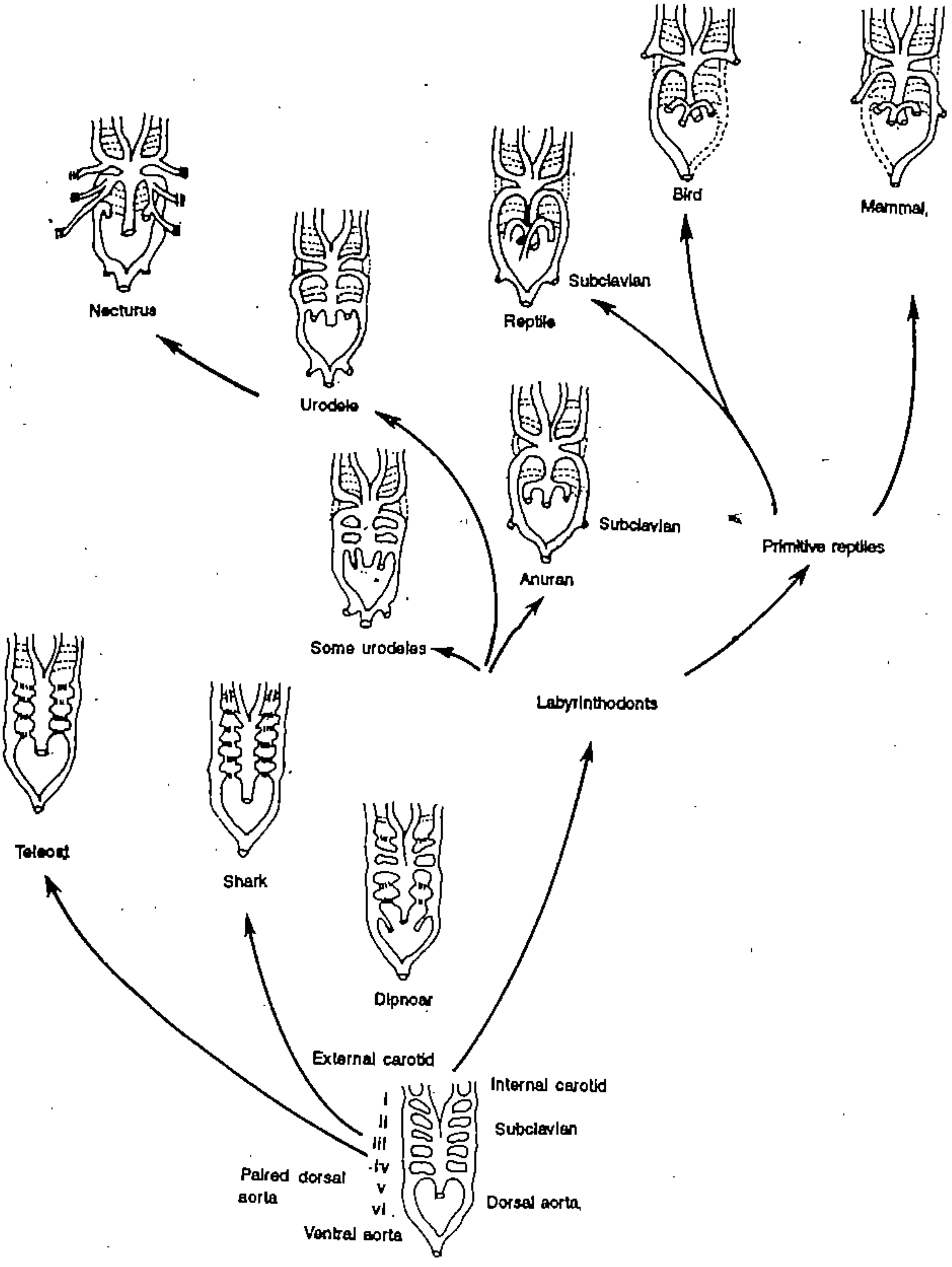

चित्र 8.25: महाधमनी चापों का विकास। मूलभूत छह चाप वाले प्रतिरूप का आधार दृश्य जिसमें एक आधार महाधमनी, युग्मित महाधमनी चापें तथा युग्मित पृष्ठ महाधमनियां शामिल हैं। इस मूलभूत प्रतिरूप में होने वाले रूपांतरण से ही वयस्क कशेरुकियों का व्युत्पन्न महाधमनी प्रतिरूप बना है। महाधमनी चापों पर बनी खड़ी रेखाएं गिलों को दर्शा रही हैं। डैश वाली रेखाएं वे चापें हैं जो वयस्क में मूलभूत प्रतिरूप से समाप्त हो गयीं। नामों की संक्षिप्तियां इस प्रकार है- पृष्ठ महाधमनी (Da), वाह्य कैरोटिड (Ec), भीतरी कैरोटिड (Ic), युग्मित पृष्ठ महाधमनी (Pa), सब्क्लेवियन (Sc), अधर महाधमनी (Va)।

8.3.9 धमनियों के प्रकार

कशेरुकी शरीर के अधिकतर भाग को रक्त की आपूर्ति महाधमनी की शाखाओं द्वारा होती है। सुविधा की दृष्टि से इन शाखाओं को दो वर्गों में बांट सकते हैं- एक तो दैहिक धमनियां (somatic arteries) जो शरीर विशेष को आपूर्ति पहुंचाती है और दूसरी आंतरांगी धमनियां (visceral arteries) जो रक्त को पाचन-पथ एवं उससे संबद्ध संरचनाओं में रक्त पहुंचाते हैं।

I. दैहिक धमनियां - ये धमनियां शरीर के उन भागों में आपूर्ति करती है जो भ्रूण के एपिमीयर (epimere) से व्युत्पन्न होते हैं, इनका वितरण पृष्ठ पेशियों तथा कशेरुक दण्ड में होता है जहां इन्हें पेराइटल(parietal) अथवा खण्डीय (segmental) धमनियां कहते हैं। उच्चतर प्रणियों में जिनमें शरीर न्यूनाधिक रूप मे निश्चित भागों मे विभाजित हुआ होता है उनमें इन्हें अंतरापर्शुकी (intercostal) पृष्ठकटि (dorsolumbar)तथा सैक्रल (sacral) नाम दिए जाते हैं। अंस पादों(apectoral appandages) में जाने वाली वाहिकाओं को सबक्लेबियन कहते है तथा श्रोणि (pelvic) में जाने वाली वाहिकाओं को इलियक(iliac) कहते है। ये इलियक कई खण्डीय धमनियों के परस्पर जुड़ने से बनी हो सकती हैं।

II. आंतरांग धमनियां - अंतरांगों में आपूर्ति करने वाली धमनियां दो प्रकार की होती हैं- युग्मित तथा अयुग्मित। युग्मित धमनियां खण्डशः व्यवस्थित होती हैं और वे शरीर के उन भागों में आपूर्ति करती है जो भ्रूणीय मीजोडर्म से व्युत्पन्न होते हैं और जिनसे मूत्रजनन अंग एवं उनकी वाहिनियां बनती हैं। इनको ये नाम दिए गए हैं- वृक्कीय, जननांगी, अण्डाशयी, वृषणी तथा मूत्रजननांगी धमनियां। वृक्कीय तथा जननांगी धमनियां निम्नतर कशेरुकियों में बहुसंख्यक होती हैं परंतु उच्चतर उदाहरणों में यह संख्या बहुत कम हो गयी होती है।

अयुग्मित आंतरांगी धमनियां तिल्ली और पाचन मार्ग एवं उसके अन्य भागों में आपूर्ति करती हैं, ये वाहिकाएं आहार नाल की, पृष्ठ आंत्रयोजनी में से होकर गुजरती हैं। कशेरुकियों में प्रायःतीन अयुग्मित आंतरांगी धमनियां होती हैं। इनमें से सबसे आगे की धमनी उदरगुहीय (coeliac) धमनी होती है जो अग्र आंतरांगों को आपूर्ति करती है, इनमें शामिल हैं जठर (जठर धमनी), तिल्ली (प्लीहा धमनी), अग्न्याशय (अग्न्याशय धमनी), जिगर(यकृत, धमनी) तथा डुओडिनम (डुओडिनम धमनी)। दूसरी अयुग्मित आंतरांग धमनी ऊर्ध्व आंत्रयोजनी (superior, mesenteric) होती है जो केवल डुओडिनम के पाइलोरिक सिरे को छोड़ कर जिसकी आपूर्त्ति उदरगुहीय धमनी द्वारा होती है, शेष छोटी आंत में आपूर्ति करती है। तीसरी अयुग्मित धमनी अधर आंत्रयोजनी धमनी होती है जो बड़ी आंत्र तथा मलाशय (रेक्टम) के पश्च भाग में आपूर्ति करती है।

बोध प्रश्न 4

निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षेप में उत्तर दीजिए-

i. सरीसृप के महाधमनी चापों में होने वाले मुख्य रूपातंरण क्या हैं?

....

....

....

....

....

ii. पक्षियों के परिसंचरण तंत्र में धमनी वाहिका (डक्टस आर्टीरिओसस) की क्या भूमिका है?

....

....

....

....

....

iii. स्तनियों में दाहिनी सबक्लेविन (अद्योजत्रुक) किस प्रकार परिवर्धित होती है?

....

....

....

....

....

iv. दैहिक धमनियों तथा आंतरांगी धमनियों में एक अन्तर क्या है?

....

....

....

....

....

8.4 शिरा तंत्र

जैसा कि धमनी तंत्र के विषय में था उसी प्रकार विभिन्न कशेरुकी वर्गों की शिराओं के तुलनात्मक वर्णन से भी यही पता चलता है कि ये एक समान आधारभूत योजना के अनुसार ही व्यवस्थित होती हैं और जैसे-जैसे कशेरुकी स्तर ऊपर की ओर बढ़ता जाता है वैसे-वैसे इनमें में भी एक तर्कशुद्ध अनुक्रम के अनुसार विविधता पायी जाती है। उच्चतर उदाहरणों के शिरा तंत्र के परिवर्धन के दौरान वही खास-खास अवस्थाएं आती हैं जो निम्नतर उदाहरणों के भ्रूणों में समान रूप से पायी जाती हैं (चित्र 8.26) आरंभिक परिवर्धन अवस्या में मूलत: तीन समुच्चयों में युग्मित शिराएं होती पायी जाती हैं- पीतक कोश (vitelline sac) से आने वाली पीतक शिराएं, भ्रूण के शरीर से आने वाली प्रधान शिराएं (cardinal veins) तथा श्रोणि प्रदेश से आने वाली पार्श्व उदर शिराएं (lateral abdonimal veins)। पीतक शिराओं में यकृत कोटरिकाएं (hepatic sinusoids) तथा यकृत शिराएं भी शामिल हैं। यकृत शिराएं रक्त को यकृत कोटरिका जालक से एकत्रित करती हैं और शिराकोटर में प्रवेश करती हैं। प्रमुख शिराओं में आने वाली शिराएं हैं — अग्र प्रमुख शिराएं (anterior cardinal veins) जो शीर्ष क्षेत्र से रक्त इकट्ठा करती है तथा पश्च प्रमुख शिरा (posterior cardinal vein) जो भ्रूण के शेष शरीर से रक्त इकट्ठा करती है। ये दोनों शिराएं मूल प्रमुख शिरा जिसे कुवियर वाहिनी (Duct of Cuvier) भी कहते हैं, पर आकर मिलती हैं जो आगे चलकर शिरा कोटर में खुलती हैं। पार्श्व उदर शिराएं मछलियों में होती हैं मगर चतुष्पादों में सामान्यत: या तो अनुपस्थित होती हैं या समा गयी होती हैं। इन शिराओं के विषय में हम मछलियों के शिरा-तंत्र का वर्णन करते समय विवेचना करेंगे। उस शिरा को जो पाचन पथ से अवशोषित अंत्य पाचन उत्पादों को जिगर की वाहिकीय कोटरों में ले जाती है यकृत निवाहिका शिरा (hepatic portal vein) कहते हैं। यह सभी कशेरुकियों में होती पायी जाती है और प्रच्छ शिरा से निकलती हुई भ्रूण अवांत्र शिरा (subintestinal vein) से बनती है। यह अवांत्र शिरा गुदा के ऊपर से घुमाव लेती हुई आंत्र की अधर दीवार के सहारे-सहारे चलते जाती है, फिर जिगर में से होती हुई अंतत: बायीं पीतक शिरा में जुड़ जाती हैं। विभिन्न कशेरुकियों के शिरा तंत्र (venous system) की संरचनात्मक विभिन्नताओं का आगे वर्णन किया जा रहा है।

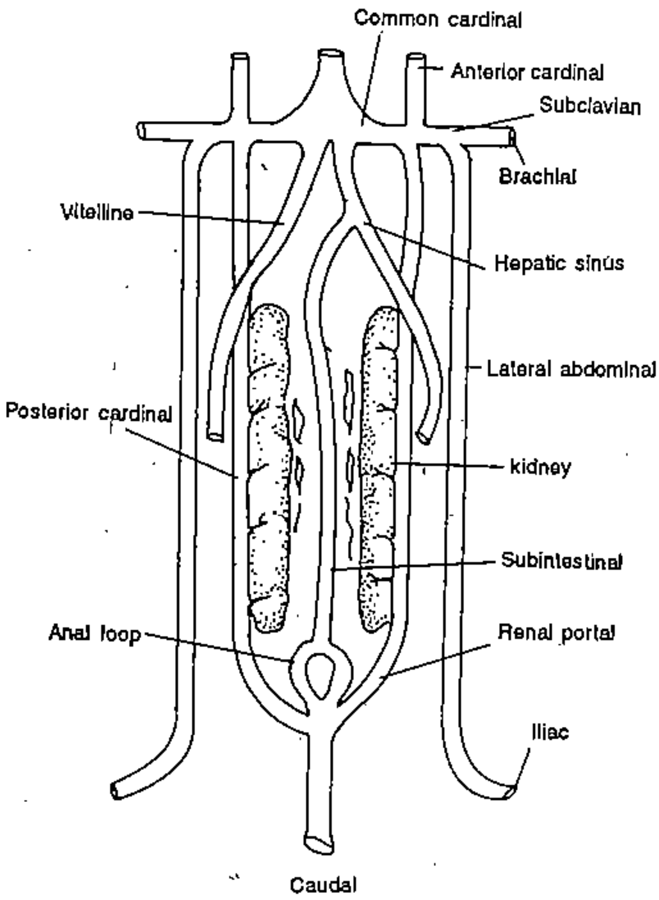

Basic embryo pattern,
चित्र 8.26: आधारभूत भ्रूण शिरा तंत्र जिससे विभिन्न कशेरुकियों का शिरा तंत्र व्युत्पन्न हुआ है।

8.4.1 ऐम्फिऑक्सस

इन कॉर्डेटों में कशेरुकी शिरा तंत्र ह्रासित होकर सरलतम हो गया है (चित्र 8.27)

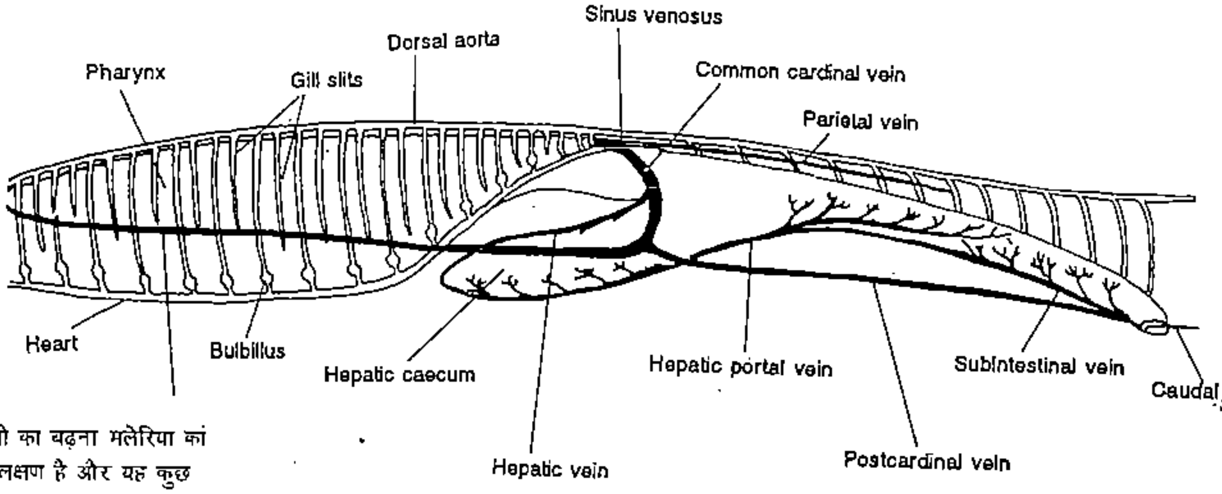

तिल्ली का बढ़ना मलेरिया का एक लक्षण है और यह कुछ अन्य दशाओं में भी काफी अधिक बढ़ जाया करती हैं।

चित्र 8.27: इस आरेख में ऐम्फिऑक्सस के परिसंचरण तंत्र के प्रमुख लक्षणों को दर्शाया गया है, पार्श्व दृश्य।

8.4.2 मछलियां

मछलियों के शिरा तंत्र में अनेक आदिम लक्षण कायम बने हुए हैं, मगर ऐम्फिऑक्सस में पायी जाने वाली दशा के मुकाबले इनमें आयी हुई कुछ खास प्रगतियां भी स्पष्ट हैं (चित्र 8.28)।

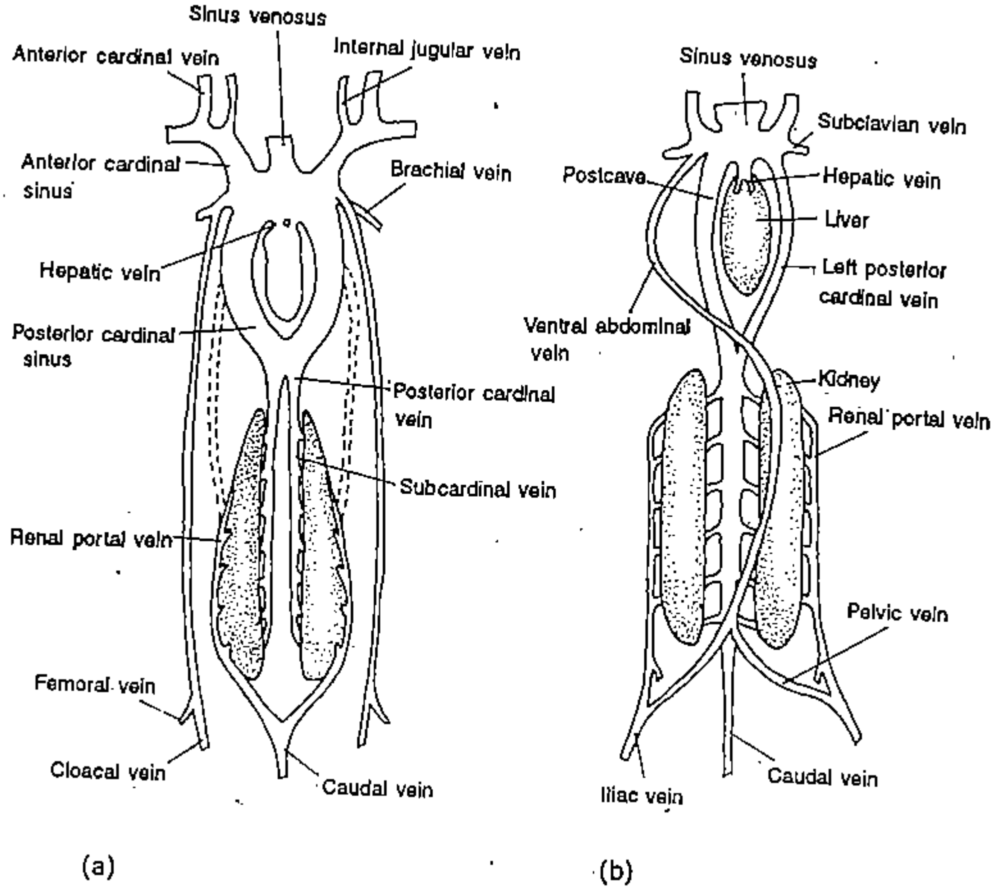

चित्र 8.28: a) फेफड़ा मछली तथा b) शार्क के शिरा तंत्र जिनमें मछलियों में आदिम दशा के बाद हुए परिवर्तनों को दिखाया गया है

शिरा कोटर में प्रत्येक पार्श्व पर एक कुवियर वाहिनी खुलती है। एक अग्र प्रमुख अथवा जुगुलर शिरा (jugular vein) शीर्ष क्षेत्र की पृष्ठ दिशा से रक्त को कुवियर वाहिकी में लाती है। अनेक मछलियों में शीर्ष के मूल अधर-पार्श्व से एक जोड़ी अधर जुगुलर शिरा आकर प्रमुख शिराओं में खुलती हैं। ये *पौलिप्टेरस* में नही होती तथा *लेपिस्टॉस्टियस* में समेकित होती हैं। प्रत्येक मूल प्रमुख शिरा में शरीर के पश्च भाग से आने वाली एक पश्च प्रमुख शिरा भी आकर मिलती है। चूंकि मछलियां ही वे पहले कशेरुकी हैं जिनमें युग्मित उपांग पाए जाते हैं, इसलिए क्रमश: अंस फिनों तथा श्रोणि फिनों से रक्त को लाने वाली सबक्लेवियन तथा इलियक शिराएं इसी वर्ग में सबसे पहले प्रकट हुई। इलियक शिराएं पार्श्व उदर शिराओं में जुड़ जाती हैं जो देह भित्ति में जाती हुई मूल प्रमुख शिरा में मिल जाती है। शिरा कोटर की पश्च दीवार में प्राय: दो यकृत शिराएं आकर मिलती हैं जो रक्त को जिगर से हृदय में वापिस लाती हैं। अवांत्र शिरा का अधिकतर मामलों में पुच्छ शिरा के साथ का संयोजन समाप्त हो गया होता है।

पश्चवृक्कीय (opisthonephric) गुर्दों के विकसित होने और उनके पीछे को लम्बे होते जाने के पश्च प्रमुख शिराएं गुर्दों के पृष्ठ पर पीछे को वृद्धि करती जातीं हैं और अंतत: पुच्छ शिरा में जुड़ जाती हैं (यहां यह जान लेना उचित होगा कि वयस्क के पश्चवृक्कीय गुर्दे मीजोनफ्रॉस यानि मध्यवृक्क, और वृक्कक कूटक के पिछले हिस्से से आयी हुई अतिरिक्त नलिकाओं से जुड़कर बना होता है। (इस विषय में आप इकाई उत्सर्गी तंत्र के शीर्षक के अंतर्गत पढ़ेंगे)। एक जोड़ी उपप्रमुख (subcardinal) शिराएं गुर्दों की अधर दिशा में बनती हैं यानि दो पश्चवृक्कीय गुर्दों के बीच में। छोटी-छोटी रक्त वाहिकाएं पश्चप्रमुख और उपप्रमुख शिराओं को जोड़ती हैं। इनका ग्लोमेरूलसों से कोई संबंध नहीं होता जिनमें धमनी रक्त आता होता है। पुच्छ शिरा के रक्त के सामने अब दो विकल्प मार्ग होते हैं जिनमें से होकर रक्त हृदय को जा सकता है। यह या तो सीधे ही पश्च प्रमुख शिराओं में जा सकता है या उपप्रमुख तथा वृक्क शिराओं के माध्यम से परोक्ष रूप में जा सकता है। अगली उन्नत अवस्था में प्रत्येक पश्चप्रमुख शिरा के मार्ग में एक विच्छिन्नता आ जाती है जिससे अग्र और पश्च अंश लगातार जारी नहीं रहते। पूंछ से आने वाला रक्त अब केवल एक ही मार्ग से जा सकता है। यह वृक्कों में से यानि वृक्क निवाहिका (renal portal system)

शिराओं में से होकर उपमुख्य शिराओं में प्रवेश करता है और इस प्रकार एक वृक्क निवाहिका तंत्र (renal portal system) स्थापित हो जाता है। रक्त आगे पश्चप्रमुखों मे से होता हुआ बढ़ता जाता है, और ये पश्चप्रमुख कुवियर वाहिनी में जुड़ जाती हैं। पश्चप्रमुख शिराओं में प्रायः गोनडों से आने वाली शिराएं मिल जाती हैं। वृक्क निवाहिका परिसंचरण स्थापित हो चुकने के बाद वृक्क शिराओं में से गुजरता हुआ रक्त उससे विपरीत दिशा में प्रवाहित होता है जो जिस दिशा में परिवर्धन की आरंभिक अवस्था के दौरान होता है। इलास्मोब्रैंक मछली अवस्था तक ये परिवर्तन स्पष्ट दिखते हैं।

टीलियोस्टों में पार्श्व उदर शिराएं नहीं होतीं। सबक्लेवियनें सर्वनिष्ठ प्रमुख शिराओं में प्रवेश करती हैं और इलियकें पश्चप्रमुखों में मिल जाती हैं। तरण आशय (आहारनाल का व्युत्पाद) से आने वाली शिराएं प्रायः यकृत निवाहिका शिरा में मिल जाती हैं। मगर कुछ विशिष्ट उदाहरणों में यह संयोजन पश्च प्रमुख शिराओं के साथ होता है। *पौलिप्टेरस* में ये सीधे ही यकृत शिराओं में मिल जाती हैं। डिप्नोअनों में तरण आशय से आने वाली शिराएं हृदय के नये बने एट्रियम में प्रवेश करती है तथा दोहरे प्रकार का, परिसंचरण तंत्र पहली पहली बार प्रकट होता है।

फेफड़ा मछलियों में जो लक्षण पाए जाते हैं वे उभयचरों तथा मछलियों के बीच की संयोजक कड़ी के जैसे हैं। *एपिसेरैटोडस (Epiceratodus)* में एक अकेली, मध्य-अधर, अग्र उदर शिरा प्रकट हो गयी है जो उभयचरों के तरह की है। पार्श्व उदर शिराएं ही समेकित होकर अग्र उदर शिरा बन गयी है जो आगे की ओर बढ़ती हुई शिरा कोटर में गिरती है। इलियक शिरा वृक्क निवाहिका शिरा में मिल जाती है और श्रोणि शिरा (pelvic vein) इलियक की ही एक शाखा है जो अग्र उदर शिरा में मिल जाती है। दाहिनी ओर की पश्चप्रमुख शिरा अपने पश्चीय अंश समेत अपनी ही तरह की बायीं ओर की शिरा से कहीं ज्यादा बड़ी हो गयी है। पुच्छ शिरा के साथ दोनों पार्श्वों पर संयोजन बना रहता है। दाहिनी ओर की बड़ी शिरा को अब पश्च महाशिरा (post caval vein) कहा जाता है। यह यकृत में से होकर जाती है और बायीं कुवियर वाहिनी में प्रवेश करती है। प्रोटोप्टेरस का शिरा तंत्र केवल एक अग्र उदर शिरा के अभाव को छोड़कर *एपिसेरैटोडस* के अपेक्षा उभयचरों के शिरा तंत्र के ज्यादा समान है।

8.4.3 उभयचर

उभयचरों में वृक्क निवाहिका तंत्र तथा यकृत निवाहिका तंत्र के बीच निकट संबंध बन गया है क्योंकि पश्च पादों से आने वाला रक्त इन दोनों में से किसी एक में से अवश्य गुजरना चाहिए।

फेफड़ों के आने वाली फुफ्फुस शिराएं डिप्नोइ की ही तरह बाएं एट्रियम में प्रवेश करती हैं। मगर फेफड़ा विहीन सालामैण्डरों में फुफ्फुस शिराएं नहीं होती तथा बायां एट्रियम आकार में ह्रासित हो गया है।

कुवियर वाहिनियां जिनमें मूलतः सबक्लेवियन जुगुलर तथा पश्चप्रमुख शिराएं आकर गिरती थीं, उभयचरों में और अधिक समेकित हो गयी हैं और अब इन्हें अग्र महाशिराएं (precaval veins) कहते हैं। ये प्रत्येक पार्श्व पर शिरा कोटर में आकर गिरती हैं। जुगुलर शिरा की भीतरी और बाहरी सहायक शिराएं होती हैं। चूंकि उभयचरों में त्वचीय श्वसन का अधिक मात्रा में विकास हुआ है इसलिए इनमें असाधारण रूप में बड़ी त्वचीय शिराएं होती हैं जो सबक्लेवियनों के साथ जुड़ कर शिरा कोटर में प्रवेश करती है।

यद्यपि यूरोडील प्राणी (कॉडेट्स, caudates) तथा ऐन्यूरन प्राणी (सेलिएनशियनस, salientians) ऊपर बताई गयी दोनों ही बातों में एक दूसरे के समान होते हैं फिर भी पश्च महाशिरा पश्चप्रमुख सम्मिश्र की व्यवस्था के संदर्भ में दोनों में कुछ खास अंतर पाए जाते हैं। अधिसंख्य कॉडेटों में तथा कुछ सेलिएंशियनों में पश्च प्रमुख शिराओं के आगे के अंश ह्रासित रूप में विद्यमान बने रहते हैं (चित्र 8.29 तथा 8.30) तथा पश्चमहाशिरा के मध्य भाग को प्रत्येक पार्श्व पर कुवियर वाहिनी के साथ जोड़ देते हैं। फिर भी अधिकतर वयस्क ऐन्यूरनों में पश्चप्रमुख शिराओं के अग्र भाग प्रायः विलीन हो गए होते है और इस तरह केवल यही एक मात्र मार्ग रह जाता है जिसमें होकर वृक्कों तथा गोनडों से आने वाला रक्त हृदय में लौट कर आ सकता है।

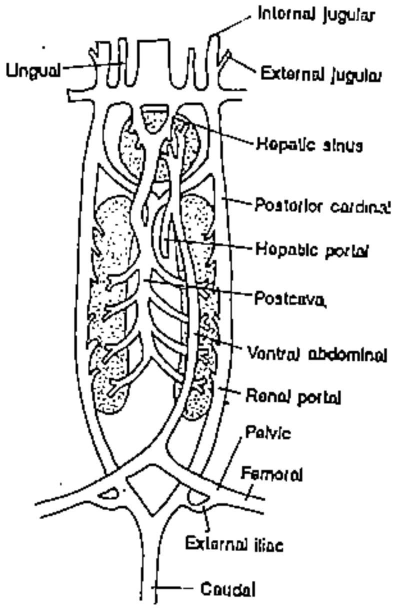

चित्र 8.29: एक प्ररूपी पूरोडील उभयचर का शिरा तंत्र, अधर दृश्य

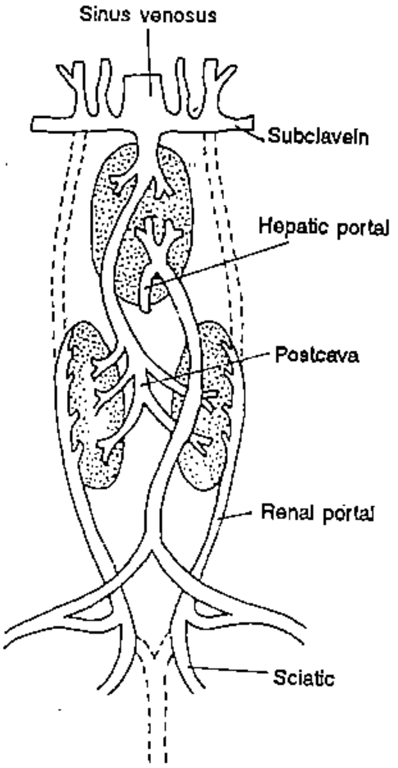

चित्र 8.30: एक प्ररूपी ऐन्यूरन उभयचर का शिरा तंत्र, अधर दृश्य

बोध प्रश्न 5

निम्नलिखित प्रश्नों का संक्षेप में उत्तर दीजिए-:

i) आरम्भिक भ्रूण अवस्था में पायी जाने वाली युग्मित शिराओं के तीन समुच्चय कौन-कौन से हैं?

....

....

....

....

....

ii) मछलियों में फ़िनों से रक्त लाने वाली शिराएं कौन-कौन सी हैं?

....

....

....

....

....

....

iii) टीलीयोस्टों तथा फेफड़ा-मछलियों में पार्श्व उदर शिराओं की क्या नियति रही हैं?

....

....

....

....

....

....

iv) अग्र महाशिराएं क्या होती हैं?

....

....

....

....

....

....

v) उभयचरों में बड़ी त्वचीय शिराएं क्यों पायी जाती हैं?

....

....

....

....

....

....

8.4.4 सरीसृप

इस वर्ग में हृदय में और आगे विभाजन होने के परिणामस्वरूप हृदय में प्रवेश करने वाली बड़ी दैहिक शिराएं और अधिक दाहिनी ओर को खिसक गयी हैं (चित्र 8.31)। दो अग्रमहाशिराएं मूल कुवियर वाहिनियां हैं जिनके भीतर जुगुलर, सबक्लेवियन तथा पश्चप्रमुख शिराएं आकर गिरती हैं। जुगुलर का आगे का भाग, सबक्लेवियन तथा पश्चप्रमुख शिराएं अपह्रासित होकर दो छोटी कशेरुक शिराएं (vertebral veins) बन गयी हैं। सांपों में सबक्लेवियनें नहीं होतीं। शरीर में पश्च भाग का अधिक रक्त अब अग्र उदर शिरा में को होकर जाता है जो आगे की ओर यकृत निवाहिका शिरा में जुड़ जाती है। वृक्क निवाहिका शिरा का महत्त्व कम हो गया है लेकिन कुछ उदाहरणों में सीधी सरणियां (channels) गुदा तक में से होकर जाती हैं और वृक्क निवाहिका शिरा तथा पश्चमहाशिरा से संयोजन करती हैं। चूंकि सरीसृपों में त्वचीय श्वसन नहीं होता इसलिए फुफ्फुस श्वसन का महत्त्व कहीं ज्यादा बढ़ गया है।

इस बात पर निर्भर करते हुए कि श्वसन अंगों का असममित परिवर्धन किस हद तक हुआ है, अलग-अलग उदाहरणों में दोनों फेफड़ों से आने वाली फुफ्फुस शिराओं में साइज के लिहाज से विसंगतियां पायी जाती हैं। कुछ सांपों में जिनमें बायां फेफड़ा नहीं होता एक फुफ्फुस शिरा पूरी तरह अनुपस्थित हो सकती है। सरीसृपी पश्च महाशिरा उभयचरों की ही तरह अंशत उपप्रमुख शिरा से और अंशतः पीतक शिरा से व्युत्पन्न होती है। पश्च प्रमुख शिराएं लगभग पूरी तरह समाप्त हो गयी हैं।

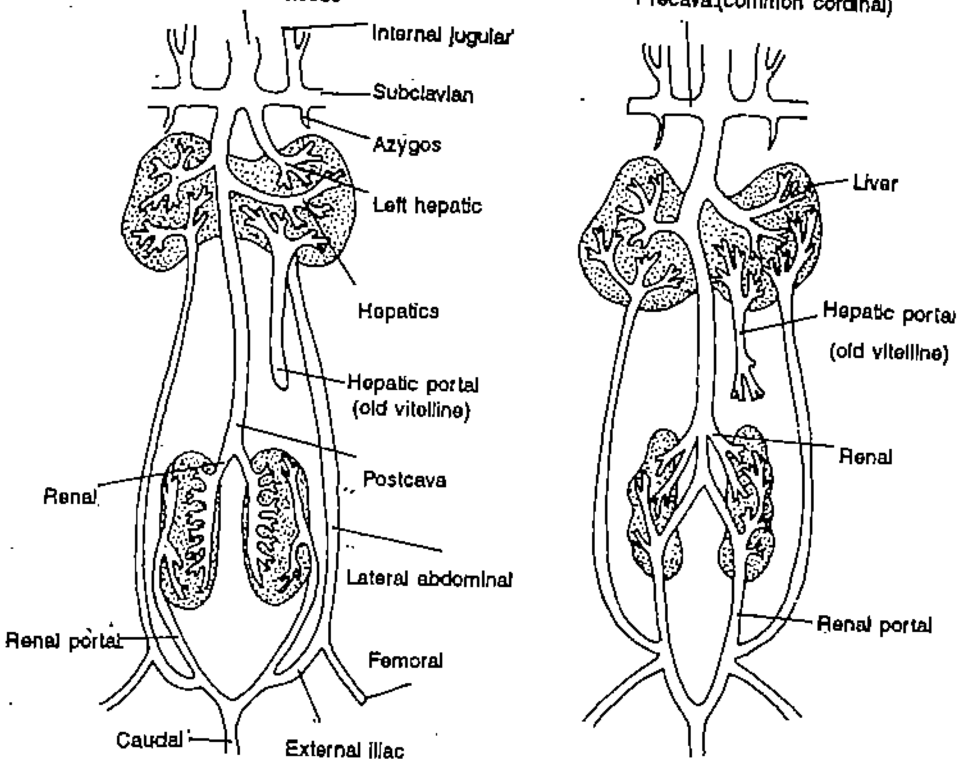

चित्र 8.31: सरीसृपों की शिरा सरणियां (a) कछुआ (b) मगरमच्छ। मगरमच्छों में वृक्क निवाहिका शिरा की एक प्रबल शाखा सीधी पश्चशिरा को जाती रहती है। श्रोणि शिरा कछुओं में होती है मगर यहां इसलिए नहीं दिखाया गया ताकि मूलभूत प्रतिरूप को देखा जा सके।

8.4.5 पक्षी

शिरा कोटर दाहिने अलिंद की दीवार में सम्मिलित हो गया है जिसके फलस्वरूप दोनों अग्र महाशिराएं तथा अकेली पश्च महाशिरा सीधे ही दाहिने अलिंद में प्रवेश करती हैं। प्रत्येक अग्रमहाशिरा सबक्लेवियन तथा जुगुलर शिराओं के संगम से बनती है। मूल पश्चप्रमुख शिरा संयोजन अब मौजूद नहीं रहता। शरीर के पिछले भाग से आने वाले रक्त के लिए मुख्य मार्ग पश्चमहाशिरा ही होती है। पादों से आने वाला रक्त वृक्क निवाहिका शिराओं के माध्यम से सीधा पश्च महाशिरा के पिछले सिरे में पहुंचता है। पक्षियों की यकृत शिराएं पश्चमहाशिरा में तब आकर मिल जाती है जब वह हृदय के निकट पहुंचती है। पक्षियों में पुच्छ शिरा बहुत ज्यादा ह्रासित होती है। मीजेंटेरिक (mesenteric), कॉक्सिजियोमीजेंटेरिक (coccygeomesenteric) तथा पुच्छीय मीजेंटेरिक के नामों से जानी जाने वाली एक शिरा पुच्छ शिरा, को यकृत निवाहिका शिरा से जोड़ देती है। एक छोटी एपिगैस्ट्रिक (epigastric) शिरा रक्त को ग्रेट ओमेंटम (great omentum) से यकृत शिराओं में से एक शिरा में ले जाती है। (चित्र 8.32)

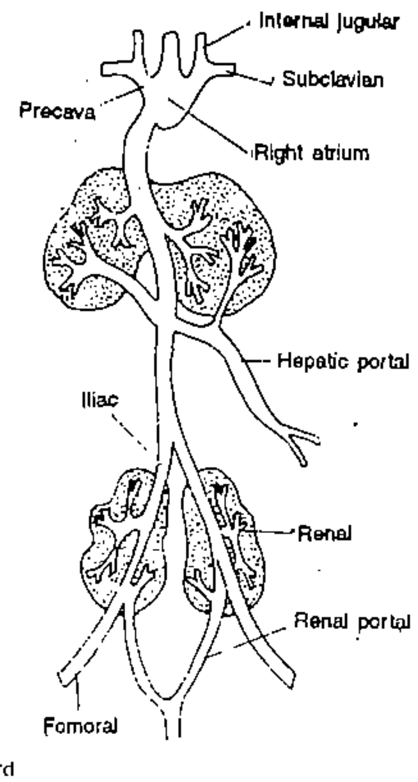

चित्र 8.32: पक्षी का शिरा तंत्र, अधर दृश्य

8.4.6 स्तनी

मुख्य शिरा सरणियों (channels) का दाहिनी ओर को खिसकना अन्य कशेरुकियों की अपेक्षा स्तनियों में सबसे ज्यादा स्पष्ट हो गया है। कुछ स्तनियों में दो अग्र शिराएं होती हैं लेकिन अन्य में वे संयोजित होती हैं। तब प्रत्येक पार्श्व पर उस वाहिका को जिनमें जुगुलर तथा सबक्लेवियन शिरा आकर मिलती है, ब्रैंकियोसेफैलिक (इन्नोमिनेट, innominate) शिरा कहते हैं। स्तनियों में दाहिनी पश्च प्रमुख शिरा का अग्र सिरा कायम बना रहता है जिसे एजाइगॉस (azygos) शिरा कहते हैं। यह शिरा अंतरापर्शुका (intercostal) पेशियों से रक्त लाती है और अग्रमहाशिरा में प्रवेश कर जाती है। स्तनियों के शिरा तंत्र में सबसे बड़ा परिवर्तन पश्चमहाशिरा में होता है जो बहुत ही सरलीकृत हो गयी है। वयस्कों में वृक्क निवाहिका तंत्र का कोई चिह्न नहीं पाया जाता तथा शरीर के पिछले सिरे को तमाम रक्त पश्च महाशिरा द्वारा इकठ्ठा किया जाता है। स्तनीय पश्चमहाशिरा का भ्रूण परिवर्धन बहुत जटिल होता है क्योंकि इनमें अधिप्रमुख (supracardinal) शिराएं नामक नयी वाहिकाएं बन गयी हैं। अग्र उदर शिरा स्तनियों में गायब हो गयी हैं, जो अन्यथा केवल *एकिड्ना (Echidna)* मॉनोट्रीम में पायी जाती है। सामान्यत: केवल बायीं नाभि शिरा (umbilical vein) मौजूद रहती है जो शिरा वाहिनी (डक्टस बिनोसस) के रूप में यकृत में होकर गुजरती है और पश्च महाशिरा में उसके हृदय में खुलने से पहले ही मिल जाती है। यकृत निवाहिका शिरा जिसे प्राय: निवाहिका शिरा ही कह देते हैं निम्नतर उदाहरणों की यकृत निवाहिका शिरा के ही समान होती है (चित्र 8.33)।

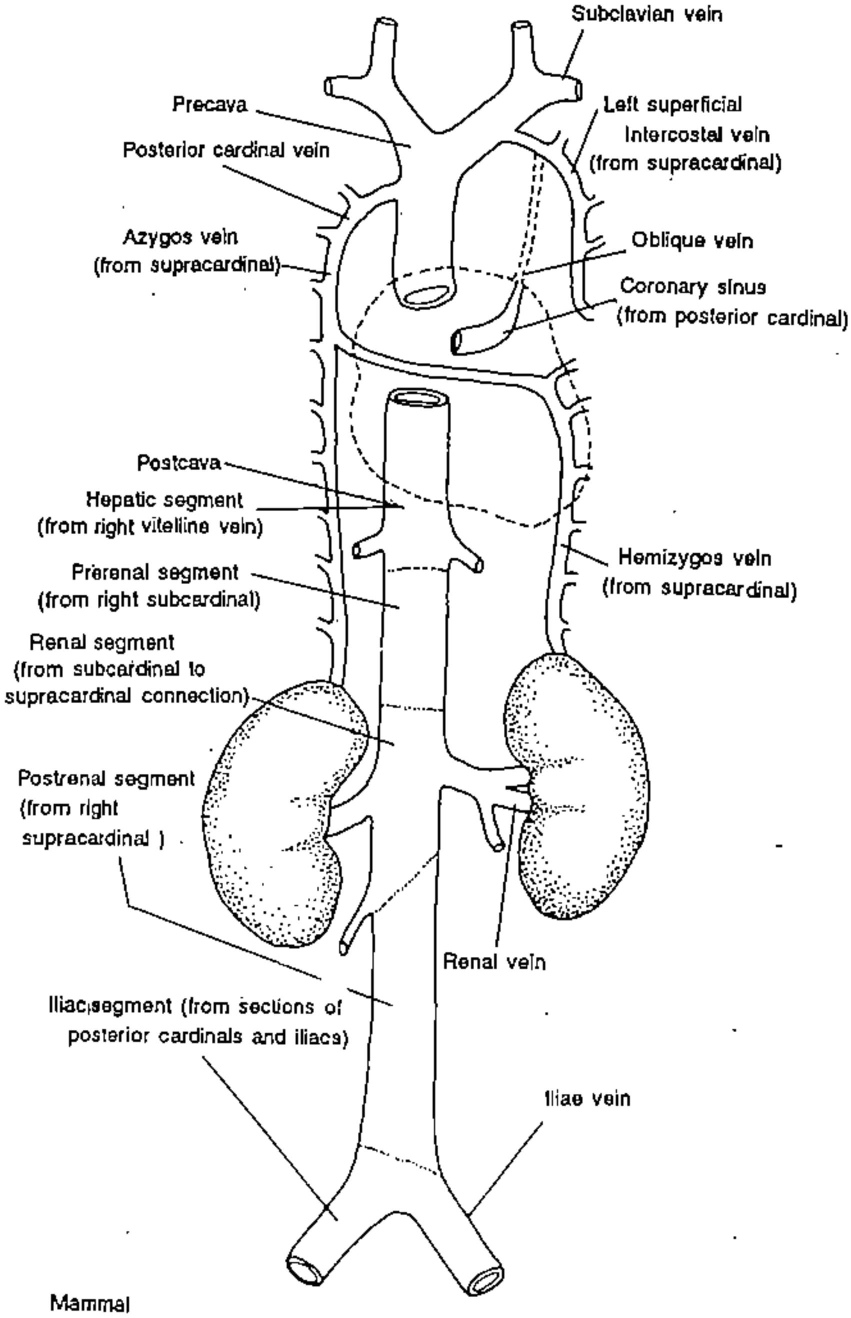

चित्र 8.33: बिल्ली का शिरा तंत्र, अधर दृश्य

.5 हृदवाहिका तंत्र का भ्रूणीय परिवर्धन

धिसंख्य रक्त वाहिकाएं भ्रूणीय मीजोडर्म (अथवा मीजेंकाइम) के भीतर प्रकट होती है। जैसे ही यह जनन ल बन जाती है, मीजोडर्मल कोशिकाओं के छोटे छोटे समूह जिन्हें रक्त द्वीप (blood islands) कहते हृदवाहिका तंत्र का भ्रूणीय शुरुआत होते हैं। इन्हीं रक्त द्वीपों से रक्त वाहिकाएं और रक्त कोशिकाएं नों ही पैदा होती है। अत: ये वाहिकाजनन (angiogenesis) (अर्थात् रक्त वाहिकाओं के निर्माण) और क्तोत्पत्ति (hemopoiesis) (अर्थात् रक्त कोशिकाओं के निर्माण) का कार्य करती हैं। रक्त द्वीप परस्पर ड़-जुड़ कर एक संयोजित वाहिका जाल बना लेते है जो अंततः भ्रूण के अलग-अलग भागों को परस्पर ड़ देता है और साथ ही भ्रूण को पोषण आपूर्ति से एवं श्वसन अंगों से जोड़ देता है। भ्रूणीय हृदय लिकाकार होता है।

आरम्भ में इसमें स्वायत्त अर्थात् स्वचालित तालबद्ध स्पंदन होता है जो रक्त को परिवर्धनशील वाहिका जाल में चलाता है। वयस्क की तरह भ्रूण की हृद्वाहिका तंत्र भी श्वसन उपापचय, उत्सर्जन तथा वृद्धि में एक सक्रिय एवं अनिवार्य भूमिका ग्रहण कर लेता है।

शुरू शुरू में बनते ही भ्रूणीय कशेरुकी हृदय पहले से ही सकुंचनशील होता है और उसमें चार मुख्य संलग्न कक्ष होते हैं। शिरा कोटर पहला कक्ष होता है जो वापिस आते रक्त को प्राप्त करता है। इसके बाद रक्त एट्रियम में पहुंचता है उसके बाद वहां से वेंट्रिकल में और फिर अंत में चौथे कक्ष बल्बस कॉर्डिस (bulbus cordis) यानि हृदकंद में पहुंचता है। बल्बस कॉर्डिस से रक्त हृदय से बाहर आ जाता है और धमनियों में प्रवेश करता है, जो भ्रूण के शरीर में पहुंचती हैं। अधिसंख्य चतुष्पादों में मूलभूत चार-कक्षीय नलिकाकार हृदय स्प्लैंकिनक मीजोडर्म (अंतरंग मध्यजनस्तर) से बनता है। हृदय का बनना उस समय शुरू होता है जब स्प्लैंक्निक मीजोडर्म से निकली कोशिकाएं एक जोड़ी मध्यक एंडोकार्डियल नलिकाएं (endocardial tubes, अंतर्हृदस्तर नलिकाएं) बना देती हैं। स्प्लैंक्निक मीजोडर्म में शेष कोशिकाएं प्रचुरोद्भवन करके एक मोटा पार्श्व युग्मित क्षेत्र बना देती हैं जिन्हें एपिमायोकार्डियम (epimyocardium, अधिमध्यहृदस्तर) कहते हैं। एंडोकार्डियल नलिका तथा एपिमायोकार्डियम की कोशिकाएं मध्य रेखा में पनपती बढ़ती जातीं है और समेकित होकर एकल केंद्रस्थित नलिकाकार हृदय बना लेती हैं। विशिष्ट तौर पर देखा जाए तो एंडोकार्डियल नलिकाओं से हृदय का एंडोथीलियम अस्तर बनता है जिसे एंडोकार्डियम कहते हैं। एपिमायोकार्डियम हृदय भित्ति की विस्तृत हृद पेशी मायोकार्डियम (myocardium) और साथ-साथ हृदय की बाहरी सतह का आवरण बनाती हुई पतली अंतरंग पेरिटोनियम बनाती है। इन समेकनों के हो चुकने पर मूलभूत चार-कक्षीय भ्रूणीय हृदय स्थापित हो गया होता है।

नलिकाकार हृदय में मोड़ और प्रसार होने से हृदय में विभिन्न विन्यास बन जाते हैं मगर रक्त प्रवाह का भीतरी मार्ग एक ही बना रहता है। अधिसंख्य मछलियों में वयस्कों में यही मूलभूत चार-कक्षीय भ्रूणीय हृदय कायम बना रहता है। मगर फेफड़ा मछलियों एवं चतुष्पादों में अलग-अलग मात्रा में उपविभाजनों के द्वारा हृदय के भीतर अतिरिक्त कक्ष कट जाते हैं। तथा ऐसा हो सकता है कि मूल कक्षों में से कुछ या तो ह्रासित हो जाएं या वयस्क वाहिका तंत्र के अन्य भागों द्वारा उनमें कुछ फेर बदल हो जाएं (चित्र 8.34)। इन सब शरीर रूपांतरणों तथा उनके कार्यात्मक महत्त्व को हम जैसे-जैसे इस अध्याय को आगे पढ़ते जायेंगे एक एक करके समझते जाएंगे। आइए मुख्य धमनियों तथा शिराओं की मूल संरचना को यानि हृदय द्वारा चलाए जाने वाले रक्त वितरण तंत्र को जरा समझ लें।

बोध प्रश्न 6

उपयुक्त शब्दों के रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-:

i) सबक्लेवियनें .... में अनुपस्थित होती हैं।

ii) सरीसृपों की पश्चमहाशिरा अंशतः .... से तथा अंशतः .... से बनती है।

iii) .... रक्त को शरीर के पश्च भागों से लाती है।

iv) पुच्छ शिरा .... में बहुत ह्रासित होती है।

v) .... रक्त को ग्रेट ओमेंटम से यकृत शिरा में ले जाती है।

vi) .... में इजाइगॉस शिरा रक्त को अंतरापर्शुका पेशियों से लाती हैं।

vii) स्तनियों में .... को छोड़कर, अग्र उदर शिरा समाप्त हो गयी है।

viii) .... रक्त वाहिकाओं के बनने की प्रक्रिया को कहते हैं।

ix) अधिसंख्य चतुष्पादों में मूल चार-कक्षीय हृदय .... से बनता है।

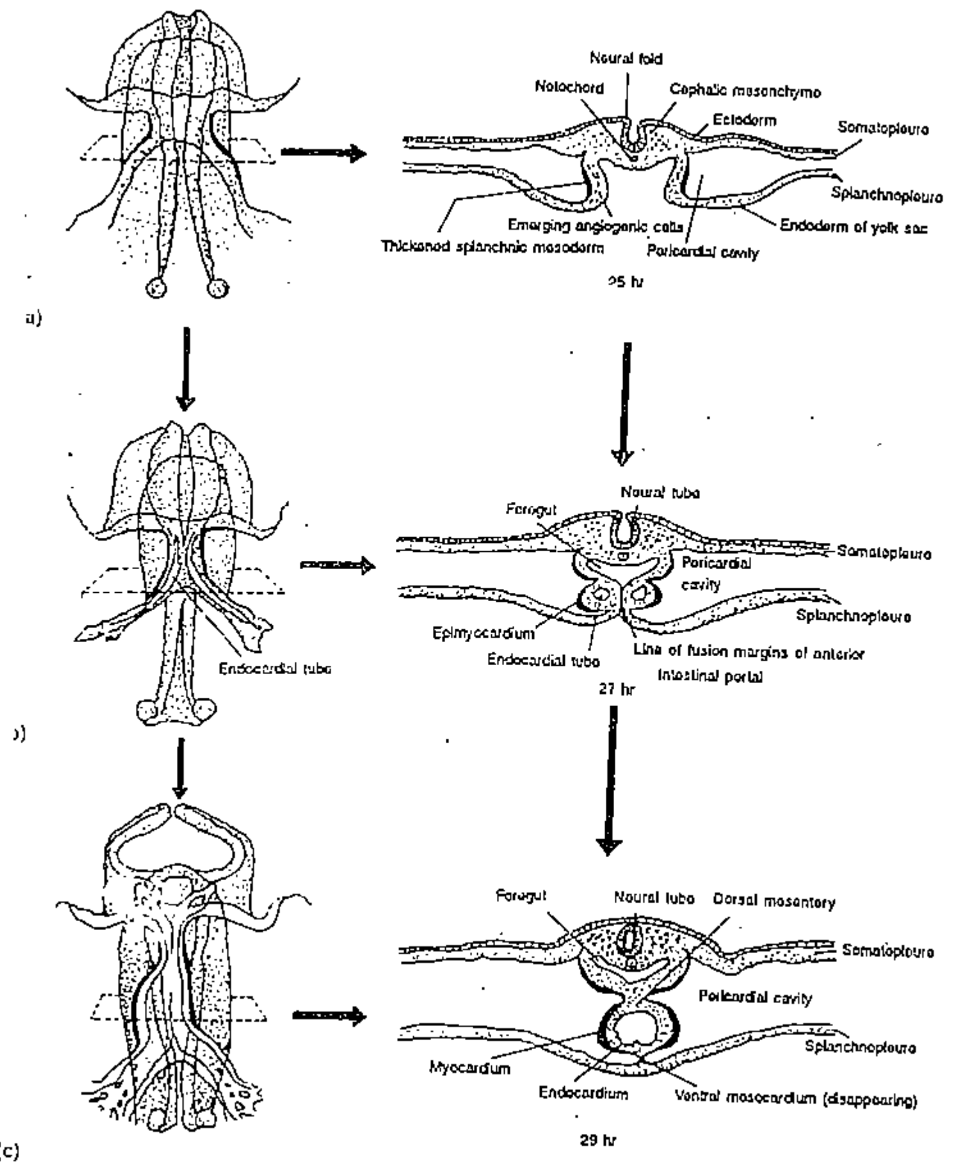

चित्र 8.34: भ्रूणीय हृदय का बनना। सेये जाने (उष्मायन) की क्रमिक अवस्थाओं में चूजें का भ्रूण (क्रमश: 25, 27, 29 घंटो पर) हृदय निर्माण का अधर (बांया) और अनुरूपी अनुप्रस्थ सेक्शन (दाहिना) दृश्य। (a) वाहिकाजनी कोशिकाएं एपिमायोकार्डियम मोटी हो गयी स्प्लैंक्निक मीजोडर्म से बाहर आती हैं (b) वाहिकाजनी कोशिकाएं विभेदित होकर एक जोड़ी आद्य एंडोकार्डियल नलिकाएं बना लेती हैं (c) एंडोकार्डियल नलिकाओं का यह जोड़ा मध्य रेखा पर समेकित होकर एकल एंडोकार्डियल नलिका बना लेता है जो हृदय का भावी अस्तर होती है। मोटे हो गए एपिमायोकार्डियम से हृदय की सतह पर पतली पेरिटोनियम तथा विस्तृत मायोकार्डियम से हृदय की पेशीय भित्ति बनती है।

8.6 रक्त

रक्त को एक ऐसा विशेषित संयोजी ऊतक कहा जा सकता है जिसमें एक अंश तो सरल अंतराकोशिकीय पदार्थ प्लाज्मा का होता है, और दूसरा अंश प्लाज्मा में मौजूद स्वरूप तत्त्वों का होता है जिसमें लाल रक्त कोशिकाएं, श्वेत रक्त कोशिकाएं और प्लेटलेट्स (पटिकाएं) आती हैं।

लाल रक्त कोशिकाओं यानि एरिथ्रोसाइट्स (रक्ताणु) में हीमोग्लोबिन नामक श्वसन वर्णक होता है। स्तनियों को छोड़कर सभी प्राणियों की लाल रक्त कोशिकाओं में केंद्रक होते हैं। लाल रक्त कोशिकाएं अलग अलग आकारों की होती हैं जैसे मनुष्यों में 8 μm, हाथियों में 9 μm तथा कुछ सालामैंण्डरों में 80 μm। परिसंचरणरत रक्त में लाल रक्त कोशिकाओं की जीवनावधि तीन से लेकर चार महीने तक की होती है जिसके बाद वे खण्ड-खण्ड कर दी जाती है और उनके स्थान पर नयी कोशिकाएं बन कर आ जाती हैं।

8.6.1 रक्त की संघटना

सम्पूर्ण रक्त की संघटना को संक्षेप में नीचे दर्शाया गया है-:

- रक्त
  - कोशिकाएं
    - -लाल रक्त कोशिकाएं
    - -श्वेत रक्त कोशिकाएं
    - -पट्टिकाएं
  - प्लाज्मा
    - जल 91-92%
    - ठोस 8-9%
      - अकार्बनिक रचक 0.9%
        - -सोडियम
        - -पोटैशियम
        - -कैल्सियम
        - -मैग्नीसियम
        - -फॉस्फोरस
        - -लौह
        - -तांबा
      - कार्बनिक रचक 7.5%
        - प्रोटीन
          - - सीरम
          - - ऐल्बुमिन
          - - सीरम
          - - ग्लोबुलिन
          - - फाइब्रिनोजेन
          - - प्रोथ्रॉम्बिन
        - गैरप्रोटीन पदार्थ
          - - यूरिया
          - - यूरिक अम्ल
          - - जैंथीन
          - - हाइपोजैंथीन
          - - क्रीऐटिन
          - - अमोनिया
          - - अम्ल (एकाधिक)
        - वसाएं
          - - न्यूट्रल वसाए
          - - फास्फोलिपिड्स
          - - कोलेस्टेरॉल
          - - कोलेस्टेरॉइड
        - कार्बोहाइड्रेट
          - ग्लूकोज
        - अन्य
          - - भीतरी स्रवण
          - - ऐंटीबॉडीज
          - - एंजाइम
          - - ऐमाइलेज़
          - - प्रोटीएज़
        - रंगदायी पदार्थ
          - - विलिरूबिन
          - - कैरोटिन्स
          - - जैंथोफिल्लिन

मुख्य कोशिकीय घटक श्वेत रक्त कोशिकाएं शरीर को संक्रमणों एवं रोगों से बचाती है। तीसरे प्रकार की रक्त कोशिकाएं प्लेटलेट्स होती हैं जो ऊतक क्षति स्थान पर रक्त का थक्का बनाने में सहायता करती हैं। शरीर की अनेक प्रक्रियाओं में रक्त की महत्त्वपूर्ण भूमिकाएं होती हैं जैसे कि श्वसन, रोगों से बचाव, पोषण, उत्सर्जन, देह के तापमान का नियमन, जल संतुलन का बनाए रखना, हॉर्मोनों का परिवहन आदि। रक्त की संरचना तथा कार्यिकी का विस्तृत वर्णन आप एल.एस.ई.-05 पाठ्यक्रम की इकाई 3 में पढ़ सकते हैं।

8.6.2 श्वसन वर्णक

कशेरुकियों में केवल हीमोग्लोबिन ही एक मात्र श्वसन वर्णक होता है। अन्य किसी भी श्वसन वर्णक की अपेक्षा हीमोग्लोबिन ही ऑक्सीजन की कहीं ज्यादा मात्रा के साथ संयोजन कर सकता है।

हीमोग्लोबिन एक लौह पौरफाइरिन यौगिक का बना होता है। जिसके साथ-साथ एक प्रोटीन ग्लोबिन संबंधित होता है। सभी हीमोग्लोबिनों का एक स्थिर लक्षण इनके अणु में इसी हीम घटक का पाया जाना है मगर ग्लोबिन अंश विभिन्न कशेरुकियों में अलग-अलग हो सकता है। विभिन्न कशेरुकियों में हीमोग्लोबिन की ऑक्सीजन वहन क्षमता नीचे दी जा रही है-:

वर्णक	रंग	स्थान	प्राणी	आयतन प्रतिशत में ऑक्सीजन वहन क्षमता
हीमाग्लोबिन	लाल	कणिकाएं	स्तनी	15-30
			पक्षी	20-25
			सरीसृप	7-12
			उभयचर	3-10
			मछलियां	4-20

8.7 लसीका तंत्र

लसीका तंत्र (lymphatic system) रक्त वाहिका तंत्र से इस बात में समान है कि इसमें वाहिकाएं, वहन होने वाले द्रव और संबद्ध अंग होते हैं। एक मुख्य अंतर तो यह है कि लसीका का प्रवाह केवल एक ही दिशा में यानि हृदय की ओर होता है। सभी कशेरुकियों के लसीका तंत्र में पतली दीवारों वाली वाहिकाएं होती हैं जिन्हें लसीका वाहिनियां (लिम्फैटिक्स) कहते हैं। लसीका वाहिकाओं की दीवारें शिराओं की दीवारों जैसी होती हैं और शिराओं की तरह उनमें भी एकमार्गी वाल्व होते हैं। लसीका वाहिनियां शरीर के लगभग सभी नरम ऊतकों में प्रवेश कर जाती हैं और वहां वे बंद सिरों वाली लसीका केशिकाएं बन जाती हैं जो अंतराल तरलों को एकत्रित करती हैं। लसीका-केशिकाओं में एक बार पहुंच जाने के बाद इस तरल को लसीका कहा जाता है। लसीका एक ऐसा तरल है जो रंगहीन अथवा हल्का पीला सा होता है तथा इसके भीतर वे उपापचयज एवं स्राव होते हैं जो अंतराकोशिकीय अवकाशों में एकत्रित होते हैं। किसी भी क्षेत्र की लसीका उस क्षेत्र की क्षण प्रति क्षण की उपापचयी क्रियाकलापों का दर्पण होती है।

लसीका तंत्र में लसीका ऊतक भी शामिल है, इस ऊतक में संयोजी ऊतक तथा स्वच्छंद कोशिकाएं भी होती हैं जैसे श्वेताणु, प्लाज्मा कोशिकाएं, तथा मैक्रोफाज आदि। लसीका ऊतक को शरीर में लगभग कहीं भी देखा जा सकता है, जहां वह या तो अलग-अलग चप्पों (पैचों) के रूप में हो सकता है या लसीका ग्रंथिकाओं के रूप में संपुटित रहता है। लसीका ग्रंथिका (लिम्फ नोड) लसीका ऊतक का एक संग्रहण होता है जो तंतुकी संयोजी ऊतक के एक कैप्सूल (संपुट) के भीतर बंद होता है। लसीका ग्रंथिकाएं लसीका वाहिकाओं की सरणियों में स्थित होती है। लसीका ग्रंथिकाएं केवल स्तनियों तथा कुछ जलचर पक्षियों में ही पायी जाती है।

छोटी आंतों के विलाई (villi) में लसीका वाहिकाएं होती हैं जो भोजनोपरांत आंतों में से अवशोषित वसा की गोलिकाओं को एकत्रित करती हैं। यदि भोजन खास तौर से वसा युक्त रहा तो इस वाहिकाओं के भीतर की लसीका दूधिया होती है। यही कारण है कि अंतड़ियों के विलाई की लसीका वाहिकाओं को लैक्टियल (lacteals) कहते हैं तथा उनके भीतर भरी लसीका को काइल (chyle) कहते हैं। कार्टिलेजी मछलियां साइक्लोस्टोमों और यहां तक कि मानव में भी कुछ लसीका वाहिकाओं के भीतर लसीका के साथ-साथ लाल रक्त कोशिकाएं भी होती हैं। इन वाहिकाओं के भीतर के द्रव को हीमोग्लोबिन (रक्तलसीका) कहते हैं। साथ ही, लसीका ऊतक बैक्टीरिया तथा धूलि कणों जैसे हानिकर पदार्थों को भी नष्ट करने का काम करता है। प्लाज्मा कोशिकाएं ऐंटिबॉडी बनाती हैं जो रक्त में परिसंचरित होती हैं। मैक्रोफाज तथा श्वेताणु बैक्टीरिया को नष्ट करते हैं। लसीका ऊतक उन कैंसर कोशिकाओं को भी बीच ही में रोक लेता है जो लसीका ग्रंथिकाओं में से होकर अन्यत्र जा रही होती हैं। मगर तीव्रता से विभाजन करती कैंसर कोशिकाएं लसीका ग्रंथिकाओं को भर लेती हैं। यदि परीक्षणों से इस प्रकार की स्थिति पता चलती हैं तो सभी कैंसर प्रभावित ग्रंथिकाओं को निकाल देना चाहिए।

लसीका वाहिकाओं तथा ग्रंथिकाओं में से धीमी गति से चलती लसीका को आगे-आगे बढ़ाते जाने वाले कई कारक इस प्रकार हैं-:

1) शरीर के विभिन्न भागों की पेशी क्रिया

2) परासरण तथा ऊतक द्रव के अवशोषण से लघुतर वाहिकाओं में बढ़ती जाती दाब

3) स्पंदनकारी लसीका हृदयों की क्रिया, ये लसीका हृदय लसीका वाहिकाओं के फूले हुए भाग होते हैं जिनकी दीवारें संकुचनशील होती हैं, तथा ये आम तौर से उन स्थानों पर बने होते हैं जहां लसीका शिरा तंत्र में प्रवेश करता है।

लसीका हृदय वास्तविक हृदय नहीं होते क्योंकि इनमें हृद पेशियां नहीं होती। इनकी दीवारों में बनी रेखित पेशियों में धीरे-धीरे दाब-स्पंद बन जाते हैं जिनसे लसीका को आगे बढ़ने के लिए धक्का लगता है।

आइए कशेरुकियों के अलग-अलग वर्गों में लसीका तंत्र का अध्ययन करें।

8.7.1 मछलियां

मछलियों में लसीका वाहिकाएं व्यापक बनी होती हैं, और शीर्ष, पूंछ तथा फिनों में बहुत गहरे में न होकर ऊपरी सतहों की ओर होती हैं। गहराई में बनी सरणियां कुछ बृहत्तर शिराओं का ही मार्ग अपनाती हैं।

लसीका हृदय आम तौर से नहीं होते, मगर कुछ उदाहरणों में ये लसीका वाहिकाओं तथा शिराओं के संधि स्थानों के निकट बने होते हैं। ईल में एक लसीका हृदय पूंछ में होता है। यूरोपीय कैटफिश में दो पुच्छ लसीका हृदय होते हैं। मछलियों में लिम्फ ग्रंथिकाएं अनुपस्थित होती जान पड़ती हैं।

8.7.2 उभयचर

कॉर्डेट उभयचरों में लसीका वाहिकाओं के दो मुख्य सेट होते हैं। त्वचा के नीचे बनी सतही वाहिकाएं लसीका को त्वचीय तथा पश्चमहाशिरा में पहुंचा देती हैं। विभिन्न उदाहरणों में लसीका वाहिकाओं के मार्ग में 14 से 20 लसीका हृदय होते पाए गए हैं। गहरी वाहिकाएं पृष्ठ महाधमनी के दाएं-बाएं चलती जाती हैं और सबक्लेवियन धमनी में प्रवेश करती हैं। बड़े-बड़े लसीका कोशों से युक्त ऐन्यूरनों में अधिकतर लसीका हृदय की ओर प्रवाहित होती है। वयस्क प्राणियों में प्रायः दो जोड़ी लसीका हृदय होते हैं। इनमें से पहली जोड़ी लसीका हृदय तीसरे कशेरुक के समीप होती है, जहां से वह लसीका को कशेरुक शिरा में पम्प करता है, तथा दूसरा लसीका हृदय यूरोस्टाइल (पुछदण्ड) के सिरे के नजदीक बना होता है और वह रक्त को अनुप्रस्थ इलियक शिरा में पम्प करता है। लार्वा तथा टैडपोल अवस्थाओं में लसीका हृदय अधिक संख्या में होते हैं। सीसिलियनों में 200 से भी अधिक लसीका हृदय होते हैं जो त्वचा के नीचे अंतराखंडीय शिराओं के सहारे बने होते हैं।

8.7.3 सरीसृप

लसीका तंत्र सुविकसित होता है। एक बड़ी उपकशेरुकी काण्ड यानि महावाहिनी अग्रतः विभाजित होती है और अग्रमहाशिराओं में प्रवेश कर जाती है। सांपों में लसीका वाहिकाएं तथा कोटरें असाधारण रूप में बड़े आकार की बहुत ज्यादा संख्या में होती है। एक जोड़ी पश्च लसीका हृदय होते हैं जो लसीका को इलियक शिराओं में पम्प कर देते हैं।

8.7.4 पक्षी

पक्षियों की लसीका वाहिकाएं दो वक्षीय लसीका वाहिनियों में जाती हैं जो आगे अग्रमहाशिराओं में मिल जाती हैं। पक्षियों में भ्रूण परिवर्धन के दौरान श्रोणि प्रदेश में अस्थायी लसीका हृदय होते हैं जो वयस्क पक्षियों में नहीं होते।

8.7.5 स्तनी

स्तनियों में लसीका हृदय कतई नहीं होते। एक मुख्य महावाहिनी यानि काण्ड जिसे वक्ष वाहिनी कहते हैं शरीर के पश्च भाग की सभी लसीका वाहिकाओं से और साथ ही शीर्ष, गर्दन तथा वक्ष प्रदेशों के आने वाली वाहिकाओं से भी लसीका को ले लेती हैं। स्तनियों में लसीका ग्रंथिकाएं शीर्ष एवं गर्दन के सतही प्रदेशों में तथा बगलों तथा जांघों में बहुत संख्या में पायी जाती हैं। अनेक ग्रंथिकाएं देह गुहा में होती है। आंत की आंत्रयोजनी (मीजेंटरी) में ये आकार में बड़ी तथा बहुत संख्यक होती हैं। इन सभी स्थानों में इनका काम बैक्टीरिया द्वारा शरीर में आक्रमण को रोकना होता हैं। (चित्र 8.35)

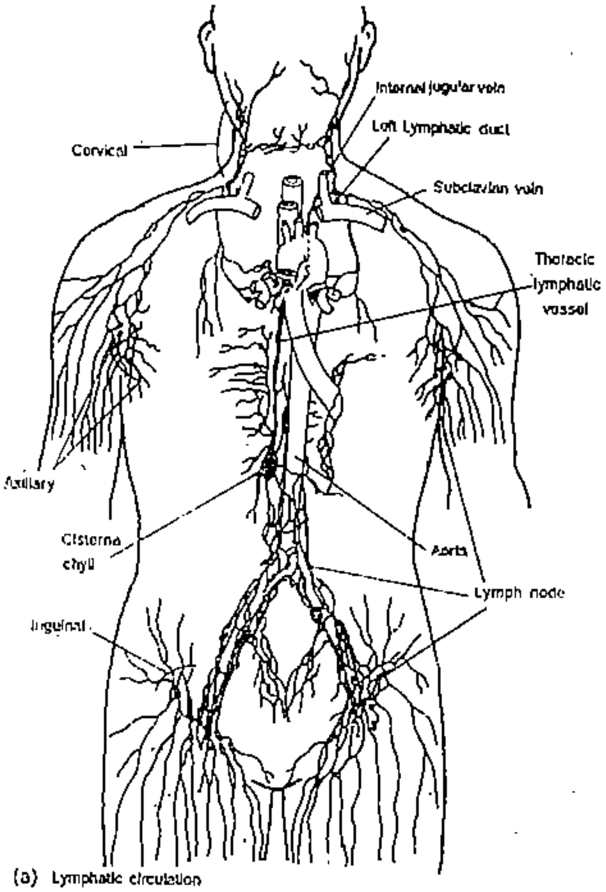

(a) Lymphatic circulation

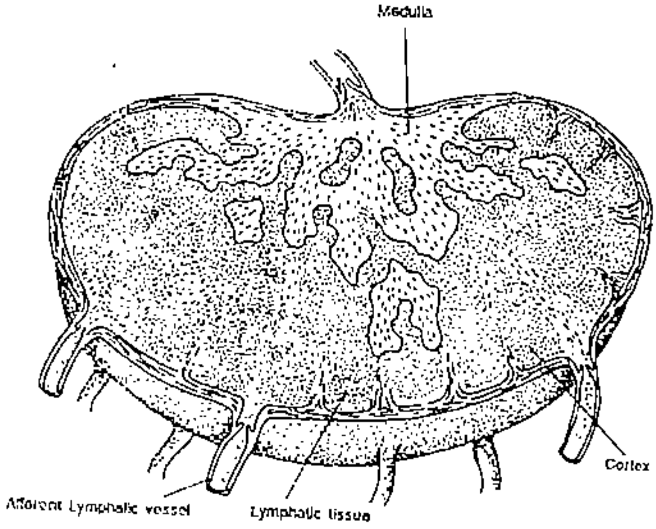

(b) Lymph node

चित्र 8.35: लसीका परिसंचरण। (a) शरीर के सभी भागों से आने वाली लसीका वाहिकाएं परस्पर जुड़कर प्रधान लसीका वाहिकाएं बनाती हैं जिनमें से बड़ी वाहिका वक्ष वाहिका होती है जो लसीका को परच महाशिरा अथवा सबक्लेवियन शिराओं में छोड़ती है। (b) एक लसीका ग्रंथिका का अनुप्रस्थ सेक्शन। स्तनियों में तथा कुछ अन्य स्त्रीशीज़ में लसीका वाहिकाओं में उनके मार्ग में जहां-तहां कुछ छोटे-छोटे उत्फूलन अथवा ग्रंथिकाएं बनी होती हैं। इन लसीका ग्रंथिकाओं के भीतर लसीका ऊतक भरा होता है जिसका काम इन वाहिकाओं में परिसंचरित लसीका में से गैर पदार्थों को हटाना-निकालना होता है। लसीका ग्रंथिका में एक कॉर्टेक्स तथा एक मेडुला होता है जिसे बाहर से एक तंतुमी संयोजी ऊतक संपुट (कैप्सूल) परिसीमित किए रहता है। प्रवेशकारी तथा निर्गमी लसीका वाहिकाओं पर ध्यान दीजिए।

8.7.6 अन्य लसीका अंग

ग्रसनीय उद्भव के कुछ अंग जिन्हें लसीका तंत्र का भाग माना जाता है, उनमें टॉन्सिल ऐडीनॉइड तथा थाइमस ग्रंथियां आती है। टॉन्सिल तथा ऐडिनॉइड ऐंटीजनी पदार्थों के प्रति ऐंटीबॉडी बनाकर शरीर की रक्षा करती है। ये ऊतक तरल को छानती हैं तथा लसीकाणुओं को बनाती हैं। शरीर में कुछ प्रतिरक्षा अभिक्रियाओं के होने में थाइमस ग्रंथि की भूमिका रहती है। "पेयर चप्पें" (peyer s patches) नामक रचनाए छोटी आंतों में लसीका ऊतक की ग्रंथिकाएं होती हैं। और क्षुदांत्र (इलीयम) क्षेत्र में खास तौर से अधिक बहुसंख्यक होती हैं। परिसंचरण तंत्र से संबंधित कुछ अन्य अंग इस प्रकार हैं-

रक्तलसीका ग्रंथियां (haemolymph glands) - शरीर की ये ग्रंथियां लसीका ग्रंथियों के बहुत समान होती हैं बस अंतर इतना है कि ये लसीका वाहिकाओं को न घेरे होकर रक्त वाहिकाओं को घेरे होती हैं इनमें से लसीका नहीं बल्कि रक्त छनता है। इन्हें एक और नाम हीमल नोड (haemal nodes) भी दिया गया है। समझा जाता है कि इनकी भूमिका पुरानी घिसी पिटी कणिकाओं के नष्ट करने में है और साथ ही नयी लाल रक्त कोशिकाओं के बनाने में भी। रोमंथी स्तनियों (ruminating mammals) में बहुसंख्यक हीमल नोडें होती हैं परंतु मानवों में इनका पाया जाना संदिग्ध है।

तिल्ली अर्थात् (प्लीहा) (spleen) - शरीर की सबसे बड़ी ग्रंथि तिल्ली होती है। इसे कभी-कभी एक रक्त लसीका ग्रंथि भी माना जाता है क्योंकि यह रक्तधारा के बीच में आती हैं न कि लसीका वाहिकाओं के बीच। तिल्ली के भीतर रक्त वाहिकाएं एक विचित्र रूप में व्यवस्थित होती हैं ताकि रक्त भक्षकाणुओं (मैक्रोफाजों) के सम्पर्क में आ सके जो विघटनशील लाल कणिकाओं के खण्डित टुकड़ों को अपने भीतर समेट कर लाल रक्त कणिका का कोशिका भक्षण करते हैं। थाइमस के अंदर बनने वाले लसीकाणु तथा प्लाज्मा कोशिकाएं बाद में भारी संख्या में तिल्ली में बनने लगते हैं। तिल्ली का काम रक्ताणुओं को भंडारित करने में भी होता है। तिल्ली में ऐंटीबाडी भी बनती हैं जो शरीर की सुरक्षा क्रियाविधि में काम करती हैं।

वे ग्रसनीय टॉन्सिलें जो सरीसृपों, पक्षियों तथा कभी-कभी स्तनियों में भी पायी जाती हैं, वे ग्रसनी की छत पर बनी श्लेष्मा झिल्ली में प्रकट होती हैं तथा वे आंतरनासांरध्रों (choanae) के पीछे स्थित हो जाती हैं। संभव है कि ये उभयचरों की ग्रसनी की छत में बनी किसी लसीका ऊतक संहति के समजात हों। मानवों में बड़ी हो गयी ग्रसनी टॉन्सिलों को ऐडीनॉइड (adenoids) कहते हैं। केवल स्तनियों में पायी जाने वाली अन्य प्रकार की टॉन्सिलें तालु टॉन्सिलों (palatine tonsils) तथा जिह्वा टॉन्सिलें (lingual tonsils) होती हैं। तालु टॉन्सिलें दूसरी जोड़ी ग्रसनी कोष्ठ से व्युत्पन्न लसीका संहतियां होती हैं तथा ये प्रत्येक पार्श्व पर उस जगह स्थित होती हैं जहां मुख और ग्रसनी आपस में मिलते हैं। तालु टॉन्सिलें अक्सर संक्रमित हो जाया करती हैं और इसलिए उन्हें निकाल भी दिया जाता है। जिह्वा टॉन्सिलें वे लसीका संहतियां होती हैं जो जिह्वा ग्रंथियों के साथ संबंध बनाते हुए बनती है और जीभ के आधार पर स्थित होती हैं। थाइमस ग्रंथि को इससे पहले एक अंत:स्रावी ग्रंथि माना जाता रहा है मगर प्रमाणों से अब लगता है कि यह यह लसीका तंत्र का ही एक भाग है। लैम्प्रियों में सभी सातों गिल कोष्ठों के पृष्ठ कोनों से निकले हुए आद्यक कदाचित थाइमस ऊतक ही हैं। हेगफिशों में गिल प्रदेश के पश्चत: बनी पालियों जैसी संरचनाएं हो सकता है थाइमस ऊतक हो। थाइमस के परिवर्धन के संदर्भ में कशेरुकियों में सर्वाधिक सामान्यीकृत दशा लैम्प्रियों में ही पायी जाती है। टीलियोस्टों में यह एक अकेली सपालिक संहति के रूप में पायी जाती है। यूरोडीलों में यह ग्रंथि गर्दन के प्रत्येक पार्श्व पर बनी ऊतक संहति होती है। वयस्क मेंढक में यह कर्णपटह झिल्ली के पीछे तथा मैंडिबल पेशी के नीचे स्थित होती है और टैडपोल की अपेक्षा अधिक छोटी होती है। सरीसृपों तथा पक्षियों में इसके उद्भव में विभिन्नता पायी जाती है। कुछ सरीसृपों में ये ग्रंथियां पृथक तत्त्वों के रूप में बननी शुरू होती हैं मगर उनमें ऐसी प्रवृत्ति होती है कि गर्दन के पार्श्वों के सहारे वे लम्बे सपालिक सूत्र बना लेती हैं। स्तनियों में थाइमस की उत्पत्ति ग्रसनी कोष्ठों के अधर अंशों से होती है न कि पृष्ठ अंशों से। यह श्वास नली की अधर दिशा में पड़ी होती है और पीछे हृदय के आधार तक फैली होती है।

बोध प्रश्न 7

1 a) दो रक्त प्रोटीनों के नाम बताइए।

....

....

b) रक्त के किन्हीं दो गैरप्रोटीन पदार्थों के नाम बताइए।

....

....

c) रक्त के किन्ही तीन अकार्बनिक पदार्थों के नाम बताइएं

....

....

d) कशेरुकियों में पाए जाने वाले श्वसन वर्णक की संघटना का वर्णन कीजिए।

....

....

कालम I में दिए गए मदों को कॉलम II में दिए गए मदों से मिलाइए-:

	कॉलम I		कालम II
क	धमनियां	i.	लसीका
ख	एकदिशीय प्रवाह	ii.	रक्त
ग	अंतराली द्रव का संग्रह	iii.	लैक्टियलें
घ	काइल	iv.	लसीका केशिकाएं
च	लसीका नोडों की अनुपस्थिति	v.	पक्षी
छ	अस्थायी लसीका हृदय	vi.	स्तनी
ज	लसीका हृदयों की अनुपस्थिति	vii.	मछलियां
झ	लसीकाणुओं की उत्पत्ति	viii.	टॉन्सिलें
ट	क्षुद्रांत्र में लसीका ग्रंथिकाएं	ix.	तिल्ली
ठ	विघटनशील लाल रक्त कणिकाओं का कोशिकभिक्षण	x.	पेयर चप्पे

.8 सारांश

परिसंचरण तंत्र में रक्त वाहिका तंत्र तथा लसीका तंत्र आते हैं। रक्त वाहिका तंत्र में हृदय धमनियां, केशिकाएं तथा शिराएं आती हैं। लसीकातंत्र में होते हैं: लसीका वाहिकाए (जिनमें लैक्टियलें भी शामिल हैं), लसीका केशिकाएं, लसीका कोटर, और नोड। लसीका हृदय निम्नतर कशेरुकियों में पाए जाते हैं लेकिन पक्षियों तथा स्तनियों में ये नहीं होते। लसीका ऊतक अवकाशों में से ले जाया जाता है, तथा काइल जो पुनः लसीका का ही एक अन्य रूप है, आंत्र विलाई से कुछ खास शिरा सरणियों में ले जाया जाता है।

- महाधमनी चाप एक रक्त वाहिनी है जो अधर तथा पृष्ठ महाधमनी को जोड़ती है और ये कम से कम भ्रूण अवस्था में तो अवश्य ही एक ग्रसनी चाप के भीतर स्थित होती है।

- प्रतिरूपत: प्रत्येक कशेरुकी भ्रूण में छह जोड़ी महाधमनी चापें बनती हैं। व्यक्तिवृत के दौरान महाधमनी चापों की संख्या घट जाती हैं, और जो कशेरुकी सर्वाधिक विकसित हैं उनमें सबसे कम संख्या में महाधमनी चापें होती हैं।

- शिरा कोटर मछलियों, उभयचरों तथा सरीसृपों में होता पाया जाता है। वयस्क पक्षियों तथा स्तनियों में यह नहीं होता क्योंकि यह भ्रूण परिवर्धन के दौरान दाहिने एट्रियम की दीवार में समा गया होता है।

- मछलियों में ऑक्सीजनित तथा विऑक्सीजनित रक्त का मिश्रण नहीं होता। पूंछ युक्त [illegible] में काफी ज्यादा मिश्रण होता है। पक्षियों तथा स्तनियों के भ्रूणों मे तो मिश्रण होता है मगर उनके वयस्कों में नहीं होता।

- कशेरुकी परिसंचरण के आधारभूत प्रतिरूप में पायी जाने वाली मुख्य शिरा सरणियां इस प्रकार हैं- शीर्ष से आने वाली अग्र प्रमुख (भीतरी जुगुलर) शिराएं, धड़ और गुर्दों से आने वाली पश्च प्रमुख शिराएं तथा अग्र पादों से आने वाली सबक्लेविन शिरा—और ये सब की सब मूल मुख्य शिराओं में आकर गिरती हैं पश्च पादों के आने वाली उदर शिराएं, पूंछ से आने वाला वृक्क निवाहिका तंत्र, मुख्य पाचन अंगों से आने वाला वृक्क निवाहिका तंत्र। यकृत कोटरें जिगर से रक्त लाते हैं हृदय पेशियों के हृद शिराएं रक्त लाती है और फेफड़ाश्वासी उदाहरणों में फुपफुस और पश्चमहाशिराएं और जुड़ जाती हैं।

- वृक्क निवाहिका तंत्र मछलियों में केवल पूंछ से रक्त लाता है। उभयचरों तथा सरीसृपों में यह पश्च पादों से एक संयोजन (बाह्य इलियक) ग्रहण कर लेता है। मगरमच्छों तथा पक्षियों में यह संयोजन हो सकता है। वृक्कों को बीच ही में छोड़कर सीधा पश्च महाशिरा में पहुंच सकता है। वयस्क स्तनियों में केवल मोनोट्रीमैटों को छोड़कर वृक्क निवाहिका तंत्र होता ही नही तथा पश्चपाद और पूंछ से रक्त पूरी तरह पश्चमहाशिरा द्वारा ही ले जाया जाता है।

- रक्त को एक ऐसा विशेषित संयोजी ऊतक कहा जा सकता है जिसके भीतर प्लाज्मा नामक अंतराकोशिकीय पदार्थ और प्लाज्मा में निलंबित सस्वरूप तत्व लाल रक्त कोशिकाएं, श्वेत रक्त कोशिकाएं और प्लेटलेट्स होती हैं। आपेक्षिक घनत्व 1.055 से 1.060 तक अलग-अलग होता है।

- लसीका तंत्र, सभी कशेरुकियों में पतली दीवारों वाली लसीका वाहिकाओं का बना होता है। पक्षियों तथा स्तनियों मे लसीका वाहिकाओं के बीच बीच में लसीका नोड़ें बनी होती हैं। लसीका वाहिकाएं शरीर के लगभग सभी नरम ऊतकों में पहुंच गयी होती हैं जहां से बंद सिरों वाली लसीका केशिकाओं की तरह शुरू होती है। यही केशिकाएं अंतराली द्रव को एकत्रित करती हैं, अंतराली द्रव हल्का पीला तरल होता है जिसके भीतर वे उपापचयज और स्राव होते हैं जो अंतराली अवकाशों में इकट्ठे हो गए होते हैं।

- लसीका वाहिकाएं मछलियों में व्यापक होती हैं। सतह की ओर स्थित सरणियां शीर्ष, पूंछ तथा फिनों में पहुंच गयी होती हैं। लसीका हृदय उभयचरों में पाए जाते हैं जिनके भीतर लसीका वाहिकाओं के दो मुख्य सेट पाए जाते हैं। सरीसृपों तथा पक्षियों में लसीका तंत्र सुविकसित होता है। स्तनियों में लसीका हृदय नहीं होते मगर अनेक लसीका नोडें होती हैं। शरीर का वृहत्तम लसीका अंग तिल्ली (प्लीहा) होती है।

8.9 अंत में कुछ प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर चार या पांच पक्तियों में लिखिए

1. हृदय की दीवार की सामान्य संरचना पर छोटी टिप्पणी लिखिए।

   ....

   ....

   ....

   ....

2. हृदय के विकास की मुख्य अवस्थाएं क्या रही हैं, उनके नाम लिखिए।

   ....

   ....

   ....

   ....

3. पेसमेकर किसे कहते हैं?

   ....

   ....

   ....

   ....

4. पैनिजा-रंध्र पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

   ....

   ....

   ....

   ....

5. बोटैलस-वाहिनी पर टिप्पणी लिखिए।

   ....

   ....

   ....

   ....

8.10 उत्तर

बोध प्रश्न

1. i. क्रमाकुंचनी गतियों
   ii. ऐट्रियम
   iii. ट्रैबेकुली
   iv. अंतराएट्रियम पट
   v. त्वचीय.

2 i. ह्रासित
ii. आरंभ करता है
iii. अंशतः, पूर्णतः
iv. स्क्वैमेटप्राणी तथा मगर मच्छ
v. कोएनिक्थियनप्राणी
vi. स्तनी

2 हृदय स्पंदन का प्रारम्भ शिरा कोटर की दीवारों में स्थित प्ररूपी पेशी तंतुओं के एक पूल से होता है। इसे "साइनुऑरिकुलर नोड" (SA नोड) कहते हैं। इसके आगे हृदय स्पंदन दाहिने एट्रियम की दीवार में बने एक अन्य प्ररूपी हृदय तंतुओं मे आगे बढ़ जाता है।

3. i. च
ii. क
iii. घ
iv. ख
v. ग

4. (i) दाहिनी तथा बायीं महाधमनी चापों, फुफ्फुस महाधमनी तथा महाधमनी के एक अंश का बनना।

(ii) जब तक फेफड़े कार्यशील नहीं बन जाते तब तक यह दाहिने निलय के पृष्ठ महाधमनी में को एक शण्ट का कार्य करता है।

(iii) दाहिनी ओर चौथी महाधमनी तथा दाहिने मूलांक का एक अंश ये दोनों मिलकर सबक्लेवियन धमनी बनाते हैं।

(iv) दैहिक धमनियां भ्रूणीय एपिमीयर से व्युत्पन्न देह-भागों में रक्त की आपूर्ति करती हैं तथा ग्रसनी धमनियां भ्रूणीय मीजोमीयर के व्युत्पन्न पथ तथा अन्य अंगों को रक्त की आपूर्ति करती हैं।

5. (i) पीतक कोश से आने वाली पीतक शिराएं, भ्रूण शरीर से आने वाली प्रमुख शिराएं तथा श्रोणि प्रदेश के आने वाली पार्श्व शिराएं।

(ii) सबक्लेविन तथा इलियक शिराएं रक्त को क्रमशः अंस एवं श्रोणि फिनों से लाती हैं।

(iii) पार्श्व उदर शिराएं टीलियोस्टों में नही होती मगर फेफड़ा मछलियों में वे समेकित होकर अग्र उदर शिरा बना लेती हैं जो शिरा कोटर में प्रवेश करती है।

(iv) कुवियर वाहिनियां जिनमें मूलतः सबक्लेवियन, जुगुलर तथा पश्च प्रमुख शिराएं आकर गिरती थीं एम्फिबियनों में और आगे समाहित हो गयी हैं जिन्हें अग्र महाशिराएं कहते हैं।

(v) ऐसा इसलिए कि उभयचरों में त्वचीय श्वसन और अधिक विकसित हो गया है।

6. (i) सांप
(ii) उपप्रमुख शिराओं, पीतक शिराओं
(iii) पश्च महाशिरा
(iv) पक्षी

(v) अधिकतर शिराएं
(vi) स्तनी
(vii) *एकिड्ना*
(viii) वाहिकाजनन
(ix) अंतरंग (स्प्लैंक्निक) मीजोडर्म

7. i. (क) फाइब्रिनोजेन, प्रोथ्रॉम्बिन
(ख) क्रिएटिन, यूरिया
(ग) सोडियम, पोटैशियम, कैल्सियम
(घ) हीमोग्लोबिन एक आयरन पोरफाइरिन यौगिक का बना होता है, और इसलिए यह ग्लोबिन नाम के एक प्रोटीन से सहसंयोजित होता है। हीम घटक का पाया जाना सभी हीमोग्लोबिनों का एक स्थायी लक्षण होता हैं मगर ग्लोबिन अंश अलग-अलग कशेरुकियों में भिन्न हो सकता है।

(ii) क-ii, ख-i, ग-iv, घ-iii, च-vii, छ-v, ज-vi, झ-viii, ट-x, ठ-ix.

अंत में कुछ प्रश्न

1) हृदय में तीन परतें होती हैं जो इस प्रकार हैं-:
(क) एंडोकार्डियम- भीतरी दीवार जिसमें एंडोथीलियम तथा प्रत्यास्थ ऊत्तक आते हैं।
(ख) मत्स्ययी-एंडो तथा एपिकार्डियम के बीच का पेशीय भाग।
(ग) एपिकार्डियम- बाहरी तंतुकी ट्यूनिका, जिसके ऊपर अंतरंग परिहृद (सीलोम का उपविभाजन) ढका होता है।

2 हृदय के विकास की विभिन्न अवस्थाएं इस प्रकार हैं-:
(क) प्रोटोकॉर्डेट अवस्था जिसमें आहार नाल गत ग्रसनी नहीं होती
(ख) मत्स्ययी अवस्था जिसमें ग्रसनी गिलश्वासी होती है
(ग) आरम्भिक चपुष्पाद अवस्था जिसमें आदिम फेफड़े होते हैं।
(घ) बाद की चतुष्पाद अवस्था जो उच्चतर बाह्यतापियों में पायी जाती हैं
(च) अंत:तापी चतुष्पादों की अवस्था

3) उस उत्तेजनाकारी ऊतक को, जो हृदय स्पंदन के समारंभन के लिए उत्तदायी होता है और दाहिने एट्रियम की दीवार में गड़ा रहता है, साइनुऑरिकुलर (SA) नोड अथवा साइनुएट्रियल नोड कहते हैं। इसे हृदय का पेसपेकर (शीजनी केंद्र) भी कहते हैं।

4) मगरमच्छों में, जिनमें बायीं महाधमनी चाप होती है अपने ही (दाहिने) निलय से रक्त प्राप्त नहीं करते, क्योंकि अर्धचंद्र वाल्व वास्तव में रक्त को निलय से महाधमनी में नही प्रवाहित होने देते, ऐसा प्रवाह केवल असाधारण तनाव की स्थिति में ही होता है। बायीं महाधमनी चाप रक्त को पेनिज़ा-रंध्र में से प्राप्त करती हैं जो दाहिनी और बायीं चापों को जहां वे थोड़ी सी दूर तक एक दूसरे के ऊपर से जाती हैं परस्पर जोड़ता है।

5) सेंलिएंशियन उभयचरों में, महाधमनी चाप का वह अंश जो शुरू में फुफ्फस धमनी तथा मूलांक के बीच बना होता है उसे डक्टस आर्टीरिओसस अथवा बोटैलस-वाहिनी कहते हैं। कायांतरण के समय यह विलीन हो जाती है।

शब्दावली

ऐबोमैसम (**Abomasum**): जटिल रोमंथी आमाशय के चार कक्षों में से अंतिम कक्ष, यह अन्य कशेरुकियों के आमाशय के समजात होता है।

अभिवाही (**Afferent**): भीतर को लाने वाला।

श्रृंगाभ (**Antler**): कुछ आर्टियोडैक्टाइल स्पीशीज़ में उनकी करोटि हड्डियों से बाहर को उग आयी हुई विशाखित एवं नग्न हड्डी; ये प्राय: परिपक्व नरों में वार्षिक रूप में बनते है और अप्रजनन ऋतु के दौरान झड़ जाते हैं।

ऐप्नीया (**Apnea**) (श्वास रोध): सांस का अस्थायी तौर पर रुक जाना

धमनी (**Artery**): रक्त वाहिका जो रक्त को हृदय से दूर ले जाती है।

अलिंद (**Auricle**): हृदय का रक्त-प्राप्तकर्ता कक्ष।

बेलीन (**Baleen**): ह्वेलों की कुछ स्पीशीज़ में किरैटिनीकृत छलनी प्लेटें जो उनके मुख की त्वचा में से निकलती हैं।

बोलस (**Bolus**): मुख अथवा आमाशय में आहार का नरम पिंड; "काइम" से तुलना कीजिए।

लघुदंती (**Brachydont**): निचले किरीटियों से युक्त दांत से संबंधित। तुंगदंती से तुलना कीजिए।

वप्रदंती (**Bunodont**): भरे हुए प्यालों से युक्त दांतों से संबंधित। शिखरदंती तथा शशिदंती से तुलना कीजिए।

दारकदंत (**Carnassials**): कार्निवोरों के सेक्टोरियल दांत जिनमें ऊपरी अग्रचर्वणक तथा निचले चर्वणक आते हैं।

सीकम (**Caecum**) (अंधनाल): अंतड़ियों से बाहर को निकला अंतिम सिरे पर बंद कोष्ठ।

सीमेंटम (**Cementum**): दांतों की जड़ों में प्राय: बन जाने वाली कोशिकीय एवं अकोशिकीय परतें, किंतु कुछ शाक भक्षियों में ये परतें अधिविष्ट सतह बनाती हैं।

काइम (**Chyme**): आमाशय से निकलकर अंतड़ी में पहुंचने वाले अधपचे भोजन का तरलीकृत बोलस। बोलस से तुलना कीजिए।

क्रॉप (**Crop**): ग्रसिका का एक थैले-जैसा प्रसार।

त्वचिक श्वसन: त्वचा के द्वारा रक्त और पर्यावरण के बीच सीधा गैस-विनिमय।

डेंटिन (**Dentin**): पदार्थ जो दांत का स्थूल भाग बनाता है और संरचना की दृष्टि से यह हड्डी के समान मगर उससे अधिक कड़ा, रंग में पीला और अकार्बनिक हाइड्राक्सीपिटाइट क्रिस्टलों और कोलैजेन का बना होता है जिसका स्रवण तंत्रिका किरीट उद्भव के ओडाण्टोप्लास्टों से होता है।

दंतविन्यास (**Dentition**): दांतों का समुच्चय।

डर्मिस पैपिला (**Dermal papilla**): दांत बनाने वाले आद्यांश का वह भाग जो तंत्रिका किरीट से व्युत्पन्न होता है, इनैमल अंग से संबंधित हो जाता है और ओडोण्टोप्लास्टों से विभेदित हो जाता है जो डेंटिन का स्रवण करते हैं। देखिए इनैमल अंग।

डर्मिस (**Dermis**): त्वचा की वह परत तो एपिडर्मिस (अधिचर्म) के नीचे स्थित होती और मीज़ोडर्म से व्युत्पन्न होती है।

पाचन (**Digestion**): खाद्यों का यांत्रिक एवं रासायनिक भंजन होकर उनके आधारभूत अंत्य उत्पाद बनना, ये उत्पाद प्राय: सरल कार्बोहाइड्रेट, ऐमीनो अम्ल, वसा अम्ल होते हैं जो रक्तधारा में अवशोषित होते हैं।

द्विवारदंती (**Diphoyodont**): दांतों के प्रतिस्थापन के एक प्रतिरूप जिनमें दांतों के दो सेट होते हैं, प्राय: दूध के दांत और पक्के दांत।

बाह्यतापी (**Ectotherm**): ऐसा प्राणी जो अपनी देह के तापमान का नियमन करने के लिए पर्यावरण-स्रोत की ऊष्मा पर निर्भर होता है।

अपवाही (**Efferent**): बाहर को, दूर ले जाने वाला

पायसीकरण (**Emulsify**): वसाओं को सूक्ष्मतर बुंदको में तोड़ना। पाचन से तुलना कीजिए।

इनैमल (Enamel): अधिकतर दांतों पर अधिवेष्ठन आवरण; कशेरुकी शरीर में कठोरतम पदार्थ जो लगभग पूर्णत: ऐपेटाइट क्रिस्टलों के रूप में कैल्सियम लवणों का बना होता है। जिसका स्रवण एपिडर्मिल उद्भव के ऐमेलोब्लास्टों से होता है। डेंटिन तथा सीमेंटम देखिए।

इनैमल अंग (Enamel organ): दांत बनाने वाले आद्यक का अंश, जो एपिडर्मिस से व्युत्पन्न होता है, डर्मिसी पैपिला से संबंधित हो जाता है, और ऐमेलोब्लास्टों में विभेदित हो जाता है जिससे इनैमल का स्रवण होता है। देखिए डर्मिसी पैपिला

एंडोकार्डियम (Endocardium): हृदय की गुहाओं का अस्तर।

अंत:तापी (Endotherm): ऐसा प्राणी जो उपापचयी प्रक्रियाओं के परिणामस्वरूप देह के भीतर पैदा होने वाली ऊष्मा द्वारा ऊँचा देह ताप बनाए रखता है।

एपिकार्डियम (Epicardium): हृदय को ऊपर से ढ़कती हुई अतरंग पेरिटोनियम।

अग्रांत्र (Foregut): भ्रूण आहार नाल का अग्र भाग जिससे ग्रसनी, ग्रसिका, आमाशय तथा अग्रांत्र बनते हैं, पश्चांत्र से तुलना कीजिए।

गिल-दरार (Gill cleft): ग्रसनी दरार जो गिल से संबंधित होती हैं।

अर्धगिल (Hemibranch): गिल चाप जिसमें पटलिकाएं केवल एक दिशा में ही होती हैं।

यकृतिक (Hepatic): यकृत के संबंधित।

विषमदंती (Heterodont): वह दंत विन्यास जिसमें पूरे मुख के भीतर के दंतों का सामान्य स्वरूप भिन्न होता है

अल्पाक्सीयता (Hypoxia): उपापचयी मांगों को चला सकने के लिए अपर्याप्त आक्सीजन स्तर।

केरैटिन (Keratin): तंतुकी प्रोटीन।

केरैटिनीकरण (Keratinization): प्रक्रिया जिसके द्वारा त्वचा प्रोटीनों विशेषकर केरैटिन को बनाने लगती है।

ओमैसम (Omasum): सम्मिश्र रोमंथी आमाशय के चार कक्षों में से तीसरा कक्ष; ग्रसिका का विशेषीकरण। ऐबोमैसम, रेटिकुलम तथा रूमेन देखिए।

कूटगिल (Pseudobranch): भ्रूण-विज्ञान की दृष्टि से प्रथम गिल-दरार जो घटकर एक छोटा छिद्र स्पाइरेकल बन जाता है जिसमें एक अति ह्रासित अर्धगिल होता है जिसे कूटगिल कहते हैं।

रेटिकुलम (Reticulum): सम्मिश्र रोमंथी आमाशय के चार कक्षों में से दूसरा कक्ष; ग्रसिका का विशेषित प्रदेश। ऐबोमैसम, ओमैसम तथा रूमेन से तुलना कीजिए।

रूमेन (Rumen): सम्मिश्र रोमंथी आमाशय के चार कक्षों में से पहला कक्ष, ग्रसिका का प्रसृत विशेषीकरण। ऐबोमैसम, ओमैसम, तथा रेटिकुलम से तुलना करता है।

रोमंथी (Ruminant): अपरा-स्तनी जिसमें एक रूमेन होता है जो पाचन पथ का विशेषित प्रसार होता है तथा जिसके भीतर पादप सामग्री का प्रक्रमन होता है, रूमिनैंशिया।

शशिदंती (Selenodont): दांत जिनमें नव चंद्र आवृति के दंताग्र होते हैं; जैसे कि आर्टियोडैक्टाइलों में, वप्रदंती तथा शिखरदंती से तुलना कीजिए।

कोटर (Sinus): किसी अंग अथवा ऊतक में पायी जाने वाली गुहा (हृदय में शिरा कोटर)।

शिराएं (Veins): रक्त वाहिकाएं जो रक्त को हृदय की ओर ले जाती हैं।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. The Life of Vertebrates, J.Z. Young (Third Edition) ELBS Oxford University Press.
2. The Vertebrates Body, A.S. Romer and T.S. Parson (Sixth Edition) CBS College Publishing.
3. कॉर्डेटा संरचना एवं उद्विकास, डैनिस जेकब, आशा शर्मा, कुमकुम नन्दचहल (1994) रमेश बुक डिपो, जयपुर।

NOTES

NOTES

NOTES

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

UGZY -02
प्राणि विविधता–II

खंड

3

कार्डेटों का कार्यात्मक शारीर-II

इकाई 9

मूत्रजनन तंत्र 5

इकाई 10

तंत्रिका तंत्र तथा संवेदी अंग 60

इकाई 11

कंकाल तंत्र 107

इकाई 12

अंतःस्रावी तंत्र 155

खण्ड 3 कॉर्डेटों का कार्यात्मक शारीर-II

इससे पहले के दो खण्डों में आपने सीखा था कि कॉर्डेट शरीर, अपने भागों, अवयवों का एक मात्र संयोग ही नहीं वरन् उससे बहुत कुछ अधिक है। यह अनेक जीवनाधारी कार्य सम्पन्न करता है जो शरीर-पर्यावरण सीमाओं, से संबंधित है- जैसे कि आलम्ब एवं गति, आहार संसाधन एवं पोषण, गैस-विनिमय, जल संतुलन एवं देह तरल, भीतरी परिवहन, संवेदी कार्यविधियां, समन्वय एवं समाकलन तथा जनन। पिछले खण्ड में इनमें से कुछ तंत्रों का वर्णन किया गया है। खण्ड 3 पिछले खण्ड से जुड़ा हुआ विषय-वर्णन है, इस खण्ड में हम अन्य कॉर्डेट तंत्रों– मूत्रजनन, तंत्रिकीय, कंकाल तथा अंत:स्रावी तंत्रों का वर्णन करेंगे।

इकाई-9 मूत्रजनन तंत्र में, कॉर्डेटों में उत्सर्गी तथा जनन तंत्रों का वर्णन किया गया है। प्राणियों की क्रमविकासीय उत्तरजीविता उनके सफलतापूर्वक जनन करने पर निर्भर होती है और जनन तंत्र की प्राथमिक जैविक भूमिका भी यही है। उधर दूसरी ओर मूत्र तंत्र का संबंध विद्युत्-अपघट्य संतुलन का नियमन करता है। यद्यपि उत्सर्गी तथा जनन कार्य सर्वथा भिन्न होते हैं फिर भी हमने इन्हें मूत्रजनन तंत्र में ही शामिल कर लिया है क्योंकि ये दोनों तंत्र वाहिनियों का साझा इस्तेमाल करते हैं तथा भ्रूणविज्ञानीय दृष्टि से दोनों के संबद्ध अंग एक ही अथवा सहवर्ती मीसोडर्मल ऊतक से विकसित होते हैं तथा दोनों शारीरीय रूप से निकटता से संबंधित रहते हैं।

सामान्य कार्य के लिए संरचनात्मक आलम्ब आवश्यक है तथा अपेक्षाकृत अधिक शारीरिक आकार वाले जीवधारियों के लिए तो यह खास तौर से क्रांतिक होता है। आलंब का अर्थ मात्र प्राणी को नीचे गिरने से रोके रखना ही नहीं है। छिद्रों को आलंब प्रदान करना होता है ताकि पदार्थ उनमें से जा सकें और कार्यरत बलों के रहते हुए वे पिचक न पाएं। शरीर के अंगों की कोमल संहति को सुरक्षित रखना आवश्यक है और संरचनात्मक पदार्थ द्वारा उन्हें भीतर से मज़बूत बनाना होता है। सभी कॉर्डेटों में एक अंत:कंकाल होता है जो निम्नतम कॉर्डेट उदाहरणों में केवल नोटोकॉर्ड (पृष्ठरज्जु) होता है। जैसे-जैसे आगे प्राणियों का विकास होता गया उनमें कार्टिलेज तथा हड्डी का अथवा दोनों के संयोजन का भीतरी कंकाल विकसित होता गया जिसने सामान्य कार्यान्वयन के लिए आवश्यक संरचनात्मक आलम्ब प्रदान किया। इकाई-11 कंकाल तंत्र, में कशेरुकियों के अक्षीय एवं अनुबंधी कंकाल का तुलनात्मक वर्णन प्रस्तुत किया गया है। जिसके साथ-साथ पादों के कंकाल के रूपांतरण भी बताए गए हैं।

समाकलन के कुछ ऐसे साधन भी स्थापित होने आवश्यक हैं जो प्राणी के समूचे शरीर से अथवा प्रभावित भाग द्वारा बाहरी एवं भीतरी उद्दीपनों के प्रति समन्वित एवं अर्थपूर्ण अनुक्रियाएं प्रदान करा सकें। तंत्रिका तंत्र की तंत्रिका कोशिकाएं तथा अंत:स्रावी ग्रंथियां – ये ही इस समन्वयकारी तंत्र के दो मुख्य घटक हैं। समस्त शरीर में फैली हुई तंत्रिकाओं के माध्यम से तंत्रिका तंत्र एक सेकंड से भी कम के समय में अपना प्रभाव दर्शाता है और अंत:स्रावी ग्रंथियां अधिक धीमी गति से समन्वयकारी होती हैं जो रक्त एवं लसीका वाहिकाओं के माध्यम से अपने स्रावों को शरीर में पहुंचाती हैं जिनका प्रभाव कई-कई दिन अथवा कई-कई सप्ताह तक जारी रहता है। इन दो तंत्रों का समाकलन बहुत जटिल होता है और दोनों को पृथक करना कठिन है। सुविधा की दृष्टि से हमने इन्हें दो अलग-अलग इकाइयों -- इकाई-10 तथा इकाई-12 में लिया है।

इकाई 10 में तंत्रिका तंत्र तथा संवेदी अंगों की चर्चा है। हमने तंत्रिका तंत्र तथा मस्तिष्क की संघटना का, विभिन्न कशेरुकी समूहों में इनके कार्य के संदर्भ में विवेचन किया है। तंत्रिका तंत्र से संबंधित कुछ विशिष्ट संवेद ग्राही अंग होते हैं जो उद्दीपनों के प्रति अनुक्रिया

कर सकते हैं एवं उन्हें केंद्रीय तंत्रिका तंत्र तक प्रेषित करते हैं। मस्तिष्क के उच्चतर केंद्रों में उद्दीपनों को संवेदनाओं के रूप में ग्रहण किया जाता है। हमने आधारभूत संवेदी अंगों तथा आवासों के संबंध में कशेरुकियों में विकसित कुछ विशेष संवेदी अंगों का विवेचन किया है।

इकाई-12 में विभिन्न कशेरुकी फाइलमों में समन्वयकारी तंत्र के दूसरे भाग अर्थात् अंत:स्रावी तंत्र का वर्णन किया गया है। एक यह तथ्य याद रखना आवश्यक है कि थोड़े-थोड़े गौण अंतरों को छोड़कर कई अंत:स्रावी ग्रंथियां सभी कशेरुकी वर्गों में समान होती हैं। अंत:स्रावी तंत्र बनाने वाले अंग समूचे शरीर में वितरित पाए जाते हैं, ये भ्रूणीय उद्भव में बहुत अलग-अलग होते हैं और प्राय: अन्य अंग-तंत्रों के भाग होते हैं। यद्यपि इनमें प्रत्येक ग्रंथि का अपना-अपना विशिष्ट कार्य होता है फिर भी उनसे स्रावित हार्मोनों में परस्पर कार्यात्मक संबंध पाया जाता है।

उद्देश्य

इस खण्ड का अध्ययन कर चुकने के बाद आप

- कॉर्डेटों के मूत्रजनन तंत्र का तुलनात्मक वर्णन प्रस्तुत कर सकेंगे,
- कशेरुकी मस्तिष्क का तुलनात्मक वर्णन कर सकेंगे और उसके कार्यों के साथ उसका विकासक्रम बता सकेंगे,
- कशेरुकियों में आधारभूत तथा विशेषित संवेदी अंगों का वर्णन कर सकेंगे,
- कशेरुकी शरीर में विभिन्न अंत:स्रावी ग्रंथियों की स्थिति, उनकी संरचना, उनके कार्य एवं स्रावों का वर्णन कर सकेंगे,
- अंत:कंकाल के लाभ और विभिन्न कशेरुकियों में उनके रूपांतरण समझा सकेंगे।

इकाई 9 मूत्रजनन तंत्र

इकाई की रूपरेखा

9.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
9.2 कॉर्डेटों में मूत्र तंत्र
प्रोटोकॉर्डेटों के मूत्र तंत्र
कशेरुकियों के मूत्र तंत्र
9.3 मूत्र तंत्र का भ्रूणीय परिवर्धन
9.4 मूत्रजन नलिकाएँ
9.5 वृक्क
वृक्क की संरचना
वृक्क में रक्त परिसंचरण
9.6 वृक्कों का जातिवृत्त एवं अनुक्रमण
9.7 मूत्र तंत्र के कार्य
9.8 मूत्र तंत्र योजनाओं में विभिन्नताएँ
आवास संबंधित संरचनात्मक विभिन्नताएँ
विभिन्न कशेरुकी समूहों के कशेरुकियों में मूत्र तंत्रों की विभिन्नताएं
9.9 जनन तंत्र
गोनडों तथा युग्मकों का भ्रूणीय उद्भव
जनन तंत्र के कार्य
प्रोटोकॉर्डेटों का जनन तंत्र
9.10 कशेरुकियों का नर जनन तंत्र
वृषण
नर जननिक वाहिनी
सहायक लिंग ग्रंथियां
अंत:प्रवेशी अंग
9.11 कशेरुकियों का मादा जनन तंत्र
अंडाशय
मादा जननिक वाहिनियां
मादा सहायक ग्रंथियां
बाह्य मादा जननेन्द्रिय
स्तनीय अंग
9.12 कशेरुकियों में गोनडों का सर्वेक्षण
9.13 सारांश
9.14 अंत में कुछ प्रश्न
9.15 उत्तर

9.1 प्रस्तावना

जैसा कि आप जानते ही हैं उत्सर्जन तथा परासरणनियमन (देखिए LSE-05 इकाई 4) ऐसी दो समस्थापनी (homeostatic) प्रक्रियाएँ हैं जो वृक्कों एवं मूत्र वाहिनियों द्वारा सम्पन्न की जाती हैं। ये वृक्क तथा मूत्र वाहिनियाँ मिलकर **मूत्र तंत्र** बनाते हैं। यह तंत्र शारीरीय तौर पर एवं भ्रूणीय उद्भव की दृष्टि से भी जनन-तंत्र के साथ निकटत: सह संबंधित होता है। जनन तंत्र में गोनड (जनद) आते हैं जिनमें युग्मक (गैमीट) बनते हैं और वे जनन वाहिनियां भी आती हैं जो युग्मकों (नरों में शुक्राणुओं तथा मादाओं में अंडों) के लिए मार्ग

का काम करती हैं। मूत्र एवं जनन तंत्र, हालांकि कार्य की दृष्टि से भिन्न होते हैं मगर इनका एक साथ अध्ययन इसलिए किया जाता है क्योंकि ये दोनों ही धड़ मीज़ोडर्म (trunk mesoderm) के एक ही विखंडीय खंडों या संलग्न ऊतकों से परिवर्धित होते हैं तथा दोनों में कई वाहिनियां समान यानि एक ही होती हैं। इस प्रकार इन दोनों तंत्रों में कुछ भी कार्यात्मक समानता न होते हुए भी वे अपनी समान वाहिनियों के उपयोग के कारण एक-दूसरे से निकटत: सहबंधित होते हैं और इसीलिए इनका अध्ययन एक साथ मूत्रजनन तंत्र के सामान्य शीर्षक के अंतर्गत रखकर किया जाता है। इस इकाई में आप मूत्रजनन तंत्र के भ्रूणीय परिवर्धन, कशेरुकियों में इनकी मूलभूत योजना एवं विभिन्न कार्डेट समूहों में इनकी विभिन्नता के विषय में जानेंगे। साथ ही आप विशिष्ट आवासों में रहने वाले कशेरुकियों के मूत्र तंत्र की अनुकूलन विभिन्नताओं के विषय में भी अध्ययन करेंगे।

उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- प्रोटोकॉर्डेटों, सेफ़ैलोकॉर्डेटों तथा यूरोकॉर्डेटों के मूत्रजनन तंत्र का वर्णन कर सकेंगे एवं उनके चित्र बना सकेंगे,
- कशेरुकियों में मूत्रजनन तंत्र की मूलभूत योजना को चित्र द्वारा दर्शा सकेंगे एवं उसका वर्णन कर सकेंगे,
- मछलियों, ऐम्फ़िबियनों, रेप्टाइलों (सरीसृपों), पक्षियों तथा स्तनियों के मूत्रजनन तंत्र का तुलनात्मक वर्णन कर सकेंगे,
- वृक्कों, गोनडों तथा उनकी संबद्ध वाहिनियों के उद्भव एवं भ्रूणीय परिवर्धन का वर्णन कर सकेंगे, और
- कशेरुकियों के मूत्रजनन तंत्र के आकारिकीय एवं कार्यिकीय अनुकूलनों का विवेचन कर सकेंगे।

9.2 कॉर्डेटों में मूत्र तंत्र

9.2.1 प्रोटोकॉर्डेटों के मूत्र तंत्र

प्रोटोकार्डेटों (प्रागज्जु संघ) जैसे कि सेफ़ैलोकॉर्डेट (जिसका उदाहरण है *ब्रैंकियोस्टोमा* यानि ऐम्फ़िऑक्सस) तथा यूरोकॉर्डेटा (उदाहरण : *हर्डमानिया*) का मूत्रजनन तंत्र कशेरुकियों के मूत्रजनन तंत्र से संरचना तथा उद्भव दोनों में ही भिन्न होता है (देखिए इसी पाठ्यक्रम की इकाई 1)

सेफ़ैलोकॉर्डेटा (Cephalochordata = शीर्ष कशेरुक)

शरीर रचना के अन्य पहलुओं में कशेरुकियों से समानताएं होने के बावजूद सेफ़ैलोकॉर्डेट के *ब्रैंकियोस्टोमा* (ऐम्फ़िऑक्सस) के विशेषित उत्सर्जन अंग कशेरुकी वृक्क के किसी भी भाग से अथवा किसी भी अन्य ज्ञात तरल-नियमनकारी संरचना के साथ कोई संबंध नहीं दर्शाते।

ब्रैंकियोस्टोमा के उत्सर्जन अंग प्रोटोनेफ़्रीडिया (protonephridia = आदिवृक्कक) होते हैं- इन संरचनाओं का उद्भव एक्टोडर्म से होता है, जबकि कशेरुकी वृक्कों का उद्भव मीज़ोडर्म से होता है। प्रोटोनेफ़्रीडिया (चित्र 9.1) खंडीय रूप से व्यवस्थित थैली जैसी नलिकाएं होती हैं जो ग्रसनी के ऊपर प्रगुहाओं (coelom = सीलोम) अर्थात् एट्रियम में स्थित होती हैं। प्रत्येक प्रोटोनेफ़्रीडियम (protonephridium : plural or protonephridia : singular) परिक्लोम (peribranchial) अर्थात् एट्रियम गुहा में खुलती हैं। यह गुहा गिलों को भी घेरे रहती हैं। प्रोटानेफ़्रीडियम के तरल उत्सर्जी उत्पाद एट्रियम में छोड़े जाते हैं ताकि बाहर को बहने वाली जल धारा के साथ वे भी बाहर निकाल दिए जाएं। सीलोम थैलों के भीतर प्रोटोनेफ़्रीडियम अंधत: (बिना खुले) समाप्त होती है। (इसी इकाई का चित्र 9.17a भी देखिए)।

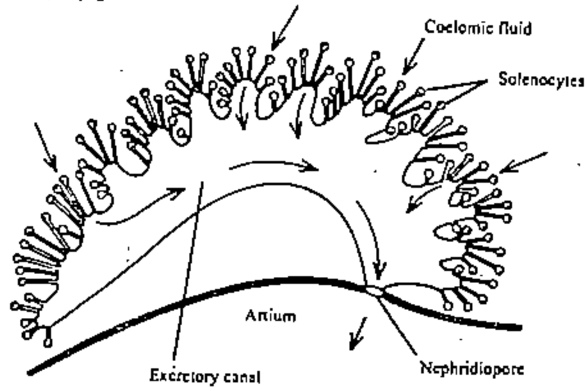

चित्र 9.1: *ब्रैंकियोस्टोमा* का प्रोटोनेफ़्रीडियम (protonephridium) (तीर के निशान तरल का प्रवाह पथ दर्शाते है)।

प्रोटोनेफ़्रीडियल थैले में बहुसंख्यक विशेषित नलिकाकार ज्वाला यानि लौ कोशिकाएं (flame cells) होती हैं जिन्हें सॉलीनोसाइट (solenocyte=नालोत्सर्ग कोशिकाएं) कहते हैं (चित्र 9.2)। प्रत्येक सॉलीनोसाइट में एक अकेला कशाभ (flagellum) होता है जोकि नीचे की तरफ़ प्रोटोनेफ़्रीडियल नली अथवा नाल में निकला रहता है। कशाभ में लगातार स्पंदन होता रहता है जिससे शायद तरल प्रोटोनेफ़्रीडियम में बलपूर्वक पहुँचाया जाता है। सॉलीनोसाइट सही-सही किस तरह कार्य करते हैं, यह अभी तक स्पष्ट नहीं है। क्योंकि सॉलीनोसाइटों के दूरस्थ सिरे क्लोम रक्त वाहिकाओं (branchial blood vessels) के निकट स्थित होते हैं इसलिए हो सकता है कि वे क्लोम रक्त वाहिकाओं की शाखाओं से रक्त तरलों को फ़िल्टर (निस्यंदन) करने में सहायता करते हों। इस प्रक्रिया के दौरान हो सकता है कि कुछ तरल घटक जैसे कि आयन (ion) देह में वापिस लौटा दिए जाते हों (चित्र 9.1)।

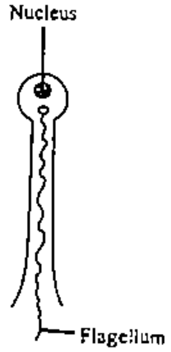

चित्र 9.2: एक अकेली लौ या ज्वाला कोशिका (flame cell) यानि सॉलीनोसाइट (solenocyte) का आवर्धित चित्र।

यूरोकॉर्डेटा

यूरोकॉर्डेट जैसे कि *हर्डमानिया* में तंत्रिक (न्यूरल) ग्रंथि को उत्सर्जी अंग माना जाता है (चित्र 9.3)। यह अंग तंत्रिका गुच्छिका (गैंग्लियॉन) अर्थात् मस्तिष्क, के ऊपर मैंटल (प्रावार) में अंत:स्थापित होता है। तंत्रिका ग्रंथि में कुछ केंद्रीय नलिकाएं होती हैं जिनमें से परिधीय नलिकाएं निकलती हैं। केंद्रीय नलिकाएं एक अनुदैर्ध्य नाल (longitudinal canal) में खुलती हैं। यह अनुदैर्ध्य नाल पक्ष्माभी (ciliated=सिलियांयित या सिलियायुक्त) कीप के द्वारा पृष्ठ गुलिका (dorsal tubercle) की तली अर्थात् अधस्तल पर खुलती है। उत्सर्जी कोशिकाओं को नेफ़्रोसाइट (nephrocyte) अथवा वृक्का कोशिका कहते हैं। ये रक्त में

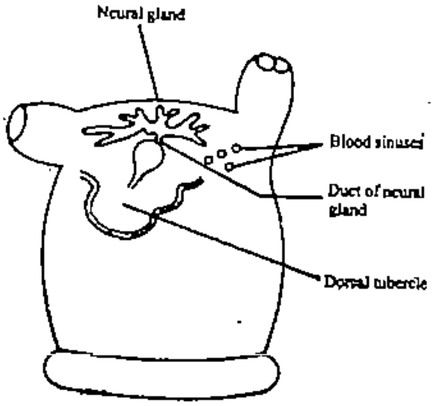

चित्र 9.3: *हर्डमानिया (Herdmania)* की तंत्रिक ग्रंथि।

पायी जाती हैं और इनका कार्य ज़ैंथीन (xanthene) तथा यूरेटों (urates) के रूप में पाए जाने वाले अपशिष्टों को एकत्र करना होता है। अपशिष्ट पदार्थ तंत्रिक ग्रंथि और उसकी वाहिनी की अवकाशिका द्वारा गुज़रते हैं और अंततः ग्रसनी में छोड़ दिये जाते हैं। साथ ही तंत्रिक ग्रंथियाँ अंतःस्रावी कार्य भी करती हैं क्योंकि इन्हीं से अंडनिक्षेपण, परिवर्धन तथा कायांतरण का भी नियंत्रण होता है।

9.2.2 क़शेरुकियों के मूत्र तंत्र

मूत्रजनन तंत्र की मूलभूत योजना सभी कशेरुकियों में एक ही होती है। मूत्र अंग तंत्र उदर क्षेत्र में स्थित होता है। (चित्र 9.4 a तथा b) और इसमें उत्सर्जन एवं परासरणनियमन (osmoregulation) के मुख्य अंग युग्मित वृक्क होते हैं। ये वृक्क प्रगुहा (सीलोम) के पृष्ठ में (पश्चपर्युदर्य=retroperitoneal) स्थित होते हैं। यहाँ युग्मित वृक्कों में से प्रत्येक वृक्क पृष्ठ महाधमनी के दोनो तरफ़ स्थित होता है। वृक्क के मूलभूत संघटक सूक्ष्म मूत्रजन नलिकाएं (uriniferous tubules) होती हैं जो बन्द सिरे की ओर से रक्त से निस्यंद (फ़िल्टरेट) प्राप्त करती हैं। मूत्रजन नलिकाओं के दो भाग होते हैं- नेफ़्रॉन (nephron) तथा संग्राहक नलिका (collecting tubules)। मूत्रजन नलिकाओं का प्राथमिक कार्य रक्त में से अधिशेष जल, लवण, अपशिष्ट उपापचयजों (metabolites) एवं अन्य प्रकार के पदार्थों को अलग करना है। ऐसी बहुसंख्यक नलिकाएं जुड़कर एक मूत्र- अथवा उत्सर्जी वाहिनी तंत्र बनाती हैं जिसे मूत्रवाहिनी (ureter) कहते हैं और इसका कार्य मूत्र को वृक्क से मूत्राशय में ले जाना होता है। प्रत्येक वृक्क की मूत्रवाहिनी एक मूत्राशय में खुलती है जो अधिकतर चतुष्पादों (tetrapods) में एक अकेली मध्यक (median) संरचना होती है। मूत्राशय का कार्य एक संग्रहागार (reservoir) के जैसा है जिसमें मूत्र बाहर छोड़ने से पूर्व संग्रहित होता है। मूत्राशय का निर्माण अवस्कर (cloaca) से निकली एक अधर बहिर्वृद्धि के रूप में होता है। यह मूत्राशय एक छोटी नलिका मूत्रिका अथवा मूत्रमार्ग (urethra) द्वारा शरीर की बाह्य सतह पर खुलती है। इस प्रकार यह मूत्रिका मूत्राशय से निकलकर या तो अवस्कर में या सीधे ही बाहर को खुलती है।

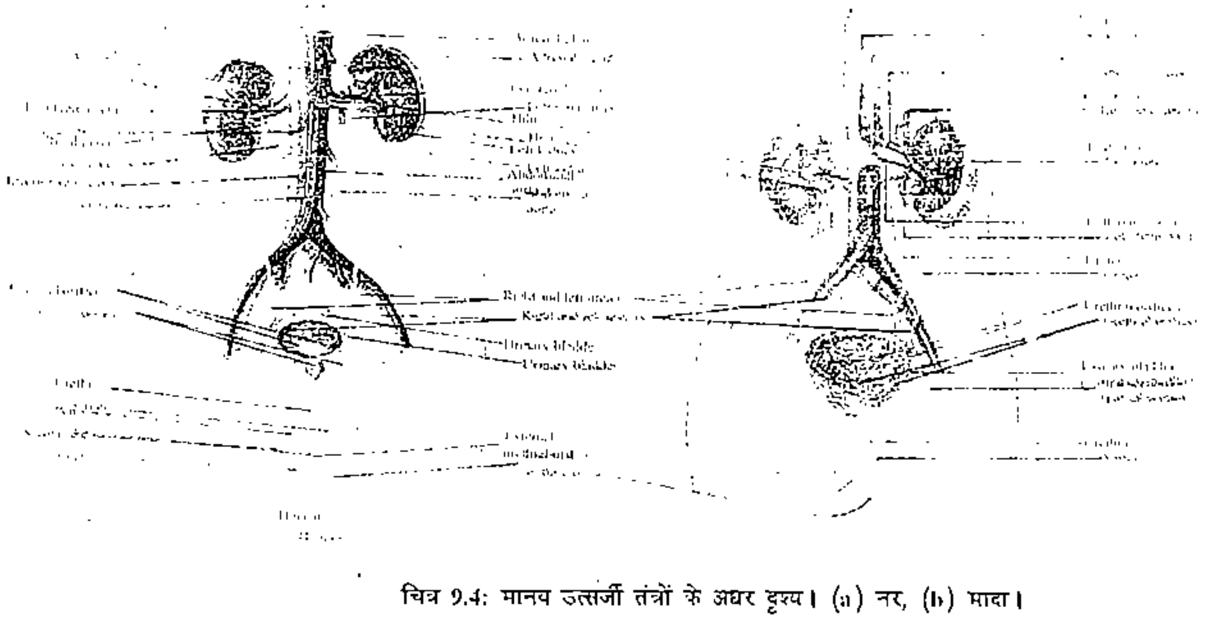

चित्र 9.4: मानव उत्सर्जी तंत्रों के अधर दृश्य। (a) नर, (b) मादा।

9.3 मूत्र तंत्र का भ्रूणीय परिवर्धन

मूत्रजनन तंत्र का उद्भव मीज़ोडर्म से होता है। भ्रूण की पृष्ठ तथा पश्च देह-भित्ति में स्थित मध्यक मीज़ोडर्म से वृक्क की उत्पत्ति होती है। इसका विभेदन आरम्भ होते ही मध्यक मीज़ोडर्म का यह पश्च क्षेत्र फैलकर नेफ़्रिक कटक (nephric ridge) यानि वृक्कीय कटक बना लेता है जो देह गुहा की पृष्ठ दीवार से थोड़ा उभरा होता है (चित्र 9.4a)। तदुपरांत

मध्यक मीज़ोडर्म के पश्च भाग से युग्मित नेफ्रोटोम (आदिवृक्क खंड) बनते हैं। जो नेफ्रिक अर्थात् वृक्काणु नलिकाओं के पूर्वगामी होते हैं (चित्र 9.5c)।

नेफ्रोटोम अक्सर खंडयुक्त होता है और शीघ्र ही उसमें विभेदन होकर खंडशः व्यवस्थित नलिकाओं की एक श्रृंखला बन जाती है। ऐसी प्रत्येक नलिका में एक नेफ्रोसील (वृक्कगुहा) होती है। यह नेफ्रोसील एक प्रगुहा यानि सीलोमी कक्ष होता है, जो एक सिलियायुक्त यानि पक्ष्माभी पेरिटोनियमी फनल (पर्युदर्या कीप) द्वारा सीलोम में खुलती है। उसके बाद नेफ्रोटोम का मध्यक सिरा चौड़ा होकर एक पतली भित्ति वाला वृक्क कैप्स्यूल यानि संपुट (renal capsule) बन जाता है और इस कैप्स्यूल के भीतर धमनीय केशिकाओं का एक गुच्छा प्रवेश होता है जिसे ग्लोमेरूलस (glomerulus) अर्थात् केशिका गुच्छ कहते हैं। नेफ्रोटोम के पार्श्व सिरे से बहिर्वृद्धियां निकलती हैं। ये बहिर्वृद्धियां समेकित होकर एक सम्मिलित नेफ्रिक वाहिनी बना लेती हैं (चित्र 9.5c)। अब इस नेफ्रोटोम को सही अर्थ में

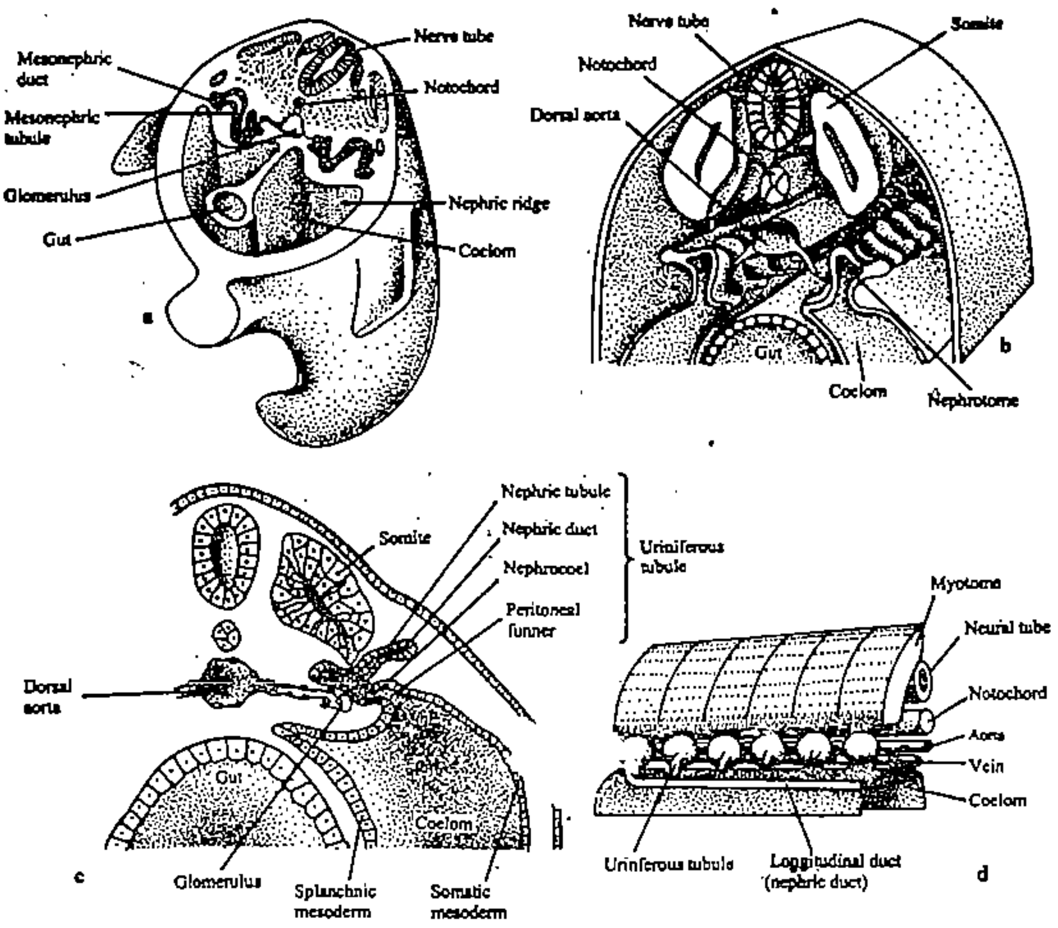

चित्र 9.5: कशेरुकियों में नेफ्रिक नलिकाओं का भ्रूणीय परिवर्धन। (a) भ्रूण (निचला भाग) जिसमें परिवर्धनशील वृक्क (नेफ्रिक कटक) दिखाई पड़ रहा है; (b) भ्रूण का सेक्शन जिसमें मध्यक मीज़ोडर्म के पश्च भाग में खंडीय नेफ्रोटोम का प्रकट होना दिखाई पड़ रहा है; (c) परिवर्धनशीत वृक्क नलिका और अनुदैर्ध्य नेफ्रिक वाहिनी का आरेखीय प्रतिदर्श; खंडशः व्यवस्था को ध्यान से देखिए ; (d) नेफ्रोटोमों का मध्यक सिरा विभेदित होकर नेफ्रिक नलिका का प्रथम भाग बनता है जिसे वृक्क कैप्स्यूल कहते हैं। इस कैप्स्यूल के भीतर ग्लोमेरूलस की वृद्धि हो जाती है। पृष्ठ महाधमनी से निकली बहिर्वृद्धियां ग्लोमेरूलस बनाती हैं। नेफ्रोटोमों के पार्श्व सिरे बाहर को बढ़ते जाते हैं और एक दूसरे से समेकित होकर नेफ्रिक वाहिनी बनाते हैं। कभी-कभार नेफ्रोटोम पक्ष्माभी पेरोटोनियमी कीप के द्वारा सीलोम से जुड़े रहते हैं।

नेफ़्रिक नलिका कहा जाता है, जिसका स्थायी (persistent) पेरिटोनियमी कीप के द्वारा सीलोम के साथ संयोजन कायम रह सकता है। अत: इस प्रकार उत्सर्जी तंत्र की आधारभूत योजना में युग्मित एवं खंडश: नेफ़्रिक नलिकाएं होती हैं जो एक सिरे पर सीलोम में और दूसरे सिरे पर नेफ़्रिक वाहिनी में खुलती हैं तथा उन दोनों के बीच एक ग्लोमेरूलस होता है (चित्र 9.5d)। परंतु अधिकतर व्यस्क कशेरुकियों में पेरिटोनियमी कीप द्वारा सीलोम से कोई भी संयोजन नहीं होता है।

मूत्रवाहिनी (ureter) की वाहिनी के बनने में पहले तो वृक्कजनी मीज़ोडर्म के अग्र सिरे पर अनुदैर्ध्य वाहिनियां प्रकट होती हैं जो उत्सर्जी अथवा नेफ़्रिक नलिकाओं के, पीछे को रुख किए हुए, प्रसारों के रूप में होती हैं। ये प्रसार जुड़कर "नेफ़्रिक वाहिनी' बनाते हैं जो अवस्कर में खुलती है। अंतत: सभी नेफ़्रिक नलिकाएं इसी वाहिनी में खुलती हैं।

9.4 मूत्रजन नलिकाएँ

कशेरुकियों में मूत्रजन नलिकाओं की संख्या अलग-अलग होती है- साइक्लोस्टोमों के वृक्कों में मात्र कुछ सौ से लेकर स्तनियों के प्रति वृक्क में 10 लाख से अधिक तक। स्तनियों में दोनों वृक्कों के कुल नलिकाओं की लम्बाई 120 km से भी ज़्यादा होती है।

जैसे की पहले ही कहा जा चुका है वृक्क के कार्यात्मक संघटक सूक्ष्म **मूत्रजन नलिकाएँ** (uriniferous tubules) होती हैं (चित्र 9.6)। प्रत्येक नलिका दो भागों की बनी होती है (i) नेफ़्रॉन (वृक्क नलिका, जो की उत्सर्जी इकाई (excretory unit) होती है) तथा संग्राहक नलिका (collecting tubule) (चित्र 9.6 और 9.7) जिसमें नेफ़्रॉन खुलता है। नेफ़्रॉन (ग्रीक greek : नेफ़्रॉस यानि nephros=वृक्क) मूत्र को सान्द्रित करता है जो संग्राहक नलिका में जाता है। संग्राहक नलिका मूत्र की सांद्रता को प्रभावित करती है और उसे लघु कलश (माइनर केलिक्स=minor calyx) में पहुँचाती है (देखिए चित्र 9.9 a) जहाँ से उत्सर्जी वाहिनी का आरम्भ होता है।

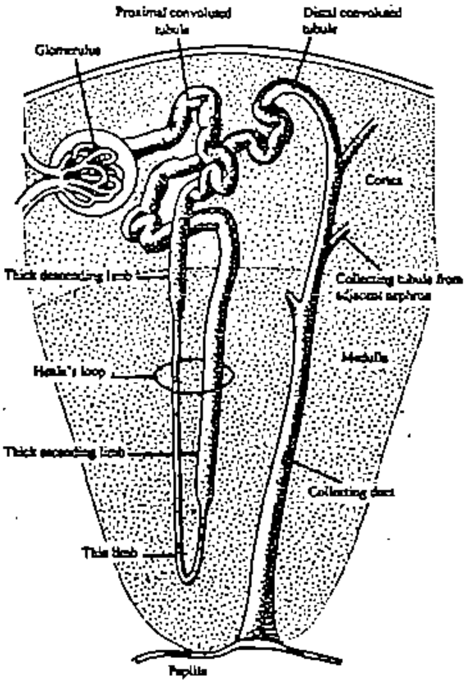

चित्र 9.6: मूत्रजन नलिका – मूलभूत उत्सर्जी संघटक।

I. नेफ़्रॉन (nephron)

प्रत्येक नेफ़्रॉन में दो भाग होते हैं -(क) एक फैला हुआ भाग वृक्क कार्पसल अर्थात् पिंडाणु (मैलपीगी कणिका) तथा (ख) स्रावी नलिकीय भाग

(क) वृक्क कार्पसल (**renal corpuscle**) अथवा मैलपीगी कणिका (**Malpighian corpuscle**)

वृक्क कार्पसल प्रत्येक नेफ्रॉन का समीपस्थ अंश होता है तथा यह दो भागों का बना होता है।

(i) दोहरी दीवार वाला शल्की (squamous) एपिथीलियम से बना एक कैप्स्यूल जिसे बोमैन कैप्स्यूल अथवा वृक्क कैप्स्यूल (Bowman's Capsule/Renal Capsule) कहते हैं; इस कैप्स्यूल की बाहरी परत को भित्तीय परत (parietal layer) कहते हैं तथा भीतरी परत को अंतरंग परत (visceral layer) कहते हैं। बोमैन कैप्स्यूल की इन दो परतों के बीच एक मूत्र-गुहा होती है जिसमें केशिका भित्ति और अंतरंग परत में से छनकर तरल आता है।

(ii) अंतराधमनीय (interarterial) केशिकाओं का एक गुच्छा जिसे ग्लोमेरूलस कहते हैं, बोमैन कैप्स्यूल से घिरा रहता है। प्रत्येक ग्लोमेरूलस, वृक्क धमनी (renal artery जो पृष्ठ महाधमनी की एक मुख्य शाखा है) के तदंतर विशाखन से बना एक केशिका आसन (capillary bed) होता है। बोमैन कैप्स्यूल की अंतरंग अथवा भीतरी परत पोडोसाइट (podocyte=पदाणु) नामक ताराकार कोशिकाओं की बनी होती है। यह अंतरंग परत ग्लोमेरूलस की रक्त वाहिकाओं के संपर्क में रहती है। रक्त वहिकाओं के प्रवेश स्थल को संवहन ध्रुव (vascular pole) तथा बोमैन कैप्स्यूल से आनें वाले नेफ्रॉन फिल्ट्रेट (filterate) के समीपस्थ संवलित नलिका में प्रवेश स्थल को मूत्र ध्रुव (urinary pole) कहते हैं। चित्र 9.7 में एक सम्पूर्ण मूत्रजन नलिका दिखायी गयी है जो चारों ओर से रक्त वाहिका तंत्र द्वारा घिरी हुई है।

(ख) नलिकीय भाग (**Tubular portion**)

नलिकीय अंश तीन भागों में उपविभाजित होता है: (i) समीपस्थ संवलित नलिका (proximal convoluted tubule, PCT), (ii) हेन्ले-लूप (Loop of Henle) जिसमें मोटी और पतली भुजाएं होती है, तथा (iii) दूरस्थ संवलित नलिका (distal convoluted tubule, DCT)। PCT वृक्क कार्पसल के मूत्र-ध्रुव से आरंभ होती है (चित्र 9.8) जिसका अस्तर सरल एपिथीलियल कोशिकाओं का बना होता है। इन कोशिकाओं में सूक्ष्मांकुर (microvilli) होते हैं, जो ब्रुश बार्डर बनाते हैं, तथा बहुत संख्या में माइटोकॉण्ड्रिया एवं एंज़ाइम $Na^+K^+ATpase$ भी होते हैं। PCT में चौड़ी अवकाशिका होती है जो परिनलिकीय केशिकाओं (peritubular capillaries) से घिरी होती है।

हेन्ले-लूप U- आकृति का होता है जिसमें मोटी अवरोही (descending) तथा आरोही (ascending) भुजाएं होती हैं। आरंभिक भाग मोटा होता है (समीपस्थ नलिका का यह मोटा भाग सीधा होता है और इसे "पार्स रेक्टा" (pars recta) कहा जाता है), पर आगे चलकर पलटते रुख के पास हेन्ले-लूप पतला हो जाता है और जब यह दूरस्थ संवलित नलिका का भाग बनने लगता है तो फिर से मोटा हो जाता है। हेन्ले-लूप की अवकाशिका चौड़ी होती है जिसका अस्तर शल्की एपिथीलियम का बना होता है। इस एपिथीलियम में ब्रुश-बार्डर नहीं होता। दूरस्थ संवलित नलिका (DTC) हेन्ले-लूप की आरोही भुजा से आगे की ओर जाकर जारी रहती है तथा नेफ्रॉन का अंतिम खंड बनाती है। इसका अस्तर घनाकार (cuboidal) एपिथीलियम का बना होता है जिसमें ब्रुश बार्डर नहीं होता। संवहन ध्रुव (vascular pole) पर DTC जनक नेफ्रॉन की वृक्क कणिका के साथ सम्पर्क बनाती है (चित्र 9.7 a,b तथा 9.8)।

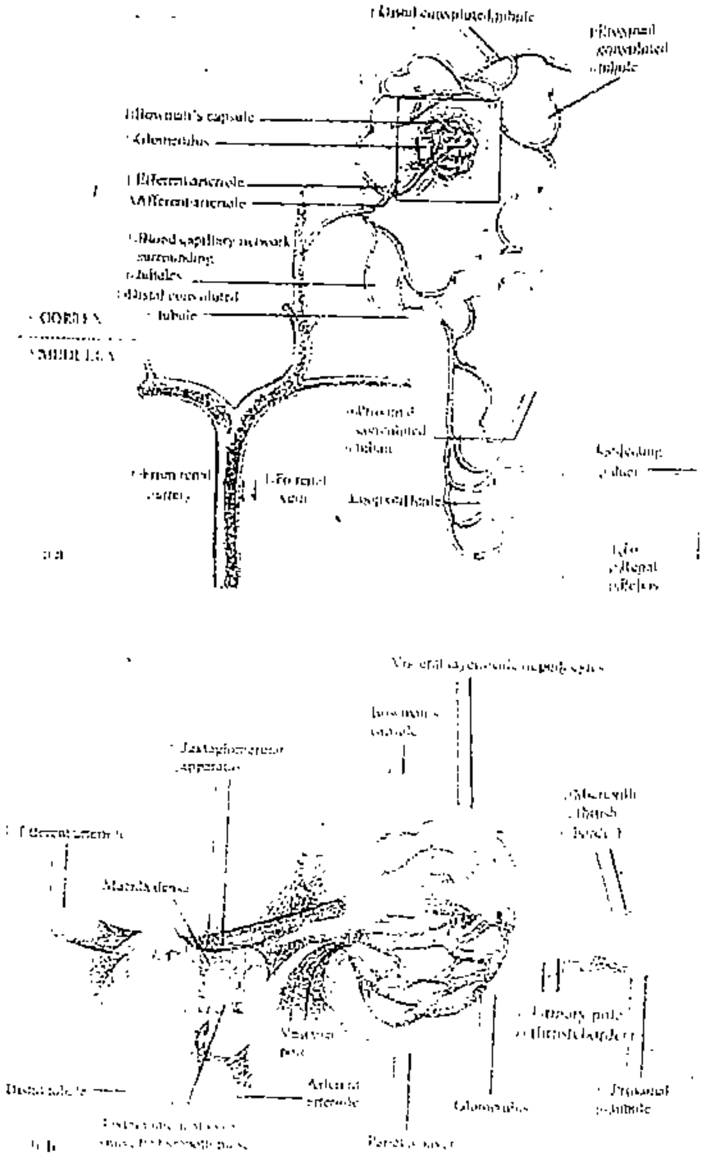

चित्र 9.7: आधारभूत उत्सर्जी संघटक (a) एक मूत्रजन नलिका जिसका संबंध परिवेशी रक्त संवहन तंत्र से दिखायी पड़ रहा है, (b) चित्र (a) में चौकोर के भीतर के घिरे क्षेत्र का वर्धन जिसमें गुच्छासन्न उपकरण दिखाया गया है।

II. संग्राहक नलिका तथा संग्राहक वाहिनी

मूत्र दूरस्थ संवलित नलिका से संग्राहक नलिका में जाता है। नेफ्रॉनो की संग्राहक नलिकाएं परस्पर जुड़कर संग्राहक वाहिनी बनाती हैं जिन्हें "बैल्लिनी" की पैपिलरी वाहिनियां (papillary ducts of Bellini) कहते हैं। ये वाहिनियां वृक्क के वृक्कीय अथवा मेडुलरी (मध्यांश) पिरामिडों के सिरों के समीप चौड़ी हो जाती हैं।

गुच्छासन्न उपकरण (Juxtaglomerular apparatus)

वृक्क कार्पसल के समीप अभिवाही धमनिका की भित्ति रूपांतरित अरेखित पेशी कोशिकाओं की बनी होती है जिन्हें गुच्छासन्न कोशिकाए कहते हैं। इनके भीतर बहुत अधिक संख्या में गॉल्जी काय (golgi bodies) होते हैं। इन कोशिकाओं से एक स्राव, रेनिन (renin) निकलता है जो रक्त आयतन के नियमन में सहायता करता है। इस क्षेत्र पर दूरस्थ नलिका की भित्ति रूपांतरित हो जाती है और सूक्ष्मदर्शी से देखने पर यह गहरे रंग की दिखायी पड़ती है जिस कारण इसे मैक्युला डेन्सा (macula densa) या "सघन बिंदु" कहते

हैं। अभिवाही धमनिका गुच्छासन्न कोशिकाएं तथा मैक्युला डेन्सा एक साथ मिलकर गुच्छासन्न उपकरण बनाते हैं (चित्र 9.7 b)।

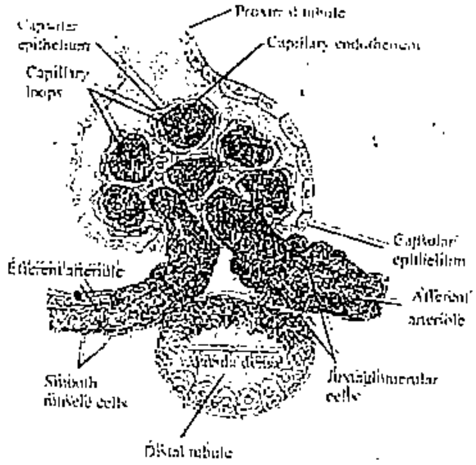

चित्र 9.8 : बोमैन कैप्सूल का आवर्धित दृश्य जिसमें दोनों ध्रुव, गुच्छासन्न कोशिकाएं (juxtaglomerular cells) तथा "मैक्युला डेन्सा" (macula densa) दिखाये गए हैं।

9.5 वृक्क

वृक्क (kidney) शरीर में जल एवं अनेक विलेयों के उचित स्तर बनाए रखने, प्रोटीन उपापचय के अपशिष्टों का निष्कासन करने तथा परासरणनियमन करते रहने के लिए विशेषित हैं। कशेरुकियों के वृक्क अधिशेष जल तथा द्विसंयोजक आयनों (divalent ions) के निष्कासन के लिए तथा विलेयों के संरक्षण के लिए विशेष तौर पर महत्त्वपूर्ण हैं। इस भाग में हम मात्र कशेरुकियों के वृक्क और मूत्र तंत्र पर ही चर्चा करेंगे। तो आइए स्तनपायी के वृक्क को एक उदाहरण के रूप में लेकर उसकी संरचना का अध्ययन करें। इसके द्वारा आप उस शब्दावली से परिचित हो जायेंगे जो कशेरुकी वृक्क की संरचनात्मक जटिलता का वर्णन करने में इस्तेमाल की जाती है। जब कभी मानव में उसके वृक्क कार्य करना बंद कर देते हैं तब व्यक्ति को अस्थायी तौर पर कृत्रिम गुर्दे (artificial kidney) पर रखा जा सकता है (देखिए बॉक्स 9.1)

9.5.1 वृक्क की संरचना

स्तनी वृक्क (चित्र 9.9) की एक चिकनी बाहरी सतह होती है। प्ररूपी मेटानेफ्रिक (पश्चवृक्क) स्तनी वृक्क (देखिए उपभाग 9.2.2) सेम के बीज की आकृति जैसा अंग होता है जो पृष्ठभित्ति से जुड़ा होता तथा पश्चपर्युदर्य (retroperitoneal=रेट्रोपेरिटोनियल) स्थिति में होता है। इसकी मध्यक दिशा पर एक गुहा अथवा गर्त (depression) होती है जिसे हाइलम (hilum) कहते हैं तथा इसमें से मूत्रवाहिनी (ureter) वृक्क से बाहर आती है। जिस जगह से मूत्रवाहिनी वृक्क से बाहर आती है वहीं से एक वृक्क शिरा (renal vein) भी वृक्क से बाहर आती है तथा एक वृक्क धमनी (renal artery) और तंत्रिका (nerve) वृक्क के भीतर प्रवेश करती हैं।

वृक्क के सेक्शन (काट) में पता चलता है कि वृक्क को चारों ओर से संयोजी ऊतक (connective tissue) का बना एक कैप्सूल (capsule) घेरे रहता है और इस कैप्सूल के नीचे स्थित होता है कार्टेक्स (cortex)। वृक्क कार्पसल (renal corpuscles) तथा स्रवण

बॉक्स 9.1

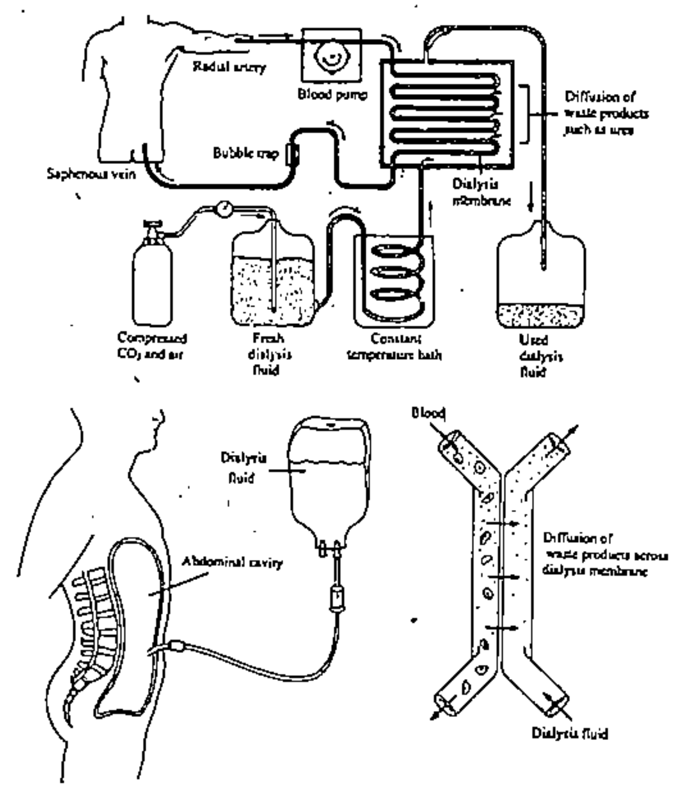

मनुष्यों में जब गुर्दे (वृक्क) काम करना बंद कर देते है तब रोगी को एक कृत्रिम गुर्दे पर रखा जाता है। हीमोडायलिसिस (haemodialysis) अथवा CAPD (Continuous Ambulatory Peritoneal Dialysis) तकनीकों का इस्तेमाल किया जाता है। कृत्रिम गुर्दा एक यांत्रिक युक्ति है जो रक्त से अपशिष्ट पदार्थों को पृथक कर सकता है और यह युक्ति डायलिसिस (अपोहन) के सिद्धांत पर कार्य करती है। इसमें इस्तेमाल की जाने वाली प्रक्रिया को हीमोडायलिसिस (haeme-रक्त; lyslis-पृथक करना) कहते हैं। छिद्रिल सेलोफ़ेन की बनी एक अर्धपारगम्य झिल्ली बड़े अविसरणशील कणों जैसे कि रक्त कोशिकाओं को यूरिया तथा अन्य अपशिष्ट उत्पादों के लघुतर विसरणशील अणुओं से पृथक करती है।

नलिकाओं (secretory tubules) के संवलित भाग पूरी तरह कॉर्टेक्स में ही स्थित होते हैं (चित्र 9.10)। कॉर्टेक्स के तुरंत नीचे वृक्क का मेडुला (medulla=मज्जा) होता है जो रेखित (striated) दिखायी पड़ता है और इसमें हेन्ले-लूप तथा संग्राहक नलिकाएं स्थित होती हैं। मेडुला में कुछ अंश बड़े-बड़े क्षेत्रों के होते हैं जिन्हें मेडुलरी पिरामिड (medullary pyramids) अथवा वृक्क पिरामिड (renal pyramid) कहते हैं (चित्र 9.9)। मेडुलरी पिरामिड समांतर नलिकाओं से बने होते हैं जिन्हें मेडुलरी किरणें (medullary rays) कहते हैं। प्रत्येक मेडुलरी किरण में एक या एक से अधिक संग्राहक नलिकाएं (collecting tubules) तथा नेफ़ान होते हैं। मेडुलरी किरणों के बीच कॉर्टेक्स के अंश, बर्टिनी के वृक्क स्तम्भ (renal columms of Bertini) बनाते हैं। पिरामिडों के बाहरी किनारे उपविभाजित होकर छोटे-छोटे हिस्से बना लेते है जिन्हें पालिकाएं (lobules=लोब्यूल) कहते हैं। संग्राहक नलिकाएं पिरामिडों में होती हैं मगर काफ़ी ऊपर तक कॉर्टेक्स में भी चली जा सकती है। नेफ़ानों की संग्राहक नलिकाएं परस्पर जुड़कर संग्राहक वाहिनियां बनाती हैं जिन्हें बेलिनी की पैपिलरी वाहिनियां (papillary ducts of Bellini) कहते हैं। वृक्क अथवा मेडुलरी पिरामिडों के शीर्ष के निकट ये वाहिनियां चौड़ी हो जाती हैं। प्रत्येक पिरामिड का भीतरी भाग एक कुंद पैपिला (blunt papill) के रूप में होता है जोकि पेल्विस (pelvis=द्रोणि) की एक बहिर्वृद्धि में वर्धित हुआ रहता है। इस बहिर्वृद्धि को लघु (minor) कैलिक्स अर्थात् लघु कलश (minor calyx) कहते हैं। अनेक लघु कैलिक्स परस्पर मिलकर

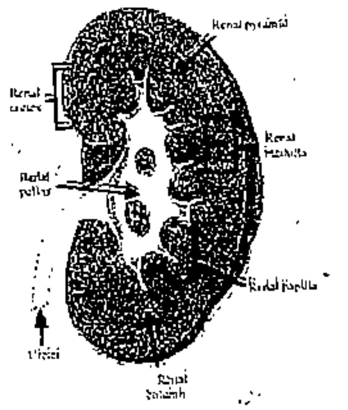

चित्र 9.9: स्तनी वृक्क का सेक्शन जिसमें कार्टेक्स, मेडुला तथा मूत्रवाहिनी का निकास दर्शाया गया है।

प्रधान कैलिक्स यानि दीर्घ कलश (major calyx) बनाते हैं जो स्वयं वृक्क द्रोणि में खुलता है। वृक्कों में बना मूत्र पहले लघु कैलिक्स में और उसके बाद प्रधान कैलिक्स में प्रवेश करता है। द्रोणि से आगे मूत्रवाहिनी निकलती है जो कि मूत्राशय में खुलती है (मॉनोट्रीमों (monotremes) में मूत्रवाहिनी अवस्कर में खुलती है)। मूत्र जो कि मूत्राशय में अस्थायी तौर पर संग्रहित रहता है, मूत्रमार्ग (urethra) द्वारा बाहर निकलता है।

स्तनी वृक्कों में दो प्रकार के 'नेफ़ान' होते हैं और प्रत्येक का अनुपात अलग-अलग स्पीशीज़ में अलग-अलग होता है (चित्र 9.10)। इनका एक प्रकार है कॉर्टिकल नेफ़ॉन (cortical nephron), जिसमें उसका गुच्छा यानि ग्लोमेरूलस वृक्क कॉर्टेक्स के बाहरी क्षेत्र में होता है। इस नेफ़ॉन की नलिका मेडुला के बाहरी क्षेत्र तक पहुँची होती है। मानव वृक्क में मुख्यत: कॉर्टिकल नेफ़ॉन ही पाए जाते हैं (90%), और इनमें हेन्ले-लूप छोटे होते हैं। दूसरे प्रकार के नेफ़ानों में ग्लोमेरूलस कॉर्टेक्स में काफी गहराई तक, वृक्क मेडुला के सीमांत के निकट होते हैं और इसलिए इन्हें मेडुलासन्न नेफ़ॉन (juxtamedulary nephron) कहते हैं। शुष्क आवासों के स्तनियों में नेफ़ान प्रधानत: दूसरे प्रकार के ही पाए जाते हैं (100%), इनमें हेन्ले लूप लम्बे होते हैं जो मेडुला में गहराई तक गए होते हैं। कशेरुकियों में वृक्क नलिकाओं में भारी विविधता पायी जाती है।

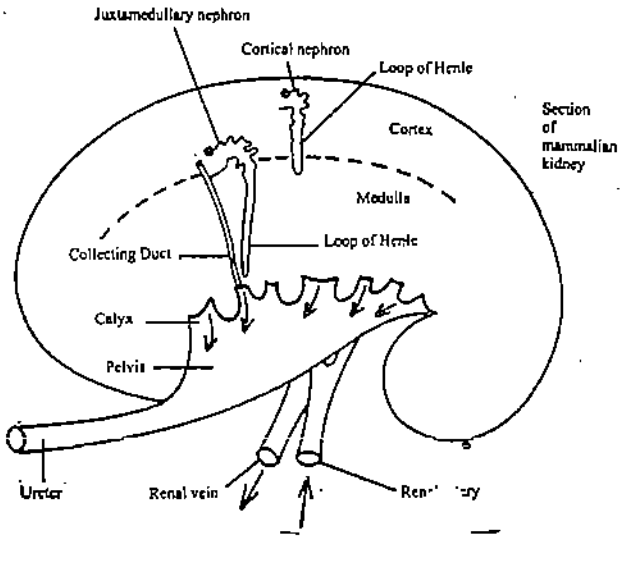

चित्र 9.10 : स्तनी वृक्क के सेक्शन का आरेखीय चित्र जिसमें एक कॉर्टेक्स नेफ़ॉन तथा मेडुलासन्न (juxta-medullary) नेफ़ॉन दिखाए गए हैं।

मूत्राशय सभी स्तनियों में पाया जाता है। यह एक पेशीय थैला होता है जो अवस्कर की भित्ति (cloacal wall) से व्युत्पन्न हुआ होता है। मूत्राशय नीचे की ओर को संकरा हो जाता है और मूत्रमार्ग द्वारा देह के बाहर को खुलता है। मानोट्रीमों को छोड़कर बाकी सभी में मूत्रवाहिनियां सीधे ही मूत्राशय में उसकी पृष्ठ सतह पर खुलती हैं। मॉनोट्रीमों में ये मूत्रवाहिनियाँ मूत्राशय के आधार के समीप छोटे पैपिलों के माध्यम से मूत्रमार्ग में खुलती हैं। मूत्राशय तथा मूत्रमार्ग के संधि-स्थल पर बहुत मात्रा में प्रत्यास्थ ऊतक (elastic tissue) होता है। मूत्राशय की अधिकतर पेशियां जो बंडलों (bundles) के रूप में होती हैं नीचे मूत्रमार्ग में जारी रहती हैं। मूत्र प्रवाह को रोकने के लिए मूत्रमार्ग की लम्बाई बढ़ जाती है और उसकी अवकाशिका का व्यास घट जाता है। नर में मूत्रमार्ग शिश्न (penis) में से होकर गुज़रता है और इस अंग के सिरे पर छिद्र द्वारा बाहर को खुलता है। इस छिद्र को मूत्रमार्ग छिद्र अथवा मूत्रमार्ग कुहर (urethral meatus) कहते हैं। मादाओं में मूत्र मार्ग छिद्र की स्थिति अलग-अलग हो जाती है। कुछ में, जैसे कि चूहे और मूषक में मूत्रमार्ग क्लाइटोरिस (clitoris) अर्थात् भगशेफ द्वारा होकर स्वतंत्र रूप में बाहर को खुलता है। अन्य में यह एक जननमूत्र कोटर (urinogenital sinus) अथवा प्रघाण (vestibule) में खुलता है जो जनन तथा मूत्र पथ का अंतिम भाग होता है।

9.5.2 वृक्क में रक्त परिसंचरण

वृक्कों में रक्त का अत्यधिक संवहन होता है, (चित्र 9.11)। वृक्क धमनी (renal artery) रक्त को वृक्क में लाती है। वृक्क में प्रवेश करने से पूर्व यह धमनी दो शाखाओं में विभाजित हो जाती है- एक शाखा वृक्क के अग्र भाग में और दूसरी पश्च भाग में चली जाती है। इन शाखाओं से अंतरापालि धमनियां निकलती हैं जो वृक्क मेडुलरी पिरामिडों (medullary pyramids) में स्थित होती हैं। कॉर्टिकोमेडुलरी (corticomedullary) संधिस्थल पर ये चापाकार धमनी (arcuate artery) बनाती हैं। चित्र 9.11 में नेफ्रॉन में रक्त की आपूर्ति दिखायी गयी है। अंतरापालि धमनियों से अभिवाही धमनिकाएं निकलती हैं जो ग्लोमेरूलस यानि गुच्छ कोशिकाओं के भीतर रक्त की आपूर्ति करती हैं। इन कोशिकाओं में से होकर रक्त आगे अपवाही धमनिकाओं (efferent arterioles) में चला जाता है। अपवाही धमनिकाएं विशाखित होकर परिनलिकीय केशिका जाल (peritubular capillary network) बनाती हैं जो PCT तथा DCT में रक्त की आपूर्ति करती हैं। साथ ही ये धमनिकाएं अवशोषित आयनों तथा अणुओं को वहां से दूर ले जाती हैं।

मेडुलासन्न नेफ्रॉनों के साथ संबंधित अपवाही धमनिकाएं लम्बी पतली केशिका वाहिकाएं बनाती हैं जो सीधे मेडुला में जाती हैं और फिर से पलटकर कॉर्टेक्स-मेडुला सीमा की ओर आ जाती हैं। इन्हें वासा रेक्टा (vasa recta) अर्थात् सीधी वाहिकाएं कहते हैं। इनके भीतर का रक्त छना हुआ होता है इसलिए ये मेडुला को पोषण एवं ऑक्सीजन प्रदान करती हैं।

वृक्क शिराएं वही मार्ग अपनाती हैं जो वृक्क धमनियों का होता है। अंतरापालि शिरा से आने वाली रक्त वाहिकाएं चापाकार वाहिकाएं बनाती हैं। उसके बाद ये अंतरापालि वाहिकाएं एकत्रित होकर वृक्क शिरा बनाती हैं जिसके द्वारा रक्त वृक्क से बाहर जाता है (चित्र 9.11)।

वृक्क अंतरास्त (renal interstitium): कॉर्टेक्स तथा मेडुला दोनो में मूत्र नलिकाओं के बीच की जगहों में कोशिकाओं होती है जिन्हें अंतराली कोशिकाएं (interstitial cells) कहते है। इन कोशिकाओं से प्रोस्टैग्लैंडन (prostaglandin) का स्राव होता है।

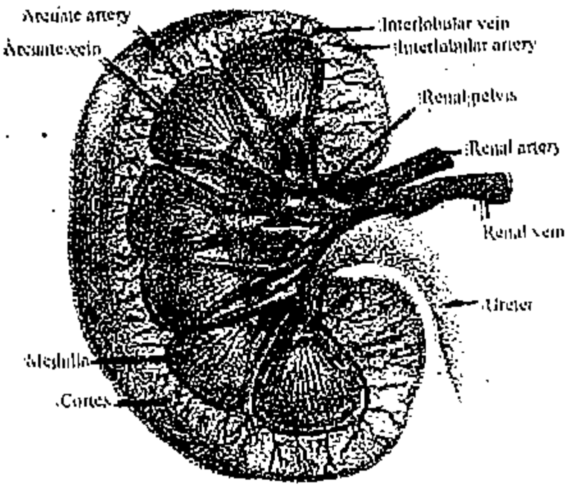

चित्र 9.11: वृक्क का सेक्शन जिसमें रक्त परिसंचरण दिखाया गया है।

बोध प्रश्न 1

रिक्त स्थानों में उपयुक्त शब्द भरिए:

(i) बोमैन-कैप्स्यूल द्वारा घिरा हुआ कोशिकाओं का गुच्छा .... कहलाता है।

(ii) मानव वृक्क की मध्यक दिशा पर बनी एक खांच .... कहलाती है।

(iii) .... धमनी से रक्त वृक्क में पहुंचता है।

(vi) मूत्रजनन तंत्र का उद्‌भव .... से होता है।

9.6 वृक्कों का जातिवृत्त एवं अनुक्रमण

कशेरुकी परिवर्धन के तुलनात्मक अध्ययन से पता चलता है कि आदितम कशेरुकियों का आर्किनेफ्रॉस (आदिवृक्क) कहा जाने वाला पूर्वज वृक्क सीलोमी गुहा में उसकी पूरी लम्बाई तक में फैला था और उसमें खंडशः व्यवस्थित नलिकाएं बनी थीं और प्रत्येक नलिका एक अकशेरुकी नेफ्रीडियम के समान थी। आर्किनेफ्रॉस (जिसे होलोनेफ्रॉस=holonephros, भी कहते हैं) की प्रत्येक नलिका का एक सिरा नेफ्रोस्टोम कीप (सिलियायित-वृक्कमुख) के द्वारा सीलोम में खुलता था और दूसरा सिरा एक सम्मिलित नेफ्रिक वाहिनी में खुलता था जिसे आर्किनेफ्रिक वाहिनी कहते हैं। प्रत्येक वृक्क की आर्किनेफ्रिक वाहिनी सीलोम की पृष्ठ दिशा में स्थित होती है और अवस्कर में खुलती है। हैगफिशों (hagfish) तथा सीसीलियनों (caecilians) के भ्रूणों में खंडीय वृक्क पाया जाता है (चित्र 9.12 a)।

आधुनिक जीवंत कशेरुकियों का वृक्क इसी आदिम योजना पर बना है। ऐम्नियोट (उल्बी) कशेरुकियों के भ्रूण जीवन के दौरान तीन प्रकार के वृक्क, प्रोनेफ्रॉस (pronephros=प्राक्वृक्क), मीज़ोनेफ्रॉस (mesonephros=मध्यवृक्क) तथा मेटानेफ्रॉस (metanephros=पश्चवृक्क) एक के बाद एक क्रमानुसार बनते हैं (चित्र 9.12)। वृक्कों की तीन परिवर्धन अवस्थाएं एक अनुक्रमण में बनती हैं और इसी कारण से इसे "वृक्क अनुक्रमण" (succession of kidneys) अथवा "वृक्क की त्रिभागी संकल्पना" (tripartite concept of kidneys) कहते हैं (चित्र 9.12 b)। इनमें से सब तो नहीं मगर कुछ अवस्थाएं अन्य कशेरुकी समूहों में भी पायी जाती हैं।

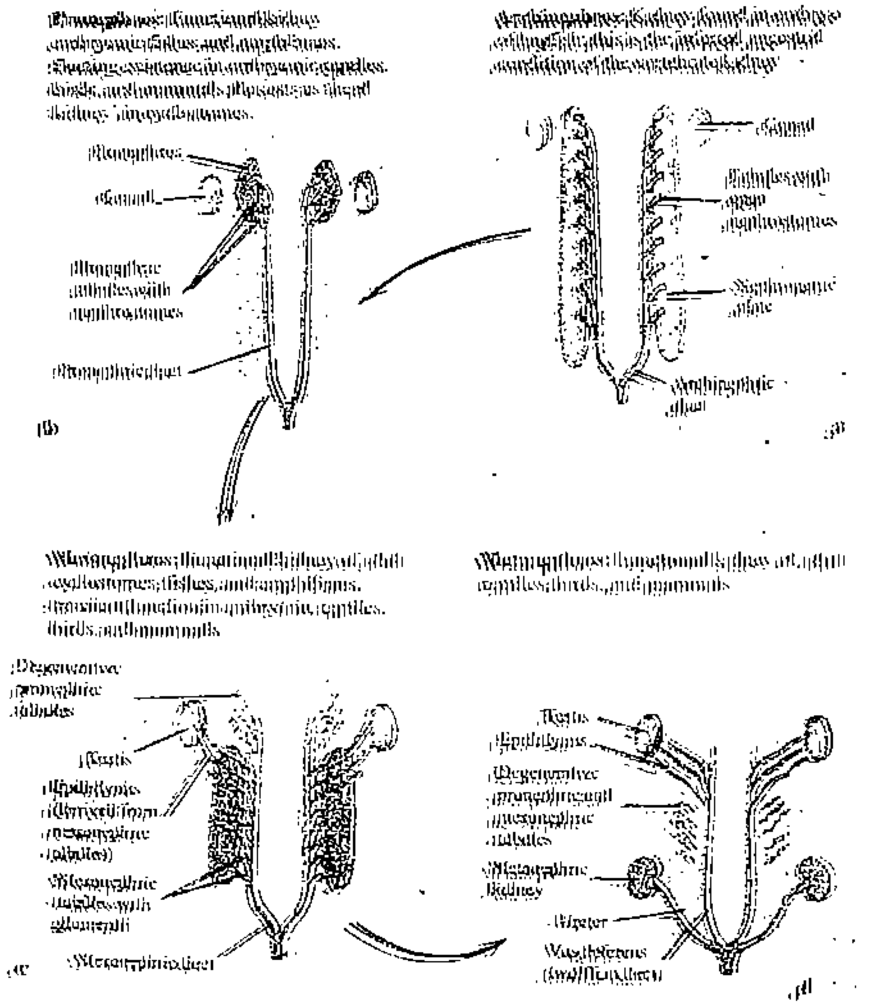

चित्र 9.12 : नर कशेरुकी वृक्क का तुलनात्मक परिवर्धन (a) आर्किनेफ्रॉस, (b) प्रोनेफ्रॉस, (c) मीज़ोनेफ्रॉस (d) मेटानेफ्रॉस। (हल्का रंग अपहासित अथवा अल्पपरिवर्धित संरचनाएँ दर्शाता है तथा चटकीला लाल रंग कार्यशील संरचना दर्शाता है)।

प्रोनेफ्रॉस (pronephros: प्राक्वृक्क)

सभी कशेरुकी भ्रूणों में सर्वप्रथम प्रकट होने वाला वृक्क प्रोनेफ्रॉस होता है। इसमें प्रोनेफ्रिक नलिकाएं अग्रत: स्थित एवं खंडश: व्यवस्थित होती हैं। इन नलिकाओं का एक सिरा नेफ्रोस्टोम के द्वारा सीलोम में खुलता है और दूसरा सिरा आर्किनेफ्रिक वाहिनी में खुलता है जिसे अब प्रोनेफ्रिक वाहिनी कहते हैं। देह के दोनो ओर यानि दाहिनी और बाईं तरफ एक-एक प्रोनेफ्रिक वाहिनी होती है। ये दोनों प्रोनेफ्रिक वाहिनियां पश्च भाग की ओर परिवर्धित हो जाती हैं और अवस्कर में खुलती हैं। केवल वयस्क हैगफिश (एनैम्नियोट यानि अनुल्बी वर्ग) ही ऐसी है जिसमें प्रोनेफ्रॉस स्थायी वृक्क का भाग बनता है। ऐसे वृक्क को "शीर्ष वृक्क (head kidney) कहते हैं (चित्र 9.12 b)। शेष सभी कशेरुकियों में यह वृक्क परिवर्धन के दौरान अपहासित हो जाता है और उसके स्थान पर एक अधिक केन्द्रत: स्थित मीज़ोनेफ्रॉस बन जाता है।

भ्रूणीय एनैम्नियोटों में इस्तेमाल किया जाने वाला शब्द ओपिस्थोनेफ्रॉस (opisthonephros= उत्तरवृक्क) भ्रूणीय ऐम्नियोटों के मीज़ोनेफ्रॉस से ठीक-ठीक तुलनीय नहीं है भले ही इन दोनों में संरचनात्मक समानता है। परम्परा के तौर पर मीज़ोनेफ्रॉस नाम उस संरचना के लिए इस्तेमाल किया जाता है जो सरीसृपों, पक्षियों तथा स्तनियों में भ्रूण परिवर्धन के दौरान प्रकट होती है।

मीज़ोनेफ़्रॉस (**mesonephros:** मध्यवृक्क)

कशेरुकी भ्रूण में जो नलिकाएं नेफ़्रिक कटक के मध्य में प्रकट होती हैं उन्हीं से बनता है मीज़ोनेफ़्रॉस (चित्र 9.12 c)। मीज़ोनेफ़्रॉस को किसी-किसी स्थिति में वोल्फ़ियन पिंड (Wolffian body) कहते हैं। मीज़ोनेफ़्रिक नलिकाएं शुरू-शुरू में खंडश: अथवा विखंडश: (metamerically) व्यवस्थित होती हैं लेकिन जैसे-जैसे और नयी नलिकाएं प्रकट होती जाती हैं वैसे-वैसे विखण्डता समाप्त होती जाती है। ये नलिकाएं पहले से ही मौजूद प्रोनेफ़्रिक वाहिनी में खुल जाती हैं तथा कोई नई वाहिनी नहीं बनती। प्रोनेफ़्रॉस के अपह्रास हो जाने पर पहले से मौजूद प्रोनेफ़्रिक वाहिनी को मीज़ोनेफ़्रिक वाहिनी अथवा वोल्फ़ियन वाहिनी कहते हैं। मीज़ोनेफ़्रिक वाहिनी का पश्च सिरा कभी-कभी फूल जाता है जिससे दो संरचनाएं बनती हैं (i) मूत्राशय जिसमें मूत्र संग्रहण होता है तथा (ii) शुक्राशय जिसमें शुक्राणु संग्रहित होते हैं।

एनैम्नियोटों में आर्किनेफ़्रिक वाहिनी नाम वृक्क वाहिनी के लिए इस्तेमाल किया जाता है। ऐम्नियोटों में वोल्फ़ियन वाहिनी नाम उस वाहिनी को दिया जाता है जो प्रोनेफ़्रॉस तथा मीज़ोनेफ़्रॉस के साथ संबंध बनाते हुए बनती हैं।

भ्रूणीय ऐम्नियोटों (सरीसृप, पक्षी और स्तनी) में मीज़ोनेफ़्रॉस ही कार्यशील वृक्क होता है तथा एनैम्नियोटों, जिसमें जबड़ाविहीन कशेरुकी, मछलियां और उभयचर आते हैं, के वयस्क वृक्क (जिसे ओपिस्थोनेफ़्रॉस भी कहते हैं) बनाने में योगदान देता है (चित्र 9.12 तथा चित्र 9.13)।

मीज़ोनेफ़्रास सरीसृपों, अण्डा देने वाले स्तनियों (प्रोटोथीरिया=prototheria) तथा थैली वाले स्तनियों (मेटाथीरिया: metatheria) में जन्म के बाद कायम बना रह सकता है। वयस्क ऐम्नियोटों में कार्यशील गुर्दा यानि वृक्क मेटानेफ़्रॉस होता है। जैसे ही मेटानेफ़्रॉस कार्यशील हो जाता है, वैसे ही मादाओं में वोल्फ़ियन वाहिनी (मीज़ोनेफ़्रिक वाहिनी) अपह्रासित हो जाती है। मगर यह वाहिनी नर में कायम रहकर मूत्रजनन वाहिनी का रूप लेती है। नर जनन वाहिनियों के कुछ भाग जैसे कि एपिडिडिमिस (epididymus) और शुक्र वाहिका (ductus deferens) एवं साथ ही साथ शुक्राशय (seminal vesicle) भी मीज़ोनेफ़्रिक नलिकाओं से विकसित होते हैं।

मेटानेफ़्रॉस (**metanephros:** पश्चवृक्क)

ऐम्नियोटों (सरीसृपों, पक्षियों तथा स्तनियों) के भ्रूणीय परिवर्धन में प्रोनेफ़्रॉस, मीज़ोनेफ़्रॉस तथा मेटानेफ़्रॉस एक के बाद एक क्रमानुसार बनते हैं। ऐम्नियोटों में वयस्क वृक्क मेटानेफ़्रॉस होता है (चित्र 9.12d)। मेटानेफ़्रॉस नेफ़्रिक कटक के पश्च भाग से विकसित होता है और परिवर्धन के दौरान यह अग्रत: एवं पार्श्वत: विस्थापित हो जाता है। विस्थापित मेटानेफ़्रॉस अपनी ही नयी वाहिनी, मेटानेफ़्रिक वाहिनी अर्थात् मूत्रवाहिनी बना लेता है। मेटानेफ़्रिक वाहिनी का फूल गया हुआ सबसे आगे का भाग वृक्क द्रोणि (renal pelvis) बना देता है (चित्र 9.9)।

मेटानेफ़्रॉस को प्रोनेफ़्रॉस तथा मीज़ोनेफ़्रॉस से कई बातों में भिन्न पहचाना जा सकता है। यह अधिक पश्चत: स्थित होता है तथा इसकी संरचना अधिक बड़ी और संहत: होती है जिसके भीतर नेफ़्रिक नलिकाएं बहुत ज़्यादा संख्या में होतीं हैं। इसमें से तरल का प्रवाह एक नयी वाहिनी (मूत्रवाहिनी) के द्वारा होता है जो तब बनती है जब पुरानी आर्किनेफ़्रिक वाहिनी अपना मूल कार्य छोड़कर शुक्राणु परिवहन के लिए नर के जनन तंत्र से जुड़ जाती है। इस प्रकार तीन अनुक्रमिक वृक्क प्ररूप प्रोनेफ़्रॉस, मीज़ोनेफ़्रॉस तथा मेटानेफ़्रॉस भ्रूणों में तथा कुछ हद तक ऐम्नियोटों में जातिवृत्तीय रूप में भी एक के बाद क्रम में आते हैं (चित्र 9.13)।

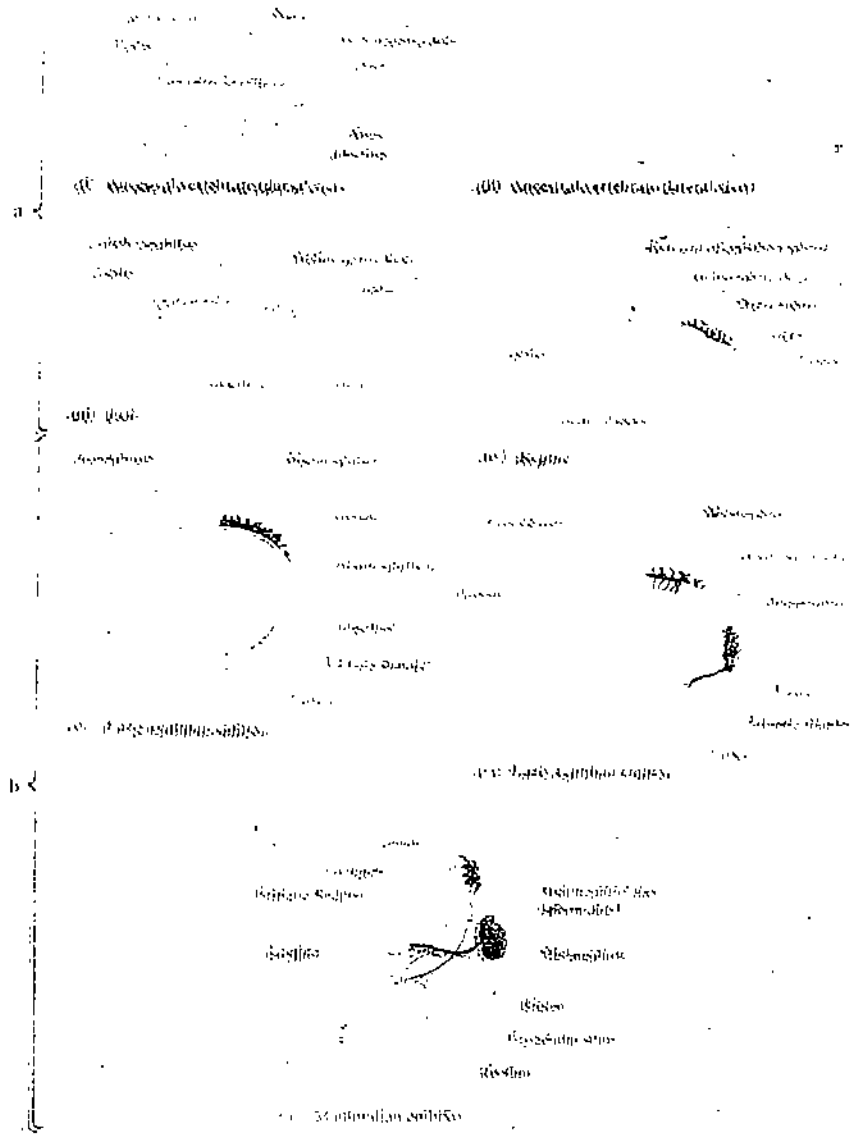

चित्र 9.13 : कशेरुकी उत्सर्जी तंत्र (a) विकास की तुलना (i-iv) तथा (b) कशेरुकी वृक्क एवं उसकी वाहिनी का भ्रूणीय परिवर्धन (v-vii)।

9.7 मूत्र तंत्र के कार्य

मूत्र तंत्र के कई कार्य हैं (चित्र 9.14)।

1. वृक्क मूत्र बनाते है जिसमें प्राणी-वर्ग के अनुसार अमोनिया, यूरिया अथवा यूरिक अम्ल जैसे उपापचयी अपशिष्ट पदार्थ होते हैं। मूत्र, मूत्रवाहिनियों में से होकर मूत्राशय में पहुंचता है। मूत्राशय में मूत्र थोड़ी देर के लिए संग्रहित रहता है और फिर मूत्रमार्ग से होता हुआ मूत्र छिद्र अथवा मूत्रजनन छिद्र द्वारा बाहर को निकाल दिया जाता है। मूत्र निस्यंदन (फिल्ट्रेशन), पुनः अवशोषण तथा स्रवण प्रक्रियाओं द्वारा बनता है (चित्र 9.14 a)।

2. वृक्क तरल का तथा विद्युत्-अपघट्यों (eletrolytes) के संतुलन का नियमन करते हैं और इस प्रकार परासरणनियमन एवं जल संतुलन का कार्य करते हैं (चित्र 9.14)।

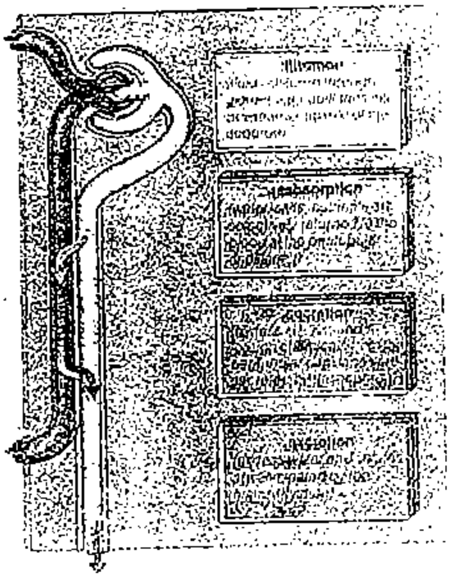

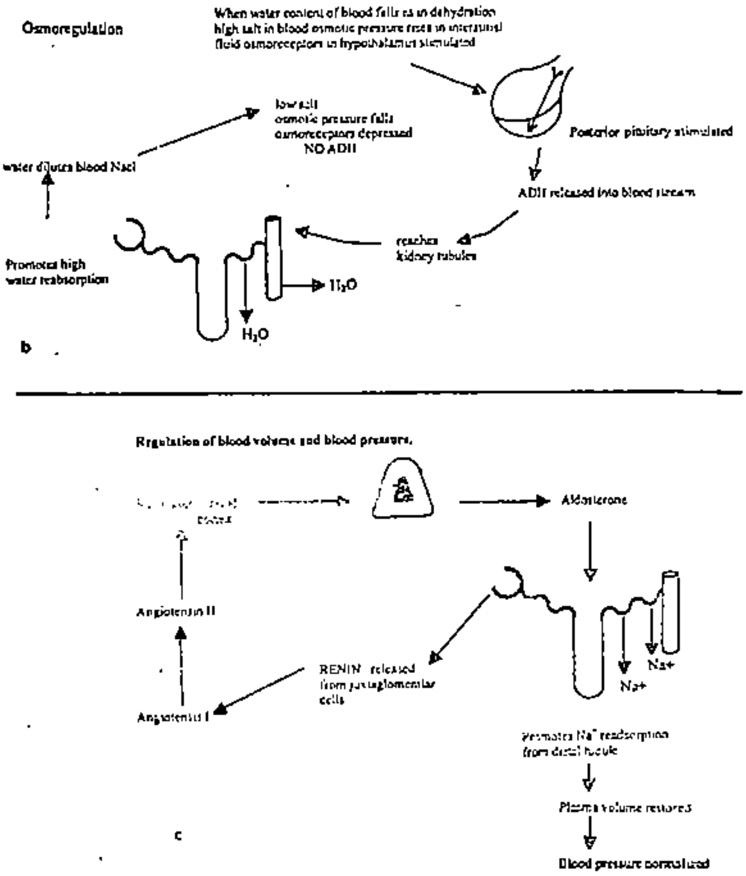

चित्र 9.14 : मूत्र तंत्र के कार्य (a) निस्यंदन पुनः अवशोषण तथा स्रवण द्वारा उपापचयी अपशिष्टों का बाहर निकाला जाना, (मूत्र निर्माण) (b) परासरणनियमन, (c) रक्त आयतन का नियमन।

3. वृक्क एक एंजाइम रेनिन (renin) बनाते हैं जिसका कार्य रक्त दाब का नियमन करना है (चित्र 9.14)।
4. वृक्कों की कॉर्टेक्स कोशिकाओं से एक हार्मोन इरिथ्रोपोएटिन (erythropoietin) निकलता है जिसका संबंध रक्त कोशिकाओं के बनने से है। रक्त की हानि अथवा हाइपॉक्सिया (अल्पॉक्सीयता) होने पर एरिथ्रोपोएटिन का निर्माण प्रेरित होता है। एरिथ्रोपोएटिन अस्थि-मज्जा पर क्रिया करता है ताकि रक्ताणुओं का बनना बढ़ सके।
5. कुछ समूह के नर कशेरुकियों में वृक्कों से आने वाली वाहिनियां मूत्र ले जाने के अलावा शुक्राणु भी ले जाती हैं और इसलिए इन्हें मूत्र जनन वाहिनियां कहते हैं। मादा कशेरुकियों में मूत्र वाहिनियां केवल मूत्र के मार्ग के रूप में कार्य करती हैं।

बोध प्रश्न 2

(i) निम्न के नाम लिखिए:

(क) वृक्क का कार्यात्मक संघटक–..

....

(ख) वृक्क कैप्स्यूल द्वारा घिरी कोशिका का गुच्छा–..

....

(ग) PCT तथा DCT के बीच का U-आकृति का लूप–..

....

(घ) संग्राहक वाहिनी–..

....

(ii) मूत्रजन नलिकाओं के विभिन्न भागों के नाम उनके सही क्रम में लिखिए।

....

....

(iii) वृक्क के कार्यों पर सही का निशान लगाइए:

(क) उपापचयी अपशिष्टों का निष्कासन

(ख) परासरणनियमन

(ग) युग्मकों का संप्रेषण

(घ) रेनिन तथा एरिथ्रोपोएटिन का स्रवण

(iv) कॉलम अ में दिए गए शब्दों का कॉलम ब के शब्दों से मिलान कीजिए।

कॉलम अ	कॉलम ब
(क) अपवाही धमनिकाओं की केशिकाएं	(i) प्रोस्टैग्लैंडिन
(ख) वृक्क अंतरास्त	(ii) ग्लोमेरूलासन्न उपकरण
(ग) मैकुला डेन्सा	(iii) लाल रक्त कोशिकाएं
(घ) एरिथ्रोपोएटिन	(iv) "वसा रेक्टी" (vasa rectae)
	(v) शुक्राणु

9.8 मूत्र तंत्र योजनाओं में विभिन्नताएं

आप इस इकाई के भाग 9.7 में पहले ही पढ़ चुके हैं कि वृक्कों के दो मुख्य कार्य हैं (i) उपापचयी अपशिष्टों का उत्सर्जन तथा (ii) जल एवं विद्युत्-अपघट्यों (electrolytes) का संतुलन बनाए रखना (परासरणनियमन)। वृक्कों की संरचना तथा उनके कार्यों में थोड़ी बहुत विविधता पाई गई है जो कशेरुकियों के मूत्र जनन तंत्रों में उनके अलग-अलग आवासों में रहने के कारण विकसित हुई है। इसके अलावा एनैम्नियोटों तथा ऐम्नियोटों दोनों में ही वृक्क तंत्र काफ़ी हद तक एकरूप एवं प्रकटत: सरल होता है। तथापि, अध्ययन से पता चलता है कि विभिन्न कशेरुकी समूहों अर्थात् एग्नैथा, मछलियों, उभयचरों (ऐम्फ़िबियों), सरीसृपों, पक्षियों तथा स्तनियों में मूत्र तंत्र की रचना में परस्पर भारी अंतर पाया जाता है। ऐसा अन्तर उनके आवास में अंतर होने के कारण है।

9.8.1 आवास संबंधित संरचनात्मक भिन्नताएं

कशेरुकियों का विकास जल में हुआ। कुछ कशेरुकियों का थल पर उद्गम हुआ। अलवण जल (fresh water) में तथा सागर (marine waters) जिसमें लवण जल होता है में जीवन के लिए परासरण सांद्रण की अलग-अलग समस्याएं पैदा हुई। चूंकि वृक्क ही परासरणनियमन के अंग थे इसलिए वृक्क नलिकाओं में संरचनात्मक रूपांतरण हुए जिनके द्वारा अपने-अपने विशिष्ट पर्यावरण में रहने वाले प्रत्येक कशेरुकी समूह की नियमन आवश्यकताएं पूरी हो सकीं।

कशेरुकियों के वृक्कों के सम्मुख दो प्रकार की समस्याएं आती हैं:

1. जल निष्कासन=जो अलवण जलीय जीवों की समस्या है, और
2. जल संरक्षण=जो समुद्री तथा थलीय जीवों की समस्या है।

अलवणजलीय जीव

अलवणजलीय जीवों के वृक्कों में दो मुख्य प्रकार की संरचनाएं महत्वपूर्ण हैं (i) बड़े आकार के सुविकसित ग्लोमेरूलस जिनके द्वारा बहुत-बहुत मात्रा में ग्लोमेरूलस फ़िल्ट्रेट बनता है;

(ii) सुव्यक्त दूरस्थ नलिकाएं जो फ़िल्ट्रेट में से लवणों तथा ऐमीनों अम्लों को अवशोषित करके उन्हें शरीर में कायम बनाए रखती हैं और साथ ही बहुत कम जल का अवशोषण (absorption) करती हैं। मूत्र में बहुत सा जल निकाला जाता है।

समुद्री जीव

समुद्री जीवों के सामने निर्जलीकरण की समस्या आती है क्योंकि उनके बाहरी पर्यावरण (समुद्री जल) का परासरण-सांद्रण ज्यादा होता है। अत: समुद्री जीव के शरीर से जल बाहर की ओर जाने के लिए प्रवृत्त होता है। इन जीवों में संरचनात्मक रूपांतरण जल को भीतर बनाए रखने के लिए अनुकूलित होता है, और ये रूपांतरण इस प्रकार हैं:

(i) ग्लोमेरूलसों की कमी (अग्लोमेरूलसी वृक्क = aglomerular kidney)
(ii) लवणों के पुन: अवशोषण के उत्तरदायी वृक्क नलिकाओं के दूरस्थ खण्डों का छोटा हो जाना अथवा उनका न होना। इन दोनों ही रूपांतरणों से पानी शरीर के भीतर ही रोका रखा जाता है जिससे अधिक लवण का उत्सर्जन होता है ताकि इन जीवों के भीतर समस्थापन बना रहे।
(iii) समुद्री मछलियों में लवण-उत्सर्जन के लिए अतिरिक्त वृक्क संरचनाएं होती हैं। इलास्मोब्रैंको (elasmobranchs) यानि कार्टिलेजी मछलियों की गिलों अर्थात् क्लोमों के सतहों पर क्लोराइड-स्रावी ग्रंथियां और साथ ही उनमें मलाशय ग्रंथियां (rectal glands) भी होती हैं जिनके द्वारा लवणों का स्रवण होता है। समुद्री सरीसृपों तथा पक्षियों में लवण-उत्सर्जी, बड़े आकार की युग्मित नासीय ग्रंथियां (nasal glands) होती हैं। ये एक अस्थिल गर्तिका (bony sockets) में स्थित होती हैं जिसकी अपनी एक वाहिका होती है जो नासाछिद्र में खुलती है (देखिए LSE-05 की इकाई-5)।

थलीय जीव

थलीय जीवों को भी जल का संरक्षण करना होता है। सांपों में इस काम के लिए अग्लोमेरूलसी वृक्क होते हैं। स्तनियों में नेफ्रॉन का हेन्ले-लूप मूत्र में से जल का अवशोषण करके उसे सांद्रित बनाता है। जीव के पर्यावरण के अनुसार हेन्ले-लूप की लम्बाई कम या ज्यादा होती है। उदाहरणत: बीवर (beaver) में, जिसके तात्कालिक पर्यावरण में बहुत सा जल होता है, छोटे हेन्ले लूप होते हैं। खरगोश तथा मानवों में लम्बे और छोटे दोनों प्रकार के हेन्ले-लूप होते हैं जिनमें मूत्र को सांद्रित करने की मध्यम क्षमता होती है (चित्र 9.6 को फ़िर से देखिए) इसके विपरीत बालू-चूहा (sand rat) जो शुष्क परिस्थितियों में पाया जाता है, उसमें हेन्ले-लूप बहुत लम्बे-लम्बे होते हैं जिनके द्वारा अधिक से अधिक संभव जल अवशोषित कर लिया जाता है। इसलिए वह चूहा बहुत ही सांद्रित मूत्र का उत्सर्जन करता है।

9.8.2 विभिन्न कशेरुकी समूहों के कशेरुकियों में मूत्र तंत्रों की विभिन्नताएं

कशेरुकी वृक्क स्वयं ही संरचना की दृष्टि से विभिन्न होते हैं। इनमें वाहिनियां भी उसी तरह से भिन्न होती हैं, और मूत्राशय भी। इन विभिन्नताओं के दो मुख्य कारण हैं (i) जैसा कि कई अन्य अंगों में नहीं होता, वृक्कों को परिवर्धन की आरम्भिक अवस्था से ही कार्य आरम्भ कर देना ज़रूरी है ताकि तेज़ी से वृद्धिशील भ्रूण के उपापचयी अपशिष्टों का निष्कासन होता रहे। तथापि, बाद की परिवर्धन अवस्थाओं में तथा वयस्क अस्तित्व में इस वृक्क में रूपांतरण तथा प्रतिस्थापन होते रहते हैं (ii) गोनड (वृषण=testis, तथा अंडाशय= ovary) वृक्क के निकटवर्ती स्थित होते हैं। इन अंगों, विशेषकर वृषण में ऐसी प्रवृत्ति होती है कि वे मूत्रीय संरचनाओं की नलियों तथा नलिकाओं को स्वयं अपने उत्पादों का संवहन करने में काम में लाते है। इसके परिणामस्वरूप अधिकतर कशेरुकी समूहों में मूत्र अंगों में भारी रूपांतरण हुआ है। इस उपभाग में हम विविध कशेरुकी समूहों में मूत्र जनन तंत्रों की संरचना और उसी के आधार पर तंत्रों में पायी जाने वाली विभिन्नताओं का सर्वेक्षण करेंगे (चित्र 9.15 a से g तक)।

एग्नैथा अर्थात् जबड़ाविहीन कशेरुकी

एग्नैथा (agnatha) या जबड़ाविहीन कशेरुकी (jaw less vertebrates) को साइक्लोस्टोम (cyclostome = चक्रमुखी) नाम से भी जाना जाता है। जबड़ाविहीन कशेरुकी लैम्प्रे (पेट्रामाइज़ॉन-*Petromyzon*) का वयस्क वृक्क ओपिस्थोनेफ्रॉस अथवा मीज़ोनेफ्रॉस होता है और नलिकाएं पश्च मीसोमीयर (mesomere) यानि मध्यखंड से व्युत्पन्न होती हैं। इन नलिकाओं का सीलोमी गुहा से हर संबंध समाप्त हो गया है, किंतु ये कुंद सिरे वाले वृक्क कैप्स्यूल पर स्थित ग्लोमेरूलसी रक्त वहिकाओं के साथ एक निकट संबंध बनाती हैं। वृक्क नलिकाओं तथा सीलोम के बीच संयोजन का अभाव होना यह स्पष्ट करता है कि कशेरुकी विकास के आरंभ में ही ''सीलोमी तरल फिल्टर'' का स्थान ''रक्त फिल्टर तंत्र'' ने ले लिया। ऐसा कदाचित् इसलिए हुआ होगा क्योंकि सीलोमी दाब बहुत कम और परिवर्तनशील होता है जिससे उच्च उपापचय दरों वाले कशेरुकियों के तरल के संतुलन की आवश्यकता पूरी नहीं हो सकती थी।

वयस्क लैम्प्रे में वृक्क लम्बे और चपटे होते हैं। ये वृक्क मध्य पृष्ठ रेखा के दाएँ और बाएँ स्थित होते हैं और प्रत्येक वृक्क एक आंत्रयोजनी (mesentery) जैसी झिल्ली से संलग्न रहती है। आर्किनेफ्रिक वाहिनी वृक्क के मुक्त सीमांत के साथ-साथ स्थित रहती है। प्रोनेफ्रॉस एक कार्यविहीन "शीर्ष वृक्क" के रूप में मीज़ोनेफ्रॉस के ऊपर स्थित रहता है।

वयस्क हैगफ़िश में ओपिस्थोनेफ्रॉस में केवल एक श्रृंखला रूप में नलिकाएं होती हैं जो धड़ की अधिकांश लम्बाई तक में खंडशः व्यवस्थित रहती हैं। प्रत्येक नलिका सीधे ही आर्किनेफ्रिक वाहिनी अथवा प्रोनेफ्रॉस में खुलती है। हैगफ़िशों के वयस्कों में आर्किनेफ्रॉस रूपांतरित होकर एक स्थायी शीर्ष वृक्क बना लेता है। शेष वृक्क शीर्ष वृक्क से पृथक होकर ओपिस्थोनेफ्रॉस बन जाता है। हैगफ़िश में केवल चालीस ग्लोमेरूलस होते हैं और प्रत्येक ग्लोमेरूलस एक छोटे ग्रीवा खंड (neck segment) द्वारा संग्राहक वाहिनी (आर्किनेफ्रिक वाहिनी) के साथ जुड़ जाता है (चित्र 9.15 a)।

मछली

मछलियों के वृक्क ओपिस्थोनेफ्रिक अथवा मीज़ोनेफ्रिक होते हैं। हालांकि मछलियों के वृक्कों की आकृति में बहुत विविधता पायी जाती है फिर भी उनकी संरचना में एक आधारभूत समानता होती है (चित्र 9.15 b और c)। सभी स्पीशीज़ में ये वृक्क पृष्ठ दिशा में स्थित होते हैं। कुछ स्पीशीज़ में ये सीलोम की लगभग पूरी लम्बाई में फैले होते हैं। अन्य मछलियों में ये आकार में बड़े हो सकते हैं यहां तक कि दोनों तरफ़ के वृक्क कम या ज्यादा हद तक परस्पर समेकित हो गये होते हैं। तथा कुछ उदाहरण ऐसे भी हैं जिनमें वृक्क छोटे होते हैं एवं देह गुहा के केवल पश्च भाग तक ही सीमित होते हैं। पेरोटोनियम कीपें केवल कुछ ही स्पीशीज़ में कायम बनी रहती हैं, खास तौर से *ऐमिया* (*Amia*), स्टर्जियनों (sturgeons) तथा कुछ खास इलास्मोब्रैंको में। कुछ समुद्री टीलियोस्टों (teleosts) में बाहरी और भीतरी कोई भी ग्लोमेरूलस नहीं होते हैं, इसलिए इस प्रकार के वृक्कों को अग्लोमेरूलसी (aglomerular) वृक्क कहा जाता है।

सामान्यतः नर मछलियों का वृक्क मादा मछलियों के वृक्क की अपेक्षा अधिक लम्बा होता है, और ऐसा इसलिए चूंकि नर में इनके अग्र सिरे के साथ जनन तंत्र जुड़ा होता है। कुछ समूहों के नरों में छोटी-छोटी वृक्क नलिकाएं, जिन्हें अपवाही वाहिनिकाएं (efferent ductules) कहते हैं, वृषणों को आर्किनेफ्रिक वाहिनी से जोड़ती हैं। आर्किनेफ्रिक वाहिनी को शुक्र वाहिनी (ductus deferens) का नाम दिया गया है और यह शुक्राणुओं के परिवहन-मार्ग का कार्य करती है। साथ ही साथ यह अपशिष्टों को ले जाने का काम भी करती रह सकती हैं। मगर ऐसे मामलों में यह प्रवृत्ति हो जाती है कि ओपिस्थोनेफ्रॉस का पश्च भाग अधिकतर उत्सर्जी कार्य अपने ऊपर ले लेता है और एक या एक से अधिक सहायक वाहिनियां बन जाती हैं जो अपशिष्टों को सीधे ही अवस्कर में अथवा बाहर को निकालती

हैं। सीलैकियनों (selachians - उपास्थिमीन), कॉण्डोस्टियनों (chodrosteans) तथा कुछ अन्य मछलियों में वृषण तथा आर्किनेफ्रिक वाहिनी के बीच का संयोजन प्रायः ओपिस्थोनेफ्रॉस के अग्र सिरे पर बना होता है। परंतु टीलियोस्टों (teleosats) में वृषणों तथा ओपिस्थोनेफ्रिक वृक्कों के बीच का संयोजन नहीं होता। उनमें वृषणों से आने वाली वाहिनी या तो आर्किनेफ्रिक वाहिनियों से उनके पश्च सिरों के समीप मिल जाती है या फिर सीधे ही बाहर को खुलती हैं।

कुछ मछलियों में आर्किनेफ्रिक वाहिनी का प्रसार हो जाता है जिससे मूत्राशय जैसी फूली हुई संरचना बन जाती है। इसमें मूत्र को अस्थायी तौर पर भंडारित किया जा सकता है (चित्र 9.15 c)। उन मछलियों में जिनमें आर्किनेफ्रिक वाहिनी शुक्र वाहिनी के तौर पर कार्य करती है, आर्किनेफ्रिक वाहिनी में शुक्राणुओं को अस्थायी रूप से संग्रह करने के लिए फूली हुई संरचनाएं बन जाती हैं। इन संरचनाओं को शुक्राशय (seminal vesicle) तथा शुक्र थैले (sperm sac) कहते हैं।

ऐम्फ़िबिया

ऐम्फ़िबियन (amphibians=उभयचर) वृक्क या तो ओपिस्थोनेफ्रिक या मीज़ोनेफ्रिक होता है तथा ओपिस्थोनेफ्रॉस की अग्र नलिकाएं शुक्र वाहिनी की तरह कार्य करती हैं। आदिम आर्किनेफ्रिक प्रकार का वृक्क ऐम्फ़िबियनों के लार्वीय (डिंभकी) सिसीलियनों में पाया जाता है। यह वृक्क हैगफिशों के लार्वीय वृक्क के समान होता है और इसमें वृक्क नलिकाओं, वृक्क कार्पसल तथा नेफ्रोस्टोम (nephrostome=वृक्ककमुख) की स्पष्ट खंडशः व्यवस्था पायी जाती है। वयस्कों में वृक्क ओपिस्थोनेफ्रॉस होता है। ओपिस्थोनेफ्रॉस पालियुक्त (lobulated) होता है और सीलोम की अधिकतर लम्बाई में फैला होता है। अनेक लार्वीय ऐम्फ़िबियनों में एक छोटा शीर्ष वृक्क होता है जिसका पेरिटोनियम से संबंध बना होता है मगर यह वृक्क वयस्क में कायम नहीं बना रहता।

यूरोडील (urodele) ऐम्फ़िबियनों में ओपिस्थोनेफ्रिक अथवा मीज़ोनेफ्रिक वृक्क होते हैं जो इलास्मोब्रैंकों के गुर्दों के सामान होते हैं। वृक्कों में दो क्षेत्र होते हैं: (i) अग्र संकरा क्षेत्र जिसका कार्य मूत्रीय कम तथा जननिक अधिक होता है और इसे एपिडिडिमस (epididymus) यानि अधिवृष्ण कहा जाता है, तथा (ii) पश्चीय फैला हुआ भाग जो ओपिस्थोनेफ्रॉस का मुख्य भाग होता है और इसे "वृक्क विशेष" कहा जाता है, तथा यह सही मायने में वृक्क है। आर्किनेफ्रिक वाहिनियां इस सही वृक्क विशेष से थोड़ी दूर पर वृक्क के पार्श्व सीमांत के साथ-साथ स्थित रहती हैं। बहुसंख्यक संग्राहक वाहिनियां अथवा नलिकाएं, जो मादाओं की अपेक्षा नरों में ज्यादा विकसित होती हैं, थोड़े-थोड़े अंतरालों पर ओपस्थिोनेफ्रॉस से आने वाली आर्किनेफ्रिक वाहिनी से जुड़ जाती हैं। आर्किनेफ्रिक वाहिनी को अब मीज़ोनेफ्रिक वाहिनी कहते हैं और यह नर में शुक्र वाहिनी (ductus deferens) के रूप में कार्य करने के साथ-साथ अपशिष्टों को भी ले जाती है। मगर मादाओं में यह केवल अपशिष्टों को ही ले जाती है। मीज़ोनेफ्रिक वाहिनियां दोनों सेक्सों (sexes) यानि लिंगों में एक छोटे पैपिला के माध्यम से अवस्कर में, उसके दोनों पार्श्वों पर खुलती हैं (चित्र 9.15 d)।

ऐन्यूरनों (anurans) में ओपिस्थोनेफ्रिक वृक्क पृष्ठ अधर दिशा में चपटे होते हैं तथा इनमें नलिकाएं पश्च भाग में अधिक सांद्रित रहती हैं। ये वृक्क उदर गुहा के पश्च भाग में ही सीमित रहते हैं, और इसी कारण ये रेट्रोपेरिटोनियल (retroperitoneal) यानि पश्चपर्युदर्य एवं पृष्ठतः स्थित होते हैं। ऐन्यूरनों में वृक्क के अग्र तथा पश्च क्षेत्र स्पष्टतः पृथक नहीं दिखाई पड़ते लेकिन यूरोडीलों में ऐसा नहीं होता। एक पीले-नारंगी रंग की ऐड्रीनल ग्रंथि (adrenal gland) वृक्क की अधर दिशा में संलग्न रहती है। मादाओं में वृक्कों तथा जनन तंत्र में परस्पर कोई संबंध नहीं होता। मगर नर में ये निकटतः संयोजित रहते हैं। नर में कुछ अग्र वृक्क नलिकाएं रूपांतरित होकर अपवाही वाहिनिकाएं बन जाती हैं जो वृषण को वृक्क से जोड़ती हैं। जबकि मीज़ोनेफ्रिक वाहिनी शुक्राणुओं तथा मूत्र अपशिष्टों, दोनों को

ही ले जाने का काम करती हैं। यूरोडीलों से भिन्न इन प्राणियों में आर्किनेफ्रिक वाहिनी वृक्क के ही भीतर उसके पार्श्व सीमांत के साथ-साथ स्थित रहती है। यह पश्च सिरे के निकट ओपिस्थोनेफ्रॉस से बाहर आती है और अवस्कर में चली जाती है (चित्र 9.15 e)।

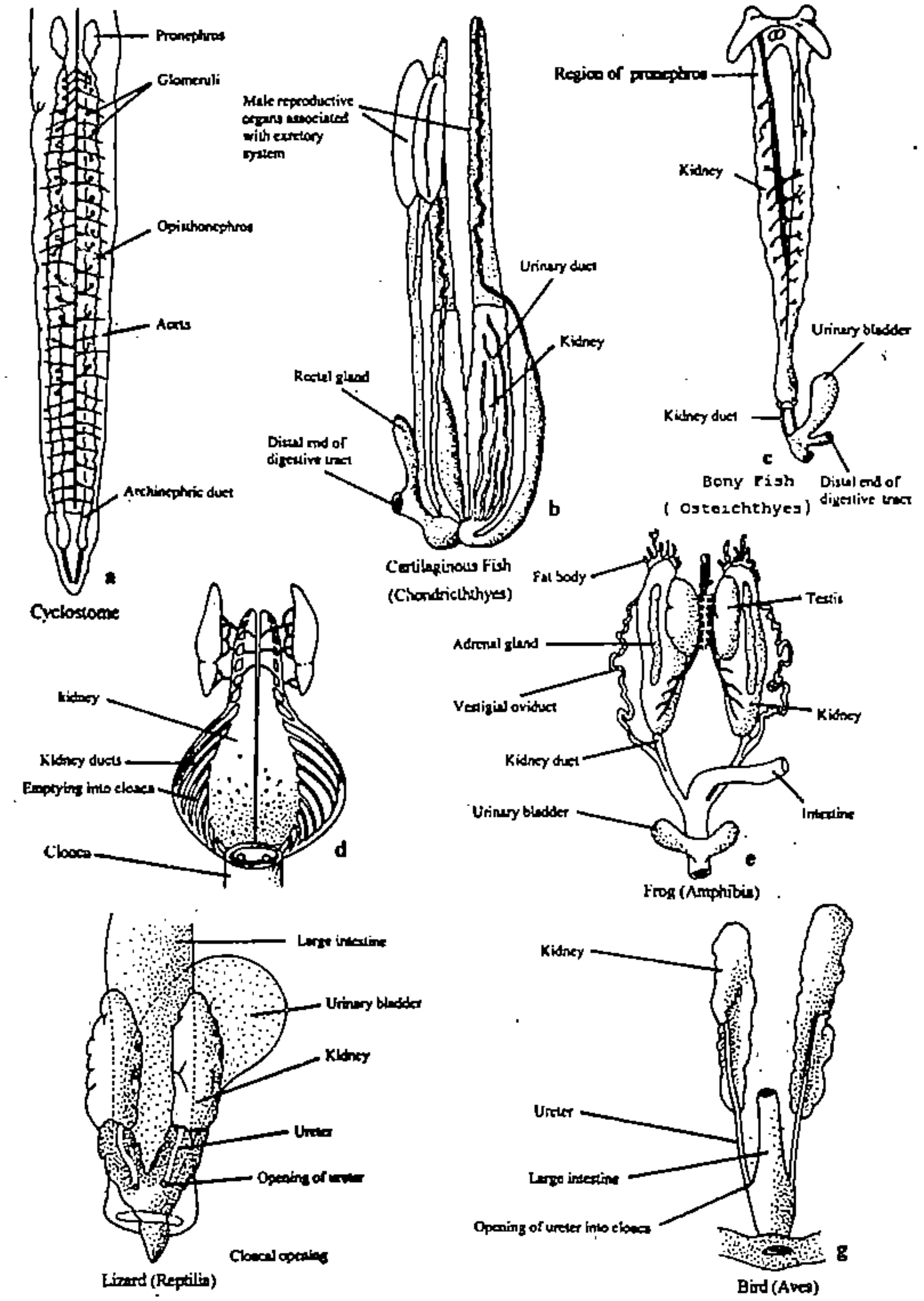

चित्र 9.15 : कशेरुकियों के मूत्र तंत्र। (a) साइक्लोस्टोम (cyclostome) (b) कार्टिलेजी मछली (cartilaginous fish) (c) अस्थित मछली (bony fish) (d) सालामैण्डर (salamander) (ऐम्फ़िबियन) (e) मेंढक (ऐम्फ़िबियन) (f) छिपकली (सरीसृप) (g) पक्षी (एवीज़)।

एक पतली भित्ति वाला द्विपालिक आशय (थैला) होता है जिसके विषय में समझा जाता है कि वह एंडोडर्म से व्युत्पन्न हुआ है एवं मूत्राशय के समजात है। यह अवस्कर की भित्ति से व्युत्पन्न होता है और एम्फ़िबियन अवस्कर में आर्किनेफ़्रिक वाहिनियों के छिद्रों से थोड़ी सी दूरी पर खुलता है। आर्किनेफ़्रिक वाहिनी तथा आशय में परस्पर सीधा संबंध नहीं होता, इसलिए जलीय मूत्र पहले सीधा अवस्कर में चला जाता है।

रेप्टीलिया (सरीसृप)

रेप्टीलियन प्राणी अर्थात् सरीसृप सबसे पहले पूर्णत: थलीय कशेरुकी हैं जो अलवण जल, ज्वारनदमुखों और यहां तक कि समुद्री आवासों में भी रहने के लिए अनुकूलित हो गए हैं। रेप्टाइलों में वृक्क मेटानेफ़्रिक प्रकार के होते हैं। रेप्टाइलों में वृक्क प्राय: छोटे और संहत (compact) होते हैं जिनकी पालियुक्त सतह होती है। ये वृक्क उदरगुहा (abdominal cavity) के पश्च अर्धांश में सामान्यत: श्रोणि क्षेत्र तक में सीमित रहते हैं (चित्र 9.15 f)। वृक्क का पश्च भाग प्रत्येक पार्श्व पर पीछे को संकरा होता जाता है और कुछ छिपकलियों में तो दोनों तरफ़ के पिछले भाग समेकित हो जाते हैं। विभिन्न सरीसृपों में सममिति की मात्रा अलग-अलग होती है और वह भी ख़ास तौर से सांपों तथा पादविहीन छिपकलियों में क्योंकि उनके लम्बे शरीर के कारण उनमें वृक्क अत्यधिक पालियुक्त, लंबे और संकरे होते हैं, यहां तक कि अक्सर एक वृक्क पूरी तरह से दूसरे वृक्क के पीछे स्थित हो सकता है।

सांपों तथा मगरमच्छों में मूत्राशय नहीं होता किंतु अधिकतर कछुओं और छिपकलियों में सुविकसित एवं प्राय: द्विपालियुक्त मूत्राशय होते हैं जो अवस्कर में खुलते हैं। कछुओं को छोड़कर अन्य में मूत्र वाहिनियां अवस्कर में अलग-अलग खुलती हैं। कछुओं में मूत्र वाहिनियां मूत्राशय में आकर मिलती हैं। कुछ कछुओं में एक जोड़ी सहायक मूत्राशय भी अवस्कर में खुलते हैं, जो सहायक श्वसन अंगों के रूप में कार्य करते हैं। मादाओं में इनमें पानी भरा हो सकता है जिसका उपयोग वे अपना घोंसला बनाने के समय धरती को नरम करने में करती हैं। जीवित यानि वर्तमान सरीसृपों में केवल कुछ ही हज़ार नेफ़्रॉन होते हैं जिनमें हेन्ले-लूप नहीं होते तथा वृक्क कार्पसल पूरी तरह से विकसित नहीं होती हैं। ग्लोमेरूलस भी छोटे होते हैं ताकि जल का संरक्षण हो सके।

पक्षी

सभी पक्षियों में उनके वृक्क देह गुहा के श्रोणि क्षेत्र में स्थित होते हैं और उनके पश्च सिरे अक्सर समेकित हो गए होते हैं। ये जटिल पालियुक्त संरचनाएं होती हैं जिनमें छोटी मूत्र वाहिनियां होती हैं जो स्वतंत्र रूप से अवस्कर में खुलती हैं (चित्र 9.15 g)। इन वृक्कों में स्तनियों की तरह वृक्क नलिकाएं होती हैं जिनमे हेन्ले-लूप (कुछ छोटे लूप और कुछ लम्बे लूप) होते हैं और ये लूप संग्राहक वाहिनियों के समांतर स्थित रहते हैं। मगर पक्षियों में अधिकतर रेप्टीलियन प्रकार की नलिकाएं होती हैं जिनके लूप नहीं होते। केवल शुतुरमुर्ग (ostrich) को छोड़कर सभी पक्षियों में मूत्राशय का अभाव होता है। मूत्र अपशिष्ट मुख्यत: यूरिक अम्ल के रूप में होते हैं और उनका निष्कासन विष्ठा के साथ-साथ अवस्कर द्वारा होता है। पक्षियों में मूत्र को सांद्रित करके जल का संरक्षण करने की वृक्क की क्षमता उतनी अच्छी नहीं है जितनी कि स्तनियों में होती है, मगर सरीसृपों से तो बेहतर ही है। अवस्कर और यहां तक कि बड़ी आंत (large intestine) के पश्च भाग में भी रूपांतरण हो सकता है ताकि जल एवं आयनों का पुन: अवशोषण होकर मूत्र सांद्रित हो सकता है।

स्तनीय मूत्र तंत्र का इससे पहले के भागों में वर्णन किया जा चुका है विस्तृत वर्णन के लिए देखिए उपभाग 9.2.2, भाग 9.4, 9.5, तथा चित्र 9.4।

बोध प्रश्न 3

(i) सही विकल्प पर सही का निशान लगाइए-

(क) समुद्री जीवों में होती हैं-

1. छोटी दूरस्थ नलिका
2. लम्बी दूरस्थ नलिका
3. बहुत ज़्यादा लम्बी दूरस्थ नलिका
4. छोटी समीपस्थ नलिका

(ख) सांपों में अग्लोमेरूलसी वृक्क होता है ताकि वे

1. जल का संरक्षण कर सकें
2. जल को निकाल सकें
3. प्रोटीन का संरक्षण सकें
4. प्रोटीन को बाहर निकाल सकें

(ग) मरूस्थलीय "बालू-चूहे" में निर्जलीकरण से अनुकूलन के लिए निम्न में से क्या होता है?

1. लम्बा हेन्ले-लूप ताकि पुन: अवशोषण हो सके
2. वह उपापचयी जल का उपयोग कर सकता है
3. जल से भरपूर वनस्पति खाता है
4. ऊपर दी गई तीनों बातें करता हैं।

9.9 जनन तंत्र

आपको याद होगा कि (एनैम्नियोटों= anamniotes) में कार्टिलेजी (उपास्थिमीन) तथा अस्थिल मछलियां एवं ऐम्फ़िबियन आते हैं तथा ऐम्नियोटों (amniote=उल्वी वर्ग) में रेप्टाइल, पक्षी एवं स्तनी आते हैं।

जनन तंत्र (genital system) संतानोत्पादक तंत्र (reproductive system) होता है और इसमें आते हैं गोनड (gonad=जनद), जनद वाहिनियां (gonoducts) तथा जनन छिद्र (genital pores)। जैसा कि आप पढ़ चुके हैं गोनड मीज़ोडर्म से व्युत्पन्न हुए होते हैं। इन्हें नर में वृषण और मादा में अण्डाशय कहते हैं। वृषण और अण्डाशय दोनों ही गैमीट (युग्मक) बनाते हैं तथा हार्मोन स्रावित करते हैं, एवं इन्हें प्राथमिक लैंगिक अंग (primary sex organs) कहा जाता है।

गोनड प्राय: युग्मित संरचनाए होती हैं हालांकि कुछ उदाहरणों में जैसे कि साइक्लोस्टोमों (जबड़ाविहीन मछलियों), कुछ मछलियों और पक्षियों की अधिकतर स्पीशीज़ के मादा पक्षियों में अयुग्मित गोनड होते हैं। ऐसा या तो युग्मित गोनडों के समेकन के कारण या किसी एक अकेले गोनड के अपह्रास के कारण होता है। कॉर्डेटों में गोनडों की विखंडता का प्रमाण केवल आदिम ऐम्फ़िऑक्सस (सेफ़ैलोकार्डेटा) में पाया जाता है।

कशेरुकियों में अण्डाशय तथा वृषण, आंत्रयोजनियों के समान ऊतक पट्टियों द्वारा शरीर की पृष्ठ भित्ति से जुड़े होते हैं, इन पट्टियों को नर में मीसोर्कियम (mesorchium) यानि वृषणधर तथा मादा में मीज़ोवेरियम (mesovarium) अथवा अंडाशयधर कहते हैं। अधिकतर कशेरुकियों में गोनडों में बनने वाले गैमीट (मादाओं में अण्डे तथा नरों में शुक्राणु) नरों में अभिवाही (शुक्र) वाहिनियों (deferens ducts) यानि शुक्रवाहक (vas deferens) के द्वारा और मादा में अंडवाहिनियों (oviducts) के द्वारा शरीर के बाहर ले जाए जाते हैं। कुछ उदाहरणों में जैसे कि साइक्लोस्टोमों में नर-मादा दोनों में वाहिनियां नहीं होतीं। इनमें अण्डे और शुक्राणु जनन-छिद्रों के द्वारा देह-गुहा में से बाहर को निकल जाते हैं।

अभिवाहिनियां जैसा कि आपको याद होगा प्राय: मीज़ोनेफ़्रिक अथवा वोल्फ़ियन वाहिनियां (Wolffian ducts) होती हैं। ये वाहिनियां, उन जानवरों में ओपिस्थोनेफ़्रिक अथवा मीज़ोनेफ़्रिक गुर्दों से मूत्र अपशिष्टों को ले जाने का कार्य भी करती हैं जिनमें ये गुर्दे या तो भ्रूण जीवन में या वयस्क जीवन (नर एनैम्नियोटों में) में क्रियाशील होते हैं। ऐम्नियोट नरों में जिनमें मेटानेफ़्रॉस कार्यात्मक वृक्क होता है और मीज़ोनेफ़्रॉस अपह्रासित हो जाता है, हर पार्श्व की वोल्फ़ियन वाहिनी बनी रहती है और शुक्र वाहिकाएं (नर जनन वाहिकाएं) बन जाती हैं।

अधिकतर कशेरुकियों में नर-मादा दोनों में जब जनन वाहिनियां सबसे पहले बनती हैं तब वे पीछे की तरफ जाकर अवस्कर में खुलती हैं। यह संबंध अनेक कशेरुकियों में आजीवन चलता रहता है। मगर अन्य में अवस्कर क्षेत्र में रूपांतरण हो जाता है जिससे जनन वाहिनियां या तो बाहर को अलग-अलग खुलती हैं या फिर कम से कम नरों में तो वे उत्सर्जी वाहिनियों से जुड़ जाती हैं और एक सम्मिलित छिद्र जिसे मूत्र-जनन छिद्र कहते हैं, के द्वारा बाहर को खुलती हैं।

अनेक जलीय कशेरुकियों में निषेचन बाहरी होता है जबकि थल कशेरुकियों में केवल ऐन्यूरन (anuran) ऐम्फ़िबियनों को छोड़कर और यहां तक कि उनकी अनेक जलीय स्पीशीज़ में भी निषेचन शरीर के भीतर होता है। कुछ प्राणियों में नर से मादा में शुक्राणुओं का स्थानांतरण नर मादा के अवस्करों के मात्र परस्पर संपर्क (cloacaising) द्वारा ही हो जाता है। मगर अधिकतर प्राणियों में नर में मैथुन अंग होते हैं जिन्हें नर अंत:प्रवेशी रूप में इस्तेमाल करके शुक्राणुओं को मादा के जनन पथ के भीतर छोड़ देता है। कशेरुकी समूहों में विभिन्न प्रकार के मैथुन अंग पाए जाते हैं।

दोनों सेक्सों में उन सभी संरचनाओं एवं अंगों को जो जनन कोशिकाओं अथवा प्राथमिक सेक्स अंगों के उत्पादों को परस्पर साथ लाने के कार्य में सहायता करते हैं, **सहायक लैंगिक अंग** (accessory sex organs) कहते हैं। इनमें आते हैं जनन वाहिनियां, संबंधित ग्रंथियां तथा अंत:प्रवेशी अंग। द्वितीयक लैंगिक लक्षणों (secondary sex characters) का संगम यानि सेक्स से सीधा संबंध तो नहीं होता मगर जनन योजना में उनकी कुछ भूमिका तो होती है। इन द्वितीयक लैंगिक लक्षणों में लैंगिक अंतर होते हैं जैसे कि पिच्छ व्यवस्था, देह का साइज़ (size) एवं उसकी शक्ति और स्वर उपकरण, जिनका जनन के साथ परोक्ष संबंध होता है।

अवस्कर (cloaca, रोमन भाषा का शब्द जिसका अर्थ है "सीवर"-"sewer") विविध कशेरुकियों में पाया जाता है। यह प्राणी के धड़ के पिछले सिरे पर एक अधरीय जेब जैसी संरचना होती है जो शरीर के बाहर को खुलती है। इसमें पाचन, जनन तथा मूत्र तंत्रों के छिद्र खुलते हैं। अवस्कर एक आदिम कशेरुकी लक्षण जान पड़ता है। आदिम रूप में आहार नाल, मूत्र वाहिनी और जनन वाहिनियां एक छोटे कक्ष, अवस्कर में खुलती हैं और यह अवस्कर बाहर को खुलता है।

अधिकतर चतुष्पादों (ऐम्फ़िबियनों, पक्षियों, रेप्टाइलों, अंडा देने वाले स्तनियों) में एक स्पष्ट अवस्कर होता है मगर अधिकतर स्तनियों में यह नहीं होता।

बोध प्रश्न 4

रिक्त स्थानों में उपयुक्त शब्द भरिए-:

(i) प्राथमिक लैंगिक अंग होते हैं .... तथा ....।

(ii) स्तन ग्रंथियां .... अंग होते हैं।

(iii) .... वाहिनी शुक्रवाहिका बन जाती है।

(iv) मीसोवेरियम द्वारा .... पृष्ठत: देह भित्ति से जुड़े रहते हैं।

(v) जब जनन वाहिनियां सर्वप्रथम बनती हैं तब वे .... में खुलती हैं।

(vi) वृषणों को पृष्ठ देह भित्ति से आलंबित रखने वाला ऊतक .... कहलाता है।

(vii) मैथुन अंग एक .... अंग होता है।

9.9.1 गोनडों तथा युग्मकों का भ्रूणीय उद्भव

किसी भी व्यष्टि का लिंग यानि सेक्स मूलत: उसकी क्रोमोसोमी वंशागति पर निर्भर होता है। भ्रूण का आरंभिक परिवर्धन मुख्यत: अनिषेचित अंडे की पहले से ही मौजूद संघटना, शुक्राणु के प्रभाव तथा उसके द्वारा अंडे में पहुंची वंशागति के द्वारा प्रभावित होता है जिस कारण लैंगिक लक्षण बाद की ही अवस्थाओं में प्रकट होते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं भ्रूण में लैंगिक अंग कुछ समय तक **उदासीन अवस्था** (indifferent stage) में बने रहते हैं अर्थात् स्पष्ट नहीं होते, जिसके दौरान गोनडों तथा उनकी वाहिनियों का परिवर्धन तेज़ गति से होता रहता है और ऐसा कोई संकेत नहीं मिलता कि भ्रूण नर के रूप में विकसित होगा या मादा के रूप में। अंतत: भ्रूण में लिंग विशिष्ट लक्षण प्रकट होते हैं और ऐसा अनुमानत: हार्मोन की क्रिया के द्वारा होता है।

ऐम्फ़िबियन नरों में अवस्कर ग्रंथियां होती हैं जिनसे एक गंध का स्राव होता है जो मैथुन हेतु मादा को आकर्षित करती है। इनमें अवस्कर ग्रंथि से एक जेली-सदृश पदार्थ का भी स्राव निकलता है जो शुक्राणुओं को एक पैकेज (package) की तरह अपने में थामे रखता है। इसे **स्पर्मेटोफ़ोर** (spermatophore = शुक्राणुधर) कहते हैं। मादा इस स्पर्मेटोफ़ोर को अपने अवस्कर में ले लेती है जिससे उसके अण्डों का निषेचन होता है।

गोनडों का भ्रूणीय उद्भव

कॉर्डेटों में नरत्व (maleness) का परिवर्धन मूलत: मादा योजना के ही अनुसार होता है। गोनड और वृक्क दोनों ही भ्रूण की मध्यवर्ती मीज़ोडर्म (मीसोमीयर) से विकसित होते हैं। (चित्र 9.16 a)।

कशेरुकियों में विभिन्न अंग तंत्र जिस गति से विकसित होते हैं उसकी तीव्रता सब अंगों के लिए अलग-अलग होती है। उदाहरणत: आरंभिक अवस्थाओं में तंत्रिका तंत्र बहुत तेजी से बनता है जबकि जनन अंग सबसे धीमी गति से विकसित होते हैं। गोनड उस अवस्था के आने पर प्रकट होते हैं जब अधिकतर अन्य अंग-तंत्र आगे बनने से रुक गए होते हैं और सीलोमी गुहाएं सुविकसित हो गयी होती हैं। जनन कटक (genital ridges) युग्मित अनुदैर्ध्य उत्फूलनों के रूप में सीलोम की छत में भ्रूणीय वृक्क के मध्यक तथा पृष्ठ आंत्रयोजनी के दाएं-बाएं विकसित होते हैं (चित्र 9.16 b)। इन कटकों से गोनड बनते हैं।

इस प्रकार के कटकों से बने गोनड परिवर्धन के आरंभ में लंबे होते हैं। ये बाद की अवस्थाओं में अक्सर छोटे और संहत हो जाते हैं जिनमें सामान्यत: ऊतकों के आगे की ओर को सांद्रित होने की प्रवृत्ति होती है। कटकों की जननिक एपिथीलियम शेष सीलोम के मीज़ोडर्मी अस्तर के साथ जारी रहती है तथा उससे गोनड के अधिक महत्त्वपूर्ण संरचनात्मक भाग बनते हैं।

एपिथीलियम के नीचे स्थित मीज़ेन्काइमा (mesenchyma) से संयोजी ऊतक बनता है और उच्चतर कशेरुकियों में तो मीज़ेन्काइमा से विशेष अंतराली ऊतक बनते हैं जिन्हें गोनड हार्मोनों का स्रोत माना जाता है।

उदासीन यानि अपरिपक्व अवस्था (indifferent stage) के समाप्त होने से पूर्व गोनड प्राय: अनेक मामलों में एक फूली संरचना के रूप में विकसित हो जाता है। परिवर्धनशील वृक्क के निकट सीलोमी गुहा की पृष्ठ भित्ति से सीलोम के भीतर तक इस संरचना का विस्तार हो जाता है। अक्सर यह संरचना आंत्रयोजनी द्वारा आलंबित रहती है। गोनड की सतह को ढके रहने वाली जनन एपिथीलियम से प्राथमिक सेक्स रज्जु (primary sex cords) नामक अंगुली जैसी (finger like) संरचनाएं उत्पन्न होकर गोनड की अधोवर्ती मीज़ेन्काइमा में अंदर को बढ़ गयी होती हैं (चित्र 9.16 b)।

नर-मादा दोनों में आरंभ में गोनडों के भीतर जनन कोशिकाएं होती हैं। ये जनन कोशिकाएं जनन कटक के अंदर नहीं प्रकट होतीं और न ही सहवर्ती मीज़ोडर्म के भीतर।

वास्तव में ये कोशिकाएं भ्रूण के भीतर पैदा ही नहीं होतीं। वे सबसे पहले भ्रूण के बाहर भ्रूण-बाह्य एंडोडर्म में कहीं दूर स्थलों पर प्रकट होती हैं। यहां से वे अपरिपक्व गोनडों में प्रवास कर जाती हैं जहां वें स्थायी तौर पर स्थित हो जाती हैं। मादाओं में जनन कोशिकाएं कॉर्टेक्स में स्थापित हो जाती हैं जबकि नर में ये मेडुला में स्थित हो जाती हैं। जैसे-जैसे गोनड परिपक्व हो जाते हैं वैसे-वैसे वे बड़े हो जाते हैं और नीचे को जाते हैं जहां वे नर में मीसोर्कियम (वृषणधर) नामक और मादा में मीसोवेरियम (अण्डाशयधर) नामक पृष्ठ आंत्रयोजनी द्वारा आलंबित रहते हैं।

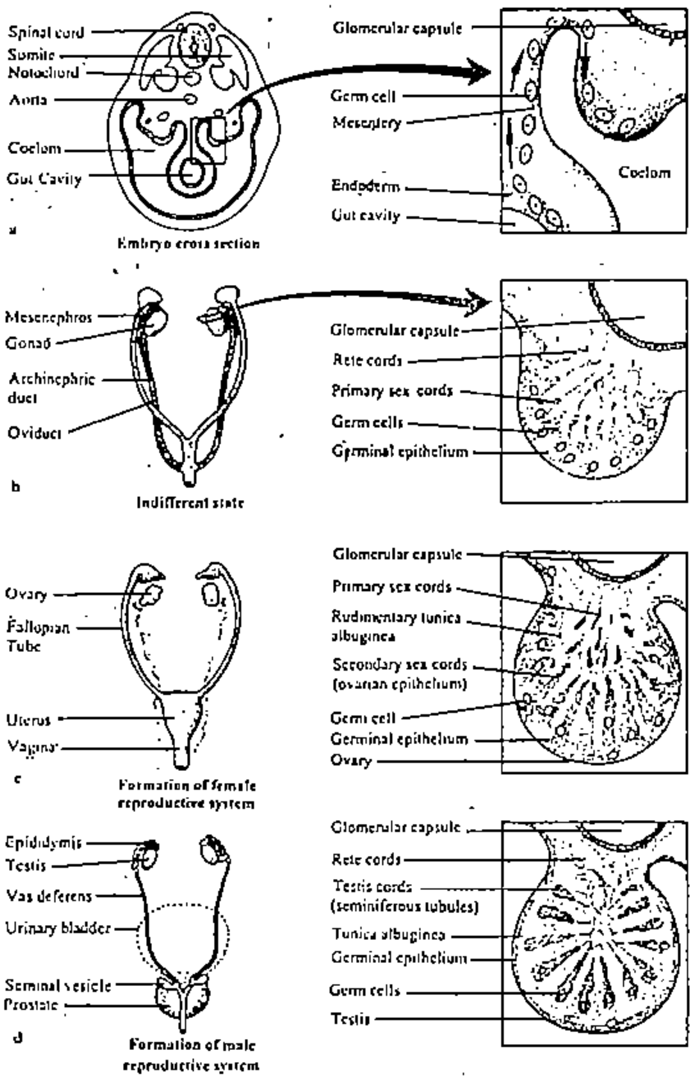

चित्र 9.16 : कशेरुकियों में गोनडों का परिवर्धन जिसमें अपरिपक्व गोनड के अंडाशय तथा वृषण में रूपांतरण होता दर्शाया गया है। गोनडी संरचना, चाहे प्राथमिक कॉर्टेक्स अथवा मेडुला भ्रूणीय मीज़ोडर्म से व्युत्पन्न हुई हो (a) प्राथमिक जनन कोशिकाएं जिनसे शुक्राणु अथवा अण्डे बनते हैं। आरंभ में कोशिकाएं भ्रूणीय एंडोडर्म में होती हैं और उसके बाद परिवर्धन के दौरान वे आंत्रयोजनियों में से स्थानांतरण करके अपरिपक्व गोनड में पहुंच जाती हैं। (b) जनन कोशिकाएं अपने को अपरिपक्व गोनड की मेडुलरी तथा कॉर्टिकल कोशिकाओं के बीच व्यवस्थित कर देती हैं। (c) अण्डाशय के निर्माण में कॉर्टिकल कोशिकाओं की प्रधानता होती है, जबकि (d) वृषणों के बनने में मेडुलरी ऊतकों का बाहुल्य होता है।

9.9.2 जनन तंत्र के कार्य

- जनन तंत्र का प्रथम कार्य गैमीटों यानि शुक्राणुओं तथा अण्डों का उत्पादन करना है जो क्रमशः नर और मादा गोनडों में हाइपोथैलेमों- पिट्यूटरी हार्मोनों (hypothalmo – pituitary hormones) के प्रभाव से बनते हैं।

- जनन-तंत्र की जनन वाहिनियां गैमिटों को निषेचन हेतु उपयुक्तम स्थान पर ले जाती हैं। यह स्थान जल हो सकता है जहां अण्डे मादा द्वारा छोड़े जाते हैं और नर द्वारा उनके ऊपर शुक्राणु छोड़े जाते हैं (वाह्य निषेचन) या शुक्राणुओं को मादा पथ में ठीक उतनी दूर छोड़ा जाता है जहां अण्डा और शुक्राणु परस्पर मिल सकते हैं (आंतरिक निषेचन)।
- शुक्राणुओं का मादा शरीर के भीतर परिवहन विशेषत: सहायक जनन अंगों अर्थात् अंत:प्रवेशी अंगों द्वारा होता है, ताकि निषेचन सुनिश्चित हो सके।
- मादा जननवाहिनी नर की जननवाहिनी से भिन्न होती है। यह तीन प्रकार के अंगों को अपने भीतर कायम रखने के लिए विशेषित होती है : (i) अंडा (अंडा देने अर्थात् अंडप्रजक (oviparous) जीवों में) जैसे कि मछलियों, ऐम्फ़िबियनों, रेप्टाइलों तथा पक्षियों में, (ii) परिवर्धनशील भ्रूण से युक्त अण्डा (अण्डजरायुज=ovoviviparous) ऐसे जीवों में जो अंडा तब देते हैं जब उसमें एक ख़ास अवस्था तक परिवर्धन हो चुकता है, जैसे कुछ सांपों में, अथवा (iii) परिवर्धनशील भ्रूण (सजीवप्रजक प्राणियों = viviparous) ऐसे जीवों में जो पूर्ण विकसित बच्चों को जन्म देते हैं जैसे स्तनियों में।
- गोनडों से सेक्स हार्मोनों का स्रवण होता है जो रासायनिक तौर पर स्टेरॉयड (steroid) होते हैं। वृषण से स्रावित होने वाला नर हार्मोन टेस्टोस्टेरोन (testosterone) होता है। मादा हार्मोन मुख्यत: इस्ट्रोजेन (estrogen) तथा प्रोजेस्टेरोन (progesterone) होते हैं। सेक्स हार्मोन द्वितीयक लैंगिक लक्षणों को नियंत्रित करते हैं, तथा संरचना, शरीर क्रिया एवं व्यवहार में अंतर पैदा करते हैं जिनके आधार पर नर और मादा में विभेद किया जा सकता है। द्वितीयक लैंगिक लक्षण विशेषकर प्रजनन ऋतु में सुव्यक्त होते हैं।

बोध प्रश्न 5

कोष्ठकों में दिए गए विकल्पों में से सही विकल्प चुनिए:

i) जनन अंग भ्रूणीय (मीज़ोडर्म/एक्टोडर्म) जनन परत से विकसित होते हैं।

ii) जनन एपिथीलियम से विकसित होने वाले अंगुली-सदृश प्रवर्धों को (प्राथमिक/द्वितीयक) सेक्स रज्जु कहते हैं।

iii) वे जीव जो ऐसे अंडे देते हैं जिनके भीतर भ्रूण का पूर्ण परिवर्धित होता है कहलाते हैं (सजीवप्रजक/अंडप्रजक)

iv) स्तनी (अण्डजरायुज/सजीवप्रजक) होते हैं।

v) इस्ट्रोजेन एक (नर/मादा) हार्मोन होता है।

9.9.3 प्रोटोकॉर्डेटों का जनन तंत्र

ब्रैंकियोस्टोमा एक एकलिंगाश्रयी (dioecious) कॉर्डेट हैं। नर और मादा दोनों में गोनडों की व्यवस्था एक जैसी ही होती है, जिसमें गोनड स्पष्टत: खंडश: व्यवस्थित होते हैं। ये गोनड (जो अनेक होते हैं) पेशी खण्डों यानि मायोमीयरों के नीचे स्थित होते हैं (चित्र 9.17 a)। लगभग 26 जोड़े गोनड एट्रियम, जिसे परिगिल गुह भी कहते हैं, के दोनों पार्श्वों पर स्थित होते हैं और ये गोनड देह-भित्ति के भीतरी सतह से एट्रियम (atrium = परिकोष्ठ) के भीतर तक स्थित रहते हैं। सबसे आगे के गोनड ग्रसनी क्षेत्र के मध्य भाग को घेरे हुए रहते हैं। प्रत्येक गोनड (खंड) एक खोखला थैला होता है जिसका अस्तर बनाते हुए : (1) एक बाहरी सीलोमी एपिथीलियम होती है और (2) एक भीतरी जनन एपिथीलियम होती है। गैमीट (युग्मक) गोनड के गुहा के भीतर बनते हैं और भित्ति में बने अस्थायी छिद्रों द्वारा एट्रियल गुहा में निकाल दिए जाते हैं। इस गुहा में से ये गैमीट एट्रियोपोर (atriopore)

द्वारा होकर सीधे शरीर के बाहर को निकल जाते हैं। प्रोटोकॉर्डेटों में निषेचन बाह्य होता है। कुल मिलाकर *ब्रेंकियोस्टोमा* के जननअंग कशेरुकियों के जनन अंगों के समान नहीं होते। अण्डाशयी पुटक या फ़ॉलिकल (ovarian follicle) भी कशेरुकियों से भिन्न जान पड़ता है क्योंकि इसमें पुटक एपिथीलियम (epithilium=उपकला) नहीं होती है।

यूरोकार्डेट (ट्यूनिकेट=tunicate) उभयलिंगी होते हैं यानि उनमें एक ही प्राणी में दोनों प्रकार के लैंगिक अंग होते हैं। गोनडों से आने वाली वाहिनियां एट्रियम में प्रवेश करती हैं और फिर एट्रियोपोर के द्वारा बाहर को खुलती हैं (चित्र 9.17b)। एट्रियम अंतरंगों (देह के भीतर के अंगों) को घेरे हुए अवकाश होता है।

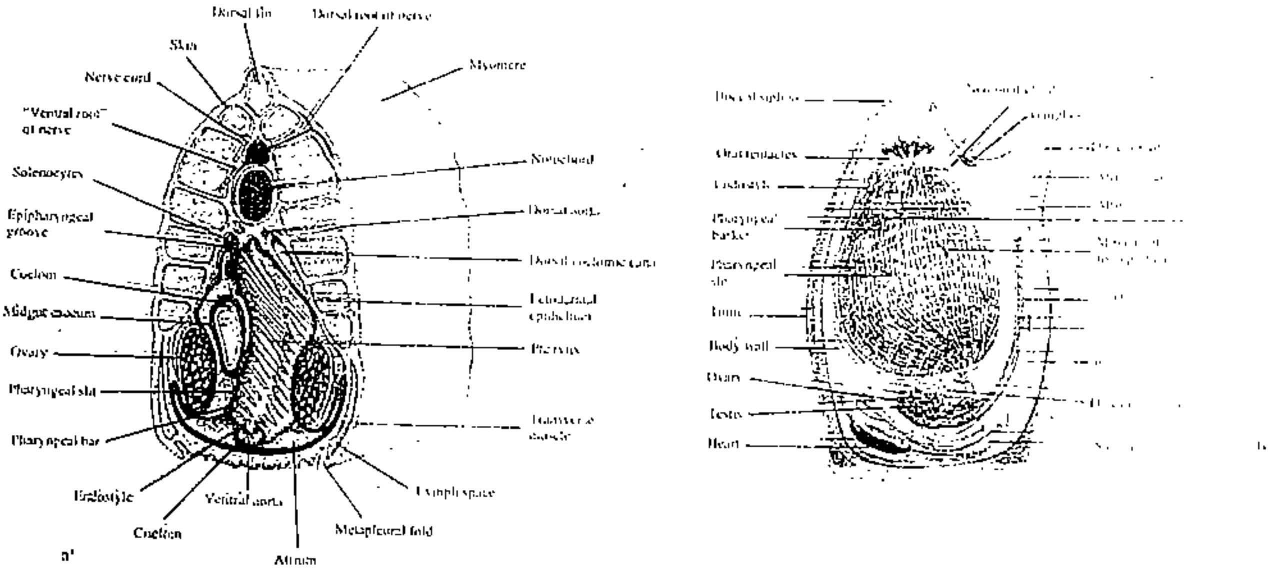

चित्र 9.17 : प्रोटोकार्डेटों के जनन तंत्र (a) *ब्रेंकियोस्टोमा* की अनुप्रस्थ काट जिसमें खंडीय गोनड दिखायी पड़ रहे हैं (b) एक ट्यूनिकेट का सममितार्धी (sagittal) सेक्शन जिसमें जनन तंत्र दिखाए गए हैं।

9.10 कशेरुकियों का नर जनन तंत्र

नर कशेरुकी के जनन-तंत्र में निम्न आते हैं।

1. युग्मित गोनड - वृषण
2. युग्मित जनन वाहिनियां
3. एकल मूत्र जनन छिद्र

हम नर जनन तंत्र का अध्ययन वृषण की शारीरिकी से आरंभ करेंगे :-

9.10.1 वृषण

सभी कशेरुकियों के वृषण (testes) की संरचना समान होती है। प्ररूपी वृषण एक संहत अंग होता है, मगर उसका आकार (shape) विभिन्न कशेरुकी क्लासों (classes) के सदस्यों में अलग-अलग होता है। कुछ उदाहरणों के वृषणों में होते हैं: (i) लम्बी नलिकाएं जिन्हें शुक्रजनक नलिकाएं (seminiferous tubules) कहते हैं और जिनके भीतर आद्य जनन कोशिकाओं से परिपक्व शुक्राणु बनते हैं। ये नलिकाएं वाहिनियों द्वारा बाहर को खुलती हैं, उदाहरण : ऐन्यूरन एम्फ़िबियन तथा ऐम्नियोट प्राणी। (ii) अन्य में वृषण में गोल गुहाएं

बनी होती हैं जिन्हे शुक्रजनक ऐम्पुले (seminiferous ampullae) अथवा शुक्र ऐम्पुले (spermatic ampullae) अथवा शुक्र पुटियां (spermatic cysts) कहते हैं, जिनके उदाहरण हैं: साइक्लोस्टोम, मछलियां, तथा यूरोडील। गोल ऐम्पुले तथा लम्बी नलिकाओं दोनों में ही आरंभ में कशेरुकियों की ठोस संहतियां होती हैं, जिनमें आगे चलकर गुहाएं अथवा अवकाशिकाएं बन जाती हैं।

शुक्रजनक नलिकाएं (seminiferous tubules)

ऐन्यूरनों, ऐम्नियोटों (रेप्टाइलों, पक्षियों तथा स्तनियों) के और यहां तक कि कुछ टीलियोस्टों के वृषण भी अधिकतर रूप में शुक्रजनक नलिकाओं से बने होते है। ये नलिकाएं कुंडलित होती हैं और इनकी भित्ति में शुक्राणु बनाने वाली कोशिकाएं होती हैं (चित्र 9.18 a)।

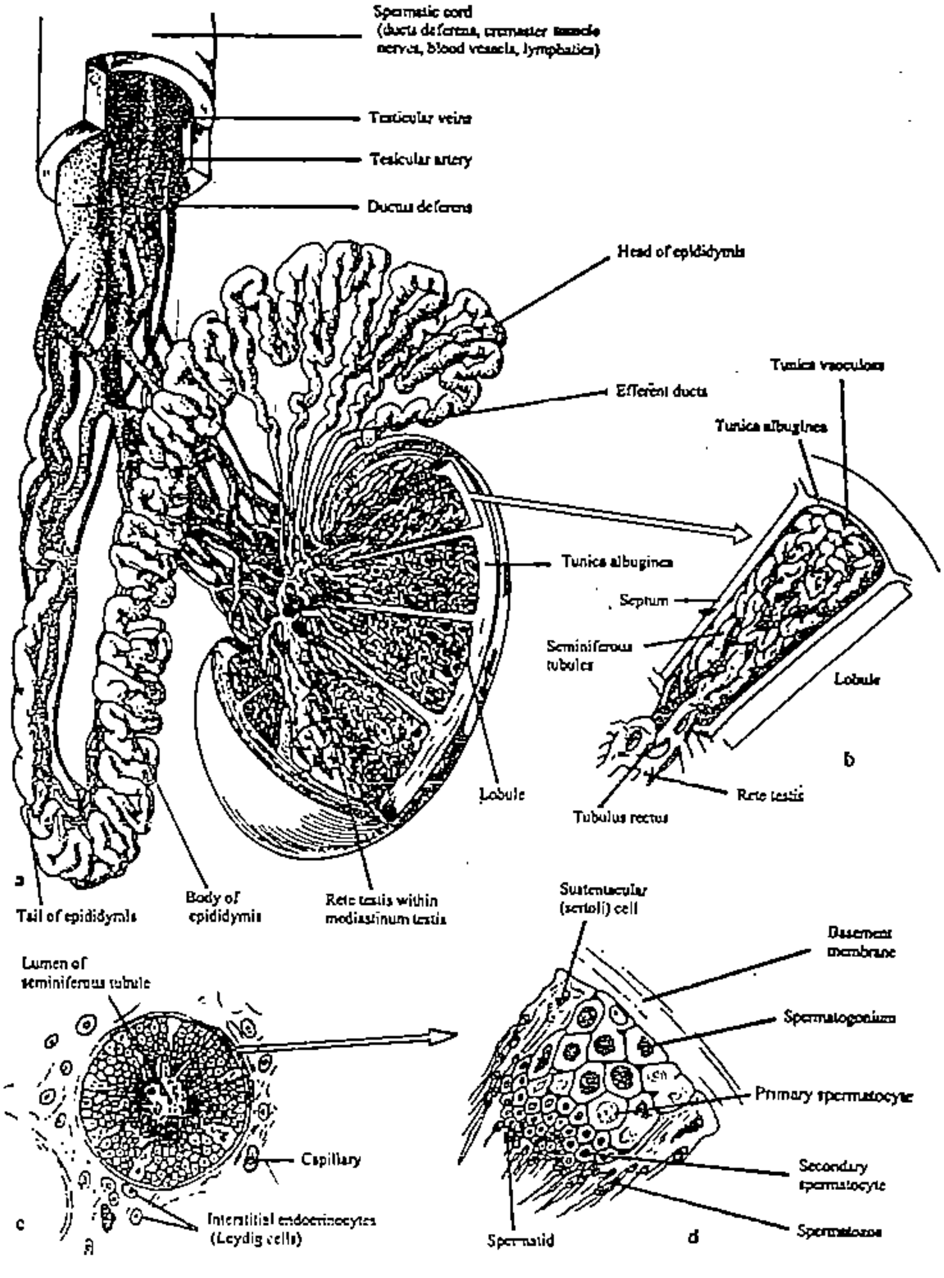

चित्र 9.18 : स्तनीय वृषण (a) वृषण में से लिया गया सेक्शन जिसमें शुक्राणु-मार्ग दर्शाया गया है, (b) आरेख 'a', में दर्शाए गए एक हिस्से का आवर्धित दृश्य जिसमें शुक्रजनक नलिकाओं एवं 'रेटे टेस्टिस' ('rete testis'=वृषण जालिका) की विस्तृत व्यवस्था दिखायी गयी है, (c) वृक्क का सेक्शन जिसमें शुक्रजनक नलिकाएं तथा नलिकाओं के बीच स्थित लीडिग कोशिकाओं (Leydig cells) के समूह दिखायी दे रहे हैं, (d) आरेख 'c', में दर्शाए गए एक क्षेत्र का आवर्धित दृश्य जिसमें परिवर्धनशील शुक्राणु तथा सर्टोली कोशिकाएं (sertoli cells) दिखायी गयी हैं।

वृषणों को घेरता हुआ एक कैप्स्यूल होता है जिसे ट्यूनिका ऐल्बुजिनी (tunica albuginea= श्वेत कंचुक) कहते हैं। वृषण का 90 प्रतिशत तक का भाग शुक्रजनक नलिकाओं का बना हो सकता है। नलिकाओं की भित्ति बहुस्तरीय जननिक एपिथीलियम की बनी होती है जिसमें शुक्राणुजननिक कोशिकाएं और सर्टोली कोशिकाएं (sertoli cells) होती हैं। ये सर्टोली कोशिकाएं पोषणदायी होती हैं और इन्हीं के भीतर परिपक्वशील शक्राणुओं के शीर्ष गड़े होते हैं। कदाचित सर्टोली कोशिकाओं से अधिकतर वह तरल ही बनता है जिसके भीतर वृषण से बाहर जाते समय शुक्राणु स्थित रहते हैं, और यह तरल रक्त प्लाज़्मा से सक्रिय निस्यंदन द्वारा प्राप्त होता है (चित्र 9.17 b)।

शुक्रजनक नलिकाएं कंचुक (tunic) पर अथवा सबसे बाहरी ऊतक परत में पहुंचकर रास्ता बंद पा सकती हैं और वहां से मुड़कर चलतीं हुई केंद्र पर पहुंचती हैं। इससे रास्ते में ये खूब ऐंठी-गुड़ी-मुड़ी (full of twists and bends) होती हैं और अंत में रेटे टेस्टिस (**rete testis**) यानि एक वृषण जालिका में समाप्त होती हैं जो संग्राही नलिकाओं का तंत्र होता है। यह व्यवस्था मेंढ़कों का लक्षण है। कुछ ऐम्नियोटों में जैसे कि चूहे में ये नलिकाएं एक टेढ़ा-मेढ़ा रास्ता अपनाते हुए वृषण जालिका से परिधि की ओर जाती हैं और फिर वहां से वापिस आ जाती हैं और अंत में खुली हो सकती हैं। इस प्रकार की नलिकाओं की औसत लम्बाई 30 cm होती है, और वे शायद ही कभी परस्पर एक दूसरे में खुलती हैं। अनेक स्तनियों में ये नलिकाएं पालिकाओं के रूप में समूहित हो जाती हैं जो संयोजी ऊतक के पटों (septa) अथवा भित्ति से एक दूसरे से पृथक रहती हैं। इस व्यवस्था से संभव होता है कि जनन एपिथीलियम की काफ़ी मात्रा एक छोटी सी ही गुहा में स्थित रहती है (चित्र 9.18 a)। अपरिपक्व नरों में तथा उन स्पीशीज़ के वयस्क नरों में, जिनकी अपनी-अपनी विशिष्ट प्रजनन-ऋतुएं होती हैं, प्रजनन-ऋतुओं के बीच के समय में नलिकाएं अस्पष्ट होती हैं एवं एपिथीलियम अक्रिय बनी रहती हैं।

मगर कुछ स्पीशीज़ में वयस्क नरों में शुक्राणुजनन यानि शुक्राणुओं का बनना वर्ष पर्यन्त अलग-अलग वेग से होता है। सक्रिय एपिथीलियम में परिवर्धनशील शुक्राणुओं की सभी अवस्थाएं देखी जा सकती हैं। जिन शुक्राणुओं के शीर्ष सर्टोली कोशिकाओं में स्थित होते हैं, उन शुक्राणुओं की पूंछे, मुक्त शुक्राणु तथा तरल अवकाशिका यानि नलिका की गुहा में होते हैं। यह तरल अवशोषित कर लिया जा सकता है। स्तनियों में नलिका के किसी भी एक क्षेत्र में स्थित सभी शुक्राणु एक ही परिपक्वन अवस्था में होते हैं, सहवर्ती क्षेत्रों में शुक्राणु अलग-अलग विकासशील अवस्थाओं में हो सकते हैं। शुक्राणु निर्माण तथा उनके विसर्जन के बाद अक्रियता का अंतराल आता है।

शुक्रधर ऐम्पुले (seminiferous ampullae)

साइक्लोस्टोमों, अधिकतर मछलियों तथा पुच्छीय ऐम्फ़िबियनों में शुक्रजनक पुटियां होती हैं जिन्हें भांति-भांति के नाम दिए जाते है जैसे **शुक्राणुजनीय पुटियां** (spermatogonial cysts) अथवा **शुक्रपुटियां** (spermatocysts) अथवा **शुक्राणु पुटक** (sperm follicles) अथवा **शुक्राणु ऐम्पुले** (तुंबिका), अथवा **शुक्राणु प्रगुहिका** (sperm crypts) अथवा **शुक्राणु** थैले (sperm sacs) या **शुक्राणु** कोष्ठक (sacs acinus) या शुक्राणु कैप्स्यूल। इनके भीतर शुक्राणु परिवर्धित होते हैं मगर इनमें एपिथीलियम जननिक नहीं होती। शुक्राणु, ऐम्पुलों के भीतर सर्टोली कोशिकाओं के मध्य परिपक्व होते हैं। सर्टोली कोशिकाओं का कार्य अंशतः पोषकीय जान पड़ता है। एक बार जब शुक्राणु परिपक्व हो जाते हैं तब ऐम्पुलों की भित्ति टूट जाती हैं और शुक्राणु मुक्त होकर सीलोमी गुहा में आ जाते हैं। जननिक एपिथीलियम (germinal epithelium) की व्यवस्था शुक्रजनक नलिकाओं की एपिथीलियम की व्यवस्था से भिन्न होती है। शुक्रजनी कोशिकाएं अपनी स्थायी जननिक परत से निकलकर पुटियों (cysts) में आ जाती हैं, और ये पुटियां विभिन्न स्पीशीज़ में भिन्न-भिन्न स्थानों में होती हैं: या तो वृषण की परिधि पर स्थित होती हैं या वृषण के एक सीमांत पर बने एक कटक में। शुक्राणुजननिक कोशिकाएं (spermatogenic cells) पतली अजननिक कोशिका एपिथीलियम में पहुंच जाती हैं

और प्रगुणन करके बहुत संख्या में शुक्राणु बनाती हैं। पुटिया फूल जाती हैं और सफ़ेद से रंग की हो जाती हैं। पूरा वृषण फूल जाता है एवं देखने में कणिकीय सा हो जाता है। परिपक्व हो जाने पर शुक्राणु एपिथीलियम से पृथक हो जाते हैं और पुटी के तरल में मुक्त रूप से गति करते हैं। अंततः पुटियां फूट जाती हैं और शुक्राणु वाहिनी में छोड़ दिए जाते हैं। साइक्लोस्टोमों तथा कुछ टीलियोस्टों में शुक्राणु सीलोम में छोड़ दिए जाते हैं। पूर्णतः खाली हो जाने पर पुटियां पिचक जाती हैं। तदुपरांत या तो उनके स्थान पर नयी पुटियां बन जाती हैं या स्वयं उन्हीं में दोबारा शुक्राणुजनिक कोशिकाएं बन जाती हैं।

वृषणों के भीतर शुक्रजनक नलिकाओं अथवा शुक्राणुजनिक पुटियों के बीच की जगहों में **वृषण स्ट्रोमा** (testicular stroma) भरा होता है जिसमें मुख्यतः संयोजी ऊतक, रक्त, लसीका वाहिकाएं तथा तंत्रिकाएं पाए जाते हैं। स्ट्रोमा की मात्रा कुछ कशेरुकियों में अन्य की अपेक्षा अधिक होती है। **लीडिग कोशिकाएं** (Leydig cells) नामक अंतराली ग्रंथिय कोशिकाएं (glandular interstitial cells) होती हैं और ये यदि सब में नहीं तो अधिकतर कशेरुकियों में तो पायी ही जाती है। लीडिग कोशिकाओं को **एंड्रोजन** (androgens) अर्थात् नर हार्मोनों का प्राथमिक स्रोत माना जाता है। ये कोशिकाएं अक्सर आसानी से अलग से नहीं पहचानी जा सकतीं। चूहे के वृषण का और कदाचित् अन्य कई कशेरुकियों में भी केशिका तंत्र का रक्त लीडिग कोशिकाओं को तर करके रक्त नलिकाओं में चला जाता है। अधिकतर कशेरुकियों में वयस्क गोनड सीलोमी गुहा के ऊपरी भाग में अपनी स्थिति बनाए रहते हैं। स्तनियों को छोड़कर बाकी कशेरुकियों में वृषण शरीर के भीतर स्थित रहते हैं। यही स्थिति स्तनीय के कुछ आर्डरों (Orders) के अनेक सदस्यों में और कभी-कभी तो इनके सभी सदस्यों में भी पायी जाती है। ये आर्डर हैं- मॉनोट्रीमैटा (Monotremeta= एकविद्र गण), इन्सेक्टिवोरा (Insectivora=कीटभक्षी), हाइरैकॉइडिया (Hyracoidea), इडेण्टैटा (Edentata=अदन्त गण), साइरेनिया (Sirenea), सिटेसिया (Cetacea-तिमिगण) तथा प्रोबोसीडिया (Proboscidea=हाथी गण)।

कुछ नर स्तनियों में जैसे कि अधिकतर मार्सुपिएलियों, अंगुलेटों (ungulates-खुरदार), कार्निवोरों (carnivores) तथा प्राइमेटों (primates) में शिशु अवस्था के उपरांत वृषण नीचे एक खास प्रकार के थैले में उतर आते हैं जिसे वृषण कोश (scrotum) कहते हैं और यहां वे स्थायी तौर पर स्थापित हो जाते हैं। वृषण कोश एक ताप नियामक युक्ति (temperature regulating device) है। वृषण युग्मित संरचनाएं होती हैं जो उदर गुहा के नीचे की ओर से शरीर के बाहर को निकले होते हैं। प्रत्येक वृषण कोश एक **वंक्षण नाल** (inguinal canal) द्वारा उदर गुहा से जुड़ा रहता है और इस नाल का अस्तर पेरिटोनियमी झिल्ली का बना होता है। परिवर्धन के दौरान वृषण अपने मूल स्थान से पीछे और नीचे की ओर को चले जाते हैं और वृषण कोशों में आ जाते हैं। प्रत्येक वृषण के साथ उसकी अपनी-अपनी वाहिनी, रक्त वाहिकाएं, लसीका वाहिकाएं और एक-एक विशिष्ट आंत्रयोजनी (mesentery) भी जिसे **गुबर्नेकुलम** (gubernaculum) कहते हैं, आ जाती है। कुछ स्तनियों में एक थैला होता है जिसमें वृषण नीचे उतर आते हैं। यहां से उन्हें वृषण थैले में मौजूद एक पेशी, क्रीमैस्टर (cremaster=लम्बववर्घ) की क्रिया द्वारा प्रतिकर्षित (retracted) किया जा सकता है। ऐसे स्तनियों में आते हैं कुछ रोडेण्ट (rodents=कृन्तक) जैसे कि थलीय गिलहरियां, अधिकतर चिमगादड़ें और कुछ आदिम प्राइमेट (लोरिस, पोटो)। कुछ उदाहरणों में ये थैले उदर गुहा में पूरी तरह खुले रहते हैं जिससे दो प्रजनन ऋतुओं के बीच के काल में वृषणों को वंक्षण नाल में से देह के भीतर को खींच लिया जा सकता है। वंक्षण नाल वही नाल है जिसमें से वृषण नीचे थैले में उतरते हैं और इसी में से उन्हें वापिस गुहा में खींचा जा सकता है। अवतरण यानि नीचे उतरने के दौरान वृषण अपने साथ पेरिटोनियम में लिपटी एक शुक्र वाहिनी (spermatic duct), रक्त एवं लसिका वाहिनियां तथा एक तंत्रिका-आपूर्ति को ले आते हैं, इस लिपटे हुए भाग को सामूहिक रूप से शुक्र-रज्जु (spermatic cord) कहते हैं। खरगोशों, अधिकतर रोडेण्टों तथा कुछ इंसेक्टिवोरों में वृषण

कोश नहीं पाए जाते, उसकी बजाए एक चौड़ा (wide) यानि वंक्षण नाल होती है जिसमें वृषण खींच लिये जा सकते हैं। किसी क्षति के ख़तरे के समय वृषण को नाल से वापिस ले लिया जाता है। ऐसे स्तनियों में अवरोहित (descended) वृषणों से पेरिनियल (perineal = मूलाधार) क्षेत्र अर्थात् गुदा और मूत्रजनन छिद्र के बीच के क्षेत्र में एक अस्थायी उत्फूलन बन जाता है। कुछ स्तनी ऐसे हैं जिनमें वृषण स्थायी रूप में इसी पेरिनियल क्षेत्र में ही रहते हैं। मानव सहित कुछ स्तनियों में (चित्र 9.4 a) वृषण थैले स्थायी तौर पर बंद रहते हैं परंतु कभी-कभार इस क्षेत्र की उदर भित्ति में मौजूद कोई कमज़ोर बिंदु स्थल फट सकता है जिससे वंक्षण हर्निया (आंत उतरना) हो जाता है।

9.10.2 नर जननिक वाहिनी

नर जननिक वाहिनियां (male genital duct) यानि जनन वाहिनियां जिनका काम अधिकतर कशेरुकियों में शुक्राणुओं को शरीर से बाहर ले जाना होता है, आर्किनेफ्रिक (आदिवृक्क) वाहिनियां अर्थात् वोल्फी वाहिनियां (Wolffian ducts) होती हैं जो परिवर्धित होते हुए वृक्कों से संयोजन बनाते हुए बनती हैं। आपको याद होगा कि आर्किनेफ्रिक वाहिनी नाम एनैम्नियोटों (anamoniotes-अनुल्बी वर्ग) में वृक्क वाहिनी के लिए इस्तेमाल किया जाता है। यद्यपि नर जनन वाहिनियां मादा जनन वाहिनियों के समान होती हैं, तथापि नर जनन वाहिनियों का इतिहास एवं उनकी संघटना काफ़ी जटिल हैं।

जैसा कि आपको याद होगा कि इन वाहिनियों का मूल कार्य मूत्र अपशिष्टों का निष्कासन है। अनेक मछलियों तथा ऐम्फिबिनों में कुछ रूपांतरित वृक्क नलिकाएं शुक्राणुओं को वृषणों से आदिवृक्क वाहिनी तक ले जाने का काम करने लगते हैं। ऐसी स्थिति में इन्हें अपवाही वाहिनिकाएं (efferent ductules) कहते हैं और आर्किनेफ्रिक वाहिनी को शुक्र वाहिनी (ductus deferens) कहते हैं। ऐम्नियोटों में, मीज़ोनेफ्रॉस विघटित हो जाता है लेकिन मीज़ोनेफ्रिक वाहिनी कायम रहती है और वह अब शुक्र वाहिनी तथा एपिडिडिम (epididymis = अधिवृषण) वाहिनी कहलाई जाती है। यह एपिडिडिमस वाहिनी (जो कि इस मामले में रूपांतरित एवं मीज़ोनेफ्रिक नलिकाएं होती हैं) अपवाहिनियों (efferent ducts) या वाहिनिकाओं (ductules) के माध्यम से वृषण से संबंध स्थापित कर लेती है (देखिए चित्र 9.18 a)। ऐम्फ़िऑक्सस तथा आधुनिक जबड़ाविहीन मछलियों यानि साइक्लोस्टोमों में जनन वाहिनियों का अभाव होता है।

आधुनिक जबड़ाविहीन मछलियों में वृषण तुंबिका (testicular ampullae) यानि ऐम्पुले, फूटने पर शुक्राणु मुक्त होकर सीलोम में आ जाते है, जहां से वे जनन छिद्रों द्वारा देह के बाहर आ जाते हैं (चित्र 9.19)। तथापि अधिकतर कशेरुकियों में शुक्राणु सीलोम में कभी नहीं प्रवेश करते बल्कि सीधे जनन वाहिनियों में चले जाते हैं। सभी जबड़ायुक्त कशेरुकियों में वृषण एक या अधिक वाहिनियों से, जिन्हें शुक्रवाहिनियां कहते हैं, जुड़े रहते हैं और इन्हीं में से होकर शुक्राणु शरीर से बाहर निकल जाते हैं। सभी शुक्राणु वाहिनियों में वृक्क वाहिनियों के अंश भी शामिल होते हैं और इसी कारण इन्हें मूत्र-जनन वाहिनियां कहा जाता है। इसका अपवाद है टीलियॉस्ट मछलियां जिनमें वाहिनियां वृक्क से व्युत्पन्न नहीं होतीं वरन स्वयं वृषण से ही व्युत्पन्न होती हैं। अधिकतर कशेरुकियों में शुक्राणुओं का परिपक्वन उसी दौरान होता है जब वे जनन वाहिनियों में से गुज़र रहे होते हैं मगर टीलियोस्टों में वे वृषणों से बाहर आते समय ही पूरे परिपक्व हुए जान पड़ते हैं। जनन वाहिनियां मूत्र जनन कोटर में आकर समाप्त होती हैं और यह कोटर अवस्कर में खुलता है। मूत्र जनन वाहिनियां सहवर्ती वृक्क से भी मूत्र को ले जा सकती हैं हालांकि कुछ स्पीशीज़ में वृक्क का वह भाग कार्य करना बंद कर चुका होता है। वृषण से एक नलिकीय जाल बन गया होता है जिसे नलिका जाल अथवा वृषण जालिका (rete testis) कहते हैं। वृषण के भीतर वृषण जालिका पतली भित्ति वाली वाहिनिकाएं अथवा सूक्ष्म वाहिनियां बनाती है जो शुक्रजनक नलिकाओं से शुक्राणुओं को एकत्रित करती है (चित्र 9.18 a)।

वृषण जलिका से आगे प्रवाह बहुत सी छोटी-छोटी वाहिनियों द्वारा होता है जिन्हें अपवाही वाहिनियाँ (efferent ducts) या शुक्रवाहिका (vasa efferentia) कहते हैं। शुक्रवाहिकाएं प्राय: रूपांतरित वृक्क नलिकाएं होती हैं और वे आम तौर से 10 से कम संख्या में होती हैं। वृक्क नलिकाएं यानि शुक्रवाहिकाएं आर्किनेफ्रिक वाहिनी अथवा मध्य वृक्क (mesonephric) वाहिनी में खुलती हैं। इसे नर में शुक्रवाहिनी कहते हैं और यह मूत्र जनन कोटर में खुलती है। शुक्रवाहिकाओं तथा शुक्रवाहिनियों को सामूहिक रूप में एपिडिडिमस कहते हैं और इसे मूल रूप में शुक्राणु वाहिनियों परिवहन के लिए इस्तेमाल किया जाता है (चित्र 9.18a)। ऐम्नियोटों का एपिडिडिमस जो अत्यधिक कुंडलित वाहिनी होता है और जो शुक्र वाहिकाओं के पदार्थ को अपने में प्राप्त करता है प्राय: शुक्राणुओं के लिए एक अस्थायी भंडारण स्थान का काम करता है। स्तनियों में एपिडिडिमस के प्रथम भाग एक शीर्ष, एक काय तथा एक पुच्छ का बना होता है और वृषण को लपेटे रहता है और उसके बाद धीरे-धीरे सीधा होकर शुक्राणु वाहिनी बन जाता है। एपिडिडिमस से ऐसे पदार्थों का स्रवण होता है जो भंडारित शुक्राणुओं के जीवन काल को बढ़ाते हैं एवं उनकी गतिशीलता क्षमता में वृद्धि करते हैं।

9.10.3 सहायक लिंग ग्रंथियां

कशेरुकी नरों में, और उनमें भी विशेषकर थलीय स्पीशीज़ में कई सहायक लिंग ग्रंथियां पाई जा सकती हैं। कुछ एम्फ़िबियनों (सालामैण्डरों=salamanders=सरट) में अवस्करीय (cloacal) तथा श्रोणियां (pelvic) ग्रंथियां होती हैं जिसमें एक जेली (jelly) आवरक का स्रवण होता है जो शुक्राणुओं को अपने में समेट लेता है और इस तरह शुक्राणुधर (spermatophore) बनता है। इन ग्रंथियों के अन्य कार्य भी हो सकते हैं। स्तनियों में अपेक्षाकृत बड़ी और जटिल सहायक लिंग ग्रंथियां (accessory sex glands) होती हैं। वृषण तथा एपिडिडिमस से निकले तरल, वीर्य का अंश बनाते हैं। इनके अलावा अन्य ग्रंथियां इस प्रकार हैं: प्रोस्टेट ग्रंथि (prostate gland), आशयी ग्रंथियां (vesicular glands), बल्बोयूरिथ्रल ग्रंथियां (bulbourethral glands), यूरीथ्रल (मूत्रमार्ग) ग्रंथियां (urethral glands) यानि लिटर ग्रंथि, (Littre glands) तथा स्कंदन ग्रंथियां (coagulating glands)। ये सभी ग्रंथियां मूत्र जनन कोटर (urinogenital sinus) के मूत्रमार्गी भाग में खुलती हैं। ये सभी ग्रंथियां प्रत्येक स्पीशीज़ में पाई जाती हों, ऐसा नहीं है। परंतु स्तनीय में प्रमुख लिंग ग्रंथियां, प्रोस्टेट, बल्बोयूरीथ्रल तथा एम्पुलरी ग्रंथियां (ampullary glands) होती हैं और शुक्राशय (seminal vesicles) होते हैं। ये सब संरचनाएं या तो शुक्राणु वाहिनी की अथवा मूत्रमार्ग की बहिर्वृद्धियां होती हैं और ये चारों ग्रंथियाँ हाथियों और घोड़ों में तथा अधिकतर छछूंदरों, चिमगादड़ों, रोडेण्टों, खरगोशों, मवेशियों (cattle) तथा प्राइमेटों में पायी जाती हैं। स्तनीय सहायक लिंग ग्रंथियों में सर्वाधिक सामान्य रूप से पायी जाने वाली ग्रंथि है प्रोस्टेट। यह बहुवाहिनियों द्वारा मूत्रमार्ग में खुलती है। अनेक रोडेण्टों, इंसेक्टिवोरों तथा लैगोमार्फों (lagomorphs) में तीन पृथक-पृथक प्रोस्टेट पालियां होती हैं। कुछ स्तनियों में, जिनमें कुछ कार्निवोर तथा प्राइमेट भी शामिल हैं प्रोस्टेट एक एकल संहति होती है जिसमें पालियां बनी होती हैं और यह मूत्राशय के आधार स्थल पर मूत्रमार्ग को घेरे रहती हैं। अनेक रोडेण्टों और कुछ अन्य स्तनियों में भी स्खलन (ejaculation) के बाद वीर्य जल्दी से स्कंदित हो जाता है। ऐसा एक नर स्कंदनकारी ग्रंथि जिसे प्राय: प्रोस्टेट-संहति का ही अंश माना जाता है, से निकले स्राव के कारण होता है। स्कंदित वीर्य एक योनि-मार्ग प्लग बना देता है जो अस्थायी तौर पर मैथुन को रोक देता है।

बल्बोयूरीथ्रल जिन्हें काऊपर ग्रंथियां (Cowper's glands) भी कहते हैं, शिश्न (penis) के निकट मूत्रमार्ग से उत्पन्न होती हैं तथा मूत्रमार्ग अथवा शिश्न की पेशियों से घिरी रहती हैं। स्तनियों में सामान्यत: एक जोड़ी काऊपर ग्रंथियां होती हैं, केवल मार्सुपियल इसका अपवाद है जिनमें एक नहीं पूरे तीन जोड़ी ग्रंथियां होती हैं।

अनेक स्तनियों में मूत्रमार्ग के समीप शुक्राणुवाहिनी पर एक ऐम्पुलरी उत्फूलन पाया जाता है। मगर कुछ थोड़े से स्तनियों में एक पृथक ऐम्पुलरी ग्रंथि शुक्राणुवाहिनी की बहिर्वृद्धि के रूप में पायी जाती है।

शुक्राशय युग्मित होते हैं तथा प्ररूपत: ये लंबे और कुंडलित रेशापेशीय थैलों के रूप में होते हैं। ये या तो शुक्राणुवाहिनी से या मूत्रमार्गों में खुलते हैं। ये शुक्राशय वीर्य में फ़्रक्टोज़ शर्करा (sugar=fructose) तथा साइट्रिक अम्ल (citric acid) मिला देते हैं मगर शुक्राणु आगारों अर्थात् भंडार (reservoir) का कार्य नहीं करते।

9.10.4 अंत:प्रवेशी अंग

अधिकतर जलीय प्राणियों में बाह्य निषेचन होता है और उसके लिए जल एक अच्छा माध्यम होता है जिसके द्वारा शुक्राणु अण्डों तक पहुंच जाते हैं। थलीय प्राणियों में नियमत: भीतरी निषेचन होता है। चूंकि शुक्राणुओं के परिवहन के लिए एक तरल माध्यम की आवश्यकता होती है। इसके लिए आवश्यक तरल नर और मादा दोनों द्वारा उत्पन्न किए जाते हैं। अनेक थलीय कशेरुकियों में शुक्राणुओं का स्थानांतरण मात्र नर-मादा के अवस्करों के सम्पर्क द्वारा ही पूरा हो जाता है। मगर अधिकतर थलीय उदाहरणों में और अनेक जलीय स्पीशीज़ में जिनमें निषेचन भीतरी होता है, उनमें नर प्राणियों में अंत:प्रवेशी (intromittent) अर्थात् मैथुन अंग (copulatory organs) बन जाते हैं जिन्हें वे भीतरी निषेचन के दौरान, शुक्र तरल में निलंबित शुक्राणुओं को मादा पथ में प्रवेश करने के लिए इस्तेमाल करते हैं।

कशेरुकियों में अनेक प्रकार के मैथुन अंग पाए जाते हैं, और ये सब अंग समजात (homologous) नहीं होते।

एनैऐम्नियोटों में अंत:प्रवेशी अंग

मछलियां-मछलियों में भीतरी निषेचन तथा मैथुन केवल इलास्मोब्रैंकों (elasmobranchs), होलोसेफ़ैलियनों (holocephalians) तथा कुछ टीलियोस्टों (teleosts) में पाया जाता है। इलास्मोब्रैंकों में मैथुन आलिंगक (clasper) नामक आलिंगन अंगों के द्वारा सम्पन्न होता है (चित्र 9.19 a)। ये आलिंगक नर के श्रोणि फ़िनों (fins) के मध्यक भागों के रूपांतरण होते हैं। मैथुन के दौरान आलिंगकों में से युग्मित एक आलिंगक मादा के अवस्कर में डाला जाता है। शुक्राणु नर के अवस्कर में से बाहर निकल कर आलिंगक पर बनी एक खांच में पहुंचते हैं और फिर नर की देह-भित्ति के भीतर बने साइफ़न थैलों (siphon sacs) से बलपूर्वक जल की पिचकारी से मादा के अवस्कर में बहा दिये जाते हैं। टीलियोस्टों में, जिनमें भीतरी निषेचन होता है, गुदा फ़िन का अग्र सीमांत पीछे की ओर को लंबा होकर एक अंत:प्रवेशी अंग बन जाता है जिसे गोनोपोडियम (gonopodium) कहते हैं (चित्र 9.19 b)।

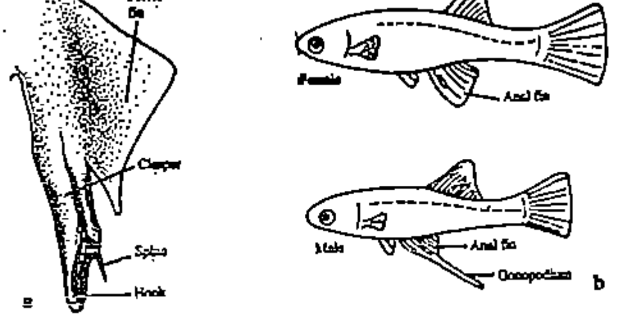

चित्र 9.19 : मछलियों के अंत:प्रवेशी अंग (a) आलिंगक, जो कि, नर इलास्मोब्रैंक *स्क्वैलस ऐकैंथियस* (*Squalus acanthias*=डॉगफिश=dog fish) का एक रूपांतरित श्रोणि फ़िन है, तथा (b) गोनोपोडियम, जो उन टीलियोस्टों के नरों में जिनमें भीतरी निषेचन होता है, के नरों में गुदा फ़िन के अग्र भाग का रूपांतरण होता है।

ऐम्फ़िबियन प्राणी- यूरोडीलों तथा ऐन्यूरनों में मैथुन अंग नहीं होते हालांकि यूरोडीलों में भीतरी निषेचन होता है। इन प्राणियों में नर अपने शुक्रधरों को बाहर छोड़ देता है। ये शुक्रधर वास्तव में शुक्राणुओं के छोटे-छोटे पैकेट होते हैं जिनके भीतर शुक्राणु अवस्कर ग्रंथियों से निकले एक स्राव के द्वारा परस्पर चिपके रहते हैं। मादा अपने अवस्कर के होंठो की पेशीय गतियों के द्वारा शुक्रधर को अपने भीतर ले लेती है। अवस्कर का एक पृष्ठ अंधवर्ध (dorsal diverticulum), जिसे शुक्रग्राही (spermatheca) कहते हैं इन शुक्राणुओं के भंडारण का कार्य करता है और इस प्रकार जब-जब अंडाणु अंडवाहिनियों से नीचे अवस्कर में आते हैं तब-तब उनके निषेचन के लिए शुक्राणु उपलब्ध होते रहते हैं।

ऐम्नियोटों के अंत:प्रवेशी अंग

सरीसृपों तथा स्तनियों एवं कुछ पक्षियों जैसे कि शुतुरमुर्ग (ostrich-ऑस्ट्रिच), ड्रेक (drake-पुंकारन्ड) तथा गैंडर (gander) में अंत:प्रवेशी अंग बहुत अच्छी तरह विकसित होते हैं। ऐम्नियोटों में अंत:प्रवेशी अंग दो प्रकार के होते है:

(1) **अर्धशिश्न** (hemipenes) युग्मित एवं थैले जैसे होते है जिनमें कोई उद्धर्षी (erectile) ऊतक नहीं होता। ये संरचनाएं अवस्कर के समीप त्वचा के नीचे गड्ढों में स्थित रहती हैं। अर्धशिश्न बाहर को निकाले और भीतर को सिकोड़े जा सकते हैं, उदाहरण : सांप तथा छिपकलियों में (चित्र 9.20)।

(2) **शिश्न** (penis) एक अयुग्मित उद्धर्षी अंग होता है। उदाहरण : नर कछुए, मगरमच्छ, कुछ पक्षी तथा स्तनी (चित्र 9.21 तथा 9.22)।

सरीसृप: एक मात्र सरीसृप जिसमें मैथुन अंग नहीं होते वह है *स्फीनोडॉन* (*Sphenodon*)। अन्य सरीसृपों में, जैसा कि आपने पढ़ा है, दो प्रकार की संरचनाएं पाए जाती हैं। सांपों तथा छिपकलियों में अर्धशिश्न होते हैं। मैथुन के दौरान ये बाह्यकर्षी (propulsor) एवं अंत:कर्षी (retractor) पेशियों के द्वारा और अर्धशिश्न के भीतर बने कोटरों में रक्त के भर जाने से बाहर को उभर आते हैं (चित्र 9.20)।

कछुओं तथा मगरमच्छों में एकल शिश्न होता है जो अवस्कर की अग्र तथा अधर भित्तियों में मौजूद युग्मित स्थूलनों (thickenings) अथवा कटकों (ridges) से व्युत्पन्न होता है तथा संरचना की दृष्टि से यह संयोजी (connective) तथा उद्धर्षी (erectile) ऊतकों का बना होता है। उद्धर्षी ऊतकों की इन युग्मित संहतियों को कॉर्पोरा कैवर्नोसा (corpora cavernosa=सगुह पिंड) कहते हैं। इसकी पृष्ठ सतह पर बनी एक खांच शुक्राणुओं के लिए मार्ग का कार्य करती है। मैथुन क्रिया के दौरान कॉर्पोरा कैवर्नोसा में रक्त भर जाता है जिसके कारण वह फूल जाता है। इससे शिश्न कड़ा, आकार में बड़ा और सीधा खड़ा हो जाता है। यह शिश्न बाहर को निकाला और भीतर को खींचा जा सकता है।

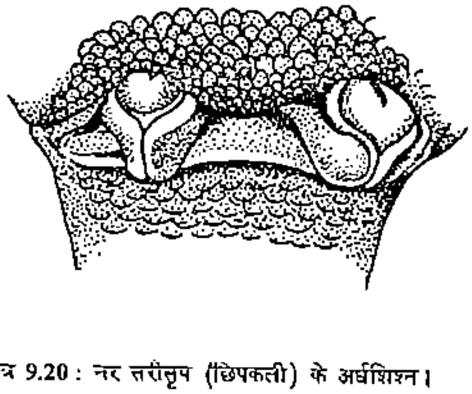

चित्र 9.20 : नर सरीसृप (छिपकली) के अर्धशिश्न।

पक्षी: शिश्न केवल नर बतखों, हंसों और शुतुरमुर्ग में ही होता है। यह एक एकल संरचना होती है जिसकी संरचना-योजना वही होती है जैसी कि कछुओं तथा मगरमच्छों में। शेष पक्षियों में शुक्राणु अवस्कर द्वारा ही प्रेषित किए जाते हैं (देखिए LSE-10 की इकाई 16)।

स्तनी: स्तनियों में प्ररूपत: एकल शिश्न होता है। मॉनोट्रीमों (monotreomes) में सामान्य अवस्थाओं में शिश्न अवस्कर के निचले तल में स्थित रहता है। यह कछुओं, मगरमच्छों तथा पक्षियों के अंत:प्रवेशी अंगों के सामान होता है, बस अंतर इतना है कि इसकी पृष्ठ दिशा में बनी खांच एक बंद नलिका बन जाती है। इसके अतिरिक्त नलिका को घेरे हुए एक उद्धर्षी ऊतक कार्पस स्पांजिओसम (corpus spongiosum=स्पंजाम पिंड) होता है जो एक अन्य उद्धर्षि ऊतक की युग्मित संद्रति, कार्पोरा कैवर्नोसा से भिन्न होता है। मॉनोट्रीमों की नलिका में केवल शुक्राणुओं का वहन होता है क्योंकि मूत्रमार्ग अवस्कर में एक पृथक छिद्र द्वारा खुलता है (चित्र 9.21)।

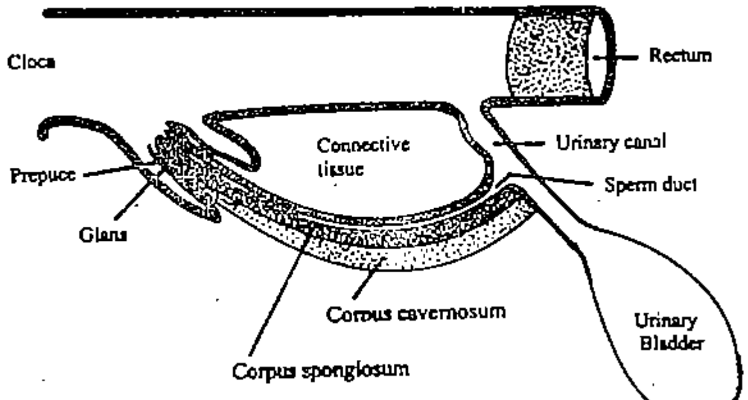

चित्र 9.21 : नर मॉनोट्रीम के अवस्कर क्षेत्र के अनुदैर्घ्य सेक्शन का आरेख जिसमें अंत:कर्षित शिश्न दिखाया गया है।

शेष नर स्तनियों में मूत्र और शुक्राणुओं के लिए छिद्र अलग-अलग नहीं होते (चित्र 9.22)। इन प्राणियों तथा आगे के अन्य वर्गों में मूत्रमार्ग मूत्र तथा शुक्र तरल दोनों के लिए ही मार्ग का कार्य करता है। दो कार्पोरा कैवर्नोसा एक पट (septum) द्वारा एक-दूसरे से पृथक हुए रहते हैं तथा कार्पस स्पांजिओसम मूत्रमार्ग को घेरते हुए होता है। शिश्न का अंतिम सिरा या नोक, फैलकर एक संवेदनशील फूला हुआ मुंड (glans) बन जाता है, जिसके भीतर उद्धर्षि ऊतक एवं बहुसंख्यक तंत्रिकांत सिरे होते हैं जिसके कारण यह कुछ उद्दीपनों के लिए अति संवेदनशील हो जाता है। यह कॉर्पस स्पांजिओसम के साथ जारी रहता है। शिश्न के मुंड के ऊपर एक पतली और नाजुक त्वचा होती है जिसे शिश्नमुंडछद (prepuce or foreskin) कहते हैं।

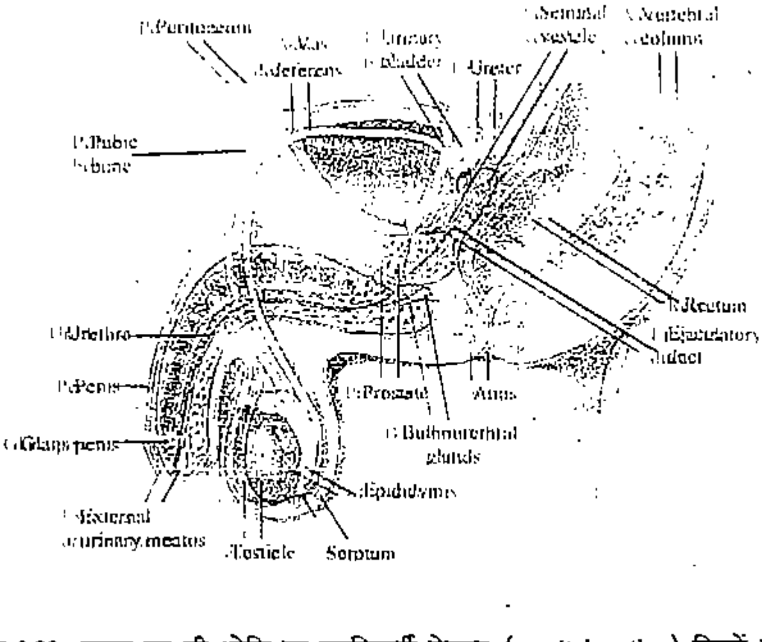

चित्र 9.22 : मानव नर की श्रोणि का सममितार्धी सेक्शन (saggital section) जिसमें मूत्रजनन तंत्र तथा वृषण की आंतरिक संरचना एवं वाहिनियां दिखायी गई हैं।

बोध प्रश्न 6

जहां आवश्यक हो निम्नलिखित वाक्यों को सही करके लिखिए:

(i) साइक्लोस्टोमों में शुक्राणु वृषण के भीतर शुक्रजनक नलिकाओं में बनते हैं।

(ii) लीडिग कोशिकाओं से इस्ट्रोजन हार्मोन का स्रवण होता है।

(iii) नर जनन वाहिनियों को फैलोपियन वाहिनियां कहते हैं।

(iv) सहायक लैंगिक ग्रंथियां अर्थात् प्रोस्टेट, कॉऊपर ग्रंथि, बल्बेयूरिथ्रल ग्रंथि मादा कशेरुकियों में पायी जाती है।

(v) छिपकलियों में अंत:प्रवेशी अंग को गोनोपोडियम कहते हैं।

9.11 कशेरुकियों का मादा जनन-तंत्र

कशेरुकियों के मादा जनन-तंत्र में आते हैं:-

1. युग्मित गोनड- अंडाशय (जो कभी-कभार अपकर्ष के कारण केवल एक ही होता है)
2. युग्मित अंडवाहिनियां
3. एकल मादा जनन छिद्र
   (देखिए चित्र 9.23 a तथा b)

अण्डाशयी पुटक (ovarian follicle) एपिथीलियम से घिरा एक ऊसाइट (oocyte=अंडक) अथवा अपरिपक्व अण्डा होता है। एपिथीलियम की कोशिकाएं तरह-तरह के नामों से पुकारी जाती हैं जैसे पुटक कोशिकाएं (follicular cells) अथवा धात्री कोशिकाएं (nurse cells) अथवा कणिकामय कोशिकाएं (granulose cells)। साइक्लोस्टोमों, टीलियोस्टों तथा ऐम्फिबियनों में एपिथीलियम की मोटाई एक परत की होती है। हैगफिशों तथा उन कशेरुकियों में जिनमें ऊसाइटों में पीतक की भारी मात्रा भरी होती है जैसे कि इलास्मोब्रैंकों, सरीसृपों, पक्षियों, तथा मॉनोट्रीमों में, उनमें एपिथीलियम की मोटाई दो कोशिका की होती है। स्तनियों में मॉनोट्रीमों के स्तर से ऊपर पुटक की एपिथीलियम कई कोशिका की मोटी जान पड़ती है।

9.11.1 अंडाशय

अंडाशय (ovary) देह गुहा के भीतर होते हैं और पृष्ठ आंत्रयोजनी जिसे मीसोवैरियम (mesovarium) अर्थात् अंडाशयधर कहते हैं, के सहारे स्थित रहते हैं। इसी में से रक्त वाहिकाएं, लसीका वाहिकाएं तथा तंत्रिकाएं गुज़रती हैं। आदिम कशेरुकी अंडाशय हैगफ़िशों में पाए जाते हैं जिनमें गोनडी ऊतक का एक आंत्रयोजनी जैसा वलन (mesentry-like fold) देह गुहा की लगभग समूची लम्बाई में स्थित होता है। हैगफ़िशों का एक विचित्र लक्षण यह है कि इनमें कार्यात्मक अंडाशय ऊतक गोनडीय संहति के आगे के आधे भाग में होता है, जब कि पीछे के आधे भाग में अल्पवर्धित (rudimentary) वृषण ऊतक होता है। केवल कुछ बहुत आदिम उदाहरणों को छोड़कर शेष अधिकतर मछलियों में अंडाशय इसी प्रकार से लम्बे होते हैं। चतुष्पादों में, स्तनियों को छोड़कर विशेषकर निष्प्रजननीय ऋतुओं में अंडाशय प्राय: देह गुहा के मध्य तीसरे भाग में या आधी देह गुहा में ही सीमित होते हैं। स्तनियों के अंडाशय थोड़े से पीछे को हट कर और वृक्क एवं श्रोणि के बीच स्थित हो जाते हैं (चित्र 9.23 a)।

अण्डाशयों की आकृति कई कारकों पर निर्भर होती है जैसे कि उसके भीतर से एक अंडा निकलता है या कि हज़ारों निकलते हैं, उससे निकलने वाले अंडे अपरिपक्व होते हैं या परिपक्व परिपक्व अंडे छोटे होते हैं या बड़े या फिर अंडे के साइटोप्लाज़्म (cytoplasm) में वर्णक, जोकि पीत को पीला बनाते हैं मौजूद हैं या नहीं। अण्डाशय का स्वरूप और भी कई कारकों पर निर्भर होता है जैसे कि ऋतुपरक प्रजनकों में वर्षा की ऋतु में, (क्योंकि प्रज़नन ऋतुओं में अण्डाशय का आकार बढ़ जाता है तथा ऐसी दो ऋतुओं के बीच के काल में यह आकार घट जाता है), प्राणी की आयु (प्राणी किशोर अवस्था में हैं अथवा जनन रूप से सक्रिय या जीर्ण दशा में, विशेषत: पक्षियों और स्तनियों में) तथा अण्डोसर्जित (ovulated) अण्ड-पुटक (egg follicles) अथवा कोशों (sacs) की भावी विकास पर। अण्डाशय लाक्षणिक रूप से कोशीय (saccular) अथवा खोखले (hollow) अथवा कक्षीय (lacunated or compartmented) अथवा संहत (compact) संरचनाएं होते हैं। परंतु अधिकतर अण्डाशयों का गठन समान होता है। उन्हें ऊपर से ढके हुए एक जनन एपिथीलियम (germinal epithelium) यानि जनन उपकला होती है जो देह गुहा का अस्तर बनाने वाली पेरिटोनियम के साथ अविछिन्न रहती है।

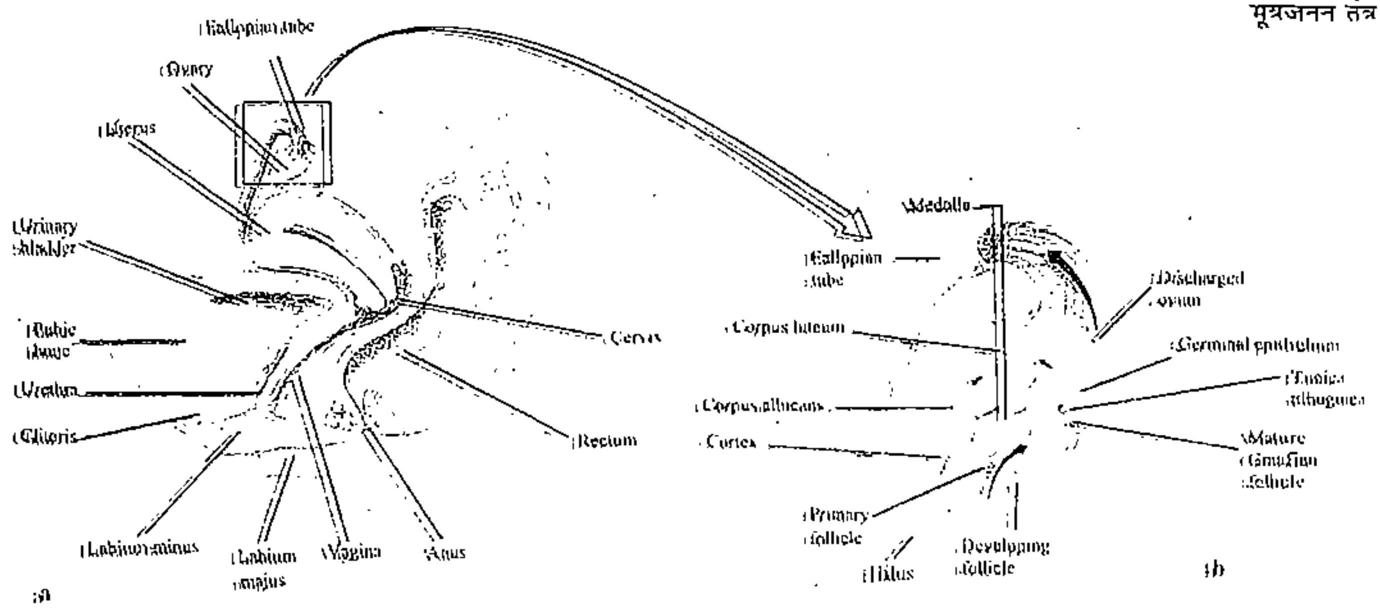

चित्र 9.23 : स्तनीय मादा जनन तंत्र (a) मानव मादाओं में श्रोणि का समद्विभाजी दृश्य, जिसमें मादा जनन तंत्र दिखाई पड़ रहा है। (b) अण्डाशय का भीतरी कटा दृश्य, आंतरिक संरचना दर्शाते हुए।

एपिथीलियम के नीचे अण्डाशय में एक संयोजी ऊतक परत होती है जिसे ट्यूनिका ऐल्बुजिनिया (tunica albuginea=श्वेत कंचुक) कहते हैं। यह परत, वृषणों को घेरे रहने वाली इसी तरह की अन्य परत से कहीं ज़्यादा पतली होती है। इसके नीचे अंडाशय में एक बाहरी कॉर्टेक्स तथा भीतरी मेडुला होते हैं। कॉर्टेक्स जो मोटी बाहरी परत होता है ट्यूनिका ऐल्बुजिनिया के तुरंत भीतर की ओर स्थित होता है और उसमें भावी अंडे होते हैं तथा किसी-किसी समय अंडाशयी फॉलीकलों के भीतर अंडे (परिवर्धनशील अण्डे) भी होते हैं (चित्र 9.23 b)। कॉर्टेक्स के भीतर अण्डोसर्जित हुए फॉलिकल के शेषांश भी होते हैं और स्तनियों में इसमें अंतराली (interstitial) कोशिकाओं के गुच्छे होते हैं जो कि कुछ स्पीशीज़ में ग्रंथीय होते हैं। कॉर्टेक्स के रचक एक आलम्बी ढांचे में स्थित रहते हैं जो कि संयोजी, संवहनी तथा तंत्रिका ऊतक का बना होता है और जिसे स्ट्रोमा (stroma) कहते हैं। कॉर्टेक्स से भीतर की ओर सवंहनीय मीज़ोडर्मल मेडुला होता है जिसमें रक्त और लसीका वाहिकाएं, तंत्रिकाएं तथा संयोजी ऊतक होते हैं। मेडुला के भीतर जननिक तत्व नहीं होते और न ही इसमें कोई चक्रिय क्रियाकलाप (cyclical activity) होता है। यह भाग प्राय: अस्पष्ट (inconspicuous) होता है तथा पृष्ठ आंत्रयोजनी के साथ जारी रहता है। साइक्लोटोमों में मेडुला तथा पृष्ठ आंत्रयोजनी एक दूसरे से अलग पहचाने नहीं जा सकते हैं। इसके विपरीत स्तनियों में मेडुला कॉर्टेक्स से लगभग पूरी तरह घिरा रहता है और एक संकीर्ण हाइलस (hilus) पर मीसोवेरियम पर अभिसृत होता है। इसी हाइलस पर से तंत्रिकाएं तथा रक्त वाहिकाएं अंडाशय के भीतर प्रवेश करती हैं। स्तनीय अंडाशय के मेडुला में हाइलस के निकट अंध नलिकाओं अथवा ठोस रज्जुओं की छोटी-छोटी संहतियां बनी होती हैं जिन्हें रेटे ओवेराई (rete ovarii=अंडाशय नालिका) कहते हैं। ये "रेटे ओवेराई" नर के रेटे टेस्टिस के समजात (उसी भ्रूणीय उद्भव वाला) होता है। पक्षियों का आद्यंगी दाहिना अंडाशय प्राय: मात्र मेडुलरी ऊतक का बना होता है।

9.11.2 मादा जननिक वाहिनियां

अंडे सीलोमी गुहा में विमोचित होते हैं। एक बार सीलोम में पहुंच जाने के बाद, परिपक्व अंडे अंडवाहिनी (oviduct) नामक मादा जननिक यानि जनन वाहिनी (female genital ducts) में पहुंच जाते हैं। यह अंडवाहिनी भ्रूणीय परिपाटी में आद्यवृक्क वाहिनी के समांतर चलती है। अंडवाहिनी प्राय: अवस्कर के समीप मूत्रजनन कोटर से जुड़ जाती है। केवल

टीलियोस्टों तथा कुछ मछलियों को छोड़कर शेष में ये अंडवाहिनियां मुलेरियन वाहिनियों (Mullerian ducts) के रूपांतरण होती हैं और (केवल साइक्लोस्टोमों को छोड़कर) प्रत्येक नर और मादा भ्रूण में एक जोड़ी अनुदैर्ध्य वाहिनियों के रूप में विकसित होती हैं। नरों में मुलेरियन वाहिनी विलीन हो जाती है अथवा आद्यंगी बन जाती है। मादाओं में यह अधिक बड़ी हो जाती है और जनन पथ अथवा जनन वाहिनी (gonoduct = जनद वाहिनी) बनाती है। इसके स्तर में मौजूद आरेखित पेशियां तथा सिलियायुक्त कोशिकाओं के सिलिया, अण्डों को पथ के भीतर आगे-आगे चलाते जाते हैं।

अधिकतर टीलियोस्टों में जिनमें नलिकीय अंडाशय होते हैं, अंडे सीलोम में प्रवेश नहीं करते वरन वे सीधे एक विशेष जनन वाहिनी, जिसे गोनाडक्ट (gonaduct = जनद वाहिनी) कहते हैं, में प्रवेश करते हैं। यह नाम गोनाडक्ट इसलिए दिया गया क्योंकि यह वाहिनी प्रकटतः सीधे गोनड से ही व्युत्पन्न हुई होती है। यह गोनाडक्ट मुख्य सीलोम के एक छोटे अंश को घेरे रहती है।

उच्चतर स्तनियों में अण्डवाहिनी तीन स्पष्ट क्षेत्रों में विभेदित हो जाती है (चित्र 9.24)। (i) फैलोपियन नली (fallopian tube = डिम्बवाहिनी नली), (ii) गर्भाशय (uterus) तथा (iii) योनि (vagina)। अधिकतर अन्य कशेरुकियों में अण्डवाहिनी दोनों सिरों पर खुली होती हैं, एक सिरा तो मूत्रजनन कोटर (जो अवस्कर में खुला हो सकता हैं) में और दूसरा सिरा अंडाशय के निकट एक इंफंडिबुलम (infundibulum = कीपक) द्वारा खुलता है जिसे प्रीऐम्पुला (pre-ampulla) भी कहते हैं। अंडाशय के सामने वाले फैलोपियन नली के सिरे पर घेरा बनाते हुए गतिशील, अंगुलियों-सरीखे, सिलियायुक्त प्रवर्ध होते हैं जिन्हें फ्रिम्ब्रियी (fimbriae = झालर) कहते हैं। ये संरचनाएं अण्डोत्सर्जन के समय अण्डाशय को घेर लेती हैं (देखिए चित्र 9.24)।

अण्डाशय लम्बे हो सकते हैं या छोटे और उनमें ग्रंथीय भाग होते हैं जो रूपांतरित होकर स्रवण का कार्य करने लग गए होते हैं। परिणामतः अण्डवाहिनियां अपने मार्ग में तीन प्रकार के भागों में विभेदित हो गयी होती हैं। (i) वह क्षेत्र जो अण्डों पर सुरक्षाकारी एवं पोषण पदार्थ प्रदान करता है, (ii) गर्भाशय जिसके भीतर सजीवप्रजक प्राणियों में परिवर्धनशील भ्रूण स्थित बना रह सकता है तथा (iii) मादा जनन वाहिनी का अंतिम खण्ड जो अंतःप्रवेशी अंग को अपने भीतर ले सकने के लिए रूपांतरित रहता है।

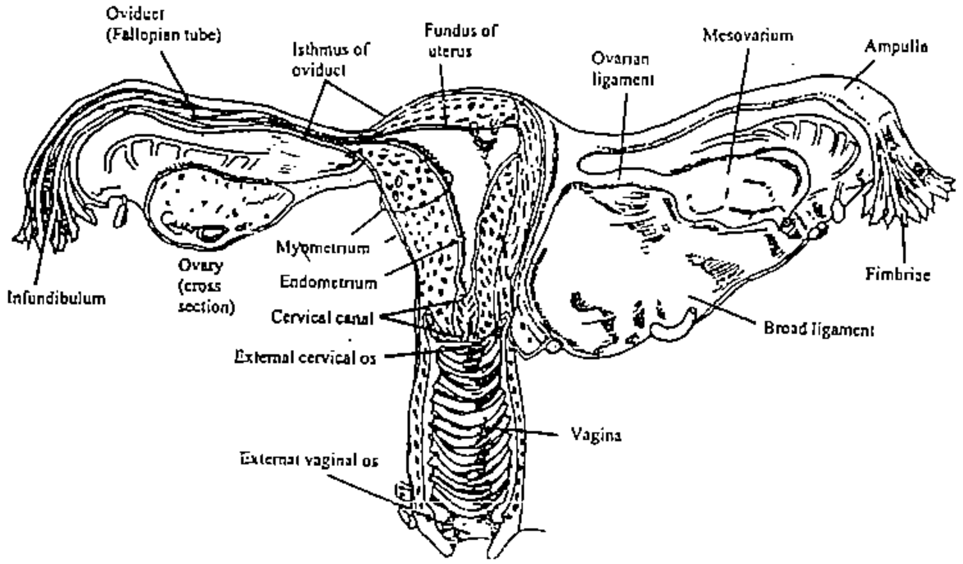

चित्र 9.24 : मानव स्त्री में जनन तंत्र जिसमें फैलोपियन नली (अण्डवाहिनी), गर्भाशय (uterus), अण्डाशय (ovary) तथा योनि (vagina) दर्शाए गए हैं।

गर्भाशय (uterus) अण्डवाहिनी का पेशीय मध्य भाग होता है (देखिए पुन: चित्र 9.23a तथा चित्र 9.24)। इसकी पेशी मायोमेट्रियम (myometrium) बनाती हैं तथा इसके भीतरी अस्तर को एंडोमेट्रियम (endometrium = गर्भाशय अंत:स्तर) कहते हैं। एंडोमेट्रियम ब्लास्टोसिस्ट अवस्था (अथवा परिवर्धनशील भ्रूण) के रोपण से पूर्व अत्यंत वाहिकामय (highly vascularised) बन जाता है।

सभी स्तनियों में गर्भाशय पश्च सिरे की ओर को संकरा होता हुआ सर्विक्स (cervix = ग्रीवा) बन जाता है (चित्र 9.23 तथा चित्र 9.24)। सर्विक्स के ओष्ठ गर्भाशय छिद्र अथवा "ऑस यूटेराई", (os uteri "os" = मुख) यानि गर्भाशयस्थि को घेरे रहते हैं, जिसमें से होकर शुक्राणु ऊपर को चढ़ते हैं और अण्डवाहिनी के ऊपरी भाग में पहुंचकर निषेचन करते हैं। शिशु के जन्म के दौरान सर्विक्स फैलता है।

स्तनियों में गर्भाशय में विभिन्नताएं पाई जाती हैं। आदिम स्तनियों जैसे कि मॉनोट्रिमों (अंडे देने वाले स्तनियों) और मार्सुपियलों (marsupials -शिशुधानी स्तनी) में दो गर्भाशय जिसे द्विक गर्भाशय, (duplex uterus) कहते हैं, होते हैं। किंतु अधिकतर स्तनियों में दोनों गर्भाशयों का दूरस्थ अंश समेकित हो जाता है और एक द्विशाखीय अर्थात् द्विश्रृंगी (bicornuate) गर्भाशय बन जाता है। उच्चतर प्राइमेटों में दोनों गर्भाशयों में पूर्ण समेकलन हो जाता है जिससे एकल सरल गर्भाशय (simplex uterus) बन जाता है (चित्र 9.25)।

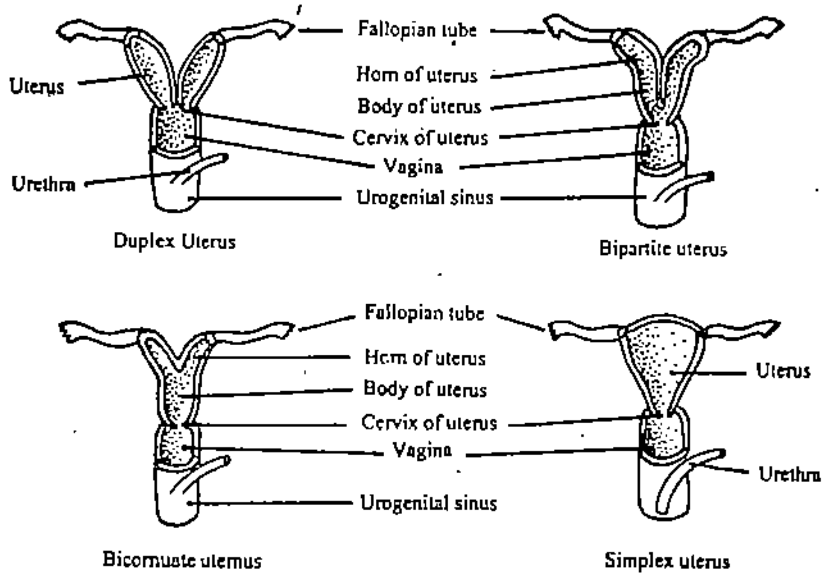

चित्र 9.25 : अपरा स्तनियों (placental mammals) में मादाओं में युग्मित गर्भाशयों के पश्च सिरों का समेकन दर्शाता हुआ आरेख (गर्भाशय तथा योनि के एक अंश को काटकर भीतर का दृश्य दिखाया गया है।)

योनि

गर्भाशय अपने संकीर्ण सर्विक्स के माध्यम से योनि (vagina) में खुलता है। योनि, मुलेरियन वाहिनी का समेकित अंतिम भाग होती है। यह मूत्रजनन कोटर में खुलती है या फिर और आगे प्रसृत होकर सीधे ही बाहर को खुलती है। यह एक पेशीय प्रसारशील नली होती है जिसके भीतर मैथुन के दौरान शिश्न ग्रहण किया जाता है। इसमें संवलन बने होते हैं जिन्हें योनि रूगे (vaginal rugae = योनि वलित) कहते हैं। योनि बाह्य मादा जनन छिद्र द्वारा खुलती है।

अंडा देने वाले स्तनियों में योनि नहीं होती। मार्सुपियलों में युग्मित योनि होती है जो मूत्र

जनन कोटर में खुलती है। दो योनियों से मेल खाने के लिए नर का शिश्न सिरे पर द्विशाखित होता है तथा उसका एक सिरा एक पार्श्व योनि में प्रवेश करता है जहां वह वीर्य को निकालता है।

9.11.3 मादा सहायक ग्रंथियां

आप उपभाग 9.10.3 में नर जनन तंत्र के साथ संबंधित विविध सहायक अंगों के विषय में पहले ही पढ़ चुके हैं। इसी प्रकार आप देखेंगे कि अनेक कशेरुकियों के मादा जनन तंत्र के साथ भी मादा सहायक ग्रंथियां (female accessory gland) जुड़ी होती हैं। अनेक मादा कशेरुकियों की अंडवाहिनियों में ग्रंथियां होती हैं जिन्हें ऐल्बुमिन (albumen=श्वेतक) ग्रंथि कहते हैं, और इसका काम ऐल्बुमिन को स्रवण करके उसका अंडों के ऊपर आ ा चढ़ाना होता है। अंडवाहिनी के साथ और दो अन्य ग्रंथियां संबंधित होती हैं। एक और ग्रंथि है कवच ग्रंथि (shell gland) जिसे निडामेंटल ग्रंथि (nidamental gland = अंडावरणी ग्रंथि) भी कहते हैं, और इसका काम अंडे के ऊपर कवच सामग्री को चढ़ाना होता है। दूसरी ग्रंथि है श्लेष्मा कोशिका (mucous cell) या अंडवाहिनी नलिका ग्रंथियां (oviducal tubular glands) जिनसे एक जेली जैसा पदार्थ स्रवित होता है। जो ऐम्नियोट बड़े आकार के अंडे देते हैं उनके योनि में श्लेष्मा का स्राव करने वाली योनि-श्लेष्मा ग्रंथि (vaginal mucous gland) पाई जाती हैं और इनका स्राव अंडों के बाहर आने से पहले उन पर आवरित हो जाता है ताकि वे चिकने और फिसलने वाले बन जाएं। कुछ मछलियों में आसंजी ग्रंथियां (adhesive glands) होती हैं जिनके द्वारा अण्डों की बाहरी सतह पर एक चिपकदार स्राव छोड़ दिया जाता है ताकि अंडे परस्पर अथवा सही जगह पर चिपक सकें। कुछ कशेरुकियों में जिनमें परिवर्धनशील अंडे शरीर के भीतर ही रोके रखे जाते हैं, उनमें अंडवाहिनी में विशेष ग्रंथियां विकसित हो जाती हैं ताकि उनके द्वारा शिशु को पोषण मिलता रह सके। ये ग्रंथियां अपने स्राव अंडवाहिनी में छोड़ती हैं ताकि वहां पर मौजूद संतान इस स्राव को सोख सके अथवा उसका अंतर्ग्रहण कर सके। इस स्राव को गर्भाशय दुग्ध (uterine milk) अथवा भ्रूणपोषी (embryotrophe) कहते हैं।

9.11.4 बाह्य मादा जननेन्द्रिय

मादाओं में नरों की तुलना में बाह्य जननेन्द्रिय (external female genitalia) कम विकसित हुई होती है। मादा जननेन्द्रिय का अधिकतम विकास स्तनियों के आर्डर प्राइमेट में हुआ है। मानव स्त्रियों में यह काफ़ी विकसित है और इसका वर्णन आगे किया जा रहा है।

मानव स्त्री की बाह्य जननेन्द्रिय

मादा के बाहरी जननांगों को **भग** (vulva) कहते हैं (देखिए चित्र 9.24)। मादा के जननेन्द्रिय में सबसे बाहर एक संरचना होती है **बृहदभगोष्ठ** (labia majora) ये एक जोड़ी त्वचा वलन होते हैं जिनके भीतर वसा ऊतक भरा होता है। इन वलनों में बनी खांच (cleft) के भीतर **लघुभगोष्ठ** (labia minora) होते हैं जो अपेक्षाकृत छोटे आकार के त्वचा वलन होते हैं एवं जिनमें भरपूर रक्त वाहिकाएं होती हैं मगर वसा ऊतक नहीं होता। भग के अग्र सिरे पर ये दो भीतरी त्वचा वलन एक छोटे से अंग **भगशेफ** (clitoris) को अंशतः ढके रहते हैं, जो लैंगिक उत्तेजना का अंग होता है। मूत्रमार्ग (urethra) का छिद्र भगशेफ तथा **योनिछिद्र** (vaginal opening) के मध्य लगभग बराबर की दूरी पर होता है। योनिछिद्र मूत्र कुहर (urinary meatus) के पीछे स्थित होता है और वह मूत्र छिद्र से काफ़ी बड़ा होता है। योनि छिद्र एक पतली श्लेष्म झिल्ली योनिच्छद (hymen) से ढका रहता है।

बार्थोलिन ग्रंथियां (Bartholin's glands) जिन्हें **बल्बों वेस्टिबुलर** (bulbovestibular glands) अथवा **"ग्रेटर वेस्टिबुलर ग्रंथियां"** (प्रघाणी ग्रंथि) भी कहते हैं, दो सेम के बीज की आकृति की ग्रंथियां होती हैं जो योनि छिद्र के प्रत्येक पार्श्व पर होती हैं। इनमें से एक

स्नेहकारी यानि चिकना पदार्थ (lubricating) स्रावित होता है। ये दो ग्रंथियां एक अकेली वाहिनी द्वारा योनिच्छद एवं लघुभगोष्ठ के बीच खुलती हैं। बार्थोलीन ग्रंथियां नर की बल्बोयूरीथ्रल ग्रंथियों के समाजात होती हैं। नन्हीं श्लेष्मा ग्रंथियों का एक समूह जिन्हे अल्प प्रघाणी ग्रंथियां (lesser vestibular glands) कहते हैं और जिनका दूसरा नाम स्कीन ग्रंथियां (Skenes glands) हैं, प्रघाण (vestibule) में खुलती हैं।

9.11.5 स्तनीय अंग

स्तनियों का नाम इन प्राणियों में विशिष्ट स्तनीय उपकरण यानि अंगों (mammary apparatus or organs) के पाए जाने के कारण पड़ा। इस उपकरण में शामिल हैं: (i) स्तन ग्रंथियां, (ii) उभरे हुए चूचुक (nipples) जिनमें से इन्हीं स्तन ग्रंथियों का स्राव बाहर को निकलता है और (iii) छाती अथवा स्तन (mammae) जो भीतर इन ग्रंथियों के होने के कारण त्वचीय उभार होते हैं (चित्र 9.26)।

स्तन ग्रंथियां रूपांतरित स्वेद यानि पसीना ग्रंथिया हैं। ये नर और मादा दोनों स्तनियों में पाई जाती हैं मगर मादा में ही सुविकसित होती हैं क्योंकि उनका परिवर्धन यौवनारम्भ काल के दौरान इस्ट्रोजन तथा प्रोजेस्टेरान नामक दो अण्डाशयी हार्मोनों द्वारा नियंत्रित रहता है।

प्रत्येक स्तन ग्रंथि अनेक पालियों (lobes) में विभाजित रहती है और प्रत्येक पालि में अनेक पालिकाएं (lobules) होती हैं। पालिकाएं संयोजी ऊतक की बनी होती हैं जिनके भीतर कूपिकाएं (alveoli) नामक स्रावी कोशिकाएं होती हैं। कूपिकाएं मानों अंगूर के गुच्छों के समान होती हैं और सूक्ष्म वाहिनियों को घेरे रहती हैं। प्रोजेस्टेरान, कूपिकाओं की वृद्धि को उत्तेजित करता है और इस्ट्रोजन, वाहिनियों की वृद्धि को उत्तेजित करता है।

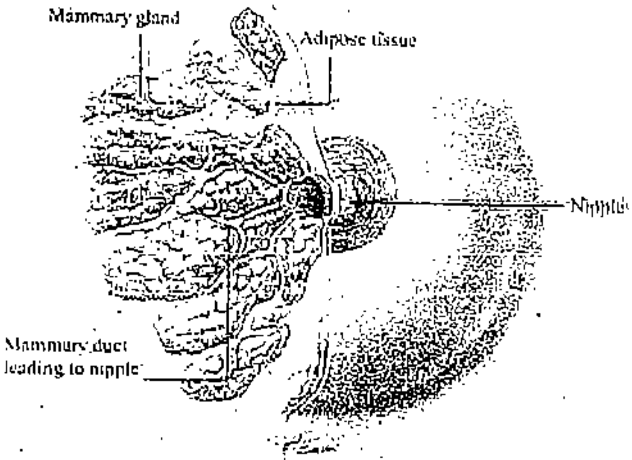

चित्र 9.26 : मानव मादा की छाती जिसमें स्तन उपकरण दिखाया गया है।

पालिकाओं की वाहिनियां परस्पर मिलकर हर पालि में एकल दुग्धधारी (lactiferous) यानि दूध वाहक वाहिनी बनाती हैं। प्रत्येक वाहिनी अपने एक छिद्र द्वारा चूचुक पर खुलती है। चूचुक के चारों ओर एक वर्णकयुक्त क्षेत्र एरियोला (areola) अर्थात् गर्तिका होती है जिसके भीतर अनेक सिबेशियस (sebaceous) यानि तेल ग्रंथियां होती हैं जो त्वचा के नीचे छोटी-छोटी गांठ जैसी दिखायी पड़ती हैं। चूचुकों की संख्या एवं उनका स्थान अलग-अलग स्तनियों में अलग-अलग होता है। इनकी संख्या इस पर निर्भर करती है कि एक समय में कितने बच्चे एक साथ पैदा होते हैं। स्तनों का स्थान स्तनपानकारी संतान के लिए स्तन की उपलब्धता पर निर्भर होता है। बंदरों तथा अन्य प्राइमेटों में जो वृक्षवासी होते हैं, स्तन, अंस क्षेत्र (pectoral area) में होते है। मानवों में भी, जो वृक्षवासी पूर्वजों के ही वंशज हैं, चूचुकों का स्थान अंस क्षेत्र में ही होता है। रोमंथिकों (ruminants) में जो अपने,

शिशुओं को खड़े रहकर दूध पिलाते हैं, स्तन लम्बे और नीचे को उभरे होते है। सुअरों में ये स्तन पार्श्वों में होते हैं और इसीलिए मां लेटकर अपने बच्चे को स्तनपान कराती है। चूचुकों की संख्या अलग-अलग होती है। घोड़ों, चिमगादड़ों, ह्वेलों (whales) तथा मानवों में एक-एक जोड़ी चूचुक होते हैं।

9.12 कशेरुकियों में गोनडों का सर्वेक्षण

जबड़ाविहीन कशेरुकी

जबड़ाविहीन मछलियों में गोनड युग्मित संरचनाओं की तरह आरम्भ होते हैं मगर बाद में परिवर्धन के दौरान समेकित होकर एक मध्य गोनड बना लेते हैं। शुक्राणु शुक्रजनक नलिकाओं में न बनकर ऐम्पुलों में बनते हैं। नर और मादा दोनों में विशेष जनन वाहिनियां नहीं होतीं। गोनडों से बाहर आने वाले युग्मक सीलोमी गुहा (प्रगुहा) में स गुज़रते हैं और जनन छिद्रों के द्वारा शरीर से बाहर निकल जाते हैं। जनन वाहिनियों का अभाव एक आदिम कशेरुकी लक्षण जान पड़ता है। गुदा का मूत्रजनन नलिका से पूर्णत: पृथक होना इनमें एक विशेषीकरण हुआ जान पड़ता है।

जबड़ायुक्त कशेरुकी

कार्टिलेजी मछलियां – कार्टिलेजी मछलियों में गोनड संरचना तथा जनन वाहिनियों का उद्भव एवं उनका प्रतिरूप सामान्य रूप से जबड़ायुक्त कशेरुकियों का प्ररूप होता है (चित्र 9.27 a तथा b) और उनसे कशेरुकियों की जनन वाहिनियों का आर्किनेफ्रिक यानि आदिवृक्क नलिकाओं से समान उद्भव का संकेत मिलता है। जबड़ायुक्त कशेरुकियों में मुलेरियन वाहिनी एक नयी संरचना के रूप में बनती है। वृषण आदिम ऐम्पुलरी प्रकार के होते हैं। भीतरी निषेचन के लिए रूपांतरणों में शामिल हैं श्रोणि फिन जिन्हें आलिंगक कहते हैं (देखिए उपभाग 9.10.4)। कार्टिलेजी मछलियों में भीतरी परिवर्धन में पाए जाने वाली बहुत सी विभिन्नताओं से न तो एक समान व्यवस्था का ही संकेत मिलता है और न ही ऐसा जान पड़ता है कि इनका अन्य मछलियों अथवा चतुष्पादों से कोई स्पष्ट संबध हो।

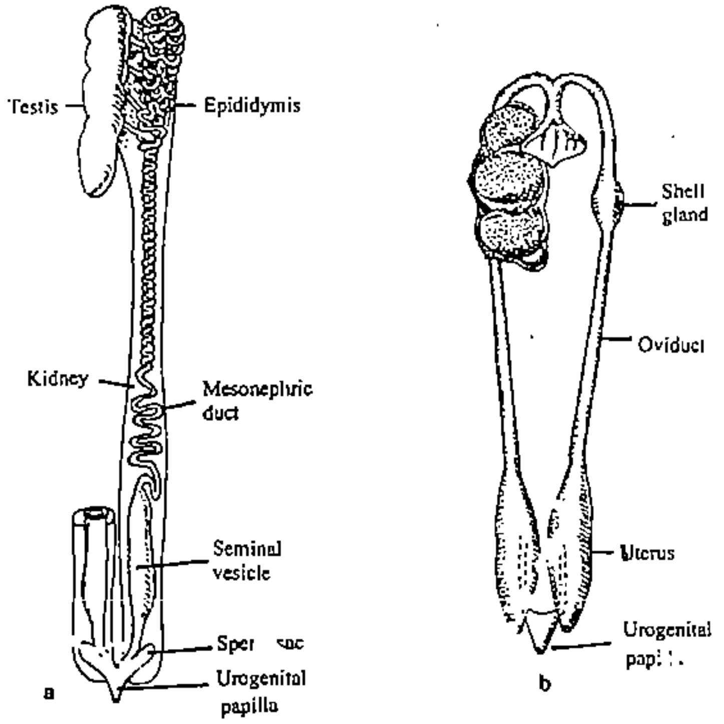

चित्र 9.27 : कार्टिलेजी मछलियों का जनन तंत्र a) शार्क (shark) का नर जनन तंत्र b) शार्क *स्क्वैलस* का मादा जनन तंत्र। बायीं ओर का अंडाशय निकाल दिया गया है।

अस्थिल मछलियां– अधिकतर विद्यमान (extant) टीलियोस्ट मछलियों में विशेषित खोखले अण्डाशय एवं वृषण होते हैं जिनकी जनन वाहिनियां गोनडों से व्युत्पन्न होती हैं और गोनोडक्ट्स (gonoducts) कहलाती हैं (चित्र 9.28 a तथा b)। मगर कुछ अस्थिल मछलियों में जबड़ाविहीन मछलियों के समान सीलोमी परिवहन होता है। इनमें, व्यस्क में गोनडों के विस्तार से खोखले वृषण अथवा अण्डाशय बनते हैं जो नलिकाओं का रूप ले लेते हैं और क्रमश: शुक्राणु अथवा अण्डे का परिवहन करके उन्हें पश्च देह भित्ति में बने छिद्रों से बाहर निकालते हैं। वृषण या तो (i) ऐम्पुलरी (गुच्छकोष्ठक = एसिनर= acinar) हो सकते हैं जैसे जबड़ाविहीन मछलियों तथा शार्कों में या (ii) नलिकीय जैसे कि अधिकतर चतुष्पादों में। नलिकाकार वृषण एवं जनन वाहिनियों का वृक्कों से सहसंबंध अस्थिल मछलियों का आदिम लक्षण जान पड़ता है।

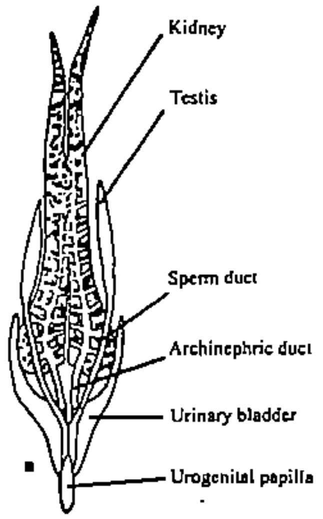

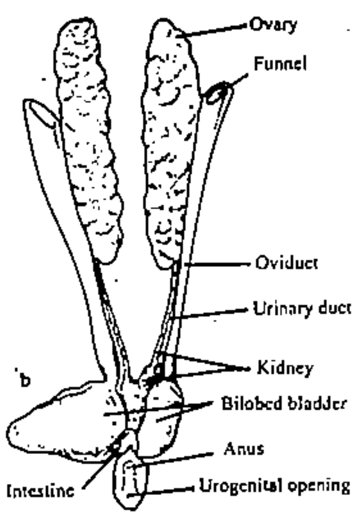

चित्र 9.28 : अस्थिल मछलियों का जननतंत्र (a) "समुद्री घोड़े" हिप्पोकैम्पस (*Hippocampus*) का नर मूत्रजनन तंत्र, (b) अस्थिल मछली *एमिया* (*Amia*) का मादा जनन तंत्र ।

ऐम्फ़िबियन – ऐम्फ़िबियनों में गोनड तथा मूत्रजनन वाहिनियां मूलत: आदिम अस्थिल मछलियों एवं चतुष्पादों के समान होती हैं (चित्र 9.29)। कुछ अंडप्रजक (oviparous) और समस्त सजीवप्रजक (viviparous) उदाहरणों में भीतरी निषेचन हो गया है जो शुरू-शुरू में थलीय जीवन शैली के लिए एक अनुकूलन रहा होगा। जनन अनुकूलन की दृष्टि से लगता है कि ऐम्फ़िबियनों में सीसीलीयन (caecilians) प्राणी सर्वाधिक थलीय हैं। इन सभी में भीतरी निषेचन होता है और इनमें अण्डों की सुरक्षा करने की क्रियाविधियां बन गयी हैं जैसे कि अंडों को सेना (brooding) अथवा अंडों को शरीर के ही भीतर रोके रखकर या और अधिक सम्पूर्णता तक सजीवप्रजता विकसित करके। जीवित सजीवप्रजक ऐम्फ़िबियनों में आते हैं: कई स्पीशीज़ सालामैण्डर की, लगभग पांच स्पीशीज़ मेढ़कों की और लगभग 20 स्पीशीज़ सीसीलियनों की। मेढ़कों, सालामैंण्डरों तथा सीसीलियनों की कुछ सजीवप्रजक स्पीशीज़ की मादाओं की अण्डवाहिनियों में शिशु के पोषण के लिए "गर्भाशय दुग्ध" (uterine milk) नामक पोषण स्राव निकलते हैं। मगर अंडवाहिनियों के भीतर किसी प्रकार की कोई अपरा (प्लैसेन्टा) नहीं बनती।

रेप्टाइल– रेप्टाइलों अर्थात् सरीसृपों में वृषणों ने मीज़ोनेफ़्रिक नलिकाओं को पूरी तरह से शुक्राणु परिवहन के लिए ले लिया है (चित्र 9.30 a तथा b)। ऐसी स्थिति में मूत्र एक बिल्कुल नयी वाहिनी, युरेटर (ureter) यानि मूत्रवाहिनी द्वारा ले जाया जाता है।

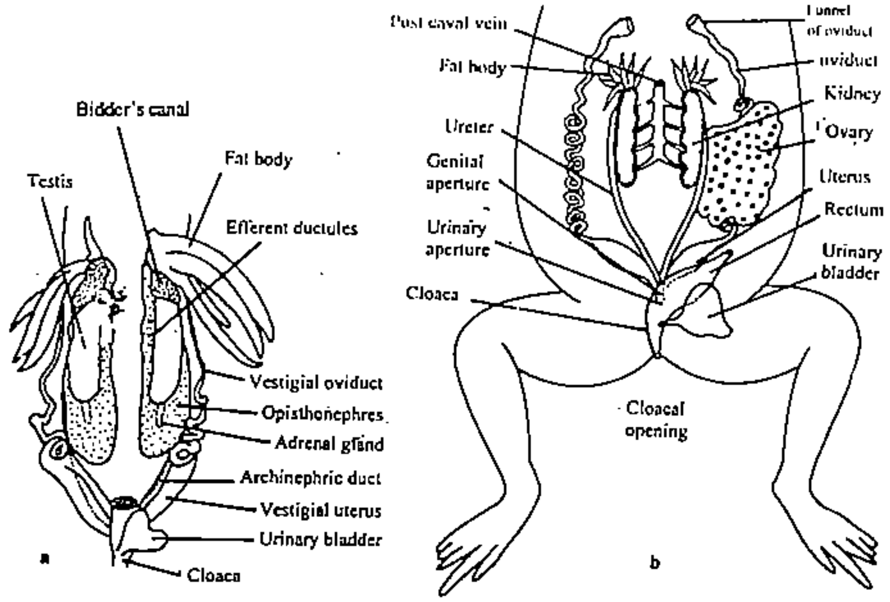

चित्र 9.29: ऐम्फ़िवियनों का जननतंत्र। (a) ब्यूफ़ो अमेरिकैनस (*Bufo americanus*) टोड यानि भेक का नर मूत्रजनन तंत्र जिसमें विडर-नाल (Bidder's canal) दिखायी पड़ रही है। (b) ब्यूफ़ो (*Bufo*) का मादा मूत्रजनन तंत्र जिसमें दाहिना अंडाशय निकाल दिया गया है।

जैसा कि ऐम्फ़िबिया तथा अधिकतर मछलियों में होता है, मादाओं की अण्डवाहिनियां वृक्कों के साथ और उत्सर्जी कार्य के साथ बिल्कुल नहीं जुड़ी होतीं। रेप्टाइलों के अंत:प्रवेशी अंग यानि अर्धशिश्न तथा शिश्न, थलीय जीवन शैली के लिए स्पष्ट अनुकूलन दर्शाते हैं और उसी के फलस्वरूप रेप्टाइलो में भीतरी निषेचन भी होता है। ये अनुकूलन जातिवृत्तत: इतिहासीय रेप्टाइलों के स्तनीय वंशजों (descendants) में भी जारी रहते हैं। कुछ स्पीशीज़ में मादा की अण्डवाहिनियों में मैथुन के बाद सजीव शुक्राणु काफ़ी लम्बे समय तक रोके रखे जा सकते हैं और कुछ कछुओं में तो ये चार वर्ष तक बने रह सकते हैं।

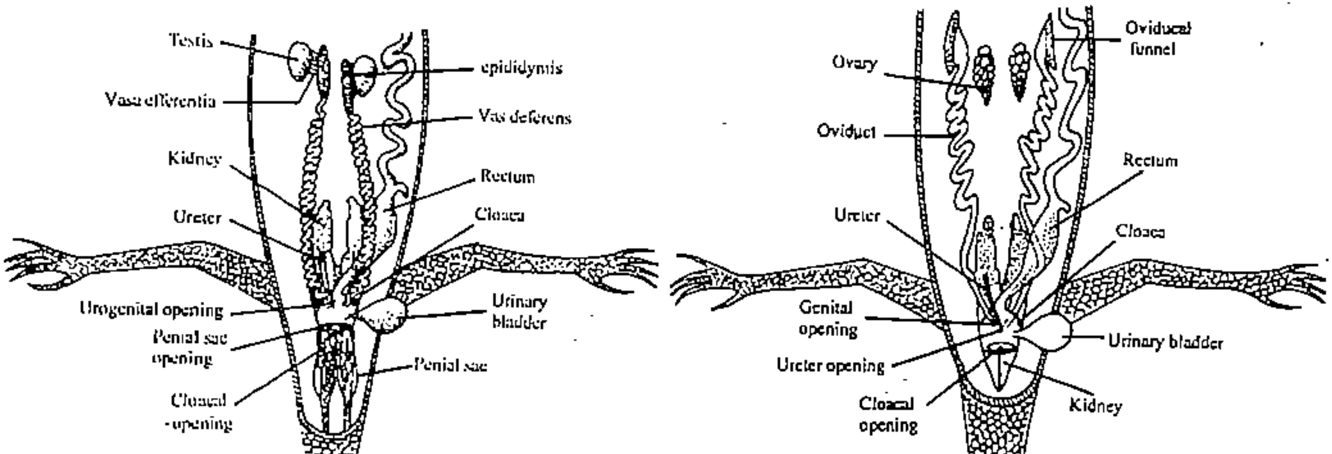

चित्र 9.30: रेप्टाइलों के जनन तंत्र (a) छिपकली वर्ग के कैलोटेस (*Calotes*) यानि गिरगट का नर मूत्रजनन तंत्र, (b) इसी प्राणी कैलोटेस का मादा मूत्रजनन तंत्र।

पक्षी– पक्षियों में प्ररूपत: रेप्टीलियन प्रकार के ही जनन अंग होते है बस अंतर इतना है कि मादाओं में केवल बायां गोनड ही अण्डाशय का रूप लेता है (चित्र 9.27 c)। दाहिनी गोनड एक ख़ास अवस्था तक विकसित होता है जिसके बाद वह अवनत होता जाता है तथा अविभेदित बना रहता है। शिश्न केवल आदिम पक्षियों में ही होता है।

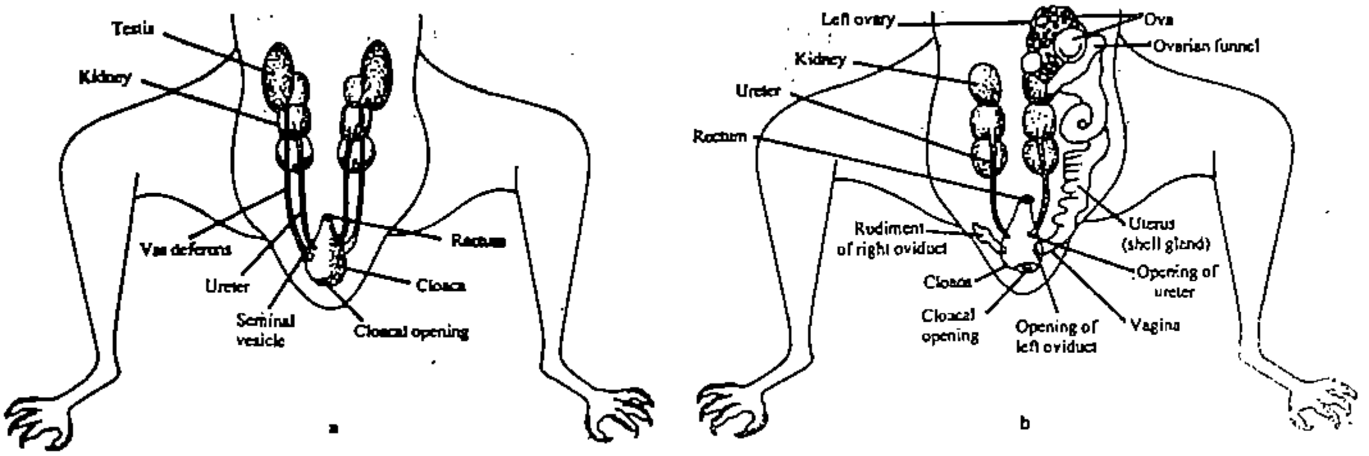

चित्र 9.31: पक्षी वर्ग (एवीज़=*Aves*) का जनन तंत्र (a) *कोलम्बा* (*Colmuba*) या कबूतर का नर मूत्रजनन तंत्र, (b) *कोलम्बा* का मादा मूत्रजनन तंत्र।

अण्डवाहिनियों के पश्च सिरे पर कुछ कोष्ठ बने होते हैं जिनमें शुक्राणु भंडारित होते हैं, इन्हें शुक्राणु नीड (sperm nests) कहते हैं। अण्डा अण्डाशय से बाहर आकर इंफंडिबुलम में पहुंचता है जहां इन अण्डों का निषेचन होता है। निषेचित अण्डा बलपूर्वक अण्डवाहिनी में से गुज़ारा जाता है जिसके भीतर अण्डे के प्रत्येक सिरे पर एक सर्पिल (spiral) पट्टी, जिसे कैलैज़ा (chalaza=निभाग) कहते हैं, जुड़ जाती है और अण्डे पर ऐल्बुमेन की मोटी और पतली परतें, कवच झिल्लियां (shell membranes) तथा कवच (shell) चढ़ा दिए जाते हैं।

स्तनी

आदिम स्तनियों में जैसे कि मॉनोट्रीमों (monotremes) यानि अंडजस्तनी में सामान्यत: एक रेप्टीलियन प्रकार का जनन उपकरण पाया जाता है, बस अंतर इतना है कि इनमें शिश्न खांचयुक्त न होकर नलिकाकार होती है तथा इनमें स्तन ग्रंथियां मौजूद होती हैं। मॉनोट्रीमों में एक स्पष्ट अवस्कर होता है। मॉनोट्रीमों में मूत्रवाहिनी रेप्टाइलों तथा पक्षियों के ही प्रकार वोल्फियन अथवा मुलेरियन वाहिनियों के बीच स्थित होती है, न कि जनन वाहिनी के पार्श्व में जैसा कि यूथीरियन (eutherians) स्तनियों में स्थित होती है। मॉनोट्रीमों की अंडवाहिनियां अधिकतर स्तनियों की तुलना में अविशेषित होती हैं। ये असमेकित होती हैं और मूत्रजनन कोटर में अलग-अलग खुलती हैं। अंडवाहिनियां केवल इस हद तक विशेषित होती हैं कि वे रेप्टाइलों के अण्डों की तरह का एक कवच भी बनाती हैं और गर्भाशय दुग्ध (uterine milk) का भी स्रवण करती हैं जिसे भ्रूणपोषी (embrytrophe) कहते हैं। यह भ्रूणपोषी, भ्रूण द्वारा अवशोषित कर लिया जाता और पोषण में काम आ जाता हैं।

शेष स्तनी समूहों के जनन तंत्र की विस्तृत जानकारी इसी इकाई के विविध भागों में पहले ही दी जा चुकी है, फिर भी एक प्ररूपी स्तनी के जनन तंत्र का चित्र नीचे दिया जा रहा है (चित्र 9.32 a और b)।

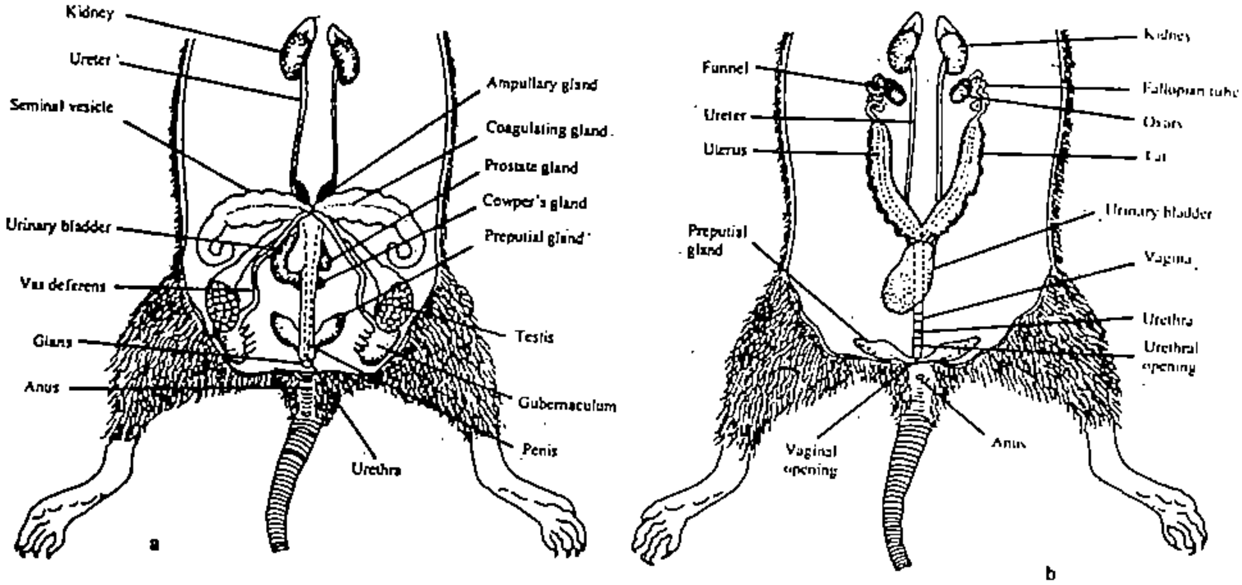

चित्र 9.32 : स्तनी का जनन तंत्र। (a) रैटस (*Rattus*) या चूहे का नर मूत्रजनन तंत्र, (b) रैटस चूहे का मादा जनन तंत्र।

बोध प्रश्न 7

रिक्त स्थान भरिए तथा अपने उत्तर इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से मिलाइए।

(i) चार प्रकार के स्तनीय गर्भाशय होते हैं ...., ..., ... तथा ....।

(ii) गर्भाशय की पेशीय परत को .... कहते हैं।

(iii) स्तनीय मादा जनन तंत्र के अंगों का अनुक्रम इस प्रकार है;

दो अण्डाशय → .... → .... → .... → जनन छिद्र।

(iv) ऐम्फ़िबियन वर्ग में सीसीलियनों में निषेचन .... होता है।

(v) ऐम्फ़िबियनों की कुछ सजीवप्रजक स्पीशीज़ की मादाओं की अण्डवाहिनियां बच्चों के लिए .... नामक पोषक स्राव बनाती हैं।

(vi) मादा पक्षियों में केवल .... गोनड ही अण्डाशय बनता है।

(vii) मॉनोट्रीमों की अण्डवाहिनियाँ गर्भाशय दुग्ध जिसे .... कहते हैं, का स्रवण करती हैं।

9.13 सारांश

- मूत्र और जनन अंग दोनों ही भ्रूणविज्ञानीय तौर पर एक ही अथवा सहवर्ती ऊतक से बनते हैं और जीवधारी में शारीरीय और कभी-कभार कार्यात्मक साहचर्य भी आजीवन बनाए रहते हैं।
- कॉर्डेट समूहों में कई प्रकार के वृक्क पाए जाते हैं।
- प्रोटोकॉर्डेटों *ब्रैंकियोस्टोमा* (सेफ़ैलोकार्डेटा) तथा *हर्डमानिया* (यूरोकॉर्डेटा) के उत्सर्जी अंगों का कशेरुकी वृक्क के किसी भी भाग से अथवा अन्य किसी भी ज्ञात तरल नियमनकारी संरचना से कोई संबंध नहीं दिखायी पड़ता।

- कशेरुकियों के उत्सर्जी अंगों में युग्मित वृक्क तथा उनसे संबंधित वाहिनियां होते हैं।
- कशेरुकियों में जो नानाविध प्रकार के वृक्क पाए जाते हैं वे सभी एक आदिम संरचना जिसे आर्किनेफ्रॉस अथवा होलोनेफ्रॉस कहते हैं से व्युत्पन्न हुए होते हैं।
- आर्किनेफ्रॉस (होलोनेफ्रॉस) युग्मित आद्यवृक्क वाहिनियों का बना होता है जो सीलोम की लम्बाई तक में स्थित रहता है। इन आर्किनेफ्रॉस वाहिनियों में खण्डशः व्यवस्थित नलिकाएं, जो एक जोड़ी प्रति खंड हैं, जुड़ गयीं। प्रत्येक नलिका का मुक्त सिरा एक पक्ष्माभी कीपाकार नेफ्रोस्टोम (वृक्ककमुख) के द्वारा सीलोम में खुलता है। प्रत्येक नलिका अंतराधमनीय कोशिकाओं की ग्लोमेरूलस नामक एक छोटी सी गांठनुमा संरचना से निकटतः जुड़ी होती है। हैगफ़िश तथा सीसीलियनों की लार्वा अवस्थाओं में आर्किनेफ्रिक दशा पाई जाती है।
- वर्तमान कशेरुकियों के वृक्क इसी आर्किनेफ्रॉस प्रकार के वृक्क की आदिम योजना के आधार पर विकसित हुए हैं। कशेरुकी वृक्क के विभिन्न प्ररूप, हो सकता है ऐसी ही क्रमिक अवस्थाएं हों जो मूल आर्किनेफ्रॉस से शिरोपुच्छ (craniocaudal) दिशा में विकसित हुए हैं। इन्हें ऐम्नियोट कशेरुकी के भ्रूण परिवर्धन में स्पष्टतः देखा जा सकता है, जिनमें वृक्क के तीन परिवर्धन अवस्थाओं पुरोवृक्क (प्रोनेफ्रॉस), मध्य वृक्क (मीज़ोनेफ्रॉस) तथा पश्च वृक्क (मेटानेफ्रास) का एक अनुक्रम पाया जाता है। इन अवस्थाओं में से सब तो नहीं मगर कुछ अवस्थाएं अन्य कशेरुकी वर्गों में भी पायी जाती हैं।
- वयस्क एनैम्नियोटों - साइक्लोस्टोमों, मछलियों तथा ऐम्फ़िबियनों, में आदिम आर्किनेफ्रॉस का अग्र भाग प्रायः रूपांतरित हो जाता है अथवा अपकर्षित हो जाता है। भ्रूण में यह प्राक्वृक्क (pronephros) नामक एक अस्थायी संरचना के रूप में प्रकट होता है। कुछ निम्नतर कशेरुकियों में प्राक्वृक्क (head kidney) वयस्क अवस्था में भी बना रहता है और उसे शीर्ष वृक्क कहते हैं। शीर्ष वृक्क वयस्क हैगफ़िश तथा कुछ ख़ास टीलियोस्टों (teleosts) में पाया जाता है। एनैऐम्नियोट वृक्क का वह भाग जो बचा रहता और वयस्क वृक्क बनाता है, उत्तरवृक्क (opisthonephros) कहलाता है। यह आर्किनेफ्रॉस वाहिनी बनाए रखता है परंतु प्राक्वृक्क से इस बात में भिन्न होता है कि प्रत्येक खण्ड में अनेक वृक्क नलिकाएं मौजूद हो सकती हैं और नलिकाओं के अपने पेरिटोनियमों से संयोजन समाप्त हो जाते हैं। पश्चवृक्क में एक सामान्य प्रवृत्ति होती है कि वृक्क नलिकाएं पश्च सिरे की ओर संकेंद्रित हो जाती हैं। उत्सर्जी अंग के रूप में अग्र सिरे का महत्त्व समाप्त हो जाता है और नरों में यह सिरा जनन तंत्र के निकट साहचर्य में आ जाता है, जिसके परिणामस्वरूप आर्किनेफ्रिक वाहिनी शुक्रवाहिका, के रूप में जानी जाती है।
- ऐम्नियोटों में तीन प्रकार के वृक्क- प्रक्वृक्क, मध्यवृक्क, तथा पश्चवृक्क भ्रूण परिवर्धन के दौरान शिरोपुच्छीय दिशा में प्रकट होते हैं। इनमें से केवल पश्चवृक्क ही बना रह पाता है जो वयस्क वृक्क बनता है। आदिवृक्क वाहिनी को ऐम्नियोटों में वोल्फ़ियन वाहिनी कहते हैं।
- नर ऐम्नियोटों में वोल्फ़ियन वाहिनी से एपिडिडिमस, शुक्रवाहिका तथा जनन तंत्र के कुछ अन्य भाग बनते हैं।
- अधिकतर कशेरुकियों के मूत्र तंत्र में दो वृक्क तथा दो मूत्रवाहिनियां होती हैं। सभी स्तनियों तथा कुछ कशेरुकियों में एक मूत्राशय तथा एक मूत्रमार्ग पाए जाते हैं।
- वृक्क से निकलने वाली वाहिनियां अधिकतर उदाहरणों में अवस्कर में पहुंचती हैं। टीलियोस्ट मछलियों में ये सीधे ही बाहर को खुलती हैं।

- स्तनियों में वृक्क से आने वाली वाहिनियां मूत्राशय में प्रवेश करती हैं (मॉनोट्रीमों को छोड़कर)। मूत्राशय अवस्कर की दीवार के अधर बर्हिकोष्ठों के रूप में पाया जाता है। स्तनियों में मूत्राशय एक मूत्रमार्ग के द्वारा बाहर को खुलता है जो सभी उदाहरणों के नरों में, केवल मॉनोट्रीमों को छोड़कर, जनन तंत्र द्वारा भी उपयोग में लाया जाता है।

- प्रत्येक स्तनी वृक्क और साथ ही अन्य अधिकतर कशेरुकियों का वृक्क भी एक वृक्क कैप्स्यूल (capsule) का बना होता है जिसके भीतर एक बाहरी कॉर्टेक्स (cortex) तथा एक भीतरी मेडुला होता है। मूत्रजन नलिका (uriniferous tubule) नामक बहुसंख्यक व्यष्टिगत नलिकाएं वृक्क की आधारभूत उत्सर्जी इकाईयां होती हैं जिनमें मूत्र बनता है। प्रत्येक मूत्रधर नलिका में दो भाग होते हैं - (i) नेफ्रॉन जो एक उत्सर्जी संघटक होता है, तथा (ii) संग्राहक नलिका।

- प्रत्येक नेफ्रॉन (nephron) बना होता है एक प्यालानुमा बोमैन अथवा वृक्क कैप्स्यूल (Bowman's capsule), समीपस्थ संवलित नलिका (proxinal convoluted tubule= PCT), हेन्ले-लूप (Loop of Henle) तथा दूरस्थ संवलित नलिका (distal convoluted tubule = DCT) का। नेफ्रॉन से संबंधित रक्त वाहिकाएं हैं: एक अभिवाही धमनिका (afferent arteriole), ग्लोमेरूलसी कोशिकाएं (glomerular capillaries) या कोशिका गुच्छ, एक अपवाही धमनिका (efferent arteriole) तथा परिनलिकीय केशिकाएं।

- कशेरुकियों में वृक्क उत्सर्जन एवं परासरणनियमन के मुख्य अंग होते हैं।

- मूत्र तंत्र के विविध कार्य हैं- (i) उपापचयी अपशिष्ट उत्पादों का उत्सर्जन, (ii) तरल, विद्युत-अपघटन (electrolyte) संतुलन तथा रक्त दाब (blood pressure) का नियमन, (ii) एरिथ्रोपोएटिन हार्मोन का स्रवण जिसका संबंध रक्त-हानि अथवा अवऑक्सीयता (hypoxia) के समय रक्त कोशिकाओं के उत्पादन से है।

- कशेरुकियों के वृक्कों के सामने दो प्रकार की समस्याए आती हैं क्योंकि वे विविध आवासों में रहते हैं। इनमें जल संबंधी दो प्रकार की दशाएं पायी जा सकती हैं : (i) जल उपलब्ध न हो जैसे कि थल पर्यावरण अथवा समुद्री पर्यावरण में, (ii) जल बहुलता से मिलता हो जैसे अलवण जल पर्यावरण में। इस प्रकार कशेरुकियों के वृक्क और नलिकाएं उनके पर्यावरण के अनुसार अनुकूलित होते हैं।

- विविध समूहों के मूत्रजनन तंत्र भी कुछ हद तक भिन्न होते हैं।

जनन तंत्र

- कॉर्डेटों के जनन तंत्र में प्राथमिक सेक्स (लैंगिक) अंग यानि गोनड आते हैं जिनके भीतर युग्मक बनते है।

- प्राथमिक सेक्स अंग अथवा गोनड नर में वृषण तथा मादा में अण्डाशय होते हैं। वृषणों में शुक्राणु तथा अण्डाशयों में अण्डे बनते हैं।

- कशेरुकी जनन तंत्र में प्राथमिक तथा सहायक लैंगिक अंग होते है। सहायक लैंगिक अंगों में वाहिनियां तथा ग्रंथियां आती हैं जो युग्मकों (अण्डों अथवा शुक्राणुओं) को शरीर से बाहर जाने का मार्ग प्रदान करती हैं। एनैऐम्नियोटों की आदिवृक्क वाहिनी तथा ऐम्नियोटों की वोल्फियन वाहिनी नर में जनन वाहिनी अथवा शुक्रवाही बन जाती है। मादाओं में मुलेरियन वाहिनी (Mullerian duct) अंडवाहिनी बन जाती है। ऐम्फिऑक्सस (amphioxus) तथा साइक्लोस्टोमों (cyclostomes) में वाहिनियां अनुपस्थित होती हैं।

- नरों में, शुक्राणु, शुक्रजनक ऐम्पुलों के भीतर अथवा वृषणों की नलिकाओं के भीतर बनते हैं।
- प्रत्येक शुक्रवाहिका वृषणों के साथ अपना संबंध जोड़ती है जो प्राय: एपिडिडिमस एवं अपवाही नलिकाओं नामक चिरस्थायी वृक्क नलिकाओं के द्वारा बनता है। एनैऐम्नियोटों में एपडिडिमस तथा शुक्रवाहिका में आदिवृक्क वाहिनी के अंश होते हैं जो कुछ उदाहरणों में उत्सर्जी वाहिनी और शुक्राणुओं के मार्ग का भी काम कर सकती है। परंतु ऐम्नियोटों में एपिडिडिमस तथा शुक्रवाही चिरस्थायी वोल्फ़ियन वाहिनी से बने होते हैं, जो वयस्क पश्चवृक्कीय वृक्क की मूत्रवाहिनी से पूर्णत: अलग हो गई हैं।
- कशेरुकियों में वृषण उदर गुहा में स्थित होते हैं, परंतु अनेक स्तनी इसका अपवाद हैं। अधिकतर स्तनियों में ये या तो अस्थायी तौर पर या स्थायी तौर पर शरीर-विशेष के बाहर वृषणकोश (scrotum) में स्थित होते हैं।
- नर कशेरुकियों में और वह भी विशेषकर स्तनियों में प्राथमिक लैंगिक अंगों के साथ सहायक ग्रंथियां संबंधित रहती हैं। इनसे शुक्र तरल का स्राव निकलता है जिसके भीतर शुक्राणु स्थित रहते हैं। यह तरल शुक्राणुओं की जीवनशीलता के लिए तथा नर और मादा दोनों के जनन पथों में से इनके परिवहन के लिए अनिवार्य है।
- कशेरुकियों में निषेचन बाहरी अथवा भीतरी हो सकता है। उन अधिकतर कशेरुकियों में जिनमें भीतरी निषेचन होता है मैथुन अंग होते हैं जिनका कार्य शुक्राणुओं को नर से मादा में पहुंचाने का होता है। मछलियों में ये मैथुन अंग आम तौर से रूपांतरित फ़िन होते हैं। सांपों तथा छिपकलियों में युग्मित अर्धशिश्न होते हैं, परंतु कछुओं, मगर-मच्छों, कुछ पक्षियों तथा सभी स्तनियों में इस कार्य के लिए एक एकल शिश्न होता है। मूत्राशय से आने वाला मूत्रमार्ग केवल मॉनोट्रीमों को छोड़कर शेष सभी स्तनियों में शिश्न से होकर गुजरता है। इस प्रकार यह मूत्र तथा शुक्र दोनों तरलों के मार्ग का कार्य करता है।
- अण्डे अण्डाशयों के भीतर विकसित होते हैं और पूरे बनने पर अण्डाशयों से बाहर सीलोम में आ जाते हैं। प्रत्येक अण्डवाहिनी सामान्यत: एक कीपाकार ऑस्टियम द्वारा सीलोम में खुलती है। टीलियोस्टों की अण्डवाहिनियां एक अलग प्रकार से व्युत्पन्न हुई होती हैं और हो सकता है कि वे अन्य कशेरुकियों की अंडवहिनियों के समजात न हों।
- स्तनियों से नीचे के स्तर के मादा प्राणियों में युग्मित अंडवाहिनियां पृथक होती हैं एवं अपने-अपने अलग छिद्र द्वारा अवस्कर में खुलती हैं। अधिकतर उच्चतर स्तनियों के वयस्क में अवस्कर नहीं होता और प्रत्येक अंडवाहिनी में तीन भाग स्पष्ट बन जाते हैं- (i) फैलोपियन नलिका, (fallopian tube या डिम्बवाहिनी नली) (ii) गर्भाशय (uterus) तथा (iii) योनि (vagina)। स्तनियों में युग्मित गर्भाशयों का विविध तौर पर समेकन हो जाता है जिससे अलग-अलग प्रकार के गर्भाशय बन जाते हैं।
- मादाओं की बाह्य जननेन्द्रिय जिन्हें भग कहते हैं नरों की तुलना में कम विकसित होती हैं। मादा जननेन्द्रिय का अधिकतम विकास प्राइमेटों में हुआ होता है।
- सहायक ग्रंथियां मादा जनन पथ के साथ बनी होती हैं और उनसे श्लेष्मा का स्राव होता है।
- नर और मादा जनन-तंत्र का समांतर विकास बहुत स्पष्ट दिखायी पड़ता है। एक लिंग की विविध संरचनाएं स्पष्टत: दूसरी लिंग के समजात होती हैं।

9.14 अंत में कुछ प्रश्न

1. मूत्र तंत्र तथा जनन तंत्र का अध्ययन प्राय: एक साथ एक समान शीर्षक मूत्रजनन तंत्र के अंतर्गत क्यों किया जाता है?

2. स्तनी की एक मूत्रधर नलिका का सुनामांकित आरेख बनाइए।

3. नीचे दिए जा रहे मानव वृक्क के चित्र का नामांकन कीजिए।

4. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियां लिखिए:

(क) वृक्क रक्त परिसंचरण

....

....

....

....

(ख) स्तनी गर्भाशय के प्रकार

....

....

....

....

5. अंत:प्रवेशी अंग किन्हें कहते हैं? सरीसृपीय अंत:प्रवेशी अंग का वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

6. उत्सर्जी तंत्रों के कार्यों की सूची बनाइए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

7. ऐम्नियोट वृषण का वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

9.15 उत्तर

बोध प्रश्न

1. (i) ग्लोमेरूलस, (ii) हाइलम अथवा हाइलस (नाभिका); (iii) वृक्कीय (renal) (iv) मीज़ोडर्म (मध्यजनस्तर)

2. (i) (क)नेफ्रॉन; (ख)ग्लोमेरूलस; (ग)हेन्ले-लूप; (घ)बेलिनी वाहिनी

   (ii) वृक्क कार्पसल/ग्लोमेरूलस तथा बोमेन कैप्स्यूल, समीपस्थ संवलित नलिका, अवरोही शाखा, हेन्ले-लूप, आरोही शाखा, दूरस्थ संवलित नलिका, संग्राही नलिका

   (iii) क, ख ग

   (iv)

अ	ब
क) अपवाही धमनिकाओं की कोशिकाएं	वासा रेक्टी
ख) वृक्क अंतरास्त	प्रोस्टैग्लैंडिन
ग) मैकुला डेन्सा	ग्लोमेरूलासन्न उपकरण
घ) एरिथ्रोपोएटिन	लाल रक्त कोशिकाएं

3. क-i, ख-i, ग-i ।

4. (i) वृषण, अंडाशय (ii) द्वितीयक (iii) वोल्फ़ियन/ मध्यवृक्कीय (iv) अण्डाशय (v) अवस्कर (vi) वृषणधर या मिसोर्कियन (vii) अंत:प्रवेशी

5. (i) मीज़ोडर्म, (ii) प्राथमिक, (iii) अंडप्रजक (iv) सजीवप्रजक, (v) मादा

6. (i) साइक्लोस्टोमों में शुक्राणु वृषण के शुक्रजनक ऐम्पुलों में बनते हैं।

   (ii) लीडिग कोशिकाओं (Leydig cells) से टेस्टोस्टेरॉन हार्मोन का स्राव होता है।

   (iii) नर जनन वाहिनियों को शुक्रवाही कहते हैं।

   (iv) सहायक लिंग ग्रंथियां, प्रोस्टेट ग्रंथियां तथा बल्बोयूरीथ्रल ग्रंथिया नर कशेरुकियों में पायी जाती हैं।

   (v) अंत:प्रवेशी अंग को छिपकलियों में अर्धशिश्न कहते हैं।

7. (i) डुप्लेक्स (duplex) या द्विक गर्भाशय, द्विभाजित गर्भाशय (bipartite), द्विश्रृंगी गर्भाशय (bicornuate), सिम्प्लेक्स (simplex) या सरल गर्भाशय
   (ii) मायोमेट्रियम
   (iii) दो अण्डवाहिनियां (फ़ैलोपियन नलिकाएं) → (गर्भाशय) → योनि
   (iv) भीतरी
   (v) गर्भाशय दुग्ध
   (vi) बायां
   (vii) भ्रूणपोषी

अंत में कुछ प्रश्न

1. यद्यपि मूत्र और जनन तंत्रों में कार्य की दृष्टि से कुछ भी समान नहीं हैं, फिर भी इनका अध्ययन एक सम्मिलित मूत्र जनन तंत्र के अंतर्गत इसलिए किया जाता है क्योंकि ये दोनों ही धड़ मीज़ोडर्म के खंडश: खंडों अथवा सहवर्ती ऊतकों से बने होते हैं तथा अनेक वाहिनियां दोनों में ही सम्मिलित कार्य करती हैं।
2. इस इकाई के चित्र 9.6 के आधार पर चित्र बनाइए
3. चित्र 9.9 के आधार पर चित्र का नामांकन कीजिए।
4. देखिए (क) उपभाग 9.5.2 (ख) उपभाग 9.11.2 -गर्भाशय
5. देखिए उपभाग 9.10.4 (ऐम्नियोटों के अंत:प्रवेशी अंग)
6. देखिए चित्र 9.14 (b)।
7. देखिए भाग 9.10 वृषण तथा शुक्रजनक नलिकाएं

इकाई 10 तंत्रिका-तंत्र तथा संवेदी अंग

इकाई की रूपरेखा

10.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
10.2 कशेरुकियों में तंत्रिका ऊतक
10.3 केंद्रीय तंत्रिका तंत्र
मस्तिष्क तथा मेरू रज्जु की गुहाएं
मेरू रज्जु
मस्तिष्क
10.4 परिधीय तंत्रिका तंत्र
मेरू तंत्रिकाएं
कपाल तंत्रिकाएं
स्वायत्त तंत्रिकाएं
10.5 मस्तिष्क – तुलनात्मक संरचना
जबड़ाविहीन कशेरुकी
जबड़ायुक्त कशेरुकी
10.6 संवेदी अंग
आंख
कान
घ्राण अंग
10.7 विशेषित संवेदी अंग
मछलियों का पार्श्व रेखा तंत्र
सांपों के गर्त-तंत्र
चमगादड़ों में प्रतिध्वनि-निर्धारण
10.8 सारांश
10.9 अंत में कुछ प्रश्न
10.10 उत्तर

10.1 प्रस्तावना

हममें से प्रत्येक ने अपने जीवनकाल में कभी न कभी प्राणियों को अवश्य ही गौर से देखा होगा कि वे किस प्रकार चलते-फिरते हैं, किस तरह अपना शिकार पकड़ते और आहार करते हैं या फिर वे किस प्रकार बाहरी अथवा भीतरी उद्दीपनों के प्रति अनुक्रिया करते हैं। ये सभी क्रिया-कलाप इसलिए होते हैं क्योंकि प्राणी की व्यष्टिगत कोशिकाएं कुछ विशेष उद्दीपनों के प्रति अनुक्रियाएं करती हैं और उनकी ये अनुक्रियाएं अलग-थलग नहीं वरन् एक अर्थपूर्ण समन्वित रूप में समाकलित होती हैं। यह समन्वय दो प्रकार से होता है, एक तो विद्युत् रूप में तंत्रिका-तंत्र के द्वारा और दूसरा रासायनिक रूप में अंत:स्रावी तंत्र के माध्यम से। इस इकाई में आप कशेरुकी तंत्रिका तंत्र की संघटना के विषय में जान सकेंगे जबकि दूसरे समाकलनकारी तंत्र का उल्लेख इकाई 12 में किया जाएगा।

LSE-05 तथा LSE-09 में आप पढ़ चुके हैं कि मेंटाज़ोअन शरीर की विशेषित कोशिकाएं तंत्रिकाणु किस प्रकार संगठित होकर एक तंत्रिका तंत्र बनाती हैं और यह भी कि ये तंत्रिकाणु समस्त प्राणि-जगत में एक ही सिद्धांत पर कार्य करती हैं। आपको याद होगा कि तंत्रिका तंत्र का कार्य उद्दीपनों यानि संवेदी सूचना को प्राप्त करना तथा उद्दीपनों को शरीर के एक भाग से दूसरे भाग में पहुंचाना होता है। इस प्रकार यह तंत्र प्राणी के क्रिया-कलापों का नियमन करता है जिसमें वह बाहर से आने वाली संवेदी सूचना को भंडारित सूचना के और बीते अनुभव के परिणामों के साथ समाकलित करके और फिर उसके बाद बीती एवं वर्तमान सूचना को प्रेरकों के माध्यम से कार्यरूप प्रदान करता है। सभी चेतन अनुभवों का स्थान भी तंत्रिका ऊतक ही होता है

इस इकाई में आप तंत्रिका कोशिका अर्थात् तंत्रिकाणु यानि तंत्रिका तंत्र की कार्यात्मक एवं संरचनात्मक इकाई के विषय में संक्षेप में जान सकेंगे। यहां हम कशेरुकी तंत्रिका तंत्र और मस्तिष्क की संघटना का विभिन्न कशेरुकी समूहों में इनके कार्यों के संदर्भ में विवेचन करेंगे। बाहरी और भीतरी उद्दीपनों के प्रति अनुक्रिया कर सकने के लिए प्राणियों में संवेदग्राही (sensory receptors) पाए जाते हैं जो कि शरीर में दूर-दूर तक व्यापक फैले हो सकते हैं या विशेषित अंग जैसे कि संवेदी अंगों, के रूप में होते हैं। पर्यावरण से आने वाली ऊर्जा रूपी सूचना को ये विद्युत् आवेगों (impulses) में बदल देते हैं और फिर इन आवेगों को तंत्रिका तंत्र में भेज दिया जाता है। यहां पर हम तीन आधारभूत प्रकार के संवेदी अंगों-चाक्षुष या दृक (optic), श्रवण (auditory) तथा घ्राण (olfactory) अंगों का वर्णन करेंगे।

उद्दीपनों को ग्रहण करने की क्षमता में कशेरुकी एक समान नहीं होते, अत: कुछ कशेरुकी समूहों में उनकी अपनी विशेष जीवन-विधि से मेल खाते हुए विशेषित संवेदी अंग बन गए हैं। इनका भी संक्षेप में विवेचन करते हुए हम इस तथ्य पर बल देंगे कि ये अंग प्राणी को अपने बाहरी पर्यावरण के साथ अनुक्रिया करने में सहायता करते हैं।

उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप कशेरुकियों में :

- केंद्रीय, परिधीय तथा स्वायत्त तंत्रिका तंत्र का वर्णन कर सकेंगे,
- मस्तिष्क का तुलनात्मक वर्णन प्रस्तुत कर सकेंगे,
- मस्तिष्क की संरचनाओं के विकास का इन प्राणियों के कार्यों के साथ सहसंबंध स्थापित कर सकेंगे,
- आंख, भीतरी कान तथा घ्राण अंगों की संरचना का सचित्र वर्णन कर सकेंगे,
- विशेषित संवेदी अंगों का वर्णन कर सकेंगे।

10.2 कशेरुकियों में तंत्रिका ऊतक

परिवर्धन जीव-विज्ञान पाठ्यक्रम (LSE-06) के खण्ड 3 में आप पढ़ चुके हैं कि समस्त तंत्रिका ऊतक का उद्भव एक्टोडर्म (बाह्यजनस्तर) से हुआ होता है। कशेरुकियों में भ्रूणीय परिवर्धन के दौरान गैस्ट्रुला की मध्य-पृष्ठ दिशा में स्थित चपटी एक्टोडर्म परत मोटी हो जाती है और उसे न्यूरल (तंत्रिका) अथवा मेडुलरी प्लेट कहते हैं जिससे तंत्रिका नली एवं तंत्रिका शिखर (neural crest) बनती हैं। तंत्रिका नली मस्तिष्क एवं मेरू रज्जु की पूर्वगामी होती है तथा तंत्रिका शिखर की कुछ कोशिकाएं तंत्रिका नली से निकल अन्यत्र जाकर मस्तिष्क तथा मेरू रज्जु के बाहर स्थित तंत्रिका कोशिकाओं को बनाती हैं।

इससे पहले के पाठ्यक्रमों LSE-05 तथा LSE-09 से आप प्ररूपी तंत्रिका-कोशिका की संरचना को याद कीजिए कि इस कोशिका में एक कोशिका काय (cell body) और इससे निकले अनेक प्रवध डेन्ड्राइट (वृक्षाभ अथवा द्रुमिकाएं) होती हैं, ये डेन्ड्राइट बहुसंख्यक होते हैं और साथ-साथ बहुत ज्यादा विशाखित भी, इसके अलावा तंत्रिका-कोशिका काय से एक अकेला लम्बा प्रवर्ध ऐक्सॉन (अक्षतंतु) निकला होता है जिसके अंत पर शाखाएं यानि अंतस्थ विशाखन बना होता है (चित्र 10.1) ऐक्सॉन से पार्श्व शाखाएं भी निकलती हो सकती हैं मगर अक्सर इनका अभाव होता है। ऐक्सॉन के अंतिम सिरे का एक अन्य तंत्रिकाणु के डेंड्राइटों के साथ निकट सम्पर्क (सिनेप्स, अन्तर्ग्रथन) बना हो सकता है तथा ऐक्सॉन अंतसिरों से तंत्रि संचारी (neurotransmitters) निकलते हैं जो सूचना को सिनेप्स के पार अगले तंत्रिकाणु में आवेगों के रूप में पहुँचा देते हैं। यह प्रक्रिया सामान्यत: एकदिशावर्ती ही होती है। एक तंत्रिकाणु का सम्पर्क अन्य हज़ारों तंत्रिकाणुओं के साथ बना हो सकता है और ये तंत्रिकाणु सूचना को अपने ऐक्सॉनों में से आगे भेजते हैं तथा अपने अपने डेंड्राइटों (द्रुमिकाओं) द्वारा सूचना प्राप्त करते हैं।

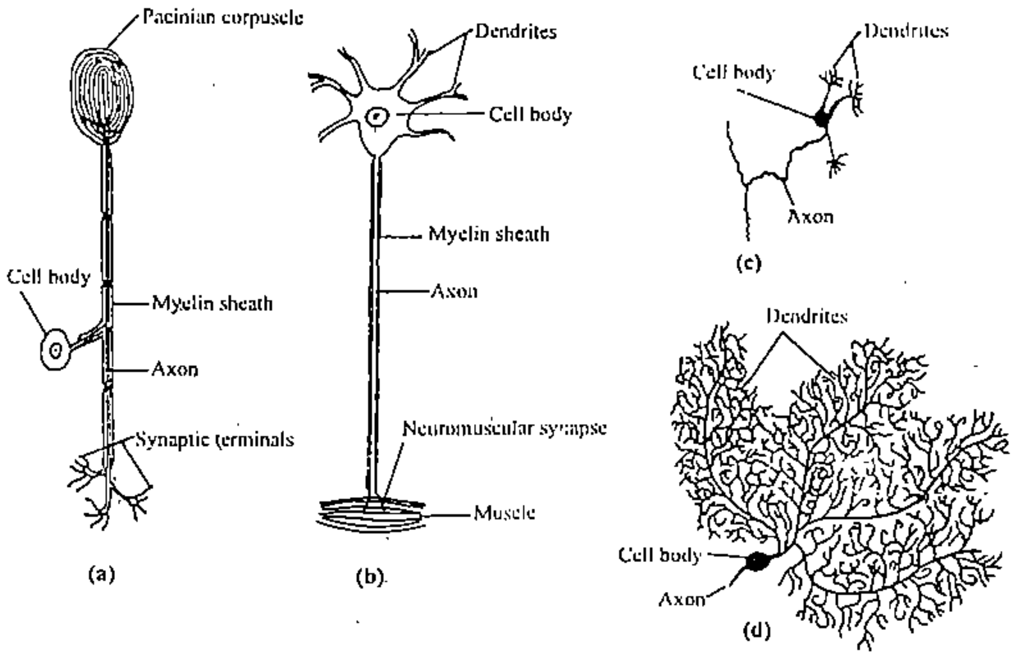

चित्र 10.1 : कशेरुकियों में प्ररूपी तंत्रिका-कोशिकाएं (न्यूरॉन)। a) दैहिक संवेदी; b) दैहिक प्रेरक; c) कणिका कोशिका (अनुमस्तिष्क कॉर्टेक्स), d) पुरकिंजे कोशिका (अनुमस्तिष्क कार्टेक्स)।

तंत्रिका-तंत्र का आधारभूत घटक हालांकि तंत्रिकाणु ही होता है, मगर एक अन्य प्रकार का ऊतक तंत्रिबन्ध (neuroglia = तंत्रिका गोंद) तंत्रिका तत्वों के बीच-बीच में स्थित होता है जो आलम्ब प्रदान करने के साथ-साथ कुछ हद तक सुरक्षा भी प्रदान करता है। ये तंत्रिबंध न तो संकेतों का संवहन करते हैं और न ही इनसे कोई तंत्रि संचारी पदार्थ ही निकलते हैं।

तंत्रिबंध दो मुख्य प्रकार के होते हैं:-

1) वृहत तंत्रिबंध (Macroglia) जिनका उद्भव एक्टोडर्म से होता है।

2) सूक्ष्म तंत्रिबंध (Microglia) जिनका उद्भव मीज़ोडर्म से होता है।

एक प्रकार के ऑलिगोडेंड्राइट (oligodendrite) कोशिकाएं अर्थात् अल्पदन्द्रोन कोशिका होती हैं। इनसे प्रवर्ध निकले होते हैं जो ऐक्सॉनों पर लिपट कर उन्हें घेरे रहते हैं। यह आवरण अथवा आच्छद माइलिन (myelin) का बना होता है, एक ऐसे पदार्थ का जो वसा तथा प्रोटीनों से भरपूर होता है। माइलिन आवरण सामान्यत: केवल कशेरुकियों के ऐक्सानों में ही मौजूद होता है। मस्तिष्क तथा मेरू रज्जु के बाहर के तंत्रिकाणुओं के ऐक्सानों के ऊपर

भी रिबन-जैसी कोशिकाओं का आवरण बना होता है। इन कोशिकाओं को श्वान कोशिकाएं (Schwann cells) कहते हैं और ये ओलाइगोडेंड्राइटों से इस बात में समान होती हैं कि ये भी माइलिन का उत्पादन करती हैं जो विद्युतरोधी पदार्थ के रूप में कार्य करता है उसी तरह जैसे कि बिजली के तार के ऊपर प्लास्टिक का आवरण चढ़ा होता है। यह ऐक्सॉन में से गुज़रते हुए तंत्रिका आवेग की ऊर्जा की हानि को रोकता है। माइलिन आवरण का होना तंत्रिका आवेगों के तेज़ी से संवहन में सहायता करता है क्योंकि माइलिन के मोटे आवरण वाले तंतुओं में सर्वाधिक वेग से संवहन होता है। नियमित अंतरालों पर माइलिन आवरण विच्छिन्न होता है जहां पर वृत्ताकार संकीर्णन होते हैं जिन्हें रैनवियै-पर्वसंधियां (nodes of Ranvier) कहते हैं। कशेरुकियों में साइक्लोस्टोम ही ऐसे प्राणी हैं जिनमें माइलिन आच्छदों का अभाव होता है।

एक अन्य प्रकार की सूक्ष्म तंत्रिबंध कोशिकाएं ऐस्ट्रोसाइट (astrocytes) होती हैं जो सबसे बड़ी और सर्वाधिक प्रचुर होती हैं। ये कोशिकाएं अन्य तंत्रिका ऊतक के साथ सम्पर्क बनाए होती हैं तथा तंत्रिका ऊतक कार्यिकी को सामान्य बनाए रखती हैं। इनकी भूमिका मस्तिष्क परिवर्धन, टूट-फूट ठीक करने और रक्त-मस्तिष्क अवरोध बनाए रखने में भी होती है।

तंत्रिका कोशिकाओं की कायों के समूह को गुच्छिका या गैंग्लिऑन (ganglion) कहते हैं। तंत्रिका-कोशिका कायों के समूहों तथा उनके डेंड्राइटों एवं ऐक्सानों के समीपस्थ आमाईलिनित हिस्सो का धूसर स्वरूप होता है, और ये सब मिलकर धूसर द्रव्य (grey matter) बनाते हैं। मस्तिष्क तथा मेरू रज्जु मुख्यत: धूसर द्रव्य के बने होते हैं। इनके विपरीत श्वेत द्रव्य (white matter) माइलिनित तंतुओं के समूहों या बंडलों का बना होता है। इस प्रकार के बंडलों को जो मस्तिष्क तथा मेरू रज्जु में होते हैं तंत्रिका पथ (nerve tracts) कहते हैं तथा जो शेष शरीर में होते हैं उन्हें तंत्रिका (nerve) कहते हैं। कभी कभार श्वेत तथा धूसर द्रव्य परस्पर गुथे-जुड़े होते हैं, इस प्रकार की व्यवस्था को जालिकीय रचना (reticular formation) कहते हैं।

कशेरुकी तंत्रिका तंत्र के दो मुख्य विभाजन होते हैं:-

1. केंद्रीय तंत्रिका तंत्र (Central nervous system) (CNS) जिसमें मस्तिष्क तथा मेरू रज्जु आते हैं।
2. परिधीय तंत्रिका तंत्र (Peripheral nervous system, (PNS) जिसमें एक तो मस्तिष्क से निकलने वाली तंत्रिकाएं आती है और दूसरे मेरू रज्जु से निकलने वाली तंत्रिकाएं एवं गैंग्लिया आते हैं। परिधीय तंत्रिका तंत्र का एक अंश स्वायत्त तंत्रिकाओं के रूप में होता है जो शरीर के उन भागों में वितरित होता है जो अनैच्छिक नियंत्रण के अधीन होता है।

आइए अब हम केंद्रीय तंत्रिका तंत्र के विषय में बात करेंगे। मगर इससे पहले कि आप अगले भाग का अध्ययन शुरू करें क्यों न नीचे दिए जा रहे बोध प्रश्नों को हल कर लें।

बोध प्रश्न 1

निम्न कथनों को उपयुक्त रूप में सही करें

(क) मेरू रज्जु तथा मस्तिष्क श्वेत द्रव्य के बने होते हैं।

(ख) माइलिन आच्छदों का स्रवण ऐस्ट्रोसाइटों से होता है।

(ग) माइलिन आच्छद केवल मस्तिष्क के ऐक्सॉनों में पाए जाते हैं।

(घ) मस्तिष्क में ऐक्सानों के बंडलों से जालिकीय रचना बनती है।

10.3 केंद्रीय तंत्रिका तंत्र

केंद्रीय तंत्रिका तंत्र में एक तो मस्तिष्क आता है जो करोटि की कपाल गुहा के भीतर स्थित होता है तथा दूसरा मेरू रज्जु आता है जो कशेरुकों की तंत्रिका चापों के द्वारा बनी तंत्रिका नाल के भीतर स्थित होता है। भ्रूण की तंत्रिका नली का मस्तिष्क तथा मेरू रज्जु में विभेदन हो जाने पर उसकी मूल गुहा के रूपांतरण से तरल से भरे निलय (ventricles) बन जाते हैं, ये निलय मस्तिष्क के केंद्र में स्थित आपस में जुड़ी गुहाएं एवं मेरू रज्जु के भीतर की संकरी केंद्रीय नाल होती हैं।

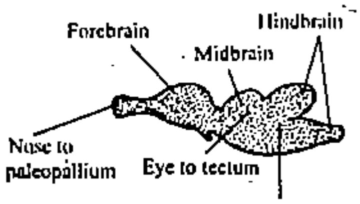

(a)

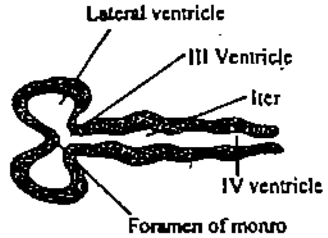

(b)

चित्र 10.2: a) आदिम कशेरुकी मस्तिष्क के प्रधान उपविभाजन और संवेदी अंगों के साथ उनके संयोजनों का आरेखीय दृश्य। b) मस्तिष्क के निलय।

भ्रूण में तंत्रिका नाल का अग्र सिरा तीन क्षेत्रों में विभाजित देखा जा सकता है ये क्षेत्र हैं– **प्रोसेन्सेफ़ेलॉन** (prosencephalon), **मीसेन्सेफ़ेलॉन** (mesencephalon) तथा **रॉम्बेन्सेफ़ेलॉन** (rhombencephalon)। यही क्षेत्र वयस्क प्राणी में **अग्र मस्तिष्क** (forebrain), **मध्य मस्तिष्क** (midbrain) तथा **पश्चमस्तिष्क** (hindbrain) बन जाते हैं (चित्र 10.2)।

10.3.1 मस्तिष्क तथा मेरू रज्जु की गुहाएं

प्रोजेनसेफ़ेलॉन के अग्र सिरे से उनमस्तिष्क **टेलेन्सेफ़ेलॉन** (telencephalon) बनता है जिससे उच्चतर प्राणियों में अंततः दो **प्रमस्तिष्क गोलार्ध** (cerebral hemispheres) बनते हैं; और प्रमस्तिष्क गोलार्धों के बनने के साथ उनमें जो गुहाएं बन जाती हैं वे **पार्श्व निलय** (lateral ventricles) अथवा निलय I एवं II बन जाते हैं (देखिए चित्र 10.2b)। शेष प्रोसेनसेफ़ेलॉन बन जाता है अग्रमस्तिष्क पश्च अर्थात् **डाइएनसेफ़ेलॉन** (diencephalon) और उसकी गुहा को कहते हैं **तीसरा निलय** (third ventricle)। निलय I और II संबंध बनाते हैं निलय III के साथ और इस संबंध बनाने वाले रंध्र को **अंतरानिलय रंध्र** अथवा **मनरो-रंध्र** (foramen of Monro) कहते हैं। उच्चतर कशेरुकियों में तीसरा निलय एक संकरी नाल **प्रमस्तिष्क एक्वाडक्ट** (cerebral aqueduct) के द्वारा मीज़ेन्सेफ़ेलॉन में खुलता है तथा पीछे की ओर यह प्रमस्तिष्क एक्वाडक्ट राम्बेनसेफ़ेलॉन में स्थित **चौथे निलय** में खुलता है। मेडुला ऑब्लांगेटा के भीतर स्थित चौथे निलय के अंश को **मज्जागुहा** (myelocoel) कहते हैं जो पीछे मेरू रज्जु की गुहा में जारी रहता है। मस्तिष्क तथा मेरू रज्जु की गुहाएं एक लसीका जैसे **प्रमस्तिष्कमेरू द्रव्य** (cerebrospinal fluid) से भरी होती हैं।

10.3.2 मेरू रज्जु

तंत्रिका नली का वह भाग जो मेरू रज्जु का रूप लेता है मस्तिष्क बनाने वाले भाग से कहीं कम रूपांतरित होता है। यह सामान्यतः एक न्यूनाधिक रूप में सिलिंडराकार मगर कुछ हद तक चपटी हो गयी नली का रूप लेती है। अग्र सिरे पर यह चौड़ी हो जाती है जहां पर वह मेडुला ऑब्लांगेटा के साथ जारी रहती है। पश्च सिरा संकरा होता जाता एक महीन धागे का रूप ले लेता है जिसे **अंत्य सूत्र** अथवा **फ़ाइलम टर्मिनेल** (filum terminale) कहते हैं।

साइक्लोस्टोमों तथा मछलियों में मेरू रज्जु काफ़ी हद तक एक सी ही मोटाई का बना रहता है मगर अधिसंख्य चतुष्पादों में दो सुव्यक्त उत्फूलन अथवा विवर्ध देखे जाते हैं एक तो आगे का उत्फूलन जहां से अग्रपादों में आपूर्ति करने वाली तंत्रिकाएं निकलती हैं और दूसरा कटि उत्फूलन जहां से पश्चपादों में आपूर्ति करने वाली तंत्रिकाएं निकलती हैं। पादविहीन उदाहरणों में जैसे कि सांपों में दोनों में से कोई सा भी उत्फूलन नहीं होता है।

मेरू रज्जु का धूसर तथा श्वेत द्रव्य

अनुप्रस्थ सेक्शन में देखने पर मेरू रज्जु में दो भाग बने दिखायी देते हैं: एक तो धूसर द्रव्य और दूसरा श्वेत द्रव्य। ऐम्नियोटों में धूसर द्रव्य अंग्रेजी के अक्षर "H" की आकृति में व्यवस्थित होता है (चित्र 10.3)। वे भाग जो "H" की ऊपर की ओर को निकली छड़ों के अनुरूप होते हैं पृष्ठ दिशा में फैले होते हैं इन्हें **पृष्ठ स्तम्भ** (dorsal columns) कहते हैं तथा निचली छड़ों को अधर स्तम्भ (ventral columns) कहते हैं। बीच की संयोजी छड़, जिसमें केन्द्रीय नाल बनी होती है, नाले के ऊपर पृष्ठ तथा नाल के नीचे अधर धूसर संधायिनी (dorsal and ventral grey commissures) बनाती है। (चित्र 10.3 a)

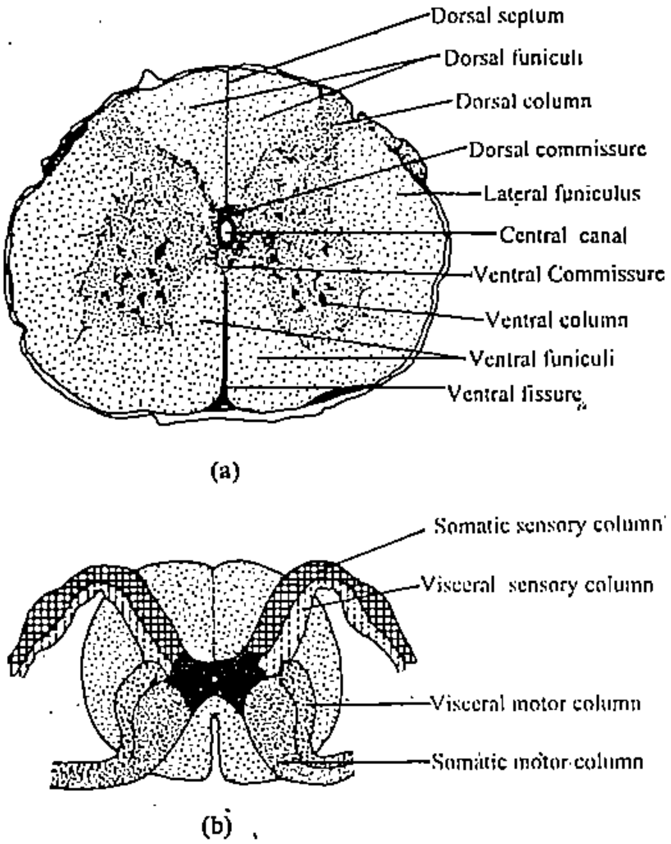

चित्र 10.3 : a) बिल्ली के मेरू रज्जु का अनुप्रस्थ सेक्शन; b) मेरू रज्जु के प्रत्येक पार्श्व पर धूसर द्रव्य के चार स्तम्भों की आपेक्षिक स्थितियां।

पृष्ठ स्तम्भों में अधिकतर सहबन्धक तंत्रिकोशिकाओं (association neurons) के कोशिका काय होते हैं। इनके डेन्ड्राइट (द्रुमिकाएं) संवेदी अर्थात् अभिवाही तंत्रिका तंतुओं, (afferent nerve fibres) जो मेरूरज्जु के पृष्ठ मूलों के माध्यम से मेरू रज्जु में प्रवेश करते हैं, के ऐक्सॉनों के साथ सिनेप्स बनाते हैं।

सहबन्धक तंत्रिकोशिका के ऐक्सॉन प्रेरक अर्थात् अपवाही तंत्रिकाणु (efferent neuron) जिनके कोशिका काय अधर स्तम्भों में स्थित होते हैं, के डेन्ड्राइटों के साथ सिनेप्स बनाते हैं। दैहिक संवेदी तंतु दैहिक ऊतकों से आने वाले आवेगों को केंद्रीय तंत्रिका तंत्र में ले जाते हैं। ये पृष्ठ स्तम्भों के ऊपरी भागों में स्थित कोशिकाओं के साथ सिनेप्स बनाते हैं जबकि अंतरंग (visceral) संवेदी तंतु पृष्ठ स्तम्भ के निचले भाग में स्थित कोशिकाओं के साथ सिनेप्स बनाते हैं (चित्र 10.3b) दैहिक प्रेरक तंत्रिकाणु के कोशिका काय तथा तंतु, अधर स्तम्भ के निचले भागों में स्थित होते हैं (चित्र 10.3b)। जबकि अंतरंग प्रेरक तंत्रिकाणुओं के कोशिका काय तथा तंतु अधर स्तम्भों के ऊपरी तथा पार्श्व भागों में से निकले होते हैं।

शरीर के भीतर होने वाले समस्त कार्यों को या तो दैहिक या अंतरंग कहा जा सकता है। दैहिक कार्य वे होते हैं जो त्वचा अथवा उसके व्युत्पादों, ऐच्छिक पेशियों और कंकाली पेशियों द्वारा किए जाते हैं। अंतरंग कार्य शरीर के अन्य अंग तंत्रों से जैसे कि पाचन, श्वसन आदि अंगों द्वारा किए जाते हैं।

मेरू रज्जु का श्वेत द्रव्य अनुदैर्ध्य स्तम्भों में व्यवस्थित होता है जिन्हें रज्जुभ (funiculus) कहते हैं, जो धूसर द्रव्य के बाहर स्थित होते हैं (चित्र 10.3a)। ये रज्जुभ तंतु पथों में विभाजित होते हैं जो मज्जायुक्त तंतुओं के बने होते हैं तथा आवेगों को मेरू रज्जु में ऊपर नीचे को तथा मस्तिष्क में एवं मस्तिष्क में से ले जाते हैं। पार्श्व रज्जुभ पृष्ठ तथा अधर स्तम्भों के बीच स्थित होते है, पृष्ठ रज्जुभ पृष्ठ पट (septum) तथा पृष्ठ स्तम्भ के बीच स्थित होता है तथा एक अधर रज्जुभ धूसर द्रव्य के अधर स्तम्भ तथा अधर विदर (fissure) के बीच स्थित होता है। दोनो अधर रज्जुभ अधर संधायी के माध्यम से जुड़े रहते हैं। पृष्ठ रज्जुभ संवेदी तंत्रिका आवेगों को रज्जु में ऊपर की ओर तथा मस्तिष्क में ले जाते हैं जबकि अधर रज्जुभ मूलतः प्रेरक होते हैं जो आवेगों को रज्जु में नीचे को तथा मस्तिष्क से बाहर को ले जाते हैं। पार्श्व रज्जुभों में संवेदी तथा प्रेरक दोनों प्रकार के तंतु होते हैं।

निम्नतर कशेरुकियों में स्तम्भों तथा रज्जुभों की इतनी विशद व्यवस्था नहीं होती। ऐम्फिऑक्सस में श्वेत तथा धूसर द्रव्य में कोई स्पष्ट विभेदन नहीं होता क्योंकि इनमें मज्जायुक्त तंतु नहीं बने हैं। साइक्लोस्टोमों में मेरू रज्जु के भीतर धूसर तथा श्वेत द्रव्य के बीच कोई स्पष्ट विभेद नहीं हो पाया है।

बोध प्रश्न 2

क) निम्न को परस्पर मिलाइए:

टेलेन्सेफ़ैलॉन	मायेलोसील
डायन्सेफ़ैलॉन	चौथा निलय
राम्बेन्सेफैलॉन	पार्श्व निलय
मेडुला ऑब्लांगेटा	तीसरा निलय

ख) मूल पाठ से उपयुक्त शब्द लेकर रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:

(i) मेरू रज्जु के पृष्ठ स्तम्भ में ………………… तंत्रिकाणुओं के कोशिका काय होते हैं।

(ii) संवेदी तंत्रिका तंतु मेरू रज्जु में ………… मूलों में से होकर प्रवेश करते हैं।

(iii) मेरू रज्जु के अधर स्तम्भों में ………………… तंत्रिकाणुओं के कोशिका काय होते हैं।

(iv) ………………… संदेशों को मस्तिष्क में को ले जाते हैं जबकि संदेशों को मस्तिष्क से मेरू रज्जु में नीचे को ले जाते हैं।

10.3.3 मस्तिष्क

कॉर्डेट मस्तिष्क मूलतः तंत्रिका नली का फूला हुआ अग्र सिरा होता है। आदिम दशा में केंद्रीय तंत्रिका तंत्र बनाने वाले तंत्रिकाणुओं के कोशिका काय तंत्रिका नली की केंद्रीय नाल को घेरते हुए इकट्ठे होते हैं। हालांकि यह व्यवस्था मेरू रज्जु में तो कायम बनी हुई है मगर मस्तिष्क भाग में कोशिकाएं परिधीय क्षेत्रों में पहुंच गयी हैं।

ऐम्फिऑक्सस में मस्तिष्क सरलतम रूप में बस एक प्रमस्तिष्क आशय की तरह बना होता है। जैसे-जैसे कशेरुकियों का विकास हुआ वैसे-वैसे उनका मस्तिष्क आकार में बड़ा और संरचना में अधिक जटिल होता गया, तथा मस्तिष्क के विभिन्न भाग प्राणियों के अपने-अपने विशिष्ट पर्यावरण की विशेष मांगों के अनुरूप विकसित होते गए। उदाहरण के लिए, गुफ़ा में रहने वाली मछलियों में, जो कि निरंतर अंधकारमय अद्योभूमिक पर्यावरणों में वास करती हैं, आंखें ह्रासित होती हैं। तद्नुसार इनमें मस्तिष्क का वह भाग भी, जो

सामान्यत: दृश्य आवेगों को प्राप्त करने वाला होता है, ह्रासित हो गया है। उधर दूसरी ओर सामन मछली में यही भाग बड़ा हो गया है क्योंकि इसमें मस्तिष्क को प्राप्त होने वाले संवेदी संदेशों का एक बड़ा भाग दृष्टि सूचना का होता है।

मस्तिष्क के तीन मूल विभाजनों प्रोसेन्सेफेलॉन (prosencephalon) जिसे अग्रमस्तिष्क भी कहते हैं, मीसेन्सेफेलॉन (mesencephalon) या मध्यमस्तिष्क तथा रॉम्बेनसेफेलॉन (rhombencephalon) या पश्चमस्तिष्क को प्राय: मस्तिष्क स्तम्भ (brain stem) कहा जाता है (चित्र 10.2 a)। इनमें से प्रत्येक विभाजन का विकास प्रमुख संवेदों के साथ-साथ हुआ होगा। अग्रमस्तिष्क यानि प्रोसेनसेफ़लॉन का संबंध गंध के संवेद से है, मध्यमस्तिष्क यानि मीज़ेनसेफ़ेलॉन का दृष्टि से, तथा दाब परिवर्तन और संतुलन पश्चमस्तिष्क अर्थात राम्बेनसेफ़ेलॉन से संबंधित हैं। प्रमस्तिष्क गोलार्ध, मध्यमस्तिष्क की छत तथा अनुमस्तिष्क (cerebellum) बाद में मस्तिष्क स्तम्भ की बहिर्वृद्धियों के रूप में प्रकट हुए तथा तंत्रिका कोशिकाएं इनके अंदर चली गयी हैं जिससे इन भागों में धूसर द्रव्य परिधि पर आ गया है।

आनमन (Flexures)

आदिम रूप में कशेरुकी मस्तिष्क तंत्रिका नली का मात्र एक मामूली सा विकसित अग्र भाग होता है। केवल ऐम्फ़िऑक्सस में ही मस्तिष्क और मेरू रज्जु एक सीधी रेखा में होते हैं। विकास होते जाने के साथ-साथ, हम देखते हैं कि भ्रूण परिवर्धन के दौरान मस्तिष्क के कुछ ख़ास आनमन (flexures) अथवा झुकाव बन जाते हैं। अग्र सिरा नीचे को मुड़ जाता है जिससे एक **शिरस्य आनमन** (cephalic flexure) बन गया है (चित्र 10.4)। मस्तिष्क शीर्ष की अन्य संरचनाओं की अपेक्षा कहीं ज़्यादा तेज़ी से लम्बा होता जाता है इसलिए स्थान की सीमा के कारण मोड़ पैदा हो जाते हैं। सभी कशेरुकियों में एक शिरस्य आनमन मीसेन्सेफ़ेलॉन के क्षेत्र में इस प्रकार से होता पाया जाता है कि प्रमस्तिष्क के व्युत्पाद शेष भाग से समकोणों पर नीचे को झुके होते हैं। दूसरा आनमन ग्रीवा-आनमन (cervical flexure) है जो मेडुला ऑब्लांगेर्स्टा तथा मेरू रज्जु की संधि के निकट होता है। तीसरा आनमन पॉन्टीन अर्थात् सेतुक आनमन (pontine flexure) है जो मेटेन्सेफ़ेलॉन के क्षेत्र में पाया जाता है और शेष दो आनमनों की विपरीत दिशा में होता है।

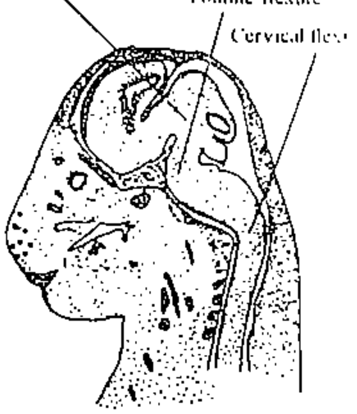

चित्र 10.4: चूहे के 18 दिवसीय भ्रू के मस्तिष्क के आनमन, जैसे कि वे समनिताध्री सेक्शन में दिखायी पड़ रहे हैं।

तानिकाएं (Meninges)

मस्तिष्क तथा मेरू रज्जु दोनों ही पर बाहर से झिल्लियां चढ़ी होती हैं ये झिल्लियां केंद्रीय तंत्रिका तंत्र को सुरक्षित रखती एवं उन्हें आलम्ब प्रदान करती हैं, तथा जैसे-जैसे कशेरुकियों का विकास होता गया वैसे-वैसे इन झिल्लियों की जटिलता भी बढ़ती गयी। कार्टिलेज और हड्डी के ऊपर एक दृढ़ संवहनी झिल्ली चढ़ी होती है जो उन गुहाओं का भी, जिनके भीतर मस्तिष्क और मेरू रज्जु पड़े होते हैं, अस्तर बनाती हैं। साइक्लोस्टोमों तथा मछलियों में (चित्र 10.5 a) एक अकेली झिल्ली मेनिंक्स प्रिमिटिवा (meninx primitiva) होती है जो मस्तिष्क तथा मेरू रज्जु के साथ निकट संयोजन बनाए होती है। स्थलीय जीवन अपनाए जाने के साथ-साथ ये तानिकाएं दोहरी हो गयीं। ऐम्फ़िबियनों, रेप्टाइलों तथा पक्षियों में (चित्र 10.5 b) एक अकेली मेनिंक्स यानि तानिका होने की बजाए एक भीतरी पाईआ-ऐरेक्नॉइड (pia-arachnoid) परत तथा एक बाहरी ड्यूरामेटर (duramater) होती पायी जाती है। इन दोनों परतों के बीच की गुहा में प्रमस्तिष्कमेरू द्रव्य भरा रहता है जो स्थलीय संचलन के दौरान मस्तिष्क और मेरू रज्जु को झटकों से सुरक्षित रखता है। स्तनियों (चित्र 10.5 c) में दृढ़ ड्यूरामेटर कायम बनी रहती है मगर पाईआ-ऐरेक्नॉइड झिल्ली दो परतों में विभेदित हो जाती है एक तो भीतरी पाईआ मेटर और दूसरी बाहरी ऐरेक्नॉइड झिल्ली। पाईआ मेटर में रक्त वाहिकाएं होती हैं जो अधोस्थित तंत्रिका ऊतक को रक्त की आपूर्ति करती हैं। इन दोनों के बीच एक उपऐरेक्नाइड गुहा प्रकट होती है जिसमें

प्रमस्तिष्कमेरू द्रव्य रक्त से प्राप्त होता है और तंत्रिका ऊत्तक एवं मस्तिष्क के निलयों में परिसंचरित होता हुआ वापिस रक्त में लौट आता है। मगर इसमें लाल रक्त कोशिकाएं और साथ ही साथ अन्य बड़े सस्वरूप तत्व बिल्कुल नहीं होते। जब कभी व्यक्ति को चोट-आघात पहुंचती या केंद्रीय तंत्रिका तंत्र में सदमा पहुंचा होने का शक होता है तब प्रमस्तिष्क मेरू द्रव्य का नमूना लिया जाता है। यदि इसमें लाल रक्त कोशिकाएं होती हैं तब हो सकता है कि मस्तिष्क अथवा मेरू रज्जु में क्षति पहुंची हो।

प्रमस्तिष्कमेरू द्रव्य भरा होता है। मस्तिष्क क्षेत्र में कपालीय ड्यूरामेटर एंडोरेकिस (endorachis) तथा एपिड्यूरल गुहा (epidural space) से समेकित हो जाता और इस प्रकार विलीन हो जाता है। मस्तिष्क के विलयों में विद्यमान प्रमस्तिष्क-मेरू द्रव्य धीमी गति से झिल्लियों के बीच की विविध गुहाओं और उनके अवकाशों में परिसंचरित होता रहता है।

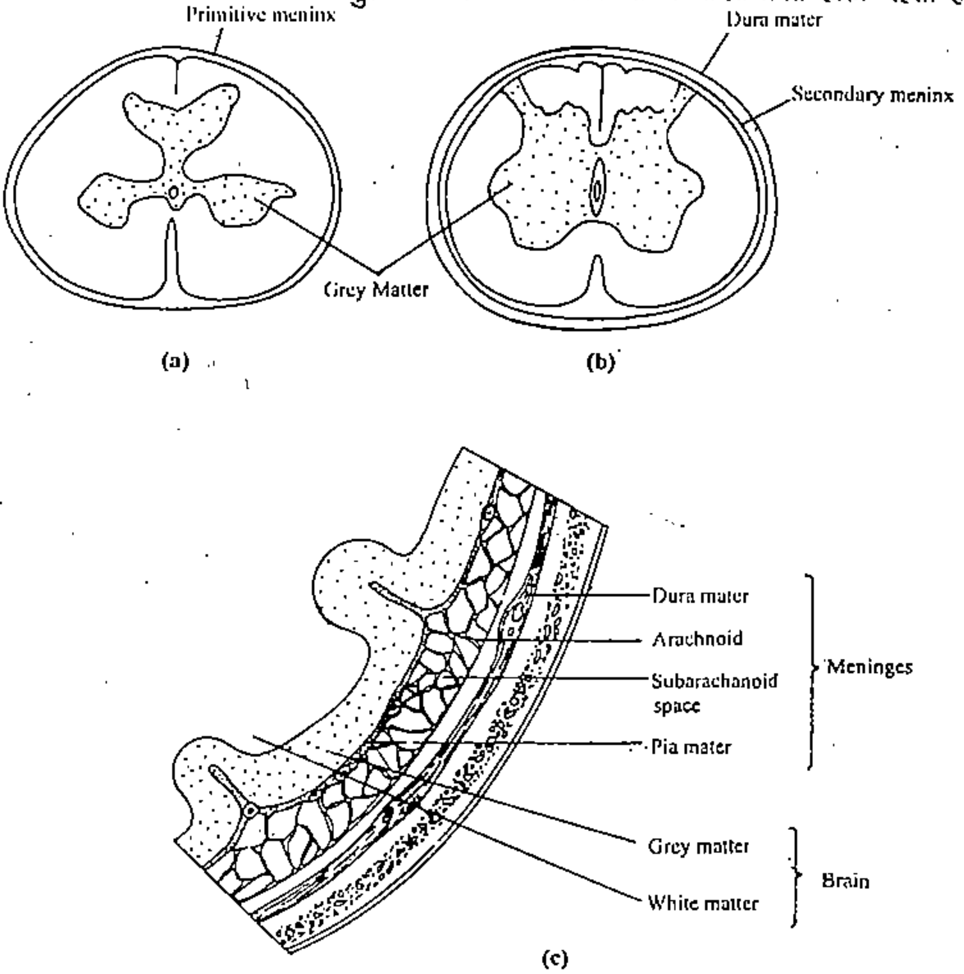

चित्र 10.5: तानिकाएं (मैनिन्जेज़)। a) मछलियों की तानिकाओं में आदिम तानिका की केवल एक अकेली पतली परत पायी जाती है। (b) केवल स्तनियों को छोड़कर शेष सभी चतुष्पादों में तानिकाएं दोहरी परत वाली होती हैं। (c) स्तनियों में तिहरी परत वाली तानिका का अनुप्रस्थ सेक्शन।

मस्तिष्क का धूसर तथा श्वेत द्रव्य

मेरू रज्जु ही की तरह मस्तिष्क का धूसर द्रव्य तंत्रिका कोशिका कायों का और साथ में उनके डेन्ड्राइटों एवं ऐक्सॉनों के समीपस्थ भागों का बना होता है। श्वेत द्रव्य मायेलिनित तंतुओं के पथों का बना होता है जो मस्तिष्क के विभिन्न भागों को परस्पर जोड़ते हैं एवं उन आरोही तथा अवरोही तंतुओं का भी जो आवेगों को मेरू रज्जु में अथवा मेरू रज्जु से दूर ले जाते हैं। आइए अब हम कशेरुकी मस्तिक की संरचना पर गौर करें जैसा कि वह आदित कॉर्डेटों से उन्नत स्तनियों में विकसित होता गया। अच्छा होगा कि आप इस वर्णन को चित्र 10.6 के साथ निकटत: जोड़ते हुए पढ़ें। पश्च-मस्तिष्क में दो भाग मायेलेन्सेफेलॉन तथा मेटेन्सेफेलॉन आते हैं। (चित्र 10.6 A)

मायेलेनसेफेलॉन पश्चमस्तिष्क का सबसे पिछला भाग होता है और पीछे की ओर मेरू रज्जु में जारी रहता है। यह मेडुला ऑब्लांगेटा बन जाता है। इसे मस्तिष्क का प्राचीनतम् भाग कहा जाता है क्योंकि यह सभी कशेरुकियों में सुविकसित होता है भले ही शेष भाग अल्पवर्धित क्यों न हों। मेडुला की सामान्य संरचना मेरू रज्जु की तरह की होती है बस अंतर यह है कि इसकी केंद्रीय नाल चौथे निलय के रूप में बड़ी हो गयी होती है जिसकी आगे की छत अतिसंवहित होकर पश्च रक्तक जालक बनाती है। मस्तिष्क के रक्तक जालकों

(choroid plexi) से प्रमस्तिष्कमेरू द्रव्य बनता है और ये ही जालक इस तरल की संघटना को नियंत्रित रखते हैं।

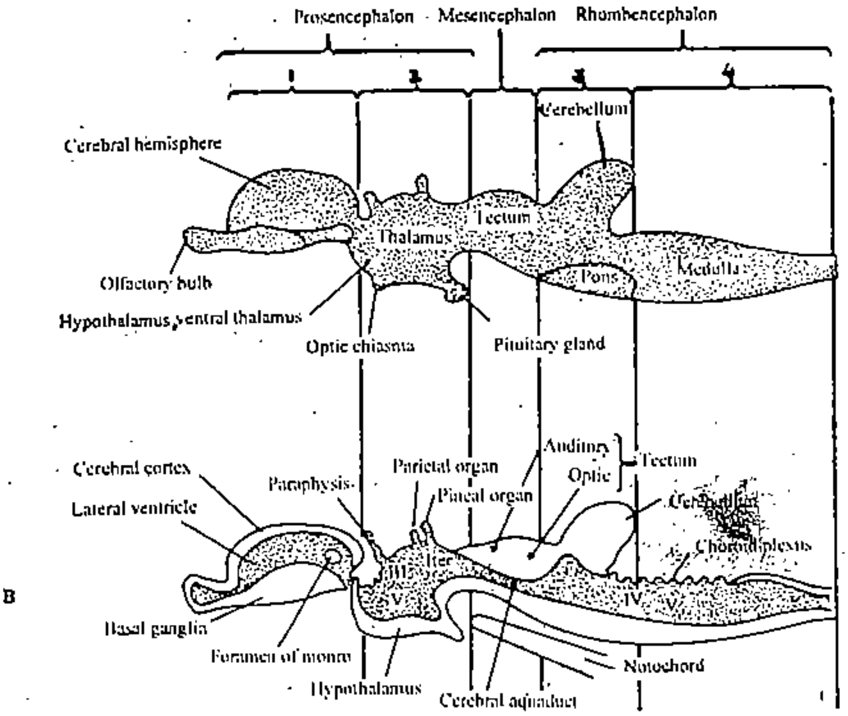

चित्र 10.6 : कशेरुक प्राणियों में मस्तिष्क की सामान्य रचना A) प्रोसेन्सेफ़ेलॉन टेलेन्सेफेलॉन (1) तथा डायनसेफ़ेलॉन (2) से बनता है। रॉम्बेनसेफ़ेलॉन के दो भाग है - (3) मेटेन्सेफ़ेलॉन तथा (4) मायनसेफ़ेलॉन B) मस्तिष्क का पार्श्व दृश्य जिसमें निलय नज़र आ रहे हैं।

मेडुला के भीतर महत्वपूर्ण तंत्रिका केंद्र होते हैं जो जीवनाधार अनैच्छिक शरीरक्रियात्मक प्रकार्यों का जैसे कि हृदय-स्पंदन, श्वसन तथा उपापचय का नियंत्रण करता है। इसी भाग के भीतर कपाल तंत्रिकाओं के प्राथमिक केंद्र भी बने होते हैं। मेडुला को क्षति पहुंचने से जीवन को खतरा बन जाता है। मेडुला के पृष्ठ-अग्र भाग में वे केंद्र भी बने होते हैं जिनका संबंध पार्श्व-रेखा तंत्र (lateral line system) तथा भीतरी कान से आने वाली तंत्रिकाओं से है। स्थलीय कशेरुकों में ये केंद्र कान के संतुलन एवं श्रवण कार्यों से संबंधित हैं। मेडुला उन अनेक अवरोही तथा आरोही दिशामार्गों का भी मार्ग प्रदान करता है जो उच्चतर मस्तिष्क केंद्रों से आते अथवा वहां पहुंचते हैं।

मेटेन्सेफ़ेलॉन पश्चमस्तिष्क का आगे का भाग होता है, जिसका पृष्ठ भाग ऊपर को उठ कर और मोटा होकर अनुमस्तिष्क (cerebellum) बनाता है। अनुमस्तिष्क उन प्राणियों में अधिक विकसित होता है जो सक्रिय होते तथा जिनमें संतुलन प्रेरक और चालन गतियां सुविकसित होती हैं चाहे वे प्राणी जल में रहते हों, वायु में अथवा स्थल पर।

अनुमस्तिष्क का कार्य प्रेरक निर्गमों को मॉनिटर करना एवं उन्हें रूपांतरित करना होता है मगर उन्हें प्रारम्भ करना नहीं होता। यह अनैच्छिक स्तर पर कार्य करता तथा संतुलन बनाए रखता है। स्पर्श, दृष्टि, श्रवण, स्वांतरग्रहण (proprioreception अर्थात् पाद-स्थिति, संधि कोण, पेशी संकुंचन की दशा से संबंधित) और मस्तिष्क के उच्चतर केंद्रों से आने वाले प्रेरक निर्गम प्रमस्तिष्क में ही संसाधित किए जाते हैं। जब किसी जीव को त्रिविम संसार (three dimensional world) में गुरुत्व के सापेक्ष उड़ना, कूदना अथवा तैरना होता है तब स्थितिगत संतुलन बनाए रखने में अनुमस्तिष्क ही कार्य करता है। अनुमस्तिष्क का एक अन्य कार्य प्रेरक क्रिया का परिष्करण करना होता है, यदि अनुमस्तिष्क को निकाल दिया जाए तब भी जीव चलता तो रहेगा मगर उसकी गतियां संमन्वित नहीं होंगी।

अनुमस्तिष्क का साइज़ उसकी भूमिका के अनुपात में होता है। मछलियों तथा ऐम्फ़िबियनों (सालामैण्डरों) में अनुमस्तिष्क छोटा और सरल होता है, क्योंकि उनमें संचालन भी सरल होता है जिसका समन्वय मुख्यत: मेरू प्रतिवर्तों द्वारा होता है। उन्नत चतुष्पादों में जैसे कि स्तनियों तथा पक्षियों में कॉर्टेक्स के भीतर इतनी ज़्यादा संख्या में कोशिकाएं होती हैं कि यह भाग वलनित हो जाता है। कोशिकाओं की संख्या बढ़ने से उनके तंतुओं की संख्या भी बढ़ जाती है और इन तंतुओं से उभरी-उभरी संहतियां बन जाती हैं। स्तनियों तथा कुछ पक्षियों के मेटेन्सेफ़ेलॉन का अधर हिस्सा अनुप्रस्थ तंत्रिका तंतुओं की एक सुव्यक्त संहति का बना होता है जिसे पॉन्स (pons) कहते हैं। प्रमस्तिष्क कॉर्टेक्स से आने वाले प्रेरक तंतु, पॉन्स में से होकर ही अनुमस्तिष्क में पहुंचते हैं।

मध्यमस्तिष्क (चित्र 10.6 A तथा B) अथवा मीसेनसेफ़ेलॉन परिवर्धन में बहुत पहले ही पश्चमस्तिकष्क से, तनुयोजी (isthmus) नामक एक सुव्यक्त संकीर्णन द्वारा स्पष्ट अलग सीमित हो गया होता है। मीसेनसेफ़ेलॉन का फ़र्श और दीवारें मोटी और तंतु पथों की बनी होती हैं जिन्हें प्रमस्तिष्क वृंतक (cerebral peduncles) कहते हैं, जो अग्रमस्तिष्क तथा पश्चमस्तिष्क के बीच संयोजन बनाते हैं। छत धूसर द्रव्य की एक मोटी परत की बनी होती है जिसे दृक् छद (optic tectum) कहते हैं। मध्यमस्तिष्क की केंद्रीय नाल अपेक्षाकृत छोटे व्यास की होती है जो पश्चमस्तिष्क तथा मध्यमस्तिष्क के बीच प्रमस्तिष्क एक्वाडक्ट (cerebral aqueduct) नामक नाल बन गयी होती है। निम्नतर कशेरुकियों में छत में से दो दृक् पालियां (optic lobes) निकलती हैं। निम्नतर कशेरुकियों में दृक पालियां दृष्टि संवेद के केंद्रों का कार्य करती हैं। मगर उच्चतर प्राणियों में दृक् पालियां लगभग ठोस होती हैं तथा छत को टेक्टम (tectum) कहते हैं।

अधिकतर मछलियों तथा ऐम्फ़िबियनों में मस्तिष्क का सर्वाधिक सुव्यक्त भाग मध्यमस्तिष्क होता है क्योंकि आंखों से आने वाली तमाम दृष्टि सूचनाएं सीधी यहीं पर प्राप्त की जाती हैं। सांपों और स्तनियों में टेक्टम का अग्र भाग विशेषित होकर ऊर्ध्व कॉलिक्लस (superior colliculus) बन जाता है जिसका काम दृष्टि आगमों का समाकलन करता है, और पश्च भाग को अधो कॉलिकुलस (inferior colliculus) कहते हैं। जिसका काम श्रवण आगमों का समाकलन करना है। इस प्रकार सभी कशेरुकियों में दृष्टि सूचना टेक्टम के मार्ग से ही अग्रमस्तिष्क में पहुंचती है। मगर स्तनियों में प्रमस्तिष्क गोलार्धों के बन जाने के कारण ऊर्ध्व कॉलिकुलस का दृष्टि केंद्रों के रूप में महत्व कम हो जाता है।

अग्रमस्तिष्क में दो भाग डाइएन्सेफ़ेलॉन तथा टेलेन्सेफ़ेलॉन होते हैं। डाइएन्सेफ़ेलॉन अग्रमस्तिष्क का आरम्भिक भाग होता है और वह अनेक दैहिक कार्यो का नियमन करता है। इसके भीतर फैली हुई तंत्रिका नाल होती है जिसे तीसरा निलय कहते हैं। (चित्र 10.6 A तथा B), जिसमें एक पतली पृष्ठ छत एपिथैलेमस (epithalamus) होती है, दीवारे थैलेमस (thalamus) बनती हैं और फ़र्श बनाता है हाइपोथैलेमस (hypothalamus)। ये सभी भाग तंत्रिकाणुओं में प्रचुरोद्भवन होने से मोटे होते हैं। निम्नतर कशेरुकियों में एपिथैलेमस एक पैराइटल काय (parietal body) अथवा पैरापिनियल काय (parapineal body) तथा पिनियल ग्रंथि से बना होता है। अधिसंख्य उच्चतर कशेरुकियों में पैराइटल काय अनुपस्थित होता है, परंतु केवल पिनियल काय अथवा ग्रंथि ही सब में होती है। पिनियल काय निम्नतर कशेरुकियों में त्वचा के वर्णकन को प्रभावित करता है और कदाचित् प्रकाशकाल को भी प्रभावित करता है। उच्चतर कशेरुकियों में जैविकीय तालबद्धता के नियंत्रण में यह महत्वपूर्ण होता है। थैलेमस में बहुत संख्या में कोशिका समूह बने होते हैं जो शरीर के सभी भागों से आने वाले संवेदी आवेगों का समन्वय करने में महत्वपूर्ण होते हैं, बस घ्राण आवेगों को छोड़कर जो सीधे प्रमस्तिष्क कॉर्टेक्स में जाते हैं। थैलेमस वास्तव में प्रमस्तिष्क कॉर्टेक्स को जाने वाली तमाम संवेदी सूचना का रिले केंद्र होता है।

डायन्सेफ़ेलॉन की छत का अग्र भाग अग्र रक्तक जालक (anterior choroid plexus) बनाता है।

हाइपोथैलेमस डाइएन्सेफ़ेलॉन का अधरतम भाग होता है। इसमें पश्च पिट्यूटरी (posterior pituitary) अथवा न्यूरोहाइपोफ़ाइसिस (neurohypophysis) शामिल हैं। हाइपोथैलेमस-केंद्रक शरीर के भीतरी समस्थापन (homeostasis) में कार्य करते हैं। इनके द्वारा भूख, यौन क्रिया, देह तापमान, जल-संतुलन, जागरूकता तथा भावनात्मक व्यवहार के कुछ पहलू नियमित होते है। हाइपोथैलेमस पिट्यूटरी ग्रंथि को उत्तेजित करता है ताकि वह अनेक समस्थापन कार्यों का नियमन कर सके।

तंत्रिका कार्यिकी में न्यूक्लियस अर्थात् केंद्रक उन तंत्रिका कोशिका कायों के छोटे से गुच्छे या समूह को कहते हैं जो केंद्रीय तंत्रिका तंत्र में बने होते हैं।

टेलेन्सेफ़ेलॉन अथवा **उन्मस्तिष्क** अग्रमस्तिष्क का आगे का अंतिम भाग होता है। विभिन्न कशेरुकियों में इसके विकास में सर्वाधिक अंतर पाया जाता है। आदिम कशेरुकियों में अग्रमस्तिष्क का संबंध मुख्यत: नासीय घ्राण संवेदको से आने वाले संवेदी आगमों का समाकलन करना है। इनके व्यवहार के जटिल पहलुओं में ये संवेद महत्वपूर्ण होते हैं।

टेलेन्सेफ़लॉन के दोनों पार्श्वों से **प्रमस्तिष्क गोलार्ध** निकलते हैं जिनके साथ **युग्मित घ्राण बल्ब** (olfactory bulbs) संबंधित होते हैं तंत्रिका नाल आगे की ओर बढ़ती हुयी दोनों प्रमस्तिष्क गोलार्धों के निलयों में पहुँच जाती है। (एम्फिऑक्सस में तंत्रिका नाल विशाखित नहीं होती क्योंकि इस प्राणी में न तो प्रमस्तिष्क गोलार्ध होते हैं और ही कोई घ्राण बल्ब)। जैसे-जैसे कशेरुकियों का विकास मान ऊपर-ऊपर बढ़ता जाता है वैसे-वैसे प्रमस्तिष्क गोलार्धों का आकार भी बढ़ता जाता है और उच्चतम प्राणियों में ये गोलार्ध शेष मस्तिष्क का अधिकतम भाग ढक लेते हैं।

चेतनता का केंद्र प्रमस्तिष्क गोलार्धों में होता है। उन सब क्रियाकलापों का नियंत्रण करने वाले केंद्र, जो मानव के अति विकसित मानस प्रधान जीवन की विशिष्टताएं हैं जैसे कि बोध, चिंतन और संवेदन, वे सब इसी क्षेत्र में स्थित होते हैं।

प्रत्येक गोलार्ध के अग्र सिरे पर एक बहिर्वृद्धि होती है जिसे घ्राण पालि (olfactory lobe) कहते हैं। (चित्र 10.6 A तथा B)। घ्राण पालि नासा उपकरण के सम्पर्क में हो सकती है। निम्नतम जीवित कशेरुकियों में गोलार्ध दो भागों अग्र और पश्च घ्राण पालियों में विभाजित हुए होते हैं जिनका संबंध मुख्यत: उन घ्राण आवेगों को प्राप्त करना होता है जो डायन्सेफ़ैलॉन में रिले कर दिए जाते हैं। सभी कशेरुकियों में प्रत्येक गोलार्ध का फ़र्श एक मोटे हो गए रेखित पिंड **कॉर्पस स्ट्रिएटम** (corpus striatum) में विभेदित हो गया होता है। इस कॉर्पस स्ट्रिएटम के धूसर क्षेत्रों को अक्सर आधारी केंद्रक (basal nuclei) कहा जाता है। शेष गोलार्ध एक पैलियम या प्रावार (pallium) होता है जो पार्श्व निलयों के ऊपर छत बनाता है। यही पैलियम है जो कशेरुकियों के उच्चतर वर्गों के विकास में इतना अधिक विकसित एवं रूपांतरित हो गया है। मछलियों में पैलियम पतली दीवार वाला होता है और धूसर द्रव्य केवल इसकी उन भीतरी दीवारों में ही उपस्थित होता है जो निलय के सहवर्ती होती हैं और टेलेन्सेफ़ेलॉन मुख्यत: एक घ्राण केंद्र के रूप में ही कार्य करता है। जैसे-जैसे कशेरुकी विकास क्रम बढ़ता जाता है वैसे-वैसे अधिकाधिक प्रवृत्ति होती जाती है कि तंत्रिका कोशिकाएं भीतरी धूसर परत में से निकल-निकल कर परिधीय क्षेत्र में चली आए। इस दिशा में सबसे पहला वास्तविक परिवर्तन रेप्टाइलों में देखा जाता है। प्रमस्तिष्क गोलार्ध साइज़ में बड़े होते जाते और पीछे को फैलकर डायनसेफ़ैलॉन को आंशिक रूप में ढक लेते हैं और बढ़ गया धूसर द्रव्य परिधि में पहुंच जाता है। रेप्टाइलों में एक नया क्षेत्र नवप्रावार अर्थात् **नीओपैलियम** (neopallium) प्रकट हो गया है और यही भाग स्तनियों में बड़े आकार के प्रमस्तिष्क गोलार्ध बनाता है। मगरमच्छरों में पहली बार तंत्रिका कोशिकाएं अपने स्थान से चलकर नीओपैलियम में बाहरी सतह में पहुंच कर वास्तविक प्रमस्तिष्क कॉर्टेक्स बनाती हैं।

स्तनियों में नीओपैलियम बहुत बड़ा हो गया है और धूसर कोशिका कायों से धूसर द्रव्य की एक परत बन जाती है जो मानवों तक में कुछ ही सेंटीमीटर मोटी होती है। स्तनियों से नीचे के सभी कशेरुकियों में प्रमस्तिष्क गोलार्ध बड़े होने के बावजूद चिकने होते हैं। अनेक स्तनियों में सतह संवलित अर्थात् वलनित होती है। उठे हुए हिस्सो को जाइराई (gyri) तथा दबे हुए हिस्सो को सल्कसें (sulci) कहते हैं। इन संवलनों से सतह क्षेत्र बढ़ जाता और धूसर द्रव्य की कुल मात्रा बढ़ जाती है। बड़े आकार के स्तनियों में संवलन अधिक पाए जाते है जिनका होना बुद्धि या मेघा से जुड़ा हो ऐसा ज़रूरी नहीं है।

व्यत्यसन (Decussation)

केंद्रीय तंत्रिका तंत्र के बायें तथा दाहिने पार्श्वों के समान क्षेत्रों को परस्पर संयोजित करने का काम संधायी (commissures) द्वारा होता है, और इन्हीं से संभव हो पाता है द्विपार्श्व समाकलन। साथ ही मस्तिष्क में तंतु पथ भी होते हैं जो अपने मार्ग में विपरीत दिशा में जाकर दूसरी ओर पहुंच जाते हैं अर्थात् दूसरी दिशा में क्रासित हो जाते हैं। मस्तिष्क के एक पार्श्व में क्षति पहुंचने पर अधिकतर विपरीत दिशा की पेशियों का पक्षाघात हो जाता है।

बोध प्रश्न 3

क) निम्न को सही-सही मिलाइए:

मेटेन्सेफेलॉन	मेडुला ऑब्लांगेटा
मीज़ेन्सेफेलॉन	अनुमस्तिष्क
डाइएन्फेलॉन	दृक् छद
टेलेन्सेफेलॉन	एपिथैलेमस, हाइपोथैलेमस, थैलेमस
माइएलेन्सेफेलॉन	उन्मस्तिष्क

ख) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:-

i) मछलियों में .... मस्तिष्क तथा मेरू रज्जु को ढके रहता है

ii) रेप्टाइलों तथा पक्षियों में .... तथा .... की बनी दोहरी झिल्ली मस्तिष्क की सुरक्षा करती है।

iii) स्तनियों में तानिकाओं की परतों को .... तथा .... कहते हैं।

10.4 परिधीय तंत्रिका तंत्र

वे सभी तंत्रिकाएं और गैंग्लिया अर्थात् गुच्छिकाएँ जो केंद्रीय तंत्रिका तंत्र के साथ संयोजन बनाते हैं और जो शरीर के सभी भागों में वितरित होते हैं परिधीय तंत्रिका तंत्र (peripheral nervous system) के अंतर्गत आते हैं। परिधीय तंत्रिका तंत्र के स्वायत्त अंश में वे तंत्रिका तंतु आते हैं जो अनैच्छिक नियंत्रण के अंतर्गत आने वाले अंगों में वितरित रहते हैं। केंद्रीय तंत्रिका तंत्र के साथ इस तंत्र का संबंध मेरू तंत्रिकाओं एवं कपाल तंत्रिकाओं के द्वारा बना होता है।

10.4.1 मेरू तंत्रिकाएं

प्रत्येक मेरू तंत्रिका दो मूलों (roots), पृष्ठ एवं अधर, के द्वारा मेरू रज्जु से जुड़ी होती है। पृष्ठ मूल तंत्रिक शिखर से निकलती है। भ्रूण में मेरू रज्जु के प्रत्येक पार्श्व पर तंत्रिक शिखर कोशिकाओं की एक पट्टी होती है जो अनुदैर्ध्य दिशा में फैली होती है। प्रत्येक पट्टी में खण्डश: अंतरालों पर उत्फूलन बन जाते हैं और उत्फूलनों के बीच-बीच के भाग धीरे-धीरे गायब हो जाते है। इन उत्फूलनों में प्रत्येक न्यूरोब्लास्ट (तंत्रिकोरक) से दो प्रवर्ध निकलते

1) एक एक्सॉन जो मेरू रज्जु की ओर वृद्धि करता तथा पृष्ठ स्तम्भों के क्षेत्रों में प्रवेश करता है तथा 2) एक डेण्ड्राइट जो वृद्धि करता हुआ परिधीय दिशा में त्वचा, ऐच्छिक पेशियों, कंकाल अथवा कुछ अंतरंग संरचनाओं में पहुंचता है। ये उत्फूलन पृष्ठ मूल गैंग्लिया बनाते हैं (चित्र 10.7)। अधर मूल मेरू रज्जु के अधर स्तम्भ के धूसर द्रव्य में स्थित तंत्रिकाणुओं से निकलती हैं।

संवेदी तंत्रिका आवेग मेरू रज्जु की ओर को पृष्ठ मूलों के मार्ग से होते हुए चलते हैं और ऐसे तंतुओं को अभिवाही तंतु (afferent fibres) कहते हैं। संवेदी तंतुओं को या तो दैहिक (somatic) या अंतरंग (visceral) तंतु कहते हैं। दैहिक संवेदी तंतु वे होते हैं जो त्वचा एवं उसके उत्पादों, ऐच्छिक पेशियों तथा कंकाल संरचनाओं से आ रहे होते हैं। ये तंतु धूसर द्रव्य के दैहिक संवेदी स्तम्भ में स्थित कोशिकाओं के साथ सिनेप्स बनाते हैं। अंतरंग संरचनाओं से आने वाले अंतरंग संवेदी तंतु मेरू रज्जु के धूसर द्रव्य के अंतरंग संवेदी स्तम्भ में पहुंचकर समाप्त होते हैं (देखिए चित्र 10.3 b)।

अधर मूल को बनाने वाले तंत्रिकाणुओं के कोशिका काय मेरूरज्जु के अधर स्तम्भों के धूसर द्रव्य में पड़े होते हैं। प्रेरक तंतुओं में आवेग मेरू रज्जु से दूर ले जाए जाते हैं और इसलिए इन्हें अपवाही तंतु (efferent fibres) कहते हैं। दैहिक प्रेरक तंतु मेरू रज्जु में धूसर द्रव्य के दैहिक प्रेरक स्तम्भ में से निकलते हैं और दैहिक संरचनाओं में वितरित हो जाते हैं। अंतरंग प्रेरक तंतु निकलकर स्वायत्त गैंग्लिया (autonomic ganglia) में पहुंच जाते हैं जहां वे प्रेरक स्वायत्त तंत्रिकाणुओं के साथ सिनेप्स बनाते हैं (चित्र 10.7 b)

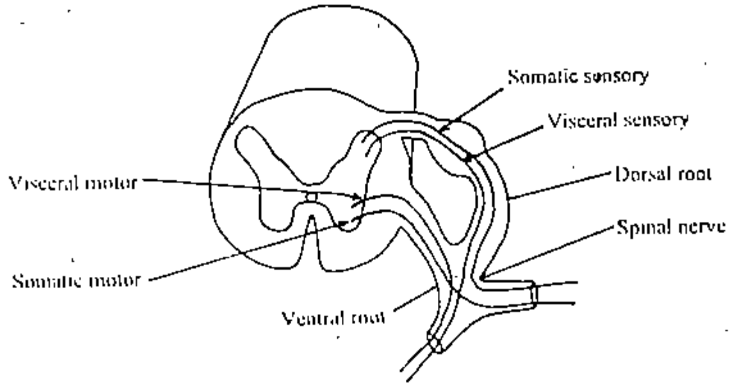

(a)

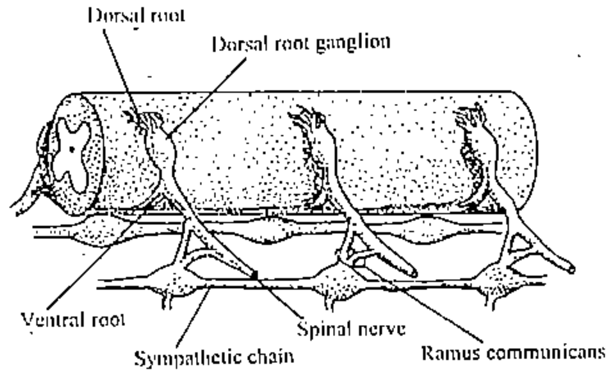

(b)

चित्र 10.7 : मेरू रज्जु तथा मेरू तंत्रिका का शारीर a) मेरू तंत्रिका में संवेदी तथा प्रेरक मार्ग b) पृष्ठ तथा अधर मूल, मेरू तंत्रिका को मेरू रज्जु से जोड़ देते हैं। मेरू तंत्रिका एक संचारी शाखा के माध्यम से स्वायत्त श्रृंखलायी गैंग्लियान से जुड़ जाती हैं।

पृष्ठमूल ऐम्नियोटों में सर्वथा संवेदी होती हैं। ऐम्फिऑक्सस तथा लैम्प्रे में पृष्ठ मूल संवेदी और प्रेरक दोनों प्रकार के तंतुओं के बने होते हैं। मछलियों तथा ऐम्फिबियनों में अंतरंग अपवाही तंतु पृष्ठ तथा अधर दोनों मूलों में से होकर गुज़रते हैं।

उस क्षेत्र से जहां पृष्ठ और अधर मूल परस्पर मिलकर मेरू तंत्रिका बनाते हैं, सामान्यत: तीन शाखाएं निकलती हैं। ये शाखाएं हैं- 1) पृष्ठ शाखा जो त्वचा तथा देह के पृष्ठ भाग की पेशियों में आपूर्ति करती है, 2) अधर शाखा जो अधर तथा पार्श्व क्षेत्रों में वितरित होती है, तथा 3) अंतरंग शाखा जो परिधीय स्वायत्त तंत्रिका तंत्र के किसी एक शृंखला-गैंग्लियॉन से जुड़ जाती है। (चित्र 10.7 b)। पृष्ठ तथा अधर दोनों शाखाओं में दैहिक संवेदी और दैहिक प्रेरक तंतु होते हैं।

प्ररूपी अंतरंग शाखा में एक श्वेत शाखा तथा एक धूसर शाखा होती है। श्वेत शाखा में मज्जायुक्त अंतरंग संवेदी और मज्जायुक्त गैंग्लियानपूर्वी प्रेरक तंतु होते हैं। धूसर अंतरंग शाखा में केवल मज्जाविहीन गैंग्लियानपश्चीय स्वायत्त, प्रेरक तंतु होते हैं। धूसर शाखा के तंतु मेरू तंत्रिका में जुड़ जाते हैं और बाहर को निकलते समय वे या तो पृष्ठ शाखा के मार्ग से या अधर शाखा के मार्ग से निकलते हैं और उन संरचनाओं में आपूर्ति करते हैं जो अनैच्छिक नियंत्रण में होते हैं जैसे कि त्वचा की रक्त वाहिकाएं, पेशियां तथा ग्रंथियां।

10.4.2 कपाल तंत्रिकाएं

उन परिधीय तंत्रिकाओं को जो मस्तिष्क से जुड़ी होती हैं कपाल तंत्रिकाएं कहते हैं। ये कपाल तंत्रिकाएं एनम्निओटों (अनुल्बी वर्ग) में 10 जोड़ी तथा एम्नियोटों (उल्बी वर्ग) में 12 जोड़ी होती हैं। पहली चार जोड़ी तंत्रिकाओं को छोड़कर शेष सभी कपाल तंत्रिकाएं मेडुला ऑब्लांगेटा से जुड़ी होती हैं। कुछ तंत्रिकाएं पूर्णत: संवेदी होती हैं जो केवल अभिवाही तंतुओं की बनी होती हैं, कुछ अन्य पूर्णत: प्रेरक होती हैं। इनके अलावा कुछ मिश्रित तंत्रिकाएं होती हैं जिनमें संवेदी तथा प्रेरक दोनों प्रकार के तंतु होते हैं। विभिन्न कपाल तंत्रिकाओं की प्रकृति एवं उनका वितरण नीचे तालिका 10.1 में दिया गया है।

आरम्भिक मानव शारीरज्ञों ने इन्हें आगे से पीछे के क्रम में संख्याएं दे दी थीं। यह विधि अब कृत्रिम और अस्वभाविक साबित हुई है लेकिन सुविधा और सुपरिचय के कारण अभी भी चली आ रही है। बाद में 1894 में एक नयी कपाल तंत्रिका की खोज हुई जिसकी संख्या 0 (शून्य) दे दी गयी ताकि 1-10 अथवा 1-12 की शब्दावली बनी रहे।

संख्या	कपाल तंत्रिका का नाम	कपाल तंत्रिका की प्रकृति	कपाल तंत्रिका का विविध अंगों में वितरण
O	टर्मिनल (Terminal)	दैहिक संवेदी	घ्राण श्लेष्म झिल्ली से जैकबसन अंग में (इलास्मोब्रैंक मछलियों में सर्वाधिक विकसित)
I	घ्राण (Olfactory)	विशिष्ट दैहिक संवेदी	घ्राण एपिथीलियम, घ्राण पालियां, जैकबसन अंग से
II	दृक् (Optic)	विशिष्ट दैहिक संवेदी	रेटिना से मस्तिष्क दृक् छद में दृक् बल्ब में पहुंचती है (वास्तव में तंत्रिका न होकर मस्तिष्क का एक तंतु पथ होती है,)
III	अक्षिप्रेरक (Oculoumotor)	दैहिक प्रेरक	छह नेत्र पेशियों में से चार में।
IV	चक्रक (Trochlear)	दैहिक प्रेरक	ऊर्ध्व तिर्यक अर्थात्, सुपीरिअर औबलीक नेत्र पेशी को
V	त्रिशाखी (Trigeminal)	मिश्रित	त्वचा, पृष्ठीय शीर्ष और थूथन, कंजंक्टाइवा, कॉर्निया, आइरिस,

			सिलियरी पिंड, अश्रु ग्रंथि, नाक और माथे की त्वचा, एवं पलक से
	जंभिक (Maxillary)	दैहिक संवेदी	ऊपरी जबड़े, ऊपरी होठ, निचली पलक तथा ऊपरी जबड़े के दातों से
	मैडिबुलर/चिबुकीय (Mandibular)	मिश्रित	निचले होठ, निचले जबड़े के दांतों, टेम्पोरल क्षेत्र की त्वचा, बाह्य कान, चेहरे के निचले भाग से, चबाने में काम आने वाली पेशियों को
VI	अपवर्त्तनी (Abducent)	दैहिक प्रेरक	नेत्र पेशी, निमेषक झिल्ली को
VII	आनन (Facial)	मिश्रित	चेहरे की पेशियों शीर्ष की ऊपरी खाल, बाहरी कान, अश्रु ग्रंथि तथा नाक की श्लेष्म झिल्ली को
VIII	श्रवण (Auditory)	विशिष्ट दैहिक संवेदी	भीतरी कान से
IX	जिह्वाग्रसनी (Glossopharyngeal)	मिश्रित	जीभ के पश्च भाग तथा स्वाद कलिकाओं में
X	वेगस (Vagus)	मिश्रित	निचले जबड़े और गले, लैरिंक्स तथा लार ग्रंथियों में
XI	मेरू सहायक (Spinal accessory)	अंतरंग प्रेरक	ग्रसनी और लैरिंक्स में जाती है (इसे वेगस की पश्च शाखा माना जाता है)
XII	अधोजिह्व (Hypoglossal)	दैहिक प्रेरक	जीभ की पेशियों और निचले जबड़े में जीभ के नीचे की पेशियों में जाती है।

10.4.3 स्वायत्त तंत्रिकाएं

परिधीय तंत्रिका तंत्र का स्वायत्त अंश संवेदी और प्रेरक दोनों प्रकार के तंतुओं का बना होता है। स्वायत्त संवेदी तंतु प्राणी के भीतरी पर्यावरण की जांच-परख करते रहते हैं अर्थात् रक्त दाब, ऑक्सीजन एवं कार्बन डाइऑक्साइड तनाव, त्वचा तथा आंतरिक तापमान तथा अंतरंग के भीतर की क्रियाएं, जबकि स्वायत्त प्रेरक तंतुओं का काम शरीर के विभिन्न भागों में अरेखित पेशियों तथा ग्रंथियों में आवेगों को पहुंचाना होता है। स्वायत्त तंत्रिका तंत्र उन संरचनाओं के कार्यों का नियमन करता है जो अनैच्छिक नियंत्रण के अंतर्गत आते हैं। तंत्रिका तंत्र के इस भाग का सही-सही कार्य करना अत्यंत जीवनावश्यक प्रक्रियाओं जैसे कि हृदय-स्पंदन की दर, श्वसन गतियां, देह तरलों की संघटना, तापमान की स्थिरता, विविध ग्रंथियों से स्रवण, क्रमांकुंचन, आदि, के नियमन के लिए आवश्यक है तथा यह भाग हाइपोथैलेमस-केंद्रों के नियंत्रण के अधीन रहता है।

भले ही स्वायत्त तंत्र ऐच्छिक नियंत्रण के अधीन न हो, फिर भी चेतनता के केंद्र स्वायत्त तंत्रिका तंत्र द्वारा नियंत्रित होने वाली अंतरंग क्रियाओं को प्रभावित कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, ध्यान के अभ्यास के द्वारा अथवा जानबूझ कर किए गए प्रयास के द्वारा हृदय स्पंदन को अथवा पसीने के निकलने को प्रभावित किया जा सकता है। प्राचीन योगियों ने इस कला में पूर्ण प्रवीणता प्राप्त कर ली थी।

यह तंत्र गैंग्लियानपूर्वी तथा गैंग्लियॉनपश्चीय तंतुओं एवं अनेक गैंग्लिया का बना होता है जो रिले केंद्रों का कार्य करते हैं (चित्र 10.7)।

गैंग्लियॉनपूर्वी तंत्रिकोशिकाओं के कोशिका काय केंद्रीय तंत्रिका तंत्र में धूसर द्रव्य के अंतरंग प्रेरक स्तम्भ में स्थित होते हैं। इनके मज्जायुक्त तंतु बाहर आकार बाहर बने गैंग्लिया में पहुंचते हैं। गैंग्लियॉनपश्चीय तंत्रिकाणुओं में धूसर अमायेलिनित ऐक्सॉन होते हैं। इन तंत्रिकाणुओं के कोशिका काय बाहर स्थित गैंग्लिया में होते हैं जो प्राय: केंद्रीय तंत्रिका तंत्र से, कुछ दूरी पर स्थित होते हैं। यही वे स्थान हैं जहां गैंग्लियानपूर्वी तंतु गैंग्लियॉनपश्चीय तंत्रिकाणुओं के डेन्ड्राइटों के साथ सिनैप्स बनाते हैं।

परिधीय तंत्रिका तंत्र का स्वायत्त अंश दो मुख्य भागों में विभाजित होता है अनुकम्पी (sympathetic) तथा परानुकम्पी (parasympathetic) तंत्र। इन दोनो तंत्रों के अनिवार्य भागों को चित्र 10.8 में संक्षेप में दर्शाया गया है।

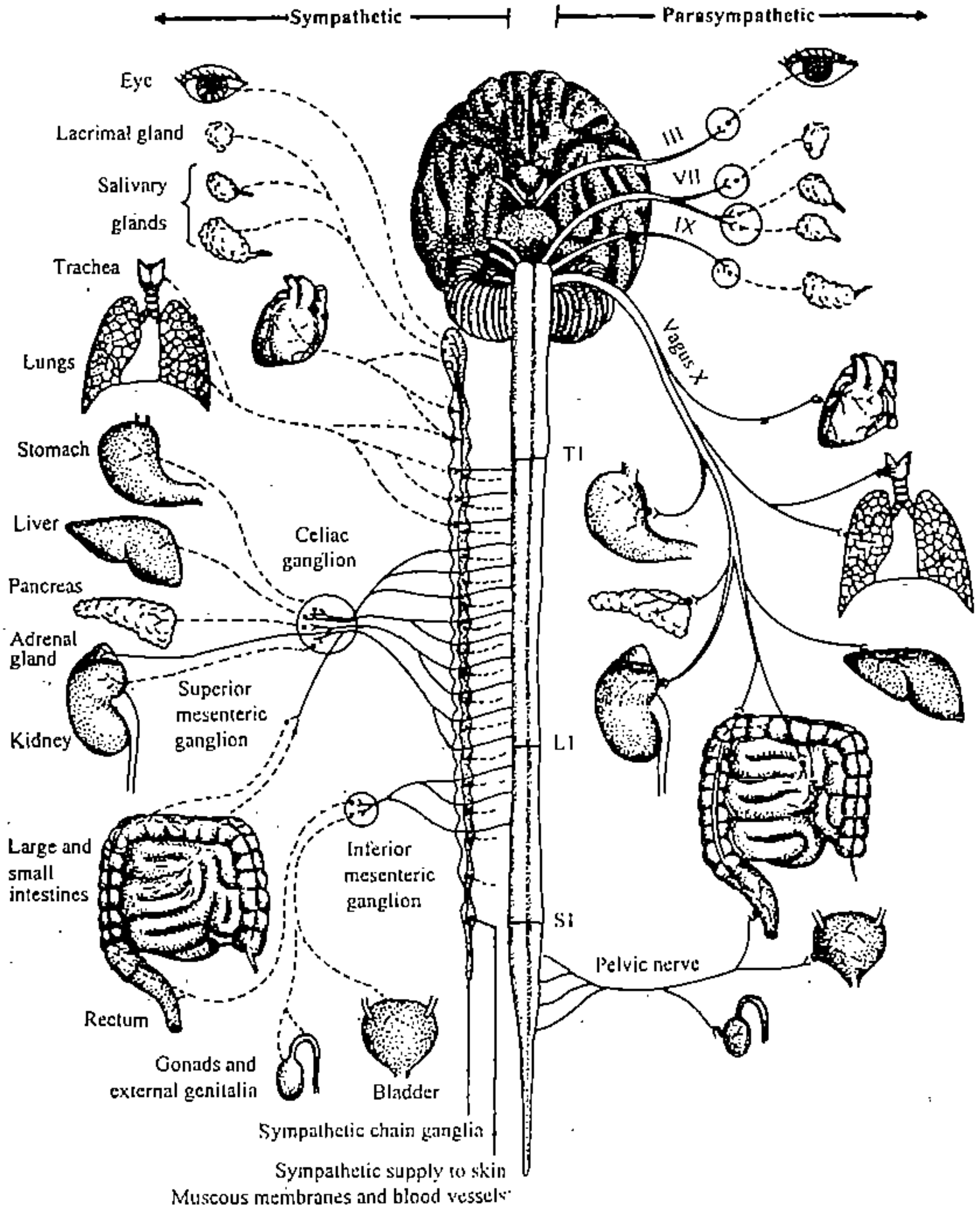

चित्र 10.8 : मानवों में स्वायत्त तंत्रिका तंत्र। बायें: अनुकम्पी विभाजन बिंदु रेखाओं द्वारा दर्शाया गया है। दाहिना: परानुकम्पी विभाजन ठोस रेखाओं द्वारा दिखाया गया है।

ये दोनों तंत्र परस्पर विरोधी रूप में कार्य करते हैं। अनुकम्पी तंत्र का कार्य प्रतिकूल परिस्थितियों में शारीरिक प्रतिक्रियाओं को सशक्त करना है, और इसमें ऊर्जा के व्यय की आवश्यकता होती है। परानुकम्पी तंत्र का कार्य पुन: पूर्व स्थिति लाने से संबंधित रहता है

और ऊर्जा का संरक्षण करना होता है। स्तनियों में लगभग प्रत्येक अंतरंगी अंग में अनुकम्पी तथा परानुकम्पी तंत्रिकायन होता है, बस अपवाद हैं ऐड्रिनल ग्रंथि, परिधीय रक्त वाहिकाएं और स्वेद ग्रंथियां जिनमें मात्र अनुकम्पी तंत्रिकायन ही पाया जाता है। अनुकम्पी उत्तेजन के बंद होते ही ये अंग पुन: अपनी विश्राम अवस्था में लौट आते हैं।

सिर्फ गर्भाशय तथा स्वेद ग्रंथियों में जाने वाले एक्सॉनों को छोड़कर बाकी सभी अनुकम्पी तंत्र के गैंग्लियॉनपश्चीय ऐक्सॉनो से नॉरएपिनेफ्रीन (norepinephrine) अथवा एपिनेफ्रीन (epinephrine) (जिन्हें नॉरऐड्रीनेलिन अथवा ऐड्रीनेलिन भी कहते हैं) का स्रवण होता है। परानुकम्पी तंत्र के गैंग्लियान पश्चीय ऐक्सॉनों से तंत्रिप्रेषी ऐसीटिलकोलिन निकलता है। ऐसीटिलकोलिन स्वायत्त तंत्र के इन दोनों विभाजकों में गैंग्लियॉनपूर्वी तथा गैंग्लियॉन-पश्चीय तंतुओं के बीच भी निर्मोचित होता है (चित्र 10.9)।

अनुकम्पी तथा परानुकम्पी कार्यात्मक घटक स्तनियों में स्पष्ट होते हैं, मगर अन्य कशेरुकियों में इनका तुलनात्मक शारीर ठीक से नहीं जाना गया है।

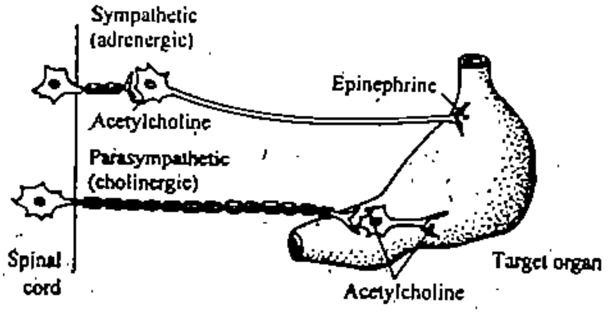

चित्र 10.9 : स्वायत्त तंत्रिका तंत्र के तंत्रिप्रेषी। एपिनेफ्रीन तथा ऐसीटिलकोलिन क्रमश: अनुकम्पी तथा परानुकम्पी परिपथों के पश्च गैंग्लियानी तंत्रिका अंत्य सिरों से निकलते हैं। यही इनके परस्पर विरोधी कार्य करने का आधार है।

अनुकम्पी तंत्रिका तंत्र

अंतरंग प्रेरक तंत्रिकाणु जो अनुकम्पी क्रिया में भाग लेते हैं, वे मेरू रज्जु के वक्ष एवं कटि प्रदेशों से निकलते हैं इसे "वक्षकटि बहिप्रवाह" (thoracolumbar outflow) भी कहते हैं।

कशेरुक दण्ड के प्रत्येक पार्श्व पर बृहत रंध्र से लेकर अनुत्रिक (कॉक्सिक्स) तक एक लम्बा अनुकम्पी कांड (trunk) होता है। प्रत्येक अनुकम्पी कांड से लगभग नियमित दूरियों पर उत्फूलन बने होते हैं जिन्हें शृंखला गैंग्लियां कहते हैं (चित्र 10.8)। शृंखला गैंग्लियां को उन कशेरुकों की संख्या के अनुसार संख्या दी जाती है जिनके सम्मुख वे बने होते हैं, लेकिन इनका परस्पर समेकन भी हो सकता है जिससे इनका खण्डश: लक्षण अस्पष्ट हो जाता है। सभी वक्ष मेरू तंत्रिकाओं एवं I, II और III कटि तंत्रिकाओं की श्वेत अंतरंग शाखाएं उस गैंग्लियान में आकर समाप्त हो जाती हैं जहां वे अनुकम्पी काण्ड में प्रवेश कर उसमें ऊपर या नीचे को तंतु भेजती जाती हों। अनुकम्पी गैंग्लियानपूर्वी तंत्रिकाणु में छोटे ऐक्सॉन होते हैं जो कशेरुक दण्ड के थोड़ी सी दूरी पर शृंखला गैंग्लियान में अथवा एक अन्य गैंग्लियॉन अन्य में सिनैप्स बनाते हैं। गैंग्लियानपश्चीय तंतु ज्यादातर लम्बे होते है। कुछ गैंग्लियान पूर्वी तंतु उदरगुहा जालक (coeliac plexus) के गैंग्लिया में से बिना सिनैप्स बनाए हुए आगे निकल जाते है; उदरगुहा जालक उदरक्षेत्र में कटि कशेरुकों के सामने की ओर स्थित होता है। उदरगुहा जालक के कशेरुकपूर्वी गैंग्लिया में आते हैं उदरगुहा ऊर्ध्व आंत्रयोजनी एवं अध: आंत्रयोजनी गैंग्लिया।

गैंग्लियानपूर्वी तंतु सीधे ही एड्रिनल ग्रंथि के मेडुला में पहुंच जाते हैं। तंत्रिका शिखर

कोशिकाओं से व्युत्पन्न यह एक्टोडर्मी ग्रंथिल संरचना विशेषित अथवा रूपांतरित अनुकम्पी गैंग्लियानी कोशिकाओं की बनी होती है, यानि ऐसी कोशिकाओं की जो गैंग्लियानपश्चीय अनुकम्पी तंत्रिकाणुओं के समजात होती हैं तथा जिनसे एड्रिनलीन एवं साथ में नॉरएड्रिनलीन का भी स्रवण होता है।

क्योंकि ऐड्रिनलीन तथा नॉरऐड्रिनलीन पश्चगैंग्लियानी तंत्रिकांतों के रासायनिक संकेतों की तरह कार्य करते हैं इसलिए हो सकता था कि ऐड्रिनल में जिनसें ये पदार्थ हार्मोनों की तरह स्रावित होते हैं, एक भ्रांति की स्थिति पैदा हो जाए। अतः पश्चगैंग्लियानी तंतु होते ही नही हैं। क्योंकि गैंग्लियानपूर्वी तंत्रिकांतों से ऐसीटिलकोलिन का स्राव निकलता है, इसलिए ऐड्रिनल के सीधे तंत्रिकायन से किसी भी संदिग्धता की संभावना दूर हो जाती है।

अनुकम्पी तंत्र के कार्य

1. त्वचा की रक्त वाहिकाओं का संकीर्णन जिससे पाण्डुरता (पीलापन) आ जाता है।
2. रोम पेशियों का संकुचन जिससे रोंगटे खड़े होने की दशा आ जाती हैं, यानि बाल फुला लिए जाते हैं।
3. स्वेद ग्रंथियों से स्रवण
4. नेत्र प्यूपिल (तारे) का चौड़ा हो जाना
5. लार के स्राव की मात्रा में कमी आना
6. हृदय स्पंदन का तीव्र होना
7. श्वसनियों का फैलना
8. पाचन पथ की अरेखित पेशियों का शिथिलन अथवा संदमन
9. मूत्राशय की पेशियों का शिथिलन
10. मूत्राशय की संवरणी पेशियों का संकुंचन
11. रक्त धारा में रक्त शर्करा और लाल रक्त कोशिकाओं की वृद्धि
12. रक्त दाब का बढ़ना
13. रक्त के स्कंदन समय में कमी आना

ऊपर दी गयी सभी प्रतिक्रियाएं सामान्यतः पीड़ा, क्रोध, भय से जुड़ी होती हैं, तथा शरीर को इन परिस्थितियों से उपयुक्त रूप में प्रतिक्रिया कराने के लिए तैयार करा देतीं हैं।

परानुकम्पी तंत्रिका तंत्र

परानुकम्पी तंत्रिका तंत्र के गैंग्लियानपूर्वी तंतुओं के सम्मिश्र को अक्सर "कपालत्रिक बहिप्रवाह" (craniosacrol outflow) का नाम दिया जाता है और ऐसा इसलिए क्योंकि परानुकम्पी तंतु V, VI, IX तथा X कपाल तंत्रिकाओं एवं त्रिक (सेक्रमी) क्षेत्र की मेरू तंत्रिकाओं से निकलते हैं। त्रिशाखी, अक्षिप्रेरक आनन, जिह्वाग्रसनी तथा वेगस तंत्रिकाएं कम से कम आंशिक रूप में तो गैंग्लियॉनपूर्वी परानुकम्पी तंतुओं की बनी होती हैं (चित्र 10.8)। जिन गैंग्लिया में ये तंतु समाप्त होते हैं वे इस तंत्र द्वारा आपूर्ति किए जाने वाले अंगों के समीप अथवा उनके भीतर स्थित होते हैं। अतः गैंग्लियॉनपूर्वी तंतु अपेक्षाकृत लम्बे होते हैं तथा गैंग्लियॉनपश्चीय तंतु बहुत छोटे होते हैं।

परानुकम्पी तंत्र का त्रिक बहिःप्रवाह कहा जाने वाला अंश उन अपवाही तंतुओं का बना होता है जो II, III तथा IV त्रिक तंत्रिकाओं की श्वेत अंतरंग शाखाओं में से होकर गुज़रते

हैं, और ये एक साथ मिलकर श्रोणि तंत्रिका बनाते हैं। श्रोणि तंत्रिका आपूर्ति करती हैं बड़ी आंत्र के निचले भाग, वृक्क, मूत्राशय तथा जनन अंगों में। इन अंगों के भीतर गैंग्लियॉन-पश्चीय तंतु अपेक्षाकृत छोटे होते हैं।

परानुकम्पी तंत्र के कार्य

1. रक्त वाहिकाओं (हृदय की वाहिकाओं को छोड़कर) का विस्फारण
2. प्यूपिल (पुतली) का संकीर्णन
3. लार और जठर स्रवण को तीव्र करना
4. श्वसनियों का संकीर्णन
5. पाचन पथ की दीवारों का संकुंचन
6. मूत्राशय की पेशियों का संकुचन
7. मूत्राशय की संवरणी पेशियों का शिथिलन
8. बाह्य जनन अंगों की रक्त वाहिकाओं का विस्तारण

ये प्रतिक्रियाएं यदि एक साथ सामूहिक रूप में ली जाएं तो इनका संबंध सुख अथवा आराम की अनुभूति से और ऊर्जा के संरक्षण से होता है। स्वायत्त तंत्र की व्यवस्था की सामान्य योजना सभी चतुष्पादों में समान होती है, बस इतना अपवाद है कि निम्नतर कशेरुकियों में यह आदिम रूप में प्रतिदर्शित होती और विकास क्रम में ऊपर-ऊपर को बढ़ते हुए इसमें भी जटिलता बढ़ती जाती है।

बोध प्रश्न 4

क) (i) कौन-कौन सी कपाल तंत्रिकाएं पूर्णत: संवेदी प्रकार की होती हैं?

(ii) परिधीय तंत्रिका तंत्र का कौन सा भाग है जो अंतरंग क्रियाकलापों का नियंत्रण करता है?

ख) वह तंत्रिका जो भीतरी अंतरंग की दशा के विषय में सूचना को केंद्रीय तंत्रिका तंत्र में ले जाती है .... तंत्रिका कहलाती है।

ग) नीचे दिए गए क्रियाकलापों में से किनका नियंत्रण स्वायत्त तंत्रिका तंत्र के अनुकम्पी अथवा परानुकम्पी अंशों द्वारा होता है।

(i) पुतली का विस्तारण
(ii) हृदय स्पंदन का बढ़ना
(iii) मूत्राशय की पेशियों का संकुचन
(v) रक्त शर्करा का बढ़ना
(vi) रक्त के स्कंदन समय में कमी आना।

10.5 मस्तिष्क - तुलनात्मक संरचना

आप इससे पहले के उपभागों में पढ़ चुके हैं कि सभी कशेरुकियों में मुख्य मस्तिष्क विभाजन, दस अथवा अधिक कपाल तंत्रिकाएं, मेरू तंत्रिकाएं और मस्तिष्क को जाने वाले तथा मस्तिष्क से आने वाले मुख्य मेरू दिशा मार्ग पाए जाते हैं। जब हम कॉर्डेटों को ऐम्फिऑक्सस से लेकर स्तनियों तक देखते हैं तब पता चलता है कि मस्तिष्क की संरचना में प्रमुख शीर्ष संवेदी अंगों (आंख, कान, नाक, स्वाद, एवं पार्श्व रेखा तंत्र) के विकास के साथ-साथ विविध रूपांतरण होते गए हैं। मस्तिष्क वे प्रमुख कार्य करने लग गया जो आदि जीवरूपों में नहीं थे।

जब हम विभिन्न कशेरुकी वर्गों के मस्तिष्क की तुलना करते हैं (चित्र 10.10) तब हमें पता चलता है कि आस-पास के पर्यावरण से स्पर्श, स्वाद तथा संतुलन के संवेदों के प्रक्रमण के लिए पश्चमस्तिष्क विशेषित हो गया है तथा दूर के पर्यावरण से आंखों और नाक से आने वाले संवेदनों के प्रक्रमण के लिए मध्य और अग्रमस्तिष्क विशेषित हो गए हैं।

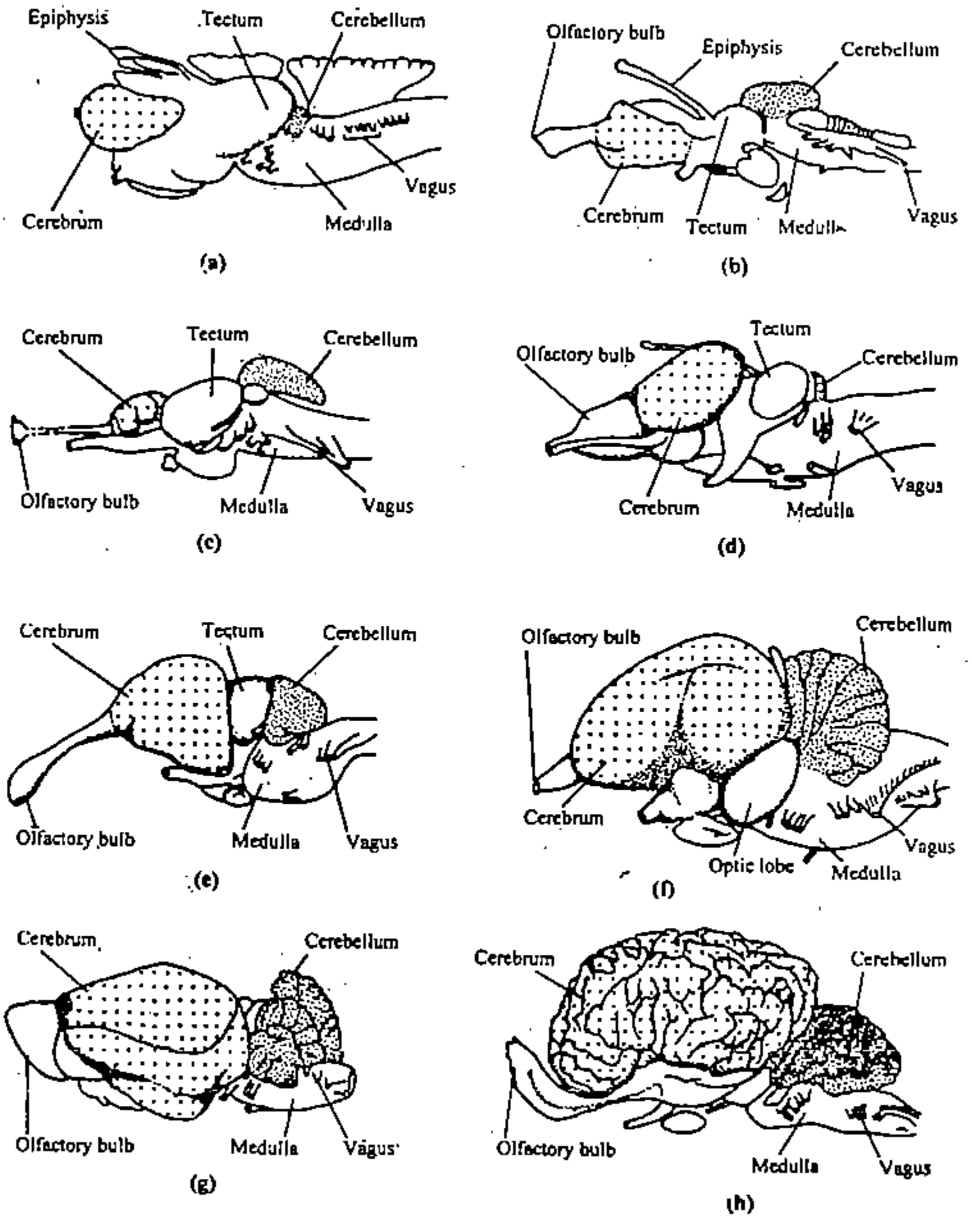

चित्र 10.10 : कशेरुकी मस्तिष्क (पार्श्व दृश्य)। a) जबड़ाविहीन मछलियां, b) कार्टिलेजी मछलियां, c) अस्थिल मछलियां, d) ऐम्फिबियन, e) रेप्टाइल, f) पक्षी, g) आद्य स्तनी h) उन्नत स्तनी।

10.5.1 जबड़ाविहीन कशेरुकी

लैम्प्रे (चित्र 10.10 a) तथा हैगफिश के मस्तिष्क में एक सुविकसित पश्चमस्तिष्क होता है जिससे लगता है कि इसके कार्य सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। अनुमस्तिष्क छोटा है तथा अग्रमस्तिष्क का अधिकतर संबंध - सूंघने (घ्राण) से है। इससे लगता है कि संचलन क्षमता तो सीमित है मगर संवेदन क्षमताएं अधिक विकसित हैं, और उनके पर्यावरण में आवश्यकता भी इसी बात की है।

10.5.2 जबड़ायुक्त कशेरुकी

सभी जबड़ायुक्त कशेरुकियों में मेडुला सुविकसित होता है, जो अंतरंग जाल के साथ बहुत से संयोजन बनाए रखता है, और यही भाग मेडुला एक स्क्रीन के जैसा कार्य करता है जिसमें से होकर तमाम सूचनाएं मस्तिष्क में प्रवेश करतीं अथवा उससे बाहर आती हैं।

अनुमस्तिष्क कार्टिलेजी मछलियों में स्पष्ट होता है (चित्र 10.10 b) जिसमें एक या एक से अधिक अनुप्रस्थ दरारें बनी होती हैं। टीलियॉस्टों में सक्रिय रूप में तैरने वाली मछलियों में अनुमस्तिष्क बड़ा तथा अक्रिय मछलियां में अपेक्षाकृत छोटा होता है।

ऐम्फ़िबियनों में प्राय: छोटा और अद्यांगिक अनुमस्तिष्क होता है। (चित्र 10.10 d) जिसमें इन प्राणियों की सरल संचलनी क्षमताएं झलकती हैं। उन्नत चतुष्पादों में अनुमस्तिष्क का पार्श्व भाग फैल गया है ताकि वह संचलन के लिए विशेषित उपांगों की पेशियों का नियंत्रण कर सकते हैं।

रेप्टाइलों में अनुमस्तिष्क का पाया जाना ऐलिगेटरों में ही देखा जाता है, और पक्षियों तथा स्तनियों में यह भाग अधिक सुव्यक्त हो जाता है जो इनकी जटिल संचलन क्षमताओं को दर्शाता है।

स्तनियों में अनुमस्तिष्क के पार्श्व फैल कर अलग-अलग गोलार्ध बन जाते हैं (चित्र 10.10 g) प्राइमेटों में, जैसा कि अन्य किसी भी कशेरुकी में नहीं होता सबसे अधिक पार्श्व भाग उंगलियों के समन्वय से संबंधित है।

मध्यमस्तिष्क दृक् छद उन कशेरुकियों में विशेषत: बड़ा होता है जो दृष्टि क्षमताओं पर निर्भर होते हैं मगर स्तनियों में यह अपेक्षाकृत छोटे आकार का होता है क्योंकि इनमें दृष्टि कार्यों को प्रमस्तिष्क गोलार्धों ने ले लिया है। आद्य कशेरुकियों में मध्यमस्तिष्क एक मुख्य समाकलन केंद्र के रूप में महत्वपूर्ण है, तथा थैलेमस के माध्यम से प्रमस्तिष्क के साथ बना इसका संवेदी जोड़, ऐम्नियोटों में और उनमें भी ख़ासकर स्तनियों में अत्यंत सुविकसित होता है।

प्रमस्तिष्क सभी मछलियों में अपेक्षाकृत छोटा होता है। घ्राण बल्ब और एक पतली दीवार वाला पैलियम कार्टिलेजी एवं अस्थिल मछलियों में होता है। मछलियों में प्रमस्तिष्क का संबंध मुख्यत सूंघने (घ्राण) से है। ऐम्फ़िबियनों में पैलियम मछलियों की अपेक्षा ज़्यादा मोटा होता है।

प्रमस्तिष्क गोलार्धों में सबसे पहला परिवर्तन रेप्टाइलों में देखा जाता है जिनमें भीतरी तंत्रिका कोशिकाएं अपने स्थान से निकल कर परिधीय क्षेत्रों में पहुंच गयी हैं। प्रमस्तिष्क गोलार्ध बहुत ज़्यादा विवर्धित होते हैं और पीछे की ओर को बढ़कर डायन्सेफ़ैलॉन को अंशत: ढक लेते हैं। घ्राण पालियां प्रमस्तिष्क गोलार्धों के साथ विलयित हो जाती हैं। मगरमच्छों में पहली बार एक वास्तविक प्रमस्तिष्क कॉर्टेक्स अथवा नीओपैलियम प्रकट होता है।

पक्षियों में घ्राण पालियां अद्यांगी होती हैं (चित्र 10.10 f)। मगर पक्षियों में नीओपैलियम नहीं होता। प्रमस्तिष्क गोलार्ध बड़े आकार के होते हैं क्योंकि पक्षियों का कॉर्पस स्ट्रिऐटम असाधारण रूप में बड़ा होता है।

स्तनियों में, विशेषकर मानवों में प्रमस्तिष्क कॉर्टेक्स सर्वाधिक विकसित होता है। गोलार्धों की प्रसृत एवं अत्यधिक संवलित सतह का अधिकतर भाग नीओपैलियन् ने घेर लिया है तथा इस प्रसार के कारण गोलार्ध अन्य मस्तिष्क संरचनाओं को ढकने लगते हैं। (चित्र 10.10)। मार्सुपियलों से आरम्भ करके स्तनियों में दो गोलार्धो के बीच एक चौड़ी सफ़ेद संहति कॉर्पस कैलोसम बन जाती है। यह मेडुलित तंतुओं की बनी होती है और दोनों तरफ के नीओपैलियल कॉर्टेक्स पार्श्वों को जोड़ती है।

बोध प्रश्न 5

कोष्ठकों में दिए शब्दों में से सही-सही शब्द चुनिए:

i) घ्राण पालियां (पक्षियों/स्तनियों) में सुविकसित होती हैं।

ii) नीओपैलियम पहली बार (पक्षियों/रेप्टाइलों) में देखने को मिलता है।

iii) अनुमस्तिष्क (रेप्टाइलों/स्तनियों) में सर्वाधिक सुविकसित होता है।

iv) (मछलियों/स्तनियों) में दृक् छद एक महत्वपूर्ण दृष्टि केंद्र नहीं है।

10.6 संवेदी अंग

इससे पहले के अनुभागों में आपने कशेरुकियों के तंत्रिका तंत्र की संघटना के विषय में पढ़ा। परिधीय तंत्रिका जाल उन संकेतों के विविध ग्राहियों से सूचना एकत्रित करता है जो जीव तक पहुंचते हैं और पुन: इस सूचना को केंद्रीय तंत्रिका तंत्र में रिले कर दिया जाता है। मस्तिष्क के उच्चतर केंद्रों में इन संकेतों अथवा आवेगों का संवेदों के रूप में अर्थ समझा जाता है। ग्राही अंग अथवा "संवेदी अंग'' स्वयं किसी संवेद का अनुभव ज्ञान नहीं करते वे तो मात्र एक साधन होते हैं जो तंत्रिका तंत्र तक संवेदों को पहुंचाते हैं। संवेदी अंगों द्वारा एकत्रित सूचना शरीर को उसके परिवर्तनशील पर्यावरण में जो हो रहा है उस सब का लगातार पूर्वदृश्य प्रदान कराती रहती है यह सूचना **उद्दीपन की गुणवत्ता** (stimulus quality) जैसे पीला प्रकाश, स्थैतिक दाब, मीठा स्वाद, पीड़ा, आदि; **उद्दीपन की तीव्रता** (stimulus intensity), जैसे प्रकाश की चमक, कितनी तीव्र है तथा **स्थानगत प्रतिरूप** (spatial patterns) अभिविन्यास, वितरण के बारे में हो सकती है। संवेदी ग्राही बाह्यग्राही (exoreceptors) अर्थात् बाहर के संवेदों को ग्रहण करने वाले हो सकते हैं जो बाहरी पर्यावरण से सूचना प्राप्त करते हैं या अंत:ग्राही (intero-receptors) हो सकते हैं जो शरीर के भीतर के अंगों से सूचना प्राप्त करते हैं।

प्राणी के शरीर में पाए जाने वाले विभिन्न ग्राही अंगों को मोटे तौर पर उस ऊर्जा-प्रकार के आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है जिसे वे प्राप्त कर सकते हैं जैसे कि यांत्रिक, रासायनिक, प्रकाश अथवा तापीय ऊर्जा। इस विषय में अतिरिक्त जानकारी तालिका 10.2 में है जिसमें कशेरुकियों में पाए जाने वाले विविध प्रकार के ग्राहियों को सूचीबद्ध किया गया है।

तालिका 10.2 कशेरुकियों के बाह्यग्राही तथा अंत:ग्राही

बाहरी संवेद	
दृष्टि	प्रकाशग्राही (Photoreceptors)
श्रवण	ध्वनिग्राही (Phonoreceptors)
गंध	घ्राणग्राही (Olfactoreceptors)
स्वाद	स्वादग्राही (Gustatoreceptors)
स्पर्श	स्पर्शग्राही (Tangoreceptors)
दाब	दाबग्राही (Mechanoreceptors)
तापमान	तापग्राही (Thermoreceptors)
गर्मी	ऊष्माग्राही (Caloreceptors)
ठंडक	शीतग्राही (Frigidoreceptors)
पीड़ा	पीड़ाग्राही (Algesireceptors)
जल की धाराएं	धाराग्राही (Rheoreceptors)
आंतरिक संवेद	
पेशी-स्थान/स्थिति	स्वांतरग्राही (Proprioreceptors)

सामान्यत: अधिसंख्य कशेरुकियों में पांच प्रमुख संवेदों के लिए संवेदग्राही होते हैं- स्वाद, स्पर्श, दृष्टि, सूंघने और सुनने के लिए। कुछ कशेरुकियों में इन पांच परिचित संवेदों में से कोई एक या एक से अधिक संवेद ज्यादा परिष्कृत हो गए होते हैं। आइए पहले हम दृष्टि, गंध और श्रवण से संबद्ध विशिष्ट संवेदी अंगों के विषय में जानकारी लें और उसके बाद कुछ अतिविशिष्ट संवेदी अंगों के विषय में चर्चा करेंगे।

10.6.1 आंख

प्रकाश का ज्ञान कर सकना कशेरुकियों की एक महत्वपूर्ण क्षमता है। इनके सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रकाशग्राही है, नेत्र यानि आंखें, जो मस्तिष्क से बाहर को निकले एक कोष्ठ के रूप में बनने वाली अति विशेषित संरचनाएं होती हैं। कशेरुकियों का सरलतम और सबसे छोटा प्रकाश संवेदी अंग **मध्य नेत्र** (median eye) अथवा **पेराइटल नेत्र** (parietal eye) होता है जो शीर्ष के ऊपर मध्य बिंदु के निकट बना होता है। (चित्र 10.11) आज केवल कुछ ही मछलियों तथा छिपकलियों में मध्य नेत्र होता है जो डायन्सेफ़ेलॉन में से निकलकर बनता है। छिपकली के मध्य नेत्र में कई हज़ार संवेदी कोशिकाएं होती हैं जो सूचना को मस्तिष्क में प्रेषित करती हैं। इसमें एक पारदर्शी लेन्स संवेदी परत के ऊपर स्थित होता है और यही लेन्स प्रकाश को संकेंद्रित करके संवेदी परत पर पहुंचाता है। मध्य नेत्र वास्तव में प्रकाश उद्भासन का मात्रामापी होता है और वह उस प्रकार से कोई प्रतिबिम्ब नहीं बनाता जैसे कि पार्श्व नेत्र बनाते हैं।

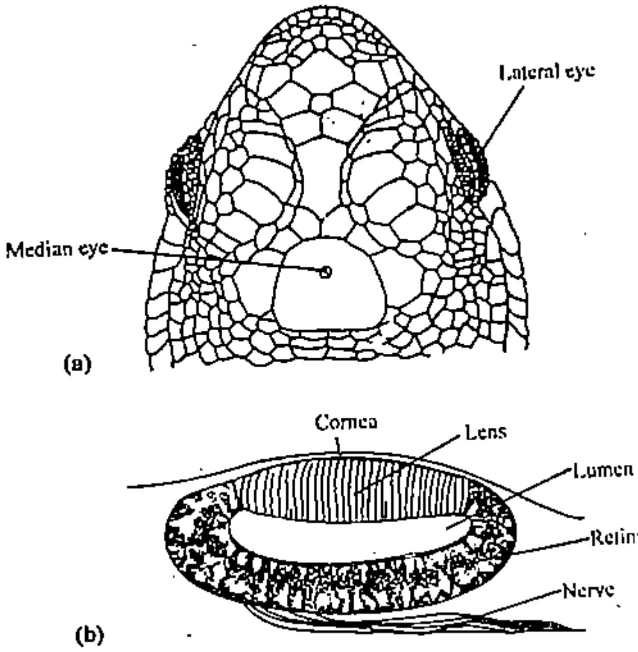

चित्र 10.11 : (a) एक रेप्टाइल में मध्य नेत्र, (b) रेप्टाइल के मध्य नेत्र का समरमितार्धी (सैजिटल) सेक्शन।

कशेरुकी आंख के उदाहरण के रूप में हम मानव नेत्र का विवेचन करेंगे क्योंकि सभी कशेरुकियों का नेत्र एक ही सामान्य योजना पर बना होता है बस उनके आवास के अनुसार उनमें कुछ अंतर पाए जाते हैं।

कशेरुकी आंख के परिवर्धन के विषय में आपने परिवर्धन जीव विज्ञान पाठ्यक्रम (LSE-06) के खण्ड-3 की इकाई 17 में पढ़ रखा है। आंख के तीन भ्रूणीय स्रोत होते हैं- रेटिना तथा दृक् तंत्रिका के लिए अग्रमस्तिष्क अथवा डाइएन्सेफ़ेलॉन, लेन्स तथा आंशिक कॉर्निया के लिए एक्टोडर्म और स्कलेरा, (sclera) पेशियों तथा सहवर्ती ऊतक के लिए निकटवर्ती मीज़ोडर्म। आंख के प्रकट होने के प्रथम चिह्न डाइएन्सेफ़ेलॉन के पार्श्व उभारों के रूप में दिखायी पड़ते हैं जिन्हें दृक् आशय (optic vesicles) कहते हैं तथा ये दृक् आशय एक छोटे से संयोजन दृक् वृंत (optic stalk) के द्वारा मस्तिष्क से जुड़े रहते हैं। दृक्

आशयों के विवर्धित होने के साथ-साथ यह शीर्ष की एक्टोडर्म से सम्पर्क बनाता है और अंतर्वलित होकर एक दो-परतीय दृक् प्याला (optic cup) बना लेता है। इस प्याले की भीतरी दीवार से संवेदी रेटिना बन जाती है और बाहरी दीवार रेटिना की वर्णकित परत कोरॉइड टैपेटम (choroid tapetum) का रूप ले लेती है। प्याले का छिद्र संकीर्ण होकर प्यूपिल (पुतली) बन जाता है। एक्टोडर्म मोटी होकर अंतर्वलित होती है और आंख के अंदर बंद हो गया लेन्स बना लेती है। दृक् प्याले का दूरस्थ घेरा एक तो सिलियरी पिंड (ciliary body) बनाता है और दूसरे पुतली के सहारे-सहारे आइरिस बनाता है। इन दोनों रचनाओं का तंत्रिकायन स्वायत्त गैंग्लियॉनपश्चीय तंतुओं से होता है। आंख के एक्टोडर्मी आवरण के अतिरिक्त एक संवहनी कोरॉइड भित्ति होती है जो बाहरी सुरक्षाकारी स्क्लेरॉटिक आवरण के साथ समेकित होती है। इस प्रकार की सम्पूर्ण संरचना को नेत्र गोला कहते हैं। सामने के क्षेत्र में स्क्लेरॉटिक परत पारदर्शी बन जाती है और कॉर्निया बनाती है जिसके साथ कन्जंक्टाइवा जुड़ जाती है। कॉर्निया एक सम्मिश्र संरचना होती है जिसके भीतर स्क्लेरल (दृढ़पटलीय) संयोजी ऊतक, एक्टोडर्म तथा तंत्रिक शिखर शामिल होते हैं।

आंख एक कैमरे की तरह कार्य करती है तथा रेटिना उसमें पर्दे के जैसी होती है जिस पर प्रतिबिम्ब फोकस किया जाता है। यह पर्दा बहुपरती होता है और इसमें संवेदी एवं गैर संवेदी दोनों प्रकार की कोशिकाएं होती हैं। प्रकाशसंवेदी कोशिकाएं दो प्रकार की होती हैं: शलाका कोशिकाएं (rod cells) तथा शंकु कोशिकाएं (cone cells)। रेटिना के सीमांत पर सिलियरी पिंड एवं आइरिस के समीप न तो शंकु ही होते हैं और न ही शलाकाएं। शलाकाओं में एक प्रकाश संवेदी वर्णक रोडॉप्सिन (rhodopsin) अथवा विज़ुअल पर्पल (visual purple) होता है जो अल्प तीव्रता प्रकाश द्वारा विरंजित होकर लुमिरोडॉप्सिन (lumirhodopsin) बन जाता है और शलाका कोशिका में क्रिया प्रारम्भ करके एक दृश्य उद्दीपन पैदा करता है। शंकुओं में एक अन्य वर्णक आयोडॉप्सिन (iodopsin) होता है जिसका विरंजन केवल उच्च तीव्रता प्रकाश द्वारा होता है। जिन कशेरुकियों में, जो निम्न प्रकाश स्तरों में रहते हैं अथवा जो रात्रिचर होते हैं उनमें शंकुओं की अपेक्षा शलाकाएं अधिक संख्या में होती हैं। जिन प्राणियों को अधिक बारीकियों को देखना ज़रूरी होता है उनमें बड़ी रेटिनाएं होती हैं क्योंकि विभेदन (resolution) का नियंत्रण ग्राहियों के घनत्व से होता है। शंकु कोशिकाओं का संबंध रंग दृष्टि से है।

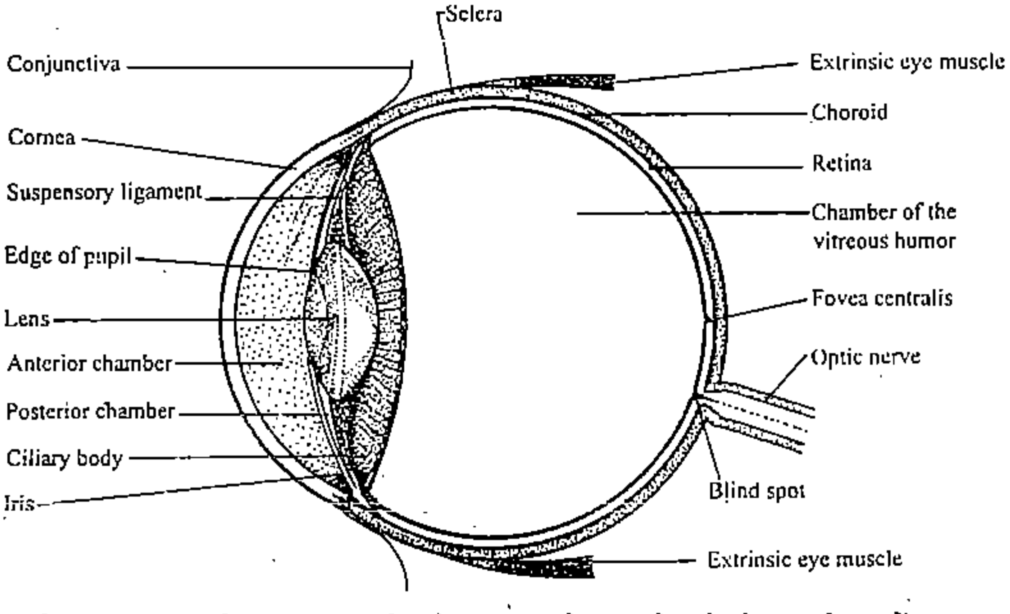

चित्र 10.12 : मानव नेत्र की संरचना। नेत्र गोला लगभग गोलाकार होता है और यह तीन परतों का बना होता है 1) बाहरी दृढ़ स्क्लेरा (दृढ़पटल) जो आलम्ब तथा सुरक्षा प्रदान करती है, 2) मध्यवर्ती कोरॉइड (रक्तक\पटल) आवरण में रक्त वाहिकाएं तथा पोषक तत्त्व होते हैं, 3) प्रकाश के लिए संवेदी रेटिना (दृष्टि पटल)।

रेटिना के अनेक प्रकार के तंत्रिकाणु सूचना को या तो सीधे ही या परस्पर क्रिया द्वारा रूपांतरित करके मस्तिष्क के दृष्टि केंद्रों में पहुंचाते हैं (चित्र 10.13 देखिए)। प्रकाश ऊर्जा को विद्युत् संकेतों में बदल दिया जाता है, द्विध्रुवी कोशिकाएं (bipolar cells) उन्हें गैंग्लियानी कोशिकाओं (ganglionic cells) में पहुंचा देती हैं जो फिर इन संकेतों को मस्तिष्क में पहुंचाती हैं। अन्य तंत्रिकाणु जैसे ऐमेक्राइन (amacrine) तथा क्षैतिज (horizontal) कोशिकाएं प्रकाशग्राही तथा द्विध्रुवी कोशिकाओं के बीच अथवा द्विध्रुवी तथा गैंग्लियानी कोशिकाओं के बीच परस्परक्रिया करती हैं। गैंग्लियॉन कोशिकाओं के ऐक्सॉन रेटिना की भीतरी सतह पर एक साथ आ जाते और एक स्थान पर भीतर को मुड़ जाते हैं, यह एक स्थान असंवेदी क्षेत्र होता है जिसे अंध बिंदु (blind spot) कहते हैं। यहाँ से ये एक्सॉन दृक् तंत्रिका के रूप में जारी रहते हुए मस्तिष्क में पहुंच जाते हैं। दाहिनी तथा बायीं दृक् तंत्रिकाओं के तंतु दृक् काएज़्मा के स्थान पर क्रासित होकर दूसरी ओर पहुंच जाते हैं तथा तंत्रिका आवेग दाहिनी ओर से ऑक्सीपिटल कॉर्टेक्स के बायें दृष्टि क्षेत्र और बायीं ओर के तंत्रिका आवेग दाहिनी ओर के दृष्टि क्षेत्र में चले जाते हैं।

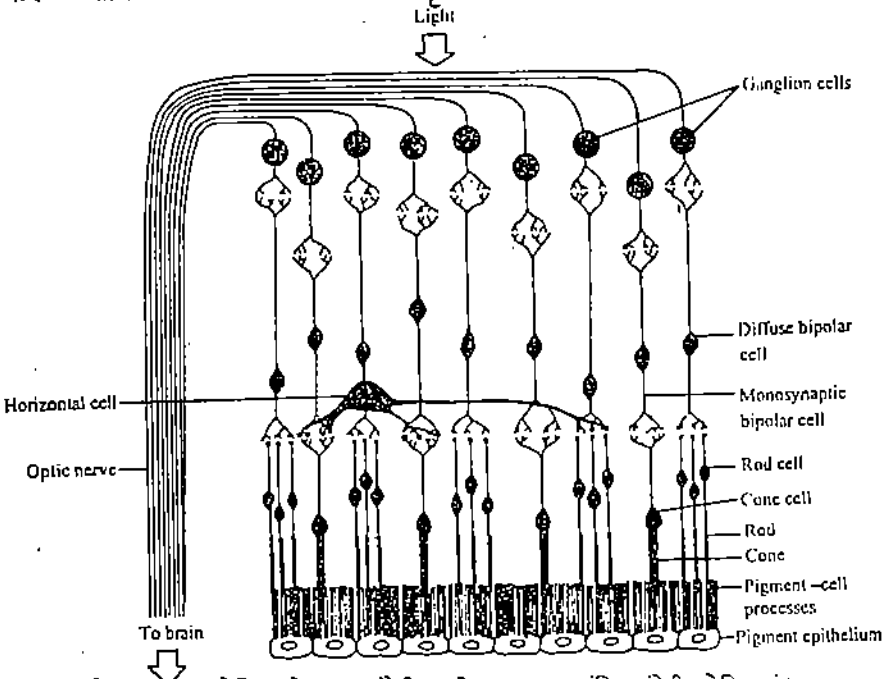

चित्र 10.13 : रेटिना के प्रकाशसंवेदी ग्राही तथा अन्य तंत्रिकासंवेदी कोशिकाएं।

रेटिना के आधार पर वर्णकयुक्त कोरॉइड होती है। यह या तो काला या बहुत ज़्यादा चमकीला होता है। दिवा-अनुकूलित प्राणियों में कोरॉइड का वर्णक काला होता है और किसी भी फ़ालतू प्रकाश को अवशोषित कर लेता है ताकि यह संवेदी रेटिना पर परावर्तित न हो जाए। परावर्तित प्रकाश से ऐसे प्रतिबिम्ब बनते हैं जो प्राथमिक प्रतिबिम्ब से पूरी तरह मेल नहीं खाते और इसीलिए दृष्टि की सुतीक्ष्णता कम हो जाती है। रात्रिचर प्राणियों में शीशे की तरह का कोरॉइड होता है जिसे टेपेटम ल्यूसिडम कहते है। यह प्रकाश को रेटिना में परावर्तित कर देता है। क्योंकि कोरॉइड द्वारा बहुत कम प्रकाश का अवशोषण होता है इसलिए रात्रिचर प्राणियों की आँखें मंद प्रकाश में भी संवेदनशील होती है। परन्तु इससे दृष्टि की सुतीक्ष्णता में कमी आती है क्योंकि परावर्ती प्रतिबिम्ब प्राथमिक प्रतिबिम्ब से अनुयोजित नहीं रहता है।

कशेरुकियों में प्रतिबिम्ब-निर्माण कॉर्निया तथा क्रिस्टलीय लेन्स द्वारा किया जाता है। मछलियों में कॉर्निया लगभग पूर्णतः चपटी होती है। मगर स्थलीय प्राणियों में कॉर्निया वक्ररूपी (घुमावदार) होती है और मुख्य प्रतिबिम्ब-निर्मात्री भी तथा क्रिस्टलीय लेन्स सूक्ष्म फ़ोकसन में इस्तेमाल किया जाता है। अनेक प्राणियों में आंख के भीतर प्रवेश करने वाले प्रकाश की मात्रा के नियंत्रण की विधि भी होती है। कैमरा के एपर्चर की तरह इनकी

पुतली (प्यूपिल) भी, जो कि आइरिस में बनी एक छिद्र होती है, प्रकाश की तीव्रता को नियंत्रित करती है (चित्र 10.14)। अधिसंख्य दिवाचर प्राणियों में प्यूपिल गोल और अपेक्षाकृत छोटा होता है। रात्रिचर प्राणियों में प्यूपिल गोल और अपेक्षाकृत बड़े होते हैं ताकि अधिक से अधिक प्रकाश आंख में प्रवेश कर सके। ऐसे प्राणी जो दिन और रात दोनों में सक्रिय होते हैं, वे अपने प्यूपिलों को रात में खूब फैला सकते हैं और दिन के समय उन्हें संकीर्ण झिरी जैसा बना सकते हैं।

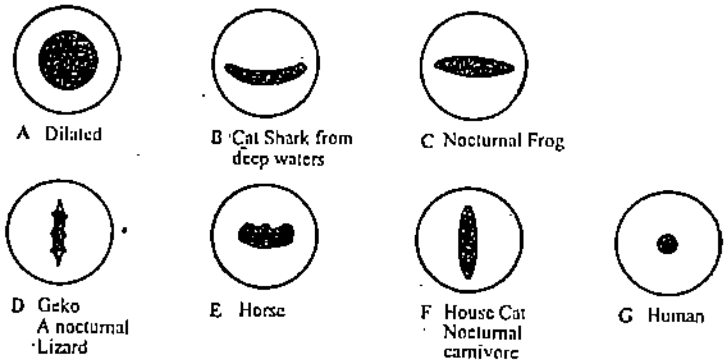

चित्र 10.14 : अधिकतर कशेरुकियों के प्यूपिल फैल और सिकुड़ सकते हैं ताकि आंख के भीतर प्रवेश करने वाले प्रकाश की मात्रा ज़्यादा या कम की जा सके। (A) कशेरुकी में प्रकाश आने देने के लिए फैली हुयी पुतली, (B-G) कशेरुकियों की संकुचित पुतली।

जैसा कि पहले कह चुके हैं एक दृढ़ स्क्लेरॉटिक आवरण आंख की सुरक्षा करता है, और यही आवरण सामने की ओर कॉर्निया में जारी रहता है। कॉर्निया और लेन्स के बीच एक तरल ऐक्वस ह्यूमर (aqueous humour) होता है तथा लेन्स और रेटिना के बीच अन्य तरल विट्रियस ह्यूमर (vitreous humour) होता है, और ये दोनों तरल लेन्स को उसकी पेशियों सहित स्थान पर बनाए रखते हैं और इन तरलों का रक्त के साथ नियंत्रित रूप में विनिमय होता रहता है ताकि लेन्स को पोषण की आपूर्ति होती रह सके। स्क्लेरा के भीतर कार्टिलेज अथवा हड्डी के वलय बने हो सकते हैं जो आंख को क्षति पहुंचने से बचाते हैं। कॉर्निया के ऊपर एक पतली झिल्ली (nictitating membrane) कंजंक्टाइवा बनी होती है। पलकें तथा निमेषक झिल्ली अनेक कशेरुकियों में पायी जाती हैं ये आंख की सुरक्षा करतीं एवं उसकी सतह को गीला बनाए रखती हैं। रूपांतरित सिबेशस ग्रंथियों से एक तैलीय पदार्थ का स्रवण होता है जो कॉर्निया पर फैल जाता है और अश्रु ग्रंथियां (lacrimal glands) में जलीय तरल होता है जो कंजंक्टाइवा को धोता रहता और उसे गीला बनाए रखता है।

कशेरुकी आंख का तुलनात्मक शारीर

मूल रूप में कशेरुकी आंख की संरचना की एक सामान योजना होती है। कुछ उदाहरणों में आंखें आदिम प्रकार की होती हैं जब कि अन्य में वे अपकर्षित एवं कार्यविहीन होती हैं। तथापि उनके भीतर समंजन (accommodation) की विधि, रेटिना के विकास के स्तर तथा प्यूपिल की आकृति में विभिन्नताएं पायी जाती हैं। विभिन्न वर्गों में आंखों के संरचनात्मक पहलुओं का वर्णन नीचे दिया जा रहा है।

1. साइक्लोस्टोम वर्ग

हैगमीनों में आंखें त्वचा के नीचे, सूक्ष्म, अपह्रासित और कार्यविहीन होती हैं। इनमें कॉर्निया, स्क्लेरा तथा रेटिना विभेदित नहीं हुई होतीं। उधर दूसरी ओर लैम्प्रे की आंख आदिम होने के बावजूद एक सुविकसित संरचना होती है। नेत्र-गोला चपटा हो गया है, तथा स्क्लेरा और कॉर्निया त्वचा के साथ समेकित नहीं हुई है। आलम्बी स्नायु तथा

सिलियरी उपकरण नहीं होते, प्यूपिल एक नियत साइज़ का होता है और पलकें नहीं होती। शलाकाएं शंकुओं की अपेक्षा कहीं ज्यादा होती हैं।

2. मछलियां

इलास्मोब्रैंकों में आंखें बड़ी होती हैं। होलोसेफ़ेलियनों में शरीर के आकार के अनुपात में आंखें बहुत बड़ी होती हैं, जितनी मछलियों के किसी भी वर्ग में नहीं पायी जातीं। एक विशिष्ट दृक् वृंत मौजूद होता है। स्क्लेरा कार्टिलेजी होती है और सिलियरी पिंड के भीतर आंतरिक पेशियां नहीं होतीं। इलास्मोब्रैंकों में कोरॉइड आवरण की सतह में ग्वानिन (guanin) के बने प्रकाश-परावर्ती क्रिस्टल होते हैं। शंकु इलास्मोब्रैंकों में नहीं होते। रंग दृष्टि अस्थिल मछलियों में व्यापक रूप में होती पायी जाती हैं। सिलियरी पेशियां तथा कार्यशील आइरिस नहीं होते। गहरे समुद्र की मछलियों में अपेक्षाकृत बहुत बड़ी-बड़ी आंखें होती हैं। और इस प्रकार शत्रुओं, शिकार, अपनी ही स्पीशीज़ के अन्य सदस्यों तथा विपरीत सेक्स को पहचान सकना संभव हो पाता है। वयस्क फ्लैटफ़िशों (चपटी मछलियों) में दोनों आंखें एक ही पार्श्व पर बनी होती हैं। कुछ टीलियोस्टों की आंखें हवा और जल दोनों में देखने के लिए अनुकूलित होती हैं।

3. ऐम्फ़िबियन वर्ग

स्थलीय ऐम्फ़िबियनों में पहली बार गतिशील पलकें प्रकट हुई हैं, जो ग्रंथीय स्रावों द्वारा गीली बनी रहती हैं। पूरी आंख को रिट्रैक्टर बल्बाई (retractor bulbi) पेशी के द्वारा नेत्र कोटर के भीतर खींचकर आंखों को बंद किया जाता है। आंख का बहिःसरण (बाहर को उभर आना) लीवेटर बल्बाई नामक पेशियों द्वारा होता है। सभी ऐम्फ़िबियनों में ऐन्यूरनों की आंखें सर्वाधिक विकसित होती हैं। टैपेटम ल्यूसिडम (tapetum lucidum) मौजूद नहीं होता हालांकि आंखें चमकती सी दिखायी देती हैं। ऐम्फ़िबियनों में रंग दृष्टि होती है या नहीं इस बारे में कोई निश्चित जानकारी नहीं है। सिलियरी पिंड होते हैं। पुच्छयुक्त ऐम्फ़िबियनों में आंखें छोटी होती हैं। स्थायी तौर पर जलीय उदाहरणों में पलकों का अभाव होता है। पुच्छयुक्त ऐम्फ़िबियनों का लेन्स असाधारण रूप में बड़ा होता है तथा सिलियरी पिंड कम विकसित होता है। गुफ़ावासी सालामैण्डरों में आंखें अपह्रासित होती हैं।

4. रेप्टाइल वर्ग

रेप्टाइलों की आंखों में स्थलीय-जीवन के लिए और अधिक अनुकूलन हुआ पाया जाता है। सांपों तथा कुछ अन्य को छोड़कर, शेष में पलकें अधिक गतिशील हो गयी हैं। अश्रु ग्रंथियां सुविकसित होती हैं, मगर सांपों, कैमीलियॉन तथा स्फ़ीनोडॉन में ऐसा नहीं होता। शंकुओं की संख्या में अपेक्षाकृत वृद्धि होना स्पष्ट प्रकट होता है। अधिसंख्य रेप्टाइलों में उनकी रेटिना में एक केंद्रीय क्षेत्र होता है जहां दृष्टि अधिक तीव्र होती है। समझा जाता है कि कछुओं तथा छिपकलियों में रंग दृष्टि होती है मगर मगरमच्छों एवं सांपों में इसका पाया जाना संदिग्ध है। सांपों में आंखों के ऊपर एक स्थित पारदर्शी त्वचा बन गयी होती है क्योंकि इनमें पलकें समेकित हो गयी हैं। रेप्टाइलों की आंख में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अंतर है कि इनमें एक विशेष सिलियरी उपकरण बन गया है जिससे लेन्स तथा कॉर्निया की आकृति बदल जाती है।

5. पक्षी वर्ग

पक्षियों में उल्लुओं और कुछ थोड़ी मात्रा में शिकरा और उकाब जैसे शिकारी पक्षियों को छोड़कर जिनमें द्विनेत्री दृष्टि होती हैं, शेष सभी में एकनेत्री दृष्टि पायी जाती है। इन सबमें एक समान प्रकार की नेत्र संरचना पायी जाती है। नेत्र गोला बहुत बड़ा होता है

और उसका सहसंबंध वायवीय जीवन पद्धति से है। नेत्र गोला आंशिक रूप में अवतल होता है और एक अत्यन्त सुविकसित निमेषक झिल्ली मौजूद होती है जो उड़ान के दौरान सुरक्षा प्रदान करती है। सिलियरी पिंड सुविकसित होते हैं। दिवाचर स्वभाव वाले पक्षियों में शंकुओं की प्रधानता होती है तथा रात्रिचर पक्षियों में शलाकाओं की प्रधानता होती है। रंग दृष्टि व्यापक पायी जाती है। पक्षियों में पेक्टेन (pecten) का पाया जाना एक विशेष लक्षण है, यह संरचना पंखे जैसी होती है जो विट्रियल गुहा में फैली होती और सुविकसित होती है. हो सकता है कि यह संरचना गति के बोध में सहायक हो एवं रेटिना के लिए एक पूरक पोषण युक्ति के रूप में कार्य करती हो।

6. स्तनी वर्ग

मानव नेत्र की संरचना स्तनियों में प्ररूपी है। जो स्तनी जलीय होते है, या स्थलीय या जो वायवीय जीवन बिताते हैं उनमें विभिन्नताएं पायी जाती हैं। रात्रिचर उदाहरणों में टैपेटम ल्यूसिडम पायी जाती है। गोल प्यूपिल सर्वाधिक पाया जाता है मगर विभिन्नता भी पायी जाती है। रेटिना में अधिकतर शलाकाएं एवं शंकु होते हैं हालांकि रंग दृष्टि की क्षमता अधिकतर उच्चतर प्राइमेटों तक ही सीमित होती है। दृष्टि तंत्रिका के क्रॉसिंग से द्विनेत्री दृष्टि बन जाती है जिससे त्रिविम प्रभाव दिखायी देता है।

10.6.2 कान

कशेरुकी कान एक विशेषित ग्राही होता है जो पर्यावरण में ध्वनि तरंगों का पता लगा सकता है। यह सामान्यत: दोहरा कार्य करता है और उच्चतर विकसित प्राणी उदाहरणों में तो ऐसा है ही, कि यह श्रवण-अंग एवं संतुलन अंग दोनों प्रकार से कार्य करता है। जो संरचना स्तनियों में हमें सामान्यत: बाहर से दिखायी देती है वह वास्तव में केवल बाहरी कान होता है। श्रवण एवं संतुलन का वास्तविक कार्य भीतरी कान द्वारा सम्पन्न होता है और इस भीतरी कान की संरचना सभी कशेरुकियों में एक जैसी ही होती है और यह एक अस्थिल कपाल के भीतर बाहरी पर्यावरण से सुरक्षित रहता है। विकास के दौरान कशेरुकी भीतरी कान मूलत: एक संतुलन-अंग के रूप में बना था, जिसे लैबिरिंथ (labyrinth) कहते है तथा जिसका दूसरा नाम वेस्टिबुलर उपकरण (vestibular apparatus) भी। पहले हम संतुलन के लिए उत्तरदायी संरचना का स्पष्टीकरण करेंगे।

वेस्टिबुलर उपकरण

सभी जबड़ायुक्त कशेरुकियों में लैबिरिंथ की संरचना एक-जैसी ही होती है। इसमें दो कक्ष-जैसे विवर्ध होते हैं एक ऊपरी यूट्रिकुलस (utriculus "छोटी शीशी") और एक निचला सैकुलस (sacculus नन्हा थैला)। एक संकीर्णन सैक्युलोयूट्रिकुलर वाहिनी (sacculoutricular duct) द्वारा ये दोनों कक्ष परस्पर जुड़े होते हैं। तीन संकीर्ण नलिकाएं अर्धवृत्त वाहिनियां (semicircular ducts) अपने दोनों सिरों पर यूट्रिकुलस से जुड़ी रहती हैं (चित्र 10.15) तथा एक-दूसरे के साथ समकोण बनाती हैं। इनमें से एक वाहिनी क्षैतिज समतल में पड़ी होती है जब कि अन्य दो उदग्र होती हैं एक आगे की ओर को उन्मुख और दूसरी पीछे की ओर को। साइक्लोस्टोमो में हैगमीन में केवल एक ही अर्धवृत्त नाल होती है जिसमें उसके दोनों सिरों पर एक-एक तुंबिका (ऐम्पुला) होती है। लैम्प्रे में दो अर्धवृत्त नालें होती हैं। मछलियों और उनसे उन्नत के सभी कशेरुकियों में तीन अर्धवृत्त नालें होती हैं तथा सैकुलस की अधर दीवार से एक छोटा सा उभार बना होता है; इसे लेगीना (lagena) कहा जाता है, लेगीना ही कान के श्रवण अंश का पूर्वगामी होता है।

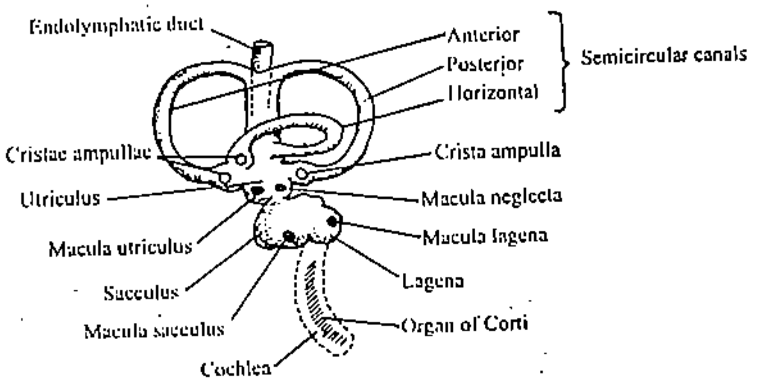

(a)

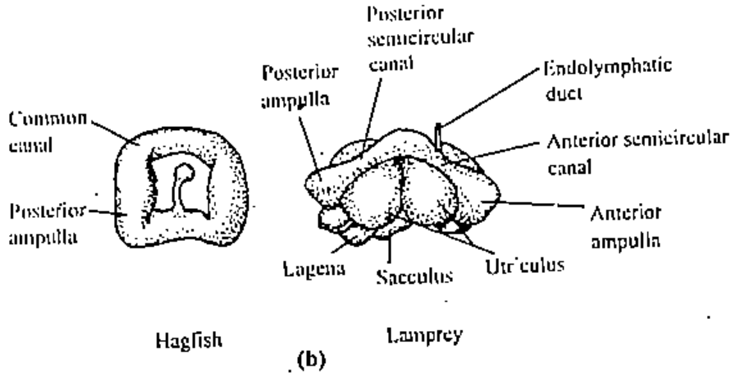

(b)

चित्र 10.15 : (a) कशेरुकियों का सामान्यीकृत वेस्टिबुलर उपकरण जिसमें तीन अर्धवृत्त नालें और प्रधान कक्ष यूट्रिकुलस, सैकुलस तथा लेगीना दिखायी पड़ रहे हैं। (b) हैगमीन तथा लैम्प्रे का भीतरी कान।

झिल्लीमय लैबिरिंथ के भीतर अंतर्लसिका अर्थात् एंडोलिम्फ (endolymph) भरा होता है जो जल से अधिक श्यान एक तरल है। लैबिरिंथ को लगभग पूरी तरह घेरती हुई एक पेरिलिम्फैटिक गुहा होती है जिसमें एक तरल पेरिलिम्फ भरा होता है जो वास्तव में प्रमस्तिष्कमेरु तरल होता है। पेरिलिम्फैटिक गुहा को अलग-अलग स्पीशीज़ के अनुसार कार्टिलेज अथवा हड्डी घेरे रहती है। उच्चतर प्राणी उदाहरणों में एक अस्थिल लैबिरिंथ जो टेम्पोरल हड्डी के भीतर स्थित होता है, अपने भीतर झिल्लीमय लैबिरिंथ को बंद किए रहता है। अर्धवृत्त नाले अस्थिल लैबिरंथ का वे भाग होती हैं जो अर्धवृत्त वाहिनियों को घेरे रहती हैं। संतुलन संवेद के वास्तविक ग्राही क्रिस्टों (cristae) तथा मैकुलों (maculae) की संवेदी कोशिकाओं के क्षेत्र होते हैं। जिन्हें हम क्रिस्टा कहते हैं वे अर्धवृत्त वाहिनियों के ऐम्पुलों के भीतर स्थित होते हैं और वे आलम्बी कोशिकाओं तथा रोम कोशिकाओं के बने होते हैं (देखिए बॉक्स 10.1)। मैकुला यूट्रिकुलस तथा सैकुलस की दीवारों में बने होते हैं। मैकुला भी एक जिलेटिनी प्यालिका और रोम कोशिकाओं का बना होता है, बस अंतर इतना है कि इसकी झिल्ली में कैल्सियम कार्बोनेट क्रिस्टलों का एक अति सघन संहति जिसे ऑटोकोनिया (otoconia) कहते हैं, गड़ी होती है (चित्र 10.16)।

अर्धवृत्त नालें इस प्रकार योजनाबद्ध होती हैं कि वे घूर्णन त्वरण के लिए अनुक्रिया कर सकें और रैखिक त्वरण के लिए अपेक्षाकृत असंवेदी होती हैं। जब सिर को घुमाया जाता है तो नाल के भीतर का तरल पहले तो जड़त्व (inertia) के कारण गति नहीं करता है। क्योंकि प्यालिका ऐम्पुला मे जुड़ी होती है इसलिए उसका मुक्त सिरा शीर्ष की गति की विपरीत दिशा में गति करता है जिसके कारण संवेदी रोम कोशिकाएं उत्तेजित हो जातीं हैं और इस प्रकार आरम्भ होने वाले आवेग श्रवण तंत्रिका की शाखाओं के द्वारा मस्तिष्क में प्रेषित हो जाते हैं। घूर्णन गतियां अर्धवृत्त नालों के ऐम्पुलाओं के भीतर के क्रिस्टों को प्रभावित करती हैं और युट्रिकुलस और सैकुलस स्थैतिक संतुलन अंग होते हैं जो गुरुत्व के प्रति शीर्ष अथवा

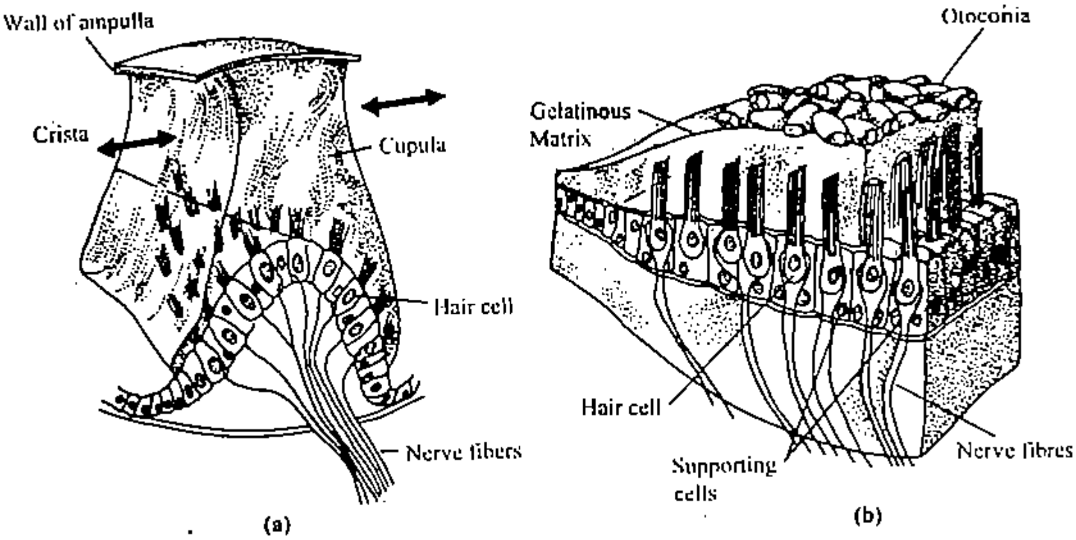

चित्र 10.16 : भीतरी कान में पाए जाने वाले संवेदी ग्राही। (a) प्रत्येक अर्धवृत्त नाल के आधार पर एक क्रिस्टा बना होता है। (b) मैकुला जिनमें ओटोकोनिया होते हैं भीतरी कान के तीन कक्षों में स्थित होते हैं।

शरीर की स्थिति के विषय में सूचना देते हैं। जब शीर्ष को हिलाया जाता है तब पथरीली संहति रोम कोशिकाओं के ऊपर गति करती है जिससे तंत्रिका आवेग उत्पन्न होते है और मस्तिष्क में पहुंचा दिए जाते हैं।

बॉक्स 10.1

जल धाराओं का पता लगाना, संतुलन बनाए रखना और ध्वनि सुनना ये सब बहुत ही भिन्न प्रकार के संवेदी कार्य जान पड़ते हैं। मगर ये तीनों ही यांत्रिकग्राहियों (mechanoreceptors) पर आधारित होते हैं यानि उन संवेदी कोशिकाओं पर जो दाब अथवा यांत्रिक बल में होने वाले परिवर्तनों के प्रति अनुक्रिया करतीं हैं। आधारभूत यांत्रिकग्राही रोम कोशिका होती है जिसका सामान्य बाल से कोई वास्ता नहीं होता मगर यह एक कोशिका होती है जिसमें उसकी शिखर सतह पर एक बाल-सरीखा प्रवर्ध बना होता है। रोम कोशिकाएं ट्रांसड्यूसर होती हैं जो यांत्रिक उद्दीपनों को विद्युत् संकेतों में बदलती हैं, और ये कोशिकाएं सतह की एक्टोडर्म से बनती हैं। प्रत्येक रोम कोशिका पर ऐसे तंत्रिकाणु का संवेदी तंतु लिपटा होता है जो रोम कोशिका में होने वाले आयनी परिवर्तनों के लिए संवेदी होते हैं। सिनैप्सों अथवा उन्हीं के जैसे सम्पर्क स्थलो में से विद्युत् उत्तेजना रोम कोशिका से आलिंगनी न्यूट्रान में पहुंचती है जो इस संकेत को आगे केंद्रीय तंत्रिका तंत्र में पहुंचाता है।

न्यूरोमास्ट (neuromast) अंग रोम कोशिकाओं, आलम्बी कोशिकाओं तथा संवेदी तंत्रिका तंतुओं का एक छोटा सा समूह बना होता है तथा उसमे से निकलते हुए रोम बंडल सामान्यतः एक जिलेटिनी टोपी जिसे प्यालिका (चित्र 10.16 a) कहते हैं, में गड़े होते हैं। न्यूरोमास्ट अंग अथवा इसका रूपांतरण तीनों प्रकार के यांत्रिकग्राही तंत्रों, अर्थात् पार्श्व-रेखा तंत्रों, संतुलन का बोध कराने वाले वेस्टिबुलर उपकरण और ध्वनि के लिए अनुक्रिया करने वाले श्रवण तंत्र का मूलभूत घटक होता है।

श्रवण (सुनना)

कशेरुकियों में सुनने की क्षमता कदाचित एक ऐसी क्रियाविधि के रूप में प्रकट हुई जो किसी खतरनाक निकटवर्ती क्रिया के प्रति प्राणियों को सचेत कर सकती थी। आगे चलकर वह

आहार एवं संगम-साथी को ढूंढ सकने तथा संचार में भी महत्वपूर्ण हो गयी। अधिसंख्य कशेरुकियों में भीतरी कान का एक भाग ध्वनि तरंगों को प्राप्त करने के लिए रूपांतरित हो गया और भीतरी कान के भीतर वाली कुछ विशेष रोम कोशिकाएं ध्वनि पता लगा सकने के लिए विशेषित हो गयीं। आप जान चुके हैं कि मछलियों में सैकुलस से एक नन्हीं कोष्ठिका लेगीना निकल आती है जो कशेरुकियों के विकास के दौरान चतुष्पादों के श्रवण उपकरण के रूप में विकसित हो गयी। यह लेगीना लम्बी हो गयी और पक्षियों एवं स्तनियों में कुंडलित होकर कॉक्लिया (chochlea) बना लेती है।

लेगीना अथवा कॉक्लिया के भीतर ध्वनि के संवेदग्राही यानि **कॉर्टी के अंग** (organ of Corti) बने होते हैं, यह अंग न्यूरोमास्टों की एक विशेषित पट्टी होती है जो श्रवण तंत्रिका के माध्यम/से तंत्रिका तंत्र के साथ जुड़ी होती है।

कान तीन कक्षों का बना होता है– बाह्य, मध्य तथा भीतरी कान चित्र 10.19 a में प्ररूपी स्तनी कान दर्शाया गया है जिसमें तीनों कक्ष बने होते हैं।

बाहरी कान मछलियों तथा ऐम्फ़िबियनों में नहीं होता। यह पहली बार कुछ रेप्टाइलों में जैसे कि छिपकलियों तथा मगरमच्छों में प्रकट होता है। इसमें एक छोटी नली बाह्य कर्णकुहर (external auditory meatus) होती है जो एक बाह्य छिद्र द्वारा बाहर को खुलती है। पक्षियों तथा स्तनियों में बाह्य कर्णकुहर लम्बा हो गया है। जिस भाग को हम "कान" कह दिया करते हैं वह कर्णपल्लव (pinna) होता है जो केवल स्तनियों में पाया जाता है। कर्णपल्लव विविध दिशाओं से आने वाली ध्वनियों में विभेद करने में सहायता करता है और इन ध्वनियों को बाह्य कर्णकुहर में पहुंचाता है। युग्मित यानि दाएं बाएं कानों का जोड़ा, स्टीरियोफ़ोनिक (त्रिविमध्वनिक) श्रवण प्रदान करते हैं ठीक उसी प्रकार जैसे कि आंखें त्रिविम दृष्टि प्रदान करतीं हैं।

मध्य कान में एक तनुपट (डायाफ़्राम) होता है जिसे **कर्णपटह (टिम्पैनम** tympanum) अथवा कर्णपटह झिल्ली (tympanic membrane) कहते हैं और यह रचना पहली बार प्राचीन ऐम्फ़िबियनों में प्रकट हुई। ऐम्फ़िबियनों और कुछ रेप्टाइलों में कर्णपटह देह की सतह के साथ सपाट बनी होती है मगर अधिकतर पक्षियों और स्तनियों में यह बाह्य कर्णकुहर के भीतरी सिरे पर बनी होती है। जबड़ाविहीन मछलियों और कार्टिलेजी मछलियों में मध्य कान नहीं होता और वे दूर से आने वाली ध्वनियों को नहीं पहचान सकतीं। कुछ अस्थिल मछलियों में भीतरी कान के साथ सीधा सम्पर्क बनाए हुए तरण आशय (swim bladder) के प्रसारों के माध्यम से ध्वनि प्रेषित हो जाती है। यह गैस अथवा तरण आशय आगमी ध्वनि तरंगों के अनुरूप आवृत्ति पर संकुचित होता और फ़ैलता है। वेबर अस्थिकाएं (Weberian ossicles) नामक विशिष्ट अस्थिल प्रवर्ध तरण आशय और भीतरी कान के बीच एक सीधी कड़ी प्रदान करती है (चित्र 10.18) जिससे उच्च आवृत्ति की ध्वनि को सुनने की क्षमता बढ़ जाती है।

जैसे-जैसे स्थल पर चतुष्पादों का विकास होता गया वैसे-वैसे प्रथम गिल कोष्ठ का विवर्धन होकर उससे मध्य कर्ण गुहा बन गयी जो एक नली द्वारा ग्रसनी के साथ जुड़ी हुई है, इस नली को यूस्टेशियन नली (eustachian tube) कहते हैं जिसका काम मध्य कर्ण गुहा के भीतरी के वायु दाब को कान के बाहर की ओर के वायु दाब के बराबर किए रखना है। कान के पर्दे को कम्पित करने वाली ध्वनि तरंगें **कॉलुमेला** (columella) नामक एक हड्डी अथवा कर्णास्थिका के माध्यम से भीतरी कान में प्रेषित होती हैं। कॉलुमेला मछलियों की हायोमैंडिबुलर की व्युत्पाद होती है। कुछ ऐम्फ़िबियनों, रेप्टाइलों तथा पक्षियों में कॉलुमेला के सिरे पर एक कार्टिलेजी संरचना अधिकॉलुमेला (extracolumella) होती है जो कर्णपटह झिल्ली की अध:सतह पर टिकी होती है।

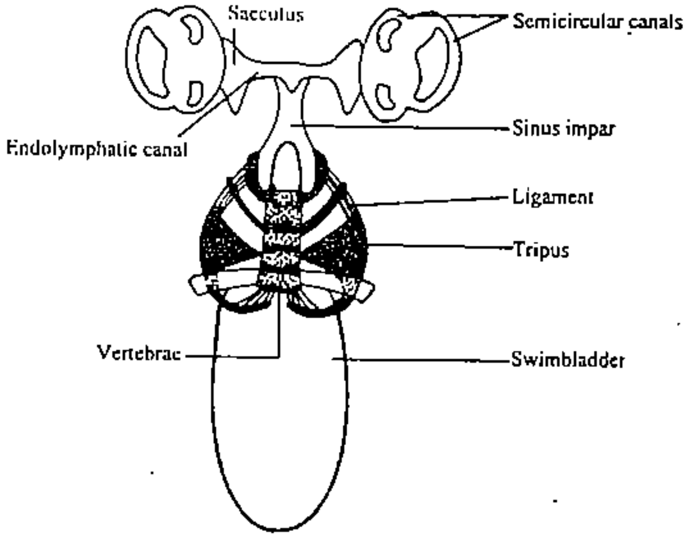

चित्र 10.17 : मछली का भीतरी कान अथवा वेबर उपकरण।

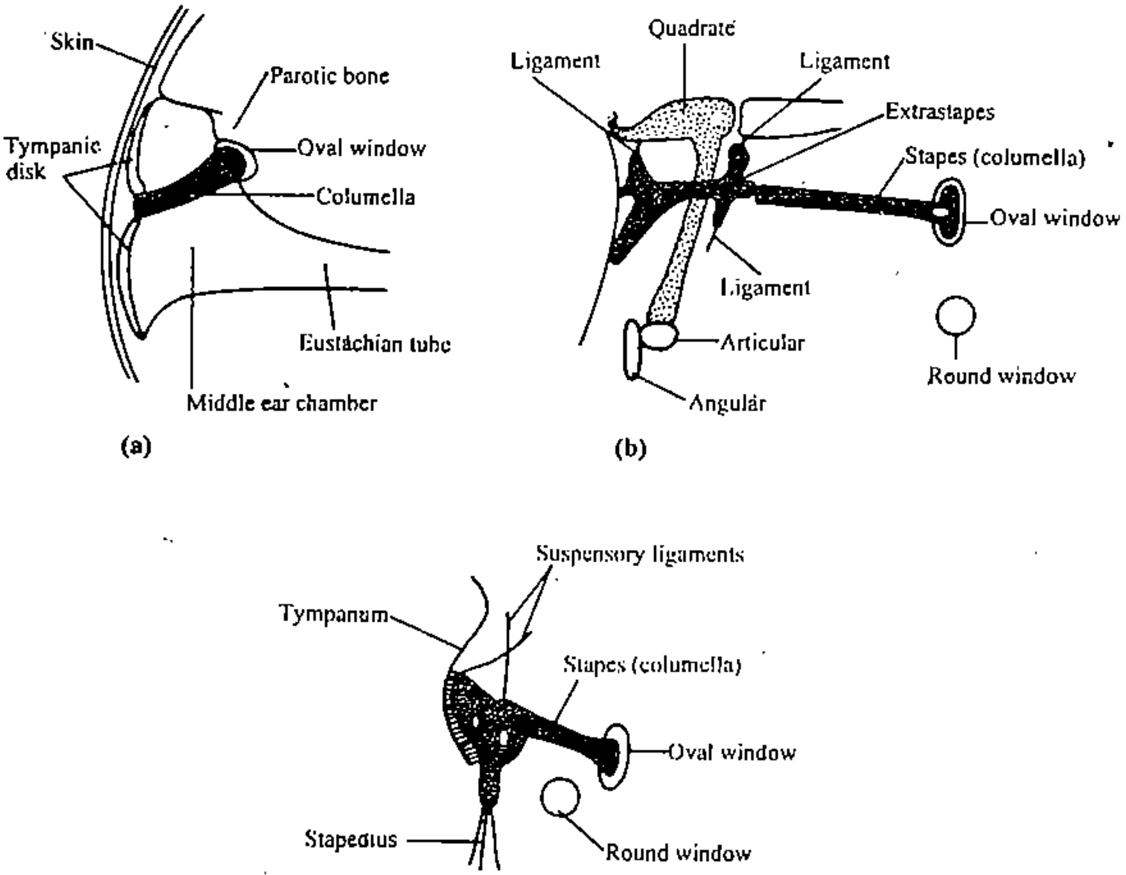

चित्र 10.18 : चतुष्पादों का मध्य कर्ण (a) मेंढक में (b) छिपकली में (c) पक्षी में।

स्तनियों में मध्य कर्ण में तीन हड्डियां होती हैं: स्टेपीज़ (stapes) अर्थात् रकाब, (stirrup) जो रेप्टाइलों की ह्रासित कॉलुमेला है, इन्कस (incus) अर्थात निहाई, (anvil) तथा मैलियस (malleus) अर्थात् हथौड़ी, (hammer) जो क्रमश: क्वाड्रेट तथा आर्टिकुलर हड्डियों से व्युत्पन्न हुई होती हैं। ये तीनों हड्डियां एक श्रृंखला बनाती हैं जो कर्णपटह तथा भीतरी कान के बीच एक सेतु का काम करती है (चित्र 10.19 b)। मध्यकान का कार्य दूर के पर्यावरण से आने वाली दाब तरंगों को यांत्रिक गति में परिवर्तित करना है।

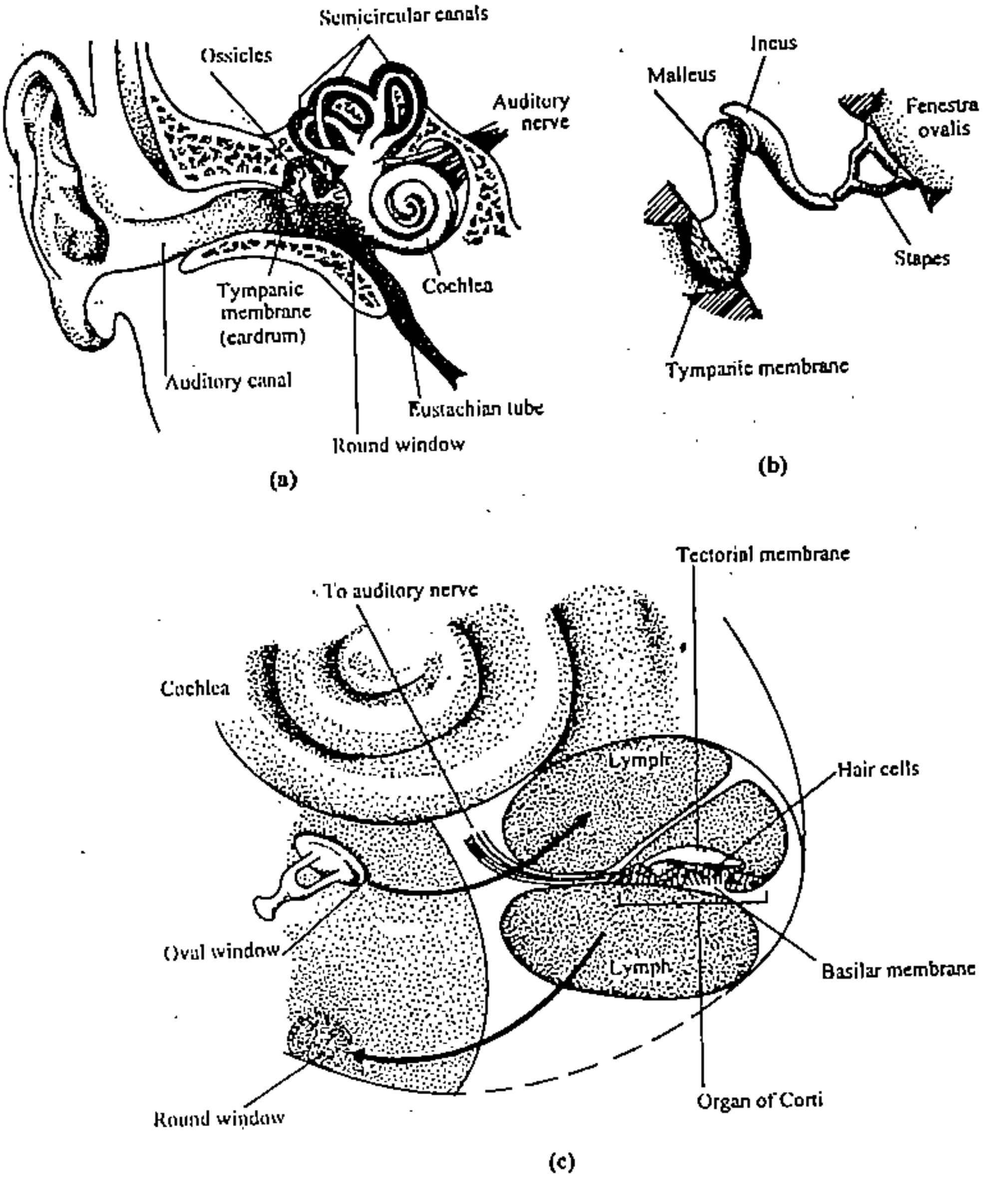

चित्र 10.19 : स्तनी का कान। (a) बाह्य, मध्य तथा भीतरी कान। (b) तीन मध्य कर्णास्थिकाएं। (c) भीतरी कान। गौर कीजिए कि लेगीना लम्बा हो गया है और कुंडलित होकर कॉक्लिया बन गया है।

आप पहले ही जान चुके हैं कि भीतरी कान में वेस्टिबुलर उपकरण तथा उसे घेरती हुई पेरिलिम्फैटिक गुहा होता है। भीतरी कान के श्रवण उपकरण में ऐम्फिबियनों तथा रेप्टाइलों में लेगीना होता है। यही लेगीना पक्षियों में प्रसृत होकर नलिकाकार लेगीना बन जाता है। स्तनियों में लेगीना कुंडलित **कॉक्लिया** (chochlea) का रूप ले लेता है। कॉर्टी-अंग लेगीना के भीतर एक केंद्रीय चैनेल में निलंबित रहता है। केंद्रीय चैनेल के दोनों पार्श्वों पर दो समांतर पेरिलिम्फैटिक चैनल होती हैं। स्तनियों की कॉक्लिया कुंडलित होती है जो मनुष्यों में ढाई चक्कर लेती है और एक-दूसरे के समानांतर बनी हुई तीन नलिकाकार नालों की बनी होती है। ये नालें आधार से अंतिम सिरे की ओर उत्तरोत्तर छोटी होती जाती हैं। (चित्र 10.19 c)। तीन नालें इस प्रकार हैं: **वेस्टिबुलर नाल** जिसका आधार अण्डाकार खिड़की अथवा **फेनेस्ट्रा ओवेलिस** (fenestra ovalis अथवा अण्डाकार गवाक्ष) द्वारा बंद हुआ होता है। स्टेपीज़ का सिरा फैल कर एक प्लेट बन जाता है जो अण्डाकार खिड़की पर जमी होती है। दूसरी नाल **कर्णपटह नाल** (tympanic caual) है जो कॉक्लिया के सिरे पर वेस्टिबुलर नाल के साथ संबंध बनाए होती है तथा इसके आधार पर गोल खिड़की अथवा

फ़ैनेस्ट्रा रोटण्डा (fenestra rotunda) होता है। एक लचीली झिल्ली इस खिड़की को ढके रहती है। इन दोनों नालों के बीच एक मध्यवर्ती नाल **कॉक्लियर नाल** (cochlear canal) होती है जिसके भीतर वास्तविक संवेदी, उपकरण कार्टी-अंग स्थित होता है। कॉर्टी-अंग के भीतर **रोम कोशिकाओं** की सूक्ष्म पंक्तियां होती हैं जो कॉक्लिया की पूरी लम्बाई में आधार से सिरे तक फैली होती हैं। मानव कान के भीतर कम से कम 24,000 ऐसी रोम कोशिकाएं तो होती ही हैं। इनमें से प्रत्येक कोशिका श्रवण तंत्रिका के न्यूरॉनों से जुड़ी होती है। रोम कोशिकाएं **बेसिलर झिल्ली** (basilar membrane) पर टिकी होती हैं, यह वह झिल्ली है जो टिम्पैनिक नाल को कॉक्लिया नाल से पृथक करती है। ध्वनि तरंगों की प्रतिक्रिया के रूप में बेसिलर झिल्ली के साथ-साथ कॉर्टी-अंग भी कम्पन करता है। कुछ कशेरुकियों में कॉर्टी-अंग की रोम कोशिकाएं एक दृढ़ प्लेट टेक्टोरियल झिल्ली (tectorial membrane) में गड़ी होती है।

जब कोई ध्वनि तरंग कान पर आकार टकराती है तब ऊर्जा का संचरण मध्य कान की तीन हड्डियों में से होकर अण्डाकार खिड़की तक पहुंचता है जिसके फलस्वरूप यह खिड़की भी आगे-पीछे दोलन करने लग जाती है जिससे वेस्टिबुलर तथा टिम्पैनल नालों के भीतर के तरल में गति होती है। तरल के दोलनों से बेसिलर झिल्ली और साथ में उसकी रोम कोशिकाएं भी कम्पन्न करने लग जाती हैं जिससे आवेग पैदा होते हैं, और ये आवेग श्रवण तंत्रिका द्वारा मस्तिष्क में ले जाए जाते हैं जहां पर श्रवण केंद्र इन्हें अर्थ प्रदान करते हैं। ध्वनि की प्रबलता उत्तेजित होने वाली रोम कोशिकाओं की संख्या पर निर्भर होती है और टोन की गुणवत्ता उत्तेजित हुई रोम कोशिकाओं के प्रतिरूप पर।

10.6.3 घ्राण अंग

घ्राण अभिविन्यस्त कशेरुकियों में घ्राण सतहों का पूरा क्षेत्रफल सम्पूर्ण शरीर की सतहों के क्षेत्र फल से अधिक हो सकता है।

सूंघने के संवेद अर्थात् घ्राण की क्रिया में रसोग्राहियों (chemoreceptors) का योगदान होता है जो नासा मार्गो में स्थित होते हैं। सूंघने में तीन प्रकार के घटकों की भूमिका होती है। पहला घटक है घ्राण एपिथीलियम जो नासा गुहा के भीतर की एक विशेषित एपिथीलियम होती है। इसमें एक तो **आधारी कोशिकाएं** (basal cells) होती हैं, दूसरे **ससटेंटेकुलर कोशिकाएं** (sustentacular cells) नामक आलम्बी कोशिकाएं और तीसरे वास्तविक रसोग्राही **घ्राण संवेदी कोशिकाएं** होती हैं (चित्र 10.20)। प्रत्येक संवेदी कोशिका के शिखर सिरे पर सिलिया का एक गुच्छा बना होता है और यह गुच्छा ससटेंटेकुलर कोशिका से स्रावित श्लेष्म में घिरा होता है और ये कोशिकाएं अपने ऐक्सॉनों द्वारा जो अस्थिल चालनीरूप प्लेटों (cribriform plates) में से होकर गुज़राते है, सीधे घ्राण बल्बों से सम्पर्क बनाती हैं।

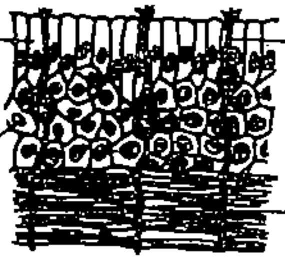

चित्र 10.20 : घ्राण एपिथीलीयम की कोशिका संघटना। संवेदी कोशिकाएं ही वास्तविक तंत्रिका कोशिकाएं होती हैं जो एपिथीलियम में प्रवेश कर जाती हैं और जिसमें रूपांतरित डेन्ड्राइट होते हैं।

अधिसंख्य मछलियों में घ्राण संवेद ग्राही युग्मित वाले गढ़ों में गड़े होते हैं जिन्हें नासा-कोष (nasal sacs) कहते हैं। मछली के तैरते जाने के दौरान रसायनों से युक्त जल इन थैलों में अंदर-बाहर आता जाता रहता है। चतुष्पादों में एक छोटा बाहरी छिद्र जिसे नासाछिद्र (naris) कहते हैं, प्रत्येक नासा मार्ग से जुड़ा होता है और यह नासा मार्ग पीछे की ओर

भीतरी नासा छिद्र (internal naris) के माध्यम से मुख में खुलता है। ऐम्फ़िबियनों, कुछ रेप्टाइलों तथा स्तनियों में घ्राण एपिथीलियम का एक पृथक और स्पष्ट क्षेत्र एक विशेष वोमेरोनेज़ल अंग यानि जैकबसन अंग की वोमेरोनेज़ल एपिथीलियम के रूप में बन जाता है (चित्र 10.21 देखिए)।

वोमेरोनेज़ल अंग अधिकतर कछुओं, मगरमच्छों, पक्षियों, कुछ चिमगादड़ों, प्राइमेटों तथा जलीय स्तनियों में मौजूद नहीं होता। वोमेरोनेज़ल अंग एक सहायक घ्राण तंत्र होता है और इसकी संवेदी कोशिकाएं माइक्रोविलाई द्वारा अवकाशिका में उभरी होती हैं। इस तंत्र का तंत्रिका परिपथन भी पृथक होता है और घ्राण तंत्रिका तंत्र के समांतर चलता जाता है।

गंध का संवेदन मछलियों में सुविकसित होता है मगर चिमगादड़ों, पक्षियों एवं प्राइमेटों में वह गौण संवेद होता है। जलीय कशेरुकियों में जल का एकदिशावर्ती प्रवाह सुनिश्चित करता है कि घ्राण एपिथीलियम द्वारा पता चला लिए गए रसायनों को आगे बहा लिए जाने के बाद लगातार नए जल का प्रवाह बना रहे। चतुष्पादों में जल का स्थान वायु ने ले लिया है और नासाछिद्रों में से प्रवाहित वायु फेफड़ों में जाने से पहले घ्राण एपिथीलियम पर से आवश्यक रूप से जाती है। स्थलीय कशेरुकियों में नाक द्वारा जोर से सांस भीतर खींचने से नासा कक्ष में वायु का आना-जाना अधिक मात्रा में होता है और इस प्रकार प्राणी पर्यावरण की गंध का अनुमान लगा लेता है।

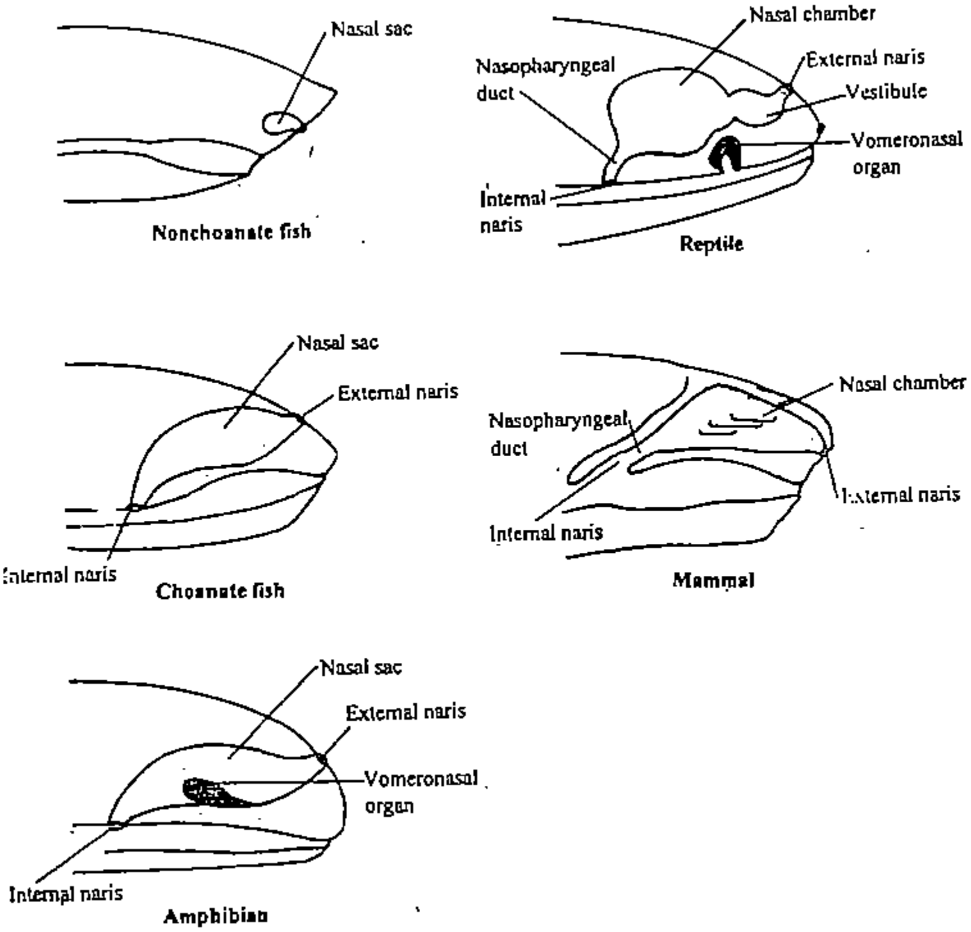

चित्र 10.21 : कशेरुकियों में घ्राण अंग तथा वोमेरोनेज़ल अंग। ध्यान दीजिए कि वोमेरोनेज़ल अंग मछलियों में नहीं होता।

बोध प्रश्न 6

क. शलाकाओं और शंकुओं का क्या कार्य है?

ख. झिल्लीमय लैबिरिंथ तथा अस्थिल लैबिरिंथ के बीच की गुहा में .... भरा होता है।

ग. कान के कौन से भाग का कार्य संतुलन संवेद ग्रहण करने से है?

घ. स्तनियों के मध्य कान की तीन हड्डियों के नाम बताइए।

च. लेगीना स्तनियों में .... के रूप में मौजूद होती है।

छ. पैराइटल नेत्र का क्या कार्य है?

ज. कान में पायी जाने वाली श्रवण के लिए उत्तरदायी संवेदी कोशिकाएं क्या कहलाती हैं?

झ. भीतरी कान के गुरुत्व संवेदग्राही क्या कहलाते हैं?

अगले भाग में कुछ विशेषित संवेदी अंगों की चर्चा की जाएगी जो केवल कुछ विशिष्ट कशेरुकी वर्गों में ही पाए जाते हैं।

10.7 विशेषित संवेदी अंग

कुछ संवेदी संरचनाएं सबसे अलग और इतनी जटिल होती हैं कि उन्हें विशेष संवेदक कहते हैं जैसे, विद्युतग्राही, पार्श्व रेखा तंत्र, सांपों के गर्त अंग के तापग्राही एवं प्रतिध्वनि-निर्धारण (echolocation) तंत्र। आइए पहले हम मछलियों के पार्श्व रेखा तंत्र का विवेचन करते हैं।

10.7.1 मछलियों का पार्श्व रेखा तंत्र

जल के गहरे कम्पनों तथा धाराओं अथवा जल-गतियों जिनमें स्वयं प्राणी द्वारा उत्पन्न गौण धाराएं भी शामिल हैं, द्वारा पैदा हुए उद्दीपनों के संवेद ग्रहण पार्श्व-रेखा अंगों के कार्यों में शामिल हैं। पार्श्व रेखा तंत्र अधिसंख्य साइक्लोस्टोमों, अन्य मछलियों (चित्र 10.22 a) तथा जलीय ऐम्फ़िबियनों में उनकी त्वचा के भीतर होता है मगर स्थलीय कशेरुकियों में यह नहीं होता। पार्श्व रेखा तंत्र के संवेदग्राही न्यूरोमास्ट होते हैं। (देखिए बॉक्स 10.1)।

मछलियों के न्यूरोमास्टों की भूमिका के विषय में मतभेद रहा है। फिर भी माना जाता है कि इनका कार्य गौण श्रवण, ताप ग्रहण एवं रासायनिक संवेद ग्रहण के रूप में भी है। मछली के परिवेश में नानाविध प्रकार के विक्षोभ न्यूरोमास्टों को सक्रिय कर देते हैं मगर देह सतह पर गति करता हुआ जल सर्वाधिक उत्तेजना प्रदान करता है। इसके संवेदी रोम दो प्रकार की जलधाराओं का पता लगा सकते हैं, एक तो शीर्ष से पूंछ की ओर बहता हुआ जल और दूसरा पूंछ से सिर की ओर बहता हुआ जल। न्यूरोमास्ट अपनी तंत्रिकाओं में से जैव विद्युत् विभवों की एक स्थायी स्वत:जात शृंखला चलाते जाते हैं तथा उत्तेजन के दौरान इसकी लयबद्धता बदलती है। संवेदी कोशिकाएं नाशपाती के आकार की होती हैं और उनके मुक्त सिरों पर रोम-सरीखे प्रवर्ध होते हैं (चित्र 10.22 c)। न्यूरोमास्टो में VII वीं और X वी कपाल तंत्रिकाओं द्वारा आपूर्ति होती है। न्यूरोमास्टों से सम्पर्क बनाने वाली नालें आदिम शार्कों में खुली खांचों के रूप में होती हैं जब कि होलोसेफ़ैलाई में वे पूरी तरह खुले होते हैं। अधिकतर इलास्मोब्रैंकों तथा टीलियोस्टों में पार्श्व रेखा तंत्र श्लेष्म से भरी बंद नलियों के रूप मे होते हैं। ये थोड़े थोड़े अंतरालों के बाद नलिकाओं के माध्यम से बाहर

को खुली होती हैं (चित्र 20.26 b)। पार्श्व रेखा तंत्र सतही तरंगों तथा संकेंद्रिक ऊर्मिकाओं (ripples) के लिए संवेदनशील होता है जिससे मछलियां जल में अपने शिकार का पता लगा लेती हैं। पार्श्व रेखा तंत्र को बाहर निकाल देने अथवा उसे अवरुद्ध कर देने पर मछलियां अपना दिशा-चालन खो बैठती हैं और उनकी समूहन व्यवहार क्षमता समाप्त हो जाती हैं।

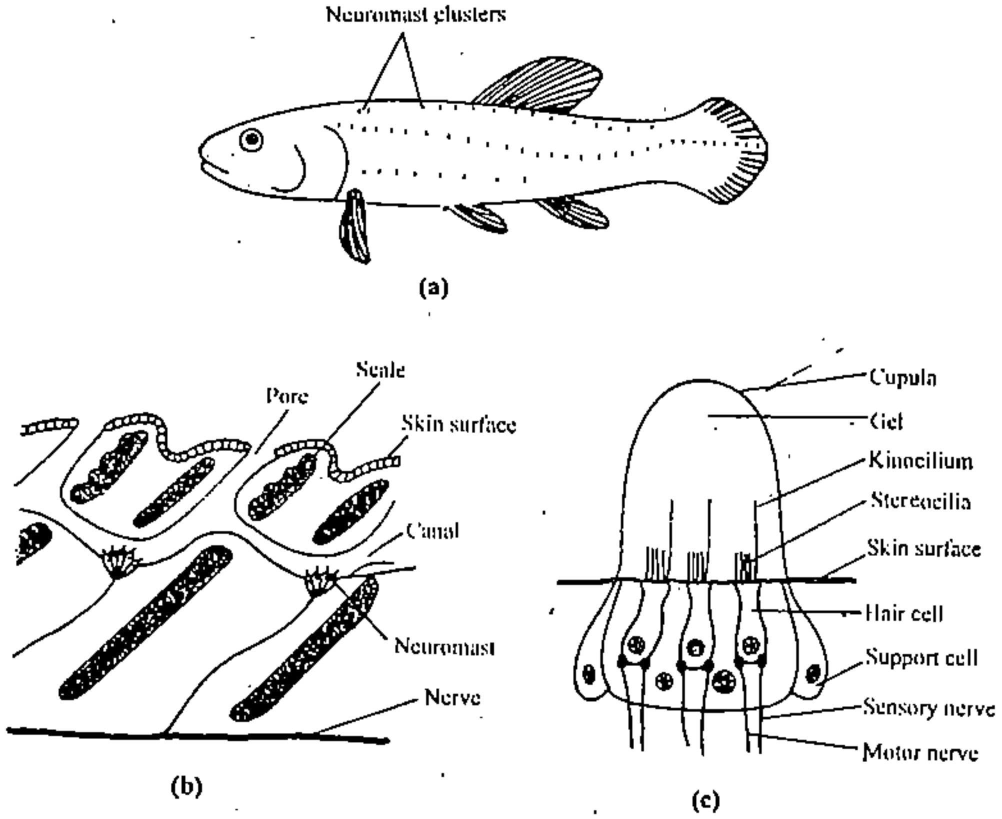

चित्र 10.22 : a) मछली में पार्श्व रेखा तंत्र। (b) नाल न्यूरोमास्ट, हरेक नाल बाहर एक छिद्र द्वारा खुलती है। (c) बाहरी न्यूरोमास्ट।

मछलियों में विद्युत् ग्रहण

काफी हद तक सहमति है कि न्यूरोमास्ट तंत्र जलधाराओं का पता लगाने का अंग तो होता है, साथ-साथ उसका एक भाग धीमे विद्युत् विभव के प्रति भी अनुक्रियाशील होता है। इससे प्राप्त सूचना से मछली को स्वयं को दिक्विन्यस्त (orient) करने, शत्रुओं से बच निकलने, और समूहन में भाग ले सकने में सहायता मिलती है। अधिकतर मछलियां पेशियों के संकुचन के समय इतना विद्युत् विभव पैदा कर लेती हैं जिसके कारण उनकी उपस्थिति का पता चल जाता है। अन्य मछलियां विशेष रूपांतरित पेशियों अथवा ऊतकों द्वारा, जिन्हें वैद्युत् अंग कहा जाता है, बहुत अधिक शक्तिशाली विद्युत् क्षेत्र बना सकती हैं और जब भी कोई वस्तु इस क्षेत्र में घुसती है तो उससे पैदा हुए विक्षोभों को मॉनिटर कर सकती हैं। जिन मछलियों में विद्युत् अंग पाए जाते हैं वे उनका उपयोग या तो अन्य सदस्यों को संकेत देने में करती हैं या स्वयं की सुरक्षा करने में। स्थलीय प्राणियों में विद्युत्ग्राही नहीं होते क्योंकि विद्युत्धाराएं वायु में इतनी आसानी से संवहनित नहीं होती जितनी कि जल में।

0.7.2 सांपों के गर्त-अंग

सरीसृपों के गर्त ग्राहियों तथा मछलियों के बाह्य न्यूरोमास्टों में एक अति स्पष्ट समानता पायी जाती है। अतः ऐसा अनुमान है कि गर्त-अंग न्यूरोमास्टों के ही क्रमविकासीय व्युत्पाद हैं। मगर साथ ही इनमें मेरू तंत्रिका अथवा V वीं कपाल तंत्रिका द्वारा तंत्रिकायन से इस

परिकल्पना का मेल नहीं खाता।

साँपों की दो फैमिलियों वाइपरिडी (Viperidae) तथा बोआइडी (Boidae) में विशेषित ताप ग्राही होते हैं जो गढ़ों के रूप में देह पर पाए जाते हैं। यह गढ़े अर्थात् गर्त देह की सतह पर एपिडर्मी शल्कों के बीच बीच में खुलते हैं। इन गर्तों में मुक्त तंत्रिकांत होते हैं जो अवरक्त (infrared) विकिरण द्वारा उत्तेजित होकर सूचना मध्यमस्तिष्क में दृक् छद तक पहुंचाते हैं। एपिकल गर्त (apical pit) देह की सतह पर अधिकतर धड़ पर छितराए हुए पाए जाते हैं तथा ये स्पर्श उद्दीपन के अंत:निवेश के लिए स्थल प्रदान करते हैं। बोआइडी फैमिली के अजगरों तथा बोआ सर्प में मुक्त तंत्रिकांत ओंठ के साथ साथ एपिडर्मी शल्कों के बीच बीच पाए जाते हैं, इसलिए इन्हें लेबियल गर्त (labial pits) कहते हैं। उप फैमिली क्रोटलिनी (Crotalinae) जिसमें वाइपर (घोणस) सर्प आते हैं, में शीर्ष पर विशेषित गर्त ग्राही पाए जाते हैं। ये गर्त लोरियल शल्क के पश्च क्षेत्र में बने होते हैं (ये शल्क बाह्य नासाछिद्र तथा आँख के बीच में स्थित होते हैं) इन्हें लोरियल गर्त (loreal pits) या आनन गर्त (facial pits) कहते हैं। ये गर्त आगे को झुके हुए कई मिलीमीटर चौड़े तथा उतने ही गहरे होते हैं। (चित्र 10.23 a तथा b साथ ही खंड 1 की इकाई 3 का चित्र 3.31 भी देखिए) यह अजगर के लेबियल गर्त से भिन्न होते हैं। इनमें संवेदी तंत्रिकांत गर्त के मध्य में एक पतली गर्त झिल्ली में पड़ी रहती है न कि गर्त के तले में जैसा कि अजगर के गर्त में होता है।

इनके भीतर की गुहा एक भीतरी और एक बाहरी कक्ष में विभाजित होती है। भीतरी कक्ष और सांप की खाल के बीच एक वाहिनी बनी होती है जो दो कक्षों के बीच में दाब के विभेदनी परिवर्तनों को होने से रोकती है। पृथक्कारी झिल्ली में त्रिक तंत्रिका से तंत्रिकायन होता है जो सांपों में शीर्ष संवेदकों से सूचना को मस्तिष्क में पहुंचाने का काम करती है। प्रयोग द्वारा पाया गया है कि जैसे-जैसे ग्राही गर्म होते जाते हैं वैसे-वैसे तंत्रिका आवेगों की आवृत्ति भी बढ़ती जाती है। ग्राही के ठंडे होते जाने के दौरान जो उतार-चढ़ाव होता है उसे गर्त जान लेता है।

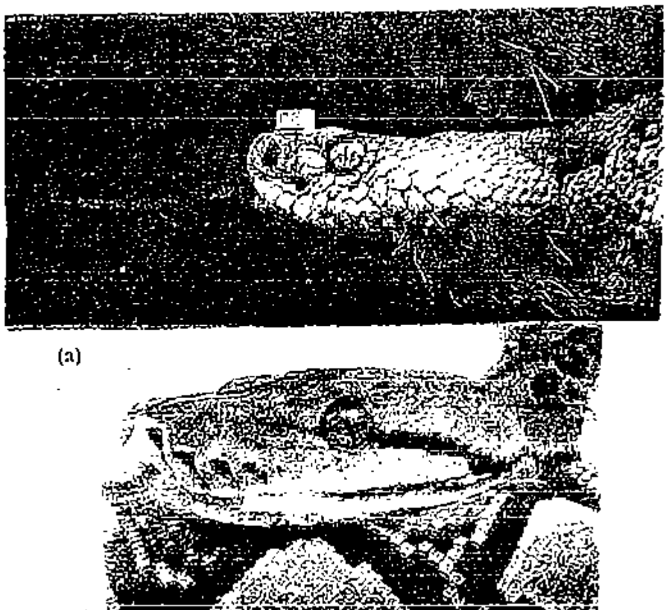

(a)

(b)

चित्र 10.23 : सांपों में तापग्राही गर्त अंग a) वाइपर में आनन गर्त b) अजगर में लेबियन गर्त।

क्योंकि पक्षी और स्तनी उष्ण रक्तीय होते हैं इसलिए उनके शरीर से अवरक्त विकिरण

निकलता है तथा तापमान में 0.003°C तक का परिवर्तन गर्त अंगों में पता चल जाता है। देखा गया है कि परिधीय तंत्रिका तंत्र द्वारा प्राप्त किए गए उद्दीपन के बाद इलेक्ट्रोएनसेफ़ैलोग्राम (EEG) के प्रतिरूप में लगातार परिर्वतन आता है जिसे उत्पन्न विभव (evoked potential) कहते हैं। यह भी पाया गया कि अवरक्त उद्दीपन के प्रभाव से ग्राही के माइटोकॉण्ड्रिया बड़े हो जाते हैं तथा जब उन्हें ठंडे पिण्ड से प्रभावित किया जाता है तब ये माइटोकॉण्ड्रिया संघनित हो जाते हैं।

10.7.3 चमगादड़ों में प्रतिध्वनि निर्धारण

स्तनियों में चमगादड़ों और सिटेशियनों ने श्रवण को एक फ़ासला यानि दूरी जान सकने का संवेद बना लिया है ताकि मार्ग निर्देशन किया जा सके। देखा गया है कि कीटभक्षी चमगादड़ें उच्च आवृत्ति की ध्वनि पैदा करती हैं। मानव कान इन ध्वनियों को नहीं सुन सकता। चमगादड़ें वस्तुओं का बोध उन ध्वनियों को निकाल कर करती हैं जो वस्तुओं से परावर्तित होतीं और फिर चमगादड़ के कानों द्वारा पता लगा ली जाती हैं। इससे चमगादड़ें पूर्ण अंधेरे में भी बाधाओं को जान लेती है और उनसे बच सकती हैं।

वेस्पर्टिलियोनिड (vespertilionid) चमगादड़ें बहुत लघु ध्वनि आवेग पैदा करती हैं जिनमें से प्रत्येक आवेग लगभग एक से दो मिलिसेकंड तक ही बना रहता है। ये पराध्वनिक प्रस्फोट लैरिंक्स (स्वरकोश) में पैदा होते तथा मामूली से खुले मुख द्वारा बाहर को छोड़े जाते हैं। ध्वनि निकालने और फिर प्रतिध्वनि के रूप में उसके लौट आने के समय के अंतर को ये प्राणी जान जाते हैं। अलग-अलग कानों में प्रतिध्वनि के लौटने के समयांतर से परावर्तनकारी वस्तु की दिशा के विषय में सूचना मिल जाती हैं।

हॉर्सशू चमगादड़ों (horseshoe bats) (राइनोलोफ़िडी, Rhinolophidae तथा हिप्पोसाइडेरिडी, Hipposideridae) में उनकी नाक के ऊपर विचित्र प्रकार की त्वचीय बहिर्वृद्धियाँ होती हैं (चित्र 10.24) और वे लगातार उच्च आवृत्ति वाली पराध्वनिक आवाजें निकालते हैं। ये इन आवाज़ों को, मुख बंद रखे हुए भी अथवा कीटों को पकड़ते एवं खाते हुए भी निकालती रह सकते हैं। नथुनों को घेरते हुए बने घोड़े की नाल की आकृति के पल्ले (फ़्लैप) पराध्वनि आवाज़ों को निकालते समय एक ध्वनि शंकु की तरह इस्तेमाल किए जाते हैं, तथा इन पल्लों की वक्रता को पेशी संकुचन द्वारा घटाया-बढ़ाया जा सकता है। इस प्रकार ये प्राणी इस स्थिति में होते हैं कि वे ध्वनि परावर्तनकारी वस्तु की भिन्न दूरियों के अनुसार ध्वनि शंकु की चौड़ाई घटा-बढ़ा सकते हैं और वे अपनी ध्वनि किरण-पुंज को आगे-पीछे करके अपने परिवेश की जानकारी ले सकते हैं।

रूज़ेटस (*Rousettus*) जीनस के गुफ़ावासी सदस्य यदि पर्याप्त प्रकाश उपलब्ध हो तो अपनी बड़ी-बड़ी आंखों की सहायता से अपना दिशा-स्थापन कर सकते हैं। सम्पूर्ण अंधेरे में वे पराध्वनिक चीखें निकाल सकते और पराध्वनियों के लिए उनका इस्तेमाल कर सकते हैं। ये ध्वनियां लैरिंक्स में पैदा नहीं की जातीं बल्कि जीभ के चटखाने से उत्पन्न होती हैं।

विशेषित चमगादड़ों में सबसे अधिक विस्मयकारी स्पीशीज़ वे हैं जो मछलियों का आहार करती हैं। इन चमगादड़ों में एक सुविकसित आवृत्ति मॉडुलित सोनार (frequency modulated sonar) तंत्र होता है। परन्तु वायु से जल में जाते हुए तथा जल से वायु में आते हुए ध्वनि की अपनी बहुत सी ऊर्जा की हानि हो जाती है।

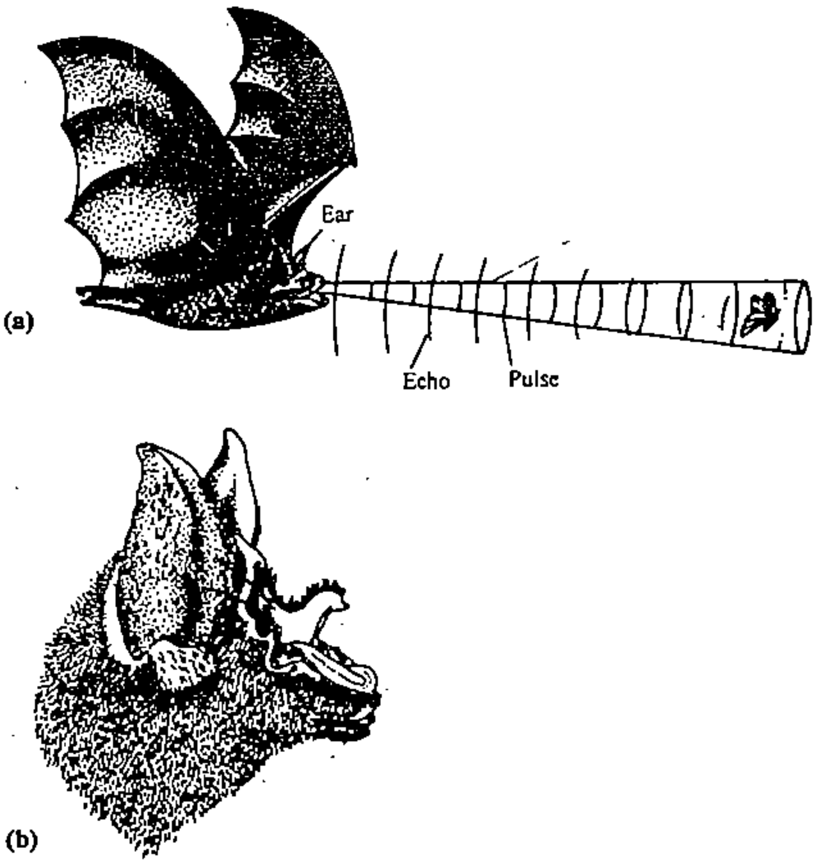

चित्र 10.24 : छोटा भूरा चमगादड़ *मायोटिस ल्यूसिफ़गस* (*Myotis lucifugus*) द्वारा एक कीट का पराध्वनि निर्धारण। इसमें FM स्पंदनों के प्रसारण के लिए नाक में रूपांतरण हो गया है।

बोध प्रश्न 7

रिक्त स्थानों में उपयुक्त शब्द भरिए:-

i) पार्श्व रेखा अंगों में .... नामक संवेदी पैपिला होते हैं जो आलम्बी कोशिकाओं द्वारा घिरे .... के बने होते हैं।

ii) सांपों के गर्त अंग .... ग्राही होते हैं।

iii) .... एक विधि है जिसे चमगादड़ें अपने को अवकाश में सही दिशा बनाए रखने में इस्तेमाल करती हैं जिसमें वे ध्वनि के और .... के रूप में उसके लौटने के बीच का अंतर पता लगाती हैं।

iv) गुफ़ावासी चमगादड़ पराध्वनिक चीखें .... से पैदा करती हैं।

10.8 सारांश

- लगभग समस्त तंत्रिका तंत्र, तंत्रिका नली तथा तंत्रिका शिखरों से जो भ्रूणीय परिवर्धन में बहुत आरम्भ में ही बन जाती हैं, व्युत्पन्न होता है।

- तंत्रिका तंतु दो प्रकार के होते हैं: मेडुलित तथा मेडुला विहीन। मेडुलित तंतु देखने में सफ़ेद होते है तथा मेडुला विहीन तंतु धूसर होते हैं। तंत्रिका तंतुओं के बंडलों को तंत्रिकाएं कहते हैं, जबकि तंत्रिका कोशिका कायों के समुच्चयों को गैंग्लियान कहते हैं।

- तंत्रिका तंत्र तीन मुख्य भागों में विभाजित होता हैं (क) केंद्रीय तंत्रिका तंत्र जिसमें आते हैं मस्तिष्क और मेरू रज्जु; (ख) परिधीय तंत्रिका तंत्र जिसमें कपाल तंत्रिकाएं

और मेरू तंत्रिकाएं आती हैं, तथा (ग) स्वायत्त तंत्रिका तंत्र जिसमें कुछ ख़ास कपाल तंत्रिकाओं और मेरू तंत्रिकाओं का कुछ भाग होता है और साथ में कुछ पृथक गैंग्लिया होते हैं, यह तंत्र अनैच्छिक नियंत्रण के अंतर्गत आने वाली शारीरिक संरचनाओं के साथ संबंधित होता है।

- निम्नतर कशेरुक प्राणियो में मस्तिष्क तथा मेरू रज्जु एक सीधी रेखा में बने होते हैं। उच्चतर प्राणी उदाहरणों में आनमन तथा मोड़ होते हैं जिनके कारण कपाल की अपेक्षाकृत कम जगह के भीतर तंत्रिका ऊतक की वृहत्तर संहति समा सके।

- सबसे अधिक परिवर्तन टेलेन्सेफ़ेलॉन के विकास में होता है जो अग्रमस्तिष्क का एक भाग होता है। अग्रमस्तिष्क का आगे का भाग मुख्यत: घ्राण यानि सूंघने के संवेद से संबंधित होता है। डाइएन्सेफ़ेलान के फ़र्श जिसें हाइपोथैलेमस कहते है, में वे केंद्र होते हैं जो स्वायत्त तंत्रिका तंत्र की क्रियाओं को अन्य तंत्रिका ऊतकों की क्रियाओं के साथ समाकलित करते हैं। डाइएन्सेफ़ेलॉन का आगे का भाग एपिथीलियल बना रहता है मगर उसमें उग्र रक्तक जालक बन जाता है जबकि पश्च भाग से पैराइटल तथा पिनियल बहिर्वृद्धियां बनती हैं। फ़र्श से निकले एक अंतर्वलन इन्फ़ंडिबुलम से पिट्यूटरी ग्रंथि की पश्च पालि बनती है।

- मीसेन्सेफ़ेलॉन के पृष्ठ भाग से युग्मित दृक् पालियां बनती हैं। पश्च मस्तिष्क जिसे मेटेन्सेफ़ेलॉन कहते हैं के अग्र भाग से अनुमस्तिष्क बनता है जो शरीर की तंत्रिका पेशीय क्रियाविधि का समन्वय करता है। मायेलेन्सेफ़ेलॉन अथवा मेडुला ऑब्लांगेटा पश्चमस्तिष्क का पिछला भाग होता है। इसकी छत एपिथीलियमी बनी रहती है और उससे पश्च रक्तक जालक बनता है।

- मस्तिष्क और मेरू रज्जु को घेरते हुए सुरक्षाकारी झिल्लियां होती हैं जिन्हें तानिकाएं अथवा मेनिंजेज़ कहते हैं। मेरू तंत्रिकाएं युग्मित होती हैं। अधिकतर मेरू तंत्रिकाओं से तीन शाखाएं निकलती हैं।

- कपाल तंत्रिकाएं जो मस्तिष्क से निकलती हैं, उल्ब विहीन कशेरुकियों में 10 तथा उल्बी कशेरुकियों में 12 होती हैं। कुछ कपाल तंत्रिकाएं पूर्णत: संवेदी होती हैं। (I, II, तथा III) तथा अन्य पूर्णत: प्रेरक होती हैं। (III, IV, VI, XI, XII) और शेष (V, VII, IX, X) मिश्रित (संवेदी और प्रेरक) होती हैं।

- स्वायत्त तंत्रिका तंत्र दो भागों अनुकम्पी तथा परानुकम्पी का बना होता है। इनमें से प्रत्येक में गैंग्लियानपूर्वी तथा गैंग्लियानपश्चीय तंत्र होते हैं। गैंग्लियानपूर्वी- स्वायत्त तंत्र को अक्सर वक्षकटि बहि:प्रवाह कहते हैं जब कि परानुकम्पी तंत्र को कपाल-त्रिक बहि:प्रवाह कहा जाता है।

- संवेद ग्राही अंग ऐसी संरचनाएं होती हैं जो निश्चित उद्दीपनों के प्रति अनुक्रिया कर सकती है जिससे आवेग पैदा होता हैं और फिर तंत्रिका तंतु इन आवेगों को आगे केंद्रीय तंत्रिका तंत्र में प्रेषित कर देते हैं। संवेदग्राही अंगों को भीतरी और बाहरी संवेदी अंगों में वर्गीकृत किया जाता है।

- कशेरुकी आंख का अन्य फ़ाइलमों में कोई समजात नहीं पाया जाता है यह पहली बार साइक्लोस्टोमों में प्रकट होती हैं।

- कशेरुकी आंख में प्रकाश को रेटिना की विविध कोशिकीय परतों में से होकर गुज़रना होता है उसके बाद ही वह संवेद ग्राहियों यानि शलाका और शंकु कोशिकाओं को उत्तेजित कर सकता है। छह चौड़ी पट्टी जैसी पेशियां आंख को गति प्रदान करती हैं। विभिन्न कशेरुकियों में आंखें से संबंधित अन्य सहायक संरचनाएं होती हैं जो प्रत्येक प्राणी को उसकी विशिष्ट पर्यावरण संबंधी आवश्यकताओं के लिए बेहतर तौर पर अनुकूलित करती हैं।

- कशेरुकी कान, कम से कम उच्चतर कशेरुकियों में तो दोहरी तौर पर यानि संतुलन बनाने और सुनने के लिए काम करता है। कान के संवेदी भाग को भीतरी कर्ण अथवा मैम्ब्रेनस लैबिरिंथ कहते हैं। संतुलन से संबंधित भाग में यूट्रिकुलस, सैकुलस, एंडोलिम्फैटिक वाहिनी तथा तीन अर्धवृत्त नालें होती हैं। सुनने से संबंधित भाग लेगीना होता है। स्तनियों तथा पक्षियों में यही भाग कुंडलित कॉक्लिया होता है।

- सूंघने के संवेद के ग्राही मछलियों में घ्राण एपिथीलियम तक सीमित रहते हैं तथा चतुष्पादों में नासीय नाल के घ्राण एपिथीलियम तक। उच्चतर कशेरुकियों में नासीय मार्गों की दीवारों से वलनों तथ सर्पिलों ("ट्यूबिनेटों'' अथवा "कॉन्की'') के रूप में बहिर्वृद्धियां निकलती हैं जो श्वसन एवं घ्राण क्षेत्रों की सतह को बढ़ा देती हैं।

- न्यूरोमास्ट अंग तरल से भरे गढ़े होते हैं जिसमें संवेदी तथा आलम्बी कोशिकाएं होती हैं एवं संवेदी तंत्रिकांत भी होते हैं। ये या तो बाहर को खुलते हो सकते हैं या नालों के भीतर बंद स्थित हो सकते हैं। इनसे बने पार्श्व रेखा तंत्र केवल मछलियों में एवं जलीय ऐम्फिबियनों में ही पाए जाते हैं। इनके कार्यों का संबंध विद्युत् ग्राहिता एवं यांत्रिग्राहिता से है। न्यूरोमास्ट अंगों में कपाल तंत्रिकाएं VII, IX तथा X द्वारा तंत्रिकायन होता है।

- सांपों में अस्पष्ट समजातता वाले गर्त ग्राही पाए जाते हैं। एपिकल गर्त देह शल्कों के शिखर पर होते हैं। गर्त अंग घोणसों (वाइपर) तथा अजगरों के शीर्ष पर होते हैं। एपिकल गर्त कदाचित यांत्रिग्राही होते हैं जबकि गर्त अंग तापग्राही होते हैं।

- प्रतिध्वनि निर्धारण सीटेसियन तथा चमगादड़ों में होता है। परावर्तित ध्वनि तरंगों का उपयोग करके ये अपना दिशा विन्यास कर लेती हैं। माइक्रोकाइरॉप्टेरन चमगादड़ों में यह विधि बहुत अच्छी विकसित होती है, ये चमगादड़ें उच्च आवृत्ति वाली एवं लघु तरंगदैर्ध्यो की ध्वनियां पैदा करती हैं।

10.9 अंत में कुछ प्रश्न

1. तंत्रिका तंत्र के मूल विभाजन क्या-क्या होते हैं? उनके उपविभाजनों पर टिप्पणी लिखिए।

....

....

....

....

....

2. उन आनमनों के नाम तथा उनके स्थान बताइए जो कशेरुकी केंद्रीय तंत्रिका तंत्र में पाए जाते हैं।

....

....

....

3. विशिष्ट संवेद की कपाल तंत्रिकाओं के नाम बताइए, तथा उन तंत्रिकाओं के नाम भी जो नेत्र पेशियों में आपूर्ति करती हैं।

....

....

....

4. मेरू रज्जु के पृष्ठ एवं अधर स्तम्भों के क्या-क्या घटक होते हैं?

....

....

....

5. मस्तिष्क का कौन सा भाग सभी कशेरुकियों में सुविकसित होता है और क्यों?

....

....

....

6. गंध, दृष्टि और श्रवण के अनिवार्य संवेदों का संबंध मस्तिष्क के किस-किस भाग से होता है।

....

....

....

7. न्यूरोमास्ट क्या होते हैं? न्यूरोमास्टों के तीन कार्य बताइए।

....

....

....

8. रेप्टाइलों में गर्त अंग क्या होते हैं? वाइपर तथा अजगर अपने शिकार का किस प्रकार पता लगाते हैं?

....

....

....

9. प्रतिध्वनि निर्धारण की परिघटना के विषय में आप क्या समझते हैं?

....

....

....

10. मछलियों में विद्युत् ग्राहिता क्या होती है? इसके कार्यात्मक महत्व पर टिप्पणी लिखिए।

....

....

....

10.10 उत्तर

बोध प्रश्न

1. क) मस्तिष्क का अधिकतर भाग मेडुलित पथों को छोड़कर, धूसर द्रव्य का बना होता है जबकि मेरू रज्जु धूसर तथा श्वेत दोनों द्रव्यों का बना होता है।

ख) माइलिन आच्छदों का स्रवण श्वान कोशिकाओं तथा ओलाइगोडेन्ड्राइटों से होता है।

ग) माइलिन आच्छद मस्तिष्क और मेरू रज्जु दोनों में पाए जाते हैं।

घ) श्वेत और धूसर द्रव्य मस्तिष्क में परस्पर मिश्रित होकर जालिकीय रचना बनाते हैं।

2. क) टेलेन्सेफेलॉन - पार्श्व निलय

डाइएन्सेफेलॉन - तीसरा निलय

रॉम्बेन्सेफेलॉन - चौथा निलय

मेडुला ऑब्लांगेटा - मायेलोसील

ख) i) संवेदी

ii) पृष्ठ मूल

iii) प्रेरक न्यूरॉन

iv) पृष्ठ रज्जुभ

v) अधर रज्जुभ

3. मेटेन्सेफेलॉन - अनुमस्तिष्क

मीज़ेन्सेफेलॉन - दृक् छद

डाइएन्सेफेलॉन - एपिथैलेमस, हाइपोथैलेमस

टेलेन्सेफ़ेलॉन - थैलेमस, प्रमस्तिष्क

मायेलेन्सेफेलॉन - मेडुआ ऑब्लांगेटा

ख) i) मेनिक्स प्रिमिटिवा

ii) ड्यूरामैटर तथा पिया एरेक्नाइड

iii) ड्यूरामैटर, पियामैटर ऐरेक्नाइड

4. क) i) O, (टर्मिनल), I, (घ्राण); II) (दृक्); VIII) (श्रवण)

ii) स्वायत्त तंत्रिका तंत्र

ख) स्वायत्त प्रेरक

ग) प्यूपिलों का फैलना - अनुकम्पी

हृदय स्पंदन में वृद्धि - अनुकम्पी

श्वसनियों का संकीर्णन - परानुकम्पी

मूत्राशय की पेशियों का संकुचन - परानुकम्पी

रक्त शर्करा में वृद्धि - अनुकम्पी

रक्त के स्कंदन समय में कमी - अनुकम्पी

5. i) स्तनी

ii) रेप्टाइलों

iii) स्तनियों

iv) स्तनियों

6. क) शलाकाएं ख़ास तौर से प्रकाश के लिए संवेदी होती हैं। शंकु भी प्रकाशग्राही होते हैं मगर प्रकाश के लिए शलाकाओं से कम संवेदी। शंकु दृष्टि सूक्ष्मता तथा रंग दृष्टि के लिए उत्तरदायी हैं।

ख) पेरिलिम्फ

ग) भीतरी कान अथवा वेस्टिबुलर उपकरण

घ) मैलियस, इंकस, स्टेपीज़

च) कॉक्लिया

छ) यह प्रकाश का मात्रामापी होता है तथा प्रतिबिम्ब नहीं बनाता।

ज) कॉर्टी-अंग

झ) सैकुलस तथा यूट्रिकुलस

7. i) न्यूरोमास्ट, रोम कोशिकाएं

ii) अवरक्त किरणें

iii) प्रतिध्वनिनिर्धारण, प्रति ध्वनि

iv) जीभ चटकाना

अंत में कुछ प्रश्न

1. तंत्रिका तंत्र के मूल उपविभाजन इस प्रकार हैं:-

   i) केंद्रीय तंत्रिका तंत्र, तथा

   ii) परिधीय तंत्रिका तंत्र

केंद्रीय तंत्रिका तंत्र के उपविभाजन हैं मस्तिष्क और मेरू रज्जु, तथा परिधीय तंत्रिका तंत्र में मेरू तंत्रिकाएं, कपाल तंत्रिकाएं और स्वायत्त तंत्रिकाएं आती हैं।

2. कशेरुकियों में तीन प्रकार के आनमन पाए जाते हैं

   i) शीर्ष आनमन जो अग्रमस्तिष्क तथा मध्यमस्तिष्क के बीच पाया जाता है।

   ii) ग्रीवा आनमन जो मेडुला ऑब्लांगेटा तथा मेरू रज्जु के संधि स्थल के समीप पाया जाता है।

   iii) पौंटीन आनमन जो मेटेनसेफ़ेलॉन के क्षेत्र में पाया जाता है।

3. टर्मिनल तंत्रिका, घ्राण तंत्रिका तथा दृक तंत्रिकाएं विशेष संवेदों की तंत्रिकाएं हैं। ऑक्यूलोमोटर, ट्रोक्लियर तंत्रिकाएं नेत्र पेशियों में आपूर्ति करती हैं।

4. मेरू रज्जु में पृष्ठ स्तम्भ ऊपरी दैहिक संवेदी और निचले अंतरंग संवेदी क्षेत्रों का बना होता है। अधर स्तम्भ ऊपरी अंतरंग प्रेरक तथा निचले दैहिक प्रेरक क्षेत्रों का बना होता है।

5. मायेलेन्सेफ़ेलॉन अथवा मेडुला मस्तिष्क का सबसे पुराना भाग होता है और सभी कशेरुकियों में सुविकसित होता है क्योंकि यह शरीर के अत्यावश्यक कार्यों का नियंत्रण करता है जिनमें अनैच्छिक कार्य तथा संतुलन शामिल हैं।

6. गंध संवेद अग्रमस्तिष्क के साथ जुड़ी है, दृष्टि मध्य मस्तिष्क के साथ और श्रवण पश्च मस्तिष्क के साथ।

7. न्यूरोमास्ट संवेदी पैपिला होते हैं जिन्हें आलम्बी कोशिकाएं घेरे रहती हैं, और ये त्वचा की सतह पर मौजूद होते हैं। न्यूरोमास्टों के तीन कार्य हैं। 1) लघु दूरी श्रवण कार्य, 2) ताप संवेदन तथा 3) रसायन संवेद।

8. रेप्टाइलों में पाए जाने वाले गर्त अंग तापसंवेदी होते हैं जो विकिरणशील ऊष्मा के प्रति अनुक्रिया करते हैं। सांप तापमान में बहुत मामूली से अंतर को तथा कई-कई फुट के फ़ासले पर उष्ण रक्तीय स्तनियों तक को पता लगा लेते हैं तथा इस प्रकार शिकार का पता लगा लेते हैं।

9. प्रतिध्वनि निर्धारण ऐसी परिघटना है जिसमें प्राणी परावर्तित ध्वनि के द्वारा अपना दिशा-स्थापन कर सकता है, बाधाओं से बच सकता है और अपने शिकार का पता लगा सकता है।

10. विद्युत्ग्राहिता मछलियों का एक विशेष संवेद तंत्र हैं, जिसके द्वारा प्राणी विद्युत् आवेग पैदा करता और अपने शिकार का पता लगा कर उसे निश्चेत कर सकता है। यह विद्युत्ग्राहिता उन्हें समूहन में तथा प्रजनन व्यवहार में भी सहायता प्रदान करती है।

इकाई 11 कंकाल तंत्र

इकाई की रूपरेखा

11.1 प्रस्तावना

उद्देश्य

11.2 कार्टिलेज तथा हड्डी

11.3 कंकाल का वर्गीकरण

अक्षीय कंकाल

उपांगीय कंकाल

11.4 मेंढ़क तथा खरगोश का कंकाल

मेंढ़क की करोटि

खरगोश की करोटि

मेढ़क का कशेरुक दण्ड

खरगोश का कशेरुक दण्ड

खरगोश की पसलियां तथा स्टर्नम

मेंढ़क तथा खरगोश की अंस मेखला

मेंढ़क तथा खरगोश की श्रोणि मेखला

पादों का कंकाल

11.5 कंकाल के प्रकार्यात्मक अनुकूलन

11.6 सारांश

11.7 अंत में कुछ प्रश्न

11.8 उत्तर

11.1 प्रस्तावना

आप नरम शरीर वाले प्राणियों के विषय में पढ़ चुके हैं। ये जैसे चाहें अपने शरीर को मोड़-तोड़ सकते हैं। वे बाधाओं से बचने के लिए बिलों तथा दरारों में से रेंगकर चल सकते हैं। जीवन के विकास के आरम्भ में यह क्षमता अवश्य ही लाभकारी जान पड़ती थी मगर हमेशा ही ऐसा नहीं था। इससे प्राणी के साइज़ पर एक बंधन बना रहा क्योंकि बड़े आकार के नरम शरीर को सधाना-संभालना आसान नहीं था। बड़े आकार के शरीर को एक आलम्ब चाहिए था ताकि वह नीचे को पिचक न जाए। और साथ ही इस आलम्बकारी संरचना को कड़ा होना भी जरूरी था। ऐसा होने के बाद ही वह एक निश्चित आकृति प्रदान करने के साथ-साथ शरीर के कोमल जीवनाधारी भागों को भी सुरक्षा प्रदान करने में सहायता कर सकता था। इसे संचलन में भी मदद कर सकनी चाहिए थी। जैसा कि आप जानते ही हैं संचलन में शरीर की गतियां होती हैं और इन गतियों का होना संकुचनशील ऊतक यानि पेशियों के सिकुड़ने और फैलने के द्वारा सम्पन्न होता है। पेशियों के संकुचन में मदद देने के लिए ज़रूरी है कि ये पेशियां कड़ी सतहों से जुड़ी हों। ये सभी आवश्यकताएं तीन तरीके से पूरी हो सकती थीं, एक तो काइटिनी कठोर संरचना के बनने से जैसा कि आर्थ्रोपोडा में, दूसरे, एक कैल्सियमी कवच का बनना जैसा कि मौलस्कों में, या फिर हड्डी अथवा कार्टिलेज (उपास्थि) के रूप में संयोजी ऊतक के उत्पाद के रूप में जैसा

कि कशेरुकियों में पाया जाता है। कवच अथवा काइटिन से अथवा कर्टिलेज या हड्डी से बनी आलम्बी संरचना को कंकाल कहते हैं।

प्राणियों में सामान्यत: दो प्रकार के कंकाल पाए जाते हैं- (a) बाह्य कंकाल (exoskeleton) जो प्राणी के शरीर के बाहर की ओर होता है और (b) अंत:कंकाल (endoskeleton) शरीर के भीतर होता है।

प्राणियों में पाया जाने वाला प्ररूपी बाह्य कंकाल वह है जो फ़ाइलम आर्थ्रोपोडा में पाया जाता है। यह काइटिनी प्रकृति का होता है और इसका स्रवण एपिडर्मिस से होता है। इसका कार्य शरीर को सुरक्षा प्रदान करना, शरीर को आलम्ब प्रदान करना और पेशियों के संलग्न होने के लिए कड़ी सतह प्रदान करना है। अकशेरुकियों में इन प्राणियों की विलक्षण सफलता का कारण अधिकतर इसी काइटिनी बाह्यकंकाल का होना रहा है। इस प्रकार के कंकाल में कुछ ख़ामियां भी रही हैं। एक ढीली-ढाली बाह्य कंकाली जैकेट-सदृश संरचना बहुत कारगर नहीं हो सकती। इसे बिल्कुल सटा-जुड़ा होना ज़रूरी था। सटा-जुड़ा होना भी जीव की वृद्धि पर प्रतिबंध स्वरूप होता है। और तो और, आर्थ्रोपोड का कंकाल एक मृत ऊतक होता है। आर्थ्रोपोडो ने इस कमी को दूर करने का जो तरीका निकाला उसमें वृद्धि करता जाता प्राणी अपने पुराने बाह्य कंकाल को उतार फेंकता और उसके स्थान पर अब पहले से अधिक बड़े हो गए शरीर के उपयुक्त एक नया वृहत्तर बाह्य कंकाल बना लेता है। इस प्रक्रिया को निर्मोचन (moulting) कहते हैं। ये प्राणी अपने जीवन-काल में अनेक बार निर्मोचन करते हैं। उदाहरण के लिए, काकरोच की निम्फ़ नामक अण्डस्फोटन पश्चीय अवस्थाएं तथा तितली का केटरपिलर लैंगिक परिपक्वता प्राप्त करने के पूर्व लगभग पांच बार निर्मोचन करते हैं। मौलस्कों का कैल्सियमी कवच उनके मैंटल (mantle) द्वारा एक बाहरी एपिडर्मिसी संरचना के रूप में स्रवित होता है। प्राणी के आकार में बढ़ते जाने के साथ-साथ यह कवच भी बढ़ता जाता है। कशेरुकियों में भी बाह्यकंकाल होता है जैसे कि शल्क, पिच्छ, तथा बाल, और ये सब भी एपिडर्मिस से ही बने होते हैं। ये दो प्रकार से सुरक्षा का कार्य करते हैं, एक तो शत्रुओं से बचाकर और दूसरे कठिन पर्यावरण की दशाओं से बचाकर। कशेरुकियों के भीतरी कंकाल को अंत: कंकाल (endoskeleton) कहते हैं। यह मीज़ोडर्मी उद्भव वाला एक सजीव ऊतक होता है तथा प्राणी की वृद्धि के साथ-साथ यह भी बढ़ता जाता है। यह प्राणी के कोमल भागों को एक साथ जोड़े रखने में सहायता करता है। शरीर के लिए एक यांत्रिक ढांचे के रूप में कार्य करते हुए यह प्राणी को एक निश्चित आकृति तथा दृढ़ता प्रदान करता है। साथ ही पेशियों के चिपकने के लिए भी यह एक दृढ़ सतह प्रदान करता है और शरीर के भीतर के जीवनाधारी अंगों को सुरक्षा भी प्रदान करता है। कशेरुकियों का अंत:कंकाल एक संयोजी ऊतक होता है।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ चुकने के बाद आप ये सब कर सकेंगे:-

- अंत: कंकाल के लाभ समझा सकेंगे,
- कार्टिलेज (उपास्थि) तथा अस्थि में विभिन्न अंतरों का विवेचन कर सकेंगे,
- कशेरुकी के प्ररूपी कंकाल का वर्णन कर सकेंगे,
- मेंढ़क तथा खरगोश के कंकाल में पाए जाने वाले अंतरों का विवेचन कर सकेंगे,
- विभिन्न प्रकार के कार्यों के लिए जैसे कि घोड़े में दौड़ने के लिए, चिमगादड़ में उड़ने के लिए, ह्वेल में तैरने के लिए तथा मानव में चलने के लिए पाद-कंकाल के रूपांतरण समझा सकेंगे।

11.2 कार्टिलेज तथा हड्डी

कशेरुकी अंत:कंकाल आलम्बी संयोजी ऊतक से व्युत्पन्न दो प्रकार के घटकों **कार्टिलेज** तथा **हड्डी** का बना होता है। कार्टिलेज अपेक्षाकृत नरम लचीला ऊतक होता है जबकि हड्डी एक अधिक अस्थिभूत कड़ा दृढ़ ऊतक होता है। कार्टिलेज तथा हड्डी दोनों ही एक निर्जीव आधात्री पदार्थ मैट्रिक्स से घिरी हुई सजीव कोशिकाओं के बने होते हैं। मैट्रिक्स **कॉण्ड्रिन** (chondrin) नामक एक प्रोटीन का बना होता है जिसका स्वयं इन्हीं कोशिकाओं से स्रवण हुआ होता है। मैट्रिक्स मुख्यत: खनिज लवणों का बना होता है जिनमें मुख्यत: फ़ॉस्फ़ेटों एवं कार्बोनेटों से संयोजित कैल्सियम होता है। जालिवृत्तीय (फ़ाइलोजेनेटिक) दृष्टि से अस्थि का प्रकट होना कार्टिलेज से पहले हुआ था हालांकि भ्रूण-विज्ञान के अनुसार परिवर्धन के दौरान अस्थि से पहले कार्टिलेज बनता है। कशेरुकियों के परिवर्धन के दौरान पहले प्रकट होने वाले कार्टिलेज के स्थान पर आगे चलकर अस्थि बन जाती है। मगर इलास्मोब्रैंकों तथा साइक्लोस्टोमों में उनका समूचा कंकाल केवल कार्टिलेज का ही बना होता है। तथापि, अधिसंख्य कशेरुकियों का कंकाल अस्थियों का होता है। कार्टिलेज के मैट्रिक्स में प्रत्यास्थ (लचीले) अथवा कड़े श्वेत तंतु बने होते हैं। कार्टिलेज में पाया जाने वाला प्रोटीन **कॉण्ड्रिन** होता है तथा कार्टिलेज की कोशिकाओं को **कॉण्ड्रियोब्लास्ट** कहते हैं (चित्र 11.1)।

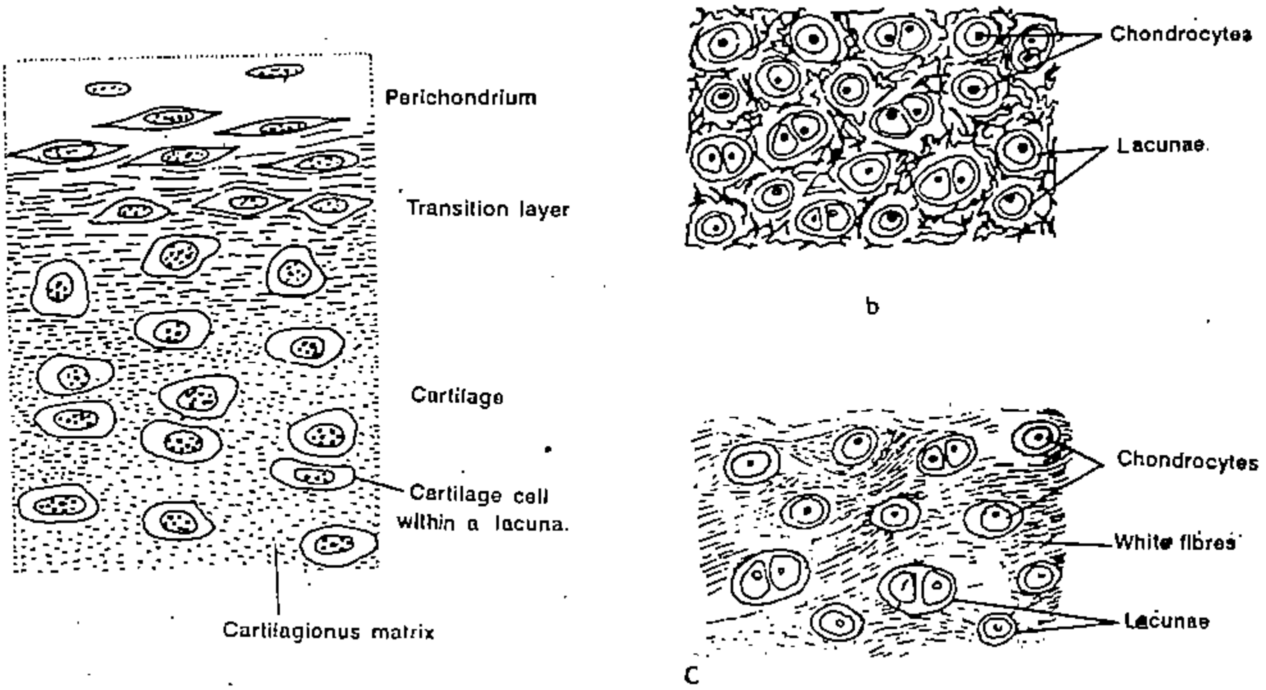

चित्र 11.1 : (a) संयोजी ऊतक पेरिकॉण्ड्रियम से संलग्न काचाभ कार्टिलेज (hyaline cartilage) के एक टुकड़े से गुज़रता सेक्शन। इस प्रकार का कार्टिलेज संधियों में तथा श्वासनली के वलयों में पाया जाता है (b) प्रत्यास्थ कार्टिलेज, (c) फाइब्रो कार्टिलेज।

मगर अस्थि के मैट्रिक्स में कोलैजेन नामक प्रोटीन पाया जाता है और उसका अजैव (अकार्बनिक) पदार्थ अधिकतर कैल्सियम फ़ॉस्फ़ेट होता है। संहत अस्थि एक कैल्सिकृत अस्थि मैट्रिकस की बनी होती है जो संकेंद्री वलयों के रूप में व्यवस्थित होता है। वलयों के भीतर गुहाएं (रिक्तिकाएं, lacunae) होती हैं जिनके भीतर अस्थि-कोशिकाएं (ऑस्टियोसाइट्स, osteocytes) होती हैं। ये गुहाएं अनेक सूक्ष्म मार्गों (सूक्ष्मनालें, canaliculi) द्वारा परस्पर संयोजित रहती हैं। इन गुहाओं के माध्यम से समूची अस्थि में पोषणों का वितरण हो जाता है। रिक्तिकाओं तथा सूक्ष्मनालों की यह सम्पूर्ण संघटना एक लम्बे सिलिंडर के रूप में व्यवस्थित होती है जिसे ऑस्टियॉन (osteon) कहते हैं। जिसका दूसरा नाम **हैवर्ज़ियन तंत्र** (Haversian system) (चित्र 11.2) है। अस्थि का स्रवण करने वाली कोशिकाओं को आस्टियोबलास्ट (osteoblasts) कहते हैं।

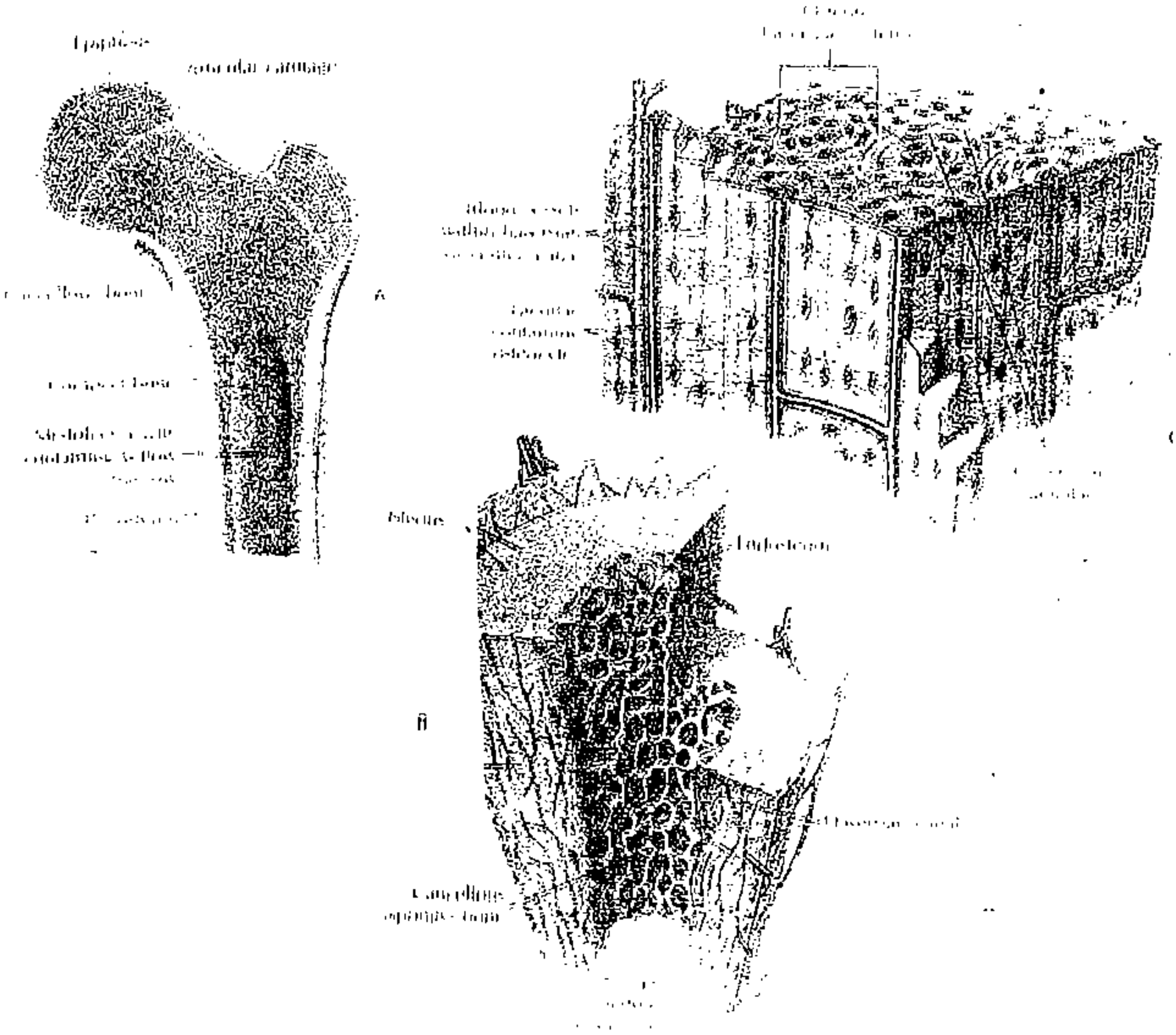

चित्र 11.2 : अस्थि-संरचना (A) प्रौढ़ लम्बी अस्थि (B) परिवर्द्धित काट में दिखाया गया है कि किस प्रकार अस्थि कोशिकायें और सघन कैल्सियम युक्त मैट्रिक्स आस्टियोन ईकाइयों में व्यवस्थित होती है, (C) अस्थि की सूक्ष्म संरचना।

परिवर्धन के दौरान हड्डियों के बनने की विधि के आधार पर अस्थियां दो प्रकार की हो सकती हैं। पहले प्रकार की अस्थियां पूर्वविद्यमान कार्टिलेज के अस्थिभवन से बनती हैं, इन्हें **कार्टिलेज अस्थियां** कहते हैं। इन्हें एक और नाम **प्रतिस्थापी हड्डियां** (replacing bones) भी दिया जाता है क्योंकि ये पूर्वविद्यमान कार्टिलेजों का ही प्रतिस्थापन करती हैं। दूसरे प्रकार की हड्डियां वे हैं जो बिल्कुल नए तौर पर उन स्थानों पर बनती हैं जहां झिल्लियां बाहर से ढके रहती हैं इन्हें **झिल्ली अस्थियां** अथवा **कलास्थियां** (membrane bones) कहते हैं। इन्हें एक और नाम **वेष्ठनास्थियां** (investing bones) भी कहते हैं क्योंकि ये झिल्लियों के ऊपर एक आवरण सा बना लेती है।

11.3 कंकाल का वर्गीकरण

कशेरुकियों के कंकाल को उसके शरीर में स्थान के आधार पर दो भागों में बांटा जा सकता है:

(a) **अक्षीय कंकाल** (Axial skeleton): यह कंकाल शरीर के अग्र-पश्च अक्ष में व्यवस्थित

होता है। इसमें एक शीर्ष का कंकाल यानि करोटि होती हैं। और दूसरा कशेरुक दण्ड होता है। स्टनर्म (यानि उरोस्थि) भी इसी अंश में आती है।

(b) उपांगीय कंकाल (Appendicular skeleton) : यह शरीर के पार्श्वों पर अक्षीय कंकाल के उपांगों के रूप में निकला होता है। इसमें पादों तथा पाद मेखलाओं (limb girdles) का कंकाल आता है।

11.3.1 अक्षीय कंकाल

अक्षीय कंकाल के अंश हैं करोटि तथा कशेरुक दण्ड। ये अंश केंद्रीय तंत्रिका तंत्र की, मस्तिष्क तथा मेरू रज्जु नामक दो संरचनाओं को संरक्षित रखते हैं। करोटि बड़े आकार की होती है तथा मस्तिष्क एवं शीर्ष के भीतर स्थित संवेदी अंगों को अपने भीतर बंद रखने के लिए विशेषित हुई होती है। कशेरुकी दण्ड शीर्ष के पीछे बना अनुदैर्घ्य (लम्बा) कंकाली अक्ष होता है। इसके भीतर मेरू रज्जु तथा धड़ और पूंछ की रक्त वहिकाएं होती हैं।

करोटि (Skull)

करोटि कहलाने वाला भाग कपाली कशेरुकियों के शीर्ष के भीतर का कंकाली ढांचा होता है। इसे शीर्ष कंकाल भी कहा जाता है। वास्तव में कशेरुकियों को उनके शीर्ष कंकाल के होने अथवा न होने के आधार पर दो उपविभाजनों में विभाजित किया जाता है। जिनमें शीर्ष कंकाल नहीं होता उन्हें **एक्रेनिएटा** (Acraniata) और जिनमें होता है उन्हें **क्रेनिएटा** (Craniata) कहते हैं। यूरोकॉर्डेट तथा सेफ़ैलोकॉर्डेट प्राणी एक्रेनिएटा के अंतर्गत आते हैं तथा शेष कशेरुकी क्रेनिएटा के अंतर्गत।

करोटि के अंतर्गत वे भाग आते हैं जो मष्तिष्क, कपाल तंत्रिकाओं तथा शीर्ष के भीतर आने वाले संवेदी अंगों को घेरे रहते हैं। मस्तिष्क को घेरे रहने वाले भाग को कपाल (cranium) कहते हैं। संवेदी अंगों को घेरे रहने वाले भागों को उन्हीं से संबद्ध संवेदी केप्सूलों के नाम के अनुसार पुकारते हैं। तदनुसार ये हैं **श्रवण केप्सूल** (auditory capsules), **घ्राण केप्सूल** (olfactory capsules), और एक जोड़ी कटोरे-जैसी संरचनाएं नेत्र-कोटर जिनके भीतर नेत्र गोले होते हैं। कपाल अथवा मष्तिष्क कोश अग्र-पश्च दिशा में व्यवस्थित होते हैं। यह भाग शीर्ष का मुख्य अक्ष बनाता है। घ्राण केप्सूल कपाल के अग्र सिरे पर तथा श्रवण केप्सूल पश्च-पार्श्व दिशा पर बने होते हैं। शीर्ष-कंकाल उन रक्त वाहिकाओं को भी मार्ग प्रदान करता है जो शीर्ष के विविध भागों में आपूर्ति करती हैं।

ग्रसनी दीवार पर बनी गिल-दरारों में **ग्रसनी कंकाल** (visceral skeleton) नामक कंकालीय संरचना का आलम्ब बना होता है। यह आज की जीवित मछलियों में पाया जाता है। कशेरुकियों के विकास के दौरान ग्रसनी कंकाल का महत्व इसलिए समाप्त हो गया क्योंकि स्थलीयकरण के कारण गिलों का स्थान फेफड़ों ने तो लिया। तथापि ग्रसनी कंकाल बनाने वाली संरचना अभी भी बनी है मगर अब वह एक तो मध्य कान के कंकाली तत्वों के रूप में है जिसका काम ध्वनि तरंगों को भीतरी कान में पहुंचाना है और दूसरे वह मुख-गुहा के फर्श का भी आलंबी कंकाल बन गयी है।

साइक्लोस्टोमों की करोटि में जबड़े नहीं होते और इस प्रकार वे **एग्नैथा** (जिसका अर्थ है जबड़ों के बिना) वर्ग के अंतर्गत आते हैं। शेष कशेरुकियों में जबड़े होते हैं और वे **नैथोस्टोमैटा** (Gnathostomata) (जिसका अर्थ है जबड़ों द्वारा परिसीमित मुख) वर्ग के अंतर्गत शामिल किए जाते हैं।

कशेरुकियों की आरंभिक परिवर्धन अवस्थाओं में मस्तिष्क तथा संवेदी केप्सूल एक कड़ी

झिल्लीदार करोटि जिसे मेम्ब्रेनोक्रेनियम (membranocranium) कहते हैं मे बंद रहते हैं। आगे चलकर इन झिल्लियों में कार्टिलेज बन कर दृढ़ता आने लगती है। इस कार्टिलेजी कपाल को कॉण्ड्रोक्रेनियम (chondrocranium) कहते हैं। मस्तिष्क कोश अथवा कार्टिलेज का बना कॉण्ड्रोक्रेनियम अथवा हड्डी द्वारा प्रतिस्थापित यह भाग अक्षीय कंकाल का अग्र सिरा होता है। मस्तिष्क तथा शीर्ष के विशेषित संवेदी अंगों के अनुसार कॉण्ड्रोक्रेनियम में रूपांतरण आ जाते हैं। अधिसंख्य कशेरुकियों में मस्तिष्क कोश के साथ चर्मीय (dermal) तथा ग्रसनी कंकाल सामग्री का समेकन हो जाता और उसमे परिणामी एवं सम्मिश्र करोटि बन जाती है। यह कॉण्ड्रोक्रेनियम सभी कशेरुकियों के शीर्ष कंकाल के परिवर्धन की एक अवस्था के रूप में पाया जाता है। बाद में इसके स्थान पर अस्थिल करोटि बनती है जो या तो कार्टिलेज के अस्थिभवन अर्थात् प्रतिस्थापन से बनती है या झिल्ली द्वारा ढके पर नए सिरे से हड्डी के बनने से बनती है।

करोटि का परिवर्धन

करोटि की संरचना को समझने का सबसे अच्छा तरीका परिवर्धन के दौरान उसके बनने का अध्ययन करना है। करोटि-निर्माण का समारम्भ पैराकॉर्डल (parachordals) नामक एक जोड़ी कार्टिलेजी प्लेटों का प्रकट होना है। ये पैराकॉर्डल नाटोकॉर्ड (पृष्ठरज्जु) के अग्र सिरे के दाएं-बाएं बनती हैं। कार्टिलेजी शलाकाओं की एक और जोड़ी जिन्हें ट्रैबेकुली (trabeculae) कहते हैं, पैराकॉर्डलों के सामने की ओर बन जाती हैं। ये दो जोड़ी कार्टिलेज मस्तिष्क के नीचे स्थित होते हैं। उसके बाद, तीन संवेदी अंगों के चारों ओर भी कार्टिलेजी आवरण बन जाते हैं और इस प्रकार संवेदी केप्सूलों की स्थापना हो जाती है। घ्राण केप्सूल (olfactory capsules) सूंघने के अंगों के चारों ओर बन जाते हैं जो मस्तिष्क के नीचे स्थित होते हैं, दृक् केप्सूल (optic capsules) अग्र पश्चत: नेत्र गोलों के चारों ओर बन जाते हैं, तथा श्रवण-केप्सूल मस्तिष्क के पश्चपार्श्वत: श्रवण अंगों के चारों ओर बन जाते हैं। घ्राण तथा श्रवण केप्सूलों का शीघ्र ही यथार्थ करोटि से संबंध जुड़ जाता है। दृक् केप्सूल स्वतंत्र रहते हैं और नेत्र गोलों को गति प्रदान करते हैं। परिवर्धन के दौरान ट्रैबेकुली तथा पैराकाडलें समेकित होकर एकल आधारी प्लेट बना लेती हैं जो मस्तिष्क के नीचे स्थित होती हैं। यह कपाल का फ़र्श बनाती हैं। आधारी प्लेट से ऊपर की खड़ी उदग्र बहिर्वृद्धियां निकलती हैं जो मस्तिष्क को भीतर बंद कर लेती हैं और इस प्रकार कपाल यानि मस्तिष्क कोश के निर्माण में योगदान देती हैं। कपाल का पश्च सिरा ऑक्सीपिटल (occipital) क्षेत्र बनाता है। ऑक्सीपिटल क्षेत्र एक बड़े छिद्र महारंध्र (foramen magnum) को घेरे रहता है जिसके भीतर से मस्तिष्क पीछे की ओर मेरू रज्जु के रूप में जारी रहता है। इस महारंध्र के दोनों पार्श्वों पर दो कंद-जैसे फूले हुए भाग होते हैं। इन्हें अस्थिकंद (condyles) कहते हैं और चूंकि ये ऑक्सीपिटल क्षेत्र में होते हैं इसलिए **ऑक्सीपिटल अस्थिकंद** (occipital condyles) कहते हैं ये अस्थिकंद पहली कशेरुक के अग्रसिरे पर बनी उपयुक्त अवतलताओं में बैठ जाते हैं और इस प्रकार करोटि तथा कशेरुक दण्ड के बीच की संधि बनाने में सहायता करते हैं। एम्फिबियनों तथा स्तनियों की करोटियों में दो ऑक्सीपिटल अस्थिकंद होते हैं। इस प्रकार इन दो वर्गों को **द्विअस्थिकंदीय** (bicondylar) कहते हैं। सरीसृपों तथा पक्षियों में केवल एक ही अस्थिकंद होता है और इसलिए उन्हें **एक अस्थिकंदीय** (monocondylar) कहते हैं। दृक् केप्सूल कपाल के अग्रपार्श्वों पर दो गर्तों (गढ़ों) के रूप में बने पाए जाते हैं। नेत्र गोले इन्हीं दो गर्तों के भीतर फ़िट हुए रहते हैं और इन्हें नेत्र कोटर (orbits) कहते हैं। नेत्रकोटरों के बीच के स्थान को अंतरानेत्रकोटर **प्रदेश** (interorbital region) कहते हैं। सामान्यत: एक रॉस्ट्रम (rostrum) या तुंड घ्राण केप्सूलों के सामने को निकला होता है। रॉस्ट्रम वास्तव में कपाल के प्रवर्धों का ही निरूपण करता है। कपाल की छत में सामान्यत: एक या अधिक बड़े छिद्र फ़ॉण्टेनेल (fontanellae) होते हैं जो आम तौर से झिल्लियों से ढके रहते हैं। कपाल में कुछ सूराख़ या रंध्र (foramina) होते हैं जिनमें से होकर कपाल तंत्रिकाएं बाहर आती हैं।

कशेरुकियों के अलग-अलग वर्गों में करोटि के अलग-अलग संवेदी केप्सूलों में अस्थिभवन की की मात्रा भी अलग-अलग होती है। आदिम कशेरुकियों में ये सरल होते तथा इनमें अपेक्षाकृत कम संख्या में हड्डियां होती हैं। मेंढक की करोटि में श्रवण केप्सूल में केवल एक ही हड्डी प्रोऔटिक (prootic) होती है तथा स्तनियों में कहीं अधिक संख्या में छह तक हड्डियां होती हैं। मेंढकों में नेत्र कोटर अस्थिभूत नहीं हुए होते और वे झिल्लियों से ढके रहते हैं।

करोटि के भीतर कपाल तथा संवेदी केप्सूलों के अलावा और भी संरचनाएं होती हैं जो ग्रसनी कंकाल से व्युत्पन्न हुई होती हैं। ग्रसनी कंकाल मूलत: गिल-दरारों को आलम्ब प्रदान करने वाले ग्रसनी क्षेत्र का ही एक अंश हुआ करता था। ग्रसनी कंकाल कार्टिलेजी शलाकाओं की ही एक शृंखला होती है जो मछलियों में गिल-दरारों के बीच-बीच की ग्रसनी दीवार को सहारा देती है। इसके कंकाल तत्व खण्डश: बने होते हैं और वे ग्रसनी की पार्श्व दीवार में बने होते हैं- इन तत्वों को **ग्रसनी चापें** (visceral arches) कहते हैं। ग्रसनी चापों की संख्या गिल-दरारों की संख्या के अनुरूप होती हैं जो परिकल्पित कशेरुकी पूर्वज में सात मानी गयी है। साइक्लोस्टोमों में असंख्य गिल दरारें होती हैं और इन प्राणियों में ग्रसनी कंकाल से जो संरचना बनती है उसे **गिल कंडी** (branchial basket) कहते हैं। अंग्रतम अथवा प्रथम ग्रसनी चाप को **मेंडिबुलर चाप** (mandibular arch) कहते हैं। यह मुख छिद्र (मुंह) के तुरंत पीछे स्थित होती है। दूसरी चाप को **हायॉइड चाप** (hyoid arch) कहते हैं। इसके बाद की चापों को गिल चापें (branchial arches) कहते हैं। जलीय कशेरुकियों में गिल चापों का कंकाल गिल-दरारों को आलम्ब प्रदान करता है। प्रत्येक ग्रसनी चाप शृंखलाबद्ध कार्टिलेजी शलाकाओं की बनी होती है जो ग्रसनी को घेरती हुई पार्श्व दीवारों में युग्मित अर्धांश बनाती हैं। अनुरूप चापों की बायीं और दाहिनी शलाकाएं एक अयुग्मित मध्य अधर कार्टिलेज के द्वारा ग्रसनी के फ़र्श पर जुड़ी रहती हैं। कशेरुकियों के विकास के दौरान मुख का स्थान पीछे की ओर को खिसक गया और इस प्रकार उसका प्रथम गिल दरार से सम्पर्क स्थापित हो गया। प्रथम गिल-दरार का कंकाली आलम्ब मुख की आलम्बी संरचना बन गया जिससे जबड़े बने। प्रत्येक मैंडिबुलर चाप दो भागों की बनी होती है- एक तो पृष्ठीय **पैलेटोक्वाड्रेट** (palatoquadrate) भाग और दूसरा अधर **मेकेल-कार्टिलेज** (Meckels cartilage)। दो पैलेटोक्वाड्रेट मुख के अग्र अथवा ऊपरी सीमांत के सहारे वृद्धि करते जाते हैं और फिर मध्य रेखा में एक दूसरे से समेकित होकर ऊपरी जबड़ा बनाते हैं। इसी प्रकार, मेकेल-कार्टिलेज मुख के निचले अथवा पश्चीय सीमांत पर बढ़कर अग्रत: मध्यरेखा पर समेकित हो जाते हैं जिसमें निचला जबड़ा बन जाता है। पैलेटोक्वाड्रेट का क्वाड्रेट अंश जबड़ों को करोटि से लटकाने में सहायता करता है। इसे **सस्पेंसोरियम** (suspensorium) कहते हैं (चित्र 11.3)। नैथोस्टोमों के विकास की आरंभिक अवस्थाओं में जबड़ों का करोटि से जुड़ना स्नायुओं (ligaments) के द्वारा होता था। इस दशा को **औटोडायस्टिलिक** (autodiastylic) प्रकार का सस्पेंसोरियम कहते हैं। विकास के अगले चरण में ऊपरी जबड़ा बनाने वाली पैलेटोक्वाड्रेट करोटि के साथ अग्र दिशा में जुड़ी थी और पश्च दिशा में वह स्नायुओं द्वारा जुड़ी थी। यह दशा डॉगफ़िशों में पायी जाती है। मगर अधिसंख्य इलास्मोब्रैंकों में हाइड़आइड चाप, प्रविष्ट होकर जबड़ों को करोटि के साथ संलग्न होने में सहायता करती है। शार्क तथा अन्य जीवाश्म मछलियों में जबड़े करोटि से स्नायुओं और हायोमैंडिबुलर इन दोनों से निलम्बित रहते हैं, हायोमैंडिबुलर एक कार्टिलेज है जो हाइऑइड से व्युत्पन्न हुआ होता है। इस दशा को हायोस्टाइलिक (hyostylic) **सस्पेंसोरियम** कहते हैं। वह दशा जिसमें पैलेटोक्वाड्रेट सीधे ही करोटि के साथ जुड़ी होती है **ऐम्फिस्टाइलिक** (amphistylic) सस्पेंसोरियम कहलाती है। इस प्रकार हाइऑइड के वे तत्व जो सस्पेंसोरियम प्रदान करने में भागीदारी से मुक्त हो गए वे **कर्णास्थिकाओं** (ear ossicles) के रूप में मध्य कान के अंश बन जाते हैं। गिल चापों से ग्रसनी के फैलने और

सिकुड़ने की क्रिया संभव हो पाती है। इससे एक तो निगलना और दूसरे श्वसन के दौरान जल को बाहर निकाल सकने की क्रिया संभव हुई। चतुष्पादों में गिल श्वसन समाप्त होकर उसके स्थान पर फ़ुफ्फुस यानि फेफड़ा श्वसन होने लग जाने से ये गिल चापें समाप्त हो गयीं। इस प्रकार जबड़ों की प्रचालन विधि रूपांतरित हो गयी और स्वयं इस रूपांतरण से शीर्ष का कंकाल रूपांतरित हो गया और यह सब रूपांतरण जबडों की संधि और पेशियों के संलग्न करने की विधि अथवा दांतों के प्रकार पर आधारित था। विभिन्न हड्डियां और कार्टिलेज उन कार्यात्मक अनुक्रियाओं का निरूपण करती हैं जो यांत्रिकीय लीवर क्रिया अथवा सम्पीडन तनाव के कारण पैदा होती हैं। यह लगातार अनुक्रिया करते रहने वाला ऊतक है। यह स्थापित हो सकता है या पुन: शोषित हो सकता अथवा बदलती ज़रूरतों को पूरा करते हुए दोबारा बन सकता है।

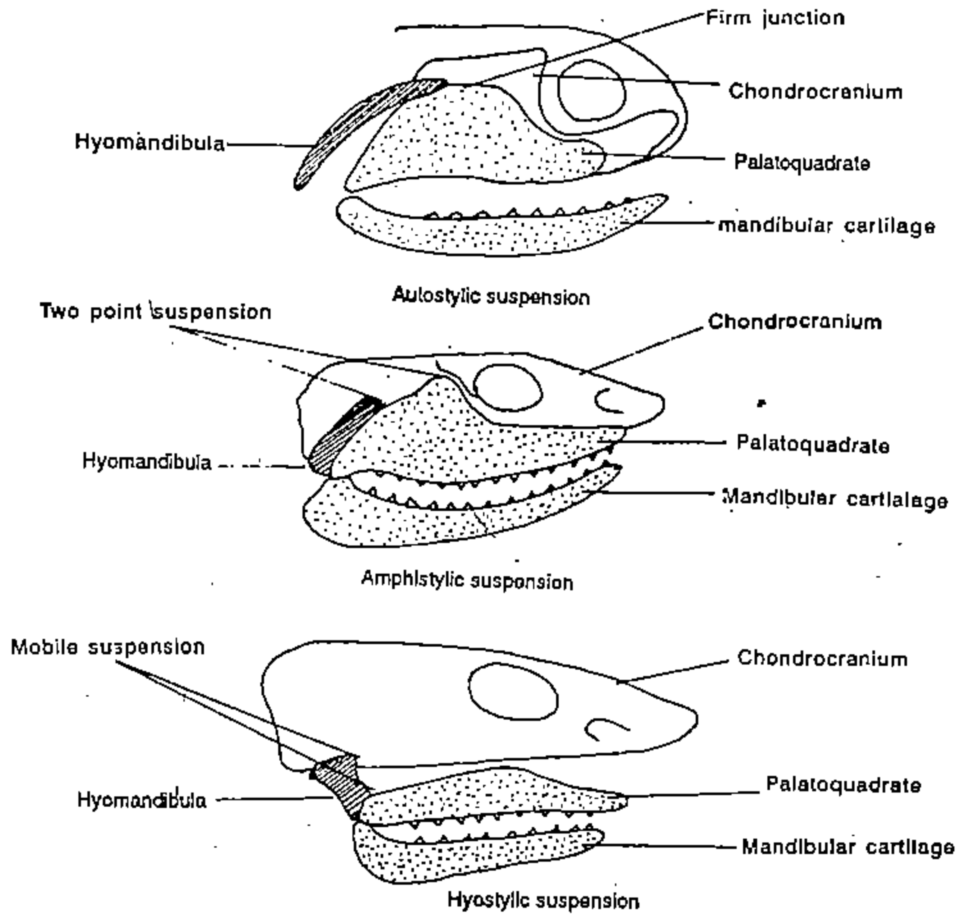

चित्र 11.3 : जबड़ा सस्पेंसोरियम (निलंबिका)। (A) औटोस्टाइलिक जबड़ा निलंवन(कल्पित आदिम दशा)।
B-ऐम्फिस्टाइलिक जबड़ा निलम्बन (आदिम कार्टिलेजी एवं अस्थित मछलियां)।
C-हायोस्टाइलिक जबड़ा निलम्बन (अधिसंख्य आधुनिक कार्टिलेजी तथा अस्थिल मछलियों में)।

कशेरुकी दण्ड (Vertebral column)

शीर्ष से लेकर पूंछ के सिरे तक फैले हुए दृढ़ शलाका- जैसे नोटोकॉर्ड (अथवा पृष्ठ रज्जु) का पाया जाना कशेरुकियों की विशेषता है। परिवर्धन के दौरान न्यूरूला का आर्केन्टेरॉन (आद्यंत्र) का मध्य-पृष्ठ भाग अलग कटकर नोटोकार्ड बनाता है। क्रेनिएट कॉर्डेटों में नोटोकॉर्ड शीर्ष प्रदेश में केवल पिट्यूटरी काय के पीछे तक ही फैला होता है। एक्रेनिएट (अर्थात् अकपाली) कॉर्डेटों में यह शीर्ष के अग्र सिरे तक फैला होता है। कशेरुकियों में

नोटोकॉर्ड केवल भ्रूण अवस्थाओं के दौरान ही प्रकट होता है। बाद में परिवर्धन के दौरान वयस्क के भीतर इस नोटोकार्ड के स्थान पर एक सखण्ड स्तम्भ बन जाता है। जिसे हम कशेरुकी दण्ड कहते हैं वह कशेरुक (vertebrae) नामक सखण्ड संरचनाओं की एक शृंखला होती है। यह कशेरुकी दण्ड अग्र सिरे पर करोटि से शुरू होकर पीछे पूंछ के सिरे तक चलता जाता है। यह प्राणी का अनुदैर्ध्य अक्ष बनाता है। इसके द्वारा प्राणी को स्थायित्व तथा गतिशीलता दोनों ही प्राप्त होती है। कशेरुकों की अपनी एक ख़ास बनावट होती है जिसके कारण वे एक-दूसरे से कसकर जुड़ी भी होती हैं और साथ ही कुछ हद तक गति भी होने देती हैं। कशेरुकों की संधि के वास्ते कुछ उभार (उत्तलताएं) और गढ़े (अवतलताएं) बने होते हैं। एक कशेरुक के एक सिरे पर बना हुआ उभार दूसरे कशेरुक के गढ़े में आ बैठता है। इनके अलावा कुछ अतिरिक्त संरचनाएं भी होती हैं जिनका काम संधि को मज़बूती देना होता है और साथ ही गतिशीलता की सीमा को भी काबू में किए रहना होता है। इससे उनका वियोजन और जोड़ उतरना दोनों ही रोके रखे ज़ाते हैं। यह कशेरुक शृंखला पृष्ठ दिशा पर एक नलकी जैसी संरचना बना लेती हैं। जिसके भीतर मेरू रज्जु सुरक्षित रूप में बंद रहता है। इसी प्रकार कुछ प्राणियों के पुच्छ प्रदेश की कशेरुकें एक अधर नलिका बना लेती हैं जिसके भीतर रक्त वाहिकाएं बंद रहती हैं।

किसी भी प्ररूपी कशेरुक के भीतर ये सब भाग पाए जाते हैं:-

1) एक केंद्रीय पिंड सेंट्रम (centrum) (अर्थात् कशेरुक काय) होता है जो आरंभिक परिवर्धन अवस्था के नोटोकार्ड की ही रेखा में बना होता है। इस सेंट्रम में आगे और पीछे के सिरों पर गढ़े तथा उभार बने होते हैं जिनका काम कशेरुकों को परस्पर जोड़े रखना होता है।

2) एक पृष्ठीय चाप-सदृश संरचना जो मेरू-रज्जु को भीतर बंद किए रहती है, इसे तंत्रिका चाप अथवा न्यूरल आर्च (neural arch) कहते हैं (चित्र 11.4)। सभी कशेरुकों की तंत्रिक चापें परस्पर मिलकर एक नलिका बनाती हैं जो एक तंत्रिक नाल (neural canal) को भीतर बंद किए रहती है, तथा इस नाल के भीतर मेरू-रज्जु स्थित रहता है। तंत्रिक-चापों का बनना उन उदग्र प्लेटों से होता है जो सेंट्रम के पृष्ठ-पार्श्व दिशाओं से ऊपर को निकलती हैं। दोनों पार्श्वों की तंत्रिक प्लेटें मेरू रज्जु के ऊपर की ओर परस्पर जुड़ जाती हैं। तंत्रिक चापों के ऊपर पृष्ठतः आमतौर से एक तंत्रिक कंटक (neural spine) पीछे को रुख़ किए हुए निकला होता है।

3) एक जोड़ी पार्श्व प्रवर्ध होते हैं जो सेंट्रमों से अगल-बगल बाहर को फैले होकर पेशियों में पहुंचे होते हैं। इन्हें अनुप्रस्थ प्रवर्ध (transverse process) कहते हैं।

4) उच्चतर कशेरुकियों के पुच्छ प्रदेश में आमतौर से अधर दिशा में एक हीमल चाप (haemal arch) होती है। ये चापें एक जोड़ी प्लेटों (हीमैपोफ़ाइसीज़ haemapophyses) से बनी होती हैं। हीमल चाप में एक हीमल नाल होती है जिसके भीतर से रक्त वाहिकाएं जाती हैं। साथ ही अधर दिशा में रुख़ किए हुए एक हीमल कंटक (haemal spine) भी हो सकता है।

5) सेंट्रम में से दो प्लेट जैसे प्रवर्ध आगे भी और पीछे भी निकले होते हैं। इन्हें ज़ाइगैपोफ़ाइसिस (zygapophyses) तथा मेटापोफ़ाइसीज़ (metapophyses) कहते हैं (चित्र 11.4)। ये संरचनाएं कशेरुकों के बीच संधि होने में तथा कशेरुकों के बीच गति की सीमा को सीमित करने में सहायता करती हैं।

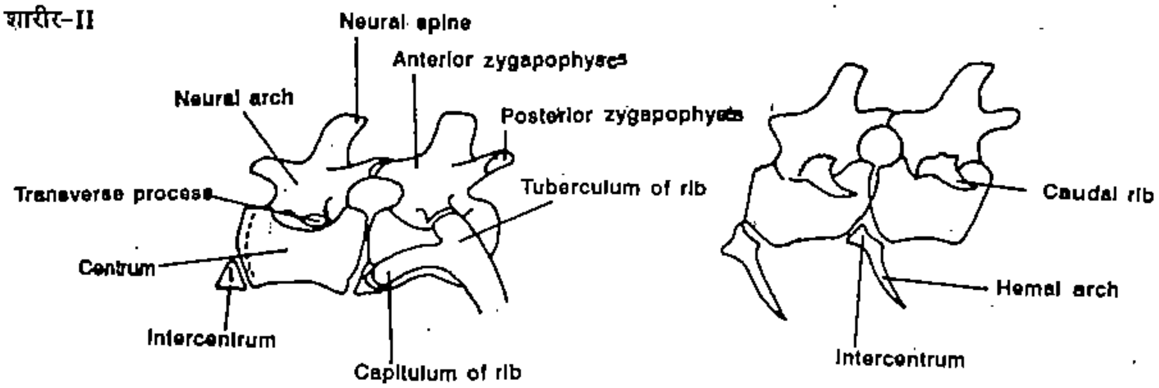

चित्र 11.4 : बायीं ओर, एक आरंभिक सामान्यीकृत सरीसृप की दो धड़ कशेरुकें (अग्र सिरा बायीं ओर)। दाहिनी ओर-दो पुच्छ कशेरुकें।

6) उच्चतर कशेरुकियों में तंत्रिक चाप के आधार से दोनों पार्श्वों पर एक जोड़ी पार्श्व प्रवर्ध निकले होते हैं। इन्हें डाइऐपोफ़ाइसीज़ (diapophyses) कहते हैं। इसके अलावा सेंट्रम से प्रवर्धों की एक और जोड़ी निकली होती है जिन्हें पैरेपोफ़ाइसीज़ (parapophyses) कहते हैं। पसलियों के द्विशाखी शीर्ष प्रत्येक पार्श्व पर इन्हीं प्रवर्धों से जुड़े होते हैं।

कशेरुकों के प्ररूप

सेंट्रम की संरचना के आधार पर कशेरुकों को कई विभिन्न श्रेणियों में बांटा जा सकता है।

i) अग्रगर्ती (Procoelous)- कशेरुक के सेंट्रम में सामने (अग्र) की ओर अवतलता तथा पीछे (पश्च) की ओर उत्तलता होती है। आगे के कशेरुक की उत्तलता पिछले कशेरुक की अवतलता में बैठ जाती है (चित्र 11.5 a)।

ii) पश्चगर्ती (Opisthocoelous)- इसकी संरचना अग्रगर्ती कशेरुक के ठीक विपरीत होती है जिसमें आगे की ओर उत्तलता तथा पीछे की ओर अवतलता होती है (चित्र 11.5 b)।

iii) उभयगर्ती (Amphicoelous)- इन कशेरुकों के सेंट्रमो में आगे तथा पीछे दोनों ओर अवतलताएं होती हैं। पार्श्व दृश्य में ये डम्बेल की आकृति की दिखायी पड़ती हैं (चित्र 11.5 c)।

iv) विषमगर्ती (Heterocoelous)- इस प्रकार के कशेरुक का सेंट्रम एक पार्श्व से दूसरे पार्श्व की ओर देखने पर अवतल दिखायी पड़ता है और ऊपर से नीचे को देखने पर उत्तल दिखायी पड़ता है और सममितार्धी (सैजिटल) दृश्य में पश्चगर्ती दिखायी पड़ता है।

इस प्रकार की कशेरुक को काठी-आकृति भी कहा जाता है। ये कशेरुकें एक दूसरे के साथ साइनोवियल केप्सूलों द्वारा संधि करती हैं। इस प्रकार की कशेरुकें पक्षियों में विशेषत: पायी जाती हैं (चित्र 11.5 d)।

v) अग्रर्ती (Acoelous) अथवा उभयसपाट (Amphiplatyan):- इस प्ररूप में सेंट्रम सामान्यत: चपटा और बिना किसी उभार अथवा गढ़े के होता है। इस प्रकार की कशेरुकें स्तनियों में पायी जाती हैं (चित्र 11.5 e)।

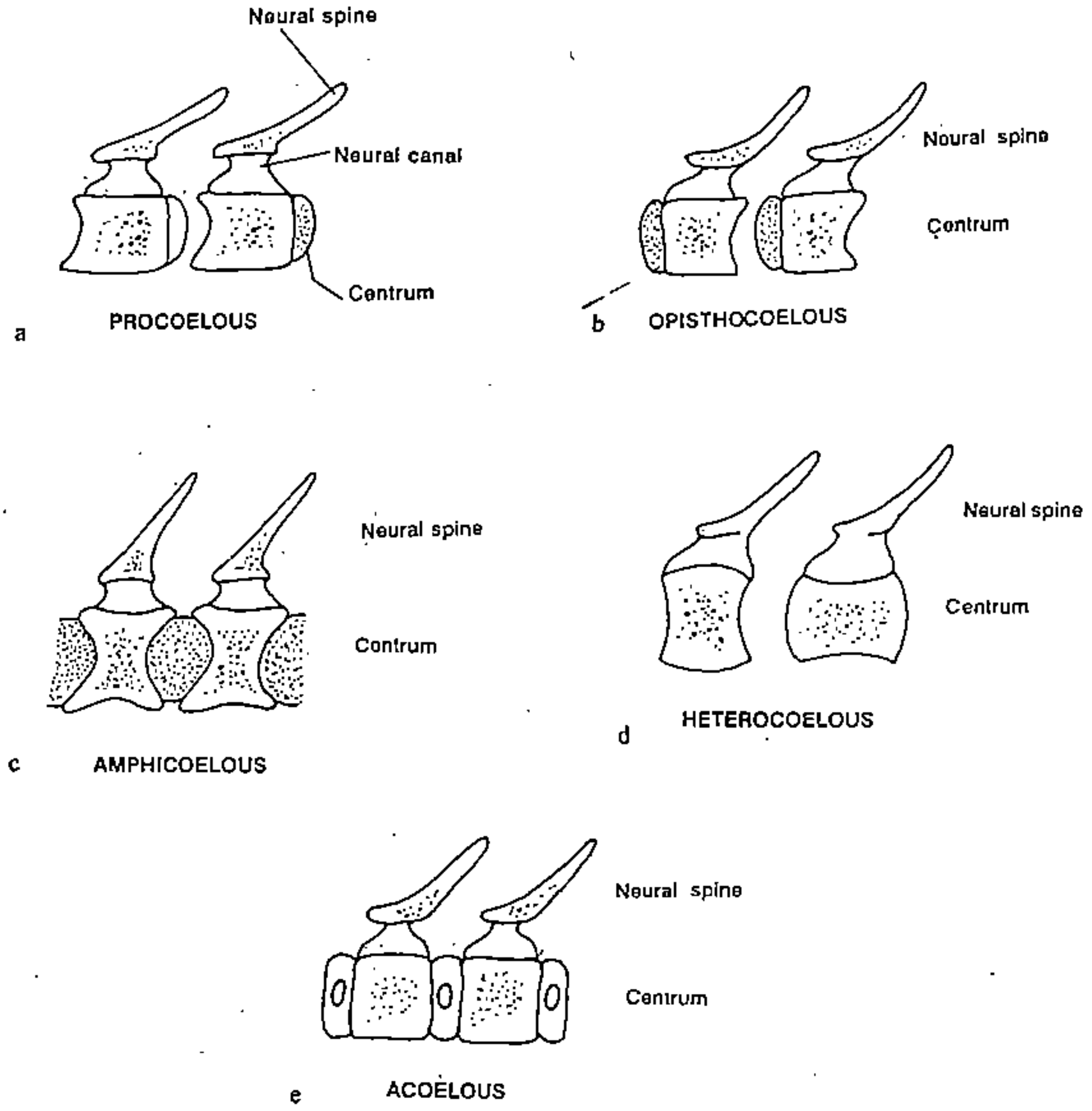

चित्र 11.5 : सेंट्रम के विभिन्न प्ररूप (a) अग्रगर्ती, (b) पश्चगर्ती, (c) उभयगर्ती, (d) विषमगर्ती (e) अगर्ती।

सभी कशेरुकियों में परिर्धन के दौरान दण्ड बनने से पूर्व एक नोटोकॉर्ड बनता है। नोटोकॉर्ड एक ठोस छड़ के रूप में प्रकट होता है जो तंत्रिक रज्जु के तुरंत नीचे पड़ी हुई आद्यंत्र की मध्य पृष्ठ दीवार के सहारे बनती है। नोटोकॉर्ड रिक्तिकायुक्त कोशिकाओं का बना होता है और इसके ऊपर एक द्विस्तरीय लचीला आच्छद चढ़ा होता है। बाहरी तथा भीतरी परतों को क्रमशः इलैस्टिका एक्सटर्ना (elastica exretna) तथा इलैस्टिका इंटर्ना (elastica interna) कहते हैं। आद्यंत्र के पृष्ठ-पार्श्व भागों से बाहर को निकल कर टूट कर अलग हुए सीलोमी कोष्ठों से मायोटोम बनते हैं। ये मायोटोम नोटोकॉर्ड के दोनों पार्श्वों पर विखंडशः व्यवस्थित होते हैं। इन मायोटोमों अथवा सोमाइटों की भीतरी परत से मीजेंकाइमल कोशिकाएं निकलती हैं। जो नोटोकॉर्ड को घेर कर कंकालजनी परत (skeletogenous layer) बनाती हैं। कंकालजनी परत के भीतर कॉण्ड्रोब्लास्ट (chondroblasts) नामक कार्टिलेज-निर्माणकारी कोशिकाएं होती हैं। कंकालजनी परत से युग्मित बहिर्वृद्धियां निकलती हैं। ये बहिर्वृद्धियां नोटोकॉर्ड के ऊपर एक नली-सरीखी संरचना बना लेती हैं। यही नली तंत्रिका रज्जु को अपने भीतर बंद किए रहती हैं। एक इसी प्रकार की नली नीचे की ओर निकली बहिर्वृद्धियों से बन जाती है जिसे हीमल नाल (haemal canal) कहते हैं और इसके भीतर रक्त वाहिकाएं परिबद्ध हो जाती हैं। इनके अलावा कॉण्ड्रोब्लास्टों से खण्ड-सरीखी

संरचनाएं बनती हैं जिन्हें स्क्लेरोटोम (sclerotome) कहते हैं (चित्र 11.6)। ये स्क्लेरोटोम प्रत्येक मायोटोम के मध्य की दिशा में दाएं-बाएं कंकालजनी परत के पार्श्वों पर व्यवस्थित हो जाते हैं। प्रत्येक स्क्लेरोटोम दो भागों, एक अग्र कपाल अर्धांश (cranial half) और दूसरा पुच्छ अर्धांश (caudal half), में विभाजित हो जाता है। कशेरुक के परिवर्धन के दौरान एक स्क्लेरोटोम का पुच्छ अर्धांश उससे पिछले स्क्लेरोटोम के कपाल अर्धांश से समेकित हो जाता है जिसके फलस्वरूप स्क्लेरोटोम का पुच्छ अर्धांश कशेरुक का अगला आधा और स्क्लेरोटोम का कपाल-अर्धांश कशेरुक का पिछला अर्धांश बन जाता है (चित्र 11.7)। इस प्रकार कशेरुक-खण्ड मायोटोमल खण्डों के एकांतर क्रम में होता है। और इस तरह प्रत्येक मायोटोम दो कशेरुकों से संलग्न रहता है तथा प्रत्येक कशेरुक दो मायोटोमों से जुड़ा रहता है। इस व्यवस्था से एक दृढ़ संलग्नता आ जाती है और कशेरुक दण्ड में झुकने-मुड़ने की गतियां संभव हो जाती हैं।

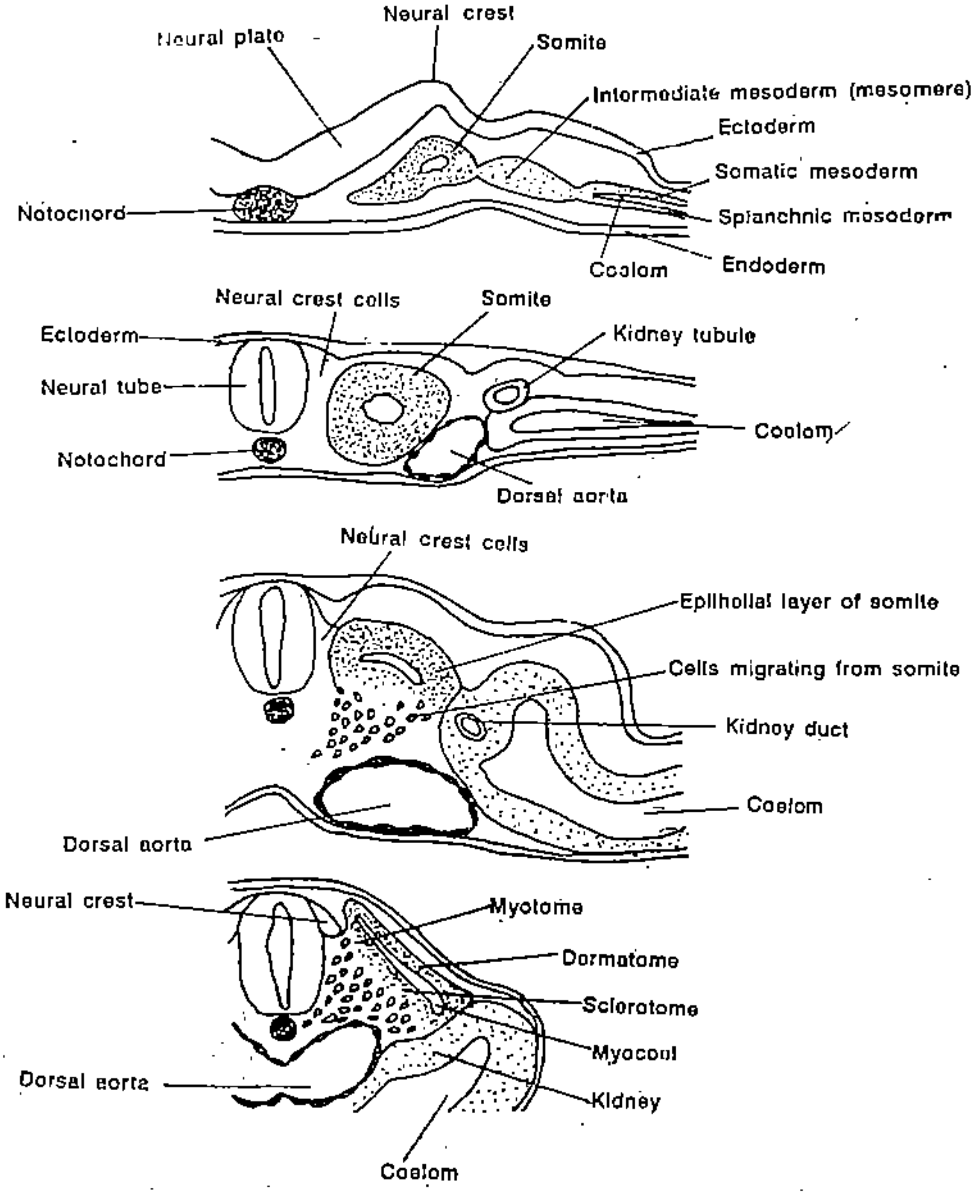

चित्र 11.6 : पक्षी में सोमाइटों का विभेदन, आरंभिक (ऊपर) से उत्तर काल (नीचे) तक। प्रत्येक सोमाइट के तीन क्षेत्र होते हैं और उन्हें उनकी अंतिम नियति के आधार पर अलग-अलग नाम दिए जाते हैं (1) अधर और उसके साथ मध्य दीवार (स्क्लेरोटोम) का अंश जिससे कंकाल ऊतक बनता है (2) पृष्ठ भाग तथा मध्य दीवार का अंश (मायोटोम) जिससे कंकाल पेशी बनती है, और (3) पार्श्व दीवार (डर्मेटोम) जिससे त्वचा की डर्मिस का अधिकतर भाग बनता है। नोटोकॉर्डल और तंत्रिक प्रेरण के तहत स्क्लेरोटोम विशेषित होने लगता है। और इसमें सबसे पहले परिवर्तित होकर वे कोशिकाएं बनती हैं जो वहां से चलकर नोटोकार्ड तथा तंत्रिक नलिका के चारों ओर पहुंच जाती हैं।

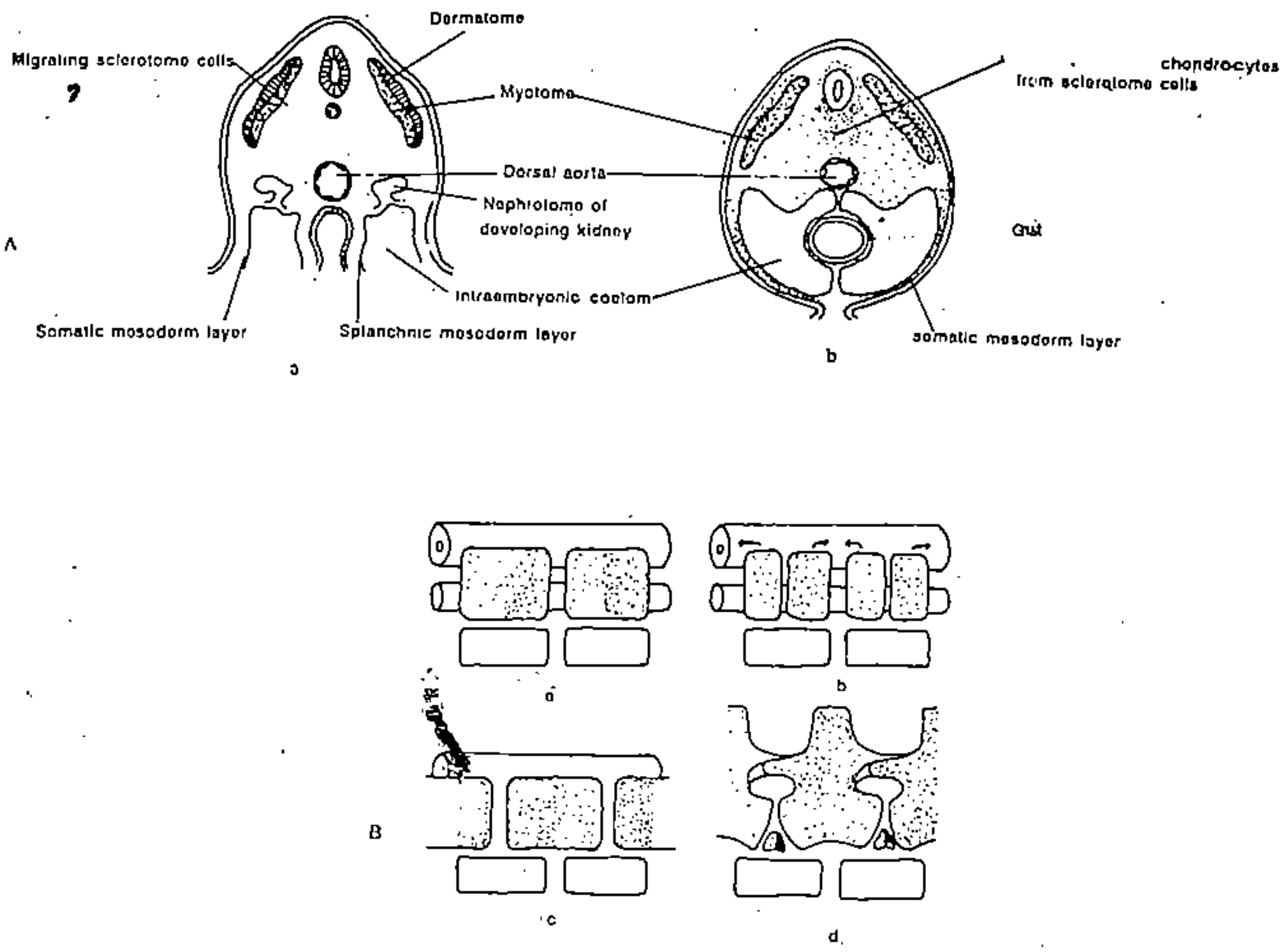

चित्र 11.7:A-मानव भ्रूण की आरंभिक 4 सप्ताह की अवस्था (a) तथा बाद की 4 सप्ताह की अवस्था (b) के धड़ में से गुज़रते हुए अनुप्रस्थ सेक्शन का आरेख। (a) में स्क्लेरोटोम कोशिकाओं ने मायोटोम तथा डर्मेटोम से अलग होकर प्रवास करना शुरू कर दिया है। चौथे सप्ताह के अंत तक (b) स्क्लेरोटोम की कोशिकाएं संघनित होकर कशेरुक बनाने लग जाती हैं, जिसमें डर्मेटोम ने डर्मिस बनाना शुरू कर दिया है और मायोटोम की कोशिकाएं अधर दिशा में भ्रूण की दीवारों के नीचे आ रही हैं। B-इन आरेखों में ऐम्नियोट कशेरुकों के बनने में मीज़ेंकाइम के उपयोग किए जाने की विधि दर्शायी गयी है। अग्र दिशा बायीं ओर को है। (a) दो सोमाइटों के स्क्लेरोटोमों का आरेखीय पार्श्व दृश्य दिखाया गया है, तंत्रिका रज्जु तथा नोटोकॉर्ड उनके पीछे दिखाए गए हैं तथा नीचे की ओर बस अंदाजे भर के लिए वे पेशियां दिखायी गयी हैं जिनका संबंध सोमाइटों से है। (b) स्क्लेरोटोमों को उन दो-दो भागों अग्र तथा पश्च अर्धांशों में विभाजित दर्शाया गया है जो एक-दूसरे से दूर हटते जाते हैं तथा (c) ये अर्धांश सहवर्ती स्क्लेरोटोमों के संलग्न अर्धांशों से समेकित हो जाते हैं। नई-नई बनी ये स्क्लेरोटोम संहतियां ही वह सामग्री हैं जिससे क्रमिक कशेरुकें बनी हैं। इसी संहति को (d) में अलग-अलग बिंदुओं से शेड करके इसके दोहरे उद्भव को दिखाया गया है जिसमें वयस्क कशेरुक के दो खण्डों के अंश दर्शाए गए हैं। इस प्रकटत: विषम परिवर्धन प्रक्रिया के परिणामस्वरूप कशेरुकें (विखण्डीय उद्भव वाले खण्डों के संदर्भ में जैसी कि वे दीखती हैं) स्थिति की दृष्टि से खण्डीय न होकर अंतराविखंण्डीय होती हैं।

स्क्लेरोटोमों से आर्कुएलिया (arcualia) युग्मित कार्टिलेजी खण्ड-समान संरचनाएं बनती हैं। यही आर्कुएलिया वे संरचनाएं हैं जिनसे कशेरुकों की तंत्रिक एवं हीमल चापें बनती हैं। प्रत्येक स्क्लेरोटोम से दो जोड़ी पृष्ठ आर्कुएलिया तथा दो जोड़ी अधर आर्कुएलिया बनती हैं। अग्र आर्कुएलिया को अंतरापृष्ठिका (interdorsal) तथा पश्च आर्कुएलिया को आधारपृष्ठिका (basidorsal) कहते हैं। इसी प्रकार अग्राधर आर्कुएलिया को अंतराअधरिका (interventral) और पश्चीय को आधार अधरिका (basiventral) कहते हैं। अंतरापृष्ठिका तथा आधारपृष्ठिका का अंतराअधरिका एवं आधारअधरिका से अधिक बड़ी होती हैं। अंतरापृष्ठिका तथा अंतराअधरिका से कशेरुक का अग्र अर्धांश बनता है तथा आधारपृष्ठिका एवं आधारअधरिका से कशेरुक का पश्च अर्धांश बनता है।

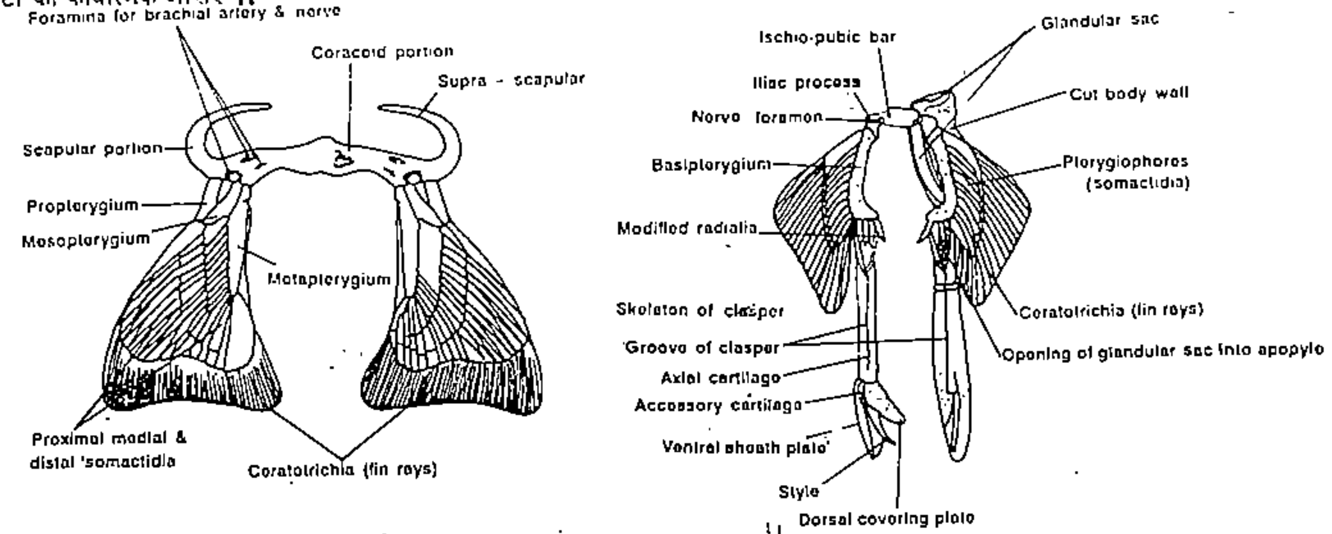

चित्र 11.8 : स्कोलियोडॉन, मेखलाएं (a) अंस मेखला तथा फिन, और (b) श्रोणि मेखला और फिन।

11.3.2 उपांगीय कंकाल

अधिसंख्य कशेरुकियों में दो जोड़ी उपांग होते हैं- एक जोड़ी अग्र (अंस, pectoral) तथा एक जोड़ी पश्चीय (श्रोणि, pelvic)। मछलियों में युग्मित फिन होते हैं। (टेरिजिया, pterygia) जैसे कि चित्र 11.8 में दिखाए गए हैं तथा चतुष्पादों में संधि युक्त पाद (पैर) होते हैं। परिवर्धन के दौरान मछलियों के युग्मित उपांग क्षैतिज वलनों के रूप में प्रकट होते हैं तथा चतुष्पादों के पाद मुकुलों के रूप में। युग्मित उपांगों का कंकाल मेखलाओं से आलम्बित रहता है। युग्मित उपांगों की मेखलाएं एवं कंकाल परस्पर मिलकर उपांगीय कंकाल बनाते हैं। मेखलाएं देहभित्ति के भीतर उलटी चापों के रूप में प्रकट होती हैं और अधर दिशा में क्षैतिजशः फैलतीं तथा पादों के संलग्न होने के स्थान के ऊपर दोनों दोनों पार्श्वों पर ऊपर की ओर को मुड़ गयी होती हैं। अपने सरलतम रूप में अंस मेखला पादों के संलग्न होने के स्थान पर दो भागों- एक ऊपर स्केपुलर (scapular) तथा एक अधर भाग कोरैकॉइड प्रदेश; में विभाजित रहती है। इसी प्रकार श्रोणि मेखला एक पृष्ठीय इलियक (iliac) तथा एक अधर इस्कियो-प्यूबिक (ischiopubic) में विभाजित रहती है। अग्रपाद का अंस मेखला के साथ संलग्न बिंदु तथा पश्चपाद का श्रोणि मेखला के साथ संलग्न बिंदु क्रमशः ग्लीनॉइड (glenoid) तथा ऐसिटैबुलर (acetabular), गुहाएं कहलाते हैं। चतुष्पादीय पाद प्ररूपतः पंचांगुलिक (pentadactyl) होता है जिसमें प्रत्येक में पांच-पांच उंगलियां होती हैं। चतुष्पाद पाद में समान संधियां होती हैं और उनमें कंकाल तत्वों की संख्या भी समान होती है। विभिन्न भागों तथा कंकाल की सामान्य प्रतिरूप-व्यवस्था को इस प्रकार वर्णित किया जा सकता है:-

		अग्रपाद		पश्चपाद
पाद का मेखला के साथ का संलग्न बिंदु	....	कंधा संधि	....	कूल्हा
उपरिबाहु/जांघ	....	ह्यूमरस	....	फ़ीमर
उपरिबाहु तथा अवर बाहु/ जांघ तथा शैंक के बीच का संलग्न बिंदु	....	कोहनी संधि	....	घुटना संधि
अवर बाहु/शैंक	....	रेडियस तथा अल्ना	....	टिबिया तथा फ़िबुला
कलाई/टख़ना	....	कार्पलें	....	टार्सलें
हथैली/तलवा	....	मेटाकार्पलें	....	मेटाटार्सलें
हाथ की अंगुलियां/ पैर की अंगुलियां	....	फैलेंजेज़	....	फैलेंजेज़

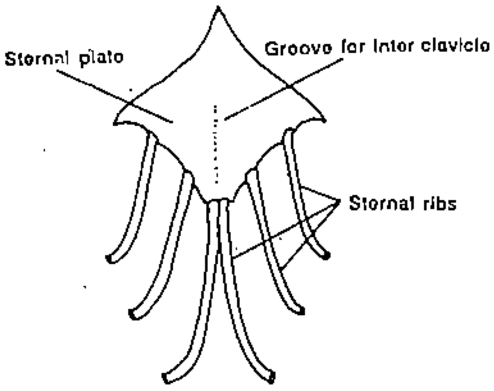

चित्र 11.9 : स्टर्नम

पसलियां तथा स्टर्नम

पसलियां (पर्शुकाएं, ribs) कहलाने वाली युग्मित वक्र हड्डियों के समुच्चय अधिसंख्य कशेरुकियों के वक्ष प्रदेश में पाए जाते हैं। ये पसलियां एक छोर पर कशेरुकों के साथ जुड़ी होती हैं और दूसरे छोर पर स्टर्नम के साथ (चित्र 11.9)। कशेरुक दण्ड और स्टर्नम के साथ मिलकर पसलियां एक कंकाली पिंजड़ा बनाती हैं जिसके भीतर वक्ष के अंग बंद तथा सुरक्षित रहते हैं। विकास क्रम के दौरान पसलियां सर्वप्रथम नैथोस्टोमों में प्रकट होती हैं। पसलियां दो प्रकार की होती हैं- एक तो **पृष्ठीय** (dorsal) अथवा **अंतरापेशीय** और दूसरी अधर (ventral) अथवा हीमल पसलियां। पृष्ठीय पसलियां कशेरुकों के प्रसारों के रूप में बनतीं और क्षैतिज पटों में फैली होती हैं। पृष्ठीय पसलियां इलास्मोब्रैंकों तथा ऐम्फिबियंस में पायी जाती हैं। ये छोटी तथा असम्पूर्ण विकसित होती हैं, जबकि ऐम्नियोटों में ये सुविकसित होती हैं। ये एक ओर कशेरुक दण्ड के साथ और दूसरी ओर स्टर्नम के साथ सम्पर्क स्थापित करती हैं एवं देह को घेर लेती हैं। आदिम रेप्टाइलों में, जैसे कि **स्फीनोडॉन** में पृष्ठीय पसलियां कशेरुक सेंट्रम के साथ एक शीर्ष के द्वारा जुड़ी होती हैं जो सेंट्रम तथा तंत्रिक चाप दोनों के साथ संपर्क करता है। उच्चतर कशेरुकियों, ख़ास तौर से ऐम्नियोटों में ये कशेरुक दण्ड से लगी होती हैं। प्ररूपी पसली में दो शीर्ष होते हैं- एक तो **कैपिटुलम** (capitulum) जो सेंट्रम से संलग्न होता है और दूसरा **टुबर्कुलम** (tuberculum) जो कशेरुकों के अनुप्रस्थ प्रवर्धों से संलग्न होता है। पसलियों के दो शीर्षों के बीच में एक गुहा **कशेरुक धमनी** नाल (canal) होती है जिसमें से होकर कशेरुक धमनी गुज़रती हैं। अधर पसलियां हीमल चापों से निकली हुई जान पड़ती हैं ये भी शरीर को घेरे रहती हैं मगर पेरिटोनियल गुहा के भीतर होती हैं। अधर पसलियां अधिसंख्य टीलियोस्टिआई मछलियों, गैनॉइड मछलियों तथा डिप्नोई में पायी जाती हैं। अधिकतर टीलियोस्टिआई मछलियों में पृष्ठ तथा अधर दोनों ही प्रकार की पसलियां पायी जाती हैं। वे पसलियां जो छोटी होती हैं और स्टनर्म से जुड़ी नहीं होतीं उन्हें **कूट पसलियां** (false ribs) कहते हैं। कूट पसलियां मगर-मच्छों में भी पायी जाती हैं।

स्टनर्म एक शील्ड अथवा शलाका के आकार की हड्डी अथवा अस्थियों के एक समूह के रूप में होती है जो चतुष्पादों के वक्ष की मध्य-अधर दिशा में पायी जाती है। स्टर्नम को सामान्य भाषा में उरोस्थि अथवा छाती की हड्डी भी कहते हैं। पसलियों के अधर सिरे, ऐम्नियोटों में स्टर्नम से लगे होते हैं। स्टनर्म पसलियों के मध्यक सिरों के प्रसार के रूप में बनती है। स्टर्नम और साथ में पसलियों तथा कशेरुक दण्ड एक साथ मिलकर एक ऐसा कंकाली ढांचा बनाते हैं जो वक्ष के अंगों को घेरे रहकर उनको सुरक्षा प्रदान करता है (चित्र 11.10)। पक्षियों की स्टर्नम चौड़ी होती है तथा उसमें एक अधर नौतल के जैसा प्रवर्ध निकला होता है, जो पंखों की पेशियों के संलग्न के लिए सतह प्रदान करता है (चित्र 11.11)। स्टनर्म सामान्यतः उन कशेरुकियों में पायी जाती है जो पाद संचलन के लिए अनुकूलित होते हैं। सांपों में पाद नहीं होते और उनमें स्टनर्म भी समाप्त हो गयी हैं।

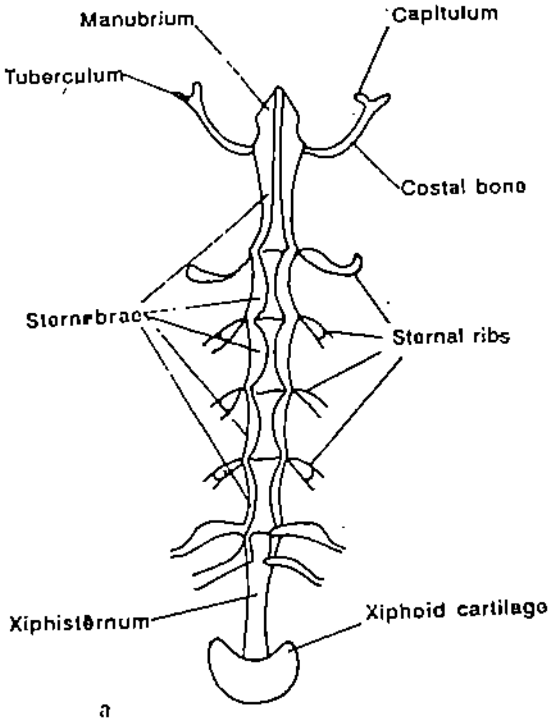

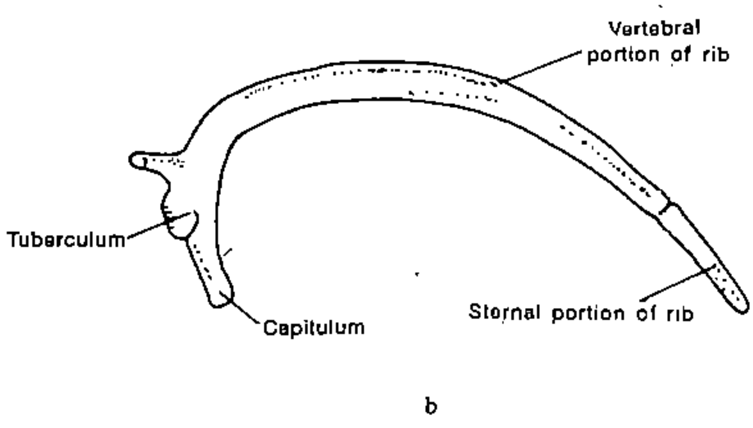

चित्र 11.10 : स्तनी: स्टर्नम तथा पसली।

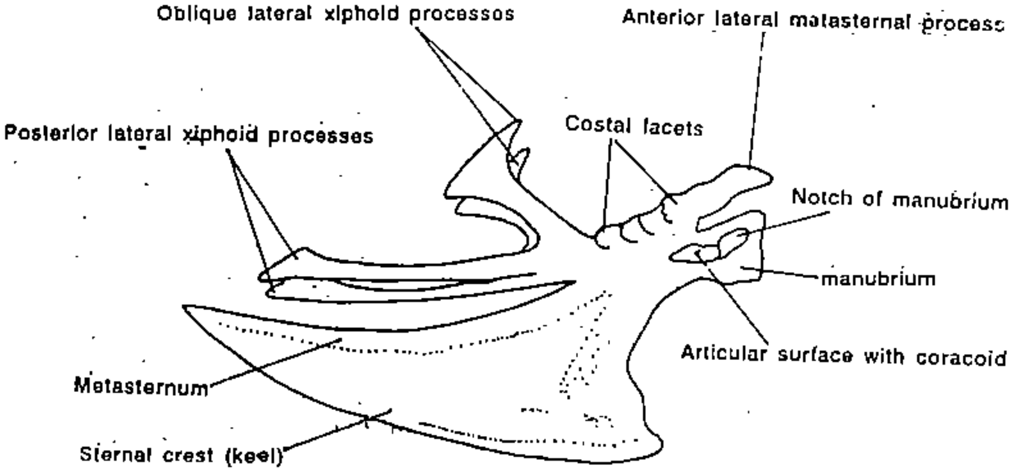

चित्र 11.11 : पक्षी का स्टर्नम (पार्श्व दृश्य)।

बोध प्रश्न 1

अ) कॉलम ब में दिए गए कथन को कालम अ में दिए गए शीर्षक से मिलाइए:

	अ		ब
क)	कार्टिलेज तथा हड्डी	i)	हीमल चाप के भीतर हीमल नाल होती जिसके भीतर हीमल वाहिकाएं बंद हुई होती हैं।
ख)	करोटि	ii)	चतुष्पादों के पाद प्ररूपत: पंचांगुलिक होते हैं जिनमें से प्रत्येक में पांच-पांच उंगलियां होती हैं।
ग)	कशेरुक दण्ड	iii)	मैट्रिक्स में खनिज लवण होते हैं जो अधिकतर कैल्सियम के साथ जुड़े फॉस्फेटों तथा कार्बोनेटों के होते हैं।

घ) उपांगीय कंकाल iv) घ्राण केप्सूल अग्र सिरे पर बने होते हैं तथा श्रवण केप्सूल कपाल के पश्च-पार्श्व दिशाओं पर बने होते हैं।

ब) रिक्त स्थान भरिए:-

i) कशेरुक के अग्रगर्ती सेंट्रम पर ········ की ओर एक अवतलता तथा ········ की ओर एक उत्तलता पायी जाती है।

ii) ················ प्रकार के सेंट्रम पार्श्व दृश्यों में डम्बेल आकृति के दिखायी पड़ते हैं।

iii) ················ प्रकार के सेंट्रमों को ················ आकृति का वर्णित किया जाता है।

iv) अगर्ती सेंट्रम सामान्यत: ················ और बिना किसी उभार अथवा ················ के होते हैं।

11.4 मेंढ़क तथा खरगोश का कंकाल

इस अनुभाग में हम मेंढ़क तथा खरगोश की करोटियों का विवेचन करेंगे।

11.4.1 मेंढ़क की करोटि

मेंढ़क की करोटि सरल संरचना वाली होती है जिसमें अन्य कशेरुकियों की अपेक्षा हड्डियों की संख्या अपेक्षाकृत कम होती है (चित्र 11.12)। इसका अध्ययन करना आसान है।

मेंढ़क की करोटि का कपाल मात्र छ: हड्डियों का बना होता है (चित्र 11.13)। यह अग्र-पश्च दिशा में लम्बा हो गया होता है। कपाल के पश्च सिरे को ऑक्सिपिटल सिरा कहते हैं। इसमें एक बड़ा छिद्र महारंध्र (foramen magnum) होता है। इसे घेरती हुई एक जोड़ी एक्सॉक्सिपिटल (exoccipital) हड्डियां होती हैं। एक्सॉक्सिपिटलों में दो उभार ऑक्सिपिटल कॉण्डाइल (occipital condyles) होते हैं जिनके द्वारा पहली कशेरुक के साथ संधि बनी होती है। कपाल की छत तथा दोनों पार्श्व एक जोड़ी संयुक्त हड्डियों फ्रॉण्टोपेराइटलों

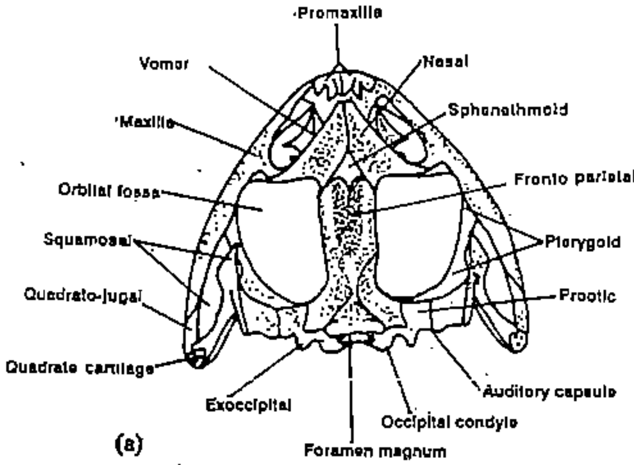

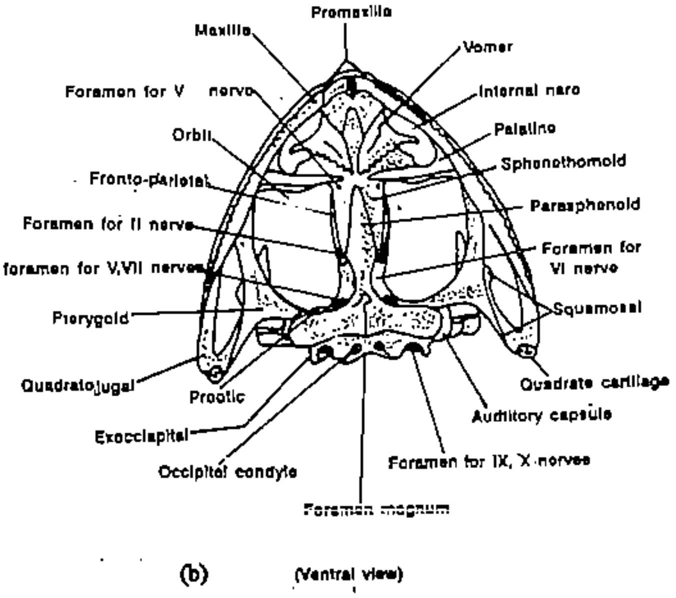

चित्र 11.12 : मेंढक की करोटि

(frontoparietals) के द्वारा ढके होते हैं। अग्र सिरे पर एक एकल वलयाकार हड्डी स्फीनेथमॉइड (sphenethmoid) होती है। कपाल का फ़र्श एक खंजरनुमा हड्डी पैरास्फीनॉइड (parasphenoid) से ढका होता है।

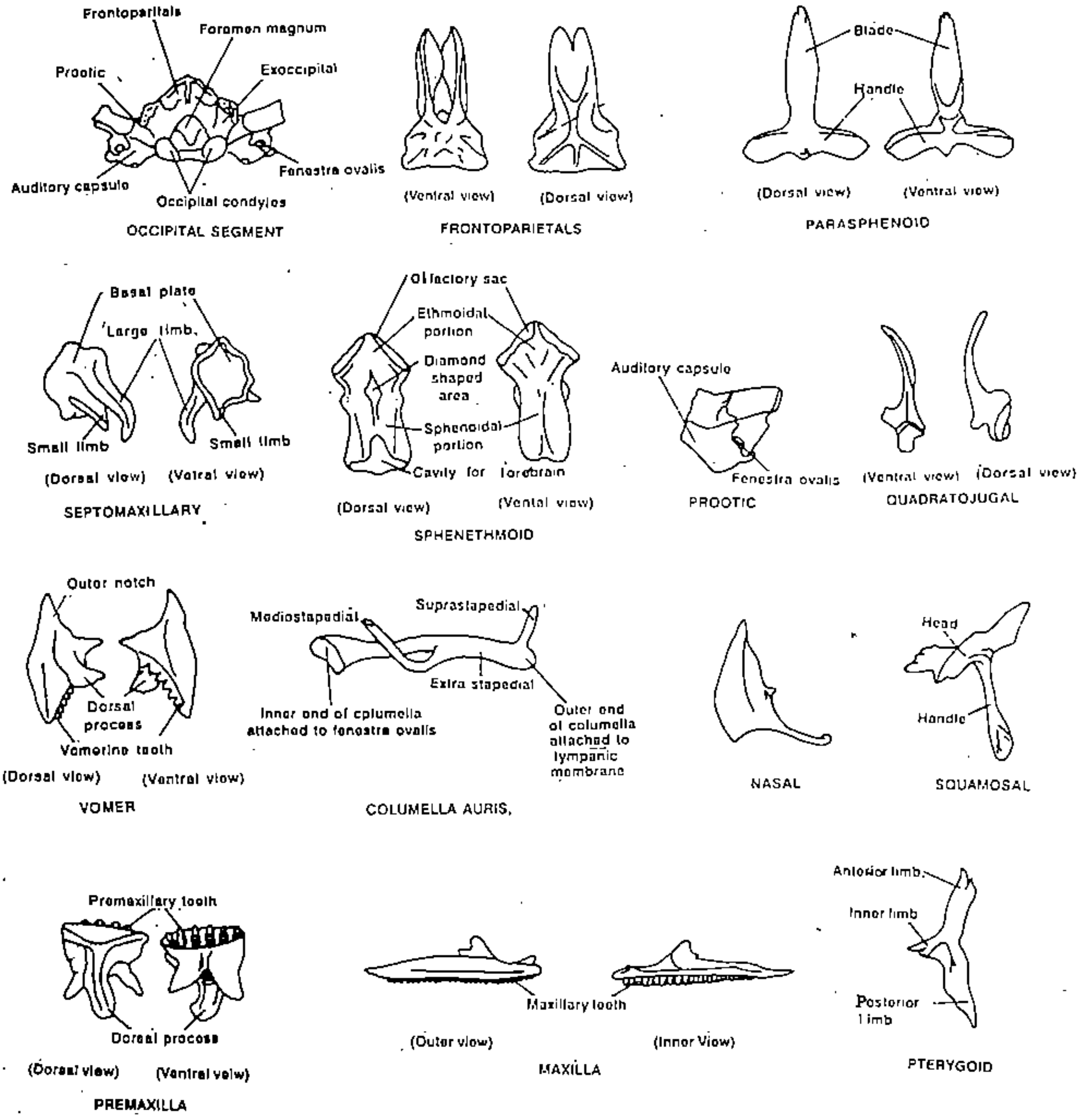

चित्र 11.13 : मेंढक की विसंहित कपाल-हड्डियां।

मेंढक की करोटि के श्रवण केप्सूल कपाल के पश्च-पार्श्व दिशा में स्थित होते हैं। प्रत्येक श्रवण केप्सूल में केवल एक हड्डी प्रोऑटिक (prootic) होती है। शेष केप्सूल झिल्लियों द्वारा ढका होता है। घ्राण केप्सूल कपाल के अग्र पर पाए जाते हैं। प्रत्येक घ्राण केप्सूल के ऊपर एक नेज़ल (nasal) हड्डी तथा नीचे की ओर वोमर (vomer) हड्डी होती है। ये दोनों हड्डियां झिल्लियों द्वारा कपाल से और आपस में भी जुड़ी होती हैं। कपाल के अग्र पार्श्व पर एक गुहा होती है जिसके भीतर नेत्र गोले स्थित होते हैं। यह गुहा नेत्र-कोटर होती है इसकी परिसीमा बनाते हुए बाहरी सीमांत पर ऊपरी जबड़े की हड्डियां होती हैं, भीतरी सीमांत पर घ्राण केप्सूल तथा कपाल, और पीछे की ओर श्रवण केप्सूल की हड्डी होती है। फ़र्श पर दृढ़ झिल्लियां ढकी होती हैं जो मुख गुहा में उभरी होती हैं।

ऊपरी जबड़ा घोड़े की नाल की जैसी शक्ल का होता है। अग्र तथा पार्श्व दिशाओं में यह करोटि का बाहरी सीमांत बनाता है। ऊपरी जबड़ा दो अर्धांशों का बना होता है जो सामने की ओर समेकित मगर पीछे की ओर स्वतंत्र होते हैं। प्रत्येक अर्धांश में एक अग्र **प्री-मैक्सिला** (premaxila), एक मध्य **मैक्सिला** (maxilla) तथा एक पश्च **क्वाड्रैटोजुगल** (quadratojugal) होती है (चित्र 11.13)। ऊपरी जबड़े के दो अर्धांश प्रीमैक्सिलरी सिरे पर समेकित होते हैं। ऊपरी जबड़ा प्रत्येक पार्श्व पर करोटि के साथ अगतिशील रूप में जुड़ा होता है। एक छड़-जैसी **पैलेटाइन** (palatine) हड्डी मैक्सिला को कपाल की स्फ़ीनेथमॉइड से संयोजित करती है (चित्र 11.12)। पश्चत: दोनों पार्श्वों पर दो हड्डियां होती हैं जो ऊपरी जबड़े को उस दिशा के श्रवण केप्सूल से जोड़ती हैं। पृष्ठत: एक T-आकृति की हड्डी **स्क्वैमोज़ल** (squamosal) होती है। इस हड्डी का लम्बा भाग पश्चत: क्वाड्रैटोजुगल से जुड़ा होता है। इस हड्डी की क्षैतिज शाखा की भीतरी नोक प्रोऑटिक से जुड़ी होती है तथा उसका दूसरा सिरा मुक्त होता है।

अधरत: प्रत्येक पार्श्व पर एक त्रिअरीय हड्डी **टेरिगाइड** (pterygoid) होती है। इस हड्डी के तीन सिरे अग्रत: मैक्सिला से संलग्न होते हैं, मध्य-पश्च दिशा पर प्रोऑटिक से तथा पश्चत: क्वाड्रैटोजुगल से संलग्न होते हैं।

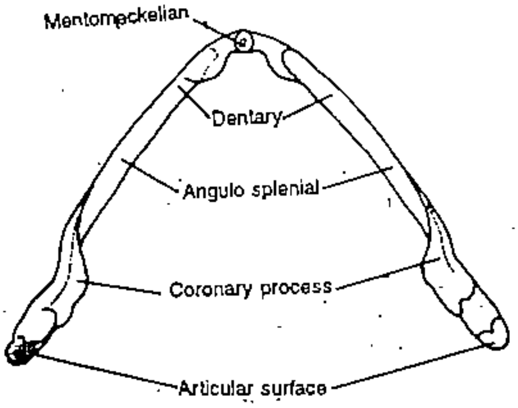

चित्र 11.14 : मेंढ़क का निचला जबड़ा।

निचला जबड़ा भी घोड़े की नाल की शक्ल का होता है (चित्र 11.14)। आकृति की दृष्टि से यह ऊपरी जबड़े का पूरक होता है। पश्चत: यह ऊपरी जबड़े के साथ क्वाड्रैटोजुगल से जुड़ा होता है तथा शेष मार्ग में मुक्त रहता है। निचला जबड़ा भी दो अर्धांशों का बना होता है जो अग्र दिशा में समेकित रहते हैं। प्रत्येक अर्धांश में तीन हड्डियां होती हैं:- अग्रत: **मेंटोमेकेलियन** (mentomeckelian), उसके पीछे की ओर **डेण्टरी** (dentary) तथा पश्चत: **ऐंगुलास्प्लीनियल** (angulosplenial), दो अर्धांशों की मेंटोमैकेलियनें अग्रत: समेकित होती हैं तथा ऐंगुलोस्प्लीनियलें ऊपरी जबड़े की क्वाड्रैटोजुगल से संधिस्थ होती हैं जहां ये अंतिम सिरे की अवतलता में बैठी होती हैं। ऐंगुलोस्प्लीनियल पर बनी अवतलता के सामने की ओर एक छोटा कूटक-सरीखा प्रवर्ध बना होता है जिसे **कॉरोनरी प्रवर्ध** (coronary process) कहते हैं (चित्र 11.15)।

दांत ऊपरी जबड़े की प्रीमैक्सला तथा मैक्सिला पर और साथ ही साथ घ्राण केप्सूलों की वोमरों पर भी पाए जाते हैं। दांत मुख-गुहा में उभरे हुए होते हैं। ये सभी दांत उन-उन हड्डियों से, जिन पर वे होते हैं; समेकित हुए रहते हैं। प्रीमैक्सिला तथा मैक्सिला के दांत इनके सीमांतों पर एकल पंक्ति में व्यवस्थित रहते हैं। वोमर पर बने दांतों को **वोमेरी दांत** कहते हैं। दांत भीतर की ओर को वक्र होते हैं। ये चबाने में सहायता नहीं करते वरन् शिकार को मुख-गुहा के भीतर से बाहर को निकल जाने से रोकते हैं।

मुख-गुहा के फ़र्श को आलम्ब प्रदान करने वाला एक **हाइऑइड उपकरण** (hyoid

apparatus) होता है (चित्र 11.15)। यह ग्रसनी कंकाल से व्युत्पन्न हुआ होता है। इसमें एक प्लेट-जैसा केंद्रीय भाग होता है जो मुख-गुहा के फ़र्श में स्थित होता है। यह भाग जीभ के संलग्न के लिए सतह प्रदान करता है। केंद्रीय प्लेट् से दो जोड़ी प्रवर्ध निकलते हैं- एक जोड़ी अग्र सिरे से तथा दूसरी जोड़ी पश्च सिरे से। इन प्रवर्धों को क्रमशः अग्र तथा पश्च हाइऑइड कॉर्नुआ (hyoid cornua) कहते हैं। अग्र हाइऑइड कॉर्नुआ लम्बे पतले कार्टिलेजी प्रवर्ध होते हैं जो पीछे की ओर को घूमकर करोटि के श्रवण प्रदेश में पहुंचे हुए होते हैं और मध्य कान की कॉलुमेला औरिस (columella auris) के साथ संलग्न रहते हैं। पश्च हाइऑइड कॉर्नुआ मज़बूत छड़-जैसी हड्डियां होती हैं जो पीछे की ओर घाटी के अर्थात् मुख गुहा के फ़र्श पर बनी श्वास नली के छिद्र के दोनों पार्श्वों पर पहुंची होती हैं।

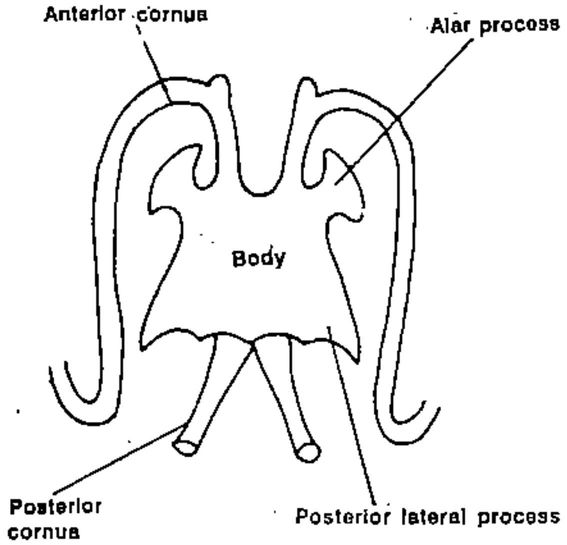

चित्र 11.15 : हाइऑइड उपकरण।

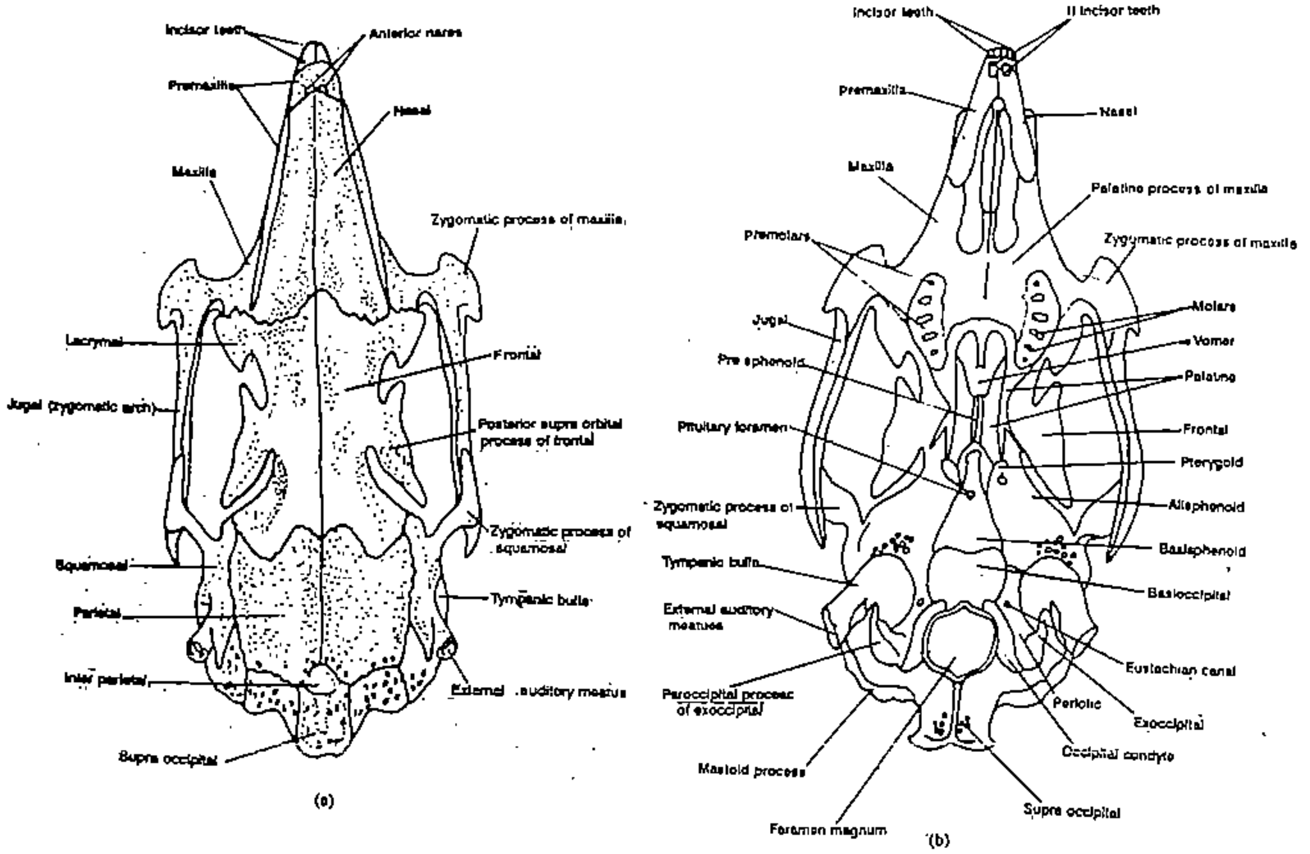

चित्र 11.16 : स्तनीय करोटि (खरगोश)।

11.4.2 खरगोश की करोटि

खरगोश की करोटि मोटी तथा मेंढ़क की करोटि की तुलना में अग्र-पश्च दिशा में लम्बी होती है। करोटि का यह लम्बा होना जबड़ों के लम्बा होने से थूथन के बन जाने के कारण होता है जिसके फलस्वरूप जबड़ा पेशियों के संलग्न के वास्ते अधिक स्थान मिल जाता है। खरगोश की करोटि का भी उन्हीं विभाजनों के अंतर्गत अध्ययन किया जा सकता है जो मेंढक की करोटि में देखे गए थे अर्थात् मस्तिष्क को भीतर बंद किए रहने वाला कपाल, संवेदी अंगों को भीतर बंद किए रहने वाले संवेदी केप्सूल, दो जबड़े और हाइऑइड उपकरण (चित्र 11.16)। इसमें करोटि के विभिन्न भाग संरचना की दृष्टि से अधिक जटिल हो गए हैं, उसमें अब अतिरिक्त हड्डियां आ गयी हैं जो या तो पूर्वविद्यमान कार्टिलेजों के अस्थिभवन से बनी हैं या जहां पर पहले केवल झिल्लियां होती थीं वहां पर कुछ वेष्ठनास्थियां (investing bones) बन जाने से आयी हैं। वर्तमान में स्तनी ही कशेरुकी विकास की अंतिम अवस्था दर्शाते हैं। इनमें पायी जाने वाली जटिलताएं ऐसे अनुकूलन हैं जिनमें वे सभी विकास लक्षण मौजूद हैं जिन्होंने थल पर जीवित रह सकना संभव बनाया।

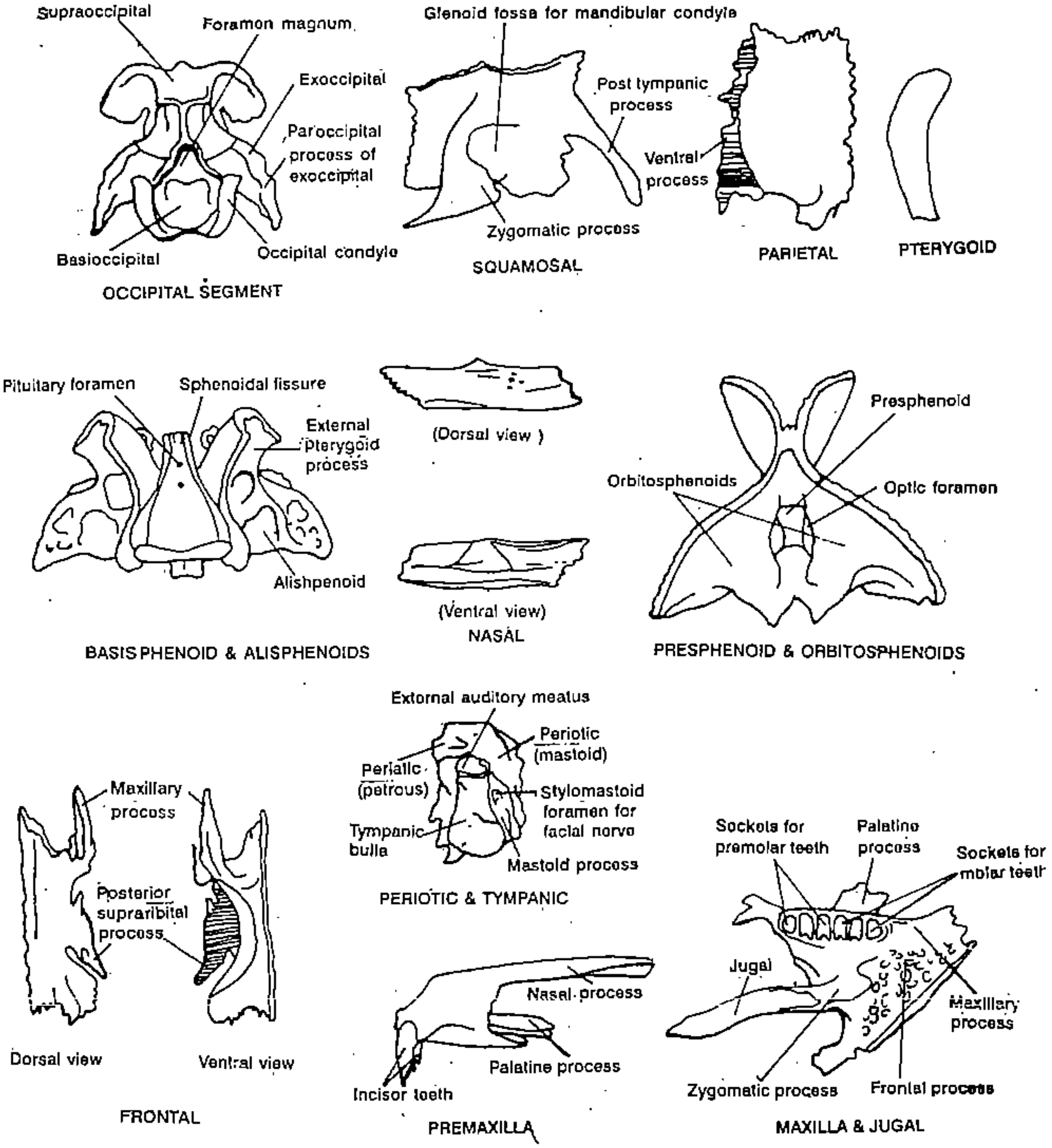

चित्र 11.17 : विसंहित करोटि हड्डियां (खरगोश)।

कुल मिलाकर करोटि की लम्बाई की तुलना में कपाल अपेक्षाकृत छोटा है। कपाल नेत्रकोटरों के पीछे बना होता है। कपाल को अग्र-पश्च दिशा में तीन खण्डों में विभाजित किया जा सकता है। ये खण्ड एक-दूसरे के पीछे वलयों के रूप में होते हैं और वे सभी मस्तिष्क को घेरे रहते हैं। पिछला खण्ड ऑक्सिपिटल खण्ड होता है। इसमें महारंध्र (foramen magnum) को घेरती हुई चार हड्डियां होती हैं जबकि मेंढक में केवल दो हड्डियां ही थीं। महारंध्र नीचे को रुख किए रहता है न कि पीछे को जैसा कि मेंढक में था। महारंध्र को घेरती हुई एक अकेली हड्डी ऊपरी दिशा में होती है, एक जोड़ी एक्सॉक्सिपिटलें पार्श्व दिशाओं पर और एक अकेली प्लेट-जैसी हड्डी बेसीऑक्सिपिटल निचली दिशा में बनी होती है (चित्र 11.17)। खरगोश में भी प्रथम कशेरुक के साथ संधि बनाने के लिए दो अस्थिकंद होते हैं। इस प्रकार मेंढक और खरगोश दोनों की करोटियां द्विअस्थिकंदीय (bicondylar) होती हैं। खरगोश के अस्थिकंद एक्सॉक्सिपिटलों के निचले भाग से निकले होते हैं। अस्थिकंदो के बनाने में एक्सॉक्सिपिटलों तथा बेसीऑक्सिपिटलों दोनों का योगदान होता है। अस्थिकंद चिकने और गोल होते हैं और वे प्रथम कशेरुक के अग्र मुख पर बनी अवतलताओं में संधि बनाते हैं।

ऑक्सिपिटल क्षेत्र के सामने का खण्ड पैराइटल खण्ड होता है। इसमें छह हड्डियां होती हैं। एक अकेली चपटी त्रिभुजाकार बेसीस्फ़ीनॉइड (basisphenoid) होती है जो बेसीऑक्सिपिटल के सामने फ़र्श वाला भाग बनाती है। बेसीस्फ़ीनॉइड में एक गढ़ा बना होता है जिसमें पिट्यूटरी स्थित होती है, इस गढ़े को सेल्ला टर्सिका (sella tursica) अथवा पिट्यूटरी फ़ॉसा (pituitary fossa) कहते हैं। इस खण्ड की छत बनाती हुई एक जोड़ी पेराइटलें (parietals) हड्डियां होती हैं। ये दो पैराइटलें मध्य पृष्ठ रेखा पर समेकित हुई होती हैं। इस खण्ड की पार्श्व दिशाओं पर एक जोड़ी पंखाकार हड्डियां दाएं-बाएं एक-एक बनी होती हैं जिन्हें ऐलिस्फ़ीनॉइड (alisphenoid) कहते हैं (चित्र 11.12)। पृष्ठतः ये पैराइटलों से और अधरतः बेसीस्फ़ीनॉइड से संयोजित होती हैं। पृष्ठतः दो पैराइटलों तथा सुप्राऑक्सीपिटलों के बीच एक पच्चर-सरीखी हड्डी अंतरापैराइटल होती है। करोटि का अग्र भाग फ़्रॉण्टल खण्ड होता है। फ़्रॉण्टल खण्ड की छत को ढकते हुए एक जोड़ी फ़्रॉण्टल (frontal) हड्डियां होती हैं जिनमें से हर एक में एक सुव्यक्त सुप्राऑर्बिटल कूटक (supra-orbital ridge) बना होता है। हर पार्श्व पर ये प्रवर्ध नेत्र-कोटर के ऊपर को उभरे होते हैं। एक मध्यक प्रीस्फ़ीनॉइड इस खण्ड का फ़र्श बनाती है। यह बेसीस्फ़ीनॉइड के सामने की ओर होती है। एक जोड़ी ऑर्बिटोस्फ़ीनाइडें (orbitosphenoids) प्रत्येक पार्श्व पर नेत्र कोटर की भीतरी परिसीमा बनाती है। एक उदग्र प्लेट जैसी हड्डी जो कपाल की अग्र सीमा बनाती है, क्रिब्रिफार्म प्लेट (cribriform plate) कहलाती है। इस प्लेट में एक छिद्र घ्राण तंत्रिकाओं के मार्ग के लिए होता है।

स्क्वैमोज़ल नामक एक जोड़ी झिल्ली-अस्थियां कपाल के पश्च भाग में पार्श्व दीवारें पूरी बना देती हैं। प्रत्येक पार्श्व की स्क्वैमोज़ल उसी ओर की फ़्रॉण्टल, पैराइटल तथा ऐलिस्फ़ीनॉइड के साथ संधियोजित होती है। स्क्वैमोज़ल से निकला एक प्रवर्ध जिसे ज़ाइगोमैटिक प्रवर्ध (zygomatic process) कहते हैं बाहर को उठा हुआ होता है। इसमें एक भीतर को दबा भाग होता है जिसमें निचला जबड़ा संधियोजित रहता है।

श्रवण केप्सूल कपाल के पश्च-पार्श्व पर दाएं-बाएं दोनों ओर स्क्वैमोज़ल तथा एक्सॉक्सिपिटल के बीच स्थित रहते हैं (चित्र 11.16)। प्रत्येक श्रवण केप्सूल वयस्क अवस्था में तीन हड्डियों पेरिऑटिक, एपिऑटिक, तथा ओपिस्थो-ऑटिक का बना होता है। इनके अतिरिक्त श्रवण केप्सूल में दो अन्य संरचनाएं टिम्पैनिक हड्डी तथा श्रवण अस्थिकाएं होती हैं। पेरिऑटिक हड्डी दो भागों मे विभाजित रहती है, एक तो पेट्रस (petrous) जो कला लैबिरिंथ को घेरे रखने वाला भीतरी कान बनाती है और दूसरी मैस्टॉइड प्रवर्ध जो पेरिऑटिक प्रवर्ध तथा एक्साक्सिपिटल के बीच से बाहर को उभरा रहता है। पेट्रस में उसकी बाहरी सतह पर दो

छिद्र फेनेस्ट्रा ओवैलिस (fenestra ovalis) तथा फेनेस्ट्रा रोटण्डम (fenestra rotundum) बने होते हैं (चित्र 11.18)। टिम्पैनिक हड्डी बेसीस्फीनॉइड तथा स्क्वैमोज़ल के बीच श्रवण कुहर ("आडिटरी मीटस'') में पड़ी होती है और बाहरी सतह पर यह पेरिऑटिक से निकटत: संलग्न रहती है। टिम्पैनिक हड्डी फ़्लास्क की आकृति की होती है जिसमें एक बाहरी नलिकाकार भाग होता है और एक निचला अपेक्षाकृत छोटा भाग टिम्पैनिक बुल्ला (tympanic bulla) बनाता है जिसके भीतर एक टिम्पैनिक (कर्णपटह) गुहा होती है और इस गुहा के भीतर श्रवण-अस्थिकाएं होती हैं। कर्णपटह झिल्ली (टिम्पैनिक झिल्ली) इस नलिका के भीतरी सिरे पर आड़ी फैली होती है यह कर्णपटह झिल्ली कर्णपटह गुहा को नलकी से पृथक् किए रहती है श्रवण अस्थिकाओं में तीन छोटी हड्डियां मैलियस (malleus), इंकस (incus) तथा स्टेपीज़ (stapes) होती हैं (चित्र 11.19)। ये हड्डियां कर्णपटह झिल्ली से लेकर पेरिऑटिक हड्डी तक फैली होती हैं। टिपैनिक हड्डी पर अग्रत: एक यूस्टेशियन छिद्र होता है जो हड्डी तक फैली होती हैं। जो यूस्टेशियन नाल में खुलता है और यह नाल ग्रसनी में खुलती है।

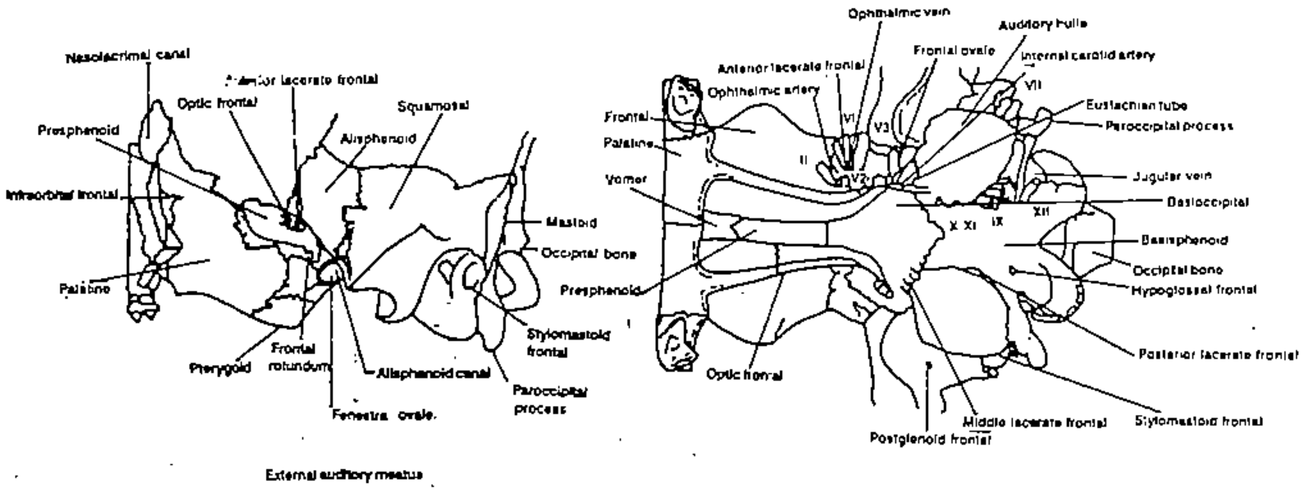

चित्र 11.18 : कुत्ते का मस्तिष्क-कोश प्रदेश। A-पार्श्व दृश्य तथा B-अधर दृश्य जिनमें रंध्र दिखाए गए हैं। B में प्रमुख तंत्रिकाएं, भीतरी कैरोटिड धमनी एवं उसकी पैलेटाइन शाखा तथा जुगुलर शिरा का मार्ग दिखाया गया है।

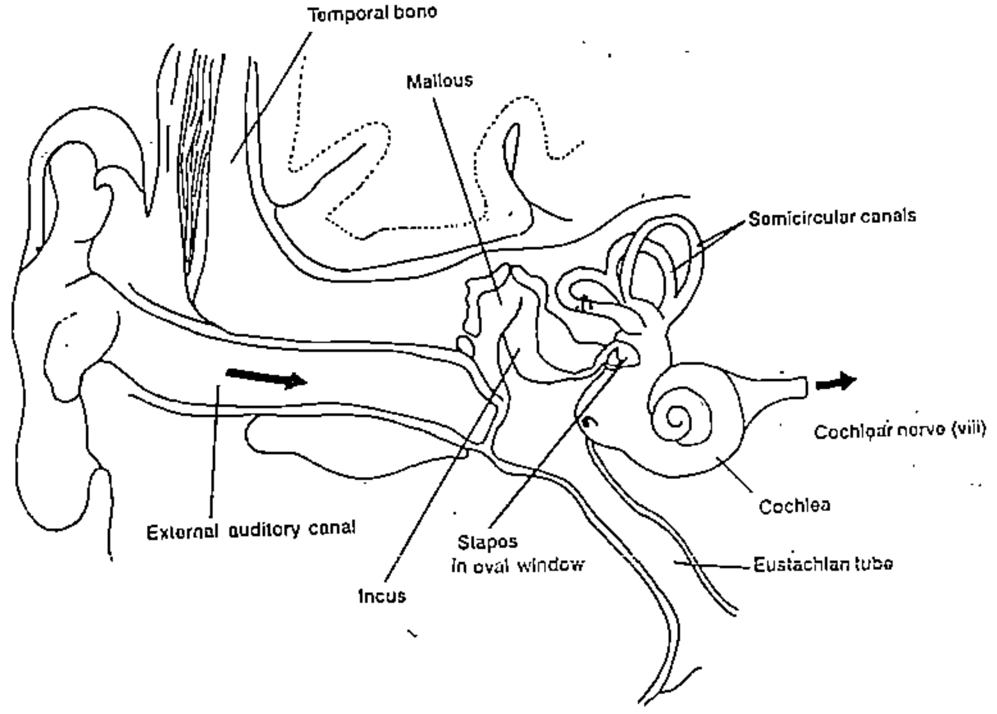

चित्र 11.19 : मानव कान के मुख्य भाग।

घ्राण केप्सूल कपाल के आगे की ओर बने होते हैं। इनके ऊपर की छत बनाती हुई दो चपटी हड्डियां नेज़लें (nasals) होती हैं। ये आगे की ओर बाहरी नासाछिद्रों तक तथा पीछे की ओर फ्रॉण्टलों तक फैली होती हैं। एक उदग्र प्लेट जैसी हड्डी मीज़ेयमाइड के द्वारा नासा-गुहा दो पृथक गुहाओं में विभाजित हुई रहती है। यह हड्डी क्रिब्रिफ्रॉर्म प्लेट के सामने स्थित रहती है। प्रत्येक नासा गुहा में एक कुंडली-जैसी हड्डी टर्बाइनल (turbinal) होती है। नासा गुहा बाहर को बाहरी नथुनों के द्वारा खुलती है और भीतर की ओर बहुत काफ़ी पीछे पश्च/भीतरी नासाछिद्रों के द्वारा मुख-गुहा में खुलती है।

नेत्र-कोटर खोखले स्थान होते हैं जिनके भीतर नेत्र-गोले स्थित होते हैं। ये कपाल के अग्र-पार्श्व दिशा में ऊपरी जबड़े तथा घ्राण केप्सूल के बीच दोनों पार्श्वों में एक-एक बने होते हैं। नेत्र-कोटर की अग्र भित्ति में एक छोटी हड्डी लैक्रिमल (lacrymal) होती है (चित्र 11.20)। इसमें एक अश्रु-छिद्र होता है जिसमें से होकर अश्रु-ग्रंथियाँ नेत्र-कोटर में खुलती हैं।

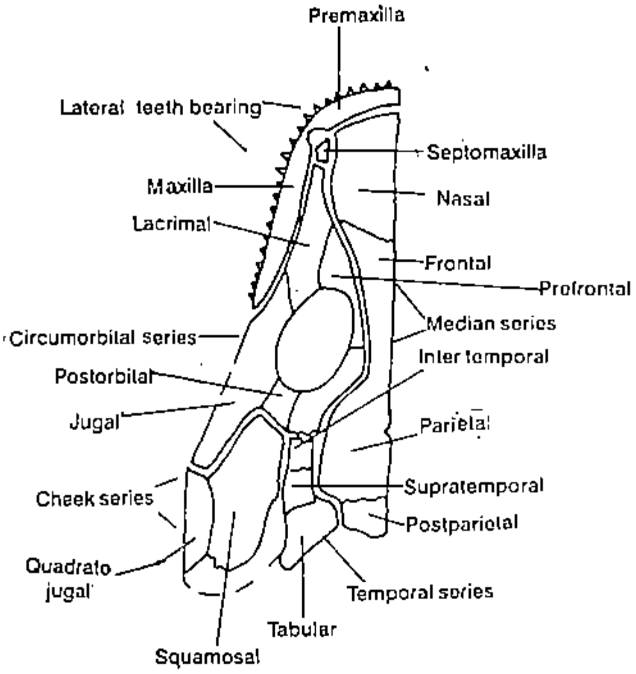

चित्र 11.20 : एक आदिम रेप्टाइल की करोटि की छत का आरेख जिसमें विभिन्न अवयवों को (यादृच्छिक रूप में) प्रदेशवत शृंखलाओं में समूहित किया गया है। नन्हीं सेप्टोमैक्सिला हड्डी किसी शृंखला में फ़िट नहीं बैठती। बिंदुओं द्वारा दर्शाए गए अवयव प्ररूपी स्तनियों की करोटि में इसी प्रकार से बने रहते हैं। पीछे की ओर आड़ी रेखाओं द्वारा दिखाए गए अवयव स्तनीय ऑक्सिपिटल हड्डी के रूप में समेकित हो गए जान पड़ते हैं, और बिना शेड किए गए अवयव स्तनियों में विलीन हो गए हैं।

ऊपरी जबड़ा दो अर्धांशों का बना होता है जो सामने की ओर जुड़ गए होते हैं। ऊपरी जबड़े के प्रत्येक अर्धांश में आगे की ओर एक प्रीमैक्सिला (चित्र 11.21 a) तथा पीछे की ओर एक मैक्सिला होती है. (चित्र 11.21 b। ऊपरी जबड़े के दो अर्धांश प्रीमैक्सिला सिरे पर जुड़ गए हुए होते हैं। प्रीमैक्सिला हड्डियां बड़ी होती हैं तथा वे थूथन का अग्र भाग बनाती हैं। प्रीमैक्सिला में तीन प्रवर्ध निकले होते हैं जो नेज़लों, मैक्सिलाओं तथा पैलैटाइनों से संधि बनाए होते हैं। प्रीमैक्सिला पर कृंतक (incisor) दांत बने होते हैं। पीछे की ओर मैक्सिला ऊपरी जबड़े का अधिक भाग बनाती है और उसके ऊपर अग्रचर्वणक (premolar) तथा चर्वणक (molar) दांत बने होते हैं। दोनों ओर मैक्सिला के भीतरी सीमांत से एक क्षैतिज पैलेटाइन प्रवर्ध निकलता है और ये दोनों प्रवर्ध मध्य में आकर मिल जाते और तालु का अग्र भाग बनाते हैं, और यह भाग एक क्षैतिज विभाजक होता है जो नासा गुहा को मुख गुहा से पृथक कर देता है। यह मुख-गुहा की छत बनाता है। मैक्सिला के बाहरी सीमांत से बाहर की ओर को ज़ाइगोमैटिक प्रवर्ध बाहर को निकला होता है जो नेत्र-कोटर का अग्र किनारा बनाता है। मैक्सिला हड्डी नासा-गुहा के पीछे बाहर की ओर फैली होती है। प्रत्येक

पार्श्व पर पैलेटाइन तथा ऐलिस्फ़ीनॉइड के बीच टेरिगॉइड (pterygoid) नामक एक अनियमित आकृति की हड्डी होती है। पार्श्वतः सम्पीडित एक हड्डी जुगल (jugal) होती है। जिसमें से एक जाइगोमैटिक प्रवर्ध निकला होता है, और एक स्क्वैमोज़ल दोनों ओर पायी जाती है। यह हड्डी, स्क्वैमोज़ल तथा मैक्सिला के साथ मिलकर जाइगोमैटिक चाप बनाती है।

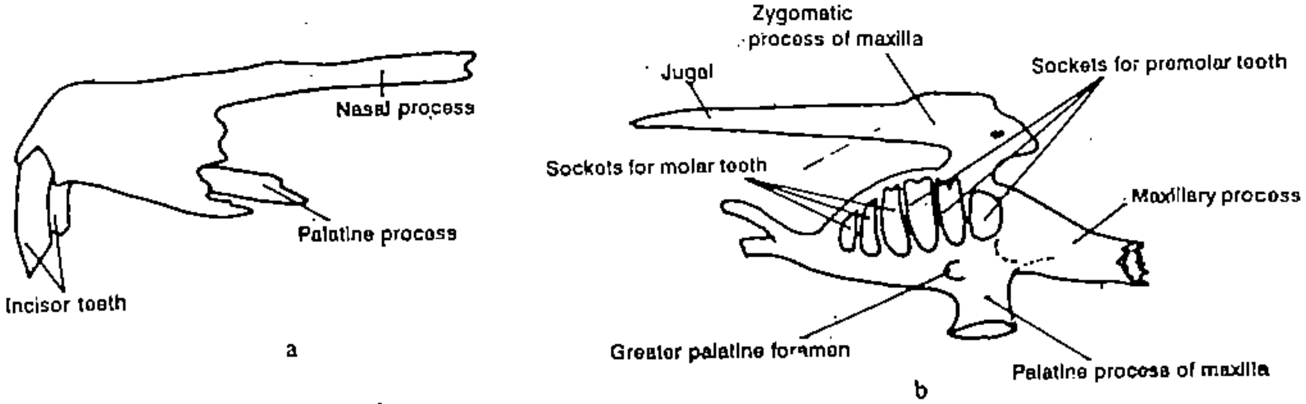

चित्र 11.21 : खरगोश का (a) प्रीमैक्सिला तथा (b) मैक्सिला।

जैसा कि सभी स्तनियों में होता है निचला जबड़ा एक अकेली हड्डी का बना होता है (चित्र 11.15), जो कि रेप्टाइलों के निचले जबड़े की छह हड्डियों तथा मेंढ़क की तीन हड्डियों के विपरीत है। यह हड्डी डेण्टरी (dentary) होती है। दो डेण्टरियां आगे की ओर मध्य रेखा पर एक सिम्फ़ाइसिस (संधान) द्वारा परस्पर जुड़ी होती हैं। प्रत्येक डेण्टरी से एक अग्र क्षैतिज और एक पश्च आरोही प्रवर्ध निकलता है। जिनके ऊपरी अंतिम सिरे पर एक अस्थिकंद बना होता है। यह अस्थिकंद अपनी-अपनी ओर के ग्लीनॉइड फ़ॉसा (glenoid fossa) से संधियोजन करता है। ग्लीनॉइड फ़ॉसा, स्क्वैमोज़ल तथा ज़ाइगोमैटिक चाप से बनता है।

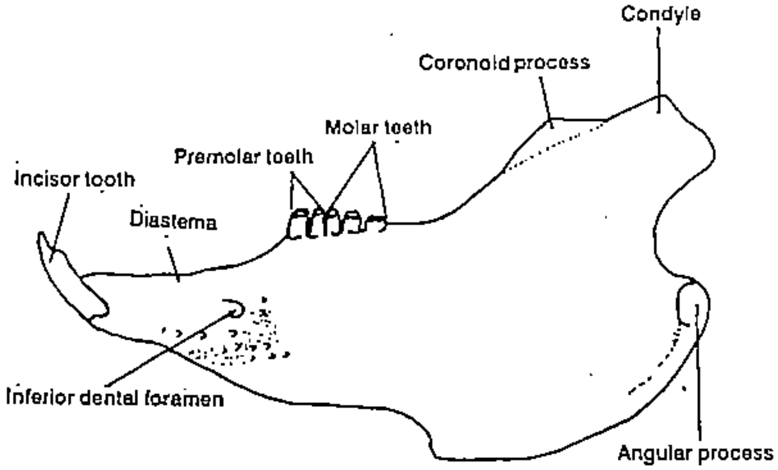

चित्र 11.22 : खरगोश का मैंडिबल (निचला जबड़ा)।

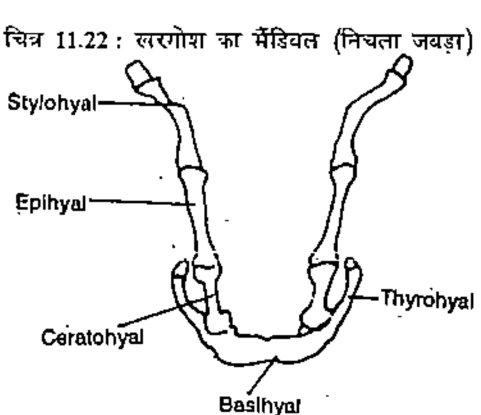

चित्र 11.23 : स्तनी का हॉइऑइड उपकरण।

हॉइऑइड उपकरण एक केंद्रीय प्लेट बेसीहायल (basihyal) (चित्र 11.23) के रूप में पाया जाता है। जिसमें पीछे को रुख किए हुए दो प्रवर्ध निकले होते हैं। अग्र कॉर्नुआ में तीन हड्डियां होती हैं जो पेरिऑटिक से संयोजित रहती हैं तथा पश्च कॉर्नुआ लैरिंक्स से संयोजित रहता है।

रेप्टाइलों के निचले जबड़े में छह हड्डियां होती हैं- आर्टिकुलर (articular), ऐंगुलर (angular), सुप्राऐंगुलर (supra-angular), डेण्टरी (dentary), स्प्लीनियल (splenial) तथा कोरैकॉइड (coracoid)। डेण्टरी में दांत बने होते हैं (चित्र 11.24)। इन छह हड्डियों में से केवल डेण्टरी ही स्तनियों के निचले जबड़े में बची रहती है। रेप्टाइलों की निचले जबड़े की अन्य हड्डियों का निचले जबड़े का अंश बने रहने का कार्य समाप्त हो गया और इनका उपयोग कर्णास्थियों के बनने में हुआ जिनका एक अतिरिक्त कार्य ध्वनि तरंगों को भीतरी कान में पहुंचाने का होने लगा।

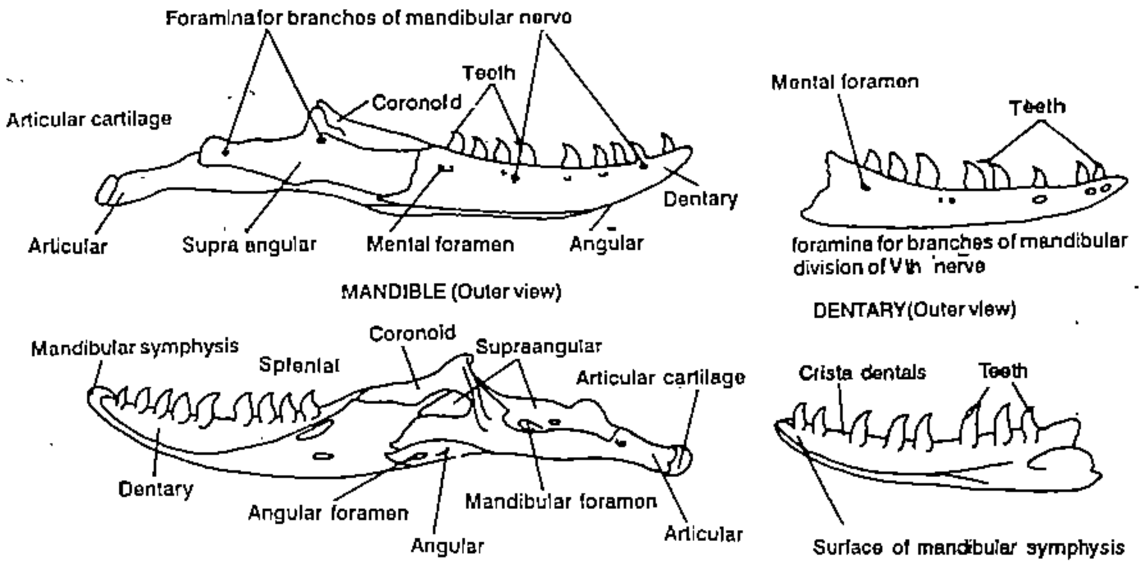

MANDIBLE (Outer view) DENTARY (Outer view)

MANDIBLE (Inner view) DENTARY (Inner view)

श्वसन मार्ग को मुख-गुहा से पृथक करने वाला वास्तविक तालु, केवल स्तनियों में ही बनता है।

स्तनियों की करोटि की हड्डियां सूचर (सीवन) (suture) नामक टेढ़ी-मेढ़ी रेखाओं द्वारा परस्पर जुड़ी रहती हैं। यह विशेषता स्तनियों ही की है। ये सूचर उन रेखाओं को दर्शाती हैं जहां सहवर्ती हड्डियों के बीच समेकन अथवा संयोजन हुआ है।

दांतों के जबड़े की हड्डियों से संलग्न होने का ढंग कशेरुकियों के अलग-अलग क्लासों में अलग-अलग होता है। ऐम्फ़िबियनों तथा रेप्टाइलों में दांत जबड़ों की हड्डियों से समेकित होते हैं। इस दशा को अग्रदंती (acrodont) कहते हैं। स्तनियों में दांत जबड़े की हड्डियों में बने सूराखों में गड़े रहते हैं। इस दशा को गर्तदंती (thecodont) दशा कहते हैं। गेंढ़क सहित अधिसंख्य कशेरुकियों में सभी दांत समान प्रकार के होते हैं और इस दशा को समदंती (homodont) कहते हैं। मगर स्तनियों में विभिन्न आकृतियों एवं संरचनाओं के भिन्न कार्य करने वाले दांत भिन्न प्रकार के होते हैं, इसे विषमदंती (heterodont) दंतविन्यास कहते हैं। इसके अलावा स्तनियों में उनके जीवन काल में दांतों के दो सेट होते हैं। एक सेट जो आरंभिक जीवन में आता है दूध के दांत कहलाते हैं और दूसरा स्थायी सेट जो व्यस्क में आता है स्थायी अथवा पक्के दांत कहलाते हैं। इस दशा को द्विबारदंती (diphyodont) प्रकार का दंत विन्यास कहते हैं।

11.4.3 मेंढ़क का कशेरुक दण्ड

मेंढक का कशेरुक दण्ड सरल और छोटा होता है (चित्र 11.25)। इसमें कुल नौ कशेरुकें और साथ में पिछले सिरे पर एक शलाका जैसा यूरोस्टाइल (uroštyle) होता है। पहली कशेरुक को ऐट्लस (atlas) कशेरुक कहते हैं। यह छल्ले-जैसी आकृति की होती है जिसमें एक छोटा सेंट्रम होता है तथा आगे की सतह पर दो अवतलताएं बनी होती हैं जिनके साथ करोटि के दो अस्थिकंद संधियोजित होते हैं। अनुप्रस्थ प्रवर्ध तथा अग्रजाइगैपोफ़ाइसिस नहीं पाए जाते। दूसरी कशेरुक को सभी अन्य कशेरुकियों की तरह ऐक्सिस (axis) कशेरुक कहते हैं। संख्या 3 से 7 की कशेरुकें प्ररूपतः अगर्ती होती हैं। इनमें एक जोड़ी अनुप्रस्थ प्रवर्ध होते हैं, एक-एक जोड़ी अग्र- एवं पश्च् ज़ाइगैपोफ़ाइसिस होते हैं तथा पृष्ठतः उभरी हुई तंत्रिक चाप होती है जो तंत्रिक नाल को घेरती होती है, और इस चाप से पृष्ठ दिशा में निकला और पीछे को रुख किए हुए एक तंत्रिक कंटक (neural spine) बना होता है।

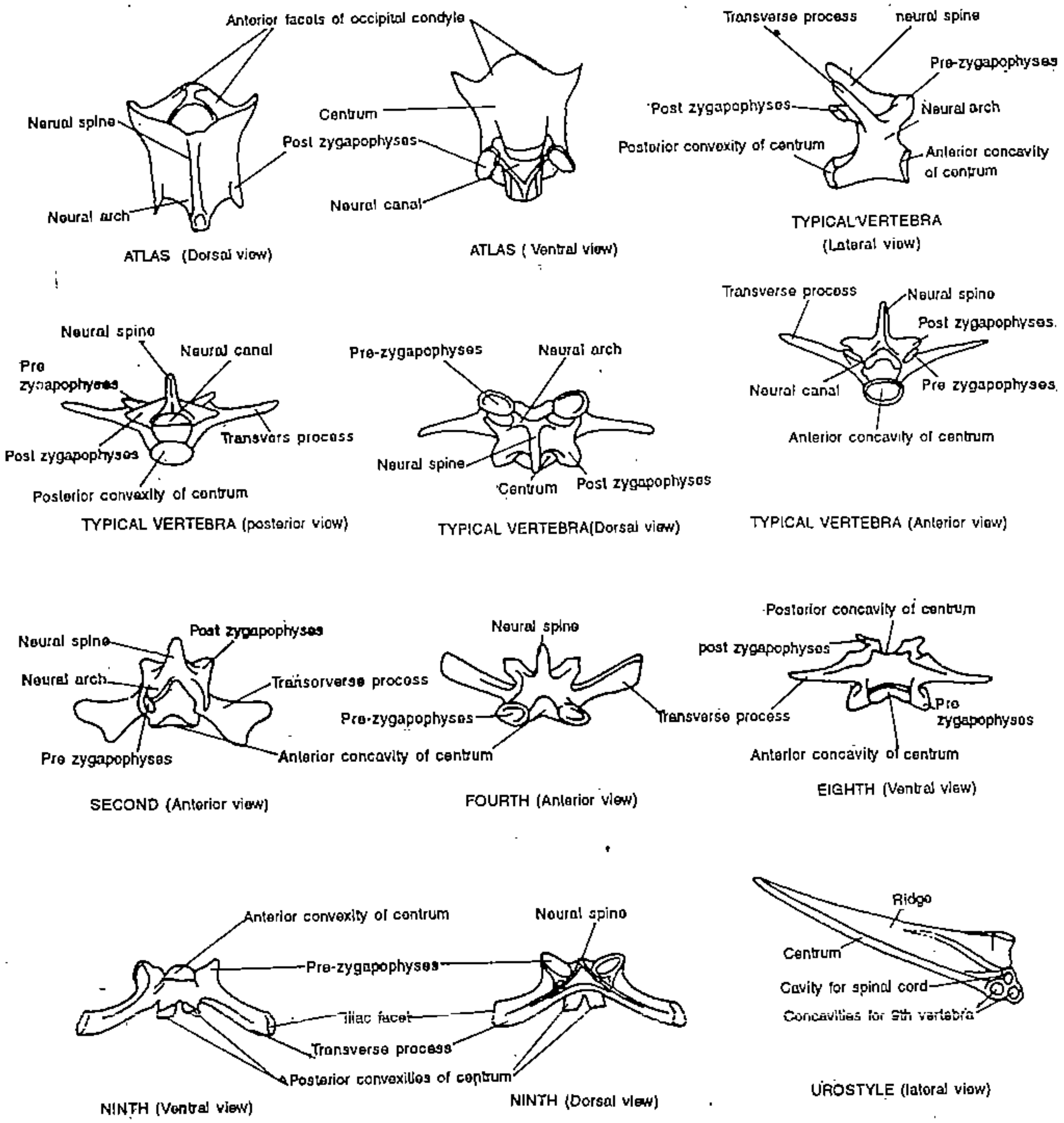

चित्र 11.25 : मेंढ़क की कशेरुकें।

पिछली कशेरुक का अग्र ज़ाइगैपोफ़ाइसिस सामने वाली कशेरुक के पश्च ज़ाइगैपोफ़ाइसिस के ऊपर स्थित होता है। आठवीं कशेरुक उभयावतल होती है, उसमें आगे और पीछे दोनों ओर अवतलताएं होती हैं, नवीं, कशेरुक में आगे की ओर एक उत्तलता और पीछे की ओर दो घुंडियों जैसे उभार बने होते हैं जो यूरोस्टाइल के अग्र सिरे पर बने दो गढ़ों में संधियोजन के लिए होते हैं। नवीं कशेरुक में अनुप्रस्थ प्रवर्ध पीछे की ओर होते हैं तथा पश्च ज़ाइगैपोफ़ाइसिस नहीं होते। यूरोस्टाइल एक लम्बी पतली छड़-जैसी संरचना होती है। वास्तव में यह उतनी ही लम्बी होती है जितनी कि कुल कशेरुक दण्ड की लम्बाई। यूरोस्टाइल के अग्र सिरे पर दो अवतलताएं होती हैं जिनके साथ नवीं कशेरुक के पिछले सिरे पर बनी दो उत्तलताओं के साथ संधियोजन बनता है। यूरोस्टाइल की पृष्ठ सतह पर एक अनुदैर्ध्य कूटक बना होता है, इस कूटक के भीतर मेरू-रज्जु का अंतिम भाग बंद होता है। यूरोस्टाइल एक संयुक्त संरचना है जो टैडपोल की समेकित पुच्छ कशेरुकों का प्रतिदर्श है, ये पुच्छ कशेरुकें टेडपोल के कायांतरण के दौरान पूंछ के विलोप के फलस्वरूप इस प्रकार की हो गयी हैं। दो-दो कशेरुकों के बीच में दाएं-बाएं दोनों ओर युग्मित छिद्र होते हैं जिनमें से होकर मेरू तंत्रिकाएं बाहर आती हैं। इन छिद्रों को अंतराकशेरुकी रंध्र कहते हैं। कशेरुकें स्नायुओं द्वारा परस्पर बंधी होती हैं, और इन स्नायुओं के कारण कुछ सीमित गति संभव बनी रहती है।

11.4.4 खरगोश का कशेरुक दण्ड

मेंढक की तुलना में खरगोश का कशेरुक दण्ड अधिक लम्बा होता है। इसमें पांच प्रदेश होते हैं- ग्रैव (cervical), वक्षीय (thoracic), कटि (lumbar), सैक्रल (sacral) और पुच्छ (caudal) प्रदेश (चित्र 11.26)। कुल मिलाकर 45 कशेरुकें होती हैं- 7 ग्रैव क्षेत्र में, 12 वक्षीय में, 7 कटि में, 24 सैक्रल में और 15 पुच्छ प्रदेश में। हर दो-दो कशेरुकों के बीच में तंतुकी कार्टिलेज की प्लेट होती है, इन प्लेटों को अंतराकशेरुकी डिस्क (intervertebral discs) कहते हैं।

स्तनियों के ग्रीवा प्रदेश में कशेरुकियों की संख्या स्थिर होती है भले ही गर्दन चाहे जिराफ़ के जैसी लम्बी हो अथवा हाथी के जैसी छोटी। ग्रीवा कशेरुकों के सेंट्रम छोटे होते हैं, तंत्रिक कंटक छोटा होता है तथा कशेरुक धमनी रंध्र (जिनमें से होकर कशेरुक धमनियां बाहर आती हैं) केवल 7वीं कशेरुक को छोड़कर सभी ग्रीवा कशेरुक अनुप्रस्थ प्रवर्धों के आधार पर बने होते हैं। ग्रैव कशेरुक के अनुप्रस्थ प्रवर्ध पसलियों के साथ समेकित होकर एक संयुक्त संरचना बनाते हैं। जिसे ग्रैव पसली (cervical rib) कहते हैं।

प्रथम ग्रैव कशेरुक यानि ऐटलस में कोई स्पष्ट सैंट्रम नहीं होता। यह छल्ले के जैसी आकृति की होती है। तंत्रिक कंटक छोटा और अस्पष्ट होता है अनुप्रस्थ प्रवर्ध लम्बे चपटे तथा सरंध्र होते हैं। अग्र सतह पर एक जोड़ी अवतलताएं होती हैं जिन पर करोटि के दो अस्थिकंद संधियोजित होते हैं। पश्च सतह पर छोटी फलिकाएं (facets) होती हैं जिन पर दूसरी कशेरुक आकर जुड़ती है। तंत्रिका चाप बड़ी होती है और यह एक बड़ी तंत्रिक नाल को बंद किए रहती है, यह नाल एक स्नायु द्वारा दो भागों- एक ऊपरी और एक निचले भाग में विभाजित हुई रहती है। ऊपरी भाग में से होकर मेरू रज्जु गुज़रता है और निचले भाग में दूसरे कशेरुक का आगे की ओर को रुख़ किए हुए ओडॉण्टॉइड प्रवर्ध समाया हुआ होता है।

दूसरे ग्रैव कशेरुक में, जिसे ऐक्सिस का नाम दिया जाता है, एक चौड़ा सेंट्रम होता है जिसमें से आगे की ओर को रुख़ किए हुए एक हलाकार प्रवर्ध निकला होता है जिसे आडॉण्टॉइड प्रवर्ध कहते हैं। यह प्रवर्ध पहली कशेरुक की तंत्रिक नाल के निचले भाग में बैठा हुआ होता है। तंत्रिक कंटक लम्बा और सम्पीडित होता है। अनुप्रस्थ प्रवर्ध लम्बे होते हैं और अग्र ज़ाइगैपोफ़ाइसिस मौजूद नहीं होते।

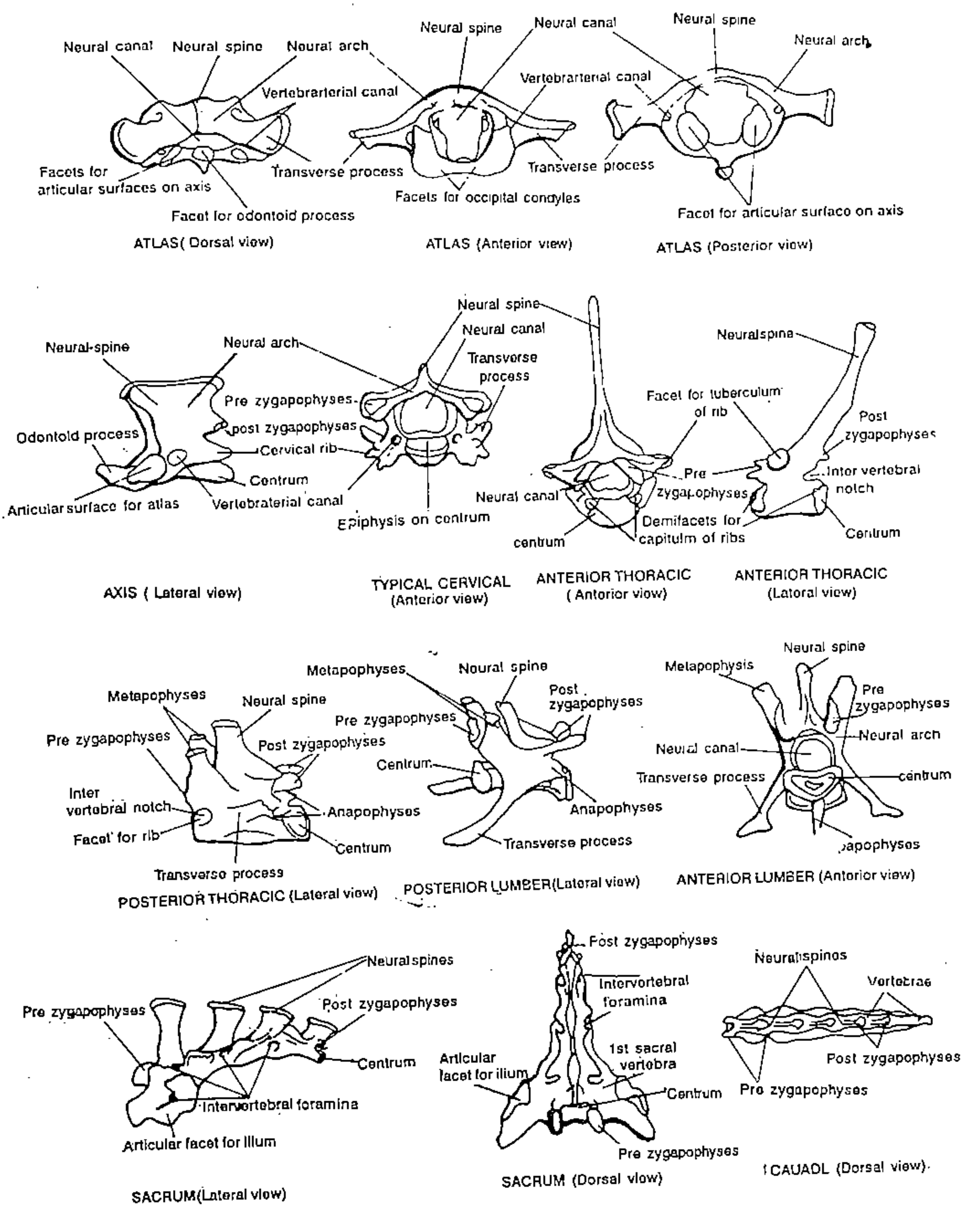

चित्र 11.26 : स्तनीय कशेरुकें (खरगोश)।

सातवें कशेरुक को छोड़कर सभी ग्रैव कशेरुकों के अनुप्रस्थ प्रवर्ध द्विशाखित होकर उनकी एक पृष्ठ और एक अधर शाखा बन गयी होती है। अनुप्रस्थ प्रवर्ध सरल होते हैं और उनमें अंतराकशेरुक रंध्र नहीं होते।

वक्षीय कशेरुकों में एक सेंट्रम होता है, पीछे को रुख किए हुए तंत्रिक कंटक से युक्त एक तंत्रिक चाप, एक जोड़ी छोटे मज़बूत अनुप्रस्थ प्रवर्ध तथा अग्र- एवं पश्च ज़ाइगैपोफ़ाइसीज़ की एक-एक जोड़ी होती है। वक्षीय कशेरुकें अपने प्रवर्धों के माध्यम से पसलियों के साथ संयोजित रहती हैं। 9वीं तथा 12वीं कशेरुकों में अग्र ज़ाइगैपोफ़ाइसीज़ के ऊपर एक जोड़ी **मेटापोफ़ाइसीज (metapophyses)** होते हैं। कटि कशेरुकों में भी प्ररूपी स्तनीय संरचना पायी जाती हैं। ये अपेक्षाकृत ज़्यादा बड़ी होती हैं जिनमें तंत्रिक कंटक अपेक्षाकृत छोटा और अनुप्रस्थ प्रवर्ध अधिक लम्बे होते हैं। पहले दो कटि कशेरुकों में हर एक में एक मध्यक अधर प्रवर्ध **हाइपैपोफ़ाइसिस (hypapophysis)** होता है। मेटापोफ़ाइसीज़ तथा ऐनापोफ़ाइसीज़ सुविकसित होते हैं। सभी कटि कशेरुकों में उनके अनुप्रस्थ प्रवर्धों के सिरों पर छोटी कटि पसलियां बनी होती हैं।

सैक्रल कशेरुकें परस्पर समेकित होकर एक संयुक्त संरचना सैक्रम बन जाती है और यह श्रोणि-मेखला के दो अर्धांशों के बीच फंसी रहती है। तंत्रिक कंटक बड़े होते हैं, हाइपैपोफ़ाइसिस तथा ऐनैपोफ़ाइसिस अविद्यमान होते हैं एवं मेटापोफ़ाइसीज़ छोटे होते हैं।

अग्र पुच्छ कशेरुकों में प्ररूपी स्तनी संरचना पायी जाती है। ये पश्चतः साइज़ में छोटी होती जाती हैं और पश्चतर कशेरुकों का केवल सेंट्रम के रूप में ही प्रतिदर्श मिलता है।

11.4.5 खरगोश की पसलियां तथा स्टर्नम

कक्षीय प्रदेश की कशेरुकों से संबद्ध 12 जोड़ी पसलियां पायी जाती हैं। प्रथम 7 जोड़ी पसलियों को **यथार्थ पसलियां** (true ribs) कहते हैं। ये पसलियां अधरमध्य दिशा पर कार्टिलेजी भागों के द्वारा स्टर्नम से जुड़ी रहती हैं (चित्र 11.10)। शेष 5 जोड़ी पसलियां **कूट पसलियां** (false ribs) अथवा **मुक्त पसलियां** (floating ribs) कहलाती हैं, ये स्टनर्म से जुड़ी नहीं होती।

स्वयं स्टर्नम छह खण्डों की बनी होती हैं जिन्हें स्टर्नीब्री (sternebrae) कहते हैं। स्टर्नम के पहले खण्ड को **मैनुब्रियम स्टर्नी** (manubrium sternae) कहते हैं(चित्र 11.11)। यह खण्ड सबसे बड़ा होता है और इसमें एक नौतल बनी होती है स्टर्नम के अंतिम खण्ड को **ज़िफ़िस्टर्नम** (xiphisternum) कहते हैं। यह एक गोल कार्टिलेजी प्लेट के रूप में होती है।

11.4.6 मेंढ़क तथा खरगोश की अंस मेखला

मेंढ़क: मेंढ़क की अंस मेखला दो अर्धांशों की बनी होती है जो मध्य-अधर रेखा पर जुड़े होते हैं और पृष्ठतः पृथक होते हैं। दोनों अर्धांशों के बाहरी सिरे ऊपर की ओर मुड़ कर एक चाप-सदृश संरचना बना लेते हैं जो वक्ष के अंगों को अपने भीतर बंद किए रहता एवं उन्हें सुरक्षित बनाए रखती हैं। प्रत्येक अर्धांश के पृष्ठतः मुड़े भाग में एक कार्टिलेजी त्रिभुजाकार सुप्रास्कैपुला (suprascapula) बनी होती है (चित्र 11.27)। यह अंशतः अस्थिभूत हुई होती है। सुप्रास्कैपुला के भीतरी सिरे से अधर दिशा में जुड़ी हुई एक चपटी हड्डी होती है जिसे स्कैपुला कहते हैं। प्रत्येक स्कैपुला से मध्य-अधर दिशा की ओर दो हड्डियां जाती हैं- ये हैं क्लैविकल (clavicle) तथा कोरैकॉइड (coracoid)। पार्श्वों से आने वाली दो क्लैविकलें तथा कोरैकॉइडें मध्य अधर स्थान पर एपिकोरैकॉइड (epicoracoid) नामक एक कार्टिलेज पट्टी के द्वारा परस्पर मिल जाती हैं। क्लैविकलें पतली शलाका जैसी हड्डियां होती हैं। क्लैविकलें, कोरैकॉइडों के अग्रतः बनी होती हैं और उनसे एक बड़ी गुहा कोरैकॉइड फ़ेनेस्ट्रा द्वारा पृथक हुई होती है। क्लैविकल, कोरैकॉइड तथा स्कैपुला के संधि स्थल पर एक गर्त बना होता है जिसके भीतर ह्यूमरस का शीर्ष संधियोजित रहता है, इस गर्त को ग्लीनॉइड गुहा कहते हैं।

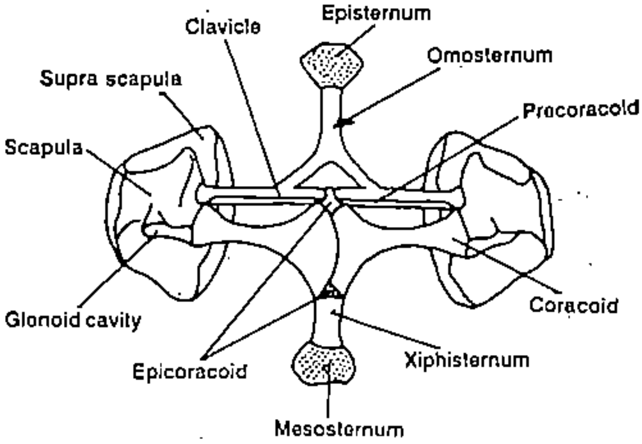

चित्र 11.27 : मेंढक की अंस मेखला तथा स्टर्नम।

मेंढ़क की अंस मेखला, मध्य-अधर रेखा पर जहां मेखला के दोनों अर्धांश आकर परस्पर मिलते होते हैं वहीं पर स्टर्नम के साथ जुड़ी होती है। स्टर्नम के चार खण्ड होते हैं जो एपिकोरैकॉइड के सामने और पीछे बने होते हैं। अग्रत: एपिकोरैकॉइड से जुड़ी हुई एक ओमोस्टर्नम (omosternum) होती है और उसके आगे एक कार्टिलेजी **एपिस्टर्नम** होती है। एपिकोरैकॉइड के पीछे **मीज़ोस्टर्नम** (mesosternum) और उसके पीछे एक कार्टिलेजी प्लेट-जैसी **ज़िफ़िस्टर्नम** (xiphisternum) होती है। मेंढक में पसलियां नहीं होती।

खरगोश

खरगोश की अंस मेखला में मेंढक की तुलना में हड्डियों की संख्या कम होती है। इसमें एक पतली, चपटी त्रिभुजाकार **स्कैपुला** होती है और एक पतली शलाका जैसी **क्लैविकल।** ग्लीनॉइड गुहा स्कैपुला के संकरे सिरे पर बनी होती है जहां पर यह क्लैविकल के साथ संधियोजन करती है। मेंढक की अंस मेखला में पायी जानी वाली सुव्यक्त कोरैकॉइड यहां केवल एक छोटे भीतर को घूमे हुए प्रवर्ध के रूप में पायी जाती है जिसे **कोरैकॉइड प्रवर्ध** कहा जाता है यह भाग स्कैपुला से उसके संकरे सिरे पर ग्लीनॉइड गुहा के तुरंत सामने समेकित हुआ रहता है। स्कैपुला के पृष्ठ सीमांत पर एक पतली पट्टी जैसी **सुप्रास्कैपुला** होती है (चित्र 11.28)। स्कैपुला की बाहरी सतह पर एक कूटक बना होता है जिसे **कंटक** (spine) कहते हैं। स्कैपुला के अंत में उसके मुक्त अधर सिरे से एक प्रवर्ध **ऐक्रोमियन प्रवर्ध** (acromian process) निकला होता है। इस प्रवर्ध से एक शाखा- सरीखा प्रवर्ध पश्च दिशा में निकला होता है जिसे **मैटाक्रोमियन** (metacromian) कहते हैं। यह पीछे की ओर निकला होता है। क्लैविकल तिरछी प्रीस्टर्नम तथा स्कैपुला के बीच में स्थित होती है।

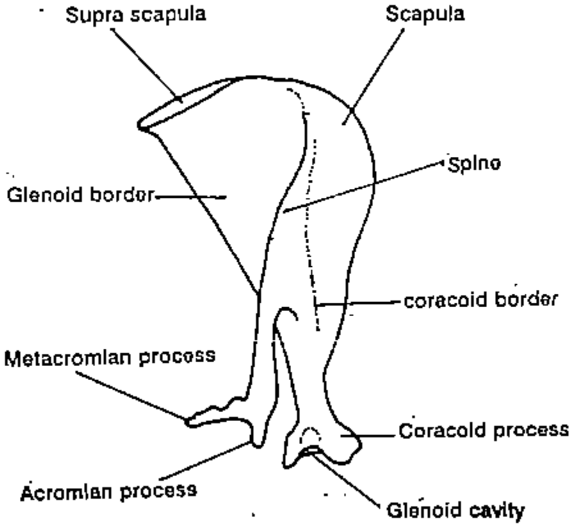

चित्र 11.28 : खरगोश की अंस-मेखला (दाहिनी ओर की)।

11.4.7 मेंढक तथा खरगोश की श्रोणि मेखला

मेंढक

मेंढक की श्रोणि मेखला सरल होती है और उसमें अंस मेखला की अपेक्षा कम संख्या में हड्डियां होती हैं इसमें दो अर्धांश होते हैं जो एक सिरे पर समेकित होकर एक V-की आकृति की संरचना बना लेते हैं। प्रत्येक अर्धांश में तीन हड्डियां इलियम (ilium), इस्कियम (ischium) तथा प्यूबिस (pubis) होती हैं (चित्र 11.29)। श्रोणि मेखला के मुक्त अंतिम सिरे वक्र छड़ों के रूप में आगे की ओर मुक्त होते हैं जहां वे नौवीं कशेरुक के अनुप्रस्थ प्रवर्ध से संधियोजित रहते हैं। ये मुक्त सिरे इलियम का निरूपण करते हैं। श्रोणि मेखला की अन्य दो हड्डियों के साथ समेकित होकर यह इलियम पिछले सिरे पर एक डिस्क-जैसी संरचना बना लेती है। इस डिस्क में इसके दाएं-बाएं दोनों ओर चपटी सतहों पर कटोरी-जैसी संरचनाएं बनी होती हैं जिन्हें ऐसिटैबुलम (acetabulum) कहते हैं। जांघ की हड्डी फ़ीमर के समीपस्थ शीर्ष ऐसिटैबुलम में संधियोजित रहती हैं। श्रोणि-मेखला की तीनों हड्डियां डिस्क एवं ऐसिटैबुलम के बनाने में शामिल होती हैं। आरम्भिक परिवर्धन अवस्थाओं में श्रोणि-मेंखला की तीनों हड्डियां पृथक होती हैं और वयस्क में वे समेकित हो गयी होती हैं। यह समेकित कार्टिलेज अथवा हड्डी की सहायता से होता है जिसे सिम्फ़ाइसिस (symphysis) कहते हैं। मेंढक की श्रोणि मेखला में प्यूबिक तथा इस्कियेटिक दोनों सिम्फ़ाइसिस पाए जाते हैं।

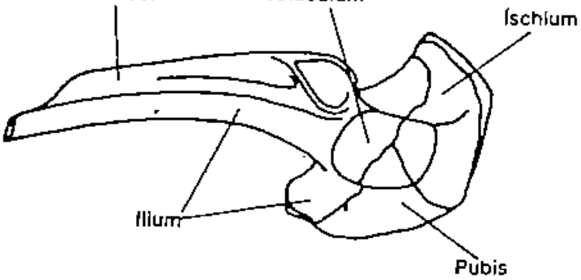

चित्र 11.29 : मेंढक की श्रोणि मेखला (पार्श्व दृश्य)।

खरगोश

खरगोश की श्रोणि मेखला में भी दो अर्धांश होते हैं जो सिम्फ़ाइसिस द्वारा समेकित होते हैं। प्रत्येक अर्धांश में वे ही तीन हड्डियां होती हैं जो मेंढक की श्रोणि-मेखला में भी अर्थात् **इस्कियम, प्यूबिस** तथा **इलियम** (चित्र 11.30)। इस्कियम तथा प्यूबिस मध्य रेखा में सिम्फ़ाइसिस के द्वारा अधरतः समेकित रहते हैं। ऐसिटैबुलर गुहा इस्कियम तथा इलियम के संधि स्थान के बाहर की ओर बनी होती है। अल्पायु प्राणी में तीनों हड्डियां पृथक होती हैं मगर वयस्क में तीनों पूरी तरह समेकित होकर पूरी एक हड्डी बन जाती हैं। इस समेकित संरचना को **इन्नोमिनैटम** (innominatum) कहते हैं। इलियम पृष्ठतः होती है और ऐसिटैबुलम के सामने की ओर स्थित होती है। इसमें एक खुरदरी भीतरी सतह होती है जो फैल कर पंख-सरीखी बन गयी होती है जिसके साथ पहली सैक्रल कशेरुक के अनुप्रस्थ प्रवर्ध जुड़े होते हैं इस्कियम पश्चतः और पृष्ठतः स्थित होती है। ये नीचे की ओर जारी रहती हैं और इस्कियाटिक सिमफाइसिस पर इस्कियल टुबरासिटी का निर्माण करती है। प्यूबिस तीनों हड्डियों में सबसे छोटी होती है। यह अग्रतः बनी होती है और नीचे की ओर को रुख़ किए रहती है। यह इस्कियम से एक चौड़े रंध्र ऑब्ट्यूरेटर रंध्र (obturator foramen) द्वारा पृथक हुई रहती है। दोनों प्यूबिस मध्य-अधर दिशा में एक प्यूबिक सिम्फ़ाइसिस के रूप में समेकित हुई रहती हैं। ऐसीटैबुलम कौटिलॉइड हड्डी (cotyloid bone) नामक छोटी हड्डी द्वारा परिसीमित होती है।

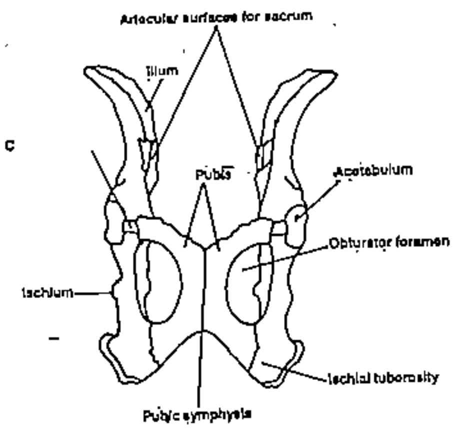

चित्र 11.30 : खरगोश की श्रोणि-मेखला (अधर दृश्य)।

11.4.8 पादों का कंकाल

मेंढ़क तथा खरगोश दोनों के पादों के विभिन्न खण्डों के कंकाली आलम्ब का प्रतिरूप वही है जो अन्य सभी कशेरुकियों में पाया जाता है, बस थोड़ी-बहुत मामूली सी विभिन्नताएं हो सकती हैं।

मेंढ़क के अग्रपाद का कंकाल

उपरिबाहु में एक अकेली हड्डी ह्यूमरस होती है (चित्र 11.31)। यह एक मज़बूत लम्बी वक्र छड़- जैसी हड्डी होती है जिसके दोनों सिरे फूले हुए होते हैं। समीपस्थ सिरे पर बना शीर्ष गोल होता है और अंस-मेखला की ग्लीनॉइड गुहा में बैठकर कंधे की संधि बनाता है। दूसरे सिरे पर केंद्र में एक गोल उभार होता है जिसके अगल-बगल दोनों ओर दो प्रक्षेप बने होते हैं। ह्यूमरस की भीतरी दिशा पर समीपस्थ सिरे से चलकर स्तम्भ के मध्य तक एक कूटक बना होता है जिसे डेल्टॉइड कूटक (deltoid ridge) कहते हैं। डेल्टॉइड कूटक का बना होना सभी चतुष्पादों की ह्यूमरस की विशिष्टता है। निम्न बाहु में दो हड्डियां रेडियस तथा अल्ना होती हैं। मेंढ़क में ये दो हड्डियां समेकित होकर एकल **रेडियो-अल्ना** (radio-ulna) बनाती हैं। रेडियो-अल्ना के समीपस्थ सिरे पर एक अवतलता बनी होती है जिसमें ह्यूमरस का दूरस्थ शीर्ष संधियोजित होता है। इस संधि पर पीछे को रुख़ किए हुए एक **ओलीक्रेनन** प्रवर्ध (olecranon process) होता है। यह कोहनी-संधि है। रेडियो-अल्ना का दूरस्थ सिरा फैल कर दो संधि सतहें बनाता है। मेंढ़क की कलाई में छह कार्पलें होती हैं। ये कार्पलें तीन-तीन की दो पंक्तियों में व्यस्थित रहती हैं। समीपस्थ पंक्ति की कार्पलें इस प्रकार कहलाती हैं- रेडिएली (radiale), सेण्ट्रेली (centrale) तथा अल्नेरी (ulnare)। रेडिएली रेडियस के अंतिम छोर पर होती है, अल्नेरी अल्ना के छोर पर तथा सेंट्रेली दोनों के बीच में। ये तीनों कार्पलें रेडियो-अल्ना से संधियोजित रहती हैं। दूरस्थ पंक्ति की कार्पलें समेकित रहती हैं और हाथ की मेटाकार्पलों से संधि बनाती हैं। सबसे भीतरी मेटाकार्पल ह्रासित और अल्पविकसित होती है। अन्य कार्पलें लम्बी होती हैं। मेंढ़क के हाथ में चार उंगलियां होती हैं। इनमें फ़ैलेंजेज़ (अंगुलास्थियों) का आलम्ब बना होता है। पहली उंगली जो अन्य चतुष्पादों के अंगुठे के अनुरूप होती है मेंढक में नहीं होती। दूसरी और तीसरी उंगली में दो-दो फ़ैलेंजेज़ होती हैं तथा चौथी और पांचवीं उंगली में तीन-तीन होती हैं।

खरगोश के अग्रपाद का कंकाल

खरगोश के अग्रपाद के विभिन्न खण्डों की हड्डियों की संख्या और उनकी प्रकृति वही होती है जो मेंढक में पायी जाती है। उपरिबाहु की ह्यूमरस एक स्तम्भ सरीखी हड्डी होती है जिसके दो सिरे होते हैं (चित्र 11.32)। ऊपरी सिरे पर एक गोल शीर्ष होता है जो अंस-मेखला की ग्लीनॉइड गुहा में बैठा होता है। समीपस्थ शीर्ष के बाहरी बार्डर पर दो अस्थिप्रोत्थ

(tuberosities) यानि गांठें बनी होती हैं। ये गांठें बाइसेप्स पेशियों के संलग्न के वास्ते सतह प्रदान करती हैं। दोनों गांठों को पृथक करती हुई एक खांच होती है, जिसे **बाइसिपिटल खांच** (bicipital groove) कहते हैं। दोनों अस्थिप्रोत्थ अलग-अलग साइज़ के होते हैं। इन दोनों को क्रमश: **लघुतर अस्थिप्रोत्थ** (lesser tuberosity) तथा **वृहत्तर अस्थिप्रोत्थ** (greater tuberosity) कहते हैं। पेशियों की कण्डराएं अस्थिप्रोत्थों के बीच में बनी खांच में आलग्न (inserted) रहती हैं। ह्यूमरस में स्तम्भ के समीपस्थ भाग की अग्र सतह पर डेल्टॉइड कूटक बना होता है। स्तम्भ के निचले सिरे पर निम्न बाहु की दो हड्डियों के साथ संधियोजन के वास्ते दो संधि सतहें बनी होती हैं। इनमें से एक संधि सतह एक बड़ी गरारी-जैसी **ट्रॉक्लिया** (trochlea) होती है जहां अल्ना की संधि होती है और दूसरी लघुत्तर **कैपिटुलम** होती है जिस पर रेडियस से संधि होती है स्तम्भ पर पार्श्वत: एक भीतरी और एक बाहरी उभार होते हैं। जिन्हें **एपिकॉण्डाइल** (epicondyles) कहते हैं। निम्न बाहु की दो हड्डियां रेडियस तथा अल्ना अपनी पूरी लम्बाई में एक दूसरे के साथ अगतिशील रूप में संधियोजित रहती हैं। इन दो में से रेडियस छोटी होती है और निम्न बाहु की भीतरी ओर बनी होती है। रेडियस हड्डी समीपस्थ सिरे पर ह्यूमरस के साथ और दूरस्थ सिरे पर कलाई की दो हड्डियों स्कैफॉइड (scaphoid) तथा लूनर (lunar) हड्डियों से संधियोजित रहती है। अल्ना अपेक्षाकृत बड़ी होती है और निम्न बाहु की बाहरी ओर स्थित होती हैं। यह कोहनी-संधि से पार निकलती हुई एक प्रवर्धन बनाती है जिसे **ओलीक्रेनॉन प्रवर्ध** (olecranon process) कहते हैं। इस प्रवर्ध के आधार पर एक खांच बनी होती है जिसे सिग्मॉइड खांच कहते हैं, यह खांच ट्रॉक्लिया के साथ संधि के वास्ते होती है। खरगोश की कलाई में नौ कार्पल हड्डियां होती हैं जबकि मेंढक में यह संख्या छह थी। इनमें से आठ हड्डियां दो पंक्तियों, समीपस्थ और दूरस्थ पंक्तियों, में व्यवस्थित होती हैं। नौवीं कार्पल जिसे **सेंट्रेली** कहते हैं दोनों पंक्तियों के बीच में पायी जाती है। समीपस्थ पंक्ति की कार्पलों को भीतरी ओर से बाहर की ओर ये नाम दिए जाते हैं- स्कैफॉइड, ल्यूनर (lunar) **क्यूनिफार्म** (cunei ̃rm), तथा **पिसिफार्म** (pisiform)। दूरस्थ पंक्ति की कार्पलों के नाम हैं **ट्रैपीज़ियम** (trapezium), **ट्रैपीज़ॉइड** (trapezoid), **मैग्नम** (magnum) तथा **अंसिफार्म** (unciform)। हाथ की मेटाकार्पलें संकरी तथा लम्बी होती हैं। पहली भीतरी मेटाकार्पल शेष से छोटी होती है। उंगलियां पांच होती हैं जबकि मेंढक में चार होती है। केवल पहली उंगली को छोड़कर जिसमें दो फैलेंजेज़ होती हैं। खरगोश की हर उंगली में तीन-तीन फैलेंजेज़ होती हैं। सभी उंगलियों की दूरस्थ फैलेंजेज़ में नखरों के निवेश के लिए खांचे बनी होती हैं।

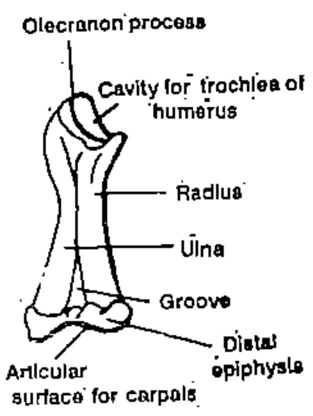

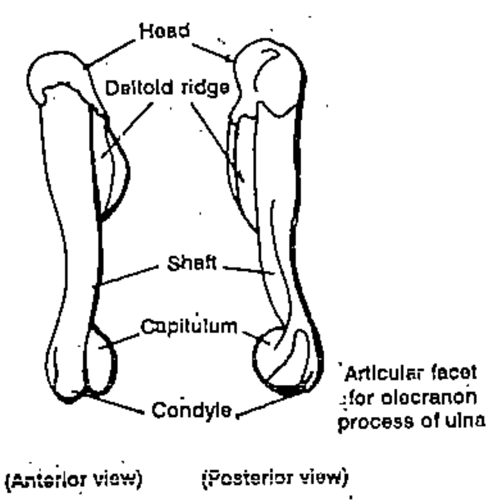

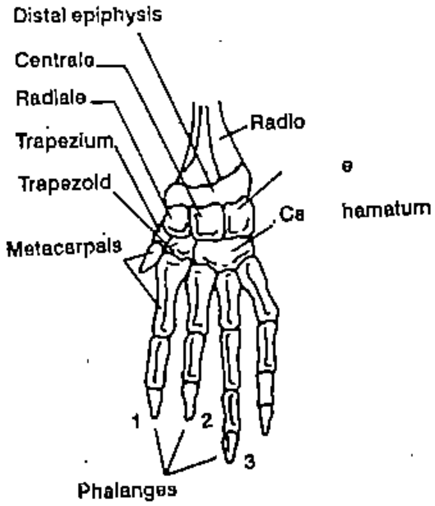

चित्र 11.31 : मेंढक के अग्र पाद की हड्डियां।

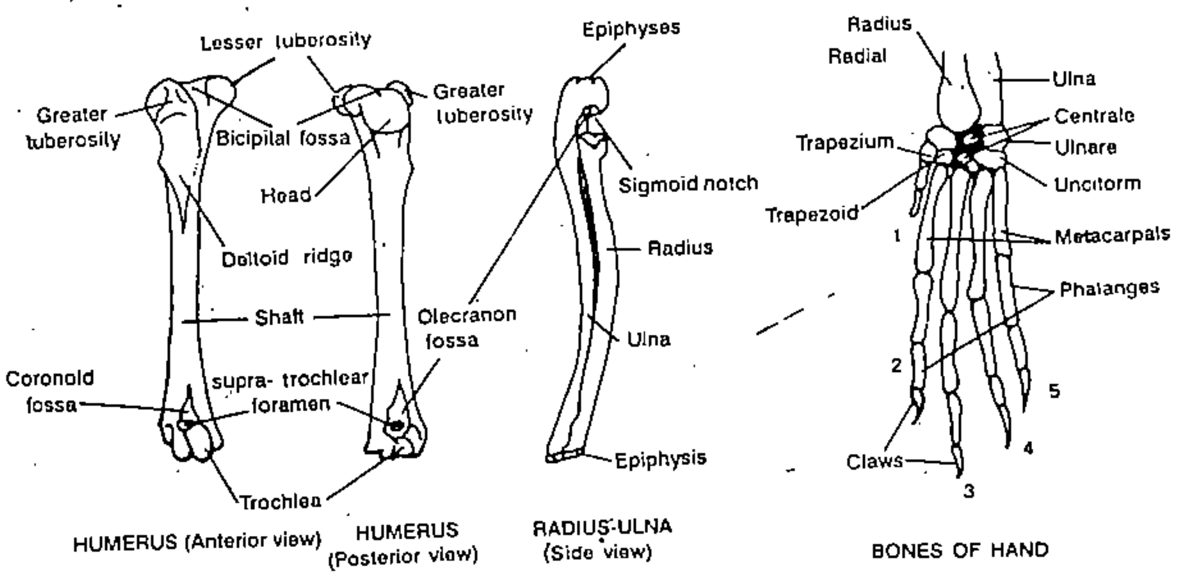

चित्र 11.32 : स्तनी (खरगोश) के अग्रपाद की हड्डियां।

मेंढक के पश्चपाद का कंकाल

पश्चपाद के कंकाल में जांघ के क्षेत्र में एक अकेली हड्डी फ़ीमर होती है (चित्र 11.33)। यह लम्बी और थोड़ी सी वक्र स्तम्भ जैसी हड्डी होती है जिसके दोनों सिरे फूले होते हैं। गोल समीपस्थ सिरा श्रोणि-मेखला की ऐसीटैबुलम में बैठकर कूल्हा संधि बनाता है। फ़ीमर का दूरस्थ सिरा चपटा, पार्श्वत: फैल हुआ होता है और शैंक (पिंडली) की दो हड्डियों के साथ संधियोजित होता है। निम्न बाहु की तरह यहां भी एक अकेली टिबियो-फिबुला (tibio-fibula) होती है जो टिबिया तथा फ़िबुला के समेकन से बनी होती है। टिबियो-फ़िबुला के दोनों सिरे फैले होते हैं। यह हड्डी समीपस्थ सिरे पर फ़ीमर से जुड़ी होती है और दूरस्थ सिरे पर टार्सलों से। टखने की संधि टार्सलों की टिबियो-फ़िबुला के साथ जुड़ने से बनती है। एक लम्बी अतिरिक्त संधि से मेंढक के पश्चपाद की लम्बाई और ज़्यादा बढ़ गयी है। यह व्यवस्था कूद-कूद कर संचलन में सहायक होती है। चार टार्सल होती हैं। जो दो-दो की दो पंक्तियों में बनी होती हैं। समीपस्थ पंक्ति की टार्सलें अधिक लम्बी होती हैं। इनमें से भीतरी हड्डी ऐस्ट्रैगेलस (astragalus) तथा बाहरी कैल्केनियम (calcaneum) होती है। ये दोनों टार्सलें अपने छोरों पर समेकित होती हैं तथा मध्य में पृथक। दूरस्थ पंक्ति की टार्सलें छोटी होतीं तथा मेटाटार्सलों से समेकित हुई होती हैं। पांव में पांच लम्बी मेटाटार्सलें होती हैं। पांव में पांच उंगलियां होती हैं, इनमें से पहली और दूसरी उंगली में दो-दो फैलेंजेज़, तीसरी और पांचवीं में तीन-तीन और चौथी में चार फैलेंजेज़ होती हैं। एक अतिरिक्त छठी उंगली भी होती है जो दो छोटी हड्डियों की बनी एक कैल्कर के रूप में होती है।

खरगोश के पश्चपाद का कंकाल

खरगोश के पश्चपाद की फ़ीमर एक लम्बी मज़बूत हड्डी होती है जिसके समीपस्थ सिरे पर एक सुव्यक्त शीर्ष बना होता है जिसके द्वारा यह हड्डी ऐसिटैबुलम से जुड़ी होती हैं। शीर्ष के तुरंत नीचे तीन उभार बने हैं जिन्हें महाशिखरक (greater trochanter), लघुशिखरक (lesser trochanter) तथा तीसरा शिखरक (third trochanter) कहते हैं, ये क्रमश: बाहर को, भीतर को तथा महाशिखरक के नीचे को रुख़ किए रहते हैं। फ़ीमर के निचले छोर पर दो अस्थिकंद बने होते हैं जो मध्य में बनी एक खांच द्वारा पृथक रहते हैं। यह छोर नीचे की दो हड्डियों टिबिया तथा फ़िबुला से जुड़ा होता है। खरगोश की टिबिया तथा फ़िबुला पृथक होती हैं जब कि मेंढक में ये समेकित थीं। टिबिया तथा फ़िबुला ऊपर की ओर

स्वतंत्र तथा नीचे की ओर समेकित होती हैं। घुटने की संधि पर एक बड़ी हड्डी पटेला (patella) होती है जिसे नी कैप (knee cap) भी कहते हैं जो स्तनियों की ही विशेषता है टिबिया के ऊपरी छोर पर दो संधि सतहें होती हैं ताकि फीमर के अस्थिकंदों के साथ संधियोजन हो सके। टिबिया में उसके निचले छोर पर दो संधियोजी सतहें होती हैं जिनके द्वारा टार्सलों के साथ संधियोजन होता है। भीतरी संधियोजनी सतह ऐस्ट्रैगैलस के साथ संधियोजन करती है तथा बाहरी सतह कैल्केनियम के साथ। फ़िबुला एक पतली हड्डी होती है जो दूरस्थतः टिबिया से पूरी तरह समेकित रहती है। टखना प्रदेश में छह अनियमित आकृति की टार्सलें होती हैं जब कि मेंढक में चार होती हैं। ये दो पंक्तियों में व्यवस्थित होती हैं तथा एक टार्सल दोनों पंक्तियों के बीच में होती है। समीपस्थ पंक्ति की टार्सलें नैविक्युलर, ऐस्ट्रैगेलस होती है तथा दूरस्थ पंक्ति की टार्सलं कैल्केनियम मीज़ोक्यूनि .र्म (mesocuneiform), एक्टोक्यूनिफ़ार्म (ectocuneiform) तथा क्यूबॉइड (cuboid) होती हैं। पावों में चार उंगलियां होती हैं जिनमें मेटाटार्सलें होती हैं तथा प्रत्येक में तीन-तीन फ़ैलेंजेज़ होती हैं।

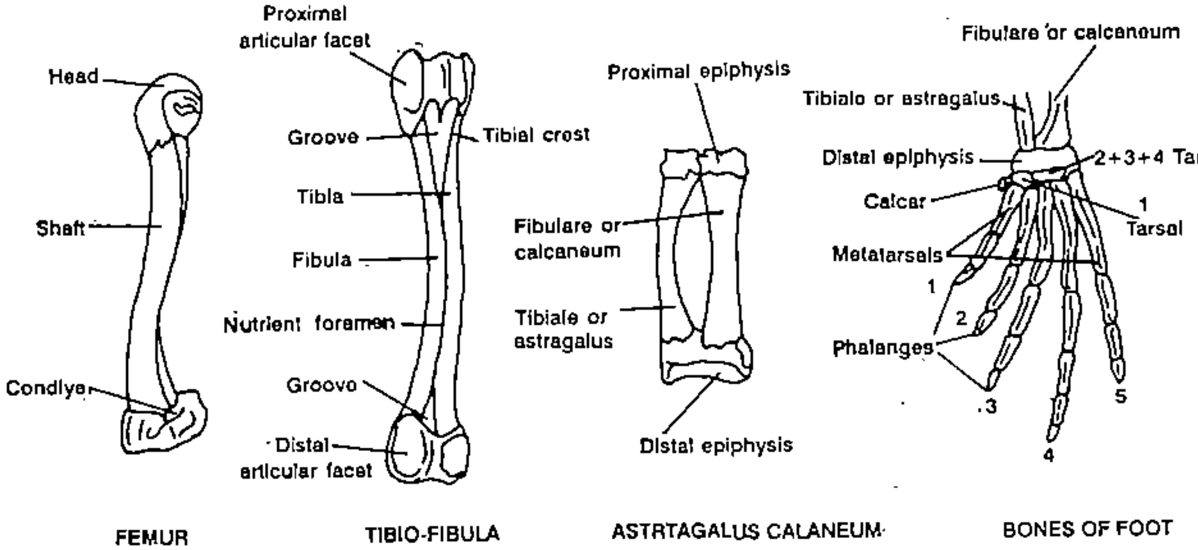

चित्र 11.33 : मेंढक के पश्चपाद की हड्डियां।

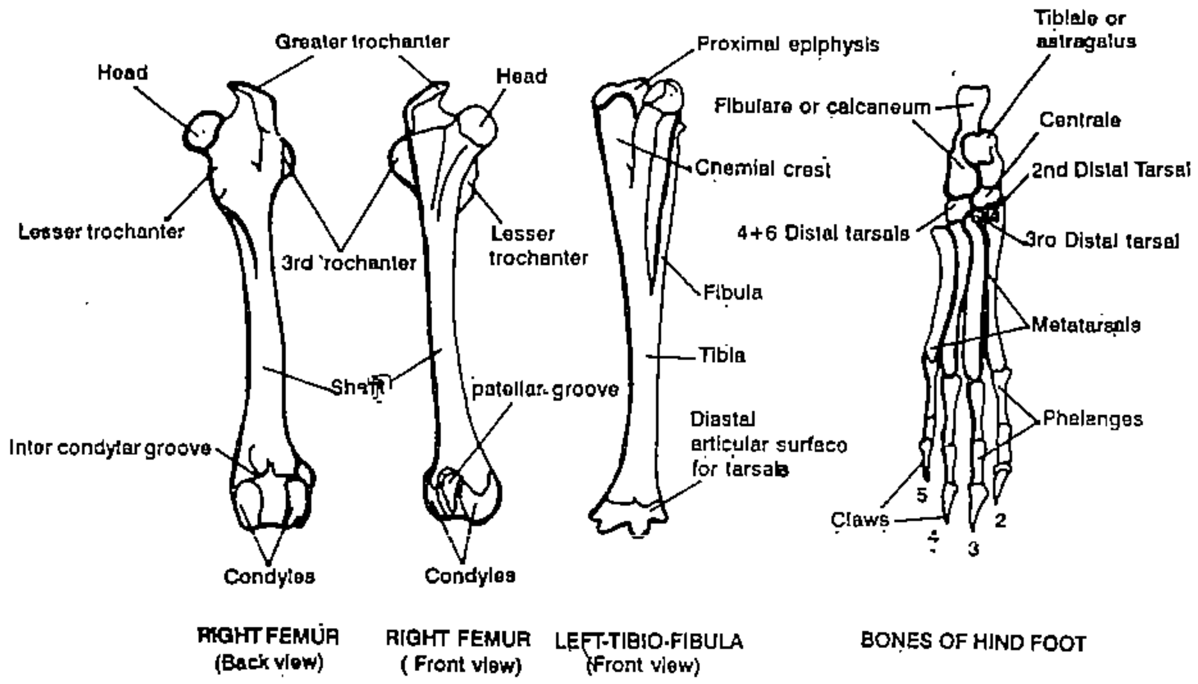

चित्र 11.34 : खरगोश के पश्चपाद की हड्डियां।

बोध प्रश्न 2

बताइए कि निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत। कथनों के सामने दिए गए बक्सों में सही कथनों के लिए स तथा गलत कथनों के लिए ग लिखिए।

(i) कपाल के पश्चपार्श्व पर एक गुहा होती है जिसमें नेत्रगोले स्थित होते हैं। ☐

(ii) ऐंगुलोस्प्लीनियल पर बनी उत्तलता के सामने की ओर एक बड़ा कूटक-जैसा प्रवर्ध बना होता है जिसे **कॉरोनरी प्रवर्ध** कहते हैं। ☐

(iii) खरगोश में महारंध्र नीचे को रुख किए रहता है न कि मेंढ़क की तरह पीछे को। ☐

(iv) मस्तिष्क खण्ड की छत बनाती हुई एक जोड़ी हड्डियां पैराइटलें होती हैं। ☐

(v) प्रीमैक्सिला हड्डियां बड़ी होती हैं और वे थूथन का अग्र भाग बनाती हैं। ☐

(vi) खरगोश सहित अधिसंख्य कशेरुकियों के दांत सभी एक ही प्रकार के होते हैं, और इस दशा को समदंती दंतविन्यास कहते हैं। ☐

(vii) खरगोश की प्रथम कशेरुक ऐटलस में एक स्पष्ट सेंट्रम होता है। ☐

(viii) खरगोश में घुटने की संधि पर एक बड़ी हड्डी पटेला होती है जिसे अंग्रेज़ी में नी कैप "Knee cap" भी कहते हैं, जो सभी स्तनियों की विशिष्टता है। ☐

11.5 कंकाल के प्रकार्यात्मक अनुकूलन

थल स्वभावों के विकास के कारण कशेरुकियों के संचलन में एक क्रांति आ गयी। थल संचलन के कारण नई आवश्यकताओं तथा कशेरुक दण्ड पर पड़ने वाले दबावों के साथ-साथ कशेरुकें उसी क्षेत्र में विशेषित हो गयीं। पूर्वज कशेरुकी जैसे कि मछलियां जलीय प्राणी थे। उनमें एक शक्तिशाली पूंछ विकसित हो गयी जो जलीय कशेरुकियों का प्राथमिक संचलन अंग है। पूंछ की कशाघात गतियां (lashing movement) मछलियों को जल में आगे को चलाती हैं। मछलियों में फ़िन भी होते हैं, मध्य अयुग्मित तथा पार्श्व युग्मिक दोनों प्रकार के फ़िन जो उन्हें जल में संचलन के दौरान दिशा-परिवर्तन का कार्य करते हैं। इन फ़िनों में कंकाली आलम्ब बना होता है जो उन्हें प्रभावपूर्ण कार्य करने में सहायता करता है। युग्मित फ़िनों को ही चतुष्पादों के युग्मित पादों के बनने का स्रोत माना जाता है। युग्मित फ़िनों से युग्मित पादों के उद्‌भव एवं विकास का पता चलने में जीवाश्म प्रमाण उपलब्ध हैं। चतुष्पादों के पादों में इस प्रकार रूपांतरण हुआ है कि उससे अलग-अलग कशेरुकी प्राणियों में अनुकूलित अलग-अलग प्रकार के संचलन में सहायता मिल सके। विभिन्न चतुष्पादों में नानाविध प्रकार के संचलन पाए जाते हैं- छछूंदरों में खोदना, ह्वेलों और सीलों में तैरना 'द्वितीयक अनुकूलन', चलना जैसे कि मानव में (द्विपादीय), दौड़ना जैसे कि घोड़े में, आरोहण जैसे कि गिलहरियों में, छलांग लगाना जैसे कि कंगारू में (मेंढ़कों में भी), विसर्पण (ग्लाइडिंग) जैसे कि ड्रैको (उड़न-छिपकली) में, और उड़ना जैसे कि पक्षियों तथा चमगादड़ों में।

मेंढ़क के पश्चपाद अग्रपादों की अपेक्षा अधिक लम्बे होते हैं। ऐसा उन दो टार्सल हड्डियों के लम्बा हो जाने से हुआ है जिन्होंने एक अतिरिक्त खण्ड प्रदान कर दिया। यह व्यवस्था कूदने अथवा छलांग लगाने के संचलन के लिए अनुकूलन है। इसके अतिरिक्त इनकी पैरों की उंगलियों के बीच-बीच झिल्ली बनी होती है जिससे तैरने में सहायता मिलती है। इसी

प्रकार ह्वेल के अग्रपाद पैडल-सरीखी संरचना के रूप में परिवर्तित हो गए हैं जो तैरने में सहायक हैं। पैडलनुमा आकृति दो तरीके से प्राप्त हुई एक तो पादों में उंगलियों की संख्या बढ़ाकर (इस दशा को अधिअंगुलिकता, hyperdactyly कहते हैं) और दूसरे हर उंगली में फ़ैलेंजेज़ यानि अंगुल्यस्थियों की संख्या बढ़ाकर (इस दशा को अधिअंगुल्यस्थिता hyperphalangy कहते हैं)। ये सभी उंगलियां एक समान अध्यावरण में बंद होकर एक चौड़ी पैडल-जैसी संरचना बन जाती हैं।

हाथी के पाद बड़े और खम्बेनुमा हो गए हैं जिनमें खुर जैसे नाखुन होते हैं, और जो अर्धपादतलचारी (semiplantigrade) प्रकार के संचलन के दौरान शरीर के भार को वहन करने के योग्य हो जाते हैं।

पाद सम्पर्क बिंदु अर्थात् पाद संस्थिति का प्रभाव पाद की लम्बाई पर पड़ता है। कुछ प्राणी अपने पाद की लम्बाई को प्रभावकारी रूप में अपने पैर को उंगलियों के बल ऊपर को उठाकर और अधिक लम्बी कर सकते हैं और इस प्रकार वे लम्बी डग भर सकते हैं। उदाहरणत: कुछ स्तनी जैसे कि भालू सामान्यत: अपने चपटे तलवों अथवा हथेली पर चलते हैं, इस प्रकार के प्राणियों को पादतलचारी (plantigrade) कहते हैं जबकि तेज चलने अथवा दौड़ने वाले ऐम्नियोट सदस्यों को, जो अपने तलवों अथवा हथेली को ज़मीन से ऊपर को उठाए-उठाए उंगलियों की अधर दिशा पर दौड़ते हैं, अंगुलिचारी (digitigrade) कहते हैं। अन्य स्तनी इसी लक्षण को और आगे बढ़ाकर स्थायी तौर पर उठा ली गयी उंगलियों के छोरों पर चलते या दौड़ते हैं। उंगलियों पर चलने के लिए उंगलियों का मज़बूत होना और केरेटिनीकृत नखर का खुर में बदल जाना आवश्यक था। ऐसे ही हुआ है खुरचारी (ungulate) प्राणियों के पैर में जिसमें उंगलियां ह्रासित एवं समाप्त हो गयी हैं। अधिसंख्य अंगुलेटों में अंगूठा तो आरंभ में ही समाप्त हो चुका था तथा चार अंगुलियों वाला हस्त (हाथ) पूर्वज घोड़ों एवं गायों जैसे असमान प्राणियों की विशिष्टता बन चुके थे। मगर इसके आगे जो ह्रास हुआ वह दो भिन्न दिशा-मार्गों में हुआ जैसा कि चित्र 11.35 में दिखाया गया है। स्तनियों के अनेक विलुप्त आर्डरों में इस प्रकार के परिवर्तन थोड़े बहुत अंतर के साथ सभी में समांतर रूप में पाए जाते हैं।

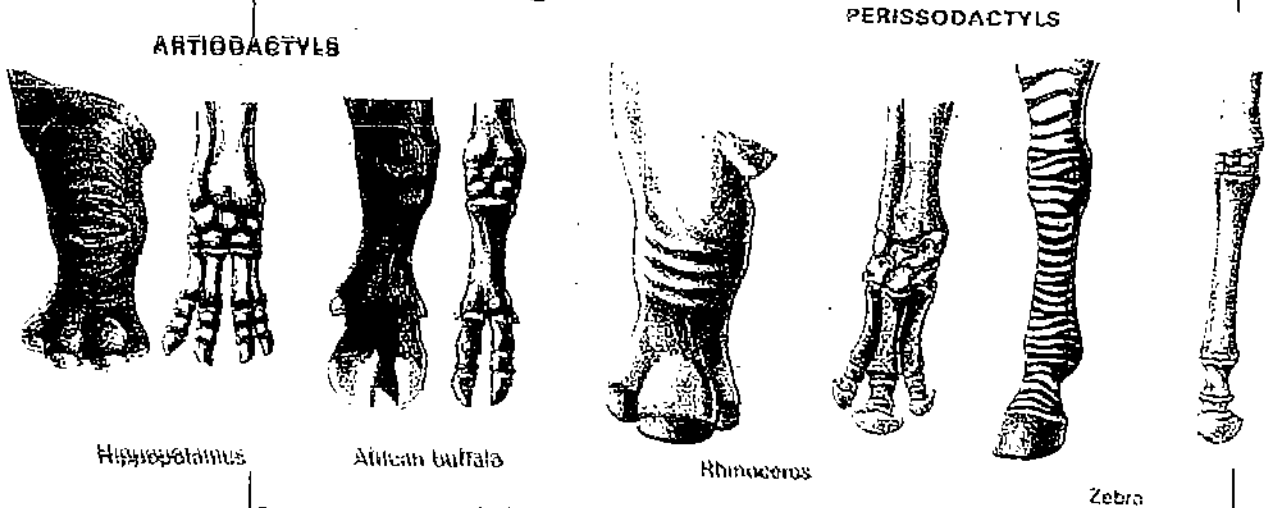

चित्र 11.35: कुछ प्रजातियों में पांवों का लम्बा होना और उंगलियों की कमी ने उनको तेज़ धावक बनने में सहायता की है। हिप्पोपोटैमस और अफरीकी भैसे आर्टियोडैक्टाइल। सम अंगुलियों वाले उंगुलेटों में कूदने की अद्भुत क्षमता होती हैं। अधिसंख्य आर्टियोडैक्टाइलों में दो मुख्य मेटापोडियलों ने समेकित होकर एक कैनन हड्डी बना ली है। पेरिसौडैक्टाइल में अक्ष तीसरी उंगली में से होकर गुजरती है। आधुनिक गैंडों में चार उंगलियां विद्यमान हैं पांचवीं उंगली समाप्त हो गयी है। जेब्रा में दूसरी और चौथी उंगलियां ह्रासित होकर स्प्लिंट हड्डियां जैसी रह गयी हैं। ज़ेब्रा एक पेरिसौडैक्टाइल अथवा असम उंगली वाला अंगुलेट है जो पीछा करने वालों से बचने के लिए अपनी तेज़ रफ़्तार पर निर्भर करता है।

चित्र 11.36 में घोड़े के संचलन में गति एवं स्थायित्व को दिखाया गया है। विकसित चतुष्पाद दौड़ाकों जैसे घोड़े में अनेकों संरचानात्मक रूपान्तरण हैं जो क्षणिक अस्थिरता से तीव्र गति प्राप्त करने में सहायक होते हैं। त्रिपादीय स्थायित्व का प्राय: उल्लंघन होता है। जैसे चित्र में दिखाया गया है दो, तीन एवं यहां तक कि चारों पाद भी ज़मीन के ऊपर होते हैं। एक ही समय में तेज़ रफ्तार एवं भली प्रकार से समन्वित संचलनों के कारण इस प्रकार के स्थायित्व को तेज़ी से दूर कर लिया जाता है। दीर्घकालिक, स्थायित्व के अपेक्षाकृत दौड़क युक्तिचालन की प्रवृत को पसंद करते हैं।

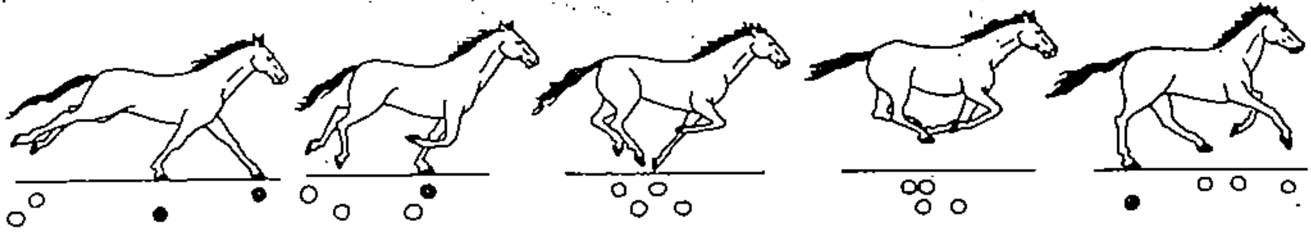

चित्र 11.36 : घोड़े के संचलन में गति और स्थायित्व।

घोड़े के पादों में उंगलियों की संख्या घट कर एक रह गयी है और सामान्यत: तीसरी उंगली ही कायम बनी रहती है (चित्र 11.37)। लगातार बनी मेटाकार्पलों में समेकन होकर बनी कैनन हड्डियों के द्वारा पाद लम्बे हो गए हैं। इसके परिणामस्वरूप खुरचारी (unguligrade) प्रकार का संचलन आ गया। चूंकि अब धरती से सम्पर्क में आने वाला भाग कम हो गया है इसलिए घर्षण कम हो गया और इसके कारण तीव्रतर गति प्राप्त करने में सहायता मिली है। इस प्रकार घोड़ा बहुत तेज़ गति से सरपट भाग सकता है।

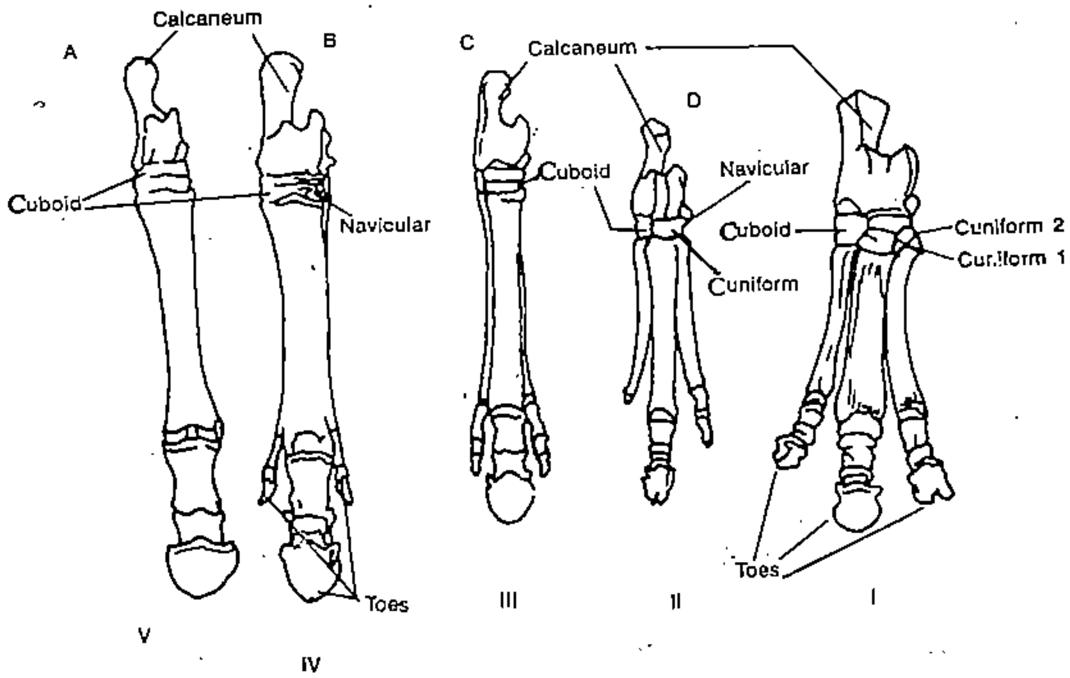

चित्र 11.37 : ईक्विडी (Equidae) परिवारों में पादों का प्रगामी विशेषीकरण I. पेलियोथीरियम, II. पैलॉप्लोथीरियम; III. ऐंकिथीरियम; IV. हिप्पेरियॉन; V. ईक्वस।

चिमगादड़ों के मामले में उंगलियां (फ़ैलैंजेज़) लम्बी हो गयी हैं और त्वचा का एक वलन इनके बीच में और साथ ही पादों के बीच में फैला होकर एक पंख बन जाता है। अग्रपादों

में उंगलियों की नोकों पर हुक बने होते हैं जिनके द्वारा ये चिमगादड़ें बसेरा डालते समय अपने को लटकाए रहती हैं (चित्र 11.38)।

चित्र 11.38 : बड़े कानों वाली चिमगादड़ जिसमें पंख बनाती हुई दो पादों के बीच फैलैंजों की व्यवस्था दर्शायी गयी है।

पक्षियों में अग्र-पाद की उंगलियों की संख्या कम हो गयी है। अग्रपाद पंखों में बदल गए हैं जो उड़ने के लिए प्रमुख संचलन अंग होते हैं। ह्यूमरस बड़ी और मज़बूत होती है जिसमें अंस पेशियों के निवेश के लिए बहुत फैला हुआ शीर्ष तथा एक सुनिर्मित कूटक होता है। कार्पलों में रेडिएली तथा अल्नेरी बड़ी और मुक्त होती हैं। कार्पो-मेटाकार्पस नामक एक संयुक्त संरचना दूरस्थ कार्पलों तथा तीन मेटाकार्पलों के समेकन से बन गयी होती है (चित्र 11.39)। कार्पोमेटाकार्पस में दो छड़ें होती हैं जो अंतिम सिरों पर समेकित रहती हैं। ह्रासित पहली उंगली में केवल एक फैलेंक्स होती है तथा दूसरी उंगली में दो फैलेंजेज़ होती हैं। इन हड्डियों के सहारे पर पिच्छ (feather) व्यवस्थित होते हैं। चलते या दौड़ते समय शरीर के पूरे भार को वहन करने के लिए श्रोणि मेखला तीन भागो कटि, सैक्रल तथा पुच्छ क्षेत्रो की क़शेरुकों के साथ समेकित होकर एक सिनसैक्रम (synsacrum) बनाती है (चित्र 11.40)। यह पक्षियों की ही विशेषता है। यही नहीं पश्चपादों की पिंडलियों की टिबिया और टार्सस हड्डियां समेकित होकर टिबियो-टार्सस बनाती हैं (चित्र 11.41)। यह हड्डी इसके बाद की, लम्बी टार्सो-मेटाटार्सस के साथ संधियोजित रहती है, जो मेटाटार्सलों और टार्सलों के संयोजन से बनती है। इससे भी दौड़ने और चलने के लिए पादों की लम्बाई और मज़बूती बढ़ गयी है।

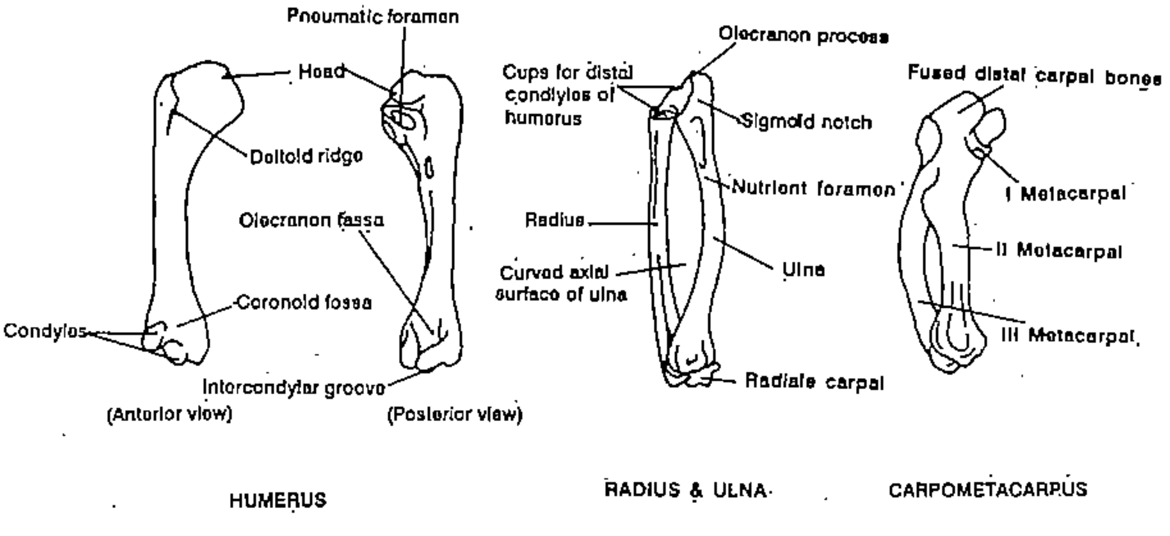

चित्र 11.39 : कुक्कुट की अग्रपाद हड्डियां।

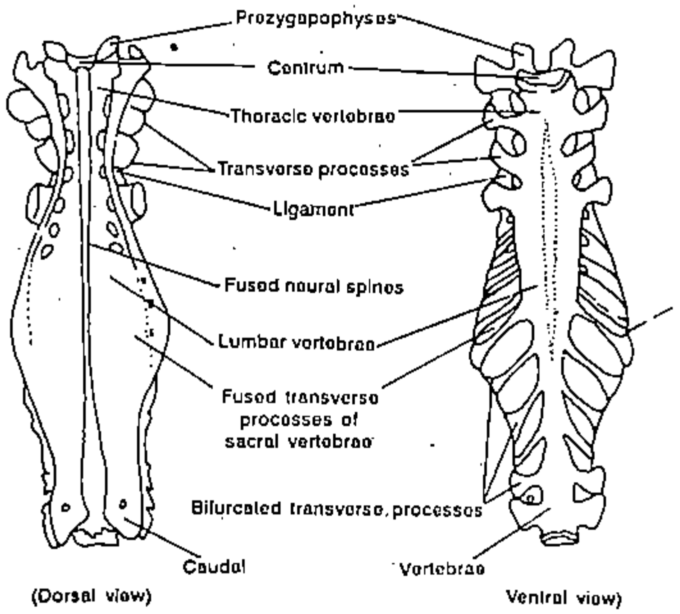

चित्र 11.40 : सिनसैक्रम।

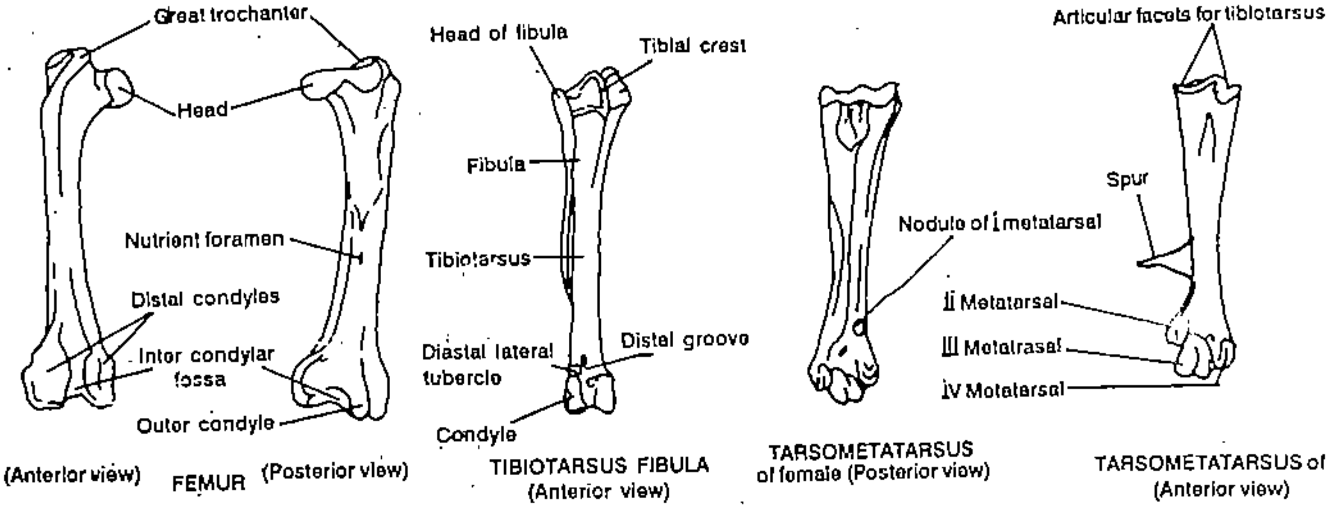

चित्र 11.41 : कुक्कुट की पश्चपाद हड्डियां।

इस प्रकार विविध कशेरुकियों के अग्रपादों के कंकाली आलम्ब से उनकी ऊपरी संरचना में अंतर प्रकट होते हैं हालांकि उन सभी में एकसमान संघटना योजना पायी जाती है। विभिन्न संचलन विधियों के लिए अनुकूलित विभिन्न कशेरुकियों के अग्रपादों के कंकाल की तुलना से उनकी समान पूर्वजता एवं अनुकूली अपसारी विकास का प्रमाण उपलब्ध होता है।

इनके अतिरिक्त वास्तविक उड्डयन के लिए अनुकूलित कशेरुकियों की स्टर्नम में एक अधर नौतल-सरीखी संरचना बनी होती है जो उड्डयन पेशियों के लिए संलग्न सतह प्रदान करती हैं (चित्र 11.11)। यह स्थिति उड्डयन के लिए अनुकूलित चिमगादड़ों और पक्षियों दोनों के मामलें में पायी जाती है। इस बात का प्रमाण अनुउड्डयनशील पक्षियों से भी मिलता है जिनमें उड्डयन क्षमता समाप्त हो गयी है, पंख ह्रासित होते हैं तथा उसके परिणामस्वरूप स्टर्नम की नौतल भी ह्रासित हो गयी है। साथ ही, पक्षियों का कंकाल वातिल (pneumatic) होता है, यानि इनकी हड्डियां स्पंजी होती हैं जिनमें हवा से भरी अनेक वायु गुहाएं होती हैं जिससे शरीर हल्का हो जाता है। इससे उड्डयन के दौरान पक्षी के शरीर को ऊपर को उठाने में सहायता मिलती है।

पक्षियों में उड्डयन अनुकूलन के लिए ज़रूरी था कि कार्य करने में समन्वय और दिशा-निर्देशन के वास्ते आंख और मस्तिष्क का विकास हो। अत: पक्षियों में बड़े नेत्र कोटर और बड़े मस्तिष्क कोश बन गए। हड्डियां अपेक्षाकृत पतली और स्पंजी हैं। हड्डियों के समेकन से मस्तिष्क कोश में मज़बूती आ गयी है।

रेप्टाइलों के निचले जबड़े तथा ग्रसनी कंकाल की अनेक हड्डियां अब स्तनियों के निचले जबड़े के अंश नहीं रहीं। रेप्टाइलों के निचले जबड़े की छह हड्डियों में से केवल डेण्टरी ही एकमात्र हड्डी है जो स्तनियों के निचले जबड़े में कार्य के लिए बची है। शेष हड्डियां जो फ़ालतू हो गयी थीं स्तनियों के मध्य कान की संरचनाओं में शामिल हो गयी हैं। स्तनियों के मध्य कान में तीन कर्णास्थिकाएं होती हैं जो ध्वनि तरंगों को कान के पर्दे (कर्णपटह) से भीतरी कान तक पहुंचाने का कार्य करती हैं इन तीन कर्णास्थिकाओं में से एक जिसे स्टेपीज़ (stapes) कहते हैं हाइऑइड चाप से व्युत्पन्न हुई है। इंकस (incus) रेप्टाइलों की क्वाड्रेट का निरूपण है। मैलियस (malleus) बनी है रेप्टाइलों के निचले जबड़े की दो हड्डियों प्रीआर्टिकुलर तथा आर्टिकुलर के समेकन से। टिम्पैनिक (tympanic) हड्डी रेप्टाइलों के निचले जबड़े की ऐंगुलर से।

करोटि ही कंकाल का वह भाग है जो जीवाश्मों में सर्वाधिक पूर्णत: परिरक्षित हुआ है। अत: कशेरुकियों में करोटि की संरचना एवं इसके विकास पर अपेक्षाकृत अधिक जानकारी उपलब्ध है। वास्तव में इसी जानकारी का उपयोग करके कशेरुकियों के जातिवृत्त का और वह भी ख़ासतौर से निम्नतर चतुष्पादों के जातिवृत्त का वर्णन किया जा सका है। इससे जीवाश्म रेप्टाइलों के वर्गीकरण और उनसे जीवित रेप्टाइलों तथा पक्षियों एवं स्तनियों की व्युत्पत्ति के विषय में सहायता मिली है।

टेम्पोरल खातें (Temporal fossae) और उनका महत्व

करोटि की छत निम्नतर कशेरुकियों में सम्पूर्ण होती है। नासाछिद्र तथा नेत्र कोटर ही मात्र छिद्र होते हैं। उच्चतर कशेरुकियों में कपाल के पश्चपार्श्व क्षेत्र में जिसे **टेम्पोरल क्षेत्र** कहते हैं, कुछ विशेष ख़ाली स्थान अथवा खातें (fossae) बन गई हैं। इस क्षेत्र ख़ाली स्थानों को टेम्पोरल खातें कहते हैं। इन खातों का परिसीमन करती हुई कुछ ख़ास हड्डियां होती हैं जिनकी व्यवस्था आर्केड (arcades) नामक छड़ों के रूप में होती है। खातों तथा आर्केडों का प्रकट होना उन जबड़ा पेशियों के दृढ़ संलगन के साथ जुड़ा माना जाता है जो जबड़े की गतियों को सुगम और अधिक बलपूर्वक बनाती हैं। ऐसा माना जाता है कि आरंभिक रेप्टाइल, जिनमें ये सुविकसित थीं, अपना आहार प्राप्त करने तथा शत्रुओं से रक्षा के लिए अपने जबड़ों पर ही निर्भर करते थे।

खातों के स्थान और उनका परिसीमन करती हुई आर्केडों के प्रकार के आधार पर तीन विभिन्न प्रकार की खातें पहचानी गयी हैं। खातों के होने या न होने के आधार पर जीवाश्मों के अलग-अलग समूहों के नाम दिए गए हैं, और यदि खातें मौजूद हैं तब उनकी संख्या, उनके स्थान तथा उनकी प्रकृति के आधार पर निर्भर करती है। पूर्वज तथा सबसे आदिम रेप्टाइलों के समूह में करोटि में सम्पूर्ण छत होती है और कोई भी खात नहीं होती। आदि रेप्टाइल कोटिलोसौरिया (cotylosauria) इसी वर्ग के निरूपण हैं और इस वर्ग को ऐनैप्सिडा (Anapsida) कहा जाता है (चित्र 11.42)। इसी वर्ग से अन्य वर्ग निकले जान पड़ते हैं। वर्तमान रेप्टाइलों में कीलोनिया ही ऐनैप्सिडा समूह के एकमात्र निरूप हैं और लाखों-लाखों वर्षों से अपरिवर्तित चले आ रहे हैं।

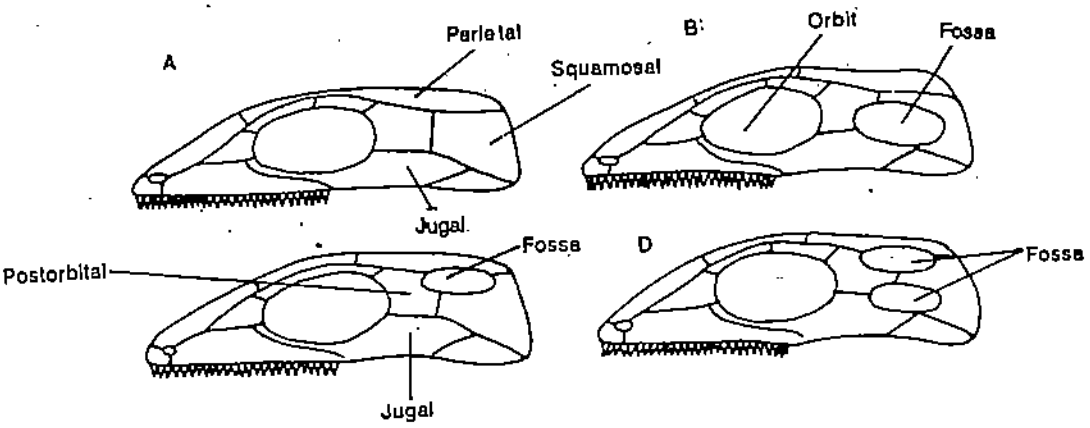

चित्र 11.42 : रेप्टाइलों में विभिन्न प्रकार के टेम्पोरल छिद्रों को दर्शाते हुए आरेख। A-ऐनैप्सिड प्रकार (मूल रेप्टाइल, कछुए); B-सिनैप्सिड प्रकार (स्तनी-सरीखे रेप्टाइल),4 - यूरिऐप्सिड प्रकार (विलुप्त प्लेज़ियोसॉर, आदि), D- डाइऐप्सिड प्रकार) (रिंकोसेफ़ैलियन, प्रमुख रेप्टाइल; छिपकलियां तथा सांप जो एक टेम्पोरल चाप के या दोनों चापों के समाप्त हो जाने से व्युत्पन्न हुए हैं।)

सिनैप्सिडा (Synapsida) समूह में प्रत्येक पार्श्व पर केवल एक ही खात होती है (चित्र 11 42)। यह नाम भ्रामक है क्योंकि ("सिन" शब्द से) किसी भी प्रकार के संयोजन अथवा समेकन का निरूपण नहीं होता। पोस्टऑर्बिटल तथा स्क्वैमोज़ल हड्डियां खात के ऊपर परस्पर मिलती हैं तथा स्क्वैमोज़ल निचली दिशा में जुगल से मिलती है और इन दोनों के बीच में क्वाड्रेटोजुगल लगी होती है। यह दशा विलुप्त स्तनी-सरीखे रेप्टाइलों में पायी जाती है। इस खात का नाम इनफ़्राटेम्पोरल खात (infratemporal fossal) दिया गया है।

विलुप्त रेप्टाइलों में जैसे कि डाइनोसौरों में प्रत्येक पार्श्व पर दो खातें होती हैं। इन रेप्टाइलों को डाइऐप्सिडा (Diapsida) नाम दिया गया है। ये दो खातें ऊपरी तथा निचले प्रदेशों में पायी जाती हैं और इन्हें सुप्राटेम्पोरल खात तथा इनफ़्राटैम्पोरल खात कहा जाता है। लेकिन डाइऐप्सिडा की इनफ़्राटेम्पोरल खात सिनैप्सिडनों की इनफ़्राटेम्पोरल खात से भिन्न होती है। इन्हें घेरती हुई हड्डियां तथा उनकी व्यवस्थाएं भिन्न होती हैं। डाइऐप्सिडन करोटि की दो खातें पोस्टऑर्बिटल तथा स्क्वैमोज़ में बनी सुप्राटेम्पोरल आर्केड (supratemporal arcade) नामक आर्केड द्वारा पृथक हुई रहती हैं। इस प्रकार की करोटि जीवित रेप्टाइलों में रिंकोसेफ़ैलिया तथा क्रोकोडीलिया में पायी जाती है। छिपकलियों, सांपों तथा आधुनिक पक्षियों को डाइऐप्सिड पूर्वजों से विकसित हुआ माना जाता है।

एक और समूह है जिसमें प्रत्येक पार्श्व पर अकेली एक-एक खात ही होती है। मगर यह सिनैप्सिडी इनफ़्राटेम्पोरल खात से भिन्न है। इसकी विशिष्टता है कि इसमें पोस्टऑर्बिटल और स्कवैमोज़ल हड्डियां खात के नीचे मिलती हैं न कि सिनैप्सिडा की तरह ऊपर। इसे पैरैप्सिड (parapsid) प्रकार कहते हैं और समूह को पैरैप्सिडा (Parapsida) नाम दिया जाता है। इस प्रकार की करोटि विलुप्त मीज़ोसौरों तथा इक्थियोसौरों में पायी जाती है।

बोध प्रश्न 3

कोष्ठकों में दिए गए शब्दों में से सही शब्द चुनकर रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:

(i) युग्मित फ़िनों से युग्मित पादों के उद्भव और विकास की दिशा में .... प्रमाण उपलब्ध है (पुरातात्विक, जीवाश्मिक, भ्रूणिक)।

(ii) घोड़े के पादों में .... की संख्या घट कर एक रह गयी है (टार्सलों, मेटाटार्सलों, उंगलियों)

(iii) चलते या दौड़ते हुए शरीर के पूरे भार का वहन करने के वास्ते श्रोणि मेखला का कटि, सैक्रल तथा पुच्छीय कशेरुकों के साथ समेकन से .... बन गया है (सैक्रम, कपाल, सिनसैक्रम)।

(iv) विभिन्न संचलन विधियों के लिए अनुकूलित विभिन्न कशेरुकियों के अग्रपादों के कंकाल की तुलना से उनके/उनकी समान .... एवं अनुकूली अपसारी विकासों का प्रमाण मिलता है। (पदानुक्रम, पूर्वजता, वंशागति)

(v) स्टेपीज़ जोकि तीन कर्णास्थिकाओं में से एक है .... चाप में व्युत्पन्न हुई है। (ग्रसनी, महाधमनी, हाइऑइड)।

(vi) पक्षियों में समेकन हो गया है और इससे .... कोश में दृढ़ता आ गयी है। (देह, मस्तिष्क, वक्ष)

11.6 सारांश

कशेरुकियों के कंकाल का अध्ययन, जिनमें जीवित और विलुप्त दोनों ही प्रकार के कशेरुकी शामिल हैं, तुलनात्मक शारीर की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। यह बहुत अच्छी बात है कि कंकाली संरचनाएं जीवाश्मों के रूप में परिरक्षित हैं क्योंकि इनके भीतर की विभिन्न रासायनिक संघटना के कारण ये कठोर होती हैं। इसलिए बहुत सा उपलब्ध प्रमाण कंकाल से और वह भी अधिकतर शीर्ष कंकाल से मिलता है। इससे न केवल कशेरुकियों के ही विकास की जानकारी प्राप्त करने में सहायता मिलती है वरन कुल मिलाकर विकास की प्रवृत्तियों को भी जानने में भी मदद मिलती है। कंकाली प्रमाण के कारण पक्षियों और स्तनियों जैसे वर्गों और ख़ास तौर से मानव के विकास को जान सकना संभव हुआ है। कशेरुकी वर्गों के जातिवृत्त और उनके परस्पर संबंधों को समझ सकने में कंकाल की जानकारी होना नितांत आवश्यक है। कंकाल तंत्र ही ऐसा एकमात्र तंत्र है जो कशेरुकियों में हुए संरचनात्मक परिवर्तनों का उपरिदृश्य उपलब्ध कराता है। शीर्ष कंकाल ही सर्वाधिक सूचना प्रदायी है क्योंकि इसी में उन तमाम अपसारी परिवर्तनों की पूरी झलक मिलती है जो कशेरुकियों के विकास के दौरान घटित हुए हैं। हड्डियों का और उनकी व्यवस्था का एक समान पूर्वज प्रतिदर्श मिलता है जिसमें से जीवित कशेरुकी विकसित हुए हैं।

कार्टिलेजी कॉण्ड्रोक्रेनियम करोटि की हड्डी का पूर्वगामी होता है। इसमें परिवर्धन की भिन्न अवस्थाओं के दौरान विभिन्नताएं दीख पड़ती हैं क्योंकि प्राणी की विभिन्न आयुओं पर इसके कार्य बदलते जाते हैं। इसी प्रकार दृढ़ शलाका जैसा नोटोकॉर्ड जो आरम्भिक कॉर्डेटों में शरीर को स्थायित्व और दृढ़ता प्रदान करने के लिए प्रकट हुआ था, उसके स्थान पर खण्डयुक्त कशेरुक स्तम्भ बन गया ताकि गतिशीलता मिल सके। त्वचा के वलन जिन्होंने कशेरुकी संचलन में दिशाचालन क्षमता प्रदान की थी, उनके स्थान पर युग्मित उपांग बन गए हैं। ये उपांग कशेरुकियों द्वारा अपनाई गई विभिन्न जीवन विधियों के अनुकूल होते गये और अलग-अलग तरीकों से रूपांतरित हो गए हैं।

11.7 अंत में कुछ प्रश्न

1. प्राणियों में पाए जाने वाले दो प्रकार के कंकालों के नाम लिखिए।

....

....

2. कशेरुकियों में पाए जाने वाली दो प्रकार की अंत:कंकाली संरचनाओं के नाम लिखिए।

....

....

3. कोष्ठकों में दिए गए शब्दों में से उपयुक्त शब्द चुनकर निम्न वाक्यों में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:

(क) शीर्ष के कंकाल को .... कहा जाता है (कशेरुक दण्ड, श्रोणि मेखला, करोटि)।

(ख) कपाल के भीतर .... बंद और सुरक्षित रहता/रहती है। (नेत्र, हृदय, मस्तिष्क)।

(ग) कपाल के भीतर स्थित मस्तिष्क कपाल के पिछले सिरे पर बने .... नामक छिंद्र के माध्यम से मेरू-रज्जु से सम्पर्क बनाए रखता है (फ़ेनेस्ट्रा ओवैलिस, महारंध्र, बाह्य नासाछिद्र)।

(घ) जिस कशेरुक में आगे की ओर अवतलता तथा पीछे की ओर उत्तलता होती है उसे .... प्रकार का कहते हैं (उभयगर्ती, अग्रगर्ती, पश्चगर्ती)

(च) उपरिबाहु की हड्डी ह्यूमरस अंस मेखला के साथ .... गुहा पर संधियोजित रहती है (ग्लीनॉइड, ऐसीटैबुलम, ज़ाइगैपोफ़ाइसिस)।

(छ) संयुक्त हड्डी रेडियो-अल्ना .... में पायी जाती है। (चूहा, चिमगादड़, मेंढक)।

4. कुछ हड्डियों के नाम कॉलम अ में तथा कंकाल के उन भागों के नाम जिनमें ये पायी जाती हैं कालम ब में दिए गए हैं। इन्हें परस्पर मिलाइए।

कॉलम अ	कॉलम ब
(क) पैराइटल	i) अंस मेखला
(ख) वोमर	ii) कपाल
(ग) मैक्सिला	iii) घ्राण कैप्सूल
(घ) डेण्टरी	iv) ऊपरी जबड़ा
(च) क्लैविकल	v) श्रोणि मेखला
(छ) प्यूबिस	vi) निचला

5. बताइए कि निम्नलिखित कथन सही है (स) या गलत (ग):

(क) कपाल कशेरुक दण्ड का ही एक भाग है। ☐

(ख) जबड़े ग्रसनी कंकाल से बने हैं। ☐

(ग) एक्सिस नाम पहली कशेरुक का है। ☐

(घ) पश्चपाद की जांघ के भाग में पायी जाने वाली हड्डी फ़ीमर होती है। ☐

(च) ग्लीनॉइड गुहा श्रोणी मेखला में होती है। ☐

(छ) डेल्टॉइड कूटक ह्यूमरस पर पाया जाता है। ☐

6. चूहे के निचले जबड़े में कितनी हड्डियां पायी जाती हैं?

....

7. मेंढ़क की करोटि में दांत धारण की हुई हड्डियों के नाम लिखिए।

....

....

8. सूची अ में कशेरुकियों के अग्रपाद तथा पश्चपाद के विभिन्न खण्डों के नाम दिए गए हैं। इसके आगे की सूची ब में इन पादों में पायी जाने वाली हड्डियों के नाम दिए हैं। सही हड्डी को चुनिए और उसका नाम पादों के खण्डों के आगे लिखिए।

सूची कालम (अ)

अग्रपाद

(i) उपरिबाहु ....

(ii) निम्न बाहु ....

(iii) कलाई ....

(iv) हथैली/हाथ ....

पश्चपाद

(v) जांघ ....

(vi) शैंक/पिंडली ....

(vii) टखना ....

(viii) पांव ....

सूची (ब)

टार्सल, कार्पल, ह्यूमरस, फ़ीमर, रेडियस, टिबिया, फ़िबुला, अल्ना, मेटाटार्सलें, मेटाकार्पलें

9. चूहे की करोटि के विभिन्न भागों के नाम कालम अ में और इन भागों में पायी जाने वाली कुछ हड्डियों के नाम कालम ब में दिए हैं। इन्हें मिलाइए

कालम अ		कालम ब
(क)	कपाल	(i) डेण्टरी
(ख)	घ्राण कैप्सूल	(ii) फ्रॉण्टल
(ग)	ऊपरी जबड़ा	(iii) नेज़ल
(घ)	निचला जबड़ा	(iv) पेरिऑटिक
(च)	श्रवण कैप्सूल	(v) प्रीमैक्सिला

11.8 उत्तर

1. अ. (क) iii, (ख) iv, (ग) i, (घ) ii

   ब. (i) आगे, पीछे, (ii) उभयगर्ती, (iii) विषमगर्ती, ज़ीन (iv) चपटी, गढ़े

2. (i) ग. (ii) ग, (iii) स, (iv) स, (v) स, (vi) ग, (vii) ग, (viii) स

3. (i) जीवाश्मविज्ञानीय   (ii) उगलियां

   (iii) सिनसैक्रम   (iii) पूर्वजता

   (v) हाइऑइड   (vi) मस्तिष्क

अंत में कुछ प्रश्न

1. ब्राह्यकंकाल तथा अंत:कंकाल
2. कार्टिलेजी तथा हड्डीदार
3. (क) करोटि (ख) मस्तिष्क (ग) महारंध्र (घ) अग्रगर्ती (च) ग्लीनॉइड (छ) मेंढ़क
4. (क) तथा (ii); (ख) तथा (iii); (ग) तथा (iv); (घ) तथा (vi); (च) तथा (i); (छ) तथा (v).
5. (क) ग ; (ख) स ; (ग) ग ; (घ) स ; (च) ग ; (छ) स ;
6. एक
7. प्रीमैक्सिला, मैक्सिला तथा वोमर
8.

सूची अ	सूची ब
(i)	ह्यूमरस
(ii)	रेडियस तथा अल्ना
(iii)	कार्पलें
(iv)	मेटाकार्पलें

(v) फ़ीमर

(vi) टिबिया तथा फ़िबुला

(vii) टार्सलें

(viii) मेटाटार्सलें

9. क तथा (ii);

ख तथा (iii);

ग तथा (v);

घ तथा (i);

च तथा (iv).

इकाई 12 अंत:स्रावी तंत्र

इकाई की रूपरेखा

12.1 प्रस्तावना
 उद्देश्य
12.2 स्तनियों में अंत:स्रावी ग्रंथियां
 पिट्यूटरी
 थाइरॉइड ग्रंथि
 पैराथाइरॉइड ग्रंथियां
 पैंक्रियाज
 एड्रिनल ग्रंथियां
 जठरांत्र हार्मोन
 गोनडीय हॉर्मोन
12.3 एग्नैथा
12.4 मछलियां
 इलास्मोब्रैंक मछलियां
 अस्थिल मछलियां
12.5 ऐम्फ़िबियन वर्ग
12.6 रेप्टाइल वर्ग
12.7 पक्षी
12.8 सारांश
12.9 अंत में कुछ प्रश्न
12.10 उत्तर

12.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने कशेरुकियों के तंत्रिका-तंत्र के विषय में पढ़ा है। तंत्रिका-तंत्र और अंत:स्रावी तंत्र दोनों ही परस्पर मिलकर जीवधारियों के क्रियाकलापों को समाकलित करने की दिशा में कार्य करते हैं। ऐसा ये अपनी उस क्षमता द्वारा कर पाते हैं जिनमें ये कुछ रासायनिक पदार्थों का संश्लेषण करके उन्हें शरीर में छोड़ते हैं। कुछ तंत्रिका-कोशिकाएं जिन्हें तंत्रिकास्रावी (neurosecretory) कोशिकाएं भी कहते हैं, तंत्रिकाद्रव (neurohumours) नामक पदार्थों को बनाती हैं और ये पदार्थ स्थानीय तौर पर क्रिया करते हैं। अंत:स्रावी ग्रंथियों से निकलने वाले स्रावों यानि हॉर्मोनों की क्रिया व्यापक तौर पर होती है। कहा जा सकता है कि जहां एक ओर तंत्रिका-तंत्र के द्वारा होने वाला नियमन स्थानीय एवं तीव्र होता है वहां दूसरी ओर अंत:स्रावी तंत्र द्वारा होने वाला नियमन अधिक व्यापक और अपेक्षाकृत धीमी गति से होता है। हॉर्मोन द्वारा होने वाले नियमन में समस्थापन (homeostasis) अर्थात् भीतरी पर्यावरण में स्थिरता को बनाए रखना, सामान्य उपापचय, आकारजनन (morphogenesis), मानसिक क्षमताएं, जनन-प्रक्रिया की शुरुआत करना एवं उसको चलाए रखना तथा यौन संबंधित व्यवहार जिसमें प्रणय, घोंसला-निर्माण, पैतृक देख-रेख तथा प्रवास आदि आते हैं।

इस इकाई में हम पहले तो स्तनियों की अंत:स्रावी ग्रंथियों, उनसे निकलने वाले हॉर्मोन तथा

इन हॉर्मोन के कार्यों का अध्ययन करेंगे। उसके बाद हम कशेरुकियों के विभिन्न क्लासों में अंत:स्रावी ग्रंथियों का अध्ययन करेंगे।

उद्देश्य

इस इकाई के पठन के बाद आप :

- मानव में अंतस्रावी ग्रंथियों की संरचना, कार्य तथा शरीर में उनकी स्थिति का वर्णन कर सकेंगे,
- स्तनियों की अंतस्रावी ग्रंथियों के विभिन्न स्रावों की सूची बना सकेंगे,
- गैर-स्तनी कशेरुकियों की अंतस्रावी ग्रंथियों की संरचना का वर्णन कर सकेंगे,
- स्तनियों तथा अन्य कशेरुकियों की अंत:स्रावी ग्रंथियों की संरचना तथा कार्यों में विभिन्नताओं का विवेचन कर सकेंगे।

12.2 स्तनियों में अंत:स्रावी ग्रंथियां

विभिन्न प्राणि-वर्गों की अंत:स्रावी ग्रंथियों का एक विस्तृत वर्णन पहले ही प्राणि-कार्यिकी पाठ्यक्रम (LSE-05) खंड 2 की इकाई 10 में विस्तार से दिया जा चुका है, यह पाठ्यक्रम आप अब तक पढ़ चुके होंगे। उसी इकाई में ऊर्जा-उपापचय में हॉर्मोनों की भूमिका का भी विवेचन किया गया है। कोशिका-जैविकी पाठ्यक्रम (LSE-01) खण्ड की इकाई 15 में आपने हॉर्मोन क्रिया की कोशिकीय क्रियाविधियों का अध्ययन किया था। आप चाहें तो पहले उन दो इकाइयों को एक बार फिर से पढ़ लें और उसके बाद इस इकाई को पढ़ें। इस इकाई में हम कशेरुकियों की मुख्य अंत:स्रावी अंगों की संरचना और उनके कार्यों का वर्णन करेंगे। हम शुरुआत करते हैं अंत:स्रावी संरचनाओं के वर्णन से जैसी कि वे स्तनियों में पायी जाती है।

12.2.1 पिट्यूटरी

पिट्यूटरी ग्रंथि अर्थात् पीयूष ग्रंथि एक छोटी अयुग्मित संरचना होती है जो मस्तिष्क की अधर सतह से जुड़ी होती है। इस अंग को हाइपोफिसिस सेरिब्राई (hypophysis cerebri) भी कहते हैं, और यह विशिष्टत: डाइएन्सेफ़ेलॉन के फ़र्श पर हाइपोथैलेमस से एक संकरे वृंत द्वारा जुड़ी होती है। यह करोटि के स्फ़ीनॉयडल क्षेत्र में बने एक गढ़े सेल्ला ट्यूनिका (sella tunica) में स्थित होती है (चित्र 12.1)।

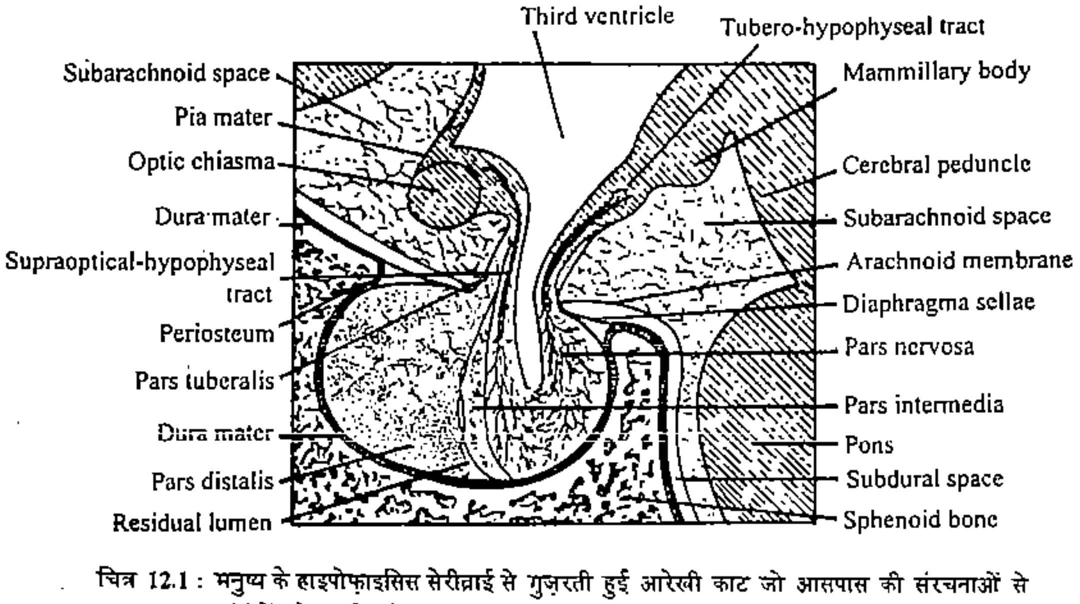

चित्र 12.1 : मनुष्य के हाइपोफ़ाइसिस सेरीब्राई से गुज़रती हुई आरेखी काट जो आसपास की संरचनाओं से संबंधों को दर्शाता है।

पिट्यूटरी में दो भाग बने होते हैं एक तो बड़ा-सा अग्र भाग **ऐडीनोहाइपोफ़िसिस** (adenohypophysis) जिसे **पार्स बक्केलिस**, (pars buccalis) भी कहते हैं और दूसरा छोटा पश्च भाग **न्यूरोहाइपोफ़िसिस** (neurohypophysis) जिसका दूसरा नाम **पार्स नर्वोसा**, (pars nervosa) है। ये दोनों ही संरचनाएं एक्टोडर्म से उत्पन्न होतीं हैं। हाइपोफ़िसिस दो स्रोतों से बनता है एक तो डाइएन्सेफेलॉन के फ़र्श से निकली बहिर्वृद्धि से जिसे इंफन्डिबुलम (infundibulum) कहते हैं, और दूसरे मुखपथ (स्टोमोडियम) की छत की बहिर्वृद्धि से जिसे **राटके कोष्ठ**(Rathke's pouch) कहते हैं। राटके कोष्ठ का दूरस्थ भाग उससे पृथक होकर इंफन्डिबुलर बहिर्वृद्धि के निकट सम्पर्क में आकर ऐडिनोहाइपोफ़िसिस बना लेता है (चित्र 12.2)। इंफन्डिबुलम-बहिर्वृद्धि मस्तिष्क के साथ एक इंफन्डिबुलर वृंत के द्वारा संयोजित हो जाती है और इस प्रकार बन जाता है न्यूरोहाइपोफ़िसिस।

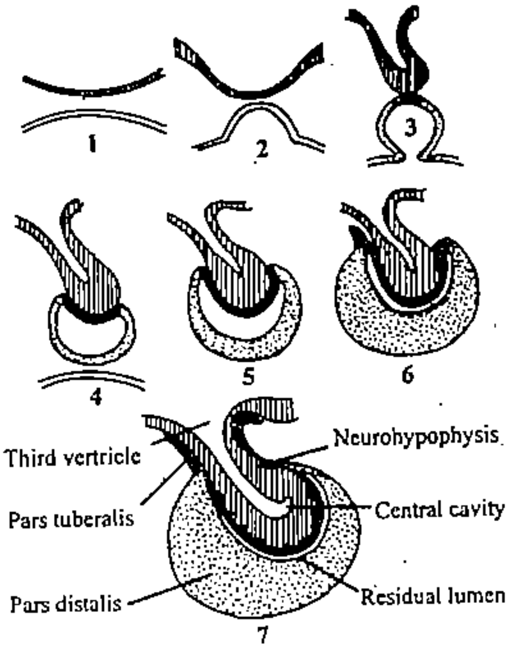

चित्र 12.2 : पिट्यूटरी के भ्रूणीय विकास की अवस्थायें।

स्वयं ऐडीनोहाइपोफ़िसिस में और आगे विभाजन हुआ होता है (चित्र 12.3)। ऐडीनोहाइपोफ़िसिस का वह भाग जो न्यूरोहाइपोफ़िसिस के निकट सम्पर्क में होता है उसे पार्स इंटरमीडिआ (pars intermedia) कहते हैं और उसका शेष भाग बहुत अधिक मोटा होकर पार्स डिस्टैलिस (pars distalis) बनाता है। अत्यधिक रक्तवाहिकामय ऐडिनोहाइपोफ़िसिस ऐसी कोशिकाओं का बना होता है जो रज्जु जैसी पट्टिकाओं के रूप में व्यवस्थित होती है। इनके बीच में पतली दीवारों वाले कोटर अर्थात् सिनुसाइड (sinusoid) होते हैं। इसमें दो प्रकार की कोशिकाएं होती हैं- एक तो स्रावी कणिकीय रंजकरागी (chromophil) कोशिकाएं और दूसरी अस्रावी अकणिकीय वर्णापकर्षी (chromophobic) कोशिकाएं। न्यूरोहाइपोफ़िसिस में विभेदन होकर तीन भाग बन गए होते हैं- पार्स नर्वोसा, इंफन्डिबुलर वृंत तथा मध्यक उत्कर्ष (median eminence) (चित्र 12.3)। मस्तिष्क से व्युत्पन्न होने के बावजूद पार्स नर्वोसा में कोई भी तंत्रिका कोशिका नहीं होती मगर इसमें न्यूरोग्लियल अर्थात् तंत्रिकाबंध कोशिकाएं (neuroglial cells) तथा वर्णकयुक्त कोशिकाएं पिट्यूइसाइट्स, (pituicytes), होती हैं। इंफन्डिबुलर वृंत पार्स नर्वोसा को मस्तिष्क के साथ जोड़ देता है। मध्यक उत्कर्ष, जिसमें भरपूर रक्त केशिकाएं होती हैं, इंफन्डिबुलम का फूला हुआ आधार होता है। पार्स इंटरमीडिया और पार्स डिस्टेलिस दोनों मिलकर अग्र पिट्यूटरी बनाते हैं तथा पार्स नर्वोसा, इंफन्डिबुलर वृंत तथा मध्य उत्कर्ष मिलकर पश्च पिट्यूटरी बनाते हैं। अग्र पालि में रक्त की आपूर्ति दो स्रोतों से होती है (चित्र 12.5)। एक स्रोत भीतरी केरोटिड धमनी है और

दूसरा स्रोत हाइपोफ़िसियल निवाहिका (hypophysial portal) शिरा है। पश्च पालि में होने वाली आपूर्ति अधर हाइपोफ़िसियल धमनी (inferior hypophysial) से होती है।

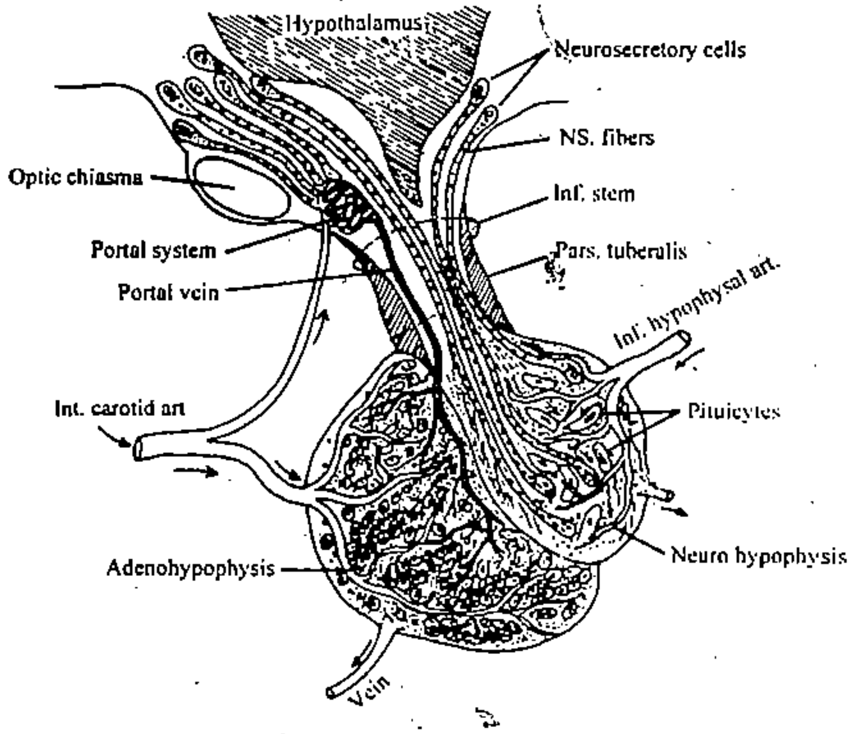

चित्र 12.3 : पिट्यूटरी ग्रन्थि– रक्त संचार।

पिट्यूटरी- हॉर्मोनों के स्राव का नियमन हाइपोथैलेमस, जो कि डाइएन्सेफेलॉन (अग्रमस्तिष्कपश्च) के फ़र्श पर स्थित होता है, से निकले तंत्रिकास्राव द्वारा होता है। हाइपोथैलेमस की तंत्रिका स्रावी कोशिकाओं से निकले तंत्रिकास्रावी पदार्थ ऐक्सॉनों द्वारा ले जाए जाते और मध्य उत्कर्ष में प्रविष्ट होते हैं। मध्य उत्कर्ष से निकलने वाली निवाहिका शिरा इन पदार्थों को अग्र पिट्यूटरी में पहुंचाती है, जहां ये पदार्थ कुछ विशिष्ट हॉर्मोन जैसे कि एड्रिनोकॉर्टिकोट्रॉपिक हॉर्मोन, सोमेटोट्रॉपिक (कायप्रेरक) हॉर्मोन, फ़ॉलिकिल स्टिमुलेटिंग हॉर्मोन अर्थात् पुटकोद्दीपक हॉर्मोन तथा ल्युटिनाइज़िंग हॉर्मोन के स्राव का नियमन करते हैं। कुछ और तंत्रिकास्रावी तंतु इंफन्डिबुलर पथ में से होकर गुज़रते हैं और पश्च पालि में प्रवेश करके उसमें न्यूरोपेप्टाइड, ऑक्सीटोसिन तथा वैसोप्रेसिन का स्राव करते हैं। तालिका 12.1 में पिट्यूटरी ग्रंथि से स्रवित होने वाले हॉर्मोन, उनके संश्लेषण के स्थान एवं उनके संभावित प्रकार्यों की सूची दी गयी है।

तालिका 12.1: पिट्यूटरी ग्रंथि के हार्मोन

भाग	हॉर्मोन	संश्लेषण का स्थान	प्रकार्य
पार्स डिस्टैलिस	सोमटॉट्रोपिन (STH) वृद्धि हॉर्मोन	अम्लरागी कोशिकाएं	प्रोटीन-संश्लेषण को, तथा पेशियों एवं यकृत के भीतर ग्लाइकोजन के निक्षेपण को बढ़ावा देता है। उत्तकों में से वसा को निकालता है। हड्डियों तथा पेशियों की वृद्धि बढ़ाता है।
	ऐड्रिनोकॉर्टिकोट्रॉपिन (ACTH)	क्षारकरागी कोशिकाएं	ऐड्रिनल कॉर्टेक्स द्वारा ग्लूकोस्टीरॉइडों तथा मिनेरैलोकॉर्टिकोस्टीरॉइडों जैसे

			ऐड्रिनोकॉर्टिको स्टेरॉयड के स्राव को उत्तेजित करता है।
	थाइरोट्रॉपिन (TSH)	क्षारकरागी कोशिकाएं	थाइरॉइड ग्रंथि को उत्तेजित करता है ताकि थाइरॉइड से थाइरॉक्सिन का संश्लेषण और विमोचन होता रहे।
	विविध गोनेडोट्रॉपिन (GH) (क) पुटकोद्दीपक-हॉर्मोन (FSH)	क्षारकरागी कोशिकाएं	युग्मकजनन तथा द्वितीयक लैंगिक लक्षणों को उद्दीपित देता है। मादाओं में अंडाशयी पुटको की वृद्धि तथा अण्डोत्सर्ग को उद्दीपित करता है। नर में वृषण के परिवर्धन को उद्दीपित करता है।
	(ख) ल्यूटिनाइज़िग हॉर्मोन	क्षारकरागी कोशिकाएं	FSH के साथ मिलकर अंडाशय पुटकों को तथा एस्ट्रोजन एवं प्रोजेस्टरोन के निर्माण को प्रोत्साहित करता है; कार्पस ल्युटियम के बनने में सहायता करता है; नर में वृषण की अंतराली कोशिकाओं को और एन्ड्रोजनों के स्राव को उद्दीपित करता है।
	(ग) प्रोलैक्टिन अथवा ल्युटिओट्रोपिक हॉर्मोन (LTH)	अम्लरागी कोशिकाएं	स्तन ग्रंथियों के परिवर्धन एवं दुग्ध स्राव को उद्दीपित करता है। कॉर्पस ल्युटियम को बनाए रखने के लिए अनिवार्य।
पार्स इंटरमीडिया	मेलानोफोर स्टिमुलेटिंग हॉर्मोन (MSH) मेलानोट्रोपिन		मछलियों तथा ऐम्फ़िबियनों में मेलानिन वर्णक के उत्पादन को उत्तेजित करता है; स्तनियों में हॉर्मोन द्वारा टाइरोसीन के सक्रियकरण से मेलानिन-निर्माण प्रेरित होता है।
न्यूरोहाइ-प्रोफ़िसिस	वासोप्रेसिन अथवा ऐन्टीडाईयूरेटिक हॉर्मोन (ADH)	हाइपोथैलेमसी तंत्रिकाणु	वृक्क नलिकाओं में जल के पुनः अवशोषण में सहायता करता है। साथ ही वाहिकासंकीर्णक (वासोकंस्ट्रिक्टर) का भी काम करता है।
	ऑक्सीटोसिन	हाइपोथैलेमसी तंत्रिकाणु	स्तन ग्रंथियों तथा गर्भाशय भित्ती की अरेखित पेशियों का संकुंचन करता है।

अन्य अंत:स्रावी ग्रंथियों का वर्णन करने से पहले, आप निम्नलिखित बोध प्रश्नों को हल करने की कोशिश करिए:

बोध प्रश्न 1

I. रिक्त स्थानों में उपयुक्त शब्द भरिए:-

(क) .... नामक भाग डाइएन्सेफ़ेलॉन के फ़र्श पर हाइपोथैलेमस के साथ एक संकीण वृंत से जुड़ा होता है।

(ख) पिट्यूटरी के दो मुख्य भाग .... तथा ....होते हैं।

(ग) ऐडीनोहाइपोफ़ाइसिस के दो विभाजन..................... तथा .... होते हैं।

(घ) पश्च पिट्यूटरी के तीन क्षेत्र ...., ... तथा .... होते हैं।

(च) न्यूरोहाइपोफ़िसिस में संचित दो हॉर्मोन .... तथा .... होते हैं।

II. अग्र पिट्यूटरी से स्रावित होने वाले हॉर्मोनों तथा उनके प्रकार्यों की सूची बनाइए।

12.2.2 थाइरॉइड ग्रंथि

थाइरॉइड अथवा अवटु ग्रंथि सामान्यत: गर्दन के हिस्से में स्थित होती है। यह दो पालियों वाली संरचना होती है, ये दोनों पालियां लैरिंक्स (स्वर-कोश) की अधर दिशा में स्थित एक संयोजन द्वारा जुड़ी रहती हैं। थाइरॉइड की व्युत्पत्ति एंडोडर्म से होती है और यह ग्रसनी कोष्ठों की प्रथम जोड़ी के स्तर पर ग्रसनी के फ़र्श से एक अयुग्मित मध्यक बहिर्वलन के रूप में निकलता है। बाद में यह ग्रसनी से अलग हो जाता और एक द्विपालिक संरचना का रूप ले लेता है। यह ग्रंथि भीतर से बहुसंख्यक गोलाकार पुटको की बनी होती है; प्रत्येक पुटक में एक केंद्रीय अवकाशिका होती है जिसे घेरती हुई स्रावी एपिथीलियमी कोशिकाएं होती हैं (चित्र 12.6)। कोशिकाओं से निकले हुए स्राव तब तक अवकाशिका में संचित रहते हैं जब तक कि उनके बाहर छोड़े जाने का समय नहीं आ जाता। सहवर्ती कोशिकाओं के बीच-बीच में अर्थात् अंतरापुटकीय गुहाओं में भरपूर रक्तवाहिकाएं होती हैं। थाइरॉइड ग्रंथि से स्रावित हॉर्मोन थाइरॉक्सिन टाइरोसीन नामक ऐमीनों अम्ल का व्युत्पाद होता है। थाइरॉइड ग्रंथि की पुटिकीय एपिथीलियल कोशिकाएं रक्त वाहिकाओं से विसरणशील आयोडाइड आयनों (भोजन से आए हुए) को अवशोषित कर लेती हैं और उन्हें आयोडीन अणुओं में बदल देती हैं। तदुपरांत मुक्त आयोडीन को थाइरोग्लोबुलिन अणुओं के अवशेषों में शामिल कर लिया जाता है जिससे आगे चलकर ट्राइआयोडोथाइरोनीन (T_3) तथा थाइरॉक्सिन (T_4) बने जाते हैं। उसके बाद T_3 तथा T_4 अणु एंज़ाइमों की क्रिया द्वारा थाइरोग्लोबुलिन अणु से निकलकर मुक्त हो जाते हैं।

जीव के सामान्य उपापचय को बनाए रखने में थाइरॉइड के स्रावों की अहम् भूमिका होती है। फ़ॉस्फ़ोरिलेशन से ऑक्सीकरण का वियुग्मन करके कोशिका के भीतर ऑक्सीकरणी उपापचय की दर को त्वरित करता है। थाइरॉइड से वृद्धि तथा आकारजनन का भी नियमन होता है। मेंढकों में थाइरॉक्सिन से कायांतरण का नियमन होता है। ग्लाइकोजन अणुओं से ग्लूकोस के निकलने को बढ़ावा देकर थाइरॉइड कार्बोहाइड्रेट के उपयोग को भी सुगम करता है। अल्पायु टैडपोलों में थाइरॉइड-उच्छेदन (thyroidectomy) से कायांतरण नहीं होता इसी प्रकार अल्पायु टैडपोलों में थाइरॉक्सिन प्रवेश कराने से समयपूर्व कायांतरण हो जाता है।

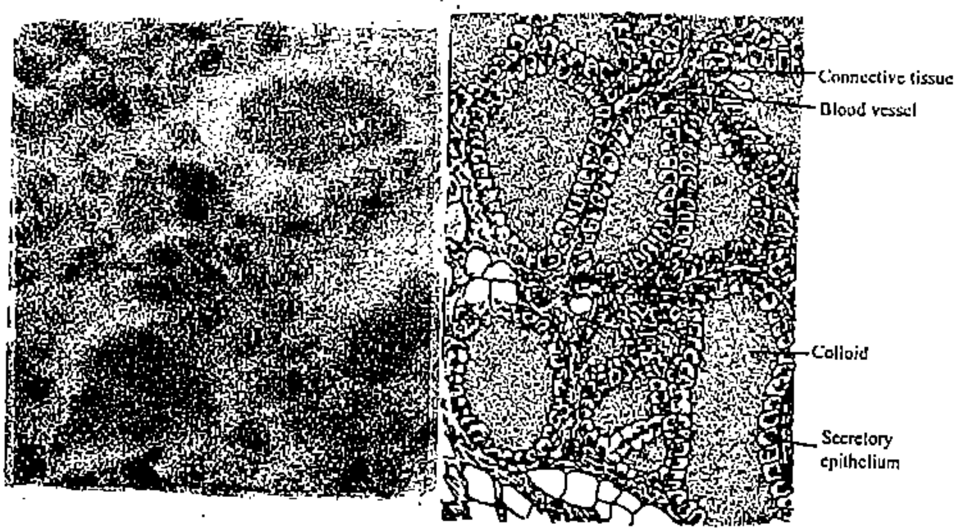

चित्र 12.4 : थाइरॉइड ग्रन्थि एक विस्तृत भाग (a) रंजित कांट (b) आरेखी चित्र।

ऐसा भी पता चला है कि पिट्यूटरी ग्रंथि के ऐन्टीडाईयूरेटिक हॉर्मोन के साथ मिलकर थाइरॉइड शरीर के भीतर जल और लवण की मात्रा का भी नियमन करता है। साथ ही थाइरॉइड गोनडों की सामान्य सक्रियता एवं तंत्रिकाओं तथा पेशियों की उत्तेजनशीलता को भी बनाए रखता है।

12.2.3 पैराथाइरॉइड ग्रंथियां

पैराथाइरॉइड अर्थात् पराअवटू ग्रंथियां थाइरॉइड के बिल्कुल निकट सम्पर्क में होती हैं और मानव-सहित सभी स्तनियों में इनके सामान्यत: दो जोड़े पाए जाते हैं। ये ग्रंथियां भ्रूण के तीसरे तथा चौथे ग्रसनी कोष्ठों से निकले एंडोडर्मी व्युत्पाद होती हैं जो वयस्कों में ग्रसनी दरारों की भित्ती से अपना संबंध समाप्त कर चुके होते हैं। ग्रंथीय एपिथीलियम स्तम्भाकार कोशिकाओं की बनी होती है, इन कोशिकाओं से निकलने वाले स्राव स्तम्भों के बीच में बने बहुसंख्यक कोटरकों अथवा रक्त गुहाओं में छोड़ दिए जाते हैं जहां से वे लक्ष्य अंगों में पहुंचा दिए जाते हैं। ये कोशिकाएं दो प्रकार की होती हैं: बड़ी अकणिकीय वर्णापकर्षी (nongranular chromophobe) कोशिकाएं तथा कणिकीय ईओसीनरागी कोशिकाएं। पैराथाइरॉइड ग्रंथियां दो प्रकार के हॉर्मोन का मोचन करती हैं- एक तो पैराथॉर्मोन (parathormone) और दूसरा केल्सिटोनिन (calcitonin)। इन दो हॉर्मोनों का कार्य शरीर में कैल्सियम उपापचय के नियमन करने में है, और काम करने की दृष्टि से ये दोनों एक दूसरे के विपरीत कार्य करते हैं। एक ओर जहां पैराथॉर्मोन कैल्सियम के ग्रहण करने तथा हड्डियों के भीतर उसके निक्षेपण का नियमन करता है वहीं दूसरी ओर कैल्सिटोनिन हड्डियों में से कैल्सियम को निकालता तथा रक्त में कैल्सियम के स्तर को सही बनाए रखने को उत्प्रेरित करता है।

12.2.4 पैंक्रियाज़

पैंक्रियाज़ अर्थात् अग्नयाशय में बाह्यस्रावी तथा अंत:स्रावी दोनों अंश हैं। गुच्छकोष्ठक (acinar) ऊतक से अग्न्याशय रस निकलता है जो अंतड़ी में पहुंचकर पाचन की क्रियाएं करता है। अंत:स्रावी कार्य द्वीपिका ऊतक (islet tissue) द्वारा किया जाता है और उससे निकले हॉर्मोन रक्त-धारा में मोचित किए जाते हैं। इस ऊतक, जिसे विशिष्टत. लैंगरहैन्स की द्वीपिकाएं कहा जाता है (चित्र 12.7), में दो प्रकार की कोशिकाएं होती हैं- ऐल्फा और बीटा कोशिकाएं। प्रत्येक में से एक अपना विशेष हॉर्मोन निकलता है। पैंक्रियाज़ का उद्भव आहार नाल से निकले एक बहिर्वलन के रूप में होता है, और इस प्रकार यह एंडोडर्मी मूल का होता है।

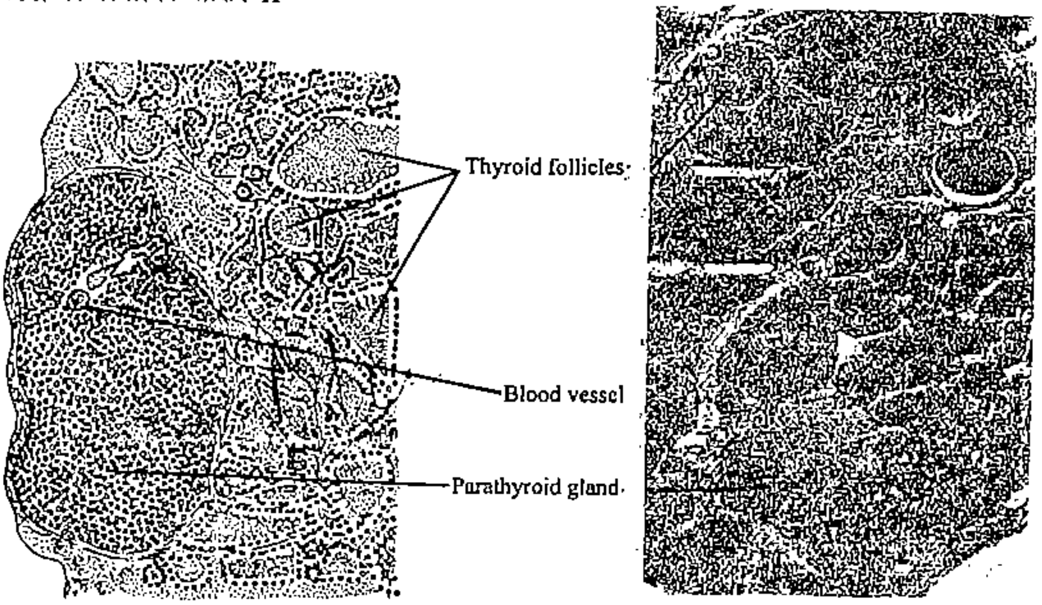

चित्र 12.5 : थाइराइड फालिकल से घिरी हुई पैरॉथाइरॉइड ग्रन्थि की काट।

ऐल्फा कोशिकाओं से एक अतिग्लूकोसरक्तता (hyperglycemic) हॉर्मोन ग्लुकैगॉन (glucagon) निकलता है तथा बीटा कोशिकाओं से एक अल्पग्लूकोसरक्तता (hyperglycemic) हॉर्मोन इंसुलिन (insulin) निकलता है। ये दोनो हॉर्मोन परस्पर मिलकर जीवों के ग्लूकोस उपापचय का नियमन कहते है। इंसुलिन से यकृत के भीतर वसा अम्लों के संश्लेषण को भी बढ़ावा मिलता है।

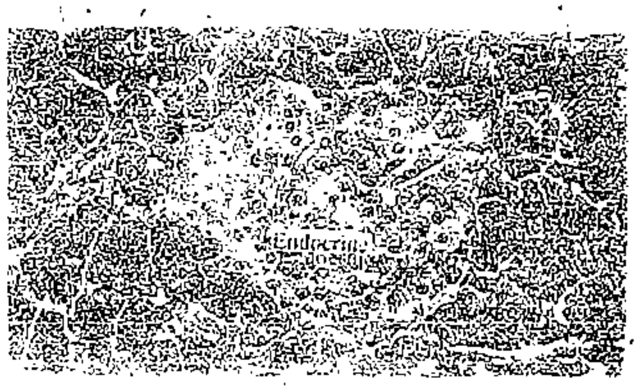

चित्र 12.6 : चूहे के पैंक्रियाज से गुज़रती काट जो वाह्य स्रवण (पैंक्रियाटिक एसिनाई) और अंत:स्रावी ऊतक (लैंगरहैंस की द्वीपिका) को दर्शाती है।

12.2.5 एड्रिनल ग्रंथियां

एड्रिनल अर्थात् अधिवृक्क ग्रंथियां सामान्यत: गुर्दों के अग्र सिरे के साथ जुड़ी हुयी स्थित होती हैं। इन ग्रंथियों के भीतर दो स्पष्ट क्षेत्र बने दिखायी पड़तें हैं- एक तो बाहरी कॉर्टेक्स (वल्कुट) और दूसरी भीतरी मेडुला (मध्यांश)। आदिम कशेरुकियों में जैसे कि एग्नैथा-प्राणियों तथा मछलियों में, ये दो क्षेत्र एक-दूसरे से काफ़ी हट कर होते हैं लेकिन उच्चतर प्राणियों में इनकी कोशिकाएं परस्पर छितरायी हुई होती हैं। स्तनियों में मेडुला बीच में होता है और कॉर्टेक्स द्वारा बाहर से घिरा रहता है (चित्र 12.7 a) फिर भी, इस ग्रंथि के ये दो क्षेत्र अपने उद्‌भव संरचना एवं कार्य में भिन्न होते हैं।

एड्रिनल कॉर्टेक्स

स्तनियों में एड्रिनल कॉर्टेक्स (adrenal cortex) की कोशिकाएं भी मीज़ोडर्मी अंतरा-वृक्क (इंटररीनल) ऊतकों से मुकुलित होकर निकलती हैं। गैर-स्तनी कशेरुकियों में ये कोशिकाएं संहतियों के रूप में व्यवस्थित हो जाती हैं, इन संहतियों को अंतरावृक्क (इंटररीनल) पिंड कहते हैं। स्तनियों में ये मेडुला को घेर कर कॉर्टेक्स बना लेते हैं। कॉर्टेक्स में तीन क्षेत्र पाए जाते हैं- बाहरी ग्लोमेरूलोसा (glomerulosa) बीच का फेसिकुलैटा (fasciculata) तथा भीतरी रेटिकुलोसा (reticulosa) होता है (चित्र 12.7 b)। कॉर्टेक्स-ऊतक जिसे स्टेरॉयजनिक ऊतक कहते हैं, से दो प्रकार के स्टेरॉयडल हॉर्मोन, ग्लूकोकॉर्टिकॉइडों तथा मिनरेलोकॉर्टिकॉइडों का स्रवण होता है। ग्लूकोकॉर्टिकॉइडों जैसे कि कॉर्टिसॉल की, कार्बोहाइड्रेट एवं प्रोटीन उपापचय में एक ख़ास भूमिका होती है। इन हॉर्मोनों से ग्लूकोस नवजनन (ग्लूकोनीओजेनेसिस) होता है। दूसरी तरफ़ मिनरेलोकॉर्टिकॉइड शरीर के भीतर जल तथा इलेक्ट्रोलाइटों (विद्युत् अपघट्यों) का नियमन करते हैं। ये दो मिनरेलों कॉर्टिकॉइड हैं- डेसॉक्सीकॉर्टिकोस्टेरोन तथा एल्डोस्टेरोन। अनिवार्यत: इनका काम सोडियम को भीतर बनाए रखना तथा पोटेशियम एवं फ़ॉस्फ़ेटों को अधिक मात्रा में बाहर निकालते जाना होता है। साथ ही ये वृक्क नलिकाओं के भीतर सोडियम के पुन: अवशोषण को प्रेरित करते तथा पोटैशियम का पुन: अवशोषण कम करते हैं।

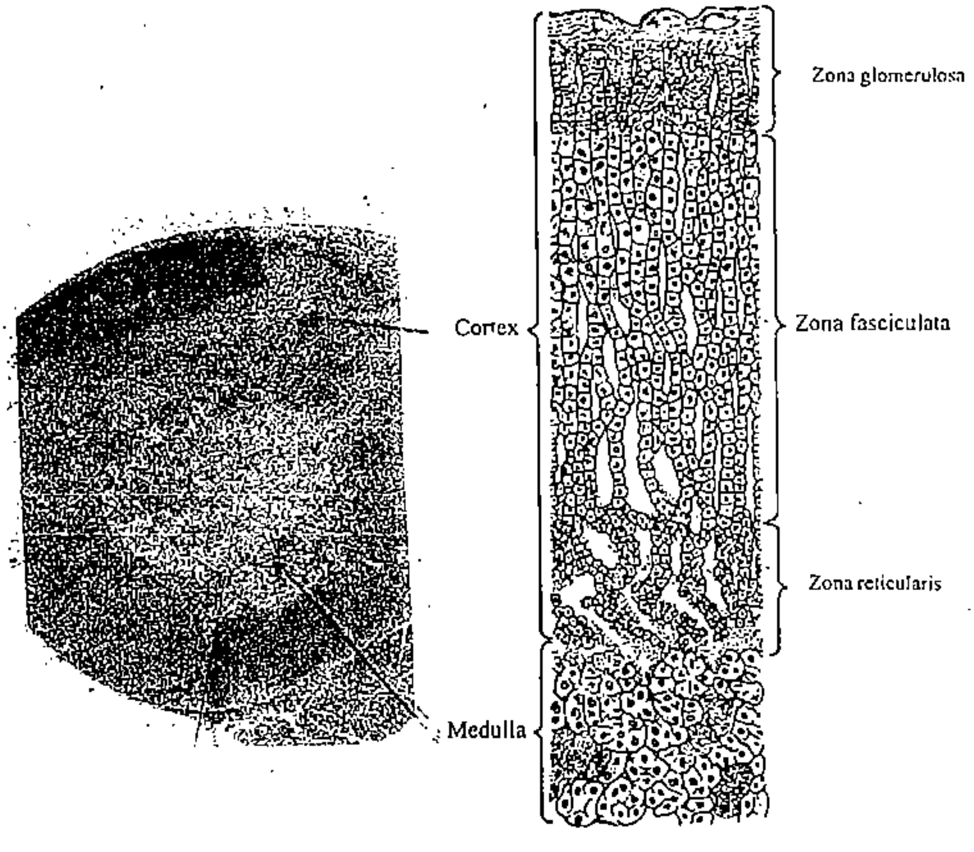

चित्र 12.7 : स्तनी एड्रिनल ग्रन्थि के एक भाग की काट जो कार्टेक्स एवं मेडुला क्षेत्रों को दिखाता है (a) रंजित काट (b) आरेखी काट।

एड्रिनल मेडुला

एड्रिनल मेडुला (adrenal medulla) न्यूरेक्टोडर्म की न्यूरल क्रेस्ट (तंत्रिका शिखर) कोशिकाओं से उत्पन्न होता है। न्यूरल क्रेस्ट कोशिकाओं से फूटकर निकला एक कोशिका-समूह जिसे फ़ीकोक्रोमोब्लास्ट कहते हैं, ग्रंथीय हो जाता और उससे एड्रिनल मेडुला की कोशिकाएं बन जाती हैं (चित्र 12.9)। मेडुलरी कोशिकाओं में एक विशिष्ट ऊतक

रसायन अभिक्रिया पायी जाती है- क्रोमेटों (chromates) द्वारा रंगे जाने पर इनमें गहरा भूरा रंग आ जाता है इसी कारण इन्हें क्रोमैफिन कोशिकाएं कहते हैं तथा इनसे बने ऊतक को क्रोमैफिन ऊतक का नाम दिया जाता है। इन कोशिकाओं से निकले स्रावों को कैटेकोलैमीन वर्ग का कहा जाता है जिनमें ऐड्रिनलीन तथा नॉर-ऐड्रिनलीन हैं (इन्हें क्रमश: एपिनेफ्रीन तथा नॉर एपिनेफ्रीन भी कहते हैं)। ये दोनों ही हॉर्मोन टाइरोसीन से व्युत्पन्न हुए होते हैं। इन दोनों हॉर्मोन का प्रभाव लगभग एक जैसा ही होता है। इनसे वाहिकासंकीर्णन के द्वारा रक्त दाब में वृद्धि होती है। ऐड्रिनलीन से आंतरांग क्षेत्र तथा त्वचा की वाहिकाओं का संकीर्णन होता है; परन्तु जब यह थोड़ी मात्रा में निकलता है तब पेशी की वाहिकाएं फैल जाती हैं और जब अधिक मात्रा में निकलता है तब इन वाहिकाओं का संकीर्णन हो जाता है। फेफड़ों तथा मस्तिष्क में होने वाले परिसंचरणों पर इसका कोई प्रभाव नहीं होता और हृद धमनिकाओं को यह फैला देता है। पेशी की रक्त वाहिकाओं पर नॉर-ऐड्रिनलीन का संकीर्णक प्रभाव होता है। मानव में नॉर ऐड्रिनलीन द्वारा परिधीय प्रतिरोध बढ़ जाता तथा ऐड्रिनलीन द्वारा घट जाता है। इन दोनों हॉर्मोनों से प्लीहा (तिल्ली) का संकीर्णन होता है जिसके परिणामस्वरूप परिसंचरित रक्त का आयतन बढ़ जाता है और उसी के साथ-साथ परिसंचरण में शामिल रक्ताणुओं की संख्या भी बढ़ जाती है साथ ही ये दोनों हॉर्मोन हृदय-स्पंदन की दर को तीव्र कर देते हैं। यकृत के भीतर ग्लाइकोलिसिस करा कर ये दो हॉर्मोन रक्त में शर्करा के स्तर को भी बढ़ा देते हैं। साथ ही पिट्यूटरी से ACTH के निकलने को उद्दीपित करके ऐड्रिनलीन परोक्ष रूप में कार्बोहाइड्रेट उपापचय को भी बढ़ा देता है। इस क्रिया में स्वयं ACTH भी ग्लूकोकॉर्टिकॉइडों का विमोचन करता है जिनसे कार्बोहाइड्रेट उपापचय का नियमन होता है। ऐड्रिनलीन के स्रवण का नियमन अनुकंपी तंत्रिका तंत्र (sympathetic nervous system) द्वारा होता है।

12.2.6 जठरांत्र हार्मोन

कुछ थोड़े से जठरांत्र (gastro intestinal) हॉर्मोन होते हैं, जो पॉलिपेप्टाइड प्रकृति के होते हैं और जिनका स्रवण आहार नाल के म्यूकोसा से होता है एवं जिनके द्वारा स्तनियों में जठरांत्र क्रियाकलाप का नियमन होता है। इनमें से कुछ पॉलिपेप्टाइड हैं **गैस्ट्रिन**, (gastrin) **सेक्रेटिन** (secretin) तथा **कोलेसिस्टोकाइनिन** (cholecystokinin) । इस सूची में कई अन्य पॉलिपेप्टाइड हॉर्मोन जुड़ते जा रहे हैं मगर उनके कार्य अभी तक ठीक-ठीक स्पष्ट नहीं हो पाए हैं।

जठर म्यूकोसा से स्रवित गैस्ट्रिन जठर में हाइड्रोक्लोरिक अम्ल (HCl) के स्रवण का नियमन करता है। इस हॉर्मोन के बनने का उद्दीपन एक तो जठर के फैल जाने से और दूसरे कुछ आहार पदार्थों के मौजूद होने के द्वारा पैदा होता है और हॉर्मोन रक्त में निर्मोचित किया जाता है। अब यही गैस्ट्रिन पैराइटल कोशिकाओं पर क्रिया करता है जिससे वे HCl को जठर में छोड़ती हैं। स्रवित होने वाला HCl एक फ़ीडबैक की तरह भी काम करता है जिससे और आगे गैस्ट्रिन का बनना रुक जाए। इस प्रकार जठर के भीतर HCl के बनने की मात्रा का नियमन गैस्ट्रिन द्वारा ही होता है। अम्ल के उचित सांद्रण से ही जठर के भीतर पेप्टिक क्रिया का निर्धारण होता है।

सेक्रेटिन तथा कोलेसिस्टोकाइनिम इन दोनों का स्रवण ग्रहणी के म्यूकोसा से ही होता है। सेक्रेटिन का स्राव है या तो जठर का pH कम होने पर या पची हुई वसा अथवा पित्त की मौजूदगी पर होता है। इस हॉर्मोन से एंजाइम से भरे पैंक्रियाटिक (अग्न्याशय) रस के भारी मात्रा में निर्मोचन की शुरुआत होती है। कोलेसिस्टोकाइनिन का स्रवण अंशत: पचे प्रोटीनों

के द्वारा उद्दीपित से होता है। ये दो हॉर्मोन जठर की गतिशीलता तथा स्रवण का संदमन करते हैं। एक बार जब काइम जठर को छोड़कर अंतड़ी में आ जाता है तब जठर की क्रिया धीमी हो जाती और उसके भीतर के हॉर्मोनों का बनना रोक दिया जाता है।

12.2.7 गोनंडीय हॉर्मोन

गोनड यानि वृषण तथा अण्डाशय दोहरे कार्य करते हैं। एक तो यह कि इन्हीं के भीतर गैमीटजनन अर्थात् इन्हीं में क्रमशः शुक्राणु और अडें बनते है, दूसरा यह कि इनके भीतर तीव्र अंत:स्रावी क्रिया होती है अर्थात् इनके भीतर हार्मोन बनते और स्रवित होते हैं जो प्राणी की जनन क्रिया का नियमन करते हैं।

वृषण

वृषण (testes) दो भागों का बना होता है एक तो शुक्रधर नलिकाओं का जिनमें शुक्राणु बनते हैं और दूसरा अंतराली (interstitial) अथवा लीडिग (Leydig) कोशिकाओं का (चित्र 12.10) जिनसे नर हार्मोनों का स्रवण होता है। वृषण से निकलने वाले दो ऐंड्रोजनों, टेस्टोस्टेरोन तथा ऐंड्रोस्टेरोन की नर जनन क्रिया में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका होती है, और इन दोनों में भी टेस्टोस्टेरोन की क्षमता ऐंड्रोस्टेरोन की क्षमता से सात से दस गुना तक अधिक होती है। ऐंड्रोजनों से वृद्धि अधिक होने लगती है और उनसे कोशिका-प्रोटीनों के संश्लेषण को भी उद्दीपित किया जाता है। इनके द्वारा एड्रिनल मिनरेलोकार्टिकॉइडों को उद्दीपित किया जाता है जिसके परिणामस्वरूप सोडियम, पोटैशियम, फॉस्फोरस तथा सल्फर को शरीर के भीतर ही रोका जाता है ताकि ऊतकों के बनने में उनका उपयोग किया जा सके। ऐंड्रोजनों का संश्लेषण तथा निकलना ल्यूटिनाइजिंग हॉर्मोन के नियंत्रण में होता है, इस हॉर्मोन का दूसरा नाम इंटरस्टीशियल सेल स्टिमुलेटिंग हार्मोन (ICSH) अर्थात् अंतराल कोशिका उत्तेजक हॉर्मोन है जो एक गोनेडोट्रॉपिक हॉर्मोन होता है।

स्वयं ऐंड्रोजन भी गोनेडोट्रॉपिनों के स्रवण का नियमन करते हैं, और यह नियमन या तो इनके संश्लेषण को उद्दीपित करके होता है या उनके स्रवण का संदमन करते हैं। निम्न अनुमाप में ऐंड्रोजन शुक्राणुजनन के लिए अनिवार्य होते हैं तथा जब अनुमाप अधिक होता है तब उनसे गोनेडोट्रॉपिनों के स्रवण का संदमन होता है।

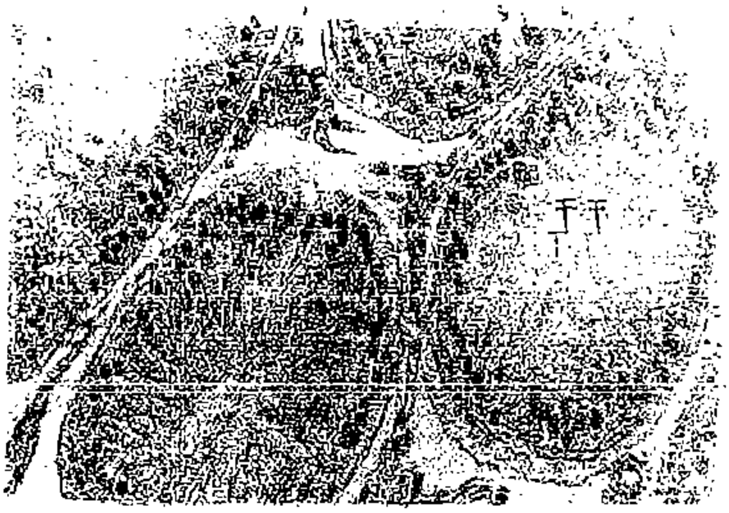

चित्र 12.8 : चूहे के वृषण की काट, लीडिग की अंतराली कोशिकाओं एवं शुक्रधर नलिकाओं (TT) को दर्शाती हुई।

अण्डाशय

अण्डाशय (ovary) के दो भाग होते हैं- एक तो स्ट्रोमा वाला भाग और दूसरा ग्राफियन फॉलिकलों का भाग जिसके भीतर अण्डे बनते हैं। अण्डाशय में अण्डे तो बनते ही हैं साथ ही यह एक अंत:स्रावी केंद्र भी है। अण्डाशय में बनने वाले दो हॉर्मोन, एक तो एस्ट्रोजन वर्ग तथा दूसरा प्रोजेस्टरोन होता है। अण्डाशय से एक प्रोटीन हॉर्मोन रिलैक्सिन (relaxin) का भी स्रवण होता है।

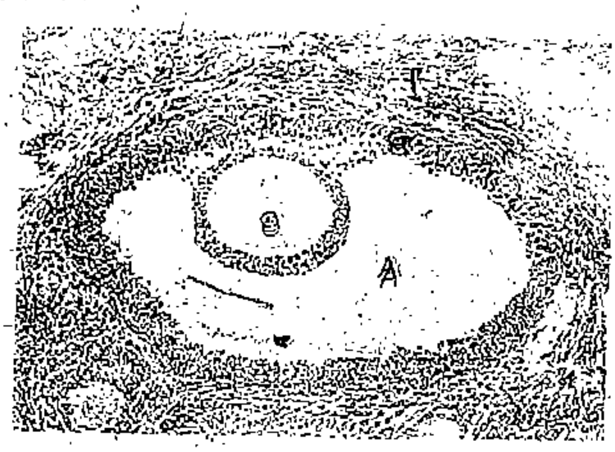

चित्र 12.9 : चूहे के अण्डाशय की काट ग्रेनुलोसा कोशिकायें (G) एवं अंडाणु (O); द्रव से भरा हुआ एंट्रम (A), तथा थीका कोशिकायें (T) सहित ग्राफियन फालिकल को दिखाते हुए।

एस्ट्रोजेन वर्ग परस्पर संबधित रासायनिक यौगीक होते है, इनमें से मुख्य हैं-

एस्ट्राडिऑल (estradiol), एस्ट्रिऑल (estriol) तथा एस्ट्रोन (estrone)। बाकी दो से एस्ट्राडिऑल अधिक सक्षम होता है। एस्ट्रोजन जनन तंत्र के परिवर्धन तथा उसकी संरचना एवं प्रकार्यात्मक दशा को बनाए रखते हैं। साथ ही वे सहायक जनन अंगों और गर्भाशय नलिकाओं, योनिमार्ग एवं स्तन ग्रंथियों के जैसे द्वितीयक लैंगिक अंगों के परिवर्धन का नियमन करते हैं। एस्ट्रोजनों द्वारा नियंत्रित होने वाले एक अन्य प्रकार्य हैं अण्डोत्सर्ग तथा अण्डाणु के प्रत्यारोपण के वास्ते एंडोमेट्रियम को तैयार करना। इन सबके अलावा नाइट्रोजन तथा इलेक्ट्रोलाइट (विद्युत् अपघट्य) उपापचय, जल संतुलन और हड्डियों का बनना भी एस्ट्रोजनों द्वारा प्रभावित होते हैं। साथ ही एस्ट्रोजन ये कार्य भी करते हैं- जल तथा सोडियम क्लोराइड को भीतर ही रखने का प्रोत्साहन, रक्त में फास्फेट स्तर को कम करना और कैल्सियम एवं फॉस्फोरस के निष्कासन को कम करना।

प्रोजेस्टरोन का स्रवण पिट्यूटरी से निकलने वाले ल्यूटियोट्रोपिक हॉर्मोन के प्रभाव के अंतर्गत होता है। कार्पस ल्युटियल वास्तव में अण्डाशय का फट गया हुआ पुटक होता है जो पीले से रंग की संरचना बन जाती है और एक अंत:स्रावी कार्य ग्रहण कर लेती है। आगे चलकर प्रोजेस्टरोन का स्रवण गर्भावस्था के दौरान प्लैसेंटा (अपरा) से भी होता है। गर्भवती महिलाओं के मूत्र में प्रोजेस्टरोन पाया जाता है। एस्ट्रोजनों की ही तरह प्रोजेस्टरोन भी अनेक कार्य करता है। यह निषेचित अण्डाणु के अंतर्रोपण के लिए गर्भाशय की भित्ति को तैयार करता है और गर्भावस्था बनाए रखता है। स्तन ग्रंथियों के बनने में प्रोजेस्टरोन भी एस्ट्रोजन की क्रिया में अतिरिक्त योगदान देता है। रिलैक्सिन एक पॉलिपेप्टाइड हॉर्मोन होता है जिसका स्रवण एस्ट्राडिऑल तथा प्रोजेस्टरोन के प्रभाव के अंतर्गत होता है। यह हॉर्मोन प्रसव के समय प्यूबिक सिम्फाइसिस (pubic symphysis) को नरम व ढीला कर देता है।

हमने अभी कुछ महत्वपूर्ण अंत:स्रावी स्रवणों का एक सामान्य सर्वेक्षण किया। आइए अब हम कशेरुकियों के विशिष्ट वर्गों में हॉर्मोन स्रवण का अध्ययन करें। मगर उससे पूर्व क्यों न निम्नलिखित बोध प्रश्नों को हल करके देखा जाए!

बोध प्रश्न 2

बताइए कि निम्न कथन सही हैं या गलत:-

(i) थाइरॉइड की व्युत्पत्ति एक्टोडर्म से होती है तथा यह ग्रसनी के फ़र्श पर एक अयुग्मित मध्यक बहिर्वलन के रूप में बनता है। स/ग

(ii) थाइरॉक्सिन अमीनों अम्ल टाइरोसीन का व्युत्पाद होता है स/ग

(iii) अल्पवयस्क टेडपोलों के थाइरॉइड-उच्छेदन से कायांतरण होने में तीव्रता आ जाती है। स/ग

(iv) स्तनियों में पैराथाइरॉइड ग्रंथियां युग्मित संरचनाएं होती हैं। स/ग

(v) पैराथार्मोन हड्डियों के कैल्सियम को बाहर निकाल कर काम में लाता है तथा कैल्सिटोनिन कैल्सियम के ग्रहण करने एवं हड्डियों में उसके निक्षेपण का नियमन करता है। स/ग

(vi) अग्न्याशय की ऐल्फ़ा कोशिकाओं से एक अल्पग्लूकोसरक्तता लाने वाला हॉर्मोन निकलता है तथा बीटा कोशिकाओं से अतिग्लूकोसरक्तता पैदा करने वाला हॉर्मोन बनता है। स/ग

(vii) एड्रिनल कॉर्टेक्स की व्युत्पत्ति न्यूरोएक्टोडर्म से होती है तथा एड्रिनल मेडुला इंटररीनल मीज़ोडर्मी ऊतक से व्युत्पन्न होता है। स/ग

(viii) कॉर्टिसोल से कार्बोहाइड्रेट तथा प्रोटीन उपापचय का नियमन होता है। स/ग

(ix) जठर के भीतर HCl के स्रवण का नियमन सेक्रेटिन नामक हॉर्मोन के द्वारा होता है। स/ग

(x) सेक्रेटिन तथा कोलेसिस्टोकाइनिन का स्रवण ग्रहणी की म्यूकोसा से होता है। स/ग

(xi) ऐंड्रोजनों का संश्लेषण एवं विमोचन अग्र पिट्यूटरी से बने फ़ॉलिकल स्टिमुलेटिंग हॉर्मोन के नियंत्रण में होता है। स/ग

(xii) एस्ट्रोजन, प्रोजेस्टटोन तथा रिलैक्सिन तीनो ही अण्डाशय में बने स्टेरॉइड हॉर्मोन होते हैं। स/ग

12.3 एग्नैथा

एग्नैथनों में पिट्यूटरी तथा एड्रिनल मौजूद होते हैं और अंतःस्रावी ग्रंथियों के रूप में कार्य करते हैं। लेम्प्रे (चित्र 12.11) में पिट्यूटरी का स्थान हाइपोफ़ाइसिस के नीचे की ओर होता है और उसी के साथ चिपका और दबा हुआ रहता है। जान पड़ता है कि इन प्राणियों में हाइपोथैलैमो-हाइपोफ़िसियल निवाहिका तंत्र मौजूद नहीं होता, (अन्यथा यह तंत्र हाइपोथैलेमस तथा हाइपोफ़िसिस के बीच एक तंत्रिका-वाहिकीय योजक-कड़ी होता है)। लेम्प्रे में पिट्यूटरी अनिवार्यतः स्वतंत्र रूप में कार्य करती है। पिट्यूटरी में मध्यक उत्कर्ष नहीं होता मगर इनफंडिबुलर फ़र्श का एक पश्च स्थूलन, एक तंत्रिकीय पालि जिसे पार्स नर्वोसा कहते हैं; का रूप ले लेता है और यह संरचना उच्चतर कशेरुकियों की तंत्रिका पालि के समान होती है। पिट्यूटरी की तंत्रिका पालि जिसे न्यूरोहाइपोफ़िसिस कहते हैं (चित्र 12.10) में एक हॉर्मोन होता है जिसका काम शरीर के भीतर जल की मात्रा का नियमन करना होता है। आर्जिनीन वैसोटोसिन नामक हार्मोन मस्तिष्क के दृक्-पालिपूर्व केंद्र में बनकर ऐक्सानों में से आता हुआ तंत्रिका पालि में संग्रहित हो जाता है। इस प्रकार लैम्प्रे के

पिट्यूटरी में ऐसे अनेक मुख्य लक्षण पाए जाते हैं जो उच्चतर कशेरुकियों में होते हैं हालांकि हो सकता है कि इससे उन सब के सब हॉर्मोनों का स्रवण न भी होता हो जो उच्चतर कशेरुकियों में होते है। इनमें नियंत्रण प्रणाली भी सरल ही होती जान पड़ती है। पिट्यूटरी का नियमन हाइपोथैलेमसी नियामक कारकों द्वारा न होकर अन्य ऊतकों से होने वाले फ़ीड-बैक द्वारा होता है।

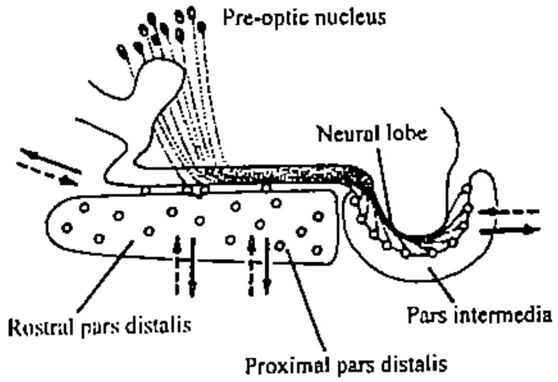

चित्र 12.10 : लैम्प्रे की पिट्यूटरी।

पिट्यूटरी के ग्रंथीय भाग ऐडीनोहाइपोफ़िसिस में तीन स्पष्ट क्षेत्र होते दिखायी पड़ते हैं। एक तो रॉस्ट्रल (rostral) क्षेत्र होता है, और दूसरा पार्स डिसटैलिस का समीपस्थ क्षेत्र, और ये दोनों क्षेत्र तीसरे पश्च क्षेत्र जिसे पार्स इंटरमीडिया कहते हैं, से एक संयोजी ऊतक द्वारा पृथक हुए रहते हैं। पाया गया है कि अन्य कशेरुकियों की ही तरह इनके पार्स इंटरमीडिया से मेलानोसाइट स्टिमुलेटिंग हॉर्मोन (MSH) निकलता है और यह हॉर्मोन हाइपोथैलेमस के माध्यम से पिनियल नेत्र द्वारा नियंत्रित जान पड़ता है। हाइपोफ़िसिस के निकाल देने पर न तो गैमीट (युग्मक) बन पाते हैं और न ही द्वितीयक लैंगिक लक्षण विकसित होते हैं जिससे लगता है कि गोनेडोट्रोपिक हार्मोनों का स्रोत पिट्यूटरी ही है। समीपस्थ पार्स डिसटैलिस की क्षारकरागी कोशिकाओं से गोनेडोट्रोपिक हॉर्मोन निकलते हैं। समीपस्थ पार्स डिसटेलिस की अम्लरागी कोशिकाओं से एक कॉर्टिकोट्रोपिक हॉर्मोन निकलता है। पार्स डिसटेलिस के रॉस्ट्रल भागों पर स्थित क्षारकरागी कोशिकाओं में कायांतरण के समय प्रचुरोद्भवन होता है मगर थाइरोट्रॉपिन के मौजूद होने का कोई प्रमाण नहीं जान पड़ता और कायांतरण का होना थाइरॉइड ग्रंथि के नियंत्रण में नहीं होता जान पड़ता।

लैम्प्रे में संहत एड्रिनल ग्रंथियां नहीं होती, मगर ऐसी कोशिकाएं ज़रूर होती हैं जो उच्चतर कशेरुकियों के कॉर्टिकल एवं मेडुलरी भागों की प्रतिदर्श हैं। अंतरारीनल कॉर्टिकल कोशिकाएं एक समूह के रूप में प्रोनेफ्रॉस क्षेत्र में ठीक कार्डिनल शिराओं के नीचे स्थित होती हैं। फिर भी ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता कि इनसे कोई स्टेरॉइड हॉर्मोन निकलते होंगे और न ही ऐसे कोई हॉर्मोन रक्त में पाए जाते हैं। सुप्रारीनल मेडुलरी कोशिकाएं जो क्रोमैफ़िन कोशिकाओं के रूप में होती हैं हृदय की एवं बड़ी रक्त वाहिकाओं की दीवारों में पायी जाती हैं। इन कोशिकाओं से कैटेकोलैमीनों के मौजूद होने के स्पष्ट संकेत मिलते हैं। एड्रिनलीन तथा नॉर-एड्रिनलीन को हृदय के ऊतकों में मौजूद पाया गया है।

12.4 मछलियां

12.4.1 इलास्मोब्रैंक मछलियां

पिट्यूटरी

इलास्मोब्रैंकों में पिट्यूटरी के तीनों सामान्य भाग यानि पार्स डिसटैलिस (अग्र), पार्स

इंटरमीडिया तथा न्यूरोहाइपोफ़िसिस मौजूद होते हैं। इनके अतिरिक्त पिट्यूटरी में एक अधर पालि भी होती है जो अंशत: पृथक होती है (चित्र 12.11)। समझा जाता है कि अधर पालि अग्र पिट्यूटरी का भाग है जिसके भीतर एक गोनेडोट्रॉपिन तथा एक थाइरोट्रॉपिन् होता है। अधर पालि को काट कर बाहर निकाल देने पर डॉगफ़िश में गोनडों का अपविकास हो जाता है। ऐडीनोहाइपोफ़िसिस के बारे में मालूम है कि इसमें लैक्टोट्रॉपिक हॉर्मोन तथा एड्रिनोकॉर्टिकोट्रॉपिक हॉर्मोन होते हैं। न्यूरोइंटरमीडिया में न्यूरोहाइपोफ़िसियल पथ से आए हुए बहुत से तंतु पहुंचते हैं। इस क्षेत्र के भीतर मेलानोफ़ोर-स्टिमुलेटिंग हॉर्मोन (MSH) होता है। आर्जिनीन वैसोटोसिन जिसके द्वारा जल उपापचय का नियमन होता है, भी मौजूद पाया गया है। इनके अलावा तीन न्यूरल ऑक्टापेप्टाइड भी पाए गए हैं जिनके कार्य के बारे में कुछ मालूम नहीं हैं।

पिट्यूटरी का नियमन मध्य उत्कर्ष में से होकर गुज़रने वाले एक निवाहिका तंत्र (चित्र 12.11) के माध्यम से हाइपोथैलेमस के द्वारा होता है। मगर निवाहिका तंत्र पिट्यूटरी की अधर पालि में नहीं पहुंचता है। ऐसा माना जाता है कि अधर पालि का नियमन पार्स डिसटैलिस में स्थित एक रिले के द्वारा दैहिक रक्त धारा के माध्यम से होता है। इलास्मोब्रैंकों में पार्स डिसटैलिस का कोई सीधा तंत्रिकायन नहीं होता, जो कि टिलियॉस्टों में पाया जाता है।

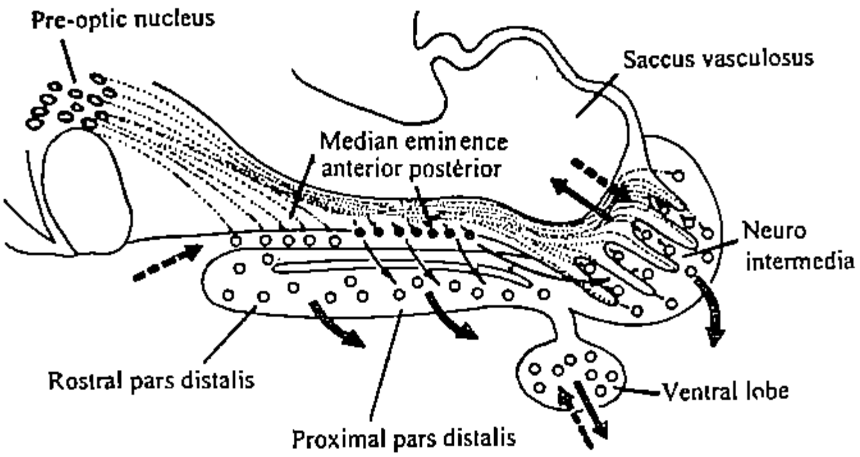

चित्र 12.11 : सिलैकियन पिट्यूटरी, ठोस तीर शिरा को, खण्डित तीर धमनियों एवं बारीक तीर पोर्टल शिराओं को दर्शाते है।

थाइरॉइड तथा पैराथाइरॉइड

इलास्मोब्रैंकों में थाइरॉइड ग्रसनी के फ़र्श से एक अधोवृद्धि के रूप में निकलता है। यह ग्रसनी के फ़र्श से एक संकरे वृंत के द्वारा जिसमें एक सिलियायुक्त गढ़ा होता है, जुड़ा होता है। इलास्मोब्रैंकों में थाइरॉइड के कार्यों की कोई स्पष्ट जानकारी नहीं है, मगर इस ग्रंथि में कुछ ऐसे आवर्ती परिवर्तन दिखायी पड़ते हैं जिनका संबंध प्रवास एवं जनन से होता जान पड़ता है। डॉगफ़िशों में थाइरॉइड को बाहर निकाल देने पर अण्डों में पीतक का निक्षेपण नहीं होता।

मछलियों में पैराथाइरॉइड नहीं होते। अल्टीमोब्रैंकियल ग्रंथियां नामक पुटकीय संरचनाएं कैल्सिटोनिन अर्थात् वह हॉर्मोन जिससे कैल्सियम उपापचय का नियमन होता है, बनाती पायी गयी हैं।

एड्रिनल

इलास्मोब्रैंकों में, स्तनियों से भिन्न, एड्रिनल ग्रंथियों के कॉर्टेक्स एवं मेडुला भाग एक दूसरे

से काफ़ी हटकर होते हैं। मेडुलरी ऊतक के अनुरूप भाग को सुप्रारीनल पिंड (suprarenal body) कहते हैं। ये शृंखलाबद्ध खण्डीय ग्रंथियां होती हैं जो पश्च कार्डिनल साइनस की पृष्ठ दीवारों में प्रवेशित होते है। अग्रतर ग्रंथियां परस्पर समेकित होकर ग्रसनी के दाएं-बाएं एक लम्बी संरचना बन जाती हैं। इन संरचनाओं में नॉर-एड्रिनलीन की भरपूर मात्रा पायी गयी है। सुप्रारीनल पिंडों की खण्डीय शृंखला समूचे उदर में चलती जाती है और अधिक पश्च सिरे पर ये वृक्क-ऊतक में दबे होते हैं (चित्र 12.12)। पश्च रीनल पिंड जो मादाओं की अपेक्षा नरों में ज़्यादा बड़े होते हैं, एड्रिनलीन के लिए साकारात्मक रूप में रंजित हो जाते हैं।

अंतरारीनल पिंड जो गुर्दे के क्षेत्र म स्थित होते हैं उस क्षेत्र के प्रतिदर्श हैं जो एड्रिनल कॉर्टेक्स के अनुरूप होता है। कुछ स्पीशीज़ में ये अयुग्मित होते तथा मध्य-स्थित होते हैं जब कि अन्य में ये युग्मित होते हैं। अंतरारीनल पिंड किसी भी तरह सुप्रारीनल पिंडों से संबंधित नहीं होते और ऐसा जान पड़ता है कि इलास्मोब्रैंकों में इन दो पिंडों का कार्य परस्पर निर्भर नहीं है। यह ग्रंथि तनाव-दशा (स्ट्रेस) अथवा स्तनीय ACTH द्वारा उद्दीपित होती है। अंतरारीनल पिंडों को यदि निकाल दिया जाए तो जीव मर जाता है और यदि उसमें इस ऊतक के निकर्षण (extract) पहुंचा दिए जाएं तो जीव का जीवन लम्बा हो जाता है। अंतरारीनल पिंडों के स्रावों से प्राणी के कार्बोहाइड्रेट उपापचय एवं गोनडों की सक्रियता का नियमन होता है। प्रकटत: ऐसा लगता है कि इलेक्ट्रोलाइटों (जल अपघट्यों) के संतुलन में इनकी कोई भूमिका नहीं है। अंतरारीनल पिंडों से स्रवित स्टेरॉइड 1-α-हाइड्रोक्सीकॉर्टिकोस्टेरोन होता है तथा ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता कि एल्डोस्टेरोन का स्रवण होता हो।

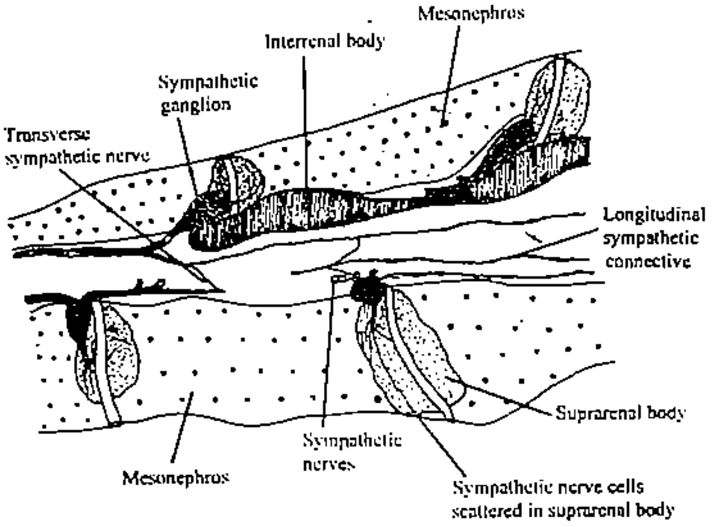

चित्र 12.12 : डॉगफिश के पिछले मेज़ोनेफिक भाग में सुप्रारीनल एवं अंतरारीनल काया।

पैंक्रियाज़

इलास्मोब्रैंकों में पैंक्रियाज़ उस तरह द्वीपिकाओं के रूप में नहीं पाया जाता जैसा कि स्तनियों में होता है बल्कि कुछ वाहिनियों की बाहरी परत के रूप में पाया जाता है। इलास्मोब्रैंकों के पैंक्रियाज़ से इंसुलिन तथा ग्लूकैगॉन दोनों का स्रवण होता है।

गोनड

स्तनियों की तरह इलास्मोब्रैंकों में भी गोनडों में अंत:स्रावी ऊतक होता है जिसमें स्टेरॉइड हॉर्मोन बनते हैं। वृषण की अंतराली कोशिकाओं से टेस्टोस्टेरोन, ऐंड्रोस्टेन्डाइओन तथा प्रोजेस्टरोन का स्रवण होता है। इसी प्रकार अण्डाशय में प्रोजेस्टरोन का बनना पाया गया है।

12.4.2 अस्थिल मछलियां

पिट्यूटरी

अन्य कशेरुकियों की तरह अस्थिल मछलियों में भी पिट्यूटरी में दो क्षेत्र पाए जाते हैं- ऐडीनोहाइपोफ़िसिस तथा न्यूरोहाइपोफ़िसिस। ऐडीनोहाइपोफ़िसिस वाला भाग न्यूरोहाइपोफ़िसिस को घेरे रहता और उसके साथ अंतरांगुलिक रूप में सदा गुथा रहता है। इसमें तीन विभाजन पार्स रॉस्ट्रल डिस्टैलिस तथा पार्स प्रॉक्सिमल डिस्टैलिस और पार्स इंटरमीडिया पाए जाते हैं, और इन तीन में का अंतिम विभाजन न्यूरोहाइपोफ़िसिस को घेरे रहता (चित्र 12.13)। रॉस्ट्रल पार्स डिस्टैलिस के भीतर अम्लरागी लैक्टोट्रोप, कॉर्टिकोट्रोप तथा क्षाररागी थाइरोट्रोप होते हैं। पिट्यूटरी को धमनीय रक्त की आपूर्ति करने वाली भीतरी ग्रीवा धमनी (carotid artery) अग्र न्यूरोहाइपोफ़िसिस के भीतर प्राथमिक केशिका जाल बना लेती है। उसके बाद यह आगे की ओर पार्स डिस्टैलिस के क्षेत्र में जारी रहती है जहां यह स्रावी कोशिकाओं के बीच-बीच में कोटरिकाओं (साइनुसाइडों) का एक तंत्र बनाती हुई वहां द्वितीयक केशिका जाल बना लेती है। अस्थिल मछलियों में रक्त आपूर्ति की यह व्यवस्था कशेरुकियों में पायी जाने वाली व्यवस्था के बिलकुल विपरीत है जिनमें छोटी-छोटी केशिकाओं के निवाहिका तंत्र की बजाए लम्बी बाह्य निवाहिका वाहिकाएं पायी जाती हैं।

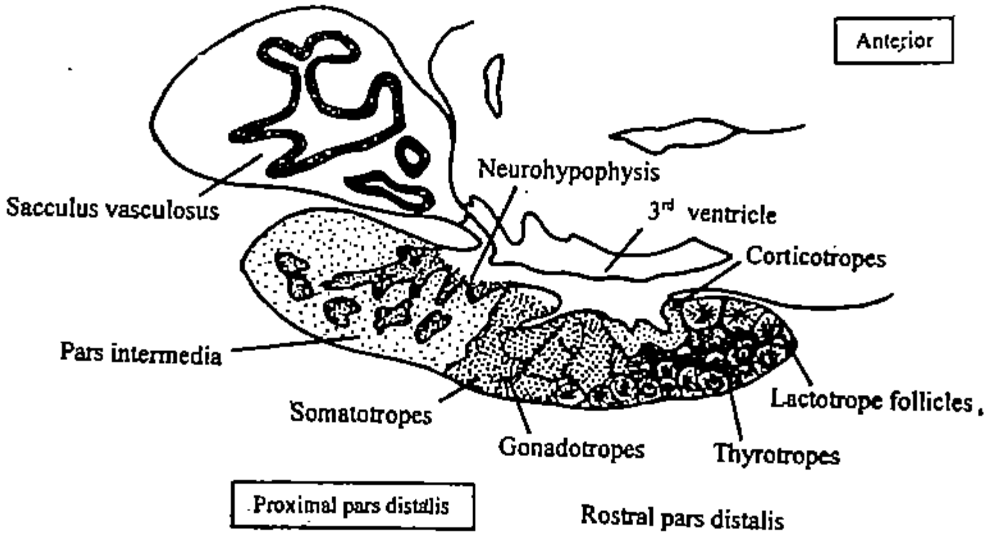

चित्र 12.13 : ईल पिट्यूटरी का मध्य समभितार्धी (सैजाइल) काट।

हाइपोथैलेमस से निकलकर पिट्यूटरी के भीतर जाने वाले तंत्रिका तंतु दो प्रकार के होते हैं A-प्रकार के तंतु और B प्रकार के तंतु। A प्रकार के पेप्टिडर्जिक तंतु न्यूरोहाइपोफ़िसिस की या तो मुख्यत: केशिकाओं के चारों ओर या उसकी कोशिकाओं में पहुंचकर समाप्त होते हैं। B-प्रकार की कोशिकाएं जो मुख्यत: ऐमीनेर्जिक होती हैं आगे पार्स डिसटैलिस की कोशिकाओं में तंत्रिकायन करती हैं। मछलियां कदाचित केवल एक ही गोनेडोट्रोपिन ल्यूटिनाइजिंग हार्मोन (LH) बनाती हैं। मज़ेदार बात है, यदि मछली के गोनेडोट्रोपिन को स्तनियों में इंजेक्ट कर दिया जाए तो उनमें FSH तथा LH दोनों प्रकार के से कुछ प्रभाव पैदा होते हैं जब कि यदि केवल स्तनी LH न कि FSH को मछलियों में इंजेक्ट किया जाए तो उससे गैमीटोजेनेसिस (युग्मकजनन) एवं स्टेरॉइड स्रवण होने लगता है। लैक्टोट्रोपों यानि प्रोलैक्टिन का स्रवण करने वाली कोशिकाओं का नियमन हाइपोथैलेमस द्वारा नहीं होता। इस बात का प्रमाण इस तथ्य से मिलता है कि पिट्यूटरी के लैक्टोट्रोपों को यदि अप्रस्थानिक रूप में (मस्तिष्क से दूर) प्रत्यारोपित कर दिया जाए तो मछली को तनु समुद्री पानी से अलवणजल में स्थानांतरित कर देने पर ये लैक्टोट्रोप सक्रियकृत हो जाती हैं। मछलियों के प्रोलैक्टिन का संबंध परासरणनियमन से है। इसके द्वारा शरीर तथा गिलों की सतह से

सोडियम का विनिमय कम हो जाता है। कुछ मछलियों में प्रोलैक्टिन से गिलों की जल पारगम्यता सुगमित हो जाती है और वृक्क द्वारा जल-उत्सर्जन बढ़ जाता है। जब भी प्रवासी मछलियां समुद्री जल से अलवण जल में जाती हैं तो लैक्टोट्रोपों की क्रियाशीलता बढ़ जाती है और रक्त में प्रोलैक्टिन का अभिमाप बढ़ जाता है।

पार्स इंटरमीडिया में मेलानोफ़ोर-स्टिमुलेटिंग हॉर्मोन बनता है जिसके द्वारा रंग-परिवर्तन का नियमन होता है। पार्स इंटरमीडिया में दो प्रकार की कोशिकाएं होती हैं तथा रंग-परिवर्तन के नियंत्रण के अतिरिक्त इस पालि को कुछ अन्य क्रियाकलापों का नियमन करते हुए भी पाया जाता है जैसे जल और विद्युत् अपघट्यों का संतुलन, रक्त के भीतर कैल्सियम के स्तर और कदाचित जनन का भी।

अस्थिल मछलियों के न्यूरोहाइपोफ़िसिस से निकलने वाले दो ऑक्टेपेप्टाइडों को पहचाना जा चुका है। इनमें से एक है आर्जिनीन वैसोटोसिन और दूसरा है इक्थियोटोसिन (ichthyotocin) या आइसोटोसिन (isotocin) जो ऑक्सीटोसिन का ही एक सजातीय रूप है। ये दोनों ही पेप्टाइड पिट्यूटरी के तंत्रिकास्रावी A तंतुओं से स्रवित होते हैं। लेकिन अस्थिल मछलियों में इनके प्रकार्यों के विषय में कोई जानकारी नहीं है।

थाइरॉइड

थाइरॉइड एक संहत पिंड नहीं होता मगर यह अधर महाधमनी के सहारे-सहारे छितराए हुए ऊतक-समूह के रूप में दिखायी पड़ता है। थाइरॉइड से ट्राइआयोडोथाइरोनीन एवं थाइरॉक्सीन ये दोनों ही हार्मोन स्रवित होते हैं जो स्तनियों में पाए जाने वाले इन हॉर्मोनों के बिल्कुल समान हैं। अस्थिल मछलियों में थाइरॉइड के कार्य अभी तक स्पष्ट नहीं हैं। थाइरॉइड ऊतक शरीर के अनेक भागों में पाए जाते हैं जैसे गुर्दे, हृदय, आंख और अन्य भाग भी और ऐसा ख़ास तौर से उन मछलियों में होता है जिन्हें आयोडीन उपलब्ध नहीं हो पाती। थाइरॉइड की चक्रीय सक्रियता गोनडों के परिपक्वन के साथ-साथ होती है जिसका यह अर्थ हुआ कि जनन-प्रक्रियाओं में थाइरॉइड की भूमिका होनी चाहिए। तथापि, ऐसा नहीं लगता कि अस्थिल मछलियों में श्वसन उपापचय में इसकी कोई भूमिका होगी और न हीं वृद्धि या परासरणनियमन में।

एड्रिनल

अस्थिल मछलियों की एड्रिनल ग्रंथियों के सुप्रारीनल तथा अंतरारीनल ऊतक पश्च कार्डिनल (मुख्य) शिराओं की मोटी हो गयी दीवारों के चारों ओर संहतियां बनाए हुए पाए जाते हैं। अस्थिल मछलियों के एड्रिनल ऊतकों के प्रकार्यों के विषय में अपेक्षाकृत बहुत कम जानकारी है। एड्रिनल ग्रंथियों के निकाल दिए जाने पर अलवण जल में सोडियम की हानि होती है तथा समुद्री जल में रखने पर सोडियम को भीतर लिया जाता है। इन दोनों ही मामलों में प्राणी मर जाते हैं। हालांकि एड्रिनल ऊतकों से अनेक स्टेरॉइड बनते हैं मगर एल्डोस्टेरोन के बनने का कोई प्रमाण नहीं मिलता। गुर्दों की पृष्ठ दिशा पर एक कोशिका-समूह होता जिन्हें स्टैनियस की कणिकाएं (corpuscles of Stannius) कहते हैं, इनसे कोई स्टेरॉइड नहीं बनता मगर हो सकता है कि कैल्सियम-स्तरों के नियमन में इनकी कुछ भागीदारी होती हो।

अल्टीमोब्रैंकियल ग्रंथियां

अस्थिल मछलियों में पैराथाइरॉइड ग्रथियां नहीं होती। उच्चतर कशेरुकियों में पैराथाइरॉइड ग्रंथियों से बनने वाला कैल्सिटोनिन इनमें अल्टीमोब्रैंकियल नामक ग्रंथियां, जो अंतिम गिल-कोष्ठ के फ़र्श से विकसित हुई कोशिकाओं की एक संहति होती हैं, से निकलता है।

अस्थिल मछलियों का कैल्सिटोनिन ऐमीनो अम्ल संघटना की दृष्टि से स्तनियों के कैल्सिटोनिन से बहुत स्पष्टत: भिन्न होता है, और प्रभाव की दृष्टि उसकी अपेक्षा 25 गुना अधिक सक्षम होता है। हालांकि मछलियों में कैल्सिटोनिन का ठीक-ठीक कार्य स्पष्ट नहीं है फिर भी माना जाता है कि यह कैल्सियम परिवहन को सुगम कर देता है।

पैंक्रियाज़

अंत:स्रावी पैंक्रियाज जिसे यहां ब्रोकरमैन पिंड (Brockerman bodies) कहते हैं बहिस्रावी ऊतक से पृथक हुआ रहता है तथा उदर में, प्लीहा (तिल्ली) में और यहां तक कि अण्डाशय में भी बिखरा पाया जाता है। इसकी अलग-अलग विशिष्ट कोशिकाओं से इंसुलिन तथा ग्लूकैगॉन दोनों ही हॉर्मोन बनते हैं।

यूरोफ़ाइसिस

यूरोफ़ाइसिस (Urophysis) (चित्र 12.14) उन स्राव-संहतियों को कहा जाता है जो मेरू रज्जु के अंतिम सिरे पर स्थित तंत्रिकास्रावी कोशिकाओं से बनती हैं। ये कोशिकाएं तंत्रिकास्रावों की संहतियां बनाती हैं। जान पड़ता है कि इन कोशिकाओं का कार्य देह की लवण-मात्रा का नियमन करना होता है। यूरोफ़ाइसिस से कम से कम दो हॉर्मोन तो पृथक किए ही जा चुके हैं- यूरोटेंसिन I तथा यूरोटेंसिन II. । लगता है कि ये हॉर्मोन जीव की कार्यिकी के परासरणनियमन, हृदयवाहिकीय प्रकार्य तथा जनन सहित अनेक पहलुओं का नियमन करते हैं।

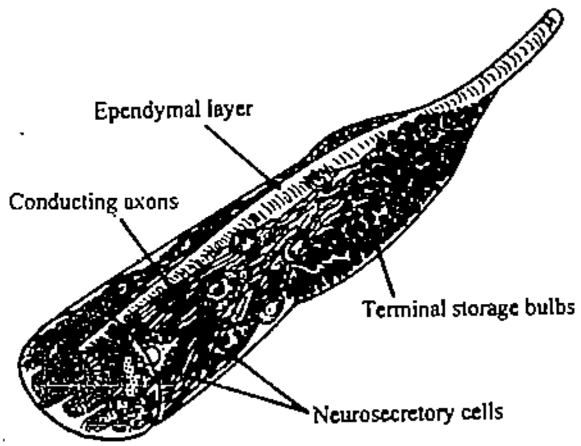

चित्र 12.14 : ईल का यूरोफाइसिस।

बोध प्रश्न 3

निम्न में दिए गए विकल्पों में से सही (एक या अधिक) शब्द चुनिए:-

1. एग्नैथनों में एक हाइपोथैलेमो-हाइपोफिसियल निवाहिका तंत्र जो हाइपोथैलेमस को अग्र पिट्यूटरी से जोड़ता है, **विद्यमान/अविद्यमान** होता है।

2. लैम्प्रे में पिट्यूटरी का नियमन **हाइपोथैलेमिक नियमनकारी कारकों / अन्य ऊतकों से आने वाले फ़ीडबैक** द्वारा होता है।

3. लम्प्रे के पिट्यूटरी में गोनेडोट्रोपिक हॉर्मोन **बनता/नहीं बनता** है।

4. लैम्प्रे तथा स्तनियों में समान प्रकार की संहत एड्रिनल ग्रंथियां होती/नहीं होतीं हैं।

5. इलास्मोब्रैंकों में पिट्यूटरी की पृष्ठ/अधर पालि से एक गोनेडोट्रोपिन तथा एक थाइरोट्रोपिन का स्रवण होता है।

6. इलास्मोब्रैंकों में एड्रिनल कॉर्टेक्स/मेडुला को सुप्रारीनल पिंड कहते हैं।

7. इलास्मोब्रैंकों के इंटररीनल पिंडों से स्रवित होने वाला स्टेरॉइड हॉर्मोन एल्डोस्टेरोन/1-ऐल्फ़ा-हाइड्रॉक्सीकार्टिकोस्टेरोन होता है।

8. अस्थिल मछलियों का मेलानोफ़ोर स्टिमुलेटिंग हॉर्मोन पिट्यूटरी के पार्स डिसटैलिस/पार्स इंटरमीडिया क्षेत्र से स्रवित होता है।

9. अस्थिल मछलियों की थाइरॉइड ग्रंथि गर्दन क्षेत्र में एक संहत पिंड/अधर महाधमनी के सहारे-सहारे ऊतक की बिखरी संहतियों के रूप में पायी जाती है।

10. अलवणजलीय मछलियों में एड्रिनल ग्रंथियों के बाहर निकाल दिए जाने से सोडियम की हानि होती है/अधिक ग्रहण किया जाता है।

12.5 ऐम्फ़िबियन-वर्ग

पिट्यूटरी

ऐम्फ़िबियनों में पिट्यूटरी के तीन मुख्य भाग पार्स डिसटैलिस, पार्स इंटरमीडिया तथा पार्स नर्वोसा स्पष्ट पृथक होते दीखते हैं। पार्स डिसटैलिस में उस प्रकार के उपविभाजन दिखायी नहीं पड़ते जैसे कि मछलियों में होते हैं और वे अन्य चतुष्पादों के समान होते हैं। हाइपोथैलेमस के विमोचनकारी कारक निवाहिका तंत्र के मार्ग से मध्यक उत्कर्ष में से होते हुए निर्मोचित होते हैं और पार्स डिस्टैलिस के स्रावों का नियंत्रण करते हैं। पार्स डिसटैलिस से दो वृद्धि हॉर्मोन निर्मोचित होते हैं- (1) लेक्टोट्रॉपिन (LTP) जो लारवा-वृद्धि का नियंत्रक हॉर्मोन होता है, और (2) सोमैटोट्रॉपिन (STH) जो व्यस्क वृद्धि का नियंत्रण करता है। कायांतरण का नियमन थाइरॉक्सिन द्वारा होता है जिसके स्रवण का नियमन पिट्यूटरी द्वारा स्रवित थाइरोट्रॉपिन (TSH) द्वारा होता है। स्वयं थाइरोट्रॉपिन के स्रवण का नियमन हाइपोथैलेमस के एक विमोचनकारी कारक TRF (थाइरोट्रॉपिक रिलीज़िंग फैक्टर) द्वारा होता है। पार्स डिसटैलिस से ACTH का भी स्रवण होता है और इसके स्रवण का नियमन हाइपोथैलेमसी ACTH-विमोचनकारी कारक द्वारा होता है। पार्स डिसटैलिस से दो गोनैडोट्रोपिन FSH तथा LH भी बनते हैं।

पिट्यूटरी की मध्यक पालि से एक मेलानोफ़ोर स्टिमुलेटिंग हॉर्मोन (MSH) हाइपोथैलेमस के संदमनी नियंत्रण के अधीन निकलता है। मेंढकों तथा टोड़ों में पिट्यूटरी की तंत्रिका पालि से आर्जिनीन वैसोटोसिन तथा मीज़ोटोसिन (mesotocin) निकलते हैं जो त्वचा द्वारा जल-ग्रहण, को बढ़ाते हैं। यूरोडेलों तथा ऐन्यूरनों, इन दोनों में ये हॉर्मोन ग्लोमेरूलस में फ़िल्ट्रेशन को कम करते हैं। इस प्रकार के कार्य जलीय उदाहरणों की अपेक्षा स्थलीय उदाहरणों में अधिक सुव्यक्त होते हैं जिससे लगता है कि इन हॉर्मोनों के विकास ने थल जीवन को सुगमित किया है।

थाइरॉइड तथा पैराथाइरॉइड ग्रंथियां

ऐम्फ़िबियनों में युग्मित थाइरॉइड पाए जाते हैं। ये ग्रंथियां बाह्य युग्ज शिरा (jugular vein) के निकट दाएं-बाएं एक-एक स्थित होते हैं। थाइरॉक्सिन ऐम्फ़िबियनों की वृद्धि और उनके

कायांतरण का नियंत्रण करता है। अल्पवयस्क टैडपोलों में थाइरॉइड-उच्छेदन से वे आजीवन लारवा अवस्था में बने रहते हैं, मगर जब उन्हें थाइरॉइड खिलाया जाता है तब फिर से कायांतरण होने लगता है और वयस्क अवस्था निकल आती है। ऐम्फ़िबियन वयस्कों में ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता कि थाइरॉइड ऑक्सीजन के उपभोग को उत्तेजित करता है।

कशेरुकियों में पैराथाइरॉइडों का प्रकट होना पहली बार ऐम्फ़िबियनों में हुआ है जिनमें ये पैराथॉर्मोन का स्रवण करके खनिज उपापचय के नियमनकर्त्ताओं के रूप में प्रकट हुए। पैराथाइरॉइडों की व्युत्पत्ति ग्रसनी कोष्ठों से हुई है। मेंढ़कों में पैराथाइरॉइड-उच्छेदन से रक्त में कैल्सियम के स्तरों का घट जाना और फ़ॉस्फ़ोरस के स्तरों का बढ़ जाना पाया जाता है। ऐसा माना जाता है कि पैराथाइरॉइडों का विकास मछलियों के गिलों की आयनोसाइट कहे जाने वाली क्लोराइड-स्रावी कोशिकाओं के रूपांतरण से हुआ है। अंतिम ग्रसनी कोष्ठ के फ़र्श से विकसित होने वाले अल्टीमोब्रैंकियल पिंडों से कैल्सिटोनिन का स्राव निकलता है जो पैराथार्मोन के कार्य के विपरीत कार्य करता है। इस हार्मोन का कार्य कैल्सियम को एंडोलिम्फ़ैटिक थैलों में से निकालकर ख़ास तौर से कायांतरण के समय काम में लाना है।

एड्रिनल

ऐम्फ़िबियनों में सुप्रारीनलों का एक्टोडर्मी एड्रिनलीन-स्रावी क्रोमैफ़िन ऊतक स्टेरॉइड-स्रावी मीज़ोडर्मी इंटररीनल ऊतकों से निकट रूप में संबंधित होता है। वास्तव में ऐम्फ़िबियन ही ऐसे प्रथम कशेरुकी हैं जिनमें इस प्रकार का संबंध पाया जाता है। जब कि एक ओर ऐन्यूरनों में एड्रिनल गुर्दों के ऊपर नारंगी रंग की संहतियों के रूप में पाए जाते हैं वहीं दूसरी ओर यूरोडेलों में ये लम्बी फैली श्रृंखलाओं के रूप में होते हैं। ऐम्फ़िबियन एड्रिनलीन की क्रिया स्तनियों में होने वाली क्रिया के समान होती है अर्थात् यह हृदय गति को त्वरित कर देता, रक्त दाब बढ़ा देता और फेंफड़ों को फैला देता है। साथ ही यह अधिग्लूकोस-रक्तता पैदा करता, आंख के प्यूपिलों को चौड़ा कर देता और मेलानोफ़ोरों को संकुचित कर देता है। एड्रिनल कार्टेक्स की भूमिका कार्बोहाइड्रेट उपापचय और साथ ही शरीर में जल-संतुलन में संभवत: होती है परन्तु स्रवित हॉर्मोनों के विषय में अभी विस्तृत जानकारी नहीं हैं।

पैंक्रियाज़

ऐम्फ़िबियनों के पैंक्रियाज़ में बहिस्रावी तथा अंत:स्रावी दोनों प्रकार के ऊतक होते हैं। अंत:स्रावी ऊतक बनाने वाली लैंगरहैन्स-द्वीपिकाओं में एल्फ़ा तथा बीटा दोनों प्रकार की कोशिकाएं होती हैं जिनसे क्रमश: ग्लूकैगॉन तथा इंसुलिन का स्रवण होता है। रक्त शर्करा के स्तरों को गिराने में इंसुलिन की क्रिया तथा इन स्तरों को ऊंचा उठाने में ग्लूकैगॉन की क्रिया को ऐम्फ़िबियनों में भली-भांति दर्शाया जा चुका है।

12.6 रेप्टाइल-वर्ग

पिट्यूटरी

ऐम्फ़िबियनों की ही तरह रेप्टाइलों में भी पिट्यूटरी के वही तीन भाग होते हैं। साथ ही निवाहिका तंत्र भी होता है जो मध्यक उत्कर्ष की केशिकाओं से रक्त को पार्स डिसटैलिस में पहुंचाता है। साथ ही ऐम्फ़िबियनों की ही तरह पार्स डिसटैलिस में भी पांच भिन्न प्रकार की वर्णरागी क़ोशिकाएं होती हैं जिनसे अलग-अलग ट्रॉपिक हॉर्मोन निकलते हैं। ये पांच प्रकार की कोशिकाएं हैं– प्रोलैक्टिन का स्रवण करने वाली लैक्टोट्रॉप, वृद्धि हॉर्मोन का स्रवण

करने वाली सोमैटोट्रॉप, थाइरोट्रॉपिन का स्रवण करने वाली क्षाररागी थाइरोट्रॉप, कॉर्टिकोट्रोपिन स्रवण करने वाली कॉर्टिकोट्रॉप और गोनैडोट्रॉपिनों का स्रवण करने वाली गोनैडोट्रॉप कोशिकाएं।

पार्स इंटरमीडिया, जो कि रंग बदलने वाले रेप्टाइलों में स्पष्टत: अधिक बड़ा होता है, से मेलानोफ़ोर स्टिमुलेटिंग हार्मोन (MSH) का स्रवण होता है। बिलकारी उदाहरणों में यह अंग छोटा होता है। रंग-बदलने की क्रियाविधि गिरगिट तथा *ऐनोलिस* (जिसे अमेरीकी कैमिलिऑन भी कहते हैं) जैसी कुछ छिपकलियों में ख़ास तौर से अधिक विकसित पायी जाती है। रंग का परिवर्तन पर्यावरण के अनुरूप होता है जिससे ये छिपकलियां अपने आप को छिपाए रखती हैं। रंगों का परिवर्तन प्रणय के दौरान अथवा जीव पर आए ख़तरे समय भी होता है। तापमान तथा पर्यावरण में होने वाले परिवर्तन भी ऐसे कारक हैं जिनसे विभिन्न रंग-प्रतिरूप बन जाते हैं। रंग परिवर्तन की कार्यिकी की क्रियाविधि अलग-अलग छिपकलियों में अलग-अलग होती है। *ऐनोलिस* में मेलानोफ़ोरों में तंत्रिकायन नहीं होता है। गहरा रंग हो जाना पिट्यूटरी से निकले MSH के कारण और पीला पड़ जाना एड्रिनलीन के कारण होता है। मगर गिरगटों में रंग-परिवर्तन की क्रियाविधि अनुकम्पी तंत्रिका तंत्र के अधीन होती है। रंग-परिवर्तन का नियंत्रण अधिकतः आंख के माध्यम से होता है, और कदाचित किसी स्थानीय नियंत्रण क्रियाविधि के द्वारा भी, क्योंकि त्वचा के आवरित क्षेत्रों में पीले पड़ जाने की प्रवृत्ति पायी जाती है। रेप्टाइलों में भी अन्य चतुष्पादों की ही तरह दो गोनैडोट्रॉपिन FSH तथा LH स्रवण होते हैं। न्यूरोहाइपोफ़िसिस में आर्जिनीन वैसोटोसिन जो कि मुख्य ऐंटीडाइयूरेटिक (प्रतिमूत्रल) होता है और मीज़ोटोसिन (mesotocin) पाए जाते हैं। ऐसा जान पड़ता है कि न्यूरोहाइपोफ़िसिस में ऑक्सीटोसिन-जैसा हॉर्मोन भी मौजूद होता है क्योंकि इस अंग के निकर्षणों को शिशुप्रज छिपकली *लैसर्टा विविपैरा* (*Lacerta vivipara*) के भीतर इंजेक्ट कर देने पर पाया गया कि अण्डा समय से पूर्व ही बाहर आ जाता है।

थाइरॉइड तथ पैराथाइरॉइड ग्रंथियां

रेप्टाइलों में सुविकसित थाइरॉइड ग्रंथियां होती हैं मगर इनके उपापचयी कार्य की स्पष्ट जानकारी नहीं है। थाइरॉक्सिन (T_4) के इंजेक्शन 30°C पर से ऑक्सीजन की खपत ख़ासी बढ़ जाती है मगर 20°C पर कोई प्रभाव नहीं होता। ऐसा लगता है कि थाइरॉक्सीन की क्रिया उच्चतर तापमान पर ही सर्वाधिक वांछित होती है। थाइरॉइड की भूमिका छिपकलियों तथा सांपों के निर्मोचन, जनन और अंडे देने में होती है।

रेप्टाइलों के पैराथाइरॉइड संरचना की दृष्टि से स्तनियों के पैराथाइरॉइडों के ही समान होते हैं। छिपकलियों में पैराथाइरॉइड-उच्छेदन से उनके रक्त में कैल्सियम स्तर घटकर सामान्य से आधा हो जाता है तथा फ़ॉस्फ़ेट स्तर बढ़ जाता है। पैराथाइरॉइड के न होने पर जंतु अत्यधिक उत्तेजनशील हो जाता है और शारीरिक श्रम के बाद उसमें टिटेनस के जैसी मरोड़ आने लगती है। ऐसे जंतु में पैराथाइरॉइड ग्रंथि के निकर्षणों (extract) के इंजेक्शन से उनमें पुन: सामान्य दशा आ जाती है। रक्त में कैल्सियम के स्तरों के नियमन के वास्ते अनिवार्य रूप में एक निश्चित क्रियाविधि मौजूद होती है मगर उसकी जानकारी स्तनियों के मुकाबले उतनी अच्छी नहीं हैं।

एड्रिनल ग्रंथियां

कछुओं को छोड़कर शेष सभी रेप्टाइलों में एड्रिनल ग्रंथियां गोनडों के बहुत निकट स्थित होती हैं। यह ग्रंथि दो प्रकार के ऊतकों का मिश्रण होती है एक तो स्टेरॉइड स्रावी ऊतक और दूसरा कैटैकोलैमीन स्रावी ऊतक; और ये दोनों ही क्षेत्र बिल्कुल स्पष्टत: अलग-अलग

नहीं होते। जैसा कि स्तनियों में होता है, स्टीरॉइड का स्रवण पिट्यूटरी के नियंत्रण में होता है और हाइपोफाइसिस-उच्छेदन से लगभग सदा ही स्टीरॉइड स्रावी ऊतक में क्षीणता आ जाती है।

थाइमस

रेप्टाइलों में थाइमस ग्रंथियां सुविकसित होती हैं। जैसा कि आप जानते ही हैं, थाइमस ग्रंथियों का शरीर के प्रतिरक्षा प्रकार्यों से निकट का संबंध होता है। रेप्टाइलों में भी उनके शरीर में किसी भी गैर पदार्थ के प्रवेश कराने पर इसकी कोशिकाओं की संख्या में तीव्र वृद्धि होने लगती और ऐंटीबॉडी निर्माण भी होने लगता है। प्राणी में दोबारा से उस गैर पदार्थ के इन्जेक्शन से प्रतिरक्षा अनुक्रिया बढ़ जाती है जिससे ऐसा जान पड़ता है कि इनमें प्रतिरक्षा स्मरण शक्ति (memory) भी होती है। इस प्रकार की अनुक्रियाएं अंशत: थाइमस पर निर्भर होती हैं। अल्प वयस्क रेप्टाइलों में थाइमस-उच्छेदन यानि थाइमस को बाहर निकाल देने पर अनुकूली अनुक्रियाओं की क्षमता घट जाती है।

12.7 पक्षी

पिट्यूटरी

पक्षियों में पिट्यूटरी का पार्स डिसटेलिस मस्तिष्क से दूर होता है। इसमें दो क्षेत्र पाए जाते हैं- कपालीय भाग एवं पुच्छीय भाग। मध्यक उत्कर्ष एक पृथक संरचना होती है और वह दो भागों में विभक्त होती है। अग्र भाग में हाइपोथैलेमो-हाइपोफिसियल पथ के तंतु आते हैं। और पार्स नर्वोसा में पहुंचकर ये तंतु दो हॉर्मोन निकालते हैं- आर्जिनीन वैसोटोसिन तथा मीज़ोटोसिन जो ऑक्सीटोसिन का व्युत्पाद होता है। इन हॉर्मोनों का काम जल-संतुलन, हृदय स्पंदन तथा जनन के नियमन से जुड़ा है। मीज़ोटोनिन रक्त में वसा अम्लों तथा शर्करा को बढ़ाने का भी काम करता है। पिट्यूटरी की दूरस्थ पालि में ये सब हॉर्मोन होते हैं- वृद्धि हॉर्मोन अथवा सोमैटोट्रॉपिन, प्रोलैक्टिन, थाइरोट्रॉपिन, फालिकल स्टिमुलेटिंग हॉर्मोन, ल्यूटिनाइज़िंग हॉर्मोन, ऐड्रीनोकॉर्टिकोट्रॉपिक हॉर्मोन और मेलानोट्रोपिन। इनमे से अंतिम दो हॉर्मोन अन्य कशेरुकियों में पार्स इंटरमीडिया से निकलते हैं। एक ओर जब कि मेलानोट्रोपिन का प्रकार्य स्पष्ट नहीं है वहीं दूसरी ओर शेष हॉर्मोनों का वही कार्य है जो अन्य कशेरुकियों में होता है। प्रोलैक्टिन भ्रूण-कोष्ठों (brood pouches) तथा भ्रूणता को प्रभावित करता है और कबूतरों में यह दोनों लिंगों में दूध के उत्पादन को उत्तेजित करता है।

एड्रिनल ग्रंथियां

एड्रिनलों की कॉर्टिकल तथा मेडुलरी कोशिकाएं अलग-अलग हो सकती हैं अथवा एक-दूसरे के साथ अंतर्ग्रथित हो सकती हैं। पक्षियों में कॉर्टिकोस्टेरोन ही मुख्य कॉर्टिकल हॉर्मोन होता है तथा एल्डोस्टेरोन अल्प मात्रा में स्रवित होता है। समुद्री पक्षियों में एड्रिनल ग्रंथियां बड़ी होती हैं।

थाइरॉइड तथा पैराथाइरॉइड ग्रंथियां

युग्मित थाइरॉइड ग्रंथियों से T_3 तथा T_4 हॉर्मोन निकलते हैं। इन दोनों हॉर्मोनों की उत्पादन-दर स्तनियों की अपेक्षा कहीं ज़्यादा होती है। इसका संबंध पक्षियों के अपेक्षाकृत उच्च देह तापमान और उपापचय से होता है। थाइरॉइड वृद्धि और निर्मोचन का नियंत्रण भी करते हैं और कदाचित प्रवास एवं जनन में भी इनकी भूमिका रहती है। पक्षियों में बड़े पैराथाइरॉइड होते हैं जो पांचवे एवं छठे गिल कोष्ठों से बनते हैं, तथा थाइरॉइड से

सामान्यत: पृथक रहते हैं। पक्षियों का पैराथॉर्मोन एक सक्षम हॉर्मोन है और यह कदाचित अण्डे देने के समय में हड्डियों से कैल्सियम को निकालकर उसे अण्डों के कवच में पहुंचाता है।

पैंक्रियाज़

पक्षियों के पैंक्रियाज़ से भी स्तनियों की ही तरह इंसुलिन तथा ग्लूकैगॉन दोनों ही का स्रवण होता है। ग्लूकैगॉन की अपेक्षा इंसुलिन दस गुना कम मात्रा में बनता है जिसके द्वारा शर्करा यकृत से बाहर आती और रक्त में शर्करा का स्तर बढ़ जाता है। ग्लूकैगॉन एक तीव्र लाइपोलिटिक (वसा अपघटनी) क्रिया को बढ़ाता है। पक्षियों में अनिवार्यत: हॉर्मोनी क्रियाकलाप इनकी उच्च उपापचय मांगों के अनुरूप होते हैं।

बोध प्रश्न 4

अंत:स्रावी ग्रंथि को उससे निकलने वाले हॉर्मोन के साथ मिलाइए।

	अ		ब
क)	पिट्यूटरी का पार्स डिसटैलिस	1)	ट्राइआयोडोथाइरोनीन
ख)	पैराथाइरॉइड	2)	नॉर-एपिनेफ्रीन
ग)	पैंक्रियाज़	3)	ऐंटी-डाइयूरेटिक हॉर्मोन
घ)	एड्रिनल मेडुला	4)	कैल्सिटोनिन
च)	न्यूरोहाइपोफ़िसिस	5)	ग्लूकैगॉन
छ)	थाइरॉइड ग्रंथि	6)	सोमैटोट्रॉपिन

12.8 सारांश

इस इकाई में आपने:

- कशेरुकियों के विभिन्न वर्गों में अंत: स्रावी ग्रंथियों के विषय में पढ़ा। हमने स्तनियों की अंत:स्रावी ग्रंथियों से आरम्भ किया था। स्तनियों में अयुग्मित पिट्यूटरी ग्रंथि के दो मुख्य भाग ऐडीनोहाइपोफ़िसिस तथा न्यूरोहाइपोफ़िसिस होते हैं। ऐडीनोहाइपोफ़िसिस में और आगे दो विभाजन होते हैं पार्स इंटरमीडिया तथा पार्स डिसटैलिस। न्यूरोहाइपोफ़िसिस का तीन भागों में विभेदन हुआ होता है- पार्स नर्वोसा, इनफ़ंडिबुलर वृंत, तथा मध्यक उत्कर्ष। पार्स डिसटैलिस से अनेक ट्रॉपिक (पोषी) हॉर्मोनों का स्रवण होता है जो शरीर के भीतर विभिन्न अंत:स्रावी ग्रंथियों के स्रवण का नियमन करते हैं। पार्स इंटरमीडिया से मेलानोट्रोपिन का स्रवण होता है तथा न्यूरोहाइपोफ़िसिस से दो न्यूरोपेप्टाइड ऑक्सीटोसिन तथा वैसोप्रेसिन निकलते हैं।

- एग्नैथनों में हाइपोथैलेमो-हाइपोफ़िसियल निवाहिका तंत्र नहीं होता तथा पिट्यूटरी हाइपोथैलेमस से स्वतंत्र जान पड़ता है। पार्स इंटरमीडिया से मेलानोफ़ोर- स्टिमुलेटिंग हॉर्मोन निकलता है तथा पिट्यूटरी से गोनैडोट्रॉपिन भी स्रवित होता प्रतीत होता है। इलास्मोब्रैंक मछलियों में अग्र पिट्यूटरी से थाइरोट्रॉपिन और एक गोनैडोट्रॉपिन का स्राव निकलता है। पिट्यूटरी से ही निकलने वाले दो और ट्रॉपिक हॉर्मोन लैक्टोट्रॉपिक हॉर्मोन तथा ACTH हैं। न्यूरोपेप्टाइड आर्जिनीन वैसोटोसिन का स्रवण न्यूरोहाइपोफ़िसिस से होता है। अस्थिल मछलियों के पिट्यूटरी में ऐडीनोहाइपोफ़िसिस तथा न्यूरोहाइपोफ़िसिस होते हैं, और ऐडीनोहाइपोफ़िसिस में तीन भाग पार्स रॉस्ट्रल

डिसटैलिस, पार्स प्रॉक्सिमल डिसटैलिस तथा पार्स इंटरमीडिया होते हैं। लेक्टोट्रॉपिन, कॉर्टिकोट्रॉपिन, तथा थाइरोट्रॉपिन तीन ट्रॉपिक हार्मोन हैं जो रॉस्ट्रल पार्स डिसटैलिस से निकलते हैं। बनने वाला एक मात्र गोनैडोट्रॉपिन ल्यूटिनाइजिंग हॉर्मोन होता है। आर्जिनीन वैसोटोसिन तथा आइसोटोसिन दो न्यूरोपेप्टाइड होते हैं जिनका स्रवण न्यूरोहाइपोफ़िसिस से होता है और इन हॉर्मोनों के कार्य की ठीक ठीक जानकारी नहीं है। ऐम्फ़िबियन पिट्यूटरी में तीन भाग होते हैं- पार्स डिसटैलिस, पार्स इंटरमीडिया और पार्स नर्वोसा। ऐम्फ़िबियन पिट्यूटरी से दो गोनैडोट्रॉपिनों सहित वे सभी ट्रॉपिक हॉर्मोन निकलते हैं जो स्तनी पिट्यूटरी से भी बनते हैं। थाइरोट्रॉपिन और ACTH के स्रवण का नियमन उन्हीं के अनुरूप उन नियमनकारी कारकों द्वारा होता है जो हाइपोथैलेमस से निकलने वाले अनुरूप विमोचनी कारकों से बनते हैं। पिट्यूटरी की तंत्रिका पालि से वैसोटोसिन तथा मीजोटोसिन बनते हैं, ये दोनो हॉर्मोन जल उपापचय का नियमन करने वाले हैं। रेप्टाइलों का पिट्यूटरी संरचना और कार्य की दृष्टि से बहुत कुछ वैसा ही होता है जैसा कि ऐम्फ़िब्यिनों का। पक्षियों में पिट्यूटरी के दो भाग कपालीय तथा पुच्छीय प्रदेश होते हैं। जब कि एक ओर पार्स नर्वोसा से वैसोटोसिन तथा मीज़ोटोसिन जैसे- न्यूरोपेप्टाइड निकलते हैं, पार्स डिसटैलिस से मीलैनोट्रॉपिन तथा ACTH सहित अनेक ट्रॉपिन हॉर्मोन निकलते हैं, और ये दो ऐसे हॉर्मोन हैं जो अन्य कशेरुकियों में पार्स इंटरमीडिया से निकलते हैं।

- थाइरॉइड ग्रंथि, जो कि एक एंडोडर्मी व्युत्पाद होती है, द्वारा टाइरोसीन व्युत्पाद थाइरॉक्सिन का संश्लेषण होकर उसका विमोचन होता है। थाइरॉक्सिन वृद्धि का तथा आकारजनन का नियमन करता है एवं साथ ही साथ ऑक्सीकरणी उपापचय को त्वरित करता है। थाइरॉइड एग्नैथा में मौजूद होता नहीं जान पड़ता, और इलास्मोंब्रैंकों तथा अस्थिल दोनों प्रकार की मछलियों में हालांकि यह मौजूद होता है मगर इसका कार्य ठीक से मालूम नहीं है। ऐम्फ़िबियनों में थाइरॉइड कायांतरण का नियमन करता है। जान पड़ता है कि रेप्टाइलों में उच्चतर तापमान थाइरॉइड सक्रियता को समर्थन देता है। तथा पक्षियों में थाइरॉइड से T_3 तथा T_4 हॉर्मोन निकलते हैं। इन दोनों हॉर्मोनों के उत्पादन की दर स्तनियों की अपेक्षा पक्षियों में अधिक होती है।

- पैराथाइरॉइड ग्रंथियों, जो कि थाइरॉइडों के निकट सम्पर्क में होती हैं, से परस्पर विपरीत क्रिया करने वाले दो हॉर्मोन पैराथॉर्मोन तथा कैल्सिटोनिन निकलते हैं। इन दो हार्मोनों से कैल्सियम तथा फॉस्फेट उपापचय का नियमन होता है। एग्नैथनों में पैराथाइरॉइड अनुपस्थित होते हैं। मछलियों में भी पैराथाइरॉइड नहीं होते लेकिन अंतिम गिल कोष्ठ के फ़र्श से व्युत्पन्न अल्टीब्रैंकियल ग्रंथियों से कैल्सिटोनिन निकलता है जिसका काम कैल्सियम उपापचय का नियमन करना है। ऐम्फ़िबियनों में ग्रसनी कोष्ठों से व्युत्पन्न पैराथाइरॉइड ग्रंथियां रक्त के कैल्सियम स्तरों का नियमन करती जान पड़ती हैं। रेप्टाइलों के पैराथाइरॉइड संरचना की दृष्टि से स्तनियों के पैराथाइरॉइडों के बहुत समान होते हैं और इनके बाहर निकाल देने से इन प्राणियों मे रक्त का कैल्सियम स्तर गिर जाता है। इसके अलावा पैराथाइरॉइड-उच्छेदन से अति उत्तेजनशीलता एवं टिटैनी दशाएं पैदा हो जाती हैं, यदि ऐसे प्राणियों में पैराथाइरॉइडों के निकर्षण (extract) भीतर पहुंचा दिए जाएं तो फिर से सामान्य दशा प्राप्त हो जाती है। रक्त कैल्सियम स्तरों के नियमन के अलावा पक्षियों का पैराथॉर्मोन कैल्सियम का अण्ड के कवचों में निक्षेपण प्रेरित करता है।

- पैंक्रियाज़ अर्थात् अग्नाशय में बाह्यस्रावी तथा अतःस्रावी, दोनों प्रकार के ऊतक पाए जाते है। बाह्यस्रावी ऊतक पाचन एंजाइम का स्रवण करते हैं तथा अतःस्रावी ऊतक

अर्थात् लैंगरहैंस द्वीपिकाएं ग्लूकैगॉन (α कोशिकाओं द्वारा) तथा इंसुलिन (B कोशिकाओं द्वारा) का स्रवण करते है। जबड़ा विहीन मछलियों में अग्नाशय नहीं होता है। अस्थिल मछलियों तथा इलास्मोब्रैंकों में ग्लूकैगॉन तथा इंसुलिन दोनों का स्रवण होता है परन्तु द्वीपिका कोशिकाएं नहीं पायी गई है। ऐम्फिबियनों, रेप्टाइलो तथा पक्षियों के अग्नाशय का कार्य स्तनियों के अग्नाशय के समान ही होता है।

एड्रिनल ग्रंथियां सभी कशेरुकी वर्गों में पायी जाती हैं। इस ग्रंथि को बनाने वाले दो भाग कॉर्टेक्स तथा मेडुला निम्नतर एग्नैथा तथा मछलियों में तो एक दूसरे से अलग-अलग हटे होते हैं, मगर उच्चतर प्राणियो में इन दोनों भागों की कोशिकाएं परस्पर मिली-जुली होती हैं। मीज़ोडर्मी व्युत्पाद कॉर्टेक्स से स्टेरॉइडल हॉर्मोन ग्लूकोकॉर्टिकोस्टेरॉइड तथा मिनेरेलोकॉर्टिकॉइड निकलते हैं। ग्लूकोकार्टिकॉइडों का संबंध कार्बोहाइड्रेट उपापचय से है तथा मिनेरेलोकार्टिकाइडों का संबंध सोडियम एवं पोटैशियम उपापचय से है। एड्रिनल मेडुलरी कॉर्टेक्स से एड्रिनलीन तथा नॉरएड्रिनलीन नामक दो कैटेकोलैमीन निकलते हैं। एड्रिनलीन थोड़ी मात्राओं में वाहिनीविस्फारक के रूप में तथा अधिक मात्राओं में वाहिनीसंकीर्णक के रूप में कार्य करता है। ये दोनों हॉर्मोन हृदय-दर, रक्त आयतन तथा रक्ताणु सांद्रण को बढ़ा देते हैं। एड्रिनलीन भी कार्बोहाइड्रेट उपापचय का नियमन करता है। एग्नैथा में हालांकि कॉर्टिकल कोशिकाओं को प्रोनेफ्रॉस के क्षेत्र में मौजूद पाया गया मगर उसमें से कोई स्टेरॉइड हॉर्मोन का स्रवण पता नहीं चला। क्रोमैफ़िन कोशिकाओं के रूप में पाया जाने वाला मेडुलरी ऊतक हृदय तथा बड़ी रक्त वाहिकाओं की दीवारों में पाया जाता है। कैटैकोलैमीनों को हृदय के ऊतकों में मौजूद पाया गया है। मछलियों में वृक्क प्रदेश में स्थित इंटररीनल पिंड कॉर्टिकल ऊतक के प्रतिदर्श हैं। ये युग्मित भी हो सकते हैं और अयुग्मित भी। कॉर्टिकल कोशिकाओं से स्रवित होने वाला स्टेरॉइड 1-ऐल्फ़ा हाइड्रॉक्सीकार्टिकोस्टेरोन कार्बोहाइड्रेट उपापचय का नियमन करता है मगर खनिज उपापचय का नियमन करने वाले स्टेरॉइड नहीं पाए गए हैं। ऐम्फ़िबियनों में कॉर्टिकल तथा मेडुलरी ऊतक निकट सम्पर्क में बने हुए पाए जाते हैं ठीक उसी तरह जैसे कि उच्चतर कशेरुकियों में। हालांकि ऐम्फ़िबियनों के एड्रिनलों द्वारा स्रवित हॉर्मोनों की विस्तृत जानकारी नहीं है, फिर भी इन ग्रंथियों को कार्बोहाइड्रेट तथा खनिज इन दोनों के उपापचय का नियमन करते पाया गया है।

रेप्टाइलों में एड्रिनल ग्रंथियां स्टेरॉइड-स्रावी एवं कैटेकोलैमीन स्रावी ऊतकों का मिश्रण होती हैं। स्टेरॉइड स्रावी ऊतक, पिट्यूटरी हॉर्मोन के नियंत्रण में होता है। पक्षियों में कॉर्टिकल तथा मेडुलरी ऊतक अलग-अलग हो सकते हैं अथवा साथ-साथ। इनमें कॉर्टिकोस्टेरोन तथा आल्डोस्टेरोन दोनों ही पाए जाते हैं।

अण्डाशय तथा वृषण कशेरुकियों के ऐसे दो अंतःस्रावी केंद्र होते हैं जिनसे जनन-क्रिया का नियमन होता है। वृषण की लीडिग कोशिकाओं से दो नर हॉर्मोनों टेस्टोस्टेरोन तथा ऐंड्रोस्टेरोन का स्रवण होता है। इन ऐंड्रोजनों का संश्लेषण और विमोचन पिट्यूटरी से निकलने वाले इंटरस्टीशियल सेल स्टियुलेटिंग हार्मोन नामक गोनैडोट्रोपिक हॉर्मोन के नियंत्रण में होता है। इसी प्रकार अण्डाशय से एस्ट्रोजन तथा प्रोजेस्टेरोन नामक दो स्टेरॉइडों का संश्लेषण एवं विमोचन होता है और इनके अलावा एक अन्य पेप्टाइड हॉर्मोन रिलैक्सिन निकलता है। विभिन्न एस्ट्रोजन सहायक जनन संरचनाओं और द्वितीयक लैंगिक अंगों के विकास और उनके कार्य करने का नियमन तो करते ही हैं साथ ही जनन-तंत्र की कार्यात्मक दशा बनाए रखते हैं। पिट्यूटरी से निकलने वाले ल्यूटियोट्रोपिक हॉर्मोन के प्रभाव के अंतर्गत स्रवित होने वाला प्रोजेस्टेरोन अण्डाशय से फूटे पुटक, जो कार्पस ल्युटियम का रूप ले लेता है, से

निकलता है। प्रोजेस्टेरोन अण्डाणु के अंत:रोपण के लिए गर्भाशय की दीवार को तैयार करने के साथ-साथ गर्भावस्था को बनाए रखने का काम करता है।

12.9 अंत में कुछ प्रश्न

1. स्तनियों की पिट्यूटरी ग्रंथि की संरचना एवं कार्यों का वर्णन कीजिए।

....

....

....

2. कशेरुकियों के थाइरॉइडों का एक तुलनात्मक वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

....

....

3. निम्नलिखित हॉर्मोनों के कार्यों को संक्षेप में लिखिए:-

   (a) एड्रिनोकॉर्टिकोट्रोपिक हॉर्मोन, (b) पैराथॉर्मोन (c) आल्डोस्टेरोन,

   (d) टेस्टोस्टेरोन, (e) प्रोजेस्टेरोन

....

....

....

....

....

....

4. एड्रिनल कॉर्टेक्स तथा मेडुला की संरचना एवं कार्यों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

....

....

....

12.10 उत्तर

बोध प्रश्न

1. (क) हाइपोफ़िसिस सेरिब्राई (ख) ऐडीनोहाइपोफ़िसिस तथा न्यूरोहाइपोफ़िसिस (ग) पार्स डिसटैलिस तथा पार्स इंटरमीडिया, (घ) पार्स नर्वोसा, इनफंडिबुलर वृंत तथा मध्यक उत्कर्ष, (च) ऑक्सीटोसिन तथा वैसोप्रेसिन

II तालिका 12.1 देखिए

2. i) गलत; ii) सही; iii) गलत; iv) सही;
v) गलत; vi) गलत; vii) गलत; viii) सही;
ix) गलत; x) गलत; xi) गलत xii) गलत

3.1. अविद्यमान

2. अन्य ऊतकों से आने वाले फ़ीड-बैक

3. बनता है

4. नहीं होतीं

5. अधर

6. मेडुला

7. 1-α-हाइड्रोक्सीकॉर्टिकोस्टेरोन

8. पार्स इंटरमीडिया

9. अधर महाधमनी के सहारे-सहारे ऊतक की छितरायी कोशिकाएं

10. हानि होती है

4. क) 6; ख) 4; ग) 5; घ) 2; च) 3; छ) 1

अंत में कुछ प्रश्न

1. देखिए अनुभाग 12.2.1
2. देखिए अनुभाग 12.2.2, 12.4, 12.5, 12.6 तथा 12.7
3. देखिए अनुभाग 12.2.1, 12.2.3, 12.2.5 तथा 12.2.7
4. देखिए अनुभाग 12.2.5

शब्दावली

गुच्छकोष्ठीय (Acinar)- गोल हो गए कक्षों से युक्त।

सुतीक्ष्णता (Acuity)- संवेदी बोध में, विशेषकर देखने और सुनने में अधिक स्पष्टता यानि विभेदन क्षमता।

एड्रिनलीन (Adrenaline)- ऐपिनेफ्रीन

एड्रिनल ग्रंथि (Adrenal gland)- वृक्क से लगी हुई एक अंत:स्रावी ग्रंथि, इसे अधिवृक्क (सुप्रा-रीनल) ग्रंथि भी कहते हैं।

अभिवाही धमनी (Afferent artery)– धमनी जो रक्त को किसी अंग की ओर ले जाती है।

एल्डोस्टेरोन (Aldosterone)- एक एड्रिनल कॉर्टिकोस्टीरॉइड जो वृक्कों द्वारा सोडियम, पोटैशियम तथा जल का नियमन करता है।

ऐमेक्राइन कोशिकाएं (Amacrine cells) रेटिना की विशेष न्यूरॉन कोशिकाएं जो प्रकाशग्राही कोशिकाओं तथा द्विध्रुवी कोशिकाओं के बीच अथवा द्विध्रुवी कोशिकाओं एवं गैंग्लियान कोशिकाओं के बीच आवेगों के संचरण में परस्परक्रिया करती हैं।

ऐम्पुला (Ampulla): कोई भी झिल्लीमय फूला हुआ आशय जैसे कि भीतरी कान की अर्धवृत्त नालों पर पाए जाते हैं।

ऐंड्रोजेन (Androgen): कोई भी हार्मोन जिसमें नरत्वकारी क्रिया पायी जाती है, जैसे कि टेस्टोस्टेरॉन अथवा कोई भी अन्य नर हॉर्मोन।

स्वायत्त (Autonomus): स्वनियंत्रक, बाहरी प्रभाव से स्वतंत्र।

आदिवृक्क वाहिनी (Archinephric duct): आद्यवृक्क (आर्किनेफ्रॉस) अथवा आदिम वृक्क या पुरोवृक्क की संग्राहक वाहिनी।

आदिचापिका (Arcualium): वयस्क कशेरुक का भ्रूणीय, कार्टिलेजी समवृत्ति भाग।

एरियोला (Areola): स्तनियों के स्तनाग्र के इर्द-गिर्द का क्षेत्र जिसे उसके रंग द्वारा स्तनाग्र से पृथक पहचाना जा सकता है।

श्रवण (Auditory): ध्वनि के बोध से संबंधित।

स्वनिलंबित (Autostyle): जबड़ा निलंबन जिसमें जबड़े सीधे मस्तिष्क-कोश से संधि करते हैं।

ऐक्सॉन (Axon): तंत्रिका कोशिका का प्रवर्ध जो आवेग को कोशिका-काय से दूर ले जाता है।

आधार झिल्ली (Basilar membrane): स्तनियों के भीतरी कान की आधारीय झिल्ली जो कॉर्टि-अंगों को सहारा देती तथा कॉक्लिया की नली को दो उपविभाजनों "स्कैला मीडिया" तथा "स्कैला टिम्पैनी" में विभाजित करती है।

द्विपाद (Bipedal): केवल पिछली दो टॉगों से चलने या दौड़ने वाला।

द्विध्रुवी कोशिका (Bipolar cell): एक प्रकार की तंत्रिका कोशिका जिसके दोनों सिरों पर प्रवर्ध होतें हैं।

मस्तिष्क कोश (Brain case): करोटि का वह भाग जिसमें कपालीय गुहाएं होती हैं और जिसके भीतर मस्तिष्क स्थित होता है।

अंध बिंदु (Blind spot): रेटिना का गैर-संवेदी क्षेत्र जिसमें से गैंग्लियान कोशिका के तंत्रिकाक्ष परस्पर जुड़ते और भीतर को मुड़कर दृक् तंत्रिका बनाते हैं।

कशेरुककाय (Centrum): कशेरुक का काय अथवा आधार।

शीर्षीय (Cephalic): शीर्ष से संबंधित।

अनुमस्तिष्क (Cerebellum): कशेरुकी मस्तिष्क का वह भाग जो शरीर की मुद्रास्थिति एवं संतुलन का समन्वय करता है।

प्रमस्तिष्क (Cerebrum): कशेरुकी अग्र मस्तिष्क का मुख्य भाग; दो प्रमस्तिष्क गोलार्ध जो कार्पस कैलोसम से परस्पर जुड़े होते हैं तथा स्तनियों में कशेरुकी मस्तिष्क का सबसे बड़ा भाग बनाते एवं अधिकतर संवेदी आवेगों और प्रेरक अनुक्रियाओं का समाकलन करते हैं।

उपास्थिकपाल (Chondrocranium): करोटि का वह भाग जो एंडोकॉण्ड्रल हड्डी अथवा कार्टिलेज का बना होता है जो मस्तिष्क के नीचे स्थित होता एवं मस्तिष्क को टिकाए रहता है; इसमें समेकित अथवा सहसंबंधित नासीय केप्सूल भी शामिल होते हैं।

कोरॉइड (Choroid): आवरण अथवा झिल्लियों से संबंधित

रक्तक जालक (Choroid plexus): अनेक संवलित रक्तवाहिकीय संरचनाओं में से कोई एक, जो मस्तिष्क के पार्श्व, तीसरे और चौथे निलयों में उभरे हुए रहते हैं और जिनसे मस्तिष्क मेरू तरल बनता है।

क्रोमैफ़िन कोशिकाएं (chromaffin cells) : कोशिकाएं जो क्रोमियम लवणों से अभिरंजित होती हैं, विशषत: अधिवृक्क ग्रंथियों, एड्रिनल मेडुला, परागैंग्लियान तथा ग्रीवा कायों की कोशिकाएं। क्रोमैफ़िन कोशिकाएं तंत्रिका शिखर से व्युत्पन्न हुई होती हैं।

कॉक्लिया (Cochlea): मगरमच्छों, पक्षियों तथा स्तनियों के भीतरी कान का लम्बा और प्राय: कुंडलित भाग जिसके भीतर ध्वनि-ग्राही कोशिकाएं होती हैं।

सीलोम (Coelom): मीज़ोडर्म के भीतर बनने वाली देहगुहा, जब यह मीज़ोडर्म, एंडोडर्म तथा एक्टोडर्म के बीच प्रवास कर चुकी होती हैं।

समयोजी (Commissure): मस्तिष्क अथवा मेरू रज्जु के अनुरूपी अर्धांशों को जोड़ने वाला ऊतक पुंज।

शंकु कोशिकाएं (Cone cells): कशेरुकी रेटिना (दृष्टिपटल) की प्रकाशग्राही कोशिकाएं जो भिन्न तरंगदैर्घ्यों के प्रकाश के प्रति विभेदशील रूप में संवेदी होती है।

कॉर्निया (Cornea): स्थलीय प्राणियों में आंख को बाहर से ढके रहने वाली पारदर्शक परत, क्रिस्टलीय लेन्स के साथ मिलकर यह आंख का जटिल लेन्स बनाती है।

कॉर्पस कैलोसम (Corpus callosum): तंत्रिका रेशों की एक चौड़ी पट्टी जो दाहिने तथा बायें प्रमस्तिष्क गोलार्धों को जोड़ती है।

कार्पस ल्युटियम (Corpus luteum): कशेरुकी अण्डाशय के भीतर एक पीली संहति जो उस अंडाशय फॉलिकल, जिसके परिपक्व होने के बाद और जिसमें से अंडा बाहर निकल चुका है, से बना है, यह प्रोजेस्टेरॉन का स्रवण करता है।

कॉर्टेक्स (Cortex): किसी संरचना अथवा अंग का बाहरी भाग जो ऊपरी ओर बना होता (मेडुला को घेरता होता) है।

क्रिस्टलीय लेन्स (Crystalline lens): आंख का लेन्स, इसे यह नाम कॉर्निया से पृथक पहचान के लिए दिया गया है, चतुष्पादों में कॉर्निया भी लेन्स की तरह कार्य करती है।

प्यालिका (Cupula): रोम कोशिकाओं के समूह के ऊपर बनी एक जिलेटिनी टोपी।

व्यत्यसन (Decussation): तंत्रिका रेशों का एक-दूसरे को काटते आर-पार जाना जो आवेगों को शरीर के एक पार्श्व से दूसरे पार्श्व में अथवा मस्तिष्क में विपरीत पार्श्व पर ले जाते हैं।

शुक्रवाही (Deferent duct, vas deferens): मध्यवृक्क नलिका का वह भाग जो शुक्राणुओं को एपिडिडिमिस से आगे ले जाता है।

द्रुमिका अथवा डेन्ड्राइट (Dendrite): तंत्रिका कोशिका का कोई एक रेशा जो आवेग को कोशिका काय की ओर ले जाता है।

दंतविन्यास (Dentition): दांतों का समुच्चय।

प्रतिध्वनि निर्धारिण (Echolocation): वस्तुओं से परावर्तित प्रतिध्वनियों को अनुभव करके उनके स्थान का पता लगाना।

अपवाही धमनी (Efferent artery): धमनी जो रक्त को किसी संरचना से दूर ले जाती है।

अपवाही वाहिनी (Efferent duct): एक मध्यवृक्क वाहिनी जो शुक्रणुओं को वृषण से दूर ले जाती है।

अंत:स्रावी (Endocrine): भीतर की ओर स्रवण करती ग्रंथि अथवा कोशिका। यह शब्द ऐसी वाहिनीविहीन ग्रंथियों के लिए इस्तेमाल किया जाता है जो रक्त में अथवा लसीका में कोई ऐसा पदार्थ स्रावित करती है जिसका किसी अन्य लक्ष्य अंग अथवा ऊतक पर विशिष्ट प्रभाव होता है।

अंत:कंकाल (Endoskeleton): शरीर के भीतर बना आलम्बी अथवा सुरक्षाकारी ढांचा जो त्वचा के नीचे बना होता है।

एपिडाइडिमिस (Epididymis): अर्थात् अधिवृषण, अधिकतर संवलित नलिका जो वृषण की अपवाहिनियों को मूत्रमार्ग में छोड़ता है, एपिडिडिमिस मध्यवृक्क अथवा वोल्फियन वाहिनी एवं अपवाहिनियों से व्युत्पन्न हुआ होता है।

एपिनेफ्रीन (Epinephrine): स्तनियों के एड्रिनल मेडुला से निकलने वाला हार्मोन जो

ऊतकों में ग्लूकोज़ की उपयोग – मात्रा बढ़ाता है, तथा अन्य कार्य भी करता है, यह नोरएपिनेफ्रीन के मेथाइलीकरण से व्युत्पन्न होता है।

एस्ट्रोजेन्स (Estrogens): मादा स्टीरॉइड सेक्स हार्मोनों का एक समूह जिनमें से एस्ट्राडिऑल सर्वाधिक सामान्य है, यह अपरा तथा अण्डाशय द्वारा संश्लिष्ट होता है। मादा द्वितीयक लैंगिक लक्षणें का प्रकट होना तथा मादा जननांगों का परिपक्वन एवं उनका कार्य करने लग जाना इन्हीं हार्मोनों से होता है।

गवाक्ष (Fenestra): अस्थिल मस्तिष्क कोश में बना छिद्र।

फोसा (Fossa): एक गर्त या गुहा।

गर्तिका (Fovea): एक छोटा गढ़ा; केंद्रिक गर्तिका (फ़ोविया सेंट्रैलिस)।

केंद्रिक गर्तिका (Fovea centralis): कशेरुकी रेटिना का वह क्षेत्र जिसमें केवल शंकु कोशिकाएं होती हैं, जहां उच्च प्रकाश तीव्रता पर सर्वाधिक सुतीक्ष्ण दृष्टि प्राप्त होती है।

मुक्त तंत्रिकांत (Free nerve endings): एक अभिवाही तंत्रिका कोशिका का अंतिम अथवा संवेदी सिरा जो अनाच्छादित रहता है।

रज्जुभ (Funiculus): मेरू रज्जु का कोई सीमांतीय भाग जिसके भीतर वे तंत्रिका रेशे होते हैं जो आवेगों को मेरू रज्जु में ऊपर-नीचे लाते ले जाते हैं। चतुष्पादों में यह सफ़ेद यानि मायलिनित होता है।

गैंग्लियॉन (Ganglion): गुच्छिका कशेरुकियों में तंत्रिका तंत्र के बाहर स्थित तंत्रिका-कोशिकाओं के कोशिका कायों की गांठ जैसी संहति; अकशेरुकियों में केंद्रीय तंत्रिका तंत्र के उत्फूलन भी इन्हीं में आते हैं।

गैंग्लियान कोशिका (Ganglion cell): एक कोशिका प्ररूप जो रेटिना की सबसे बाहरी परत और दृक् तंत्रिका बनाती है।

जननेंद्रिय (Genitalia): लैंगिक अंग, विशेषकर मैथुन अंग, जननांग।

शिश्नमुंड (Glans penis): शिशन का शीर्ष अथवा सिरा।

अर्धशिशन (Hemipenis): सरीसृपों के युग्मित खांचयुक्त अंत:प्रवेशी अंगों में से एक।

उभयलिंगी (Hermaphrodite): एक व्यष्टि जिसमें नर और मादा दोनों प्रकार के अंग होते हैं; उभय लिंगाश्रयी; द्विलिंगी।

विषमदंती (Heterodont): दंतविन्यास जिसमें समस्त मुख में दांतों का सामान्य स्वरूप अलग-अलग होता है।

समदंती (Homodont): दंतविन्यास जिसमें समस्त मुख में दांतों का सामान्य स्वरूप एक समान होता है।

हॉर्मोन (Hormone): शरीर के एक भाग में कोशिकाओं में बना पदार्थ जो शरीर के अन्य भागों की कोशिकाओं में विसर्जित हो जाता अथवा रक्त धारा द्वारा ले जाया जाता है, जहां यह उनकी क्रियाओं का नियमन एवं समन्वय करता है।

हाइपोथैलेमस (Hypothalamus): अग्र मस्तिष्क का एक क्षेत्र, डायनसेफ़ेलॉन का फ़र्श जिसमें आंतरांगी क्रियाकलापों, जल संतुलन, तापमान, नींद, आदि के नियंत्रक केंद्र होते हैं।

हाइपोथैलेमस विमोचनी हॉर्मोन (Hypothalamus releasing hormone): हाइपोथैलेमसी तंत्रिका कोशिकाओं द्वारा अग्र पिट्यूटरी में जहां वे समाप्त होती हैं, स्रावित हार्मोन जो अन्य हार्मोनों के विमोचन को उत्तेजित करता है।

इंकस (Incus): स्तनियों के मध्य कान की एक हड्डी जो जातिइतिहासीय रूप में क्वाड्रेट से व्युत्पन्न हुई होती है।

अंतराली ऊतक (Interstitial tissue): अन्य संरचनाओं अथवा ऊतकों के बीच स्थित ऊतक।

अंतराकशेरुकी पिंड (Intervertebral body): अनुक्रमिक कशेरुक सेंट्रमों के संधि सिरों के बीच पायी जाने वाली कार्टिलेज अथवा संयोजी ऊतक की गद्दी।

अंतराकशेरुकी डिस्क (Intervertebral disc): व्यस्क स्तनियों में तंतुकार्टिलेज की एक गद्दी जिसमें नोटोकार्ड (पृष्ठरज्जु) से व्युत्पन्न एक जेली-जैसा क्रोड होता है और जो अनुक्रमिक कशेरुकी सेंट्रमों के बीच स्थित होती है।

जबड़े (Jaws): हड्डी अथवा कार्टिलेज के कंकाली अवयव जो मुख के अधर सीमांतों को भीतर से मज़बूत बना देते हैं।

वृहद्भगोष्ठ (Labia majora): भग को अगल-बगल से घेरे रहने वाले दो पार्श्व वलन।

लघुभगोष्ठ (Labia minor): भग को अगल-बगल से घेरे रहने वाले बृहद भगोष्ठ की मध्यक सतह पर बने दो छोटे वलय।

अश्रु (Lacrimal): आँसुओं का या आंसु से संबंधित, अश्रु ग्रंथि, अथवा अश्रु वाहिनी।

पार्श्व रेखा (Lateral line): मछलियों अथवा अन्य जलीय कशेरुकियों के शरीर पर बनी रेखा अथवा रेखाएं जिनमें गति का बोध कराने वाले यांत्रिकग्राही होते हैं।

पार्श्व रेखा अंग (Lateral line organs): पार्श्व रेखा में बने यांत्रिक ग्राहियों का सम्मिश्र, न्यूरोमास्ट, न्यूरोमास्ट अंग।

लीडिग कोशिकाएं (Leydig cells): वृषण की अंतराली कोशिकाएं जिनसे टेस्टोस्टेरॉन निकलता है।

बृहत्तंत्रिबंध (Macroglea): न्यूरोग्लीया का तारककोशिका घटक।

मैलियस (Malleus): स्तनियों के मध्य कान की तीन हड्डियों में से एक जो जातिवृत्तीय रूप में निचले जबडे की आर्टिकुलर हड्डी से व्युत्पन्न हुई है, इसे "हैमर" (यानि "हथौड़ा") भी कहा जाता है।

कुहर (Meatus): सरणी अथवा नाल।

यांत्रिकग्राही (Mechanoreceptors): संवेदी इकाई जो गति, दाब, तनाव तथा दबाव जैसे यांत्रिक परिवर्तनों का पता लगाती है।

मेडुला (Medulla): किसी अंग अथवा संरचना का केंद्रीय भाग।

मेलानिन (Melanin): अनेक कशेरुकियों में वर्णक कोशिकाओं के भीतर बनने वाला एक गहरा भूरा वर्णक।

तानिकाएं (Meninges): केंद्रीय तंत्रिका तंत्र को बाहर से ढकने वाली ऊतक चादरें। स्तनियों में ये ड्यूरामेटर, ऐरेक्नॉड तथा पियामेटर होती हैं।

माइक्रोग्लीया (Microglia): छोटी न्यूरोग्लीया कोशिकाएं।

मायेलिन (Myelin): एक वसीय पदार्थ जो केंद्रीय तंत्रिका तंत्र तथा अधिकतर परिधीय तंत्रिकाओं में तंत्रिका कोशिकाओं के तंत्रिकाक्षों को घेरता हुआ एक आच्छद बना लेता है।

नेफ्रोटोम (Nephrotome): मध्यवर्ती मीजोडर्म (मीज़ोमीयर अथवा नेफ्रोमीयर) की संकरी संहति जिससे वृक्क संरचनाएं बनती हैं।

तंत्रिका (Nerve): तंत्रिकाक्षों का पुंज जो केंद्रीय तंत्रिका तंत्र को परिधीय ग्राहियों एवं प्रेरकों से जोड़ता है।

तंत्रिकीय शिखर (Neural crest): विशिष्टतः कशेरुकियों में ही पाए जाने वाली भ्रूणीय कोशिकाएं जो शुरू में तो न्यूरेक्टोडर्म से संबंधित रहतीं मगर बाद में व्यापक रूप में दूर-दूर तक प्रवास कर जाती हैं जहां वे अनेक ऊतकों तथा संरचनाओं जो इस उपफ़ाइलम की विशेष होती हैं के बनने में शामिल होती हैं।

तंत्रिकपाल (Neurocranium): मस्तिष्ककोश का वह भाग जिसके भीतर मस्तिष्क एवं संबद्ध संवेदी केप्सूलों (नासीय, दृक्, श्रवण) के लिए गुहाएं होती हैं।

न्यूरोग्लीया, तंत्रिबंध (Neuroglia): केंद्रीय तंत्रिका तंत्र में संयोजनकारी तथा आलम्बी कोशिकाएं।

तंत्रिका स्रवण (Neurosecretion): तंत्रिका कोशिकाओं से हॉर्मोन जैसे पदार्थों का बनना

अंडावरणी ग्रंथि (Nidamental gland): अंडवाहिनी की कोई भी ऐसी मातृक ग्रंथि जिससे कोई ऐसा पदार्थ निकले जो अंडे अथवा अड़ों के समूह को ऊपर से ढक ले; कवच ग्रंथि।

नोरएपिनेफ्रीन (Norepinephrine): अनुकम्पी तंत्रिका तंत्र की पश्चगैंग्लियॉनी प्रेरक तंत्रिका कोशिकाओं के तंत्रिकाक्ष अंत्य सिरों से निकलने वाला एक तंत्रिकास्राव, जो ऊतकों में ग्लूकोज़ की मात्रा बढ़ा देता है।

अस्थिभवन (Ossification): ऊतक में कैल्सियम निक्षेप की प्रक्रिया।

अस्थियोन (Osteon): अस्थि कोशिकाओं की, एक केंद्रीय नाल जिसमें से होकर रक्त वाहिकाएं एवं तंत्रिकाएं चलती जाती हैं, को घेरते हुए अस्थि आधात्री के साथ संकेंद्रीय वलयों के रूप में अति सुचारू व्यवस्था इसे हैवर्जियन प्रणाली भी कहते हैं।

अंडवाहिनी (Oviduct): नलिका जो अंड कोशिकाओं को गर्भाशय में अथवा शरीर के बाहर को ले जाती है।

मध्यनेत्र (Parietal eye): एक मध्य नेत्र, छिद्र से युक्त जो एक भित्तीय अस्थि से घिरा

होता है। यही मध्य नेत्र पिनियल ग्रंथि बनाता है।

''पार्स रेक्टा'' (Pars recta): कुछ संरचनाओं जैसे कि वृक्क नलिकाओं का सीधा भाग।

पेक्टेन (Pecten): सरीसृप तथा पक्षियों की रेटिना का एक कंघी जैसा प्रवर्ध।

पेरिकॉण्ड्रिन (Perichondrin): कार्टिलेज को घेरता हुआ तंतुकी संयोजी ऊतक का आवरण।

पेरिटोनियमीं नाल (Peritoneal canal): उदरीय सीलोम से बाहर जाने वाली नाल।

पेरिटोनियल कीप (Peritoneal funnel): सीलोम में से निकला एक कीप जैसा छिद्र।

पेरिटोनियम (Peritoneum) : एक झिल्ली जो उदर आतरांग एवं भीतरी उदरभित्ति को ढके होती है।

निवाहिका तंत्र (Portal system): शिरा तंत्र का भाग जो पदार्थों को उनके उत्पादन स्थल से उनके क्रिया स्थल पर ले जाने के लिए विशेषित होता है। निवाहिका तंत्र केशिकाओं से आरंभ होकर केशिकाओं में ही समाप्त होता है।

पैटेजियम (Patagium): त्वचा का फैला हुआ वलन जो वायु पर्णिका अथवा उड्डयन नियंत्रण सतह बनाता है।

चतुष्पादी (Quadrupedal): चारों पैरों पर चलना अथवा दौड़ना।

वृषण जालिका (Rete testis): वृषण से बाहर शुक्राणुओं को ले जाने वाला नलिकाओं का एक शाखामिलनी जाल।

ग्राही (Receptor): त्वचा अथवा संवेदी अंग में संवेदी तंत्रिका का अंतिम सिरा।

शलाकाएं (Rods): कशेरुकी रेटिना में प्रकाशग्राही कोशिकाएं जो धीमे प्रकाश की दशा में कारगर रूप में कार्य करने के लिए विशेषित होता है।

सैकुलस (Sacculus): गोणिका, छोटा कोष्ठ; भीतरी कान के दो में से छोटा थैला।

स्कलेरा (Sclera): आंख का कड़ा बाहरी आवरण।

स्टेपीज़ (Stapes): स्तनियों के मध्य कान की तीन हड्डियों में से एक जो जातिवृत्तीय रूप में काल्युमेला (हायोमैंडिबुला) से व्युत्पन्न हुई है।

अधिवृक्क ग्रंथि (Suprarenal gland): ऐड्रीनल ग्रंथि

T_3 : ट्राइ-आयोडोथाइरोनीन

T_4 : टेट्रा-आयोडोथाइरोनीन

टैपेटम ल्यूसिडम (Tapetum lucidum): (1) रात्रिचर प्राणियों के नेत्रों में पायी जाने वाली एक परावर्ती कोरॉइड; (2) प्रमस्तिष्क की छत अथवा उसके पार्श्व निलयों में बना तंत्रिका दिशा मार्ग।

कर्णपटह (Tympanum): कान का पर्दा अथवा कर्णपटह झिल्ली।

यूट्रिकुलस, दृति (Utriculus) भीतरी कान के दो में से ज़्यादा बड़ा थैला।

कशेरुक (Vertebra): कशेरुकियों में प्रमुख देह-अक्ष बनाने वाली रीढ़ की हड्डी में एक-दूसरे से कसकर जुड़े हुए अनेक अस्थिल अथवा कार्टिलेजी खण्डों में से एक।

ज़ाइगैपोफ़ाइसिस, योजिप्रवर्ध (Zygapophysis) तंत्रिकीय चाप का प्रवर्ध जो सहवर्ती तंत्रिका चाप से संधि करता है।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. The Life of Vertebrates, J.Z. Young (Third Edition) ELBS Oxford University Press.

2. The Veterbrate Body, A.S. Romer and T.S. Parson (Sixth Edition) CBS College Publishing.

3. कॉर्डेटा संरचना एवं उद्विकास, डैनिस जेकब, आशा शर्मा, कुमकुम नन्दचहल (1994) रमेश बुक डिपो, जयपुर।

NOTES

NOTES

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

UGZY -02
प्राणि विविधता-II

खण्ड

4

अनुकूलन तथा व्यवहारात्मक प्रतिरूप

इकाई 13

प्राणि-व्यवहार परिचय 5

इकाई 14

व्यवहार का परिवर्धन 17

इकाई 15

व्यवहार का संगठन 34

इकाई 16

अनुकूली व्यवहार 65

खण्ड 4 अनुकूलन तथा व्यवहारात्मक प्रतिरूप

प्राणि-विविधता पाठ्यक्रम (LSE-09) के खण्ड 4 में हमने आपको अकॉर्डेटों में पाए जाने वाले कुछ व्यवहारात्मक अनुकूलनों एवं प्रतिरूपों से परिचित कराया था। उसमें आपने विविध अनुवर्तनों तथा उन तमाम रोचक विधियों के विषय में जाना था जिनसे अकॉर्डेट अपनी वातावरणीय परिस्थितियों के प्रति अथवा अनुरंजन एवं संगम की आवश्यकताओं के लिए अनुक्रिया करते हैं। कॉर्डेटों में भी विभिन्न प्रकार के व्यवहारों का भण्डार पाया जाता है। प्राणियों को समझने के लिए हमें सर्वप्रथम उनके कार्यात्मक जैविकीय सिद्धांतों को समझना होगा। इस पाठ्यक्रम प्राणि-विविधता -II के पहले तीन खण्डों में कॉर्डेटों के संबंध में इन सिद्धांतों का स्पष्टीकरण किया गया है। अब इस अंतिम खंड में कॉर्डेटों में पाये जाने वाले अनुकूलनों तथा व्यवहारात्मक प्रतिरूपों की चर्चा की गयी है।

प्राणि व्यवहार का अध्ययन हमें इसलिए आकर्षित करता है क्योंकि यह बेहद विविध, तथा अत्यंत रहस्यमयी है और विचित्र लगता है। विदेशज प्राणियों का अपरिचित व्यवहार अक्सर टेलीविज़न के लोकप्रिय कार्यक्रमों का विषय रहता है, मगर परिचित और सामान्य प्राणियों का व्यवहार भी जिज्ञासु व्यक्ति के लिए उतना ही रोचक है। इस प्रकार के व्यवहार को दो सर्वथा भिन्न दृष्टिकोणों से देखा जा सकता है। प्राणी जो कुछ भी करते हैं सीख कर करते हैं या फिर उन्हें क्या करना है उसे वे सहज प्रवृत्ति के रूप में पहले से ही जानते हैं।

परिभाषा के रूप में कह सकते हैं कि व्यवहार वह क्रियाकलाप हैं जिन्हे प्राणी अपने जीवन काल में करते हैं। यह क्रियाकलाप हैं अशन, शिकार पकड़ना, उपयुक्त आवास की तलाश में एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना जहाँ वह रह सकें, प्रजनन कर सकें तथा परभक्षियों से बच सकें। प्राणी अपनी ही स्पीशीज़ के सदस्यों के साथ और अन्य स्पीशीज़ के साथ भी संचार करते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि यह विषय कितना विशाल और व्यापक है। इस खण्ड में इन्ही कुछ पहलुओं को चार इकाइयों में प्रस्तुत किया गया है।

इकाई 13 प्राणि-व्यवहार– परिचय, में जीव विज्ञान की व्यवहारिकी नामक शाखा के विकास का संक्षिप्त इतिहास दिया गया है। इस इकाई में बताया गया है कि प्राणि-व्यवहार का अध्ययन किया जाना क्यों आवश्यक है। इस अध्ययन का शैक्षिक महत्व तो है ही, साथ ही इसके अनेक व्यवहारिक पहलू भी हैं जो हमारे जीवन के लिए बहुत अर्थपूर्ण हैं। व्यवहार के अनेक आधारों जैसे कि शारीरीय एवं कार्यकीय, आनुवंशिक एवं पारिस्थितिक आधारों का संक्षिप्त सर्वेक्षण दिया गया है।

इकाई 14 व्यवहार का परिवर्धन में आप जानेंगे कि प्राणि-व्यवहार के आधारभूत प्रश्न दो वर्गों में विभाजित किए जाते हैं। प्राणी जो भिन्न प्रकार से व्यवहार करते हैं वे ऐसा कैसे करते हैं और क्यों करते हैं? इस इकाई में उन आनुवंशिक तथा पर्यावरण संबंधी आधारों का और अधिक विवेचन किया गया है जिनकी चर्चा हमने पिछली इकाई में की थी। आप जान सकेंगे कि कुछ व्यवहार तो सहज एवं जन्मजात होता है अर्थात् प्रथम बार ही सही-सही किया जाता है। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे अन्य व्यवहार भी हैं जो अधिगम एवं अनुभव के द्वारा किये जाते हैं और रूपांतरित होते रहते हैं।

इकाई 15 व्यवहार का संगठन, में कशेरुकियों मे देखे जाने वाले व्यवहार प्रतिरूपों के स्थापन के लिए जो विविध क्रियाविधियां अति आवश्यक हैं उनका विवेचन किया गया है। इसमें हमने उन जैविक घड़ियों तथा जैविक तालों के महत्व का विवेचन किया है जो दैनिक अथवा वार्षिक आधार पर व्यवहार गठित करते हैं। एक सुविदित एवं अति रोचक तालबद्ध व्यवहार- कशेरुकियों मे प्रवसन है जिसका उदाहरण सहित वर्णन किया गया है। इस इकाई में आप जानेंगे कि कशेरुकी वर्गों में पाया जाने वाला सामाजिक संगठन कीट समाजों से बिल्कुल भिन्न है। सबसे अधिक स्पष्ट अंतर है वंध्य अनुजाति का अभाव एवं जनन व्यष्टियों का उच्च अनुपात होना। कशेरुकी समूहों को समाजों में गठित करने वाले विविध कारकों का स्पष्टीकरण किया गया है। साथ ही हम कुछ सामान्य संचार विधियों पर भी विचार करेंगे और ऐसा करने में कदाचित हम प्राणियों के उन तरीकों के विषय में भी कुछ जान सकेंगे जिनके द्वारा वे अन्य प्राणियों के व्यवहार को प्रभावित करते हैं।

अंतिम **इकाई** 16 अनुकूली व्यवहार, में व्यवहार के चरम कारणों का अथवा किसी विशिष्ट व्यवहार के चयनात्मक लाभ का विवेचन किया गया है। जिन प्राणियों में कुछ खास अनुकूली लक्षण पाए जाते हैं वे उत्तरजीवी बने रहने तथा जनन कर सकने में अधिक सफल होते हैं। व्यवहार के कुछ अतिरोचक एवं

विस्मयकारी उदाहरण भी लिए गए हैं जैसे रंग-व्यवस्था, अनुहरण, जैवदीप्ति, आदि। आप उन कुछ विशेष अनुकूलनों के विषय में भी जान सकेंगे जो आत्म सुरक्षा, संचलन, प्रतिध्वनिनिर्धारण आदि के लिए प्रकट हुए हैं क्योंकि ये ही अनुकूलन प्राणी की अंततः उत्तरजीविता में सहायक होते हैं।

उद्देश्य

इस खण्ड के अध्ययन के बाद आप:

- प्राणि-व्यवहार की परिभाषा दे सकेंगे तथा समझा सकेंगे कि इसका अध्ययन क्यों आवश्यक है,
- जन्मजात और सीखे गए व्यवहार में अंतर कर सकेंगे,
- व्यवहार की नानाविध गठनकारी क्रियाविधियों का वर्णन कर सकेंगे,
- कशेरुकियों में सामाजिक संगठन का उदाहरणों सहित विवेचन कर सकेंगे,
- कशेरुकियों में रंग-व्यवस्था, अनुहरण, जैवदीप्ति, प्रतिध्वनि निर्धारण तथा सुरक्षाकारी व्यवहार का अनुकूली महत्व समझा सकेंगे।

इकाई 13 प्राणि-व्यवहार परिचय

इकाई की रूपरेखा

13.1 प्रस्तावना

उद्देश्य

13.2 व्यवहार

व्यवहार की परिभाषा

प्राणि-व्यवहार के अध्ययन का महत्व

13.3 व्यवहार के आधार

शारीरीय एवं कार्यिकीय आधार

आनुवंशिक आधार

पारिस्थितिकीय आधार

13.4 सारांश

13.5 अंत में कुछ प्रश्न

13.6 उत्तर

13.1 प्रस्तावना

गुफा चित्रकारियों एवं खुदाइयों में मिली प्राचीन कला वस्तुओं से प्रबल संकेत मिलता है कि हमारे प्रागैतिहासिक पूर्वजों की एक आदितम अभिरुचि प्राणियों के व्यवहार के अध्ययन में रही थी। कदाचित इस ओर उनका झुकाव एक तो स्वयं को हानिकारक प्राणियों से बचाने की आवश्यकता हेतु रहा था और दूसरी ओर अपने लिए आहार और खालों को प्राप्त करने के लिए कुछ अन्य जानवरों का शिकार करने हेतु। वे लगातार प्राणियों का और उनके व्यवहार का अध्ययन करते रहे और उन्होंने अपनी आदिम जानकारी को चुनिंदा स्पीशीज़ (प्रजातियों) को पालतू बनाने की दिशा में तथा प्राणियों से अन्य नानाविध लाभ प्राप्त करने में इस्तेमाल किया। जैसे-जैसे मानव को प्राणि-व्यवहार की अधिकाधिक जानकारी मिलती गयी वैसे-वैसे उससे अधिकाधिक लाभ भी मिलते गए और क्योंकि इस दिशा में असीमित संभावनाएं हैं इसलिए इस ओर मानव की ज्ञान-जिज्ञासा उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है।

सजीव प्राणियों को, किसी विशेषज्ञ के दृष्टिकोण से उनके किसी एक खास पहलू को न लेकर वरन् प्राणियों और उनके जीवन को समग्र रूप में समझने के लिए यह अनिवार्य है कि प्राणियों के व्यवहार को जाना जाए। व्यवहार का अर्थ है पर्यावरण से आने वाले संकेतों के प्रति जीव में प्रतिक्रिया का होना। इस प्रकार की समस्त क्रियाओं, जिन्हें सामूहिक रूप में व्यवहार कहा जाता है, का मूलभूत उद्देश्य सबद्ध प्राणियों के अनवरत अस्तित्व बनाए रखने एवं उनको कुशल बनाए रखने में है। अतः व्यवहार को प्राणी के जीवन के अन्य पहलुओं से अलग-थलग करके उसका अध्ययन नहीं किया जा सकता। इसके अध्ययन में विविध विशिष्टताओं, विशेषकर शारीर (अर्थात् शरीर-रचना), कार्यिकी, आनुवंशिकी, और यहां तक कि भौतिक विज्ञानों के सिद्धांतों एवं तकनीकों का भी अनुप्रयोग आवश्यक है।

इस इकाई में सर्वप्रथम आप प्राणि-व्यवहार की परिभाषा एवं इसके अध्ययन के महत्व के विषय में सीखेंगे। साथ ही हम आपको व्यवहार के शारीरीय, कार्यिकीय, आनुवंशिक तथा पारिस्थितिकीय आधारों से भी परिचित कराएंगे। अन्य पहलुओं जैसे कि व्यवहार का परिवर्धन एवं उसकी संघटना का विवेचन आगे आने वाली इकाईयों में किया जाएगा।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- प्राणि-व्यवहार की, वैज्ञानिक शब्दों में परिभाषा दे सकेंगे,
- समझ सकेंगे कि प्राणि-व्यवहार का अध्ययन क्यों आवश्यक है,

- व्यवहार के विकास के आधार का वर्णन कर सकेंगे,
- प्राणि-व्यवहार का पर्यावरण के साथ संबंध बना सकेंगे।

13.2 व्यवहार

सभी जीवधारियों की विशेषता है कि वे क्रियाएं करते हैं और उनकी पहचान उनके विविध प्रकार्यों से होती है। प्राणी को उस समय मृत घोषित कर दिया जाता है जब उसमें विशिष्ट जीवन-संबंधी प्रकार्य होने बंद हो जाते हैं। अत: हम निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि जीवधारी वह अस्मिता है जो प्रकार्यों की बदौलत अस्तित्व में है न कि केवल शरीर के स्वरूप अथवा संरचना के रूप में। अत: स्पष्ट है कि प्राणियों और उनके जीवन को पूरी तरह समझ सकने के लिए उनके व्यवहार का अध्ययन उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि उनका कोई भी अन्य पहलू।

व्यवहार प्राणी के जीवन का एक सर्वाधिक रोचक एवं पेचीदा पहलू है और इसके आयाम अनेक हैं। किसी भी जीव की उत्तरजीविता बहुत हद तक उसके अपने पर्यावरण के साथ, (जिसमें समस्त जीवों के साथ-साथ निर्जीव वस्तुएं भी शामिल हैं), संबंध पर निर्भर होती है। प्रत्येक जीव अपने पर्यावरण में होने वाले परिवर्तनों के प्रति अनुक्रिया करता है। पौधों और प्राणियों की अनुक्रियाओं की प्रकृति मूलत: भिन्न होती है। पौधों में, उदाहरण के लिए आरोही लताओं में स्तम्भ पतले और दुबले होते है, प्रकाश तक पहुंचने के लिए वे वृक्षों के सबलतर स्तम्भों पर लिपटती हुई ऊपर को चढ़ती जाती हैं। ऐसा वे वृद्धि-गतियों (growth movements) द्वारा कर पाती हैं और इस दिशा में होने वाली उनकी अनुक्रिया वापिस उलट नहीं सकती। मगर प्राणियों में अनुक्रिया अलग प्रकार से होती है, पर्यावरण में होने वाले परिवर्तनों के प्रति उनमें होने वाली अनुक्रियाएं व्यवहार कहलाती हैं और वे सक्रिय होने के साथ-साथ परिवर्तनशील होती हैं। जब बाहर धूप में कड़ी गर्मी होती है तब कोई हिरन वृक्ष के नीचे की छाया की तलाश करता रहता है परंतु संध्या तथा सुबह के समय वही हिरन चरने के लिए बाहर आ जाता है। रात्रिचर उलूक अंधेरे में सक्रिय हो जाता है तथा दिन के समय कहीं छिप कर बैठ जाता है। ये दोनों ही अपने-अपने पर्यावरण में होने वाले परिवर्तनों के प्रति अनुक्रिया करते हैं और ये अनुक्रियाएं परिवर्तित हो सकती हैं। जब कभी बाहरी तापमान में अचानक भारी गिरावट आ जाती है तब अनेक पक्षी और स्तनी अपने-अपने परों अथवा समूर (fur) को फुला लेते देखे जाते हैं। इस फुलाने से उनके शरीर को घेरे रखने वाले वायु-आवरण का आयतन बढ़ जाता है जिसके द्वारा शरीर से ऊष्मा हानि रुक जाती है और ये प्राणी गर्म बने रहते हैं। अनेक स्पीशीज़ तीव्र शीत ऋतु में अपने भीतर की ऊर्जा (गर्मी) को बनाए रखने के लिए शीतनिष्क्रियता (hibernation) में चले जाते हैं ताकि उस ऊर्जा (ऊष्मा) जो सामान्य क्रियाकलापों में खर्च होती, को संरक्षित रखा जा सके और सटे-सटे बैठे रहते हैं ताकि गरमाहट बनी रहे और उन्हें आहार ढूँढने अथवा सक्रिय जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ऊर्जा खर्च न करनी पड़े। अपने भौतिक पर्यावरण में होने वाले परिवर्तनों के प्रति प्राणियों की ये स्पष्ट अनुक्रियाएं होती हैं और इनका उद्देश्य प्राणियों की उत्तरजीविता एवं सकुशलता की ओर होता है, अत: इन सबको व्यवहार समझा जाता है। प्राणियों तथा पौधों की अनुक्रियाओं में प्रकटत: अनेक समानताएं जान पड़ती हैं, मगर ये दोनों मूलत: भिन्न हैं। जैसा के पहले ही कहा जा चुका है पौधों की अनुक्रियाएं **निष्क्रिय, धीमी एवं अनुत्क्रमणीय** (passive, slow and irreversible) होती हैं (इन्हें अनुवर्तन, tropism कहते हैं) जब कि प्राणियों की व्यवहारात्मक अनुक्रियाएं सक्रिय एवं उत्क्रमणीय (active and reversible) होती है।

व्यवहार का अध्ययन और भी जटिल हो जाता है क्योंकि हर कोई सजीव प्राणी अपने पर्यावरण के अनेक उद्दीपनों (stimuli) के प्रति एक साथ अनुक्रिया करता है और अन्य अनुक्रियाओं से पृथक किसी एक अकेले उद्दीपन के प्रति अनुक्रिया का अध्ययन करना शायद ही कभी संभव हो।

13.2.1 व्यवहार की परिभाषा

विज्ञान के शब्दों में व्यवहार की परिभाषा कर सकना उतना आसान नहीं है जितना कि अधिकांश लोग समझते हैं, ऐसा इसलिए क्योंकि व्यवहार का अनेक स्तरों पर जैसे कि कार्यिकीय, पारिस्थितिकीय अथवा मनोविज्ञानीय स्तरों पर अध्ययन एवं वर्णन किया जा सकता है। व्यवहार में नानाविध बातें आती हैं जैसे कि हाव-भाव, मुद्राएं, वाक्-स्वर, रंग परिवर्तन, बाल-खड़े होना और यहां तक कि स्तब्ध खड़े रहना भी व्यवहार के ही अंग हैं। अत: व्यवहार एक ऐसा शब्द है जिसका अर्थ बड़ा ही अनेक एवं विविध है

और इसकी परिभाषा इस पर निर्भर है कि इसके अध्ययन तथा वर्णन के विशिष्ट उद्देश्य क्या हैं। **अधिक व्यापक अर्थ में व्यवहार को हॉर्मोनी, तंत्रिकीय एवं पेशीय तंत्रों का मानो एक मिला जुला वाद्य-वृंद स्वर कहा जा सकता है।** मगर हर व्यवहार को "प्राणी जो कुछ भी करता है" के रूप में भी परिभाषित कर सकते हैं। चलना, विश्राम करना, अथवा आहार चबाना व्यवहार के ही कुछ सरलतम स्वरूप हैं। परंतु ज्यादातर व्यवहार अधिक जटिल होते हैं, ख़ास तौर से तब जब उसमें मेधा (intelligence), अधिगम (learning) तथा अनुभव का समावेश हो।

व्यवहार का वर्णन सामान्यत: प्राणी की उन अनुक्रियाओं के शब्दों में किया जाता है जो स्वयं शरीर के भीतर उत्पन्न होने वाले उद्दीपनों अथवा बाहरी पर्यावरण के उद्दीपनों के प्रति होती है। क्योंकि व्यवहारात्मक अनुक्रियाओं को प्राणी के परिवर्तनरत पर्यावरण के प्रति स्वयं को अनुकूलित करने के प्रयास के रूप में लिया जाता है, अत: व्यवहार का एक ही मूलभूत उद्देश्य रह जाता है: उत्तरजीविता यानि अस्तित्व एवं कुशलक्षेम का बना रहना।

13.2.2 प्राणि-व्यवहार के अध्ययन का महत्व

प्राणि-व्यवहार का अध्ययन प्राणि-विज्ञान की अपेक्षाकृत एक नई शाखा के रूप में उदित हुआ है। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक इस विषय को बहुत गंभीरतापूर्वक नहीं लिया जाता था। जैसे-जैसे डार्विन के मतों को स्वीकारा जाने लगा वैसे-वैसे अनुभव किया गया कि प्राकृतिक वरण के परिणामस्वरूप पैदा होने वाले अनुकूलनों की विकास की प्रक्रिया में एक अति महत्वपूर्ण भूमिका रहती है, और यह भी कि प्राणियों के आकारिकीय लक्षणों के साथ-साथ उनके व्यवहार में भी धीरे-धीरे विकास होता गया। प्राणि-व्यवहार की ओर जीवविज्ञानियों का विशेष ध्यान तब गया जब देखा गया कि प्राणी अपने पर्यावरण के प्रति अधिकतर अपने व्यवहार के माध्यम से अनुकूलित होते हैं न कि मात्र संरचनात्मक परिवर्तनों के द्वारा। तब से प्राणि-व्यवहार के अध्ययन में लगातार अधिकाधिक रुचि बढ़ती जाती रही है।

प्राणि-व्यवहार के अध्ययन में परम्परागत तौर पर तीन मुख्य क्षेत्र पहचाने जाते हैं। पहला है **तुलनात्मक मनोविज्ञान (comparative psychology)** जिसमें मानसिक प्रक्रियाओं तथा व्यवहार का अध्ययन आता है। इसमें प्राणी के एवं मानव के व्यवहारों की प्राय: प्रायोगिक परिस्थितियों में तुलना की जाती है और इनका उद्देश्य अधिकतर मानव व्यवहार को ज्यादा बेहतर ढंग से समझ सकने की दिशा में होता है। दूसरा क्षेत्र है **व्यवहारिकी अथवा स्वभाविकी (ethology)** जिसमें प्राणियों के व्यवहार का प्राकृतिक एवं अर्द्धप्राकृतिक अवस्था में अध्ययन किया जाता है। व्यवाहारिकीविज्ञ प्राय: प्रयोगशाला में किए गए प्रेक्षणों की प्राकृतिक परिस्थितियों में लिए गए प्रेक्षणों के साथ तुलना करते हैं। अध्ययन का तीसरा क्षेत्र है **तंत्रिजैविकी (neurobiology)** जो एक प्रकार से व्यवहारिकी तथा तुलनात्मक मनोविज्ञान को एक साथ जोड़ता है, इसमें तंत्रिका तंत्र की शारीरिकी एवं कार्यिकी का अध्ययन आता है। इन तीनों ही अध्ययनों में ढ़ेर सी अवधारणाएं, शब्दावली एवं विधियां आ गयी हैं जिनके विषय में आप अगली इकाई में पढ़ेंगे। किंतु बीसवीं शताब्दी के मध्य से ये तीनों अध्ययन अनेक समान आधारों के कारण, फिर से एक साथ जोड दिए गए हैं। सबसे पहले आइए समझें कि प्राणि-व्यवहार के अध्ययन की आवश्यकता ही क्या है। अनेक प्राणि-प्रजातियों को, खास तौर से पक्षियों और स्तनियों को, आर्थिक लाभ के लिए पालतू बना लिया गया है। हमें उन्हें कुशल-स्वस्थ रखने एवं उनका प्रजनन कराते रहने की चिंता रहती है। पालतू बनाए गए पशुधन से अधिकतम लाभ (दूध, अण्डे, समूर, खाद आदि) तभी प्राप्त किया जा सकता है जब उनका ठीक से प्रबंधन किया जाए और उसके लिए प्राणि-व्यवहार की वैज्ञानिक जानकारी आवश्यक है, और केवल इतना ही नहीं, हो सकता है कि प्राणियों के ऐसे और भी बहुत उपयोग हो जिनकी हम आज कल्पना भी नहीं कर पा रहे हैं।

जैसे-जैसे पर्यावरण संबंधी समस्याओं की ओर हमारी जागरूकता बढ़ती जा रही है, उदाहरणत: भूमण्डलीय ऊष्मायन, ओजोन परत क्षीणता, वनोंन्मूलन, मृदा अपरदन आदि, वैसे-वैसे हमारा ध्यान पारिस्थितिकीय संतुलन बनाए रखने की ओर केंद्रित हो रहा है और यह संतुलन बना रहना बहुत हद तक स्वच्छंद जीवी प्राणियों (वन्य जीवन) द्वारा अदा की जाने वाली महत्वपूर्ण भूमिका पर निर्भर करता है। हम यह भी जानते हैं कि अनेक वन्य जीवन प्रजातियां, विशेषकर पक्षी और स्तनी, अब से पहले विलुप्त हो चुकी है और उनसे भी ज्यादा संख्या अब उनकी है जिन्हें संकटापन्न माना जाता है। इन प्रजातियों के परिरक्षण के लिए और इन्हें विलोप से बचाने हेतु यह नितांत आवश्यक है कि इनके व्यवहार के विषय में बहुत कुछ जाना माना तथा पता लगाया जाए कि उन्हें कितना स्थान चाहिए, वे क्या-क्या और

कितना-कुछ खाती हैं, आदि। इसी तरह यह भी जाना जाए कि उन्हें आश्रय और स्थलावरण आदि भी किस प्रकार के चाहिए। यह सब तभी जाना जा सकता है जब हम इनके व्यवहार का अध्ययन करें।

अक्सर कहते देखा जाता है कि प्राणि-व्यवहार की जानकारी का, स्वयं मानव के व्यवहार को समझने में भी अनुप्रयोग किया जा सकता है। हालांकि अब हमें मालूम है कि प्राणियों के व्यवहार पर किए गए अध्ययनों के द्वारा जो मत बनाए गए हैं उनको यदि मानव व्यवहार पर भी लागू करके देखा जाए तो संभावना है कि हमें गलत निष्कर्ष मिलेंगे फिर भी यह जरूर है कि मानव व्यवहार के अनेक पहलुओं को प्राणि-व्यवहार के अध्ययन के द्वारा एक सीमित दायरे तक निश्चय ही समझा जा सकता है। यही कारण है कि अनेक मनोविज्ञान प्रयोगशालाओं में प्राइमेटों पर अध्ययन किया जा रहा है। प्राणियों पर किए जा रहे प्रयोगों का उद्देश्य मानव व्यवहार की जड़ों को ढूंढना है।

कुछ प्राणी हैं जिन्हें हम पीड़क (pests) मानते हैं। ये जीव हमारे लिए सीधा खतरा हैं, वे हमारे स्वास्थ्य एवं आहार आपूर्ति को भारी हानि पहुंचाते हैं। यदि हमें इन सब पर काबू पाना है तो इनका व्यवहार जानना आवश्यक होगा। इस बात की सही पुष्टि करता हुआ एक बड़ा ही रोचक उदाहरण है। संयुक्त राज्य अमरीका में एक सरकारी अधिकारी ने एक हवाई अड्डे की उड्डयन पट्टियों से पक्षियों को दूर रखने के लिए फिनाइल की गोलियां पर 5000 डॉलर खर्च किए, ये पक्षी अक्सर जेट वायुयानों से टकरा जाया करते थे। उसे नही मालूम था कि पक्षियों में गंध-ज्ञान सुविकसित नहीं होता है और इसलिए इन गोलियों की गंध से पक्षी दूर नही चले गए, सब खर्च बेकार गया।

कुछ एक रोचक तथ्यों की जानकारी हमें हाल में ही मिली है। प्राणियों की कुछ स्पीशीज़ को कुछ विशिष्ट प्राकृतिक आपदाओं जैसे कि भूकम्पों अथवा ज्वालामुखियों के फूटने के पूर्व एक विचित्र एवं असामान्य तरीके से व्यवहार करते देखा गया है। जान पड़ता है कि वे किसी तरह होने वाली आपदा को जान जाते हैं। हममें यह क्षमता नहीं है। यदि भूकम्पों के आने, ज्वालामुखियों के फूटने, भीषण तूफ़ानों तथा भू-स्खलन के आने से पूर्व हम प्राणियों के व्यवहार से अर्थ लगा पाएं तो भविष्य में मानव जीवन की हानि रोक सकने की संभावनाएँ प्रतीत होती हैं।

अतः यह बात समझ में आती है कि प्राणि-व्यवहार का अध्ययन अनेक दृष्टि से एवं विविध कारणों से अति महत्वपूर्ण है।

बोध प्रश्न 1

क) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:

i) अनुकूलनों की दृष्टि से प्राकृतिक परिस्थितियों में व्यवहार के वैज्ञानिक अध्ययन को .... कहते हैं।

ii) .... नामक अध्ययन में मानसिक प्रक्रियाओं तथा व्यवहार का अध्ययन किया जाता है।

iii) समस्त व्यवहार का प्रकट होना प्राणी के .... के प्रति सतत .... के रूप में होता है।

ख) प्राणि-व्यवहार के अध्ययन के मोटे-मोटे उद्देश्य क्या हैं, सूची बनाइए :-

i) ....

ii) ....

iii) ....

iv) ....

iv) ....

13.3 व्यवहार के आधार

इससे पहले के भाग में आपने व्यवहार का एक सामान्य विवरण पढ़ा, उसकी परिभाषा जानी एवं इस अध्ययन के महत्व को समझा। प्राणि-व्यवहार के अध्ययन के दो मार्ग हैं। एक तो कार्यिकीय और दूसरा

सम्पूर्ण प्राणी का अध्ययन। कार्यिकीय का संबंध मुख्यत: इस बात से है कि किसी जटिल व्यवहार के बनने में जैसे कि पक्षियों के गाना गाने में, तंत्रिकाओं, पेशियों और संवेदी अंगों का किस प्रकार समन्वय होता है। जो सम्पूर्ण प्राणी का अध्ययन अपनाते हैं वे उन कारकों का अध्ययन करते हैं जिनसे प्राणी का व्यवहार प्रभावित होता है। उदाहरणत: उनकी रुचि पक्षी के उस पर्यावरण में हो सकती है जिससे पक्षी की गाने की इच्छा होती है अथवा वह आखिर गाता ही क्यों है।

संपूर्ण प्राणी अध्ययन मार्ग का उपयोग मनोवैज्ञानिक और व्यवहारिकीविद दोनों ही करते हैं हालांकि मनोवैज्ञानिक प्राणियों की कुछ स्पीशीज़ की सीख सकने (अधिगम) की क्षमताओं के तुलनात्मक अध्ययन प्रयोगशाला में भी करते हैं। उधर दूसरी ओर व्यवहारिकीविदों का ध्यान प्राणियों के, उनके वन्य आवासों में अनसीखे प्राकृतिक व्यवहार के अध्ययन से अधिक जुड़ा होता है। आज व्यवहारिकीविदों की रुचि वन्य प्राणियों के जीवन में, अधिगम की भूमिका को जानने-समझने में अधिक हो गयी है और मनोवैज्ञानिकों की रुचि प्राणियों में प्राकृतिक उद्दीपनों के प्रति अनुक्रियाओं के अध्ययन में हैं, तथा दोनों ही एक-दूसरे के अनुभवों से सीख रहे हैं। तथापि, कार्यिकीविदों, व्यवहारिकीविदों तथा मनोवैज्ञानिकों इनमें से कोई भी केवल एक ही सूचना स्रोत पर भरोसा कर के यह नहीं समझा सकता कि कोई प्राणी, अपना व्यवहार कैसे करता है और क्यों करता है। इसलिए अब हम उन कारकों को लेंगे जो प्राणी के व्यवहार को एवं इस व्यवहार के भौतिकीय नियंत्रण की क्रियाविधियों को निर्धारित करते हैं। इन्हीं कारकों, प्रक्रियाओं, तथा क्रियाविधियों को ही यहां व्यवहार के "आधार" का नाम दिया गया है। यहां निम्नलिखित आधारों का स्पष्टीकरण किया जाएगा:

1. शारीरीय (Physiological)
2. आनुवंशिक (Genetic)
3. पारिस्थितिकीय (Ecological)

जैसे किसी मशीन के विभिन्न भाग सामूहिक रूप में एकीकृत होकर कार्य करते हैं, उसी प्रकार व्यवहार भी ऊपर बताए गए तमाम कारकों, प्रक्रियाओं तथा क्रियाविधियों का एक मिला जुला एवं अंतिम उत्पाद होता है। इनमें से किसी भी एक कारक को शेष से पृथक नहीं लिया जा सकता क्योंकि तब वह एक भ्रामक अति सरलीकरण होगा। जब भी उनमें से प्रत्येक को अलग-अलग लिया जाता है तब वह विभाजन सुविधा के लिए किया जाता है न कि इसलिए कि वे एक-दूसरे से स्वतंत्र हैं।

13.3.1 शारीरीय एवं कार्यिकीय आधार

जैसा कि इस इकाई में पहले ही कहा जा चुका है व्यवहार का स्पष्टीकरण सामान्यत: प्राणी द्वारा भीतरी एवं बाहरी उद्दीपनों के प्रति होने वाली अनुक्रियाओं के शब्दों में किया जाता है। उदाहरणत: भूख की अनुभूति एक आंतरिक उद्दीपन है और इसके लिए प्राणी आहार की खोज के रूप में अनुक्रिया करता है। सूर्यास्त के समय धीमा प्रकाश एक बाहरी उद्दीपन है और दिवाचर पक्षी उसके प्रति अपने बसेरे-स्थान की तलाश के रूप में अनुक्रिया करते हैं। इस प्रकार किसी भी व्यवहार का आरम्भ उद्दीपन के संवेदग्रहण के रूप में होता है जैसा कि भूख का अनुभव होना या घटती जाती प्रकाश तीव्रता का संवेद ग्रहण।

उद्दीपनों का बोध संवेदग्राहियों की उपस्थिति के कारण संभव होता है, और ये संवेदग्राही विभिन्न स्पीशीज़ में अलग-अलग होते हैं। संवेदग्राही (जिन्हें संवेदी अंग, sense organs कहते हैं) तंत्रिका-तंत्र से सम्पर्क बनाए होते हैं और ये ग्राही उद्दीपनों को प्राप्त करते हैं अर्थात् प्राणी के शरीर के भीतर अथवा बाहर क्या कुछ हो रहा है उस सबको पहचान लेते हैं। ये संवेदग्राही अलग-अलग प्रकार के होते हैं, और इनमें से हर कोई एक अलग विशिष्ट प्रकार के उद्दीपन के प्रति ही संवेदनशील होता है। उदाहरणत: आंखें केवल प्रकाश के लिए संवेदी होती है एवं कान ध्वनि के लिए।

इससे पूर्व इकाई 10 में आप तंत्रिका ऊतक के आधारभूत गुणधर्मों, तथा कशेरुकी तंत्रिका तंत्र की संघटना एवं संवेदी अंगों के विषय में पढ़ चुके हैं। व्यवहार का स्पष्टीकरण तंत्रिका कोशिकाओं के प्रकार्य के रूप में भी किया जा सकता है। व्यवहार के तंत्रिकीय आधार का सरलतम प्रतिरूप कशेरुकी प्रतिवर्त (vertebrate reflex) है। प्रतिवर्त में थोड़ी सी ही तंत्रिका कोशिकाएं होती हैं जो सूचना का संसाधन करती हैं और उससे सदैव एक पूर्वघोषणीय अनुक्रिया ही निकलेगी। जैसे कि हर बार जब भी कोई तेज़ प्रकाश हमारे सामने कौंधता है तब हमारी आंखें स्वत: बंद हो जाती हैं। प्रतिवर्ती एवं अधिक जटिल व्यवहार में अनेक गुणधर्म समान पाए जाते हैं और ये गुणधर्म व्यक्तिगत तंत्रिकोशिकाओं के कार्य करने के परिणाम

1900 के दशक के आरम्भ में चार्ल्स एस शेरिंगटन ने स्तनीय तंत्रिका तंत्र के विभिन्न भागों की कार्यिकी, प्रकार्य एवं विस्तृत शारीर का अध्ययन किया था, एवं उसी ने सहवर्ती तंत्रिकाणुओं के बीच के संयोजन को "सिनैप्स" का नाम दिया था।

होते हैं। जटिल व्यवहार में अनेक प्रतिवर्त शामिल हो सकते हैं। दोनों में प्रसुप्तता पायी जाती है अर्थात् उद्दीपन एवं अनुक्रिया के बीच एक समय का अंतराल होता है। यदि किसी कुत्ते के पैर में सुई चुभोने का एक पीड़ादायी उद्दीपन दिया जाए तब उद्दीपन तथा आकोचन प्रतिवर्त द्वारा टांग को भीतर को सिकोड़ लेने की अनुक्रिया के बीच का प्रसुप्ति काल 60 से 200 m sec. (मिलीसेकंड) होता है। यह विलम्ब इसलिए नहीं होता कि आवेग के संचालन में देर लगती है बल्कि इसलिए कि अंतर्ग्रथनों के बीच प्रेषण में समय लगता है। इसी कारण जटिल व्यवहार में भी प्रसुप्तता दिखायी पड़ती है क्योंकि सूचना को अनेक अंतर्ग्रथनों में से गुज़रना होता है। प्रतिवर्तों से संबंधित उद्दीपन जितना तीव्र होगा प्रसुप्ति काल उतना ही कम होगा। यदि सुई का चुभाया जाना तीव्र है तब टांग का सिकोड़ा जाना भी उतनी ही शीघ्रता से होगा। जब केंद्रीय तंत्रिका तंत्र विभिन्न संवेदी अंगों से आने वाले एवं अलग-अलग समय पर आने वाले उद्दीपनों को परस्पर जोड़ता है और इस प्रक्रिया को संकलन (summation) कहते हैं। हमें मालूम है कि अलग-अलग तंत्रिकोशिकाएँ भी उस उत्तेजन को जोड़ सकती यानि संकलित कर सकतीं हैं जो अलग-अलग समय पर तथा विभिन्न स्थानों से आते हैं। संकलन को प्रतिवर्ती तथा जटिल व्यवहारों दोनों स्तरों पर देखा जा सकता है। शेरिंगटन (हाशिया टिप्पणी देखिए) ने प्रतिवर्तों के स्तर पर संकलन के अनेक उदाहरण दिए हैं। यदि कुत्ते की पीठ के काठी-आकृति वाले भाग में कोई उत्तेजनाकारी उद्दीपन दिया जाए तो खुजलाने का प्रतिवर्त पैदा होता देखा जा सकता है। उसी ओर की पिछली टांगें स्वत: उस क्षेत्र को खुजलाने लग जाती हैं। धीमा उद्दीपन जैसे कि 5-10 बार स्पर्श करने पर हो सकता है कि अनुक्रिया हो ही नहीं परंतु 20 या 30 बार एक के बाद एक जल्दी-जल्दी स्पर्श करने पर खुजलाने का प्रतिवर्त प्रकट हो जाता है। अधिक जटिल व्यवहार में विभिन्न संवेदी अंगो द्वारा प्राप्त हुए विभिन्न प्रकार के उद्दीपनों के बीच संकलन होता है। प्रयोगों से पता चला है कि नर चूहों में दृश्य, स्पर्श तथा घ्राण उद्दीपनों के संयोजित रूप के प्रति लैंगिकत: अनुक्रिया होती है। अल्पायु नर में तब तक अनुक्रिया नहीं होती जब तक कि उस पर कम से कम दो उद्दीपन न पहुंच रहे हों जब कि वयस्क नरों में जिन्हें इससे पूर्व लैंगिक अनुभव हो चुका हो, मात्र एक ही प्रकार के उद्दीपन से अनुक्रिया होने लग जाती है।

मगर अकेले तंत्रिकाणु के अध्ययन एवं सम्पूर्ण प्राणी के अध्ययन में अलग-अलग तकनीकों एवं अलग-अलग संकल्पनाओं की आवश्यकता होती है और प्रतिवर्त शब्दावली का उपयोग करते हुए समस्त व्यवहार-प्रणाली को समझाना हो सकता है कि संभव न हो। आइए, अब हम व्यवहार के आनुवंशिक आधार के विषय में कुछ जानें।

13.3.2 आनुवंशिक आधार

आपको याद होगा कि व्यवहार तंत्रिकाओं, पेशियों, संवेदी अंगों तथा हार्मोनों की एक अति जटिल अन्योन्यक्रिया का परिणाम होता है। जीनों के द्वारा ये सभी प्रभावित हो सकते हैं। जीन ही निर्धारित करते हैं कि जीव किस प्रकार का बनेगा, उसमें जन्म से लेकर वयस्क बनने तक क्या-क्या परिवर्तन होंगे और अन्य जीवों से वह किस प्रकार भिन्न होगा। संक्षेप में कहें तो जीन ही प्रत्येक जीवधारी की प्रकृति तक को निर्धारित करते हैं। अत: हम कह सकते हैं कि व्यवहार का आधार आनुवंशिक होता है क्योंकि जीन ही निर्धारित करते हैं कि प्राणी पर्यावरण के प्रति अनुक्रिया किस प्रकार कर सकता है।

कभी-कभी जीन उस विधि को बहुत विशिष्ट रूप में प्रभावित करते हैं जिससे तंत्रिका तंत्र में वृद्धि होती एवं उसमें संयोजन बनते हैं। उदाहरण के लिए, बुलबुल जो कुछ गा सकती है वह मस्तिष्क की तंत्रिका कोशिकाओं के बीच उचित संयोजनों के बनने का परिणाम होता है, तथा मस्तिष्क की वृद्धि एवं उसकी योजना के लिए आनुवंशिक निर्देश आवश्यक है। अत: हर प्रकार के व्यवहार के परिवर्धन के लिए जीनों का योगदान बहुत महत्वपूर्ण तरीके से होता है।

कभी-कभी जीन स्रावित होने वाले किसी एंजाइम अथवा हार्मोन की मात्रा में अथवा किसी संवेदी अंग की संवेदनशीलता में परिवर्तन करके अधिक परोक्ष एवं अधिक व्यापक प्रभाव पैदा करते हैं। जीन व्यवहार को किस प्रकार प्रभावित करते हैं यह जान सकने में उत्परिवर्तन (म्यूटेशन) एक महत्वपूर्ण साधन प्रदान करते हैं, ये उत्परिवर्तन व्यवहार-प्रतिरूपों को बाधित कर देते है अथवा उन्हें परिवर्तित कर देते हैं। इस दिशा में अधिकतर प्रयोग *ड्रॉसोफ़िला* पर किए गए हैं जिसमें नर मक्खियों में दृष्टि से संबंधित जीन म्यूटैंट (उत्परिवर्ती) उनके देख सकने की क्षमता को प्रभावित करती है। वे उतना अच्छा नहीं देख पाते जितना के सामान्य नर और इसलिए उन्हें मादाओं को ठीक से देख-ढूंढ पाने में कठिनाई होती है। [illegible] म्यूटैंट जीन पंखों की बनावट को काफ़ी बदल देता है जिसके कारण उनमें पंख फड़फड़ाने की क्षमता [illegible]

जाती है जब कि यही क्षमता उनके प्रणय व्यवहार के लिए एक महत्वपूर्ण अंश है। अत: स्पष्ट हो जाता है के ये जीन सामान्य दृष्टि एवं पंखों के स्पंदन को भंग करके प्रणय व्यवहार को प्रभावित करते हैं और इससे म समझ सकते हैं कि व्यवहार पर जीनों का परोक्ष प्रभाव पड़ता है।

नुसंधानों से पता चला है कि कुछ व्यवहार एकल जीन से ही जुड़े होते हैं मगर अधिकतर व्यवहार-प्रतिरूपों में कई-कई जीनों का समावेश होता है और इसे संकरण प्रयोगों द्वारा दर्शाया जा सकता है। एक प्रतिष्ठित प्रयोग में विलियम डिलजर (William Dilger, 1962) ने "लव-बर्ड" (छोटा-सुग्गा) में नीड-निर्माण के आनुवंशिक आधार को प्रदर्शित किया था।

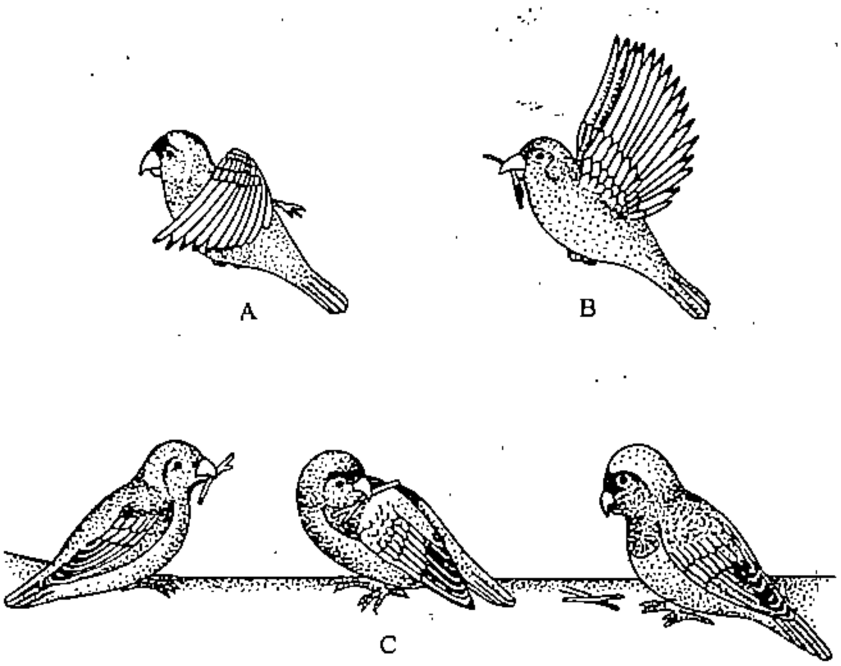

त्र 13.1: ''लव-बर्ड्स'' (सुग्गों) में भ्रमित नीडन-व्यवहार । A- ''पीच फ़ेस्ड लववर्ड'' B-''फिशर लववर्ड'' C- संकर।
(Dilger WC 1962 Scientific America 20 (1) : 88-89 पर आधारित)

पक्षी तोता फ़ैमिली के सदस्य हैं और अपना घोंसला बनाने के लिए ये पौधों की पत्तियों को चीर-चीर र सामग्री बनाते हैं। इनमें से एक जाति जैसे कि फ़िशर "लव बर्डस" इन चिरी पट्टियों को अपनी चोंच पकड़ कर लाते-लेजाते हैं और एक अन्य स्पीशीज़ "पीच-फ़ेस्ड लवबर्डस" इन पट्टियों को अपनी पूंछ परों में दबा कर ले जाती हैं। (चित्र 13.1) इन दो स्पीशीज़ के बीच किए गए प्रसंकरण से जो पक्षी ने वे कैसा भी घोंसला नहीं बना सके क्योंकि वे, घोंसला निर्माण सामग्री को एकत्रित करने की इन दोनों धियों के बीच मिला जुला समझौता कर रहे थे। उन्होने इन पट्टियों को अपनी पूंछ के परों में फंसाने ी कोशिश की मगर या तो वे ऐसा कर ही नहीं पाए या फिर उन्हें ठीक से नहीं फंसा पाए। वे तभी फल हो पाए जब उन्होनें पहले पूंछ में फंसाने की क़ोशिश की पर बाद में पट्टियों को अपनी चोंच में ले ना शुरू किया और कई महीनों के प्रयत्नों के बाद केवल 41% प्रयासों में ही घोंसला बन पाता था। हाँ तक कि ये संकर पक्षी यदि पट्टियों को ले जाना सीख भी गए तब भी वे अपने सर को इस प्रकार माते थे मानो पट्टियों को पीछे फंसाने की कोशिश कर रहे हों।

सा कि पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है किसी भी व्यवहार का आरम्भ उद्दीपनों का बोध होना होता । प्राणी की उद्दीपन बोध-क्षमता उसके संवेदग्राहियों (अर्थात् संवेदी अंगो जैसे कि आंख, नाक, कान ादि) पर तथा आवेग का संचरण प्रेरक-तंत्र की अभिव्यवस्था (डिजाइन) पर निर्भर करता है। प्रत्येक ीशीज़ में अलग-अलग उद्दीपनों के बोध की तथा आवेगों के संचरण की क्षमताएं विभेदनीय होती हैं यानि सी के लिए कम तथा किसी के लिए अधिक। उदाहरण के लिए, हाथी की निगाह कमजोर होती है ार उसमें सुनने और सूंघने का संवेद बहुत तीव्र होता है। मछलियां पानी में देख सकती हैं तथा वे पने विशेष अंगों जिन्हें पार्श्व-रेखा अंग (lateral line organs) कहते हैं, से जल के कम्पनों / तरंगों ा बोध प्राप्त कर सकती हैं। सांपों में बाहरी कान नहीं होते मगर धरती की परतों में से गुज़रने वाली नि तरंगों का वे अपने शरीर की निचली (अधर) सतह से बोध प्राप्त करते हैं। डॉल्फ़िनें तथा मगादड़ें उन पराश्रव्य (ultrasonic) ध्वनि तरंगों को सुन लेते हैं जो कि अन्यथा मानव कानों से नहीं नी जा सकतीं। यह सब भिन्नता अलग-अलग स्पीशीज़ में उनके संवेदग्राहियों (संवेदी अंगों) की मूलभूत

संरचना-व्यवस्था एवं उनके कार्य करने की विधि में पाए जाने वाले अंतरों के कारण हैं। संवेदी अंगों तथा प्रेरण तंत्र की आधारभूत संरचना-व्यवस्था का निर्धारण भ्रूणीय-परिवर्धन के दौरान हो जाता है और स्वयं यह निर्धारण जीनों के नियंत्रण के अधीन होता है।

अधिकतर स्पीशीज़ के नरों और मादाओं को उनके शरीर के साइज़, उसकी आकृति अथवा रंग एवं कई अन्य बाहरी लक्षणों के आधार पर एक-दूसरे से पृथक पहचाना जा सकता है। इनके अलावा एक ही स्पीशीज़ के नर-मादाओं में व्यवहारगत अंतर भी पाया जाता है। आप अपने दैनिक जीवन में नरों और मादाओं के बीच सामान्य व्यवहारगत अंतर स्वयं देख सकते हैं। उदाहरणतः, आप देखेंगे कि अधिकतर गायन पक्षियों में नर ही गाना गाता है न कि मादाएं और इसी तरह अधिकतर प्रणय प्रदर्शन भी नरों द्वारा ही किए जाते हैं। मोर नाचता है मोरनी नहीं। इस प्रकार के अधिकतर व्यवहारगत अंतर नर और मादा के शरीर में स्रावित भिन्न हार्मोनों के कारण और साथ ही उनकी शरीर संरचना में भी पाए जाने वाले अंतरों के कारण होते हैं। कुछ गायन पक्षियों के शारीर संबंधी अध्ययनों से पता चला है कि उनके मस्तिष्क के वह क्षेत्र जिसका संबंध नर के स्वर अंगों से होता है, मादा पक्षियों के मस्तिष्क से भिन्न होता है। इस प्रकार का गायन तंत्र हार्मोनों द्वारा प्रभावित होता है। आइए एक पक्षी स्पीशीज़ "ज़ेबरा फ़िंच" का उदाहरण लेते हैं जिसके लैंगिकतः वयस्क नर प्रणय गीत गा सकते हैं मगर मादाएं नहीं गा सकतीं। इनके परिवर्धन के दौरान नरों में वृषण-पूर्वी कोशिकाएं एस्ट्रोजन बनाती हैं जब कि मादाओं में अंडाशय पूर्वी कोशिकाएं यह हार्मोन नहीं बनातीं। इस प्रकार एस्ट्रोजन नर की भ्रूणीय मस्तिष्क कोशिकाओं पर क्रिया करता है जिससे उन तंत्रिकीय अवयवों की एक विशेष श्रृंखला बन जाती है जो मस्तिष्क के सामने की ओर से चलते हुए मेरू रज्जु तक पहुंचते हैं जहां यह श्रृंखला पक्षियों के ध्वनि उत्पादक अंग सिरिंक्स (syrinx) के तंत्रिकीय दिशामार्गों के साथ संयोजन बनाते हैं। यह जाल अर्थात् गायन-तंत्र पक्षी के अंडे से बाहर आने के बाद पहले 40 दिन के दौरान तेज़ी से बढ़ता जाता है जब कि मादा के मस्तिष्क का यही भाग कोशिकाओं की मृत्यु के कारण छोटा हो जाता है। परिणामतः नर के परिपक्व मस्तिष्क की संरचना एवं उसका कार्य करना मादा के मस्तिष्क से भिन्न होता है।

शीतोष्ण क्षेत्रों में प्रजनन ऋतु के आगमन पर आवर्धित वृषणों से टेस्टॉस्टेरॉन (testosterone) का स्रवण होता है। गायन-तंत्र की कोशिकाओं में टेस्टॉस्टेरॉन के लिए ग्राही होते हैं जिनके साथ हार्मोन के जुड़े जाने पर वे उपापचयी परिवर्तन चालू हो जाते हैं जो पक्षी को अपना क्षेत्र चिह्नित कर लेने के बाद अन्य नरों को दूर रखने के लिए गाना गंवाते हैं। इस प्रकार गायन तंत्र को स्वरूप देता है एस्ट्रोजन और टेस्टॉस्टेरॉन उसे सक्रिय करता है जिससे सही उत्तेजन मिलने पर पक्षी गाने लग जाता है। क्योंकि शारीर तथा हार्मोन दोनों ही का नियंत्रण जीनों द्वारा होता है इसलिए प्राणि-व्यवहार को स्वरूप देने में जीनों की परोक्ष मगर बेहद महत्वपूर्ण भूमिका समझना कठिन नहीं है।

बोध प्रश्न 2

यदि वयस्क मादा गायन पक्षियों में टेस्टॉस्टेरॉन का प्रतिरोपण कर दिया जाए तो क्या वे गाएंगी?

....

13.3.3 पारिस्थितिकीय आधार

प्राणियों के ज़ीवित बने रहने के लिए ज़रूरी है कि वे पर्यावरण के साथ एक सकारात्मक संबंध बनाए रखें और किसी निर्दिष्ट पर्यावरण के साथ समंजन बनाए रखने के लिए जीव के प्रयासों में व्यवहारगत अनुक्रियाएं एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। मोटे-मोटे अर्थ में कहा जाए तो व्यवहार शब्द के अंतर्गत जीवों की वे सारी सामूहिक प्रत्यक्ष क्रियाएं आती हैं जो वे अपनी पर्यावरण परिस्थितियों के साथ समंजन बनाने के लिए करते हैं ताकि उनकी उत्तरजीविता एवं कुशल-क्षेत्र सुनिश्चित हो सके। यदि व्यवहार पर्यावरण में उपजी आवश्यकताओं के साथ सुसंगत नहीं है तो यह एक व्यर्थ कार्य होगा जिसमें प्राणी की ऊर्जा का अपव्यय होगा और शरीर में वह विश्रांति (थकावट) आ जाएगी जिससे बचा जा सकता था। ऐसे असख्य उदाहरण मिलेंगे जब एक साधारण व्यक्ति भी रोचक व्यवहारगत परिवर्तनों को देख सकता है और उन्हें पर्यावरण में होने वाले परिवर्तनों से जोड़ सकता है।

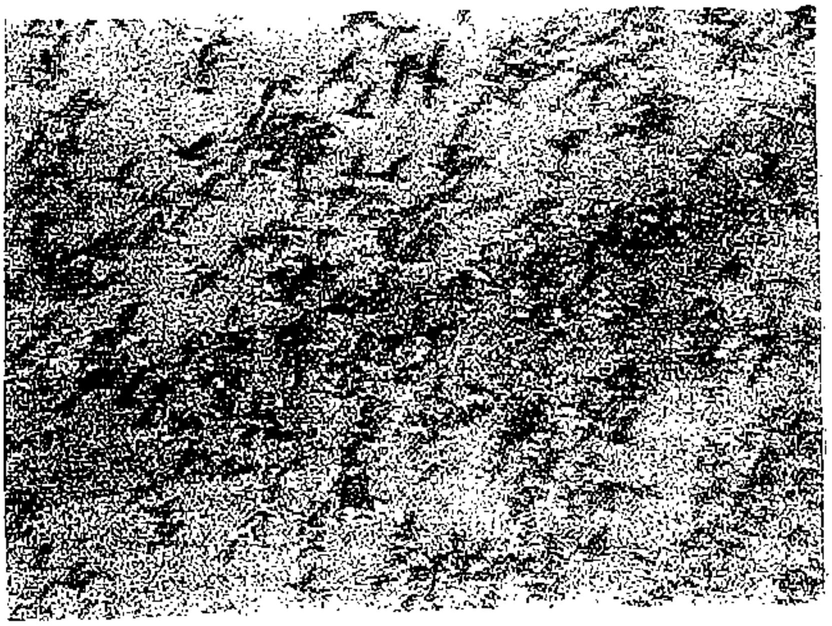

चित्र 1.12: प्रवासी राज हंसों का झुंड कानाडा से दक्षिण की तरफ उड़ता हुआ आकाश में जैसे छा जाता है।

चिमगादड़ें, उल्लू, गीदड़, लकड़बग्घे मुख्यत: रात में सक्रिय रहते हैं जब कि कौए, चीलें, गिद्ध [illegible] कितने ही अन्य पक्षी एवं प्राणी दिन के समय सक्रिय रहते देखे जा सकते हैं। ये पर्यावरण में रात और दिन के परिवर्तनों के प्रति होने वाली व्यवहारगत अनुक्रियाओं के कुछ उदाहरण हैं। संघर्ष से बचने तथा स्पर्धा को कम करने के लिए प्राणियों ने अलग-अलग जीवन शैलियां अपनायी हैं जैसे कि कुछ रात में सक्रिय रहते हैं और कुछ दिन के समय। रात्रि के समय सक्रिय प्राणियों में ऐसी आंखें होती हैं जो रात में देखने के लिए उपयुक्त होती हैं और तीव्र प्रकाश में नहीं देख सकतीं और यही वह महत्वपूर्ण पारिस्थितिकीय कारण है जिससे इन प्राणियों की रात्रिक क्रियाएं होती हैं। चील तथा गिद्ध मुख्यत: मृत जानवरों आदि को खाते हैं जिसे दिन में ही देख सकते हैं, इस कारण वे रात में सक्रिय नहीं रहते और दिनचर है। प्राणि-व्यवहार को इन दैनिक रात और दिन के परिवर्तनों के साथ बदलते जाने के अलावा ऋतुपरक परिवर्तनों के साथ भी बदलते देखा जा सकता है। वर्षा ऋतु के आते ही मेंढ़कों का टर्राना सुनाई पड़ने लगता है मगर गर्मियों अथवा जाड़ों में वे सुनाई नहीं पड़ते। क्योंकि मेंढ़क अंशत: जलीय पर्यावरण के लिए अनुकूलित होते हैं और वे केवल जल में ही जनन करते हैं इसलिए मानसून आरंभ होते ही अपनी ग्रीष्मनिद्रा (aestivation) से बाहर आ जाते हैं और उनका टर्राना जो उनके प्रजनन व्यवहार का ही एक भाग है, आरंभ हो जाता है। मोर भी वर्षा ऋतु के आरंभ होते ही एवं उसके दौरान नाचते देखे जा सकते है। मोर का नृत्य प्रजनन पूर्व के उसके प्रणय व्यवहार का ही एक अंश है। मोर की स्पीशीज कीटों, छिपकलियों, छोटे सांपों, अनाज़ों, वनस्पति प्ररोहों आदि को खाती हैं और यह सब आहार वर्षा के दौरान ही भरपूर मिलता है। मोर इसी ऋतु में प्रजनन करते है ताकि उनके बच्चों को भी भरपेट भोजन उपलब्ध हो सके। वर्षा ऋतु में मोर के प्रजनन व्यवहार को प्रभावित करने वाले और भी कई कारण है मगर यहां हम पारिस्थितिक कारकों के साथ व्यवहार का संबंध स्पष्ट देख सकते हैं।

शीत ऋतु का आगमन होते ही प्रवासी हंसों और बत्तखों के झुण्ड के झुण्ड आकाश में एक ही दिशा में उड़ते देखे जा सकते हैं और शीत ऋतु के समाप्त होने के समय इन्हें फिर से, मगर विपरीत दिशा में उड़ते देखा जाता है। ये स्पीशीज उत्तरी गोलार्ध के आवासों जहां आहार संसाधन बर्फ से ढक जाते है और अत्यंत निम्न ताप के कारण जीवनयापन कठिन हो जाता है, को छोड़कर अन्यत्र प्रवास कर जाते हैं। जाड़ों में ये पक्षी आहार की खोज एवं सुखद रहन-सहन के लिए उष्ण स्थानों में चले जाते है। फिर से जब एक बार इनके अपने पुराने आवास क्षेत्रों का तापमान बढ़ने लग जाता एवं परिस्थितियां अनुकूल होने लग जाती हैं तो ये वापिस चले जाते हैं। पक्षी प्रवास की इस रोचक परिघटना से संकेत मिलता है कि व्यवहार का पर्यावरण के साथ संबंध जुड़ा है, आप पक्षी प्रवास के संबंध में अधिक जानकारी इकाई 15 में पाएंगे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पर्यावरण व्यवहार को दो प्रकार से प्रभावित करता है। तात्कालिक अर्थ में प्राणी पर्यावरण से अपनी ओर आते हुए उद्दीपनों के प्रति अनुक्रियाओं के रूप में व्यवहार करता है जबकि

दीर्घकालीन परिपेक्ष्य में पर्यावरण नानाविध व्यवहार प्रतिरूपों के परिवर्धन में जीन अभिव्यक्ति को प्रभावित करता है।

और तो और, यदि पर्यावरण प्रतिकूल रहा तो प्रतिवर्त क्रियाएं भी सामान्य रूप में विकसित नहीं होतीं। नवजात चिम्पैंज़ियों को 40 महीने तक अंधेरे मे पाला-पोसा गया और उसके बाद जब उन्हें प्रकाश में लाया गया तो उनमें पलक झपकने की अनुक्रिया नहीं होती देखी गयी। इन चिम्पैंज़ियों को लगभग पांच दिन तक प्रकाश में रखने के बाद ही उनमें यह प्रतिवर्त प्रकट हुआ। इस प्रतिवर्त के विकसित होने के लिए प्रकाश (एक पर्यावरण कारक) की उपस्थिति आवश्यक है।

अभी तक हमने व्यवहार परिवर्तनों को पर्यावरण में होने वाले परिवर्तनों के साथ जोड़ कर ही उन पर विचार किया। इनके अलावा ऐसे अनेक उदाहरण हैं जिनमें प्राणि-व्यवहार तथा पर्यावरण के बीच एक स्थायी संबंध होता है। हम सभी जानते हैं कि प्राणियों की खास-खास स्पीशीज़ विशिष्ट प्रक्षेत्रों में रहती हैं और ऐसे हर प्रदेश में कुछ विशेष पर्यावरण (पारिस्थितिकीय) दशाएं पायी जाती हैं। पेन्गुइनें अधिकतर दक्षिण ध्रुव प्रदेश एवं संबद्ध द्वीपों में ही पायी जाती हैं। समुद्री घोमरे (sea gulls) केवल समुद्र तटों पर रहते हैं। कुछ अन्य स्पीशीज़ जैसे कि बाघ तथा चितकबरा हिरन भारतीय उपमहाद्वीप में दूर-दूर तक रहते पाये जाते है मगर ये दोनों केवल वन आवासों में ही पाए जाते हैं। जब कोई स्पीशीज़ किसी एक खास पर्यावरण में ही रहती है अन्यत्र नहीं, तब उसकी उस पर्यावरण के प्रति वरीयता दिखायी पड़ती है। इस वरीयता यानि पसंदगी के अनेक कारणों में से एक कारण है संबद्ध सामाजिक संगठन के साथ व्यवहारगत संगतता। दल संघटना, सेक्स अनुपात, आदि ये सभी अनेक पारिस्थितिक कारकों जैसे कि वन-आवरण जल की उपलब्धता, आहार तथा उसके फैलाव, आदि पर निर्धारित होते हैं। अत: आप समझ सकते हैं कि पर्यावरण से व्यवहार किस प्रकार जुड़ा हुआ है।

अनेक व्यवहार क्रियाकलाप जैसे आहार खाना अथवा पानी पीना आधार रूप में संबद्ध प्राणी के शरीर के भीतर पैदा होने वाले उद्दीपनों की अनुक्रिया के रूप में होते हैं, फिर भी व्यवहार का आधारभूत एवं सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य है निर्दिष्ट पर्यावरण में उस जीव की कुशल-क्षमता को एवं स्पीशीज़ का लगातार अस्तित्व बनाए रहना। अत: निष्कर्ष में कहा जा सकता है कि परिवर्तनशील पर्यावरण में प्राणियों का जीवित बना रहना बहुत मात्रा में उनके अपने व्यवहार के लचीलेपन पर निर्भर होता है। यदि प्राणी पर्यावरणीय उद्दीपनों के प्रति ठीक से अनुक्रिया न करें तो उनका जीवन ख़तरे में पड़ जाएगा।

प्राणी अनेक व्यवहारगत कार्य करने में सक्षम हो सकता है मगर इनमें से प्रत्येक कार्य एक सही समय पर तथा एक विशिष्ट पर्यावरण परिस्थिति में ही किया जाना चाहिए। कोई हिरन जंगल अथवा अपने आश्रय में से अंदर-बाहर आ-जा सकता है और घास को चर सकता है। मगर उसे घास कब चरनी चाहिए तथा वापिस अपने जंगल अथवा आश्रय में कब लौट जाना चाहिए यह सब पर्यावरण की परिस्थितियों पर निर्भर करता है। यदि वह हिरन तब भी, जब खुले में बहुत ठंड हो अथवा बहुत गर्मी हो अथवा कोई परभक्षी नज़र आ रहा हो, बाहर चर रहा हो तब वह अपनी सकुशलता और यहां तक कि अस्तित्व तक को ख़तरे में डालेगा। इससे विपरीत, यदि बाहर मौसम आरामदेह है और सब कुछ सुरक्षित भी है उस पर भी हिरन चरने कि लिए अपने जंगल अथवा आवास से बाहर नहीं आता, तो वह भूखा मर जाएगा। इस उदाहरण में वायुमण्डलीय तापमान एक अजैविक कारक है जो व्यवहार को प्रभावित कर रहा है। उधर दूसरी ओर, चरना एक भीतरी उद्दीपन (भूख की अनुभूति) के प्रति अनुक्रिया है। ध्यान देने की बात है कि जब कभी पर्यावरण के जैविक अथवा अजैविक कारक भूख से ज्यादा प्रभावकारी महत्व के हो जाते हैं तब-तब हिरन अपने भीतरी उद्दीपन के प्रति होने वाली अनुक्रिया को दबा लेता है। इसी से स्पष्ट हो जाता है कि प्राणी व्यवहार के लिए पारिस्थितिक आधार कितना शक्तिशाली है।

व्यवहार इस प्रकार के सभी कारकों, प्रक्रियाओं एवं क्रियाविधियों के बीच अन्योन्यक्रियाओं का मिला-जुला एवं अंतिम उत्पाद है, यह ठीक उसी प्रकार है जैसे किसी मशीन के विभिन्न कल-पुर्जों की सामूहिक क्रियाएं होती हैं। इनमें से किसी को भी अन्य से पृथक नहीं माना जाना चाहिए क्योंकि ऐसा करना भ्रमोत्पादक अतिसरलीकरण होगा। यह तो मात्र सुविधा के लिए है कि हम प्रत्येक आधार का अलग-अलग वर्णन कर देते हैं और इसलिए नहीं के ये एक-दूसरे से सर्वथा स्वतंत्र हों। अगली इकाई में आप जन्मजात व्यवहार के विषय में तथा अधिगम एवं अनुभवों के द्वारा व्यवहार किस तरह रूप लेता है के विषय में जानेंगे।

13.4 सारांश

इस इकाई में आपने सीखा है कि

- प्राणि-व्यवहार ने मानव का ध्यान इतिहास के बहुत आरम्भ में ही आकर्षित कर लिया था और आज भी यह जीव विज्ञान का एक रोचक क्षेत्र बना हुआ है।
- प्राणि-व्यवहार का अध्ययन अनेक पहलुओं से महत्वपूर्ण एवं लाभप्रद है।
- व्यवहार को परिभाषित करना इतना आसान नहीं है जितना कि बहुत से लोग समझते हैं, क्योंकि यह सब इस पर निर्भर करता है कि अध्ययन तथा वर्णन करने के विशिष्ट उद्देश्य क्या हैं। फिर भी निष्कर्ष में कह सकते हैं कि प्राणी जो कुछ करता है वही उसका व्यवहार है।
- प्राणी की शारीरिक क्षमताएं ही उसकी व्यवहार क्षमताओं को निर्धारित करती हैं परंतु व्यवहार कई अन्य कारकों, जैसे कि आनुवांशिक एवं पारिस्थितिक कारकों, द्वारा भी प्रभावित होता है।
- व्यवहार वंशगत शारीरीय एवं कार्यिकीय अभिलक्षणों द्वारा प्रभावित होता है।
- क्योंकि व्यवहार प्राणियों का पर्यावरण के साथ जिसमें वे रहते हैं समंजन का एक साधन है अतः अनिवार्य है कि उसका दिशा-निर्धारण पारिस्थितिक कारकों द्वारा होता है।
- व्यवहार का उद्भव एवं उसका संगठन प्राणियों की शारीरिक क्षमताओं द्वारा होता है। स्वयं ये क्षमताएं वंशागत होती हैं, और क्योंकि यह व्यवहार पर्यावरणीय आवश्यकताओं से सुसंगत होते हैं इसलिए इन सभी परस्परक्रिया करते कारकों को ध्यान में रखे बिना व्यवहार को ठीक से नहीं समझा जा सकता।
- संबद्ध प्राणी के लिए व्यवहार का मूलभूत उद्देश्य है उसकी उत्तरजीविता एवं निर्दिष्ट पर्यावरणीय स्थिति में उसका सकुशल बना रहना।

13.5 अंत में कुछ प्रश्न

1. प्राणि-व्यवहार ने आरम्भिक समय से ही मानव का ध्यान क्यों आकर्षित किया है?

....

....

....

....

2. व्यवहार किसे कहते हैं, अपने शब्दों में लिखिए।

....

....

....

....

3. ऐसा क्यों होता है कि व्यवहार को प्राणी के उस पर्यावरण जिसमें वह रह रहा है, के अनुसार ही होना होता है?

....

....

....

....

4. व्यवहार का शारीरीय तथा कार्यिकीय आधार क्या है?

....

....

....

....

5. ऐसा क्यों कहा जाता है कि व्यवहार का एक आनुवंशिकीय आधार होता है?

....

....

....

....

13.6 उत्तर

बोध प्रश्न

1. क) (i) व्यवहारिकी
   (ii) तुलनात्मक मनोविज्ञान
   (iii) पर्यावरण, अनुकूलन

   ख) (i) मन की उत्सुकता की संतुष्टि
   (ii) पशुधन से तथा पालतू पशुओं के प्रशिक्षण से अधिक लाभ प्राप्त करना
   (iii) संकटापन्न स्पीशीज़ का संरक्षण एवं वन्य जीवन प्रबंधन
   (iv) प्राकृतिक आपदाओं से समय रहते चेतावनी प्राप्त करना

2. मादा पक्षी नही गाएगी क्योंकि उसके तंत्रिकाणु परिवर्धन के दौरान एस्ट्रोजन से प्रभावित नहीं हुए।

अंत में कुछ प्रश्न

1. पुरातत्व खुदाइयों में इस बात के पर्याप्त प्रमाण मिले हैं प्राणि-व्यवहार ने इतिहास के आरंभ से मानव का ध्यान आकर्षित किया है मानव के प्रागैतिहासिक पूर्वजों ने प्राणि-व्यवहार का अध्ययन कदाचित पहले तो अपने आपको ख़तरनाक जानवरों से बचाने के उद्देश्य से किया होगा और उसके बाद कुछ प्राणियों को पालतू बनाने एवं उनसे लाभ प्राप्त करने के लिए किया होगा।

2. व्यवहार को अनेक प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है जो इस बात पर निर्भर करेगा कि अध्ययन एवं वर्णन करने का विशिष्ट उद्देश्य क्या है। फिर भी, परिभाषा के रूप में कह सकते हैं कि व्यवहार प्राणी के समस्त प्रकट क्रियाकलापों का ही दूसरा नाम है। संक्षेप में प्राणी जो कुछ भी करता है वही उसका व्यवहार है।

3. व्यवहार का मूलभूत उद्देश्य प्राणियों को, उनके पर्यावरण में जीवित तथा सकुशल बनाए रखता है। यदि प्राणियों का व्यवहार उनके पर्यावरण में पैदा होने वाली उनकी विशिष्ट आवश्यकताओं के साथ मेल नहीं खाता तब व्यवहार के इस उद्देश्य की पूर्ति नहीं होगी।

4. प्राणी का व्यवहार बहुत हद तक उनकी शारीरिक क्षमताओं जैसे कि शरीर का साइज़, देह भागों की आकृति एवं कार्यिकीय अभिलक्षणों पर निर्भर करता है। कोई भी प्राणी वह सब कुछ नहीं कर सकता जो उसकी देह संरचना-व्यवस्था एवं देह-कार्य से मेल नही खाता है।

5. व्यवहार जैसा भी वह है, उसी रूप में जनकों से वंशागत नहीं हो सकता। परंतु वे सब शारीरीय एवं कार्यिकीय अभिलक्षण जिनका व्यवहार पर गहरा प्रभाव होता है, प्राणियों में अपने जनकों से वंशागत होते हैं। अतः इस प्रकार व्यवहार का आनुवांशिक आधार भी होता ही है।

इकाई 14 व्यवहार का परिवर्धन

इकाई की रूपरेखा

14.1 प्रस्तावना

उद्देश्य

14.2 व्यवहारजन्य कारण

14.3 जन्मजात व्यवहार

14.4 अधिगम एवं अनुभव

साहचर्यात्मक अधिगमन

विलोपन तथा अभ्यसन

प्रच्छन्न तथा अंतर्दृष्टि अधिगम

अध्यंकन

14.5 व्यवहार का विकास

14.6 व्यवहार की अनुकूलनशीलता

.4.7 सारांश

.4.8 अंत में कुछ प्रश्न

4.9 उत्तर

14.1 प्रस्तावना

ोछली इकाई में आपको प्राणि-व्यवहार के अध्ययन से परिचित कराया गया था। आपने व्यवहार की ारिभाषा सीखी और इसके अध्ययन के महत्व तथा किसी प्राणी की शारीरीय और कार्यिकीय विशेषताएं कस प्रकार व्यवहार के लिए उसकी क्षमताएं निर्धारित करती हैं, के विषय में सीखा।

ाणि-व्यवहार के क्षेत्र में होने वाले अनुसंधान नानाविध दिशाओं में अनेक उपक्षेत्रों में बंट गए हैं। आपने ोछली इकाई में जाना था कि कुछ जीवविज्ञानियों ने व्यवहार को आनुवंशिकतः निर्धारित माना है। अन्य । तर्क दिया कि सभी व्यवहारों का केवल प्राकृतिक पर्यावरण में ही अध्ययन किया जा सकता है, वहीं ़सरी ओर कुछ अन्य ने पुरज़ोर वकालत की कि केवल नियंत्रित प्रयोगशाला परिस्थितियों में ही व्यवहार ़ विषय में प्रामाणिक नतीजे मिल सकते हैं। मगर प्रश्न है कि वह कौन सी चीज़ है जिससे व्यवहार का ोई एक विशिष्ट प्ररूप परिवर्धित होता है।

ापने ग्रीष्म ऋतु के आते-आते कोयल की बार-बार दोहराई जाती हुई कुहू-कुहू अवश्य सुनी होगी और ो सकता है आपके मन में प्रश्न भी आया हो कि आखिर कोयल गाती ही क्यों हैं? क्या सभी कोयलों को मालूम है" के उन्हें क्या गाना है या फिर उनमें से प्रत्येक अपने पर्यावरण से कुछ सीखती है जो भावित करता है कि वह किस प्रकार गाएगी? ऐसे ही नानाविध प्रश्न हैं जो हमें प्राणि-व्यवहार के रिवर्धन का विविध उपागमों से अध्ययन करने की ओर ले जाते हैं।

ुस इकाई में हम व्यवहार के परिवर्धन में जीन एवं पर्यावरण की भूमिका का और आगे विवेचन करेंगे। ाप अध्ययन करेंगे कि प्राणियों की अलग-अलग स्पीशीज़ में व्यवहार की क्षमताएं अलग-अलग होती हैं। ाप वंशागत अर्थात् सहज व्यवहार के विषय में पढ़ेंगे और जान सकेंगे कि जीवन काल के दौरान ाधिगम एवं अनुभव किस प्रकार प्राणी के व्यवहार को रूप देते हैं। हाल के वर्षों में जीवविज्ञानियों ने कसी भी प्राणी के व्यवहार को उसके सम्पूर्ण अनुकूलनी समग्रता का एक अंश मानना शुरू कर दिया है ो उसकी उत्तरजीविता के लिए आवश्यक है अतः आप व्यवहार के विकास एवं उसकी अनुकूलनीयता के ़षय में संक्षेप में पढ़ेंगे। इससे अगली इकाई में आप जान सकेंगे कि अलग-अलग स्तर पर व्यवहार कस प्रकार गठित होता है। आप प्राणियों में सामाजिक व्यवहार और उनमें परस्पर संचार की ावश्यकता के विषय में भी जानेंगे।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- कारण बता सकेंगे कि किसी भी स्पीशीज़ के सभी प्राणी समान परिस्थितियों में न्यूनाधिक रूप में एक-सा ही व्यवहार क्यों करते हैं,
- स्पष्ट कर सकेंगे कि प्राणी अपने जनकों से और अपने ही जैसे अन्य प्राणियों से किस प्रकार व्यवहार करना सीख जाते हैं,
- सहज एवं सीखे गए व्यवहारों में अंतर बता सकेंगे एवं उन पर चर्चा कर सकेंगे,
- व्यवहार के अनुकूली महत्व का वर्णन कर सकेंगे।

14.2 व्यवहारजन्य कारण

प्राणि-व्यवहार भी उतना ही अधिक विविध एवं विस्मयकारी है जितना कि प्राणियों के आकार, उनकी आकृतियां एवं रंग हैं और जिसके वर्णन एवं वर्गीकरण करने में पीढ़ियां लग गयीं। कोई भी दो स्पीशीज़ एक समान व्यवहार नहीं करतीं। उदाहरणत: किसी पक्षी को उसकी बोली और गायन से, उसके आहार करने की विधि से और वह किस प्रकार अपना घोंसला बनाता है आदि से पहचाना जा सकता है और इस प्रकार के व्यवहार प्रतिरूप प्रत्येक स्पीशीज़ के लिए नियत होते हैं। कोई भी गौरया अपना घोंसला दर्जिन पक्षी के घोंसला जैसा नहीं बना सकती और न ही कोई गौरया किसी कोयल की तरह गा ही सकती है। अत: हमें स्पष्ट पता चल जाता है कि विभिन्न स्पीशीज़ के बीच शारीरीय तथा कार्यिकीय अंतरों से ही विभिन्न प्रकार के व्यवहार प्रतिरूप प्रकट होते हैं और जैसे-जैसे स्पीशीज़ जातिवृत्तीय रूप में एक-दूसरे से दूर-दूर होती जाती हैं वैसे-वैसे व्यवहार प्रतिरूप का अंतर और भी बढ़ता है। इसके अलावा एक ही स्पीशीज़ के विभिन्न सदस्यों के व्यवहार में भी अंतर पाया जाता है।

दिन-प्रतिदिन के जीवन में जो प्राणी हमें मिलते हैं उनमें पाए जाने वाले व्यवहार के कितने ही ढेर सारे विविध स्वरूप जब हमारे सम्मुख आते हैं तो आश्चर्य होता है कि कोई प्राणी ठीक वैसा ही व्यवहार जैसा वह करता है क्यों करता है? आपमें से बहुतों ने कभी न कभी गर्मी के मौसम की किसी रात में घरेलू छिपकली को कीट पतंगे पकड़ते ज़रूर देखा होगा। छिपकली पहले तो कीट की ओर बहुत धीरे-धीरे आती है और फिर अचानक तेज़ी से लपक कर कीट को मुंह में दबोच लेती है। छिपकली ऐसा किस प्रकार और क्यों करती है?

कैसे (how) इस प्रश्न का उत्तर तो इस प्रकार दिया जा सकता है — छिपकली ने कीट को [illegible] भूखी थी, एक तंत्रिका संकेत केंद्रीय तंत्रिका तंत्र में पंहुचा और स्वयं इस तंत्र ने पलट कर टांगों का [illegible] किया कि छिपकली कीट के नज़दीक पहुंचे और मुख की पेशियों को इस तरह चलाया कि कीट दबोच लिया जाए। "कैसे" के प्रश्न उन तात्कालिक कारकों एवं प्रक्रियाओं से जुड़े हैं जिन्होनें देखे गए व्यवहार को चालू किया। ये सब प्रत्यक्ष (proximate) कारण हैं। व्यवहार के प्रत्यक्ष कारण प्रेक्षणीय, तात्कालिक एवं संरचनात्मक (शारीरीय तथा कार्यिकीय) होते हैं अर्थात् यह कि प्राणी के भीतर की संरचनाएं किस प्रकार कार्यचालन करती हैं जिससे कि प्राणी एक विधि-विशेष में व्यवहार करे।

दूसरे प्रश्न **क्यों (why)** का उत्तर यह है कि व्यवहार इसलिए हुआ कि वह विकास के दौरान लाभप्रद अथवा चयनित हुआ था। यही है मूलभूत कारण (ultimate cause) जो दीर्घकालीन, आनुवांशिक, पारिस्थितिक तथा विकासीय होता है तथा जीव को बेहतर उत्तरजीविता एवं जनन की ओर ले जाता है। प्रत्यक्ष तथा मूलभूत दोनों कारकों को लगभग सभी व्यवहारों पर लागू किया जा सकता है। अत: व्यवहार के कारणों का अध्ययन एक त्रिविध कार्य है। पहला तो यह कि व्यवहार से जुड़ी क्रियाविधि किस प्रकार कार्य करती है? दूसरा यह कि व्यष्टिगत प्राणी के जीवन काल में व्यवहार किस प्रकार परिवर्धित हुआ है और तीसरा यह के प्राणियों में व्यवहार की क्रियाविधि किस प्रकार विकसित हुई।

आरम्भ में समस्त प्राणि-व्यवहार को दो श्रेणियों में विभाजित किया जाता था एक सहज व्यवहार (instinctive behaviour) और दूसरा सीखा गया व्यवहार (learned behaviour)। इन श्रेणियों को बनाने का उद्देश्य था विविध व्यवहारों के प्रत्यक्ष कारणों में विभेद कर पाना। सहज प्रवृत्तियों को आनुवांशिकत: नियंत्रित माना जाता था तथा सीखे गए व्यवहार को पूर्णत: अनुभवों तथा पर्यावरण पर आधारित माना जाता था। मगर जैसे जैसे व्यवहार-विज्ञान विकसित हुआ है हम पाते हैं कि इन

ाणियों को और वंशागति तथा पर्यावरण के प्रभाव को पृथक करना कठिन है क्योंकि ये सभी कारक रस्परक्रिया करके एक व्यवहार प्रणाली पैदा करते हैं।

ोध प्रश्न 1

ा) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:

(i) व्यवहार का संरचनात्मक एवं कार्यिकीय आधार होता है और यह आवश्यक है कि किसी व्यवहार-विशेष के दो प्रकार के कारणों अर्थात् तात्कालिक अथवा .... एवं दीर्घकालिक .... कारणों के बीच भेद करना चाहिए।

(ii) व्यवहार के प्रत्यक्ष कारक .... तथा .... तंत्रों द्वारा पैदा होते हैं

(iii) व्यवहार के मूलभूत कारक आनुवंशिक तथा .... हैं।

ा) इन दो शब्दों "सहज व्यवहार" तथा "सीखे गये" व्यवहार को स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

4.3 जन्मजात व्यवहार

ाणि-व्यवहार के विषय में अनेक भ्रांत धारणाएं हैं और उनमें से एक यह है कि कोई ऐसा रहस्यमय ुद्धिमता का स्रोत है जो प्राणियों को व्यवहार करने का निर्देश देता है। वास्तव में ऐसे अनेक उदाहरण ालते हैं जिनमें प्राणियों को इस प्रकार का व्यवहार करते देखा गया है मानों उनमें जन्म से ही उचित नुक्रियाएं मौजूद हों। इस प्रकार के व्यवहारों को जन्मजात अर्थात् सहज व्यवहार कहते हैं। इस शब्द ान्मजात (सहज) में बहुत व्यापक अर्थ छिपा है और इसमें वे सभी प्रकार के व्यवहार आते हैं जिनमें ाक बात समान है कि **वे सीखे नहीं गए हैं**। पहली बार सहज व्यवहार किए जाने पर भी उसमें कतई ोई त्रुटि नहीं होती। यह प्रोग्रामित, नियत प्रेरक प्रतिरूप होता है एवं पर्यावरण द्वारा अरूपांतरित रहता ै। ऐसा होना निश्चय ही महत्वपूर्ण है क्योंकि यदि कोई चूक या गलती हुई तो वह जीव के लिए बहुत ाहंगी साबित होगी। जन्मजात व्यवहार के एक उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जाएगी। "किटिवेक" kittiwakes) एक प्रकार के समुद्री पक्षी हैं जो समुद्र के निकट संकरे शिला फलकों पर घोंसले बनाते ैं। अंडों से बाहर आते ही इनके चूज़े स्तब्ध खड़े रहते हैं, क्योंकि उस संकरे फलक पर चलना घातक ाद्ध हो सकता है। इसके विपरीत समुद्री घोमरा (herring gulls) पक्षी के बच्चे जो कि समतल ामीन पर जन्मते हैं अण्डों से बाहर आते ही चलने लग जाते हैं। जन्मजात व्यवहार अनुभव-निरपेक्ष ाकट होते हैं और उन्हें उनके अनुकूलनी महत्व के लिए विकास के दौरान चयनित हुआ कहा जाता है ौर क्योंकि ये व्यवहार बिना अंतर आए स्वत: प्रकट होते हैं इसलिए ये ऊर्जा-अव्ययी युक्तियां हैं। आइए ाब हम जन्मजात व्यवहार की अलग-अलग श्रेणियों के विषय में चर्चा करें।

i) अनुचलन (Taxes)

ापने LSE-09 की इकाई 15 में अनुचलनों के विषय में पढ़ रखा है। निम्नतर जीवों में बाहरी उद्दीपनों (जैसे प्रकाश, तापमान, हल्की विद्युत् धारा) के प्रति नाना प्रकार की स्वचालित एवं सदा एक सी रहने वाली अनुक्रियाएं होती पायी जाती हैं। ये ऐसी अनुक्रियाएं हैं जो निश्चय ही इतने सरल जीव जंतुओं के इतने छोटे से जीवन काल में ही सीखी नहीं जा सकतीं। ये अनुक्रियाएँ जिन्हें अनुचलन कहते हैं जीव के दिशाविन्यास जो या तो उद्दीपन से परे की ओर या उसी दिशा में होता है, के रूप में होती हैं और इसलिए वे पौधों की अनुवर्तन अनुक्रियाओं (tropic movements) के समान होती हैं। अनुचलनों को जीव के वंशानुगत ग्राहियों (receptors) एवं तंत्रिकीय संयोजनों के गुणधर्मों के रूप में माना जाता है। अनुचलन निम्नतर जीवों को पर्यावरण के साथ समंजित होने में सहायता करते हैं।

(ii) प्रतिवर्त (Reflexes)

सहज व्यवहार की एक अन्य श्रेणी जो अनुचलनों के ही समान है, प्रतिवर्तों की है और ये प्रतिवर्त भी वंशागत तंत्रिकीय क्रियाविधियों के ही कार्य हैं। वास्तव में अनेक पहलुओं में अनुचलनों तथा प्रतिवर्तों में स्पष्ट विभेद कर सकना कठिन है। फिर भी, अनुचलनों में जीव के सम्पूर्ण शरीर का दिशान्यास निहित है जब कि प्रतिवर्तों में देह के केवल एक भाग की ही अनुक्रियाएं होती हैं जैसे कि किसी पीड़ादायी झटके की अनुक्रिया में भुजा को एकदम पीछे मोड़ लेना या तेज़ प्रकाश की कौंध के प्रति पलकों का झपकना। निम्नतर जीवों में प्रतिवर्त अनुकूलनी होते हैं और वे अपेक्षाकृत अपरिवर्ती होते हैं परंतु उच्चतर जीवों में वे उत्तरोत्तर परिवर्ती होते जाते हैं। उदाहरणत: शहरी पर्यावरण में रहने वाले व्यक्तियों में विभिन्न प्रकार के दृश्यों एवं शोर-शराबे के लिए प्रतिवर्त मंद होते हैं।

(iii) सहज वृत्ति (Instinct)

जन्मजात व्यवहार की तमाम श्रेणियों में से कदाचित सबसे जटिल प्रकार की श्रेणी सहज व्यवहार की ही है और इसका स्पष्टीकरण भी सबसे कठिन है। परिभाषा के रूप में कह सकते हैं कि सहज वृत्ति ऐसा व्यवहार है जो प्रथम बार किए जाने के समय से ही पूर्णत: कार्यात्मक जान पड़ता है भले ही जीव को उन संकेतों का, जिनके लिए उसमें प्रतिक्रिया होती है, कोई अनुभव न हो।

प्ररूपत: ऐसे व्यवहार किसी साधारण से संकेत अथवा उद्दीपन से यांत्रिकीय रूप में चालू हो जाते हैं। प्रयोगों से पता चला है कि समुद्र तटीय क्षेत्रों के नवजात गार्टर सर्प के सम्मुख यदि एक स्लग (घोंघा) बढ़ाया जाए तो वह तेज़ी से अपनी जीभ बाहर को निकालता है ताकि उसकी रासायनिक गंध प्राप्त कर सके। ऐसे में यदि बजाए स्लग के स्लग-निष्कर्षण में डूबी रूई का एक फाया उसके सम्मुख लाया जाए, तब भी उसमें वैसी ही अनुक्रिया पैदा होती है। प्रकृति में सर्प इसी प्रकार से अपना आहार पहचानता-परखता तथा खाता है और वह नवजात सर्प अन्य किसी सर्प को कभी भी आहार पकड कर खाते देखे बिना ही जानता है कि क्या करना है।

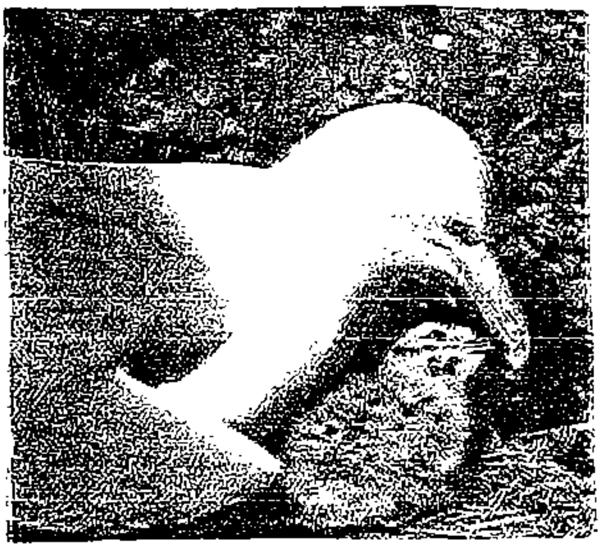

चित्र 14.1: आहार याचना की क्रिया। सहज प्रवृत्ति से चूज़ा समुद्री घोमरे की चोंच पर बनें लाल निशान पर अपनी चोंच मारता है जिसके कारण घोमरा उसके लिए आहार उलट देती है।

किसी भी लकड़ी जिस पर एक लाल रंग का बिंदु बनाया गया हो, को देख कर हेरिंग घोमरा के चूज़े सहज ज्ञान से उस पर अपनी चोंच मारते हैं। वे ऐसा इसलिए करते हैं क्योंकि उनकी मां की चोंच पर एक लाल बिंदु बनी होती है जिस पर चोंच मारने से प्रतिक्रिया में मां उन्हें आहार खिलाती है (चित्र 14.1)।

सहज व्यवहार अपेक्षाकृत सीमित पर्यावरणीय संकेतों द्वारा निर्मोचित होता जान पड़ता है। नर स्टिकलबैक (stickleback) मछलियाँ जब जनन अवस्था में होते है तब उनका पेट लाल होता है और ये नर घोंसले में रखे अण्डों की चौकसी करते हैं। अत: उस दौरान यदि कोई भी लाल रंग की वस्तु घोंसले के पास रखी जाए तो नर उस पर तीव्रता से आक्रमण करते हैं। वह ऐसा इसलिए करते है क्योंकि जनन अवस्था में अन्य नरों के पेट भी लाल होते है जिस के कारण उनको पहचानते और उन पर हमला करते हैं (चित्र 14.2)।

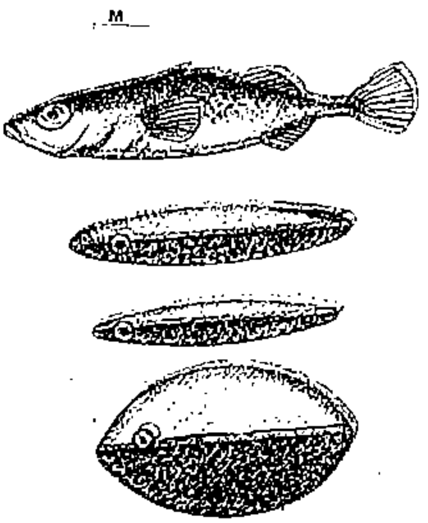

चित्र 14.2 : एक प्रयोग में, जनन अवस्था में स्टिकलबैक नर मछलियों के बीच एक वास्तविक स्वरूपी स्टिकलबैक नर का मॉडल तथा कुछ लाल पेट वाले मॉडल रखे गये। नर स्टिकलबैक वास्तविक स्वरूपी मॉडल को छोड़ कर सदा लाल पेट वाले मॉडल पर ही आक्रमण करते थे।

एक अति रोचक प्रयोग, जिसने सहज वृत्ति की संकल्पना को लोकप्रिय बनाया, को व्यवहारिकी के दो अग्रणी प्रयोगकर्ता कोनराड लॉरेंस (Conrad Lorenz) तथा निको टिंबर्गन (Niko Tinbergen) ने किया था। उन्होनें देखा कि मादा "ग्रेलैग" राजहंस (greylag goose) जब अपने अण्डे "से" रही होती हैं तब यदि कोई अण्डा घोंसले से बाहर को लुढ़क गया हो तो वह अपनी चोंच को आगे को बढ़ाकर उसके द्वारा उस अण्डे को अपनी ओर लाती है और फिर गर्दन को मोड़कर अण्डे को गर्दन के नीचे ले आती है। जब यह मादा राजहंस इस प्रकार अण्डे को फिर से अपने पास लाने का प्रयत्न कर रही हो, तब यदि बीच में ही अण्डा हटा दिया जाए तब भी उसे यह क्रिया पूरी करते देखा गया। एक अन्य प्रयोग में अण्डे की बजाए एक गोल पत्थर अथवा उसके अपने अण्डे से बड़े आकार का अण्डा रख दिया तब भी उसने वही क्रिया करके उसे अपने पास पहुंचा लिया (चित्र 14.3)।

इस प्रयोग में रोचक अनुभव यह था कि पुन: प्राप्ति क्रिया के दौरान यदि अण्डे को हटा दिया गया तब भी राजहंस अण्डे को अपनी ठोड़ी में टिकाने की गतियां करती रही। व्यवहारिकीविदों ने इस प्रकार के जन्मजात अपरिवर्तनीय व्यवहार को एक **नियत क्रिया प्रतिरूप अर्थात्** FAP (fixed action pattern) का नाम दिया जो यदि एक बार किसी साधारण संवेदी संकेत से प्रारम्भ हो गया तो पूरा होकर ही रहता है। अण्डे का घोंसले के बाहर होना एक संकेत अथवा प्रचालन था जिसने अण्डा पुन: प्राप्ति व्यवहार का विमोचन किया।

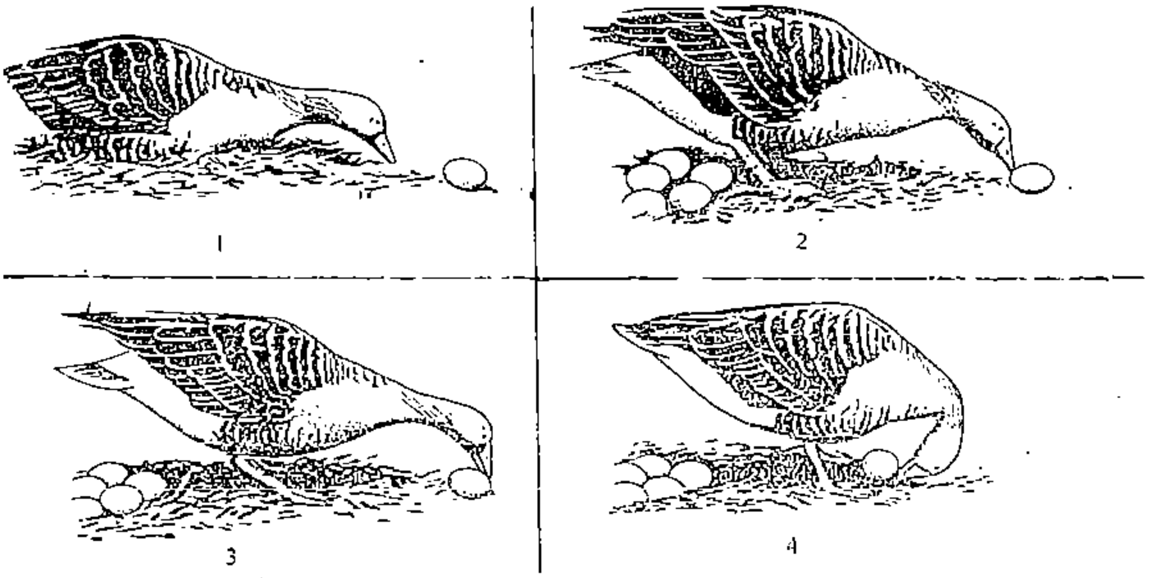

चित्र 14.3 : ग्रेलैग राजहंस अपने अण्डे को वापिस घोंसले के भीतर को लुढ़का लेगी और यदि इस क्रिया के बीच में ही अण्डे को हटा लिया जाए तब भी FAP जारी रहेगा (लॉरेंज़ तथा टिंबर्गन पर आधारित 1938 Ziet Tiepsychol 2 : 1-29)।

क्योंकि इस उद्दीपन को **विमोचक (releaser)** कहते हैं और प्राणी प्रायः विमोचक (रंग, रूप, ध्वनि, आदि) के किसी पहलू के प्रति अनुक्रिया करता है इसलिए उस उद्दीपन को **चिह्न उद्दीपन (sign stimulus)** कहते हैं। परिकाल्पनिक तंत्रिकीय क्रियाविधि जो चिह्न उद्दीपन संसूचकों से आने वाले संवेदी निवेशों को प्राप्त करती है ताकि FAP को सक्रिय करने के लिए निर्णय लिया जा सके जन्मजात **निर्मोचन क्रियाविधि (releasing mechanism)** कहलाती हैं। सभी FAP चिह्न उद्दीपन के प्रभावाधीन आरम्भ होते और रुकते हैं मगर जब तक रुकने के लिए उद्दीपन नहीं दिया जाता तब तक FAP स्वचालित रूप में पूरा ही होकर समाप्त होता है जैसा कि राजहंस के अण्डा पुनः प्राप्ति व्यवहार से प्रकट होता है। चिह्न उद्दीपन सैंकड़ों होते हैं और हर एक की अनुक्रिया किसी भी एक स्पीशीज़ में एक सी ही होती है। यद्यपि कोई संकेत उद्दीपन सदैव ही FAP को उत्तेजित नहीं करता, बहुत कुछ प्राणी की कार्यिकीय दशा एवं उसके तंत्रिका तंत्र पर निर्भर करता है। उदाहरणतः नर स्टिकलबैक मछलियां केवल प्रजनन ऋतु में ही लाल पेट वाली अन्य मछलियों पर आक्रमण करते हैं। कोई उद्दीपन तंत्रिका तंत्र द्वारा निस्यंदित होकर निकाल भी दिया जा सकता है। उदाहरण के लिए, यदि प्राणी भूखा है तब भोजन उसके अशन व्यवहार को उद्दीपित करेगा मगर यदि उसी समय प्राणी को उसका कोई परभक्षी नज़र आ जाता है तो आहार उद्दीपन अप्रभावकारी बन जाएगा। आमतौर से वे उद्दीपन जो पलायन अर्थात् बच कर भागने का व्यवहार प्रकट कराते हैं आहार के लिए उद्दीपनों को दबा देते हैं।

व्यवहारिकीविद सहज व्यवहार को भीतरी दशाओं तथा बाह्य प्रभावों की सम्मिश्र परस्परक्रिया का परिणाम बताते हैं। प्राणियों के जनन व्यवहार के अनेक पहलू जैसे कि विपरीत लिंग के प्राणियों की ओर आकर्षण, प्रणय प्रदर्शनों और मैथुन क्रिया से संबंधित देह-भागों की गतियों को सहज व्यवहार ही माना जाता है। जनन व्यवहार बहुत हद तक लिंग हार्मोनों की उपस्थिति पर निर्भर करता है। यदि रक्त में लिंग हार्मोनों का स्तर बहुत कम रहा तो अनुक्रिया नहीं होगी। परंतु लिंग हार्मोनों के स्तर में वृद्धि होने पर (यह प्रयोगात्मकतः भी किया जा सकता है) प्रणय प्रदर्शन तथा मैथुन से संबंधित क्रियाएं न्यूनतम उद्दीपन (पर्यावरण कारक) जैसे कि किसी निष्क्रिय संगमनी से भी आरम्भ हो जाती हैं।

कभी-कभी जब लिंग हार्मोन का स्तर निश्चित सीमाओं से अधिक हो जाता है तब प्राणी उसी लिंग के अन्य प्राणी अथवा एक भिन्न स्पीशीज़ के प्राणी और यहां तक कि अपने संगमनी की निर्जीव प्रतिमा के दृश्य मात्र से उत्तेजित हो जाते हैं। इससे प्रकट होता है कि सहज व्यवहार के उद्भव एवं परिवर्धन में भीतरी एवं बाहरी कारकों की सापेक्षिक भूमिकाएं होती हैं। इससे यह भी प्रकट होता है कि एक वर्ग के कारकों की सापेक्षिक प्रभावहीनता की अन्य कारकों द्वारा क्षतिपूर्ति हो जाती है। ऊपर दिए गए उदाहरण में गौर कीजिए कि लिंग हार्मोन (आंतरिक कारक) के बढ़ते स्तर से उत्तेजन (बाह्य कारक) की आवश्यकता काफ़ी हद तक समाप्त हो जाती है।

"सहज वृत्ति" शब्द उस श्रेणी के व्यवहार को व्यक्त करने के लिए रचा गया था जिन्हें बिना सीखे परिवर्धित होते हुए माना जाता था। परंतु जैसे-जैसे समय बीतता गया और व्यवहार के विभिन्न आयामों की कहीं बेहतर जानकारी होती गयी वैसे-वैसे सहज वृत्ति के अर्थ में भी बहुत परिवर्तन आया है। आज के व्यवहारिकीविद सामान्यतः एकमत हैं कि "सहज" व्यवहार तथा सीखे गए व्यवहार में विभेद करना न तो संभव है और न ही आवश्यक ; तथा ऐसा निर्णायक परीक्षण कर सकना जिसके द्वारा पता चल सके कि क्या सहज व्यवहार बिना किसी सीखने व अथवा अन्य किन्हीं बाहरी कारकों के परिवर्धित हो सकता है, असम्भव जान पड़ता है। सहज व्यवहार को भीतरी (वंशागत) तथा बाहरी (अधिगम, अनुभव) कारकों की सम्मिश्र तथा जटिल परस्परक्रिया का परिणाम माना जाने लगा है।

बोध प्रश्न 2

क) बताइए कि निम्नलिखित कथन सही हैं या गलतः-

i) अनुचलनों में किसी उद्दीपन की ओर शरीर के केवल एक भाग का ही अभिविन्यास होता है।

ii) किसी व्यवहार को उस स्थिति में जब वह पहली ही बार प्रकट होने में पूर्णतः कार्यात्मक दिखायी पड़ता है, सहज माना जाता है।

iii) कुछ सहज व्यवहारों को अभ्यास के द्वारा रूपांतरित अथवा अधिक कारगर किया जा सकता है।

iv) प्रतिवर्त जन्मजात व्यवहार के अंश नहीं हैं किंतु आनुवंशिकता से प्रभावित होते हैं।

ख) अण्डों से निकले कोयल के बच्चों द्वारा परपोषी के अण्डों को घोंसले से बाहर को धकेला जाना बताइए सीखे गए व्यवहार का उदाहरण है अथवा जन्मजात व्यवहार का?

....

....

....

....

14.4 अधिगम एवं अनुभव

पिछले अनुभाग में हमने निष्कर्ष निकाला था कि सहज व्यवहार की परिकल्पना द्वारा प्राणियों के उन कुछ खास प्रकार के व्यवहारों के स्पष्टीकरण में सहायता मिलती है जो प्राणी को सीखने के तमाम अवसरों से वंचित रखने पर भी पूरी तरह होते दिखाई पड़ते हैं। व्यवहार मशीनों के कार्य करने से भिन्न होता है, मशीनें एक नियत एवं पूर्वनिर्धारित प्रतिरूप में ही कार्य करती हैं। यदि मशीन अपने निर्धारित तौर पर डिज़ाइन किए गए काम से ज़रा सा भी फ़र्क काम करने लगती है तो उसे दोषपूर्ण मान लिया जाता है। यदि उसका काम सही-सही नहीं हो रहा हो तो उसकी मरम्मत होनी ज़रूर हो जाती है। इसके विपरीत प्राणी का व्यवहार कोई निष्क्रिय यांत्रिक क्रियाकलाप नहीं होता। प्राणी कुछ उद्दीपनों के लिए तो सहज रूप में अनुक्रिया करते हैं मगर वे अनुभव तथा उनके कार्य के परिणामों के बीच बने विविध संयोजनों के विषय में भी सूचना का भंडारण करते हैं।

इस सूचना भण्डारण का ही परिणाम है सीखना अथवा अधिगम और यही अधिगम व्यष्टि के जीवन काल के दौरान विशिष्ट अनुभवों की अनुक्रिया में व्यवहार का अनुकूली रूपांतरण होता है। उदाहरणतः चूज़े का शुरू-शुरू में आहार की याचना करना एक जन्मजात अनुक्रिया है, मगर बाद में वह सीख जाता है कि कहां और कब तथा किस प्रकार का आहार सबसे आसानी से प्राप्त हो सकता है।

सभी प्राणी अपने व्यवहार को उस सीमा तक परिवर्तित कर सकते हैं जितना कि उनकी वंशागत क्षमताएं (शारीर तथा कार्यिकी) होने दे सकती हैं। किंतु प्रश्न है कि आख़िर प्राणियों को अपने व्यवहार में परिवर्तन करने की आवश्यकता ही क्यों होती है? याद कीजिए, इकाई 13 में आपने पढ़ा था कि व्यवहार का मूलभूत उद्देश्य संबद्ध प्राणी का जीवित बने रहना एवं उसका सकुशल होना है। सीखने का महत्व हर स्पीशीज में अलग-अलग होता है। उदाहरणतः फ़ीताकृमि को शायद ही कभी कोई चतुर कहें, क्योंकि इसे ऐसा होने की कोई आवश्यकता ही नहीं। यह एक ऐसे पर्यावरण में रहता है जो इसकी सकुशलता के लिए अनुकूल है। इसे इसका आहार सरलता से मिल जाता है और जहां तक संतानोत्पत्ति का प्रश्न है उसके लिए बस हज़ारों-हज़ारों अण्डे देता है। इसके विपरीत बंदर एक सतत परिवर्तनशील एवं अक्सर जोखिममय पर्यावरण में रहते हैं। उनके लिए नानाविध जटिल परिस्थितियों से जूझना सीखना ज़रूरी है। फ़ीताकृमि से भिन्न इनकी जीवन-अवधि लम्बी होती है और यह उन्हें परिपक्व होने एवं सूचना एकत्रीकरण के लिए पर्याप्त समय प्रदान कराती है।

अधिगम यानि सीखने तथा व्यवहार रूपांतरणों की क्रियाविधियों में गहराई से जाने पर हम अधिगम के विभिन्न प्रकारों को वर्गीकृत कर सकते हैं।

14.4.1 साहचर्यात्मक अधिगम

इसमें वह क्षमता निहित है जो किसी नए उद्दीपन तथा परिचित उद्दीपन के बीच संयोजन बना सकती है। ऐसा ही एक प्रकार का साहचर्यात्मक अधिगम सुपरिचित प्रतिवर्तों का **चिरप्रतिष्ठित प्रानुकूलन** (classical conditioning of reflexes) है। प्रानुकूलित प्रतिवर्त ऐसे व्यवहार प्रतिरूप हैं जिनमें प्राणी किसी नए उद्दीपन को एक ऐसे उद्दीपन के साथ जोड़ लेता है जो सामान्यतः एक प्रतिवर्त पैदा करता है। इसे रूसी कार्यिकीविद् इवान पैवलोव (Ivan Pavlov) ने प्रानुकूलन पर किए गए अपने प्रतिष्ठित प्रयोगों द्वारा दर्शाया था (चित्र 14.4)। पैवलोव ने दर्शाया था कि यदि किसी भूखे कुत्ते को खाना दिखाया जाए तब एक प्रतिवर्त क्रिया से उसके मुंह में लार आने लगती है। उसके बाद उसने दर्शाया कि यदि कुत्ते को खाना देने के तुरंत पहले एक घंटी बजायी जाए अथवा प्रकाश दिखाया जाए तो शीघ्र ही कुत्ता आहार के उद्दीपन के बिना ही मात्र घंटी की ध्वनि और प्रकाश के दृश्य से लार निकालने लग जाता है। कुत्ता घंटी अथवा प्रकाश के नए उद्दीपन के प्रति अनुक्रिया करने लग जाता है और उसे आहार के साथ जोड़ लेता है।

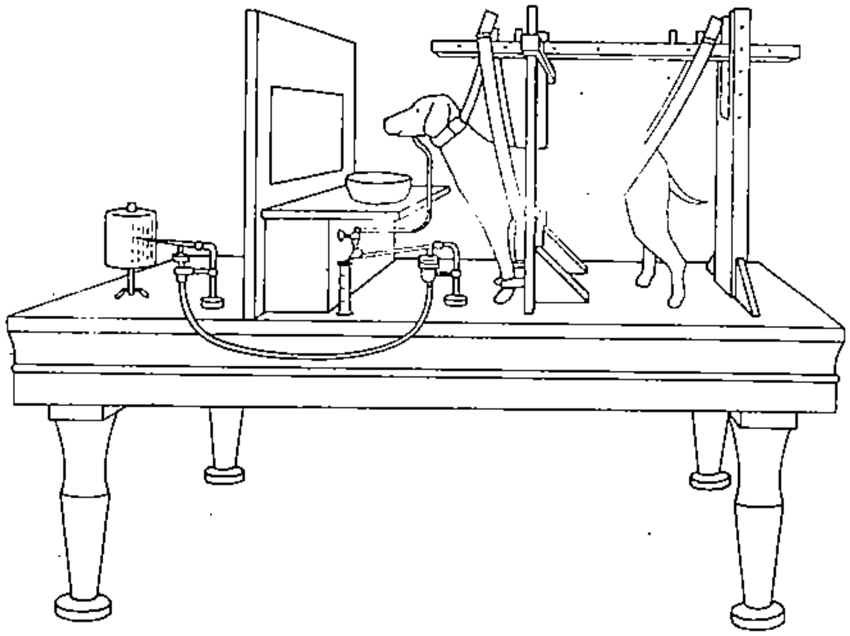

चित्र 14.4: प्रानुकूलन पर पैवलोव का चिरप्रतिष्ठित प्रयोग। एक स्टैंड पर कुत्ते को बाहरी विक्षोभ से अलग करके खड़ा कर दिया गया। उसके गाल में छेद कर के उससे एक नली डाल कर लार एकत्र की जाती है। यह एक प्लेट पर गिरती है जिसके द्वारा लार की मात्रा और कितनी देर तक लार टपकती है, यह नापा जा सकता है।

पैवेलोव ने आहार को अप्रानुकूलित (unconditioned) उद्दीपन कहा तथा लार निकलने को अप्रानुकूलित अनुक्रिया। घंटी प्रानुकूलित उद्दीपन है तथा घंटी अथवा प्रकाश की अनुक्रिया के रूप में लार निकलना प्रानुकूलित अनुक्रिया है। इसी विधि से ऐसी ही प्रानुकूलित अनुक्रिया किसी नकारात्मक उद्दीपन अथवा दण्ड से भी पैदा की जा सकती है। पैवलोवी अथवा चिरप्रतिष्ठित प्रानुकूलन प्राणियों में बहुत व्यापक पाया जाता है और यह मानव सहित उच्चतर प्राणियों के सामान्य जीवन के हर पहलू में व्याप्त है।

एक अमेरीकी मनोवैज्ञानिक बी. एफ. स्किनर ने अपना समस्त जीवन प्रचालनी (instrumental or operant) प्रानुकूलन के अध्ययन में लगा दिया। उसी के नाम पर कहा जाने वाला स्किनर-बॉक्स मूलतः एक समस्या बॉक्स होता है जिसमें किसी एक प्राणी को (स्किनर के प्रयोगों में एक चूहा) परीक्षण और चूक से बॉक्स में बनी एक शलाका को दबाने से खाने का एक कौर प्राप्त करना सिखाया जाता है। कुछ कोशिशों के बाद चूहा शलाका को बार-बार और शीघ्रता से दबाना सीख लेता है। स्किनर का मानना था कि कोई चाहे तो लगभग किसी भी अनुक्रिया का प्रानुकूलन किया जा सकता है। इन तकनीकों को भीतरी क्रियाकलापों जैसे कि हृदय गति अथवा मस्तिष्क की विद्युतीय क्रिया, जिन्हें इससे पूर्व पूर्णतः अचेतन रूप से नियमित माना जाता था, के नियमन में इस्तेमाल किया गया है।

साहचर्यात्मक अधिगम (associative learning) का एक अन्य स्वरूप **यंत्रीय प्रानुकूलन** है अर्थात् **परीक्षण और चूक (trial and error)** के द्वारा सीखना जिसमें प्रबलित उद्दीपन या तो पुरस्कार हो सकता है या दण्ड और वह तब प्रकट होता है जब कोई एक विशिष्ट व्यवहार संयोगवश किया जाता हो। यदि प्राणी को कोई एक विशिष्ट व्यवहार करने पर इनाम मिलता हो तब वह उस व्यवहार को शीघ्र ही सीख जाता है (चित्र 14.5)। इसी प्रकार यदि दण्ड मिले तब प्राणी उस क्रिया को करने से कतराएगा। अतः सही अनुक्रिया पुरस्कार प्रदान कराने में एक साधन बन जाती है। इस प्रकार से सीखने की क्रिया सर्कस के प्रशिक्षकों को सदियों से मालूम है।

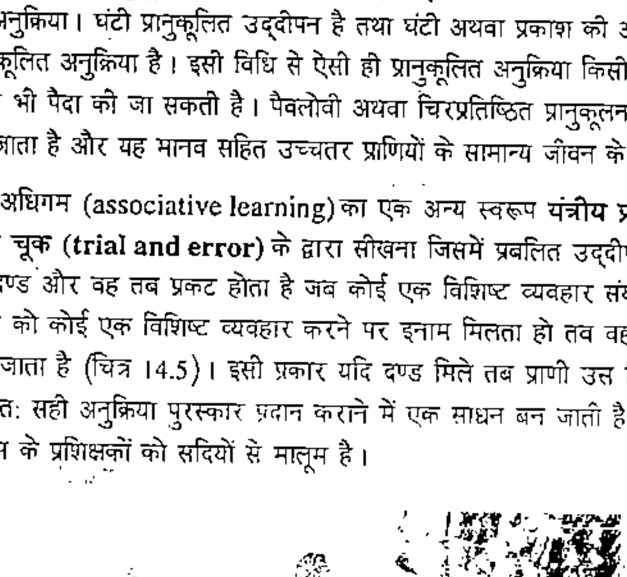

चित्र 14.5: स्किनर बॉक्स के भीतर लगे एक धात्विक लीवर को चूहा परखता है और आहार से पुरस्कृत होने पर उसे दबाना सीख जाता है और इस सारी क्रिया में आहार एक प्रबलन का कार्य करता है।

14.4.2 विलोपन तथा अभ्यसन

प्रानुकूलन में व्यवहार तब तक जारी रहता है जब तक उसका प्रबलन होता रहता है। यदि प्रबलनकारी उद्दीपन हटा लिया जाए तब सीखा हुआ व्यवहार समाप्त हो जाता है। इसे **विलोपन (extinction)**

कहते हैं। फिर भी यदि प्रानुकूलित उद्दीपन फिर से प्रबलनकारी (reinforcer) के साथ जोड़ दिया जाए तो मूल प्रानुकूलन शीघ्रता से पुनः प्राप्त हो जाता है। साथ ही यह भी सही है कि उद्दीपन के बार-बार दोहराये जाने से अक्सर एक ह्रासित अनुक्रिया होती है। इस परिघटना को **अभ्यसन (habituation)** कहते हैं जो एक प्रकार का गैर साहचर्यात्मक अधिगम है। अभ्यसन का प्रमाण सीलेंटेरेटों से लेकर मानव तक समस्त प्राणी जगत में प्राप्त हुआ है। अभ्यसन का कार्य है नयी तथा परिचित घटनाओं के बीच विभेद कर सकना तथा यह सुनिश्चित करना है कि प्राणियों का व्यवहार इन दोनों के लिए न्यूनाधिक रूप में सही है।

हम सभी ने कभी न कभी खेतों में एक अजीब सा बांस का सलीब सा ढांचा खड़ा देखा होगा जिस पर एक फटी कमीज़ या कुर्त्ता पहनाया गया होता है एवं एक उल्टी हांडी मानो मनुष्य का सिर हो, ऊपर से टिकाई गयी होती है (इसे देहात में "बिजूखा" कहते हैं)। इसे खेतों को हानि पहुंचाने वाले पक्षियों को डराने के लिए इस्तेमाल किया जाता है। जब यह मौसम में पहली-पहली बार स्थापित किया जाता है तब तो पक्षियों को दूर रखने में यह काफ़ी कारगर होता है मगर धीरे-धीरे इसका प्रभाव जाता रहता है और कभी-कभी तो पक्षियों को स्वयं इसके ऊपर ही आ बैठे देखा जा सकता है। देहातों के पालतू मवेशी अचानक किसी मोटर गाड़ी को आते-जाते देख घबरा जाते हैं जब कि शहरों में रहने वाले मवेशी सड़कों पर इतने अधिक दौड़ते-भागते वाहनों को देखकर ज़रा भी परवाह नहीं करते। इस प्रकार के अनेकानेक उदाहरण हैं जिनसे सिद्ध होता है के एक ही स्थिति के बार-बार प्रभावन से अथवा एक ही प्रकार के बार-बार दिए जाने वाले उत्तेजन से संबद्ध प्राणी के व्यवहार में परिवर्तन आ जाता है।

विलोपन अभ्यसन से भिन्न होता है क्योंकि यह पूर्णतः सीखी गयी अनुक्रियाओं से संबंध बनाते हुए होता है जब कि अभ्यसन उस सहज अनुक्रिया के साथ होता है जो किसी भी प्रानुकूलन प्रक्रियाओं के माध्यम से नही हुई है।

बोध प्रश्न 3

i) "अधिगम" को सरल शब्दों में जितना संक्षेप में समझा सकते हैं, समझाइए।

....

....

....

....

ii) एक पक्षी, "सिनेबार शलम" के काले एवं नारंगी कैटरपिलर को एक दो बार चखने के बाद उसके दुस्वाद के कारण उससे दूर रहता है। यह किस प्रकार का अधिगम है?

....

....

....

....

14.4.3 प्रच्छन्न तथा अंतर्दृष्टि अधिगम

प्रच्छन्न अधिगम (latent learning) का अर्थ पर्यावरण के उन पहलुओं से संबंधित सूचना को संचित करना है जिसे आगे चलकर प्राणी अपने आवास में मार्ग दर्शन के लिए इस्तेमाल कर सकता है। यह बिना किसी प्रकार के पुरस्कार अथवा दण्ड के होता रहता है। प्रयोगों से पता चला है कि यदि किसी चूहे को वास्तविक प्रयोग से पहले एक जटिल भूल-भूलैया के भीतर (बिना किसी पुरस्कार के) घूमने-फिरने दिया जाए तो वह आगे चल कर आहार से सबलित थोड़े से ही अधिगम परीक्षणों से अपना मार्ग ढूंढ लेता है।

अंतर्दृष्टि अधिगम (insight learning) एक प्रकार का तर्क लगाना है जो किसी समस्या के हल पर पहुंचने के लिए बीते समय के अनुभवों के परिणामों पर लगाया जाता है। अंतर्दृष्टि अधिगम केवल कुछ प्राइमेटों तथा पक्षियों में ही पर्याप्ततः होता पाया जाता है। अंतर्दृष्टि अधिगम का एक प्रतिष्ठित उदाहरण

वॉल्फ़गैंग कोह्लर को 1913 तथा 1917 के बीच समूचे प्रथम विश्व युद्ध के दौरान टेनेराइफ़ द्वीप पर नज़रबंद रखा गया था। उसने वहां के ऐंथ्रोपॉइड केंद्र में चिम्पैंज़ियों का अध्ययन किया था और अपने परिणामों को उसने एक पुस्तक "द मेंटेलिटी ऑफ़ एप्स" (अर्थात् "कपियों की मानसिकता") को सन् 1925 में प्रकाशित किया था।

वॉल्फ़गैंग कोह्लर (Wolfgang Kohler) ने चिम्पैंज़ियों पर प्रयोग करके दर्शाया था। एक दड़बे में केलों का गुच्छा ऊँचा लटकाया गया और भीतर कुछ बक्से एवं एक छड़ी इस तरह रखी गयी कि यदि उन्हें सही-सही इस्तेमाल किया गया तो चिम्पैंज़ी केलों तक पहुंच सकता था।

चिम्पैंज़ी ने पहले तो स्थिति की जांच सी की और फिर उसने बक्सों को एक के ऊपर रखकर एक स्टैंड बनाया और केलों तक पहुंच गया (चित्र 14.6)।

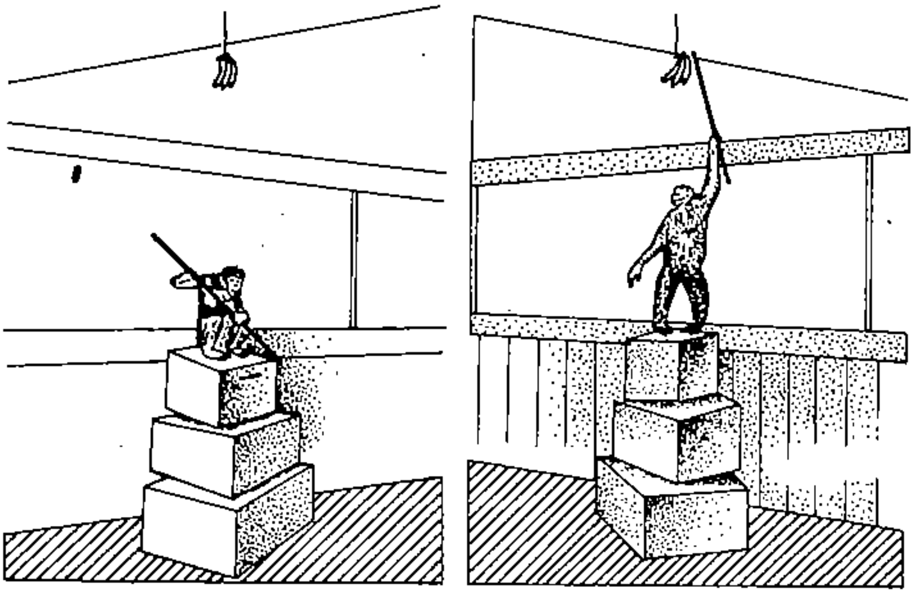

चित्र 14.6 : बंदी चिम्पैंज़ियों में देखा गया अंतर्दृष्टि अधिगम। प्राणी ने समझ लिया था कि बक्सों को एक-दूसरे के ऊपर रखकर उस पर चढ़कर वह केलों तक पहुंच सकता था।

14.4.4 अध्यंकन

हमने इकाई 13 में कहा था कि जैसे प्राणी का, शारीर तथा कार्यिकी उसके परिवर्धन के दौरान बनते हैं वैसे ही उसका व्यवहार भी आनुवंशिक रचना तथा पर्यावरण के बीच परस्परक्रिया द्वारा बनता है। कुछ प्राणियों में किसी विशिष्ट प्रकार के व्यवहार को सीख लेने की क्षमता परिवर्धन की कुछ ख़ास आरम्भिक अवस्थाओं के दौरान अधिक तीव्र होती है। इस प्रकार के अधिगम को **अध्यंकन (imprint)** अथवा "प्रछापन" कहते हैं।

कोनराड लॉरेन्ज़ (Konrad Lorenz) ने अध्यंकन पर किए गए अपने प्रसिद्ध अध्ययनों में दर्शाया था कि हंस शावक तथा बत्तख़ों के शावक अण्डों से निकलने के बाद एक क्रांतिक काल में अपने जनकों का पीछा करते हैं एवं उनके संकेतों के प्रति अनुक्रिया करना सीख जाते हैं। लॉरेन्ज ने अनुभव किया कि इस क्रांतिक अवधि के दौरान यदि हंस शावकों ने अपनी मां को न देखकर उसे देखा तब वे बच्चे उसी के पीछे चलने लग गए।

अध्यंकन के महत्वपूर्ण दूरगामी परिणाम होते हैं। जब हंस के नर शावक अथवा बत्तख़ के नर शावक वयस्क हो जाते हैं तब वे अपना लैंगिक व्यवहार उस किसी भी स्पीशीज़ के सदस्यों की ओर निर्दिष्ट करते हैं जिसके पीछे अण्डे से निकलने के बाद शावक के रूप में चले थे। स्पष्ट है कि प्रकृति में वे जिसके पीछे चलते हैं वह उनकी अपनी ही स्पीशीज़ की मादा होगी। मगर वे लैंगिकत: परिपक्व पक्षी जो लॉरेन्ज़ पर प्रछापित हो गए थे उनका प्रणय निवेदन स्वयं लॉरेन्ज़ की ही ओर निर्दिष्ट था।

अध्यंकन अनेक प्रकार के गायन पक्षियों में ख़ास तौर से महत्वपूर्ण है। यदि नर श्वेत-मुकुटी गौरैयों (white crowned sparrow) को जब वे बहुत ही छोटी थीं, बहरा कर दिया जाए तो वे टूटा-टूटा बेसुरा गाना गाती हैं न कि वास्तविक गायन। अपनी ही स्पीशीज़ की तरह गायन सीख सकने के लिए ज़रूरी है कि पक्षी स्वयं का गाया हुआ गाना भी सुन सकें।

सामान्यत: यह ज़रूरी है कि जब वे तीन महीने की आयु के होते हैं तब अपनी ही स्पीशीज़ के गायन को सुन सकें हालांकि वे अगले कुछ महीनों तक स्वयं गाना नहीं गा सकते हैं। यदि वह पक्षी जो तीन महीने की आयु पर गाना सुन चुके हैं और बाद में शेष पक्षियों से पृथक कर दिये गये हों, तब वह उस

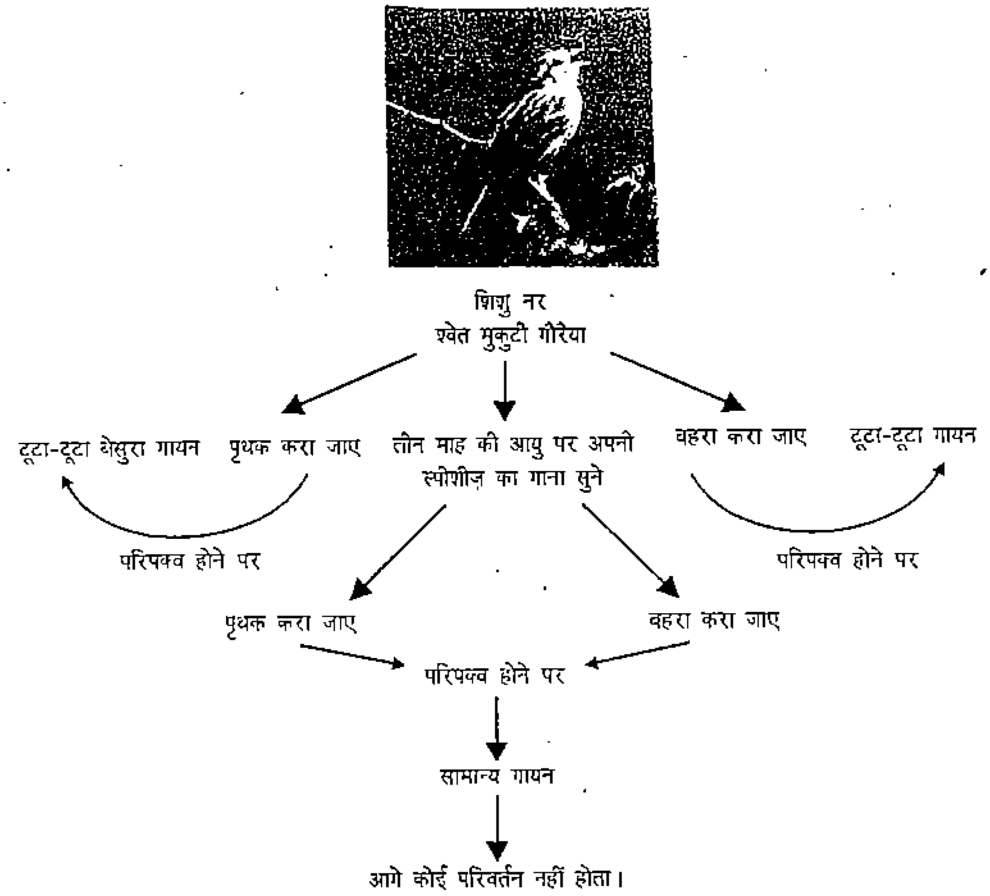

चित्र 14.7: श्वेत मुकुटी गौरेया पर किए गये परीक्षणों के कुछ परिणामों का रेखांकित चित्र।

स्पीशीज़ के न केवल मूल गायन की धुन में ही गाएंगे वरन उस स्थानीय समष्टि के ही लहजे में गाएंगे जिसका गायन उन्होनें सुना था। मगर यह अध्यंकन स्पीशीज़ विशिष्ट होता है क्योंकि शिशु पक्षी केवल अपनी ही स्पीशीज़ के गाने और लहजे को सीख सकते हैं किसी अन्य स्पीशीज़ के गाने का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

अतः इस प्रकार अध्यंकन भी एक प्रकार का अधिगम ही है जो जीव के परिवर्धन के दौरान एक क्रांतिक काल में होता है और आनुवंशिक प्रभाव में रहता है।

सामान्य परिस्थितियों में अध्यंकन के दो महत्वपूर्ण परिणाम निकलते हैं, पहला तो यह कि व्यक्ति विशेष —यानि मां के साथ सामाजिक लगाव हो जाता है और दूसरा यह कि अंततः एक उपयुक्त संगमनी की पहचान हो सकेगी। अध्यंकन व्यवहार कुछ स्तनियों में भी होता है। श्रू (shrew) की एक यूरोपीय स्पीशीज़ के नन्हें बच्चे अपनी मां अथवा सहोदरों का समूर (खाल के बालों को) पकड़े-पकड़े बच्चों की एक पंक्ति बना लेते हैं (चित्र 14.8)।

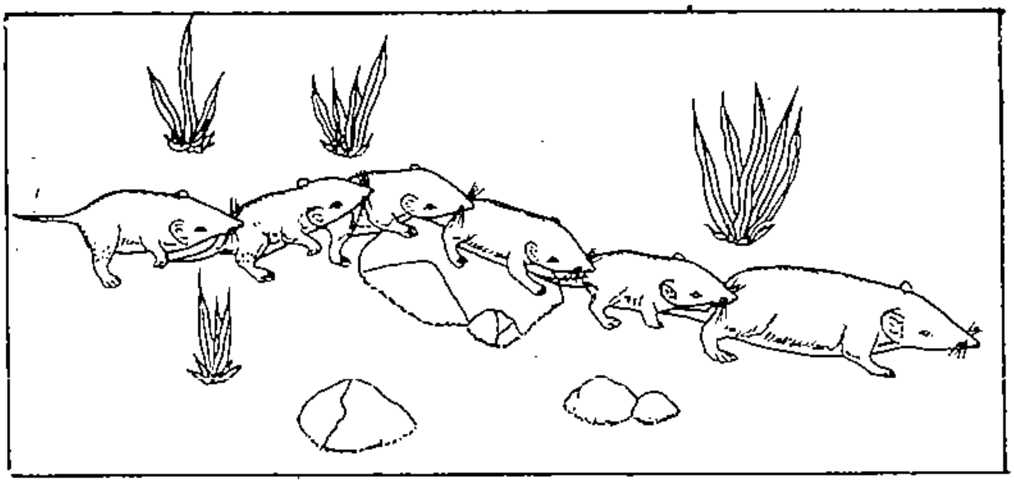

चित्र 14.8 : श्रूओं में अध्यंकन। श्रू के बच्चे अपने आरंभिक जीवन में मां की गंध पर प्रछापित हो जाते हैं और उसके पीछे एक काफ़िला बना कर चलते जाते हैं।

वे जन्म के 5 से 14 दिनों बाद के भीतर मां की गंध से प्रछापित हो जाते हैं। इस काल के पूर्व ये श्रू बच्चे यहां तक कि कपड़े तक को दबोच कर एक पंक्तिनुमा काफिला बना लेते हैं। मगर 5 दिन की आयु पर यदि उन्हें किसी अन्य स्पीशीज़ की प्रतिस्थापित यानि एवज़ी मां पेश की जाए तो वे उस पर प्रछापित हो जाएंगे और तब यदि 15 दिन की आयु पर उन्हें फिर से अपनी असली मां के पास लाया जाए तो वे उस असली मां के पीछे नहीं चलेंगे।

बोध प्रश्न 4

निम्नलिखित उदाहरणों में किस प्रकार का अधिगम होता है, पहचान कर लिखिए:-

क) एक मेमना दूध पीना छूट जाने एवं बेड़े में शामिल हो जाने के बाद भी अपने उस रखवाले के पीछे-पीछे हो लिया करता है जिसने उसे बोतल से दूध पिलाया था।

ख) एक चिम्पैंज़ी अपने पिंजरे के बाहर रखे हुए केले को प्राप्त करने के लिए एक डंडी का इस्तेमाल करता है।

ग) पालतू कुत्ता पटाख़े की आवाज़ सुन कर चौंक जाता है जबकि हर रोज़ घर के ऊपर अपेक्षाकृत कम ऊँचाई पर उड़ते वायुयानों का उस पर कोई असर नहीं होता।

14.5 व्यवहार का विकास

व्यवहार का स्वरूपण और रूपांतरण विकास के द्वारा उसी प्रकार से हो सकता है जैसे कि शारीरीय तथा कार्यिकीय लक्षणों का होता है, यह विषय डार्विन की पुस्तक "ऑरिजिन ऑफ स्पीशीज़" का मुख्य पहलू है। उसकी अवधारणाओं को कोनराड लॉरेन्ज़, कार्ल वॉन फ्रिश तथा निको टिंबरगेन ने और आगे स्पष्ट किया जिसके लिए इन्हें 1973 में नोबेल पुरस्कार मिला और तब से इन अवधारणाओं को अन्य व्यवहारिकीविदों ने और आगे बढ़ाया है।

अभी तक हम केवल सहज व्यवहार एवं सीखे गये व्यवहार के बीच प्रत्यक्ष अंतर पर ही चर्चा करते रहे। आइए अब देखें कि व्यवहारों का मूलभूत अथवा विकासीय आधार क्या है। हम देखते हैं कि प्राणियों में व्यवहार करने की विधियां अनन्त हैं और अंत में वे ही प्राणी जीवित बने रह पाते हैं जिनमें उपयुक्त संरचनाएं एवं व्यवहार प्रतिरूप पाए जाते हैं। प्राकृतिक वरण (natural selection) की प्रक्रिया सभी स्पीशीज़ पर दबाव डालती है कि वे अपने बदलते हुए पर्यावरणों के प्रति स्वयं को अनुकूलित कर सकें और इस प्रकार स्पीशीज़ अपना प्रक्षेत्र बढ़ाती जाती एवं नए आवासों में पहुंचती जाती हैं। यह प्रक्रिया अंतहीन है और सभी स्पीशीज़ विकसित होती जाती हैं। जीवाश्मी रिकार्ड से यह प्रमाण तो मिल जाता है कि प्राणी संरचनाएं विकसित हुई हैं मगर व्यवहार के विषय में अक्सर कहा जाता है कि यह अपना कोई प्रमाण नहीं छोड़ता और इसलिए सिद्ध करना कठिन होता है कि व्यवहार का भी कोई विकास हुआ है।

मगर ऐसा केवल आंशिक रूप में ही सही है। जीवाश्मी रिकार्ड अक्सर व्यवहार प्रतिरूपों के संकेत भी प्रदान करते हैं। उदाहरणतः *आर्कियॉप्टेरिक्स (Archaeopteryx)* में पंख तो थे मगर उसकी उरोस्थि में नौतल नहीं थी जिससे लगता है कि यह प्राणी वास्तव में उड़ता नहीं होगा वरन् विसर्पण (ग्लाइडिंग) करता होगा।

व्यवहार के विकास के अध्ययन का एक और मार्ग है आज की स्पीशीज़ से जीवाश्मी रिकार्ड की तुलना करना। उदाहरणतः डाइनोसौरों के शीर्ष-अलंकरणों की भूमिका को आज के हिरनों एवं कुछ ख़ास बीटलों जिनमें शीर्ष अलंकरण होते हैं, के व्यवहारों की तुलना करके नतीजा निकाला जा सकता है।

ऐसा बहुत सा परोक्ष प्रमाण भी मिलता है जिससे व्यवहार के विकास का समर्थन होता है। प्रयोगों से सिद्ध हुआ है कि कुछ ख़ास जीन अथवा उनके उत्परिवर्तन (म्यूटेशन) व्यवहार के कुछ ख़ास अंशों को प्रभावित करते हैं। आप इकाई 13 के उपभाग व्यवहार का आनुवंशिक आधार में पढ़ चुके हैं कि प्रसंकरण प्रजनन प्रयोगों ने व्यवहार को अनुवंशिकता से जुड़ा दर्शाया है (लवबर्ड्ज़ की प्रसंकरण जनित स्पीशीज़ का घोंसला बनाना संबंधी व्यवहार देखिए)। स्पष्ट है कि जीनों के सम्मिश्रण से व्यवहार का भी सम्मिश्रण हो गया था। प्राकृतिक वरण व्यवहार पर उसी प्रकार कार्य करता है जैसा कि विकास-मत द्वारा पूर्वघोषित होता है और इसका प्रमाण पालतू जानवरों पर किए गए प्रजनन प्रयोगों से मिल जाता है। विशेष व्यवहार लक्षणों के लिए चयनात्मक प्रजनन सदियों से कराया जाता रहा है। कुत्तों को नानाविध उद्देश्यों के लिए प्रजनित कराया गया है जैसे कि आक्रामकता, तेज दौड़ने तथा समूहन करने की क्षमता के लिए विविध प्रकार के आखेटन के लिए, आदि-आदि। एक अन्य विधि है जिसमें यह देखना होता है कि यदि किसी एक प्रकार का व्यवहार और उसके प्रभाव हटा दिए जाएं तो जीव की उत्तरजीविता किस प्रकार प्रभावित होती है। ऐसा इसलिए कि यदि व्यवहार प्राकृतिक वरण का व्युत्पाद है जो उसमें कमी आने से जीव की उत्तरजीविता एवं जनन सफलता भी प्रभावित होनी चाहिए। प्रयोगों से

दर्शाया गया कि उन घोमरा पक्षियों के जीवित रहने की दर अधिक होती है जो अपने घोंसलों में से अंडे के छिलकों को हटाते हैं क्योंकि सुस्पष्ट दिखने वाले अण्डों के छिलके इस बात की संभावना बढ़ा देते हैं कि लौमड़िया घोंसले पर धावा बोल दें।

इस प्रकार के अनेक उदाहरणों के बावजूद हम पाते हैं कि यह कहना कठिन है कि कोई व्यवहार-विशेष किस प्रकार विकसित हुआ; क्योंकि व्यवहार बहुत लचीला अर्थात् परिवर्तनशील होता है। जहां एक ओर किसी स्पीशीज़ में कुछ ख़ास व्यवहार प्रतिरूप जैसे कि प्रदर्शन करना स्थाई होते हैं, वहीं दूसरी ओर व्यवहार के अन्य पहलू हैं जो बदलते रह सकते हैं। इस सबके अलावा किसी व्यवहार-विशेष में अधिगम एवं अनुभव की एक शक्तिशाली भूमिका होती है। प्राणी अपने व्यवहार के ही कारण भिन्न स्थानों में आ जा सकते, नए आहार का चयन कर सकते हैं और अपने पर्यावरण में नानाविध रूप में परिवर्तन ला सकते हैं। इस प्रकार किया गया कोई भी कार्य प्राणी पर वरणात्मक बलों के प्रभाव को परिवर्तित कर सकता है।

आइए इसे और विस्तार से समझें। हो सकता है कोई एक प्राणी केवल एक फल नीली "बेरियां" ही खाता हो। मान लीजिए किसी एक वर्ष इन नीली बेरियों का अभाव हो जाता है। इस स्थिति में केवल वे ही सदस्य जीवित बने रह सकते हैं जिनका व्यवहार इतना लचीला तो होगा ही कि वे अब किसी दूसरे रंग की, मान लिया कि लाल "बेरियां" खा सकेगा। इस प्रकार की आपदाओं की एक के बाद एक आने की स्थिति में वे प्राणी जो वैकल्पिक आहार खाना सीख जाते हैं देर से सीखने वालों की अपेक्षा अधिक उचित पाए जाएंगे। ऐसा तब तक होता रहेगा जब तक कि अंततः सभी उत्तरजीवित प्राणी लाल बेरियों को खाना सीख ही नहीं जाते वरन् अपने सहज व्यवहार के रूप में उन्हें सामने पाते ही खा जाएंगे। इस प्रकार का उदाहरण दर्शाता है कि विकास और व्यवहार के बीच पायी जाने वाली परस्परक्रीड़ा कितनी जटिल एवं रोचक होती है।

बोध प्रश्न 5

क) व्यवहार के विकास से आप क्या समझते हैं? संक्षेप में बताइए।

....

....

....

....

ख) बताइए कि निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत :

(i) आज जो-जो प्राणी हम देखते हैं उनमें संरचनात्मक अनुकूलनों तथा परिष्कृत व्यवहार प्रतिरूपों का जो एक संयोजन पाते हैं वह अनेक पीढ़ियों में विकसित हुआ है और वही उन्हें उत्तरजीविता प्रदान करा पाता है।

(ii) प्रसंकरण द्वारा प्रजनन प्रयोगों से सिद्ध नहीं होता कि व्यवहार को प्राकृतिक वरण द्वारा बदला जा सकता है।

(iii) व्यवहार के विकास में जीवाश्मी रिकार्ड का पूरी तरह अभाव है, अतः व्यवहार के विकास का कोई निर्णायक प्रमाण मौजूद नहीं है।

14.6 व्यवहार की अनुकूलनशीलता

कोई भी प्राणी अपने जीवन काल में अपनी शारीरिक विशिष्टताओं को नहीं बदल सकता इसलिए सतत परिवर्तनशील पर्यावरण के प्रति लगातार समंजन बनाए रखने का जो एक मात्र साधन है वह व्यवहार में परिवर्तन अथवा रूपांतरण ही है। पर्यावरण मांगों के प्रति किसी भी प्राणी का व्यवहार केवल कुछ निश्चित सीमा के भीतर ही बदल सकता है।

व्यष्टि अथवा समूह जिनकी व्यवहारात्मक विशिष्टताएं किसी निर्दिष्ट पर्यावरण के लिए सर्वाधिक उचित होती हैं वे अधिक संख्या में जीवित बच पाते और अन्य की तुलना में अधिक लम्बे समय तक जीते हैं। ऐसे व्यष्टि अथवा समूह ही कम उपयुक्त व्यष्टियों अथवा समूहों की तुलना में अपने पीछे अधिक संख्या

में संतानें छोड़ते हैं। इस प्रकार समष्टि में निरंतर ऐसे ही प्ररूपों की प्रधानता होती पायी जाती है जो व्यवहार की दृष्टि से (और शारीरिक तौर पर भी) किसी एक निर्दिष्ट पर्यावरण के साथ सर्वाधिक ताल-मेल बनाए हों, यानि यूं कहें कि वे जो सबसे अच्छी तरह "अनुकूलित" हैं।

प्रश्न है कि हमें कैसे पता चले कि कोई एक ख़ास व्यवहार अनुकूली है या नहीं, यानि कि क्या वह व्यवहार उस एक व्यष्टि, अथवा कुल मिलाकर उस स्पीशीज़, की योग्यता बढ़ा रहा है? व्यवहारिक पारिस्थितिकीविज्ञ अथवा अनुकूलनविज्ञ इसे स्पष्ट करने के लिए कई विधियां इस्तेमाल करते हैं जिनमें वे प्रयोगों द्वारा अतिरिक्त प्रेक्षण करके अथवा भिन्न आवासों में रहने वाली संबंधित स्पीशीज से प्राप्त आंकड़ों से तुलना करके स्पष्ट करते हैं। एक प्रतिष्ठित उदाहरण है जिसमें "किटिवेक (*रिस्सा ट्राइडैक्टिला, Rissa tridactyla*) समुद्र तट समीपीय शिला फलकों (ledges) पर घोंसला बनाने वाले पक्षी के तथा थल पर घोंसला बनाने वाले घोमरों के नीडन स्वभावों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। परभक्षी खतरे के अभाव के फलस्वरूप किटिवेक पक्षी भूस्थल-नीडनकारी घोमरों के कुछ लक्षण तो कायम रखे हुए हैं मगर उनमें कई परभक्षी विरोधी अनुकूलन समाप्त हो गए जान पड़ते हैं। उदाहरणत: वे घोंसलों का छद्मावरण (camouflaging) नहीं कर पाते, वे शायद ही कभी सचेतनकारी आवाज़ें निकालते हों, और वे अपने परभक्षियों का सामूहिक रूप में घेराव भी नहीं करते (उधर ज़मीन के घोमरे घोंसलों के समीप आने वाले किसी भी परभक्षी को सामूहिक रूप में घेर लेते हैं, इस व्यवहार को "मॉबिंग, (mobbing)" अर्थात् घेराव कहते हैं। वास्तव में किटिवेकों में चट्टानी फलकों पर घोंसला बनाने के लिए विशेष अनुकूलन होते हैं, और इस प्रकार विभिन्न आवासों में रहने वाली निकटत: संबंधित स्पीशीज की तुलना से अक्सर वे व्यवहार के पहलू सामने आ जाते हैं जो प्राणी को उसके पर्यावरण के लिए अनुकूलित होने में विशेष तौर पर महत्वपूर्ण है। आप अनुकूली व्यवहार का और अधिक विस्तृत अध्ययन इसी खण्ड की अंतिम इकाई (इकाई-16) में कर सकेंगे।

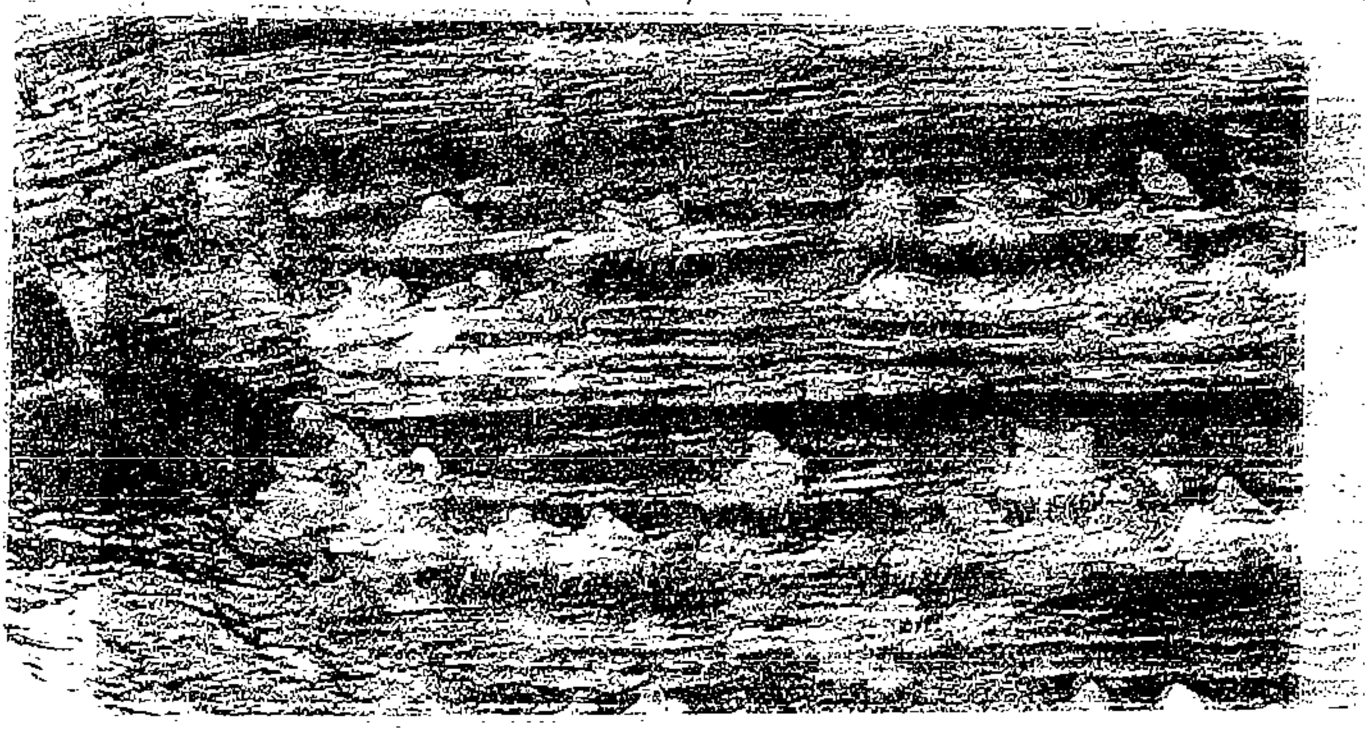

चित्र 14.9 : चट्टानी फलकों पर किटिवेक घोमरो के घोंसले। किटिवेक के नखरित पाद उनको संकरे से संकरे चट्टानी फलकों को पकड़ने में सहायक होते हैं।

बोध प्रश्न 6

ऐसा क्यों है कि केवल व्यवहारात्मक अनुकूलन ही सतत परिवर्तनशील पर्यावरण के साथ लगातार समंजन बनाने वाला एकमात्र साधन है?

....

....

....

....

14.7 सारांश

इस इकाई में आपने सीखा:

- व्यवहार संबंधी आधारभूत प्रश्न दो वर्गों में रखे जा सकते हैं। **किस प्रकार** आनुवंशिक, परिवर्धन संबंधी तथा कार्यिकीय क्रियाविधियां किसी एक प्राणी को उसके विशिष्ट तरीके से व्यवहार कराती हैं और यह भी कि प्राणी समस्त विकास के दौरान एक ख़ास तरीके से ही **क्यों** व्यवहार करते हैं?
- शारीरीय तथा कार्यिकीय विशिष्टताओं में अंतर के परिणामस्वरूप स्पीशीज़ में व्यवहार के लिए भिन्न क्षमताएं होती हैं।
- यदि किसी प्राणी में प्रकटत: बिना सीखे (दूसरों से अथवा परीक्षण और चूक द्वारा) कोई व्यवहार प्रतिरूप परिवर्धित होता है, तब उसे "जन्मजात" कहा जाता है। परंतु ध्यान में रखना चाहिए कि व्यवहार न तो सब चीज़ों से अलग मात्र प्राणी के भीतर ही बनता है और न ही मात्र पूर्णत: बाहरी पर्यावरण कारकों के प्रभाव से।
- सरलतम जीवों (प्रोटोज़ोआ, सीलेंटेरेटा, आदि) में सहज व्यवहार "अनुचलनों" के रूप में पैदा होता है जबकि "प्रतिवर्त" निम्नतर एवं उच्चतर दोनों ही प्रकार के अति विविध जीवों में पाया जाता है। "सहज" व्यवहार मधुमक्खियों से लेकर पक्षियों एवं स्तनियों तक विविध प्राणि वर्गों में देखा जाता है।
- अधिगम द्वारा व्यवहार में उस सीमा तक उचित फेर-बदल हो सकते हैं जितना कि प्राणी के शारीरीय एवं कार्यिकीय अभिलक्षण संभव बना सकते हैं (क्षमता)। यह फेर-बदल प्राणियों को सतत् परिवर्तनशील पर्यावरण के साथ ताल-मेल बनाए रखने में सहायता करते हैं।
- क्योंकि शारीरीय तथा कार्यिकीय परिवर्तन पर्यावरणीय परिवर्तनों के अनुसार व्यष्टियों के जीवन काल के दौरान नहीं आ सकते इसलिए परिवर्तनशील पर्यावरण के प्रति व्यष्टियों के अनुकूलन का एक मात्र साधन व्यवहार को बदलना है।

14.8 अंत में कुछ प्रश्न

1. FAP के दो उदाहरण दीजिए।

....

....

2. "जन्मजात व्यवहार" का क्या अर्थ है, समझाइए।

....

....

3. "अनुचलनों" तथा "प्रतिवर्तों" में विभेद कीजिए।

....

....

4. "सहज प्रवृत्ति" की परिभाषा लिखिए तथा समझाइए कि सहज प्रवृत्ति व्यवहार कैसे परिवर्धित होता है।

....

....

5. अधिगम द्वारा-अपना व्यवहार थोड़ा सा बदल सकने की प्राणी की क्षमता का पारिस्थितिकीय महत्व क्या है?

....

....

6. क्या प्राणी, अपना व्यवहार बिना बदल पाए ही, उस परिवर्तनशील पर्यावरण जिसमें वे रहते हैं, के साथ ताल-मेल बनाए रख सकते हैं?

....

....

7. "व्यवहार की अनुकूलनशीलता" से आप क्या समझते हैं?

....

....

8. "व्यवहार-विकास" की परिघटना को संक्षेप में बताइए।

....

....

14.9 उत्तर

बोध प्रश्न

1. क) (i) प्रत्यक्ष, मूलभूत
   (ii) शारीरीय, कार्यिकीय
   (iii) पारिस्थितिकीय

   ख) सहज प्रवृत्ति व्यवहार अपरिवर्तनीय तथा आनुवंशिक: रूप में प्रोग्रामित व्यवहार होता है, इसमें अधिगम का समावेश हो भी सकता है और नहीं भी। इसके विपरीत सीखा गया व्यवहार वह होता है जो अनुभव द्वारा रूपांतरित होता है।

2. क) (i) गलत, (ii) सही, (iii) सही, (iv) गलत

   ख) जन्मजात व्यवहार

3. (i) किसी व्यष्टि के तंत्रिका तंत्र में (उच्चतर प्राणियों के संबंध में मस्तिष्क) उन तमाम प्रेक्षणों और अनुभवों का भंडारण होना जिसके फलस्वरूप उनके हित के लिए व्यवहार में परिवर्तन हो सकता है, अधिगम कहलाता है।

   (ii) अनुकूली प्रतिवर्त

4. क) प्रछाप या अध्यंकन

   ख) अंतर्दृष्टि

   ग) अभ्यसन

5. क) व्यवहार में धीरे-धीरे परिवर्तन जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी प्राकृतिक वरण द्वारा लाया जाता है व्यवहार का विकास कहलाता है।

   ख) (i) सही, (ii) गलत, (iii) गलत

6. क्योंकि स्पीशीज़ के शारीरीय तथा कार्यिकीय लक्षण नहीं बदलते मगर परिवर्तनशील पर्यावरण में अनुकूलित होने के लिए व्यवहार धीरे-धीरे रूपांतरित होता जाता है।

अंत में कुछ प्रश्न

1. (i) मनुष्यों में जँभाई आना। सभी जँभाई 6 सेकंड तक चलती हैं। चाहे कोई भी जँभाई ले रहा है उसे बीच में रोकना कठिन होता है और उसे देखकर दूसरे भी जँभाई लेने लगते हैं।

   (ii) घोमरो के चूज़े में आहार याचना व्यवहार एक FAP होता है जो जनक हेरिंग घोमरे की चोंच के सिरे पर बने लाल बिंदु को देखकर विमोचित होता है।

2. जब व्यवहार अधिगम से स्वतंत्र रूप में पैदा और परिवर्धित होता दिखायी पड़ता है, तब उसे "जन्मजात" कहा जाता है।

3. "अनुचलनों" तथा "प्रतिवर्तों" में स्पष्ट विभेद कर पाना यदि असम्भव नहीं तो कम से कम कठिन तो बहुत है ही। फिर भी, अनुचलनों में प्रायः जीव के समूचे शरीर का दिशान्यास किया जाना होता है जब कि प्रतिवर्तों में शरीर के केवल एक ही भाग में अनुक्रिया होती है।

4. जब कोई प्राणी बिना कुछ सीखे अंतर्निहित अनुकूली प्रतिक्रियाएं दर्शाता है तो इस प्रकार के व्यवहार को सहज वृत्ति की श्रेणी में रखा जाता है। सहज वृत्ति को प्राणी में भीतरी स्थितियों और बाह्य प्रभावों की परस्परक्रिया का परिणाम माना जाता है। यह परस्परक्रिया प्रजाती विशेष व्यवहार होती है।

5. सीखने की क्षमताएं प्राणी को एक अवसर प्रदान कराती हैं जिसके द्वारा उसके जीवन काल के दौरान उसके व्यवहार में उचित परिवर्तन लाए जाते हैं।
6. नहीं, यदि प्राणी नियमित रूप में परिवर्तनशील पर्यावरण के अनुसार अपने को नहीं बदलता तब वह उसके साथ ताल-मेल नहीं बना सकता।
7. किसी विशिष्ट पर्यावरण में रह रही किसी स्पीशीज़ में सही व्यवहारात्मक अनुक्रियाओं की स्थापना को व्यवहार की अनुकूलनशीलता कहते हैं।
8. किसी स्पीशीज़ के व्यवहार में प्राकृतिक वरण की प्रक्रिया द्वारा लाए जाने वाले अनुकूली परिवर्तनों की नियमित प्रक्रिया ही व्यवहार का विकास है।

इकाई 15 व्यवहार का संगठन

इकाई की रूपरेखा

15.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
15.2 संघटनकारी क्रियाविधियां
तंत्रिकीय आदेश केंद्र
लयबद्ध व्यवहार
व्यवहार के संगठक के रूप में हॉर्मोन
15.3 प्रवास
15.4 सामाजिक संगठन
सामाजिकता के लाभ एवं उससे हानि
सामाजिक व्यवहार प्रतिरूपों के प्ररूप
प्राइमेट सामाजिक संगठन
15.5 संचार
दृष्टि संकेत
ध्वनिक संकेत
स्पर्श संकेत
रासायनिक संकेत
प्राणी किस बात का संचार करते हैं?
15.6 सारांश
15.7 अंत में कुछ प्रश्न
15.8 उत्तर

15.1 प्रस्तावना

व्यवहार पर दी गयी पिछली दो इकाइयों में आपने पढ़ा था कि प्राणियों के व्यवहार का अध्ययन भिन्न-भिन्न अध्ययन मार्गों (उपागमों) द्वारा किया जा सकता है। व्यवहारिकीविज्ञ दो बातों पर ध्यान केंद्रित करते हैं एक तो व्यवहार की क्रियाविधियों पर (प्रत्यक्ष कारण, proximate causes) और साथ ही व्यवहार के कार्य एवं विकास पर (मूलभूत कारण, ultimate causes)। आप जानते हैं कि व्यवहार प्रतिरूप किस प्रकार का बनेगा यह इस पर निर्भर है कि जीव और उसके पर्यावरण में किस प्रकार की पारस्परिक क्रिया हो रही है और किसी भी बाहरी तथा भीतरी उद्दीपनों के प्रति प्राणी में क्या अनुक्रिया होगी अथवा उसका क्या व्यवहार होगा यह इस बात पर निर्भर है कि प्राणी की शारीरीय एवं कार्यिकीय क्षमता क्या है।

प्राणियों द्वारा किया जाने वाला अधिकतर व्यवहार जटिल होता है तथा जो वैज्ञानिक व्यवहार का अध्ययन करते हैं वे अक्सर व्यवहार की सरल इकाइयों अथवा उसके सरल प्रतिरूपों को ही चुनते हैं जिनके विषय में उन्हें आशा होती है कि उनसे अधिक जटिल क्रियाविधियों के अनिवार्य पहलू स्पष्ट हो जाएंगे। उदाहरणत: सामाजिक व्यवहार अथवा अनुरंजन एवं संगमी व्यवहार उन सब छोटी-छोटी व्यवहार-क्रियाओं का चरम स्वरूप होता है जो एक दैहिक विधि द्वारा परस्पर जुड़ी एवं संगठित होती हैं।

इस इकाई में आप जान सकेंगे कि व्यवहार किस प्रकार विभिन्न स्तरों पर, क्षण प्रति क्षण पूरे दिन के दौरान, सप्ताह प्रति सप्ताह और प्रजनन ऋतु के दौरान अथवा सम्पूर्ण वर्ष पर्यन्त संगठित रहते हैं। हम प्राणियों में जैविकीय ताल (rhythms) एवं उनके प्रवास व्यवहार का संक्षेप में विवेचन करेंगे। प्रवास व्यवहार के स्थानगत संगठन का एक उदाहरण है।

कुछ प्राणियों में अपनी ही जाति के अन्य सदस्यों से बहुत कम सम्पर्क होता है मगर कुछ स्पीशी अन्य सदस्यों के साथ समाकलन एवं संचार बनाए रखना एकदम स्पष्ट होता है। एक ही स्पीशीज़

विभिन्न सदस्यों के बीच सहकारी परस्परक्रिया के द्वारा किस प्रकार प्राणि-समाजों की संघटना होती है एवं उनके भीतर विभिन्न संचार विधियां क्या-क्या होती हैं, इन पर भी चर्चा करेंगे। इस इकाई में हमारा विशेष ध्यान यह बताने का रहेगा कि कोई प्राणी अपना व्यवहार कैसे करता है। इससे अगली इकाई अनुकूली व्यवहार पर आधारित होगी जिसमें हम यह जानने कि कोशिश करेंगे कि कोई प्राणी व्यवहार क्यों करता है।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- जिन-जिन विविध स्तरों पर व्यवहार संगठित है, उनकी परिभाषा कर सकेंगे,
- कशेरुकियों में व्यवहार के गठन की अल्पकालिक तथा दीर्घकालिक क्रियाविधियों का वर्णन कर सकेंगे,
- कशेरुकियों में जैविकीय ताल तथा जैविकीय घड़ी के उदाहरण दे सकेंगे,
- कुछ ख़ास स्पीशीज़ों में प्रवास व्यवहार समझा सकेंगे, तथा
- कशेरुकियों में संचार विधियों एवं सामाजिक संगठन का स्पष्टीकरण कर सकेंगे।

15.2 संघटनकारी क्रियाविधियां

प्राणियों के व्यवहार को विभिन्न स्तरों पर देखा-समझा जा सकता है। उदाहरणत: जब हम सामाजिक व्यवहार अथवा अनुरंजनी एवं संगमी व्यवहार का अध्ययन कर रहे होते हैं, तब हम स्पीशीज़ के समष्टि स्तर पर व्यवहार का अध्ययन करते हैं। समष्टि के व्यवहार को समझने के लिए हमें छोटे समूहों को देखना होगा, अर्थात् उस स्पीशीज़ के एक समूह में अनुरंजन व्यवहार को। यह समूह व्यवहार भी निश्चय ही व्यक्तिगत सदस्यों के व्यवहार का ही बना होता है।

हम ये जानते हैं कि प्राणी जो कुछ भी करते हैं उसका विश्लेषण उन विशिष्ट छोटी-छोटी क्रियाओं के रूप में किया जा सकता है जो एक साथ मिलकर व्यवहार-प्रतिरूप बनाती हैं और ये प्रतिरूप अक्सर स्पीशीज़-विशिष्ट होते हैं। दूसरी बात यह है कि ये सब व्यवहार प्रतिरूप भीतरी तथा बाहरी पर्यावरण से आने वाले उद्दीपनों के प्रति अनुक्रिया के रूप में होते हैं। व्यवहार प्रतिरूप की प्रत्येक छोटी क्रिया की संघटना में भिन्न-भिन्न घटक कार्य करते हैं जो इस प्रकार हैं :-

1) शारीरीय (anatomical)
2) तंत्रिकीय (neurological)
3) कार्यिकीय (physiological)

अत: यदि हम एक प्रवाह-चार्ट बनाएं जिसमें दिखाया गया हो कि कोई भी व्यवहार प्रतिरूप किस प्रकार गठित होता है तो वह कुछ-कुछ ऐसा होगा:-

समष्टि
↑
समूह
↑
व्यष्टिगत सदस्य
↑
इकाइयां
↑
प्रतिरूप
↑
क्रियाकलाप
↑
घटक
(शारीरीय, तंत्रिकीय, कार्यिकीय)

15.2.1 तंत्रिकीय आदेश केंद्र

हर प्राणी को अपने पर्यावरण से सतत् उद्दीपन अथवा संकेत मिलते रहते हैं। यदि वह ऐसे प्रत्येक उद्दीपन के प्रति एक साथ अनुक्रिया करने लग जाए तो व्यवहार जैसी कोई चीज़ न होकर मात्र एक अस्तव्यस्तता ही होगी। कुछ उद्दीपनों को दबा देना जरूरी होता है ताकि व्यष्टि बिना किसी अन्य स्पर्धाकारी व्यवहार द्वारा व्यन्ध पड़े एक समग्र रूप में क्रिया कर सके। उदाहरणत: बच-भाग निकलने वाला

बच-भाग निकलने की क्रिया में तंत्रिकीय क्रियाकलाप अन्य सभी क्रियाकलापों को दबा देता है।

उद्दीपनों को छांटने की क्रियाविधियों का अनुकूलनी महत्व तो आसानी से समझ में आ जाता है मगर प्रश्न यह है आख़िर तंत्रिका तंत्र के गठन में वह क्या चीज़ है जो अनुक्रियाओं के परस्पर विरोध को सामने नहीं आने देती? इस व्यवहार की संघटना के स्पष्टीकरण की दिशा में एक मुख्य अभिधारणा यह है कि प्राणियों के तंत्रिका तंत्र में **तंत्रिकीय आदेश केंद्रों (neuronal command centres)** की भरपूर संख्या पायी जाती है। आप जन्मजात निर्मोचन क्रियाविधियों (innate releasing mechanism) तथा गायन प्रतिरूप तंत्र से पहले ही परिचित हैं (देखिए पिछली इकाई)। ये सब तंत्रिका तंत्र के भीतर स्थित तंत्रिकीय आदेश केंद्र अथवा इकाइयां हैं जो किसी विशेष अनुक्रिया को सक्रिय कर देने के लिए उत्तरदायी होते हैं। ये विविध केंद्र एक-दूसरे के सम्पर्क में रहते हैं तथा एक-दूसरे को संदमित कर सकते हैं। इस प्रकार किसी ख़ास व्यवहार को करते समय प्राणी परस्परविरोधी क्रिया को नहीं होने देता। प्रतिस्पर्धी आदेश केंद्रों का संदमन होने के कारण प्राणी एक समय में एक ही क्रिया करने का क्रम बनाए रख सकता है बजाए इसके कि सब क्रियाएँ एक साथ हों।

15.2.2 लयबद्ध व्यवहार

तंत्रिकीय आदेश केंद्र न केवल एक-दूसरे के ही साथ संचार करते हैं वरन् वे उस जैविक घड़ी (biological clock) से आने वाले संकेतों को भी प्राप्त करते हैं जो प्राणी को दिन के समय-विशेष, महीना अथवा वर्ष के अनुसार अपने व्यवहार में परिवर्तन लाने में सहायता करती हैं। इस प्रकार प्राणी तंत्रिका तंत्र से व्यवहार के आवर्ती चक्र पैदा होते हैं। आपने LSE-09 की इकाई-15 में पढ़ा था कि प्राणियों के क्रियाकलापों में जैवताल (biorhythms) अर्थात् लयबद्धता पायी जाती है। प्राणियों में एक भीतरी घड़ी या आंतरिक पूर्वसूचक तंत्र (internal anticipatory system) विकसित हो गए हैं ताकि बाहरी पर्यावरण में होने वाले समयबद्ध परिवर्तनों की पूर्वघोषणा हो सके और उनके लिए तैयारी की जा सके। इन्हीं चक्रीय नियंत्रण क्रियाविधियों से दैनिक लयबद्धताएं, मासिक चक्र, अथवा वार्षिक लयबद्धताएं बनती हैं। उदाहरणतः, समुद्रतट पर रहने वाले अनेक समुद्री प्राणियों के क्रियाकलाप, ज्वार चक्रों से जुड़े होते हैं, अनेक प्राणी अपने प्रजनन क्षेत्रों की ओर और फिर वहां से वापिस आने का क्रम अर्थात् प्रवास वर्ष में दो बार करते हैं तथा अनेक प्राणियों में शीतनिष्क्रियता के वार्षिक चक्र होते हैं। आपको याद होगा कि जैविक तालें दो प्रकार की हो सकती हैं—अंतर्जात तथा बहिर्जात। अंतर्जात यानि वे जो जैविक घड़ियों द्वारा भीतर से नियमित होती हैं और जिनसे 24 घंटे के काल (दिवसप्राय, circadian) अथवा 365 दिन के काल (वर्षप्राय, circannual) के गुज़रने का पता लग सकता है। बहिर्जात तालें पर्यावरण संकेतों द्वारा नियंत्रित होती हैं, तथा ऐसी तालें भी होती हैं जो दोनों प्रकार का मिलाजुला रूप होती हैं यानि इनमें अंतर्जात एवं बहिर्जात घड़ियां परस्परक्रिया करती एवं पर्यावरण संकेतों द्वारा पुनः सेट होती रहती है।

दिवसप्राय तालें (Circadian rhythms)

सभी जैवतालों में से सर्वाधिक व्यापक एवं अच्छी तरह समझ ली गयी ताल दिवसप्राय तालें हैं, ये ऐसी लयबद्धताएं हैं जो अपरिवर्तनीय दशाओं में भी बनी रहती हैं। दिवसप्राय तालों से संबंधित शुरू के अध्ययन कीटों पर किए गए हैं (देखिए LSE 9 की इकाई 15) तथा इनसे जो सामान्य तस्वीर सामने आयी वह यह है कि कीटों के मस्तिष्क में एक प्रधान जैवघड़ी होती है जो प्रायः कीट-नेत्रों अथवा प्रकाशग्राहियों से प्राप्त होने वाले संकेतों द्वारा बैठायी तथा अंतःस्थापित की जाती हैं और यही घड़ी मस्तिष्क के अन्य क्षेत्रों को संदेश देती है जिससे विविध दिवसप्राय तालें चलती हैं।

मोटे तौर पर एक ऐसी ही व्यवस्था कशेरुकियों में भी पायी जाती है। उदाहरणतः हैम्स्टरों (hamster) एवं नार्वे-चूहों के मस्तिष्क में पाए जाने वाले सुप्राकाएज़्मेटिक केंद्र (Suprachiasmatic nuclei, SCN) जो हाइपोथैलमस में स्थित एक जोड़ी कोशिका गुच्छे होते हैं और रेटिना में से निकलने वाले तंत्रिका तंतुओं से अंतः सूचनाएं प्राप्त करते हैं अगर किसी प्रकार क्षतिग्रस्त हो जाए तो उनकी नानाविध क्रियाकलापों में दिवसप्राय तालें जैसे कि हृदय गति, हार्मोन स्रवण, संचलन तथा अशन व्यवहार समाप्त हो जाती हैं। यदि इन प्राणियों में भ्रूण से निकाले गए SCN प्रत्यारोपित कर दिए गए तब लगभग 40 % बार उनकी लयबद्ध क्रियाएं पुनः प्राप्त हो गयीं। यदि इनमें मस्तिष्क के अन्य भागों से ऊतक प्रत्यारोपण किए गए हों तब उनके लयबद्ध क्रियाकलाप पुनः प्राप्त नहीं हुए। इससे प्रकट होता है कि इन प्राणियों में SCN के भीतर एक मास्टर-घड़ी होती है। SCN के भीतर ऐसी कोशिकाएं होती हैं जिनमें ...

अंधकार के विषय में सूचना देने वाले दृष्टि तंत्रिका तंतुओं द्वारा उद्दीपनों के प्रति अनुक्रिया होती है। SCN की कोशिकाओं से निकलने वाले रसायन पिनियल ग्रंथि को संकेत पहुंचाते हैं और इस ग्रंथि से एक हॉर्मोन मेलाटोनिन (melatonin) लयबद्ध रूप में निकलता है और फिर यही हॉर्मोन प्राणियों के कार्यिकीय क्रियाकलापों पर अनुरूपी लयबद्धता लागू कर देता है। पिनियल के स्राव प्राणी के उस प्रकाशकाल पर निर्भर होते हैं जिसे प्राणी ने पिछले कुछ दिनों मे अनुभव किया होता है। यही क्षमता पिनियल को दिन की लम्बाई में होने वाले ऋतुपरक परिवर्तनों के प्रति अनुकूलित करती है जिसके द्वारा प्राणी को अपनी दैनिक दिनचर्या को ठीक बैठा लेने में सहायता मिलती है। प्राणी की अंतर्जात यानि पर्यावरण से स्वतंत्र घड़ी उसे बिना लगातार पर्यावरण को जांचते रहते अपनी व्यवहारपरक एवं कार्यिकीय चक्रों को सही-सही बैठाने में सहायता करती है। साथ ही पर्यावरण-निर्भर घड़ी प्राणियों को अपने दैनिक चक्रों को और बारीकी से ठीक कर लेने का मौका प्रदान करते हैं।

इसी प्रकार, समझा जाता है कि चूहों, पक्षियों, तथा सरीसृपों में भी समय नियंत्रित क्रियाविधियों में पिनियल ग्रंथि का ही योगदान होता है। उदाहरणतः, चूहा रात में अपने सही समय पर ही सक्रिय होगा और ग्रीष्म से शीत ऋतु आते-आते दिन की लम्बाई में होने वाले परिवर्तन के अनुसार अपने को ढाल लेता है। "एनोल" नामक एक छोटी छिपकली का पिनियल निकालकर एक पात्र में एक सप्ताह तक रखा जा सकता है। पृथक की गयी पिनियल सतत अंधियारे में भी मेलाटोनिनि हॉर्मोन को एक दैनिक चक्र के अनुसार स्रावित करती रहती है तथा तापमान में हुए अंतरों का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

स्वयं हमारी ही अपनी कार्यकीय प्रक्रियाएं दिवसप्राय तालें दर्शाती हैं। हमारा देह तापमान 4-5 बजे सायंकाल को सर्वाधिक तथा सवेरे 4-5 बजे के बीच न्यूनतम (लगभग एक डिग्री कम) होता है। अनेक प्रक्रियाएं जैसे हॉर्मोनों का स्रवण, हृदय गति, रक्त दाब, सोडियम एवं पोटैशियम की उत्सर्जन दर इन सभी में दिवसप्राय संबंधित उच्चतम शिखर और निम्नतम गर्त देखे जाते हैं।

वर्षप्राय तालें (Circannual rhythms)

वर्षप्राय तालें उस समय भी जब ऋतुपरक परिवर्तनों से संबंधित पर्यावरण संकेत मौजूद न हों, व्यवहारपरक घटनाओं का वार्षिक चक्र बनाती हैं। वार्षिक घड़ी का एक निश्चित प्रदर्शन उत्तर अमरीका की "स्वर्ण-आवरणी" भू गिलहरी (golden mantled ground squirrel) में होता पाया गया है। प्रकृति में यह गिलहरी उत्तर-शरद एवं शीत ऋतु के दौरान एक भूमिगत कक्ष में शीतनिष्क्रिय हो जाती है। एक प्रयोग में इस स्पीशीज़ के पांच सदस्यों को प्रयोगशाला में पैदा कराया गया और उन्हें नेत्रहीन कर दिया गया। इन्हें आजीवन सतत् अंधियारे में स्थिर तापमान पर रखा गया और पर्याप्त भोजन कराया गया। ये अपने सारे जीवन में हर वर्ष उसी समय पर शीतनिष्क्रियता में चली जाती रहीं जैसे कि जंगल में रहने वाली अन्य गिलहरियां जाती हैं।

प्राकृतिक परिस्थितियों में दिवसप्राय तथा वर्षप्राय घड़ियाँ पर्यावरणीय दशाओं से प्रभावित होती हैं। इसके द्वारा जो लयबद्ध व्यवहार पैदा होता है वह उन्हीं पर्यावरणीय दशाओं से मेल खाता है जैसे के सूर्योदय के तथा सूर्यास्त के समय से अथवा किसी निर्दिष्ट वर्ष में वर्षा ऋतु अथवा शीत ऋतु के आगमन से। इस प्रकार के सभी मामलों में पर्यावरणीय संकेतों के लिए व्यवहार का सूक्ष्म समंजन हो जाता है और यह समंजन अलग-अलग स्पीशीज़ में उनकी अपनी-अपनी विशिष्ट आवश्यकताओं के लिए भिन्न होता है। आपने देखा होगा कि शीत ऋतु के बाद जब तापमान बढ़ता है तब छिपकलियां शीतनिष्क्रियता से बाहर आ जातीं तथा प्रजनन की तैयारी करती हैं। यदि किसी वर्ष विशेष में शीत ऋतु अपेक्षाकृत छोटी हो जाती है तब छिपकलियां भी समय से पहले ही शीतनिष्क्रियता से बाहर आ जाती हैं। दक्षिणी संयुक्त राज्य अमरीका की हरी "ऐनोल" छिपकली पर किए गए प्रयोगों से पता चला है कि जाड़ों की शीतनिष्क्रियता से निकल कर जनन क्रिया के लिए तैयार होना बहुत हद तक पर्यावरण के तापमान पर भी निर्भर करता है। इन छिपकलियों में तापमान ग्राही होते हैं जिनके प्रभाव से पिट्यूटरी ग्रंथि के गोनैडोट्रोपिक हार्मोन निकलते हैं जिनका कार्य जनन अंगों की वृद्धि को प्रेरित करना होता है। लगातार ठंडे दिन जनन को देर से होने देते हैं तथा उष्णतर दिन प्रसुप्तता काल को जल्दी ही समाप्त कर देते हैं। अतः ऐनोल अपना जनन कार्यकलाप तब शुरू करतीं हैं जब उनका आहार यानि कीट-पतंगे भरपूर होते हैं।

चांद्र चक्र (Lunar cycles)

प्राणियों की व्यवहार लयबद्धताओं में केवल दैनिक और वार्षिक तालें ही नहीं आतीं। कुछ ऐसी स्पीशीज़ हैं जिनकी जैविकीय तालों में चांद्र चक्र जैसे कि 29.5 दिनों की चांद की रोशनी की तीव्रता अथवा 14.8

दिन के ज्वार-चक्र का असर देखता है। संयुक्त राज्य अमरीका के प्रशांत तट के पार एक वेलापवर्ती छोटी सी मछली ग्रुनियन (grunion) रहती है, यह मछली अप्रैल से जून तक उच्च ज्वार के समय पूर्णमासी से अथवा अमावस्या से अगली रात में संगम करती तथा अण्डे देती है। उच्च ज्वार के समय यह मछली तट भूमि पर आकर रेत में अण्डे और शुक्राणु छोड़कर अगली लहर के साथ वापिस समुद्र में चली जाती है। 15 दिन बाद जब फिर से उच्च ज्वार आता है जब मछली के बच्चे ("फ्राई", fry) बाहर आ जाते और जल के साथ समुद्र में पहुंच जाते हैं।

"बैनर-टेल्ड कंगारू-रैट" का व्यवहार भी अस्थायी रूप में चांद्र कलाओं द्वारा नियमित होता है। प्रयोगशाला में किए गये प्रयोगों से जान पड़ता है कि इसका व्यवहार किसी भीतरी घड़ी से नियमित नहीं होता वरन् चंद्रमा के प्रकाश का घटना-बढ़ना देखकर होता है क्योंकि ये कंगारू-रैट पूर्ण अंधकार में आहार चरते पाए जाते हैं।

15.2.3 व्यवहार के संगठक के रूप में हॉर्मोन

प्राणियों द्वारा प्राप्त किए गए पर्यावरण संकेत अपना प्रभाव अक्सर प्राणी की हार्मोनी दशा में परिवर्तन करके पैदा करते हैं विशेषकर जनन चक्र के संदर्भ में। हार्मोन प्राय: तंत्रिकीय आदेश केंद्रों के "फ़ाइन-टयूनर" के रूप में कार्य करते हैं, यानि कि इन केन्द्रों का बारीकी से नियंत्रण करते हैं। ये केंद्र पर्यावरणीय उद्दीपनों द्वारा उत्तेजित होते हैं ताकि अलग-अलग दशाओं में प्राणी अलग-अलग रूप में व्यवहार कर सकें। आपको याद होगा कि श्वेत मुकुटी गौरया द्वारा स्रावित हॉर्मोन गोनडों के परिवर्धन को प्रभावित करते हैं और स्वयं ये गोनड और अधिक हार्मोन निकालते हैं जिनके द्वारा पक्षी का मस्तिष्क और व्यवहार प्रभावित होते हैं। उस समय जब पर्यावरण, सामाजिक एवं आंतरिक कार्यिकीय दशाएं सर्वाधिक उपयुक्त होती हैं तब हार्मोन जनन को बढ़ावा देते हैं।

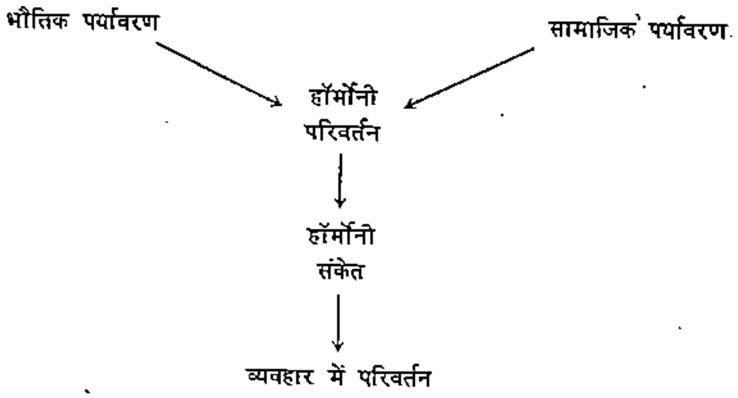

चित्र 15.1: पर्यावरण से संकेत भीतरी हॉर्मोनी परिवर्तन शुरू कर देते हैं जो व्यवहार में परिवर्तन लाने के लिए आवश्यक होते हैं।

व्यवहार-परिवर्तन लाने में हॉर्मोनों की सुस्पष्ट भूमिका हर स्पीशीज़ में अलग-अलग होती है। उदाहरणत: प्राणियों का नर लैंगिक व्यवहार रक्त में परिसंचरित टेस्टोस्टेरोन पर निर्भर हो भी सकता है और नहीं भी। आइए एक बार फिर से ऐनोल का उदाहरण लें। नर ऐनोल में जब परिपक्व शुक्राणु बन रहें हों, वह अपने क्षेत्र की रक्षा कर रहा हो तथा मादा के साथ संगम कर रहा हो तब उसमें टेस्टोस्टेरोन का स्तर बढ़ गया होता है। इसके विपरीत लाल धारियों वाले गार्टर सर्प जब शीतनिष्क्रियता से जगकर बाहर आते हैं, तब वे एक साथ सामूहिक रूप में निकलते और यौन क्रियाकलाप करने लग जाते हैं। इनमें नर सर्प अधिकतर अनाक्रमणकारी होते हैं तथा ग्राही मादाओं को पाने के लिए अन्य नरों से लड़ाई नही करते। अध्ययनों से पता चला है कि अनाक्रमणकारी नरों के रक्त में परिसंचारित टेस्टोस्टेरोन लगभग न के बराबर होता है। इस सबके बावजूद इनमें बिना किसी उलझन के संगम सम्पन्न हो जाता है। इनका संगम व्यवहार पर्यावरण से आने वाले उन तापमान संबंधी संकेतों पर निर्भर होता है जो पिनियल ग्रंथि द्वारा जान लिए जाते हैं। यदि शीतनिष्क्रियता से पूर्व पिनियल ग्रंथि को काट कर बाहर निकाल दिया जाए तो आगामी बसंत में नर गार्टर सर्प अनुरंजन नहीं कर पाते। परंतु शुक्राणुओं का बनना निश्चय ही शीतनिष्क्रियता से पूर्व शरद ऋतु में नरों में टेस्टोस्टेरोनों के स्तरों पर निर्भर करता है, ऐसा इसलिए कि शुक्राणु शरद ऋतु में बनते हैं और शीत ऋतु के दौरान भीतर ही भंडारित कर लिए जाते हैं जो बसंत की संगम क्रियाओं के लिए तैयारी होती है।

बोध प्रश्न 1

i) एक ही समय पर आने वाले परस्परविरोधी उद्दीपनों के प्रति प्राणी किस प्रकार अपनी प्रतिक्रिया को रोकते हैं?

....

ii) निम्नलिखित में रिक्त स्थान भरिए:

क) चिमगादड़ों में अति अनुपयुक्त जलवायु परिस्थितियों में दैनिक निष्क्रियता का पाया जाना .... ताल का उदाहरण है।

ख) कोई रात्रिचर प्राणी जब दिन निकलने पर शिकार करना बंद कर देता तथा अपनी मांद में चला जाता है, तब वह .... ताल से प्रभावित होता है।

ग) पक्षियों के प्रवास में उनके देह भार, गोनड के साइज़, आदि जैसे परिवर्तन होते हैं। यह सब .... ताल के प्रभाव में होता है।

15.3 प्रवास

पिछले अनुभाग में हमने चर्चा की थी कि प्रकाश तथा अंधकार की 24 घंटे की आवर्तिता प्राणी के लिए उस उपलब्ध समय पर पाबंदी लगा देती है जिसके दौरान वह अपने पर्यावरण में अपने लिए संसाधनों का समुपयोजन कर सकता है। इस बाहरी आवर्तिता के लिए अनुकूलित होने में अधिकतर प्राणी प्राय: अंतर्जात नियमकालिक (endogenously timed) दैनिक क्रियाकलाप चक्र दर्शाते हैं। इसी प्रकार चांद्र-चक्र अनेक समुद्री प्राणियों के आहार खोजने के समय पर बंदिश लगा देते हैं। दैनिक तथा मासिक लयबद्धताओं के अतिरिक्त ऋतु परिवर्तन आते हैं जिनसे वार्षिक चक्र बनते हैं। जलवायु में आने वाले ऋतुपरक परिवर्तनों के प्रति अनेक प्राणी या तो ऋतु के परिवर्तन के साथ-साथ अपने व्यवहार में भी परिवर्तन ले आते हैं या वे नियमित रूप में भिन्न पर्यावरणों के बीच प्रवास (migrate) करते रहते हैं, जिसमें वे ऋतु के असहनीय (आवासअयोग्य) हो जाने पर उस स्थान विशेष को छोड़कर अन्यत्र चले जाते हैं।

प्राणियों की नियमित वार्षिक अथवा चांद्र गतियां, चाहे वे अकेले-अकेले की जाती हों चाहे समष्टि के रूप में, सामान्यत: प्रवास ही माना जाता है। इस प्रकार के प्रवास या तो अन्वेषी गतियां (खोजयात्रा) हो सकती हैं या फिर नए आवासों में जा बसना हो सकता है। अन्वेषी प्रवास (exploratory migration) अल्पवयस्क कशेरुकियों में आम पाया जाता है और हो सकता है कि जब वातावरणीय दशाएं अनुकूल हो जाती हैं तब उसी के कारण अनुक्रमिक निवहभवन (successive colonisation) हो जाता हो। आवर्ती प्रवास नानाविध स्पीशीज़ में पर्यावरण दशा में परिवर्तन के प्रति अनुक्रिया के रूप में होता है। आप सबने टिड्डी दलों के विषय में अवश्य सुना होगा जो समय-समय पर फ़सलों पर आ बैठती हैं। *सिस्टोसर्का ग्रीगैरिया* (*Schistocerca gregaria*) नामक टिड्डी ऋतुपरक शुष्क क्षेत्रों में रहती हैं और जब भी इनकी संख्या अधिक बढ़ जाती है तब ये क़ीट अपनी तीन वयस्क अवस्थाओं में से एक जिसे "ग्रीगैरिया" कहते हैं, में विकसित हो जाते हैं और घने टिड्डी दल बना लेते है। ये दल निम्न बैरामीट्रिक दाब वाले क्षेत्रों में उड़कर चले जाते हैं जहां उन्हें वर्षा के मिलने की बहुत संभावना होती है। पर्यावरण की नम दशाएं प्रवास को रोक देती हैं और टिड्डियां संगम करके अंडे देती हैं। टिड्डीदल ऋतुपरक चक्र दर्शाते देखे जाते हैं मगर व्यष्टिगत टिड्डियां प्रवास चक्र पूरा नहीं कर पातीं क्योंकि पीढ़ी काल बहुत छोटा होता है। इसलिए इनकी गतियां वास्तविक प्रवास नहीं है।

कुछ ऋतुपरक प्रवासी प्राणियों की अपनी प्रवास यात्रा पर्यावरण परिस्थितियों में परिवर्तन के प्रति अनुक्रिया नहीं होती वरन् वर्षप्राय ताल पर आधारित होती है। ये प्रवास यात्राएं प्राय: वापसी-प्रवास (return migrations) होती हैं जिनमें प्राणी लौट कर फिर से उसी आवास में आ जाता है जिसमें वह पहले रहा करता था। सर्वाधिक पहचाना जाने वाला प्रवास यही होता है और इसके सबसे अधिक जाने-पहचाने उदाहरण पक्षियों, चिमगादड़, सामन, ईल, ह्वेल, कुरंग आदि में पाये जाते हैं।

कुछ प्रवासों में आश्चर्यजनक धैर्य एवं दिक्चालन (navigation) के उदाहरण हैं। आप सबने साइबेरियाई सारस का नाम सुना होगा। ये वेकाल से उड़ना शुरू करके स्थल और समुद्र के ऊपर से उड़ते हुई हज़ारों मील की यात्रा करके हर वर्ष जाड़े बिताने के लिए भरतपुर के ताल-तलैयों पर आ जाते हैं। भारत की ओर पक्षियों के मुख्य प्रवास मार्ग ब्रह्मपुत्र की वादी, सिंधु नदी की वादी को पार करके है, और प्रमाण मिला है कि कुछ प्रकार के पक्षी तो सीधे हिमालय और हिंदुकुश के ऊपर से 9000 मीटर की ऊँचाई पर उड़कर आते हैं।

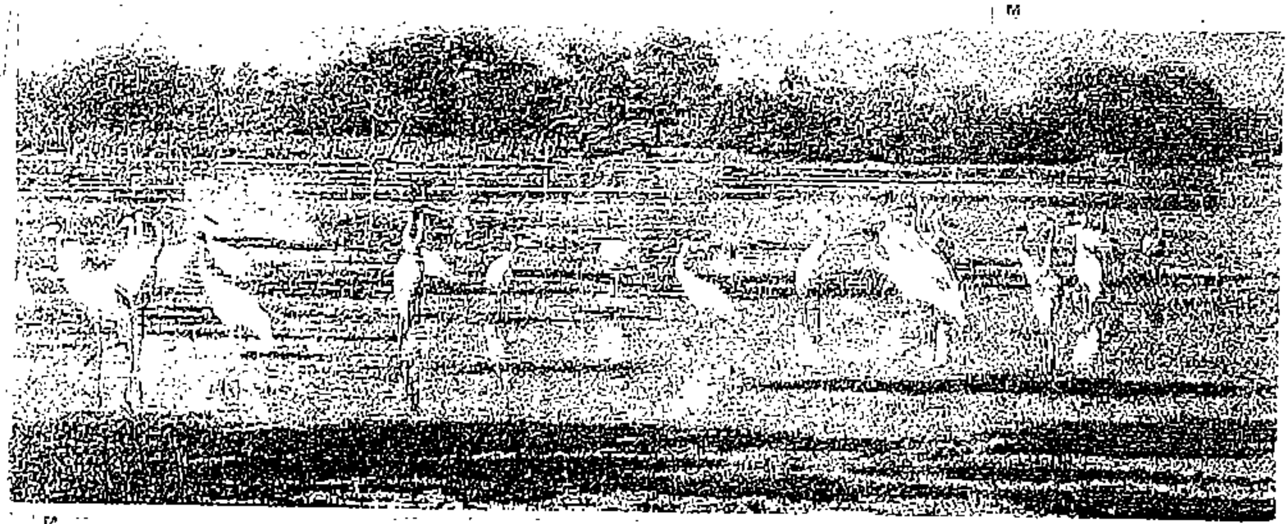

चित्र 15.2: केवलादेव राष्ट्रीय उद्यान भरतपुर, में प्रवासी सारस।

इस प्रकार के प्रवास दौरे लगाने के लिए पक्षियों में बहुत जटिल दिक्चालन (navigational) कुशलता चाहिए। "बार्न स्वालो" नामक पक्षी (*हिरूण्डो रस्टिका, Hirundo rustica*) एक ऐसा पक्षी है जो वयस्क होने पर भी हमारी बंद मुट्ठी के जितना छोटे आकार का होता है, 10,000 किलोमीटर की विशाल दूरी तय करता हुआ यूरोप, एशिया तथा उत्तर अमरीका के अपने प्रजनन क्षेत्रों से जाड़े बिताने के लिए दक्षिणी गोलार्ध में आ जाता है। आइए देखें कि यह स्वालो पक्षी इंग्लैंड से दक्षिण अफ्रीका तक किस मार्ग से आता है।

हमारे इस ग्रह पर उत्तर ध्रुवी प्रदेश की टर्न (कुर्री) का सबसे लम्बा प्रवास कीर्तिमान पाया गया है। ये हर वर्ष उत्तरी ध्रुव प्रदेश से दक्षिण ध्रुव प्रदेश और फिर वहां से वापिस उत्तरी ध्रुव प्रदेश को 20,000 मील की यात्रा उड़ कर करते हैं।

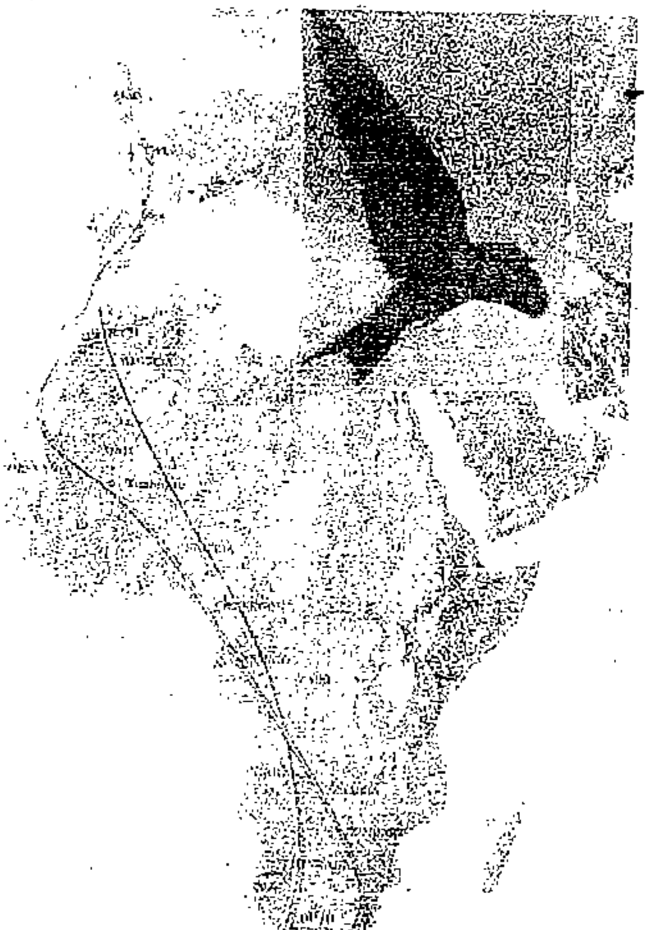

चित्र 15.3: इंग्लैंड के बार्न-स्वालो पक्षी *हिरूण्डो रस्टिका* का प्रवास मार्ग।
(adapted from Nigel Marvin Incredible journeys)

सितम्बर मास के मध्य में जब दिन छोटे होने लगते हैं तब इनके शरीर के भीतर बना वार्षिक कैलेण्डर इन्हें इनके वार्षिक प्रवास का संकेत देता है। चित्र 15.3 में इनका दक्षिण दिशा में बढ़ता हुआ और फिर वहां से पलट कर वापिस आता हुआ मार्ग दिखाया गया है। ये पक्षी अपने स्थान का हिसाब लगाने के लिए "सूर्य-कुतुबनुमा" (sun compass) का उपयोग करते हैं। इनकी यात्रा का सर्वाधिक कठिन भाग सहारा रेगिस्तान के ऊपर उड़ना है। प्रवासरत पक्षियों को इस यात्रा को शीघ्रातिशीघ्र पार करना होता है क्योंकि इस रास्ते में कहीं रुकने और आहार करने का कोई मौका नहीं होता। यात्रा का अंत अफ्रीका की सुदूरतम दक्षिणी नोक पर होता है (चित्र 15.4) वहां से पुनः फरवरी के महीने में वापसी यात्रा के लिए उनकी भीतरी घड़ी उन्हें बेचैन बना देती है। लम्बी दूरी के प्रवास अन्य कशेरुकी वर्गों में भी होते हैं। सामन (salmon) मछलियां यूँ तो अपना अधिकतर जीवन समुद्र में ही बिताती हैं मगर जब उन्हें अण्डे देने होते हैं तब वे पुनः उन नदियों में पहुँचती हैं जहां स्वयं उनका अपना जन्म हुआ था। उसी नदी विशेष में पहुंचने के लिए वे अपने प्रवास की नदी के पानी की विशिष्ट गंध का सहारा लेकर उसे अन्य नदियों से पृथक पहचान लेती है। प्रवासी सरीसृप, ख़ास तौर से कछुए, अण्डे देने के लिए हज़ारों-हज़ारों किलोमीटर की यात्रा करके हर वर्ष प्रायः एक ही समुद्र तट पर पहुंच जाया करते हैं।

पश्चिम के एक सांप "डायमंड-बैक रैटल" सर्प (एक प्रकार का फुरसा) की प्रवास गतियों को उपग्रहों द्वारा देखा गया है कि वह कहां-कहां से होकर जाता है, इन सांपों में त्वचा के नीचे काफ़ी छोटे आकार के ट्रांसमीटर लगा दिए गए थे और उनके द्वारा जो आंकड़े प्राप्त हुए उनसे इनके गति-मार्ग पता लगाए गए। वैज्ञानिकों ने दर्शाया है कि ये सरीसृप अपने सुनिश्चित लक्ष्य स्थानों तक दिक्‌चालन कर लेते हैं। एक मादा को तीन क्रमिक ग्रीष्मों में हर बार एक ही घोंसले में पहुंचते पाया गया, हर शरद ऋतु में वह अपने अशन क्षेत्रों से 4 किलोमीटर वापिस चलकर अपने चहेते शीतनिष्क्रियता स्थल पर पहुंच जाती थीं जहां अपनी ही जाति के अन्य सांपों के साथ रहती थीं।

ह्वेल हज़ारों-हज़ारों किलोमीटर की यात्रा करके संगम के लिए एवं शिशु जन्मने के लिए अपने पुराने स्थलों पर पहुंच जाती हैं। उदाहरणतः धूसर ह्वेल (*एश्रिक्टियस रोबस्टस, Eschrichtius robustus*) प्रत्येक वर्ष 16,000 किलोमीटर से अधिक की दूरी तय करती है। इनकी यात्रा तीन समुद्रों को पार करती है और उन्हें उत्तर अमरीका के प्रशांत तट पर एक छोर से दूसरे छोर तक ले जाती और वापिस लाती है (चित्र 15.5)। इनके प्रजनन स्थान मेक्सिको के समुद्री जल हैं।

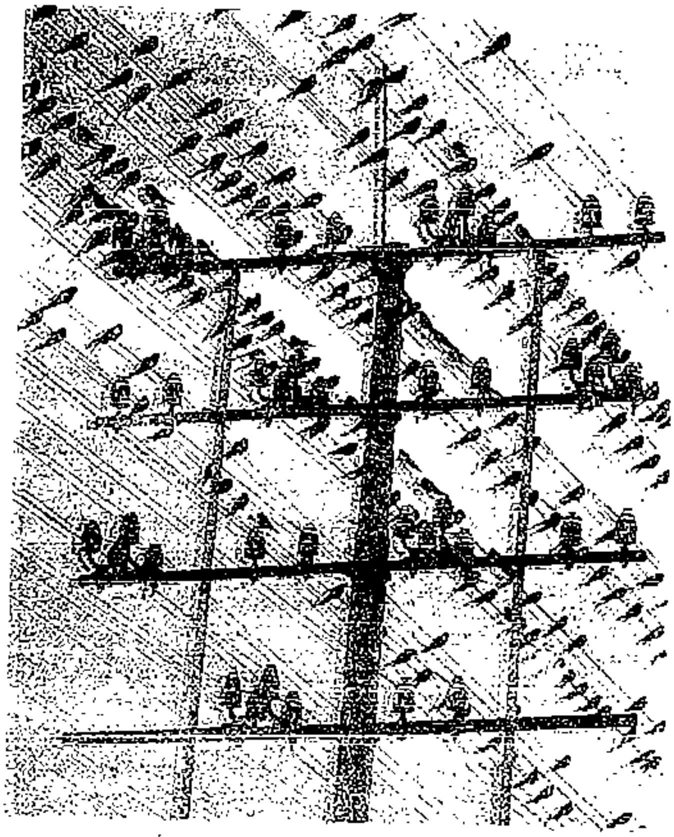

चित्र 15.4: दक्षिण अफ्रीका में जमघट बनाती "बार्न स्वालो"।

इनके बच्चे अपनी मां के साथ-साथ प्रथम प्रवास यात्रा उत्तर की ओर करते हैं, और रास्ते में जो-जो नदी-तंत्र एवं मुहाने पार करते जाते हैं उन-उन की रासायनिक विशेषता को चखते-परखते जाते हैं ताकि भविष्य में वे उन्हें पहचान सकें। साथ ही ये ह्वेलें तटरेखा को भी उस पर पाए जाने वाले दृश्यमान स्थल-चिन्हों द्वारा तथा तट से टकराती हुई समुद्री लहरों के स्वर द्वारा जानती पहचानती जाती हैं। ह्वेलें दिक्चालन की इन सभी मूलभूत विधियों का उपयोग करती हैं। घूसर ह्वेलें अपने वार्षिक प्रवास इसलिए करती हैं क्योंकि उनके नाजुक बच्चे अपने जीवन के पहले कुछ महीने गरम आश्रयप्रदायी जल में बिता सकें। परंतु इन जलों में पोषक तत्व कम होता है और भोजन भी पूरा नहीं होता। अपने को जीवित बनाए रखने के लिए और खा-खाकर अपना विशाल आकार प्राप्त करने के लिए उनके पास बस एक ही विकल्प रह जाता है कि वे हर वर्ष उच्च तुंगता सागर (high altitude seas) में पहुंच जाएं जहां भरपूर भोजन होता है।

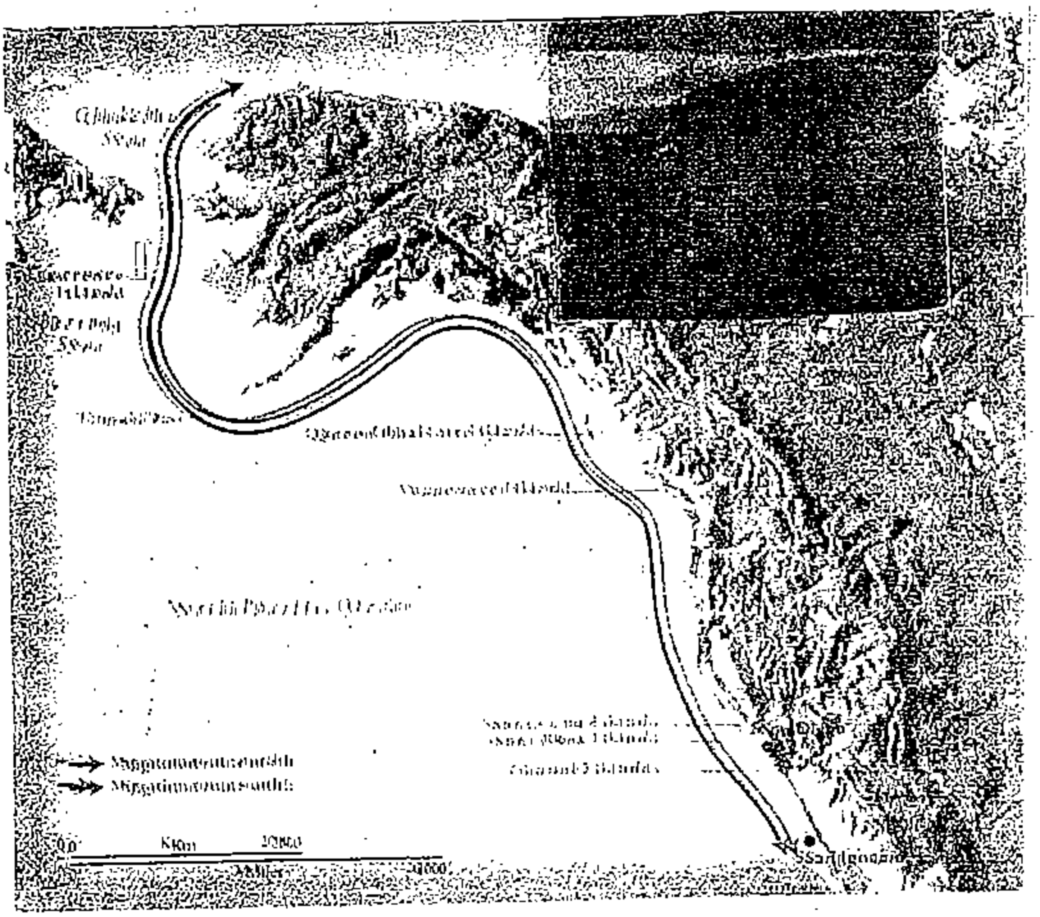

चित्र 15.5: उत्तर-पश्चिम अमरीका के समुद्र तट के सहारे-सहारे घूसर ह्वेल का प्रवास मार्ग।
(Adapted from Nigel Marvin Incredible Journeys)

अलवण जल की ईलें (*ऐंग्विला, Anguilla*) अपने पूरे जीवन काल में केवल एक बार ही प्रजनन करती हैं। ये उन देशों में व्यापक रूप में पायी जाती हैं जो उत्तर अटलांटिक (यूरोप तथा उत्तर अमरीका) और पश्चिम प्रशांत महासागर के तट पर हैं। ये जापान से चलकर दक्षिण-पूर्व एशिया तथा प्रशांत द्वीपों से लेकर आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैंड तक और उसके बाद पश्चिम की ओर हिंद महासागर से होते हुए मैडागास्कर और पूर्वी अफ्रीका तक पायी जाती हैं। ये अलवणजलीय ईलें हज़ारों किलोमीटर की यात्रा करके अपने समुद्री प्रजनन स्थानों पर पहुंचती हैं और एल्वर (elver) कही जाने वाली शिशु ईलों के रूप में प्रवास करके वापिस अलवणजल नदियों एवं झीलों में पहुंच जाती हैं। यूरोपीय अलवणजलीय ईलों की यात्रा का 1900 के दशक के वर्षों में मानचित्र बनाया गया था जिसमें उनका अण्डनिवेश स्थान सारगासो समुद्र (Sargasso Sea) में पाया गया - यह वह क्षेत्र है जो दक्षिण पश्चिम अटलांटिक में बर्मुडा त्रिकोण के निकट का है। इनके अंडे खुले गहन समुद्री जल में दिए जाते हैं, और लहरों के साथ बहते रहते हैं। उनमें से पत्ती के आकार के लेप्टासिफैलाई लारवा निकलते हैं (चित्र 15.6 a)। एल्वर एक या दो वर्ष में अमरीकी समुद्र तट पर पहुंच जाते हैं और जब तक वे यूरोपीय नदियों में पहुंचे तब तक तीन वर्ष की आयु के हो जाते हैं। अलवण जल और खारी जल के बीच आने जाने के लिए एक विशेष प्रवास अनुकूलन निहित होता है - गुर्दों की कार्यिकी में एक बदलाव आता है जिसके बिना पर्यावरण के तीव्र परिवर्तन से शरीर को हानि हो सकती थी।

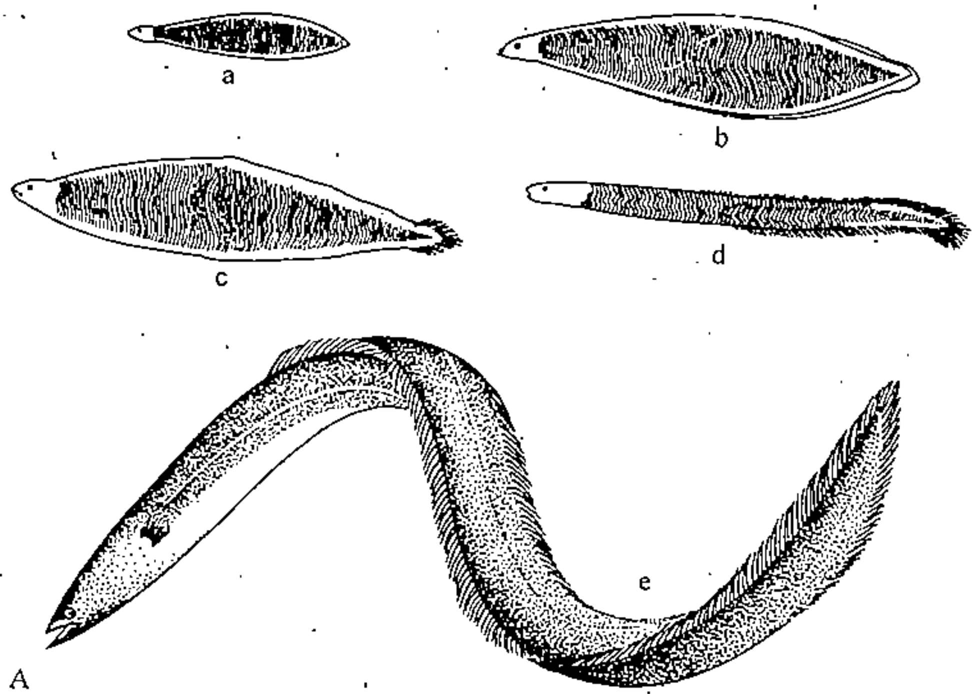

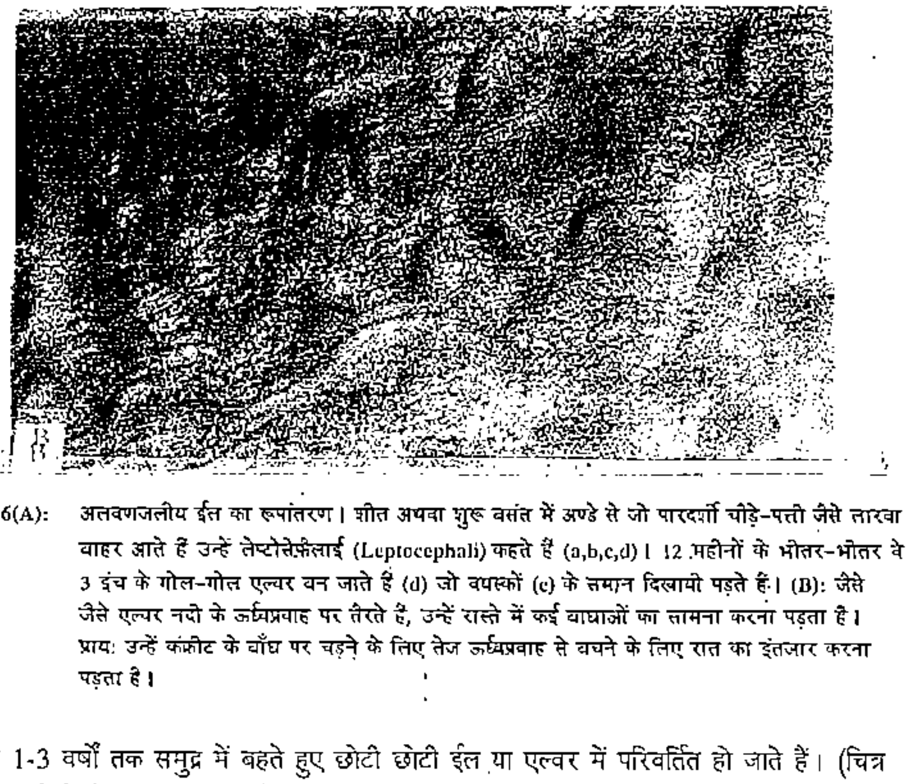

चित्र 15.6(A): अलवणजलीय ईल का रूपांतरण। शीत अथवा शुरू बसंत में अण्डे से जो पारदर्शी चौड़े-पत्ती जैसे लारवा बाहर आते हैं उन्हें लेप्टोसेफ़ैलाई (Leptocephali) कहते हैं (a,b,c,d)। 12 महीनों के भीतर-भीतर वे 3 इंच के गोल-गोल एल्वर बन जाते हैं (d) जो वयस्कों (e) के समान दिखायी पड़ते हैं। (B): जैसे जैसे एल्वर नदी के ऊर्ध्वप्रवाह पर तैरते हैं, उन्हें रास्ते में कई बाधाओं का सामना करना पड़ता है। प्रायः उन्हें कंक्रीट के बाँध पर चढ़ने के लिए तेज ऊर्ध्वप्रवाह से बचने के लिए रात का इंतजार करना पड़ता है।

लारवा 1-3 वर्षों तक समुद्र में बहते हुए छोटी छोटी ईल या एल्वर में परिवर्तित हो जाते हैं। (चित्र 5.6 d)। खोजों से पता चला कि *ऐंग्विला* की सभी सोलह स्पीशीज़ समुद्र के गहरे गरम जल में जनन करती हैं और फिर वे सभी अलवण जल में लौट आती हैं जहां वे 15 वर्ष तक रह कर रिपक्व होतीं और उसके बाद पुनः समुद्र में जाकर अण्डे देती और जीवन समाप्त कर देती हैं।

ाणियों का प्रवसन आज भी एक रहस्य बना हुआ है। उन्हें कैसे पता चल जाता है कि अब यात्रा का मय आ गया और फिर वर्ष-प्रति-वर्ष वे उसी अपने मूल स्थान पर किस प्रकार आ जाते हैं ? और तो ौर वे उन विशिष्ट नदियों, समुद्र तटों तक बिना गलती किए कैसे पहुंच जाते हैं जिन्हें उन्होंने जन्म के श्चात् कभी देखा भी नहीं था? (याद कीजिए उस एल्वर को जो समुद्र में अण्डे से निकलने के बाद लवण जलीय नदियों में पहुंच जाता है)।

से प्रमाण मिले हैं कि प्राणियों के भीतरी कारक न केवल प्रवास क्रियाकलाप का आरंभ ही नियंत्रित रते हैं वरन् यह भी कि इस प्रवास का प्रतिरूप क्या होगा। अनेक स्पीशीज़ में उनकी विशिष्ट जननशील समष्टियों के प्रवास मार्ग अलग-अलग ही होते हैं। वर्षप्राय घड़ी उन्हें बता देती है कि कब र्मोक करना है, कब प्रवास शुरू करना और कब समाप्त करना है तथा कब प्रजनन शुरू करना होता

बड़े आकार के प्रवासी पक्षियों अथवा प्राणियों के प्रवास पथ पर वैज्ञानिक नज़र रख सकते हैं। व्यष्टियों के शरीर पर पहचान कारी चिन्हक बांधे / लगाए जा सकते हैं। थलीय और समुद्रीय दोनों प्रकार के प्राणियों पर इस प्रकार के इलैक्ट्रॉनिक संदेश लगाए जा सकते हैं जो खोजकर्त्ताओं के पास संदेश भेजते रह सकते हैं ताकि वे उनके सही-सही स्थान का एवं उनके प्रवास मार्ग का अभिनिर्धारण कर सकें। व्यष्टियों को पता लगाते रहने के लिए कि वे कहां हैं राडारों एवं उपग्रहों का इस्तेमाल भी किया जाता है।

है। अनेक प्रवासियों को अपनी प्रवास ऋतु आरंभ से पूर्व बहुत ज्यादा भूख लगती है तथा वे शरीर में वसा का भण्डारण कर लेते हैं। अधिक खाने की प्रबल इच्छा का प्रेरण पिट्यूटरी ग्रंथि से निकले हॉर्मोनों द्वारा होता है। जैसा कि आप जानते हैं यही ग्रंथि लैंगिक ग्रंथियों का पनपना भी नियंत्रित करती है जिनमें सेक्स हार्मोन तथा जनन कोशिकाएं बनते हैं। इसी विधि से पिट्यूटरी ही प्राणी को प्रवास और जनन के लिए परस्परयोजित लयबद्धता की ओर मार्गदर्शन कराती है। एक बार जब भीतरी संकेत प्राणी को शारीरिक तौर पर प्रवास के लिए तैयार कर देता है, तब वह प्राणी बाहरी पर्यावरण संकेतों को भी जान लेता है और प्रवास आरम्भ हो जाता है। जो प्राणी प्रवास नहीं करते उनमें ये भीतरी परिवर्तन नही होते।

एक बार प्रवास आरम्भ हो जाने के बाद अपने गंतव्य स्थान पर पहुंचने के लिए प्राणी तरह-तरह की विशिष्ट क्षमताओं एवं ज्ञानेंद्रियों का उपयोग करते हैं। वे बाहरी कारकों जैसे कि जल और पवन धाराओं पर निर्भर करते हैं। उदाहरणत: सारगासो सागर में प्रकट होने के बाद एल्वर जल धाराओं पर आसीन होकर उत्तर अमरीका और यूरोप की नदियों के मुहानों पर पहुंच जाते हैं।

अपने विशिष्ट मार्गों को अपनाने के लिए कुछ प्राणी अपने परिचित स्थल-चिन्हों जैसे कि तट रेखाओं, पर्वत मालाओं नदियों की घाटियों का सहारा लेते हैं। परिपक्व सामन मछलियॉं जब समुद्र की ओर प्रवास करती हैं तब विशिष्ट नदियों की गंध को अपनी स्मृति और अपने घ्राण संवेदों पर निर्भर करती हैं।

प्रवासी प्राणी अपने निश्चित स्थान और दिशा के अभिनिर्धारण के लिए समय संवेद एवं सूर्यगत संकेत इन दोनों के योग पर निर्भर करते हैं। मगर कुछ प्राणी जो रात में प्रवास करते हैं अपने दिशाचालन के लिए तारों की स्थिति का सहारा लेते हैं। पक्षियों में क्षमता होती है कि यदि रात में तनिक सा भी आकाश दिखायी दे रहा हो तो वे वास्तविक उत्तर दिशा का अनुमान लगा लेते हैं। दिशा ज्ञान और दिक्‌चालन की इन विधियों को सौर कुतुबनुमा एवं तारा कुतुबनुमा कहते हैं और ये विधियाँ बहुत कुछ वैसी ही हैं जैसी कि पुराने ज़माने में नाविक लोग आकाश को देख कर इस्तेमाल किया करते थे।

कुछ पक्षी जैसे कि कबूतर और गौरया यदि अपने पथ से विचलित कर दिए जाएं तब भी वे अपने लक्ष्य स्थान तक पहुँच जाते हैं। हाल ही में ज्ञात हुआ है कि कुछ प्राणी स्पीशीज़ के मस्तिष्क में मैग्नैटाइट (एक चुम्बकीय पदार्थ) के सूक्ष्म क्रिस्टल पाए जाते हैं। वैज्ञानिकों का मानना है कि यह मैग्नैटाइट प्राणियों को पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र को एक मार्गदर्शक के रूप में इस्तेमाल करने में सहायता करता है।

अनेक प्राणियों में प्रवास मार्ग जन्मजात विद्यमान होते हैं। उन अन्य स्पीशीज़ में, जो समूहों में प्रवास करती हैं जैसे कि पक्षियों में, अपने से बुजुर्ग एवं अधिक अनुभवी सदस्य-व्यष्टियों से शिक्षण का एक अति महत्वपूर्ण घटक पाया जाता है। देखा गया है कि जिन प्राणियों को बंदी दशा में पाला गया और फिर उन्हें प्राकृतिक आवास में छोड़ दिया गया तब उनमें अपने-अपने स्पीशीज़ विशिष्ट प्रवास प्रतिरूप सीख जाना कठिन हो गया।

हमने देखा कि अनेकों असंबंधित स्पीशीज़ में भी समाभिरूप व्यवहार (convergent behaviour) पाए जाते हैं। इससे जान पड़ता है कि इस प्रवासी व्यवहार का बस अकेला एक ही कार्य नहीं है वरन् यह अनेकों भिन्न पारिस्थितिकीय दबावों के प्रति विकसित हुआ है। वर्णन किए गए सभी उदाहरणों में आपने देखा होगा कि एक प्रधान प्रवास व्यवहार प्रतिरूप में जो गति होती है वह एक ओर अशन क्षेत्र और दूसरी ओर परभक्षियों से अपेक्षाकृत मुक्त प्रजनन क्षेत्र के बीच होती है। प्रजनन के लिए चुने जाने वाले क्षेत्र प्राय: खाद्य संसाधनों से भरपूर होते हैं।

प्राणियों के प्रवास को गठित करने वाली क्रियाविधियों के बारे में बहुत कुछ खोजा जाना शेष है। परिघटना के रूप में प्रवास एक तो उन क्षमताओं का उपयोग करता है जिनके विषय में हमने जानना-समझना बस शुरू ही किया है और दूसरे उन संवेदग्राहियों का जो हममें विद्यमान नहीं है।

बोध प्रश्न 2

(i) नीचे दी जा रही परिभाषा को और ज्यादा शुद्ध कीजिए ताकि उसमें प्रवास के सभी मूलभूत पहलू समा सकें:

प्रवास करना प्राणियों की एक स्थान से दूसरे स्थान की उस गति को कहते हैं जो ऋतु परिवर्तन पर होती है।

(ii) बताइए कि निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत:

क) रात में प्रवास करने वाले पक्षी अपनी दिशा बनाए रखने के लिए केवल तारों की स्थिति का उपयोग करते हैं।

ख) सभी प्रवासी प्राणियों के मस्तिष्क में मैग्नेटाइट क्रिस्टल होते हैं जो उन्हें उनके प्रवास मार्ग को पता लगाने में सहायता करते हैं।

ग) धूसर ह्वेल 16000 किलोमीटर लम्बा प्रवास मार्ग अपनाती है।

घ) प्रवास प्राय: प्रजनन क्षेत्र और अशन क्षेत्र के बीच होता है।

च) प्रवास के दौरान वयस्क अपनी नयी संतानों को प्राय: पीछे ही छोड़ आते हैं।

15.4 सामाजिक संगठन

इससे पहले के उपखण्ड में आपने कशेरुकियों के प्रवास व्यवहार के विषय में सीखा। आइए अब देखें कि एक ही स्पीशीज़ के समूह अथवा समूह के सदस्य किस प्रकार परस्पर क्रिया करके सामाजिक संगठन बनाते हैं। मोटे तौर नर एक ही स्पीशीज़ के एक प्राणी के प्रति दूसरे प्राणी की अनुक्रिया से जो परस्परक्रिया उत्पन्न होती है वही सामाजिक व्यवहार का प्रतिदर्श है। जब कभी मादा को प्राप्त करने के उद्देश्य से एक प्रतिस्पर्धी नर दूसरे नर के साथ लड़ रहा हो तो वह भी सामाजिक परस्परक्रिया ही है।

देखा जाए तो सभी सदस्य अपने जीवन के किसी न किसी भाग में जोड़े बना कर अथवा समूहों में समय बिताते हैं, और ऐसा वे विविध उद्देश्यों से करते हैं जैसे के अशन के दौरान, पानी पीने के समय या संगम के लिए। मगर कुछ प्राणी ऐसे भी हैं जो अपने समूचे जीवन काल में एक सहकारी परस्परक्रिया करने वाले समूह के सदस्यों के रूप में रहते हैं और ऐसे प्राणियों का साहचर्य प्ररूपत: मात्र संगम-स्तर तथा संतान की देख-भाल तक ही सीमित नहीं रहता वरन् उससे कहीं ज्यादा होता है। इस प्रकार के समूहों को समाज कहते हैं और उनके भीतर सरल से लेकर जटिल प्रकार की सामाजिक संगठना पायी जाती है।

सामाजिक व्यवहार प्राणियों की अनेक स्पीशीज़ में एक-दूसरे से स्वतंत्र रूप में विकसित हुआ है तथा जटिल सामाजिक संगठन अकशेरुकियों तथा कशेरुकियों दोनों में पाया गया है। सामाजिक संगठन- यह शब्द समष्टियों अथवा समूहों के लिए इस्तेमाल किया जाता है न कि व्यष्टियों के लिए और यह निर्धारित करता है कि उस स्पीशीज़ के सदस्य किस प्रकार परस्परक्रिया करते हैं। विविध सामाजिक कीटों में (देखिए LSE-09, इकाई 15) सामाजिक संगठन काफ़ी दृढ़ और अपरिर्वतनीय होता है एवं हर स्पीशीज़ का अपना-अपना विशिष्ट होता है। तथापि अनेक कशेरुकियों में यह अधिक लचीला होता है और बदलती परिस्थितियों के साथ इसमें भी बदलाव आ जाता है। उदाहरणत: हाथियों में मादा एक ही परिवार इकाई में 40 से 50 वर्षों तक रह सकती है। इनके संबंध के कारण इन्हें हम एक समाज कहेंगे। दूसरी ओर पक्षियों के किसी झुंड में अथवा मछलियों के समूह में पाए जाने वाले संगठन को सही अर्थ में समाज नहीं कहेंगे भले ही वे कई-कई महीनों तक एक-साथ क्यों न रहते हों।

इससे पहले कि कशेरुकियों में समाजों के संगठन की ओर योगदान देने वाले व्यवहार प्रतिरूप के विषय में चर्चा करें आइए देखें के संग-साथ रहने में क्या-क्या लाभ हैं और क्या-क्या कीमत चुकानी होती है।

15.4.1 सामाजिकता के लाभ एवं उससे हानि

अब से काफ़ी पहले ही सन् 1938 में विभिन्न प्राणी वर्गों पर किए गए प्रेक्षणों से पता चल चुका था कि अनेक प्राणी यदि वे समूहों में रहते हों तो वे प्रतिकूल वातावरणों का सामना करने में अधिक समर्थ हो जाते हैं। मछलियों के झुण्ड अपने परभक्षियों द्वारा कम क्षतिग्रस्त होते हैं क्योंकि इनकी विशाल संख्या से परभक्षी भ्रमित हो जाता है। अधिक संख्या में सुरक्षा निहित होती है, और परभक्षी की पहचान की संभावना बेहतर हो जाती है क्योंकि बहुत से सदस्य किसी भी घुसपैठिए के आने की चेतावनी देने के लिए चौकन्ने बने रहते हैं। उदाहरणत: मीरकैट (meerkat) (सामाजिक जीवनयापी नेवले) बारी-बारी से ऊँचे "मचानों" जैसे पेड़ों पर चढ़कर चौकसी करते हैं जबकि उनके अन्य साथी आहार खा रहे होते हैं। (चित्र 15.7)

चित्र 15.7 : अफ्रीका के मरूस्थल में चौकसी करते मीरकैट जो परभक्षी की सूचना समूह को देते हैं।

जब उन्हें कोई परभक्षी दिखायी देता है तो या तो वे भाग खड़े होते हैं या सामूहिक रूप से उस पर आक्रमण कर देते हैं। किसी परभक्षी पक्षी को देखकर पक्षी-समूह ज्यादातर इकट्ठा होकर उड़ते है। समूह में पक्षियों पर कम परभक्षी ही आक्रमण करते हैं। "गल" जैसे कॉलोनीय घोंसला बनाने वाले पक्षी जब कभी किसी परभक्षी जैसे कि लोमड़ी को अथवा यहां तक कि मानव को भी अपने नीड़न स्थलों के समीप आते देखते हैं तो वे सामूहिक रूप से शोर मचाते हैं। इस प्रकार बड़ी-बड़ी कॉलोनियों के रूप में घोंसले बनाने वाले "गल" पक्षियों की उत्तरजीविता उन पक्षियों से कहीं बेहतर होती है जो अन्यथा अलग घोंसला बनाते हैं।

उधर दूसरी ओर परभक्षी भी तभी ज्यादा सफल होते हैं जब वे समूह बना कर शिकार करते हों। सिंह, लकड़बग्घे, भेड़िए, "केप" कुत्ते ऐसे ही परभक्षियों के उदाहरण हैं जो मिल-जुल कर शिकार करते हैं। समूह के कुछ सदस्य शिकार को उस ओर खदेड़ते जाते हैं जिधर उनके अन्य सदस्य छिपे बैठे होते हैं अथवा वे मिल जुलकर शिकार के पीछे दौड़ते-दौड़ते उसे थका कर बेजान कर देते हैं।

सामूहिक शिकार का एक अन्य लाभ यह भी है कि समूह के कुछ अन्य सदस्य अपमार्जकों (scavengers) को दूर रखते हैं।

सामूहिक जीवन का एक और लाभ है कि एक व्यष्टि द्वारा ढूँढ लिए गए भोजन स्रोत का भरपूर उपयोग किया जा सके। साथ ही समूह में रहने से मौसम की कठिन परिस्थितियों से भी सुरक्षा प्रदान होती है जैसे कि पेंग्विनों में देखने को मिलता है। ये पेंग्विनें पास-पास सटकर अपने अण्डों को सेती हैं और उससे ठंड के प्रति एक अच्छा खासा आश्रय प्रदान होता है, और साथ ही उनके चूज़े भी इक्ट्ठा करके मानो "क्रेचों" में पाले जाते हों (चित्र 15.8)।

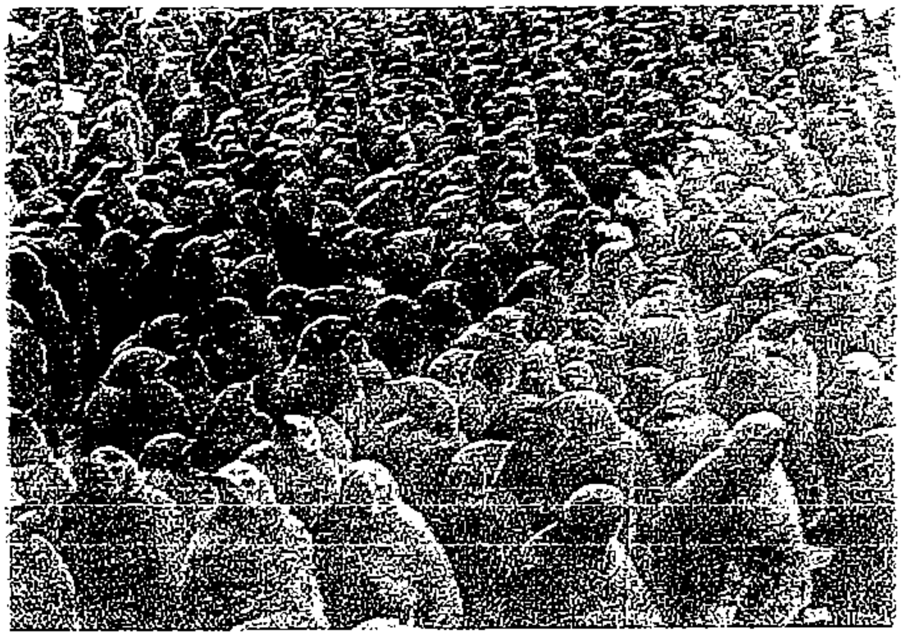

चित्र 15.8: किंग पेंग्विन के बच्चे "क्रेच" में। संग साथ रहना बेहतर सुरक्षा प्रदान करता है।

एक समूह में बच्चों का लालन-पालन अधिक बचाव और सुरक्षा प्रदान करता है और साथ ही इसका एक अन्य लाभ है, सामूहिक रूप से शिक्षण एवं उपयोगी सूचना के संप्रेषण का होना। कोशिमा द्वीप समूह में जापानी मेकैक बंदरों की एक अर्धप्राकृतिक कॉलोनी पर किए गए प्रेक्षणों में देखा गया है कि जब उन्हें मिट्टी लगे आलू दिए गए तब उन्होंने प्रायः उन्हें रगड़-रगड़ कर उनकी मिट्टी उतारी और उसके बाद उन्हें खाया। मगर देखा गया कि एक दिन उनमें से एक मादा बंदर आलू खाने से पूर्व उसे समीप के समुद्र में धो रही थी। शीघ्र ही अन्य मादाएं उसकी नकल करने लगी और बच्चों ने भी यही व्यवहार सीख लिया (चित्र 15.9)।

एक ओर जबकि सामूहिक जीवन से स्पष्ट लाभ प्राप्त होते हैं वहीं दूसरी ओर कुछ निश्चित हानियाँ भी है। समूह में संसाधनों के लिए प्रतिस्पर्धा होती है, परजीवियों तथा रोगों के संचरण का अधिक खतरा होता है, स्वजाति सदस्यों द्वारा बच्चों के स्वजातिभक्षण (cannibalism) का अधिक भय तथा संगम में दखल होती है। लाभों और कमियों के बीच का संतुलन शेष बहुत अच्छा है और प्राकृतिक वरण द्वारा उसी व्यवहार को समर्थन मिलेगा जो अंत में व्यष्टियों के जनन हितों की दिशा में होगा।

चित्र 15.9: जापानी मैकाक बंदर। एक बंदर कुछ नया व्यवहार करता है जिसे और बंदर देख कर सीख लेते हैं तथा वे भी वैसा ही व्यवहार दर्शाते हैं।

15.4.2 सामाजिक व्यवहार प्रतिरूपों के प्ररूप

हम पहले कह आए हैं कि प्राणियों के समाजों की संरचना, संघटना, जटिलता एवं उनमें होने वाली परस्परक्रियाओं में भारी विविधता पायी जाती है। आपको (LSE-09) की इकाई 15 में वर्णित कीट समाजों के जटिल संगठन के विषय में याद होगा। इन कीटों को सुसामाजिक (eusocial) कहा जाता है क्योंकि इनमें सैनिक, कर्मी, जनन व्यष्टियां आदि की जातियां (castes) पायी जाती हैं जो आकारिकी की दृष्टि से एक-दूसरे से भिन्न होती हैं। इसके विपरीत कशेरुकियों के सामाजिक संगठन में इतनी रूढ़ता नहीं पायी जाती हालांकि इनमें भी सुसामाजिकता का एक उदाहरण है जिसका उल्लेख हम आगे करेंगे। अधिकतर कशेरुकी समाजों में भी आनुवंशिकतः संबंधित व्यष्टियां ही पायी जाती हैं मगर कीट समाजों से भिन्नता रखते हुए इनके सभी सदस्य जनन क्षमता से युक्त होते हैं और जनन-स्पर्धा ही वह एक मुख्य सिद्धांत है जिस पर इनका सामाजिक तंत्र निर्धारित होता है। प्रायः एक प्रतिरूपी कशेरुकी समाज में आनुवंशिकतः संबंधित मादाएं और उनकी संतानें होती हैं और साथ में वे गैर संबंधित नर भी होते हैं जो बाहर से आकर उस समूह में शामिल हो जाते हैं।

प्राणियों के समाज में सामाजिक संगठन को गठित करने एवं उसे कायम बनाए रखने एवं व्यष्टियों में दूरी बनाए रखने के लिए कुछ खास व्यवहार प्रतिरूप होने आवश्यक हैं। आइए, इनमें से कुछ व्यवहार प्रतिरूपों की चर्चा करते हैं।

1. क्षेत्रीयता एवं प्रभाविता पदानुक्रम (Territoriality and dominance hierarchy)

सामाजिक संगठन के लिए किसी एक ही स्पीशीज़ के प्राणियों के बीच सहकार की आवश्यकता होती है मगर साथ ही साथ उनके बीच प्रतिस्पर्धा होती है क्योंकि आहार, जल या मैथुनी अथवा आश्रय जैसे संसाधन सीमित होते हैं।

प्राणी जो कुछ अधिकतर करते हैं वह प्रतिस्पर्धा के ही समाधान के लिए होता है तथा इसे **आक्रामकता** (aggression) कहते हैं। परिभाषा के रूप में कह सकते हैं कि आक्रामकता एक ऐसी शारीरिक क्रिया अथवा धमकी होती है जो दूसरों को वह सब छोड़ देने पर मजबूर करती है जो उनके पास है अथवा हो सकता है। अनेक व्यवहारविज्ञानी आक्रमकता को एक अधिक व्यापक व्यवहार जिसे **विवादग्रस्थ व्यवहार** (agonistic behaviour) कहते हैं, का ही अंग मानते हैं जो किसी भी ऐसे क्रियाकलाप का संदर्भ देता है जिसका संबंध लड़ाई से है चाहे वह आक्रमण हो या सुरक्षा या आत्मसमर्पण अथवा पीछे हट जाना। अधिकतर आक्रामक व्यवहार धमकी प्रदर्शनों के रूप में होता है और ऐसा बहुत ही कम होता है कि इससे **अपनी ही स्पीशीज़** के अन्य सदस्यों को कोई हानि हो अथवा उनके लिए प्राणघातक हो। प्राणी विवादग्रस्थ व्यवहार के संकेतात्मक प्रदर्शन आपस में समझ लेते हैं। उदाहरणतः स्पर्धी नर विषैले सर्प एक अपनी विशेष प्रकार की लड़ाई में जुट जाते हैं जिसमें वे एक-दूसरे से अपना सिर मारते हैं ताकि

विरोधी थक-हार कर अंततः पीछे हट जाता है। वे एक-दूसरे को काटते कभी नहीं। हारने वाला प्रायः विजेता के सामने आत्मसमर्पण कर देता है और विजेता प्रभावी अर्थात् हावी बन जाता है।

विवादग्रस्थ व्यवहार सामाजिक व्यवस्था बनाए रखने के लिए महत्वपूर्ण होता है ख़ास तौर से **प्रभाविता पदानुक्रम** (dominance heirarches) तथा **क्षेत्र** (territories) बनाए रखने के लिए।

सामाजिक संगठन में अपने क्षेत्रों को चिन्हित किया जाता और उनकी रक्षा की जाती है क्योंकि उनमें उनके आहार संसाधन होते हैं एवं अपने संगमनियों को आकर्षित करने के स्थल एवं बच्चों के लालन पालन के स्थान होते हैं। आश्रय के स्थान भी यही क्षेत्र होते हैं। कशेरुकियों के तमाम क्लासों में पक्षी वर्ग ही सर्वाधिक स्पष्ट रूप से क्षेत्रीयता दर्शाते हैं। जैसा कि आपको याद होगा अधिकतर नर गायन पक्षी अपने क्षेत्रों को शुरू बसंत में स्थापित कर देते हैं तथा उन्हें बहुत चुस्ती से बचाए रखते हैं। अनेक स्तनियों के गृह-परास (home ranges) होते हैं न कि क्षेत्र। यह परास एक कोई अलग सुरक्षित क्षेत्र नहीं होता वरन उस स्तनी के क्रियाकलापों का सकल क्षेत्र होता है। किसी एक ही स्पीशीज़ की व्यष्टियों के गृह-परास एक-दूसरे पर अतिव्याप्त हो सकते हैं और ऋतुओं के साथ-साथ हटते-खिसकते रहते हैं।

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है किसी सामाजिक संगठन के व्यष्टियों के बीच विवादग्रस्थ व्यवहार के कारण एक प्रकार की प्रभाविता स्थापित हो जाती है। इसी प्रभाविता पदानुक्रम के कारण स्पर्धा के बावजूद प्राणियों का समूह अपना सहअस्तित्व बनाए रख सकता है। समूह में इस प्रकार से संगठन बन जाते हैं कि समूह के कुछ सदस्यों की आहार एवं मैथुनियों के जैसे संसाधनों तक अन्य सदस्यों की अपेक्षा अधिक पहुंच होती है। पदानुक्रम के शीर्ष पर बने प्राणियों का संसाधनों तक पहुंचने का अधिकार पहला होता है जब कि सबसे नीचे के स्थान के प्राणियों को संसाधन की कमी होने पर संसाधन प्राप्त नहीं होते। एक बार जब पदानुक्रम बन चुका हो तब सहअस्तित्व संभव हो जाता है जिसमें यदाकदा जब कभी कोई एक सदस्य ऊपर आना चाहे तो लड़ाइयां हो भी सकती हैं। प्रभाविता पदानुक्रम को सबसे पहले मुर्गों के समाजों में देखा और वर्णन किया गया था। यह देखा गया कि जब मुर्गों को एक बाड़े में बंद किया गया तो शुरू में वे लड़ते हैं और तब तक लड़ते जाते हैं जब तक कि उनके भीतर प्रभाविता की एक रेखित (linear) पदानुक्रम नहीं बन जाता। उच्चतर पद वाले मुर्गे पहले खाते हैं और यदि अन्य मुर्गों ने उनके अशन अनुक्रम में कहीं कोई गड़बड़ी की तो वे निचले क्रम वाले मुर्गों को चोंच मारते हैं। इसे "चंचु प्रहार क्रम (pecking order)" कहते हैं। हालांकि प्रभावी व्यष्टियों को आहार, स्थान, मैथुनी आदि के सम्पूर्ण अधिकार मिले होते हैं, फिर भी नीचे स्तर वाले व्यष्टि भी आस-पास ही बने रहते हैं क्योंकि अकेले अलग रहना और भी बदतर हो सकता है और ये भी हो सकता है कि आगे किसी समय में वे प्रभावी भी बन जाएं।

2. लैंगिक योजना (Sexual str...)

अलग-अलग स्पीशीज़ के सामाजिक संगठन में काफ़ी ज़्यादा विविधता पायी जाती है। किसी भी स्पीशीज़ में सामाजिक संगठन पर एक मूलभूत प्रभाव उस **संगम प्रणाली** (mating system) द्वारा पड़ता है जिसे उस स्पीशीज़ के सदस्य अपनाते हैं। संगम प्रणाली से हमारा अभिप्राय उस भूमिका से जो उसके दो लिंग (नर-मादा) जनन क्रिया में अपनाते हैं।

आप LSE-09 की इकाई 15 में पढ़ चुके हैं कि नर प्राणी बहुसंख्यक शुक्राणु बनाते हैं और अपनी जनन सफलता को बढ़ाने हेतु उन्हें अनेक अण्डों को निषेचित करना होता है। इसके लिए उन्हें लैंगिक योजनाएं अपनानी होती हैं, और इसी से उनमें आक्रमणशील प्रतिस्पर्धा होती है ताकि प्रभाविता पदानुक्रम एवं क्षेत्र स्थापित किए जा सकें।

इन लैंगिक योजनाओं से विशिष्ट प्रकार की संगम प्रणालियां बनती हैं जिनका स्पीशीज़ के सामाजिक संगठन पर भारी प्रभाव पड़ता है। उदाहरणतः जब कभी किसी नर को मादाओं से सम्पर्क बनाने के लिए अन्य स्पर्धियों से मादाओं को बचाना होता है तब सामाजिक संगठन हरम के आधार पर बनने लगता है। इसमें मादाएं भी सहायक होती हैं जो परभक्षियों से सुरक्षा के लिए अथवा अशन अवसरों के लिए एकत्रित होने लगती हैं। ऐसा ही हरम बनना कुरंगों (antelopes) तथा हिरनों में पायी जाने वाली सामाजिक संरचना का आधारभूत पहलू होता है। इनमें संगम प्रणाली बहुसंगमानी (polygynous) प्रकार की होती है। साथ ही बहुसंगमनीत्व स्तनियों में अधिक पाया जाता है क्योंकि इनमें मादाएं संतानों की देखभाल के लिए विशेषित होती हैं। लेकिन जहां कहीं भी बच्चे की देखभाल के लिए नर और मादा दोनों की

आवश्यकता होती हैं वहां प्राय: नियमत: एक संगमनी (monogamy) प्रणाली पायी जाती है। पक्षियों में 90 प्रतिशत से ज़्यादा स्पीशीज़ एक संगमनी होती हैं। संगम जोड़ी ऋतु के आधार पर अथवा सतत आधार पर एक साथ जीवन बिताती है। बहुसंगमनीत्व उन पक्षियों में पाया जाता है जिनमें बच्चों के पालन के लिए नरों की आवश्यकता नहीं होती जैसे कि महोक पक्षियों (pheasants) में जिसमें बच्चों को अपेक्षाकृत पैतृक देख रेख की आवश्यकता कम होती है। एक संगमनी व्यवस्था स्तनियों में सामान्य नहीं होती किंतु यह कुछ प्राइमेट स्पीशीज़ अथवा गीदड़ों में पायी जाती है जिनमें नर अपने बच्चों को अपने ही पेट से उगल-उगल कर खाना खिलाते हैं।

एक अन्य प्रकार की संगम प्रणाली पक्षियों में पायी जाती है जो बहुपतित्व (polyandry) पर आधारित होती है जिसमें मादाएं दो या अधिक नरों के साथ संगम करती हैं परंतु नर केवल एक मादा के साथ संगम करता है। इन मामलों में मादाएं नर की अपेक्षा अधिक सुदृश्य होती हैं एवं उनमें अधिक क्षेत्रीयता तथा अधिक प्रभाविता पायी जाती है। उनमें अण्डे भी नर ही सेता है जब कि मादाएं अन्य संगमनियों की तलाश में निकल पड़ती हैं। अत: हम देखते हैं कि संगम प्रणाली तथा दो जनकों द्वारा दी जाने वाली पैतृक देखरेख के बीच कुछ सहसंबंध तो ज़रूर है ही।

3. परोपकारी एवं सहकारी व्यवहार (Altruistic and co-operative behaviour)

परोपकारी (altruistic) व्यवहार भी कुछ प्राणि-समाजों के संगठन में महत्वपूर्ण होता है (आपको याद होगा कि अकशेरुकियों में मधुमक्खी समाजों में एक सर्वोच्च प्रकार का परोपकारी व्यवहार पाया जाता है)। परोपकारिता में एक व्यष्टिगत सदस्य दूसरे सदस्य को लाभ पहुंचाने हेतु अपनी जनन क्षमता को त्याग देता अथवा बलि कर देता है। उदाहरणत: कौवों के एक दल में कोई एक कौआ चेतावनी स्वर निकालता है ताकि सामने से आ रहे परभक्षी से अन्य साथी कौवे सचेत हो जाएं, भले ही उसका अपना चेतावनी स्वर हो सकता है कि परभक्षी को उसकी ही ओर क्यों न आकर्षित कर रहा हो।

आख़िर प्राणी ऐसा करता ही क्यों है? प्रत्यक्ष रूप से इस व्यवहार का कोई कारण नज़र नहीं आता, क्योंकि प्राणी अपना बलिदान देकर दूसरों को जीवित बने रहने देता है और जीवविज्ञान की दृष्टि से सफल होने में प्राणी को अधिकाधिक संख्या में संतान पैदा करनी ज़रूरी है जिसके द्वारा वह अपने जीनों को अगली पीढ़ी में पहुंचा सके। अध्ययनों से पता चला है कि परोपकारी व्यवहार आनुवंशिकत: संबंधित व्यष्टियों की ओर दर्शाया जाता है तथा एक संबंधी एवं उसकी संतानों की सहायता करके जीनों को आगे पहुंचाया जा सकता है क्योंकि परोपकारी के कुछ जीन उसके संबंधी में भी होते हैं। प्राकृतिक वरण उन जीनों का समर्थन करता है जो आनुवंशिकत: संबंधित व्यष्टियों की ओर परोपकारी व्यवहार को बढ़ावा देते हों। इस प्रकार के वरण को **सगोत्र वरण** (kin selection) कहते हैं और इसी से स्पष्ट होता है कि संबंधित प्राणियों मे प्राकृतिक वरण किस प्रकार एक व्यष्टि की योग्यता को प्रभावित कर सकता है। इस प्रकार किसी एक विशिष्ट व्यष्टि में मौजूद जीन एक संबंधी द्वारा अगली पीढ़ी में पहुंच सकती है। अत: किसी एक व्यष्टि की योग्यता एक तो उन जीनों पर जिन्हें वह पहुंचाता है और साथ उन समान (common) जीनों पर जो उसके संबंधी अगली पीढ़ी में पहुंचाते हैं, पर निर्भर होती है। सगोत्र वरण को कार्यान्वित होने के लिए ज़रूरी है कि समूह सदस्य अपने सगे-संबंधियों को पहचान सकें जैसा कि सामाजिक कीटों में एवं कुछ प्राइमेट समूह में पाया जाता है।

यद्यपि चरम परोपकारिता सुसामाजिक कीटों में पायी जाती है जिनमें एक जननशील वयस्क होता है एवं बहुसंख्यक बंध्य कर्मी होते हैं, तथापि कम से कम एक स्तनी तो है ही जिसे सुसामाजिक कहा जा सकता है। दक्षिण अफ्रीका के शुष्क क्षेत्रों में रहने वाला नग्न "मोल रैट" नामक चूहा है जिसमें दीमकों के जैसा सामाजिक संगठत पाया जाती है।

मोल रैट भूमिगत सुरंगें बनाता है जिनके भीतर प्राय: केवल एक जननिक मादा होती है और एक जाति कर्मियों की होती हैं जो कभी प्रजनन नहीं करते। वे अपनी कॉलोनी की रक्षा करते तथा एक के बाद एक मज़दूर शृंखला की तरह मिट्टी की कठोर सतह को खोद-खोद कर खाने योग्य जड़ों और कंदों को ढूंढते जाते हैं ताकि शेष कॉलोनी को भोजन मिल सके (चित्र 15.10)। जननकारी मादा आहार ढूंढने के काम में हाथ नहीं बटाती क्योंकि कॉलोनी के कर्मी उसे भोजन ला-लाकर देते रहते हैं। आहार ढूंढना इतना कठिन है कि मोल-रैटों का एक जोड़ा यदि अकेले-अकेले आहार ढूंढता तो उसके लिए जीवित बने रहना मुश्किल था। कॉलोनी के साथ सहकार करके तथा अन्य के जनन में योगदान करके ये कर्मी कॉलोनी में हुई संतान में मिला-जुला साझा कर लेते हैं।

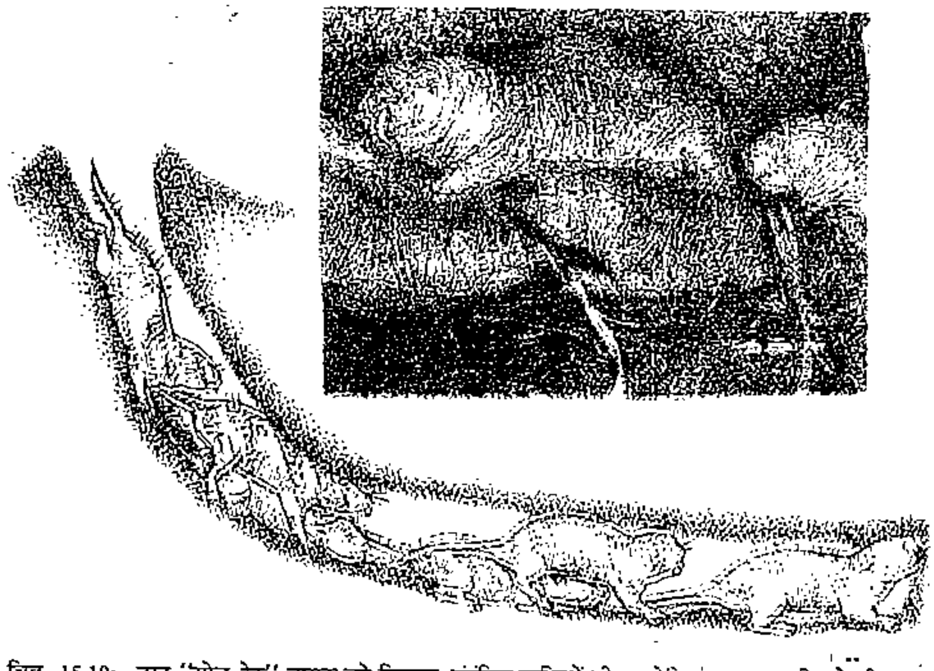

चित्र 15.10: नग्न "मोल-रेट" नामक चूहे निकटतः संबंधित व्यष्टियों की कालोनियां बनाकर ज़मीन के भीतर रहते हैं। इनके कर्मी सदस्य सहकारी रूप में मिल जुलकर कड़ी मिट्टी में सुरंगें खोदते और आहार तलाशते हैं।

प्राणियों के बीच पाए जाने वाले सहकार में कुछ परोपकारिता भी झलकती है। पक्षियों की 200 से अधिक स्पीशीज़ में सहकारिता पायी जाती है। स्पीशीज के अन्य सदस्य माता-पिता की किसी न किसी प्रकार सहायता करते हैं, और अक्सर इस काम में उनके पिछले वर्ष के बच्चे ही सहायता करते हैं। वे अनेक प्रकार से सहायता करते हैं जैसे घोंसला बनाना, सीमा क्षेत्रों की रक्षा, अशन की खोज तथा परभक्षियों को दूर भगाए रखना।

वृहताकार बिल्लियों के वंश में मात्र बबर शेर (सिंह) ही ऐसे सदस्य हैं जिनमें उच्च स्तर का अति सहकारी सामाजिक संगठन पाया जाता है। तंज़ानिया में सेरेंगेटी पार्क में किए गए अध्ययनों से पता चला है कि एक प्ररूपी सिंह समूह में वयस्क शेर, शेरनियां तथा उनके शावक पाए जाते हैं। सभी शेरनियां निरपवाद परस्पर संबंधित होती है, अर्थात् मांएं, बेटियां, बहनें, दादी-नानियां, चाची-मौसियां। अधिक शेरनियां उसी सिंह परिवार (जिसे प्राइड (pride) कहते हैं) जिसमें वे पैदा हुई थीं आजीवन बनी रहती हैं। जो थोड़ी-बहुत मूल परिवार को छोड़ भी देती हैं वे कहीं समीप ही एक नया समूह बना लेती हैं। शेरनियों के बीच सहकारिता बहुत व्यापक होती है और उनमें कोई पदानुक्रम नहीं पाया जाता। वे एक साथ शिकार करतीं, एक साथ अपने सीमाक्षेत्र की रक्षा करतीं और साथ-साथ ही बच्चे भी पैदा करतीं हैं। शावक एक साथ कर दिए जाते, एक साथ पाले जाते, एक साथ उनकी रक्षा की जाती और यहां तक कि उन्हें दूध भी सामुदायिक रूप में ही पिलाया जाता है। नरों के दल को साझा-दल (coalition) कहा जा सकता है जो समूचे सिंह समूह की सुरक्षा की देख भाल करते हैं। साझा-दल में अधिकतर परस्पर संबंधित नर ही होते हैं पर यदा कदा उसमें गैर नर भी आ जाते हैं। साझा दल में कोई प्रभाविता पदानुक्रम नहीं पाया जाता। सभी रिश्तेदार और गैर रिश्तेदार नर सिंह सहकार करते हैं क्योंकि ऐसा करने में अन्य साझा दलों के स्पर्धी शेरों से अपने सिंह दल की सुरक्षा करना अधिक आसान होता है। जब भी कोई नया साझा दल बनता है और सिंह समूह पर हावी हो जाता है तब वे सभी मां का दूध पीना छोड़ चुके शावकों को मार डालते हैं। अतः नर और मादाओं दोनों ही के हित में है कि वे सहकार करें ताकि शावक उपवयस्क अवस्था तक तो बड़े हो ही जाएं और शिशुघाती प्रतिस्थापी नरों द्वारा न मारे जाएं।

प्राणियों में अनेक सामाजिक संगठन ऋतु के साथ-साथ बदलते पाये जाते है। उदाहरणतः प्रजनन ऋतु के बाहर लाल हिरन के नर और मादा अलग-अलग रहते हैं— नर कुछ असंयुक्त से दलों में रहते हैं जिसमें प्रभाविता पदानुक्रम सुस्पष्ट होता है, तथा मादा अलग दल बनाती हैं जिनमें नर-मादा दोनों लिंगों के शिशु हिरन भी रहते हैं। प्रजनन ऋतु के आते-आते नर आक्रमणशील बन जाते हैं और अंततः नर दल टूटने लगते हैं जिनमें वयस्क नर अपना-अपना पृथक व्यष्टित्व दर्शाने लगते हैं जिसमें वे दहाड़ कर मादाओं को आकर्षित करते हैं। तब वे अपनी मादाओं के समूह की रक्षा करते हैं। प्रजनन ऋतु के समाप्त होने पर नर और मादा दोनों ही अपने-अपने दलों में चले जाते और शीत ऋतु बिताते हैं।

अनेक स्पीशीज़ में सामाजिक व्यवहार वर्ष पर्यंत एक सा ही बना रहता है, बदलता नहीं जैसा कि बबर शेरों में। सामान्यत: वे स्पीशीज़ जो आखेट पकड़ने के लिए तथा स्वयं की रक्षा करने के लिए सहकार करती हैं वे सारे वर्ष एक साथ रहा करती हैं। भेड़िए तथा अफ्रीकी जंगली कुत्ते दल बना कर शिकार करते हैं और बहुत स्थिर सामाजिक संरचनाएं बनाते हैं। अफ्रीकी जंगली कुत्ते (चित्र 15.11) में अनोखा एवं जटिल सामाजिक संगठन होता है। ये नर और मादाओं के समिश्र दल बना कर शिकार करते हैं और पिल्लों तथा बूढ़े कुत्तों को माँद में ही छोड़ जाते हैं। शिकार करने पर ये मिनटों में उसे खा जाते हैं और अपने इस आहार का कुछ हिस्सा माँद में लौट कर पिल्लो, बूढ़े तथा बीमार कुत्तों के लिए उलट देते हैं। अनेक प्राइमेट भी एक स्थिर सामाजिक गठन बनाते हैं जिसमें परस्पर रिश्ते बहुत सूक्ष्म एवं जटिल होते हैं। अगले उपभाग में हम प्राइमेटों के सामाजिक गठन के विषय में बताएंगे।

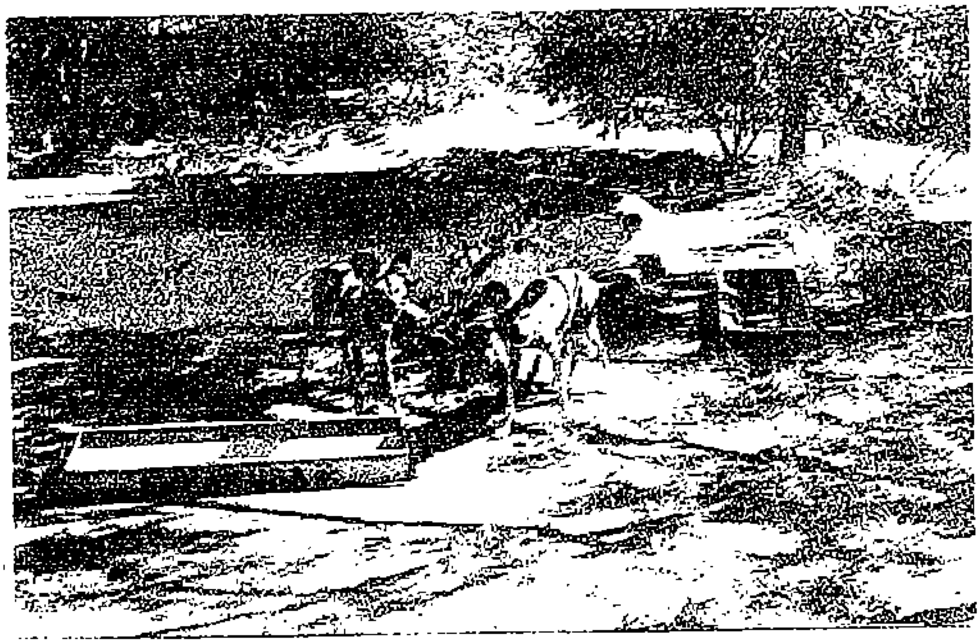

चित्र 15.11: अफ्रीकी जंगली कुत्ते अति सामाजिक प्राणी होते हैं।

15.4.3 प्राइमेट सामाजिक संगठन

प्राइमेट बहुत विविध आवासों में रहते पाए जाते हैं और उनके आरंभिक इतिहास से ही पता चल गया था कि अधिसंख्य प्राइमेट सामाजिक प्राणी थे। इनमें बहुत व्यापक तथा भांति-भांति के सामाजिक संगठन पाये जाते हैं।

लीमरों, लोरिसों तथा टार्सियरों जैसी अनेक प्रोसीमियन (Prosimian) स्पीशीज़ के आहार क्षेत्र बहुत दूर-दूर तक अलग-अलग फैले होते हैं और ये प्राणी प्राय: एकल जीवनयापी होते हैं जो केवल अनुरंजन एवं संगम के समय के दौरान ही परस्पर सम्पर्क में आते हैं। क्योंकि ये स्पीशीज़ एकल होती हैं इसलिए ये शर्मीली होती हैं और घने जंगलों में पत्तों के बीच लुकी-छिपी रहती है।

एक संगमनीत्व (monogamy) वाले वयस्क प्राइमेट-जोड़े अपनी हाल की संतानों के साथ रहते हैं। इनके उदाहरण हैं द्वीपों के लंगूर, रूपहले मार्मोसेट, गिब्बन, लाल पेट वाले लीमर तथा रात्रि बंदर आदि। सामाजिक प्राइमेटों में जितने अधिक विशेष अधिकार युक्त पदवी स्थाई रूप में एकसंगमनी स्पीशीज़ की मादाओं को मिलती हैं उतनी अन्य किसी में नहीं। इनकी कुल 37 स्पीशीज़ है जिनमें से अधिकतर संकटापन्न हैं और विरलत: पायी जाती हैं। ये उष्णकटिबंधीय वर्षा वनों में रहती हैं। गिब्बन दक्षिण पूर्व एशिया में पाए जाते हैं, इनके दलों में 4-8 सदस्य होते हैं जिनमें एक वयस्क नर एक वयस्क मादा तथा 4 तक बच्चे होते हैं। नर-मादा बंधन आजीवन काल का एवं स्थायी होता है। ऐसे दलों में प्राय: नर और मादा के देह साइज़ों में बहुत अंतर नहीं होता। ये छोटे आकार के होते हैं और प्रोटीन-प्रचुर आहार करते हैं जैसे की कीट-पतंग, नई पत्तियां तथा पके फल। सभी एकसंगमनी दलों के निश्चित सीमा क्षेत्र होते हैं जिसकी वे बहुत चुस्ती से रक्षा करते हैं। बच्चों की देख-भाल में मां और बाप बराबर का हाथ बंटाते हैं, मादा बच्चों को आहार कराती तथा नर अपनी पीठ पर बच्चों को बैठा कर उन्हें यहां-वहां ले जाते हैं (चित्र 15.12) अपने परभक्षियों से बचने की युक्ति इनका लुके-छिपे जीवन बिताना है।

'हनुमान' लंगूरों में, लाल हाऊलर बंदरों, लाल पूंछ वाले बंदरों, नीले बंदरों आदि में ऐसे समूह पाए जाते हैं जिनमें केवल एक नर और उसके साथ संबंधित कई मादाएं और बच्चे होते हैं। प्ररूपत: इनके दल में

चित्र 15.12: मार्मेसिट एक एकसंगमनीक प्राइमेट है और यह प्रायः जुड़वां बच्चों को जन्म देती है। चित्र में नर अपनी पीठ पर जुड़वों को बैठाए हुए है।

20-100 सदस्य होते हैं। हर दल में केवल एक ही वयस्क नर बंदर होता है जिसे "रेज़िडेंट नर" कहा जाता है। शेष दल में वयस्क मादाएं, उपवयस्क मादाएं, नर एवं मादा बच्चे और शिशु होते हैं। उपवयस्क नर या तो स्वेच्छा से दल छोड़कर चले जाते हैं या उन्हें बाहर खदेड़ दिया जाता है जो सब एक साथ मिलकर सर्व नर समूह बना लेते हैं। वयस्क नर अपने दल का समन्वयकारी होता है और दल किस दिशा में कूच करेगा, कहां खाएगा अथवा कहां सोयेगा इसका निर्णय यही नर करता है। नर प्राणी ज़ोर-ज़ोर का गूंजता स्वर निकालते हैं जो समूह के शीघ्रता से एक साथ इकट्ठा हो जाने के लिए आवश्यक है। "हनुमान" लंगूरों में वयस्क नर ही क्षेत्र की रक्षा करता और अपनी मादाओं (हरम) को घुसपैठिये नरों से अलग दूर ले जाता है। ऐसे दलों में नर मादाओं से कहीं ज़्यादा बड़े आकार के होते हैं और इनमें नर द्वारा बच्चों की देख-भाल शून्य होती है। मगर ऐसा भी अक्सर होता ही रहता है कि दल के स्वामी नर को कभी-कभी "गद्दी से उतार" दिया जाता है, ऐसा तब होता है जब सर्व नर समूह से कोई अन्य नर "रेज़िडेंट" नर का पीछा करता उसे खदेड़ देता और हरम को काबू में कर लेता है।

जिन प्राइमेटों को अधिक स्थिर आहार आपूर्ति होती है उनमें बहु नर समूह (multimale groups) बनाने की प्रवृत्ति होती है जिनमें कई-कई मादाएं और बच्चे होते हैं। इनके उदाहरण हैं रीसस, गोरिला, बबून, माकड़ बंदर, दाढ़ी दार साकी, 'गिलहरी' वानर आदि। प्ररूपतः इनके एक समूह में 3-8 वयस्क नर होते हैं जिसमें 5-7 अधीन मादाएं होतीं जिनके साथ उनके शिशु होते हैं। इस प्रकार की अनेक

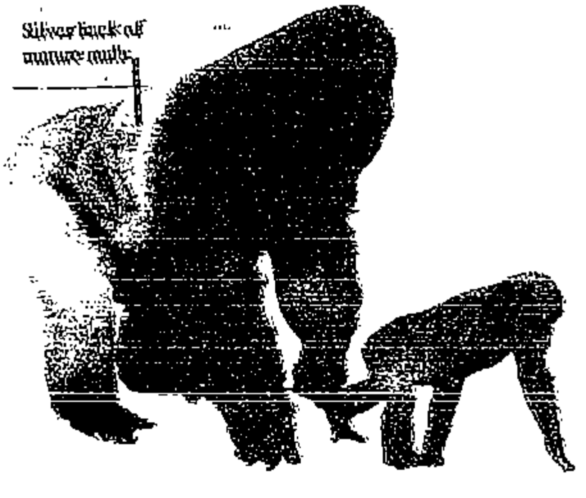

चित्र 15.13: गोरिला समूह का सरदार 'सिल्वर-बैक' होता है।

छोटी-छोटी इकाइयां होती हैं जो साथ-साथ रहतीं और सब मिलकर एक बृहत्तर इकाई अथवा समूह बनाती हैं। उदाहरणत: पर्वतीय गोरिलें (*गोरिला गोरिला बेरिंजिआई, Gorilla gorilla beringei*) में एक छोटा आवास दायरा होता है और वे जंगली पौधों की पत्तियां एवं तने खाते हैं। ये छोटे-छोटे समूहों में रहते हैं जिनमें से प्रत्येक का एक नेता 'सिल्वरबैक' अर्थात् प्रभावी नर होता है (चित्र 15.13)। नरों में परस्पर एक स्पष्ट प्रभाविता पदानुक्रम पाया जाता है, इनमें जो सर्वाधिक प्रभावी है वह 'ऐल्फा', उसके बाद 'बीटा' और फिर 'गामा' आदि।

यदि किसी संकरे पथ पर चलना हो या फिर आश्रय स्थान या अशन स्थान पर अधिकार करना हो तो प्रभावी नर का पहला अधिकार होता है। आश्चर्य की बात है कि अन्य प्राइमेटों से भिन्न गोरिला में प्रभावी नर गोरिले आक्रमणशील नहीं होते और अन्य सभी नर तत्पर मादाओं के साथ सम्पर्क बना सकते हैं। संगम में किसी प्रकार का संघर्ष नहीं होता। ये समूह 'आयु-स्तरित' (age graded) होते हैं अर्थात् 'सिल्वरबैक' सबसे अधिक आयु वाला होता है तथा बाकी सभी नर छोटे होते एवं उनमें भी आयु के अनुसार क्रम-स्तर बन जाते हैं।

रीसस बंदर भारत में बहुत व्यापक पाया जाता है। यह बहु-नरीय समूहों में रहते हैं जिनमें नर और मादा दोनों होते हैं। नरों में प्रभावी पदानुक्रम पाया जाता है और मादाएं अपनी प्रभाविता उन नरों से प्राप्त करती हैं जिनके साथ उनका संबंध रहता है। उदाहरणत: यदि ऐल्फा बंदर सर्वाधिक प्रभावी नर है तो उससे जुड़ी मादाएं बाकी मादाओं तथा शेष समूह सदस्य में से अधिक उच्चतर प्रभावी पदानुक्रम का लाभ उठाती हैं। यहां तक कि उनके शिशु भी उस प्रभाविता को ग्रहण कर लेते हैं। प्रभावी नर की ये पहचान है उसका अकड़ कर चलना और चलते समय पूंछ को ऊपर को उठाए रखना (चित्र 15.14)। उपप्रभावी नर बहुत सावधानीपूर्वक और अपनी पूंछ को दोनों पिछली टांगों के बीच में दबाए चलता है। यदि ऐल्फा सदस्य थोड़ी सी देर के लिए समूह को छोड़कर चला जाता है तो बीटा नर अपनी पूंछ खड़ी कर लेता है और जैसे ही ऐल्फा नर लौट कर आता है वैसे ही वह अपनी पूंछ को फिर से नीची कर लेता है। रीसस समूह जल्दी से नहीं टूटते हालांकि हर रोज़ खाना ढूंढने-खाने के लिए वे छोटे-छोटे परिवार समूहों में बंट जाते हैं। सभी परिवार इकाइयां निकटत: ही रहती हैं और खतरे के समय तथा जब कभी दिन में विश्राम करना हो तब और जब रात को बसेरा करना हो तब भी एक हो जाती हैं।

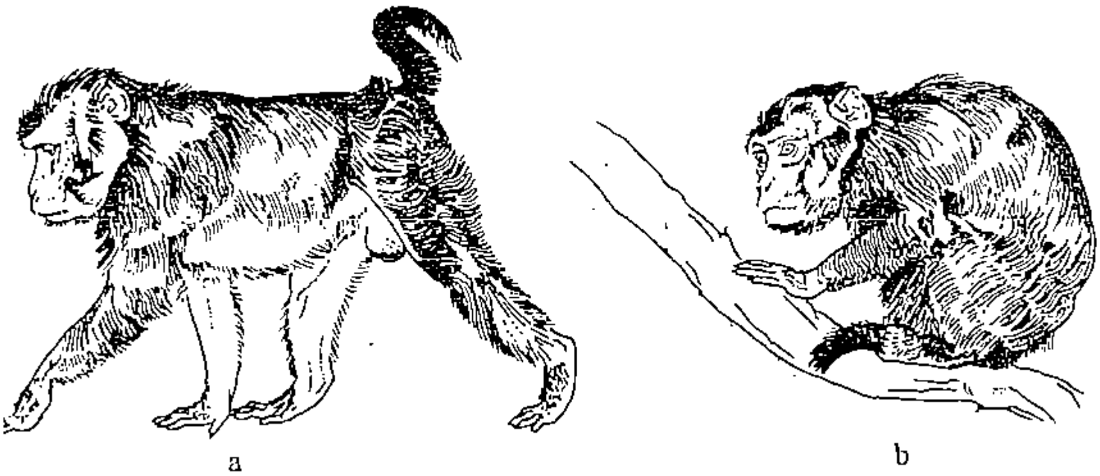

चित्र 15.14: रीसस नर के शारीरिक मुद्रा के अभिलक्षण: a) प्रभावी नर b) उपप्रभावी नर।

सवान्नाह वासी बबून प्राय: अनेक नरों और मादाओं के समूहों में रहते हैं। प्रभावी नरों को कुछ खास अधिकार होते हैं जैसे कि आहार, पानी तथा मादाओं तक पहले पहुंचने का। वे अपने प्रतिस्पर्धियों से अपने सामाजिक स्थान को बनाए रखने में और साथ ही दल के अन्य सदस्यों से मां एवं शिशुओं की रक्षा में परस्पर सहयोग करते हैं। प्रभावी नर परभक्षियों के प्रति भी रक्षा करने में सहयोग करते हैं। आहार से भरपूर आवासों में परभक्षी अधिक आकर्षित होते हैं और ऐसी परिस्थितियों में नर-नर सहयोग का बहुत अधिक लाभ होता है (चित्र 15.15)।

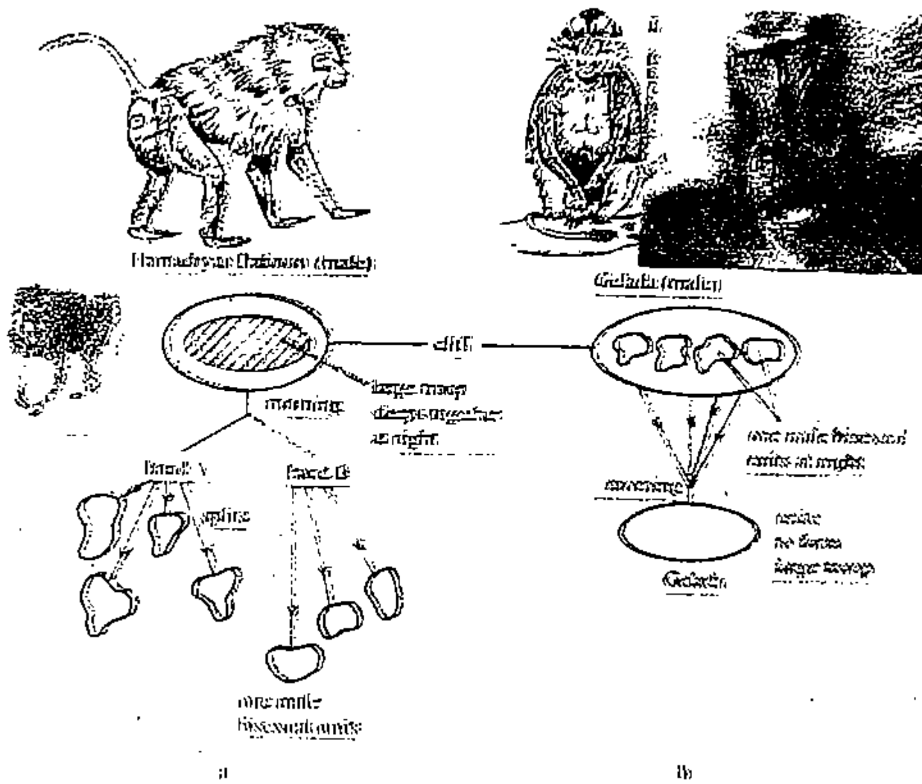

चित्र 15.15: बहुनर द्विलैंगिक समूह: a) हमाद्रियाद् बबून जो सोमालिया तथा इथिओपिया में रहते हैं। इनके दल एक साथ मिलकर चट्टानों पर सोते हैं तथा हर रोज़ दिन में आहार खोजने के लिए अलग-अलग हो जाते हैं। b) उत्तरी इथिओपिया में पाए जाने वाले गेलाडा बबून रात में एकल नर परिवार इकाइयों में चट्टानों पर अलग-अलग सोते हैं मगर सवेरा होने पर आहार खोजने के लिए बड़े दलों में फिर से एकत्र हो जाते हैं।

काँगों में पाए जाने वाले बौने चिम्पैंज़ी (*पैन पैनिस्कस Pan paniscus*) तथा गिनी से काँगों तक और युगांडा एवं तज़ानिया में पाए जाने वाले चिम्पैंजी (*पैन ट्रॅगलोडाइटीज़ Pan traglodytes*) अलग-थलग सी सामाजिक टुकड़ियां बनाते हैं। अन्य प्राइमेटों की अपेक्षा इनका सामाजिक गठन अधिक विविध होता है। ये कोई ऐसे दृढ़ सामाजिक गठन का पालन नहीं करते कि उसमें कोई फेरबदल न हो। इन्हें केवल नरों के दलों में, मादाओं के समूहों में जिनमें संतानें हो या नहीं भी या फिर बच्चों सहित नरों एवं मादाओं के बड़े-बड़े दल बनाते देखा गया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मानवों के सामाजिक जीवन के उद्‌भव पर कुछ प्रकाश डालने के अलावा, भी प्राइमेटों में व्यवहार का अध्ययन अपने आप में भी रोचक है तथा इसके द्वारा व्यवहार विकास के बारे में और जानकारी प्राप्त होती है।

बोध प्रश्न 3

i) कीटों तथा कशेरुकियों के समाजों में कोई एक प्रमुख अंतर बताइए:

....

....

ii) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:

क) जब कभी किसी स्पीशीज़ के नर को मादा से सम्पर्क करने के लिए मादाओं को प्रतिस्पर्धियों से बचाना होता है, तब उनका सामाजिक संगठन प्राय: .... पर आधारित होती हैं।

ख) उन प्राणियों में जिनमें बच्चों की देखभाल नर और मादा दोनों मिलकर करते हैं, उनमें सामान्यत: .... व्यवस्था पायी जाती है।

ग) जब मादा दो या अधिक नरों से संगम करती है तब बच्चों की देखभाल .... करता है।

घ) लंगूरों में बहु .... एवं एकल .... प्रणाली की सामाजिक संघटना होती हैं।

च) जिन प्राइमेटों को अधिक स्थिर आहार स्रोत उपलब्ध होते हैं वे .... नर समूह बनाते हैं।

15.5 संचार

पिछले भाग में आपने देखा होगा कि सामाजिक व्यवहार के गठन में सामाजिक संगठन के व्यष्टिगत प्राणियों के बीच विविध प्रकार के संचरण अर्थात् सूचना-संचार पाए जाते हैं। जिन प्राणियों में अधिक जटिल प्रकार के समाज पाए जाते हैं उनमें संचार की अधिक विशद प्रणालियां पायी जाने की प्रवृत्ति होती है। प्रत्येक संचरण में एक ओर संचारकर्त्ता होता है और दूसरी ओर संचारग्राही होता है।

मात्र संचरण ही एक साधन है जिसके द्वारा एक प्राणी दूसरे प्राणी के व्यवहार को प्रभावित कर सकता है। जब कि मनुष्यों में संचरण मुख्यतः ध्वनियों पर आधारित होता है, अन्य प्राणी विविध प्रकार की संचरण विधियां अपनाते हैं, जैसे कि ध्वनियां, गंध, स्पर्श, दृष्टि, एवं गतियां आदि। वास्तव में कोई भी संवेदी मार्ग अपनाया जा सकता है, और इस दृष्टि से प्राणी-संचरण में अति विशाल विविधता पायी जाती है।

अनेक प्राणियों ने 'संकेत' अर्थात् विशिष्ट व्यवहार प्रतिरूप विकसित कर लिए हैं अक्सर इनके साथ विशिष्ट संरचनाएं भी शामिल होती हैं जिनका मुख्य कार्य उद्दीपनों को दूसरे प्राणियों तक पहुंचाना होता है जो उस संकेत के प्रति अनुक्रिया करते हैं। अतः संचरण का अर्थ है सूचना का स्थानांतरण। परंतु यह परिभाषा संचरण की पूर्ण परिभाषा नहीं है। आइए इसे और स्पष्ट करें। आहार खोजी चींटियां आमतौर से एक गंध-पथ बना लेती हैं जिसे इनके बिल के साथी सूंघ-पहचान कर आहार स्रोत तक पहुंच जाते हैं। एक छोटा सांप *लेप्टोटिफ्लॉप्स* (*Leptotyphlops*) होता है, यह भी इस गंध को पहचान कर चींटियों के बिल तक पहुंच जाता तथा उनके अण्डों-बच्चों को खा जाता है। निश्चय ही चींटियों ने यह गंध-पथ अपनी साथिनियों से संचार हेतु बनाया था। उन्होंने ऐसा सांप को सूचना देने के लिए नहीं किया था।

इस तरह हम संचरण की परिभाषा में यह भी शामिल कर सकते हैं कि संकेतकर्त्ता और संकेतग्राही दोनों ही परस्पर रूप में अनुकूलित होते हैं। अतः, संचरण ऐसे संकेतों के माध्यम से होता है जो दो प्राणियों को लाभ प्रदान करने के लिए विकसित हुए हैं। चींटियों ने सूचना अपने साथियों को दी थी परंतु इस उदाहरण में इस प्रकार की संचार प्रणाली की एक कमी यह थी कि सांप भी इस प्रणाली का उपयोग कर सकता था।

संचरण सदैव एक ही स्पीशीज़ के सदस्यों के बीच हो (अंतःस्पीशीज़ी) ऐसा नहीं है, वरन् यह भिन्न स्पीशीज़ के सदस्यों के बीच भी हो सकता है (अंतरास्पीशीज़ी)। रैटल सर्प (एक प्रकार का फुर्सा सांप) झुनझुने की आवाज़ निकालता है जो अन्य स्पीशीज़ को खतरे का संकेत देती है। स्कंक (skunk) अपने शरीर का पिछला भाग पूंछ उठा कर अपने संभावी परभक्षियों के आगे कर देता है।

प्राणियों में जो नानाविध प्रकार की सूचना प्रेषण की अर्थात् संचरण की विधियां अपनायी जाती हैं उन्हें देखकर आश्चर्य होता है कि आखिर प्राणी ऐसे विविध संकेत क्यों इस्तेमाल करते हैं? इसका एक स्पष्ट कारण है उन पर्यावरणों का अंतर जिनमें वे रहते हैं। वायु और जल में संकेत विधियां अलग-अलग चाहिए। उदाहरणतः जो प्राणी घने जंगलों में से यात्रा कर रहे होते हैं जहां वे एक-दूसरे को आसानी से देख नहीं सकते उनके लिए ध्वनि संकेत अधिक उपयोगी होंगे। दूसरा बहुत ही महत्वपूर्ण कारण यह होगा कि जो प्राणी संकेत प्राप्त कर रहा है क्या उसमें उसके अनुकूल संवेदन क्षमता है या नहीं? उदाहरणतः जो प्राणी अपना मार्ग तलाशने तथा शिकार को पहचानने के लिए कि वह कहां है, अपनी दृष्टि पर ज्यादा निर्भर करते हैं, उनमें दृष्टि संकेतों से ही संचरण करने की प्रवृत्ति होगी।

आइए अब हम विविध प्रकार की संवेदी विधियों पर और उनके द्वारा प्राणियों को अपने विशिष्ट आवासों में जीवन यापन के लिए जो जैविकीय लाभ मिलते हैं, उन पर चर्चा करेंगे।

15.5.1 दृष्टि संकेत

दृष्टि संकेत (visual signals) केवल थोड़ी दूरियों के बीच ही कार्य करते हैं और प्रायः उन प्राणियों में पाए जाते हैं जो खुले-आवासों में रहते हैं। भरपूर रंगों से सुसज्जित परों और कलगियों से लैस सुंदर भड़कीले पक्षियों में उनके ये अलंकार अनुरंजन प्रदर्शनों में इस्तेमाल किए जाते हैं (चित्र 15.16)।

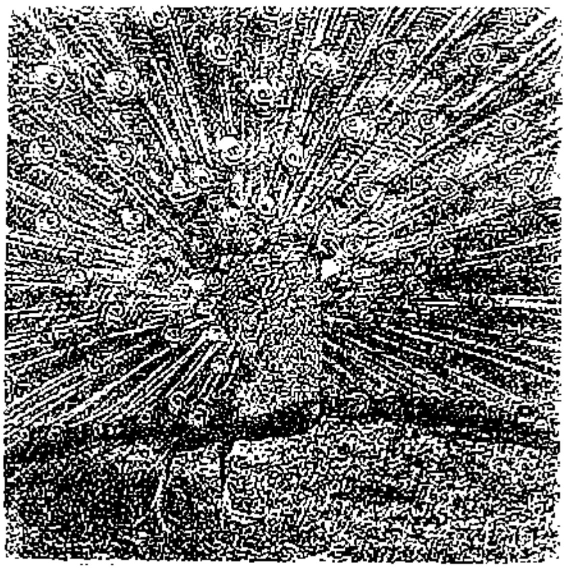

चित्र 15.16: मोर द्वारा अपनी पूंछ के परों को खड़ा करके फैलाते हुए नृत्य करना एक प्ररूपी अनुरजन प्रदर्शन होता है।

अस्थिल मछलियों में अनेक स्पीशीज़ बहुत चटकीले रंगों वाली होती हैं। वे धमकाए जाने पर अथवा संगम के दौरान अपने रंग बदली हैं जिससे उनके रंगों की आवश्यकता का महत्व प्रकट होता है। इकाई 14 में आपने पढ़ा था कि "स्टिकल-बैक" मछली के नर में संगम ऋतु में पेट की अधर सतह लाल हो जाती है। जब कभी यह लाल पेट वाले अन्य नरों को देखता है तब भी वह एक आक्रामक मुद्रा अपना लेता है। यह भी देखा गया है कि यदि एक मामूली सा लाल रंग का मॉडल भी उसके सामने रख दिया जाए तब भी वह उसी तरह की प्रतिक्रिया करता है और इस तरह इनमें पाए जाने वाले रंग संकेतों का महत्व स्पष्ट हो जाता है।

स्पष्ट है कि जब भी कोई दो प्राणी दृश्य संकेतों को एक-दूसरे की ओर प्रेषित करते हैं तब जरूरी है कि वे एक-दूसरे को देख सकें। इसका यह मतलब भी है कि ये प्राणी परभक्षी को भी नजर आएंगे, फिर भी रंगों की विविधता उनका प्रतिरूप एवं भिन्न गतियां अनंत प्रकार के विशिष्ट संकेत पैदा कर सकते हैं (चित्र 15.17)। दृश्य संकेत पैदा करने में प्राणियों को अपने शत्रुओं से स्पष्ट खतरा तो है ही फिर भी प्राणि-जगत में यह व्यापक पाये जाते हैं और विकास की क्रिया में इनका वरणात्मक लाभ तो अवश्य है ही।

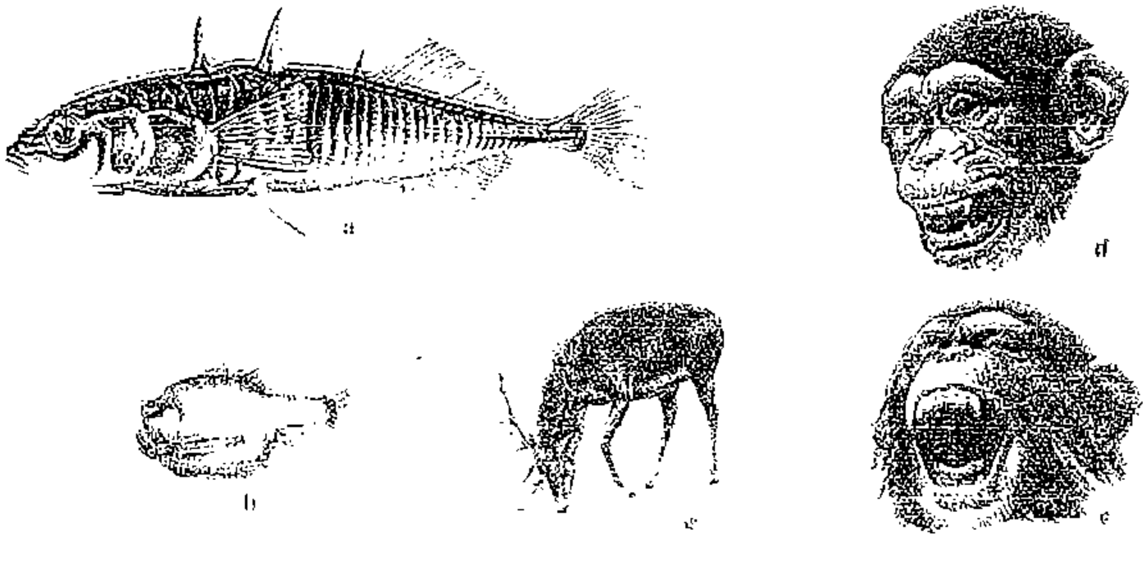

चित्र 15.17: दृश्य संकेत a) स्पीशीज़ का विज्ञापन b) क्षेत्रीयता का विज्ञापन c) धमकाना d) डर e) दुख प्रदर्शन।

15.5.2 ध्वनिक संकेत

ध्वनि संकेतों (acoustic signals) का लाभ है कि ये काफ़ी-काफ़ी दूर तक प्रेरित हो सकते हैं और रास्ते की बाधाओं जैसे कि घने जंगलों की प्राकृतिक बाधाओं को भी लांघ कर दूर दूर तक जा सकते हैं अतः सुदूरगामी संकेत प्रायः मुंह से निकली आवाज़ें होती हैं या फिर खास तौर से पैदा की गयी गंध होती

हैं। सभी आवृत्तियों की ध्वनियां जब प्रवाहित होती हैं तो हल्की पड़ती जाती हैं मगर निम्न आवृत्तियों वाली ध्वनियों की अपेक्षा उच्च आवृत्तियों वाली ध्वनियां सभी प्रकार के आवासों में अधिक धीमी अथवा क्षीण पड़ती जातीं और बाधाओं द्वारा छितरा जाती हैं। इस कारण लम्बी दूरियों के संचारण के लिए निम्न आवृत्तियों वाली ध्वनियां प्राय: बेहतर होती हैं। उदाहरणत: हरा वृक्ष मेंढक नर दो प्रकार की आवृत्तियों पर ध्वनि निकालता है एक निम्न आवृत्ति पर तथा दूसरी उच्च आवृत्ति पर। दूर बैठी मादा निम्न आवृत्ति वाली ध्वनि के लिए प्रतिक्रिया करती है और जैसे-जैसे वह निकट आती जाती है यह ध्वनि अधिक तीव्र सुनाई देती और तब वह निम्न और उच्च दोनों प्रकार के आवृत्ति स्वरों के लिए अनुक्रिया करती है।

पक्षियों का क्षेत्रीय गायन प्राय: किसी ऊँची मचान से किया जाता है जिसके द्वारा उसका प्रभावकारी परास बढ़ जाता है। गानों में प्रतिरूपताएं भी पायी जाती हैं जिसका अर्थ है कि ये भिन्न-भिन्न आवृत्तियों के होते हैं तथा गाने का प्रतिरूप इन स्वरों को एक लड़ी में बांध कर एक 'वाक्यांश' (phrases) बना देता हैं। पक्षियों के गानों के ध्वनि वर्ण लेखों (spectrograms) से पता चलता है कि ये शायद ही कभी, विशुद्ध स्वरों के लगने से बनते हों परंतु किसी भी एक क्षण अनेक आवृत्तियां एक साथ निकाली जाती हैं।

नर पक्षी अपना गाना गाता है जिसमें वह अपनी मौजूदगी का ढिंढोरा पीटता है कि मैं अमुक स्पीशीज़ का हूँ और संगम के लिए मेरी शरीर-क्रियात्मक दशा एकदम तैयार है (चित्र 15.18 a)। गायन मादाओं को आकर्षित करता है और साथ ही उन अन्य नरों के लिए एक धमकी भी होती है जो उसके क्षेत्र के भीतर प्रवेश करने का प्रयत्न करते हों। एक अन्य प्रकार का गायन सचेतक स्वर होता है जो क्षेत्र की अन्य विविध स्पीशीज़ के पक्षियों के लिए चेतावनी होता है कि कोई परभक्षी निकट में आया हुआ है। उदाहरणत: मां-मुर्गी अपने चूज़ों के लिए उस समय, जब परभक्षी वायु में उड़ता होता है, जो चेतावनी स्वर निकालती है वह उससे भिन्न होता है जब परभक्षी धरती पर हो। सचेतक स्वर अंतरास्पीशीज़ी संचार के उदाहरण भी हैं (चित्र 15.18 b)।

चित्र 15.18: ध्वनिक संकेत a) क्षेत्रीय सूचना तथा संगम और चेतावना संबंधित सूचना b) चेतावनी के रूप में पैर पटकना, c) टर्राना, d) अपने विचारों का सप्रेशन।

ध्वनिक संकेत प्रतिरूपत: उन प्राणियों का संचार माध्यम होता है जो वर्षावनों के वृक्षछत्रों में तथा नीचे घनी घास में रहते हों जहां संकेत प्रेषक और संकेतग्राही दोनों ही सामान्यत: एक-दूसरे को देख नहीं पाते। पानी में ध्वनि और भी ज़्यादा दूर तक प्रेषित होती है क्योंकि उसमें ध्वनि का क्षीर्णन वायु की अपेक्षा कम होता है और इसी कारण जलीय प्राणी संचार के लिए ध्वनि संकेतों का व्यापक इस्तेमाल करते हैं (चित्र 15.18 d)। जलगत माइक्रोफ़ोन के बन जाने से मछलियों तथा ह्वेलों द्वारा पैदा की गयी आवाज़ों की विस्मयकारी विविधता को हम खोज पाए हैं। "हम्पबैक" ह्वेल के 'गायन' कई-कई सौ किलोमीटर दूर की अन्य 'हम्पबैक' ह्वेलों को सुनाई दे सकते हैं।

15.5.3 स्पर्श संकेत

सूचना संप्रेषण की विधियों के रूप में स्पर्श (tactile) एक मूलभूत संचार विधि है। अनेक अकशेरुकियों में स्पर्श संचारण सामाजिक परस्परक्रिया में सबसे प्रमुख होता है और अनेक कशेरुकियों में भी विशेषकर

नीली ह्वेल धरती का सबसे ज्यादा ऊँची आवाज निकालने वाला प्राणी है। ये अधिकतर तीव्र अति संरचनात्मक बार-बार दोहराती हुई निम्न आवृत्ति वाली परघर सी आवाज निकालती है। जो जल के भीतर कई किलोमीटर दूर तक चली जाती है। ये ध्वनियां अन्य नीली ह्वेलों से संचार बनाए रखने के वास्ते निकाली जाती हैं जिसमें ये खास तौर से अपने मैथुनियों को आकर्षित करती एवं उन्हें खोजती हैं। नीली ह्वेल की आवाज 188 डेसिबल तक पहुंच जाती है। रॉजर पेयने एवं डग्लास वेफ (Roger Payne and Douglas Weff. 1970) द्वारा लगाए गए सैद्धांतिक आकलन में कहा गया कि इन ह्वेलों की सबसे ज्यादा ऊँची ध्वनियां समूचे महासागर को पार कर सकती हैं। नीली ह्वेल का शोर जेट विमान के शोर से भी जो केवल 170 डेसिबल तक ही पहुंच पाता है कहीं ज़्यादा है।

स्तनियों में भी बहुत महत्वपूर्ण होता है जिनमें अधिक सामाजिक स्पीशीज़ के सदस्य अपना बहुत सा समय एक दूसरे के साथ शारीरिक सम्पर्क बनाए ही बिताते हैं (चित्र 15.19)।

चित्र 15.19: सलेटी 'टाइटी' बंदरों में पूंछ लपेट कर संचरण।

कुछ प्राणियों में यांत्रिकग्राही (mechanoreceptors) होते हैं जो उनके इर्द-गिर्द की वायु अथवा जल में हुए यांत्रिक विक्षोभों के प्रति अनुक्रिया करते हैं। मछलियों को दृष्टिहीन कर देने पर भी वे अपना दल बना सकती हैं। वे अपने पार्श्व रेखा अंगों का उपयोग करके जिसमें वे अन्य मछलियों के द्वारा जल में हुए विक्षोभों को ग्रहण कर सकती हैं, अपने समूह बना लेती हैं।

बहुत ही कम स्पर्श संकेत हैं जिनका विश्लेषण किया जा चुका है परंतु, देखा गया है कि प्राणी स्पर्श द्वारा एक-दूसरे का अभिवादन करते हैं। जिराफ़ प्रणय के दौरान एक-दूसरे से 'गर्दन' क्रिया करते हैं, जिसमें एक जिराफ अपनी गर्दन को दूसरे जिराफ़ की गर्दन पर दबाता है। प्राइमेटों में "ग्रूमिंग (grooming)" जिसमें वे एक दूसरे की खाल के बालों की 'सफाई' करते हैं एक महत्वपूर्ण स्पर्श संकेत है जो प्राइमेट सामाजिक गठन को बनाए रखता है (चित्र 15.20)। स्पर्श संकेत भी उतने ही विविध होते हैं जितने कि वे प्राणी जो इनका उपयोग करते हैं मगर दृष्टि अथवा ध्वनि संकेतों से भिन्न ये तनिक भी दूरी पर कारगर नहीं होते। इनके लिए प्राणियों को एक दूसरे के सम्पर्क में रहना होता है। ये संकेत विशेष तौर पर सामूहिक जीवन के लिए महत्वपूर्ण हैं।

चित्र 15.20: रीसस बंदर मादाएं जो मां, बहने, पुत्रियां हैं एक दूसरे को ग्रूम करती हैं। ग्रूमिंग क्रिया इनके सामाजिक संगठन का महत्वपूर्ण अंग है।

15.5.4 रासायनिक संकेत

रासायनिक संकेत विशेष तौर पर कीटों और स्तनियों में विकसित हुए हैं। LSE-09 की इकाई 15 से आपको याद होगा कि कीटों द्वारा और खास तौर से चीटियों एवं मधुमक्खियों द्वारा इस्तेमाल में लाए जाने वाले रासायनिक संकेत किस तरह सामाजिक संगठन बनाए रखते हैं और किस तरह मादा शलभ अपने नरों को आकर्षित करती हैं। कशेरुकियों में स्तनी भी रासायनिक संकेतों का फ़ेरोमोन के रूप में इस्तेमाल करते हैं जिनके द्वारा वे एक एकल अपेक्षाकृत स्थिर संदेश भेजते हैं जैसे कि मादा की प्रजनन दशा अथवा किसी क्षेत्र के अधिकार की सूचना देने के विषय में या फिर चेतावनी देने के लिए (चित्र 15.21)। यह संदेश संकेतकर्ता की अनुपस्थिति तक में मौजूद बना रह सकता है। ध्वनि संकेतों तथा दृष्टि संकेतों से भिन्न, गंध के समान किसी रासायनिक संकेत से कोई प्रतिरूप पैदा नहीं किया जा सकता, क्योंकि इस प्रकार के संकेत जल्दी से बदले नहीं जा सकते।

गंधों की रासायनिक संरचनाएं विशिष्ट तौर पर उनके कार्यों के लिए अनुकूलित की जा सकती हैं। सेक्स फ़ेरोमोनों तथा क्षेत्रीय चिन्हकों का लगातार बने रहना आवश्यक है और इसलिए इनके रचकों का काफी अधिक आण्विक भार का होना ज़रूरी है। एक अति चिर स्थायी गंध जैसे कि मुश्क-ग्रंथियों की अथवा कुरंगों द्वारा टहनियों पर लगाकर छोड़े गए पदार्थ की गंध (ताकि वे अपने क्षेत्र को चिन्हित कर सकें), का एक स्पष्ट लाभ यह है कि वह बहुत लम्बे समय तक बनी रह सकती है। मगर उसके लिए प्राणी को सदैव सम्पर्क बनाए रखना होता है तथा ग्रहणकर्त्ता को उस गंध के बोध के लिए निकट ही होना जरूरी है। इसके विपरीत वे गंध जिनका संप्रेषण हवा में है कभी-कभार के उपयोग के लिए ही सुरक्षित रखी जाती है जैसे कि अनुरंजन के लिए, क्योंकि यह एक अधिक अपव्ययी प्रक्रिया है जिससे प्राणियों के उपापचय में अधिक ऊर्जा खर्च होती है। अपने क्षेत्रों के चिह्न में कुछ प्राणी अपनी विष्ठा का उपयोग करते हैं।

चित्र 15.21 : रासायनिक संकेत का प्रयोग a) मिनो मछलियों में संकट-सूचना पदार्थ का स्रवण b) गंध-ग्रंथियों के स्रावण, मूत्र इत्यादि द्वारा क्षेत्र का सीमांकन।

उदाहरणतः कुत्ते अपने क्षेत्रों को अपने मूत्र से चिन्हित करते हैं तथा दरियाई घोड़ा अपने मूत्र और विष्ठा के गंध युक्त मिश्रण का इस्तेमाल करते हैं जिसे वे अपनी पूंछ से आस-पास छिटकते हैं।

15.5.5 प्राणी किस बात का संचरण करते हैं?

इससे पहले के उपभागों में हमने विभिन्न प्रकार के संचरणों के विषय में चर्चा की। सबसे स्पष्ट संचारित सूचना वह है जिसका संबंध खतरे तथा यौन ग्राहिता से है। लेकिन ये भी मात्र सरल संचरण नहीं हैं। अनेक प्राणी न केवल खतरे के होने की सूचना देते हैं वरन् यह भी बताते हैं कि खतरा किस प्रकार का है। "वर्वेट" बंदर अलग-अलग खतरों के लिए अलग-अलग प्रकार के स्वर निकालते हैं। एक सचेतक स्वर में अपेक्षाकृत लम्बी स्वर इकाईयाँ होती हैं और यह स्तनीय परभक्षियों खासकर तेंदुए के प्रति निकाला जाता है। अन्य बंदर इस सचेतक स्वर को सुनते ही तुरंत किसी भी निकटवर्ती पेड़ पर चढ़ जाते हैं। 'उकाब' सचेतक स्वर छोटी-छोटी ध्वनि इकाइयों का समूह होता है तथा अन्य बंदर ऊपर को

सिर करके देखते और झाड़ियों में छिप जाते हैं। 'सर्प' सचेतक स्वर में छोटी-छोटी मगर काफी देर-देर में निकाली गयी ध्वनियां होती हैं और इसे सुन कर शेष बंदर धरती की ओर ध्यान से देखने लग जाते हैं। जब जब इन तीन प्रकार की ध्वनियों को टेप रिकार्ड करके बजाया गया तब तब वही अनुक्रियाएं होती पायी गयीं। ऐसा केवल 'वर्वेटों' में ही होता हो यह बात नहीं, क्योंकि अन्य प्राणी भी जिस प्रकार का परभक्षी वे देखते हैं उसी के अनुसार सूचना देते हैं।

मुर्गे-मुर्गियां आहार स्रोत की गुणवत्ता के विषय में सूचना दे सकते हैं। अधिक पसंद किए जाने वाले आहार के पास वे और अधिक तीव्रता से आहार स्वर निकालते हैं।

जब प्राणियों में आहार अथवा अपने मैथुनी को लेकर परस्पर संघर्ष होता है तब एक अन्य प्रकार का स्वर निकाला जाता है। इससे पहले कि वास्तविक लड़ाई शुरू हो या लड़ाई न भी हो तो भी ये प्राणी धमकी भरे संकेत देते हैं। अक्सर इसी आधार पर कशेरुकियों में पाए जाने वाले सामाजिक गठन में प्रभावी पदानुक्रम स्थापित होते हैं। इसका एक स्पष्ट उदाहरण लाल मृगों में देखा जाता है। शरद की मद ऋतु में इन्हें अक्सर एक दूसरे को चुनौती देते देखा जाता है ताकि हरम पर स्वामित्व स्थापित किया जा सके। चुनौती शुरू होती है चिंघाड़ के मुकाबले से जिसमें नर प्रति मिनट अधिकाधिक चिंघाड़ें निकालते हैं। चिंघाड़ना बहुत थका देने वाला कार्य होता है तथा जो नर सबसे जोर से और सबसे ज़्यादा समय तक चिंघाड़ सकता है वह इस होड़ में दूसरे नरों को हरा देता है और जता देता है कि वह अन्य नरों से शारीरिक रूप में अधिक योग्य है और कदाचित एक बेहतर लड़ाकू भी। दूसरा नर पीछे हट जा सकता है लेकिन अगर दोनों ही एक ही दर से चिंघाड़ रहे हों तब वे "समांतर चलने" का अगला कदम अपनाते हैं जिसमें वे एक दूसरे की लड़ाई करने की क्षमता का अनुमान लगाते हैं। परिणामत: एक वास्तविक लड़ाई उन्हीं नरों में होती है जो शारीरिक योग्यता एवं लड़ने की क्षमता में लगभग बराबर के होते हैं।

प्राणियों के जनन-व्यवहार में बहुत सा संचरण हुआ करता है। अपने अनुरंजन के दौरान वे एक-दूसरे को अपनी स्पीशीज़, अपने लिंग तथा अपनी शरीरक्रियात्मक दशा का संदेश देते हैं। छिपकलियों में स्पीशीज़-विशिष्ट शीर्ष दोलन होता है, मेंढक स्पीशीज़-विशिष्ट ध्वनि संकेत निकालते हैं जो मानों एक प्रकार का "डॉट-डैश जैसा मोर्स कोड" होता है। सही स्पीशीज़ की पहचान करने में फ़ेरोमोनों का भी उपयोग किया जाता है।

एक अन्य प्रकार का रोचक संचरण है संकेत का वह प्ररूप जो उसके बाद आने वाले संकेतों का द्योतक है। इसका सबसे अच्छा उदाहरण खेल-क्रीड़ा है जो माँसाहारी स्तनियो तथा बंदरों में पायी जाती है। वयस्क नर बबर शेर खेलने के लिए शावकों को आमंत्रित करते हैं और उस समय जो उनकी मुद्रा देखी जाती है वह किसी भी अन्य संदर्भ में नही पायी जाती (चित्र 15.22)।

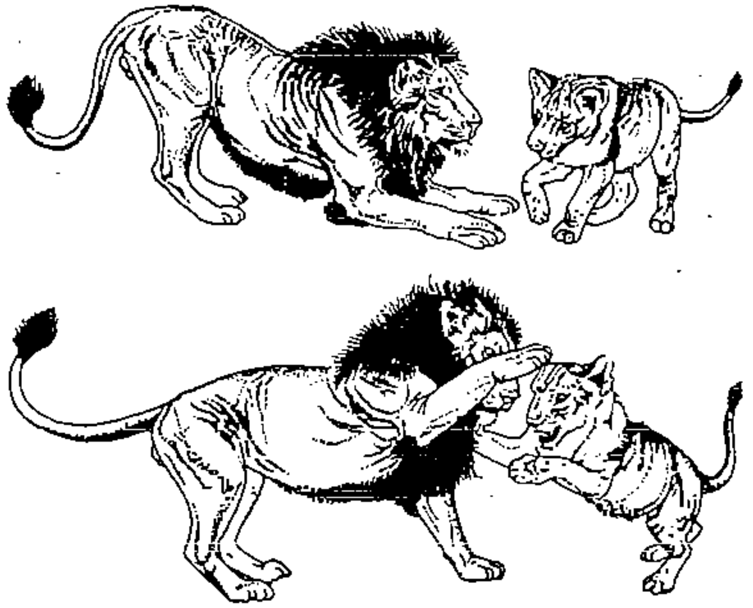

चित्र 15.22 : बबर शेरों में होने वाले संचार जिससे खेल-क्रीड़ा स्थिति पैदा होती है। नरों को वह मुद्रा जिसमें वे अपने शरीर का अगला भाग नीचे को झुकाए रहते हैं खेलने से पूर्व की होती है। जब शावक खेलने उसके पास आ जाता है तब वह नर उसके गाल पर हल्की-हल्की थपेड़ मारता है।

कुत्ते भी एक ऐसी ही मुद्रा अपनाते हैं और खिलवाड़ में लड़ाई के दौरान अपनी पूंछ अगल-बगल हिलाते रहते हैं। बंदर भी ऐसी ही स्थितियों में खिलवाड़ की मुद्रा अपनाते हैं। माँसाहारी स्तनियों में खिलवाड़ का आक्रमणशील व्यवहार जैसे ताक लगाना तथा हमला करना, एक प्रकार से बिना कोई क्षति पहुचाएँ वास्तविक लड़ाई की स्थिति के लिए अभ्यास है।

किसी भी एक स्पीशीज़ में एक से अधिक विधियों से संचार हो सकता है। जैसा कि अपेक्षित है वह स्पीशीज़ अपने पर्यावरण के अनुसार ही संचरण की विधि अपनाती है। प्राणी अपने संचार संकेतों में विभिन्न संवेदी क्रियाविधियों का जिस अनुपात में प्रयोग करते हैं, उनको चित्र 15.23 में दर्शाया गया है।

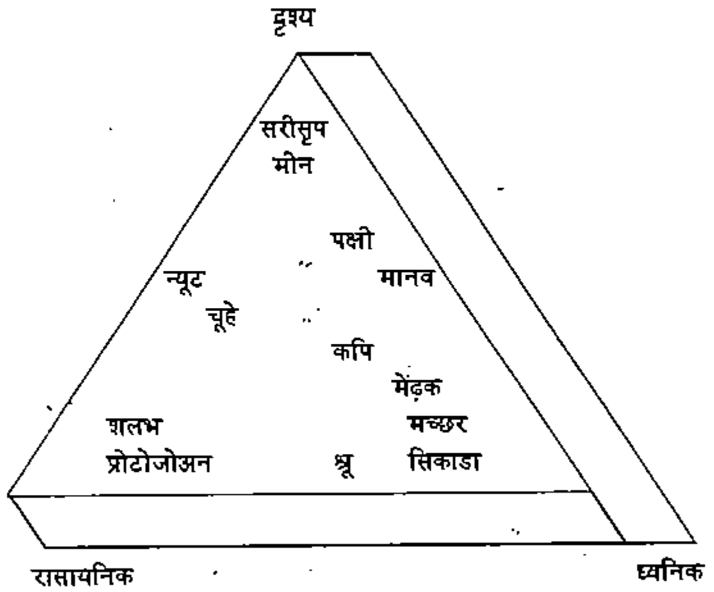

चित्र 15.23: प्राणियों द्वारा प्रयोग में लाये जाने वाले संचार संकेतों का अनुपात।

बोध प्रश्न 4

i) जो प्राणी दिन में सक्रिय रहते हैं और जो रात में सक्रिय रहते हैं उन दोनों की संचरण प्रणाली में आप किन-किन अंतरों की आशा करेंगे?

....

....

अभी तक (इकाई 13-15 तक) जो वर्णन किया गया उसमें विविध प्रकार के व्यवहारों पर बल दिया गया था। इनमें से प्रत्येक व्यवहार जिस चीज़ पर निर्भर करता है वह है व्यवहार प्रणाली अर्थात् संवेदग्राहियों, तंत्रिकों-तंत्र का आवागमनी जाल और देह की पेशियों की संघटना। अभी तक जब भी हमने प्रश्न किया कि आखिर वह क्या चीज़ है जो कोई एक विशिष्ट व्यवहार पैदा करती है तो वास्तव में हम पूछ रहे होते हैं कि कोई व्यवहार-विशेष किस प्रकार प्रेरित होता है अर्थात् किसी दृष्टि संकेत के कारण या श्रवण संकेत या हार्मोनी संकेत के कारण।

अब अगली इकाई में हम देखेंगे कि तात्कालिक कारणों के आगे वह क्या चीज़ है जिसके कारण प्राणी एक विशिष्ट तरीके से व्यवहार करता है अर्थात् प्राणी के जीवन में व्यवहार का वह अनुकूली महत्व क्या है जिसके कारण वह व्यवहार उस स्पीशीज़ की विकासीय विरासत का हिस्सा बन गया।

15.6 सारांश

इस इकाई में आपने सीखा कि:

- व्यवहार विविध प्रतिरूपों, क्रियाकलापों एवं संघटकों का बना होता है और विभिन्न स्तरों पर यह गठित हो सकता एवं इसका वर्णन किया जा सकता है।

- व्यवहार तंत्रिकीय आदेश केंद्रों द्वारा घटित हो सकता है और प्रतिस्पर्धी आदेश केंद्रों के संदमन से प्राणी क्रमवत एक समय में एक ही क्रिया कर पाता है न कि एक साथ सभी क्रियाएं।
- मस्तिष्क के आदेश केंद्र एक जैविक घड़ी से आनिवेश प्राप्त करते हैं जो प्राणी को 24 घंटे की दिवसप्राय अथवा वार्षिक तालबद्धता का अनुसरण करने में सहायता करती है। अनेक समुद्री प्राणी एक ज्वारीय अथवा चांद्र चक्र का भी अनुसरण करते हैं। ये जैविकीय तालें पर्यावरणीय संकेतों अथवा अंतर्जात कारकों द्वारा प्रभावित एवं पुन:स्थापित होती हैं।
- हॉर्मोन अक्सर तंत्रिकीय आदेश केंद्रों के सूक्ष्म नियत्रंक के रूप में कार्य करते हैं।
- अनेक प्राणियों ने अपने आप को, भिन्न पर्यावरणों के बीच नियमित रूप में प्रवास के द्वारा जलवायु में ऋतुपरक परिवर्तनों के प्रति अनुकूलित कर लिया है। प्राणी-प्रवास अक्सर सहनक्षमता एवं दिक्चालन के गजब के करतब होते हैं जिनका स्पष्टीकरण कशेरुकी क्लासों से कई उदाहरण लेकर किया गया है। प्रमाणों से स्पष्ट होता है कि प्रवास क्रिया वर्षप्राय घड़ी जैसे भीतरी कारकों और साथ ही बाहरी पर्यावरण से भी नियंत्रित होती है।
- सामाजिक संगठन एक ही स्पीशीज़ के उन सदस्यों का एक साथ समूहन होता है जो पारस्परिक लाभों के लिए एक साथ आ जाते हैं। हां, यह भी सही है कि सामूहिक जीवन के कुछ नुकसान भी हैं। सामाजिक समूहों में तरह-तरह की जटिलताएं पायी जाती हैं।
- एक ही स्पीशीज़ के सदस्य आहार, संगम-साथी तथा अन्य सीमित संसाधनों के लिए अपने संघर्षों को अक्सर विवादग्रस्त व्यवहार द्वारा सुलझा लेते हैं। परस्पर लड़ाइयां प्रथागत होती हैं और प्राय: सामाजिक संगठन में सहायक प्रभाविता पदानुक्रम स्थापित होने पर समाप्त हो जाती हैं।
- अनेक स्पीशीज़ में सामाजिक संगठन को प्रभावित करने वाला एक आधारभूत कारक उसके सदस्यों द्वारा अपनायी जाने वाली संगम प्रणाली है। संगम प्रणाली तथा उस स्पीशीज़ के नर-मादा जनकों द्वारा दी जाने वाली पैतृक देख-रेख के बीच एक स्थूल सहसंबंध पाया जाता है।
- व्यष्टिगत सदस्यों के बीच परोपकारी व्यवहार एवं सहकार का होना अधिक जटिल एवं आनुवंशिकत: संबंधित समाजों के संगठन का एक महत्वपूर्ण कारक है। इस संकल्पना का स्पष्टीकरण बबर शेरों तथा प्राइमेटों का उदाहरण देकर किया गया है।
- कारगर संचरण के द्वारा एक व्यष्टि दूसरे व्यष्टि के क्रियाकलापों को प्रभावित करता है। समस्त संवेदी कार्यमार्ग जैसे कि दृष्टि, श्रवण एवं रासायनिक कार्यमार्गों को प्राणियों ने, जिस आवास में वे रहते हैं, उसके अनुसार उपयोग में लिया है।
- प्राणियों द्वारा संचरित सबसे अधिक प्रत्यक्ष सूचना ख़तरे तथा जनन क्रियाकलाप के बोध से संबंधित है। मांसाहारी स्तनियों तथा प्राइमेटों में क्रीड़ा व्यवहार से संबंधित संचार संकेत भी शिक्षण प्रक्रिया के महत्वपूर्ण अंश हैं।

15.7 अंत में कुछ प्रश्न

1. किसी भी प्राणी का कोई एक व्यवहार ले लीजिए जिसे आपने देखा हो। भाग 15.2 के प्रवाह चार्ट का इस्तेमाल करके उस व्यवहार को अलग-अलग खण्डों में तोड़ लीजिए और सुझाव दीजिए कि संगठन के किस स्तर पर उस व्यवहार का अध्ययन किया जा सकता है।

   ....

   ....

   ....

   ....

2. हॉर्मोनों द्वारा व्यवहार प्रतिरूपों का गठन किस प्रकार होता है? दो उदाहरण दीजिए।

   ....

   ....

   ....

   ....

3. प्राणी प्रवास क्रिया क्यों करते हैं? क्या प्रवास अंत:निर्मित व्यवहार होता है या कि सीखा गया?

....

....

....

....

4. क्षेत्रीय व्यवहार तथा प्रभाविता पदानुक्रम किसे कहते हैं, वर्णन कीजिए। कशेरुकी सामाजिक संगठन में ये व्यवहार किस प्रकार सहायक हैं?

....

....

....

....

5. प्राणियों में सामाजिक जीवन के दो सर्वाधिक लाभ और दो हानियां बताइए।

....

....

....

....

6. प्राणियों में संचरण की परिभाषा लिखिए। एक उदाहरण की सहायता से बताइए कि सामाजिक गठन में संचरण किस प्रकार सहायता करता है।

....

....

....

....

15.8 उत्तर

बोध प्रश्न

1. i) जो उद्दीपन श्रेष्ठतम महत्व के नहीं होते उन्हें एक-दूसरे के सम्पर्क में रहने वाले तंत्रिकीय आदेश केंद्रों द्वारा छान कर अलग करके। पैदल चलने में प्राणी के चारों पाद यदि एक साथ गति करते होते तो सब अस्त-व्यस्त हो जाता। जब एक पाद की आकोचनी पेशियां संकुचन करती हैं तब दूसरे पाद की आकोचनियां संदमित रहती हैं अथवा जब प्राणी आहार आरंभ करता है तब अन्य व्यवहार सामान्यत: संदमित रहते हैं मगर यदि आहार करते समय कोई परभक्षी नज़र आ जाए तो प्रतिपरभक्षी व्यवहार उभर कर आ जाता है और अशन व्यवहार संदमित हो जाता है।

   ii) क) दिवसप्राय

   ख) दिवसप्राय

   ग) वर्षप्राय ताल

2. i) प्रवास किसी प्राणी समष्टि की सहज प्रवृत्ति से नियमित सुपरिभाषित मार्गों पर आने और जाने की दो तरफ़ा गति को कहते हैं जिसका संबंध ऋतुपरक परिवर्तनों से होता है।

   ii) क) गलत

   ख) गलत

   ग) सही

घ) सही

च) गलत

3. i) कीट समाजों में प्राय: एक ही जननकारी मादा होती है तथा साथ में कई जननशील नर। उधर कशेरुकियों में सभी व्यष्टिगत सदस्य जनन कर सकने में सक्षम होते हैं।

   ii) क) हरम, ख) एकसंगमनी, ग) नर; घ) मादा, नर, च) बहु

4. जो प्राणी रात्रिचर होते हैं वे दिन के समय सक्रिय रहने वाले प्राणियों जो दृष्टि संकेतों पर भी निर्भर होंगे की अपेक्षा श्रवण तथा रासायनिक संकेतों पर ज़्यादा निर्भर रहते हैं। उनमें आवास भी प्रभावित करेगा कि किस प्रकार का संचरण होगा।

अंत में कुछ प्रश्न

1. मान लीजिए कि हमने अपने अध्ययन के लिए बत्तख़ों में तैरने का व्यवहार लिया है। एक स्पीशीज़ चुन लीजिए। यहां आपको बत्तख़ों की कोई एक समष्टि चुननी होगी जिस पर प्रेक्षण किए जा सकते हों। इसके बाद अपने प्रेक्षणों के लिए आप इनमें से किन्हीं 10 बत्तख़ों का समूह छांट लीजिए। आप जिस व्यवहार को आसानी से चुन सकते हैं वह है तैरना। इसमें तैरने के अनेक प्रतिरूप बने होते हैं जैसे कि पानी में हल्की सी डुबकी लगाना, गोता लगाना, उड़ना, उड़ने से नीचे ज़मीन पर उतरना। इनमें प्रत्येक क्रिया में छोटे-छोटे कई-कई क्रियाकलाप होते हैं, उदाहरणत: गोता लगाना कई छोटे-छोटे क्रियाकलापों का बना होता है जिसमें पहले तो सिर को पानी के भीतर डुबोया जाता है, गोता लगाने में कितना समय लगाया गया था इस क्रियाकलाप में कितने समय तक जल के नीचे रहा गया जिसके दौरान पूरा शरीर जल के नीचे रखा गया। गोता लगाने की यह क्रिया विभिन्न घटकों द्वारा गठित होती है जैसे शारीरिकीय (पंखों, शीर्ष तथा देह की गति), शरीर-क्रियात्मक - पेशियों तथा हड्डियों की गति, तंत्रिकीय-क्रियाकलाप में तंत्रिका तंत्र का समावेश।

2. स्टिकिल बैक मछलियों में बंध्य बना देने पर उनका घोंसला बनाना बिल्कुल समाप्त हो जाता है। पक्षियों में बंध्यकरण के बाद उनमें अनुरंजन प्रर्दशन समाप्त हो जाते हैं।

3. भाग 15.3 देखिए। प्रवास अंत:निर्मित तथा सीखा गया दोनों प्रकार का होता है। अनेक प्राणियों में, उदाहरणत: ईल मछलियां बिना किसी प्रकार की सहायता के जिसमें कोई शिक्षण निहित नहीं होता समुद्र से नदियों में प्रवास करती हैं जब कि सामन मछलियां अपनी जन्मस्थली नदियों की गंध को याद रख लेतीं हैं और वापिस उन्हीं में प्रवास करती हैं।

4. भाग 15.4 देखिए। क्षेत्रीय व्यवहार उस क्षेत्र को परिभाषित करता है जिसमें प्राणी रहता, खाता-पीता तथा जनन करता है। इससे प्रतिस्पर्धियों को दूर रखने में तथा उपयुक्त संगमनी प्राप्त करने में भी सहायता मिलती है। प्रभाविता पदानुक्रम सामाजिक गठन को कायम बनाए रखते हैं जिसके फलस्वरूप व्यष्टिगत सदस्य बिना लड़े-भिड़े समूहों में शांतिपूर्वक रह सकते हैं तथा आहार, मैथुनी एवं अन्य सीमित संसाधनों का बेहतर प्रबंधन हो सकता है।

5. a) लाभ
   i) समूहों द्वारा परभक्षण से बेहतर सुरक्षा
   ii) बच्चों का पालन-पोषण आपस में मिल जुलकर किया जाता है।

   b) हानियां
   i) रोगों का फैलाव
   ii) आहार तथा अन्य संसाधनों के लिए अंत:स्पीशीज़ी संघर्ष

6. भाग 15.5 देखिए

इकाई 16 अनुकूली व्यवहार

इकाई की रूपरेखा

16.1 प्रस्तावना

उद्देश्य

16.2 रंजन

प्राणियों में रंग का स्रोत

वर्णाविगम

अनुकूली रंजन

16.3 अनुहरण

अनुहरण के प्ररूप

अनुहरण के विभिन्न स्वरूप

16.4 जीव-संदीप्ति

मछलियों में प्रदीपी अंग

जीव-संदीप्तिशील अणु

जीव-संदीप्ति की क्रियाविधि

उत्सर्जित प्रकाश का रंग और प्ररूप

जीव संदीप्ति का महत्व

16.5 प्राणियों में प्रतिरक्षा

प्रतिरक्षा के लिए अनुकूलन

प्राणियों में प्रतिरक्षा के विविध साधन

क्षेत्रिक प्रतिरक्षा

16.6 प्रतिध्वनि निर्धारण

चमगादड़ों मे सोनार अथवा प्रतिध्वनि निर्धारण

जलीय स्तनियों मे प्रतिध्वनि निर्धारण

पक्षियों में प्रतिध्वनि निर्धारण

16.7 कशेरुकियों में संचलन

आधारभूत संचलन योजनाएं

जल में संचलन

वायु में संचलन

धरती पर सचलन

आरोही संचलन

16.8 सारांश

16.9 अंत में कुछ प्रश्न

16.10 उत्तर

16.1 प्रस्तावना

पिछली दोनों इकाइयों में हमने प्रत्यक्ष प्रश्नों के उत्तर देने का प्रयत्न किया था यानि कि, किस प्रकार अलग-अलग प्राणी अपने आनुवंशिक, हार्मोनी, तंत्रिक स्वरूपों के अनुसार और अपने अनुभवों के संदर्भ में भिन्न-भिन्न प्रकार के व्यवहार दर्शाते हैं। इस इकाई में हम मूल प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने का प्रयास करेंगे अर्थात् किसी भी व्यवहार विशेष का अनुकूली महत्व क्या है।

अनुकूलन प्रकृति की एक वास्तविकता है। अपने पर्यावरण में सफलतापूर्वक जीवित बने रहने के लिए प्राणियों ने अपने आप को भांति-भांति विधियों से लैस कर लिया है। विशिष्ट पर्यावरण परिस्थितियों में जी

सकने के लिए प्राणियों को जो क्षमता प्राप्त हुई है वह उन्हें दो परिघटनाओं यानि विभिन्नता तथा प्राकृतिक वरण की परस्परक्रिया के द्वारा प्रदान हुई है। परिणामतः जितने भी वंशागत अनुकूली परिवर्तन हैं वे सब के सब क्रमविकासीय परिवर्तन हैं।

जीवित बने रहने की प्रबल आवश्यकता के परिणामस्वरूप मुख्यतः तीन बातों के लिए नानाविध कुशलताओं का विकास हुआ है: 1) आहार के लिए शिकार को प्रलोभन देना; 2) जनन हेतु संगमनी को आकर्षित करना और 3) स्वयं को परभक्षियों से बचाना। इन कुशलताओं का संबंध प्राणी के आवास से होता है। उदाहरणार्थ, गुफ़ाओं के अंधेरे में चमगादड़ें तथा गुफ़ा पक्षी प्रतिध्वनि निर्धारण द्वारा दिशासंचालन करते एवं शिकार पकड़ते हैं। समुद्र की अथाह गहराइयों में मछलियां कई उद्देश्यों के लिए विविध प्रकार के प्रकाश प्रतिरूप छोड़ती हैं, जैसे कि समूहन के लिए, दिशा संचालन के लिए, समजातीय संगमनियों के लिए तथा आहार के लिए। कुछ कशेरुकियों के चटकीले रंग अन्य प्राणियों को संबंधित विषालुता से चेतावनी देते हैं। अनुहरण कुछ कशेरुकियों को अपने शत्रुओं की आंखों से छिपाए रखने में सहायता करता है। संचलन यानि चलना-फिरना प्राणियों का लक्षण है और कशेरुकी प्राणी चलते, दौड़ते, तैरते, उड़ते, चढ़ते तथा रेंगते हैं जिनके लिए उनके हाथ-पैर और शरीर विशेष तौर पर अनुकूलित होते हैं।

इस प्रकार, दिन-प्रतिदिन की उत्तरजीविता के लिए आवश्यक सामान्य अनुकूलनों के अतिरिक्त आत्म-रक्षा एवं शिशुओं की रक्षा के लिए तथा आहार और संगमनी को प्राप्त करने के लिए विशेष अनुकूलन पाए जाते हैं। कशेरुकियों में पाए जाने वाले विशेष अनुकूलनों में से कुछ जैसे कि रंजन (colouration), अनुहरण (mimicry), जीव-संदीप्ति (bioluminescence), प्रतिध्वनि निर्धारण (ecolocation) तथा संचलन में विविधता का इस इकाई में उल्लेख किया जा रहा है।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- प्राणियों में रंजन तथा अनुहरण का अर्थ और उनके लाभ समझा सकेंगे,
- उन विभिन्न विधियों का उल्लेख कर सकेंगे जिनके द्वारा प्राणी स्वयं की तथा अपने शिशुओं की रक्षा करते हैं,
- जीव-संदीप्ति की परिघटना का विवेचन कर सकेंगे एवं इसका महत्व बता सकेंगे,
- चमगादड़ों तथा जलीय स्तनियों में प्रतिध्वनि निर्धारण समझा सकेंगे,
- प्राणियों के आवास के संबंध में उनके स्वरूपों एवं शरीर-अनुस्थितियों का वर्णन कर सकेंगे,

16.2 रंजन

जीवधारियों की त्वचा को अनंत प्रकार के रंग शोभा प्रदान करते हैं। अनेक पक्षियों के पंख और शरीर चटकीले रंगों वाले बने होते हैं। बंदरों तथा बैबूनों के नितम्ब एवं वृषणकोश के क्षेत्र लाल अथवा नीले होते हैं। जहां एक ओर कुछ जीव चटकीले रंगदार होते हैं वहीं दूसरी ओर कुछ हल्के फीके रंगों वाले होते हैं। चाहे चटकीले हों चाहे फीके, त्वचा के रंग का अनुकूली लाभ तो होता ही है।

16.2.1 प्राणियों में रंग का स्रोत

प्राणियों की त्वचा का रंग **वर्णकों** (pigments) अथवा **बायोक्रोमों** (biochromes) के कारण होता है। ये पदार्थ कोशिकाओं के भीतर पाए जाते हैं, और ऐसी कोशिकाएं त्वचा के भीतर, त्वचा के नीचे अथवा शरीर के अधिक गहरे स्थित ऊतकों में पायी जाती है। वर्णक धारण की हुई कोशिकाओं को **वर्णकधर या वर्णकीलवक** (chromatophores) कहते हैं। इन वर्णकधरों में वर्णक या तो केंद्र में सकेंद्रित हो सकता है जिससे एक ख़ास किस्म का रंग प्रभाव पैदा होता है या वह कोशिका के भीतर छितराया हुआ हो सकता है जिससे एक अन्य प्रभाव पैदा होता है। कशेरुकियों में वर्णकधर कोशिकाएं विशाखित होती हैं और उनका कार्य करना या तो तंत्रिकीय नियंत्रण के आधीन या हार्मोनी नियंत्रण के अंतर्गत होता है (चित्र 16.1)।

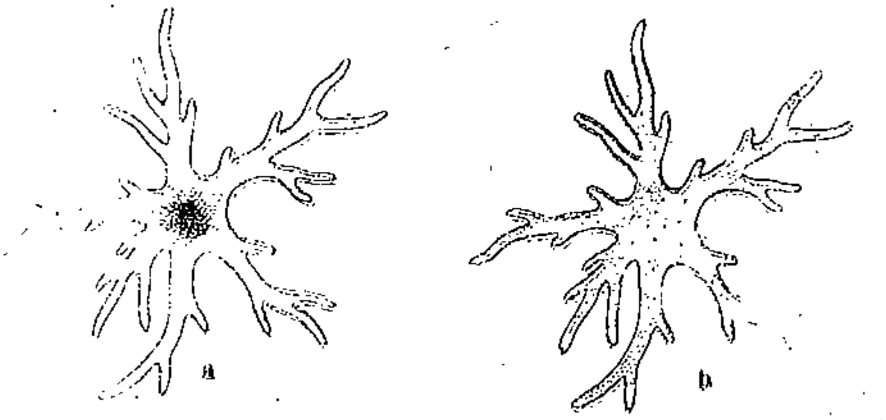

चित्र 16.1 : कशेरुकी वर्णक कोशिकाएं जिन्हें वर्णकधर (क्रोमैटोफ़ोर) कहते हैं, (a) जब वर्णक संकेंद्रित होता है तब त्वचा को हलके रंग का बना देती हैं। (b) ये कोशिकाएं वर्णक के छितराए होने पर त्वचा को गहरे रंग का बनाती हैं।

प्राणियों के विभिन्न वर्णक जो अलग-अलग रंग प्रदान करते हैं इस प्रकार हैं:-

i) मेलानिन वर्ग (melanins) के वर्णक भूरा अथवा काला रंग प्रदान करते हैं। ये मेलानिनधरों (melanophores) के भीतर पाए जाते हैं, और ये ही वर्णक सर्वाधिक सामान्य होते हैं। स्तनधारियों के सादे रंग मेलानिन के कारण ही होते हैं। मैंड्रिलों तथा बैबूना में रंगदार चकत्ते बने देखे जाते हैं।

ii) **कैरोटिनॉयड वर्ग** (carotenoids) पीले और लाल रंगों के वर्णक होते हैं। पीला वर्णक धारण की हुई कोशिकाओं को **ज़ैथोफ़ोर** (xanthophores) कहते हैं तथा जिन कोशिकाओं में वसा-घुलनशील लाल वर्णक होता है उन्हें **एरिथ्रोफ़ोर** (erythrophore) कहते हैं।

iii) **टेरिडीन वर्ग** (pteridines) तथा **ओमोक्रोम वर्ग** (ommochromes) के वर्णक पीले रंग के लिए होते हैं। हरे रंग का बनना पीले वर्णक तथा नीले संरचनापरक रंग के संयोजित प्रभाव से होता है।

वर्णकों के द्वारा रंग प्रदान होने के अतिरिक्त प्राणियों में और भी दो प्रकार से रंग व्यवस्था पैदा हो सकती है:-

क) **संरचनात्मक रंग** (Structural colours)- कुछ इस प्रकार के रंग जैसे कि बंदरों के नितम्बों का लाल रंग मेलानिनयुक्त त्वचा द्वारा टिंडल प्रकीर्णन (Tyndall scattering) के कारण होता है। जो रंग सतही परत द्वारा कुछ ख़ास तरंग दैर्घ्यों के परावर्तन के कारण पैदा होते हैं उन्हें संरचनात्मक रंग कहते हैं।

ख) **रंगदीप्ति वर्ण** (Iridiscent colours)- जब कोशिकाओं की परतों से परावर्तित रंगों में कला व्यतिक्रमण (phase interference) होता है, तब उनसे चमकदार रंग अर्थात् रंगदीप्ति वर्ण पैदा होते हैं।

16.2.2 वर्णाविगम

प्राणियों में वर्णाविगम अर्थात् रंग का बोध (colour perception) रेटिना के भीतर पायी जाने वाली तीन विभिन्न प्रकार की कोशिकाओं के द्वारा होता है जो क्रमश: लाल, हरे और बैंगनी रंगों का बोध कराती हैं। रेटिना में उत्पन्न हुए आवेग मस्तिष्क के दृष्टि केंद्र में पहुंचते हैं। मछलियों तथा पक्षियों में अच्छा वर्ण दर्शन (colour vision) पाया जाता है। स्तनियों में प्राइमेटों तथा कुछ गिलहरियों में भी रंगों को देखने की अच्छी क्षमता होती है।

16.2.3 अनुकूली रंजन

रंजन (रंग-व्यवस्था) का मुख्य अनुकूली लाभ परभक्षियों से सुरक्षा प्राप्त करने का है। इस प्रकार की रंग-व्यवस्था के निम्नलिखित स्वरूप पाए जाते हैं:-

(I) सुरक्षाकारी रंजन अथवा गोपक रंग-व्यवस्था (cryptic colouration) प्राणी को उसके

परिवेश के साथ समरस बना देती है और वह परभक्षी की नज़र से बच जाता है।

(II) भयसूचक अथवा अपसूचक (Aposematic) रंजन अपने आक्रमणकारी अथवा खतरे से भरे व्यवहार के प्रति परभक्षी को सचेत करता है।

(III) संकेत तथा पहचान चिन्ह: कुछ कशेरुकियों में उनकी त्वचा पर रंग-स्थल बने होते हैं जो संकेत तथा पहचान चिन्हों का कार्य करते हैं। विशिष्ट रंग संगमी को आकर्षित करने अथवा उसकी पहचान करने में भी सहायक हो सकते हैं। इसे **लैंगिक रंजन** कहते हैं।

I सुरक्षाकारी रंजन

कुछ प्राणियों के रंग उन्हें छद्मावरण (camouflage) के द्वारा शत्रुओं की निगाह से छिप कर बचने में सहायता करते हैं (चित्र 16.2) परभक्षी और शिकार दोनों ही में इस प्रकार के गोपक (cryptic) रंग होते हैं जो उन्हें एक-दूसरे की निगाह से बचाते हैं। प्राणी को अस्पष्ट बनाने वाली गोपक रंग-व्यवस्था चार प्रकार की होती है:-

चित्र 16.2 : प्राणियों में सुरक्षाकारी रंजन उनके स्थाई वर्ण तथा आकार के कारण होता है। a) एशियाई श्रृंगीय मेंढ़क b) आस्ट्रेलिआई भूरी न्यूट तथा c) उलूक। ये सब अपने वर्ण और शरीर के आकार के कारण वृक्षों की टहनियों और पत्तियों या फिर जंगल की भूमि में छिप जाते हैं। इस चित्र में दिखाए गए प्राणि वास्तव में विश्व के अलग-अलग भागों में पाए जाते हैं पर यहां पर उन्हें एक साथ दिखाया गया है।

(1) प्राणी स्थायी तौर पर इस प्रकार की रंग-व्यवस्था वाले हो सकते हैं कि वे परिवेश के साथ सम्मिश्र हो जाते हैं। उदाहरण के लिए:-

(क) उत्तर ध्रुव प्रदेश का खरगोश, उत्तर ध्रुव प्रदेश की लौमड़ी और ध्रुवी भालू (चित्र 16.3 a), इन तीनों में बिल्कुल दूधिया सफ़ेद रंग के समूर (बाल) होते हैं जो हिमाच्छादित ध्रुव क्षेत्र के साथ मेल खाते हैं।

ऊंट, गैज़ेल तथा अन्य मरुस्थलीय प्राणी फीके रंगदार होते हैं और रेत के रंग के साथ मेल खाते हैं। शेर का कपिश रंग उसके आवास में पायी जाने वाली घास के रंग से मेल खाता है (चित्र 16.3 b)।

(ख) मेंढ़क तथा वृक्ष सर्प हरे रंग के होते हैं और पत्तियों के बीच मुश्किल से ही दीख पाते हैं।

चित्र 16.3 : प्राणियों में छद्मावरण उनके स्थाई वर्ण के कारण होता है। a) ध्रुवी भालू का सफेद समूर बर्फीले ध्रुवी क्षेत्र से अच्छी तरह से मेल खाता है। b) अफ्रीकी शेर का कपिश चर्म वहां की सूखी पीली घास और भूरी धरती के साथ सफलतापूर्वक मेल खाता है।

(ग) चोमरा (gulls) तथा कुर्री (terns) जैसे समुद्री पक्षी ऊपर की तरफ स्टील-ग्रे और नीचे की तरफ़ सफेद होते हैं। ये रंग ऊपर से देखने पर समुद्र के साथ समरंग हो जाते हैं और नीचे से देखने पर आसमान के साथ समरंग हो जाते हैं।

(घ) कुछ मछलियों में ऊपरी सतह गहरे रंग की तथा निचली सतह हल्के रंग की होती है। इस प्रकार की विपरीत रंग-व्यवस्था की रणनीति से मछली को सुरक्षा मिलती है क्योंकि जब जल के बाहर ऊपर से कोई परभक्षी पक्षी नीचे को ताकता है तब वह मछली को सही-सही देख नहीं पाता क्योंकि मछली गहरे समुद्र जल के रंग में समरंग हो जाती है। इसी प्रकार नीचे की गहराईयों की बड़ी परभक्षी मछलियां जब ऊपर को देखती हैं तब मछली का हल्के रंग का पेट दिन के प्रकाश के साथ समरंग हो जाता है और इस प्रकार भी मछली को सुरक्षा मिलती है (चित्र 16.4)।

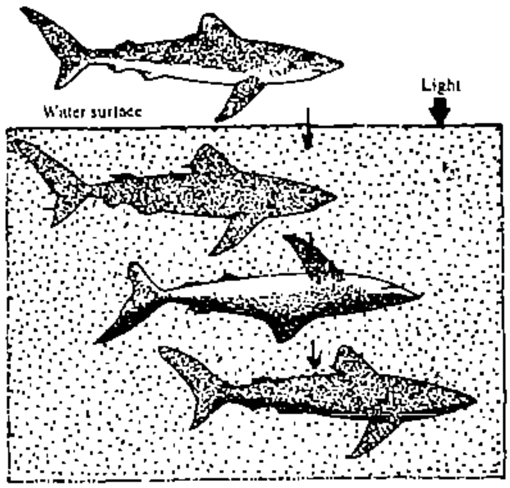

चित्र 16.4 : मछली की गहरे रंग की ऊपरी सतह और हल्के रंग की निचली सतह।

(II) प्राणी अपने परिवेश के अनुसार अपनी खाल का रंग बदल सकते हैं, और ऐसा वे अपनी वर्णक-धारक कोशिकाओं अर्थात् क्रोमैटोफ़ोरों में वर्णक की व्यवस्था में फेर-बदल करके कर सकते हैं। उदाहरण:-

क) मछलियों में "मिनो" मछलियां अपने रंग को क्रोमैटोफ़ोरों की सहायता से बदल सकती हैं। झील के रेतीले एवं कंकड़-पथरीले किनारे के निकट ये हल्के रंग की दिखायी पड़ती है। तंत्रिका उत्तेजना के प्रभाव के अधीन क्रोमैटोफ़ोर-कोशिका का काला वर्णक एक गोल केंद्रीय संहति में बदल जाता है। वर्णक की छोटी-छोटी सूक्ष्म संहतियां कोरी आंखों के लिए अदृश्य होती हैं और त्वचा हल्के रंग की दिखायी पड़ती है। जब तंत्रिका को उद्दीपन मिलना बंद हो जाता है तब वर्णक क्रोमैटाफ़ोर के भीतर फैल जाता है जिससे त्वचा गहरे रंग की दीखने लगती है (चित्र 16.1)।

ख) ऐम्फ़िबियनों जैसे कि वृक्ष-मेंढ़क *हाइला* (*Hyla*) जो पत्तियों में बैठे रहने पर हरे रंग का और वृक्ष की छाल पर बैठा रहने पर भूरे रंग का होता है, में पिट्यूटरी ग्रंथि अथवा हाइपोफ़ाइसिस से एक हार्मोन **इंटरमीडिन** (intermedin) अर्थात् मेलिनोफोर स्टिमुलेटिंग हार्मोन (MSH) निकलता है। यह हार्मोन क्रोमैटोफ़ोरों के भीतर वर्णक के छितराने अथवा संकेंद्रित होने को उत्तेजित करता है (चित्र 16.1 को देखिये)।

ग) *कैलोटीस* (*Calotes*) नामक गिरगट पत्तियों के भीतर हरा तथा डालियों एवं धरती के ऊपर भूरा होता है। गिरगिट *कैमीलिआन* (*Chameleon*) में अपने शरीर का रंग परिवेश के अनुरूप बना लेने की क्षमता पायी जाती है (चित्र 16.5)।

a b

चित्र 16.5 : कैमीलिआन में रक्षात्मक रंजन/यह अपने परिवेश के अनुसार रंग बदल लेता है। a) धूप में बैठे कैमिलिआन पर एक पत्ती गिर जाती है। b) जिसके कारण उतनी चर्म गर्म होकर हलके रंग की हो जाती है और पत्तियों में छुप जाती है।

(III) उपार्जित रंग (Acquired colour) : कुछ प्राणी अपने परिवेश से कुछ अन्य सामग्री को अपने ऊपर जमा-गड़ा कर स्वयं को छद्मावरित कर लेते हैं। कुछ उदाहरण इस प्रकार है:-

क) ऑस्ट्रेलियाई समुद्रों का "सी-ड्रैगन" *फ़िल्लोप्टेरिक्स* (*Phyllopteryx*) नामक एक मछली होती है (समुद्री घोड़े की एक संबंधी) जो अपने ऊपर पत्ती-सरीखे प्रपर्ण (फ्रॉण्ड) ढक लेती है जिससे वह समुद्री खरपतवार (sea weed) से बहुत ज्यादा मिलती-जुलती दीखने लगती है (चित्र 16.6)।

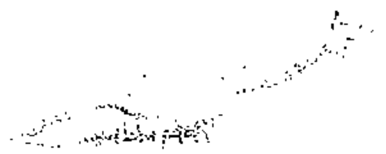

चित्र 16.6 : सुरक्षात्मक उपार्जित रंजन पर्णनित समुद्री ड्रैगन नामक मछली के शरीर पर समुद्री खरपतवार ज्यादा लगती है। इस तरह वह समुद्री खरपतवार में अच्छी तरह छुप जाती है।

(IV) विभंजनी रंजन (Disruptive colouration) बाघ और ज़ैबरा जैसे वन्य प्राणी धारीदार अथवा पट्टीदार होते है। शरीर के अलग-अलग भाग जब दो विभिन्न रंगों के बने होते हैं प्राणी की वास्तविक आकृति रेखा भंग हो जाती है और शत्रुओं द्वारा पहचाने जाने से बच जाने में सहायता करती है (चित्र 16.7)। उदाहरण:-

क) दक्षिण अमरीकी चींटीखोर ***टैकीग्लॉसस*** (*Tachyglossus*) में शीर्ष तथा अगली टांगों पर विभंजनी रंग-व्यवस्था पायी जाती है। इस प्रकार की विपरीत रंगों की तीव्र पट्टीनुमा व्यवस्था प्राणी की आकृति रेखा को भंग करने में सहायक होती है (चित्र 16.7 a)।

ख) ज़ैबरा अक्सर झुण्ड बनकर चलते हैं। शेर-जैसा कोई परभक्षी इन ज़ैबरों में से किसी एक अकेले जानवर की आकृति का उसके शरीर की काली पट्टियों के कारण बोध नहीं कर पाता। ज़ैबरा को बच निकलने के लिए पर्याप्त समय मिल जाता है (चित्र 16.7 b)।

ग) गेको छिपकली वृक्ष के तने पर अपनी विभंजनी रंग-व्यवस्था के कारण जल्दी से नज़र नहीं आती।

घ) उलूक ("नाइट जार") नामक पक्षी की विषम रंग-व्यवस्था के कारण उसकी एक सम्पूर्ण आकृति नजर नहीं आती जिससे वह पैनी नज़र वाले परभक्षी से बच निकलती है (चित्र 16.2 को फिर से देखें)।

चित्र 16.7 : विशाल चोंटीखोर a) तथा ज़ेबरों के एक झुण्ड b) में दिखायी पड़ रही विभंजनी रंग-व्यवस्था।

II भयसूचक अथवा अपसूचक रंजन

शरीर के रंगों का चटकीला होना एक पारिस्थितिक रणनीति है। संभावी परभक्षियों के लिए ये रंग विषैली प्रकृति को घोषित करते हैं (चित्र 16.8)। कुछ प्राणियों के चटकीले रंगों का सौंदर्य महत्व तो है मगर उनके विषैले दंश, उनकी बदबूदार गंध अथवा उनके अप्रिय स्वाद से यह सौंदर्य महत्व नकारात्मक हो जाता है। इससे परिणाम यहां तक हो जाता है कि परभक्षी इन चटकीले रंगों को अखाद्यशीलता से जोड़ने लग जाता है। कुछ उदाहरण:-

क) विद्युत रे टार्पीडो (Torpedo) पर चटकीले नीले रंग के बिंदु बने होते हैं जो परभक्षी को मृत्युदायी विद्युत झटकों की चेतावनी देते हैं (चित्र 16.8 a)।

ख) उभयचरों की चटकीले रंग की चर्म जैसे कि मध्य और दक्षिणी अमरीका के विषैले मेंढ़क (poison dart frogs) (चित्र 16.8 b) तथा अफ्रीका के विषैले मेंढ़क (चित्र 16.8 c) और काली पीली पट्टियों वाला टाइगर सेलामैण्डर (*ऐम्बिस्टोमा, Ambystoma*) और, चटकीले रंगों का फायर सैलेमैण्डर (चित्र 16.8 d) अपने परभक्षियों को अपनी त्वचा से निकलने वाले एक ऐसे लसीले स्राव की चेतावनी देता है जिससे जी मचलाता और उबकाइयां आती हैं।

ग) *हीलोडर्मा* (*Heloderma*) अर्थात् "गिला मॉन्स्टर" विश्व की एकमात्र विषैली छिपकली है जो चटकीले रंगों की होती है (चित्र 16.8 e)।

घ) प्रवाल सर्प (coral snake) में चटकीली लाल और काली एकांतर पट्टियां होती हैं जिनके सीमांत पीले होते हैं। ये सर्प प्रदर्शन करते हैं कि उनमें भीषण विष विद्यमान है (चित्र 16.8 f देखिए)।

III संकेत चिन्ह तथा पहचान चिन्ह

कुछ प्राणियों की देह पर बने रंगों के स्थल (क्षेत्र) यदि अचानक दिखा दिए जाएं तो वे सजातिकों (conspecifics) (एक ही स्पीशीज़ के सदस्यों) के लिए और विशेषकर यूथचारी (साथ-साथ समूह में रहने वाले, gregarious) प्राणियों के सदस्यों के लिए एक संदेश होते हैं। उदाहरण:-

उत्तरी अमरीका के सफेद पूंछ वाले मृग के झुण्ड के सदस्य किसी निकट आए हुए ख़तरे को जानकर अपनी दुम के नीचे बने एक सफ़ेद निशान को दूसरों को दिखा कर अन्य सदस्यों को सचेत कर देते हैं जो जल्दी से भाग खड़े होते हैं। इसी प्रकार अमेरिकी कुरंग पॉगहार्न भी इसी प्रकार अपने नितम्बों पर बने सफ़ेद बालों के एक क्षेत्र को दिखा देता है (चित्र 16.9)।

मगर "काटन टेल" खरगोश *लीपस सिल्वैटिकस* (*Lepus sylvaticus*) अपनी सफ़ेद पूंछ को एक संकेत ध्वज के समान इस्तेमाल करता है। मां अपनी पूंछ को कौंधती है जो अंधेरे में चमकती है तथा बच्चे मां के पीछे-पीछे सुरक्षित स्थान में चलते जाते हैं।

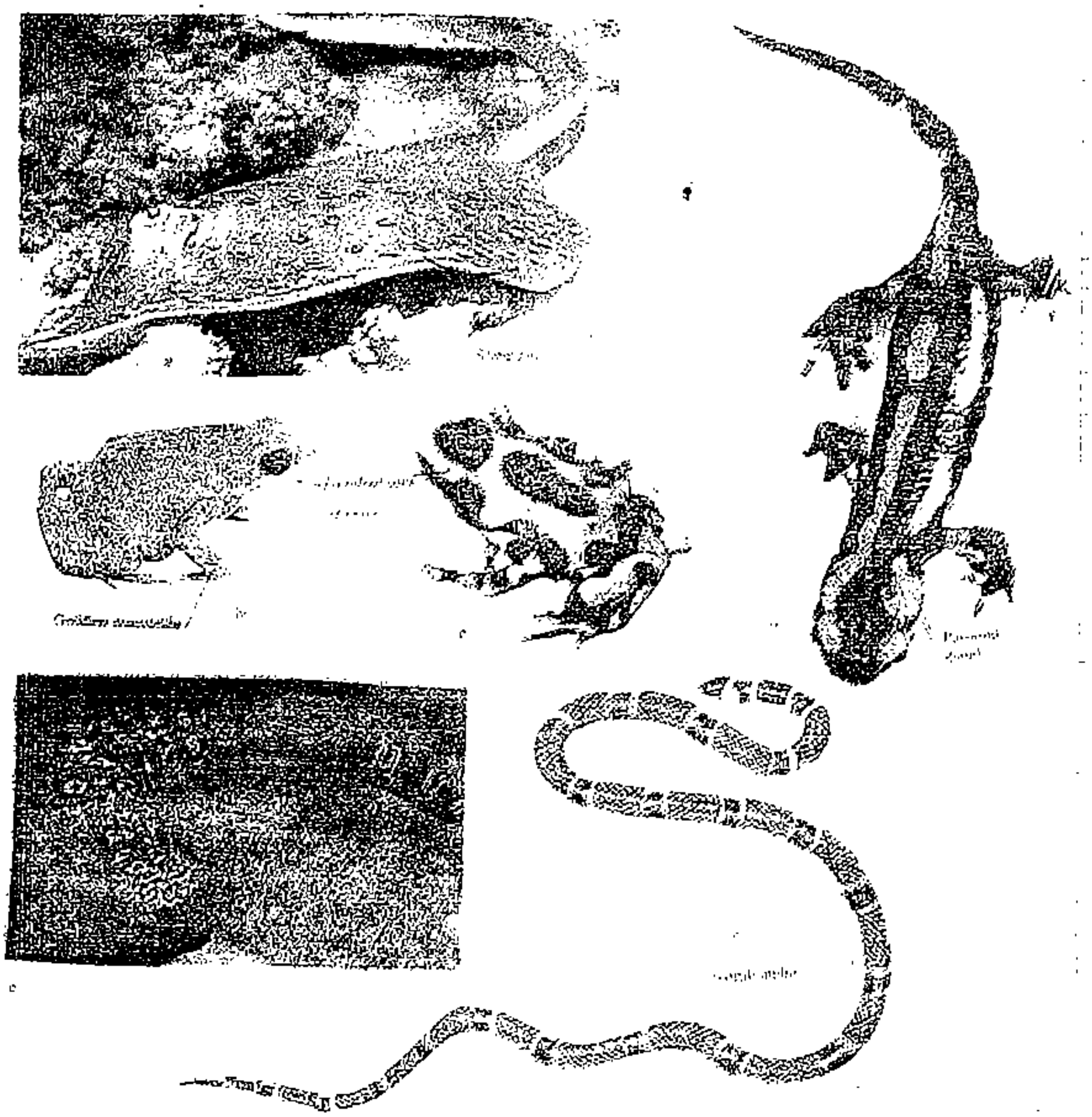

चित्र 16.8 : भयकारक रंजन अधिकांश कशेरुकियों के चटकीले रंग उनकी विषैली प्रवृत्ति के साथ जुड़े होते हैं और इस प्रकार ये रंग संभव परभक्षियों के लिए चेतावनी होते हैं। a) नीले धब्बों वाली स्टिंग रे घातक विद्युत झटके देने में समर्थ है। b) दक्षिणी अमरीका का विषैलो डार्ट मेंढ़क c) मेडेगास्कर का गोल्डन मेंटला मेंढ़क जो विषैले डार्ट मेंढ़क के समान विषैला रसायन बनाता है। d) चटकीले रंग का उभयचर फायर सेलेमेन्डर e) चटक रंग वाली हेलोडर्मा जो विश्व की एकमात्र विषैली छिपकली है। f) आकर्षक पट्टियों युक्त प्रवाल सर्प।

चित्र 16.9 : प्राणियों में भयसूचक संदेश। a) उत्तरी अमरीका का श्वेत पूंछ वाला हिरण अपनी पूंछ को उपर उठा कर सफेद बालों का क्षेत्र दिखाते हुए खतरे की चेतावनी देता है। b) प्रोंगहॉर्न मृग में खतरे से सावधान करने के लिए सबसे स्पष्ट सफेद चिन्ह होते हैं।

"ब्रुक ट्राऊट" ***सैल्वेलाइनस फोन्टिनैलिस*** (*Salvelinus fontinalis*) के शरीर पर बने लाल और नारंगी धब्बे सजातिक संगमियों को पहचानने में सहायता करते हैं।

प्राणियों के संसार में नर प्राणी चटकीले और अधिक सुंदर रंगों वाले होते हैं, जबकि मादाएं फ़ीके और नीरस रंगों वाली होती हैं। नर मोर के पर, "कार्डिनल बर्ड," नर फ़ीजैण्ट की लाल कामद पिच्छता, घरेलु मुर्गे की लाल कलगी, पर्पल मार्टिन नर के नीले पक्षति (चित्र 16.10) ये सब लैंगिक रंजन के ही उदाहरण हैं। हिरनों की विविध स्पीशीज़ तथा बबर शेर (सिंह) जैसे स्तनियों की स्पीशीज़ में नरों की तुलना में मादाएं फीके रंगों की होती हैं।

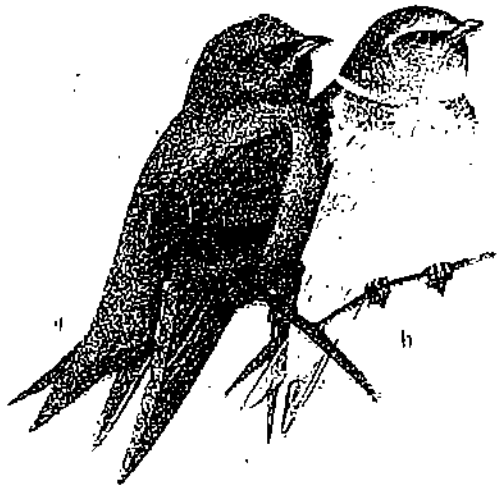

चित्र 16.10 : पर्पल मार्टिन में लैंगिक रंजन a) नर b) मादा।

16.3 अनुहरण

इससे पहले आपने जाना कि अपने शत्रुओं से बचने का एक तरीका अनुकूली रंजन भी हो सकता है। सुरक्षाविहीन प्राणी नुकसान होने से बचने के लिए अपने परभक्षी से दूर भाग सकता है मगर यह विधि सदैव सफल ही हो ऐसा नहीं होता। अनेक प्राणी दूसरे प्राणियों की नकल करके अपने को बचाते हैं। इसे अनुहरण (mimicry) कहते हैं। अंग्रज़ी का शब्द "mimicry" लैटिन शब्द "mimicus" से बनाया गया है जिसका अर्थ है नकल करना। इस प्रकार अनुहरण एक सुरक्षा कौशल है।

अनुहरण ("मिमिक्री") की परिभाषा है अति पृथक वर्गों के जीवों के बीच वाह्य स्वरूप, आकृति एवं रंजन में समानता का पाया जाना।

उस प्राणी को जो एक अन्य प्राणी अथवा उन प्राकृतिक वस्तुओं जिनके बीच वह रहता है, के समान दीखता है, **अनुहारी** (mimic) कहा जाता है तथा वह जीव अथवा प्राकृतिक वस्तु जिसकी नकल की जाती है **प्रतिरूप (मॉडल)** कहलाती है। अनुहरण के द्वारा अनुहारी या तो अपने आपको परभक्षियों से छिपाता है या फिर इस प्रकार अपना प्रदर्शन करता है मानो हानिकारक हो। दोनों में से जो भी विधि हो अनुहारी अपने परभक्षियों के आक्रमण से बच जाता है।

16.3.1 अनुहरण के प्ररूप

अनुहरण दो प्रकार का होता है

(i) बेटसी अनुहरण, तथा (ii) म्यूलरी अनुहरण।

बेटसी अनुहरण (Batesian mimicry)

अनेक असुरक्षित स्पीशीज़ अरुचिकर स्पीशीज़ के समान दिखने वाली होती हैं (चित्र 16.11)। ये दोनों ही भयसूचक रंजन दर्शाते हैं। जब भी अनुहारी अपने मॉडलों की एक बड़ी समष्टि के बीच होते हैं तो वे परभक्षियों से बच जाते हैं। इस प्रकार की समानता को **बेटसी अनुहरण** कहते हैं और यह नाम ब्रिटिश प्रवृतिविज्ञानी ए. डब्ल्यू. बेट्स (A.W. Bates) के नाम पर दिया गया है। बेटसी अनुहरण को अहानिकर सर्प दर्शाते हैं, जो हानिकर सर्पों का अनुहरण करते हैं। ईलैप्स (*Elaps*) जीनस के विषैले सर्प बड़ी ही सुंदर रंग-व्यवस्था के होते हैं जिनमें लाल और काली पट्टियां एकांतर क्रम में बनी होती हैं

(चित्र 16.11)। अनेक अहानिकारक कौलुब्रिड सांपों में ऐसे ही रंग बने होते हैं, यह समानता यद्यपि बिल्कुल एक जैसी नहीं होती फिर भी इतनी तो होती ही है कि परभक्षी मूर्ख बन जाए।

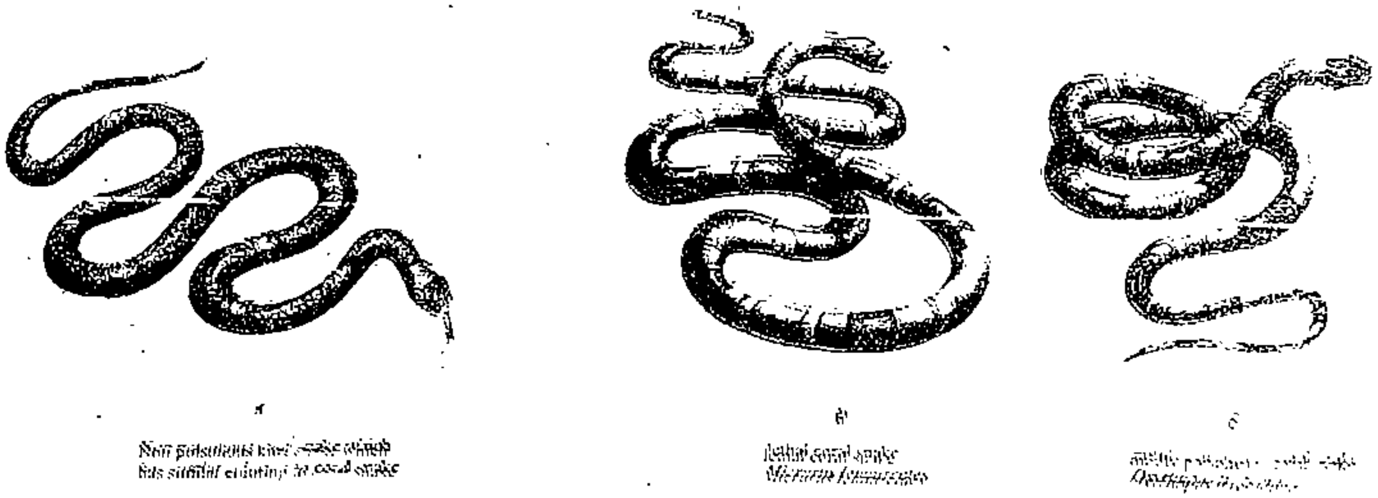

चित्र 16.11 : वेटसी अनुहरण दर्शाते हुए a) अविषालु, अहानिकारक किंग सर्प जो दो प्रकार के प्रवल सर्प के समान लगता है जबकि उनसे संबंधित नहीं है। b) अति घातक *माइक्रूरस लेमिसकेटस* तथा c) किंचित विषालु *आक्सीरोपस ट्राइजेमिनस*।

म्यूलरी अनुहरण (Mullerian mimicry)

अनुहरण के इस स्वरूप को यह नाम जर्मन जीव विज्ञानी फ्रिट्ज़ म्यूलर (Fritz Muller) के नाम पर दिया गया है। म्यूलरी अनुहरण की परिभाषा में कहा जाता है कि यह एक ऐसी परिघटना है जिसमें दो या दो से अधिक असंबंधित मगर सुरक्षित स्पीशीज़ एक दूसरे के समान दीखती हैं और इस प्रकार वे एक "सामूहिक सुरक्षा" प्राप्त कर लेती हैं। यदि आपस में समान दिखने वाले सभी प्राणी विषैले अथवा खतरनाक हों, तब भी वे एक-दूसरे के समान दिखने से लाभ प्राप्त करते हैं क्योंकि इससे उन्हें सामूहिक सुरक्षा प्राप्त होती है।

वेटसी तथा म्यूलरी दोनों प्रकार के अनुहरणों में अनुहारी तथा मॉडल दोनों को न केवल समान दिखाई देना चाहिए वरन् व्यवहार तथा कार्य भी एक समान ही करना चाहिए, तभी परभक्षियों को धोखा देना संभव हो सकता है। साथ ही अनुहारियों को अपना अधिकतर समय भी अपने मॉडलों के आवास में ही बिताना चाहिए, तथा यह भी कि उनकी संख्या अधिक हो। यदि ये दोनों शर्तें पूरी नहीं होतीं तब परभक्षियों को पता चल जाएगा कि क्षेत्र-विशेष में रहने वाले अनुहारी खाने योग्य हैं।

16.3.2 अनुहरण के विभिन्न स्वरूप

अनुहारी जो रूप बदलने में प्रवीण होते हैं निम्नलिखित प्रकार का अनुहरण कर सकते हैं:-

क) मृत अथवा निश्चेत जीवित वस्तुएं का (रक्षात्मक अनुहरण)

ख) हानिकर स्पीशीज़ का (भयसूचक अनुहरण)

ग) शरीर के किसी एक भाग को प्रदर्शित कर सकते हैं ताकि वह एक प्रलोभनी चारे जैसा दिखाई दे और शिकार को अपनी ओर ललचा सके (प्रलोभनी अनुहरण)

घ) मृत्यु स्वांग (सचेत अनुहरण) कर सकते हैं।

सुरक्षाकारी अनुहरण (Protective mimiry)— उदाहरण

(i) 'ट्रम्पेट' मछली (trumpet fish) अपना सिर नीचे किए हुए समुद्री घास में विश्राम करती है और इस प्रकार वह घास के साथ सम्मिश्र हो जाती है उसमें से एक लगती है (चित्र 16.12a) पीली तितली मछली (चित्र 16.12b) अपने शरीर पर बने पैटर्न के कारण प्रवाल में छुप जाती है इस प्रकार उसके

शरीर का आकार ठीक से पता नहीं चलता है। साथ-साथ उसकी पूंछ पर बना चटकीला दृक् बिंदु उसे बचने का समय प्रदान करता है क्योंकि परभक्षी उस बिंदु पर आक्रमण करता है न कि उसकी असली आंख पर! बिच्छु मीन (scorpion fish) बार्नेकल से भरी चट्टान जैसी लगती है (चित्र 16.12c)।

परभक्षी भी अनुहरण करते है तथा शिकार को धोखा देते हैं। "ज़ोन-टेल्ड" बाज़ *ब्यूटिया* गिद्दों के बीच उड़ता है जो छोटे जानवरों का शिकार नहीं करतें। गिद्दों के बीच उड़ते समय यह पक्षी अचानक असदेहकारी शिकार पर झपट्टा मारता है।

चित्र 16.12 : सुरक्षाकारी अनुहरण a) समुद्री घास में सिर नीचे किए हुए 'ट्रम्पेट' मछली b) छद्मावरित तितली मछली c) बिच्छु मीन अपने परिवेश से मेल खाती हुई छिप जाती है, उसके विषालु अर आक्रमणकारी को दूर रखते हैं।

(ii) एशिया का हरा श्रृंगीय मेंढ़क (चित्र 16.2) अपने आप को बड़ी-बड़ी पत्तियों में छिपा लेता है और यहां तक कि उन्हीं की शक्ल भी प्राप्त कर लेता है।

(iii) बिर्टन-पक्षी जो पास आते किसी परभक्षी का खतरा जानकर सरकण्डों में एकदम मूर्तिस्वरूप बन कर गर्दन और चोंच को सीधे ऊपर को ताने खड़ा हो जाता है। इसके उदर की पीली अधर सतह जिस पर काली खड़ी धारियां बनी होती हैं, शत्रु की ओर को घुमा दी जाती है। जब किसी दिन हवा शांत होती है तब यह सीधा शांत खड़ा रहता है और सरकण्डे जैसा जान पड़ता है। मगर जब किसी दिन तेज़ हवा चल रही हो तब सरकण्डों के हिलने के साथ-साथ यह स्वयं भी हिलता रहता है।

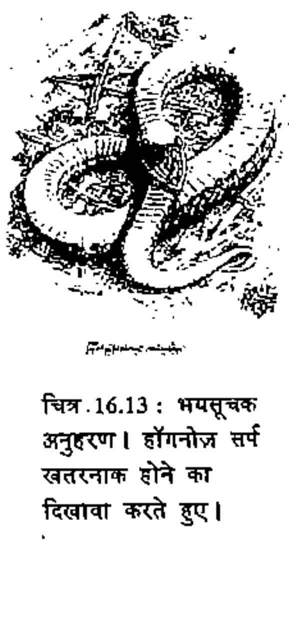

चित्र.16.13 : भयसूचक अनुहरण। हॉगनोज़ सर्प खतरनाक होने का दिखावा करते हुए।

भयसूचक अनुहरण (Warning mimicry) —उदाहरण

क) अहानिकर "हॉग-नोज़्ड" सांप *हेटेरोडॉन (Heterodon)* विषैले सर्पों की तरह चटकीले रंगों का नहीं होता मगर यह अपने शीर्ष को चपटा करके उसे त्रिभुजाकार बना लेता है (चित्र 16.13) और विषैले सर्प नाग के जैसा फुफकारता है। यह काट खाने तक का प्रयास कर सकता है और खतरनाक होने का दिखावा करता है जबकि वास्तव में वह ऐसा नहीं है।

ख) बर्मा के कोमल कछुए *ट्रायोनिक्स हूरम (Trionyx hurum)* के कवच पर तथा तितली मछली की पूंछ पर आंख-जैसे चिन्ह् बने होते हैं (चित्र 12.16 b)। परभक्षी आम तौर से आंख के निकट सिर पर वार करते हैं। कवच के पश्च भाग पर बने दृक बिंदु परभक्षी को गलत दिशाबोध देते हैं।

प्रलोभनी अनुहरण (Alluring mimicry) —उदाहरण

गहरे समुद्र की ऐंगलर-फ़िश *लोफ़ियस (Lophius)* के पृष्ट फ़िन की प्रथम फ़िन-अर रूपांतरित होती है जिसे इल्लिसियम (illicium विलोभनांग) कहते हैं (चित्र 16.14)। इस पर मांसल त्वचिक उपांग बना होता है जो चारे की तरह हिल-डुल कर उस मछली को आकर्षित करता है जिसका *लोफ़ियस* शिकार करती है।

अमेरिकी श्रृंगीय मेंढ़क *सिरेटोफ़्रिस* (*Ceratophrys*) चुप शांत बैठ जाता है और फिर हाथ की एक उंगली को हिलाता है जिसकी ओर अन्य प्राणी आकर्षित होते हैं। *सिरैटाफ़्रिस* तपाक से उसे मुंह में दबोच लेता है।

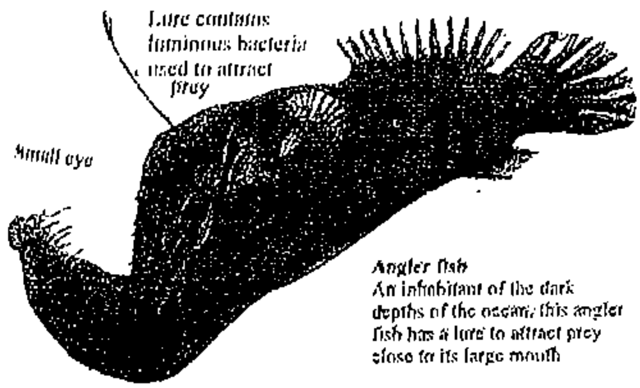

चित्र 16.14 : प्रलोभनी अनुहरण। ऐंगलर फ़िश गहरे समुद्री जल के अंधेरों में रहती है। इसके पास प्रलोभन उपांग होता है जिससे ये अपने शिकार को मुंह के पास आकर्षित करती है।

चेतनी अनुहरण (Conscious mimicry)— उदाहरण

खतरा निकट आया जानकर कुछ प्राणी, खासकर कुछ सांप तथा ऑपोसम मृत्यु का स्वांग भरते हैं (चित्र 16.15 a तथा b)। अमेरिकी ऑपोसम *डाइडेल्फ़िस* (*Didelphis*) निश्चेत हो जाता और मरा हुआ सा प्रतीत होने लगता है।

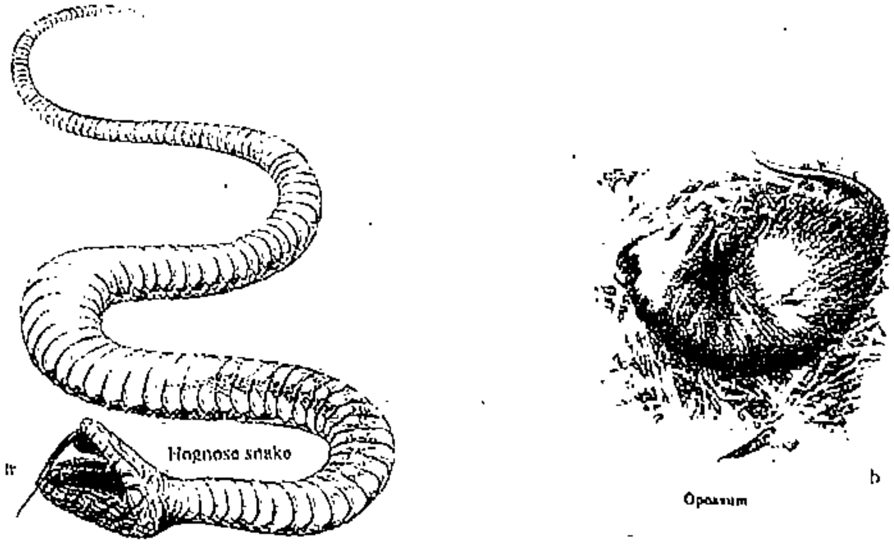

चित्र 16.15 : सचेतनी अनुहरण a) हॉगनोज़ सर्प खतरे से बचने के लिए मरने का स्वांग करता है। वह उलट जाता है और अपना मुंह खोल लेता है जिससे सड़े हुए मास की बदबू निकलती है। b) मृत सा लगता ऑपोसम।

बोध प्रश्न 1

रिक्त स्थानों में उपयुक्त शब्द लिखिए:-

i) त्वचा में वर्णकों से युक्त कोशिकाओं को .... कहते हैं।

ii) कशेरुकियों में .... नामक वर्णक से भूरा अथवा काला रंग बनता है।

iii) वह क्रियाविधि जिसमें प्राणी अन्य वस्तुओं का इस्तेमाल करते हुए स्वयं का रूप बदल लेते हैं .... रंजन कहलाती है।

iv) सुरक्षाकारी अथवा .... रंजन प्राणी को अपने परिवेश से सम्मिश्र हो जाने में सहायता करता है ताकि परभक्षी की आंख से बच सके।

v) अति पृथक समूहों में आने वाले जीवों के बीच बाह्य स्वरूप, आकृति और रंग में पायी जाने वाली समानता को .... कहते हैं।

vi) अनुहरण के उस प्ररूप को जिसमें असुरक्षित अनुहारी किसी खतरनाक मॉडल के समान दीखता है, ... अनुहरण करते हैं।

vii) .... अनुहरण में प्राणी अपने शरीर के किसी एक भाग को एक प्रलोभन जैसे इस्तेमाल करता है ताकि वह अपना शिकार पकड़ सके।

16.4 जीव-संदीप्ति

बहुत से प्राणी हैं जो स्वयं अपने ही शरीर के प्रकाश से चमकते हैं। उनके भीतर पैदा होने वाला प्रकाश एक एंज़ाइम द्वारा उत्प्रेरित रासायनिक अभिक्रियाओं का परिणाम होता है। यह प्रकाश क्यों पैदा किया जाता है इसका पृथक प्राणि-वर्गों में अलग-अलग कारण होता है।

जीवों द्वारा प्रकाश-उत्पादन को **जैविकीय संदीप्ति** अथवा **जैवसंदीप्ति** कहते हैं। कशेरुकियों में ऐम्फिबियनों, रेप्टाइलों, पक्षियों तथा स्तनियों में कोई भी स्वसंदीप्त उदाहरण नहीं पाया जाता। मगर कई प्रकार की मछलियां, विशेषकर गहरे समुद्र में रहने वाली, जीव संदीप्तशील होती हैं।

गहरे महासागरों में प्रकाश की अत्यंत धीमी किरणें ही पहुंच पाती हैं, इसलिए वहां अनिवार्य हो जाता है कि विभिन्न प्रकार की मछलियां अपनी ही स्पीशीज़ के सदस्यों को पहचान सकें। शरीर पर नन्ही रोशनियों के प्रतिरूप वितरित होते हैं। ये रोशनियां अथवा **प्रकाशधर** (photophores) लगातार अथवा रुक-रुक कर कौंधते रहते हैं और पहचान संकेतों का कार्य करते हैं।

गहरे समुद्रों की लगभग 95% मछलियों में प्रकाश अंग अथवा प्रकाशधर होते हैं। किसी एक स्पीशीज़ के सदस्यों में समान प्रतिरूप होते हैं। मगर एक ही स्पीशीज़ के नर तथा मादा में प्रकाश की कौंध अलग-अलग प्रकार से होती है।

लैंटर्न फ़िश *डायेफ़स* (*Diaphus*) तथा हैचेट फ़िश *आर्जिरोपेलिकस* (*Argyropelecus*) और उनके द्वारा निकाले जाने वाले प्रकाश कौंध के प्रतिरूप चित्र 16.16. a तथा 16.16 b में दिखाए गए हैं।

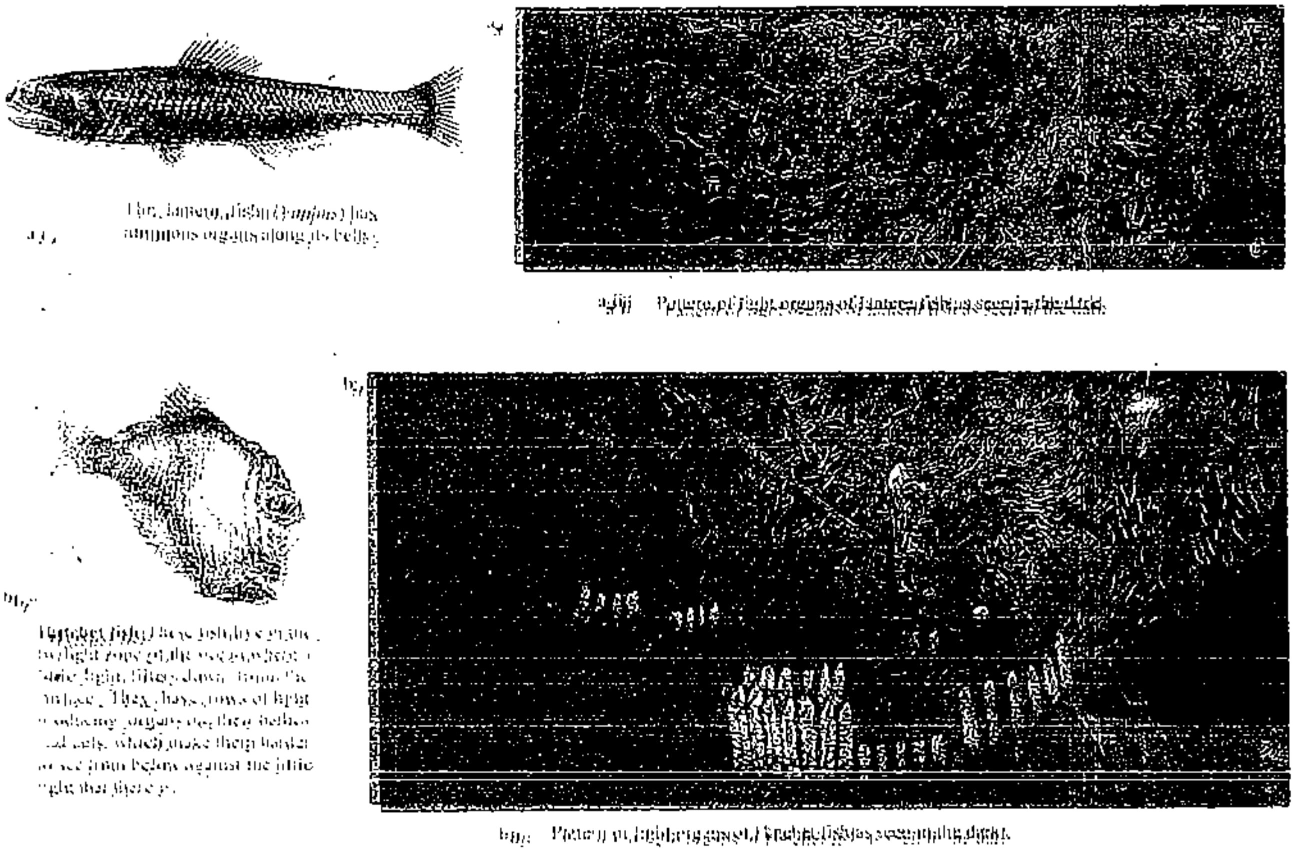

चित्र 16.16 : जीव-संदीप्त मछलियां: a) लैंटर्नफ़िश *डायेफ़स डैनी* (*Diaphus danae*) और अंधेरे में दिखने वाले उसके प्रकाश अंग। b) हैचेट फ़िश *आर्जिरोपेलिकस* और अंधेरे में दिखने वाला उसका प्रकाश प्रतिरूप।

16.4.1 मछलियों में प्रदीपी अंग

प्रदीपी अंग ग्रंथियां होते हैं जो जीव संदीप्त मछलियों की विभिन्न स्पीशीज़ में शरीर के अलग-अलग भागों में स्थित होते हैं। कुछ प्रदीपी अंग आंख के पास स्थित होते हैं, और कुछ अंग शरीर के पार्श्वों पर पंक्तियों में (चित्र 16.16 b) अथवा निचली सतह पर व्यवस्थित होते हैं।

सर्वाधिक विकसित प्रकाशजनी अंग वे होते हैं जिनमें ग्रंथिल कोशिकाएं और साथ में एक समांतर किरण पुंज बनाने वाला फ़ोकस करने वाला लेन्स होता है, इनके अलावा प्रकाश की मात्रा को नियंत्रित करने वाला एक आइरिस, अक्सर सिलवर ग्वानिन क्रिस्टलों की बनी एक परावर्ती परत तथा समूचे अंग को घेरता हुआ एक वर्णक होता है जो प्रकाश का शरीर में विकिरण होने से रोकता है (चित्र 16.17)।

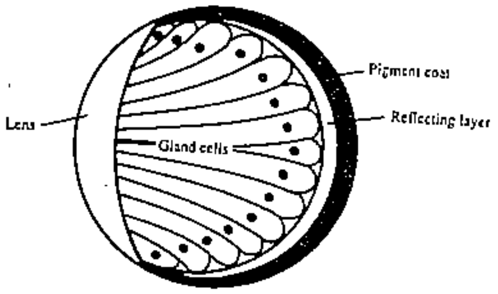

चित्र 16.17 : जीव संदीप्तशील मछलियों का प्रकाशजनी अंग।

कुछ ख़ास किस्म की गहरे समुद्र की मछलियों में प्रकाशजनी अंग बड़े और वर्णकयुक्त कोष्ठों में गड़े रहते हैं। इन्हें पेशियों द्वारा कोष्ठों के भीतर को घुमाया जा सकता है अथवा एक परदे-सरीखी झिल्ली, शटर की तरह अंग के ऊपर फैला दी जा सकती है। इस प्रकार निकलने वाला प्रकाश थोड़े-थोड़े अंतराल के बाद कौंधाया जाता है।

कुछ मछलियों में प्रकाश अंग शीर्ष के पार्श्वों पर होते हैं और वे जल के भीतर रोशनी के बादल से विमोचित कर देते हैं। जिनसे परभक्षी भ्रमित हो जाता है।

दूसरों के प्रकाश में तापना!

इन्डोनेशिया की मछली *फ़ोटोब्लेफ़ैरॉन* (चित्र 16.18) में प्रदीपी बैक्टीरिया के साथ सहजीवी संबंध पाया जाता है। प्रत्येक आंख के नीचे एक अति वाहिकीय वृक्काकार सफ़ेद स्थल होता है जिसके भीतर प्रदीपी बैक्टीरिया पनपते हैं। दृक्-बिंदु के ऊपर त्वचा को खींच लाने पर बैक्टीरिया का प्रकाश कट जाता है।

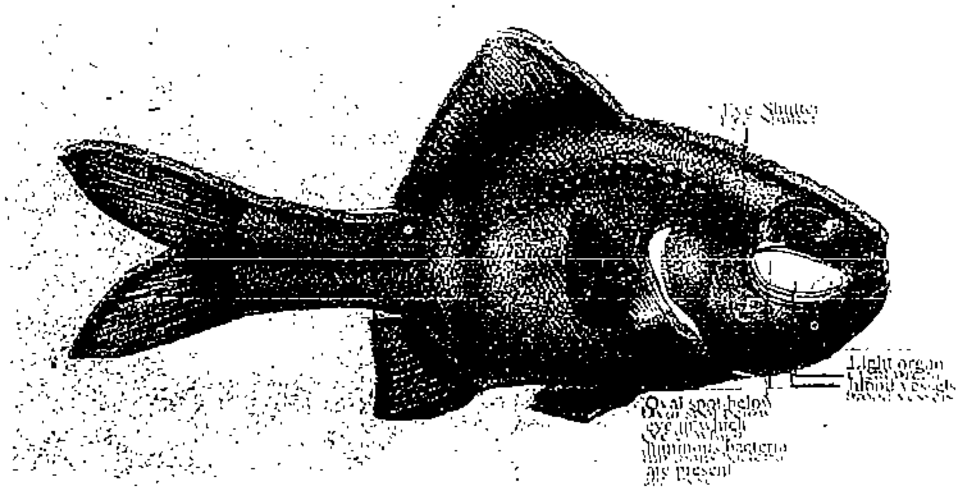

चित्र 16.18 : जीव-संदीप्त मछली फ़ोटोब्लेफ़रॉन (*Photoblepharon*)

16.4.2 जीव-संदीप्तिशील अणु

जीव-संदीप्ति एंज़ाइम-उत्प्रेरित **रसायन-संदीप्ति** (chemiluminescence) होती है जिसमें प्रकाश-विमोचनी सब्स्ट्रेट का ऑक्सीकरण होता है। ऑक्सीकरण अभिक्रिया के साथ प्रकाश का विमोचन होता है।

प्रकाश-विमोचनी रसायन ल्यूसिफ़ेरिन (luciferin) होता है (Lucifer का अर्थ है प्रकाश का वाहक)। ल्यूसिफ़ेरिन का संश्लेषण प्रकाशजनी अंग के ग्रंथीय ऊतक के भीतर होता है (चित्र 16.17)। ल्यूसिफ़ेरिन एक प्रोटीन होता है जिसमें एक हज़ार से अधिक ऐमिनो अम्ल होते हैं। ल्यूसिफ़ेरिन के लगभग हर एक अणु का ऑक्सीकरण **ल्यूसिफ़रेज़** एंज़ाइम द्वारा उत्प्रेरित होता है। इसमें भी एक हज़ार से अधिक एमिनो अम्ल होते हैं। अलग-अलग प्रदीपी जीवधारियों में ल्यूसिफ़ेरिन भी भिन्न पाया गया है।

ल्यूसिफ़ेरिन के आक्सीकरण के लिए जो ऑक्सीजन चाहिए वह इस ग्रंथि में बहुत भारी संख्या में पहुंची हुई रुधिरवाहिकाओं द्वारा उपलब्ध होती है।

16.4.3 जीव-संदीप्ति की क्रियाविधि

जीव-संदीप्ति एक ऊर्जा-निर्भर ऑक्सीकरण अभिक्रिया है। ऑक्सीजन की मौजूदगी में ATP के व्यय से ल्यूसिफ़ेरिन का ऑक्सीकरण होता है। यह अभिक्रिया ल्यूसिफ़रेज़ द्वारा उत्प्रेरित होती है और परिणामतः प्रकाश निकलता है।

$$LH_2 \text{ (ल्यूसिफ़ेरिन)} + ATP + O_2 \xrightarrow{\text{ल्यूसिफ़रेज़}} L=0 \text{ (ऑक्सीकृत ल्यूसिफ़ेरिन)} + AMP + P_1 + H_2O + \text{प्रकाश}$$

कुछ सूक्ष्म पेशियां होती हैं जिनके संकुचित होने से ग्रंथि को आपूर्ति करने वाली रक्त वाहिनियां संकीर्ण हो जाती हैं और रक्त आपूर्ति रुक जाती है। जब ग्रंथि में ऑक्सीजन नहीं पहुंच पाती तब प्रकाश बुझ जाता है।

प्रकाश का उत्पादन तंत्रिका-तंत्र के नियंत्रण में होता है। प्रदीपी ग्रंथि में उद्दीपन के पहुंचने पर ल्यूसिफ़ेरिन, ATP तथा ऑक्सीजन काम में आते हैं। अभिक्रिया के फलस्वरूप जो उत्पाद बनते हैं वे हैं— ऑक्सीकृत ल्यूसिफ़ेरिन, AMP (ऐडीनोसीन मॉनोफ़ॉस्फ़ेट), अकार्बनिक फ़ॉस्फ़ेट, तथा प्रकाश (चित्र 16.19)।

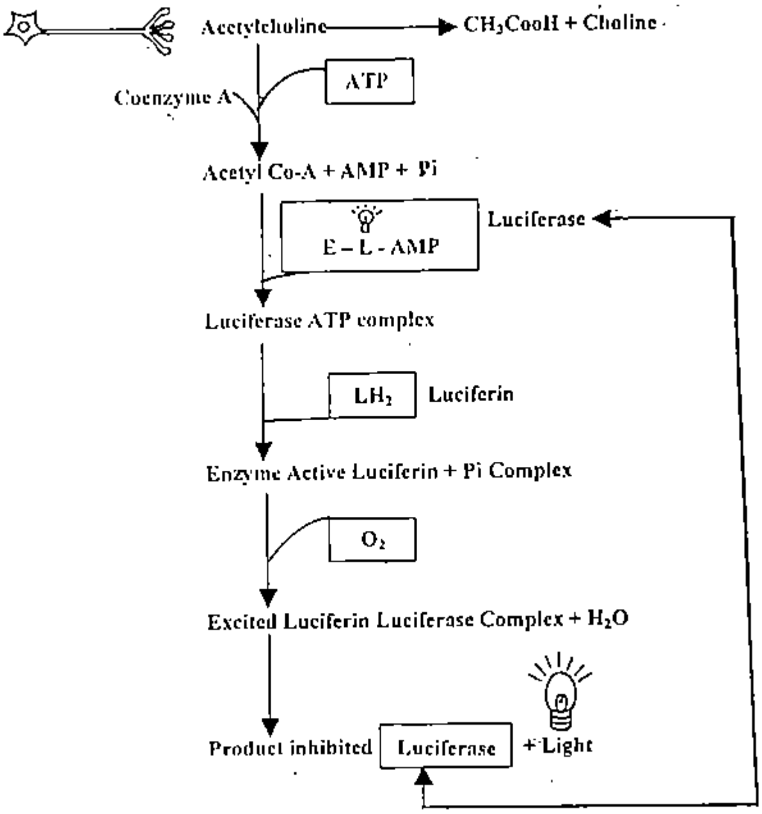

चित्र 16.19 : जीव-संदीप्ति की क्रियाविधि।

16.4.4 उत्सर्जित प्रकाश का रंग और प्ररूप

जीव-संदीप्त मछलियां अधिकतर नीली अथवा नीली-हरी रोशनी निकालती हैं। मगर इनकी कुछ स्पीशीज़ लाल, हल्का पीला, पीला-हरा, नारंगी-बैंगनी अथवा नीला-सफ़ेद प्रकाश निकालती हैं। ध्यान देने की एक बात यह है कि किसी एक विशिष्ट स्पीशीज़ में प्रकाश अंगों से निकले प्रकाश का तरंगदैर्ध्य ठीक उसी तरंगदैर्ध्य के बराबर होता है जो उसी स्पीशीज़ की आंख के संवेदी ग्राहियों द्वारा सहज ही अवशोषित किया जाता है। मछलियों में प्रकाश का निकलना कदाचित अंधेरे में अपनी ही स्पीशीज़ के सदस्यों को पहचानने के लिए होता है।

16.4.5 जीव-संदीप्ति का महत्व

प्रकाश के उत्सर्जन से विविध उद्देश्यों की पूर्ति होती है। यह चार बातों में सहायता कर सकता है: (i) गहरे समुद्र के अंधियारे में मछलियों को एक साथ बनाए रखना, (ii) शिकार को आकर्षित करना एवं

उसे पकड़ना, (iii) एक ही स्पीशीज़ की नर-मादाओं को संगम के हेतु निकट लाना, तथा (iv) परभक्षी को धोखा देना।

जीव-संदीप्ति के प्रतिरूप पहचान-संकेतों के रूप में

जीव-संदीप्ति के प्रतिरूप बहुसंख्यक होते हैं। चित्र 16.16 में आपने दो प्रकार के प्रकाश प्रतिरूप देखे थे। सूक्ष्म रोशनियों की दोहरी पंक्तियां, जो समदूरियों पर होती हैं या तीन-तीन के समूहों में या एक त्रिभुजाकार प्रतिरूप में, बहुत आमतौर से पायी जाती हैं। ये पंक्तियां पार्श्व रेखा के नीचे होती हैं अथवा इस रेखा से भी नीचे के स्तर पर हो सकती हैं। वाइपर फ़िश *कौलियोडस* (*Chauliodus*) में प्रदीपी अंग मुख के भीतर होते हैं। कुछ में ये पूंछ के समीप होते हैं और "सर्च-लाइटों" की तरह काम करते हैं। कुछ मछलियों में शुरू में सहसा कौंध निकाली जाती हैं। उससे कोई निकटवर्ती समजातिक अनुक्रिया कर सकता है और फिर पहचान हो जाने के संकेत के रूप में दोनों मछलियां पूरा प्रदर्शन करने लग जाती हैं। कुछ मछलियां विशिष्ट अंतरालों पर ही प्रकाश विमोचन आरम्भ करती हैं। इस प्रकार का पहचान संकेत प्रतिरूप एक स्पीशीज़ के सभी सदस्यों के लिए एकसमान रहता है परन्तु निकटतः संबंधित स्पीशीज़ में भिन्न होता है। अंतःजातीय पहचान संकेत अंधेरे जल में या तो संगमनी के लिए होते हैं या समूहन के लिए।

परभक्षण तथा आखेट का पकड़ना

प्रकाश का छोड़ा जाना घनात्मक रूप में प्रकाशानुवर्ती (प्रकाश की ओर गति) खाद्य जीवों को ललचाने के लिए हो सकता है। गहरे समुद्र की ऐंगलर फ़िश में पृष्ठ फिन की लम्बी हो गई प्रथम फ़िन-अर के सिरे से एक चमकता हुआ बल्ब जैसा प्रदीपी अंग लटका होता है। यह एक मछली पकड़ने की छड़-जैसा कार्य करती है और मुख के आगे-आगे बनी रहती है। छोटी मछलियां जो इस मछली का शिकार होती हैं इस प्रकाश की ओर आकर्षित होकर सीधी ऐंगलर फ़िश के मुख में पहुंच जाती है (चित्र 16.14 फिर से देखिए)।

जनन

किसी स्पीशीज़ विशेष में जो विशिष्ट प्रकाश-उत्सर्जन प्रतिरूप निकलते हैं वे नर-मादा में भिन्न भी होते हैं। समुद्र की गहराईयों के अंधेरे में ये कौंधते प्रतिरूप उसी स्पीशीज़ के संभावित संगमनियों द्वारा पहचान संकेतों के रूप में जान लिए जाते हैं।

शत्रुओं से बच निकलना

अधिकतर समुद्री प्रकाश-वहिसर्जक प्राणी नीला प्रकाश निकालते हैं जो समुद्र जल के रंग से मेल खाता है। शरीर की निचली सतह को हल्का सा प्रकाशित कर उदर के नीचे के भाग में बने प्रदीपी अंग कुछ मछलियों की आकृति रेखा को परिवेश से मिला देने में सहायता करते हैं।

कुछ मछलियां प्रदीपी धुआ विमोचित करके परभक्षियों से बच निकलती हैं।

रास्ते की रोशनी

कुछ मछलियों में आंखों और जबड़ों के पास के अगल-बगल बने प्रदीपी अंग ऐसा प्रमाण प्रस्तुत करते हैं कि मछली उनका इस्तेमाल अपने सामने और नीचे के जल को प्रकाशित करने के लिए करती हैं। ताकि उसे तैरने और दिशाचालन में सहायता मिल सके और वह यूं ही अंधेरे में भटकती न रह जाए।

बोध प्रश्न 2

(i) जीव-संदीप्ति की परिभाषा लिखिए।

....

....

(ii) प्रकाश उत्सर्जन करने वाले रसायन का नाम और इसके ऑक्सीकरण का उत्प्रेरण करने वाले एंज़ाइम का भी नाम लिखिए।

....

(iii) प्रदीपी पदार्थ की रासायनिक प्रकृति क्या होती है?

....

....

(iv) जीव संदीप्ति के महत्वपूर्ण लाभ क्या हैं?

....

....

(v) प्रकाश उत्सर्जन अभिक्रिया में उपयोग में आने वाले पदार्थों एवं उत्पादों के नाम बताइए।

....

....

16.5 प्राणियों में प्रतिरक्षा

जीवधारियों में जीवित बने रहने की सहज वृत्ति सबसे प्रमुख होती है। जीवित बने रहने के लिए अनेक आवश्यकताओं में से एक बडी आवश्यकता परभक्षियों और घुसपैठियों से प्रतिरक्षा करना है। प्राणियों को (i) स्वयं अपनी, (ii) अपने अण्डे-बच्चों की और (iii) अपने निवास-क्षेत्र की रक्षा करनी होती है। इन तीनों की रक्षा के लिए वे भांति-भांति की युक्तियां अपनाते हैं। इनके अलावा प्राणी पर्यावरणीय खतरों से भी अपनी रक्षा करते हैं। पक्षियों तथा स्तनियों में पाया जाने वाला ताप नियमन मौसम की बदमिजाज़ियों से अपनी प्रतिरक्षा करना है। कुछ प्राणी कड़ाके की सर्दी अथवा भीषण गर्मी में शीतनिष्क्रियता अथवा ग्रीष्मनिष्क्रियता अपनाते हैं। चरम पर्यावरणों में जैसे कि मरुस्थलों, गुफ़ाओं, महासागरों, और गहरे समुद्रों में प्राणियों ने अपनी आदतों को पर्यावरण के अनुसार बदल लिया है।

16.5.1 प्रतिरक्षा के लिए अनुकूलन

प्रतिरक्षा उद्देश्यों के लिए प्राणियों में तीन प्रकार के अनुकूलन पाए जा सकते हैं: (i) संरचना में अनुकूलन, (ii) रासायनिक अनुकूलन, तथा (iii) व्यवहारपरक अनुकूलन। संरचनापरक अनुकूलनों में त्वचा संबंधी रूपांतरण आते हैं जैसे कि नखर, खुर, कवच, आदि। रसायन सुरक्षा साधनों से आते हैं विष ग्रंथियों के स्राव, दुर्गंध ग्रंथियां, अथवा क्रोमैटोफ़ोरों (वर्णकधरों) की स्थिति-परिवर्तन द्वारा त्वचा के रंगों का वदलना, आदि। व्यवहारपरक अनुकूलन बड़े नाटकीय होते हैं। कुछ प्राणी अपने परभक्षी को देखते ही मृत्यु का स्वांग भर लेते हैं, कुछ अगतिशील वस्तुओं के जैसे वन जाते हैं (अनुहरण), और कुछ अन्य हैं जो चेतावनी भरी मुद्रा ग्रहण कर लेते हैं। कुछ आखेट जीव अपने परभक्षी से ज़्यादा तेज़ दौड़कर स्वयं को बचा लेते हैं।

मरुस्थलीय प्राणी ठंडक के अथवा रात के समय में आहार ढूंढते हैं और दिन को आराम करते हैं। कठोर शीत ऋतु में पक्षी प्रवास यात्रा करके उष्णतर क्षेत्रों में चले जाते हैं।

कुछ ऐम्फ़िबियनों की त्वचा विषैली होती है (चित्र 16.8 b, c तथा d को देखिए)। कुछ मेंढकों की जैसे कि "पॉइज़न-ऐरो" अथवा "डार्ट-फ़्रॉग" तथा कुछ टोड की त्वचा के स्राव मनुष्यों के लिए विषैले होते हैं (चित्र 16.23 को देखिएगा)।

रेप्टाइलों में एकमात्र छिपकली *हीलोडर्मा* (मेक्सिको का "गिला मॉन्स्टर") विषैली होती है (चित्र 16.8 को फिर से देखिए)। अनेक सांपों में सर्पविष (ज़हर) स्रावित करने का लक्षण पाया जाता है जिसके लिए उनकी लार ग्रंथियां विष ग्रंथियों में रूपांतरित हो गयी हैं (चित्र 16.20)।

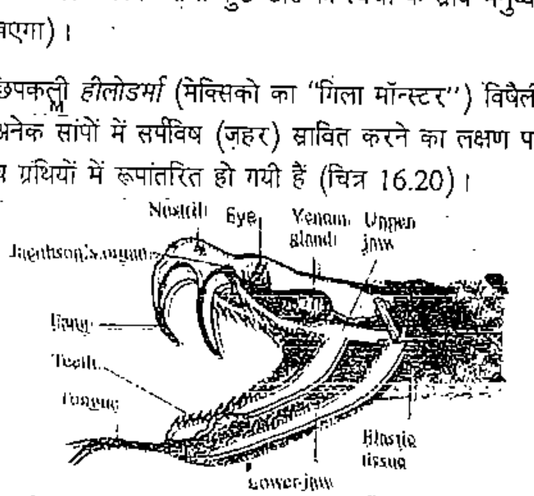

चित्र 16.20 : विषैले रैटल सर्प का शीर्ष जिसमें विष उपकरण दिखाया गया है। विष ग्रंथि रूपांतरित लार-ग्रंथि होती है जो एक वाहिनी द्वारा खोखले विष दंत से जुड़ी होती है।

इनकी विष ग्रंथियों का मूल कार्य शिकार को स्तब्ध और बेहोश कर देना है। मगर इनके स्राव प्रतिरक्षा में भी सहायता करते हैं।

भयसूचक रंजन: उपविभाग 16.2.2 में आप विषैले प्राणियों के चटकीले रंगों के विषय में भी पढ़ चुके हैं जिसके द्वारा वे परभक्षियों को अपनी विषैली प्रकृति का प्रदर्शन करते हैं (चित्र 16.8)।

भयसूचक अनुहरण: उपविभाग 16.3.1 में आप बेटसी अनुहरण के विषय में सीख चुके हैं जिसमें कौलुब्रिड सांप अपनी आकृति तथा रंग-व्यवस्था से विषैले इलैपिड सांपों का अनुहरण करते हैं।

लाल पीठ वाले सैलामैण्डर के शरीर पर बने लाल और नारंगी चकत्तों से वह विषैले "एफ़्ट" जैसा रूप प्राप्त कर लेता है जिसके परिणामस्वरूप वह परभक्षी पक्षियों से सुरक्षित बच जाता है।

16.5.2 प्राणियों में प्रतिरक्षा के विभिन्न साधन

(1) भाग कर बचाव: स्वयं के बचाव की सबसे अच्छी विधि है शत्रु के शिकंजे से दूर भाग खड़े होना। परभक्षियों से बचने के लिए मछलियां अपनी तरण प्रतिभा का तथा अंगुलेट अथवा खुरधारी प्राणी (घोड़े, गाय आदि) और कंगारु अपनी तेज़ दौड़ने की कला का इस्तेमाल करते हैं।

उत्तरी मेक्सिको में हाल ही में खोजा गया "बॉल्संन" कछुआ मरुस्थल की कड़ी मिट्टी में एक मीटर लम्बा तथा कई मीटर गहरा बिल बनाता है। यह बिल के मुंह पर बैठ कर धूप सेकता है और जब कभी कोई परभक्षी इसकी तरफ़ आता है तो यह तपाक से अपने बिल के अंदर घुस जाता है। एक जलीय कछुआ अपना परभक्षी देखकर किसी लट्ठे पर बैठ कर लहरों के सहारे किनारे से दूर चला जाता है।

(2) शस्त्र-व्यवस्था: दांत, नखर, सींग (चित्र 16.21 a b c) और श्रृंगाभ ऐसे भाग हैं जिन्हें प्राणी अपने जीवन को ख़तरा आया जान कर पूरे बल से इस्तेमाल करते हैं।

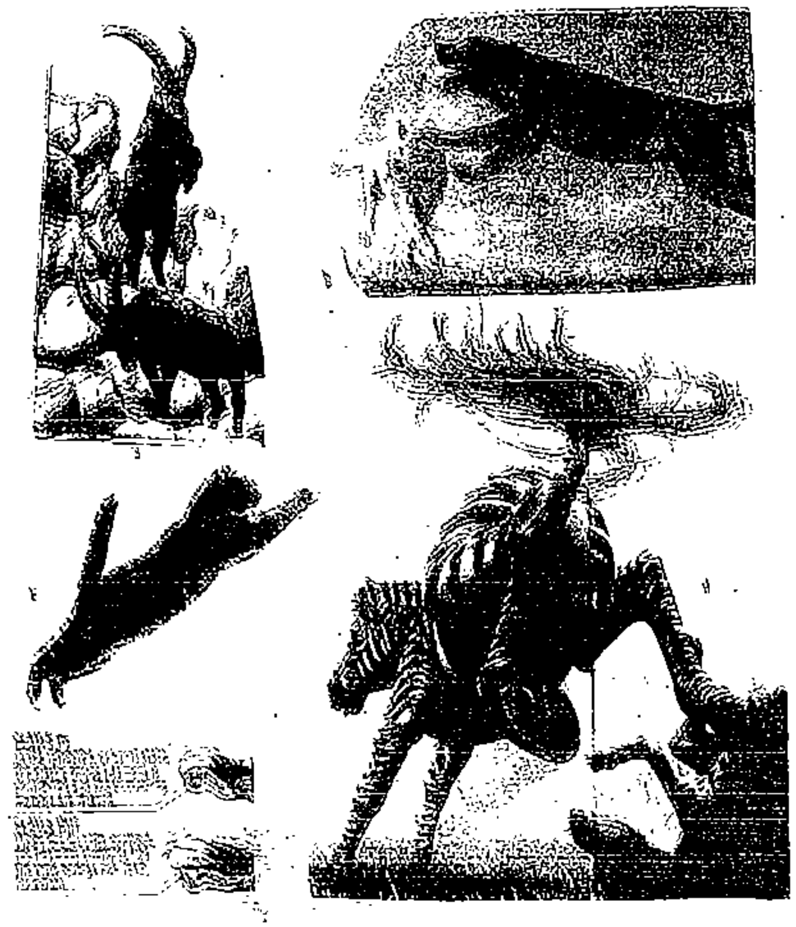

चित्र 16.21 : प्राणियों के शस्त्र। (a) बकरे तथा अन्य श्रृंगी प्राणि अपने सींगों का अपनी रक्षा के लिए तथा अपने प्रतिद्वन्दी को अपना बल दिखाने के लिए इस्तेमाल करते हैं। भेड़िये तथा अन्य कई प्राणी अपने वेधक दन्त का इस्तेमाल अन्य जानवरों को धमकाने तथा डराने के लिए करते हैं। (b) नखर युक्त प्राणी जैसे कि बिल्ली अपने नखर का प्रयोग आक्रमण तथा रक्षा के लिए करते हैं। (c) ज़ेबरा जैसे खुर युक्त जानवर उनका प्रयोग अपनी रक्षा के लिए करते हैं।

कार्निवोरों के रदनक दांत और पैने नखर वास्तव में उनकी मांसाहारी आदतों से संबंधित हैं, मगर इन्हें अपनी रक्षा के लिए भी इस्तेमाल किया जा सकता है। अंगुलेटों के खुर और सींग आवश्यकता पड़ने पर अपनी प्रतिरक्षा के लिए इस्तेमाल किए जा सकते हैं (चित्र 16.21 d)।

(3) कवच: कुछ प्राणियों के शरीर पर शल्क (scales) तथा प्रशल्क (scutes) बने होते हैं जैसे कि पैंगोलिन (शल्की चींटीखोर, जिसे "साल" भी कह देते हैं) तथा मगरमच्छों में। जब भी कोई परभक्षी आक्रमण करता है तब, इन रचनाओं का आवरण एक कवच जैसा काम करता है। कछुओं में भी उनका कवच शत्रुओं के प्रति एक ढाल का काम करता है। आपने इकाई 3 में पहले ही पढ़ रखा है कि कछुओं का कवच डर्मिसी हड्डियों का बना होता है जो कशेरुक दण्ड तथा पसलियों के साथ संलयित होती हैं। अधिकतर कछुओं में डर्मिसी कवच के ऊपर एपिडर्मिसी प्रशल्कों की श्रृंगीय परत चढ़ी होती हैं। कवच बिल्कुल चट्टान की तरह कड़ा होता है। सुरक्षा के लिए शीर्ष तथा हाथ-पैरों को कवच के भीतर सिकोड़ा जा सकता है (चित्र 16.22)। गैंडों तथा दरियाई घोड़े की कड़ी त्वचा उनके लिए सुरक्षाकारी कवच का काम करती है (चित्र 16.22 a)।

चित्र 16.22: a) कछुए का कड़ा कवच b) दरियाई घोड़े की कड़ी त्वचा b (i) अफ्रीकी दरयाई घोड़ा b (ii) पिगमी दरयाई घोड़ा।

(4) विष ग्रंथियां: कुछ ऐम्फ़िबियनों की श्लेष्म ग्रंथियों के स्राव परभक्षियों के लिए प्रदाहजनक (irritating) अथवा आविषी होते हैं। विष ग्रंथियां प्राणी की पृष्ठ सतह पर बनी होती हैं और प्रतिरक्षा मुद्राओं के समय परभक्षी को प्रदर्शित की जाती हैं (चित्र 16.23)। विषैले ऐम्फ़िबियन (चित्र 16.8) अपने अपसूचक रंग भी दर्शाते हैं जिनके विषय में आप पहले भी जान चुके हैं। कुछ ख़ास फ़ैमिलियों के मेंढकों और सैलामैण्डरों के आविष परभक्षियों को दूर बनाए रखते हैं। एक चटकीले रंगदार मेंढक का नाम "पॉइज़न डार्ट फ्रॉग" (अर्थात् विषधर मेंढक) इसलिए रखा गया क्योंकि दक्षिण अमरीका के इंडियन जाति के लोग जब शिकार करने निकलते थे तब वे अपने बाण की नोक को इस मेंढक के आविष से विषैला बना लेते थे। यह आविष एक त्वचिक ऐल्कैलॉइड बैट्रेकोटॉक्सिन (batrachotoxin) होता है जो एक तंत्रिका-आविष (neurotoxin) होता है तथा हृदय स्पंदन को असामान्य कर देता और यहां तक कि हृदय गति को रोक देता है।

चित्र 16.23 : आविषालु प्रतिरक्षा a) आविषालु केन टोड की त्वचा का कटा हिस्सा जिसमें विष ग्रंथियां दिखाई दे रहीं हैं।

(5) बदबूदार स्राव: धारीदार तथा चकत्तेदार स्कंकों (skunks) (चित्र 16.24) में एक अन्य प्रकार की कारगर सुरक्षा क्रियाविधि पायी जाती है। वे अपनी गुदा ग्रंथियों को जिनमें से बदबूदार स्राव निकलता है, अपने शत्रु की ओर घुमा देते हैं।

चित्र 16.24 : बदबूदार स्राव a) भयभत होने पर धारीदार स्कंक अपनी पूंछ उठा कर चेतावनी देता है। b) स्राव निकालने से पहले स्कंक चेतावनी देने के लिए अपने आगे के पैर ज़ोर से पटकता है या फिर फुफकारता घुर्राता है। फिर अपनी पीठ को तोरण की तरह उठा कर अपने अग्र पावों को उठाता है। c) यदि संकट फिर भी बना रहता है तो स्कंक अपनी गुदा ग्रंथि को शत्रु की तरफ घुमा कर बदबूदार स्राव की दो तेज़ धारे उसपर छोड़ता है।

(6) **स्वविच्छेन (Autotomy):** परभक्षियों से बचने की एक क्रियाविधि है परभक्षी द्वारा पकड़े जाने पर अपनी पूंछ को तोड़ फ़ेंकने की क्षमता (चित्र 16.25)।

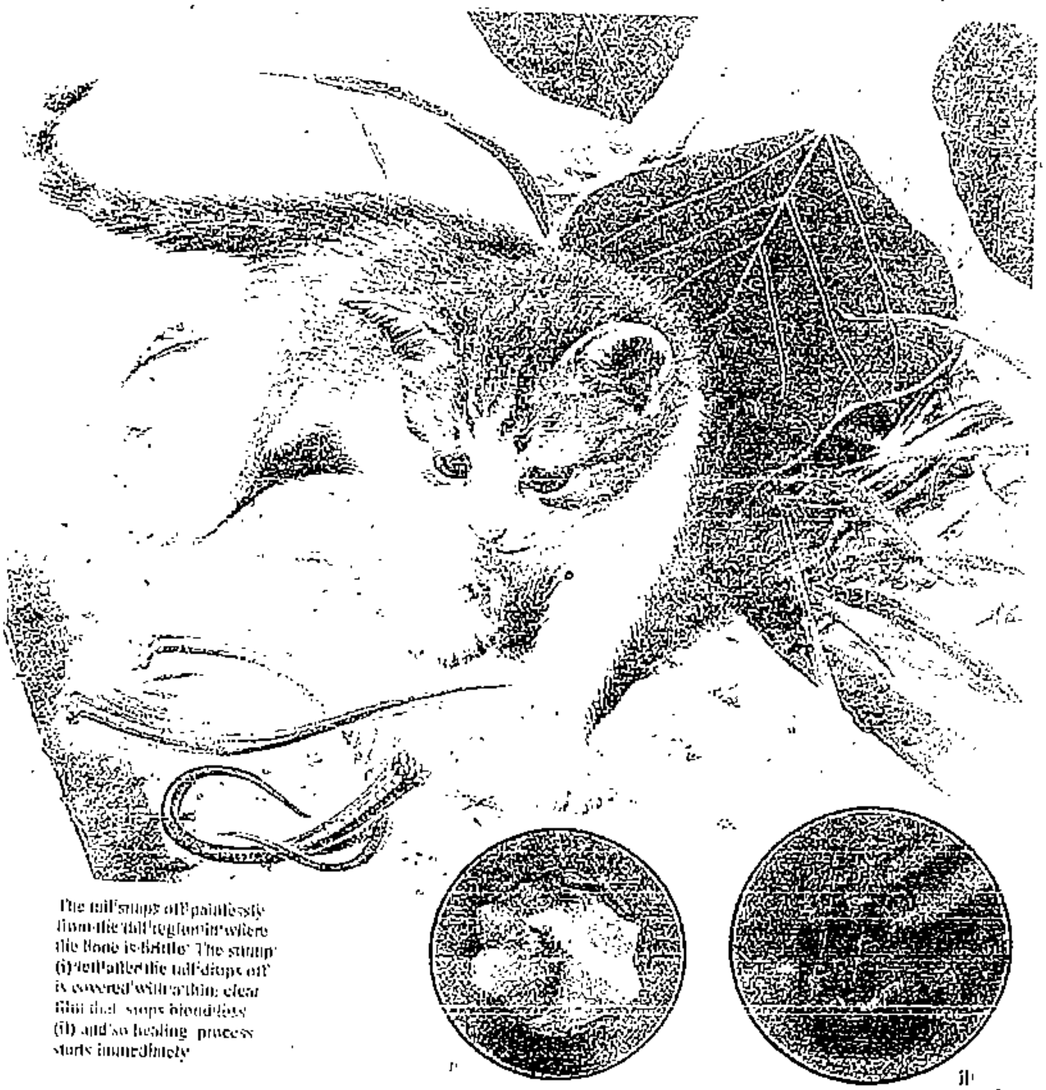

चित्र 16.25 : अपनी दुम तोड़ कर भागती हुई छिपकली ताकि बिल्ली का ध्यान हिलती पूंछ पर चला जाए और वह स्वयं बच कर भाग निकले।

इकाइ 3 क उपभाग 3.3.6 में आप पहले ही संक्षेप में अपने ही शरीर के एक भाग को तोड़ देने की परिघटना के बारे में पढ़ चुके हैं जिसे स्वविच्छेदन का नाम दिया जाता है। टूटी हुई पूंछ तेज़ी से गति करती है जो परभक्षी का ध्यान अपनी ओर खींच लेती है और इस बीच छिपकली बच कर निकल जाती है। पुच्छ स्वविच्छेदन जैसा कि आप पहले ही जान चुके हैं सैलामैन्डरों, छिपकलियों, टुऐट्रा (स्फ़ीनाडॉन), सांपों तथा रोडेन्टों में पाया जाता है। बाद में पूंछ का पुनरूद्भवन हो जाता है।

मां कंगारू में स्वविच्छेदन तो होता नहीं पाया जाता मगर जब परभक्षी से जान बचाते हुए भागते-भागते थक जाती है तब वह अपने कोष्ठ में से बच्चे को गिरा देती है ताकि परभक्षी का ध्यान उधर चला जाए।

(7) धमकी प्रदर्शन एवं भयसूचक युक्तियां: सामने ख़तरा आया जानकर नाग अपनी गर्दन की खाल को चपटा करके फन खड़ा कर लेता है। नाग के शरीर के इस क्षेत्र में लम्बी गतिशील पसलियां होती हैं और उन्हें फैलाने से फन फैल जाता है जिस पर एक चश्मे-जैसा चिन्ह् बना होता है (चित्र 16.26 a)। इससे नाग जो कि विषैला भी होता है अपने आकार से अधिक बड़ा दीखने लगता है जिससे परभक्षी डर जाता है।

टल सांप अपनी पूंछ के अंत पर खोखले खण्डों को हिलाता है जिससे झुनझुने-जैसा शोर पैदा होता और त्रु को चेतावनी दी जाती है (चित्र 16.26 b)।

ालर छिपकली *फ़िनोसोमा* (*Phrynosoma*) में उसके सिर के चारों ओर एक बड़ी झालर बनी होती है। रभक्षी के दिखाई देते ही झालर खुल जाती है और छिपकली डरावनी दिखने लगती है (चित्र 16.26 c)।

पने शत्रुओं को भगाने के लिए मैंड्रिल बैबून अपना बड़ा सा मुंह खोलकर पैने दांत प्रदर्शित करता है चेत्र 16.26 d)।

रन अपनी पूंछ खड़ी करके उसके नीचे बने सफेद चकत्ते को दिखाता है। सफ़ेद चकत्ते के अचानक खाई पड़ने से परभक्षी को ख़तरा सा जान पड़ता है (चित्र 16.9)।

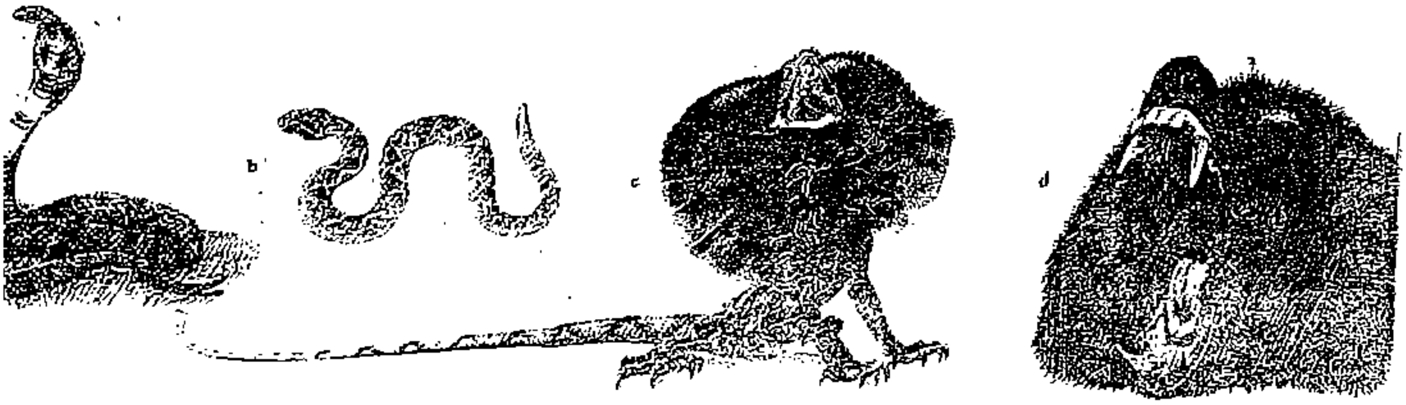

16.26 : कुछ कशेरुकी सामने ख़तरा आया देखकर डरावने तथा भयसूचक शरीर-मुद्रा बना लेते हैं। a) नाग अपना फन फैलाता और ज़ोर से फुफकार मारता है ताकि परभक्षी डर कर भाग जाए b) रेटल सांप झुनझुने के जैसी आवाज़ पैदा करके शत्रु को डराने का प्रयत्न करता है। c) *फ़िनोसोमा* अपनी गर्दन के चारों ओर झालर फैला लेता है और परभक्षियों को ख़तरनाक नज़र आता है। d) बैबून अपने दांत दिखा कर शत्रुओं को चेतावनी देता है।

सामूहिक प्रतिरक्षा: पक्षी तथा स्तनी अपने परभक्षी को डराने के लिए समूह में क्रिया करते हैं। नींग पक्षियों का एक वृंद अपने शत्रु बाज़ को देखकर एक साथ आ जाते हैं। इस प्रकार वे एक मोर्चा कर लेते हैं जो बाज़ के लिए खतरनाक साबित हो सकता है क्योंकि वृंद के तमाम पक्षी उस पर साथ प्रहार करने लग सकते हैं।

पक्षियों के द्वारा निकली श्रवणशील सूचना सामने आए खतरे की घोषणा होती है। यदि परभक्षी वृक्ष पर बैठा है तब छोटे पक्षी उसके चारों ओर घेरा डाल देते और ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाते हैं। यदि उड़ता हुआ परभक्षी उनकी ओर आता है तो वे वृक्ष के आवरण तले छिप जाते और ज़ोर ज़ोर से नी भरी आवाज निकालते हैं।

ध्रुवीय कस्तूरी वृषभ (muskox) झुण्डों में यात्रा करते हैं। जब कभी कोई भेड़िया इन पर ण करता है तब झुण्ड के वयस्क नर अपनी मादाओं, बच्चों और क्षतिग्रस्त नरों को बीच में रखते क रक्षाकारी घेरा बना कर बाहर को शत्रु की तरफ़ मुंह कर लेते हैं (चित्र 16.27)।

चित्र 16.27 : उत्तर ध्रुवीय कस्तूरी वृषभ के वयस्क नर अपने शत्रु के प्रति एक सुरक्षा घेरा बना लेते हैं।

(9) कूट लड़ाईयां: प्राणी अपने शत्रु पर आखरी हथियार के रूप में ही वार करते हैं। आरम्भ में अपने बच्चों की परभक्षी से रक्षा करने तथा अपने संगमी को एक अन्य संगमनार्थी से बचाने के लिए वे भयावह चेहरे बनाते हैं, वे गुरति, चिल्लाते और भयानक चीखें निकालते हैं। पक्षी पंख फैला लेते हैं मानों आक्रमण करने वाले हों। आक्रमणकारी भयावह मुद्राएं बनाते हैं जिनके द्वारा मानो चेतावनी भरा संकेत दे रहे हों। आपने किसी बिल्ली अथवा कुतिया को अपने बच्चों को दूध पिलाते समय धमकी भरी आवाज़ें निकालते हुए जरूर सुना होगा।

(10) मृत्यु स्वांग: खरगोश तथा हिरन मार्ग में जाते-जाते एकदम सुन्न पड सकते हैं ताकि शत्रु को वे मरे हुए जैसे जान पड़ें। ऑपोसम तथा कुछ सर्प अपने परभक्षी को पूर्णत: जीवन रहित दिखायी पड़ता रह सकता है (चित्र 16.15 फिर से देखिए)।

16.5.3 क्षेत्रिक प्रतिरक्षा

अपने क्षेत्र की सुरक्षा करने में अप्रत्यक्ष रूप में भी सुरक्षा हो जाती है। प्राणी के क्षेत्र से उसकी सुपरिचितता उसकी रक्षा करने एवं परभक्षी से बचने में सहायता करती है। प्राणी भद्र जीव जंतु होते हैं और किसी भी प्राणी का चिन्हित क्षेत्र दूसरों के लिए वर्जित रूप में माना जाता है। क्षेत्रों को अलग-अलग तरीकों से चिन्हित किया जाता है। स्टिकलबैक मछली पथरियों को अथवा विशिष्ट पौधों को इस्तेमाल करती हैं। पक्षी खास करके नर अपने क्षेत्र को गा-गा कर चिन्हित करते हैं (चित्र 16.28 a) कुत्ते, लौमड़ियां, भेड़िए अपने क्षेत्रों को अपने मूत्र से चिन्हित करते हैं।

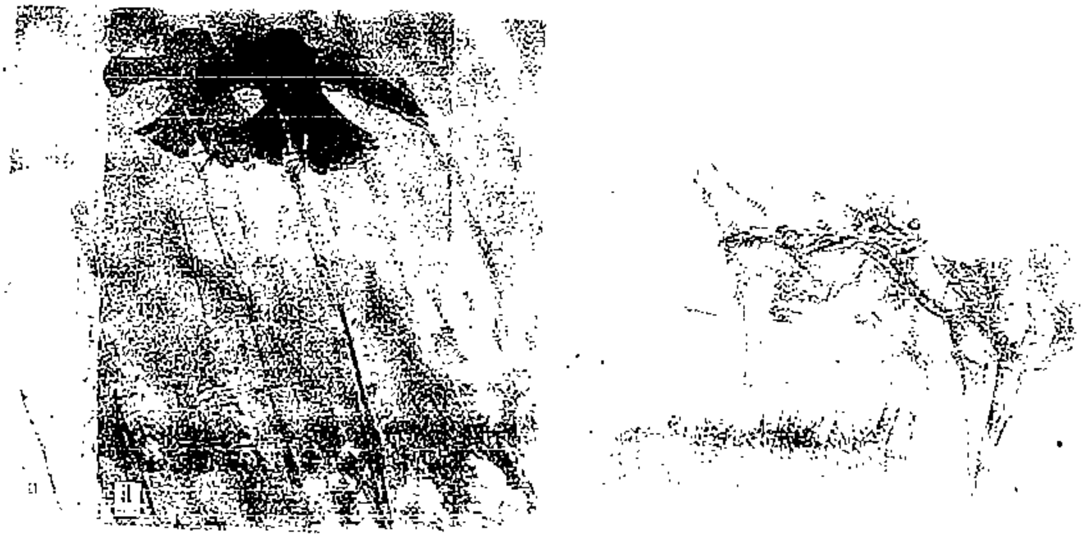

चित्र 16.28 : क्षैत्रिक प्रतिरक्षा (a) नर रेड-विंग ब्लैकबर्ड (कस्तूरी) अपने क्षेत्र की प्रतिरक्षा पौधों की खुले तनों पर बैठ कर प्रदर्शन द्वारा करता है जैसे कि आप इस चित्र में देख सकते हैं। प्रदर्शन में नर अपने पंख और पूंछ फैला कर पिच्छों को फुला लेता है, उसके कंधों के लाल पिच्छ ऊंचे उठ जाते हैं और वह साथ में हमेशा गाना गाता है उस गीत को 'सॉंग स्प्रेड' कहते हैं। उसका गीत अन्य नर को दूर रहने का संदेश देते हैं तथा मादा संगमनियों को आकर्षित करते हैं। (b) चीता कुरंग औरवी अपने क्षेत्र को क्रमबद्ध तरीके से चिन्हित करते हैं। नर पहले तो घास के एक पत्ते को अपने सर की ऊंचाई तक काट लेता है फिर उस पर चिपचिपे काले स्राव के रूप में अपनी गंध को डाल देता है। आ...वो विपत्ति, संघर्ष या संगम की स्थिति में अपने क्षेत्र चिन्हित करते हैं।

कुरंगों में गंध ग्रंथियां होती हैं जिन्हें वे वृक्षों पर रगड़ते हैं (चित्र 16.28 b)। बाइसन और उसी तरह जंगली बकरी भी अपने सींगों से वृक्षों की छाल को चीर देते हैं।

जब क्षेत्र चिन्हित हुए होते हैं तब उसमें आने वाले घुसपैठियों, जोकि या तो परभक्षी हो सकते हैं या संभावी संगमनी, को तुरंत ऐहसास हो जाता है कि वे किसी दूसरे के क्षेत्र में से गुज़र रहे हैं और उनका सामना क्षेत्र के स्वामी द्वारा आक्रमण से हो सकता है।

क्षेत्रिक छिपकलियां जैसे कि *ऐनोलिस* (*Anolis*) अपने बदन को अकड़ा कर-तान कर, सिर को उठाते-झुकाते और अपने गले के पंखे को प्रदर्शित करते हुए अपने क्षेत्र की रक्षा करता हैं। इनका एक नर आक्रमणकारी मुद्रा अपनाकर दूसरे नर को चुनौती देता है जिसके कारण घुसपैठिया नर उलटा भाग जाता है।

बोध प्रश्न 3

i) "पॉइज़न डार्ट फ्रॉग" को यह नाम क्यों दिया गया है?

....

....

ii) प्राणियों में स्वयं की रक्षा की पांच विभिन्न विधियों के नाम बताइए।

....

....

iii) निम्नलिखित प्राणी परभक्षियों से अपनी प्रतिरक्षा किस प्रकार करते हैं? (एक-दो शब्द लिखिए)

(क) एफ़्ट (ख) छिपकली (ग) खरगोश

....

....

....

16.6 प्रतिध्वनि निर्धारण

कई स्तनी जैसे कि चमगादड़ें (आर्डर काइरॉप्टेरा), डॉल्फ़िनें तथा ह्वेलें (आर्डर सिटेसिया), समुद्री शेर और सीलें (आर्डर पिन्नीपीडिया) तीखी पराध्वनिक आवाज़ें निकालते हैं। इनका श्रवण उपकरण (कान) इन ध्वनियों की प्रतिध्वनियों को ग्रहण कर सकने के लिए अनुकूलित होता है। प्रतिध्वनियां उन्हें अपने पर्यावरण में वस्तुओं को जान लेने और अंधेरे में दिशाचालन करने में सहायक होती हैं। अपनी ही ध्वनियों की प्रतिध्वनियों द्वारा रास्ते की बाधाओं एवं शिकार का पता लगा सकने की क्षमता को प्रतिध्वनि-निर्धारण (echolocation) कहते हैं।

16.6.1 चमगादड़ों में सोनार अथवा प्रतिध्वनि निर्धारण

चमगादड़ें रात्रिचर होती हैं यानि रात में ही सक्रिय होती हैं। चमगादड़ों की अनेक स्पीशीज़ अंधेरी गुफ़ाओं में रहती हैं। अंधेरे में उड़ते समय वे 1,00,000 साइकिल प्रति सेकंड से भी ज़्यादा की उच्च आवृत्ति ध्वनियां निकालती हैं, यानि ऐसी ध्वनियां जिनका तरंगदैर्ध्य बहुत छोटा होता है। ये ध्वनियां मार्ग में आयी वस्तुओं से परावर्तित होतीं है और चमगादड़ को वस्तुओं के साइज़, उनकी आकृति और दूरी का ज्ञान दे देती हैं (चित्र 16.29)। उच्च आवृत्ति की ध्वनियां उन सूक्ष्म उड़ रहे कीटों का पता लगाने में सहायता करती हैं जिनका ये कीटभक्षी चमगादड़ें शिकार करके खाती हैं। चमगादड़ को अपनी ही आवाज़ की प्रतिध्वनियों से शिकार के पर्यावरण का एक तफ़सील भरा प्रतिबिम्ब मिल जाता है। साथ ही उड़ता हुआ कीट धीमी पराध्वनिक आवाज़ें निकालता है जिन्हें चमगादड़ पहचान लेती हैं।

चमगादड़ों के मस्तिष्क में प्रतिध्वनि संसूचक तंत्रिका कोशिकाएं अथवा तंत्रिकाणु होते हैं जिनमें दूसरी ध्वनि यानि प्रतिध्वनि के लिए अधिक तीव्रता से अनुक्रिया होती है। प्रतिध्वनि संसूचक कोशिकाएं चमगादड़ को बाधा की समीपता के विषय में जानकारी देती हैं।

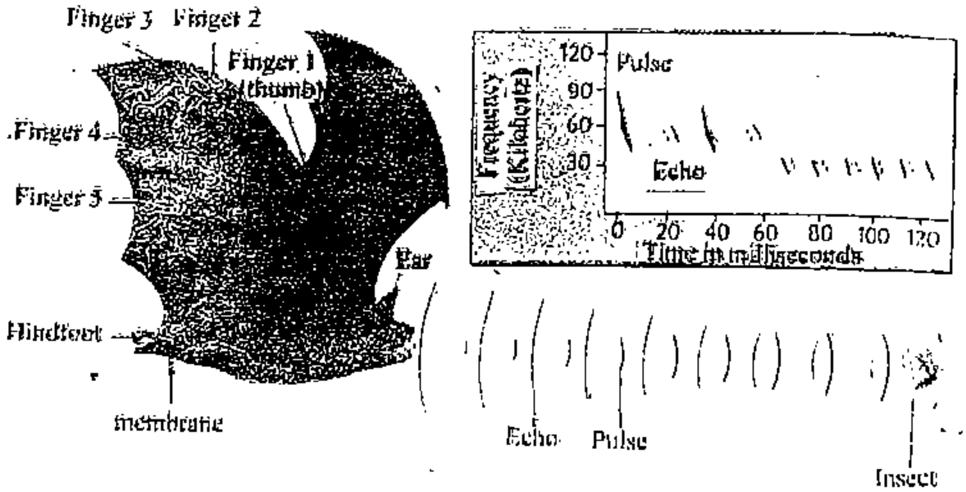

चित्र 16.29 : छोटी भूरी चमगादड़ *मायोटिस ल्यूसिफ़ेगस (Myotis lucifugus)* द्वारा एक कीट का प्रतिध्वनि निर्धारण। चमगादड़ के मुख से निकली आवृत्ति मॉडुलित पल्से एक किरण पुंज के रूप में निकाली जाती हैं। जैसे-जैसे चमगादड़ शिकार के नज़दीक पहुंचती हैं वैसे-वैसे वह तीव्रतर दर से लघुतर निम्नतर संकेत निकालती है।

16.6.2 जलीय स्तनियों में प्रतिध्वनि निर्धारण

ह्वेलें और डॉल्फ़िनें जल के अन्दर 300,000 साइकिल प्रति सेकंड तक की ऊंची आवृत्ति वाली ध्वनियां पैदा करती हैं। जल में ध्वनि की गति वायु में होने वाली गति से चार गुना अधिक तीव्रता से होती है। साथ ही स्तनीय शरीर का और जल का घनत्व समान होता है।

इस प्रकार जलीय स्तनियों, जो जल के नीचे दिशाचालन में पराध्वनि का एवं प्रतिध्वनि-निर्धारण का इस्तेमाल करते हैं, के कान बड़े विलक्षण रूप में अनुकूलित हो गया है। इनमें बाहरी कान अथवा कर्णपल्लव नहीं होता मगर एक सूक्ष्म श्रवण नलिका मौजूद होती है। टिम्पैनिक हड्डी जिसके भीतर कॉक्लिया स्थित होता है स्नायुओं के द्वारा करोटि से लटकी रहती है और उसके चारों ओर एक गुहा होती है जिसमें या तो हवा या झाग भरा होता है। विशेष प्रकार से रूपांतरित श्रवण अस्थिकाओं द्वारा ध्वनि तरंगों का संप्रेषण होता है।

जलीय स्तनी अपने नासा कोशों द्वारा ध्वनि पैदा करते हैं, ये नासा कोश बाहरी नासाछिद्रों में खुलते हैं जिन्हें "ब्लो होल" (blow hole) अथवा वमन-छिद्र कहते हैं (चित्र 16.30 a)। प्रत्येक कान में पहुंची परावर्तित ध्वनियों की तीव्रता में जो अंतर होते हैं उनके द्वारा डॉल्फ़िनें, पॉरपॉइज़ें (सूंस) तथा ह्वेलें मार्ग में मौजूद बाधा की दिशा का पता लगा लेती हैं (चित्र 16.30 b)। ये प्राणी अपनी निकाली गयी ध्वनि को मॉडुलित भी कर सकते हैं।

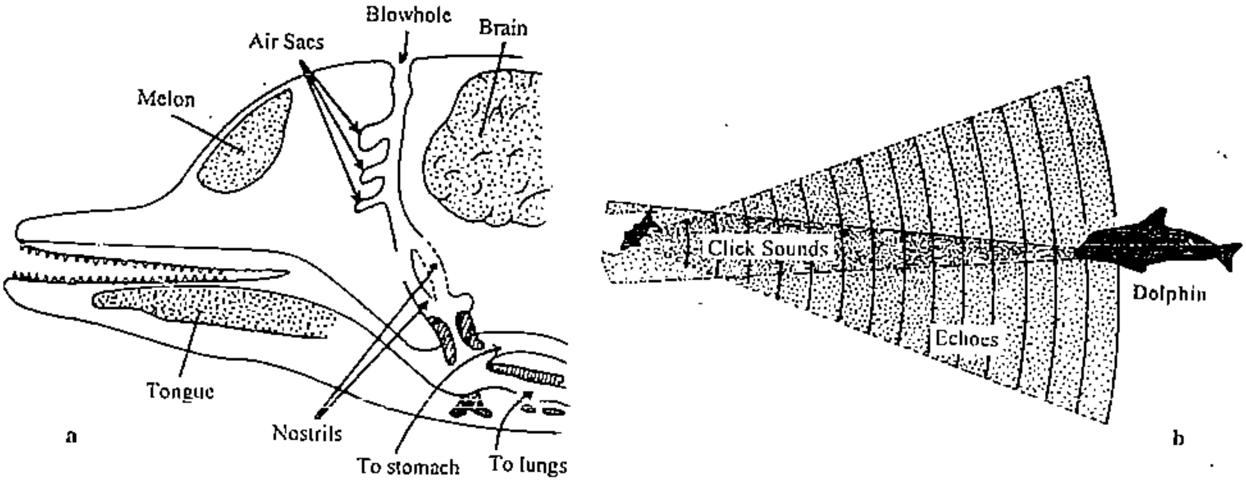

चित्र 16.30 : (a) ह्वेल की भीतरी संरचना जिसमें "ब्लो-होल" दिखाया गया है। (b) डॉल्फ़िन क्लिक ध्वनियों के प्रतिरूपों का प्रेषण करती हैं और ये ध्वनियां अनदेखी वस्तु से टकरा कर वापिस आती हैं। परावर्तित ध्वनियों को डॉल्फ़िन पकड़ लेती हैं। चटक जैसी ध्वनियां ब्लो-होल से पैदा की जाती हैं।

16.6.3 पक्षियों में प्रतिध्वनि निर्धारण

गुफ़ा में रहने वाले पक्षी भी अंधेरे में अपना रास्ता ढूंढने के लिए प्रतिध्वनि निर्धारण का सहारा लेते हैं। बतासी पक्षी *कॉलोकेलिया मैक्सिमा* (*Collocalia maxima*) सारावक की अंधेरी गुफ़ाओं में रास्ता ढूंढने के लिए छोटी अवधियों की चटक ध्वनियां निकालता है। इसी प्रकार दक्षिण अमेरिका का तैल-पक्षी *स्टीऐटॉर्निस कैरिपेन्सिस* (*Steatornis caripensis*), जिसे सामान्यतः गुआचारों कहा जाता है, अपनी गुफ़ाओं के भीतर प्रतिध्वनि निर्धारण से दिशासंचालन करते हैं। इन दोनों ही गुफ़ावासी पक्षियों में रेटिना धीमे प्रकाश में देख सकने के लिए अतिविशेषित होती है और इनमें उत्कृष्ट रात्रि दृष्टि होती पायी जाती है।

बोध प्रश्न 4

(i) प्रतिध्वनि-निर्धारण की परिभाषा लिखिए।

....

....

....

....

(ii) ह्वेलों में ध्वनि-उत्पादक अंग का नाम बताइए।

....

....

....

....

(iii) किसी एक गुफ़ा पक्षी का नाम बताइए जो दिशा संचालन के लिए प्रतिध्वनि निर्धारण का उपयोग करता हो।

....

....

....

....

16.7 कशेरुकियों में संचलन

गति करना प्राणियों की विशेषता है। प्राणी गति करते हैं आहार, आश्रय तथा अपने संगम साथी को प्राप्त करने के लिए और शत्रुओं से बचने के लिए। यह वास्तव में बड़े ही आश्चर्य की बात है कि अपने जलीय, स्थलीय तथा वायवीय आवासों द्वारा सामने आने वाली ज़रूरतों के अनुरूप प्राणियों ने संचलन के लिए संरचनात्मक एवं शरीरक्रियात्मक अनुकूलन विकसित कर लिए हैं, और ये अनुकूलन गुणात्मक रूप में सर्वाधिक कारगर और ऊर्जा की दृष्टि से सबसे अधिक मितव्ययी हैं।

16.7.1 आधारभूत संचलन योजनाएं

कशेरुकियों में एकल कोशिकाओं की गतियां जो पूरे शरीर को चलाती हैं, **कंकाली पेशियों** द्वारा सम्पन्न होती हैं।

कशेरुकियों में दो प्रकार के संचलन होते पाए जाते हैं:- (i) अक्षीय (axial) तथा उपांगीय (appendicular)।

(i) अक्षीय संचलन (Axial locomotion)

अक्षीय संचलन में प्रणोदन (propulsion) शरीर की तथा अथवा पूंछ की पेशियों के आकोचन से होता

है। शरीर की पेशियां विखंडश: व्यवस्थित होती हैं। इस प्रकार का संचलन सामान्यत: जलीय आवासों से संबंधित रहता है जैसे के मछलियों, जलीय सांपों तथा सीटेसियन स्तनियों में। सभी मछलियों में अक्षीय संचलन होता है। चतुष्पादों के विकास के साथ अक्षीय पेशियों की भूमिका संचलन से बदल कर आलम्ब की हो गयी है।

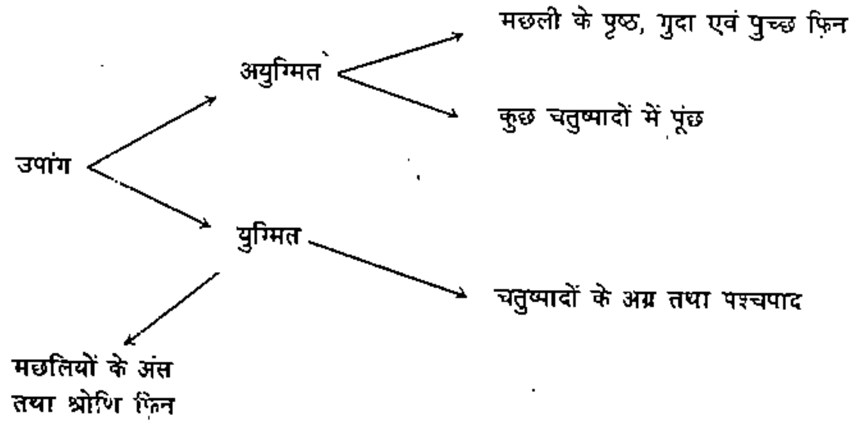

चित्र 16.31 : कशेरुकियों में उपांगों की युग्मित एवं अयुग्मित योजनाएं।

(i) उपांगीय संचलन (Appendicular locomotion)

उपांगीय संचलन में उपांगों की गति से शरीर को प्रणोद मिलता है। इस प्रकार की गति का संबंध स्थलीय एवं वायवीय आवासों से है। उन उपांगों (अग्रपाद तथा पश्चपाद) की आधारभूत संरचना सभी चतुष्पादों में एक समान होती है। कशेरुकी उपांग युग्मित हो सकते हैं अथवा अयुग्मित (चित्र 16.31)। अयुग्मित उपांग का कार्यात्मक महत्व युग्मित उपांगों के महत्व से बहुत कम है।

कशेरुकियों के संचलन में नानाविध अंतर पाए जाते हैं क्योंकि संचलन का संबंध आवास से होता है।

(i) **जलीय प्राणियों द्वारा जल में संचलन:** जैसे कि मछलियां; ऐम्फ़िबियन; जलीय पक्षी; ह्वेल, डॉल्फ़िन, पॉपाइज़ (स्तनी आर्डर सिटेसिया); सील तथा वालरस (स्तनीय आर्डर पिन्नीपीडिया); ऊदबिलाव (आर्डर कार्निवोरा) में होता है।

(ii) **स्थलीय प्राणियों द्वारा थल पर संचलन:** कुछ स्थलीय प्राणि धरती पर चलते अथवा दौड़ते हैं। इन्हें **धावी** (cursorial) प्राणी कहते हैं।

(iii) कुछ अन्य स्थलीय कशेरुकी पेड़ों पर चढ़ने अथवा अन्य सतहों पर चलने के लिए अनुकूलित होते हैं। इन्हें **वृक्षीय** (arboreal) अथवा **आरोही** (scansorial) प्राणी कहते हैं।

(iv) कुछ प्राणी वायु में गति करते हैं इन उड़ने वाले प्राणियों को **उड्डयनी** (volant) प्राणी कहते हैं।

16.7.2 जल में संचलन

जलीय कशेरुक जल में तैरते और गोता लगाते हैं। मछलियों के पूर्वज पानी में तैरते थे अत: मछलियां प्राथमिक तैराक हैं। अन्य जलीय कशेरुकी स्थलीय पूर्वजों से विकसित हुए। ये **द्वितीयक तैराक** हैं (चित्र 16.32) और उन्होंने जलीय जीवन को कदाचित इसलिए अपनाया क्योंकि इससे (क) उन्हें प्लवकों, जलीय पौधों तथा जलीय अकशेरुकियों के रूप में भोजन मिल सकता था, (ख) स्थलीय परभक्षियों से बचाव-रास्ता मिल सकता था और (ग) उन्हें प्रकीर्णन एवं प्रवास के अनुकूल रास्ते उपलब्ध हुए। द्वितीयक तैराकों के उदाहरण हैं जलीय ऐम्फ़िबियन तथा रेप्टीलियन, पेंग्विनें, सीलें, समुद्री शेर, आदि। मछलियां तीव्र तैराक होती हैं तथा द्वितीयक तैराक धीमे तैरने वाले होते हैं।

वायु की तुलना में पानी का आपेक्षिक घनत्व कहीं ज़्यादा होता है। इस प्रकार जल एक श्यान (viscous) माध्यम है जो जलीय कशेरुकियों को आलम्ब प्रदान करने में सहायता करता है और एक ऐसा माध्यम प्रदान करता है जिसके प्रति तैरते समय गति करता हुआ प्राणी प्रणोद पैदा कर सकता है।

कुछ प्राणी खुद मेहनत करना पसंद नहीं करते बल्कि सवारी के रूप में अन्य प्राणियों का इस्तेमाल करते हैं। "सकर-फ़िश" (इकेनीइस, *Echeneis*) तथा जबड़ाविहीन लैम्प्री (पेट्रोमाइज़ॉन) जैसे बाह्यपरजीवी, मछलियों में अन्य मछलियों की पीठ पर चिपकने के लिए अनुकूलन होते हैं।

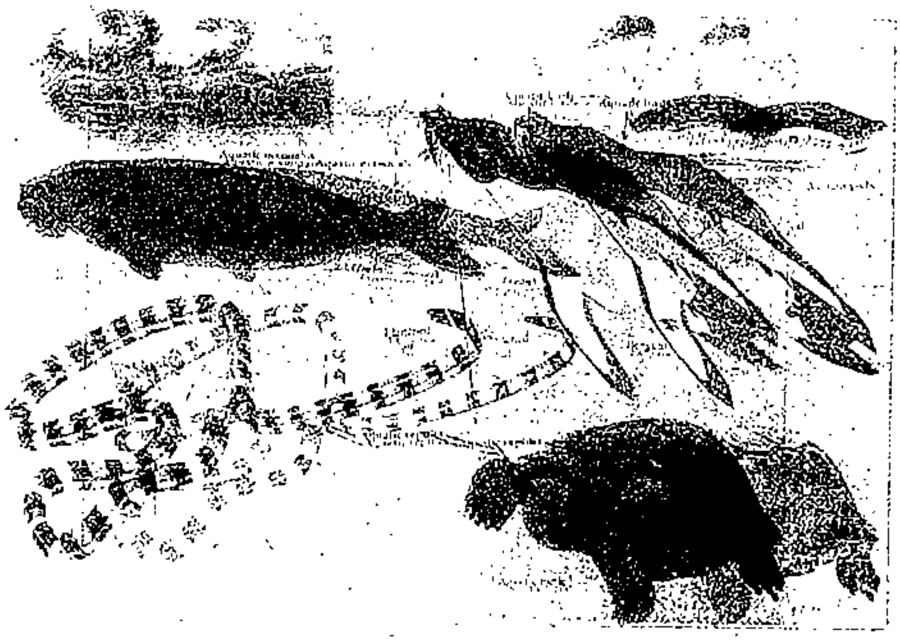

चित्र 16.32 : द्वितीयक तैराक (a, b) जलीय स्तनी-समुद्री ऑटर तथा डूगांग (c तथा d) जलीय पक्षी-पश्चिमी पनडुब्बी (ग्रेबे) तथा पेंग्विन (e) जलीय सरीसृप-समुद्री सर्प तथा (f) जलीय कूर्म।

जलीय संचलन के लिए अनुकूलन

जलीय प्राणियों को जल द्वारा प्रदत्त कुछ ख़ास चुनौतियां झेलनी पड़ती हैं। प्राथमिक तैराकों में जल में संचलन के लिए निम्नलिखित अनुकूली लक्षण आवश्यक हैं:-

1. कर्ष कम करना (Reducing drag)

शरीर धारारेखित होता है- दोनों सिरों पर संकरा-नुकीला होते जाना ताकि उसके ऊपर से जल जल्दी से प्रवाहित हो जाता है और कर्ष घट कर न्यूनतम हो जाता है।

खाल ढीली और चिकनी होती है (जैसे डॉल्फ़िन में) और वह जल में न्यूनतम प्रतिरोध प्रदान करती है। कुछ मछलियों में शरीर पर शल्क बने होते हैं मगर सतह के नीचे स्थित श्लेष्म ग्रंथियां शल्कों को गीला किए रखती हैं ताकि घर्षण कम हो।

कर्ष वह प्रतिरोध होता है जो किसी वस्तु की गति के प्रति माध्यम प्रदान करता है। कर्ष कई प्रकार के होते है जो परस्परनिर्भर होते हैं। ये हैं (i) घर्षण कर्ष, (ii) ... कर्ष, (iii) तरंग कर्ष।

2. प्रणोदन (Propulsion)

जल में शरीर का प्रणोदन पेशियों के द्वारा होता है। पेशियों के खण्ड जिन्हें मायोटोम कहते हैं कशेरुक दण्ड के प्रत्येक पार्श्व पर मौजूद होते हैं। लचीले कशेरुक दण्ड के प्रत्येक पार्श्व पर मायोटोम एकांतर क्रम में संकुचित होते एवं शिथिल होते हैं जिसके परिणामस्वरूप कशेरुक दण्ड पेशियों के साथ-साथ झुकता-मुड़ता रह सकता है। संकुचन की लहर की दिशा सामने से पीछे की ओर को चलती जाती है। तैरने के समय पेशी संकुचन की एक लहर शरीर के एक पार्श्व पर अग्रतम पेशी-संहति में से प्रारम्भ होती है और पीछे को चलती जाती है जिसमें एक के बाद एक मायोटोम संकुचन करते जाते हैं। इससे पहले कि पहली संकुचन लहर बहुत पीछे तक चली जाए शरीर के अग्र सिरे पर एक और लहर आरम्भ हो जाती है। यही प्रक्रिया लगातार चलती जाती है और शरीर को एक लहर जैसी गति में दौड़ती-झुकाती जाती है। कशेरुकी प्राणी आगे को प्रणोदित होता रहता है। बड़ी मछलियों में प्रणोद नोदन (propelling thrust) पूंछ प्रदान करती है। तरंग का आयाम पूंछ पर ही सर्वाधिक होता है।

नोदन अलग-अलग प्रकार की मछलियों में अलग-अलग होता है। (a) कुछ में नोदन पूंछ की पार्श्व गतियों से होता है-जिसे **ऑस्ट्रेकिफ़ार्म** (Ostrachiform) नोदन कहते हैं। (b) कुछ अन्य में मछली के पश्च अर्धांश में तरंग गतियां होती हैं जिसे **कैरेंगिफ़ार्म** (Carangiform) नोडन कहते हैं। (c) लम्बी मछलियों में जैसे कि ईल में अनेक तरंगें चलती हैं तथा शरीर में आगे-पीछे अलग-अलग मार्गों में एक साथ दाएं-बाएं गतियां होती हैं इसे **ऐंग्विलिफ़ार्म संचलन**, (anguilliform locomotion) कहते हैं।

3. स्थायीकरण तथा दिशाचालन

मछलियों के फ़िन तैरने में सहायता करते हैं। मध्यक फ़िन जिनमें पृष्ठ और अधर फ़िन आते हैं मछली को स्थायी करने में सहायता करते हैं। जब मछली को तैरते-तैरते रुकना होता है तब वे ब्रेक का काम करते हैं।

युग्मित फ़िन जिनमें अंस (pectoral) तथा श्रोणि (pelvic) फ़िन आते हैं मछली के शरीर को दिशा देते तथा उसे संतुलित करते हैं। *स्कोलियोडॉन* अर्थात् डॉगफ़िश जैसी कार्टिलेज़ी मछली माध्यम (जल) से अधिक भारी होती है और जब मछली गति नहीं कर रही होती तब उसे नीचे डूबते जाने से रोकने के लिए युग्मित फ़िन शरीर के लम्बे अक्ष से एक कोण बनाते हुए रखे जाते हैं (चित्र 16.33)। लगाया गया बल शीर्ष को ऊपर की ओर को धक्का देता है (धनात्मक नताक्ष, positive pitching)।

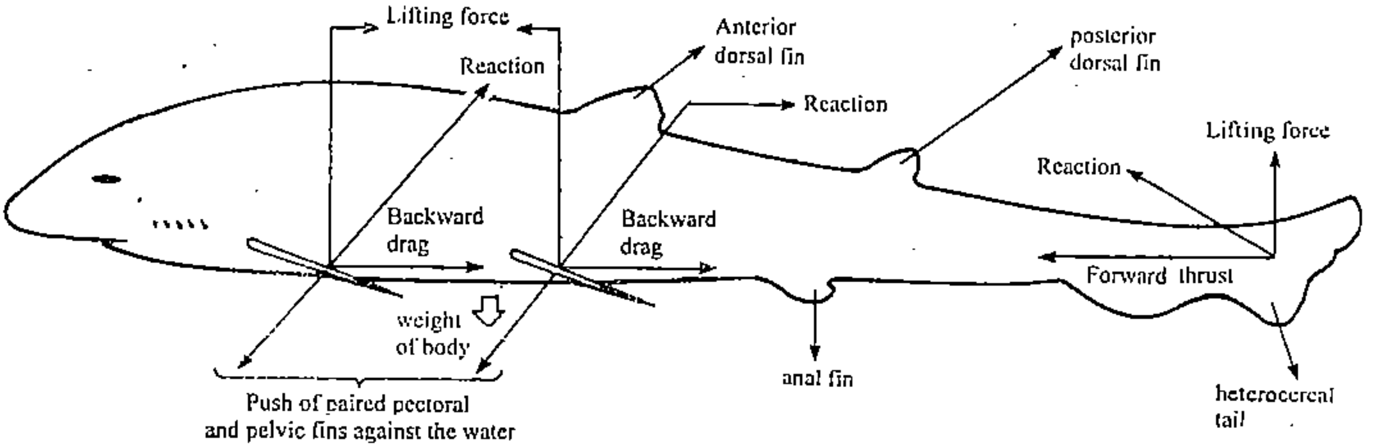

चित्र 16.33 : स्थायीकरण में मध्यक फ़िनों की भूमिका। दिशा चालन तथा संतुलन करने में युग्मित फ़िनों की भूमिका।

तैरती हुई मछली पर तीन प्रकार के विस्थापन कार्य करते हैं: (a) दिशामोड़ (प्रविचलन, yawing) जिसका निराकरण मध्यक फ़िनो द्वारा होता है।, (b) ऊपर-नीचे का विस्थापन (नताक्षन, pitching) जिसका नियमन युग्मित फ़िन द्वारा होता है, तथा वेलन (rolling) टेढ़ा होना जिसका नियमन सभी फ़िन करते हैं (चित्र 16.34)।

जब अस्थिल मछली पानी में सीधी रेखा में तैर रही होती है तब युग्मित फ़िन शरीर की तरफ दबाये जाते हैं और धारारेखित आकृति को और बेहतर बना देते हैं।

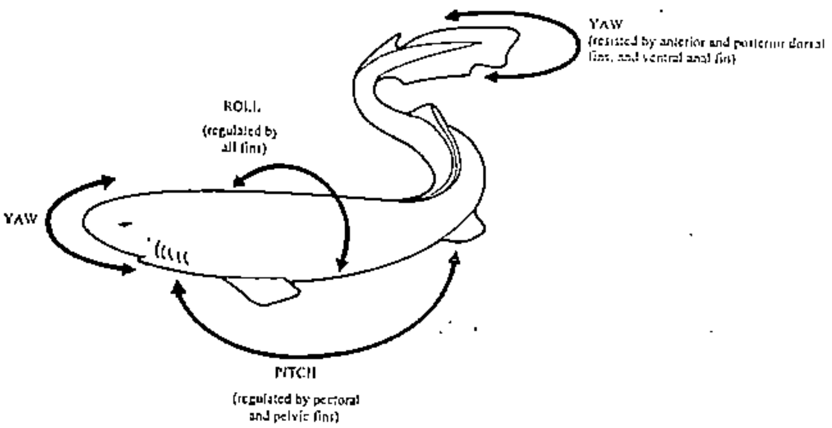

चित्र 16.34 : तैरने के दौरान विभिन्न विस्थापनो का निराकरण करते हुए प्राथमिक तैराक मछली।

4. उत्प्लावन (Buoyancy)

अस्थिल मछलियों में कशेरुक दण्ड तथा आहार नाल के बीच एक द्रवस्थैतिक (hydrostatic) युक्ति होती है जिसे "वायु आशय" (air bladder) कहते हैं (चित्र 16.35)। यह वाहिकायित होता है। समुद्र में रहने वाली कार्टिलेजी मछलियों के विपरीत अस्थिल मछलियों के फ़िन शरीर को ऊपर को नहीं उठाते। इनमें शरीर को ऊपर को उठाने वाली संरचना वायु आशय है।

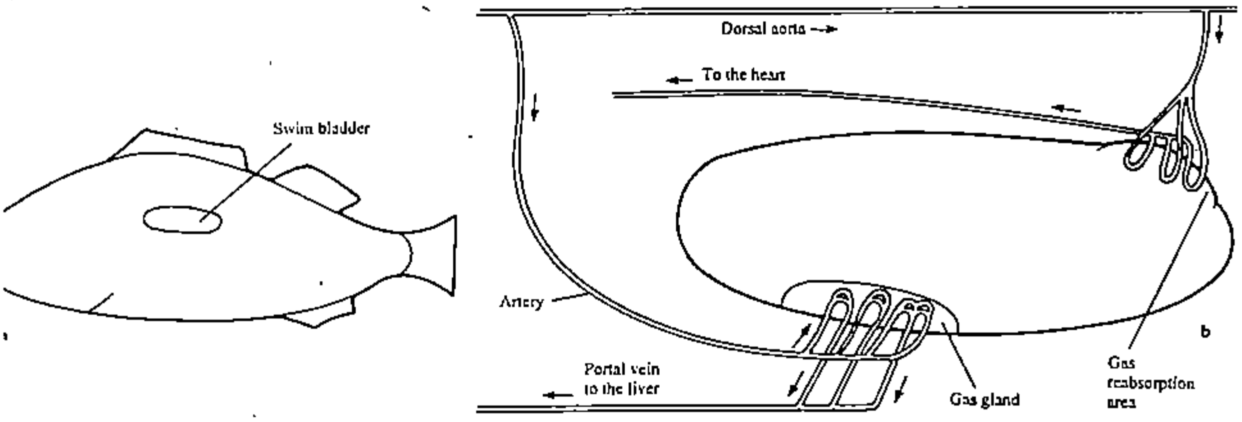

त्र 16.35 : तरण आशय: a) अस्थित मछली में वायु आशय की स्तिथि-जो उत्पलावन में सहायक होता है b) तरण आशय की आंतरिक व्यवस्था।

तीयक तैराकों में संचलन के लिए अनुकूलन

न चतुष्पाद कशेरुकियों में जिन्होंने जलीय जीवन अपना लिया है जल में गति करने के लिए निम्नलिखित नुकूलन आ गए हैं:-

म्फ़िबिया में जल न्यूट नेकट्यूरस (*Necturus*) जिसे "मड पपी" भी कहते हैं में संपीडित फ़िन-जैसी छ होती है जिसमें पल्लव बने होते हैं जिनमें फ़िन अरों का आलम्ब नहीं बना होता। मेंढ़क अपने ल्लीदार पैरों से तैरते हैं। वे जल से ऊपर आकर वायु में श्वास लेते हैं।

प्टाइलों में समुद्री सांपों (फ़ैमिली हाइड्रोफ़िडी, Hydrophidae) में एक उदग्रतः सम्पीडित सुकान-सी (rudder-like) पूंछ होती है (चित्र 16.32 e) जिसके द्वारा नोदन होता है। इनके वाल्वयुक्त सा छिद्र, प्राणियों के पानी में तैरते समय, जल को भीतर नहीं जाने देते। मगरमच्छों के पाद तैरने में स्तेमाल किए जाते हैं। साथ ही, जैसा कि आप जानते ही हैं इनमें एक द्वितीयक तालु होता है जो उन्हें ब वे तैर रहे होते अथवा जल के भीतर कहीं रुक गए होते हैं तो यही तालु उन्हें सांस द्वारा हवा भीतर ने में सहायता करते हैं। जलीय कछुओं के पाद पैडलों के रुप में रूपांतरित हो गए हैं।

नकौआ (coromorant) तथा पनडुब्बी (grebe) पक्षी जल में अपनी झिल्लीदार अथवा पालियुक्त ादांगुलियों द्वारा तैरते हैं (चित्र 16.36)। पेंग्विनों में पिच्छविहीन पंख चपटे और समेकित हो गए हैं जससे एक मज़बूत पैडल अथवा चप्पू बन गया है जो केवल कंधे के जोड़ पर ही गति करता है जिससे रने में मदद मिलती है (चित्र 16.32 देखिए)।

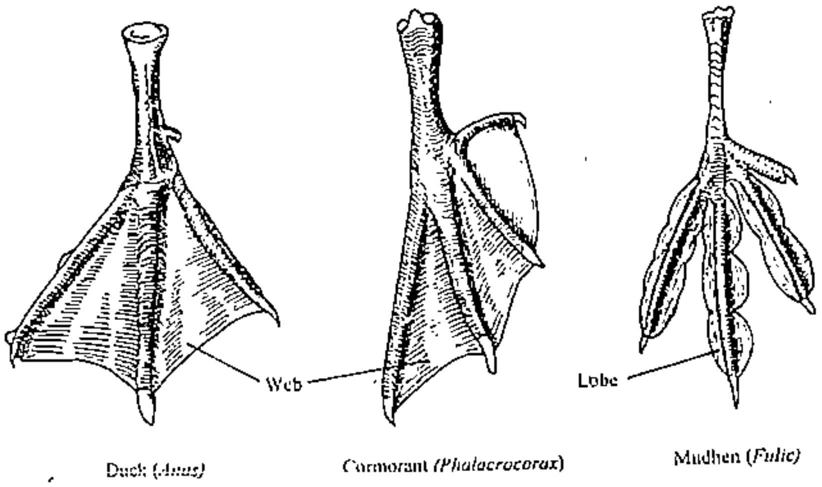

चित्र 16.36 : जल पक्षियों के झिल्लीयुक्त एवं पालियुक्त पांव।

स्तनियों में ऑर्डर सीटेसिया (ह्वेल, डॉलफ़िन, पॉरपाइज़) तथा पिन्नीपीडिया (सील, वालरस तथा समुद्री शेर) में जलीय संचलन पाया जाता है। अंडे देने वाले स्तनी बत्तख़चोंची प्लैटिपस (*ऑर्निथोरिंकस,*

Ornithorhynchus) में भी जलीय अनुकूलन पाए जाते हैं। इसके पांव में झिल्ली बनी होती है (चित्र 16.37 b) । इसकी छोटी-छोटी आंखें तथा कान, पीछे को रुख़ की हुई एक दरार में बंद हो जाते हैं (चित्र 16.37 a) जिससे जब वे पानी में तैर रहा होता है तो पानी भीतर नहीं जा पाता। सीटेसिया में हाथ में रूपांतरण होकर त्वचा-आवृत चप्पू बन जाता है। धारारेखित शरीर चिकना होता है जिस पर बाल नहीं होते। नासाछिद्र चेहरे पर काफ़ी पीछे स्थित होते हैं जिससे उनमें पानी न जा सके। पिन्ना (कर्णपल्लव) नहीं होता। समुद्री शेरों, सीलों और वालरसों में अग्रपाद तैरने के लिए रूपांतरित हो गए हैं। *फ़ोका* (*Phoca*) जिसे परिसर्पण सील भी कहते हैं, में टखनों तक पश्चपाद और साथ ही साथ छोटी दुम भी त्वचा के भीतर बंद होकर तरण अंग बन जाते हैं। इनका शरीर भी धारारेखित होता है तथा बाल नहीं होते। ड्यूगॉन्ग (dugong) तथा मैनेटी (manatee) (आर्डर साइरीनिया) में पश्चपाद नहीं होते मगर अग्रपाद चप्पुओं अथवा पैडलों के रूप में रूपांतरित हो गए हैं।

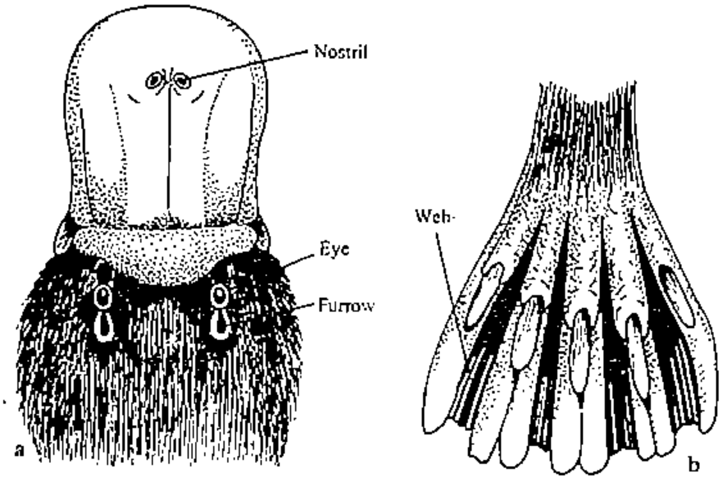

चित्र 16.37 : बतखचोंची प्लैटिपस में जलीय जीवन के लिए अनुकूलन। (a) शीर्ष जिसमें दरार में डूबी आंखें दिखाई दे रही है (b) झिल्लीदार पैर।

तैरने के लिए ऊर्जा-आवश्यकता गति पर निर्भर होती है। ह्वेलों की उपापचय दर ऊंची होती है और ईंधन का स्रोत ब्लबर (तिमिवसा) होती है। तैरने में खर्च होने वाली ऊर्जा पैदल चलने या उड़ने में खर्च होने वाली ऊर्जा से अपेक्षाकृत कम होती है।

गोताखोरी के लिए अनुकूलन: द्वितीयक तैराक जानवर जैसे कि पेंग्विनें, सीलें और ह्वेल गोता लगाते और थोड़े समय के लिए जल के नीचे ही ठहरते हैं। ये गोता लगाने से पूर्व सांस बाहर को छोड़ते हैं। गहरे जल के भीतर होने पर इनके फेफड़े पिचक जाते हैं। जिससे वायु कोशों में से वायु बलपूर्वक बाहर श्वसनियों में, फ़िर श्वास नली में, और फिर वहां से बाहर को निकल जाती है। इससे "बेंड्स" का खतरा रुक जाता है। "बेंड्स" वह दशा है जिसमें अधिक दाब के नीचे वायु की नाइट्रोजन रक्त में घुल जाती है। गोताखोर प्राणियों का रक्त आयतन अधिक होता है और उसमें अधिक ऑक्सीजन का वहन होता है। पेशी के प्रोटीन मायोग्लोबिन में अधिक मात्रा में ऑक्सीजन का भण्डारण होता है। गोता लगाने के दौरान हृदय की गति, आधारी उपापचय दर और गुर्दों का कार्य कम हो जाते हैं। एक ऑक्सीजन-ऋण पैदा हो जाता है जिसका उन्मूलन गोताखोर के सतह पर आ जाने के बाद होता है।

16.7.3 वायु में संचलन

कोई भी प्राणी जो अपने आप को वायु में बनाए रख सकता है उड़ाकू कहलाता है। उड़ाकुओं को उड्डयनी (volant) भी कहा जाता है। उड्डयनी कशेरुकी सर्वाधिक विशेषित कशेरुकियों में से होते हैं। ये वायु में गति करने के लिए अनुकूलित होते हैं और इनमें पक्षी एवं चमगादड़ें आती हैं जो हवा में उड़ सकते हैं। इस श्रेणी में उड़न मछलियां, वृक्ष मेंढ़क तथा उड़न गिलहरियां (स्तनी आर्डर डर्मोप्टेरा, Dermoptera) आती हैं जो ग्लाइड करके वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर जा सकतीं और थोड़े से समय के लिए वायु में निलम्बित रह सकती हैं। कुछ हल्के शरीर वाले आरोही नीचे आते समय वायु में क्षैतिजशः यात्रा करते हैं। यदि छलांग लगाने से उतरने वाले स्थान के बीच की रेखा क्षैतिज से 45° से अधिक कोण की है तब प्राणी को पैराशूट करते कहा जाता है, और जब यह रेखा 45° से कम के कोण पर होती है तब प्राणी को ग्लाइड (विसर्पण) करते कहा जाता है (चित्र 16.38 a)।

उड़ने के लाभ

उड़नशील प्राणियों को कई लाभ मिलते हैं: (i) आहार के रूप में उड़ने वाले कीटों के समीप पहुंच सकना, (ii) आश्रय को जल्दी से ढूंढ सकना, (iii) उड़ न सकने वाले परभक्षियों से बच निकलना तथा (iv) अनुकूल जलवायु, आहार एवं नीडन स्थलों वाले क्षेत्रों में फैल जाना एवं प्रवास कर सकना।

उड़नशील कशेरुकियों के उदाहरण

पैराशूटर प्राणी

पैराशूट करने वाले प्राणी अधिकतर वृक्षवासी होते हैं जो वृक्षों पर से छलांग लगाकर हवा में तैरते नीचे चले आते हैं। वृक्ष मेंढ़क (हाइलिडी, Hylidae) में पैराशूटिंग के लिए कोई विशेष अनुकूलन नहीं होते मगर रैकोफोरिडी (Rhacophoridae) में उड्डयन मंडूक आते हैं जिनमें झिल्लीयुक्त पांव होते हैं और भुजाओं एवं जांघों के बीच छोटी झिल्लियां होती हैं (चित्र 16.38 b)।

चित्र 16.38 : कुछ पैराशूटर तथा ग्लाइडर कशेरुक प्राणी (a) उड़न मीन के बड़े अंस फिन ग्लाइडिंग के लिए अनुकूलित होते हैं (b) ,उड्डयन मंडूक। जब यह एक पेड़ से दूसरे तक छलांग लगाता है तब उसकी अंगुलियों के बीच में बने जाल फैल कर पैराशूट का काम करते हैं। (c) उड्डयन गोधिका (Draco) पेड़ों पर रहती है, उसकी लम्बी पसलियां बाहार की तरफ खुल कर फैल जाती हैं जिससे दोनो ओर ग्लाइडर पंख बन जाते हैं और वह उड़ सकती है। (d) उड्डन सर्प-जीनस *क्रिसोपेलिया* सरीसृपों में अद्भुत है। ग्लाइड करते समय अपने आप को S- के आकार का बना कर पेड़ की शाख से हवा में फेंकते हैं। इस समय इनका लम्बा पतला शरीर चपटा हो कर फैल जाता है जिससे शरीर की सतह बड़ी हो जाती है। इससे इन्हें हवा में उत्थापन मिल जाता है। (e) उड्डयन गेको के शरीर के दोनों पार्श्व में फैली हुयी झिल्ली होती है तथा पूंछ चपटी होती है, इसकी उंगलियों के बीच में जाल होता है जिनकी सहायता से ये गेको ग्लाइड कर सकती है। (f) उड्डयन गिलहरी की पूंछ घनी होती है साथ साथ उसकी टांगों के बीच में झिल्ली होती है जिसके फैलने से उसे ग्लाइड करने में सहायता मिलती है। (g) स्तनियों में उड्डन लेमुर-कौल्युगो में सबसे बड़ा ग्लाइडिंग फ्लेप होता है।

वृक्ष सर्प अपने शरीर को क्षैतिज बनाए रखते हुए पसलियों को अगल-बगल फैलाए रखते हैं और अपने पेट को भीतर को खींचकर हवा की धारा की ओर एक अवतल सतह बना लेते हैं। इससे सांप को हवा में लटके रहने में सहायता मिलती है (चित्र 16.38 d)।

छिपकलियों में गेको की पादांगुलियों में झिल्ली बनी होती है और शीर्ष तथा शरीर पर झालरें बनी होती जबकि ड्रैको (*Draco*) नामक उड़न गोधिका में अग्र तथा पश्चपादों के बीच **पैटेजियम** (Patagium) नामक एक झिल्ली होती है जिसमें पसलियां पहुंचकर सहारा देती होती हैं, यह पैटेजियम इस छिपकली को क्षैतिज से लगभग 45° पर नीचे को उतरने में सहायता करती हैं। छोटे आकार की वृक्ष गिलहरियां अपनी टांगों तथा पूंछ को फैलाकर पैराशूटिंग करती नीचे उतरती हैं (चित्र 16.38 c)।

ग्लाइडर-प्राणी

कुछ मछलियां, छिपकलियां तथा स्तनी (आर्डर डर्मोप्टेरा) ग्लाइडर होते हैं। मछलियों में एक बड़ा फ़िन होता है जबकि छिपकलियों तथा स्तनियों में एक चौड़ी झिल्ली होती है जो वायु धारा को पकड़ती है। छिपकलियां तथा स्तनी आमतौर से पेड़ पर चढ़कर ऊंचाई प्राप्त करते हैं और उसके बाद छलांग लगाकर अपनी झिल्ली द्वारा एक दीर्घवृत्ताकार पथ बनाते हुए नीचे उतरते आते हैं।

उड़न मछलियों के (चित्र 16.38 a) अंस फ़िन बड़े और फैले हुए होते हैं जो जब हवा चल रही होती है तब उन्हें ग्लाइड करने में सहायता देते हैं और दुम जल में से नोदन प्रदान करती है। ड्रैको (*Draco*) अपने पादों के बीच में फैली झिल्लियों जिन्हें **पैटेजियम** (patagium) कहते हैं, की सहायता से ग्लाइड कर सकती है। कौल्यूगो (*Collugo*)(आर्डर डर्मोप्टेरा, Dermoptera) में सबसे ज़्यादा बड़ी उड्डयन झिल्ली होती है जो गले से लेकर पूंछ के अंतिम सिरे तक और झिल्लीयुक्त पादांगुलियों तक फैली होती है। उड़न फ़ैलेंजरों (Phalangers) (मार्सुपियल-प्राणी) में कोहनी से लेकर घुटनों तक फैली झिल्ली होती है। कुछ उड़न गिलहरियों की झिल्लियों में कोहनी से निकले कैल्सियमी आलम्ब स्तंभों का सहारा बना होता है (चित्र 16.38 f)।

उड्डयक (Fliers)

कुछ उड्डयक तीव्र और सीधी उड़ान भरते हैं जबकि कुछ अन्य की उड़ान धीमी और अनियमित होती है। पक्षी (चित्र 16.39 a) जैसा कि आप इकाई 3 अनुभाग 3.4 में पढ़ चुके हैं, उत्तम वास्तविक उड्डयक होते हैं। जिनमें लम्बी भुजाएं होती हैं और दूसरी हस्तांगुलि मज़बूत एवं बड़ी होती है और यह पंख बनाती है जिस पर उड्डयन पिच्छ लग होते हैं, एवं एक उड्डयन झिल्ली अथवा पैटेजियम होता है जो कोहनी के कोण में त्वचा के एक वलन के रूप में होता है। स्तनियों में चमगादड़ें उड्डयक होतीं हैं और उनमें वायवीय संचलन के लिए सामान्य अनुकूलन पाए जाते हैं (चित्र 16.39 b)।

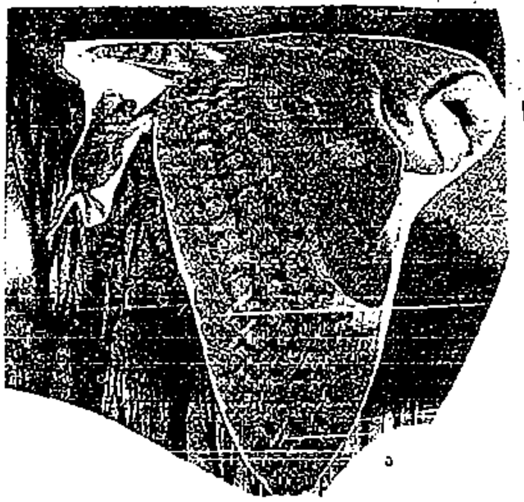

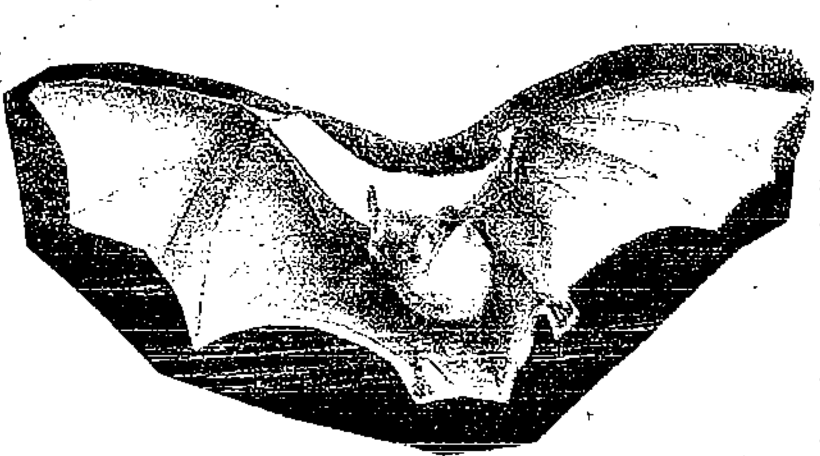

चित्र 16.39 : वास्तविक उड्डयक (a) पक्षी (उल्लू) (b) चमगादड़।

उड़ने के लिए संरचनात्मक अनुकूलन में शरीर की आकृति, कंकाल, त्वचा तथा संवेदी अंग शामिल हैं। शरीरक्रियात्मक अनुकूलनों में आते हैं तापमान के नियमन की क्षमता और उड़ते रहने की स्थिति में भी खाते रह सकना। इकाई 3 में आप पहले ही पक्षियों की आकृति और प्रकार्यों के मुख्य पहलुओं के विषय में पढ चुके हैं जिनमें उड्डयन के लिए विविध अनुकूलनों का बहुत विस्तार से वर्णन किया गया था (इस पाठ्यक्रम की इकाई 3 के खंड 3.4 के उपखंड 3.4.3 तथा 3.4.4 देखिए)। इस इकाई में हम पक्षियों तथा चमगादड़ों के उड्डयन के लिए मुख्य अनुकूली पहलुओं का संक्षेप में विवेचन करेंगे।

1. देह-आकृति तथा कंकाल

1. देह-आकृति धारारेखित होती है जिससे उड़ने में न्यूनतम प्रतिरोध आता है।
2. वातिल अर्थात् हवा से भरी स्पंजी हड्डियां
3. संहत करोटि जिसमें हड्डियां समेकित होती हैं।
4. पक्षियों में सामने को नुकीली चोंच
5. कशेरुक दंड में कुछ कशेरुकें समेकित
6. कशेरुक दंड अंस मेखला से समेकित
7. सुविकसित अंस मेखला जो पंखों को आलम्ब प्रदान करता है (चित्र 16.40 a)।
8. अग्रपाद पंखों में रूपांतरित हो गए हैं (चित्र 16.40 b)।
9. स्टर्नम में एक चौड़ी नौतल अथवा केराइना (carina) (कूटक) बना होता है (चित्र 16.40 a) जिस पर बड़ी पेक्टोरेलिस मेजर (pectoralis major) (उड्डयन पेशी) जुड़ी होती है।
10. पश्चपादों की हड्डियां लम्बी होती हैं ताकि जब उड़ान भरना शुरू किया जाता है तब फड़फड़ाते पंख ज़मीन से न टकरा पाएं।

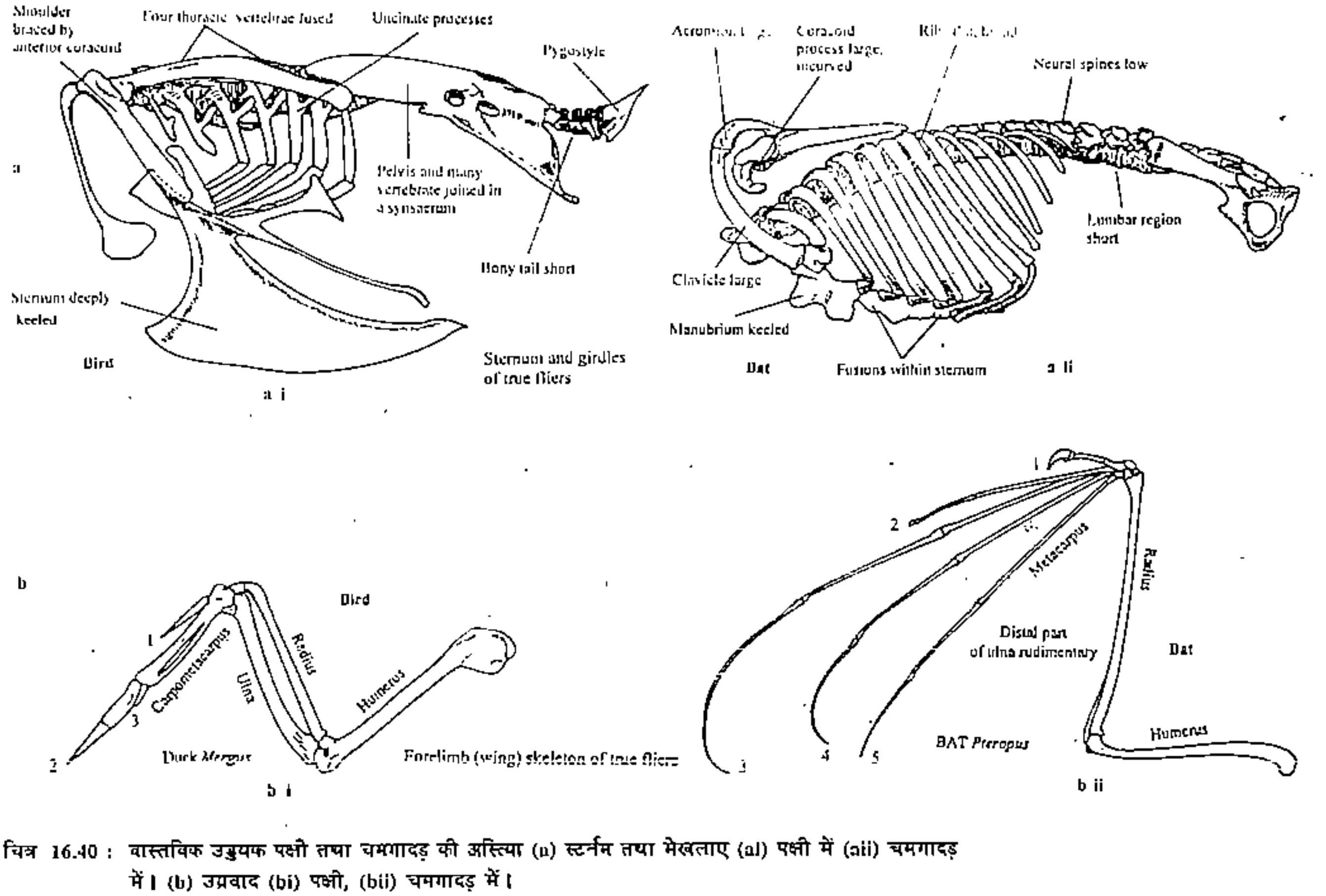

चित्र 16.40 : वास्तविक उड्डयक पक्षी तथा चमगादड़ की अस्थिया (a) स्टर्नम तथा मेखलाए (ai) पक्षी में (aii) चमगादड़ में। (b) उग्रवाद (bi) पक्षी, (bii) चमगादड़ में।

2. **त्वचा-** पक्षी की त्वचा में एपिडर्मिसी पिच्छ (पर) होते हैं। जैसा कि आप पहले ही जान चुके हैं पिच्छ चार प्रकार के होते हैं: (1) आकृतिपिच्छ (contour), (2) कोमल पिच्छ (down) तथा (3) रोमपिच्छ (filoplumes) और शूक (bristles) (देखिए इकाई 3)।

3. **पूंछ-** पक्षियों में एक छोटी पूंछ होती है- यह अनुकूलन कर्ष (drag) को कम करता तथा सधाने-संभालने की क्षमता बढ़ाता है।

4. **जवड़ा-** पक्षियों की चोंच दंतविहीन जबड़ों की बनी होती है।

5. **जनन-तंत्र-** पक्षियों में लैंगिक अंग छोटे होते हैं तथा प्रजनन ऋतु में ही पूर्णत: विकसित होते हैं। कार्यशील अंडाशय केवल एक ही होता है। ये सभी अनुकूलन भार को कम कर देते तथा उड़ान के लिए शरीर को हल्का बना देते हैं।

6. **दृष्टि सुतीक्ष्णता** (Visual acuity) बहुत उन्नत होती है। उड़ने के दौरान एक निमेषक झिल्ली आंख में से कणों को लगातार हटाती रहती है। लम्बी गर्दन वाले पक्षी अपनी गर्दनों को घुमा सकते हैं ताकि उड़ते-उड़ते अच्छी तरह देखते रह सकें।

7. **देह तापमान** उच्च रहता है। पक्षी और चमगादड़ें अपने देह-तापमान को नियमित कर सकते हैं (समतापीय, homeothermal)। इससे दो लाभ मिलते हैं। (1) अधिक ऊंचाई पर उड़ते समय वायु के शीतलन प्रभाव का प्रतिकार होता है, (2) इससे कारगर पेशी संकुचन सुनिश्चित होता है।

8. **पेशी समन्वय** उत्कृष्ट होता है।

अतिसंवातन (Hyperventilation)-उडते रहने के दौरान, विशेषकर प्रवास के समय पक्षी तथा चमगादड़ें अतिसंवातन करते हैं अर्थात् अधिक वायु को भीतर ले जाते हैं। ऐसा करने से अधिक ऊंचाई पर ऑक्सीजन की कम मात्रा की क्षतिपूर्ति होती है। चमगादड़ों में शरीर को CO_2 से रक्त अम्लीय हो जाता है और रक्त वाहिकाएं संकीर्ण हो जाती हैं। पक्षियों में बिना वाहिकासंकीर्णन हुए अतिसंवातन होता है।

9. **वायु कोश** (air sacs) (चित्र 16.41) पक्षियों के शरीर में होते हैं ताकि शरीर प्लावी बन सके। वायु कोश श्वसन में सहायता करते तथा फेफड़ों के साथ संबंधित रहते हैं। इनकी शाखाएं खोखली हड्डियों में पहुंची होती हैं। वायु कोश तंत्र शरीर को ठंडा भी किए रहता है।

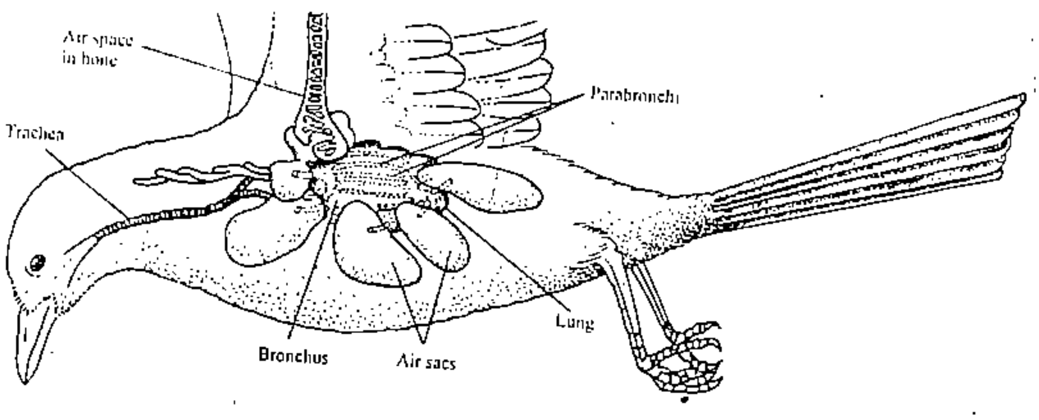

चित्र 16.41 : पक्षी के वायु कोश।

10. **उत्थान** (Lift)- उड़ते रहने के दौरान चमगादड़ें अपने बच्चों को तथा पक्षी अपने अण्डों को अपने भीतर धारण किए हुए उड़ते हैं। ये बोझ को उठाने (उत्थापन करने) में सक्षम होते हैं। इनमें **त्वरण** (acceleration) तथा **युक्तिचालन** (manouverability) उत्कृष्ट होते हैं। पक्षी और चमगादड़ें उड़ना आरम्भ कर देने, रुक जाने, चाल तथा दिशा को बदल सकने की क्षमता में बहुत प्रवीण होते हैं। और यहां तक कि ये सारी गतियां समूचा पक्षी-वृंद भी एक साथ कर सकता है। गुंजन पक्षी (humming birds) उल्टे पीछे को भी उड़ सकते हैं।

उड्डयन की क्रियाविधि: पक्षियों में उड़ने की क्रियाविधि के लिए इसी पाठ्यक्रम की इकाई 3 का खंड 3.4 देखिए। यहां इस इकाई में हम चार प्रकार के उड्डयनों का विवेचन करेंगे- (1) फड़फड़ाहन (2) विसर्पण, (3) मंडराना, (4) स्थिरोड्डयन।

(1) फड़फड़ाही उड्डयन (Flapping flight): नौतल से जुड़ी बड़े आकार की उड्डयन पेशियां पेक्टोरेलिस मेजर संकुचन करती हैं। फलस्वरूप पंख नीचे को वार करता है। चूंकि पंख तिरछा भी हो जाता है, इसलिए वह हवा को पीछे की ओर धकेलता है जिससे शरीर की आगे को गति होती है। उसके बाद पेक्टोरेलिस माइनर (pectoralis minor) संकुचन करती है और अग्र बाहु और उसके साथ-साथ

पंख भी तेज़ी से ऊपर को गति करता और मुड़ जाता है। इससे शरीर को उत्थापन मिल जाता है। अपनी पूंछ को फैला कर पक्षी नीचे उतरता है। पिच्छ पास-पास सटे होकर अथवा एक-दूसरे से सटकर वायु के प्रतिरोध का नियमन करते हैं।

(2) विसर्पण (Gliding): विसर्पण के दौरान पंखों को शरीर से लगभग 90° का कोण बनाते हुए टिकाए रखा जाता है और पक्षी नीचे आता जाता है। इस पर कार्य करने वाले बल को प्रेरक बल (driving force) कहते हैं तथा गुरुत्व का खिंचाव जो नीचे की ओर को कार्य करता होता है अवरोहण बल (sinking force) कहलाता है।

(3) मंडराना (Soaring): जब उत्थापन बल अवरोहण बल के बराबर हो जाता है तब पक्षी हवा में एक स्थिर वेग से विसर्पण करता है और तब इस गति को मंडराना कहते हैं।

(4) स्थिरोड्डयन (Hovering): पक्षी एक ही स्थान पर स्थिर बने हुए पंखों को फड़फड़ाते रहते उड़ते रह सकता है। पंख आगे और पीछे को गति करते रहते हैं तथा इससे एक ऊपरी प्रणोद बन जाता है जो पक्षी के वज़न का प्रतिसंतुलन करता है। इस विधि को **स्थिरोड्डयन** कहते हैं। स्थिरोड्डयन करने के दौरान बहुत सी ऊर्जा खर्च होती है।

16.7.4 धरती पर संचलन

धावी प्राणी (Cursorial animals) धरती की सतह पर गति करते और लम्बी-लम्बी दूरियां तय करते हैं। ऐसे प्राणियों में शामिल हैं मेंढक, छिपकलियां, पक्षी और स्तनी। तेज़ चाल इनकी प्राथमिक आवश्यकता है। धावी प्राणी चौपाए हो सकते हैं (चारों पैरों पर चलने वाले) (चित्र 16.42 a) अथवा दोपाए हो सकते हैं (दो पैरों पर संचलन) (चित्र 16.42 b)। ये अपने पूरे पादतल पर चलने वाले हो सकते हैं (पादतलचारी, plantigrade) अथवा उंगलियों पर चलने वाले हो सकते हैं (अंगुलिचारी, digitigrade) अथवा वे उंगलियों के सिरों पर चलने वाले हो सकते हैं (खुरचारी, unguligrade) चित्र 16.44 भी देखिए । आप इकाई 11 के भाग 11.5 को इन परिभाषाओं को याद करने के लिए देखिए।

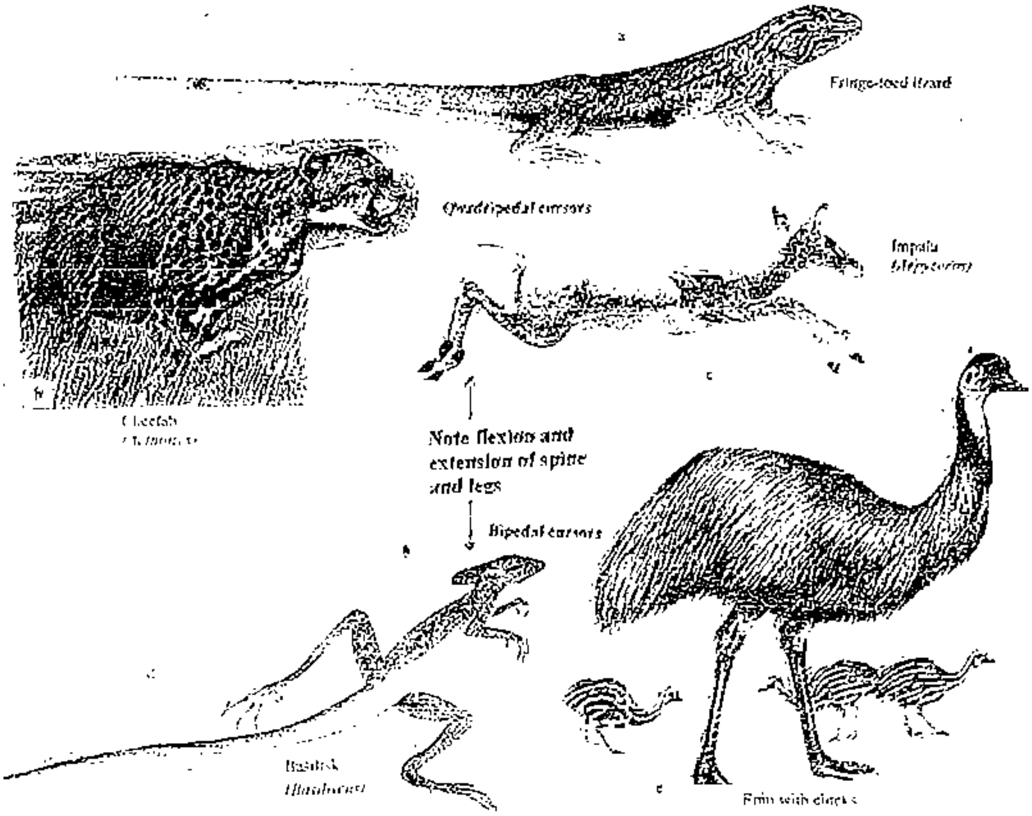

चित्र 16.42 : धावी कशेरुकी। चौपए धावक (a) फ्रिंज पादांगुलितछिपकली (b) चीता (c) इम्पाला (ऐपिसेरॉस)। द्विपाए धावक (d) बेसिलिस्क (बेसिलिस्कस) (e) ईमू अपने चूजों के साथ।

जो प्राणी कूद सकते हैं वे वल्गी संचलन दर्शाते हैं (चित्र 16.43 a तथा b)। कूदने के लिए ये द्विपाद संचलन अपनाते हैं और यदि दोनों पश्चपाद अनेक क्रमिक कूदों में एक साथ उठाए जाते और नीचे लाए जाते हैं तब इस प्रकार की गति को **राइकोचेट** (richochet) उछाल कहते हैं (चित्र 16.43 b)। धावकों की एक और श्रेणी है जिसमें पादविहीन बिलकारी कशेरुकी आते हैं जिनका संचलन और भी भिन्न होता है।

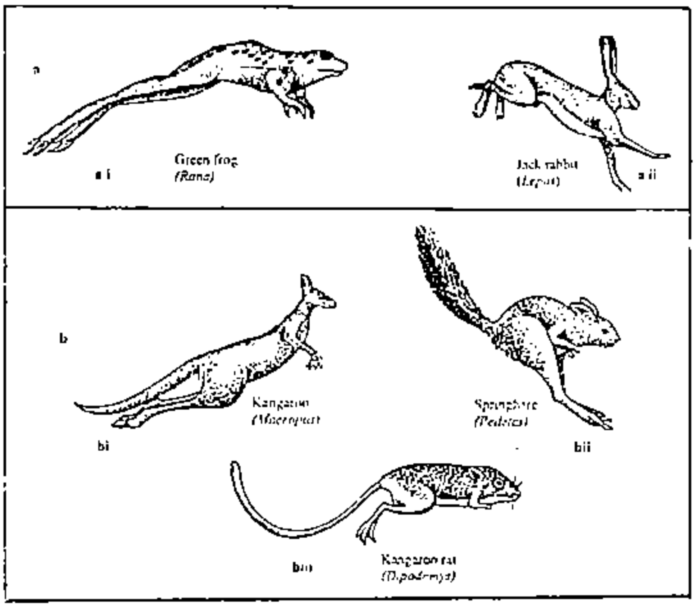

चित्र 16.43 : कशेरुकियों में वल्गी संचलन (a) वल्गी कशेरुकी (ai) मेढ़क (aii) खरगोश (b) राइकोचेटी धावक अर्थात् ऊँची कूद वाले कशेरुकी (bi) स्प्रिंग खरहा (bii) कंगारू मूषक। इनमें पाद और संतुलनकारी पूछ पर ध्यान दीजिए।

1. धावी संचलन के लिए अनुकूलन

धावी प्राणी जब स्थिर खड़े रहते हैं तब न्यूनतम ऊर्जा खर्च करते हैं मगर जब गति करते हैं तब बहुत ज़्यादा ऊर्जा ख़र्च करते हैं। विभिन्न गतियों जैसे कि चलने, दौड़ने, तथा कूदने में शरीर निम्नलिखित तरीकों से अनुकूलित होता है।

1. देह परिरेखा (Body contour): देह परिरेखाएं धारारेखित होती हैं जिसमें कोई प्रवर्ध नहीं होते ताकि गति प्राप्त करते समय न्यूनतम प्रतिरोध प्रस्तुत हो।

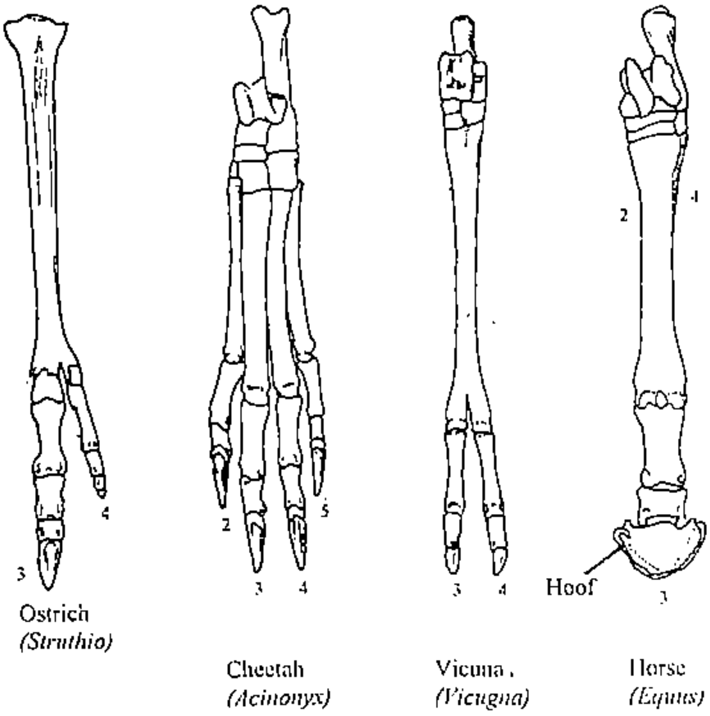

चित्र 16.44 : विभिन्न धावियो की पश्चपाद का कंकाल जिनमें मेटाटार्सल लम्बी हो गयी है, टार्सल समेकित हो गयी हैं या फिर चौकोर हो गयी है तथा अंगुलियां कम हो गयी हैं।

(i) टांगों की लम्बाई और अनुपात: धावी प्राणियों में टांगे उन्हें नोदन प्रदान करती है। टांगें जितनी ज्यादा लम्बी होंगी उतनी ही लम्बी डग होगी। धावकों की टांगे उनके शरीर के अन्य भागों के अनुपात में अपेक्षाकृत ज्यादा लम्बी होती हैं। इनके दूरस्थ खण्ड (कलाई तथा अग्रबाहु एवं पिंडली तथा टख़ना) पादों के समीपस्थ खण्डों (उपरिबाहु तथा जांघ क्षेत्र) से ज़्यादा लम्बे होते हैं। धावी अंगुलेटों में रेडियस (अग्रबाहु की हड्डी) ह्यूमरस (उपरिबाहु की हड्डी) की अपेक्षा ज्यादा लम्बी होती है तथा टिबिया (पिंडली की हड्डी) फीमर (जांघ की हड्डी) के जितनी ही अथवा उससे ज्यादा लम्बी होती हैं।

मेटाकार्पलें (कलाई की हड्डियां) तथा मेटाटार्सलें (टखने की हड्डियां) समेकित होती एवं सर्वाधिक लम्बी हो गयी हैं (चित्र 16.44)। टार्सलें मेंढ़क में भी बहुत ज़्यादा लम्बी हो गयी हैं।

पक्षियों में सबसे ज्यादा लम्बी टांगें जलग (wading) पक्षियों में होती हैं न कि धावक पक्षियों में। मगर धावक छिपकलियोंमें अपेक्षाकृत अधिक लम्बी पिछली टांगें होती हैं।

(ii) पद संस्थिति (Foot posture)- जब मनुष्य चलते हुए अपनी पादांगुलियों की नोकों पर ऊपर को उठते हैं तब उनकी टांगों की लम्बाई बढ़ी हुई लगती है। अन्यथा मनुष्य का पद (पैर) टांग की लम्बाई में कोई योगदान नहीं देता। भालुओं, ऑपोसमों एवं अनेक कशेरुकियों, जो चलते हैं और विरले ही दौड़ते हैं, में पादतलचारी (तलवे पर चलने वाले) पांव होते हैं। धावी डाइनोसौर, पक्षी तथा कार्निवोर (कुत्ता, बिल्ली, बाघ) "उंगलियों पर चलते" हैं जिन्हें अंगुलिचारी कहते हैं। अंगुलेट (घोड़ा, मवेशी, सुअर) खुरचारी (ग- -े पर चलने वाले) होते हैं। इनकी टांगों की प्रभावी लम्बाई उंगलियों की नोकों पर खड़े होने से ¬ ती है (चित्र 16.45)।

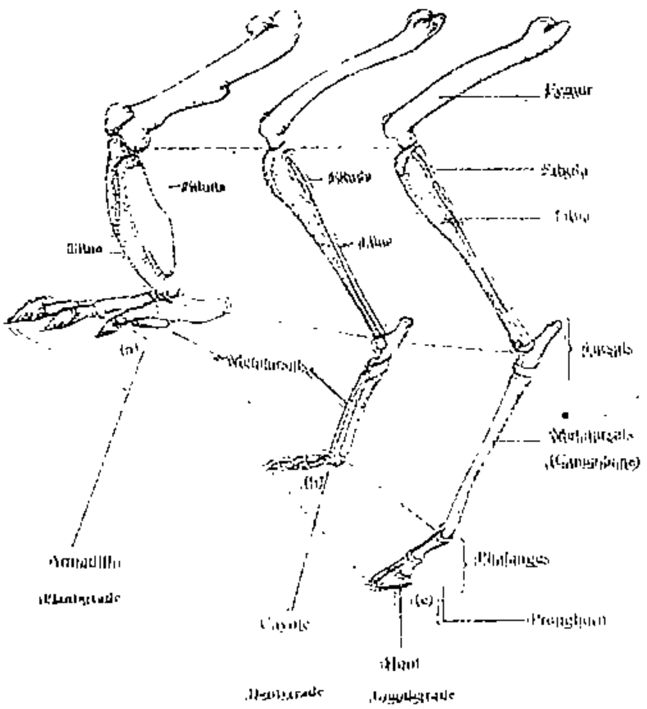

चित्र 16.45 : विभिन्न चालन स्तिथियों में धावियो के कंकाल (a) पादचल चारी-आर्मिडिलो में पादचलचारी पैर होता है परन्तु खोदने के लिए अनुकूलित होता है। (b) क्योट (मांसाहारी प्राणी) में अंगुलिचारी पाद (c) प्रॉंगहार्न हिरन में खुरचारी पाद।

3. मेखलाएं और पाद (Gridles and limbs)

अंस मेखला (Pectoral gridle)

कंधे की फलकनुमा हड्डी अर्थात् स्कैपुला उसी समतल में मुक्त रूप में घूर्णन कर सकती हैं जिसमें टांग आगे-पीछे चलती है। चौपाए धावकों में कॉलर हड्डी अर्थात् क्लैविकल या तो अवशेषी होती है (कार्निवोरों में) या होती ही नहीं (अंगुलेटों में)।

पाद

अंगुलिचारी धावकों में संचलन संरचना ह्रासित हो गयी है ताकि चलने तथा दौड़ने के लिए प्रयास में बचत हो सके।

(i) अल्ना हड्डी रेडियस के साथ संलयित हो जाती है और फ़िबुला एक पतली स्प्लिंट (फट्टी) हड्डी बन जाती है (चित्र 16.46 तथा 16.45)।

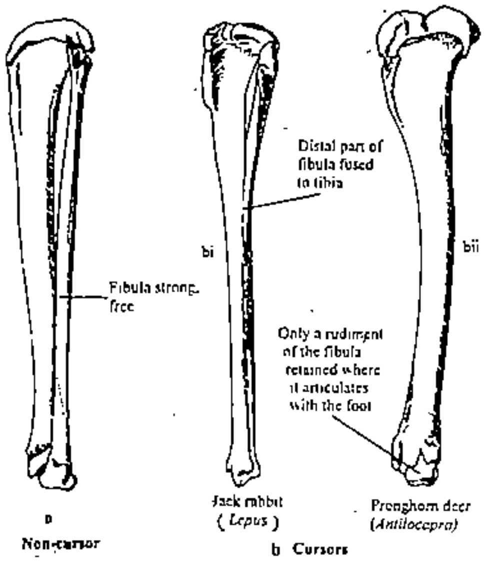

चित्र 16.46 : फ़िबुला के ह्रासन की तुलना। (a) अधावक (b. i) *लीपस* जैसे एक मध्यमी धावक तथा (b. ii) प्रोंग हॉर्न मृग *एंटिलोकैप्रा* जैसे विशेषित धावक में फ़िबुला का ह्रास।

(ii) वे पेशियां भी जो उंगलियों को चलातीं, अग्रबाहु को घुमाती, तथा पांव को मरोड़ती हैं, ह्रासित हो गयी हैं।

(iii) अंगुलेटों में मेटाकार्पलें तथा मेटाटार्सलें आपस में संलयित हो कर एकल इकाइयां- कैनन हड्डी अर्थात् दण्डास्थियां बना लेती हैं। कैनन हड्डियां पांव की लम्बाई में बढ़ोत्तरी कर देती हैं।

(iv) चतुष्पाद प्राणी पंचांगुलिक होते हैं मगर खुरचारियों में उंगलियों की संख्या घटकर दो या एक रह जाती है। इस ह्रास का संबंध तीव्रतर चाल प्राप्त करने से है।

(v) अंगुलिचारी तथा खुरचारी धावकों की उंगलियां झटका-रोधी खुरों द्वारा सुरक्षित बनी रहती हैं (चित्र 16.45)।

(vi) टांगों की पेशियां अधिक तेजी से संकुचन करती हैं ताकि डग की दर बढ़ सके।

4. रीढ़ की भूमिका

धावक छिपकलियां गति करते समय अपनी रीढ़ को लहराती हैं। मानवों में रीढ़ S- आकृति की होती है, यह द्विपादीय चाल के लिए अनुकूलन होता है।

5. संधियां – संधियां हिंज की तरह कार्य करती हैं और गमन की ही रेखा में गति संभव बनाती हैं।

6. पूंछ – धावकों में पूंछ संतुलन करती है।

II. वल्गी प्राणियों में अनुकूलन

कूदना और द्विपादीय दौड़

मेंढ़क, गिरगिट, पक्षी तथा खरगोश कूदते हैं। कंगारू राइकोचेटल होते हैं और ये अन्य सभी वल्गियों से अधिक तीव्रता से तेज़ गति प्राप्त कर सकते हैं। राइकोचेटल ऊंचे कूदने वाले होते हैं और वे अपनी चाल को एवं दिशा को चौपायों की अपेक्षा कहीं बेहतर परिवर्तित कर सकते हैं। वे तेज़ी से बचकर निकल सकते हैं मगर ऐसा करने में उन्हें अधिक ऊर्जा खर्च करनी होती है। इनकी पिछली टांगे अगली टांगों से कहीं ज़्यादा लम्बी होती हैं। एक ख़ासी लम्बी दुम संतुलन बनाए रखने में सहायता करती है (चित्र 16.43 a तथा b)।

(i) वल्गियों में पश्चपादों तथा उनके दूरस्थ खण्डो की आपेक्षिक लम्बाई अधिक होती है।

(ii) मनुष्यों के जैसे द्विपादी अपनी टांगों को एकांतर क्रम में आगे-पीछे डुलाते हैं और अपनी डग की लम्बाई को S-आकृति की रीढ़ के लम्बे अक्ष के गिर्द श्रोणि (पेल्विस) को दोलित करके बढ़ा देते हैं।

(iii) दौड़ने के दौरान पूंछ को ऊपर को खड़ा कर लिया जाता है ताकि द्रव्यमान-केंद्र पिछले पैरों पर आ जाए।

(iv) मेंढकों तथा वल्गी स्तनियों में कशेरुक दण्ड का सैक्रमपूर्वी भाग छोटा होता है। यह भार को प्रणोदकारी पश्चपादों की ही रेखा में संकेंद्रित करता है।

चलने, दौड़ने और कूदने की क्रियाविधि

1. चौपायों में चलना

जब कभी कोई कुत्ता अथवा बिल्ली चलती होती है तब कशेरुक दण्ड दृढ़ बना रहता है और पश्चपाद की प्रसारणी पेशी संकुचित होती है तथा पश्चपाद फैलता हुआ धरती के प्रति पीछे को बल लगाता है। इससे प्राणी को आगे की ओर को तथा थोड़ा सा ऊपर को धक्का लगता है। जब आकुंचनी पेशी संकुचन करती है तब पैर धरती से ऊपर को और आगे को उठाया जाता है। इस प्रकार एक बार में एक पैर उठाया जाता है जबकि अन्य तीन एक तिपाही सी बनाए रखते हैं जिस पर शेष शरीर संतुलित होता है। टांगों की गति का क्रम इस प्रकार होता है - पहले बाया अग्रपाद; फिर दाहिना पश्चपाद; फिर दाहिना अग्रपाद; और फिर बायां पश्चपाद।

2. द्विपाद चलन

खड़े रहने की स्थिति में शरीर के भार का संतुलन दो टांगों पर होता है। एक कदम रखने के लिए पिंडली की पेशी का संकुचन होता है और एड़ी ऊपर को उठायी जाती है (चित्र 16.47)। दाहिना पैर पृथ्वी पर दबाया जाता है जिससे आगे की ओर को नोदन पैदा होता है। दाहिना पैर ज़मीन पर धक्का देता है और घुटना थोड़ा सा मुड़ता है और शरीर का भार बाये पैर पर आ जाता है जो कि अभी ज़मीन पर ही हैं। अब दाहिना पैर आगे को जाता है और उसकी एड़ी ज़मीन से छूती है। शरीर के आगे को गति करने के साथ उसका भार बायीं ओर से दाहिनी एड़ी पर स्थानांतरित हो जाता है और फिर उसके बाद दाहिने पैर के अंगूठे पर। अब दाहिने पैर के अंगूठे के द्वारा अधःस्तर पर पीछे को दाब लगाया जाता है। और फिर उसके बाद यही सारी प्रक्रिया बायीं टांग द्वारा दोहराई जाती है (चित्र 16.47)।

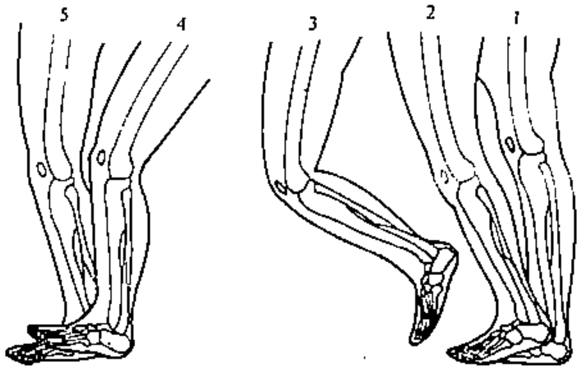

चित्र 16.47 : द्विपाद चलन - मनुष्य में एक कदम लेने के दौरान दाहिनी टांग की स्थितियां 1 से 5 में दिखायी गयी हैं।

3. दौड़ना

दौड़ने में आलम्बन की वह ट्राइपॉड विधि नहीं होती जो संचलन के दौरान होती है। अग्रपाद एक साथ कार्य करते हैं जिसके बाद पश्चपाद भी एक साथ ही काम करते हैं। धरती के साथ सम्पर्क बहुत कम होता है और एक समय पर एक ही पाद पृथ्वी को छूता है। तेज़ दौड़ने वाले कशेरुकियों में चौपायों की चारों टांगें और दोपायों की दोनों टांगें हवा में हो सकती है (अनालम्बित अंतराल)। धड़ की मज़बूत पेशियां लचीली रीढ़ को चाप स्वरूप बना देती हैं जिससे पादों का प्रणोद बढ़ जाता है जिसके परिणामस्वरूप डग की लम्बाई बढ़ जाती है (चित्र 16.48)।

4. कूदना

कूद सकने में उत्प्रस्थान के लिए ज़रूरी है कि शक्तिशाली प्रसारिणी पेशियों के संकुंचन द्वारा पश्चपाद की प्रत्येक संधि सीधी हो जाए। धरती पर लगाया गया बल श्रोणि मेखला के माध्यम से पादों से कशेरुक दण्ड

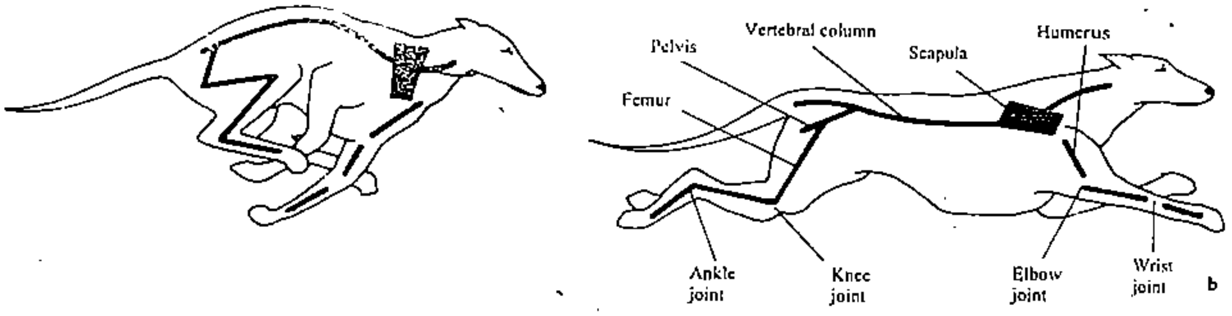

चित्र 16.48 : दौड़ना (एक कुत्ते में) a) चाप बन गयी हुई रीढ़, और पैर देह के नीचे b) रीढ़ को फैला दिया गया है और पादों को पूरी तरह फैला दिया गया है।

ने संचरित हो जाता है। इससे वल्गी (कूदने वाला) गुरुत्व बल के विमुख बल के द्वारा हवा में ऊपर को और आगे को धकेल दिया जाता है। अग्रपाद कंधे की मेखला से एक लचीले रूप में जुड़े होते हैं और ऊंचाई से कूदने पर धरती पर छूते हुए जो झटका लगता है उसे कम कर देते हैं (चित्र 16.49)।

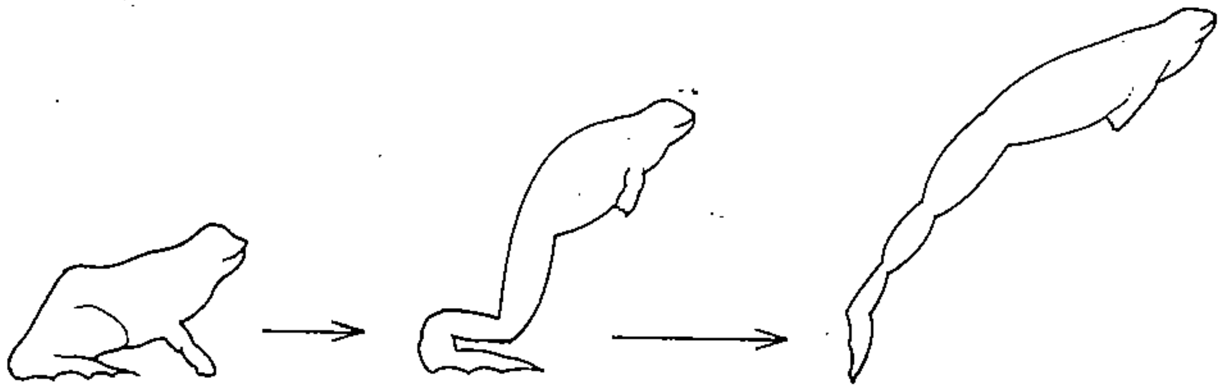

चित्र 16.49 : मेंढ़क का उत्प्रस्थान एवं कूदना।

5. विना उपांगों के रेंगना

चित्र 16.50 में कुछ ऐसे प्राणियों को दर्शाया गया है जो अपने अधिकांश अथवा सम्पूर्ण जीवनकाल में ज़मीन के नीचे ही रहते हैं। इनमें से अनेक भूमिगत निवासी जिन्हें अद्योभूमिक प्राणी भी कहते हैं, सुरंगों

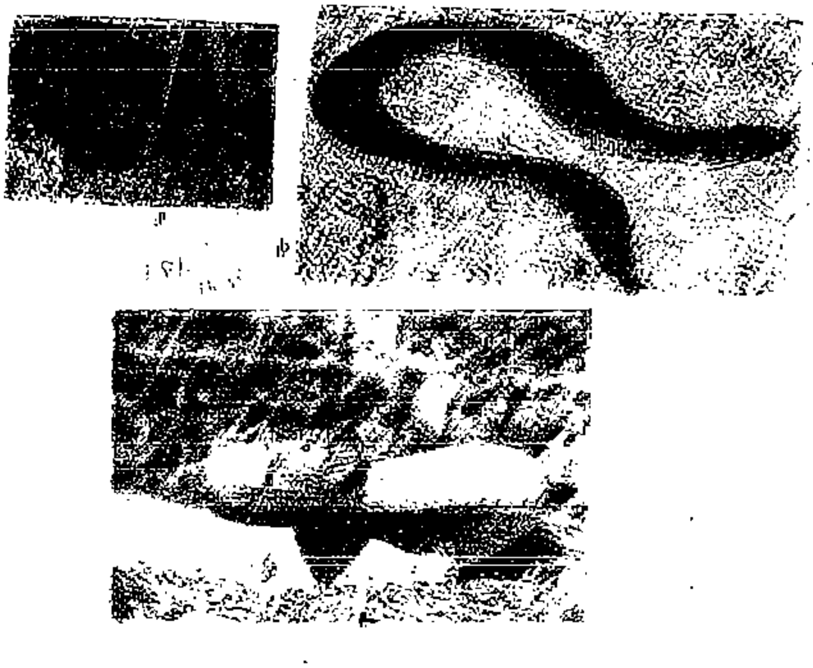

चित्र 16.50 : पादविहीन कशेरुकी a) पादहीन एम्फिबियन केसेलियन *साइफोनॉप्स* b) पादहीन ग्लास छिपकली *ओफिओसौरस* c) पोप्स पिट वाइपर सर्प।

रहते हैं (बिलकारी, burrowers)। कुछ आहार एवं आश्रय के लिए बिल खोदते हैं जिन्हें खननी
)ssorial) प्राणी कहते हैं।

एलिगेटर अपने बच्चों को दूसरों के बनाए गये बिलों में धकेल देते हैं।

ती पर पादविहीन संचलन का संबंध अक्सर बिल बनाने से होता है। यह विधि एम्फिबियनों और
ाइलों में अनेक बार विकसित हुई है (देखिए LSE-10 के खण्ड 1 की इकाई 3)। पादविहीन प्राणियों
र्थात् रिंगकों (crawlers) के सबसे अच्छे उदाहरण हैं सांप, पादविहीन छिपकलियां ऐंगुइस (*Anguis*)
ा ओफ़िओसौरस (*Ophiosaurus*) तथा पादविहीन एम्फ़िबियन यूरियोटिफ़लस (*Uraeotyphlus*)
ा साइफनोप्स (*Siphonops*)।

रिंगक चार प्रकार से चलते हैं (चित्र 16.51)।

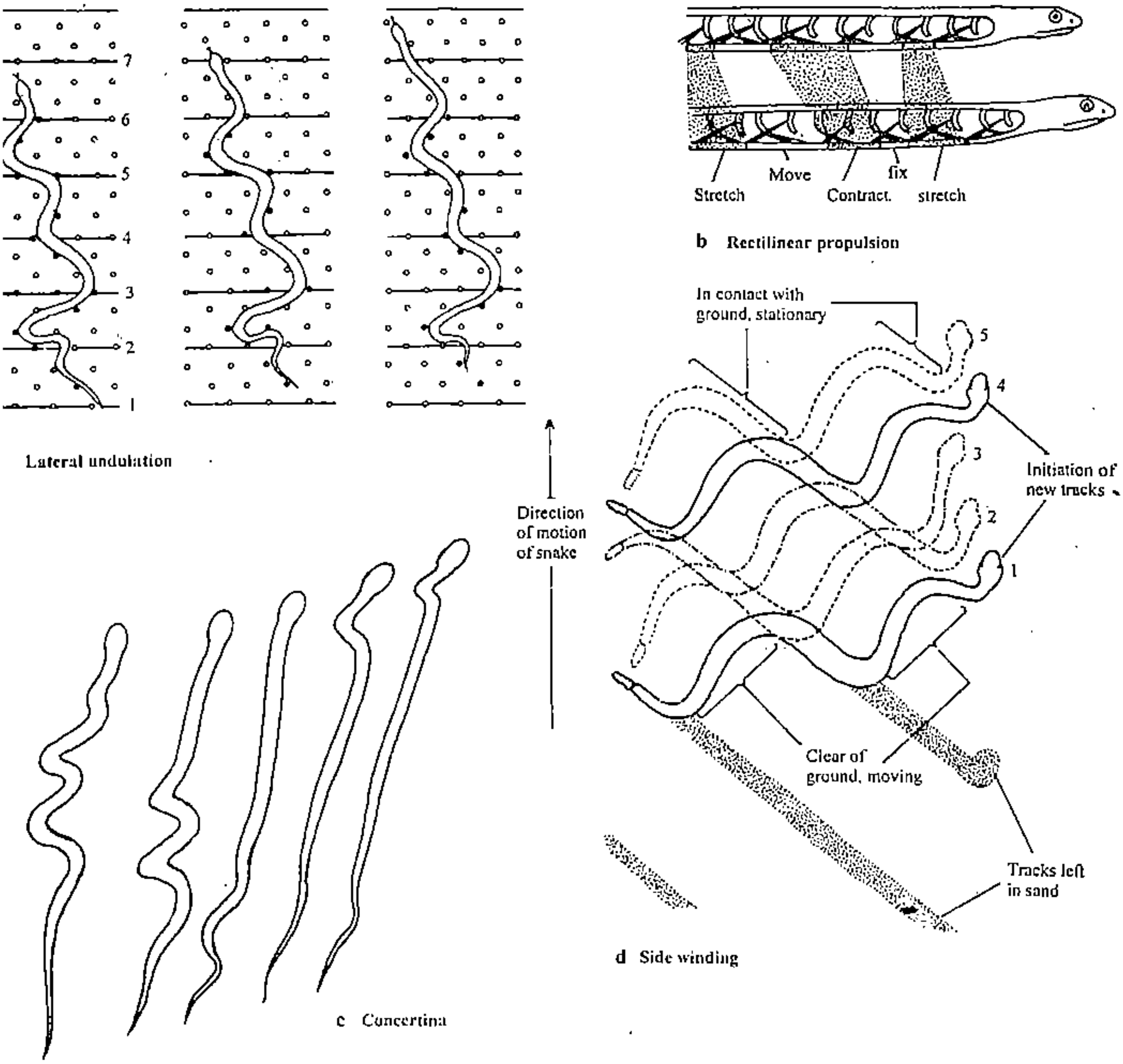

चित्र 16.51 : पादविहीन कशेरुकियों का रेंगना a) पार्श्व उर्मिलन b) सीधी रेखा में गति c) कंसर्टाइना गति d) पार्श्व लहराना।

) पार्श्व ऊर्मिलन (Lateral undulation): पार्श्व ऊर्मिलन पादविहीन प्राणियों को सर्वाधिक प्ररूपी
ाकार की गति है। इस गति में प्राणी S- आकृति का पथ ग्रहण करता है और वह सतह की
अनियमितताओं के प्रति पार्श्व बल लगाकर स्वयं को आगे को धकेलता है। प्राणी का शरीर पाश (लूप)
बनाता हुआ तरंगे बनाता है जो शीर्ष के पीछे आरम्भ होतीं और पीछे को चलती जाती हैं। शरीर की
कुंडलियां अथवा उसके लूप धरती पर बने उभारों जैसे कि कंकड़ों पौधों को जान लेते हुए उनके प्रति
अपने को आगे को धकेलता है। इन बलों के परिणामस्वरूप प्राणी आगे को चलता जाता है (चित्र 16.51 a)।

ii) सीधी रेखा में (ऋजुरेखीय) गति (Rectilinear movement): भारी शरीर वाले अनेक पादविहीन प्राणी सीधी रेखीय गति करते हैं। सांपों तथा पादविहीन छिपकलियों में शरीर के अधर भाग में त्वचा ढीली चढ़ी होती है। यह फैलायी जा सकती है। पसलियों से आने वाली पेशियां प्रशल्कों (scutes) (अधर शल्क) पर लगी होती हैं और धरती पर टिकीं होतीं हैं। शरीर के दो या तीन क्षेत्र ज़मीन पर टिके होते हैं जिन पर सांप का भार सधाया होता है। इन क्षेत्रों के बड़े आकार के अधर शल्क ज़मीन की अनियमितताओं पर टिक लेते हैं और उन्हें पीछे को धक्का दिया जाता है जबकि इसी दौरान मध्यवर्ती खण्ड ज़मीन से ऊपर उठा लिए जाते हैं तथा पेशियों द्वारा आगे की ओर को खींचे जाते हैं। इस प्रकार धीमी गति से शरीर सीधी रेखा में आगे को चलता है और अपने बिल में सीधा चलता जा सकता है (चित्र 16.51 b)।

iii) "कंसर्टाइना (Concertinia)"- कंसर्टाइना गति से सांप एक संकीर्ण मार्ग में चलता जा सकता है जैसे कि किसी वृक्ष पर चढ़ते समय जिसमें वह वृक्ष की छाल पर बनी असममित मार्गों का उपयोग करता है। इस प्रकार की गति में शरीर मानों इस प्रकार वलनित होता है जैसे कि ऐकॉर्डियन (कंसर्टाइना भी एक प्रकार का ऐकार्डियन होता है) में की धौंकनी में वलन बने होते हैं तथा पश्च सिरा या तो किसी छोटी सी शाखा पर लिपट जाता है अथवा किसी दरार में फँसा लिया जाता है। उसके बाद शरीर आगे बढ़कर नया सम्पर्क बनाता है और फिर शरीर के पिछले सिरे को आगे की ओर खींच लिया जाता है (चित्र 16.51 c)।

iv) पार्श्व लहराना (Side winding) ; मरुस्थली सांप रेत अथवा ढीली मिट्टी के ऊपर तेज़ी से चल लेते हैं। शीर्ष और गर्दन के द्वारा रेत के ऊपर समांतर पथ बना दिए जाते हैं। जब सांप चलता है तब वह एक समय में दो या तीन पथ छूता होता है और पथों के बीच के भाग चाप बनाते हैं। पथों पर आने वाले शरीर-क्षेत्र स्थिर होते हैं जबकि इन पथों के बीच-बीच के भाग जबकि वे गति कर रहे होते हैं ऊपर को गोलाई में उठे होते हैं (चित्र 16.57 d)। यात्रा की कुल मिलाकर दिशा पार्श्वत: और आगे को होती है और J-आकृति के पथों का एक क्रम रेत के ऊपर बना रह जाता है।

16.7.5 आरोही संचलन

कुछ प्राणी वृक्षों, चट्टानों तथा दीवारों पर चढ़ते हैं। आरोहण के लाभ इस प्रकार हैं:-

i) कुछ भोजन जैसे कि मधुमक्खियों के छत्तों से शहद, पक्षियों के घोंसलों से अण्डे, मकड़ियां और कीट वृक्षों से प्राप्त किए जाते हैं।

ii) प्राणी अपने आप को ऐसे परभक्षियों से बचा सकते हैं जो उपर चढ़ नही सकते है।

iii) ये प्राणी आने वाले संकट को देख सकते हैं।

iv) आरोही अथवा वृक्षवासी परभक्षी वृक्षों पर अपने शिकार का पीछा करते हैं जैसे कि वृक्षरोही वाइपर वृक्षों पर आरोही कृतकों की प्रतीक्षा करता है।

निम्नलिखित कशेरुकी या तो वृक्षों पर या दीवारों अथवा चट्टानों पर चढ़ सकने के लिए अनुकूलित होते हैं (चित्र 16.52 तथा 16.53, साथ ही चित्र 16.38 भी देखे)।

गैर स्तनियों में अनुकूलन

मछलियां (चित्र 15.52 a) —"बोई" अथवा *ऐनाबस* (*Anabas*)

ऐम्फ़िबियन (चित्र 16.52 b) — वृक्ष मेंढक *हाइला* (*Hyla*) और उड्डन मंडूक *रैकोफ़ोरस* (*Rhacophorus*)

रेप्टाइल (चित्र 16.35 c) — गिरगिट *कैलोटिस* (*Calotes*), केमीलियॉन (Chameleon), *गेको* (*Gecko*) तथा वृक्ष सर्प

पक्षी (चित्र 16.52 d) — कठफ़ोड़वा, क्रॉसबिल, तोते, "नटहैचर", "वाल-क्रीपर"

स्तनियों में अनुकूलन

मार्सूपियल — ऑपोसम (चित्र 16.53 a)

इंसेक्टिवोर — वृक्ष श्रू

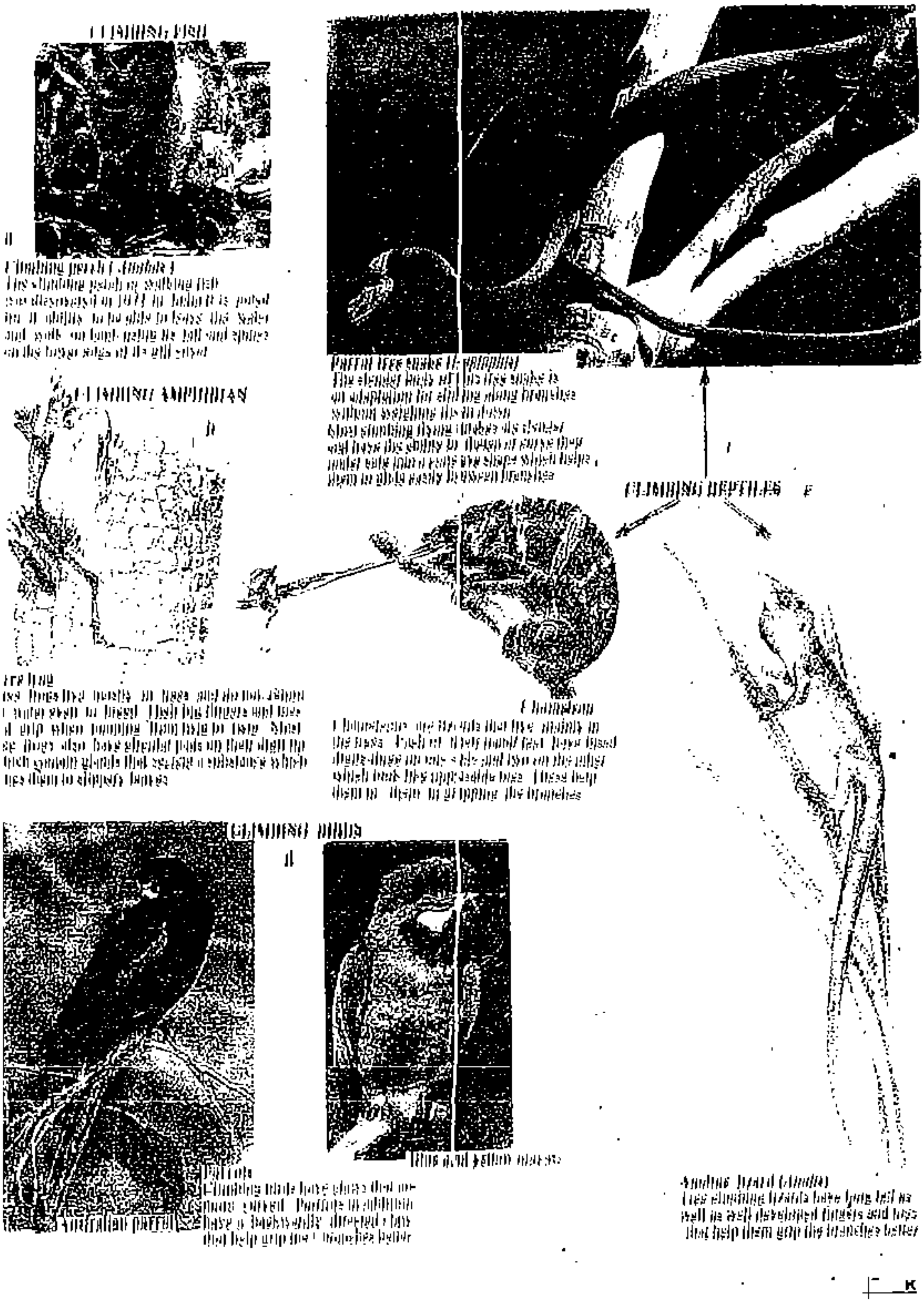

चित्र 16.52 : कुछ आरोही गैर स्तनी कशेरुकी जो चढ़ सकने के लिए अनुकूलित होते हैं। a) बोई b) चढ़ने वाले उभयचर c) चढ़ने वाले सरीसृप d) चढ़नेवाले पक्षी।

डर्मोप्टेरा — *कोल्यूगो (Colugo)* चित्र 16.38 g देखिए।

काइरॉप्टेरा — चमगादड़ें (चित्र 16.39 देखिए)

एडेन्टेट — स्लॉथ (चित्र 16.53 b)

प्राइमेट — बंदर, लंगूर, लोरिस, पोटो इत्यादि (चित्र 16.53 b)

रोडेण्ट — गिलहरी, चिपमंक, वृक्ष चूहे, डोरमाइस (चित्र 16.38 f)

कार्निवोर — रैकून, वीज़ेल, नेवले, बिल्लियां, लोमड़ियां

अंगुलेट — पर्वतीय बकरियां, भेड़, शेमॉय, (चित्र 16.21)

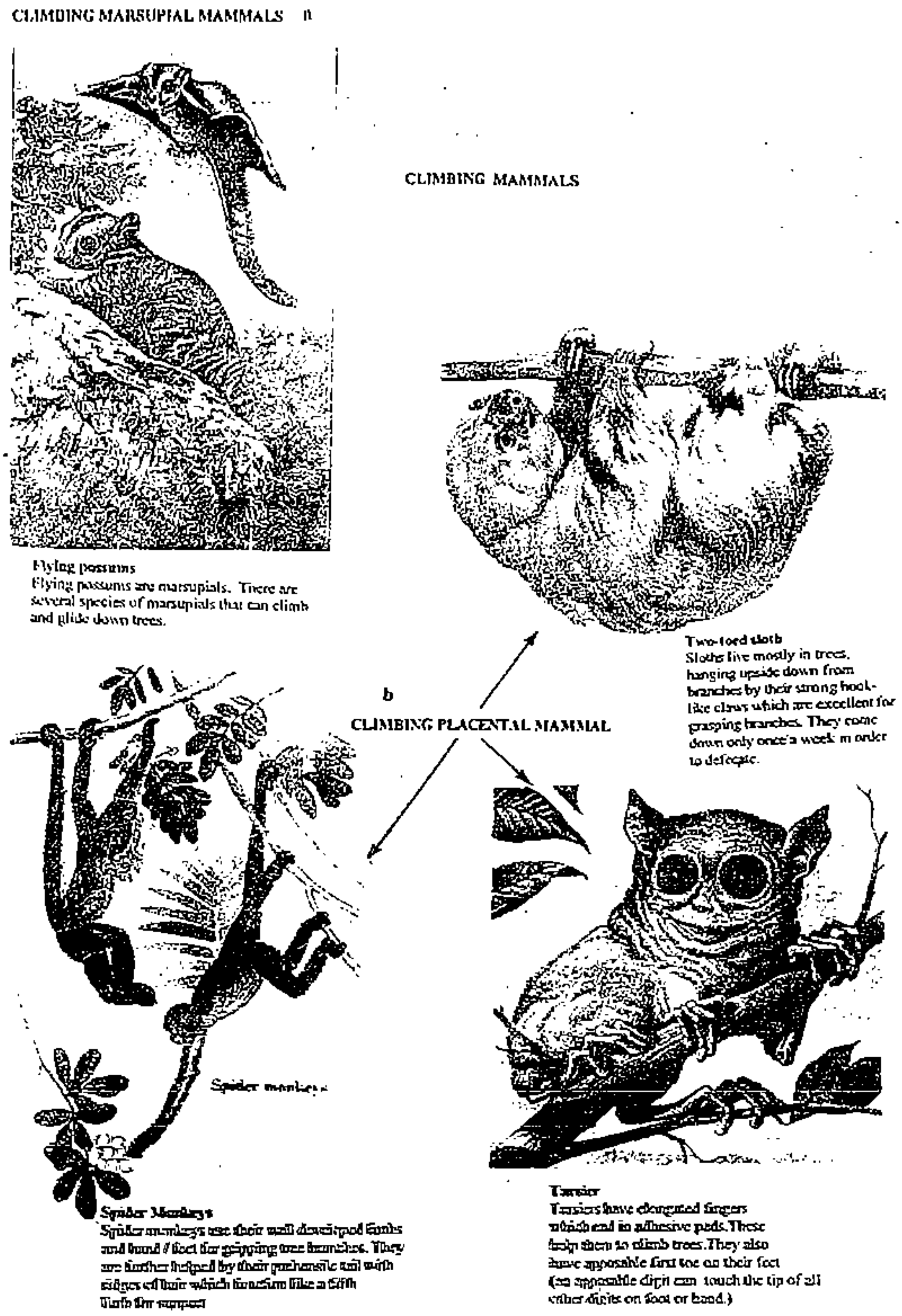

चित्र 16.53 : कुछ आरोही स्तनी जो चढ़ने के लिए अनुकूलित है। a) आरोही मार्सुपियल स्तनी b) आरोही अपरायुक्त स्तनी।

आरोही अनुकूलन

उन आरोहियों में, जो लगभग क्षैतिज शाखाओं पर चलते हैं, कोई विशेष अनुकूलन नहीं होते, बस उनकी पूंछ तथा पांव परिग्राही (prehensile) होते हैं।

आरोही सांप, छिपकलियां, वृक्ष गिलहरियां, हाऊलर बंदर तथा लंगूर शाखा से शाखा पर कूदते हैं। इनमें पायी जाने वाली विशेषताएं हैं धावकों की ही तरह मज़बूत लचीली कमर, लम्बे पाद, पतली हड्डियां और पेशी लग्नताएं। इनकी लम्बी पिछली टांगें एवं सामान्य पाद-यांत्रिकी वल्गियों के समान होती है। मगर

फ़ीमर हड्डी टिबिया से छोटी नहीं होती। पांव अध:स्तर को उसी प्रकार से पकड़ सकता है जैसे टार्सियस (*Tarsius*) में।

ऑरेन्ज उटैन, लोरिस तथा स्लॉथ (चित्र 16.53 b) कमर नीचे किए हुए उलटे लटकते हैं और वे एक सहारे को पकड़े होते हैं; एक सहारे से दूसरे सहारे पर जाते हुए वे अपने को आगे को खींचते हैं। पादों के समीपस्थ तथा दूरस्थ खण्ड लगभग बराबर होते हैं लेकिन पांव बड़े होते हैं जिनसे दबोच कर पकड़ा जाता है। वक्ष ज़्यादा लम्बा होता है। स्लॉथ अन्य शाखाओं पर चले जाया करते हैं जिसके लिए उनमें अग्र कशेरुकों पर जटिल पेशी व्यवस्था होती है जो रीढ़ के ऊपर को मुड़ने को रोकती है।

ह्यूमरस तथा फीमर के शीर्ष गोल होते हैं, अल्ना और रेडियस अवतानन (pronation) तथा उत्तानन (supination) के लिए होती हैं। अल्ना के दूरस्थ सिरे पर शूकाभ प्रवर्ध होता है जो एक धुराग्र बनाता है जिसके ऊपर कार्पस गति करती है। फ़िबुला बड़ी और मुक्त होती है (चित्र 16.54 a)।

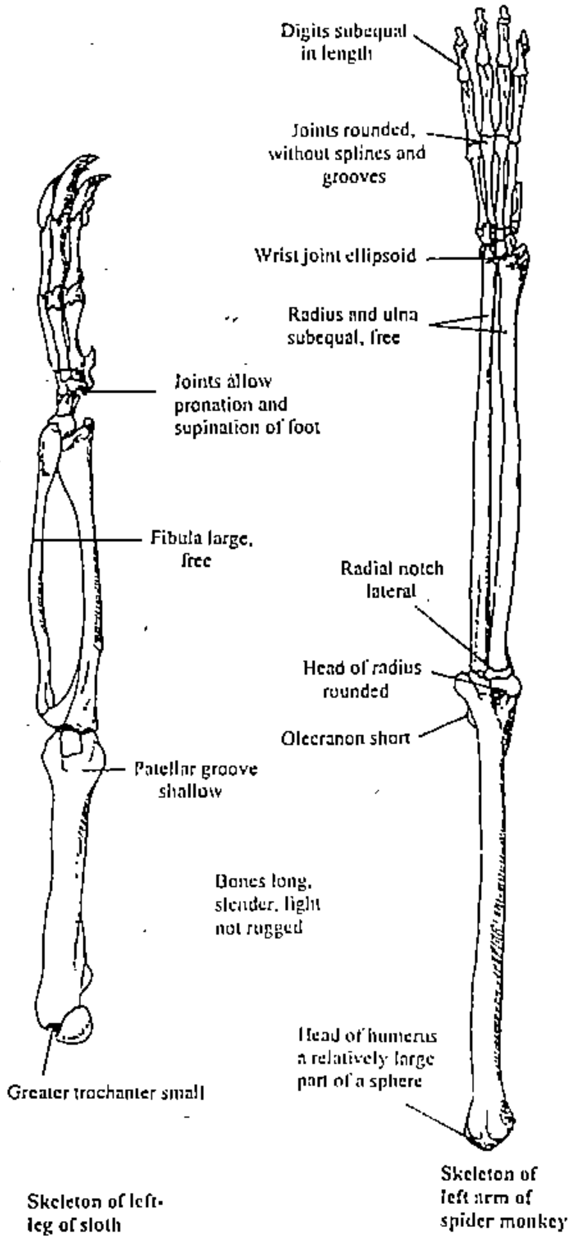

चित्र 16.54 : आरोहियों के पादों के कंकाल में अनुकूली रूपान्तरण।

सामान्यत: हड्डियां हल्की और पतली होती हैं और पेशियां जैसे कि आकोचनियां, अवतानिनियां, उत्तानिनियां एवं अपवर्तीनियां बहुत अच्छी तरह विकसित होती हैं।

बाहुगमन (Brachiation) अर्थात् शाखाओं से भुजाओं द्वारा लटक कर चलना

झूलकर एक शाखा से दूसरी शाखा पर पहुंचने के लिए आरोही केवल अपने अग्रपादों का ही सहारा लेते हैं। गिब्बन, सियामंग, लंगूर तथा अन्य बंदरों में अग्रपाद बहुत लंबे होते हैं — धड़ से दोगुने लम्बे तक।

ह्यूमरस पर बनी खात (fossa) (यानि गड्ढा) गहरा होता है जिसमें अल्ना का ओलीक्रेनन प्रवर्ध समा सकता है तथा कोहनी को सीधा किया जा सकता है। क्लैविकल लम्बी होती है, स्कैपुला पीठ पर चपटी पड़ी होती है। पीठ और भुजा की पेशियां इस प्रकार निवेशित होती हैं कि वे तनाव को हटा देती हैं।

पीठ छोटी और संहत होती है तथा धड़ एक एकल इकाई के रूप में झूल सकती है। कटि क्षेत्र (lumber area) संचलन में कोई योगदान नहीं देता और इसलिए कशेरुकों में कशेरुक-काय (सेंट्रम) छोटे होते हैं। हर एक झोटे के साथ रीढ़ घूर्णन करती है। बड़ी आंखे सामने को रुख लिए होती हैं जिससे गहराई का एवं अतिव्यापी दृष्टि का बोध होता है।

परिग्रहण (Grasping)

आरोही प्राणियों में परिग्रहण (दबोच) के लिए शक्तिशाली पादांगुलिक आकोचनी पेशियां होती हैं, ताकि वे किसी भी दिशा में फिसल न सकें। आरोही सांप अपने शरीर की कुंडलियों से जकड़ते हैं। वृक्ष मेंढ़कों में पहली पादांगुलि सम्मुखी (opposable) बन जाती है ताकि उसके द्वारा पकड़ा रखा जा सके। *कैमीलियॉन* में पादांगुलियां दो और तीन उंगलियों के दो समूहों में विभाजित हो जाती हैं जिससे शाखा पर चलते समय वह शाखा को दबोचे रह सकता है। पक्षियों में दबोचने के लिए दूसरी और तीसरी पादांगुलियां पहली और चौथी के सम्मुखी होती हैं ताकि परिग्रहण किया जा सके। परिग्राहियों के तलवे और उंगलियां नग्न होतीं एवं संवेदनशील होती हैं। बंदरों में हाथ और पैर दोनों में सम्मुखी अंगूठा होता है। चित्र 16.55 में परिग्रहण के लिए कुछ आरोही प्राणियों के हाथ तथा पैर दिखाए गए हैं।

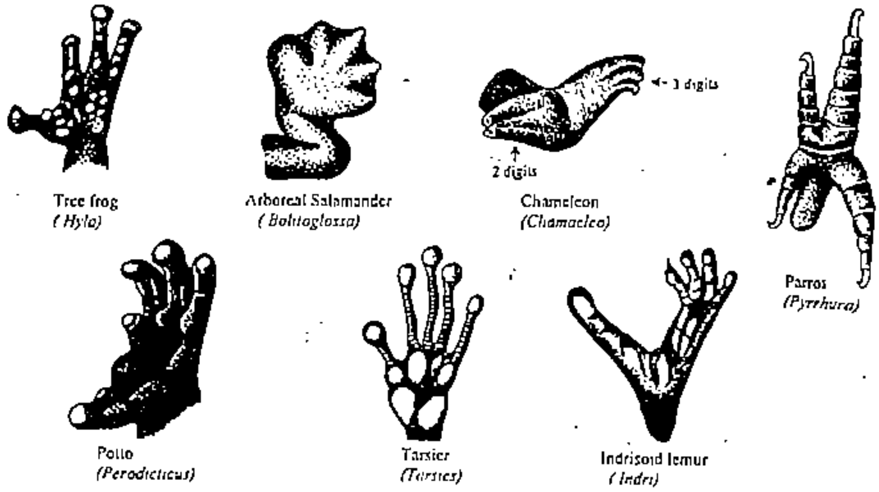

चित्र 16.55 : आरोहियों का परिग्राही हाथ/पांव जिससे पकड़ा जाता है, साथ ही इनमें उंगलियों के सिरों पर गद्दी जैसे पाद-पैड भी दिखाए गए हैं जिनसे चिपकने में सहायता मिलती है।

पूंछ भी एक परिग्रहण अंग की तरह काम करती है। आरोहियों में यह परिग्राही, लम्बी, मज़बूत, संवेदनशील तथा सिरे पर घुमावदार होती है। सैलामैण्डरों, कैमीलियानों, सांपों, बंदरों तथा पैंगोलिनों में पूंछ नीचे को घुमी हुई होती है जबकि साहियों में ऊपर को घुमी हुई होती है। परिग्राही पूंछे आधार पर लचीली होती हैं।

आरोही प्राणी गुरुत्व केंद्र को नीचे लाकर संतुलन बनाते हैं। वे अपनी टांगों को आकोचित (मोड़) करके देह को नीचे को बनाए रखते हैं। लम्बी पूंछें भी संतुलन बनाने में सहायता करती हैं। पुच्छविहीन आरोही लटकते, झूलते और धीमी गति करते हैं।

आरोहियों के उपांगों में गद्दी-जैसे पाद-पैड होते हैं जैसे कि वृक्ष मेंढकों और प्राइमेटों में। अध:स्तर से चिपके रहने के लिए नखर भी इस्तेमाल किए जाते हैं।

आसंजन (Adhesion)

चिपकने के लिए वृक्ष मेंढ़कों में उनकी उंगली की गेंदनुमा नोकों पर ग्रंथियां बनी हो सकती हैं अथवा वे अपने गीले पेट को दबाकर चिपक सकते हैं। सालामैन्डरों में पैरों में आसंजक गद्दियां बनी होती हैं। दीवार की छिपकली *गेको* में तेज़ नखर बने होते हैं जिन्हें खुरदरी सतहों पर गड़ा कर यह छिपकली चिपक जाती है। चिकने अध:स्तर पर जैसे कि दीवार पर चलने के लिए छिपकलियों में एक विलक्षण अनुकूली क्रियाविधि पायी जाती है। प्रत्येक पादांगुलि के नीचे 16 से 21 चौड़ी पटलिकाएं होती हैं जिन पर बाल जैसे शूक बने

ते हैं। प्रत्येक शूक में विशाखन होकर प्रशूक (bristles) बने होते हैं और हर प्रशूक पर चाय की प्याली सी अंत्य प्लेटें होती हैं। पटलिकाओं के भीतर की ओर रक्त कोटर (blood sinuses) होते हैं जो दांगुलियों के लिए गद्दियों जैसे कार्य करते हैं। ये रक्त कोटर दाब का समंजन करते हैं ताकि अंत्य प्लेटों ो ज़्यादा से ज़्यादा संख्या सतह के खुरदरेपन में बैठ जाए। सामूहिक निकट सम्पर्क से सतह-तनाव बन ाता है जिससे प्राणी अधःस्तर से चिपक जाता है (चित्र 16.56)।

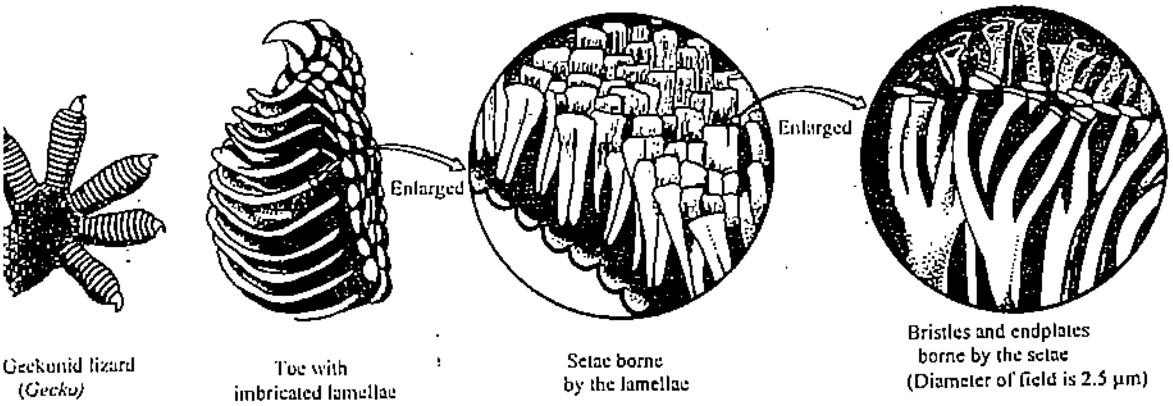

चित्र 16.56 : गेको छिपकली का पांव जिसमें दीवारों पर चिपकने के लिए अनुकूलन दिखायी पड़ रहे हैं।

ाध प्रश्न 5

अक्षीय तथा उपांगीय संचलन में एक अंतर बताइए

....

....

....

) कालम **अ** में संचलन के लिए दिए गए शब्दों को कालम **ब** में दिए गए क्रियाकलाप से मिलाइए।

कालम अ	**कालम ब**
1. आरोही	**क.** हवा में उड़ना
2. राइकोचेटल	**ख.** दोनों पांव एक साथ चलाए जाते हैं
3. धावीय	**ग.** वृक्षों पर चढ़ना
4. वल्गी	**घ.** धरती पर दौड़ना
5. उड्डयनी	**च.** ज़मीन पर कूदना

i) निम्नलिखित तीन प्राणियों में जल के भीतर गति करने के लिए पांव में एक-एक अनुकूलन बताइए: (क) मेंढक, (ख) पेंगुइन, (ग) सील।

....

....

....

/) एक-एक ऐसे (क) ऐम्फ़िबियन, (ख) रेप्टाइल तथा (ग) स्तनी का वैज्ञानिक नाम बताइए जो हवा में उड़ सकता है।

....

....

....

) पैटेजियम क्या है?

....

....

....

vi) पक्षियों के कंकाल में उड्डयन के लिए कोई तीन अनुकूलन बताइए।

....

....

....

vii) पादतलचारी, अंगुलिचारी तथा खुरचारी संचलन का क्या अर्थ है?

....

....

....

viii) निम्न तीन प्राणियों में वृक्ष की शाखा को दबोचने के लिए एक-एक अनुकूलन बताइए:
(क) कैमिलियान (ख) बंदर तथा (ग) वृक्ष मेंढक।

....

....

....

ix) द्विपादीय धावकों की पिछली टाँगें लम्बी क्यों होती हैं?

....

....

....

x) तैरने, चलने तथा उड़ने में से किस एक प्रकार के संचलन में सर्वाधिक ऊर्जा का व्यय होता है?

....

....

....

16.8 सारांश

इस इकाई में आपने जाना:-

- कशेरुकी प्राणियों में विशेष अनुकूलन पाए जाते हैं जैसे कि जल, वायु, स्थल और वृक्षों पर संचलन, और साथ ही साथ रंजन, जीव-संदीप्ति, प्रतिध्वनि निर्धारण के लिए भी। उनमें स्वरक्षा के लिए भी अनुकूलन होते हैं।
- प्राणियों के रंग वर्णकों अथवा बायोक्रोमों के कारण होते हैं जो वर्णकधर (क्रोमैटोफ़ोर) नामक कोशिकाओं के भीतर भरे होते हैं।
- विभिन्न रंगों के लिए प्राणि-वर्णक हैं — मेलानिन (भूरा अथवा काला), केरोटिनॉइड्स (पीला और लाल), टेरिडीन्स तथा ओमोटोक्रोम्स (पीले जैंथोफ़ोर तथा एरिथ्रोफ़ोर)।
- संरचनात्मक रंग विकीर्णन के कारण होते हैं जिनसे रंगदीप्ति रंग चमकते हैं।
- रंग दृष्टि रेटिना में मौजूद शंकुओं के कारण होती है, ये शंकु विशिष्ट रंगों को पहचानने के लिए विशेष तंत्रिकोशिकाएं होती हैं।
- मछलियों, पक्षियों तथा प्राइमेटों में उत्तम वर्ण दर्शन होता है।
- प्राणियों में पाया जाने वाला रंजन अनुकूली होता है। अनुकूली रंजन दो प्रकार का होता है: (1) सुरक्षाकारी अर्थात् गोपक - इसमें प्राणी इस प्रकार से रंजित होता है कि वह अपने परिवेश में एक रूप हो जाता है, (2) भयसूचक अथवा अपसूचक - इसमें प्राणी चटकीले रंगों वाले होते हैं जो उनकी आविषालुता का प्रदर्शन करते हैं।
- सुरक्षाकारी रंजन के उदाहरण: वृक्षों पर रहने वाले प्राणी हरे होते हैं; बर्फ़ पर रहने वाले प्राणी सफ़ेद होते हैं। फ्लैट फ़िश तथा गिरगट परिवेश के अनुसार अपना रंग बदल सकते हैं। चींटीख़ोर में

आधा सफ़ेद और आधा भूरा शरीर तथा ज़ेबरा की धारियां देह की बाह्यरेखा को भंग कर देती हैं और उन्हें अपने परभक्षियों की नज़र से बचाती हैं।

भयसूचक रंग चटकीले पीले तथा लाल होते हैं और ये रंग विषैले प्राणियों के हैं जैसे कि **बर्र** *हीलोडर्मा*।

अनुहरण उस समानता को कहते हैं जो दूर-दूर के अलग समूहों के जीवों के बीच बाह्य स्वरूप, आकृति तथा रंग में होती पायी जाती है। वह प्राणी जो किसी अन्य प्राणी के समान दिखने लगता है अनुहारी कहलाता है और जिसकी नकल की जाती है उसे मॉडल (प्रतिदर्श) कहते हैं।

अनुहरण दो प्रकार का होता है। जब कोई असुरक्षित स्पीशीज़ किसी दुस्वादु अथवा विषैली स्पीशीज़ के समान दीखने लगती है तब उसे **बेटसी अनुहरण** कहते हैं। दूसरे प्रकार का अनुहरण **म्यूलरी अनुहरण** है जिसमें दो या दो से अधिक असंबंधित मगर सुरक्षित स्पीशीज़ एक-दूसरे के समान दीखने लगती हैं।

सुरक्षाकारी अनुहरण के उदाहरण: (1) अनेक कीट पत्तियों की आकृति के जैसे होते हैं। (2) विषहीन सांप विषैले सांप के रंग के जैसे होते हैं; शलभ बर्र का अनुहरण कर सकते हैं (भयसूचक अनुहरण), (3) अनुहरण के अन्य प्रकार हैं प्रलोभनी अनुहरण जिसमें परभक्षी का व्यवहार एक चारे के जैसा लगता है। सचेतनी अनुहरण में शिकार मृत्यु-ढोंग रचता है ताकि परभक्षी बेवकूफ़ बन जाए।

जीव-संदीप्ति जीवों द्वारा प्रकाश का छोड़ना होती है।

- जीव-संदीप्ति में प्रकाश निकालने वाला रसायन **ल्यूसिफ़ेरिन** होता है। ऑक्सीजन तथा एंज़ाइम ल्यूसिफ़रेज़ की उपस्थिति में ल्यूसिफ़ेरिन ऑक्सीकृत हो जाती है और प्रकाश निकालता है।
- जीव-संदीप्त प्राणियों की प्रकाशजनी ग्रंथियों में ल्यूसिफ़ेरिन तथा ल्यूसिफ़रेज़ दोनों ही होते हैं।
- प्रकाश के निकलने से कई उद्देश्य पूरे होते हैं जैसे कि शिकार का पकड़ना, परभक्षियों से बच निकलना तथा जनन हेतु संगमियों को आकर्षित करना।
- सुरक्षा के लिए प्राणियों में विविध अनुकूलन पाए जाते हैं: (1) स्वयं की रक्षा के लिए, तथा (2) अपने बच्चों और (3) अपने निवास क्षेत्रों की रक्षा के लिए।
- परभक्षियों से बचने के विविध साधन इस प्रकार हैं:— (i) तेज़ रफ़्तार से भाग निकलना उदाहरण कंगारू, (ii) दांतों, नखरों, सींगों आदि का इस्तेमाल करना जैसे बिल्ली, कुत्ता, हिरन करते हैं, (iii) अपने शल्कीआवरण की सुरक्षाकारी गेंद बना लेना अथवा कड़े कवच के भीतर सिकुड़ जाना जैसे चींटीख़ोर, कछुए करते हैं, (iv) अपने विषैले स्रावों द्वारा परभक्षियों को सुन्न कर देना अथवा मार देना, जैसे अनेक ऐम्फ़िबिया और सांप में पाया जाता है, (v) घुड़काने वाले हाव-भाव तथा अन्य युक्तियां जिससे परभक्षियों को डराया जाता है, (vi) स्कंक जैसे बदबूदार स्राव निकाल कर, (vii) पक्षी सचेतक स्वर निकालते एवं परभक्षी का वृंद घेराव करते हैं, (viii) परभक्षी द्वारा पीछा किए जाने पर छिपकलियां अपनी पूंछ तोड़ डालतीं हैं और बच निकलती हैं, (ix) कुछ प्राणी मृत्यु-ढोंग रचते हैं जैसे ऑपोसम, (x) प्राणी तरह-तरह से अपने क्षेत्रों को पहचान प्रदान करते हैं।
- प्रतिध्वनि निर्धारण चमगादड़ों तथा ह्वेल में होता है जो अपने शरीर से पराध्वनिक निनाद निकालती हैं। इन निनादों की परणामी प्रतिध्वनियों को सुनकर ये रास्ते की बाधा की दूरी पता लगा सकती हैं। वे पराध्वनि निर्धारण के द्वारा अपने शिकार को पकड़ते एवं मार्गनिर्देशन करती हैं। चमगादड़ें स्वयं अपनी ही प्रतिध्वनियों को सुनने और साथ ही कीटों की ध्वनियां भी सुनने के लिए अनुकूलित होती हैं। प्रतिध्वनिज्ञापक कोशिकाएं चमगादड़ के मस्तिष्क में होती हैं। डॉल्फ़िनों तथा अन्य जलीय स्तनियों में नासीय कोश होते हैं जो बाह्य नासाछिद्रों एवं "ब्लोहोलों" में से आवाज़ निकाल सकते हैं।
- संचलन गति कशेरुकियों में कंकालीय पेशियों तथा उपांगों जैसे कि मछलियों में फ़िनों और स्थलीय कशेरुकियों में पादों के द्वारा होती है।
- संचलन को कई वर्गों में विभाजित किया जाता है —(1) जलीय संचलन जो (क) मछलियां में पाया जाता हैं जो कि प्राथमिक तैराक हैं और (ख) वालरस, ऊदबिलाव, कछुए तथा जलीय सांप में पाया जाता है जो द्वितीयक तैराक हैं। (2) उड्डयनी संचलन-प्राणी जो हवा में उड़ते हैं; (3) धावी संचलन-प्राणी जो स्थल पर चलते अथवा दौड़ते हैं, (4) आरोही संचलन-प्राणी जो वृक्षों अथवा चट्टानों पर चढ़ते हैं।

- जल संचलन के लिए निम्नलिखित अनुकूलनों की आवश्यकता होती है:-
- (क) धारारेखित शरीर (ख) कर्ष के निराकरण के लिए चिकनी त्वचा का होना, (ग) खण्डीय पेशियां, (घ) नोदन के लिए पूंछ, (च) दिशापरिवर्तन स्थिरीकरण एवं विस्थापन को रोकने के लिए फ़िन तथा (छ) अस्थिल मछलियों में उत्प्लावन के लिए वायु आशय का होना। नोदन तीन प्रकार से हो सकता है: (क) पूंछ को दाएं-बाएं चला कर (आस्ट्रैकिफ़ार्म), (ख) पिछले आधे शरीर को तरंगित करके (कैरेंगीफ़ार्म) अथवा (ग) ईल के समान जिसमें पूरे शरीर को तरंगित किया जाता है (ऐंगिवलिफ़ार्म)।
- जलीय पक्षियों के पांवों में झिल्लियां होती हैं। कछुओं और जलीय स्तनियों में अग्रपाद पैडल बन गए होते हैं।
- पेंगुइनों तथा ह्वेलों जैसे गोताखोर शरीरक्रियात्मक रूप में अनुकूलित होते हैं ताकि वे जल के नीचे बने रहने की स्थिति में कम O_2 का उपयोग कर सकें।
- उड्डनी कशेरुकियों में निम्नलिखित अनुकूलन पाए जाते हैं:- (क) धारारेखित आकृति, (ख) वायु गुहाओं से युक्त हल्का कंकाल, (ग) संलयित हड्डियां, (घ) अग्रपादों का पंखों में रूपांतरण जिन के ऊपर एपिडर्मिसी पिच्छ बने होते हैं, (च) नौतलयुक्त स्टर्नम जिस पर उड्डयन पेशियां लगी होती हैं, (छ) तीव्र दृष्टि, (ज) समतापता, (झ) वायु थैले जिनके द्वारा वायुगमनागमन होता है, (ह) उत्कृष्ट पेशी संकुंचन।
- उड़न छिपकलियों तथा उड़न स्तनियों में पैटेजियम नामक एक चर्म प्रसार होती है जो उन्हें विसर्पण में सहायता देती है। चमगादड़ के पंख में एक पैटेजियम होती है जो लम्बी पादांगुलियों से जुड़ी होती हैं।
- धावी अनुकूलन इस प्रकार हैं क) धारारेखित शरीर ख) लम्बी टांगें जिनमें ग) लम्बे दूरस्थ खण्ड होते हैं, घ) संलयित मेटाकर्पलें एवं मेटाटार्सलें, च) पादतलचारी, अंगुलिचारी अथवा खुरचारी संचलन, छ) द्विपादीय अथवा चतुष्पादीय गति, ज) लचीली रीढ़।
- कूदने वाले धावी प्राणियों को **वल्गी** कहते हैं। इनमें ये लक्षण पाए जाते हैं: क) अग्रपादों के अपेक्षा पश्चपाद कहीं ज़्यादा लम्बे, ख) संतुलन के लिए पूंछ का अधिक लम्बा हो जाना। वे वल्गी जो दोनों टांगों को एक साथ चलाकर कूदते हैं और कुछ डग लगातार लेते जाते हैं **राइकोचेटल** कहलाते हैं।
- पादविहीन धावी कशेरुकी अर्थात रेंगने वाले चार प्रकार की गतियों द्वारा रेंगते हैं— (i) पार्श्व ऊर्मिलन, (ii) ऋजुरेखीय गति (iii) कंसर्टाइना गति तथा पार्श्व कुंडलन गति ।
- **आरोही** कशेरुकियों में ये लक्षण होते हैं: (i) परिग्राही पादांगुलियां तथा पूंछ, (ii) हाथ का कंकाल सर्व दिशा गतियां संभावित करता है, (iii) पाद गद्दियां अथवा नखर जिनसे वृक्ष को दबोचा जा सकता है, छिपकलियों में आसंजन के लिए पटलित पांव होते हैं।

16.9 अंत में कुछ प्रश्न

1. सुरक्षाकारी तथा भयसूचक रंजन में विभेद कीजिए।

....

....

....

....

2. सुरक्षाकारी रंजन के कोई पांच उदाहरण दीजिए।

....

....

....

....

3. बेट्सी तथा म्यूलरी अनुहरण पर टिप्पणियां लिखिए।

....

....

सुरक्षाकारी, भयसूचक, आकर्षणी और सचेतन अनुहरण का एक-एक उदाहरण दीजिए तथा प्रत्येक में अनुहरण का उद्देश्य बताइए।

प्राणियों में उदाहरण देकर पांच विभिन्न प्रकार की प्रतिरक्षा की विधियां समझाइए।

जीव-संदीप्ति की क्रियाविधि समझाइए।

वायवीय जीवन के लिए विविध अनुकूलन लिखिए।

जल में गति के लिए जलीय प्राणी किस प्रकार अनुकूलित हैं? गोता लगाने के लिए अनुकूलनों पर एक टिप्पणी लिखिए।

राइकोचेटल किन्हें कहते हैं? एक उदाहरण दीजिए। अन्य वल्गियों से ये किस प्रकार भिन्न होते हैं?

वृक्षारोही जीवन के लिए क्या-क्या अनुकूलन होते हैं?

छिपकली दीवार पर किस प्रकार चल लेती हैं?

12. पादविहीन प्राणी किस-किस प्रकार चलते हैं उनकी विधियों का वर्णन कीजिए।

....

....

....

13. धावी स्तनी स्थलीय संचलन के लिए किस प्रकार अनुकूलित होता है?

....

....

....

16.10 उत्तर

बोध प्रश्न

1. (i) क्रोमैटोफ़ोर; (ii) मेलेनिन; (iii) उपार्जित; (iv) गोपक, (v) अनुहरण; (vi) बेट्सी; (vii) प्रलोभनी

2. i जीवधारियों द्वारा प्रकाश छोड़े जाने की परिघटना

   ii. ल्यूसिफ़ेरिन तथा ल्यूसिफरेज़

   iii. प्रोटीन

   iv. शिकार पकड़ना, परभक्षी से बच निकलना, संगमी को आकर्षित करना।

   v. ल्यूसिफ़ेरिन, ATP, O_2 तथा उत्पाद - ऑक्सीकृत ल्यूसिफ़ेरिन, AMP, Pi तथा प्रकाश।

3. i. प्राचीन काल में रेड इंडियन अपने बाणों पर इसका विष लगाते थे।

   ii. भयसूचक रंजन, भयसूचक अनुहरण, स्वविच्छेदन, मृत्यु-ढोंग, सुरक्षाकारी रंजन, धमकी प्रदर्शन, कवच, नखर, खुट तथा दांत

   iii. इनके द्वारा - क) अपसूचक रंजन
   ख) स्वविच्छेदन
   ग) आवाज़ें निकालना / भाग खडे होना

4. i. अपनी ही आवाज़ों की प्रतिध्वनि के द्वारा अवरोधी तथा शिकार को पहचान सकने की प्राणी के क्षमता को प्रतिध्वनि निर्धारण कहते हैं।

   ii. बाहरी नासाछिद्रों में खुलने वाले नासा कोशों को "ब्लो होल" कहते हैं।

   iii. *कोलोकैलिया, स्टीएटॉर्निस* अथवा ग्वाचारों अथवा तेल पक्षी

5. i. जलीय जीवों में पेशियों अथवा फ़िनों द्वारा अक्षीय संचलन उपांगीय संचलन अजलीय जीवों में द्वारा खासकर के उड़ने वाले प्राणियों और स्थलीय प्राणियों में।

ii. 1-ग, 2-ख, 3-घ, 4-च, 5-क

iii. (क) झिल्लीयुक्त पांव/चिकनी खाल; (ख) पिच्छविहीन पंख/गोता लगाने के लिए शरीरक्रियात्मक अनुकूलन/झिल्लीयुक्त पांव; (ग) धारारेखित शरीर/कर्णपल्लव नहीं होता/तैरने के लिए अग्रपाद चप्पुओं में रूपांतरित।

iv. (क) *रैकोफ़ोरस*, (ख) *गेको; ड्रैको;* (ग) *कौल्यूगो/ ग्लौकोमिस*, कोई भी चमगादड़।

v. उड्डयनी प्राणियों में उड़ने के लिए कोई त्वचा-वलन/त्वचा झिल्ली।

vi. पक्षियों में वातिल हड्डियां/संलयित हड्डियां/नौतल/संहत करोटि/लम्बी हो गयी अग्रपाद-हड्डियां/अंगुलास्थियों की संख्या कम हो जाना तथा चमगादड़ों में लम्बी अंगुलास्थियां/पश्चपाद की लम्बी हड्डियां।

vii. पाद के तलवे पर चलना, उंगलियों पर चलना तथा उंगलियों के अंतिम सिरों पर चलना।

viii. (क) पादांगुलियां दो समूहों में विभाजित हो जाती हैं, (ख) परिग्राही पूंछ/सम्मुखी हाथ का एवं पैर का अंगूठा; (ग) पादांगुलियों के सिरों पर पाद गद्दियों का बना होना।

ix. क्योंकि संचलन के दौरान पश्चपाद शरीर का नोदन करते हैं।

x. उड़ने में।

अंत में कुछ प्रश्न

1. देखिए 16.2.2
2. देखिए 16.2.2
3. देखिए 16.3.1
4. देखिए 16.3.2
5. देखिए 16.5.2
6. देखिए 16.4.3
7. देखिए 16.7.3
8. देखिए 16.7.2
9. देखिए 16.7.4
10. देखिए 16.7.3 का अंत
11. पाठ का अंतिम पैराग्राफ़ देखिए
12. देखिए 16.7.4
13. देखिए 16.7.4 (चित्र 16.44 तथा 16.45)

शब्दावली

अनुकूलन (Adaptation): एक क्रमविकासीय प्रक्रिया जिसके द्वारा जीव अपने उस पर्यावरण में जिसमें वह रह रहा है, के लिए सही बन जाता है या कोई एक संरचना जो पर्यावरण-विशेष के लिए सही बन गयी हो या किसी विशेष उद्दीपन के लिए किसी एक ग्राही का इस प्रकार शरीरक्रियात्मक रूप में अभ्यस्त हो जाना कि यदि वह उद्दीपन और अधिक तीव्र न हुआ तो उसके प्रति अनुक्रिया होनी बंद हो जाती है।

विवादग्रस्थ व्यवहार (Agonistic behaviour): प्राणियों में परस्पर आक्रामक व्यवहार, इसका उपयोग प्रायः एक ही स्पीशीज़ के सदस्यों के बीच के व्यवहार के लिए किया जाता है।

परोपकारिता (Altruism): सहायक व्यवहार जिसमें सहायता प्रापक की योग्यता बढ़ जाती है था देने वाले की योग्यता घट जाती है।

अपसूचक रंजन (Aposematic colouration): एक सुव्यक्त रंग प्रतिरूप जो प्राणी को अपना विज्ञापन करने में या सुरक्षा में सहायक होता है जैसे कि यह जताना कि वह विषैला अथवा खतरनाक है; यह कुछ उन अहानिकर स्पीशीज़ में भी पाया जाता है जो खतरनाक स्पीशीज़ का अनुहरण करती हैं।

जैविक घड़ी (Biological clock) प्राणियों के शरीर के भीतर एक आंतरिक समस्वरकारी यांत्रिकी होती है जिसका कार्य दिवस प्रायः ताल तथा अन्य चक्रों के नियंत्रण करने में होता है। यह प्रवास तथा दिक्‌चालन में भी कार्य करती है।

वर्णकधर अथवा वर्णकीलवक्ष (Chromatophore): वर्णक से युक्त कोशिका जो त्वचा में रंग बदल सकने में सक्षम होती है।

दिवसप्राय ताल (Circadian rhythm): व्यवहार का लगभग 24 घंटे का चक्र जो पर्यावरण के निरपेक्ष स्वयं अभिव्यक्त होता रहता है।

वर्षप्राय ताल (Circannual rhythm): व्यवहार का वार्षिक चक्र जो पर्यावरण परिवर्तनों के निरपेक्ष स्वयं प्रकट होता है।

गोपक रंजन (Cryptic colouration): एक ऐसा रंग प्रतिरूप जो प्राणी को उसके परिवेश से ऐकरस दृश्यमान करने में सहायता करता है, जो अक्सर आखेट स्पीशीजों में पाया जाता है और कभी-कभार उन परभक्षियों में भी, जो अपने शिकार की ताक में स्तब्ध खड़े रहते या छिपे रहते है।

धावी (Cursorial): ऐसे प्राणी जिनके पाद दौड़ने के लिए अनुकूलित होते हैं।

विभंजनी रंजन (Disruptive colouration) ऐसी रंग व्यवस्था जिसमें देह की सीमारेखा स्पष्ट नहीं दिखाई देती है ताकि प्राणी अपने परिवेश के साथ छद्मावृत्त हो जाता है।

प्रभाविता पदानुक्रम (Dominance Hierarchy): समूह के भीतर सामाजिक पद स्थापना जिसमें कुछ प्राणी दूसरों को प्रधानता दे देते, जिसमें वे बिना परस्पर लड़े उपयोगी संसाधन दूसरे को ले लेने देते हैं।

व्यवहारिकी (Ethology): वह अध्ययन जिसमें प्राणि-व्यवहार के प्रकट होने की यांत्रिकी एवं उसका अनुकूलनी महत्व जाना जाता है।

नियत क्रिया प्रतिरूप (Fixed action pattern): एक सहज अपरिवर्तनीय अनुक्रिया जो किसी सुपरिभाषित सरल उद्दीपन से तत्प्रारम्भ हो जाती है; एक बार प्रतिरूप सक्रिय हो जाने पर अनुक्रिया पूरी ही होती है।

अभ्यस्तन (Habituation): केंद्रीय तंत्रिका तंत्र में परिवर्तनों के कारण उत्तरोत्तरी उत्तेजन से अनुक्रिया में क्रमिक ह्रास।

गृह-परास (Home range): प्राणी द्वारा ग्रहण किया गया एक क्षेत्र लेकिन जिसकी वह रक्षा नहीं करता, यह स्वामित्व क्षेत्र, जिसकी रक्षा की जाती है, से भिन्न होता है।

अध्यंकन (Imprinting): एक प्रकार का शिक्षण जिसमें व्यक्ति अपने आरंभिक जीवन में कुछ खास उद्दीपनों से प्रभवित होकर किसी वस्तु के साथ साहचर्य बना लेतें हैं, और फिर बाद में उसी प्रकार की वस्तुओं के साथ लैंगिक व्यवहार दर्शा सकते हैं :

जन्मजात निर्मोचन क्रियाविधि (Innate releasing mechanism): एक परिकाल्पनिक, तंत्रिकीय यांत्रिकी जो किसी संकेत उद्दीपन के प्रति सहज अनुक्रिया के नियंत्रण के लिए उत्तरदायी होती है।

सहज प्रवृत्ति (Instinct): एक व्यवहार प्रतिरूप जो विश्वसनीय तौर पर अधिसंख्य व्यष्टियों में बनता है, जो किसी विमोचक के प्रति पहली ही बार में कार्यात्मक अनुक्रिया को उत्पन्न करती है।

सगोत्र वरण (Kin selection): एक प्रकार का प्राकृतिक चयन जो तब होता है जब व्यष्टि इस रूप में भिन्न हों कि उनसे पैतृक देखरेख करने की क्षमता अथवा सहायताकारी व्यवहार प्रभावित हो जाता हो और इस तरह उनकी संतान अथवा संबंधी की उत्तरजीविता प्रभावित होती हो।

अनुहरण (Mimicry): एक अनुकूलन जिसमें कोई प्राणी किसी अन्य जीवित अथवा निर्जीव वस्तु के स्वरूप की नकल अपना कर छुप जाता है।

मॉबिंग व्यवहार (Mobbing behaviour): व्यवहार जिसमें आखेट अपने बचाव में स्वयं परभक्षी की ओर आकर उसे डराता-धमकाता है।

एकसंगमनीत्व (Monogamy): एक मैथुन प्रणाली जिसमें प्रजनन ऋतु में एक नर एक ही मादा के साथ मैथुन करता है।

बहुसंगमनी (Polygyny): मैथुन प्रणाली जिसमें प्रजनन ऋतु में एक नर कई मादाओं के अण्डों को निषेचित करता है।

बहुपतित्व (Polyandry): मैथुन प्रणाली जिसमें एक मादा प्रजनन ऋतु में कई मैथुन साथियों के साथ संभोग करती है।

प्रत्यक्ष कारण (Proximate cause): किसी एक व्यष्टिगत प्राणी में उसमें मौजूद भीतरी क्रियाविधियों पर आधारित तात्कालिक अंतर्निहित कारण।

विमोचक [illegible]: किसी व्यष्टिगत प्राणी द्वारा अन्य प्राणी को एक सामाजिक संकेत के रूप में देया जाने वा [illegible] उद्दीपन।

उल्गी (Saltator): प्राणी जो संचलन में कूदते, छलांगते अथवा सहसा गति करते हैं।

आरोही (Scansorial): स्वभावगत ऊपर चढ़ने वाले अथवा ऊपर चढ़ने के लिए अनुकूलित प्राणी।

उड्डयनी (Volant): संभालकर एवं तीव्रता से उड़ने के लिए अनुकूलित प्राणी।

दृष्टि सुतीक्ष्णता (Visual acuity): दृष्टि की तीव्रता, दूर-दूर तक देख सकने की क्षमता, सुतीक्ष्ण दृष्टि।

मूलभूत कारण (Ultimate cause): किसी व्यवहार का क्रमविकासीय, ऐतिहासिक कारण।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. An Introduction to Animal Behaviour, Aubrey Manning and Marian Stamp Dawkin (Fourth Edition) Cambridge University Press.
2. Animal Behaviour, Reena Mathur (1994) Rastogi and Company, Meerut.
3. The Oxford Companion to Animal Behaviour edited by David McFarland, Oxford University Press (1987).

NOTES